ओ३म्

हिन्दी ऋग्वेद



(…ी सम्पूर्ण "शाकल-संहिता" का हिन्दीभाषान्तर)

भाषान्तरकार और सम्पादक,

रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री

(…क साहित्य", "दर्शन-परिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "ईश्वर-…", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदि के लेखक, "आर्य-महिला" (बनारस), "विश्वदूत" (रंगून, बर्मा), "सेनापति" (कलकत्ता), "गङ्गा" (सुलतानगंज, भागलपुर) आदि के पूर्व सम्पादक, "गीता-प्रचारक महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "सनातन-धर्म-महामण्डल" (डरबन, दक्षिण अफ्रीका) के संस्थापक और आजीवन सभापति तथा भारत-धर्म-महामण्डल (बनारस) के महोपदेशक)

—:o:—

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), लिमिटेड, प्रयाग

१९५४

ओ३म्



हिन्दी ऋग्वेद

(…ी सम्पूर्ण "शाकल-संहिता" का हिन्दीभाषान्तर)

भाषान्तरकार और सम्पादक,

रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री

(…क साहित्य", "दर्शन-परिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "ईश्वर-…", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदि के लेखक, "आर्य-महिला" (बनारस), "विश्वदूत" (रंगून, बर्मा), "सेना-पति" (कलकत्ता), "गङ्गा" (सुलतानगंज, भागलपुर) आदि के पूर्व सम्पादक, "गीता-प्रचारक महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "सनातन-धर्म-महामण्डल" (डरबन, दक्षिण अफ्रीका) के संस्थापक और आजीवन सभापति तथा भारत-धर्म-महामण्डल (बनारस) के महोपदेशक)

—:o:—

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), लिमिटेड, प्रयाग

१९५४

२०११ विक्रमीय

मूल्य १२)

मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्र.

२०११ विक्रमीय

मूल्य १२)

मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्र.



श्रीमान् ठाकुर कन्हैया सिंह
(गहमर, जिला गाजीपुर)



श्रीमान् ठाकुर कन्हैया सिंह
(गहमर, जिला गाजीपुर)

समर्पण

जो उदात्त-मना, उदार दानी और सहृदयता की मूर्त्ति हैं, जो विद्यार्थियों,
विद्वानों और कलाविदों के आश्रय-स्थल हैं, जो आदर्श शासक
और आदर्श-चरित हैं, जो वैदिक वाङ्मय के
परम भक्त और राष्ट्रभाषा हिन्दी के
अनन्य अनुरागी हैं,

उन

क्षत्रिय-कुल-भूषण, परदुःखकातर, परोपकार-व्रत-निरत, धर्म-प्राण, प्रसन्न-
वदन, भारत सरकार के आय-कर (इनकम-टैक्स) विभाग के
डाइरेक्टर और गहमर (जि० गाज़ीपुर) के निवासी

श्रीमान् ठाकुर कन्हैया सिंहजी

के

कमनीय कर-कमलों में

सप्रेम समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी

समर्पण

जो उदात्त-मना, उदार दानी और सहृदयता की मूर्त्ति हैं, जो विद्यार्थियों,
विद्वानों और कलाविदों के आश्रय-स्थल हैं, जो आदर्श शासक
और आदर्श-चरित हैं, जो वैदिक वाङ्मय के
परम भक्त और राष्ट्रभाषा हिन्दी के
अनन्य अनुरागी हैं,

उन

क्षत्रिय-कुल-भूषण, परदुःखकातर, परोपकार-व्रत-निरत, धर्म-प्राण, प्रसन्न-
वदन, भारत सरकार के आय-कर (इनकम-टैक्स) विभाग के
डाइरेक्टर और गहमर (जि० गाज़ीपुर) के निवासी

श्रीमान् ठाकुर कन्हैया सिंहजी

के

कमनीय कर-कमलों में

सप्रेम समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी

भूमिका

वेद के स्वरूप पर तीन मत-वाद

'विद्' धातु से वेद शब्द बना है। लैटिन भाषा में 'विद्' धातु को 'Videre' धातु कहा जाता है। इसी धातु से अंग्रेजी का 'Idea' शब्द भी निकला है। वेद शब्द के लिए ठीक अंग्रेजी शब्द 'Vision' है, जिसका अर्थ 'दर्शन' है। जिन्हें यह महान् 'दर्शन' हुआ, उन्हें ऋषि कहा जाता है। ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र ("हिन्दी ऋग्वेद", पृ० १३३६. मन्त्र ४) में 'मन्त्र-द्रष्टा' ऋषि का स्पष्ट उल्लेख है। एक दूसरे मन्त्र (१३२४.३) में तो और भी स्पष्ट कहा गया है—'ऋषियों ने (समाधि-दशा में) अपने अन्तःकरण में जो वाक् (वेद-वाणी) प्राप्त की उसे उन्होंने सारे मनुष्यों को पढ़ाया।' ऋग्वेद के प्रख्यात कौषीतकि-ब्राह्मण (१०.३०) और ऐतरेयब्राह्मण (३.९) नाम के ग्रन्थों का भी मत है कि 'वेद-मन्त्र देखे गये हैं।' वैदिक संहिताओं में सूक्तों के ऊपर जिन ऋषियों के नाम पाये जाते हैं, वे मन्त्र-प्रणेता नहीं, मन्त्र-दर्शक हैं। यास्काचार्य ने अपने निरुक्त (नैगम काण्ड २.११) में लिखा है—"ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श।" अर्थात् ऋषियों ने मन्त्रों को देखा; इसलिए उनका नाम 'ऋषि' पड़ा। कात्यायन ने अपने 'सर्वानुक्रमसूत्र' में लिखा है—"द्रष्टार ऋषयः स्मर्त्तारः।" आशय यह कि ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा वा स्मर्ता हैं, कर्त्ता नहीं। कहा जाता है कि 'आकाश में व्याप्त नित्य शब्दों को कण्ठ, तालु, जिह्वा आदि के द्वारा जैसे अभिव्यक्त किया जाता है, वैसे ही शब्दमय नित्य वेद को ऋषियों ने समाधि द्वारा अभिव्यक्त वा प्रकट किया। वेदान्त-दर्शन के 'शारीरक-भाष्य' (२.३.१) में शंकराचार्य ने वेद-नित्यता-प्रतिपादक अनेक तर्कों और वचनों को विन्यस्त किया है।

ऋग्वेद में एक स्थल (१३५९.९) पर कहा गया है—'सर्वात्मक पुरुष (परमेश्वर) के संकल्परूप होम से युक्त मानस यज्ञ से ऋग्वेदादि प्रकट हुए।' बृहादारण्यकोपनिषद वेद को भगवान वा ब्रह्म का श्वास मानती है। नित्य वस्तु का श्वास नित्य होता ही है; इसलिए वेद नित्य हैं। यहाँ श्वास का अर्थ ज्ञान भी किया जाता है। फलतः ईश्वर के समान उसका ज्ञान भी नित्य है। ऋषियों को तपःपूत समाधिदशा

भूमिका

वेद के स्वरूप पर तीन मत-वाद

'विद्' धातु से वेद शब्द बना है। लैटिन भाषा में 'विद्' धातु को 'Videre' धातु कहा जाता है। इसी धातु से अंग्रेजी का 'Idea' शब्द भी निकला है। वेद शब्द के लिए ठीक अंग्रेजी शब्द 'Vision' है, जिसका अर्थ 'दर्शन' है। जिन्हें यह महान् 'दर्शन' हुआ, उन्हें ऋषि कहा जाता है। ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र ("हिन्दी ऋग्वेद", पृ० १३३६. मन्त्र ४) में 'मन्त्र-द्रष्टा' ऋषि का स्पष्ट उल्लेख है। एक दूसरे मन्त्र (१३२४.३) में तो और भी स्पष्ट कहा गया है—'ऋषियों ने (समाधि-दशा में) अपने अन्तःकरण में जो वाक् (वेद-वाणी) प्राप्त की उसे उन्होंने सारे मनुष्यों को पढ़ाया।' ऋग्वेद के प्रख्यात कौषीतकि-ब्राह्मण (१०.३०) और ऐतरेयब्राह्मण (३.९) नाम के ग्रन्थों का भी मत है कि 'वेद-मन्त्र देखे गये हैं।' वैदिक संहिताओं में सूक्तों के ऊपर जिन ऋषियों के नाम पाये जाते हैं, वे मन्त्र-प्रणेता नहीं, मन्त्र-दर्शक हैं। यास्काचार्य ने अपने निरुक्त (नैगम काण्ड २.११) में लिखा है—"ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श।" अर्थात् ऋषियों ने मन्त्रों को देखा; इसलिए उनका नाम 'ऋषि' पड़ा। कात्यायन ने अपने 'सर्वानुक्रमसूत्र' में लिखा है—"द्रष्टार ऋषयः स्मर्त्तारः।" आशय यह कि ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा वा स्मर्ता हैं, कर्त्ता नहीं। कहा जाता है कि 'आकाश में व्याप्त नित्य शब्दों को कण्ठ, तालु, जिह्वा आदि के द्वारा जैसे अभिव्यक्त किया जाता है, वैसे ही शब्दमय नित्य वेद को ऋषियों ने समाधि द्वारा अभिव्यक्त वा प्रकट किया। वेदान्त-दर्शन के 'शारीरक-भाष्य' (२.३.१) में शंकराचार्य ने वेद-नित्यता-प्रतिपादक अनेक तर्कों और वचनों को विन्यस्त किया है।

ऋग्वेद में एक स्थल (१३५९.९) पर कहा गया है—'सर्वात्मक पुरुष (परमेश्वर) के संकल्परूप होम से युक्त मानस यज्ञ से ऋग्वेदादि प्रकट हुए।' बृहदारण्यकोपनिषद वेद को भगवान वा ब्रह्म का श्वास मानती है। नित्य वस्तु का श्वास नित्य होता ही है; इसलिए वेद नित्य हैं। यहाँ श्वास का अर्थ ज्ञान भी किया जाता है। फलतः ईश्वर के समान उसका ज्ञान भी नित्य है। ऋषियों को तपःपूत समाधिदशा

में ईश्वरीय प्रेरणा मिली, जिससे उनके निर्मल अन्तःकरण में वेदमन्त्रों का अवतरण हुआ।

कहते हैं, महाप्रलयावस्था में वेद अव्यक्त रहता है, जिसे सृष्टि के आदि में ब्रह्मा प्राप्त करते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६.८) में कहा गया है—"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।" अर्थात् 'जो (परमेश्वर) सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करता और उसके लिए वेदों को भेजता है।' वंशब्राह्मण तथा संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में यही बात कही गई है। महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ने इस बात का पूर्ण समर्थन किया है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि अजपृश्नि ऋषि ने तपोबल से, प्रसाद-रूप में, वेदों को पाया। कहीं अंगिरा ऋषि का पाना भी लिखा है। मणिकार के मत से मत्स्य भगवान् के वाक्य वेद हैं।

सांख्य और योग दर्शनों का मत है कि 'वेद-कर्त्ता का पता नहीं चलता; इसलिए वेद अपौरुष है।' न्यायशास्त्र वेद को आप्त और प्रवाह-नित्य मानता है—कूटस्थ नित्य नहीं। वैशेषिक दर्शन अर्थ-रूप वा ज्ञान-स्वरूप वेद को अपौरुषेय मानता है। यही मत वैयाकरण कैयट का भी है।

परन्तु कट्टर नित्यतावादी मीमांसाशास्त्र है। उसका अभिमत है कि वर्णों की उत्पत्ति नहीं होती, अभिव्यक्ति होती है। कण्ठ, तालु आदि अभिव्यञ्जक हैं, उत्पादक नहीं। मीमांसाकार जैमिनि शब्द के साथ ही शब्दार्थ को भी नित्य मानते हैं।

आर्यसमाज के स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद के शब्द, अर्थ, शब्दार्थ-संबंध तथा क्रम आदि को भी नित्य मानते हैं। स्वामीजी का मत है कि 'वेद में अनित्य व्यक्तियों का वर्णन नहीं है।' प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार चलनेवाली यौगिक शैली ही आर्यसमाज में वेदार्थ करने की उपयुक्त शैली मानी जाती है। स्वामीजी वेद में आये नामों को ऐतिहासिक और भौगोलिक न मानकर यौगिक अर्थों में लेते हैं। वे वेद के वसिष्ठ को ऋषि नहीं मानते, वसिष्ठ शब्द का अर्थ 'प्राण' करते हैं। इसी तरह भरद्वाज का अर्थ 'मन' और विश्वामित्र का अर्थ 'कान' किया गया है। स्वामीजी के मत का समर्थन मनुजी ने भी किया है—

"सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पथक् संस्थाश्च निर्ममे॥" (मनुस्मृति १.२१)

में ईश्वरीय प्रेरणा मिली, जिससे उनके निर्मल अन्तःकरण में वेदमन्त्रों का अवतरण हुआ।

कहते हैं, महाप्रलयावस्था में वेद अव्यक्त रहता है, जिसे सृष्टि के आदि में ब्रह्मा प्राप्त करते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६.८) में कहा गया है—"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।" अर्थात् 'जो (परमेश्वर) सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करता और उसके लिए वेदों को भेजता है।' वंशब्राह्मण तथा संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में यही बात कही गई है। महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ने इस बात का पूर्ण समर्थन किया है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि अजपृश्नि ऋषि ने तपोबल से, प्रसाद-रूप में, वेदों को पाया। कहीं अंगिरा ऋषि का पाना भी लिखा है। मणिकार के मत से मत्स्य भगवान् के वाक्य वेद हैं।

सांख्य और योग दर्शनों का मत है कि 'वेद-कर्त्ता का पता नहीं चलता; इसलिए वेद अपौरुष है।' न्यायशास्त्र वेद को आप्त और प्रवाह-नित्य मानता है—कूटस्थ नित्य नहीं। वैशेषिक दर्शन अर्थ-रूप वा ज्ञान-स्वरूप वेद को अपौरुषेय मानता है। यही मत वैयाकरण कैयट का भी है।

परन्तु कट्टर नित्यतावादी मीमांसाशास्त्र है। उसका अभिमत है कि वर्णों की उत्पत्ति नहीं होती, अभिव्यक्ति होती है। कण्ठ, तालु आदि अभिव्यञ्जक हैं, उत्पादक नहीं। मीमांसाकार जैमिनि शब्द के साथ ही शब्दार्थ को भी नित्य मानते हैं।

आर्यसमाज के स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद के शब्द, अर्थ, शब्दार्थ-संबंध तथा क्रम आदि को भी नित्य मानते हैं। स्वामीजी का मत है कि 'वेद में अनित्य व्यक्तियों का वर्णन नहीं है।' प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार चलनेवाली यौगिक शैली ही आर्यसमाज में वेदार्थ करने की उपयुक्त शैली मानी जाती है। स्वामीजी वेद में आये नामों को ऐतिहासिक और भौगोलिक न मानकर यौगिक अर्थों में लेते हैं। वे वेद के वसिष्ठ को ऋषि नहीं मानते, वसिष्ठ शब्द का अर्थ 'प्राण' करते हैं। इसी तरह भरद्वाज का अर्थ 'मन' और विश्वामित्र का अर्थ 'कान' किया गया है। स्वामीजी के मत का समर्थन मनुजी ने भी किया है—

"सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पथक् संस्थाश्च निर्ममे॥" (मनुस्मृति १.२१)

तात्पर्य यह है कि 'वैदिक शब्दों के आधार पर ही संसार के प्राणियों के नाम, कर्म और व्यवस्थापन अलग-अलग किये गये।'

फलतः यह कहा जाता है कि वेद में उर्वशी, पुरुरवा, नहुष, ययाति, यम, सुदास आदि के जो नाम और कर्म आदि कहे गये हैं, वे नित्य हैं, नित्य इतिहास हैं, पौराणिक इतिहास नहीं हैं। पुराणादि ने इन नाम-कर्मादिकों को लेकर इतिहास की रचना कर डाली—वेद में न तो अनित्य इतिहास है और न इन नाम-कर्मादि का ऐतिहासिक तात्पर्य ही है। इसलिए लोकोक्त विषय वेद में हैं ही नहीं।

वेद का एक नाम श्रुति है। कहा जाता है कि परमात्मा से ऋषियों ने, समाधि-दशा में, वेद का 'श्रवण' किया; इसलिए वेद का नाम श्रुति पड़ा। इसी आन्तरिक ध्वनि को, संसार के कल्याण के लिए, ऋषियों ने विश्व में प्रसारित किया।

शंकराचार्य ने वेदान्तदर्शन (२.३.१) में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों का खण्डन करके शब्द प्रमाण को स्थापित किया है। पाण्डु-रोगवाला व्यक्ति संसार को प्रत्यक्ष पीला देखता है और हरा चश्मा-वाला विश्व को प्रत्यक्ष हरा देखता है; परन्तु सारा संसार न तो पीला है और न निखिल विश्व हरा। इसलिए प्रत्यक्ष-प्रमाण दोष-दुष्ट है। इसी तरह बादल देखकर वृष्टि होने का अनुमान होता है, परन्तु सभी बादल वर्षा नहीं करते। पर्वत के वाष्प को धुआँ समझ कर आग का अनुमान कर लिया जाता है, जो केवल भ्रान्ति है। अतएव प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण दूषित हैं। वेद और ऋषियों के शब्द ईश्वरीय ज्ञान और योग की प्रक्रिया से विशुद्ध हैं; इसलिए प्रामाणिक हैं। क्षुद्रतम मानव-बुद्धि अज्ञेय और अनन्त काल के तत्त्वों का कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगी और असीम समय के तथ्यों की कैसे अनुमिति करेगी? इसीलिए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—"कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय करने के लिए शास्त्र प्रमाण हैं।" (गीता १६.२४)

हमारे समस्त शास्त्र वेद को नित्य मानते हैं। वैदिक साहित्य से लेकर तन्त्रशास्त्र तक वेद-नित्यता का प्रचण्ड उद्घोष करते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि 'वेद ईश्वर की ही तरह नित्य है, शाश्वत है, अपौरुषेय है और ऋषियों ने तपःपूत अन्तःकरण में वेद को उसी रूप में प्राप्त किया, जिस रूप में—छन्द, वाक्य, शब्द और अक्षर के रूप में—वह इन दिनों उपलब्ध है।' अनेकानेक आस्तिक वेद को हिरण्यगर्भ-(Cosmic Egg)-सम्भूत कहते हैं। वैदिक संहिताओं के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य ने लिखा है—

तात्पर्य यह है कि 'वैदिक शब्दों के आधार पर ही संसार के प्राणियों के नाम, कर्म और व्यवस्थापन अलग-अलग किये गये।'

फलतः यह कहा जाता है कि वेद में उर्वशी, पुरुरवा, नहुष, ययाति, यम, सुदास आदि के जो नाम और कर्म आदि कहे गये हैं, वे नित्य हैं, नित्य इतिहास हैं, पौराणिक इतिहास नहीं हैं। पुराणादि ने इन नाम-कर्मादिकों को लेकर इतिहास की रचना कर डाली—वेद में न तो अनित्य इतिहास है और न इन नाम-कर्मादि का ऐतिहासिक तात्पर्य ही है। इसलिए लोकोक्त विषय वेद में हैं ही नहीं।

वेद का एक नाम श्रुति है। कहा जाता है कि परमात्मा से ऋषियों ने, समाधि-दशा में, वेद का 'श्रवण' किया; इसलिए वेद का नाम श्रुति पड़ा। इसी आन्तरिक ध्वनि को, संसार के कल्याण के लिए, ऋषियों ने विश्व में प्रसारित किया।

शंकराचार्य ने वेदान्तदर्शन (२.३.१) में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों का खण्डन करके शब्द प्रमाण को स्थापित किया है। पाण्डु-रोगवाला व्यक्ति संसार को प्रत्यक्ष पीला देखता है और हरा चश्मा-वाला विश्व को प्रत्यक्ष हरा देखता है; परन्तु सारा संसार न तो पीला है और न निखिल विश्व हरा। इसलिए प्रत्यक्ष-प्रमाण दोष-दुष्ट है। इसी तरह बादल देखकर वृष्टि होने का अनुमान होता है, परन्तु सभी बादल वर्षा नहीं करते। पर्वत के वाष्प को धुआँ समझ कर आग का अनुमान कर लिया जाता है, जो केवल भ्रान्ति है। अतएव प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण दूषित हैं। वेद और ऋषियों के शब्द ईश्वरीय ज्ञान और योग की प्रक्रिया से विशुद्ध हैं; इसलिए प्रामाणिक हैं। क्षुद्रतम मानव-बुद्धि अज्ञेय और अनन्त काल के तत्त्वों का कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगी और असीम समय के तथ्यों की कैसे अनुमिति करेगी? इसीलिए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—"कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय करने के लिए शास्त्र प्रमाण हैं।" (गीता १६, २४)

हमारे समस्त शास्त्र वेद को नित्य मानते हैं। वैदिक साहित्य से लेकर तन्त्रशास्त्र तक वेद-नित्यता का प्रचण्ड उद्घोष करते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि 'वेद ईश्वर की ही तरह नित्य है, शाश्वत है, अपौरुषेय है और ऋषियों ने तपःपूत अन्तःकरण में वेद को उसी रूप में प्राप्त किया, जिस रूप में—छन्द, वाक्य, शब्द और अक्षर के रूप में—वह इन दिनों उपलब्ध है।' अनेकानेक आस्तिक वेद को हिरण्यगर्भ-(Cosmic Egg)-सम्भूत कहते हैं। वैदिक संहिताओं के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य ने लिखा है—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।"

अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा जो उपाय अगम्य है, उसका उद्‌बोधन कराने में वेद का वेदत्व है।

मनुजी ने एक स्थान पर लिखा है—

"भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति॥"

तात्पर्य यह है कि 'भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ वेद से ही प्रख्यात हुआ है—वेद से ही ज्ञात हुआ है।'

इससे विदित होता है कि वेद से भविष्य और वर्तमान विषयों का भी ज्ञान होता है। स्वयं ऋग्वेद के मन्त्र (पृष्ठ २९. मन्त्र ११) में कहा गया है—'ज्ञानी पुरुष वर्तमान और भविष्य की सारी घटनाओं को देखते हैं।' फलतः वेद त्रिकाल-सूत्रधर है और ज्ञानी ऋषि भी त्रिकाल-दर्शी और मन्त्र-द्रष्टा हैं।

ऋग्वेद के भाष्यकार सायण, वेंकट माधव, उद्‌गीथ, स्कन्द स्वामी, नारायण, आनन्दतीर्थ, रावण, मुद्‌गल आदि ने भी वेद-नित्यता का प्रबल समर्थन किया है। अनेक शास्त्र शब्दस्फोट, वाक्यस्फोट आदि का सहारा लेकर वेद को नित्य मानते हैं। मीमांसाकार जैमिनि ने लिखा है—'शब्द सदा रहता है, उत्पन्न नहीं किया जाता। उच्चारण के पहले शब्द अव्यक्त रहता है, उच्चारण से व्यक्त होता है। उच्चारण के अनन्तर भी शब्द रहता है, अवश्य ही अव्यक्त हो जाता है; परन्तु विनष्ट नहीं होता।' इसीलिए ग्रामोफोन के रेकार्ड में भरे हुए शब्द महीनों और वर्षों बाद सुनाई देते हैं। 'शब्द बनाओ' का तात्पर्य शब्द बनाना नहीं है, ध्वनि करना है। नित्य शब्द ध्वनि के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। जैसे व्योम-स्थित सूर्य को, एक ही समय, अनेक मनुष्य, अनेक स्थानों में, देखते हैं, वैसे ही नित्य वर्णात्मक शब्द को, एक ही समय, अनेक स्थानों में, अनेक मानव सुनते और बोलते हैं। शब्द के अनित्य रहने पर उसे अभिव्यक्त करने के लिए कोई ध्वनि भी नहीं करता; क्योंकि नित्य और अव्यक्त की ही अभिव्यक्ति होती है—अनित्य की नहीं। कोई भी नहीं कहता कि 'आठ बार शब्द बनाओ।' सब यही कहते हैं कि 'आठ बार शब्द का उच्चारण करो।' यह अनादि-काल-सिद्ध व्यवहार भी स्पष्टतया शब्द की नित्यता बताता है। शब्द का उपादान कारण भी कोई नहीं है। ध्वनि से अभिव्यक्त शब्द ध्वनि से भिन्न है। ध्वनि तो केवल अभिव्यंजक है और शब्द अभिव्यंजनीय। ध्वनि का ही उपादान कारण वायु

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।"

अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा जो उपाय अगम्य है, उसका उद्‌बोधन कराने में वेद का वेदत्व है।

मनुजी ने एक स्थान पर लिखा है—

"भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति ॥"

तात्पर्य यह है कि 'भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ वेद से ही प्रख्यात हुआ है—वेद से ही ज्ञात हुआ है।'

इससे विदित होता है कि वेद से भविष्य और वर्तमान विषयों का भी ज्ञान होता है। स्वयं ऋग्वेद के मन्त्र (पृष्ठ २९. मन्त्र ११) में कहा गया है—'ज्ञानी पुरुष वर्तमान और भविष्य की सारी घटनाओं को देखते हैं।' फलतः वेद त्रिकाल-सूत्रधर है और ज्ञानी ऋषि भी त्रिकाल-दर्शी और मन्त्र-द्रष्टा हैं।

ऋग्वेद के भाष्यकार सायण, वेंकट माधव, उद्‌गीथ, स्कन्द स्वामी, नारायण, आनन्दतीर्थ, रावण, मुद्‌गल आदि ने भी वेद-नित्यता का प्रबल समर्थन किया है। अनेक शास्त्र शब्दस्फोट, वाक्यस्फोट आदि का सहारा लेकर वेद को नित्य मानते हैं। मीमांसाकार जैमिनि ने लिखा है—'शब्द सदा रहता है, उत्पन्न नहीं किया जाता। उच्चारण के पहले शब्द अव्यक्त रहता है, उच्चारण से व्यक्त होता है। उच्चारण के अनन्तर भी शब्द रहता है, अवश्य ही अव्यक्त हो जाता है; परन्तु विनष्ट नहीं होता।' इसीलिए ग्रामोफोन के रेकार्ड में भरे हुए शब्द महीनों और वर्षों बाद सुनाई देते हैं। 'शब्द बनाओ' का तात्पर्य शब्द बनाना नहीं है, ध्वनि करना है। नित्य शब्द ध्वनि के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। जैसे व्योम-स्थित सूर्य को, एक ही समय, अनेक मनुष्य, अनेक स्थानों में, देखते हैं, वैसे ही नित्य वर्णात्मक शब्द को, एक ही समय, अनेक स्थानों में, अनेक मानव सुनते और बोलते हैं। शब्द के अनित्य रहने पर उसे अभिव्यक्त करने के लिए कोई ध्वनि भी नहीं करता; क्योंकि नित्य और अव्यक्त की ही अभिव्यक्ति होती है—अनित्य की नहीं। कोई भी नहीं कहता कि 'आठ बार शब्द बनाओ।' सब यही कहते हैं कि 'आठ बार शब्द का उच्चारण करो।' यह अनादि-काल-सिद्ध व्यवहार भी स्पष्टतया शब्द की नित्यता बताता है। शब्द का उपादान कारण भी कोई नहीं है। ध्वनि से अभिव्यक्त शब्द ध्वनि से भिन्न है। ध्वनि तो केवल अभिव्यंजक है और शब्द अभिव्यंजनीय। ध्वनि का ही उपादान कारण वायु

है, शब्द का नहीं। फलतः शब्द नित्य है। भ्रम, प्रमाद, इन्द्रिय-दोष, विप्रलिप्सा आदि के कारण मनुष्यादि के शब्द अप्रमाण हैं और ऋषियों के विमल अन्तःकरण में उतरे वैदिक शब्द दोष-शून्य और प्रमाण हैं।

जैमिनि का मत है कि शब्द ही नहीं, शब्द-शब्दार्थ और वाक्य-वाक्यार्थ का बोध्य-बोधक संबंध भी नित्य है। यह भी स्वाभाविक है, सांकेतिक वा कृत्रिम नहीं है। शब्द नाम है, अर्थ नामी है, शब्द संज्ञा है, अर्थ संज्ञी है, शब्द बोधक है, अर्थ बोध्य है। यह अनादि-परम्परागत है। ध्वन्यारूढ़ वर्ण, पद, वाक्य सुनने के अनन्तर श्रोता के अन्तःकरण में जो अर्थ-प्रत्यायक ज्ञानमय वर्ण, पद, वाक्य उदित होते हैं, प्रस्फुरित होते हैं, वे ही प्रस्फुरित, अमूर्त्त पदार्थ स्फोट होते हैं। स्फोट निराकार वर्ण, पद, वाक्य की प्रतिच्छाया है अथवा स्फोट ही अनादि-निधन और वर्ण, पद, वाक्य नामों का नामी (नामवाला) है। शब्द असंख्य हैं, अर्थ भी असंख्य हैं।

इस तरह अनेकानेक तर्कों, युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणों से नित्यतावादी पक्ष वेद की नित्यता का प्रबल समर्थन करता है।

दूसरा मत कहता है कि ईश्वरीय ज्ञान अगाध और असीम है। किसी किसी सत्यकाम योगी को समाधि में इस ज्ञान-राशि के अंश का साक्षात्कार होता है। योगी या ऋषि अपनी अनुभूति को जिन शब्दों में व्यक्त करता है, वे मन्त्र हैं। स्फूर्ति दैवी है; परन्तु शब्द ऋषि के हैं।

कहा जाता है कि कोई भी भाषा ध्वनि को प्रकट करने की केवल प्रणाली है और ऐसी प्रणालियाँ वा भाषाएँ, विविध देशों में, विभिन्न रूपों में हैं। देश-काल के अनुसार विभिन्न उच्चारण-शैलियाँ होती हैं। इनके अनुसार शब्द बनते हैं और मनुष्य इन विविध शब्दों के विविध अर्थ, अपनी प्रकृति और रुचि के अनुसार, निश्चित करता है। इसलिए कोई भी भाषा नित्य नहीं हो सकती—सारी भाषाएँ और उनके अर्थ मानव-कृत संकेत मात्र हैं। व्याकरण में शब्द की विकृति (जैसे 'इ' से 'य' और 'उ' से 'व' होने से शब्द विकृत होते हैं) होती हैं, और; इस तरह जो शब्द परिवर्तनशील है, वह नित्य हो भी नहीं सकता।

यह आर्ष मत है। इन दिनों इसी मत का विशेष प्राधान्य, प्रामुख्य वा प्राबल्य है। नित्यतावादियों से पूछा जाता है कि 'यदि शब्द-मात्र नित्य हैं तो शब्दरूप बाइबल, कुरान और प्रति दिन गढ़ी जाने-

है, शब्द का नहीं। फलतः शब्द नित्य है। भ्रम, प्रमाद, इन्द्रिय-दोष, विप्रलिप्सा आदि के कारण मनुष्यादि के शब्द अप्रमाण हैं और ऋषियों के विमल अन्तःकरण में उतरे वैदिक शब्द दोष-शून्य और प्रमाण हैं।

जैमिनि का मत है कि शब्द ही नहीं, शब्द-शब्दार्थ और वाक्य-वाक्यार्थ का बोध्य-बोधक संबंध भी नित्य है। यह भी स्वाभाविक है, सांकेतिक वा कृत्रिम नहीं है। शब्द नाम है, अर्थ नामी है, शब्द संज्ञा है, अर्थ संज्ञी है, शब्द बोधक है, अर्थ बोध्य है। यह अनादि-परम्परागत है। ध्वन्यारूढ़ वर्ण, पद, वाक्य सुनने के अनन्तर श्रोता के अन्तः-करण में जो अर्थ-प्रत्यायक ज्ञानमय वर्ण, पद वाक्य उदित होते हैं, प्रस्फुरित होते हैं, वे ही प्रस्फुरित, अमूर्त्त पदार्थ स्फोट होते हैं। स्फोट निराकार वर्ण, पद, वाक्य की प्रतिच्छाया है अथवा स्फोट ही अनादि-निधन और वर्ण, पद, वाक्य नामों का नामी (नामवाला) है। शब्द असंख्य हैं, अर्थ भी असंख्य हैं।

इस तरह अनेकानेक तर्कों, युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणों से नित्यतावादी पक्ष वेद की नित्यता का प्रबल समर्थन करता है।

दूसरा मत कहता है कि ईश्वरीय ज्ञान अगाध और असीम है। किसी किसी सत्यकाम योगी को समाधि में इस ज्ञान-राशि के अंश का साक्षात्कार होता है। योगी या ऋषि अपनी अनुभूति को जिन शब्दों में व्यक्त करता है, वे मन्त्र हैं। स्फूर्ति दैवी है; परन्तु शब्द ऋषि के हैं।

कहा जाता है कि कोई भी भाषा ध्वनि को प्रकट करने की केवल प्रणाली है और ऐसी प्रणालियाँ वा भाषाएँ, विविध देशों में, विभिन्न रूपों में हैं। देश-काल के अनुसार विभिन्न उच्चारण-शैलियाँ होती हैं। इनके अनुसार शब्द बनते हैं और मनुष्य इन विविध शब्दों के विविध अर्थ, अपनी प्रकृति और रुचि के अनुसार, निश्चित करता है। इसलिए कोई भी भाषा नित्य नहीं हो सकती—सारी भाषाएँ और उनके अर्थ मानव-कृत संकेत मात्र हैं। व्याकरण में शब्द की विकृति (जैसे 'इ' से 'य' और 'उ' से 'व' होने से शब्द विकृत होते हैं) होती हैं, और; इस तरह जो शब्द परिवर्तनशील है, वह नित्य हो भी नहीं सकता।

यह आर्ष मत है। इन दिनों इसी मत का विशेष प्राधान्य, प्रामुख्य वा प्राबल्य है। नित्यतावादियों से पूछा जाता है कि 'यदि शब्द-मात्र नित्य हैं तो शब्दरूप बाइबल, कुरान और प्रति दिन गढ़ी जाने-

वाली कजली, ठुमरी और सवैया भी क्यों नहीं नित्य हैं? जब कि न्याय, वैशेषिक आदि शब्द के आधार आकाश (वैज्ञानिक मत से वायु) को ही नित्य नहीं मानते, तब शब्द कैसे नित्य हुआ? सांख्य-मत से जब प्रकृति की साम्यावस्था में आकाश और वायु भी नहीं रहते, तब आकाश या वायु का गुण शब्द और शब्द-रूप वेद, छन्दो-रूप में, कैसे रहेगा? इसी लिए तो वेद को न्याय केवल प्रवाह-नित्य मानता है कूटस्थ नित्य नहीं। वैशेषिक भी शब्दरूप वेद को नित्य नहीं मानता। योग और सांख्य को वेद-कर्त्ता का पता नहीं चला; इसलिए अपौरुषेय कह दिया—नित्य नहीं। वेदान्त भी व्यवहार-दशा में ही वेद को नित्य मानता है; परमार्थ-दशा मे तो वेदान्त का केवल ब्रह्म नित्य है।

यह दूसरी बात है कि दैवी शक्तियों की उपासना, सत्याचरण, तपस्या, विविध विद्याओं, विषयों और तत्त्वों का उपदेश वेद में है; दैवी स्फुरण है, ज्ञानाकर है; इसलिए ज्ञान-रूप वेद नित्य है। विषय-दृष्टि से वेद अनादि और नित्य हो सकता है; परन्तु शब्द-दृष्टि से तो कथमपि नहीं। अभाव-पूर्ति के लिए मनुष्य भाषाए बनाता है और भाषाएँ बदला करती हैं। तत्सम शब्द से तद्भव शब्द बनते रहते हैं। संस्कृत भाषा बदलती-बदलती अपने मूल रूप के अतिरिक्त बँगला, ब्रजभाषा आदि आदि के परिधान में आ चुकी है। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही रूप धारण कर चुकी है। ऋग्वेद की शाकल-संहिता और शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन-संहिता की भाषाओं में भेद है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय-संहिता वा मैत्रायणी-संहिता को देखकर कौन कहेगा कि दोनों की भाषा समकालीन है? द्वापर का अन्त होने पर सूर्य ने याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुर्वेद की शिक्षा दी। ऐतरेय महिदास को पृथिवी ने ऐसे मन्त्र बताये, जो उनके पहले सबको अज्ञात थे। एक वंश के प्रपितामह से लेकर प्रपौत्र तक के मन्त्र वेद की संहिताओं में हैं। ये सब न तो समकालीन हो सकते हैं और न इनकी भाषा ही समकालीन हो सकती है। फलत: ऋषियों और उनके वंशधरों को विभिन्न समयों में तपोबल से दैवी या दिव्य स्फूर्ति मिली और उन्होंने विभिन्न समयों में विभिन्न भाषाओं में वेद-मन्त्र बनाये।

स्वयं ऋग्वेद-संहिता (शाकल-संहिता वा वर्त्तमान "हिन्दी ऋग्वेद") में नये-नये मन्त्रों की रचना का अनेक बार उल्लेख है। अभूतपूर्व वस्तु के उत्पादन के अर्थ में जन्, तन्, सृज्, तक्ष, कृ आदि धातुओं का प्रयोग होता है। इन धातुओं का प्रयोग ऐसे स्थानों पर ऐसी शैली में आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लोग आवश्यकतानुसार नये-

वाली कजली, ठुमरी और सवैया भी क्यों नहीं नित्य हैं ? जब कि न्याय, वैशेषिक आदि शब्द के आधार आकाश (वैज्ञानिक मत से वायु) को ही नित्य नहीं मानते, तब शब्द कैसे नित्य हुआ ? सांख्य-मत से जब प्रकृति की साम्यावस्था में आकाश और वायु भी नहीं रहते, तब आकाश या वायु का गुण शब्द और शब्द-रूप वेद, छन्दो-रूप में, कैसे रहेगा ? इसी लिए तो वेद को न्याय केवल प्रवाह-नित्य मानता है कूटस्थ नित्य नहीं। वैशेषिक भी शब्दरूप वेद को नित्य नहीं मानता। योग और सांख्य को वेद-कर्त्ता का पता नहीं चला; इसलिए अपौरुषेय कह दिया—नित्य नहीं। वेदान्त भी व्यवहार-दशा में ही वेद को नित्य मानता है; परमार्थ-दशा मे तो वेदान्त का केवल ब्रह्म नित्य है।

यह दूसरी बात है कि दैवी शक्तियों की उपासना, सत्याचरण, तपस्या, विविध विद्याओं, विषयों और तत्त्वों का उपदेश वेद में है; दैवी स्फुरण है, ज्ञानाकर है; इसलिए ज्ञान-रूप वेद नित्य है। विषय-दृष्टि से वेद अनादि और नित्य हो सकता है; परन्तु शब्द-दृष्टि से तो कथमपि नहीं। अभाव-पूर्ति के लिए मनुष्य भाषाए बनाता है और भाषाएँ बदला करती हैं। तत्सम शब्द से तद्भव शब्द बनते रहते हैं। संस्कृत भाषा बदलती-बदलती अपने मूल रूप के अतिरिक्त बँगला, ब्रजभाषा आदि आदि के परिधान में आ चुकी है। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही रूप धारण कर चुकी है। ऋग्वेद की शाकल-संहिता और शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन-संहिता की भाषाओं में भेद है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय-संहिता वा मैत्रायणी-संहिता को देखकर कौन कहेगा कि दोनों की भाषा समकालीन है ? द्वापर का अन्त होने पर सूर्य ने याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुर्वेद की शिक्षा दी। ऐतरेय महिदास को पृथिवी ने ऐसे मन्त्र बताये, जो उनके पहले सबको अज्ञात थे। एक वंश के प्रपितामह से लेकर प्रपौत्र तक के मन्त्र वेद की संहिताओं में हैं। ये सब न तो समकालीन हो सकते हैं और न इनकी भाषा ही समकालीन हो सकती है। फलतः ऋषियों और उनके वंशधरों को विभिन्न समयों में तपोबल से दैवी या दिव्य स्फूर्ति मिली और उन्होंने विभिन्न समयों में विभिन्न भाषाओं में वेद-मन्त्र बनाये।

स्वयं ऋग्वेद-संहिता (शाकल-संहिता वा वर्त्तमान "हिन्दी ऋग्वेद") में नये-नये मन्त्रों की रचना का अनेक बार उल्लेख है। अभूतपूर्व वस्तु के उत्पादन के अर्थ में जन्, तन्, सृज्, तक्ष, कृ आदि धातुओं का प्रयोग होता है। इन धातुओं का प्रयोग ऐसे स्थानों पर ऐसी शैली में आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लोग आवश्यकतानुसार नये-

नये मन्त्र बनाया करते थे। एक नहीं, अनेक मन्त्रों से ज्ञात होता है कि ऋषि लोग नये-नये मन्त्र बनाते थे। कुछ मन्त्र देखिए—"स्तोमं जनयामि नव्यम्" ("हिन्दी ऋग्वेद", पृष्ठ १५३. मन्त्र २)। आशय यह है कि 'हे इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे सोम-प्रदान-समय में पठनीय नया स्तोत्र बनाता हूँ।' "युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्यो रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्" (पृष्ठ ६७२. मं० ५)। अर्थात् 'प्रत्येक युग में मन्त्रात्मक नवीन स्तोत्र कहनेवाले को, अग्निदेव, धन और यश प्रदान करो।' सायण ने "युगे युगे" का अर्थ याग-योग्य अग्नि किया है। शेष ऐसा ही अर्थ है। ठीक इसी प्रकार का एक श्लोकार्द्ध वायुपुराण (५९ अध्याय) में पाया जाता है—"प्रति मन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते।" तात्पर्य यह है कि 'प्रत्येक मन्वन्तर-काल में दूसरी श्रुति बनाई जाती है।' "ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।" (पृष्ठ ८०१. मन्त्र ९) अर्थात् 'जितने प्राचीन ऋषि हो गये हैं और जितने नवीन ऋषि हैं, सभी, हे इन्द्र, तुम्हारे लिए स्तोत्र उत्पन्न करते हैं।' 'हम इस नवीन स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं' (पृ० ३२५. मं० १)। 'नये स्तोत्र से स्तुति करता हूँ' (३३६.५)। 'पुरातन, मध्यतन औ अधुनातन स्तोत्र' का उल्लेख है (४००-१३), जिससे ज्ञात होता है कि तीनों समयों में नये मन्त्र बने। 'ये नवीनतम और शोभन स्तुति-रूप वचन तुम्हारे लिए हैं' ((४४७.७)। 'नवीनतम' शब्द ध्यान देने योग्य है। अगले मन्त्र (१०८८.८) में 'नया सूक्त' तक बनाने की बात है—'सोम, तुम नये और स्तुत्य सूक्त के लिए शीघ्र ही आओ।' आगे के मन्त्र (१२०९.२) में तो और भी स्पष्टीकरण है—'मन्त्र-रचयिताओं ने जिन स्तुति-वचनों की रचना की है, उनका आश्रय करके अपने वाक्य की वृद्धि करो।' फलतः समय-समय पर मन्त्र बनाये गये हैं; वे नित्य नहीं हैं। सनातनधर्मियों के प्रामाणिक आचार्य सायण के ही ये मन्त्रार्थ हैं।

वस्तुतः वेद में अनन्त काल के अनन्त ऋषियों की अनन्त उच्चतम और ज्ञानमयी चिन्ताएँ, अनन्त गिरि-निर्झरों को चीरती और प्रतिध्वनित करती हुई, इकट्ठी की गई हैं। वेद में ऐसे दिव्य सन्देश, ऐसी मार्मिक और मौलिक चिन्ताएँ भरी पड़ी हैं, जिन (नासदीय सूक्त आदि की) चिन्ताओं के समान, स्व० बाल गंगाधर तिलक के शब्दों में, 'सभ्यतम मनुष्य कोई स्वाधीन चिन्तन ही नहीं कर सकता।' वेद उन स्थित-प्रज्ञ और परदुःख-कातर मनीषियों की तेजस्विनी वाणी है, जो हमारे प्रातःस्मरणीय पूर्वज थे। इसी दृष्टि से वेद की महत्ता है और वेद हमारा पूजनीय ग्रन्थ है।

नये मन्त्र बनाया करते थे। एक नहीं, अनेक मन्त्रों से ज्ञात होता है कि ऋषि लोग नये-नये मन्त्र बनाते थे। कुछ मन्त्र देखिए—"स्तोमं जनयामि नव्यम्" ("हिन्दी ऋग्वेद", पृष्ठ १५३. मन्त्र २)। आशय यह है कि 'हे इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे सोम-प्रदान-समय में पठनीय नया स्तोत्र बनाता हूँ।' "युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्यो रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्" (पृष्ठ ६७२. मं० ५)। अर्थात् 'प्रत्येक युग में मन्त्रात्मक नवीन स्तोत्र कहनेवाले को, अग्निदेव, धन और यश प्रदान करो।' सायण ने "युगे युगे" का अर्थ याग-योग्य अग्नि किया है। शेष ऐसा ही अर्थ है। ठीक इसी प्रकार का एक श्लोकार्द्ध वायुपुराण (५९ अध्याय) में पाया जाता है—"प्रति मन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते।" तात्पर्य यह है कि 'प्रत्येक मन्वन्तर-काल में दूसरी श्रुति बनाई जाती है।' "ये च पूर्वं ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।" (पृष्ठ ८०१. मन्त्र ९) अर्थात् 'जितने प्राचीन ऋषि हो गये हैं और जितने नवीन ऋषि हैं, सभी, हे इन्द्र, तुम्हारे लिए स्तोत्र उत्पन्न करते हैं।' 'हम इस नवीन स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं' (पृ० ३२५. मं० १)। 'नये स्तोत्र से स्तुति करता हूँ' (३३६.५)। 'पुरातन, मध्यतन और अधुनातन स्तोत्र' का उल्लेख है (४००-१३), जिससे ज्ञात होता है कि तीनों समयों में नये मन्त्र बने। 'ये नवीनतम और शोभन स्तुति-रूप वचन तुम्हारे लिए हैं' ((४४७.७)। 'नवीनतम' शब्द ध्यान देने योग्य है। अगले मन्त्र (१०८८.८) में 'नया सूक्त' तक बनाने की बात है—'सोम, तुम नये और स्तुत्य सूक्त के लिए शीघ्र ही आओ।' आगे के मन्त्र (१२०९.२) में तो और भी स्पष्टीकरण है—'मन्त्र-रचयिताओं ने जिन स्तुति-वचनों की रचना की है, उनका आश्रय करके अपने वाक्य की वृद्धि करो।' फलतः समय-समय पर मन्त्र बनाये गये हैं; वे नित्य नहीं हैं। सनातनधर्मियों के प्रामाणिक आचार्य सायण के ही ये मन्त्रार्थ हैं।

वस्तुतः वेद में अनन्त काल के अनन्त ऋषियों की अनन्त उच्चतम और ज्ञानमयी चिन्ताएँ, अनन्त गिरि-निर्झरों को चीरती और प्रतिध्वनित करती हुई, इकट्ठी की गई हैं। वेद में ऐसे दिव्य सन्देश, ऐसी मार्मिक और मौलिक चिन्ताएँ भरी पड़ी हैं, जिन (नासदीय सूक्त आदि की) चिन्ताओं के समान, स्व० बाल गंगाधर तिलक के शब्दों में, 'सभ्यतम मनुष्य कोई स्वाधीन चिन्तन ही नहीं कर सकता।' वेद उन स्थित-प्रज्ञ और परदुःख-कातर मनीषियों की तेजस्विनी वाणी है, जो हमारे प्रातःस्मरणीय पूर्वज थे। इसी दृष्टि से वेद की महत्ता है और वेद हमारा पूजनीय ग्रन्थ है।

आर्षमत-वादियों का यही मत है और इस मत के समर्थक और अनुमोदक अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ और अनेकानेक तर्क-युक्तियाँ हैं। यहाँ स्थानाभाव है; इसलिए सारी बातें अत्यन्त संक्षिप्त कही गई हैं।

तीसरा मत ऐतिहासिकों का है। इस मत के वेदाभ्यासी इस देश में तो हैं ही, विदेशों में भी बहुत हैं। ये ऋषियों को मन्त्र-द्रष्टा, सिद्ध पुरुष और अतिमानव नहीं मानते, साधारणतः मनीषी मानते हैं। ये वेद में इतिहास, भूगोल, खगोल, साहित्य, राजधर्म, कृषि आदि को खोजने में विशेष संलग्न रहते हैं। अधिकांश आर्षमतवादी इनकी अनेक धारणाओं के पोषक हैं। इनके मत से वैदिक काल में भी भले-बुरे लोग थे—भली-बुरी बातें थीं और इन दिनों भी हैं। ये वेद को अद्भुत या दिव्य ग्रन्थ नहीं समझते। ये वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ तो मानते हैं; परन्तु असीरिया की कोणाकार लिपि की एक खण्डित पुस्तक को भी ऋग्वेद के समकक्ष ला बैठाते हैं! इनकी अतीव संक्षिप्त विचार-सरणि सुनिए। कहते हैं—'बृहदारण्यकोपनिषद् में जहाँ वेद को ब्रह्म का श्वास बताया गया है, वहीं इतिहास को भी श्वास कहा गया है।' स्मृति में कहा गया है—

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा॥"

अर्थात् ब्रह्मा की अनुमति से महर्षियों ने, तपस्या के द्वारा, प्रलयावस्था में छिपे हुए वेदों को, इतिहास के साथ, पाया।

इससे विदित होता है कि वेद में इतिहास अनुस्यूत है। छान्दोग्योपनिषद् और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इतिहास को 'पञ्चम वेद' माना गया है। वेद के कोष और वेदार्थ करने में व्याकरण से भी अधिक सहायक ग्रन्थ यास्काचार्य के 'निरुक्त' ने भी वेद में इतिहास माना है। निरुक्त के कई स्थानों में 'तत्रेतिहासमाचक्षते' आया है। निरुक्त (२.४) में यास्क ने इषितसेन, शन्तनु, देवापि आदि के इतिहास का उल्लेख किया है। पिजवन-पुत्र सुदास कुशिक-पुत्र विश्वामित्र आदि का भी विवरण यास्क ने दिया है। निरुक्त के ३.३ में यास्क ने प्रस्कण्व को "कण्वस्य पुत्रः" लिखा है। ४.३ में लिखा —"च्यवन ऋषिर्भवति।" ९.३ में कहा गया है—"भार्म्यश्वो भर्म्यश्वस्य पुत्रः।" इसी तरह "सन्तपन्ति माम्" मन्त्र का अर्थ लिखने के बाद यास्क ने, सायण की ही तरह, लिखा है—'कुएं में गिरे हुए त्रित ऋषि को इस सूक्त का ज्ञान हुआ।' इसी मन्त्र के नीचे यास्क ने लिखा है—"तत्र ब्रह्मेतिहास-मिश्रं ऋङ्-मिश्रं

आर्षमत-वादियों का यही मत है और इस मत के समर्थक और अनुमोदक अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ और अनेकानेक तर्क-युक्तियाँ हैं। यहाँ स्थानाभाव है; इसलिए सारी बातें अत्यन्त संक्षिप्त कही गई हैं।

तीसरा मत ऐतिहासिकों का है। इस मत के वेदाभ्यासी इस देश में तो हैं ही, विदेशों में भी बहुत हैं। ये ऋषियों को मन्त्र-द्रष्टा, सिद्ध पुरुष और अतिमानव नहीं मानते, साधारणतः मनीषी मानते हैं। ये वेद में इतिहास, भूगोल, खगोल, साहित्य, राजधर्म, कृषि आदि को खोजने में विशेष संलग्न रहते हैं। अधिकांश आर्षमतवादी इनकी अनेक धारणाओं के पोषक हैं। इनके मत से वैदिक काल में भी भले-बुरे लोग थे—भली-बुरी बातें थीं और इन दिनों भी हैं। ये वेद को अद्भुत या दिव्य ग्रन्थ नहीं समझते। ये वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ तो मानते हैं; परन्तु असीरिया की कोणाकार लिपि की एक खण्डित पुस्तक को भी ऋग्वेद के समकक्ष ला बैठाते हैं! इनकी अतीव संक्षिप्त विचार-सरणि सुनिए। कहते हैं—'बृहदारण्यकोपनिषद् में जहाँ वेद को ब्रह्म का श्वास बताया गया है, वहीं इतिहास को भी श्वास कहा गया है।' स्मृति में कहा गया है—

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा॥"

अर्थात् ब्रह्मा की अनुमति से महर्षियों ने, तपस्या के द्वारा, प्रलयावस्था में छिपे हुए वेदों को, इतिहास के साथ, पाया।

इससे विदित होता है कि वेद में इतिहास अनुस्यूत है। छान्दोग्योपनिषद् और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इतिहास को 'पञ्चम वेद' माना गया है। वेद के कोष और वेदार्थ करने में व्याकरण से भी अधिक सहायक ग्रन्थ यास्काचार्य के 'निरुक्त' ने भी वेद में इतिहास माना है। निरुक्त के कई स्थानों में "तत्रेतिहासमाचक्षते" आया है। निरुक्त (२.४) में यास्क ने इषितसेन, शन्तनु, देवापि आदि के इतिहास का उल्लेख किया है। पिजवन-पुत्र सुदास, कुशिक-पुत्र विश्वामित्र आदि का भी विवरण यास्क ने दिया है। निरुक्त के ३.३ में यास्क ने प्रस्कण्व को "कण्वस्य पुत्रः" लिखा है। ४.३ में लिखा —"च्यवन ऋषिर्भवति।" ९.३ में कहा गया है—"भार्म्यश्वो भर्म्यश्वस्य पुत्रः।" इसी तरह "सन्तपन्ति माम्" मन्त्र का अर्थ लिखने के बाद यास्क ने, सायण की ही तरह, लिखा है—'कुएं में गिरे हुए त्रित ऋषि को इस सूक्त का ज्ञान हुआ।' इसी मन्त्र के नीचे यास्क ने लिखा है—"तत्र ब्रह्मेतिहास-मिश्रं ऋङ्-मिश्रं

गाथा-मिश्रं भवति।" अर्थात् इतिहासो, ऋचाओं और गाथाओं से युक्त वेद है।' फलतः यास्क के मत से वेद में इतिहास है।

ऋग्वेद के सभी प्राचीन भाष्यकार ऋग्वेद में इतिहास मानते हैं। ऋग्वेद का "दाशराज्ञयुद्ध" प्रसिद्ध इतिहास है। ऋग्वेद में ऋषियों और राजाओं का वंश-विवरण है। अनेकानेक नदियों, समुद्रों, नगरों, देशों और प्राणियों के नाम और विवृति है। यजुर्वेद (३.६१) में शिवजी के धनुष्, हाथी की छाल, उनके निवास-स्थान आदि का, पुराणों की तरह, स्पष्ट उल्लेख है। शतपथ-ब्राह्मण (१४.५.४.१०) और अथर्ववेद में इतिहास को एक कला माना गया है। वस्तुतः वेद में आर्यों के रहन-सहन, खान-पान, भाषा-भाव, समाज-व्यवस्था, आमोद-प्रमोद, राज्य-स्थापन, देश-विजय आदि विषय हैं और अतीव संक्षिप्त रूप से इतिहास है।

यही ऐतिहासिकों का मत है और इसी मत के समर्थक ग्रासमान, लांगलोआ, ह्विटने, राथ, मैक्समूलर आदि जर्मन, फ्रेंच अँगरेज आदि पाश्चात्त्य और भांडारकर, दत्त, राजवाडे आदि एतद्देशीय वेदाभ्यासी सज्जन हैं।

वेदार्थ करने की शैली

वेद-स्वरूप बतानेवाले उक्त तीन मत-वाद अत्यन्त प्रसिद्ध तो हैं; परन्तु वेद-रहस्य बतानेवाले और भी पक्ष हैं। यास्क ने इन नौ मतवादों का उल्लेख किया है—आधिदैवत, आध्यात्मिक, आख्यान-समय-परक, ऐतिहासिक, नैदान, नैरुक्त, परिव्राजक, पूर्वयाज्ञिक और याज्ञिक। यास्क ने प्रायः एक दर्जन निरुक्तकारों का भी उल्लेख किया है, जिनमें कइयों के अर्थ-सम्बन्धी विभिन्न मत हैं। मूल धातु में प्रत्यय, उपसर्ग लगाकर सन्धि-विग्रह और आगम परिहार करके तथा शब्द-व्युत्पत्ति के द्वारा अनेकानेक वैदिक पदों और शब्दों के अनेकानेक अर्थ किये जाते हैं। वर्तमान ग्रन्थ के पृष्ठ ५४१ के ३४ मन्त्र में 'महादेव' शब्द आया है, जिसका अर्थ किसी ने सूर्य किया है, किसी ने 'यज्ञ', किसी ने 'शब्द'! 'हिन्दी ऋग्वेद,' पृष्ठ २५२, मन्त्र ४५ की व्याख्या सायण और 'निरुक्त-परिशिष्ट' (१३.९) ने सात प्रकार से की है! स्वयं यास्क ने "अश्विनौ" शब्द के चार अर्थ किये हैं—स्वर्ग-मर्त्य, दिन-रात, सूर्य-चन्द्रमा और दो धर्मात्मा! इन्द्र शब्द के चार अर्थ किये गये हैं—ईश्वर, देव, ज्ञान और विद्युत्! वृत्र के भी चार अर्थ हैं—अज्ञान, मेघ, असुर और असुरों का राजा! पृश्नि के भी चार अर्थ हैं—मरुतों

गाथा-मिश्रं भवति ।" अर्थात् इतिहासों, ऋचाओं और गाथाओं से युक्त वेद हैं।' फलतः यास्क के मत से वेद में इतिहास है।

ऋग्वेद के सभी प्राचीन भाष्यकार ऋग्वेद में इतिहास मानते हैं। ऋग्वेद का "दाशराज्ञयुद्ध" प्रसिद्ध इतिहास है। ऋग्वेद में ऋषियों और राजाओं का वंश-विवरण है। अनेकानेक नदियों, समुद्रों, नगरों, देशों और प्राणियों के नाम और विवृति है। यजुर्वेद (३.६१) में शिवजी के धनुष्, हाथी की छाल, उनके निवास-स्थान आदि का, पुराणों की तरह, स्पष्ट उल्लेख है। शतपथ-ब्राह्मण (१४.५.४.१०) और अथर्ववेद में इतिहास को एक कला माना गया है। वस्तुतः वेद में आर्यों के रहन-सहन, खान-पान, भाषा-भाव, समाज-व्यवस्था, आमोद-प्रमोद, राज्य-स्थापन, देश-विजय आदि विषय हैं और अतीव संक्षिप्त रूप से इतिहास है।

यही ऐतिहासिकों का मत है और इसी मत के समर्थक ग्रासमान, लांगलोआ, ह्विटने, राथ, मैक्समूलर आदि जर्मन, फ्रेंच अँगरेज आदि पाश्चात्त्य और भांडारकर, दत्त, राजवाडे आदि एतद्देशीय वेदाभ्यासी सज्जन हैं।

वेदार्थ करने की शैली

वेद-स्वरूप बतानेवाले उक्त तीन मत-वाद अत्यन्त प्रसिद्ध तो हैं; परन्तु वेद-रहस्य बतानेवाले और भी पक्ष हैं। यास्क ने इन नौ मतवादों का उल्लेख किया है—आधिदैवत, आध्यात्मिक, आख्यान-समय-परक, ऐतिहासिक, नैदान, नैरुक्त, परिव्राजक, पूर्वयाज्ञिक और याज्ञिक। यास्क ने प्रायः एक दर्जन निरुक्तकारों का भी उल्लेख किया है, जिनमें कइयों के अर्थ-सम्बन्धी विभिन्न मत हैं। मूल धातु में प्रत्यय, उपसर्ग लगाकर सन्धि-विग्रह और आगम परिहार करके तथा शब्द-व्युत्पत्ति के द्वारा अनेकानेक वैदिक पदों और शब्दों के अनेकानेक अर्थ किये जाते हैं। वर्तमान ग्रन्थ के पृष्ठ ५४१ के ३ य मन्त्र में 'महादेव' शब्द आया है, जिसका अर्थ किसी ने सूर्य किया है, किसी ने 'यज्ञ', किसी ने 'शब्द'! 'हिन्दी ऋग्वेद,' पृष्ठ २५२, मन्त्र ४५ की व्याख्या सायण और 'निरुक्त-परिशिष्ट' (१३.९) ने सात प्रकार से की है! स्वयं यास्क ने "अश्विनौ" शब्द के चार अर्थ किये हैं—स्वर्ग-मर्त्य, दिन-रात, सूर्य-चन्द्रमा और दो धर्मात्मा! इन्द्र शब्द के चार अर्थ किये गये हैं—ईश्वर, देव, ज्ञान और विद्युत्! वृत्र के भी चार अर्थ हैं—अज्ञान, मेघ, असुर और असुरों का राजा! पृश्नि के भी चार अर्थ हैं—मरुतों

की माता, पृथ्वी, आकाश और मेघ ! गौ शब्द के तो पाँच अर्थ किये गये हैं—गौ, किरण, जलधारा, इन्द्रिय और वाणी !

यूरोपीय वेदाभ्यासियों ने तो और भी मनमाना अर्थ किया है। कृष्ण यजुर्वेद की 'तैत्तिरीय-संहिता' (७.१.८.२) में 'श्रद्धादेव' शब्द आया है, जिसका सीधा अर्थ श्रद्धालु है; परन्तु एगलिंग ने इसका अर्थ 'देव-भीरु' (God-fearing) कर डाला है ! "पीटर्सबर्ग लेक्जिकन" (संस्कृत-जर्मन-महाकोष) के लेखक राथ और बोट्लिंग्क ने अश्व शब्द के तृतीया एक वचन 'अश्वा' का अर्थ 'कुत्ते के समान' लिख मारा है ! अश्वा का अर्थ है घोड़े के द्वारा। यही नहीं, 'हरप्पा' और 'मोहन जो दड़ो' की खोदाई करानेवाले और "इंडो-सुमेरियन सील्स डिसाइफर्ड" के लेखक एल० ए० वैडल ने तो इतनी दूर तक लिखा है कि 'इराक की सुमर जाति (अनार्य) ने ही आर्यों को सभ्य बनाया। उन के 'एदिन' शब्द से 'सिन्धु' शब्द बना है ! सुमेरियन भाषा के 'मद्गल' शब्द से वेद का 'मुद्गल' शब्द बना है !' इसी प्रकार सुमेरियन कन्व से कण्व, 'बरम' से ब्राह्मण और 'तप्स' (अक्कद के सगुन का मन्त्री) से 'दक्ष' बना ! वेद के 'पूजा' और 'मीन' शब्द चाल्डियन भाषा के हैं ! ऋग्वेद के "सचा मना हिरण्यया" में 'मना' बेबीलोनियन शब्द है ! अँगरेजी के Path शब्द से वेद का 'पन्था' शब्द निकला है ! कुछ पाश्चात्त्य तो यह भी कहते हैं कि 'दक्षिण अफ्रीका में हजार सिरवाले राक्षस की जो कहानी प्रचलित है, उसी की नकल पर वेद में "सहस्रशीर्षाः" लिखा गया है !' इस तरह अनेक पाश्चात्यों ने वैदिक शब्दों के अर्थ का अनर्थ कर डाला है और बहुत-सी वृथा कल्पना-जल्पनाएँ रच डाली हैं ! सबके लिखने का यहाँ न तो स्थान ही है, न आवश्यकता ही। जिन्हें आर्य-धर्म और हिन्दू-संस्कृति में केवल छिद्र ही ढूँढ़ने हैं, वे तो ऐसी ऊटपटाँग बातें करेंगे ही। वस्तुतः वैदिक साहित्य को हीन बताने के लिए ही कितने ही विदेशी विद्वान् वैदिक साहित्य के पीछे पड़े थे। मैकडानल ने अपने "Vedic mythology" के प्रथम पृष्ठ में ही आर्यों को 'असभ्य' और 'बर्बर' बना डाला है ! "जैसी समझ, वैसी करनी" ठीक ही है। और, पक्षपात का चश्मा पहननेवालों से निष्पक्ष अर्थ करने तथा यथार्थ विषय उपन्यस्त करने की आशा ही कैसे की जा सकती है ?

पक्षपात का चश्मा कुछ भारतीय विद्वानों ने भी लगाया है। भेद इतना ही है कि पाश्चात्त्यों ने जहाँ तृतीय श्रेणी का चश्मा लगाया है, वहाँ भारतीयों में से कुछ ने द्वितीय श्रेणी का चश्मा लगाया है और कुछ ने प्रथम श्रेणी का। राजेन्द्रलाल मित्र, के० एम० बनर्जी और रमानाथ

की माता, पृथ्वी, आकाश और मेघ ! गौ शब्द के तो पाँच अर्थ किये गये हैं—गौ, किरण, जलधारा, इन्द्रिय और वाणी !

यूरोपीय वेदाभ्यासियों ने तो और भी मनमाना अर्थ किया है। कृष्ण यजुर्वेद की 'तैत्तिरीय-संहिता' (७.१.८.२) में 'श्रद्धादेव' शब्द आया है, जिसका सीधा अर्थ श्रद्धालु है; परन्तु एगलिंग ने इसका अर्थ 'देव-भीरु' (God-fearing) कर डाला है ! "पीटर्सबर्ग लेक्जिकन" (संस्कृत-जर्मन-महाकोष) के लेखक राथ और बोट्लिंग्क ने अश्व शब्द के तृतीया एक वचन 'अश्वा' का अर्थ 'कुत्ते के समान' लिख मारा है ! अश्वा का अर्थ है घोड़े के द्वारा। यही नहीं, 'हरप्पा' और 'मोहन जो दड़ो' की खोदाई करानेवाले और "इंडो-सुमेरियन सील्स डिसाइफर्ड" के लेखक एल० ए० वैडल ने तो इतनी दूर तक लिखा है कि 'इराक की सुमर जाति (अनार्य) ने ही आर्यों को सभ्य बनाया। उन के 'एदिन' शब्द से 'सिन्धु' शब्द बना है ! सुमेरियन भाषा के 'मद्गल' शब्द से वेद का 'मुद्गल' शब्द बना है !' इसी प्रकार सुमेरियन कन्व से कण्व, 'बरम' से ब्राह्मण और 'तप्स' (अक्कद के सगुन का मन्त्री) से 'दक्ष' बना ! वेद के 'पूजा' और 'मीन' शब्द चाल्डियन भाषा के हैं ! ऋग्वेद के "सचा मना हिरण्यया" में 'मना' बेबीलोनियन शब्द है ! अँगरेजी के Path शब्द से वेद का 'पन्था' शब्द निकला है ! कुछ पाश्चात्त्य तो यह भी कहते हैं कि 'दक्षिण अफ्रीका में हजार सिरवाले राक्षस की जो कहानी प्रचलित है, उसी की नकल पर वेद में "सहस्रशीर्षाः" लिखा गया है !' इस तरह अनेक पाश्चात्यों ने वैदिक शब्दों के अर्थ का अनर्थ कर डाला है और बहुत-सी वृथा कल्पना-जल्पनाएँ रच डाली हैं ! सबके लिखने का यहाँ न तो स्थान ही है, न आवश्यकता ही । जिन्हें आर्य-धर्म और हिन्दू-संस्कृति में केवल छिद्र ही ढूँढ़ने हैं, वे तो ऐसी ऊटपटाँग बातें करेंगे ही। वस्तुतः वैदिक साहित्य को हीन बताने के लिए ही कितने ही विदेशी विद्वान् वैदिक साहित्य के पीछे पड़े थे। मैकडानल ने अपने " Vedic mythology" के प्रथम पृष्ठ में ही आर्यों को 'असभ्य' और 'बर्बर' बना डाला है ! "जैसी समझ, वैसी करनी" ठीक ही है। और, पक्षपात का चश्मा पहननेवालों से निष्पक्ष अर्थ करने तथा यथार्थ विषय उपन्यस्त करने की आशा ही कैसे की जा सकती है ?

पक्षपात का चश्मा कुछ भारतीय विद्वानों ने भी लगाया है। भेद इतना ही है कि पाश्चात्त्यों ने जहाँ तृतीय श्रेणी का चश्मा लगाया है, वहाँ भारतीयों में से कुछ ने द्वितीय श्रेणी का चश्मा लगाया है और कुछ ने प्रथम श्रेणी का। राजेन्द्रलाल मित्र, के० एम० बनर्जी और रमानाथ

सरस्वती की वैदिक आलोचनाएं पढ़ने पर तो कभी-कभी यह सन्देह होने लगता है कि क्या ये भी मैकडानल के सहयोगी थे?

हमारे यहाँ चतुर्वेद स्वामी ने भी ऋग्वेद के कुछ अंश पर भाष्य लिखा है। इन्होंने ऋग्वेद के एक ही मन्त्र (पृ० १४०१.४) से इतने विलक्षण अर्थ निकाले हैं—पूतना और कंस का वध, गोवर्द्धन-धारण और कौरव-पाण्डव-युद्ध! प्रसिद्ध वेद-विद्यार्थी डा० वी० जी० रेले ने "The Vedic Gods" नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने समस्त दैवत संज्ञाओं (देव-नामों) को 'द्व्यर्थक' और 'नानार्थक' सिद्ध करने की चेष्टा की है!

परन्तु किसी भी ग्रन्थ का एक प्रतिपाद्य होता है, एक उद्देश्य होता है। यह बात कोई भी नहीं कह सकता कि बादरायण व्यास को वेदान्त-सूत्र की अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और विशुद्धाद्वैत-वाद आदि की सभी व्याख्याएँ अभीष्ट थीं। उन्हें तो केवल एक ही व्याख्या अभीष्ट रही होगी, उनका एक ही प्रतिपाद्य अभीष्ट रहा होगा, फिर चाहे वह द्वैतवादी हो, अद्वैतवादी हो या जो हो। इसी तरह मन्त्र-प्रणेता ऋषि को भी एक ही अर्थ अभीष्ट रहा होगा; परन्तु व्याख्याकारों ने अपने उपयुक्त वा अनुपयुक्त मत की पुष्टि के लिए मनमाने अर्थ कर डाले!

हजारों वर्षों से एक दूसरे से, दूसरा तीसरे से, तीसरा चौथे से सुन-सुनकर वेद-मन्त्रों को कण्ठस्थ करते आते थे। इस तरह हजारों मुखों और मस्तिष्कों से छनकर कुछ मन्त्र-पाठ और मन्त्रार्थ विकृत हो चले हैं। लिपिकारों की अज्ञता, अल्पज्ञता, प्रमाद, पक्षपात आदि के कारण भी कई मन्त्र और उनके अर्थ विकृत हो गये हैं। ये ही कारण हैं कि पद, क्रम, जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ और घन (विकृत-वल्ली १.५) में आबद्ध करने पर भी अनेक वेद-मन्त्रों के पाठान्तर हो गये, एक ही मन्त्र, दो-एक शब्द इधर-उधर करके, दुबारा लिखा गया और अनेक मन्त्रों के शब्द इतने विकृत हो गये कि उनका शुद्ध पाठ और अर्थ-ज्ञान दुर्बोध और अज्ञेय हो रहे।

वेद-मन्त्रों के कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ-ज्ञान नहीं होता। ऐसे शब्दों का परिगणन निघण्टु में किया गया है। कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ ढूँढ़-ढाँढ़कर धात्वर्थ या विकृत रूप से या वाक्य में स्थान देखकर अथवा जिन वाक्यों में उनका प्रयोग हुआ है, उनकी तुलना करके निश्चित किया जा सकता है। परन्तु वैदिक शब्दों का एक बड़ा समूह ऐसा है, जिसका अर्थ निश्चित रूप से ज्ञात होता है अथवा जिसका अर्थ निर्वचन के अनुसार किया जा सकता है। बहुत से ऐसे वैदिक

सरस्वती की वैदिक आलोचनाएं पढ़ने पर तो कभी-कभी यह सन्देह होने लगता है कि क्या ये भी मैकडानल के सहयोगी थे?

हमारे यहाँ चतुर्वेद स्वामी ने भी ऋग्वेद के कुछ अंश पर भाष्य लिखा है। इन्होंने ऋग्वेद के एक ही मन्त्र (पृ० १४०१.४) से इतने विलक्षण अर्थ निकाले हैं—पूतना और कंस का वध, गोवर्द्धन-धारण और कौरव-पाण्डव-युद्ध! प्रसिद्ध वेद-विद्यार्थी डा० वी० जी० रेले ने "The Vedic Gods" नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने समस्त दैवत संज्ञाओं (देव-नामों) को 'द्व्यर्थक' और 'नानार्थक' सिद्ध करने की चेष्टा की है!

परन्तु किसी भी ग्रन्थ का एक प्रतिपाद्य होता है, एक उद्देश्य होता है। यह बात कोई भी नहीं कह सकता कि बादरायण व्यास को वेदान्त-सूत्र की अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और विशुद्धाद्वैत-वाद आदि की सभी व्याख्याएं अभीष्ट थीं। उन्हें तो केवल एक ही व्याख्या अभीष्ट रही होगी, उनका एक ही प्रतिपाद्य अभीष्ट रहा होगा, फिर चाहे वह द्वैतवादी हो, अद्वैतवादी हो या जो हो। इसी तरह मन्त्र-प्रणेता ऋषि को भी एक ही अर्थ अभीष्ट रहा होगा; परन्तु व्याख्याकारों ने अपने उपयुक्त या अनुपयुक्त मत की पुष्टि के लिए मनमाने अर्थ कर डाले!

हजारों वर्षों से एक दूसरे से, दूसरा तीसरे से, तीसरा चौथे से सुन-सुनकर वेद-मन्त्रों को कण्ठस्थ करते आते थे। इस तरह हजारों मुखों और मस्तिष्कों से छनकर कुछ मन्त्र-पाठ और मन्त्रार्थ विकृत हो चले हैं। लिपिकारों की अज्ञता, अल्पज्ञता, प्रमाद, पक्षपात आदि के कारण भी कई मन्त्र और उनके अर्थ विकृत हो गये हैं। ये ही कारण हैं कि पद, क्रम, जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ और घन (विकृत-वल्ली १.५) में आबद्ध करने पर भी अनेक वेद-मन्त्रों के पाठान्तर हो गये, एक ही मन्त्र, दो-एक शब्द इधर-उधर करके, दुबारा लिखा गया और अनेक मन्त्रों के शब्द इतने विकृत हो गये कि उनका शुद्ध पाठ और अर्थ-ज्ञान दुर्बोध और अज्ञेय हो रहे।

वेद-मन्त्रों के कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ-ज्ञान नहीं होता। ऐसे शब्दों का परिगणन निघण्टु में किया गया है। कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ ढूँढ़-ढाँढ़कर धात्वर्थ या विकृत रूप से या वाक्य में स्थान देखकर अथवा जिन वाक्यों में उनका प्रयोग हुआ है, उनकी तुलना करके निश्चित किया जा सकता है। परन्तु वैदिक शब्दों का एक बड़ा समूह ऐसा है, जिसका अर्थ निश्चित रूप से ज्ञात होता है अथवा जिसका अर्थ निर्वचन के अनुसार किया जा सकता है। बहुत से ऐसे वैदिक

शब्द हैं, जिनका अर्थ परम्परा से प्राप्त है। परम्परा से प्राप्त अर्थ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है।

यास्क ने तीन ऐसे साधन बताये हैं, जिनसे मन्त्रों का अर्थ जाना जा सकता है—१ आचार्यों से परम्परया सुने हुए ज्ञान-ग्रन्थ, २ तर्क और ३ गम्भीर मनन। तर्क का तात्पर्य है वेदान्त-दर्शन आदि से। वेदान्त-सूत्र के अपने भाष्य में शंकराचार्य ने इन साधनों से अनेक मन्त्रों का अर्थ-निर्णय किया भी है।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण-ग्रन्थ, निरुक्त, प्राति-शाख्य, कल्पसूत्र आदि की सहायता से बहुत कुछ मन्त्रार्थ मौलिक रूप में सुरक्षित है। गम्भीर मनन, प्रकरण, प्रसंग और वेदार्थ करनेवाले प्राचीन-परम्परा-प्राप्त आधार-ग्रन्थों से असन्दिग्ध अर्थ-निर्णय किया जा सकता है। 'अमर-कोष' रटनेवाले छात्र को भी तनूनपात्, जातवेदस्, वैश्वानर आदि वैदिक शब्दों का 'अग्नि' अर्थ परम्परया ज्ञात हो जाता है। उपनिषद्, आरण्यक, पुराण, धर्म-शास्त्र आदि परम्परा-प्राप्त अर्थ के आधार हैं; इसलिए वेदार्थ करते समय इन सबसे भी सहायता लेनी चाहिए। परम्परा-गत अर्थ को छोड़कर केवल यौगिक अर्थ करना यथेष्ट भयावह है। गौ का यौगिक अर्थ है चलनेवाला। परन्तु यदि किसी चलनेवाले मनुष्य को गौ कहा जाय तो वह युद्ध ठान बैठेगा! इसी से कहा गया है—"रूढ़िर्योगाद् बलीयसी" अर्थात् यौगिक, वाच्यार्थ, व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ से रूढ़, प्रचलित और स्वीकृत अर्थ बलवत्तर है। इसलिए केवल यौगिक अर्थ का अनुधावन करना अनुपयुक्त है।

भाष्यकार सायण

वेद-भाष्यकारों में सायण महाप्रतिभाशाली थे। वे विजयनगर के राजा बुक्क (प्रथम), संगम (द्वितीय) और हरिहर (तृतीय) के मन्त्री थे। उन्होंने चम्प-नरेन्द्र को पराजित किया था। सायण १४ वीं शती में थे और ७२ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हुए थे। उन्होंने अनेक उद्भट विद्वानों के सहयोग से चारों वेदों की संहिताओं पर महत्त्व-पूर्ण भाष्य लिखा था। उनके प्रधान सहयोगी नरहरि सोमयाजी, नारायण वाज-पेययाजी और पंढरी दीक्षित थे।

सबसे पहले सायण ने कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय-संहिता पर भाष्य लिखा। पश्चात् ऋग्वेद (शाकल-संहिता), शुक्ल यजुर्वेद (काण्वसंहिता), सामवेद (कौथुमसंहिता) और अथर्ववेद (शौनकसंहिता) पर भाष्य लिखा। सायण ने सामवेद के प्रसिद्ध आठ ब्राह्मण-ग्रन्थों, ऐतरेय-ब्राह्मण,

तैत्तिरीय-ब्राह्मण, शतपथब्राह्मण, गोपथब्राह्मण, तैत्तिरीयारण्यक, ऐतरेयारण्यक, ऐतरेयोपनिषद् तथा सामप्रातिशाख्य पर भी भाष्य लिखा है। मन्त्रित्व का दुरूह कार्य करते हुए भी सायण ने ये भाष्य लिखे और अन्य पाँच मौलिक ग्रन्थ भी लिखे, यह देखकर सायण की अद्भुत प्रतिभा पर संसार के बड़े-बड़े मनीषी मुग्ध हो जाते हैं।

यों तो ऋग्वेद पर अनेक भाष्य हैं; परन्तु सब खण्डित हैं। वेंकट माधव का "ऋगर्थदीपिका" नाम का भाष्य आधा छप चुका है; आधा शेष है। परन्तु यह भाष्य भी यत्र-तत्र खण्डित है और अत्यन्त संक्षिप्त है। किन्तु सायण-भाष्य पूर्ण है, विस्तृत है और वेद-विज्ञान की ज्योति पाने के लिए समस्त विश्व में एक मात्र आधार है। सायण का ऋग्वेद-भाष्य सर्वप्रथम विजयनगर में ही छपा।

ऋग्वेदीय मन्त्रों के कहीं आध्यात्मिक, कहीं आधिदैविक तथा कहीं आधिभौतिक अर्थ हैं। सायण ने यथास्थान तीनों ही अर्थों को लिखा है। ऋग्वेद में कहीं समाधि-भाषा, कहीं परकीय भाषा और कहीं लौकिक भाषा का प्रयोग है और सायण ने यथास्थान तीनों का ही रहस्य बताया है। जहाँ जिस भाषा और जिस वाद का कथन है, वहाँ उसी का उल्लेख करके सायण ने अर्थ-समन्वय किया है। अतएव यह धारणा ठीक नहीं कि सायण ने केवल 'अधियज्ञ' अर्थ किया है।

१. सायण ने सर्वत्र प्राचीन-परम्परा-प्राप्त अर्थ किया है। सारे संस्कृत-साहित्य को मथकर सायण ने प्राचीन परम्परा और मर्यादा का पालन किया है।

२. स्कन्द स्वामी, वेंकट माधव, उद्गीथ, भट्ट भास्कर, भरत स्वामी, कपर्दी स्वामी आदि सभी प्राचीन भाष्यकारों के अनुकूल ही सायण-भाष्य है।

३. समस्त वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य और आर्य-जाति के आचार-विचार से सायण-भाष्य का समर्थन होता है।

४. विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित वेद-सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रणेता प्रायः सायणानुयायी हैं।

५. सनातन-धर्मानुयायी सदा से सायण-भाष्य को आर्य-जाति की संस्कृति, सभ्यता और रीति-नीति का अनुयायी मानते हैं।

६. सायण-भाष्य के अतिरिक्त ऋग्वेद पर किसी का भी भाष्य पूर्ण नहीं है; इसलिए सायण-भाष्य के अभाव में ऋग्वेद का न तो सम्यक् अर्थ-ग्रहण होता, न राथ की "पीटर्सबर्ग लेक्जिकन" नाम की कोष-पुस्तक ही बन पाती और न ग्रासमान का "वैदिक कोष" ही लिखा जाता।

इन्हीं सब कारणों से इस "हिन्दी ऋग्वेद" में सायण-भाष्य के अनुसार ही मन्त्रार्थ किये गये हैं। मन्त्रार्थों के साथ मन्त्रों को इसलिए नहीं प्रकाशित किया गया है कि हिन्दी-पाठक तो क्या, जो संस्कृत के विद्वान् ब्राह्मण-ग्रन्थ, निरुक्त, प्रातिशाख्य आदि का सविधि स्वाध्याय नहीं कर चुके हैं, वे भी ऋग्वेद के एक मन्त्र का भी यथार्थ अर्थ नहीं समझ पाते। मूल ऋग्वेद-संहिता अलग प्रकाशित है। जो पाठक चाहेंगे, वे उसे लेकर देख सकेंगे। भाषानुवाद के साथ मन्त्रों का प्रकाशन इस लिए भी नहीं किया गया कि वर्त्तमान ग्रन्थ का मूल्य अधिक हो जाता और साधारण पाठक उसे खरीदने में असमर्थ हो रहते।

ऋग्वेद में १० मण्डल, १०१७ सूक्त और १०४६७ मन्त्र हैं। प्रत्येक मण्डल में कितने ही सूक्त और प्रत्येक सूक्त में कितने ही मन्त्र हैं। किसी भी मन्त्र का उल्लेख या उद्धरण करते समय मण्डल, सूक्त और मन्त्र की संख्या लिखने की परिपाटी है। परन्तु यहाँ और विषय-सूची में पाठकों के सुभीते के लिए इस "हिन्दी ऋग्वेद" के पृष्ठों और मन्त्रों की ही संख्याएँ दी गई हैं। इस क्रम से मन्त्र देख लेने पर पाठक सरलता से मण्डल, सूक्त और मन्त्र खोजकर निकाल सकेंगे।

ऋग्वेद का निर्माण-काल

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबल के अनुसार मनुष्य-जाति का इतिहास अधिक से अधिक ८००० वर्षों का है। इसी के भीतर पाश्चात्य वेदाध्यायियों को सब कुछ घटाना था। इसलिए अधिकांश पाश्चात्य और उनके एतद्देशीय अनुयायी ऋग्वेद का निर्माण-समय ३५०० से ४००० वर्ष तक मानते हैं।

कल्पसूत्रों के विवाह-प्रकरण में "ध्रुव इव स्थिरा भव" वाक्य आता है। इस पर जर्मन ज्योतिषी जैकोबी ने लिखा है कि 'पहले ध्रुव (तारा) अधिक चमकीला और स्थिर था। यह स्थिति आज से ४७०० वर्ष पहले थी। इसलिए कल्पसूत्रों के बने ४७०० वर्ष हुए।' ग्रहों और नक्षत्रों की आकाशीय स्थिति के आधार पर जैकोबी ने ऋग्वेद का रचना-काल ६५०० वर्षों से भी अधिक सिद्ध किया है।

सिकन्दर के समय ग्रीक या यूनानी विद्वानों ने जो यहाँ की वंशावली संगृहीत की थी, उसके अनुसार चन्द्रगुप्त तक १५४ राजवंश ६४५७ वर्षों तक भारत में राज्य कर चुके थे। इन सारे राजवंशों से बहुत पहले ऋग्वेद बन चुका था। इस तरह ऋग्वेद का रचना-काल ८००० वर्षों का कहा गया है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने विदेशियों का अन्धानुकरण न करके स्वयं वेद का कालान्वेषण किया। उनके मत से ऋग्वेद के ऐतरेय और यजुर्वेद के शतपथ नामक ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय कृत्तिका नक्षत्र से नक्षत्रों की गणना होती थी। उन दिनों कृत्तिका नक्षत्र में ही दिन-रात बराबर (Vernal Equinox) होते थे। आजकल अश्विनी से नक्षत्र-गणना होती है और २१ मार्च तथा २३ सितम्बर को दिन-रात बराबर होते हैं। खगोल और ज्यौतिष के सिद्धान्तानुसार यह परिवर्त्तन आज से ४५०० वर्ष पूर्व हुआ। इसलिए ४५०० वर्ष पहले ब्राह्मण-ग्रन्थ बने।

मन्त्र-संहिताओं के समय नक्षत्रों की गणना मृगशिरा से होती थी और मृगशिरा में वसन्त-सम्पात होता था। खगोल और ज्यौतिष के अनुसार आज से ६५०० वर्ष पहले यह स्थिति थी। लोकमान्य के मत से सारे मन्त्र एक साथ नहीं बने। ऋषियों और उनके वंशधरों ने समय-समय पर, हजारों वर्षों में, मन्त्र बनाये। इस तरह कुछ ऋचाएँ दस हजार वर्षों की हैं; कुछ साढ़े आठ हजार वर्षों की और कुछ सात साढ़े सात हजार वर्षों की हैं। सभी प्राचीनतम ऋचाएँ (मन्त्र) ऋग्वेद की ही हैं।

नारायण भवानराव पावगी ने भूगर्भशास्त्र के प्रमाणों के आधार पर ऋग्वेद का निर्माण-काल ९००० वर्षों का प्रमाणित किया है।

डा० सम्पूर्णानन्द ने "आर्यों का आदि देश" नाम का ग्रन्थ लिखा है। जहाँ पाश्चात्त्यों ने आर्यों का आदि निवास एशिया माइनर और लो० तिलक ने उत्तरीय ध्रुव-प्रदेश प्रमाणित किया है, वहाँ सम्पूर्णानन्दजी ने ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों के अन्तःसाक्ष्य से 'सप्त सिन्धव' सिद्ध किया है। उन दिनों इसके उत्तर, दक्षिण और पूर्व में समुद्र थे। उन दिनों जहाँ यह भू-खण्ड था, वहाँ आजकल कश्मीर की उपत्यका, राजपूताना और उत्तर प्रदेश अवस्थित हैं। उन दिनों समुद्र में से हिमालय ऊपर उठ रहा था, पृथ्वी में बराबर प्रकम्प आते रहते थे और पर्वत चंचल थे। इस स्थिति का वर्णन आर्यों ने इस मन्त्र (पृ० ३०५. म० २) में किया है—'मनुष्यो, जिन्होंने व्यथित (कम्पित) पृथ्वी को दृढ़ किया है, जिन्होंने प्रकुपित (चंचल) पर्वतों को नियमित (शान्त) किया है और जिन्होंने द्युलोक को निस्तब्ध किया है, वे ही इन्द्र हैं।'

भूगर्भ-शास्त्रियों के मत से यह अस्थिर अवस्था २५ हजार वर्ष से लेकर ५० हजार वर्ष के बीच की है। इस अवस्था को आर्यों ने अपनी आँखों देखा था। इससे विदित होता है कि कुछ मन्त्र कम से कम २५ हजार वर्ष के पूर्व के हैं। यही नहीं, ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जो भूगोल भूगर्भ और खगोल के विषयों का ऐसा विवरण देते हैं, जैसा केवल

प्रत्यक्षदर्शी ही दे सकता है। ऐसा ही विवरण एक मन्त्र (१३४२.१३) में है। इससे ज्ञात होता है कि उन दिनों सिंह राशि में सूर्य की उत्तरायण गति का आरम्भ होता था। इन दिनों मकर राशि में होता है, जो चार महीने पीछे आती है। आज से १८ हजार वर्ष पहले मन्त्रोल्लिखित दशा थी। ऋग्वेद में ऐसे अनेकानेक मन्त्र हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद का निर्माण-काल १८ हजार वर्ष से लेकर ५० हजार वर्ष के बीच का है। यह बात अवश्य है कि सभी मन्त्र इतने प्राचीन नहीं हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र (१४२९.५) में पूर्व और पश्चिम—दो समुद्रों का उल्लेख है। दो मन्त्रों (११०४.६ और १२८५.२) में चार समुद्रों का उल्लेख है। ये चारों समुद्र उपरि लिखित आर्य-निवास की चारों दिशाओं में थे। ४०१.२ से विदित होता है कि विपाश (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) नदियाँ समुद्र में गिरती थीं। यह दक्षिणी समुद्र था। "Imperial Gazetteer of India" (प्रथम भाग) से मालूम होता है कि भूगर्भ-शास्त्रियों ने इसका नाम 'राजपूताना समुद्र' रखा था। यह अरबली पर्वत के दक्षिण और पूर्व भागों तक फैला था। आज भी राजपूताना के गर्भ में खारे जल की झीलें (साँभर झील आदि) और नमक की तहें यह बात बताती हैं कि किसी समय राजपूताना समुद्र की लहरों से प्लावित होता था। पश्चिमी समुद्र तो अब तक है ही। पूर्वी समुद्र पंजाब से पूर्व गांगेय प्रदेश था।

उत्तरी समुद्र कहाँ था? "Encyclopedia Britanica" (प्रथम भाग) से जाना जाता है कि बल्ख और फारस के उत्तर एशिया में एक विशाल समुद्र था, जिसका नाम भूगर्भशास्त्रियों ने 'एशियाई मेडीटरेनियन' (एशियाई भूमध्य सागर) रखा था। उत्तर में इसका सम्बन्ध आर्कटिक महासागर से था। इसके पास ही यूरोपीय भूमध्यसागर था। एशियावाले का तल ऊँचा था और यूरोपवाले का नीचा। जब पृथ्वी के परिवर्त्तनों ने वासफरस का मार्ग बना दिया, तब एशियाई समुद्र का जल यूरोपीय समुद्र में पहुँच गया और एशियाई समुद्र विनष्ट हो गया। भूगर्भवेत्ताओं के मत से अब इसके कुछ अंश झीलों के रूप में सूखकर रह गये हैं, जिन्हें इन दिनों कृष्णह्रद (Black sea), काश्यपह्रद (Caspean sea), अरालह्रद (Sea of Aral) और बलकाशह्रद (Lake Balkash) कहा जाता है। ये ही उत्तरी समुद्र थे। इन चारों समुद्रों में घूम-घूमकर आर्य लोग व्यापार किया करते थे (७८.२)। एच० जी० वेल्स और भूगर्भ-विद्या के विद्वानों के मत से इन चारों समुद्रों का अस्तित्व पचास हजार वर्ष से लेकर पचहत्तर हजार वर्ष के भीतर था। इस प्रमाण

से तो ऋग्वेद के मन्त्रों का निर्माण-काल पचहत्तर हजार वर्ष तक जा पहुँचता है। यह मत डा० अविनाशचन्द्र दास का है।

वेद के प्रतिपाद्य, उपदेश, संस्कृति, अपूर्वता आदि पर विचार न कर पाश्चात्यों ने काल-निर्णय पर ही अधिक माथापच्ची की है। परन्तु भूगर्भशास्त्रियों से समर्थित अन्यान्य प्रमाणों को देखकर जर्मन वेदाध्यायी श्लेगल ने लिखा है कि 'वेद संसार में सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। इनका समय नहीं निश्चित किया जा सकता। इनकी भाषा भारतीयों के लिए भी उतनी ही कठिन है, जितनी विदेशियों के लिए।' दूसरे जर्मन वेद-विद्यार्थी वेबर ने लिखा है—'वेदों का समय निश्चित नहीं किया जा सकता। ये उस तिथि के बने हुए हैं, जहाँ तक पहुँचने के लिए हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं हैं। वर्तमान प्रमाण-राशि हम लोगों को उस समय के उन्नत शिखर पर पहुँचाने में असमर्थ है।' यह उन वेबर साहब की राय है, जिन्होंने वेदाध्ययन में अपना सारा जीवन खपा डाला था।

परन्तु जो वेद-नित्यतावादी हैं, उनके लिए तो काल-निर्णय का प्रश्न ही नहीं है।

ऋग्वेद-संहिता

छन्दों से युक्त मन्त्रों को ऋक् (ऋचा) कहा जाता है। वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है। ऋचाओं का जो ज्ञान है, उसे ऋग्वेद कहते हैं। ऋचा-विषयक ज्ञान चराचर-व्यापी है।

गुप्त कथन का नाम मन्त्र है। देवादि-स्तुति में प्रयुक्त अर्थ का स्मरण करानेवाले वाक्य को भी मन्त्र कहा जाता है। जैसे औषध में रोग को दूर कर नीरोग करने की स्वाभाविक शक्ति होती है, वैसे ही मन्त्र में सारी विघ्न-बाधाओं को दूर कर दिव्य शक्ति और स्फूर्ति पैदा करने की स्वाभाविक शक्ति है। जैसे चुम्बक में लौहा-कर्षण की स्वाभाविक शक्ति है, वैसे ही मन्त्र में फल देने की, स्वर्ग मोक्ष आदि देने की और मनःकामना पूर्ण करने की स्वाभाविक शक्ति है। मन्त्र की यह अद्भुत शक्ति संसार में प्रति दिन देखी जाती है।

मन्त्रों का उपयुक्त प्रयोग और व्यवहार होने पर जगत में ऐसे प्रकम्प होते हैं, जिनसे प्रसुप्त-अव्यक्त शक्तियों में से कोई एक विशेष शक्ति जागरित और अभिव्यक्त होती है। उस शक्ति को लोग मन्त्र-देवता कहते हैं। जहाँ यह कहा गया हो कि अमुक मन्त्रों के

या सूक्त के देवता इन्द्र हैं, वहाँ यह समझना चाहिए कि उन मन्त्रों या सूक्त के यथार्थ प्रयोग से ऐन्द्री शक्ति जागरित होती है और मन्त्र अपना फल देते हैं। इन्हीं मन्त्रों के समुदाय या संग्रह का नाम संहिता है। "ऋग्वेद-संहिता" का संक्षिप्त आशय यही है।

संस्कृत-साहित्य के अनेक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ऋग्वेद की २१ संहिताएँ या शाखाएँ हैं। परन्तु इन दिनों केवल एक "शाकल-संहिता" ही उपलब्ध है। देश-विदेश में यही छपी है और इसी का अनुवाद विविध भाषाओं में हुआ है। चारों वेदों की ११३१ शाखाओं में से इस समय केवल ये साढ़े ग्यारह संहिताएँ ही प्राप्त और प्रकाशित हैं—ऋग्वेद की शाकल, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ, शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और कण्व, सामवेद की कौथुम, राणायणी और जैमिनीय तथा अथर्ववेद की शौनक और पैप्पलाद। कृष्ण यजुर्वेद की कठ-कपिष्ठल-संहिता भी आधी मिली है और प्रकाशित भी हो चुकी है। यह तो सर्व-विदित है कि यजुर्वेद के कृष्ण और शुक्ल नाम के दो भेद हैं। इन समस्त संहिताओं में शाकल-संहिता सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण है। इसी संहिता का हिन्दी-अनुवाद "हिन्दी ऋग्वेद" है। यह ग्रन्थ वैदिक वाङ्मय का मुकुट-मणि है।

इसी शाकल-संहिता के मन्त्रों से सामवेद की कौथुम-संहिता भरी पड़ी है—केवल ७५ मन्त्र कौथुम के अपने हैं। अथर्ववेद की शौनक-संहिता में शाकल के १२०० मन्त्र पाये जाते हैं। शौनक के २० वें काण्ड के सारे मन्त्र (कुन्तापसूक्त और दो अन्य मन्त्रों को छोड़कर) शाकल के हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय-संहिता में भी शाकल के बहुत मन्त्र हैं। इसीलिए कहा जाता है कि 'शाकल-संहिता के अन्तर्गत प्रायः अन्य तीनों वेद हैं और इसके सविध स्वाध्याय से प्रायः चारों वेदों का अध्ययन हो जाता है।' बहुत दिनों से यह परिपाटी चली आ रही है कि केवल ऋग्वेद कह देने से 'ऋग्वेदीय शाकल-संहिता' का बोध कर लिया जाता है। ऋग्वेद की कोई अन्य संहिता मिलती भी नहीं। ऋग्वेदीय संहिताओं के नाम तो २१ ही नहीं, विविध ग्रन्थों में ३४ तक मिलते हैं; परन्तु आज तक यह निश्चय नहीं किया जा सका कि ये नाम संहिताओं के हैं या संहिताभाष्यकारों, निरुक्तकारों, प्रातिशाख्यकर्त्ताओं, पद-पाठ-कारों अथवा अनुक्रमणीकारों के हैं।

इस शाकल-संहिता के दो तरह के विभाग किये गये हैं—(१) मण्डल, अनुवाक और वर्ग तथा (२) अष्टक, अध्याय और सूक्त। सारी संहिता में १० मण्डल, ८५ अनुवाक, २००८ वर्ग (बालखिल्य

के १६ सूक्तों को छोड़कर), ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र (पृष्ठ १४०३. मन्त्र ८) से ज्ञात होता है कि इसमें सब १५००० मन्त्र हैं; परन्तु गणना करने पर १०४६७ ही मन्त्र पाये जाते हैं। संभव है, वैदिक साहित्य की पुस्तकों की एक विशाल राशि जैसे नष्ट हो गई और वेद-धर्म-द्रोहियों के द्वारा विनष्ट कर दी गई, उसी तरह मन्त्र भी, कई कारणों से, नष्ट हो गये।

शौनक ऋषि की 'अनुक्रमणी' के अनुसार तो ऋग्वेद में १०५८०॥ मन्त्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० अक्षर हैं। औसतन प्रत्येक सूक्त में १० मन्त्र और प्रत्येक मन्त्र में ५ अक्षर हैं। परन्तु मन्त्रों, शब्दों और अक्षरों की गणना करने पर 'अनुक्रमणी' की संख्याएँ नहीं मिलतीं।

ऋग्वेद में केवल दो चरणवाले १७ और केवल एक चरणवाले ६ मन्त्र हैं। स्वर वर्णों पर ३५८९, कवर्ग पर ४०७, चवर्ग पर १४२, तवर्ग पर १८३३, पवर्ग पर १३७७, अन्तःस्थ अक्षरों पर १७३३ और ऊष्म अक्षरों पर १३५६ मन्त्र हैं।

ऋग्वेद के १० मण्डलों में से द्वितीय मण्डल के ऋषि गृत्समद, तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पंचम के अत्रि, षष्ठ के भरद्वाज और सप्तम के वसिष्ठ तथा इन ऋषियों के वंशधर और इनके शिष्य-प्रशिष्य हैं। आश्वलायन ने प्रगाथ-परिवार को अष्टम का ऋषि माना है। परन्तु षड्गुरु-शिष्य ने प्रगाथ को कण्व ही माना है। नवम मण्डल के अनेक ऋषि हैं। आश्वलायन के मत से दशम मण्डल के ऋषि 'क्षुद्रसूक्त' और 'महासूक्त' हैं। परन्तु यह बात ठीक नहीं। दशम मण्डल के ऋषि और उनके वंशज अनेकानेक हैं। प्रथम मंडल के २३ ऋषि हैं। प्रायः सभी ऋषि ब्राह्मण थे।

ऐतिहासिक कहते हैं कि इन सूक्तों के ऋषि क्षत्रिय थे—पृष्ठ १२५४ से १२६१. सूक्त ३० से ३४ ईलुष-पुत्रक कवष, पृ० १३६०. सू० ९१ वैतहव्य अरुण, पृ० १३३८. सू० ९५ पुरुरवा, १४२५. सू० १३३ पिजवन-पुत्र सुदास, १४२६. सू० १३४ युवनाश्व-पुत्र मान्धाता आदि। पृष्ठ १२८३. सू० ४६ के ऋषि भालनन्दन वत्सप्रि वैश्य कहे जाते हैं और पृ० १४५६. सू० १७५ के ऋषि अर्बुद-पुत्र ऊर्द्धग्रावा शूद्र। परन्तु यह विषय अभी संदिग्ध है। किंतु इसमें संदेह नहीं कि इन सूक्तों की ऋषिकाएँ स्त्रियाँ हैं—पृ० १२७०-७४. सूक्त ३९ और ४० ब्रह्म-वादिनी घोषा, २७२. १७९ लोपामुद्रा, १०४६.८० अत्रिपुत्री अपाला, ५७२.२८ अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्ववारा, १३४१. ८५ सूर्या, १३९५. १०९

ब्रह्मवादिनी जुहू, १४४३. १५४ विवस्वान् की पुत्री यमी आदि। जिस सूक्त का जो ऋषि है, उसका नाम सूक्त के ऊपर रहता है।

देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग

प्रत्येक सूक्त के ऊपर ये चारों सञ्ज्ञाएं लिखी रहती हैं। लाघव के लिये 'हिन्दी ऋग्वेद' में तीन दी गई हैं। वेदार्थ-ज्ञान के लिए इन चारों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। 'बृहद्देवता' में लिखा है—

"अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेत् जपेद् वापि पापीयान जायते तु सः॥"

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग को जाने विना जो मन्त्र पढ़ता वा जपता है, वह पापी है।

शौनक की 'अनुक्रमणी' (११) में कहा गया है—'जो इन चारों का ज्ञान प्राप्त किये विना वेद का अध्ययन, अध्यापन, हवन, यजन, याजन आदि करते हैं, उनका सब कुछ निष्फल हो जाता है और जो ऋष्यादि को जानकर अध्ययनादि करते हैं, उनका सब कुछ फलप्रद होता है। ऋष्यादि के ज्ञान के साथ जो वेदार्थ भी जानते हैं, उनको अतिशय फल प्राप्त होता है।' याज्ञवल्क्य और व्यास ने भी ऐसा ही लिखा है।

ऋषि के संबंध में पहले लिखा जा चुका है। देवों के बारे में आगे लिखा जायगा।

वैदिक मन्त्र छन्दों में हैं। छन्दों का ज्ञान प्राप्त किये विना शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता। 'जो मनुष्यों को प्रसन्न करे और यज्ञादि की रक्षा करे, उसे छन्द कहा जाता है।' (निरुक्त, दैवतकाण्ड १.१२) मुख्य छन्द २१ हैं। २४ अक्षर से लेकर १०४ अक्षर तक में ये छन्द आते हैं। 'छन्दोऽनुक्रमणी' में ऋग्वेद के समस्त छन्दों का क्रमशः विवरण है।

जिस कार्य के लिए मन्त्र का प्रयोग होता है, उसे विनियोग कहा जाता है। मन्त्र में अर्थान्तर और विषयान्तर होने पर भी विनियोग के द्वारा अन्य कार्य में उस मन्त्र को विनियुक्त किया जा सकता है। पूर्वाचार्यों ने ऐसा माना है। इससे ज्ञात होता है कि मन्त्रों पर शब्दार्थों से भी अधिक आधिपत्य विनियोग का है। यही कारण है कि अथर्ववेदकी 'पैप्पलाद-संहिता' के प्रथम मन्त्र "शन्नो देवीरभिष्टये" का अर्थ दिव्य-जल-परक होने पर भी इसका विनियोग शनि की पूजा में होता आ रहा है।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि जैसे मन्त्रार्थ के लिए और मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए उपर्युक्त चारों विषयों और ब्राह्मण-ग्रन्थ, निरुक्त, प्रातिशाख्य, कल्पसूत्र, इतिहास, पुराण आदि का ज्ञान अत्यावश्यक है, वैसे ही मन्त्र-स्वर का ज्ञान भी नितान्त आवश्यक है। स्वर में जरा सा व्यतिक्रम होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। स्वर-दोष से मन्त्र वज्र बनकर यजमान को मार डालता है। स्वर-दोष से ही वृत्रासुर मारा गया। इन्द्र को मारने के लिए विश्वरूप ने यज्ञ किया। मन्त्र में था "इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व।" आशय था कि 'इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर की वृद्धि हो'; परन्तु स्वर का अशुद्ध उच्चारण होने के कारण अर्थ निकला—'इन्द्र की, जो शत्रु है, वृद्धि हो।' इससे इन्द्र की विजय हुई और वृत्रासुर की पराजय। फलतः स्वर-ज्ञान भी अत्यावश्यक है। इसका प्रखर पक्षपाती एक 'स्वर-मुक्तिवादी' संप्रदाय ही है। प्रातिशाख्यों और जयन्त के 'स्वरांकुश' में स्वरों का विवेचन है। स्वर-चिह्न भी एक तरह के नहीं होते—उच्चारण-शैली भी विभिन्न प्रकार की होती है। 'पदपाठ' के ग्रन्थों में अवग्रह तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरों का, संहिताक्रम से, विस्तृत विचार किया गया है। कई 'पदपाठ' छप चुके हैं।

दैवतवाद

शक्ति और शक्तिमान् के द्वारा निखिल ब्रह्माण्ड संचरणशील है। इन्हीं को माया और मायावी, पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति आदि भी कहा जाता है। शिव के विना शक्ति निराधार हो जाती है—टिक ही नहीं सकती और शक्ति-शून्य शिव शव के समान है। यही शक्ति परा देवता कहाती है। ज्यों-ज्यों जगत् का विकास होता है, त्यों-त्यों यह परा देवता (मूल शक्ति) नाना रूपों को धारण करती जाती है। विश्व में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आदि जितनी शक्तियाँ हैं, सब इसी देवता के भेद मात्र हैं। साधारणतः देवता असंख्य हैं। किन्तु इनमें से कुछ प्रधान शक्तियों या देवताओं को, यज्ञ-संपादन के लिए, चुन लिया गया है।

देवतावाद के प्रधान वैदिक ग्रन्थ "बृहद्देवता" के प्रारंभ में ही कहा गया है—

"वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥"

अर्थात् प्रयास करके प्रत्येक मन्त्र के देवता का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; क्योंकि दैवत ज्ञान प्राप्त करनेवाला मनुष्य वेदार्थ और वेद-रहस्य समझता है।

"बृहद्देवता" का कहना है कि मुर्दे (शव) के भी आँखें रहती हैं। परन्तु वह इसलिए नहीं देख सकता कि उसका चेतनाधिष्ठान नहीं है। जब तक जड़ (नेत्र) का अधिष्ठाता चेतन रहता है, तब तक वह भली भाँति देखता है। जड़ पदार्थ में स्वयं कर्तव्य-शक्ति नहीं है; इसलिए उसका अधिष्ठाता चेतन माना गया है। इस तरह अनेक जड़ पदार्थों के अनेक अधिष्ठाता चेतन (देवता) माने गये हैं। परन्तु समुदाय-रूप से सब एक ही हैं। एक ही अग्नि के अनेक स्फुलिंगों की तरह एक ही परमात्मा की सब विभूतियाँ हैं—"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।" महाशक्ति की जो अनेक शक्तियाँ विविध रूपों में प्रस्फुटित हैं, उनके अनेक नाम हैं; इसलिए अनेक नामों से स्तुतियाँ की गई हैं। वस्तुतस्तु सभी नामों से परमात्मा की ही पुकार लगाई गई है—"तस्मात् सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते।" (सायणाचार्य)

निरुक्तकार यास्क का मत है—"देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद्वा।" (निरुक्त, दैवतकाण्ड १.५) अर्थात् 'लोकों में भ्रमण करनेवाले, प्रकाशित होनेवाले वा भोज्य आदि सारे पदार्थ देनेवाले को देवता वा देव कहते हैं।' ये तीन प्रकार के हैं—पृथिवीस्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु वा इन्द्र और द्युस्थानीय सूर्य। अनेक नामों से इन्हीं की स्तुतियाँ की गई हैं। जिस सूक्त के ऊपर जिस देवता का नाम रहता है, उसका वही प्रतिपादनीय और स्तवनीय है। ज़हाँ औषधि, जल, शाखा आदि जड़ पदार्थों को देवतावत् माना गया है, वहाँ औषधि आदि वर्णनीय हैं और उनके अधिष्ठाता देवता स्तवनीय हैं। आर्य लोग प्रत्येक जड़ पदार्थ का एक अधिष्ठाता देवता मानते थे; इसीलिए उन्होंने जड़ की स्तुति भी चेतन की तरह की है।

मीमांसाकार का मत ह कि जिस मन्त्र में जिस देवता का वर्णन है, उस मन्त्र में उसी देवताकी-सी दिव्य शक्ति सदा से निहित है। अतएव देवत्व-शक्ति मन्त्र में ही है।

ऋग्वेद (२१४.११) से ज्ञात होता है कि पृथिवी-स्थानीय ११, अन्तरिक्ष-स्थानीय ११ और द्युस्थानीय ११—सब तैंतीस देवता हैं। ९६५.२ और ११७३.४ आदि में भी ३३ देवों का उल्लेख है। तैत्तिरीय-संहिता (१.४.१०.१) में भी यही बात है। शतपथ-ब्राह्मण (४.५.७.२) में ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आकाश और पृथिवी

—ये ३३ देवता हैं। ऐतरेय-ब्राह्मण (२.२८) में ११ प्रयाजदेव, ११ अनुयाजदेव और ११ उपयाजदेव—ये ३३ देवता हैं। परन्तु ऋग्वेद के दो मन्त्रों (३७१.९ और १२९२.६) में ३३३९ देवताओं का उल्लेख है। सायणाचार्य ने लिखा है कि 'देवता तो ३३ ही हैं; परन्तु देवों की विशाल महिमा दिखाने के लिए ३३३९ देवों का उल्लेख है।'

निरुक्तकार का कहना है कि 'तत्तत्कर्मानुसार विभिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी देव एक हैं।' मतलब यह कि नियन्ता एक है और इसी मूल सत्ता के विकास सारे देव हैं। इसी बात को निरुक्तकार ने यों लिखा है—"तासां महाभाग्यात् एकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।" (निरुक्त, दैवतकाण्ड १.५) यास्क ने उदाहरण दिया है—"नरराष्ट्रमिव" अर्थात् व्यक्ति-रूप से भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य मनुष्य राष्ट्र-रूप से एक ही हैं, वैसे ही विविध रूपों में प्रकट होने पर भी देवों में एक ही परमात्मा ओत-प्रोत हैं। इस तरह भासमान भेद में अभेद और भासमान अनेकत्व में वास्तविक एकता है। इसीलिए निरुक्तकार ने लिखा है—"एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।" (निरुक्त, दैवतकाण्ड ७ म अध्याय) अर्थात् 'एक ही आत्मा (परमात्मा) के सब देवता विभिन्न भाग हैं।' इन्हीं परमात्मा को याज्ञिकों और ब्राह्मण-ग्रन्थों ने 'प्रजापति' कहा है। सभी देवता इन्हीं प्रजापति के विशिष्ट अंग माने गये हैं।

ऋग्वेद, पृष्ठ ४३४ के ५५ वें सूक्त में २२ मन्त्र हैं और सबके अन्त में "महद्देवानामसुरत्वमेकम्" वाक्य आया है, जिसका अर्थ है—'देवों का महान् बल एक ही है।' तात्पर्य यह है कि देवों की शक्ति एक ही है—दो नहीं। महाशक्ति का विकास होने के कारण देवों की शक्ति पृथक् नहीं है—स्वतन्त्र नहीं है।

ऋषियों ने जिन प्राकृत शक्तियों की स्तुति वा प्रशंसा की है, उनके स्थूल रूप की नहीं की है, प्रत्युत उनकी शासिका वा अधिष्ठात्री चेतनशक्ति की की है। इस चेतनशक्ति को वे परमात्मा से पृथक् नहीं मानते थे—परमात्मरूप ही मानते थे। उन्होंने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही अग्नि की स्तुति की है; परन्तु अग्नि को परमात्मा से स्वतन्त्र मानकर नहीं। वे स्थूल अग्नि के रूप के ज्ञाता होते हुए भी सूक्ष्म अग्नि—परमात्म-शक्ति-रूप के स्तोता और प्रशंसक थे। वे मरणशील अग्नि में व्याप्त अमरता के उपासक थे—"अपश्यमहं महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु।" (पृष्ठ १३३५, मन्त्र १) अर्थात् 'मरणशील प्रजा में मैंने अमर अग्नि की महिमा को देखा है।' इसी तरह

वे इन्द्र में भी परमात्म-शक्ति को ही देखते थे। कहा गया है—'जो इन्द्र सृष्टि-कर्ताओं के भी सृष्टिकर्ता हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ (१४२१.७)।' जितने देवता हैं, सबको वे उसी तरह परमात्मरूप समझते थे, जिस तरह एक ही सूत्र में माला की सारी मनियाँ ओत-प्रोत रहती है और केवल माला समझी जाती हैं।

वस्तुतः देवता या दिव्य शक्तियाँ चारों तरफ हैं—बाहर, भीतर, सर्वत्र। ऋषि लोग सब में—वृक्ष, शाखा, पर्ण आदि में देव ही देव देखते थे। अनुमान किया जा सकता है कि ऋषि लोग जब अपने को चारों ओर से देवों से ही घिरा हुआ अनुभव करते होंगे, तब उनका समाज कैसा आनन्दमय, स्वर्णमय और सुगन्धमय रहा होगा! क्षण भर के लिए भी यदि आप अपने को देवों से घिरा हुआ अनुभव करें तो आपके सारे दुर्गुण भाग जायँगे और आप सद्गुणों की खान हो रहेंगे। यदि आप इन देवों में ही बिचरें, सोवें, जागें, तो आपका जीवन दिव्य हो जायगा, आपके सारे कार्य सिद्ध हो जायँगे और आपका संसार देवों का नगर बन जायगा।

जो इस रहस्य को नहीं समझते, वे वेद के ऊपर तरह तरह के सन्देह-जाल बिछाते हैं। कहते हैं—'वेद में औषधियाँ वैद्यों से बातें करती हैं, द्यावापृथिवी बोलती हैं, जल और वायु, चमस और स्रुवा—सबके सब चलते, वर देते या धन देते हैं। जड़ पदार्थ ये सब कार्य कैसे करेंगे?'

वेद प्रधानतः आध्यात्मिक ग्रन्थ है; उसमें चेतनवाद की प्रधानता है। वैदिक मन्त्रों के साथ विहार करनेवाले ऋषि चेतन में रमण करते रहते हैं, चेतनगत-प्राण हैं। ऐसे पुरुष सभी पदार्थों को चेतनमय देखते हैं—वे चेतन के साथ ही खाते-पीते, सोते-जागते और बोलते-बतराते हैं। वे कुछ बनावट नहीं करते, वस्तुतः ऐसा ही अनुभव करते हैं। अभी भी यहाँ के या किसी भी देश के महात्मा ऐसा ही अनुभव करते और जड़ पदार्थों से बातें करते हैं। जो "आत्मवत्सर्वभूतेषु" को जीवन में ढाल लेते हैं, वे पशु, पक्षी, कंकण और ठीकरे से भी बातें करते हैं। भला जो वैद्य अपनी औषधियों से बातें करना नहीं जानता, वह क्या भेषज का मर्म जानेगा? जो वीर अपनी तलवार से बातें नहीं करता, वह भी कोई वीर है? सचाई तो यह है कि अपने में चेतन का जितना ही अधिक विकास होगा, मनुष्य उतना ही जड़ वस्तुओं से चेतनवत् व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमें चेतन-तत्त्व का विकास नहीं हुआ है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जड़ानुगत हैं, वह तो मनुष्य

को भी जड़ समझेगा और जड़ की ही तरह उस पर मनमाना अत्याचार करेगा। महात्माओं और जड़वादी मनुष्यों के ये कार्य प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखे-सुने जाते हैं। फलतः वेद-मन्त्रों का चेतनानुगत होना उनकी अत्युच्च अध्यात्म-भूमिका है।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि विशाल और व्यापक थी। उनकी माता पृथिवी थी, उनका पिता द्यौ था (१२२.४)। वे प्रत्येक अवसर पर सारे भुवनों का स्मरण करते थे। वे अपने व्यष्टि को समष्टि से संवलित रखते थे—साढ़े पाँच 'फीट' में ही अपने को कैद नहीं रखते थे। उनके मन विशाल थे, उनके वचन उदार थे, उनके कर्म पिण्ड-ब्रह्माण्ड-व्यापी थे। वे अपने में विश्व को देखते थे और विश्व में अपने को देखते थे। ऐसे दिव्य पुरुषों का सर्वत्र चेतन और देवता देखना स्वाभाविक ही है।

स्वार्थी, अहंकारी और विलासी व्यक्तियों से देवता दूर रहते हैं। 'तपस्वी को छोड़कर देवता दूसरे के मित्र नहीं होते' (५१०.११)। 'कुकर्म करनेवाले के भी देवता नहीं हैं' (८१०.९)। 'देवों के गुप्तचर दिन-रात विचरण करते हैं—उनकी आँखें कभी बन्द नहीं होतीं' (१२२२.८)। 'देवों के गण सब देखते हैं' (१२२१.२)। तात्पर्य यह है कि जो संयमी, तपः-पूत और सदाचारी हैं, उनको ही दैवत ज्ञान होता है, विलासी और चरित्र-भ्रष्ट को नहीं। कौन कैसा है, यह देवता जानते हैं; क्योंकि उनके गुप्तचर या जासूस सारा संसार घूम-घूमकर सब कुछ देखते रहते हैं।

देव-श्रेष्ठ इन्द्र

वैदिक संहिताओं में सर्वाधिक मन्त्र इन्द्र के संबंध में हैं। सब मिला कर प्रायः साढ़े तीन हजार मन्त्र इन्द्र के संबंध में हैं। इन मन्त्रों से इन्द्र का यथार्थ स्वरूप समझ में आ जाता है।

इन्द्रदेव आर्य-साहित्य और आर्य-देश में ही प्रख्यात नहीं हैं, अन्य साहित्य और अन्य देशों में भी यथेष्ट विख्यात हैं। रमानाथ सरस्वती का मत है कि 'वृत्रासुर असीरिया, सीरिया या शाम का प्रसिद्ध दलपति था।' पारसियों की 'अवस्ता' से ज्ञात होता है कि बेबीलोन नगर को आर्य-शून्य करने के लिए वृत्र ने अद्विशूर नाम की देवी की उपासना की; परन्तु प्रयत्न में असफल रहा। अन्त को आर्य इन्द्र ने वृत्र को मार डाला। वृत्र आर्यों का घोर शत्रु था; इसलिए उसके वध पर आर्यों ने परमानन्द का अनुभव किया। फारस के राजा

साइरस ने जिस तरह 'टाइग्रीस' नदी का प्रवाह रोककर बेबीलोन को जीता था, उसी तरह वृत्र ने भी आर्यभूमि को जीतने की ठानी थी। यह अत्यंत प्राचीन कथा है; इसलिए तथ्य-निर्णय कठिन है। तो भी 'ऋग्वेद' और 'अवस्ता' से इतना तो विदित ही हो जाता है कि 'इन्द्र-वृत्र-युद्ध हुआ था।'

ग्रीस या यूनान के 'जियस' और 'अपोलो' देवों की कथाएँ भी इन्द्र की कथा के समान हैं। मैक्समूलर का मत है कि 'वृत्र-युद्ध' की नकल पर ही होमर के 'इलियड' ग्रन्थ में ट्राय-युद्ध की कल्पना है। वेद का 'पणिगण' ट्राय-युद्ध का 'पैरिस' है।' इसी तरह इन्द्र-वृत्र-युद्ध के ऊपर अनेक प्राचीन जातियों में अनेक कल्पना-कथाएँ गढ़ डाली गई हैं।

इन्द्र-वृत्र-युद्ध की बातें ऋग्वेद के अनेकानेक मन्त्रों में हैं। संस्कृत के अनेक ग्रंथों में भी ये बातें हैं। प्राचीन परम्परा भी ऐसी ही है। परन्तु निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि कहीं 'इन्द्र का वृत्रासुर से संग्राम हुआ होगा, इसे हम अस्वीकार नहीं करते; परन्तु वेद में इन्द्र-वृत्र-युद्ध के बहाने वैज्ञानिक वर्षा का वर्णन है।' तात्पर्य यह है कि यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा (अन्योक्ति) अलंकार है। परन्तु सोलह आने में से पन्द्रह आने वेदाध्यायी सदा से, इन्द्र-वृत्र-युद्ध को वास्तविक युद्ध मानते हैं। यास्क के पहले वेदार्थ-ज्ञाता वैदिक संप्रदायों की परम्परा अक्षुण्ण थी; इसलिए वेदार्थ का तात्त्विक ज्ञान प्राप्त करने में सुगमता थी। यास्क के समय यह परपम्परा टूट गई थी; इसलिए वेदार्थ-रहस्य समझने में कठिनता और जटिलता उत्पन्न हो गयी। फलतः इस प्रसंग में अधिकांश वेद-टीकाकार यास्क से सहमत नहीं हैं।

ऋग्वेद के एक स्थल (५०० .३) पर कहा गया है कि 'इन्द्र ने अनेक सहस्र सेनाओं का बध किया।' अन्यत्र लिखा है— 'इन्द्र ने तीस हजार राक्षसों को मार डाला' (५०४ .२१)। 'इन्द्र ने वज्र द्वारा शम्बरासुर के ९९ नगरों को, एक काल में ही, विनष्ट किया था' (५७५ .६)। 'इन्द्र ने शरत् नामक असुर की सात पुरियों को विध्वस्त किया' (६९६ .१०)। इसीलिए इन्द्र को पुरन्दर कहा जाता है। 'इन्द्र तीन प्रकार (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक?) से मूर्तियाँ धारण करके प्रकट होते हैं। वे माया द्वारा अनेक रूप धारण कर यजमानों के पास आते हैं। इन्द्र के रथ में हजार घोड़े जोते जाते हैं' (७३३ .१८)। 'सेवक सुदास राजा के लिए ६६०६६ जन मारे गये थे। ये सब कार्य इन्द्र की शूरता के सूचक

हैं" (७९४.१४)। 'इन्द्र ने शम्बरासुर की ९९ नगरियों को छिन्न-भिन्न कर डाला और अपने निवास के लिए १०० वीं नगरी को अधिकृत कर लिया' (७९७.५)। 'इन्द्र ने काँपते हुए वृत्रासुर के सिर को सौ धारोंवाले वज्र से छेद डाला' (९०८.६)। कदाचित् तभी से इन्द्र का एक नाम आखण्डल (शत्रु-खण्डयिता) पड़ा।

आगे के कुछ और मन्त्र देखिए। कहा गया है—'यदि सौ द्युलोक हो जायँ, तो भी इन्द्र, तुम्हारा परिमाण नहीं कर सकते; यदि सौ पृथिवियाँ हो जायँ, तो भी तुम्हें माप नहीं सकतीं; यदि सौ सूर्य हो जायँ, तो भी तुम्हें प्रकाशित नहीं कर सकते। इस लोक में जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह सब और द्यावापृथिवी तुम्हारी सीमा नहीं कर सकते' (१०२२.५)। इस मन्त्र में ऋषि ने इन्द्र में भगवान् की दिव्य विभूति का दर्शन किया है। 'इन्द्र, तुम्हारा एकमात्र बाण सौ अग्र भागों से युक्त और सहस्र पात्रों से संयुक्त है' (१०३४.७)। 'इन्द्र ने २१ पर्वत-तटों को तोड़ा था। इन्द्र ने जो कार्य किया, उसे मनुष्य वा देवता नहीं कर सकते' (१०५५.२)। 'इन्द्र ने सोमरस का यज्ञ करके अपनी देह को पुष्ट किया है। इन्द्र, तुम मनुष्यों के समान स्पष्ट वाक्य का उच्चारण करते हो' (१२५२.१२)। 'इन्द्र ने कहा—'द्यावापृथिवी मेरे एक पार्श्व के समान भी नहीं हैं।' 'मेरी महिमा स्वर्ग और पृथिवी को लाँघती है।' 'मेरी इतनी शक्ति है कि कहो तो मैं इस पृथिवी को दूसरे स्थान पर ले जाकर रख दूँ। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।' 'इस पृथिवी को मैं जला सकता हूँ। जिस स्थान को कहो, उसे मैं विध्वस्त कर दूँ।' 'मेरा एक पार्श्व पृथिवी पर है और एक पार्श्व आकाश में है।' 'मैं महान् से भी महान् हूँ।' (१४१०.७-१२) अनेक बार यज्ञपूत सोमपान करके और ईश्वरीय शक्ति से अमोघ-वीर्यशाली होकर इन्द्र ने ऐसे उद्गार प्रकट किये हैं। 'इन्द्र ने दधीचि ऋषि की हड्डियों से वृत्र आदि असुरों को ८१० बार मारा था' (११६.१३)। 'इन्द्र ने आकाश में द्युलोक को स्थिर किया है, द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष को तेज से पूर्ण किया है और विस्तृत पृथिवी को धारण कर उसे प्रसिद्ध किया है' (३१२.२)। 'इन्द्र, तुम्हारे गर्जन करने पर स्थावर और जंगम काँप जाते हैं, त्वष्टा भी काँपते हैं" (११०.१४)। 'इन्द्र, मनुष्यों के लिए युद्ध करते हैं' (७७.५)। ५.९ में इन्द्र सौ यज्ञों के कर्त्ता कहे गये हैं। ७४.९ में कहा गया है कि 'सुश्रवा राजा के साथ बीस राजा और ६००९९ सैनिक इन्द्र से लड़ने के लिए आये थे। इन्द्र ने सबको पराजित कर दिया।' एक अन्य मन्त्र (३१७.६)

में कहा गया है—'इन्द्र, अस्सी, नब्बे अथवा सौ अश्वों के द्वारा ढोये जाकर हमारे सामने आओ।' ३४३.६ में इन्द्र के 'उच्चैःश्रवा' घोड़े का उल्लेख है। १०९.८ में उल्लेख है कि 'इन्द्र के वज्र नब्बे नदियों के ऊपर विस्तृत हुए थे।' १०९.९ में कहा गया है कि एक बार १००० मनुष्यों ने एक साथ इन्द्र की पूजा की थी।

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि आर्य ऋषि इन्द्र में परमात्मा की भव्य विभूति देखते थे। साथ ही आर्य लोग इन्द्र को देव-श्रेष्ठ और महान् शूर-वीर भी समझते थे। अध्यात्म-दृष्टि से इन्द्र परमात्मा थे, अधिदैव-दृष्टि से श्रेष्ठ देव थे और अधिभूत-दृष्टि से महान् योद्धा थे। इन्द्र-विषयक सारे विवरण पढ़ने से ये बातें मालूम पड़ती हैं। ब्राह्मणों और उपनिषदों में इन्द्र को अद्वितीय आत्मा, जीवात्मा, प्राण आदि कहा गया है। अनेक देवों के साथ भी इन्द्र का वर्णन है। वैदिक साहित्य में इन्द्र-तत्त्व एक विशिष्ट प्रतिपाद्य है।

अग्निदेव

ऐतिहासिकों के मत से हिन्दू, ग्रीक (यूनानी), रोमन, पारसी आदि जातियाँ आर्य-जाति की शाखाएँ हैं और इन सब में अग्नि की पूजा प्रचलित थी—बहुतों में अब तक है। ग्रीकों की राय से जो देवता, मनुष्य की भलाई के लिए, स्वर्ग से पहले-पहल अग्नि को चोरी करके ले आया, उसका नाम 'प्रोमेथियस' या प्रमन्थ (संस्कृत) था। उस देवता के यूनानी अनन्य उपासक थे। रोमनों में वलकन वा उल्का नाम से अग्नि-पूजा प्रचलित थी। लैटिन भाषी अग्नि को इग्निस और स्लाव लोग ओग्निस कहते थे। ईरानी वा पारसी 'अतर' नाम से अग्नि के उपासक हैं। हिन्दुओं के तो प्रसिद्ध देवता अग्नि हैं ही। निरुक्त (७.५) का मत है कि 'पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में इन्द्र (वा वायु) और द्यौ (स्वर्ग वा आकाश) में सूर्य देवता हैं।' ऋग्वेद के अँगरेजी भाषान्तरकार प्रो० बिलसन का मत है कि 'अंगिरा ऋषि और उनके वंशधरों ने भारतवर्ष में सर्वप्रथम अग्नि-पूजा का प्रचार किया।' परन्तु यह मत अनिर्णीत है।

ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही अग्नि की स्तुति है। अग्नि को पुरोहित वा अग्रगन्ता इसलिए कहा गया है कि उनके बिना यज्ञ ही नहीं हो सकता। अग्नि को देवाह्वानकारी ऋत्विक इसलिए कहा गया है कि अग्नि का जलना ही देवों के आगमन का कारण है। अग्नि को रत्नधारी इसलिए कहा गया है कि अग्नि यज्ञ-फल-रूप रत्नों वा धनों के पोषक हैं। अग्नि दीप्तमान् तो हैं ही।

पृष्ठ १३ के १३ वें सूक्त के १२ मन्त्रों में इन नामों से अग्नि की स्तुति की गई है—१. सुसमिद्ध, २. तनूनपात्, ३. नराशंस, ४. इला, ५. बर्हिः, ६. देवीद्वार ७. नक्त और उषा, ८. देवीद्वय, ९. इला, सरस्वती, मही, १०. त्वष्टा, ११. वनस्पति और १२ वें मन्त्र में स्वाहा। २१६.२ में तीन अग्नियों का उल्लेख है—जठराग्नि, विद्युदग्नि और सूर्य-किरणों में विद्यमान अग्नि। ३८२.२ (२२ वें सूक्त) में अनेक अग्नियों का उल्लेख है। द्यु-लोक में सूर्य, भू-लोक में आहवनीय, औषधि में निगूढ़ तेज, समुद्र में बड़वानल और अन्तरिक्ष में वायु-रूप अग्नि हैं।

अग्निदेव के सम्बन्ध में वैदिक संहिताओं में प्रायः ढाई हजार मन्त्र हैं। नमूने के लिए कुछ मन्त्रों का उल्लेख किया जाता है, जिससे अग्नि के स्वरूप का परिचय मिलेगा। 'अग्नि सृष्टि के पहले अव्यक्त और सृष्टि होने पर व्यक्त होते हैं। वे परम धाम (कारणात्मा) में हैं। वे आकाश पर सूर्य-रूप से उत्पन्न हैं। वे यज्ञ के पहले अवस्थित थे। वे बृषभ और गाय—स्त्री-पुरुष—दोनों हैं' (१२१६.७)। यहाँ अग्नि के सर्वव्यापी रूप का दिग्दर्शन कराया गया है। 'काष्ठ-मन्थन से उत्पन्न अग्नि, यज्ञ में देवों को बुलाओ (१३.३)। एक मन्त्र (१३३.२) में दसों अँगुलियाँ इकट्ठी करके अनवरत काष्ठ-घर्षण से अग्नि की उत्पत्ति बताई गई है। १४४४.५ में अश्विनी-कुमारों के द्वारा अरणि-मन्थन से अग्नि का उत्पन्न होना कहा गया है। ६८६.३९ में कहा गया है कि 'अग्नि ने त्रिपुरासुर के तीनों पुरों को भग्न किया है।' ३६.१ में अंगिरा लोगों का प्रथम ऋषि अग्नि को कहा गया है। ३७.११ में अग्नि को अंगिरा ऋषि का पुत्र बताया गया है। यहीं यह भी कहा गया है कि 'देवों ने पुरुरवा राजा के पौत्र मानवरूपधारी नहुष का अग्नि को मनुष्य-शरीरवान् सेनापति बनाया था।'

इन दोनों मन्त्रों के बल पर अनेक लोग अग्नि को प्रथम ऋषि मानते हैं और अग्नि को ही ऋग्वेद का प्रथम स्मरण-कर्त्ता भी बताते हैं। बहुत लोग अंगिरा का अर्थ आग का अंगारा करते हैं और यह बात नहीं मानते। कितने ही लोग यह कहते हैं कि 'यज्ञ-मण्डप में अग्नि को प्रथम रखा जाता है; इसलिए उन्हें प्रथम ऋषि कह दिया।' जो हो; परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि ऋषि लोग जड़ाग्नि के अधिष्ठाता चेतनाग्नि को मानते थे; इसलिए देव-रूप से अग्नि की स्तुति की गई है। इन्द्र की ही तरह अग्नि के भी तीन रूप कहे गये हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

इन्द्र और अग्नि के मन्त्रों में उपमाएँ बहुत आई हैं। इन दोनों

देवों के मन्त्रों में विशेषणों की भरमार है। इन गुण-बोधक विशेषणों से इनके रूप समझने में यथेष्ट सहायता मिलती है। इनके मन्त्रों में पुनरुक्तियाँ भी बहुत हैं। कदाचित् जटिल सन्दर्भों को बोधगम्य और सुगम बनाने के लिए वा विषयों को दृढ़ करने के लिए पुनरुक्तियाँ की गई हैं।

सोम

इन्द्र और अग्नि के अनन्तर सोम के बारे में वैदिक संहिताओं में जितने मन्त्र हैं, उतने किसी भी देवता के सम्बन्ध में नहीं हैं। वैदिक संहिताओं का दशमांश सोम की स्तुति और प्रशंसा से परिपूर्ण है। आर्य लोग सोम के अतीव अनुरागी थे। आर्यों का सबसे प्रिय पदार्थ सोमरस था। कहते हैं, अत्युपकारी होने से जैसे अग्नि के लिए सब कुछ कह दिया गया है, वैसे ही उपकारक होने से सोम, सोमलता और सोम-रस की भी बड़ी महिमा कही गई है।

कहा गया है—'ब्राह्मण लोग जिसे प्रकृत सोम कहते हैं, उसका पान कोई यज्ञ-रहित मनुष्य नहीं कर सकता।' 'पार्थिव मनुष्य सोम-पान नहीं कर सकता।' (१३४१.४-५) 'सोम, तुम्हें पीकर अमर होंगे। पश्चात् प्रकाशमान स्वर्ग में जायँगे और देवों को जानेंगे' (१००२.३)। 'शोधित, मधुर, यज्ञोपयोगी, क्षरणशील, स्वादिष्ट, रसधारा-संघ, अन्नदाता, धन-प्रापक और आयु के दाता सोम प्रवहमान हैं' (१२०६.११)। 'दिन में सोम हरित-वर्ण और रात में सरलगामी और प्रकाशमान दिखाई देते हैं' (११८०.९)। 'सोम अनेक धाराओं से युक्त और सुन्दर गन्ध से सम्पन्न हैं' (११८२.१९)।' 'हरित-वर्ण सोम मेषलोम के छनने में संचा-लित होते हैं' (११७२.१)। 'व्रतादि से जिनका शरीर तपाया हुआ नहीं है या जो यज्ञ-शून्य हैं, वे सोम को धारण नहीं कर सकते' (११५७.१)। 'सोम मदकर, स्वादुतम, रसात्मक, अरुणवर्ण और सुखकारी हैं' (११५३.४)। 'सोम यज्ञ की नाभि हैं' (११४९.४)। 'सोम जल, दधि और दुग्ध से मिश्रित हैं' (११४३.८)। 'हाथों से कठिनता से रगड़े जाकर सोम पात्र में स्थित होते हैं' (१०९६.६)। 'सोम को दस अँगुलियाँ मलती हैं' (११२०.७)। 'दस अँगुलियाँ सोम को मेषलोममय दशापवित्र पर प्रेरित करती हैं' (११७१.१)। 'सोम लोहे से पिसे जाकर और ३२ सेरवाले कलश से युक्त होकर अभिस्रवण-स्थान में बैठते हैं' (१०८०.२)। 'श्रोताओ, तुम लोग पिंगलवर्ण, स्वबल—स्वरूप, अरुण-वर्ण और स्वर्ग को छूनेवाले सोम के लिए शीघ्र गाथा का उच्चारण

करो' (१०८९.४)। 'सोम पर्वत से उत्पन्न और मद के लिए अभिषुत हैं' (११२२.४)। 'कुरुक्षेत्रस्थ शर्यणावत् तड़ाग में स्थित सोम को इन्द्र पियें' (१२०८.१)। 'पवमान सोम, पत्थरों से कूटे जाकर कलश की ओर जाओ' (११३६.३)। 'सोम ऊपर चढ़नेवाली लताओं (ओषधियों) को फल-युक्ता करके स्वादिष्ट करते हैं' (११३९.२)। 'सोम, तुम्हारा परम अंश द्युलोक में है। वहाँ से तुम्हारे अंश पृथिवी के उन्नत प्रदेश (पर्वत) पर गिरे और वृक्ष हो गये। पत्थरों से कूटे जाकर तुम्हें मेधावी लोग हाथों से गोचर्म पर जल में दूहते हैं' (११५४.४)। 'सोम के शोधक मेषचर्म और गोचर्म हैं'' (११४३.७)। सोम में जौ का सत्तू भी मिलाया जाता था (१११८.२, ११३९.४, १०४६.२ और १०४७.४)।

वस्तुतः सोम सबसे मूल्यवान् और शक्तिशाली जड़ी अथवा ओषधि था। वह आरोग्य, आनन्द, आयु, वीर्य, प्रतिभा, मेधा आदि प्रदान करनेवाला था। इसीलिए लाक्षणिक रूप से उसका देववत् महत्त्व कहा गया है।

सोमयाग करने के पहले सोमवल्ली खरीदने की विधि है। अध्वर्यु, यजमान आदि खरीदते थे। सोम बेचना एक व्यापार था। ३६ अंगुल लम्बे और १८ अंगुल चौड़े अभिषवण-फलक पर बिछाये कृष्णाजिन पर इसे रखकर और अभिमन्त्रित जल (वसतीवरी) से बीच-बीच में सींचकर चार पत्थरों के यन्त्र से इसे कूटा जाता था। अनन्तर इसे आहवनीय पात्र में डालकर उसमें जल छोड़ते थे और वल्ली को मल-मलकर पानी में मिला देते थे। तलछट बाहर निकाल देते थे। इसे दशापवित्र (मेषलोम-मय) वस्त्र के द्वारा छानते थे। वस्त्र में नीचे छेद कर और उसमें ऊन का धागा डालकर इस तरह बाँधते थे कि सोमरस की धार छनती हुई नीचे गिर जाया करे। देवता के प्रीत्यर्थ पहले इससे हवन करते थे। बचे हुए भाग को 'सदोमण्डप' में होम करनेवाले, वषट्कार कहनेवाले उद्गाता, यजमान, ब्रह्मा, सहलक आदि १८ ऋत्विक् और कुछ सदस्य तथा ३३ देवता पीते थे।

इसमें दूध, दही, घृत, मधु, जल, जौ का सत्तू, सुवर्ण-रज आदि, देवभेद से, मिलाकर देवार्पण करने की विधि है। इक्कीस गायों का दूध मिलाने की भी विधि है।

रमानाथ सरस्वती का मत है कि 'मोटी जड़ के काठ के मूसल से सोमलता कूटी जाती थी। अनन्तर दो भाण्डों की तरह अभिषव-पात्रों में रखी जाती थी। यजमान-पत्नी रस्सी से मथानी पकड़कर सोम-मन्थन करती थी। सोमरस तैयार होते ही इन्द्र को दिया जाता था। बचा

हुआ चलनी से छानकर दो चमस-पात्रों में रखा जाता था। अनन्तर वह गोचर्म वा मेषचर्म के पात्र पर रखा जाता था।' इस वर्णन का आभास पृष्ठ ३२ के २८ वें सूक्त के ९ मन्त्रों में है।

सोमरस में ओज, तेज, वर्चस्व, सुगन्ध, स्वाद, मधुरता आदि तो थे ही; मादकता भी थी। विभिन्न वस्तुओं की मिलावट के अनुसार इसके आशिर, गवाशिर, यवाशिर आदि नाम भी रखे गये हैं।

सोमलता हरी होती थी। इसके पत्ते लाल, पीले, साँवले आदि भी होते थे। तरह-तरह के वर्णन पाये जाते हैं। सुश्रुत-संहिता (२९ अध्याय, २१-२२ श्लोकों) में लिखा है, 'शुक्लपक्ष में जैसे चन्द्रमा एक-एक कला बढ़ते-बढ़ते पूर्णता को प्राप्त होते हैं, वैसे ही सोम भी शुक्लपक्ष में एक-एक पत्ता बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा को १५ पत्तों से युक्त हो जाता है। कृष्णपक्ष में प्रतिदिन क्रमशः एक-एक पत्ता गिरता जाता है और जैसे अमावास्या को चन्द्रमा लुप्त हो जाते हैं, वैसे ही सोम के सारे पत्ते भी अमावास्या को लुप्त हो जाते हैं।' इन गुणों की समानता के कारण ही सोम को चन्द्रमा कहा गया है।

सुश्रुत में यह भी लिखा है कि सोमरस के लिए सुवर्ण-पात्र चाहिए। इसमें सोम के २४ प्रकार कहे गये हैं। इसे कन्द कहकर केले के कन्द की तरह इसका वर्णन भी किया गया है। सोमलता को 'पानी पर तैरनेवाली, वृक्षों पर लटकनेवाली और भूमि पर उगनेवाली' कहा गया है। धर्म-द्रोही, ब्राह्मण-द्वेषी और कृतघ्न के लिए इसे 'अलभ्य' बताया गया है।

मूजमान् (हिमालयस्थ पर्वत), शर्यणावान् (तड़ाग वा झील), व्यास नदी, सिन्धु, सुषोमा (सोहान नदी) आदि इसके उद्गम-स्थान बताये गये हैं।

पाश्चात्त्य वेदाध्यायियों और उनके अनुयायियों के सोमलता के सम्बन्ध में विविध मत हैं। राजेन्द्रलाल मित्र इसे 'वनस्पति' मानते हैं। जुलियस एर्गलिंग और ए० बी० कीथ इसे एक प्रकार की 'सुरा' बताते हैं। रागोजिन दैवी 'सुरासव' कहते हैं। इसी तरह वाट साहब 'अफगानी अंगूरों का रस', राइस 'ईख का रस', मैक्समूलर 'आँवले का रस' और हिलेब्रान्त मधु' कहते हैं! परन्तु ये सारे मत निराधार हैं; क्योंकि इनमें से किसी में भी सोमलता की वर्णित गुण-बोधकता वा गुणानुरूपता नहीं है।

ऐतरेय-ब्राह्मण की अनुक्रमणिका में मार्टिन हाग ने लिखा है कि मैंने सोमरस तैयार कराकर पान किया था।' पता नहीं, हाग साहब को

कहाँ सोमलता मिल गई ! कहीं-कहीं हिमालय की तराई में 'गुड़ूच' के रस को ही सोमरस कहकर बेचा जाता है !

इस समय सोमलता कहीं भी नहीं पायी जाती; इसलिए आजकल यज्ञों में इसके अनुकल्प 'पूतिक-तृण' वा 'फाल्गुन' नाम की वनस्पति का प्रयोग किया जाता है। आश्वलायनश्रौत-सूत्र के अनुसार यही अनुकल्प है।

कलकत्ते के बेलगछिया नामक स्थान में एक बार "बनियालाल बाबाजी" नामक एक संन्यासी ने एक ऐसी लता दिखाई थी, जो परीक्षार्थ लन्दन भेजी गई थी। परीक्षा करके हुटिनविड कम्पनी ने इसे सोमलता बताया था। ऐसी किंवदन्ती है।

पूना के पास होनेवाली 'राशनेर' वनस्पति को भी बहुत लोग सोमलता बताते हैं; परन्तु उसमें सोमलता का कोई भी लक्षण नहीं है।

बंगाक्षर में चारों वेदों की चार संहिताएँ छापनेवाले पं० दुर्गादास लाहिड़ी ने सोमलता को विशुद्ध बुद्धि और सोमरस को निष्कलंक ज्ञान बताया है। आध्यात्मिक अर्थ तो ऐसा हो सकता है; परन्तु कर्मकाण्डादि दृष्टियों से यह अर्थ उपयुक्त नहीं है।

ईरानी लोग सोम को 'हउमा' कहते थे। वे इसका कच्चा ही पान करते थे। थियासोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका मैडम ब्लावस्की की राय है कि 'वेद का सोम ही बाइबिल का ज्ञानवृक्ष' (Tree of Knowledge) है। यह भी कल्पना की एक उड़ान है !

वस्तुतः श्रौत-सूत्रों के समय (प्रायः ४ हजार वर्ष पहले) ही यह अद्भुत पदार्थ अप्राप्त हो गया था; इसीलिए सूत्रों में इसके अनुकल्प की विधि लिखी गई है।

वेद-मन्त्रों से ज्ञात होता है कि रणांगण में जाते समय भी आर्य सोमरस पीते थे। पीते ही पीते उनमें उमंग, तरंग और प्रतिभा प्रस्फुटित हो जाती थी। स्फूर्त्ति और वक्तृत्व-शक्ति बढ़ जाती थी। पान करनेवाला उच्च भावों और अपूर्व आनन्द में डूब जाता था। बुद्धि-वृद्धि करना तो इसका विशेष गुण था ही। यह वृद्ध को तारुण्य प्रदान करता था—असीम बल बढ़ा देता था। शरीर को रोग-रहित कर देता था। जानवरों को भी सोम पिलाया जाता था। सोमरस पीनेवाली गायों के दूध में सोम का आंशिक गुण आ जाता था। ये ही सब कारण हैं कि देव और मनुष्य—सबकी इसमें चूड़ान्त आसक्ति थी।

सोम के सम्बन्ध में अनेकानेक आलंकारिक कथाएँ भी वैदिक साहित्य में हैं। उनको यहाँ लिखना अनावश्यक है। परन्तु महान् आश्चर्य तो

यह है कि इतनी महत्त्वपूर्ण ओषधि कैसे अलभ्य हो गई? वैदिक संहि-ताओं का दशमांश जिसकी गुण-गरिमा और महिमा से परिपूर्ण है, वह अनमोल वस्तु जगतीतल से कैसे उठ गई? सुश्रुत में कहे २४ प्रकार के सोम की प्राप्ति की सम्भावना हिमालय आदि में बतायी जाती है। क्या कुछ साहसी पुरुष इसकी खोज के लिए चेष्टा नहीं कर सकते? यदि यह वस्तु उपलब्ध हो गई, तो संसार में युगान्तर उपस्थित हो जायगा।

इन्द्र और अग्नि की तरह ही सोम के मन्त्रों में भी बड़ी उपमाएँ और पुनरुक्तियाँ हैं। कदाचित् विषय को सुबोध्य और सर्व-ग्राह्य बनाने के लिए ये पुनरुक्तियाँ की गई हैं।

अश्विनीकुमारद्वय

इन्द्र, अग्नि और सोम के अनन्तर अश्विनीकुमारों के सम्बन्ध में ऋग्वेद में बहुत मन्त्र हैं। ये कौन थे? इसके उत्तर में भी बहुत माथा-पच्ची की गई है। मैक्समूलर के मत से ये आलोक और अन्धकार हैं। गोल्डस्टकर के मत से ये प्रसिद्ध मनुष्य थे। इन्हीं की तरह ग्रीस में कैस्टर और पोलक देवता हैं। जिस तरह त्वष्टा की कन्या सरण्यू ने अश्व-रूप धारण कर अश्विद्वय को जन्म दिया, उसी तरह ग्रीक देवी एरिनिज डिमेटर (Erinys Demeter) ने घोड़ी का रूप धारण कर अरियेन और डिस्पोना को जन्म दिया था।

पुराणों में ये यमज और मन तथा शरीर के रक्षक देवता भी बताये गये हैं। निरुक्त का मत पहले ही लिखा गया है। ऋग्वेद में दस्र और नासत्य नामों से भी इनका विवरण है। १२३३.२ से ज्ञात होता है कि 'त्वष्टा की कन्या सरण्यू से इनका जन्म हुआ।' ये महान् प्रतिभाशाली थे और दोनों भाई व्याधि और विपत्ति के भी देवता थे। ये नामी शिल्पी और चिकित्सक भी थे। 'अश्विद्वय की नौका ऐसी थी, जिसमें जल नहीं जा सकता था।' 'ये सौ डाँड़ोंवाली नौका में भुज्यु को बैठाकर समुद्र से राजा तुग्र के पास ले आये थे।' (१६६-६७ .३ और ५) एक मन्त्र (२७६.५) में कहा गया है कि 'अश्विद्वय, तुमने पंखोंवाली (पक्ष-विशिष्ट) नौका बनाई थी। तुमने नौका द्वारा महासमुद्र से तुग्र-पुत्र भुज्यु का उद्धार किया था।'

ये महान् वैद्यराज तो थे ही। कहा गया है—'वृद्ध कलि नामक स्तोता को अश्विद्वय, तुमने यौवन से युक्त किया था। तुम लोगों ने लँगड़ी

विश्पला को लोहे का चरण देकर उसे गति-समर्थ बना दिया था' (१२७१.८)। विश्पला खेल ऋषि की पत्नी थी। यही बात १५८.१० और १६८.१५ में भी है। इस १५ वें मन्त्र में कहा गया है कि 'युद्ध में विश्पला का एक पैर कट गया था।' उसे लौह-जंघा देकर फिर अश्विद्वय ने युद्ध-क्षेत्र में जाने में समर्थ किया था। यह असाधारण स्त्री युद्ध-क्षेत्र में जाने में समर्थ थी। परन्तु साधारणतः स्त्रियों के लिए युद्ध-क्षेत्र निषिद्ध था। १६८.१४ में कहा गया है कि अश्विद्वय ने 'नपुंसक-पति का वध्रि-मती को हिरण्यहस्त नाम का पुत्र दिया था।' यहीं १६ वें मन्त्र में वृषा-गिर के पुत्र अन्धे ऋजाश्व को नेत्र देने की बात भी लिखी है। १२४६.११ में अन्धे दीर्घतमा को नेत्र और लँगड़े परावृज को पैर देने की बात कही गई है। १६८.१० में च्यवन ऋषि का बुढ़ापा दूर कर उन्हें तरुण बनाने का उल्लेख है। यही बात ६४३.५ में भी है।

वायुदेव

यास्क का मत (निरुक्त ७.५) है कि वायु आर्यों के अत्यन्त प्राचीन देवता हैं। ईरानियों में भी वायु-पूजा प्रचलित है। ग्रीक और रोमन पान (Pan) (संस्कृत पवन) नाम से वायु की पूजा करते थे।

ऋग्वेद के एक स्थान (५७८.८) पर कहा गया है—'मरुतों के प्रभाव से द्यावा-पृथिवी चक्र की तरह घूमने लगी थीं।' २०.३ और ४ में वायु को जल-वृष्टि का कारण बताया गया है। यहीं ७वें मन्त्र में वायु को मेघ-माला का संचालक और जल-राशि को समुद्र में गिरानेवाला कहा गया है। ९०.३ में कहा गया है—'रुद्र के पुत्र मरुत् जरा-रहित और तरुण हैं और जो देवों को हव्य नहीं देते, उनके नाशक हैं।' ६१५.१७ में लिखा है—'सप्त-सप्त-संख्यक (४९) मरुद्गण एक-एक होकर हमें शतसंख्यक गौ, अश्व आदि दें। इनके द्वारा प्रदत्त समूहात्मक धन को हम यमुना-तीर में प्राप्त करें।' यहाँ तो विश्व-विख्यात ४९ पवनों का ही उल्लेख है; परन्तु १०५६.८ में ६३ मरुतों के द्वारा इन्द्र का संवर्द्धन लिखा हुआ है। मनुस्मृति (१.२३) में तो स्पष्ट लिखा है कि 'ब्रह्मा ने वायु के द्वारा यजुर्वेद प्राप्त किया।' अनेकों के मत से वायु वेद-स्मारक ऋषि थे। उनके मत से अग्नि और सूर्य भी प्राथमिक ऋषि थे, जिनके द्वारा क्रमशः ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए। मनु जी के उक्त श्लोक से यह बात समर्थित की जाती है। इसी तरह चौथे 'प्राथमिक ऋषि' अंगिरा माने जाते हैं, जिनके द्वारा अथर्ववेद प्रकट हुआ। परन्तु यह सब केवल मतान्तर है, जो विवादास्पद है।

ऋभुगण

विलसन ने ऋभुगण का अर्थ सूर्य-किरण किया है और मैक्समूलर ने सूर्य। मैक्समूलर की राय से बृबु नामक ऋत्विक् ने सर्व-प्रथम ऋभुओं को पूजा था। ग्रीस में ग्रीकों के आरफेअस (orpheus) की कथा भी ऋभुओं के समान ही प्रचलित है। ऋभु का एक नाम अर्भुर भी है। सायणाचार्य के मत से ऋभु लोग पहले मनुष्य थे—तपोबल से देवता हो गये थे।

अंगिरा ऋषि के वंश में सुधन्वा थे, जिनके ऋभु, विभु और वाज नाम के तीन पुत्र थे। यह कथा अवश्य है कि उन्होंने कर्मबल से देवत्व प्राप्त कर सूर्यलोक में वास किया था। सायण ने ऋभुओं का अर्थ 'सूर्य-किरण' भी किया है। ऋभुओं की देवत्व-प्राप्ति का संकेत १५४.१-४ मन्त्रों में है।

ऋभुगण प्रसिद्ध कलाकार थे। 'उन्होंने अश्विद्वय के लिए सर्वत्र-गन्ता रथ का निर्माण किया था।' 'ऋभुओं ने अपने माँ-बाप को तरुण बना दिया था।' 'ऋभुगण मानव-जन्म ले चुकने पर भी अविनाशी आयु (देवायु) प्राप्त किये हुए हैं।' (२१.३-४ और ८) ये अद्भुत चिकित्सक भी थे। 'इन्होंने मृत गौ के चमड़े से धेनु उत्पन्न की। एक अश्व से अन्य अश्व उत्पन्न किया' (२३९.७)। 'इन्होंने चमड़े से गौ को ढक दिया था और उस गौ के साथ बछड़े का फिर योग कर दिया था तथा माँ-बाप को युवा बना दिया था' (१५५.८)। ऋग्वेद में ऋभुओं के सम्बन्ध में अनेक सूक्त हैं।

मित्रावरुण

मन्त्रों में मित्र और वरुण देवों का साथ-साथ उल्लेख किया गया है। मित्र प्राचीनतम देव है। ईरानी लोग मिथ्र नाम से मित्र की पूजा करते है। वरुण तो अत्यन्त प्रसिद्ध देवता हैं। ईरानी वरण नाम से वरुण की पूजा करते हैं। ग्रीक तो वरुण वा उरानोस (uranos) को सब देवताओं का पिता मानते हैं। अलेक्ज़ेंडर वोन की राय से वरुण पहले आकाश-देव थे; पीछे समुद्र-देव हुए। राथ के मत से वरुण समुद्र-देव ही हैं। वेस्टगार्ड की भी यही सम्मति है। ऋग्वेद में वरुण समुद्रदेव हैं। मित्रावरुण की अपूर्व शक्तियों का विवरण अनेक मन्त्रों में है।

उषा

स्वर्गपुत्री उषा के ग्रीकों में इओस, दहना, एथेना आदि कई नाम हैं। लैटिन भाषाभाषी उन्हें मिनर्वा कहते हैं। राजेन्द्रलाल मित्र की राय है कि 'ऋग्वेद में उषा के जो अर्जुनि, ब्रिसया, दहना, उषा, सरमा, सरण्यू आदि नाम हैं, वे सब नाम Argynoris, Briseis, Daphne, Eos, hebn और Erinys नामों से ग्रीकों में भी हैं। ग्रीकों में यह बात प्रसिद्ध है कि Apollo या सूर्य ने Daphne या दहना का अनुधावन किया था। उषा का एक वैदिक नाम अहना भी है, जिसे ग्रीकों में सुबुद्धि-देवी-रूप से Athena नाम दिया गया है।'

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ग्रीकों, रोमनों और ईरानियों के देवी या देवता वैदिक देवताओं की नकल पर बने हैं। उषा के सम्बन्ध में ऋग्वेद में अनेकानेक चमत्कार-पूर्ण और कवित्वमय मन्त्र हैं, जो कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

पूषा

सायणाचार्य ने पूषा का अर्थ 'जगत्पोषक पृथिव्यभिमानी देव' किया है। उन्होंने पूषा को 'मेघ-पुत्र' भी माना है। इसका कारण उन्होंने बताया है कि 'जल से पृथिवी उत्पन्न हुई है और मेघ जल धारण करता है; इसलिए जल-पुत्र ही मेघ-पुत्र या पृथिव्यभिमानी देव है।' परन्तु यास्क ने निरुक्त में पूषा का अर्थ सूर्य किया है। पुराण भी यही अर्थ बताते हैं। प्रसिद्ध वेद-विज्ञाता पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने 'अल्पतेजा' सूर्य को पूषा वा पूषन् लिखा है। पाश्चात्त्य वेदालोचकों ने भी सूर्य को ही पूषा माना है। वेदार्थयत्न ने लिखा है—'मेघ से ही सूर्य-प्रकाश आता है; इसलिए पूषा को मेघपुत्र कहा गया है।'

ऋग्वेद में कहा गया है—'प्रकाशमान पूषन्, कृपण को दान देने के लिए प्रेरित करो और उसके हृदय को कोमल करो।' 'सूक्ष्म लौहाग्र-दण्ड (आरा) से पणियों के हृदय को विद्ध करो।' 'पणि वा चोर के हृदय में सद्भावना भरो।' (७४७.३ और ५-६) ७४८.२ में पूषा को रथि-श्रेष्ठ, कपर्दी (चूड़ावान्) और अतुल ऐश्वर्य का अधिपति बताया गया है। ऋग्वेद में पूषा के सम्बन्ध में अनेक दिव्य और भव्य मन्त्र हैं।

डा० वसन्त जी० रेले ने 'दि वेदिक गाड्स' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है—'ऋषियों ने बाह्य विश्व का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने जब शरीर-विज्ञान पर

विचार करना प्रारम्भ किया, तब उन्होंने अपनी पूर्व-परिचित दैवत संज्ञाओं का व्यवहार, आलंकारिक दृष्टि से, शरीर-विज्ञान पर भी किया। इसलिए दैवत संज्ञाएँ (देवता-नाम) द्व्यर्थक और नानार्थक हैं।' रेले का सिद्धान्त है—'वैदिक देवता प्रायः ज्ञान-तन्तु-संस्थान के विविध भाग हैं।' इन्होंने इस पुस्तक में त्वष्टा, ऋभु, सविता, अश्विद्वय, मरुत्, पर्जन्य, उषा, विष्णु, रुद्र, पूषा, सूर्य, अग्नि, इन्द्र, अदिति, बृहस्पति सोम मित्रावरुण और आप् आदि प्रसिद्ध देवताओं के सम्बन्ध में विचार किया है। डा० रेले का दावा है कि 'सम्पूर्ण वैदिक देवता और उनके कार्य हमारे मस्तिष्क-संस्थान के विभिन्न कार्यों के द्योतक हैं।' रेले की यह भी प्रतिज्ञा है कि 'वैदिक ऋषियों ने बहुत सी ऐसी बातों का पता लगा लिया था, जो वर्त्तमान समय में आधुनिक विज्ञान की सहायता से पुनः जानी जा सकती हैं—बहुत सी ऐसी बातों का भी उन्हें ज्ञान था, जिनका ज्ञान वर्त्तमान युग में अभी हमें प्राप्त करना है।'

वेद के बहुत से शब्द द्व्यर्थक और नानार्थक तो हैं; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता सारे देवता-नामों को श्लेषालंकार का जामा पहनाया गया है। वेद-कर्त्ता वा वेद-स्मर्त्ता का एक सिद्धान्त था, एक प्रतिपाद्य था। सीधे-सादे ऋषि नानार्थक या द्व्यर्थक का जाल फैलाकर अपना प्रतिपाद्य उलझन में डालनेवाले नहीं थे। दूसरी बात यह है कि रेले ने ब्राह्मण, निरुक्त, प्रातिशाख्य तथा वैदिक सम्प्रदायों की परम्परा की चिन्ता नहीं की है। उनका अर्थ केवल काल्पनिक है और उन चतुर्वेद स्वामी की दृष्टि का अनुधावन करनेवाला है, जिन्होंने वेद के एक ही मन्त्र से पूतना-वध, गोवर्द्धन-धारण और कंस-वध आदि मनमाने अर्थ निकाले हैं! देवों का रहस्य बतानेवाले 'बृहद्देवता', 'निरुक्त', 'निरुक्त-वार्त्तिक' आदि अनेक वैदिक ग्रन्थ हैं।

यमराज और पितृ-लोक

विवस्वान् के द्वारा सरण्यू के गर्भ से यम और वरुण की उत्पत्ति हुई है। ईरानी धर्म-पुस्तक 'अवस्ता' में यम को मित्र कहा गया है। वहाँ मित्र को प्रथम राजा और सभ्यता का उत्पादक माना गया है। सुकृती पुरुष ही मित्र का और मित्र के साथ अहुरमज्द का साक्षात्कार प्राप्त करते हैं। जैसे वेद में यम के पिता विवस्वान् हैं, वैसे ही 'अवस्ता' में विवन्वत् हैं। जिस तरह ऋग्वेद की यमपुरी में पुण्यात्मा निवास करते हैं, उसी प्रकार 'अवस्ता' की यमपुरी में भी। फारसी के

प्रसिद्ध कवि फिरदौसी ने अपने 'शाहनामा' में मित्र को 'यमशिद' लिखा है। यमशिद नामी सम्राट् थे।

ऋग्वेद (१२२१.४) में यम के पिता आदित्य और माता सरण्यू कथित हैं। यम को सत्यवादी भी कहा गया है। आगे कहा गया है—'यम के पास ही सारा मानव-समुदाय जाता है।' 'जिस पथ से हमारे पूर्वज गये हैं, उसी से अपने कर्मानुसार सारे जीव जायँगे।' (१२२७.१-२) 'जहाँ हमारे पितामहादि गये हैं, उसी प्राचीन मार्ग से हे मृत पितः, जाओ। स्वधा से प्रसन्न यमराज और वरुणदेव को देखो।' 'उत्कृष्ट स्वर्ग में अपने पितरों से मिलो। साथ ही अपने धर्मानुष्ठान के फल से भी मिलो।' 'श्मशान-घाट के पिशाचादिको, यहाँ से हटो, दूर जाओ।' 'लम्बी नाकोंवाले दूसरों का प्राण-भक्षण करके तृप्त होनेवाले, मनुष्य को लक्ष्य करके विचरण करनेवाले महाबली जो दो यमदूत (कुक्कुर) हैं, वे आज यहाँ हमें सूर्य-दर्शन के लिए समीचीन प्राण दें।' (१२२८.७-९ और १२) 'ऋत्विको, राजा यम के लिए अत्यन्त मिष्ट हवि का हवन करो।' 'यमराज त्रिककुद् (ज्योति, गौ और आयु नामक) यज्ञ के अधिकारी हैं। यम द्युलोक, भूलोक, जल, उद्भिज्ज, उर्क तथा सूनृत नाम के ६ स्थानों में रहते हैं और संसार में विचरण करते हैं।' (१२२९.१५-१६) 'उत्तम, मध्यम, अधम आदि तीन श्रेणियों के पितरों का और पितरों के द्वारा यज्ञ-मण्डप में कुशों पर बैठकर हव्य के साथ सोमरस के ग्रहण करने' का भी उल्लेख है (१२२९.१ और ३)। 'पितरो, तुम लोग दक्षिण तरफ घुटने टेककर पृथिवी पर बैठते हुए यज्ञ की प्रशंसा करो। हम मनुष्य हैं; इसलिए हमसे अपराध होना संभव है। इसके लिए हमारी हिंसा नहीं करना।' 'पितर हवन करना जानते थे और अनेक ऋचाओं की रचना करके स्तोत्र प्रस्तुत करते थे तथा अपने कर्म-प्रभाव से देवत्व प्राप्त करते थे।' 'साधु-स्वभाव पितर देवों के साथ हवि भक्षण करते थे और इन्द्र के साथ रथ पर चढ़ते थे।' (१२३०.५ और ९-१०) 'जो पितर जलाये गये हैं और जो नहीं जलाये गये हैं, वे सब स्वर्ग में स्वधा के साथ आनन्द करते हैं' (१२३१.१४)। दो मन्त्रों में पितृयान का भी उल्लेख है (१२३५.१-२)। १३५४.१५ में देवयान और पितृ-यान, दोनों का उल्लेख है।

पाठक देखें कि पुराणों में जो यमराज, यमदूत, पितर, पितृ-यान आदि का उल्लेख है, उससे ऋग्वेद के एतद्विषयक विवरण से आश्चर्य-जनक साम्य है। पुराणों में ही नहीं, संस्कृत-साहित्य के किसी भी ग्रन्थ के एतद्विषयक विवरण से इस विवरण का अपूर्व समन्वय है। ऊपर

के एक मन्त्र से यह भी पता चलता है कि कुछ लोग जलाये जाते थे और कुछ लोग नहीं। ये दोनों बातें भी पुराणों में हैं। अवश्य ही पुराणों की भाषा और विषय प्रफुल्लित रूप में हैं।

सूर्यदेव

अदिति देवी के पुत्र आदित्य (सूर्य) माने गये हैं। आदित्य छः हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश (२२९.१)। १२१०.३ में सात तरह के सूर्य बताये गये हैं। १३३६.८-९ में कहा गया है कि 'अदिति के आठ पुत्र थे—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य। इनमें से सात को लेकर अदिति देवी चली गईं और आठवें सूर्य को आकाश में छोड़ दिया।' 'तैत्तिरीय-ब्राह्मण' में आदित्य के स्थान पर इन्द्र का नाम है। 'शतपथ-ब्राह्मण' में १२ आदित्यों का उल्लेख है। महाभारत (आदिपर्व, १२१ अध्याय) में इन १२ आदित्यों के नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। अदिति का यौगिक अर्थ अखण्ड है। यास्क ने अदिति को देवमाता माना है।

कहा जाता है कि वस्तुतः सूर्य एक ही हैं, कर्म, काल और परिस्थिति के अनुसार सूर्य के विविध नाम रखे गये हैं।

पृष्ठ ४५ के ३५ वें सूक्त में ११ मन्त्र हैं और सबके सब सूर्य-वर्णन से पूर्ण हैं। सूर्य का अन्तरिक्ष में भ्रमण, प्रातः से सायं तक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्य के कारण चन्द्रमा की स्थिति, किरणों से रोगादि की निवृत्ति सूर्य के द्वारा भूलोक और द्युलोक का प्रकाशन आदि बातें एक ही सूक्त से विदित होती हैं। ८ वें मन्त्र में कहा गया है—'सूर्य ने आठों दिशाएँ (चार दिशाएँ और चार उनके कोने) प्रकाशित किये हैं। उन्होंने प्राणियों के तीनों संसार और सप्त सिन्धु भी प्रकाशित किये हैं। सोने की आँखोंवाले सविता यजमान को द्रव्य देकर यहाँ आवें।'

६७.८ में लिखा है—'सूर्य, हरित नाम के सात घोड़े (किरणें) रथ से तुम्हें ले जाते हैं। किरणें वा ज्योति ही तुम्हारा केश है।' ३४५.२ में कहा गया है—'सूर्य के एक चक्र रथ में सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही अश्व (किरण) सात नामों से रथ ढोता है।' इससे विदित होता है कि ऋषि को सूर्य-रश्मि के सात भेदों और उनके एकत्व का भी ज्ञान था।

१८६.८ में कहा गया है—'उषा सूर्य से ३० योजन आगे रहती

है।' इस पर आचार्य सायण ने लिखा है—'सूर्य प्रति दिन ५०५९ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य प्रत्येक दण्ड में ७९ योजन घूमते हैं। उषा सूर्य से ३० योजन पूर्वगामिनी है; इसलिए सूर्योदय से प्रायः आधा घंटा पहले उषा का उदय मानना चाहिए।' पाश्चात्त्यों के मत से सूर्य बीस हजार मील प्रति दिन चलते हैं। परन्तु सूर्य की गति अपने कक्ष में ही होती है।

इन दो मन्त्रों में सूर्य-संबंधी अनेक ज्ञातव्य विषय हैं—'सत्यात्मक सूर्य का, बारह अरों, खूंटों वा राशियों से युक्त, चक्र स्वर्ग के चारों ओर बार-बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नहीं होता। अग्नि, इस चक्र में पुत्र-स्वरूप होकर सात सौ बीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं।' अगले मन्त्र में दक्षिणायन (पूर्वार्द्ध) और उत्तरायण (अन्यार्ध) का भी कथन है (२४७.११-१२)। ७१४.५ में भी दक्षिणायन का विषय है। २५२.४८ में भी ३६० दिनों की बात है।

२३३.६ में काल के ये ९४ अंश बताये गये हैं—संवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिर को एक मानने पर), बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियाँ।

५९२.५-९ में सूर्य-ग्रहण का पूर्ण विवरण है।

८४७.११ में सूर्य (मित्र, वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास, दिन और रात्रि का बनाया जाना लिखा है। २८.८ में १२ मासों की बात तो है ही, तेरहवें महीने का भी उल्लेख है। यह तेरहवाँ महीना मलमास वा मलिम्लुच है। ३५०.३ में भी मलमास का उल्लेख है।

पृथिवी की चारों ओर सूर्य की गति से जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमें बारह 'अमावास्याओं' की गणना करने से कई दिन कम हो जाते हैं। इसलिए सौर और चान्द्र वर्षों में सामंजस्य करने के लिए चान्द्र वर्ष के प्रति तीसरे वर्ष में एक अधिक मास, मलमास वा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य में दोनों (सौर और चान्द्र) वर्ष माने गये हैं और दोनों का समन्वय भी किया गया है।

१४४४.४ में कहा गया है, 'अजर और ज्योतिर्दाता सूर्य सदा चलते रहते हैं।' १४६४-६५.१-३ मन्त्रों में सूर्य की गतिशीलता और तीस मुहूर्तों का उल्लेख है। ९२६.३० में इन्द्र द्वारा सूर्य के आकाश में स्थापन के साथ ही सारे संसार के नियमन की बात लिखी है। १४३९.१ में कहा गया है कि 'सूर्य ने अपने यन्त्रों से पृथिवी को सुस्थिर रखा है। उन्होंने बिना अवलम्बन के द्युलोक को दृढ़ रूप से बाँध रखा है।'

इन उद्धरणों से विदित होता है कि भ्रमणशील सूर्य ने अपनी आकर्षण-शक्ति से पृथ्वी, ग्रहोपग्रहों के साथ आकाश वा स्वर्ग (द्यौ) और सारे सौर मण्डल को बाँधकर नियमित कर रखा है। इससे स्पष्ट ही विदित होता है कि आर्यों को सूर्य की आकर्षण-शक्ति और खगोल का ज्ञान था। अगले मन्त्र से भी इस मत का समर्थन होता है—'इस गतिशील चन्द्रमण्डल में जो अन्तर्हित तेज है, वह आदित्य-किरण ही है' (११६.१५)। इस मन्त्र पर सायण ने निरुक्त (२.६) उद्धृत किया है—"अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।" अर्थात् 'सूर्य की एक किरण चन्द्रमा को प्रदीप्त करती है। सूर्य से ही उसमें प्रकाश जाता है।'

वैज्ञानिकों के मत से सूर्य की किरणें अनेक रोगों को विनष्ट करती हैं। ऋग्वेद के तीन मन्त्रों (६७-८.११-१३) से वैज्ञानिकों के इस मत का समर्थन मिलता है—'सूर्य, उदित होकर और उन्नत आकाश में चढ़कर हमारा मानस (हृदयस्थ) रोग और पीतवर्ण रोग वा शरीर-रोग विनष्ट करो। मैं अपने हरिमाण वा शरीर-रोग को शुक-सारिका पक्षियों पर न्यस्त करता हूँ। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोग के विनाश के लिए समस्त तेज के साथ उदित हुए हैं।' इससे पता चलता है कि सूर्योपासना से सारे शारीरिक और मानसिक रोग विनष्ट हो जाते हैं। सूर्योपासकों के लिए ये तीन मन्त्र मुख्य हैं। प्रत्येक सूर्योपासक, अपनी आधि-व्याधि की शान्ति के लिए, इन मन्त्रों को जपता है। सूर्य-नमस्कार के साथ भी इन मन्त्रों का जप किया जाता है। सायण के मत से इन्हीं मन्त्रों का जप करने से प्रस्कण्व ऋषि का चर्म-रोग विनष्ट हुआ था।

ऋग्वेद में खगोलवर्त्ती सप्तर्षि, ग्रह, तारा, उल्का आदि का भी उल्लेख है। कहा गया है—'ये जो सप्तर्षि नक्षत्र हैं, जो आकाश में संस्थापित हैं और रात होने पर दिखाई देते हैं, वे दिन में कहाँ चले जाते हैं?' (२७.१) मन्त्र के मूल में 'ऋक्षाः' शब्द है, जिसका अर्थ सायण ने 'सप्त तारा' किया है। ऋच् धातु से ऋक्ष शब्द बना है, जिसका अर्थ उज्ज्वल है। इसी लिए नक्षत्रों का नाम उज्ज्वल पड़ा और सप्तर्षियों का नाम उज्ज्वल भालू हुआ। पाश्चात्य भी इन्हें Great Bear कहते हैं। अन्यान्य मन्त्रों में भी सप्तर्षियों का उल्लेख है।

७७.६ में इन्द्र के द्वारा ताराओं को निरावरण करना लिखा है। १३१३.४ में ग्रहों, नक्षत्रों और पृथिवी को देवों के द्वारा यथास्थान

नियमित करने की बात है। १३१९.४ में कहा गया है—'मानो आकाश से सूर्य उल्का को फेंक रहे हैं।' १४०३.७ में १४ भुवनों का उल्लेख है।

इन मन्त्रों से ज्ञात होता है कि आर्य खगोल-विद्या के ज्ञाता थे। वैदिक साहित्य के अन्यान्य ग्रन्थों में इसका विस्तार है। ऋग्वेद में प्रत्येक विषय सूक्ष्मतम सूत्र में वर्णित है। अतः बड़ी सावधानी से प्रत्येक विषय का अध्ययन और अन्वेषण करना चाहिए।

परमात्मा

परमात्मा के सम्बन्ध में, कई स्थानों में, सूत्र-रूप से विवृति दी गई है। कहा गया है—'महाप्रलय-दशा में मृत्यु, अमरता, रात या दिन कुछ नहीं था, केवल परमात्मा थे।' 'अविद्यमान वस्तु के द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न था।' 'सर्वप्रथम परमात्मा के मन में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न हुई।' फिर 'भोक्ता और भोग्य उत्पन्न हुए।' (१४२१—२२. २—५) ये उक्तियाँ उस विश्व-विख्यात 'नासदीय सूक्त' की हैं, जिसे लो० बाल गंगाधर तिलक ने 'मानव-जाति का सर्वश्रेष्ठ चिन्तन' कहा है। इसमें सात मंत्र हैं, जो कण्ठाग्र करने योग्य हैं।

'दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) मित्रता के साथ एक शरीर में रहते हैं। जीवात्मा भोक्ता है और परमात्मा द्रष्टा हैं' (२४८.२०)। 'ईश्वर प्रजा के स्रष्टा और पृथिवी के धारणकर्त्ता हैं' (१२५७.८)। 'परमात्मा एक हैं; परन्तु क्रान्तदर्शी विद्वान् उनकी अनेक प्रकार से कल्पना करते हैं' (१४०३.५)। 'सर्वप्रथम केवल परमात्मा थे। वे सबके अद्वितीय अधीश्वर थे। उन्होंने पृथिवी और आकाश को यथास्थान स्थापित किया' (१४१२.१)। 'परमात्मा से सब देव उत्पन्न हुए।' (४९९.१)। 'ईश्वर अनन्त सिरों, नेत्रों और चरणोंवाले हैं। वे ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के बाहर भी व्याप्त होकर अवस्थित हैं।' 'जो कुछ है और जो कुछ होनेवाला है, सो सब ईश्वर हैं।' 'यह सारा ब्रह्माण्ड उनकी महिमा है—वे तो स्वयं अपनी महिमा से भी बड़े हैं। उनका एक पैर (अंश) ही ब्रह्माण्ड है। उनके अविनाशी तीन पैर दिव्य लोक में हैं।' (१३५८.१—३) समाधि-दशा में ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान की अनुभूति में ऋषि कहते हैं—'संसार में जो तृण खानेवाले हैं, वह हम ही हैं। जो अन्न और यव खानेवाले हैं, वह हम ही हैं। विस्तृत हृदयाकाश में जो अन्तर्यामी ब्रह्म हैं, वह हम ही हैं' (१२४८.९)।

परमात्म-तत्त्व के सम्बन्ध में इस तरह की अनेक उक्तियाँ ऋग्वेद में पाई जाती हैं। इन्हीं के आधार पर ईश्वर-विषयक विस्तृत विवेचन

संस्कृत-साहित्य में किया गया है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त', 'पुरुष-सूक्त', 'हिरण्यगर्भ-सूक्त' और 'अस्य वामीय' सूक्त के सम्बन्ध में तो बड़े-बड़े पोथे रच डाले गये हैं और अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा विशुद्धाद्वैतवाद को लेकर अनल्प कल्पनाएँ की गई हैं। ये सब सूक्त बार-बार मनन और निदिध्यासन के योग्य हैं। इनके बार-बार स्वाध्याय से अध्यात्म-शास्त्र के सारे सन्देह निवृत्त हो सकते हैं।

जो लोग केवल यौगिक अर्थ के पक्षपाती हैं, उनके लिए तो समस्त वैदिक संहिताओं में परमात्मा ओत-प्रोत और अनुस्यूत हैं।

अवतार और मूर्त्तिपूजा

विष्णु के वामनावतार की कथा का अंकुर ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। २२.१७ में कहा गया है—'विष्णु ने इस जगत् की परिक्रमा की। उन्होंने तीन प्रकार से अपने पैर रखे और उनके धूलियुक्त पैर से जगत् छिप-सा गया।' आगे चलकर कहा गया है—'विष्णु ने वामनावतार में तीनों लोकों को नापा था। उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था।' 'विष्णु के तीन पाद-क्षेप में सारा संसार रहता है।' 'विष्णु ने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण लोक-त्रय को तीन बार के पद-क्रमण द्वारा मापा था।' (२३१.१–३) 'त्रिविक्रमावतार में विष्णु ने एक ही पैर से सम्पूर्ण जगत् को आक्रान्त किया था।' (४२२.१४)। 'विष्णु ने अपने तीन पैरों से तीनों लोगों को वामनावतार में नापा था।' (९२६.२७)।

ऋग्वेद के ऐतरेय-ब्राह्मण (६.१५) में इस सन्दर्भ का कुछ विस्तार है—'देवों और असुरों के बीच जब संसार का बँटवारा होने लगा, तब इन्द्र ने कहा—अपने तीन पैरों (तीन बार पाद-क्षेप) से विष्णु जितना माप सकें, उतना संसार देवों का होगा और शेष असुरों का होगा।' इस निर्णय से असुर भी सहमत हो गये। पश्चात् विष्णु ने पाद-परिक्रम से जगत् को व्याप्त कर लिया।' यजुर्वेद के शतपथब्राह्मण (१.२.५) में उल्लेख है—'असुरों ने कहा कि वामन-रूप विष्णु के शयन करने पर जितना स्थान आवृत होगा, उतना देवों का, शेष असुरों का। इसका अनुमोदन देवों ने किया। विष्णु ने सारे संसार को आवृत कर उसे देवों को दिला दिया।'

पुराणों में यही कथा विस्तृत रूप में आई है। इसी लिए पुराणों को भी लोग वेद-भाष्य कहते हैं। इसी प्रकार दधीचि, पृथवान्, वेन,

राम, नहुष, उर्वशी, पुरुरवा, यदु, मनु, मान्धाता, पृथुश्रवा, सुदास, च्यवन आदि की कथाओं का अंकुर वेद में पाया जाता है और इन सबका विशद व्याख्यान महाभारत, वाल्मीकीय रामायण और पुराणों में उपलब्ध है। इसी से कहा गया है—

"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥"

अर्थात् इतिहास और पुराण के द्वारा वेदार्थ का विस्तार करना चाहिए। वेद अल्पश्रुत व्यक्ति से डरता है कि 'यह मुझे मारेगा।'

सचमुच ऐसे ही अल्पश्रुत और अर्द्ध-पक्व व्यक्ति इन दिनों हिन्दू-संस्कृति और आर्य-सभ्यता की आधार-शिला (वैदिक वाङ्मय) पर प्रहार पर प्रहार कर रहे हैं। इतिहास और पुराण के ज्ञान से शून्य व्यक्तियों का परम्परागत वेदार्थ समझना कठिन है।

ऋग्वेद में मूर्त्ति-पूजा का भी अंकुर पाया जाता है। ऋग्वेद से विदित होता है कि पहले दारुमयी या काठ की मूर्त्तियाँ बनती थीं। काठ शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। यही कारण है कि इन दिनों प्राचीनतम मूर्त्तियाँ नहीं पायी जातीं और अल्पश्रुत व्यक्ति मूर्त्तिपूजा के मूल पर ही कुठाराघात करते हैं। ऋग्वेद (५०८.२३) से स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि काष्ठ की मूर्त्तियाँ बनती थीं। इससे यह भी पता चलता है कि ये मूर्त्तियाँ सेव्य थीं। इसी मंत्र में मूर्त्ति-पूजा का अंकुर है, जिसका विस्तार पुराणादि में किया गया है।

आत्मा और पुनर्जन्म

परलोक वा देवयान और पितृयान का विवरण जिन सूक्तों में है, उन्हीं में आत्मा और पुनर्जन्म का भी कथन है। अन्यत्र भी है। १२३२.३ में कहा गया है—'व्यक्ति का एक अंश (आत्मा) जन्म-रहित और शाश्वत है।' २४८.२० में जीवात्मा को कर्मफल-भोक्ता बताया गया है।

१२३५.२ में 'इस जन्म और पूर्व जन्म के पापों से शून्य होकर पवित्र बनने की बात है।' १४५८ पृष्ठ के तीनों मन्त्रों में जीवात्मा और जन्मान्तर का विवरण है—'मानस चक्षु से विद्वानों ने देखा कि जीवात्मा को माया आक्रान्त कर चुकी है। पंडितों ने कहा कि यह समुद्र (परमात्मा) में घटित हो रहा है। विद्वान् (ज्ञानी) परमात्मा की किरणों (ज्योति) में जाने की इच्छा करते हैं।' 'पतंग (जीवात्मा) को गर्भ में ही गन्धर्वों वा देवों ने वाक्य सिखाया। वह दिव्य, स्वर्ग-सुखदाता और बुद्धि का

अधीश्वर है। सत्य मार्ग में विद्वान् उस वाणी की रक्षा करते हैं।' तात्पर्य यह है कि गर्भावस्था में ही जीवात्मा को देवों वा ईश्वरीय शक्ति के द्वारा बीज-रूप से शब्द प्राप्त हो जाते हैं। 'शब्दकी शक्ति असीम होती है। उसे बुद्धिमान् लोग मिथ्या की ओर नहीं ले जाते।' तीसरे मन्त्र का अर्थ है—'जीवात्मा का कभी पतन वा विनाश नहीं होता। वह कभी समीप और कभी दूर, नाना मार्गों (योनियों) में, भ्रमण करता है। वह कभी अनेक वस्त्र पहनता (अनेक गुण धारण करता) है और कभी (नीच योनियों) में पृथक्-पृथक् (दो-एक अल्प गुण) पहनता (धारण करता) है। इस प्रकार संसार में वह बार-बार आता-जाता है।'

आत्मा और पुनर्जन्म के रहस्य का विस्तृत विवेचन दर्शनशास्त्र और पुराणादि में किया गया है। आत्मा के सम्बन्ध में तो संस्कृत-साहित्य के अनेकानेक पाण्डित्य-पूर्ण ग्रन्थों में विशद विवेचन किया गया है। पुनर्जन्म का विज्ञान आर्य-शास्त्रों की विशिष्ट संस्कृति है। क्रिश्चियानिटी, इस्लाम आदि धर्म पुनर्जन्म के विवेचन और विज्ञान से दूर भाग कर पुनर्जन्म को ही अस्वीकृत कर डालते हैं। किन्तु बौद्ध, जैन आदि इस विज्ञान को शिरसा अंगीकृत करते हैं।

यज्ञ-रहस्य

जैन-बौद्धों में अहिंसा, ईसाइयों में दया, सिक्खों में भक्ति और इस्लाम में नमाज का जो महत्त्व है, वही वा उससे भी बढ़कर वैदिक धर्म में यज्ञ का है। वेद-धर्म का प्रधान अंग यज्ञ है। वस्तुतः किसी भी धर्म का, किसी भी राष्ट्र का, किसी भी समाज का और किसी भी व्यक्ति का क्रियात्मक रूप ही उसका प्राण है। क्रियात्मक रूप के अभाव में कोई भी धर्म, राष्ट्र, समाज वा व्यक्ति निःसत्त्व, निष्प्राण और जड़ीभूत शव है।

इसी लिए ऋग्वेद (१३५९.८—१०) में कहा गया है, 'यज्ञ से ही वेद, छंद, गौ और चतुष्पद उत्पन्न हुए।' 'ध्यान-यज्ञ से देवों ने यज्ञ-पुरुष की पूजा की। यज्ञ ही प्रथम वा मुख्य धर्म है' (१३५९.१६)। 'तपस्वियों ने यज्ञ-पुरुष को हृदय में प्रबुद्ध किया' (१३५८.६—७)। 'यज्ञ सत्यरूप और सत्यात्मा हैं' (११४८.८—९)। 'देवों ने ज्योति, आयु, और गौ के लिए ज्ञान-साधक यज्ञ का विस्तार किया था' (१०४९.२१)।

अथर्ववेद की घोषणा है—"अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।" अर्थात् 'विश्व की उत्पत्ति का स्थान यह यज्ञ है।' 'सभी कर्मों में श्रेष्ठ कर्म यज्ञ है' (शतपथब्राह्मण १.७.४.५)। शतपथ यज्ञ को ईश्वरीय बताता

है—"प्रजापतिर्वै यज्ञः", 'विष्णुर्वै यज्ञः।" यज्ञ को सूर्य के समान तेजस्वी कहा गया है—"स यज्ञोऽसौ स आदित्यः" (शतपथब्राह्मण १४.१.१.६६। 'यज्ञ करनेवाला सारे पापों से छूट जाता है' (शतपथब्राह्मण २.३.१.६)। ऐतरेयब्राह्मण (१.४.३) का मत है, 'यज्ञ और मंत्रों के उच्चारण से वायुमण्डल में परिवर्तन हो जाता है और निखिल विश्व में धर्म-चक्र चलने लगता है।' ब्राह्मण-ग्रंथों में यज्ञ को विश्व का नियामक भी कहा गया है।

वस्तुतः यज्ञ में मंत्र-पाठ से चित्त शान्त और मन सबल होता है। यज्ञाग्नि में दी गयी हवि वायु के सहारे सूर्य की ओर जाकर समस्त अन्तरिक्ष में व्याप्त होती है। सूर्य के प्रभाव से मेघ-मण्डल के साथ धूम-मिश्रित हवि के मिल जाने पर वर्षा होती है। वर्षा से अन्न उत्पन्न होता और अन्न से प्रजा की रक्षा होती है। हवि से पार्थिव पदार्थ, वायु और सूर्य-रश्मि आदि भी शुद्ध होते हैं। हवि से देवता तृप्त होकर मानव-समाज का कल्याण करते हैं। यज्ञ में देव-पूजन के कारण याज्ञिक को देवत्व की प्राप्ति होती है। 'यज्ञ के कर्म-फल से स्वर्ग की प्राप्ति होती है' (२२.६)। जैमिनीय मीमांसा के मत से यज्ञ से ही मुक्ति मिलती है।

जैसे सूर्य के द्वारा संसार की दुर्गन्ध दूर होती है और जल पवित्र होता है, वैसे ही यज्ञ के द्वारा भी दुर्गन्ध दूर होती और जल पवित्र होता है। यज्ञ के द्वारा विशुद्ध वर्षा-जल अन्य जल को और अन्न को शुद्ध करता है। शुद्ध अन्न-जल से ही शरीर स्वस्थ और मन पवित्र रहता है। इसी लिए कहा गया है—"वृष्टि-कामो यजेत" (वर्षा चाहनेवाला यज्ञ करे)।

अन्यान्य लाभों के अतिरिक्त यज्ञों के कारण विविध कलाओं की उत्पत्ति भी हुई। यज्ञ-सम्पादन के लिए सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति का निरीक्षण करते-करते ज्यौतिष-विद्या की उत्पत्ति हुई। यज्ञों में विशुद्ध मन्त्रोच्चारण के विचार से आर्य लोग जिन नियमों की समीक्षा करते थे, उनसे दैव-विद्या, ब्रह्म-विद्या और व्याकरण-शास्त्र का जन्म हुआ। यज्ञ-सम्पादन के लिए जो चिति, यज्ञ-वेदी, रेखा आदि का निर्माण किया जाता था, उसके नियमों से संसार में ज्यामिति-शास्त्र का आविष्कार हुआ। दो अश्र (Squares), चार अश्र (Triangle), द्रोणकार (Through) वाली वेदियों और चितियों के निर्माण ने रेखागणित-शास्त्र का आविष्कार कर दिया। कल्पसूत्रों के शुल्ब-सूत्रों में इसका विस्तृत विवरण पाया जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने यज्ञ की परम्परा-प्राप्त

व्याख्या की है और यज्ञ-रहस्य का सुन्दर विवेचन किया है। यज्ञ का अर्थ यजन, पूजन, समादर, परोपकार-व्रत, लोकल्याण, अदृष्ट-फलोत्पादकता आदि को तो माना ही गया है, यज्ञ के भेदोभेद तथा प्रविरूढ़ रहस्य का भी गीता ने विवरण दिया है। पहले ही गीता का उद्‌घोष है:— "यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।" अर्थात् 'यज्ञ के लिए जो कर्म किये जाते हैं, उनके अतिरिक्त, अन्य कर्मों से यह लोक बँधा हुआ है।' तात्पर्य यह है कि यज्ञ-कर्म मुक्ति देनेवाले हैं और अन्य कर्म बन्धन डालनेवाले हैं। आगे कहा गया है—"नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।" अर्थात् 'यज्ञ न करनेवाले को जब कि इस लोक में ही कोई सफलता नहीं मिलती, तब उसे परलोक कहाँ से मिलेगा?'

भगवद्‌गीता के ६ श्लोकों (३.१०–१५) में भगवान् कृष्ण ने यज्ञ की व्याख्या इस प्रकार की है—'यज्ञ के साथ प्रजा को उत्पन्न करके प्रजापति ब्रह्मा ने प्रजा से कहा—'यज्ञ के द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो। यह तुम्हें इच्छित फल दे।' तुम यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करते रहो और वे देवता तुम्हें सन्तुष्ट करते रहें। इस तरह परस्पर सन्तुष्ट करते हुए दोनों परम कल्याण प्राप्त करो। यज्ञ से सन्तुष्ट होकर देवता तुम्हें इच्छित भोग देंगे। उन्हीं का दिया हुआ उन्हें वापस न देकर जो केवल स्वयं उपभोग करता है, वह सचमुच चोर है। यज्ञ करके बचे हुए भाग को ग्रहण करनेवाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु यज्ञ न करके केवल अपने ही लिए जो अन्न पकाते हैं, वे पाप भक्षण करते हैं। प्राणियों की उत्पत्ति अन्न से होती है, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से उत्पन्न होती है और कर्म से यज्ञ की उत्पत्ति होती है। कर्म की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है और प्रकृति परमेश्वर से उत्पन्न हुई है। इसलिए सर्व-व्यापक ब्रह्म सदा यज्ञ में विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार जगत् की रक्षा के लिए चलाये हुए यज्ञ-चक्र को जो आगे नहीं चलाता, उसकी आयु पाप-रूप है। देवों को न देकर स्वयं उपभोग करनेवाले मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।'

इन श्लोकार्थों से ज्ञात होता है कि यज्ञ करना और देवों को सन्तुष्ट करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है, यज्ञ न करनेवाला चोर और पापी है, यज्ञ से ही परम्परया जीवों की उत्पत्ति और उनकी प्राण-रक्षा होती है, यज्ञ में साक्षात् परमात्मा विराजते हैं और यज्ञ न करनेवाले का जीवन ही वृथा है।

यज्ञ करना भगवान् की सेवा करना है। भगवान् ने स्पष्ट कहा है—'श्रद्धा के साथ अन्य देवों के भक्त बनकर जो लोग यजन (यज्ञ)

करते हैं, वे भी मेरा ही यजन करते हैं; क्योंकि मैं ही सारे यज्ञीय पदार्थों का भोक्ता और स्वामी हूं।' (गीता ९.२३–२४)।

१७वें अध्याय (११–१३ श्लोकों) में श्रीकृष्ण ने सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञों के लक्षण भी बताये हैं। कहा गया है—'फलाशा छोड़कर और कर्त्तव्य समझकर, शास्त्रीय विधि के अनुसार, शान्त चित्त से, जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है। फल की इच्छा से और ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने के लिए जो यज्ञ किया जाता है, वह राजस है। शास्त्र-विधि-रहित, अन्नदान-विहीन, विना मन्त्रों का, विना दक्षिणा का, श्रद्धा-शून्य यज्ञ तामस यज्ञ है।' चतुर्थ अध्याय के २४वें श्लोक में भगवान् ने कहा है—'यज्ञ-साधक ब्रह्म को पाता है।' इसी अध्याय के २३वें श्लोक में कहा गया है—'यज्ञ के लिए कर्म करनेवाले के सारे (भव-)बन्धन छूट जाते हैं।'

इसी स्थल पर भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मयज्ञ, संयम-यज्ञ, योग-यज्ञ, द्रव्य-यज्ञ, स्वाध्याय-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ आदि कितने ही यज्ञों को बताया है और यह भी कहा है कि इन सारे यज्ञों का उल्लेख वेद में है। श्रीकृष्ण ने अन्त में यह भी कहा है कि 'यज्ञ से मुक्ति प्राप्त होती है।' यहीं (४.३२) गांधी जी ने भी अपने "अनासक्ति-योग" में लिखा है—'यज्ञ के विना मोक्ष नहीं होता।' यज्ञ से ही मीमांसा भी मोक्ष मानती है। यह बात पहले भी कही गई है।

ऋग्वेद (१०५८.३) में व्रत-रहित (अयाज्ञिक) की कुत्सा की गयी है। १२४१.८ में यज्ञ-शून्य को दस्यु (चोर) और आसुरी प्रकृति का बताया गया है। ९४७.१४ में तो इतनी दूर तक कहा गया है कि 'अयाज्ञिक इतना बुद्धि-भ्रष्ट होता है कि वह सुरा वा मद्य पीकर पागल हो जाता है।' याज्ञिक ब्राह्मणों की प्रशंसा की गयी है (८८४–८५.१ और ७–८)। १९०.१ में कहा गया है कि भावयव्य के पुत्र राजा स्वनय ने १ हजार सोमयज्ञ किये थे। २६५.१ में सोम-यज्ञ में उद्गाता के द्वारा सामवेद के 'आकाशव्यापी गान' की बात कही गयी है। १२०७.२ में कहा गया है कि 'दूर देश से साम-ध्वनि सुनाई देती है।' वस्तुत: यज्ञ में मन्त्र-गान की मेघ-मन्द्र-ध्वनि मन:प्राणों को आनन्द-रस में आप्लुत कर देती है।

यज्ञ के भेद, विधि, सामग्री, ऋत्विक्-भेद आदि आदि जानने के लिए विविध ब्राह्मण-ग्रन्थ, विभिन्न श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और आपस्तम्ब ऋषि का "यज्ञपरिभाषासूत्र" आदि देखने चाहिए। स्थानाभाव से यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सका।

समुद्र और नदियाँ

पहले ही कहा गया है कि आर्य लोग अपनी चारों दिशाओं के चार समुद्रों में व्यापार-वाणिज्य करते थे (७८.२, ११०४.६ और १२८५.२)। 'समुद्र में विशालकाय नौकाएँ चलती थीं' (६२.८, ६४.३, २८.७, ५२४.५ आदि)। समुद्र के मध्य से राजा तुग्र के पुत्र भुज्यु के उद्धार की बात भी पहले ही लिखी गयी है (१५७.६)। एक मन्त्र (८६९.३) में कहा गया है—'जिस समय में (वसिष्ठ) और वरुण, दोनों नौका पर चढ़े थे, जिस समय समुद्र के बीच में नौका को हमने भली भाँति संचालित किया था और जिस समय जल के ऊपर नाव पर हम थे, उस समय शोभा के लिए नौका-रूपी झूले पर हमने सुख से क्रीड़ा की थी।' इस प्रकार समुद्र आर्यों के क्रीड़ा-स्थल थे। समुद्र के मध्य द्वीप में, निर्जन प्रदेश में, भी आर्यों की अबाध गति थी (१२२१.१)।

१४२९.४—५ में लिखा है—'मुनि लोग आकाश में उड़ सकते और सारे पदार्थों को देख सकते हैं' तथा 'मुनि लोग पूर्व और पश्चिम के दोनों समुद्रों में निवास करते हैं।' यहाँ दो समुद्रों का उल्लेख है। इसके पहले के १ और २ मन्त्रों में कहा गया है कि 'मुनि लोग पीले वल्कल पहनते और देवत्व प्राप्त करके वायु की गति के अनुगामी हैं' तथा 'सारे लौकिक व्यवहारों के विसर्जन से हम (मुनि लोग) परमहंस हो गये हैं। हम वायु के ऊपर चढ़ गये हैं।' इन मंत्रों से पता चलता है कि मुनि लोग महान् त्यागी और तपस्वी होते थे, वे वल्कल पहनते थे, वे वायु-पथ-गामी और आकाशचारी होते थे तथा समुद्रों में भी निवास करते थे। तात्पर्य यह है कि वे देवत्व प्राप्त करके जल, स्थल, वायु और आकाश में स्वतन्त्र विहरण करते थे—उनकी सबमें अप्रतिहत गति थी।

अश्विनीकुमारों की समुद्रगामिनी नौकाएँ पंखोंवाली और सौ डाँड़ोंवाली थीं (२७६.५ और १६७.५), यह पहले भी लिखा जा चुका है। अन्य अनेक स्थानों में भी समुद्रों और नौकाओं का उल्लेख है।

१३३०.५—६ मन्त्रों में इन नदियों के नाम आये हैं—गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), मरुद्वृधा (मरुवर्दवन), वितस्ता (झेलम), सुषोमा (सोहान), आर्जीकीया (व्यास), सिन्धु, सुसर्त्तु (स्वात्), रसा (रहा), श्वेत्या (अर्जुनी), तृष्टामा, मेहत्नू, क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमल) और कुभा (काबुल)। तृष्टामा, सुसर्त्तु, रसा, श्वेत्या और मेहत्नू सिन्धु नदी की पश्चिमी सहायक नदियाँ हैं। अश्मन्वती, अंशुमती, अंजसी, अनितभा,

आपया, कुलिशी, जह्नावी, दृषद्वती, यव्यावती, विपाश, विवाली, शिफा, सरयू, हरियूपीया आदि अन्यान्य नदियों के नाम भी ऋग्वेद में पाये जाते हैं। इस ग्रन्थ की विषय-सूची में और इस ग्रन्थ में इन नदियों के अतिरिक्त ऋग्वेद की अन्य नदियों का भी विवरण मिलेगा।

सिन्धु नदी का सर्वाधिक वर्णन मिलता है। समुद्र और नदी के अर्थ में भी सिन्धु शब्द आया है। ईरानी या पारसी सिन्धु को हिन्दू कहते थे। ईरानी स को ह और ध को द कहते थे। कहा जाता है कि इसी लिए सिन्धु के पार रहनेवाले हिन्दू कहलाये और इस देश का नाम हिन्दुस्थान पड़ा। अमेरिकी तो इस देश की रहनेवाली हर एक जाति को हिन्दू कहते हैं। ग्रीक या यूनानी सिन्धु को 'इन्दस्' कहते थे। इसी इन्दस् वा इंडस् से इंडिया और इंडियन शब्द बने हैं।

सिन्धु-तट पर अच्छे घोड़े होते थे; इस लिए घोड़े का नाम सैन्धव भी है। सिन्धु को समुद्र भी कहा जाता है और समुद्र में नमक होता है; इसलिए नमक का भी एक नाम सैन्धव (सेंधा नमक) पड़ गया।

ऋग्वेद में सरस्वती का भी ललित विवरण पाया जाता है। 'बृहद्देवता' (२५ अध्याय, १३५–३६ श्लोकों) में नदी और देवी—दोनों अर्थों में सरस्वती का उल्लेख है शौनक के मत से ६ मन्त्रों में ही सरस्वती नदी मानी गयी है। परन्तु ऋग्वेद के ३५ मन्त्रों में सरस्वती का उल्लेख मिलता है। इसके तट पर अनेक यज्ञ और युद्ध हुए थे। मैक्समूलर की राय से इसके तट पर अनेक मन्त्र रचे गये थे। इसमें सन्देह नहीं कि आर्य लोग गंगा से भी बढ़कर सरस्वती को मानते थे। ऋग्वेद में गंगा का उल्लेख दो ही बार है।

सरस्वती का उत्पत्ति-स्थान मीरपुर पर्वत माना गया है। अनेकों के मत से कुरुक्षेत्र के पास सरस्वती बहती थी और वह पटियाला राज्य में विलुप्त हो चुकी है। बहुतों की राय में सरस्वती बीकानेर की मरुभूमि में लुप्त हुई है। परन्तु पुराणों के अनुसार सरस्वती पृथिवी के भीतर ही भीतर आकर प्रयाग में गंगा और यमुना के साथ मिल गयी है। इन्हीं तीनों का नाम त्रिवेणी है।

१८१.१३ में लिखा है कि 'इन्द्र नौका द्वारा नब्बे नदियों के पार गये थे।' २८९.१३ में निनानबे (९९) नदियों के नामों का कीर्त्तन किया गया है। परन्तु ऋग्वेद में तो ९० वा ९९ नदियों के नाम अलभ्य हैं। क्या मन्त्रों के समान इन नदियों के नाम भी लुप्त हो गये?

देश वा विदेश ?

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर कीकट, कुरु, गन्धार, चेदि, पारावत आदि अन्तर्देशों के नाम आये हैं। परन्तु कुछ ऐसे देशों के भी नाम आये हैं, जिनके सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये नाम अन्तर्देशों के हैं या विदेशों के!

१०९२.२ में 'पाँच देशों के परस्पर मित्र मनुष्यों' की बात कही गयी है। पता नहीं, ये पाँचों देश कहाँ और कौन थे! ७३४.२१ में 'दासों के निवास उदव्रज' देश का नाम आया है। भगवान् जाने, यह देश कहाँ था! ५७८.१२ से १५ तक के मन्त्रों में रुशम देश का उल्लेख है, जहाँ के राजा ऋणञ्जय थे और जहाँ के निवासियों ने बभ्रु ऋषि को चार हजार गायें दान दी थीं। ११३२.२३ में आर्जीक देश का उल्लेख है। १२८६.८ में गुंगुओं के देश का नाम आया है। १२८८.४ में वेतसु देश का उल्लेख है। जैसे ऋग्वेद के जर्भरी, तुर्फरी, फरफरीका, आलिगी, विलिगी, तैमात, ताबुवम् आदि शब्दों के अर्थ सन्दिग्ध हैं, वैसे ही इन देशों का स्थान-निर्णय भी संदिग्ध है।

आर्य-जाति

ऋग्वेद में आर्य-जाति की विवृति देखकर आश्चर्य होता है कि अगणित वर्ष पहले आर्यों की संस्कृति कितनी उच्च थी, उनका मस्तिष्क कितना उदात्त था और आर्य आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक विषयों में कितनी उन्नति कर चुके थे!

आर्य-जाति के प्रबल प्रताप का लोहा पृथिवी-मण्डल की समग्र मानव जाति मानती थी—अब तक मानती है। आजकल जड़वादी अभ्युदय, वैज्ञानिक उन्नति और सभ्यता के शिखर पर पहुँचने का दम भरनेवाली पाश्चात्त्य जातियाँ भी अपने को आर्य-वंशज कहलाने में गर्व और गौरव का अनुभव करती हैं! ये मानती है कि समूची धरित्री पर आर्य-जाति की संस्कृति की अमिट छाप पड़ी हुई है और प्रायः निखिल महीमण्डल में आर्यों की अबाध गति और आधिपत्य के प्रमाण उपलब्ध हैं। एशिया, यूरोप और अमेरिका तक में वैदिक संस्कृति के चिह्न अब तक पाये जाते हैं। मैक्समूलर के मत से आर्यों की अप्रतिहत गति और अमिट आधिपत्य के प्रमाण ईरान, अर्मनी, अलबानिया, आयरत, आरियाई, आयलैंड, एरिन आदि आदि स्थान-नाम भी हैं।

ऋग्वेद में आर्य-जाति की प्रतिभा के अपरिमित प्रमाण पाये जाते

हैं। १२०५.२ में कहा गया है, 'महान् मनुष्यों (आर्यों) के राज्य में हम तुम्हारा स्तोत्र करते हैं।' 'इन्द्र ने आर्य-जाति के लिए ज्योति दी है।' 'इन्द्र ने आर्य-भाव द्वारा दस्यु का अतिक्रम किया है' (३०५.१८-१९)। आर्यों का एक मात्र धन ब्रह्मचर्य-तेज था। इस बात को ऋग्वेद (३२४.१५) में यों कहा गया है—'बृहस्पति, जिस धन की आर्य पूजा करते हैं दो दीप्ति और यज्ञवाला धन लोगों (समाज) में शोभा पाता है, जो धन अपनी दीप्ति से प्रदीप्त है, वही विलक्षण धन अर्थात् ब्रह्मचर्य-तेज हमें दो।' इसी ब्रह्मचर्य-तेज में आर्यों के अभ्युदय का रहस्य छिपा हुआ है। ४९८ २ में तो स्पष्ट ही कहा गया है कि 'हमने (इन्द्र ने) आर्य-जाति को दान में पृथिवी दे दी है।' फिर समस्त भूमण्डल पर आर्य-राज्य के आधिपत्य में सन्देह ही क्या रहा? अग्निदेव को आर्यों का संवर्द्धन-कारी कहा गया है (१०६८.२)। एक मन्त्र (८४६.२) में तो आर्य को स्वाभाविक स्वामी वा ईश्वर बताया गया है।

आर्यों की संस्कृति और धर्म जैन-बौद्धों की तरह जीवन-संग्राम से पलायनवादी नहीं थे। आर्य शूर-वीर थे और उनके सारे कर्म वीरता-पूर्ण थे। वे 'समादरणीय मल्लके समान प्रसन्न-वदन और यशः-शाली' थे (९४४.२०)। आर्य महान हृदय और अत्यन्त उदार मस्तिष्क के थे। उनकी 'माता मेदिनी और पिता स्वर्ग' था (१२२.४)। वे 'मातृ-स्वरूपिणी और सुखकारिणी पृथिवी की शरण में जाने' को लालायित रहते थे (१२३६.१०)। वे ईश्वरीय ज्योति से जगमगाते रहते थे और 'वर्त्तमान तथा भविष्य की सारी घटनाओं को देखते' रहते थे (२९.११)। वे किसी के सामने 'दीनता प्रकट करनेवाले नहीं थे' (३३३.११)। उनका सुदृढ़ सिद्धान्त था—'न दैन्यं न पलायनम्।' वे 'संसार के हितैषी पुरुष' थे (९६.२)।

आर्यों का उद्घोष था—'जिसका मन उदार नहीं है, उसका भोजन करना वा अन्न उत्पादन करना वृथा है। उसका भोजन करना वा अन्न उत्पादन करना उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवता को देता है, न मित्र को देता है, प्रत्युत स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है—केवलाघो भवति केवलादी' (१४०८.६)। निष्कर्ष यह है कि स्वार्थी का जीवन पापमय और घृणित है।

वे सत्य के लिए सर्वस्व स्वाहा करने को तैयार रहते थे। वे अपना बाह्य और आन्तर—सब सत्यमय देखना चाहते थे। वे अपने सामने असत्यवादी को देखना तक नहीं चाहते थे। वे अपने इष्टदेव से याचना करते थे—'हमें ऐसा पुत्र दो, जो सत्य का पालन करनेवाला हो और

परिजनों के साथ रणांगण में शत्रु का संहार करनेवाला हो' (५७०.६)। वे ऐसे पुत्र की याचना करते थे, जो 'अपने कर्म से अपने पूर्वजों के यश को प्रख्यात करनेवाला हो' (५७०.५)। उनका सुदृढ़ सिद्धान्त था— 'पापी मनुष्य सत्य मार्ग से नहीं जा सकते' (११४८.६)। उनका अचल मत था—'यज्ञ-हीन, सत्य-रहित और सत्यवचन-शून्य पापी नरक-स्थान को उत्पन्न करता है' (४६२.५)।

सत्य के समान ही आर्यों के सदाचारी जीवन, उदारता, शुभ संकल्प, निर्भयता, स्वावलम्बन, विश्व-प्रेम, निर्लोभ और सामाजिक संघटन का उल्लेख भी अनेक मन्त्रों में है। विस्तार-भय से यहाँ सबको लिखना सम्भव नहीं। परन्तु इस समय के लिए अत्यन्त उपयुक्त आर्यों के संघटन और एकत्व-बुद्धि को तो प्रत्येक देश-प्रेमी को शिरसा ग्रहण कर लेना चाहिए। उनका पवित्र आदेश है—'एक मन होकर जागो' (१३-८१.१)। 'तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों और तुम्हारा अन्तःकरण एक हो। तुम लोगों का सर्वांगपूर्ण (सम्पूर्ण रूप से) संघटन हो' (ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र)।

अपनी सन्तान के लिए आर्यों का यही अजर और अमर उपदेश है। यदि इस उपदेश पर हम अचल और अडिग रहें, तो अणुबम, उद्‌जन बम, कोबाल्ट बम वा इनसे भी भीषणतम बम हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे—ये हमें खिलवाड जँचेंगे।

आर्यों की युद्ध-कला

ऋग्वेद में यथेष्ट युद्ध-वर्णन है। वस्तुतः जीवन विलासिता में नहीं है। जीवन है तप में, जीवन है युद्ध में। मुख्य बात यह है कि जीवन ही संग्राममय है। तब जीवन का रहस्य बतानेवाले ऋग्वेद में युद्ध-वर्णन क्यों न हो? और, जो समाज के शत्रु हैं, मनुष्यों में जो राक्षस हैं, वे तो सचमुच 'ताड़न के अधिकारी' हैं। दुष्ट-दमन न हो तो मनुष्य की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था और समस्त 'श्रुति-मार्ग ही भ्रष्ट' होने का भय है। इसलिए ऋग्वेद में दुष्ट-दलन की आज्ञा का उल्लेख उपयुक्त है।

युद्ध के समय धौंसे की घुघुकार से आकाश घहरा उठता था। कहा गया है—'हे युद्ध-दुन्दुभि, अपने शब्द से स्वर्ग और धरणी को परिपूर्ण कर दो—स्थावर और जंगम—सब इसे जान जायँ।' 'दुन्दुभि, हमारे शत्रुओं को रुलाओ। हमें बल दो। इतने जोर से बजो कि दुर्द्धर्ष शत्रुओं को दुःख मिले। दुन्दुभि, जो हमारा अनिष्ट करके आनन्दित होते हैं, उन्हें दूर हटाओ।' (७३५.२९-३०)। आगे कहा गया है—'जुझाऊ

बाजा भयंकर रीति से घहरा रहा है। गोधा (हस्तघ्न नाम का बाजा) चारों दिशाओं में निनाद कर रहा है। पिंगल वर्ण की ज्या (प्रत्यञ्चा) शब्द कर रही है' (१०२१.९)। सशस्त्र सेना के सम्बन्ध में कहा गया है—'इन्द्र की सहायता से हम हथियारबन्द लड़ाकों की सुसज्जित सेना के शत्रु को भी जीत सकेंगे' (८.४)। 'स्वामी के द्वारा संचालित सेना अथवा धनुर्द्धारी के दीप्ति-मुख वाण के समान अग्नि शत्रुओं में भय उत्पन्न करते हैं' (९४.४)। 'दुन्दुभि नियत उच्च निनाद कर रही है। हमारे सेनानी घोड़ों पर चढ़कर इकट्ठे हुए हैं। हमारे रथारूढ़ सैनिक और सेनाएँ युद्ध में विजयी बनें' (७३५.३१)।

युद्ध में आर्य अनेकानेक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते थे। वे 'लोहे का कवच पहनते थे' (७८.३)। 'जिस समय राजा लौह-कवच पहनकर जाता है, उस समय वह साक्षात् मेघ मालूम पड़ता है' (७७१.१)। 'योद्धा कवच के आश्रय में रहते हैं' (१०००.८)।

युद्ध में धनुष् और वाण का प्रयोग बहुत होता था। धनुष् आर्यों का प्रिय शस्त्र था। 'हम धनुष् से समस्त दिशाओं में स्थित शत्रुओं को जीतेंगे।' 'ज्या वाण का आलिंगन करके शब्द करती है।' 'दोनों धनुष्-कोटियाँ शत्रुओं को छेद डालें।' 'तुणीर वा तरकस वाणों का पिता है। वाण निकलते समय तुणीर 'त्रिश्वा' शब्द करता है। तुणीर सारे शत्रुओं को जीत डालता है' (७७२.२—५)। आर्यों के 'घोड़े टापों से धूलि उड़ाते हुए और रथ के साथ सवेग जाते हुए हिनहिनाते हैं और शत्रुओं को टापों से पीटते हैं' (७७२.७)।

'पुराने काठों, पक्षियों के पक्षों और उज्ज्वल शिलाओं से वाण बनाये जाते थे' (१२०७.२)। 'वाण विषाक्त और लौह-मुख भी होते थे' (७७३.१५)। ज्या वा प्रत्यञ्चा गो-चर्म की बनती थी (१२५०.२२)।

'हस्तत्राण (दस्ताना ?) और कर्त्तन (कटार) भी थे' (२६०.३)। आर्यों के नाना प्रकार के और बड़े शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्र होते थे। 'शतद्वार' नाम का प्रसिद्ध अस्त्र था (६८.३)। रुद्र के अस्त्र का नाम 'हेति' था (३४०.१४)। इन्द्र के आयुध का नाम 'हरिद्वर्ण' था (४१७.४)। 'शक्ति' नाम का अस्त्र भी इन्द्र के पास था (१४२७.६)। तलवार वा 'लौहमय खड्ग' का बहुत बार उल्लेख है (७३२.१० और १३५६.८)। दो धारोंवाली तलवार भी थी (१३५०.७)। लोहे के कुठार बनते थे (६६४.४ और १२९३.९)। फरसे और मुद्गर भी थे (८८९.२१)। हाथी को वश में करने के लिए अंकुश थे (१३९०.६)। आर्य देवास्त्रों का भी व्यवहार करते थे।

आर्यों के रथ सौ-सौ चक्कों और ६-६ घोड़ोंवाले भी होते थे (१६७.४)। 'हजार पताकाओंवाले रथ' भी थे (१७५.१)। पाँच-पाँच सौ रथ एक साथ चलते थे (१३६६.१४)। रथ पर आठ सारथियों के बैठने योग्य स्थान होते थे (१२९३.७)। नगर के चारों ओर परिखा वा खाइ होती थी (२०१.४)। ४० कोस प्रतिदिन चलनेवाले घोड़े थे (८९१.९)। काष्ठ-खण्ड से सीमा बाँध कर घुड़दौड़ की जाती थी (१६९.१७ और १४४४.१)। असाधारण-बलशाली मुष्टिका-प्रहार से भी शत्रुओं को मार डालते थे (७०६.२)।

अंशुमती नदी के तट पर रहनेवाले कृष्णासुर की दस हजार सेनाओं का विनाश कर डाला गया था (१०५७.१३)। शम्बरासुर की ९९ पुरियों का विनाश करके १००वीं पर अधिकार किया गया था (७९७.५)। युद्ध में ऐरावत हाथी से शत्रुओं के सिर कुचले जाते थे (२०४.२)। इन्द्र ने १५० सेनाओं का विनाश किया था (२०४.४)। पचास हजार काले राक्षसों का वध किया गया था (४७७.१३)। एक बार ३० हजार राक्षसों का विनाश किया गया था (५०४.२१)।

परन्तु आर्यों का सबसे बड़ा युद्ध "दशराज्ञयुद्ध" था। कदाचित् दस यज्ञ-विहीन राजाओं के साथ सूर्यवंशी सुदास राजा का भीषण युद्ध हुआ था (८६४.६–७)। सुदास के सहायक वसिष्ठगण और तृत्सुगण आदि थे (८१३.३ और ५)। इसमें भेद (नास्तिक) का भी वध किया गया था (७९५.१९)। इस प्रसिद्ध युद्ध में ६६०६६ व्यक्ति मारे गये थे (७९४.१४)।

वायुयान

ऋग्वेद में विमान, वायुयान वा आकाशयान का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है; परन्तु अनेक मन्त्रों में कुछ इस तरह का विवरण पाया जाता है, जिससे अनेक वेदज्ञ यह अनुमान लगाते हैं कि ऋग्वेद में विमान की बातें हैं। अमेरिकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स ने अपने Sublimity of the Vedas (पृष्ठ ८३) में इस बात को स्वीकार किया है कि 'वैदिक ऋषियों को विद्युत्, रेडियो, एलेक्ट्रन, विमान आदि सभी बातों का ज्ञान था।' बड़ौदा में 'यन्त्र-सर्वस्व' नाम का एक ग्रन्थ मिला है, जिसके लेखक भरद्वाज ऋषि हैं। इसके 'वैमानिक' प्रकरण में लिखा है कि 'वेदों के आधार पर ही इस ग्रन्थ को बनाया गया है।' इस ग्रन्थ में विमान-विषयक अनेक संस्कृत-पुस्तकों का भी उल्लेख है। इसके उक्त प्रकरण में ३२ प्रकार के वैमानिक रहस्य बताये गये हैं। कहा गया

है—'प्रत्येक विमान में दूरदर्शक यंत्र रहता था। प्रत्येक में गति को वक्र करने, दूसरे विमानवालों से बातें करने दूसरे विमान की वस्तुएँ देखने, दूसरे विमान की दिशा जानने, दूसरे विमानवालों को बेहोश करने और शत्रु के विमान को नष्ट करने के भी यंत्र लगे रहते थे।' इस ग्रन्थ में बताये यदि सभी ग्रन्थ मिल जाते, तो इस विषय पर सम्भवतः विशेष प्रकाश पड़ता।

ऋग्वेद (४३.२) में कहा गया है कि अश्विद्वय के रथ में तीन दृढ़ चक्र और रथ के ऊपर, अवलम्ब के लिए, तीन खंभे लगे हैं। वेना के विवाह के समय देवों ने इसे पहले पहल जाना। ४५.१२ में त्रिलोक में चलनेवाले रथ का उल्लेख है। क्या त्रिलोक में साधारण रथ चल सकता है? ६३.२ में भी ऐसे ही रथ का कथन है। २७४.१० में तो आकाशचारी रथ का उल्लेख है। ४१६.६ में भी ऐसा ही उल्लेख है। परन्तु ५१३.१ में तो स्पष्ट ही कहा गया है कि 'अश्विनीकुमारों का त्रिचक्र रथ अश्व के विना और प्रग्रह के विना अन्तरिक्ष में भ्रमण करता है।' ऋभुओं ने इस रथ को बनाया था। ७६३.७ में तो एक ऐसे रथ का विवरण है, जो पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—तीनों में चलने में समर्थ था। तो क्या यह विमान ही था?

ऐहिक अभ्युदय

आर्य-जाति ने भौतिक उन्नति भी यथेष्ट की थी। लोहे की बहुलता के कारण नगर के नगर लोहे के बनते थ जिन्हें आर्य 'लौह-पुरी' वा 'लौह-नगरी' कहते थे। ३२०.८ में ऐसी ही एक लौहपुरी का इन्द्र द्वारा विध्वस्त किया जाना लिखा है; क्योंकि यह दस्यु-पुरी थी। ७७९.७ में तो लौह-पुरी के साथ ही अपरिमित सुवर्णमयी पुरी का भी उल्लेख है। ७९०.१४ में 'महान् लौह से निर्मित शतगणपुरी' की भी बात है। १०६४.८ में गरुड़ के द्वारा 'लौहमय नगर के पार जाना' लिखा है।

सौ दरवाजों वाली पुरी का भी निर्माण होता था (१३७७.३)। हजार दरवाजों वाले गृह भी बनते थे (८७०.५)। हजार खंभोंवाले मकान होते थे (३५२.५ और ६३२.६)। हर्म्य और अट्टालिकाएँ होती थीं (२५६.४)। मकानों में तीन-तीन तल्ले होते थे (९८४.१२, १३१५.५ और १३१६.७)। इन मन्त्रों से यह भी पता चलता है कि तीन कोठोंवाले गृह ही आर्यों को अधिक रुचिकर थे। ७३०.९ में एक ऐसे गृह की बात है, जो लकड़ी, ईंट और पत्थर का बना था और जिसमें शीत, ताप और ग्रीष्म का प्रभाव नहीं पड़ता था। तो क्या आर्य शीत-ताप

नियन्त्रक (air-conditioned) गृह बनाते थे? दरबाजों पर वेत्रधारी दरबान रहते थे (३१३.९)।

आर्यों को मिट्टी का घर बिलकुल नापसन्द था (८७०.१)। खोदाई करनेवाले नाना प्रकार के हथियार थे (३८३.४)। वे खोदकर तड़ाग बनाते थे (१२०५.५)।

वे चादर (उष्णीष्) धारण करते थे और उबटन लगाते थे (८०३.३ और १३४२.७)। वे धौत वस्त्र (धोती) पहनते थे (११७३.३)। उनकी पगड़ी सोने की होती थी (३४१.३)। वे तकिया भी लगाते थे (१४३७.६)। वे तैल का भी उपयोग करते थे (१०३४.२)। आर्य जड़ी-बूटियों से भी चिकित्सा करते थे (९४५.२६)। १०७ स्थानों में औषधियाँ होती थीं (१३७३.१)।

स्थाली में भोजन बनता था (४३०.२२)। कलश और जल-पान-पात्र होते थे (१२४५.४)। पेटिकाएँ (बाक्स) बनती थीं (१०२८.९)।

नर्तकियाँ नृत्य करती थीं (१२७.४)। नर्त्तन-क्रीड़न तो पितृमेध-यज्ञ तक में होता था (१२३५.३)। वेणु बाजा बजाया जाता था (१४-२८.७)। वीणा भी बजती थी (३४२.१३)। कर्करि नाम के वाद्य का बड़ा प्रचार था (३५४.३)।

कभी-कभी रथ में बकरे जोते जाते थे (१२४७.८)। गदहे (गर्दभ) भी रथ-वहन करते थे (१६६.२)।

समाज के आवश्यक कार्य-वाहक वर्ग भी कई थे। सोना गलाकर गहने बनानेवाला सोनार था (६६४.४)। सोनार और मालाकार (माली) का एक साथ ही एक मन्त्र (१००१.१५) में उल्लेख है। रथ आदि बनाने-वाले बढ़ई भी थे (१३६५.१२)। तन्तुवाय (जुलाहा) वस्त्र बुनता था (१३८९.१)। काठ का काम करनेवाले और वाण आदि बनाकर बेचनेवाले शिल्पी थे। वैद्य थे और जौ भुननेवाली कन्याएँ थीं (१२०७. १-३)। भाथी (भस्त्र) और भाथी वाले थे (५५७.५)। बाँह में छुरा लटकानेवाले और दाढ़ी-मूँछ मुँड़नेवाले नाई थे (९०३.१६ और १४३४. ४)। अप्सराएँ भी थीं (११५३.३)। गन्धर्व का उल्लेख है ही (१३४५.४०)। वणिक् तो थे ही, सूदखोर भी थे (१०१५.१०)।

स्वर्ण-राशि की प्रचुरता

यद्यपि ऋग्वेद में मणियों (४२.८) और रत्नों (१८९.१, ६४५.३ तथा १०५२.२६) की भी चर्चा है; परन्तु स्वर्ण की अधिकता का बार-बार उल्लेख है। सोना इतना होता था कि सोने का नगर तक बनता था

(७७९.७)। सोने की नौकाएँ बनती थीं, जो समुद्र के मध्य तक जाती थीं (७५०.२)। सोने के रथ बनते थे (१२९.१८, २१२.३-४, ६४५.३ और ९९८.२४)। सोने का झूला या हिंडोला होता था (८६८.५)। सोने के घड़े बनते थे (५०८.१९)। सोने का चर्मास्तरण होता था (८९४.३२)। सोने से घोड़े विभूषित किये जाते थे और उन्हें सदा मला जाता था (१९१.४)। स्वर्णाभरण-विभूषित घोड़ों और श्यामवर्ण घोड़ों का उल्लेख बहुत बार आया है (२४०.२ और १३२०.११)। सोने की पगड़ियाँ बनती थीं (३४१.३, ६२०.११ तथा ९१४.२५)। पैरों के कटक (काड़े), हाथों के वलय, हृदय के हार, गले की माला और तरह तरह के आयुध—सब सोने के बनते थे (६१६. ४ और ६२०.११)। सोने की ही मुद्रा चलती थी, जिसे निष्क कहा जाता था (१९१.२)।

आर्यों की आदर्श दान-परायणता

आर्य लोग दान और दक्षिणा देने में अनुपम थे। ऋग्वेद में दान और दक्षिणा की महिमा के लिये दो सूक्त ही हैं (१३९२.१०७वाँ सूक्त 'दक्षिणा-सूक्त' और १४०७.११७वाँ सूक्त 'दानसूक्त' है)। इन दोनों सूक्तों का पाठ करने पर आर्यों की उदारता और पर-दुःख-कातरता पर विमुग्ध हो जाना पड़ता है। कहा गया है कि 'दाता को क्लेश और दुःख नहीं होता। पृथिवी और स्वर्ग में जो कुछ अलभ्य है, सो सब दाता को मिल जाता है—दाता देवता बन जाता है' (१३९३.८)। 'जो याचक को नहीं देता और मित्र की सहायता नहीं करता, वह दुःखी होता है और वह मित्र कहाने योग्य नहीं रहता।' 'धन किसी के पास स्थिर तो रहता नहीं—रथ के पहिये की तरह घूमता रहता है। कभी किसी के पास रहता है और कभी किसी के पास जाता है। जो स्वार्थी है, जो अपना कमाया स्वयं ही खाता है, वह पापी है।' (१४०७.२ और ४–६)

कक्षीवान् नाम के ऋषि को सौ स्वर्ण-मुद्राएँ, सौ घोड़े सौ बैल, १०६० गायें और १० रथों में जोते गये ४० लोहित-वर्ण अश्व दान में मिले थे (१९१.२–४)। अवत्सार ऋषि को तीस हजार वस्त्र दान में मिले थे (१११८.४)। देवातिथि नाम के ऋषि को ६० हजार गायों का दान दिया गया था (९०४.२०)। सोने के रथ का दान राजा पृथुश्रवा करते थे (९९८.२४)। वश ऋषि ने भी दान में ६० हजार गायें पायी थीं (९९८.२९)। एक मन्त्र (९९७.२२) में वश ऋषि ने स्वयं ही कहा है—'मैंने ७० हजार अश्व, २ हजार ऊँट, १ हजार

काली घोड़ियाँ और १० हज़ार श्वेत गायें पायी हैं।' अपने को सभ्यतम कहनेवाला कोई इन दिनों इतना महान् दानी मिलेगा ?

कृषक आर्य

आर्य खेती करते थे और कृषि-कर्म के लिये उन्हें दैवी आज्ञा मिली थी। कहा गया है—'अश्विद्वय ने मनुष्यों को कृषि-कार्य की शिक्षा दी थी' (९४८.६)। एक दूसरे मन्त्र (१७३.२१) में कहा गया है कि 'अश्विद्वय ने आर्य मानव के लिये हल द्वारा खेत जुतवाकर, यव (जौ) वपन कराकर तथा अन्न के लिये वृष्टि-वर्षण करके उसे विस्तीर्ण ज्योति प्रदान की।' जौ के खेत बार-बार जोते जाते थे—'किसान बैलों से जौ का खेत बार-बार जोतता है' (२५.१५)। आर्यों की अभिलाषा रहती थी—'वलीवर्द (बैल) सुख का वहन करे। मनुष्यगण सुख-पूर्वक कृषि-कार्य करें। लांगल (हल) सुखपूर्वक कर्षण करे। प्रग्रह-समूह (रस्सियाँ) सुखपूर्वक बद्ध हों' (५४०.४)। आगे कहा गया है—'इन्द्रदेव सीताधार काष्ठ को ग्रहण करें। पूषा सीता (लांगल-पद्धति) को नियमित करें। फल या फाल (भूमि-विदारक काष्ठ) सुखपूर्वक भूमि कर्षण करे। रक्षकगण बैलों के साथ गमन करें। पर्जन्य (मेघ) मधुर जल द्वारा पृथिवी को सिक्त करें।' (५४०.७-८) १३८१. के १०१ सूक्त के अधिकांश मन्त्रों में कृषि-सामग्री का विवरण है। लिखा है—'ऋत्विको, कर्षण (जोताई) आदि कर्मों का विस्तार करो। हल-दण्डरूपिणी नौका प्रस्तुत करो। हल योजित करो। युगों (जुआठों) को विस्तृत करो। प्रस्तुत क्षेत्र में बीज बोओ। हँसिये पके धान्य में गिरें। लांगल जोते जाते हैं। कर्मकर्त्ता जुआठों को अलग करते हैं। पशुओं के जलपान-स्थान को बनाओ। वस्त्र या तंग (चर्म-रज्जु) को योजित करो। गड्ढे से जल लेकर हम सींचते हैं। पशुओं का जलपान-स्थान प्रस्तुत हुआ है। जलपूर्ण गड्ढे में सुन्दर चर्म-रज्जु है। इससे जल लेकर सेचन करो। पशुओं का यह जल-पूर्ण जलाधार एक द्रोण (३२ सेर) होगा।' (२-७ मन्त्र) खेत काटने के हथियार को दात्र कहा जाता था (१०३५.१०)। किसी भी खेत में इतना जौ होता था कि उसे एक बार में नहीं काटा जा सकता था। एक मन्त्र (१४२३.२) में उल्लेख है—'जिनके खेत में जौ होता है, वे अलग-अलग करके, क्रमशः उसे अनेक बार काटते हैं।'

जौ धान्य की कोठी (कुशूल) में रखा जाता था और आवश्यकतानुसार उसे बाहर निकाला जाता था (१३१९.३)। मान-दण्ड लेकर

खेत मापे जाते थे (१५४.५)। उर्वरा वा उपजाऊ भूमि के लिए कभी-कभी विवाद भी उठ खड़ा होता था (७०५.४)।

जौ के अतिरिक्त किसी दूसरे अन्न का कहीं भी ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख नहीं है। जौ भुना जाता था (१२०७.३)। इसका सत्तू बनता था और सत्तू को सूप से साफ किया जाता था (१३२४.२)। सत्तू में घी मिलाकर उसे व्यवहार में लाया जाता था (७४९.१)।

यव (जौ) देवान्न है। इसलिए हवन में इसी का उपयोग किया जाता था—अब तक किया जाता है। तैल का उल्लेख है। कदाचित् यह तिल का तैल है। सम्भवतः तिल भी होता था; क्योंकि जौ के साथ तिल मिलाकर हवन किया जाता है। जौ का उबटन बनता था। जौ और तिल के सिवा अन्य अन्न मनुष्यान्न हैं, देवान्न नहीं। घी-दूध की नदी बहती थी। अतएव आर्यों को आजकल के 'अटपट' अन्नों की आवश्यकता भी नहीं थी।

आर्य गौ के अनन्य भक्त होते थे—धार्मिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से। उन्होंने अपनी सन्तानों और मनुष्यों को उपदेश दिया है—'जो गाय रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की भगिनी और दुग्ध का निवास-स्थान है, मनुष्यो, उस निरपराध गो-देवी का वध नहीं करना। गो-देवी को छोटी बुद्धि का मनुष्य ही परिवर्जित करता है।' (१०६६.१५-१६) कीकट (दक्षिण मगध) में गायों की दुर्गति होती थी; इसलिए उसे अनार्य देश कहा गया है (४२८.१४)। गोष्ठ, गोचरण और गो-सम्मेलन भी होते थे (१२३८.४)। 'चिरञ्जीविनी गायों का दुग्ध-सेवन' उनकी उत्तम अभिलाषा थी (१२३८.६)। यही बात १२४२.१३ में भी है। ऋग्वेद के तीन गो-सूक्त अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—७०९ का २८ वाँ सूक्त, १२३७ का १९वाँ सूक्त और १४५३ का १६९वाँ सूक्त। गो-जाति के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिये इन सूक्तों का स्वाध्याय करना चाहिए।

राज्य-शासन

ऋग्वेद से पता चलता है कि राजा का निर्वाचन होता था—'राजन्, तुम्हें मैंने राष्ट्रपति चुना। तुम इस देश के प्रभु बनो। अटल-अविचल और स्थिर होकर रहो। प्रजा तुम्हारी अभिलाषा करे। तुम्हारा राजत्व नष्ट न होने पावे (१४५५.१)। इसी आशय के अगले चार मन्त्र और हैं। इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र से ज्ञात होता है कि प्रजा कर देती थी (१४५६.६)। राष्ट्रपति के मन्त्री भी होते थे (१४५६.५)। राजा की समिति होती थी (१३७४.६), जिसके परामर्श से वह शासन में लाभ उठाता था।

'निर्भय राज-पथ' होते थे (१९३.६)। 'हास-परिहास करनेवाले दरबारी (मर्म-सचिव)' भी होते थे (१२०८.४)। 'बकवादी विदूषक' (मसखरे) भी होते थे, जो 'बड़ी सरलता से हँसा देते थे' (२१७.७)। कर्मचारी वेतन (भृति) पाते थे (१०१५.११, ११८५.३८ और ११९४.१)। कारागृह (जेल) और हथकड़ी भी थी (७८.३)। शतद्वारवाले और अन्धकारमय पीड़ायन्त्र-गृह (काली कोठरी?) थे (१६७.८)।

किसी भी राष्ट्र में यदि समाज का 'सत्यानाश' करनेवाले कुकर्मी न रहें तो शासन, जेल, हथकड़ी और पीड़ागृह की आवश्यकता ही न पड़े। कुकर्मी और समाज-विध्वंसक थे; इसलिए इन वस्तुओं की भी आवश्यकता थी। शास्य थे; इसलिए शासक और शासन-यन्त्र भी थे।

उपद्रवी, द्वेषी और निन्दक थे (१९.३)। देव-निन्दक और दुर्बुद्धि थे (३२२.८)। बाधक, चोर और कपटी थे (५६.३)। गुफा में चुराया धन छिपानेवाले तस्कर थे (५६३.५)। मित्र-दार-गामी लम्पट थे (११७९.२२)। नास्तिक (भेद) थे (७९५.१८)। शराबी भी थे (८९५.१२ और ९४७.१४)। शौण्डिक के घर में चर्ममय सुरापात्र तो थे ही (२८८.१०)। जुआड़ी भी थे (१२५०.१७)। बहेरे के काठ से बने पासे होते थे (१२६१.१)। 'जुआड़ी (कितव) की निन्दा उसकी सास करती है। उसकी स्त्री उसे छोड़ देती है। जुआड़ी को कुछ माँगने पर उसे कोई नहीं देता। जैसे बूढ़े घोड़े को कोई नहीं खरीदता, वैसे ही जुआड़ी का कोई आदर नहीं करता। पासा वाले की स्त्री व्यभिचारिणी हो जाती है। जुआड़ी के माँ-बाप-भाई कहते हैं—'हम इसे नहीं जानते। जुआड़िओ, इसे पकड़कर ले जाओ।' (१२६१.३-४) तिरेपन तरह के पासे होते थे। 'जुआड़ी की स्त्री दीन-हीन वेश में रहती है। जुआड़ी की माता व्याकुल रहती है। जुआड़ी दूसरे के घर में रात काटता है।' (१२६२.९-१०) 'अपनी स्त्री की दशा देखकर जुआड़ी का हृदय फटा करता है। जो जुआड़ी प्रातः घोड़े की सवारी करता है, वही हारकर सायं वस्त्र-विहीन हो जाता है और दरिद्र के समान जाड़े से बचने के लिये आग तापता है' (१२६३.११)। अन्त में जुआड़ी को उपदेश दिया गया है—'जुआड़ी, कभी जुआ नहीं खेलना (अक्षैर्मा दिव्यः)। खेती करना। कृषि-लाभ से ही सन्तुष्ट रहना—अपने को कृतार्थ समझना' (१२६३.१३)। 'भ्रम, क्रोध, अज्ञान और द्यूत-क्रीड़ा से पाप होता है' (८६७.६)।

ये सब समाज-विनाशक तत्त्व तो थे ही, कच्चा मांस खा जानेवाले राक्षस भी बहुत थे। वे यज्ञ-विघ्नकारी थे। तीन मस्तक और तीन पैरों के भी राक्षस थे। वे सत्य-द्रोही थे। वे साधुओं के भंजक थे। कड़वी

बातें करते थे। वे नर-भक्षक थे। मिथ्यावादी थे। वे मनुष्यों और पशुओं के मांस का संग्रह करते थे। उनके सारे कर्म विध्वंसक थे। इसी लिए उन राक्षसों के वध की बार-बार प्रार्थना की गयी है। (१३५०-५२. २-२५)।

गायें चुरानेवाले पणि थे, जिनका नेता बलासुर था (९३०.८)। पणि ही नहीं, दास, दस्यु और असुर भी सत्कर्म-विध्वंसक थे। यद्यपि ऋग्वेद में असुर शब्द के नाना प्रकार के अर्थ भी हैं; परन्तु असुर शब्द का 'मायावी' और 'आर्य-द्रोही' अर्थ ही अधिक प्रसिद्ध था। असुर पक्के समाज-विध्वंसक थे। अनेक बर्बर-जातियाँ भी थीं। ये गोघातक थीं। विस्तृत पृथ्वी पर दस्यु ही फैले हुए थे (७२४.२०)।

ऐसे लोगों का शासन अत्यावश्यक था। इन्हें इनके स्थानों से भगा दिया जाता था (७८२.६)। इन्हें जीतकर इनका धन ले लिया जाता था (१३२१.६)। अनार्यों के यहाँ से गो-धन लाकर उसकी रक्षा की जाती थी। सूदखोरों का धन भी ले लिया जाता था (४२८.१४)। तरह-तरह के दण्ड देकर इन्हें सत्पथ पर लाया जाता था वा इन्हें भगा दिया जाता था वा मार डाला जाता था। ये सब बातें अनेक मन्त्रों में बार-बार कही गयी हैं।

ऋग्वेद और नारी-जाति

प्रकृति में सत्त्व, रज और तम नाम के तीन गुण हैं वा तीनों गुणों का समुदाय ही प्रकृति है। प्रकृति का विकास विश्व है। इसलिए जगत् में तीनों गुणों के प्राणी सदा से रहते आये हैं। अवश्य ही कर्मानुसार कोई सत्त्व-प्रधान (सात्त्विक) होता है, कोई रजः-प्रधान (राजस) और कोई तमः-प्रधान (तामस)। देश, काल और पात्र के अनुसार तारतम्य तो हो सकता है और होता है; परन्तु यह असम्भव है कि किसी भी समय किसी भी गुण वा गुणी का नितान्त अभाव हो जाय। पहले सात्त्विक व्यक्ति अत्यधिक थे; त्यागी, तपस्वी, परोपकारी, आस्तिक, निश्छल, निष्कपट मनुष्यों का बाहुल्य था; परन्तु राजसिक और तामसिक व्यक्ति भी थे। फलतः जिन दिनों आर्य-जाति उन्नति के अत्युच्च शिखर पर विराजमान थी, उन दिनों भी कुछ दुष्ट पुरुष और दुष्टा स्त्रियाँ थीं। परन्तु ऐसों को न्यायानुकूल कड़े से कड़ा दंड दिया जाता था। कोई पक्षपात नहीं था, कोई अन्याय नहीं था। तपोधन ऋषियों के समक्ष पक्षपात वा अन्याय का होना सम्भव नहीं था।

आर्य-जाति में आदर्श महिलाओं की प्रचुरता होते हुए भी प्रकृति के नियमानुसार कुछ राजस और तामस स्त्रियाँ भी थीं। यह स्वाभाविक बात थी। भले-बुरे में द्वन्द्व प्राकृतिक नियम है । देवासुर-संग्राम विश्व में सदा चलता रहता है । वैदिक साहित्य में इसे इन्द्र-वृत्रासुर-युद्ध भी कहा जाता है। यह शाश्वत युद्ध ब्रह्माण्ड में ही नहीं, पिण्ड में भी चलता रहता है। 'जो ब्रह्माण्ड में है, वह पिण्ड मे भी है' की कहावत शास्त्रीय है। प्रत्येक व्यक्ति में कुमति और सुमति का समर ठना रहता है। समाज के प्रत्येक अंग में यह काण्ड होता रहता है। व्यक्तियों में से किसी में दैवी भाव का विकास अधिक रहता है और किसी में आसुरी भाव का। समाज में कोई देव होता है, कोई दानव। यह नियति है। इसे बदल देना या विनष्ट कर देना असंभव है ।

इसलिए यह धारणा ठीक नहीं है कि 'पहले के सब लोग देवता थे और अब के सब लोग दैत्य हैं।' पहले भी कुछ दैत्यभावापन्न व्यक्ति थे। अवश्य ही पहले त्याग और तपस्या की मूर्त्ति ऋषियों के आश्रमों का जाल सारे देश में बिछा था; इसलिए देश का वातावरण विशुद्ध था और इसी विशुद्धता के कारण बहुत ही कम स्त्री-पुरुष दैत्यभावापन्न हो पाते थे। इसका साक्षी सारा वैदिक वाङ्मय है। इस वाङ्मय में गिने-गिनाये स्थानों में ही ऐसे लोगों का उल्लेख पाया जाता है । यह भी कहा जा सकता है कि कुकर्मी तो अत्यल्प रहे होंगे; परन्तु संसर्ग के कारण अधिक लोग व्यर्थ ही कुयश के भागी बने होंगे । अगले मन्त्रों से यही बात मालूम पड़ती भी है ।

कहा गया है—'मेध्यातिथि के धनदाता प्रायोगि जिस समय पुरुष से स्त्री बने थे, उस समय इन्द्र ने कहा था कि 'स्त्री के मन का शासन करना असम्भव है। स्त्री की बुद्धि छोटी होती है' (९७२.१७) । ऐसे ही विलक्षण प्रायोगि से इन्द्र ने कहा—'तुम नीचे देखा करो, ऊपर नहीं। पैरों को मिलाये रखो। इस प्रकार कपड़े पहनो कि तुम्हारे ओष्ठ-प्रान्त और कटि के निम्न भाग को कोई देखने न पावे । यह सब इसलिए करो कि तुम पुरुष स्तोता होकर भी स्त्री हुए हो' (९७२.१९)। तो क्या पर्दा करने का यह उपदेश केवल प्रायोगि के लिए है ?

राजा पुरुरवा से चिढ़कर एक मन्त्र (१३७०.१५) में उर्वशी उनसे कह रही है—'स्त्रियों का प्रेम वा मैत्री स्थायिनी नहीं होती । स्त्रियों और वृकों (तेंदुओं) का हृदय एक समान होता है।' एक तो उर्वशी अप्सरा थी, दूसरे पुरुरवा से क्रुद्ध होकर वह उनसे दूर भागना चाहती थी। इस दशा में उसका ऐसा कहना सामयिक ही था।

किसी विषयान्ध पुरुष को लक्ष्य करके कहा गया है—'स्त्रैण मनुष्य स्त्री की प्रशंसा करता है' (४८८.५)। कोई दो स्त्रियों का स्वामी भी होता था (१३८२.११)। ऐसी ही एक सौत 'सौतियाडाह से कहती है—'मेरी सपत्नी नीच से भी नीच हो जाय। मैं सपत्नी का नाम तक नही लेती। सपत्नी सबके लिये अप्रिय होती है (१४३७.३-४)। एक मन्त्र (८५८.३) में कुलटा की निन्दा और पतिव्रता की प्रशंसा है। एक स्थान (३३३.१) पर 'गुप्तप्रसविनी स्त्री के गर्भ की तरह मेरा अपराध' कहा गया है। 'विपथगामिनी, पतिविद्वेषिणी और दुष्टाचारिणी स्त्री नरक-स्थान को उत्पन्न करती है' (४६२.५)। जार वा व्यभिचारी और उपपत्नी वा रखेल (रक्षिता) का भी उल्लेख है (११०७.४)। एक मन्त्र (१२७३.६) में 'व्यभिचार में रत स्त्री' और एक (११७९.२३) में 'जार और व्यभिचारिणी स्त्री' का उल्लेख पाया जाता है। कदाचित् समाज को अधम मार्ग दिखानेवाली ऐसी स्त्रियों का इन्द्र ने विनाश कर डाला था (१४०.१)।

परन्तु समाज में ऐसे भ्रष्ट स्त्री-पुरुष अपवाद-स्वरूप थे। क्योंकि व्यभिचारी की निन्दा करते हुए एक मन्त्र (१२२२.१०) में भविष्य के समाज में ऐसी भ्रष्टता आने का संकेत है। कहा गया है—'भविष्य में ऐसा युग आवेगा, जिसमें भगिनियाँ (स्त्रियाँ) बन्धुत्व-विहीन भ्राता (पर पुरुष) को पति बनावेंगी।' परन्तु जो लोग उक्त शब्दों वा सन्दर्भों का अन्य अर्थ करते हैं, उनके लिए तो इन अपवादों का भी अस्तित्व नहीह।

ऋग्वेद-संहिता का विहगावलोकन करने पर तो विदित होता है कि कन्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्रीजाति का बड़ा सम्मान और सत्कार था। जो कन्या पितृकुल में जीवन भर अविवाहिता रहती थी, उसे पितृकुल में ही अंश मिलता था (३१६.७)। आजकल के 'सभ्य' कहानेवाले समाज में ऐसी उदारता अब तक नहीं है! आर्य 'कमनीय कन्या' की प्राप्ति के लिए बराबर याचना करते थे (११३७.१०-११)। वे बच्चों को आभूषणों से विभूषित रखते थे (११९५.१)। वे स्वर्णाभरणों से अलंकृत करके कन्या का दान जामाता को देते थे। इसका उल्लेख अनेक मन्त्रों में है (९९९.३३, १११२.२, १२७२.१४ आदि)।

ऋग्वेद में पहले ही चन्द्रमा और 'रमणीय पत्नी' वेना की विवाह-यात्रा का उल्लेख है, जिसमें अश्विद्वय आदि 'सभी देव' बड़ी तैयारी से आये थे (४३.२)। ऐतिहासिकों के मत से ऋग्वेद का यह प्राचीनतम मन्त्र है। 'यथाविधि विवाहित और सती' महिला की बड़ी प्रशंसा की गयी है। 'बली राजा के राज्य के समान सती का सतीत्व सुरक्षित माना

गया है' (१३९५.३)। इन पवित्र-चरित्रा सती के सम्बन्ध में कहा गया है—'तपस्या में प्रवृत्त सप्तर्षियों और प्राचीन देवों ने इन सती की बात कही है। ये अत्यन्त शुद्ध-चरित्रा हैं। तपस्या और सच्चरित्रता से तो निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम स्थान में पहुँच सकता है' (तब इनकी तो बात ही क्या?) (१३९५.४)।

विवाह के समय वधू वस्त्र से ढकी रहती थी (९५९.१३)। १३४२-४६. ६-४७ में सूर्या के विवाह का आलंकारिक वर्णन पढ़ते ही बनता है। इन मन्त्रों में आर्य-जाति के आदर्श विवाह का वर्णन पाया जाता है। कहा गया है—'वह मार्ग सरल और कण्टक-विहीन है, जिससे हमारे मित्र लोग कन्या के पिता के पास (बारात में) जाते हैं। पति-पत्नी मिलकर रहें' (२३वाँ मन्त्र)। 'वधू सौभाग्यवती और सुपुत्रवाली हो' (२५)। 'पतिगृह में जाकर गृहिणी बनो। पति के वश में रहकर भृत्य आदि का व्यवस्थापन करो' (२६)। 'पति-गृह में सन्तान उत्पन्न करके प्रसन्न होना। वहाँ सावधान होकर कार्य करना। स्वामी के साथ अपने शरीर को सम्मिलित करो। वृद्धावस्था तक अपने गृह में प्रभुता करो' (२७)। 'यह वधू शोभन कल्याणवाली है। सभी आशीर्वाददाता आवें। इसे स्वामी की प्रियपात्री बनने का आशीर्वाद दें' (३३)। पति कहता है—'तुम्हारे सौभाग्य के लिये मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। मुझे पति पाकर तुम वृद्धावस्था में पहुँचना। देवों ने मुझे गृहस्थ-धर्म चलाने के लिये तुम्हें दिया है' (३६)। 'वधू का पति दीर्घायु होकर सौ वर्ष जीवित रहेगा' (३९)। (३९)। 'वर और वधू, परस्पर पृथक् नहीं होना। नाना खाद्य भक्षण करना। अपने गृह में रहकर पुत्र-पौत्रों के साथ आमोद, आह्लाद और क्रीड़ा करना' (४२)। 'ब्रह्मा वा प्रजापति हमें सन्तति दें और अर्यमा बुढ़ापे तक हमें साथ रखें। वधू, हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिये कल्याणकारिणी रहना' (४३)। 'वधू, तुम्हारा नेत्र निर्दोष हो। तुम पति के लिए मंगलमयी होना। पशुओं के लिए मंगलकारिणी बनो। तुम्हारा मन प्रफुल्ल हो और तुम्हारा सौन्दर्य शुभ्र हो। तुम वीर-प्रसविनी और देवों की भक्ता बनो। हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिए कल्याणमयी होना'। (४४)। 'इन्द्र, इस नारी को उत्तम पुत्र और सौभाग्यवाली करो। इसके गर्भ में दस पुत्र स्थापित करो' (४५)। 'वधू, अपने कर्म से तुम सास, ससुर, ननद और देवरों की सम्राज्ञी (महारानी) बनो—सबके ऊपर प्रभुत्व करो' (४६)। 'सारे देवता हम दोनों (वर-वधू) के हृदयों को मिला दें। जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनों को संयुक्त रखें' (४७)।

एक पुरुष का एक ही विवाह करना आदर्श था (३६७.४)। जिस स्त्री का सम्मान-सत्कार उसका पति करता था, वह समाज में अभिनन्दनीया गिनी जाती थी (१०२.३)। पतिव्रता हास्य-वदना होती थी (५४२.८)। स्वयंवर की प्रथा थी (१६६.१)। 'जो स्त्री भद्र और सभ्य है, जिसका शरीर सुसंघटित है, वह अनेक पुरुषों में से अपने मन के अनुकूल प्रिय पात्र को पति स्वीकृति करती है' (१२४९.१२)। ज्ञात होता है, स्त्रियों को अधिकांश कार्यों में स्वतन्त्रता प्राप्त थी। दास नमुचि ने तो स्त्रियों की एक सेना भी बनायी थी (५७८.९)। परन्तु आर्य इसके विरुद्ध थे (१२४९.१०)।

देव-रमणियों को यज्ञ में बुलाया जाता था (२३.९-१०)। इला को धर्मोपदेशिका बनाया गया था (३७.११)। इला पौरोहित्य कराती थीं। कहा जाता है कि आर्यों के अनुकरण पर यूनान में डीमेटर और पर्सीफोन की पुजारिनें भी उपदेशिका थीं और पौरोहित्य कराती थीं। बोर्नियो की कयान स्त्रियाँ भी धान बोने के समय पूजा कराती हैं। अमेरिका के रेड इंडियनों में भी यही बात है। ब्रिटेन के मन्दिरों में पूजा करानेवाली स्त्रियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं।

आर्य स्त्री के साथ यज्ञ करते थे (२०१.३)। ६०१.१५ और १२७४.१० में भी यही बात है। पितृगृह में वृद्धावस्था तक रहनेवाली घोषा (१२७०.३) ब्रह्मवादिनी महिला थी (१८४.५)। घोषा आदि अनेक महिलाओं ने अनेक सूक्तों का स्मरण वा निर्माण किया था। यह बात पहले लिखी जा चुकी है। स्त्रियाँ हवन करती थीं, उपदेश देती थीं और वेद पढ़ती थीं।

परन्तु यह बात आर्यजाति में ही थी। संसार की अन्य प्राचीन जातियों में तो स्त्रियाँ उपेक्षणीय थीं। जो जितनी स्त्रियाँ चाहता था, उतनी रख लेता था। पैगम्बर महम्मद के पहले अरब में जन्म लेते ही लड़कियाँ जला दी जाती थीं। एथेन्स और स्पार्टा में स्त्रियों की जो नारकीय दशा थी, वह इतिहास के विद्यार्थियों से छिपी हुई नहीं है।

प्रश्न हो सकता है कि तब इन दिनों स्त्रियों के लिए वेदाध्ययनादि का निषेध क्यों किया जाता है? इसका विस्तृत उत्तर 'आपस्तम्बधर्मसूत्र' (१.५.१-८) और 'हारीतस्मृति' (२१.२०-२३) आदि में दिया गया है। 'वीर-मित्रोदय' (संस्कार-प्रकाश) में भी यही उत्तर है—'स्त्रियाँ दो प्रकार की हैं—एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी साधारण। जो ब्रह्मवादिनी थीं, वे हवन करती थीं, घर में ही वेदाध्ययन

करती थीं और भिक्षा माँग कर खाती थीं।' यमस्मृति में कहा गया है—'पुराने समय में कन्याओं का उपनयन होता था (गोभिल-गृह्यसूत्र, २ य प्रपाठक), वे वेद पढ़ती थीं, गायत्री भी पढ़ती थीं; परन्तु उन्हें पिता, पितृव्य वा भ्राता ही पढ़ाते थे, दूसरा नहीं।' फलतः साधारण स्त्रियों के लिए ये बातें निषिद्ध थीं। इ दिनों तो किसी घोषा, विश्वावारा, अपाला, सुलभा, मैत्रेयी वा गार्गी वाचकनवीका अस्तित्व नहीं है। असाधारण स्त्रियों का कार्य साधारण स्त्रियाँ कैसे कर सकती हैं?

आर्य औरस पुत्र चाहते थे (७७६.२१)। अनौरस से दूर रहते थे (७८१.७)। पुत्र के अभाव में दौहित्र उत्तराधिकारी होता था (३९५.१)।

विशेष

यह भूमिका ऋग्वेद का अत्यन्त सूक्ष्मतम विहगावलोकन है। परन्तु ऋग्वेद के समान विशाल ज्ञानराशि की भूमिका हजार दो हजार पृष्ठों मे लिखी जाय, तो वह भी सूक्ष्म विहगावलोकन ही कही जायगी। भूमिका में लिखित विषयों के विस्तृत ज्ञान और अन्यान्य विषयों की व्यापक अभिज्ञता के लिए तो पाठकों को 'विषय-सूची' और 'हिन्दी ऋग्वेद' देखना चाहिए।

'ऋग्वेद के प्रायः प्रत्येक मन्त्र में आधिभौतिक, याज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थों की विमल मन्दाकिनी की पवित्र धारा बहती है। इन सभी अर्थों का विहगावलोकन करना किसी तापस ऋषि का ही कार्य है। ऋग्वेद का बहिरंग परिचय तो किसी उद्भट मनीषी के लिए शक्य भी हो सकता है; परन्तु अन्तरंग परिचय और समीक्षण तो वे ही कर सकते हैं, जो उसके स्मारक वा कर्त्ता हैं। वेदज्ञान असीम है और असीम को कोई कैसे शब्द-सीमा में बाँधेगा?'

भारतवर्ष में कुछ विद्वान् ऐसे हैं, जिनका उपर्युक्त मत है। वे यह भी कहते हैं कि 'वेद अध्यात्म-विद्या का अनन्त आगार है। उसमें विश्व के सनातन नियम प्रतिपादित हैं। वह देशकालातीत नियमों का वर्णन करता है। वह विश्व का नियामक है। वह सर्ग-स्थिति-प्रलय के शाश्वत नियम बताता है। उसके एक-एक मन्त्र में निगूढ़ रहस्य है। क्या कोई ऐसा भाष्यकार हो सकता है, जो "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" (२२.१७) मन्त्र के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थों को समझाते हुए अर्वाचीन विज्ञान के

सृष्टि-विद्या-संबन्धी सिद्धांत और पुराणों की त्रिविक्रम (वामन) विष्णुवाली कथा की संगति लगा सके? यदि नहीं, तो वेद का भाष्य (टीका) हो ही नहीं सकता।'

तो क्या वेद-संहिताओं को मंजूषा में बन्द करके रख दिया जाय और उन्हें दीमक चाट जायँ? इन पंक्तियों के लेखक का मत ऐसा नहीं है। लेखक यह अवश्य मानता है कि वेद-वारिधि अगाध है और इसकी 'अगाधता' इसलिए और भी अगम्य हो पड़ी है कि मन्त्र-गत विषयों का सिलसिलेवार विवरण नहीं है। यही त्रिविक्रम के परिक्रमण की बात, एक स्थान पर नहीं है—कितने ही अध्यायों और सूक्तों में, सैकड़ों मन्त्रों में अन्यान्य विषयों का कथन करते-करते, बीच-बीच में, आ जाती है। ऋग्वेद का 'दशराज्ञयुद्ध' अत्यन्त प्रख्यात है; परन्तु इसका विषय भी एक स्थान पर नहीं है, यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। अगणित मन्त्रों का अन्तर दे-देकर यह विषय कहा गया है। जिन-जिन मन्त्रों में यह विषय आया भी है, वे मन्त्र इतने अस्पष्ट हैं कि उनसे 'दाराज्ञयुद्ध' की संगति बैठाना बहुत ही श्रम-साध्य हो पड़ता है। प्रायः सभी विषयों की यही दशा है। किसी भी विषय का क्रमबद्ध विवरण कदाचित् ही मिलता है। बात यह है कि विभिन्न समयों में विविध ऋषियों ने नाना विषयों के मन्त्रों का स्मरण वा सृष्टि की और अपने-अपने मन्त्रों का उन्होंने सूक्त-रूप में अलग-अलग संकलन किया। प्रत्येक सूक्त में एक-एक विषय के प्रतिपादक मन्त्रों का संकलन या संग्रह भी नहीं है। एक ही सूक्त में अनेक विषय हैं। कितने ही सूक्तों के तो अनेक ऋषि भी हैं और अनेक देवता (वर्ण्य विषय) भी हैं। प्रसंग और प्रकरण का ठिकाना नहीं है। इन सूक्तों को पढ़कर विषयों की संगति लगाना इसीलिए दुरूह हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि वेद-भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा है; इसलिए वैदिक व्याकरण (प्रातिशाख्य), वैदिक कोष (निघण्टु-निरुक्त) और ब्राह्मण-ग्रन्थ आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना संस्कृत का उद्भट विद्वान् भी वेद-मन्त्रों का अर्थ नहीं समझ पाता। परन्तु इन ग्रन्थों में भी मन्त्रों और अर्थों का क्रमिक विवरण नहीं है, इनमें अनेक शब्दों का अर्थ भी नहीं मिलता, अनेक शब्द नानार्थक बताये गये हैं और अनेक शब्दों के अर्थ संदिग्ध हैं। इसलिए मन्त्रार्थ दुर्बोध्य हो पड़े हैं।

तीसरी बात यह है कि छापाखाना तो अभी कल का है—हजारों वर्षों से वेदाध्यायी ब्राह्मण सुन-सुनकर मन्त्रों को कण्ठस्थ करते

आये हैं—एक ने दूसरे से सुना, दूसरे ने तीसरे से और तीसरे ने चौथे से। इस तरह अनन्त काल से सुनते-सुनाते आते रहने से कितने ही शब्द अशुद्ध हो पड़े—बहुत मन्त्रों के पाठान्तर हो गये। इसलिए शुद्ध पाठ खोज निकालना और उनका यथार्थ अर्थ कर देना दुरधिगम्य हो गया।

चौथी बात यह है कि सुन-सुनाकर मन्त्र लिखनेवालों के दृष्टिदोष, प्रमाद, अल्पज्ञता, अज्ञता आदि के कारण भी मन्त्रों में पाठान्तर और अशुद्धियाँ हो गयी हैं। यह बात भी अर्थ-दुर्बोधता का कारण है।

पाँचवीं बात यह है कि उपर्युक्त विचार के लोगों ने मनमाने अर्थ कर डाले—सभी मन्त्रों में आध्यात्मिक आदि एक ही तरह का अर्थ ढूँढ़ डाला वा एक ही मन्त्र के द्विविध, चतुर्विध वा सप्तविध अर्थ कर डाले; जैसे आजकल रामायण की चौपाइयों के विविध अर्थ किये जाते हैं! परन्तु किसी भी ग्रन्थकर्ता का एक सिद्धान्त रहता है, एक उद्देश्य होता है और वह उसी को किसी मन्त्र, श्लोक, कारिका वा वार्तिक में व्यक्त करता है। कोई भी निर्माता वा लेखक अपनी समूची कृति को श्लेषालंकार का 'जामा' नहीं पहनाता। फिर भी ऋषि सीधे-सादे-सच्चे, स्थिरबुद्धि और स्थितप्रज्ञ थे। उनके लिए यह संभव ही नहीं है कि वे एक ही मन्त्र में द्विविध, त्रिविध, पंचविध वा सप्तविध उलझनों का जाल फैलाकर संसार को संशयात्मा बनावें। फलतः मन्त्रार्थों की मनमानी विविधता और एकदेशीयता माननेवालों के कारण भी मन्त्रार्थ अज्ञेय से हो रहे। ये बातें पहले भी कही गयी हैं।

लेखक के मत से किसी-किसी मन्त्र में एकाधिक विषय आ गये हैं, तो भी प्रत्येक मन्त्र का एक ही अर्थ है, एक ही उद्देश्य है। किसी मन्त्र का उद्देश्य आध्यात्मिक अर्थ बताना है, किसी का याज्ञिक, किसी का आधिदैविक और किसी का आधिभौतिक। किसी भी मन्त्र का लक्ष्य इन सब अर्थों का बताना नहीं है और न ऋग्वेद के सभी मन्त्रों का ध्येय एक ही प्रकार का—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि केवल एक—अर्थ बताना है। यही मत सायण आदि भाष्यकारों का भी है—यद्यपि कहीं-कहीं, उपर्युक्त कारणों से, वे भी सन्देह में पड़ कर कई अर्थ कर बैठे हैं।

पाठान्तरों का भ्रम दूर करने के लिए पद-पाठ से लेकर घनपाठ तक का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्वरों का नियम-बद्ध ज्ञान पाने के लिए प्रातिशाख्य का स्वाध्याय करना चाहिए। अर्थावगति के लिए

ब्राह्मण-ग्रन्थ, निरुक्त और विविध वैदिक कोष आदि का अध्ययन करना चाहिए। किस मन्त्र का किस प्रकार का अर्थ है, इसे जानने के लिए सायण आदि प्राचीन भाष्य देखने चाहिए। इतना सब करने पर भी मन्त्रार्थ में यदि सन्देह ज्ञात हो तो इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि देखकर परम्परा-प्राप्त अर्थ ग्रहण करना चाहिए। परम्पराप्राप्त अर्थ सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रसंगतः यह बात भूमिका में लिखी भी जा चुकी है।

इन सब साधनों से वेद-मन्त्रों का तात्त्विक अर्थ समझ में आ जाता है। अवश्य ही कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका अर्थ समझ में नहीं आता। ऐसे शब्दों का निघण्टु-निरुक्त में अलग परिगणन किया गया है। परन्तु ऐसे शब्द असंख्य नहीं हैं, गिने-गिनाये हे। समग्र वैदिक वाङ्मय और संस्कृत-साहित्य का मन्थन करके विद्वानों को इन परिगणित शब्दों का भी अर्थ खोज निकालना चाहिए। किसी भी मन्त्र को लेकर कई छायावादी कवियों की तरह उड़ान भरने से वा वेद को विचित्र और अनिर्वचनीय वस्तु समझ लेने से कोई लाभ नहीं है। वेद को 'हौवा' बनाना व्यर्थ है।

इसमें संदेह नहीं कि वेद का एक-एक मन्त्र अत्यन्त सूक्ष्मतम सूत्र में कहा गया है और एक-एक मन्त्र की अभिव्यञ्जना-संपत् और ध्वनिशक्ति महती है। एक-एक शब्द की विराट् अभिधा है। एक-एक मन्त्र का जितना ही मनन किया जाता है, उत्तरोत्तर उतनी ही विशाल भावना मनः-प्राणों को आनन्द-सागर में डुबोती जाती है। यही कारण है कि वेद के एक-एक मन्त्र को लेकर एक-एक ग्रंथ की रचना की गई है, एक-एक शब्द पर एक-एक इतिहास लिखा गया है और एक-एक अक्षर पर एक-एक हजार श्लोक रचे गये हैं।

इन दिनों देश भर में श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा की धूम मची हुई है; गीता है भी ऐसी ही महत्व-पूर्ण पुस्तक। परन्तु शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन-संहिता के ४०वें अध्याय के प्रथम दो मन्त्रों ("ईशा-वास्यमिदम्" और "कुर्वन्नेवेह") के आधार पर ही गीता के १८ अध्याय और ७०० श्लोक बने हैं। ऋग्वेद के मान्धाता, दधीचि, नहुष आदि एक एक शब्द को लेकर महाभारत, पुराण आदि में विस्तृत इतिहास रचा गया है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं और एक-एक अक्षर को लेकर बाल्मीकि ने रामायण के एक-एक हजार श्लोक बनाये। इस तरह उन्होंने बाल्मीकीय रामायण के २४ हजार श्लोक कहे—"चतुर्विंशति-साहस्र्यं श्लोकानामुक्तवानृषिः।" इसी से कहा

जाता है—'समस्त संस्कृत-साहित्य वेद की व्याख्या है। वेद-विरुद्ध एक शब्द न तो कोई शास्त्रकर्त्ता सुनना चाहता है और न एक भी आस्तिक हिन्दू सुनना चाहता है। हिन्दुओं में जो नास्तिक हैं उनमें भी वेदत्व का इतना गहरा संस्कार है कि वे भी बात-बात पर अपने प्राणों की 'आहुति देते रहते हैं और छोटे-मोटे कार्यों की समाप्ति पर 'यज्ञ सम्पन्न' करते रहते हैं। उन्हें भी किसी उच्चतम भाव को व्यक्त करने के लिए आहुति और 'यज्ञ' शब्द से बढ़कर कोई शब्द नहीं मिलता। विश्व का उच्चतम कोटि का ऐतिहासिक यदि अपनी इतिहास-विद्या के संवर्द्धन में वेद का एक शब्द भी पा जाता है, तो आनन्द के मारे नाचने लगता है। वेद के शब्दों में ऐसी ही ताजगी, तारुण्य, जीवट और प्रामाणिकता है। इसी लिए अनन्त काल से वेद पर हिन्दू जाति की अविचल श्रद्धा है। लोकमान्य तिलक के शब्दों में वेद को स्वतः प्रमाण मानना हिन्दू होने का अनिवार्य लक्षण है—"प्रामाण्य-बुद्धिर्वेदेषु।"

वेद हिन्दू-धर्म की मूल पुस्तक है—"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (मनुस्मृति २.६)। वेद हिन्दू-जाति के प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र-धर्म, यज्ञ-रहस्य, सत्य, त्याग आदि को दर्पण की तरह दिखाता है।

आर्य-जाति की संस्कृति, सदाचार, देशसेवा, वर्चस्व, वीरता, तेज, स्फूर्ति आदि समग्र सद्‌गुणावली जानने के लिए वेद प्रामाणिक और सुदृढ आधार है। इसी लिए मनुजी ने लिखा है—'जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) वेद न पढ़कर किसी भी शास्त्र वा कार्य में परिश्रम करता है, वह जीते जी, अपने कुल के साथ, बहुत शीघ्र शूद्र हो जाता है—

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥" (२.१६८)

जैमिनि ऋषि के मत से वेद की किसी एक संहिता का स्वाध्याय भी वेदाध्ययन माना जाता है। वेद का मर्म और रहस्य समझनेवाले मनुजी ने तो यह भी लिखा है कि 'वेद न पढ़कर और यज्ञ न करके जो मुक्ति पाने की चेष्टा करता है, वह नरक जाता है' (मनु० ६.३७)। 'इस संसार में वेदाध्ययन ही तपस्या है' (मनु० २.१६६)। 'वेदाध्ययन करके ही गृहस्थाश्रम में जाना चाहिए' (३.२)। मनु ने ईश्वर न माननेवाले को नास्तिक नहीं कहा है, प्रत्युत 'वेद-निन्दक को नास्तिक' कहा है (२.११)। वस्तुतः वेद ऐसा ही अद्‌भुत ज्ञान है।

वेद संस्कृत-साहित्य का आकर है, हिन्दूधर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दुत्व की थाती है, आर्य-सभ्यता का उद्भव-स्थान है; इसी लिए हिन्दू वेद की महिमा-गरिमा बखानते है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। वेद के वेदत्व और वेद की सर्वांगपूर्णता पर संसार के वे सभी विद्वान् मुग्ध है, जिन्होंने विमल वैदिक ज्ञान की खोज में अपना समय और श्रम दिया है। क्यूजिन का मत है—'संसार की प्राचीन जातियों में ईश्वर के लिए आये हुए सभी शब्द वैदिक 'देव' शब्द से निकले हैं।' 'दि बाइबल इन इंडिया' में जकोलियट ने लिखा है—'धर्म-ग्रन्थों में एकमात्र वेद ही ऐसा है, जिसके विचार वर्तमान विज्ञान से मिलते हैं; क्योंकि वेद में भी विज्ञानानुसार जगत् की रचना का प्रतिपादन किया गया है।' 'सेक्स और सेक्स-वारशिप' (पृष्ठ ८) में वाल साहब ने स्वीकार किया है कि 'हिन्दुओं का धर्म-ग्रन्थ ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है।' रैगोजिन का कहना है—'ऋग्वेद का समाज बड़ी सादगी, निष्कपटता और सुन्दरता का था।' फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् वाल्टेयर का मत है—'केवल इसी देन (ऋग्वेद) के लिए पूर्व का पश्चिम ऋणी रहेगा।' वैदिक साहित्य और विशेषतः ऋग्वेद पर अपने जीवन का अत्यधिक अमूल्य समय व्यय करनेवाले मैक्समूलर ने लिखा है—

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावदृग्वेद-महिमा लोकेषु प्रचरिष्यति॥"

अर्थात् जब तक पृथिवी पर नदियां और पर्वत रहेंगे, तब तक संसार के मनुष्यों में ऋग्वेद की महिमा का प्रचार रहेगा।

बहुत ठीक। परन्तु इस महानिधि की प्राण-पण से रक्षा किसने की? ब्राह्मणों ने। हजारों हजार वर्षों से ब्राह्मण-जाति विराट् वैदिक वाङ्मय और विशाल संस्कृत-साहित्य को कण्ठस्थ कर सुरक्षित रखती आ रही है। क्या इन ब्राह्मणों से सभ्य संसार और विशेषतः हिन्दू-जाति कभी 'उऋण' हो सकती है? इन ब्राह्मणों ने ऐसा नहीं किया होता, तो क्या अपार आर्य-साहित्य हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और आर्य-सभ्यता का नाम भी दुनिया सुनती? इस महत्कार्य के लिए ब्राह्मणों ने त्याग और तपस्या का जीवन बिताया, भारतवर्ष का राज्य छोड़ दिया, लक्ष्मी को लात मार दी, स्वेच्छया दरिद्र जीवन का वरण किया और सरस्वती की अनन्य उपासना की। यदि व्यास, वसिष्ठ, परशुराम, द्रोण चाणक्य और समर्थ रामदास की सोलह आने में एक आना भी कामना रहती, तो आज तक भारतवर्ष पर केवल ब्राह्मणों का राज्य रहता। परन्तु—

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
स तु कृच्छ्राय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥"

अर्थात् ब्राह्मण का यह शरीर विलासिता करने, धन बटोरने या राज्य करने जैसे छोटे कामों के लिए नहीं है। यह तो जीवन में घनघोर तप के लिए और शरीरपात होने पर सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिए है।

प्रसिद्ध वेद-भक्त, धर्म-प्राण और बनैली-राज्याधिपति कुमार कृष्णानन्द सिंह की सहायता से उनके विद्वान् प्राइवेट सेक्रेटरी पंडित गौरीनाथ झा के द्वारा इन पंक्तियों के लेखक का किया हुआ ऋग्वेद का हिन्दी-अनुवाद कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर से, कई वर्ष पहले, प्रकाशित हुआ था। उस संस्करण में मूल मन्त्र ऊपर छपे थे, अनन्तर संख्या-क्रम से प्रत्येक मन्त्र का हिन्दी-अनुवाद दिया गया था और सर्वान्त में महत्त्वपूर्ण स्थलों पर टिप्पनियाँ दी गई थीं। परन्तु भूमिका और विषय-सूची अतीव संक्षिप्त थीं। अब की बार भूमिका और विषय-सूची विस्तृत हैं। अत्यधिक परिश्रम करके विषय-सूची को सर्वांगपूर्ण बनाने की चेष्टा की गयी है। ऋग्वेद-संहिता पर ऐसी ही सूचियाँ तैयार करके विद्वानों के द्वारा शोध और अनुसन्धान का श्रम-साध्य कार्य भी किया जा सकता है।

जीवन भर लेखक का यह सुदृढ़ विचार रहा है कि पक्षपात-शून्य होकर अपने विचार प्रकट किये जायँ। तो भी हो सकता है कि इस भूमिका और अनुवाद से किन्हीं वेद-विद्वान् का मत-भेद हो। यह भी हो सकता है कि लेखक के दृष्टि-दोष, अज्ञता और अल्पज्ञता के कारण भी इस ग्रन्थ में कोई त्रुटि रह गई हो। ऐसी त्रुटि और कमी के लिए लेखक क्षमा-याचक है।

ऋग्वेद अपार, अगाध और अद्भुत ज्ञान-राशि है। यह ज्ञान-राशि विश्व-मानवों और भारतीयों के हृदय और मस्तिष्क को प्रोज्ज्वल और प्रदीप्त करे, वर्तमान जन-राज्य में इसकी महिमा और प्रसार बढ़े, इसकी आज्ञा और आदेश के अनुसार हम अपने जीवन-लक्ष्य को अधिगत करें, हमारा पथ निष्कंटक, मंगलमय और आनन्द-वाहक हो—यही पावन प्रार्थना हम प्रसन्नात्मा प्रभु से प्रतिदिन करें।

ग्राम कूसी,
डाकघर दिलदारनगर,
जिला गाजीपुर

रामगोविन्द त्रिवेदी
श्रीरामनवमी, २०११ विक्रमाब्द

विषय सूची

प्रथम अष्टक

प्रथम मण्डल

प्रथम अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

द्वितीय अष्टक

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

तृतीय मण्डल

तृतीय अष्टक

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

पंचम मण्डल

चतुर्थ अष्टक

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

षष्ठ मण्डल

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

पंचम अष्टक

प्रथम अध्याय

सप्तम मण्डल

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

अष्टम अध्याय

षष्ठ अष्टक

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

षष्ठ अध्याय

पंचम अध्याय

दशम मण्डल

षष्ठ अध्याय

अष्टम अष्टक

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

अष्टम अध्याय समाप्त

दशम मण्डल समाप्त

अष्टम अष्टक समाप्त

"हिन्दी ऋग्वेद" की विषय-सूची समाप्त

हिन्दी ऋग्वेद

१ अष्टक

[१ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक]

१ सूक्त

(यहाँ से लेकर १० सूक्तों तक के विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा ऋषि है। यहाँ से गायत्री छन्द के मन्त्र प्रारम्भ हैं। इस सूक्त के देवता अग्नि हैं।)

१. यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमान्, देवों को बुलानेवाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।

२. प्राचीन ऋषियों ने जिसकी स्तुति की थी, आधुनिक ऋषि जिसकी स्तुति करते हैं, वह अग्नि देवों को इस यज्ञ में बुलावे।

३. अग्नि के अनुग्रह से यजमान को धन मिलता है और वह धन अनुदिन बढ़ता और कीर्त्तिकर होता है तथा उससे अनेक वीर पुरुषों की नियुक्ति की जाती है।

४. हे अग्निदेव! जिस यज्ञ को तुम चारों ओर से घेरे रहते हो, उसमें राक्षसादि-द्वारा हिंसा-कर्म सम्भव नहीं है और वही यज्ञ देवों को तृप्ति देने स्वर्ग जाता है या देवताओं का सामीप्य प्राप्त करता है।

५. हे अग्नि! तुम होता, अशेषबुद्धिसम्पन्न या सिद्धकर्मा, सत्य-परायण, अतिशय कीर्त्ति से युक्त और दीप्तिमान् हो। देवों के साथ इस यज्ञ में आओ।

६. हे अग्नि! तुम जो हविष्य देनेवाले यजमान का कल्याण-साधन करते हो, वह कल्याण, हे अङ्गिरः! वास्तव में तुम्हारा ही प्रीति-साधक है।

७. हे अग्नि! हम अनुदिन, दिन-रात, अन्तस्तल के साथ तुम्हें नमस्कार करते-करते तुम्हारे पास आते हैं।

८. हे अग्नि! तुम प्रकाशमान, यज्ञ-रक्षक, कर्मफल के द्योतक और यज्ञशाला में वर्द्धनशाली हो।

९. जिस तरह पुत्र पिता को आसानी से पा जाता है, उसी तरह हम भी तुम्हें पा सकें या तुम हमारे अनायास-लभ्य बनो और हमारा मंगल करने के लिए हमारे पास निवास करो।

२ सूक्त

(देवता वायु आदि)

१. हे प्रियदर्शन वायु! आओ। सोमरस तैयार है। इसे पान करो और पान के लिए हमारा आह्वान सुनो।

२. हे वायुदेव! यज्ञज्ञाता स्तोता लोग अभिषुत या अभिषवादि संस्कार-रूप प्रक्रिया-विशेष-द्वारा परिशोधित सोमरस के साथ तुम्हारे उद्देश्य से स्तुति-वचन कहकर तुम्हारा स्तव करते हैं।

३. हे वायु! तुम्हारा सोमगुण-प्रकाशक वाक्य सोमरस पीने के लिए हव्यदाता यजमान और अनेक लोगों के निकट जाता है।

४. हे इन्द्र और वायु! दोनों अन्न लेकर आओ; सोमरस तैयार है; यह तुम दोनों की अभिलाषा करता है।

५. हे वायु और इन्द्र! तुम सोमरस तैयार जानो। तुम अन्नसहित हव्य में रहनेवाले हो। शीघ्र यज्ञ-क्षेत्र में आओ।

६. हे वायु और इन्द्र! सोमरस के दाता यजमान के सुसंस्कृत सोमरस के पास आओ। हे देवद्वय! तुम्हारे आगमन से यह कर्म शीघ्र सम्पन्न होगा।

७. मैं पवित्र-बल मित्र और हिंसक-रिपु-विनाशक वरुण को यज्ञ में बुलाता हूँ। वे दोनों घृताहुति-दान-स्वरूप कर्म करते हैं।

८. हे यज्ञ-वर्द्धक और यज्ञ-स्पर्शी मित्र और वरुण! तुम लोग, यज्ञ-फल देने के लिए, इस विशाल यज्ञ को व्याप्त किये हुए हो।

९. इन्द्र और वरुण बुद्धिसम्पन्न, जनहितकारी और विविध-लोकाश्रय हैं। वे हमारे बल और कर्म की रक्षा करें।

३ सूक्त

(देवता अश्विद्वय)

१. हे क्षिप्रबाहु, सुकर्मपालक और विस्तीर्ण-भुज-संयुक्त अश्विद्वय! तुम लोग यज्ञीय अन्न को ग्रहण करो।

२. हे विविधकर्मा, नेता और पराक्रमशाली अश्विद्वय! आदर-युक्त बुद्धि के साथ हमारी स्तुति सुनो।

३. हे शत्रुनाशन, सत्यभाषी और शत्रुदमनकारी अश्विद्वय! सोमरस तैयार कर छिन्न कुशों पर रक्खा हुआ है; तुम आओ।

४. हे विचित्र-दीप्ति-शाली इन्द्र! अँगुलियों से बनाया हुआ नित्य-शुद्ध यह सोमरस तुम्हें चाहता है; तुम आओ।

५. हे इन्द्र! हमारी भक्ति से आकृष्ट होकर और ब्राह्मणों-द्वारा आहूत होकर सोम-संयुक्त वाघत् नाम के पुरोहित की प्रार्थना ग्रहण करने आओ।

६. हे अश्वशाली इन्द्र! हमारी प्रार्थना सुनने शीघ्र आओ। सोमरस-संयुक्त यज्ञ में हमारा अन्न धारण करो।

७. हे विश्वेदेवगण! तुम रक्षक हो तथा मनुष्यों के पालक हो। तुम हव्यदाता यजमान के प्रस्तुत सोमरस के लिए आओ। तुम यज्ञ-फल-दाता हो।

८. जिस तरह सूर्य की किरणें दिन में आती हैं, उसी तरह वृष्टिदाता विश्वेदेव शीघ्र प्रस्तुत सोमरस के लिए आगमन करें।

९. विश्वेदेवगण अक्षय, प्रत्युत्पन्नमति, निर्वैर और धन-वाहक हैं। वे इस यज्ञ में पधारें।

१०. पतितपावनी, अन्न-युक्त और धनदात्री सरस्वती धन के साथ हमारे यज्ञ की कामना करें।

११. सत्य की प्रेरणा करनेवाली, सुबुद्धि पुरुषों को शिक्षा देनेवाली सरस्वती हमारा यज्ञ ग्रहण कर चुकी हैं।

१२. प्रवाहित होकर सरस्वती ने जलराशि उत्पन्न की है और इसके सिवा समस्त ज्ञानों का भी जागरण किया है।

४ सूक्त

(२ अनुवाक। देवताइन्द्र)

१. जिस तरह दूध दुहनेवाला दोहन के लिए गाय को बुलाता है, उसी प्रकार अपनी रक्षा के लिए हम भी सत्कर्मशील इन्द्र को प्रतिदिन बुलाते हैं।

२. हे सोमपानकर्त्ता इन्द्र! सोमरस पीने के लिए हमारे त्रिषवण-यज्ञ के निकट आओ। तुम धनशाली हो; प्रसन्न होने पर गाय देते हो।

३. हम तुम्हारे पास रहनेवाले बुद्धिशाली लोगों के बीच पड़कर तुम्हें जानें। हमारी उपेक्षा कर दूसरों में प्रकाशित न होना। हमारे पास आओ।

४. हिंसा-द्वेष-रहित और प्रतिभाशाली इन्द्र के पास जाओ और मुझ मेधावी की कथा जानने की चेष्टा करो। वही तुम्हारे बन्धुओं को उत्तम धन देते हैं।

५. सदा इन्द्र-सेवक हमारे सम्बन्धी पुरोहित लोग इन्द्र की स्तुति करें और इन्द्र के निन्दक इस देश और अन्य देशों से भी दूर हो जायें।

६. हे रिपुमर्दन इन्द्र! तुम्हारी कृपा से शत्रु और मित्र—दोनों हमें सौभाग्यशाली कहते हैं। हम इन्द्र के प्रसाद-प्राप्त सुख में निवास करें।

७. यह सोमरस शीघ्र मादक और यज्ञ का सम्पत्स्वरूप है। यह मनुष्य को प्रफुल्लकर्त्ता, कार्य-साधनकर्त्ता और हर्ष-प्रदाता इन्द्र का मित्र है। यज्ञ-व्यापी इन्द्र को इसे दो।

८. हे शतयज्ञकर्त्ता इन्द्र! इसी सोमरस का पान कर तुमने वृत्र आदि शत्रुओं का विनाश किया था और रणाङ्गण में अपने योद्धाओं की रक्षा की थी।

९. हे शतक्रतु इन्द्र! तुम संग्राम में वही योद्धा हो। इन्द्र! धन-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें हविष्य देते हैं।

१०. जो धन के त्राता और महापुरुष हैं, जो सत्कर्म-पालक और भक्तों के मित्र हैं, उन इन्द्र को लक्ष्य कर गाओ।

५ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. हे स्तुतिकारक सखा लोग! शीघ्र आओ और बैठो तथा इन्द्र को लक्ष्य कर गाओ।

२. सोमरस के तैयार हो जाने पर सब लोग एकत्र होकर बहु-शत्रु-विध्वंसक और श्रेष्ठ धन के धनपति इन्द्र को लक्ष्य कर गाओ।

३. अनन्तगुण-सम्पन्न वे ही इन्द्र हमारे उद्देश्यों का साधन करें, धन दें, बहुविध बुद्धि प्रदान करें और अन्न को साथ लेकर हमारे पास आगमन करें।

४. युद्ध के समय में जिन देवता के रथ-युक्त अश्वों के सामने शत्रु नहीं आते, उन्हीं इन्द्र को लक्ष्य कर गाओ।

५. यह पवित्र, स्नेहगुण-संयुक्त और विशुद्ध सोमरस सोमपान करनेवाले के पानार्थ उसके पास आप ही जाता है।

६. हे शोभनकर्मा इन्द्र! सोमपान के लिए, सदा से ज्येष्ठ होने के कारण, तुम सबके आगे रहते हो।

७. हे स्तुति-पात्र इन्द्र! सवनत्रय-व्याप्त सोमरस तुम्हें प्राप्त हो और उच्च ज्ञान की प्राप्ति में तुम्हारा मंगलकारी हो।

८. हे सौ यज्ञों के करनेवाले इन्द्र! तुमको सोममंत्र और ऋक्-मंत्र—दोनों प्रतिष्ठित कर चुके हैं। हमारी स्तुति भी तुमको प्रतिष्ठित या संवर्द्धित करे।

९. इन्द्र रक्षा में सदा तत्पर रहकर यह सहस्र-संख्यक अन्न ग्रहण करें। इसी अन्न या सोमरस में पौरुष रहता है।

१०. हे स्तवनीय इन्द्र! तुम सामर्थ्यवान् हो। ऐसा करना कि विरोधी हमारे शरीर पर आघात न कर सकें। हमारा वध न होने देना।

६ सूक्त

(देवता इन्द्र और मरुद्गण)

१. जो प्रतापान्वित सूर्य-रूप से, हिंसा-शून्य अग्नि-रूप से और विहरण-कर्त्ता वायु-रूप से अवस्थित हैं, उन्हीं इन्द्र से सब लोकों में रहनेवाले मनुष्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

२. वे मनुष्य इन्द्र के रथ में सुन्दर, तेजस्वी, लाल और पुरुष-वाहक हरि नाम के घोड़ों को संयोजित करते हैं।

३. हे मनुष्यो! सूर्यात्मा इन्द्र बेहोश को होश में करके और रूप-विरहित को रूप-दान करके प्रचंड किरणों के साथ उग रहे हैं।

४. इसके अनन्तर मरुद्गण ने यज्ञोपयोगी नाम धारण करके अपने स्वभाव के अनुकूल, बादल के मध्य जल की गर्भाकार रचना की।

५. इन्द्र! विकट स्थान को भी भेदन करनेवाले और प्रवहमान मरुद्गण के साथ तुमने गुफा में छिपी हुई गायों को खोजकर उनका उद्धार किया था।

६. स्तुति करनेवाले देव-भाव की प्राप्ति के लिए धन-सम्पन्न, महान् और विख्यात मरुद्गण को लक्ष्य कर इन्द्र की तरह स्तुति करते हैं।

७. हे मरुद्गण ! तुम लोगों की इन्द्र से संकोच-रहित अभिन्नता देखी जाती है। तुम लोग सदा प्रसन्न और समान-प्रकाश हो।

८. निर्दोष, सुरलोकाभिगत और कामना के विषयीभूत मरुद्गण के साथ इन्द्र को बलिष्ठ समझकर यह यज्ञ पूजा करता है।

९. सर्वदिशा-व्यापक मरुद्गण! अन्तरिक्ष, आकाश या ज्वलन्त सूर्यमंडल से आओ। इस यज्ञ में पुरोहित लोग तुम लोगों की भली भाँति स्तुति करते हैं।

१०. हम इन इन्द्र के निकट इसलिए याचना करते हैं कि ये पृथिवी, आकाश और महान् वायु-मण्डल (अन्तरिक्ष) से हमें धन-दान दें।

७ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. सामवेदियों ने साम-गान-द्वारा, ऋग्वेदियों ने वाणी-द्वारा और यजुर्वेदियों ने वाणी-द्वारा इन्द्र की स्तुति की है।

२. इन्द्र अपने दोनों घोड़ों को बात की बात में जोतकर सबके साथ मिलते हैं। इन्द्र वज्रयुक्त और हिरण्यमय हैं।

३. दूरस्थ मनुष्यों को देखने के लिए ही इन्द्र ने सूर्य को आकाश में रक्खा है। सूर्य अपनी किरणों-द्वारा पर्वतों को आलोकित किये हुए हैं।

४. उग्र इन्द्र! अपनी अप्रतिहत रक्षण-शक्ति-द्वारा युद्ध और लाभकारी महासमर में हमारी रक्षा करो।

५. इन्द्र हमारे सहायक और शत्रुओं के लिए वज्रधर हैं; इसलिए हम धन और महाधन के लिए इन्द्र का आह्वान करते हैं।

६. अभीष्ट-फलदाता और वृष्टिप्रद इन्द्र! तुम हमारे लिए इस मेघ को भेदन करो। तुमने कभी भी हमारी प्रार्थना अस्वीकार नहीं की।

७. जो विविध स्तुति-वाक्य विभिन्न देवताओं के लिए प्रयुक्त होते हैं, सो सब वज्रधारी इन्द्र के हैं। इन्द्र की योग्य स्तुति मैं नहीं जानता।

८. जिस तरह विशिष्ट-गतिवाला बैल अपने गो-दल को बलवान् करता है, उसी प्रकार इच्छित-वितरण-कर्त्ता इन्द्र मनुष्य को बलशाली करते हैं। इन्द्र शक्ति-सम्पन्न हैं और किसी की याचना को अग्राह्य नहीं करते।

९. जो इन्द्र मनुष्यों, धन और पञ्चक्षिति के ऊपर शासन करनेवाले हैं।

१०. सबके अग्रणी इन्द्र को तुम लोगों के लिए हम आह्वान करते हैं। इन्द्र हमारे ही हैं।

८ सूक्त

(३ अनुवाक इन्द्र देवता)

१. इन्द्र! हमारी रक्षा के लिए भोग के योग्य, विजयी और शत्रु-जयी यथेष्ट धन दो।

२. उस धन के बल से सदा-सर्वदा मुष्टिकाघात करके हम शत्रु को दूर करेंगे या तुम्हारे द्वारा संरक्षित होकर हम घोड़ों से शत्रु को दूर करेंगे।

३. इन्द्र! तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम कठिन अस्त्र धारण करके दाह करनेवाले शत्रु को पराजित करेंगे।

४. इन्द्र! तुम्हारी सहायता से हम हथियारबन्द लड़ाकों की सुसज्जित सेनावाले शत्रु को भी जीत सकेंगे।

५. इन्द्रदेव महान् सर्वोच्च हैं। वज्रवाही इन्द्र को महत्त्व आश्रय करे। इन्द्र की सेना आकाश के समान विशाल है।

६. जो पुरुष रण-स्थली में जानेवाले हैं, पुत्र-प्राप्ति के इच्छुक हैं अथवा जो विशेषज्ञ ज्ञानाकाङ्क्षा में तत्पर हैं, वे सब इन्द्र की स्तुति-द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं।

७. इन्द्र का जो उदरदेश सोमरस-पान के लिए तत्पर रहता है, वह सागर की तरह विशाल है। वह उदर जीभ के जल की तरह कभी नहीं सूखता।

८. इन्द्र के मुख से निकला हुआ वाक्य सत्य, वैचित्र्य-विशिष्ट, महान् और गो-प्रदाता है और हव्यदाता यजमान के पक्ष में तो वह वाक्य पके हुए फलों से संयुक्त वृक्ष-शाखा के समान है।

९. इन्द्र! तुम्हारा ऐश्वर्य ही ऐसा है। वह हमारे जैसे हव्यदाता का रक्षक और शीघ्र फलदायी है।

१०. इन्द्र के सामवेदीय और ऋग्वेदीय मंत्र इन्द्र को अभिलषित हैं और इन्द्र के सोमपान के लिए वक्तव्य हैं।

९ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. इन्द्र! आओ। सोमरस-रूप खाद्यों से हृष्ट बनो। महाबल-शाली होकर शत्रुओं में विजयी बनो।

२. यदि प्रसन्नतादायक और कार्य-सम्पादन में उत्तेजक सोमरस तैयार हो तो, हर्ष-युक्त और सकल-कर्म-साधक इन्द्र को उत्सर्ग करो।

३. हे सुन्दर नासिकावाले और सबके अधीश्वर इन्द्र! प्रसन्नता-कारक स्तुतियों से प्रसन्न हो और देवों के साथ इस सवन-यज्ञ में पधारो।

४. इन्द्र! मैंने तुम्हारी स्तुति की है। तुम इच्छित-वर्षक और पालन-कर्त्ता हो। मेरी स्तुति तुम्हें प्राप्त हुई है; तुमने उसे ग्रहण कर लिया है।

५. इन्द्रदेव! उत्तम और नानाविध सम्पत्ति हमारे सामने भेजो। पर्याप्त और प्रचुर धन तुम्हारे पास ही है।

६. अनन्त-सम्पत्तिशाली इन्द्र! धन-सिद्धि के लिए हमें इस कर्म में संयुक्त करो। हम उद्योगी और यशस्वी हैं।

७. इन्द्रदेव! गौ और अन्न से युक्त, प्रचुर और विस्तृत, सारी आयु चलने योग्य और अक्षय धन हमें दो।

८. इन्द्र! हमें महती कीर्ति, बहुदान-सामर्थ्ययुत धन और अनेक-रथपूर्ण अन्न दान करो।

९. धन की रक्षा के लिए हम स्तुति करके इन्द्र को बुलाते हैं। इन्द्र धन रक्षक, ऋचा-प्रिय और यज्ञ-गमन-कर्त्ता हैं।

१०. प्रत्येक यज्ञ में यजमान लोग सदाधिवासी और प्रौढ़ इन्द्र के महान् पराक्रम की प्रशंसा करते हैं।

१० सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द अनुष्टुप्)

१. शतक्रतु इन्द्र! गायक तुम्हारे उद्देश्य से गान करते हैं। पूजक पूजनीय इन्द्र की अर्चना करते हैं। जिस प्रकार नर्त्तक वंश-खण्ड को उन्नत करते हैं, उसी प्रकार स्तुति करनेवाले ब्राह्मण तुम्हें ऊँचा उठाते हैं।

२. जब सोमलता के लिए एक पर्वत-मार्ग से दूसरे पर्वत-प्रदेश को यजमान जाता और अनेक कर्म सिर पर उठाता है, तब इन्द्र यजमान का मनोरथ जानते और इच्छित-वर्षण के लिए उत्सुक होकर मरुद्-दल के साथ यज्ञ-स्थल में आने को प्रस्तुत होते हैं।

३. अपने केशर-संयुक्त, पराक्रमी और पुष्टांग दोनों घोड़ों को रथ में जोड़ो। इसके बाद हमारी स्तुति सुनने के लिए आओ।

४. हे जनाश्रय इन्द्र! आओ। हमारी स्तुति की प्रशंसा करो; समर्थन करो और शब्दों से आनन्द प्रकाश करो। इसके सिवा हमारा अन्न और यज्ञ एक साथ ही बढ़ाओ।

५. अनन्त-शत्रु-निवारक इन्द्र के उद्देश्य से ऋग्वेद के गीत परिवर्द्धमान हैं, जिनसे शक्तिशाली इन्द्र हम लोगों के पुत्रों और बन्धुओं के बीच महानाद करें।

६. हम लोग मैत्री, धन और शक्ति के लिए इन्द्र के पास जाते हैं और शक्तिशाली इन्द्र हमें धन देकर हमारी रक्षा करते हैं।

७. इन्द्र! तुम्हारा दिया हुआ धन सर्वत्र फैला हुआ और सुख-प्राप्य है। हे वज्रधारक इन्द्र! गौ का वसति-द्वार उद्‌घाटन करो और धन सम्पादन करो।

८. इन्द्रदेव! शत्रु-वध के समय में स्वर्ग और मर्त्य दोनों ही तुम्हारी महिमा को धारण नहीं कर सकते। स्वर्गीय जल-वृष्टि करो और हमें गौ दो।

९. इन्द्र! तुम्हारे कान चारों तरफ़ सुन सकते हैं; इसलिए हमारा आह्वान शीघ्र सुनो। हमारी स्तुति धारण करो। हमारा यह स्तोत्र और हमारे मित्र का स्तोत्र अपने पास रक्खो।

१०. इन्द्र! हम तुम्हें जानते हैं। तुम यथेप्सित वर्षा करते हो। लड़ाई के मैदान में तुम हमारी पुकार सुनते हो। इष्ट-साधक तुमको अशेष-सुख-साधक रक्षण के लिए हम बुलाते हैं।

११. इन्द्र! शीघ्र हमारे पास आओ। हे कुशिक ऋषि के पुत्र! प्रसन्न होकर सोमरस पान करो। कार्यकारी शक्ति बढ़ाओ। इस ऋषि को सहस्र-धन-सम्पन्न करो।

१२. हे स्तवनीय इन्द्र! चारों ओर से यह स्तुति तुम्हारे पास पहुँचे। तुम चिरायु हो; तुम्हारा अनुगमन करके यह स्तुति बढ़ती पावे। तुम्हारा संतोष-साधन करके यह स्तुति हमारे लिए प्रीतिकर हो।

११ सूक्त

(देवता इन्द्र। मधुच्छन्दा ऋषि के पुत्र जेता ऋषि)

१. सागर की तरह व्यापक, रथि-श्रेष्ठ, अन्नपति और साधु-रक्षक इन्द्र को हमारी सारी स्तुतियां परिवर्द्धित कर चुकी हैं।

२. बलपति इन्द्र! तुम्हारी मित्रता से हम ऐसे शक्तिशाली हों

कि, हमें भय न मालूम पड़े। इन्द्र! तुम जयशील और अपराजेय हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

३. इन्द्र का धन-दान चिर प्रसिद्ध है। यदि इन्द्र प्रार्थी लोगों को गो-संयुक्त और सामर्थ्य-सम्पन्न धन-दान करें तो प्राणियों की चिर रक्षा होगी।

४. युवा, मेधावी, प्रभूत-बलशाली, सब कर्मों के परिपोषक, वज्रधारी और सर्व-स्तुत इन्द्र ने असुरों के नगर-विदारक रूप से जन्म ग्रहण किया था।

५. वज्र-युक्त इन्द्र! तुमने गो-हरण-कर्त्ता बल नाम के असुर की गुहा उद्घाटित की थी। उस समय बलासुर के निपीड़ित होने पर देव लोगों ने निर्भय होकर तुम्हें प्राप्त किया था।

६. वीर इन्द्र! मैं चूते हुए सोमरस का गुण सर्वत्र व्यक्त करके और तुम्हारे धन-प्रदान से आकृष्ट होकर लौटा हूँ। स्तवनीय इन्द्र! यज्ञ-कर्त्ता तुम्हारे पास आते थे और तुम्हारी सत्पुरुषता जानते थे।

७. इन्द्र! तुमने मायावी शुष्ण का माया-द्वारा वध किया था। तुम्हारी महिमा मेधावी लोग जानते हैं। उन्हें शक्ति प्रदान करो।

८. अपने बल के प्रभाव से जगत् के नियन्ता इन्द्र को प्रार्थियों ने स्तुत किया था। इन्द्र का धन-दान हजारों या हजारों से भी अधिक तरीक़ों से होता है।

१२ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से २३ सूक्तों तक के कण्व के पुत्र मेधातिथि ऋषि। छन्द गायत्री)

१. देवदूत, देवाह्वानकारी, निखिल-सम्पत्संयुक्त और इस यज्ञ के सुसम्पादक अग्नि को हम भजते हैं।

२. प्रजा-रक्षक, हव्यवाहक और बहुलोक-प्रिय अग्नि को यज्ञ-कर्त्ता आवाहक मंत्रों-द्वारा निरन्तर आह्वान करते हैं।

३. हे काष्ठोत्पन्न अग्नि! छिन्न-कुशोंवाले यज्ञ में देवों को बुलाओ। तुम हमारे स्तोत्र-पात्र और देवों को बुलानेवाले हो।

४. अग्निदेव! चूंकि देवताओं का दूत-कर्म तुम्हें प्राप्त हो चुका है; इसलिए हव्याकांक्षी देवों को जगाओ। देवों के साथ इस कुश-युक्त यज्ञ में बैठो।

५. हे अग्नि! तुम घी से बुलाये गये और प्रकाशमान हो। हमारे द्रोही लोग राक्षसों से मिल गये हैं। उन्हें तुम जला दो।

६. अग्नि अग्नि से ही प्रज्वलित होती है। अग्नि मेधावी, गृह-रक्षक, हव्यवाहक और जुहू-(घृतपात्र)-मुख हैं।

७. मेधावी, सत्यधर्मा और शत्रुनाशक देव अग्नि के पास आकर यज्ञ-कार्य में उसकी स्तुति करो।

८. अग्निदेव! तुम देवदूत हो। जो हव्यदाता तुम्हारी परिचर्या करता है, उसकी तुम भली भाँति रक्षा करो।

९. जो हव्यदाता देवों के हव्य-भक्षण के लिए अग्नि के पास आकर भली भाँति परिचर्या करता है, उसको तुम हे पावक! सुखी करो।

१०. हे ज्वलन्त पावक! हमारे लिए तुम देवों को यहाँ ले आओ और हमारा यज्ञ और हव्य देवों के पास ले जाओ।

११. अग्निदेव! नये गायत्री-छन्दों से स्तुत होकर हमारे लिए धन और वीर्यशाली अन्न प्रदान करो।

१२. अग्नि! तुम शुभ्र-प्रकाश-स्वरूप और देवों को बुलाने में समर्थ स्तोत्रों से युक्त हो। तुम हमारा यह स्तोत्र ग्रहण करो।

१३ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. हे सुसमिद्ध नामक अग्नि! हमारे यजमान के पास देवताओं को ले आओ। पावक! देवाह्वानकारी! यज्ञ सम्पादन करो।

२. हे मेधावी तनूनपात् नामक अग्नि ! हमारे सुरस यज्ञ को आज उपभोग के लिए देवों के पास ले जाओ।

३. इस यजन-देश में, इस यज्ञ में प्रिय, मधुजिह्व और हव्य-सम्पादक नराशंस नामक अग्नि को हम आह्वान करते हैं।

४. हे इलित (इला) अग्नि! सुखकारी रथ पर देवों को ले आओ। मनुष्यों-द्वारा तुम देवों को बुलानेवाले समझे जाते हो।

५. बुद्धिशाली ऋत्विक्! परस्पर-संबद्ध और घी से आच्छादित बर्हिः-(अग्नि)-कुश विस्तार करो। कुश के ऊपर घी दिखाई देता है।

६. यज्ञशाला का द्वार खोला जाय। वह द्वार यज्ञ का परिवर्द्धक है। द्वार प्रकाशमान और जन-रहित था। आज अवश्य यज्ञ सम्पादन करना होगा।

७. सौंदर्यशाली रात्रि और उषा (अग्नि) को अपने इन कुशों पर बैठने के लिए इस यज्ञ में हम बुलाते हैं।

८. सुजिह्व, मेधावी और आह्वानकारी देव-द्वय (अग्नि) को बुलाता हूँ। वे हमारा यह यज्ञ सम्पादन करें।

९. सुखदात्री और अविनाशिनी इला, सरस्वती और मही आदि तीनों देवियाँ (अग्नि) इन कुशों पर विराजें।

१०. उत्तम और नाना-रूपधारी त्वष्टा (अग्नि) को इस यज्ञ में बुलाते हैं। त्वष्टा केवल हमारे पक्ष में ही रहें।

११. हे देव वनस्पति! देवों को हव्य समर्पण करो, जिससे हव्यदाता को परम ज्ञान उत्पन्न हो।

१२. इन्द्र के लिए यजमान के घर में स्वाहा-द्वारा यज्ञ सम्पन्न करो। उसी यज्ञ में हम देवों को बुलाते हैं।

१४ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. अग्निदेव! इन विश्वदेवों के साथ सोमरस पीने के लिए हमारी परिचर्या और हमारी स्तुति ग्रहण करने पधारो। हमारे यज्ञ का सम्पादन करो।

२. हे मेधावी अग्नि! कण्व-पुत्र तुम्हें बुला रहे हैं, साथ ही तुम्हारे कर्मों की प्रशंसा भी कर रहे हैं। देवों के साथ आओ।

३. इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण को यज्ञ-भाग दान करो।

४. तुम लोगों के लिए तृप्तिकर, प्रसन्नता-वाहक, बिन्दु-रूप, मधुर और पात्र-स्थित सोमरस तैयार हो रहा है।

५. अग्निदेव! हव्य-संयुक्त और विभूषित कण्व-पुत्र कुश तोड़कर तुमसे रक्षा पाने की अभिलाषा से तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं।

६. अग्नि! संकल्पमात्र से ही तुम्हारे रथ में जो जुटनेवाले दीप्त पृष्ठवाहक तुम्हें ढोते हैं, उनके द्वारा ही देवों को सोमरस-पान करने के लिए बुलाओ।

७. अग्नि! पूजनीय और यज्ञ-वर्द्धक देवों को पत्नी-युक्त करो। सुजिह्व! देवों को मधुर सोमरस पान कराओ।

८. जो देव यजनीय और स्तुति-पात्र हैं, अग्नि! वे वषट्कार-काल में तुम्हारी रसना-द्वारा सोमरस पान करें।

९. मेधावी और देवों को बुलानेवाले अग्नि प्रातःकाल जागे हुए सारे देवों को सूर्य-प्रकाशित स्वर्गलोक से इस स्थान में निश्चय ले आवें।

१०. अग्निदेव! तुम सब देवों, इन्द्र, वायु और मित्र के तेजः-पुञ्ज के साथ सोम-मधु पान करो।

११. अग्नि! मनुष्य-सञ्चालित और देवों को बुलानेवाले यज्ञ में बैठो। तुम हमारा यज्ञ सम्पादन करो।

१२. अग्निदेव ! रोहित नाम के गति-शील और वहन-समर्थ घोड़ों को रथ में जोतो और उनसे देवों को इस यज्ञ में ले आओ।

१५ सूक्त

(देवता ऋतु प्रभृति)

१. इन्द्र ! ऋतु के साथ सोमरस पान करो। तृप्तिकर और आश्रय-योग्य सोमरस तुमको प्राप्त हो।

२. मरुद्गण ! ऋतु के साथ पोत्र नाम के ऋत्विक् के पात्र से सोम पीओ। हमारा यज्ञ पवित्र करो। सचमुच तुम दान-परायण हो।

३. पत्नीयुक्त नेष्टा या त्वष्टा ! देवों के पास हमारे यज्ञ की प्रशंसा करो। ऋतु के साथ सोमरस पान करो; क्योंकि तुम रत्न-दाता हो।

४. अग्नि ! देवों को यहाँ बुलाओ। तीन यज्ञ-स्थानों में उन्हें बैठाओ। उन्हें अलंकृत करो और तुम ऋतु के साथ सोमपान करो।

५. ब्राह्मणाच्छंसी पुरोहित के धनोपेत पात्र से, ऋतुओं के पश्चात्, तुम सोम पान करो; क्योंकि तुम्हारी मित्रता अटूट है।

६. धृत-व्रत मित्र और वरुण ! तुम लोग ऋतु के साथ हमारे इस प्रवृद्ध और शत्रुओं-द्वारा अवहननीय यज्ञ में व्याप्त हो।

७. नानाविध यज्ञों में धनाभिलाषी पुरोहित सोमरस तैयार करने के लिए हाथ में पत्थर लेकर द्रविणोदा या धनप्रद अग्नि की स्तुति करते हैं।

८. जिन सब सम्पत्तियों की कथा सुनी जाती है, द्रविणोदा (अग्नि) हमें वह सब सम्पत्ति दें और वह सम्पत्ति देवयज्ञ के लिए हम ग्रहण करेंगे।

९. द्रविणोदा, ऋतुओं के साथ, त्वष्टा के पात्र से सोम पान करना चाहते हैं। ऋत्विक् लोग ! यज्ञ में आओ, होम करो; अनन्तर प्रस्थान करो।

१०. हे द्रविणोदा! चूँकि ऋतुओं के साथ तुम्हें चौथी बार पूजता हूँ; इसलिए अवश्य ही तुम हमें धनदान करो।

११. प्रकाशमान अग्नि से संयुक्त और विशुद्ध-कर्मा अश्विनीकुमार-द्वय! मधु, सोम पान करो। तुम्हीं ऋतुओं के साथ यज्ञ के निर्वाहक हो।

१२. गृहपति, सुन्दर और फलप्रद अग्निदेव! तुम ऋतु के साथ यज्ञ के निर्वाहक हो। देवाभिलाषी यजमान के लिए देवों की अर्चना करो।

१६ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. यथेप्सित-वर्षक इन्द्र! तुम्हारे घोड़े, तुम्हें सोम-पान कराने के लिए, यहाँ ले आवें। सूर्य की तरह प्रकाश-युक्त पुरोहित मंत्रों-द्वारा तुम्हें प्रकाशित करें।

२. हरि नाम के दोनों घोड़े घृतस्यन्दी धान्य के पास, सुखकारी रथ से, इन्द्र को ले आवें।

३. मैं प्रातःकाल इन्द्र को बुलाता हूँ, यज्ञ-सम्पादन-काल में इन्द्र को बुलाता हूँ और यज्ञ-समाप्ति-समय में, सोमपान के लिए, इन्द्र को बुलाता हूँ।

४. इन्द्रदेव! केशर-युक्त अश्वों के साथ तुम हमारे संस्कृत सोम-रस के निकट आओ। सोमरस तैयार होने पर हम तुम्हें बुलाते हैं।

५. इन्द्र! तुम हमारी यह स्तुति ग्रहण करने आओ; क्योंकि यज्ञ-सवन (सोमरस) तैयार है। तृषित गोरे हरिणों की तरह आओ।

६. यह तरल सोमरस बिछाये हुए कुशों पर पर्याप्त अभिषुत (संस्कृत) है; इन्द्र! बल के लिए इस सोम का पान करो।

७. इन्द्र! यह स्तुति श्रेष्ठ है; यह तुम्हारे लिए हृदयस्पर्शी और सुखकर हो। अनन्तर संस्कृत सोम पीओ।

८. वृत्रासुर का वध करनेवाले इन्द्र सोमपान और प्रसन्नता के लिए सारे सोमरस-संयुक्त यज्ञों में जाते हैं।

९. सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र! गायों और घोड़ों से तुम हमारी सारी अभिलाषायें भली भाँति पूर्ण करो। हम ध्यानस्थ होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१७ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण)

१. मैं सम्राट् इन्द्र और वरुण से, अपनी रक्षा के लिए, याचना करता हूँ। ऐसी याचना करने पर ये दोनों हमें सुखी करेंगे।

२. तुम मेरे जैसे पुरोहितों की रक्षा के लिए मेरा आह्वान ग्रहण करो। तुम मनुष्यों के स्वामी हो।

३. इन्द्र और वरुण! हमारे मनोरथ के अनुसार, धन देकर हमें तृप्त करो। हमारी यही इच्छा है कि तुम हमारे पास रहो।

४. हमारे यज्ञ में हव्य मिला हुआ है और इसमें पुरोहितों का स्तोत्र भी सम्मिलित हो गया है; इसलिए हम अन्नदाताओं में अग्रणी हों।

५. असंख्य धनदाताओं में इन्द्र धन के दाता और स्तवनीय देवों में वरुण स्तुति-पात्र हैं।

६. उनके रक्षण से हम धन का उपयोग और संचय करते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे पास यथेष्ट धन हो।

७. इन्द्र और वरुण! तरह-तरह के धनों के लिए मैं तुम लोगों को बुलाता हूँ। हमें भली भाँति विजयी बनाओ।

८. इन्द्र और वरुण! तुम्हारी अच्छी तरह से सेवा करने के लिए हमारी बुद्धि अभिलाषिणी है। हमें शीघ्र सुख हो।

९. इन्द्र और वरुण! जिस स्तुति से हम तुम्हें बुलाते हैं, अपनी जिस स्तुति को तुम परिवर्द्धित करते हो, वही सुशोभन स्तुति तुम्हें प्राप्त हो।

१८ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता ब्रह्मणस्पति आदि)

१. हे ब्रह्मणस्पति ! मुझ सोमरस-दाता को उशिज्-पुत्र कक्षीवान् की तरह देवताओं में प्रसिद्ध करो।

२. जो सम्पत्तिशाली, रोगापसारक, धन-दाता, पुष्टि-वर्द्धक और शीघ्र फलदाता हैं, वे ही ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

३. ऊधम मचानेवाले मनुष्यों की डाह-भरी निन्दा हमें न छू सके। हे ब्रह्मणस्पति ! हमारी रक्षा करो।

४. जिसे इन्द्र, वरुण और सोम उन्नयन करते हैं, वह वीर मनुष्य विनाश को प्राप्त नहीं होता।

५. हे ब्रह्मणस्पति ! तुम, सोम, इन्द्र और दक्षिणादेवी—सब उस मनुष्य को पाप से बचाओ।

६. आश्चर्यकारक, इन्द्र-प्रिय, कमनीय और धनदाता सदसस्पति अग्नि) के पास हम स्मृति-शक्ति की याचना कर चुके हैं।

७. जिनकी प्रसन्नता के बिना ज्ञानवान् का भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, वही अग्नि हमारी मानसिक वृत्तियों को सम्बन्ध-युक्त किये हुए हैं।

८. अनन्तर वही अग्नि हव्य-सम्पादक यजमान की उन्नति करते और अच्छी तरह यज्ञ की समाप्ति करते हैं। उनकी कृपा से हमारी स्तुति देवों को प्राप्त हो।

९. प्रतापशाली, प्रसिद्ध और आकाश की तरह तेजस्वी, नराशंस देवता को मैं देख चुका हूँ।

१९ सूक्त

(देवता अग्नि और मरुद्गण)

१. अग्निदेव ! इस सुन्दर यज्ञ में सोमरस का पान करने के लिए तुम बुलाये जाते हो; इसलिए मरुद्गण के साथ आओ।

२. अग्निदेव! तुम महान् हो। ऐसा कोई उच्च देव या मनुष्य नहीं है, जो तुम्हारे यज्ञ का उल्लङ्घन कर सके। मरुद्गण के साथ आओ।

३. अग्निदेव! जो प्रकाशशाली और हिंसा-शून्य मरुद्गण महा-वृष्टि करना जानते हैं, उन मरुतों के साथ आओ।

४. जिन उग्र और अजेय बलशाली मरुतों ने जल-वृष्टि की थी; अग्निदेव, उन्हीं के साथ पधारो।

५. जो सुशोभन और उग्र रूप धारण करनेवाले हैं, जो पर्याप्त-बलशाली और शत्रु-संहारी हैं, अग्निदेव, उन्हीं मरुद्गण के साथ आओ।

६. आकाश के ऊपर प्रकाश-स्वरूप स्वर्ग में जो दीप्तिमान् मरुत रहते हैं, अग्नि! उन्हीं के साथ आओ।

७. जो मेघ-माला का संचालन करते और जल-राशि को समुद्र में गिराते हैं, अग्नि! उन्हीं मरुद्गण के साथ आओ।

८. जो सूर्य-किरणों के साथ समस्त आकाश में व्याप्त हैं और जो बल से समुद्र को उत्क्षिप्त करते हैं, अग्निदेव, उन्हीं मरुद्गण के साथ आओ।

९. तुम्हारे प्रथम पान के लिए सोम-मधु दे रहा हूँ। अग्निदेव! मरुद्गण के साथ आओ।

प्रथम अध्याय समाप्त।

२० सूक्त

(दूसरा अध्याय ५ अनुवाक (आवृत्त) देवता ऋभुगण)

१. जिन ऋभुओं ने जन्म ग्रहण किया था, उन्हीं के उद्देश्य से मेधावी ऋत्विकों ने, अपने मुख से, यह प्रभूत धन-प्रद स्तोत्र स्मरण किया था।

२. जिन्होंने इन्द्र के उन हरि नाम के घोड़ों की, मानसिक बल से, सृष्टि की है, जो घोड़े आज्ञा पाते ही रथ में संयुक्त हो जाते

हैं, वे ही ऋभुलोग, चमस आदि उपकरण-द्रव्यों के साथ, हमारे यज्ञ में व्याप्त हैं।

३. ऋभुओं ने अश्विनीकुमारद्वय के लिए सर्वत्र-गन्ता और सुखवाही एक रथ का निर्माण किया था और दूध देनेवाली एक गाय भी पैदा की थी।

४. सरल-हृदय और सब कामों में व्याप्त ऋभुओं का मंत्र विफल नहीं होता। उन्होंने अपने मा-बाप को फिर जवान बना दिया था।

५. ऋभुगण! मरुद्गण से संयुक्त इन्द्र और दीप्यमान सूर्य के साथ तुम लोगों को सोमरस प्रदान किया जाता है।

६. त्वष्टा का वह नया चमस बिलकुल तैयार हो गया था; परन्तु उसे ऋभुओं ने चार टुकड़ों में विभक्त कर दिया।

७. ऋभुगण! तुम हमारी शोभन प्रार्थना प्राप्त कर हमारा सोमरस तैयार करनेवाले को तीन तरह के रत्न, एक एक कर, प्रदान करो और उसके सातों गुण तीन बार सम्पादन करो।

८. यज्ञ के वाहक ऋभुगण मनुष्य-जन्म ले चुकने पर भी अविनाशी आयु प्राप्त किये हुए हैं और अपने सत्कर्म-द्वारा देवों के बीच यज्ञ-भाग का सेवन करते हैं।

२१ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि)

१. इस यज्ञ में इन्द्र और अग्नि का मैं आह्वान करता हूँ। उन्हीं की स्तुति करना चाहता हूँ। वेही इन्द्र और अग्निविशेष सोमपायी हैं। आवें, सोमपान करें।

२. मनुष्यगण! इस यज्ञ में उन्हीं इन्द्र और अग्नि की प्रशंसा करो और उन्हें सुशोभित करो; उन्हीं दोनों के उद्देश्य से गायत्री छन्द द्वारा गाओ।

३. मित्रदेव की प्रशंसा के लिए हम इन्द्र और अग्नि का आह्वान

करते हैं। उन्हीं दोनों सोम-रस-पान-कर्त्ताओं को सोमपान के लिए आह्वान करते हैं।

४. उन्हीं दोनों उग्र देवों को इस सोमरस-संयुक्त यज्ञ के पास आह्वान करते हैं। इन्द्र और अग्नि इस यज्ञ में पधारें।

५. वे महान् और सभा-रक्षक इन्द्र और अग्नि राक्षस-जाति को कुटिलता-शून्य करें। भक्षक राक्षस लोग निःसन्तान हों।

६. इन्द्र और अग्नि! जिस स्वर्ग-लोक में कर्म-फल जाना जाता है, वहीं इस यज्ञ के लिए तुम जागो और हमें सुख प्रदान करो।

२२ सूक्त

(देवता अश्विनीकुमार आदि)

१. पुरोहित! प्रातःसवन-सम्बन्ध से युक्त अश्विनीकुमारों को जगाओ। सोमपान के लिए वे इस यज्ञ में पधारें।

२. जो आश्विनीकुमार सुन्दर रथ से युक्त हैं; रथियों में श्रेष्ठ और स्वर्गवासी हैं, उन्हें हम आह्वान करते हैं।

३. अश्विनीकुमार! तुम लोगों की जो घोड़ों के पसीने और ताड़ना से युक्त चाबुक है, उसके साथ आकर इस यज्ञ को सोमरस से सिक्त करो।

४. अश्विनीकुमार! सोमरस देनेवाले यजमान के जिस गृह की ओर रथ से जा रहे हो, वह गृह दूर नहीं है।

५. सुवर्ण-हस्तक सूर्य को, रक्षा के लिए, मैं बुलाता हूँ। वेही देव यजमान को मिलनेवाला पद बता देंगे।

६. अपने रक्षण के लिए जल को सुखा देनेवाले सूर्य की स्तुति करो। हम सूर्य के लिए यज्ञ करना चाहते हैं।

७. निवास के कारणभूत, अनेक प्रकार के धनों के विभाजन-कर्त्ता और मनुष्यों के प्रकाश-कर्त्ता सूर्य का हम आह्वान करते हैं।

८. सखालोग! चारों ओर बैठ जाओ। हमें शीघ्र सूर्य की स्तुति करनी होगी। धन-प्रदाता सूर्य सुशोभित हो रहे हैं।

९. अग्निदेव! देवों की अभिलाषा करनेवाली पत्नियों को इस यज्ञ में ले आओ। सोमपान करने के लिए त्वष्टा को पास ले आओ।

१०. अग्नि! हमारी रक्षा के लिए देव-रमणियों को इस यज्ञ में ले आओ। युवक अग्नि! देवों को बुलानेवाली, सत्य कथनशीला और सत्यनिष्ठा सुबुद्धि को ले आओ।

११. अच्छिन्नपक्षा वा द्रुतगामिनी और मनुष्यरक्षिका देवी रक्षण और महान् सुख-प्रदान द्वारा हमारे ऊपर प्रसन्न हों।

१२. अपने मङ्गल के लिए और सोम-पान के लिए इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी या अग्निपत्नी को हम बुलाते हैं।

१३. महान् द्यु और पृथिवी हमारा यह यज्ञ रस से सिक्त करें और पोषण-द्वारा हमें पूर्ण करें।

१४. अपने कर्म के बल द्यु और पृथिवी के बीच में, मेधावी लोग गन्धर्वों के निवास-स्थान अन्तरिक्ष में, घी की तरह, जल पीते हैं।

१५. पृथिवी! तुम विस्तृत, कण्टक-रहित और निवासभूता बनो। हमें यथेष्ट सुख दो।

१६. जिस भू-प्रदेश से, अपने सातों छन्दों द्वारा विष्णु ने विविध पाद-क्रम किया था, उसी भू-प्रदेश से देवता लोग हमारी रक्षा करें।

१७. विष्णु ने इस जगत् की परिक्रमा की, उन्होंने तीन प्रकार से अपने पैर रक्खे और उनके धूलियुक्त पैर से जगत् छिप-सा गया।

१८. विष्णु जगत् के रक्षक हैं, उनको आघात करनेवाला कोई नहीं है। उन्होंने समस्त धर्मों का धारण कर तीन पैरों का परिक्रमा किया।

१९. विष्णु के कर्मों के बल ही यजमान अपने व्रतों का अनुष्ठान करते हैं। उनके कर्मों को देखो। वे इन्द्र के उपयुक्त सखा हैं।

२०. आकाश में चारों ओर विचरण करनेवाली आँखें जिस प्रकार

दृष्टि रखती हैं, उसी प्रकार विद्वान् भी सदा विष्णु के उस परम पद पर दृष्टि रखते हैं।

२१. स्तुतिवादी और मेधावी मनुष्य विष्णु के उस परम पद से अपने हृदय को प्रकाशित करते हैं।

२३ सूक्त

(देवता वायु आदि। छन्द गायत्री आदि)

१. वायुदेव! यह तीखा और सुपक्व सोमरस तैयार है। तुम आओ; वही सोमरस यहाँ लाया गया है। पान करो।

२. आकाश-स्थित इन्द्र और वायु को, सोम-पान के लिए, हम बुलाते हैं।

३. यज्ञ-रक्षक इन्द्र और वायु मन के समान वेगवान् और सहस्राक्ष हैं। प्रतिभाशाली मनुष्य अपने रक्षण के लिए दोनों का आह्वान करते हैं।

४. मित्र और वरुण—दोनों शुद्ध-बल-शाली और यज्ञ में प्रादुर्भूत होनेवाले हैं। हम उन्हें सोमरस-पान के लिए, बुलाते हैं।

५. जो मित्र और वरुण सत्य के द्वारा यज्ञ की वृद्धि और यज्ञ के प्रकाश का पालन करते हैं, उन लोगों का मैं आह्वान करता हूँ।

६. वरुण और मित्र सब तरह से हमारी रक्षा करते हैं। वे हमें यथेष्ट सम्पत्ति दें।

७. मरुतों के साथ, सोम-पान के लिए, हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। वे मरुद्गण के साथ तृप्त हों।

८. मरुद्गण! तुम्हारे अन्दर इन्द्र अग्रणी हैं, पूषा या सूर्य तुम्हारे दाता हैं। तुम सब लोग हमारा आह्वान सुनो।

९. दान-परायण मरुतो! बली और अपने सहायक इन्द्र के साथ शत्रु का विनाश करो, जिससे दुष्ट शत्रु हमारा स्वामी न बन बैठे।

१०. सारे मरुद्देवों को सोमरस-पान के लिए हम आह्वान करते हैं। वे उग्र और पृश्नि (पृथिवी, आकाश या मेघ) की संतान हैं।

११. जिस समय मरुत्‌लोग शोभन यज्ञ को प्राप्त होते हैं उस समय विजयी लोगों के नाद की तरह उनका, दर्प के साथ, निनाद होता है।

१२. प्रकाशमयी बिजली से उत्पन्न मरुत् लोग हमारा रक्षण और सुख-विधान करें।

१३. हे दीप्तिमान् और शीघ्रगन्ता पूषा या सूर्य! जिस तरह दुनिया में किसी पशु के खो जाने पर उसे लोग खोज लाते हैं, उसी प्रकार तुम आकाश से विचित्र कुशोंवाले और यज्ञधारक सोम को ले आओ।

१४. प्रकाशमान पूषा ने गुहा में अवस्थित, छिपा हुआ विचित्र-कुश-सम्पन्न और दीप्तिमान् सोम पाया।

१५. जिस प्रकार किसान बैलों से यव का खेत बार-बार जोतता है, उसी प्रकार पूषा भी मेरे लिए, सोम के साथ, क्रमशः छः ऋतुएँ बार-बार, लाये थे।

१६. हम यज्ञेच्छुओं का मातृ-स्थानीय जल यज्ञ-मार्ग से जा रहा है। वह जल हमारा हितैषी बन्धु है। वह दूध को मधुर बनाता है।

१७. यह जो सारा जल सूर्य के पास है अथवा सूर्य जिस सब जल के साथ हैं वह सब जल हमारे यज्ञ को प्रेम-पात्र करे।

१८. हमारी गायें जिस जल को पान करती हैं, उसी जल का हम आह्वान करते हैं। जो जल नदी-रूप होकर बह रहा है, उस सबको हव्य देना कर्त्तव्य है।

१९. जल के भीतर अमृत और ओषधि है। हे ऋषि लोग! उस जल की प्रशंसा के लिए उत्साही बनिए।

२०. सोम या चन्द्रमा ने मुझसे कहा है कि जल में औषध है, संसार को सुख देनेवाली अग्नि है और सब तरह की दवायें हैं।

२१. हे जल! मेरे शरीर के लिए रोग-नाशक औषध पुष्ट करो, जिससे मैं बहुत दिन सूर्य को देख सकूँ।

२२. मुझमें जो कुछ दुष्कर्म है, मैंने जो कुछ अन्यायाचरण किया है, मैंने जो शाप दिया है और मैं जो झूठ बोला हूँ, हे जल! वह सब धो डालो।

२३. आज स्नान के लिए जल में पैठता हूँ, जल के सार से सम्मिलित हुआ हूँ। हे जल-स्थित अग्नि! आओ। मुझे तेज से परिपूर्ण करो।

२४. हे अग्नि! मुझे तेज, सन्तान और दीर्घायु दो, जिससे देवता लोग, इन्द्र और ऋषिगण मेरे अनुष्ठान को जान सकें।

२४ सूक्त

(६ अनुवाक। देवता अग्नि प्रभृति)

(यहाँ से ३० सूक्त तक के ऋषि अजीगर्त-पुत्र शुनःशेप)

१. देवों में किस श्रेणी के किस देवता का सुन्दर नाम उच्चारण करूँ? कौन मुझे फिर इस पृथिवी पर रहने देगा, जिससे मैं पिता और माता के दर्शन कर सकूँ?

२. देवों में पहले अग्नि का सुन्दर नाम लेता हूँ, वह मुझे इस विशाल पृथिवी पर रहने दें, ताकि मैं मा-बाप के दर्शन कर सकूँ।

३. हे सर्वदा त्राता सूर्य! तुम श्रेष्ठ धन के स्वामी हो; इसलिए तुम्हारे पास उपभोग करने योग्य धन की याचना करता हूँ।

४. प्रशंसित, निन्दा-शून्य, द्वेष-रहित और सम्भोग-योग्य धन को तुम दोनों हाथों में धारण किये हुए हो।

५. सूर्यदेव! तुम धनशाली हो, तुम्हारी रक्षा-द्वारा धन की उन्नति करने में लगे रहते हैं।

६. वरुणदेव! ये उड़नेवाली चिड़ियाँ तुम्हारे समान बल और पराक्रम नहीं प्राप्त कर सकीं। तुम्हारे सदृश इन्होंने क्रोध भी नहीं प्राप्त किया। निरन्तर विहरण-शील जल और वायु की गति भी तुम्हारे वेग को नहीं लाँघ सकी।

७. पवित्र-बलशाली वरुण आदि-रहित अन्तरिक्ष में रहकर श्रेष्ठ तेजः-पुञ्ज को ऊपर ही धारण करते हैं। तेजः-पुञ्ज का मुख नीचे और मूल ऊपर है। उसी के द्वारा हमारे प्राण स्थिर रहते हैं।

८. देवराज वरुण ने सूर्य के उदय और अस्त के गमन के लिए सूर्य के पथ का विस्तार किया है। पाद-रहित अन्तरिक्ष-प्रदेश में सूर्य के पाद-विक्षेप के लिए वरुण ने मार्ग दिया है। वे वरुणदेव मेरे हृदय का वेध करनेवाले शत्रु का निराकरण करें।

९. वरुणराज! तुम्हारी सैकड़ों-हज़ारों ओषधियाँ हैं, तुम्हारी सुमति विस्तीर्ण और गम्भीर हो। निर्ऋतिया पाप देवता को विमुख करके दूर रक्खो। हमारे किये हुए पाप से हमें मुक्त करो।

१०. ये जो सप्तर्षि नक्षत्र हैं, जो ऊपर आकाश में संस्थापित हैं और रात्रि आने पर दिखाई देते हैं, दिन में कहाँ चले जाते हैं? वरुणदेव की शक्ति अप्रतिहत है। उनकी आज्ञा से रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान होते हैं।

११. मैं स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति कर तुम्हारे पास वही परमायु माँगता हूँ। हव्य-द्वारा यजमान भी उसे ही पाने की प्रार्थना करता है। वरुण! तुम इस विषय में उदासीन न होकर ध्यान दो। तुम अनन्त जीवों के प्रार्थना-पात्र हो। मेरी आयु मत लो।

१२. दिन और रात, सदा लोभ में मुझसे ऐसा ही कहा गया है। मेरा हृदयस्थ ज्ञान भी यही गवाही देता है कि, आबद्ध होकर शुनः-शेप ने जिस वरुण का आह्वान किया था, वही वरुणराज हम लोगों को मुक्तिदान करें।

१३. शुनःशेप ने धृत और तीन काठों में आबद्ध होकर अदिति के पुत्र वरुण का आह्वान किया था; इसी लिए विद्वान् और दयालु वरुण ने शुनःशेप को मुक्त किया था, उनका बन्धन छुड़ा दिया था।

१४. वरुण! नमस्कार करके हम तुम्हारे क्रोध को दूर करते हैं और यज्ञ में हव्य देकर भी तुम्हारा क्रोध दूर करते हैं। हे असुर!

प्रचेतः ! राजन् ! हमारे लिए इस यज्ञ में निवास करके हमारे किये हुए पाप को शिथिल करो।

१५. वरुण ! मेरा ऊपरी पाश ऊपर से और नीचे का नीचे से खोल दो और बीच का पाश भी खोलकर शिथिल करो। अनन्तर हे अदितिपुत्र ! हम तुम्हारे व्रत का खण्डन न करके पापरहित हो जायँगे।

२५ सूक्त

(देवता वरुण)

१. जिस तरह संसार के मनुष्य वरुणदेव के व्रतानुष्ठान में भ्रम करते हैं, उसी तरह हम लोग भी दिन-दिन प्रमाद करते हैं।

२. वरुण ! अनादरकर और घातक बनकर तुम हमारा वध नहीं करना। क्रुद्ध होकर हमारे ऊपर क्रोध नहीं करना।

३. वरुणदेव, जिस प्रकार रथ का स्वामी अपने थके हुए घोड़ों को शान्त करता है, उसी प्रकार सुख के लिए स्तुति-द्वारा हम तुम्हारे मन को प्रसन्न करते हैं।

४. जिस तरह चिड़ियाँ अपने घोसलों की ओर दौड़ती हैं, उसी तरह हमारी क्रोध-रहित चिन्तायें भी धन-प्राप्ति की ओर दौड़ रही हैं।

५. वरुणदेव बलवान् नेता और असंख्य लोगों के द्रष्टा हैं। सुख के लिए हम कब उन्हें यज्ञ में ले आवेंगे ?

६. यज्ञ करनेवाले हव्यदाता के प्रति प्रसन्न होकर मित्र और वरुण यह साधारण हव्य ग्रहण करते हैं, त्याग नहीं करते।

७. जो वरुण अन्तरिक्ष-चारी चिड़ियों का मार्ग और समुद्र की नौकाओं का मार्ग जानते हैं।

८. जो व्रतावलम्बन करके अपने अपने फलोत्पादक बारह महीनों को जानते हैं और उत्पन्न होनेवाले तेरहवें मास को भी जानते हैं।

९. जो वरुणदेव विस्तृत, शोभन और महान् वायु का भी पथ

जानते हैं और जो ऊपर, आकाश में, निवास करते हैं, उन देवों को भी जानते हैं।

१०. धृत-व्रत और शोभनकर्मा वरुण दैवी सन्तानों के बीच साम्राज्य-संसिद्धि के लिए आकर बैठे थे।

११. ज्ञानी मनुष्य वरुण की कृपा से वर्त्तमान और भविष्यत्—सारी अद्भुत घटनाओं को देखते हैं।

१२. वही सत्कर्मपरायण और अदिति-पुत्र वरुण हमें सदा सुपथ-गामी बनावें, हमारी आयु बढ़ावें।

१३. वरुण सोने का वस्त्र धारण कर अपना पुष्ट शरीर ढकते हैं, जिससे चारों ओर हिरण्यस्पर्शी किरणें फैलती हैं।

१४. जिस वरुणदेव से शत्रु लोग शत्रुता नहीं कर सकते, मनुष्य-पीड़क जिसे पीड़ा नहीं दे सकते और पापी लोग जिस देव के प्रति पापा-चरण नहीं कर सकते।

१५. जिन्होंने मनुष्यों, विशेषतः हमारी उदर-पूर्ति के लिए यथेष्ट अन्न तैयार कर दिया है।

१६. बहुतों ने उस वरुण को देखा है। जिस प्रकार गौएँ गोशाला की ओर जाती हैं, उसी प्रकार निवृत्तिरहित होकर हमारी चिन्ता वरुण की ओर जा रही है।

१७. वरुण! चूंकि मेरा मधुर हव्य तैयार है; इसलिए होता की तरह तुम वही प्रिय हव्य भक्षण करो। अनन्तर हम दोनों बातें करेंगे।

१८. सर्व-दर्शनीय वरुण को मैंने देखा है। भूमि पर, कई बार, उनका रथ मैंने देखा है। उन्होंने मेरी स्तुति ग्रहण की है।

१९. वरुण! मेरा यह आह्वान सुनो। आज मुझे सुखी करो। तुम्हारी रक्षा का अभिलाषी होकर मैं तुम्हें बुलाता हूँ।

२०. मेधावी वरुण! तुम द्युलोक, भूलोक और समस्त संसार में दीप्तिमान् हो। हमारी रक्षा-प्राप्ति के लिए प्रार्थना सुनने के अनन्तर तुम उत्तर दो।

२१. हमारे ऊपर का पाश ऊपर से खोल दो। मध्य और नीचे का पाश भी खोल दो, जिससे हम जीवित रह सकें।

२६ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. यज्ञपात्र और अन्नभाजन अग्निदेव! अपना तेज ग्रहण करो और हमारे इस यज्ञ का सम्पादन करो।

२. अग्नि! तुम सर्वदा युवक, श्रेष्ठ और तेजस्वी हो। हमारे होमकर्त्ता और प्रकाशमय वाक्यों-द्वारा स्तुत होकर बैठो।

३. श्रेष्ठ अग्निदेव! जिस प्रकार पिता पुत्र को, बन्धु बन्धु को और मित्र मित्र को दान देता है, उसी प्रकार तुम भी मेरे लिए दान-परायण बनो।

४. शत्रुञ्जय मित्र, वरुण और अर्यमा जिस तरह मनु के यज्ञ में बैठे थे, उसी तरह तुम भी हमारे यज्ञ के कुश पर बैठो।

५. हे पुराणहोमसम्पादक, हमारे इस यज्ञ और मित्रता में तुम प्रसन्न बनो। यह स्तुति-वचन श्रवण करो।

६. नित्य और विस्तीर्ण हव्य-द्वारा हम और-और देवों का जो यज्ञ करते हैं, वह हव्य तुम्हें ही दिया जाता है।

७. सर्व-प्रजा-रक्षक, होम-सम्पादक, प्रसन्न और वरेण्य अग्नि हमारे प्रिय हों, ताकि हम भी शोभन अग्नि से संयुक्त होकर तुम्हारे प्रिय बनें।

८. शोभनीय अग्नि से युक्त और दीप्तिमान् ऋत्विक् लोगों ने हमारा श्रेष्ठ हव्य धारण किया है; इसलिए हम शोभन अग्नि से संयुक्त होकर याचना करते हैं।

९. अग्निदेव! तुम अमर हो और हम मरणशील मनुष्य हैं। आओ, हम परस्पर प्रशंसा करें।

१०. बल के पुत्र अग्नि! तुम सब अग्नियों के साथ यह यज्ञ और स्तोत्र ग्रहण करके अन्नप्रदान करो।

२७ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. अग्निदेव! तुम पुच्छयुक्त घोड़े के समान हो, साथ ही यज्ञ के सम्राट् भी हो। हम स्तुति-द्वारा तुम्हारी वन्दना करने में प्रवृत्त हुए हैं।

२. अग्नि बल के पुत्र और स्थूल-गमन हैं। वे हमारे ऊपर प्रसन्न हों। हमारी अभिलषित वस्तु का वर्षण करें।

३. सर्वत्र-गामी अग्नि! तुम दूर और सन्निकट देश में पापाचारी मनुष्य से हमारी सर्वदा रक्षा करो।

४. अग्नि! तुम हमारे इस हव्य की बात और इस अभिनव गायत्री छन्द में विरचित स्तोत्र की बात देवों से कहना।

५. परम (दिव्य लोक का), मध्यम (अन्तरिक्ष का) और अन्तिकस्थ (पृथिवी का) धन प्रदान करो।

६. विलक्षण-किरण अग्नि! सिन्धु के पास तरङ्ग की तरह तुम धन के विभागकर्त्ता हो। हव्यदाता को तुम शीघ्र कर्मफलप्रदान करो।

७. अग्नि! युद्ध-क्षेत्र में तुम जिस मनुष्य की रक्षा करते हो, जिसे तुम रणाङ्गण में भेजते हो, वह नित्य अन्न प्राप्त करेगा।

८. रिपु-दमन अग्नि! तुम्हारे भक्त पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता; क्योंकि उसके पास प्रसिद्ध शक्ति है।

९. समस्त-मानव-पूजित अग्नि ने घोड़े के द्वारा हमें युद्ध से पार करा दिया। मेधावी ऋत्विकों के कर्म के फलदाता हो।

१०. अग्नि! प्रार्थना-द्वारा तुम जागो। विविध यजमानों पर कृपा करके यज्ञानुष्ठान के लिए यज्ञ में प्रवेश करो। तुम रुद्र या उग्र हो। रुचिकर स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं।

११. अग्नि विशाल, असीम-धूम-केतु और प्रभूत-दीप्ति-सम्पन्न हैं। अग्नि हमारे यज्ञ और अन्न में प्रसन्न हों।

१२. अग्नि प्रजा-रक्षक, देवों के होता, देवदूत, स्तोत्र-पात्र और प्रौढ़-किरणशाली हैं। वे धनी लोगों की तरह हमारी स्तुति सुनें।

१३. बड़े, बालक, युवक और वृद्ध देवों को नमस्कार करते हैं। हो सकेगा, तो हम देवों की पूजा करेंगे। देवगण! हम वृद्ध देवों की स्तुति न छोड़ दें।

२८ सूक्त

(देवता इन्द्र आदि)

१. जिस यज्ञ में सोमरस चुआने के लिए स्थूलमूल पत्थर उठाये जाते हैं, हे इन्द्र! उसी यज्ञ में ओखल से तैयार किया हुआ सोमरस, अपना जानकर, पान करो।

२. जिस यज्ञ में सोम कूटने के लिए दो फलक, जाँघों की तरह, विस्तृत हुए हैं, उसी यज्ञ में ओखल-द्वारा प्रस्तुत सोमरस, अपना जानकर, पान करो।

३. जिस यज्ञ में यजमान-पत्नी पैठती और वहाँ से बाहर निकलती रहती है, इन्द्र! उसी यज्ञ में ओखल-द्वारा तैयार सोमरस, अपना जानकर, पान करो।

४. जिस यज्ञ में लगाम की तरह रस्सी से मन्थन-दण्ड बाँधा जाता है, उसी यज्ञ में इन्द्र! ओखल-द्वारा प्रस्तुत सोमरस, अपना जानकर, पान करो।

५. ओखल! यद्यपि घर-घर तुमसे काम लिया जाता है, तो भी इस यज्ञ में विजयी लोगों की दुन्दुभि की तरह तुम ध्वनि करते हो।

६. हे ओखल-रूप काष्ठ! तुम्हारे सामने वायु बहती है; इसलिए ओखल! इन्द्र के पान के लिए सोमरस तैयार करो।

७. हे अन्न-दाता यज्ञ के दोनों साधन ओखल और मूसल! जिस प्रकार अपना खाद्य चबाते समय इन्द्र के दोनों घोड़े ध्वनि करते हैं, उसी प्रकार तुमुल ध्वनि से युक्त होकर तुम लोग बार-बार विहार करते हो।

८. हे सुदृश्य दोनों काष्ठ (ओखल और मूसल) ! दर्शनीय अभिषव-मंत्र-द्वारा आज तुम लोग इन्द्र के लिए मधुर सोमरस प्रस्तुत करो।

९. हे ऋत्विक् ! दोनों अभिषव-फलकों (पात्र-विशेष) से अवशिष्ट सोम उठाओ, उसे पवित्र कुश के ऊपर रक्खो। अनन्तर उसे गो-चर्म-(निर्मित पात्र) पर रक्खो।

२९ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. हे सोमपायी और सत्यवादी इन्द्र ! यद्यपि हम कोई धनी नहीं हैं, तो भी हे बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों-द्वारा हमें प्रशस्त धनवान् करो।

२. शक्तिशाली, सुन्दर नाकवाले और धनरक्षक इन्द्र ! तुम्हारी दया चिरस्थायिनी है। बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों-द्वारा हमें प्रशंसनीय करो।

३. जो दोनों यम-दूतियाँ आपस में देखती हैं, उन्हें सुलाओ; वे बेहोश रहें। बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय करो।

४. शूर ! हमारे शत्रु सोये रहें और मित्र जागे रहें। बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों से हमें प्रशस्य बनाओ।

५. इन्द्र ! यह गर्दभ-रूप शत्रु पाप या वचन द्वारा तुम्हारी निन्दा करता है, इसे वध करो। बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों से हमें धनी बनाओ।

६. विरुद्ध वायु, कुटिल गति के साथ, वन से दूर जाय। बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों-द्वारा हमें धनी बनाओ।

७. सब डाह करनेवालों का वध करो। हिंसकों का विनाश करो। बहुधनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं और घोड़ों द्वारा हमें प्रशंसनीय (धनवान्) करो।

३० सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. संसार में जिस प्रकार कुएँ को जल-पूर्ण कर दिया जाता है, उसी प्रकार हम, अनाकाङ्क्षी होकर यजमानो, तुम्हारे इस यज्ञ करनेवाले और अतिवृद्ध इन्द्र को सोमरस से सेचन करते हैं।

२. जिस प्रकार जल स्वयं नीचे जाता है, उसी प्रकार इन्द्र सैकड़ों विशुद्ध सोमरस और "आशीर" नामक सहस्र श्रपण द्रव्य से युक्त सोमरस के पास आते हैं।

३. यह अनन्त प्रकार का सोम इन्द्र की प्रसन्नता के लिए इकट्ठा होता है। इसके द्वारा इन्द्र का उदर समुद्र की तरह व्याप्त होता है।

४. जिस प्रकार कपोत गर्भिणी कपोती को ग्रहण करता है, उसी प्रकार, हे इन्द्र! यह सोम तुम्हारा है, तुम भी इसे ग्रहण करो; और, इसी कारण हमारा वचन ग्रहण करो।

५. धन-रक्षक और स्तोत्र-पात्र इन्द्र! तुम्हारा ऐसा स्तोत्र तुम्हारा प्रतिभा-प्रिय और सत्य हो।

६. शतक्रतु! इस समर में हमारी रक्षा के लिए उत्सुक बनो। दूसरे कार्य के सम्बन्ध में हम दोनों मिलकर विचार करेंगे।

७. विभिन्न कर्मों के प्रारम्भ में, विविध युद्धों में हम, अत्यन्त बली इन्द्र को, रक्षा के लिए, सखा की तरह बुलाते हैं।

८. यदि इन्द्र हमारा आह्वान सुनेंगे, तो निश्चय ही सहस्रों ऐसी शक्ति और धन-शक्ति के साथ हमारे निकट आवेंगे।

९. इन्द्र बहुतों के पास जाते हैं। पुरातन निवास या स्वर्ग से मैं उस पुरुष का आह्वान करता हूँ, जिसे पहले पिता बुला चुके हैं।

१०. इन्द्र! तुम्हें सब चाहते हैं, तुम्हें असंख्य लोग बुला चुके हैं। तुम सखा और निवास के कारण हो। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपने स्तोताओं पर अनुग्रह करो।

११. हे सोमपायी, सखा और वज्रधारी इन्द्र! हम भी तुम्हारे सखा और सोमपायी हैं। हमारी दीर्घ नासिकावाली गौओं को बढ़ाओ।

१२. सोमपायी, सखा और वज्रधर इन्द्र! तुम ऐसे बनो, तुम इस तरह आचरण करो, जिससे हम मंगलार्थ तुम्हारी अभिलाषा करें।

१३. इन्द्र के हमारे ऊपर प्रसन्न होने पर हमारी गायें वृषवाली और पर्याप्त-शक्ति-सम्पन्न होंगी। गायों से खाद्य प्राप्त कर हम भी प्रसन्न होंगे।

१४. हे साहसी इन्द्र! तुम्हारे समान कोई भी देवता प्रसन्न होकर, हमारे द्वारा याचित होकर, स्तोताओं के लिए अवश्य ही अभीष्ट धन ले आ देंगे। वह उसी प्रकार धन देंगे, जिस प्रकार घोड़े रथ के दोनों चक्कों के अक्ष को घुमा देते हैं।

१५. हे शतक्रतु इन्द्र! जिस तरह शकट की गति अक्ष को घुमाती है, उसी प्रकार तुम कामना के अनुसार स्तोताओं को धन अर्पण करो।

१६. इन्द्र के जो घोड़े खा लेने के बाद फर-फर शब्द के साथ हिन-हिनाते और घहराता साँस फेंकते हैं, उन्हीं के द्वारा इन्द्र ने सदा धन जीता है। कर्मठ और दान-परायण इन्द्र ने हमें सोने का रथ दिया था।

१७. अश्विनीकुमारद्वय! अनेक घोड़ों से प्रेरित अन्न के साथ आओ। शत्रुसंहारी! हमारे घर में गायें और सोना आवे।

१८. शत्रु-नाशक अश्विनीकुमारद्वय! तुम दोनों के लिए तैयार रथ विनाश-रहित है; यह समुद्र या अन्तरिक्ष में जाता है।

१९. अश्विनीकुमारो! तुमने अपने रथ का एक चक्का अविनाशी पर्वत के ऊपर स्थिर किया है और दूसरा आकाश के चारों ओर घूम रहा है।

२०. हे स्तुति-प्रिय अमर उषा! तुम्हारे संभोग के लिए कौन मनुष्य है? हे प्रभाव-सम्पन्न! तुम किसे प्राप्त होगी?

२१. हे व्यापक और विचित्र-प्रकाशवती उषा! हम दूर या पास से तुम्हें नहीं समझ सकते।

२२. हे स्वर्ग-पुत्री! उस अन्न के साथ तुम आओ, हमें धन प्रदान करो।

३१ सूक्त

(७ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से ३५ सूक्त तक के ऋषि अङ्गिरा के पुत्र हिरण्यस्तूप हैं)

१. अग्नि! तुम अङ्गिरा ऋषि लोगों के आदि ऋषि थे। देवता होकर देवों के कल्याण-वाही सखा थे। तुम्हारे ही कर्म से मेधावी, ज्ञात-कार्य और शुभ्रशस्त्र मरुद्गण ने जन्म ग्रहण किया था।

२. अग्नि! तुम अङ्गिरा लोगों में प्रथम और सर्वोत्तम हो। तुम मेधावी हो और देवों का यज्ञ विभूषित करते हो। तुम सारे संसार के विभु हो; तुम मेधावी और द्विमातृक (दो काठों से उत्पन्न) हो। मनुष्यों के उपकार के लिए विभिन्न रूपों में सर्वत्र वर्त्तमान हो।

३. अग्नि! तुम मातरिश्वा या वायु के अग्रगामी हो। तुम शोभन यज्ञ की अभिलाषा से सेवक यजमान के निकट प्रकट हो जाओ। तुम्हारी शक्ति देखकर आकाश और पृथ्वी काँप जाती है। तुम्हें होता माना गया है; इसलिए तुमने यज्ञ में उस भार को वहन किया है। हे आवास-हेतु अग्नि! तुमने पूजनीय देवों का यज्ञ निष्पन्न किया है।

४. अग्नि! तुमने मनु को स्वर्ग-लोक की कथा सुनाई थी। तुम परिचर्या करनेवाले पुरुरवा राजा को अनुगृहीत करने के लिए अत्यन्त शुभफल-दायक हुए थे। जिस समय अपने पितृ-रूप दो काष्ठों के घर्षण से तुम उत्पन्न होते हो, उस समय तुम्हें ऋत्विक् लोग वेदी की पूर्व ओर ले जाते हैं। अनन्तर तुम्हें पश्चिम ओर ले जाया जाता है।

५. अग्नि! तुम ईप्सित-फल-दाता और पुष्टिकारक हो। स्रुक्-पात्र उठाने के समय यजमान तुम्हारा यश गाता है। जो यजमान तुम्हें वषट्कार से युक्त आहुति प्रदान करता है, हे एकमात्र अन्नदाता अग्नि! उसे तुम पहले और पीछे समस्त लोक को प्रकाश देते हो।

६. विशिष्ट-ज्ञान-शाली अग्नि! तुम कुमार्ग-गामी पुरुष को उसके उद्धार-योग्य कार्य में नियुक्त करो। युद्ध के चारों ओर विस्तृत

और अच्छी तरह प्रारम्भ होने पर तुम अल्प-संख्यक और वीरता-विहीन पुरुषों के द्वारा बड़े-बड़े वीरों का भी वध करते हो।

७. अग्नि ! तुम अपने उस सेवक मनुष्य को, अनुदिन अन्न के लिए, उत्कृष्ट और अमरपद पर प्रतिष्ठित करते हो। जो स्वर्ग-लोक और जन्मान्तर की प्राप्ति या उभय-रूप जन्म के लिए अतीव पिपासु है, उस ज्ञानी यजमान को सुख और अन्न दो।

८. अग्नि ! हम धन-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम यशस्वी और यज्ञकर्त्ता पुत्रदान करो। नये पुत्र के द्वारा यज्ञ-कर्म की हम वृद्धि करेंगे। हे द्यू और पृथिवी ! देवों के साथ हमें सुचारु-रूप से बचाओ।

९. निर्दोष अग्निदेव ! तुम सब देवों में जागरूक हो। अपने पितृ-मातृ-रूप द्यावा-पृथिवी के पास रहकर और हमें पुत्र-दान करके अनुग्रह करो। यज्ञ-कर्त्ता के प्रति प्रसन्न-बुद्धि बनो। कल्याण-वाही अग्नि ! तुम यजमान के लिए संसार का सब तरह का अन्नप्रदान करो।

१०. अग्नि ! तुम हमारे लिए प्रसन्न-मति हो; तुम हमारे पितृ-रूप हो। तुम परमायु के दाता हो; हम तुम्हारे बन्धु हैं। हिंसारहित अग्नि ! तुम शोभन पुरुषों से युक्त और व्रत-पालक हो। तुम्हें सैकड़ों-हज़ारों धन प्राप्त हों।

११. अग्नि ! देवों ने पहले पुरुरवा के मानवरूपधारी पौत्र नहुष का तुम्हें मनुष्य शरीरवान् सेनापति बनाया। साथ ही उन्होंने इला को मनु की धर्मोपदेशिका भी बनाया था। जिस समय मेरे पिता अङ्गिरा ऋषि के पुत्र-रूप से तुमने जन्म ग्रहण किया था।

१२. वन्दनीय अग्नि ! हम धनवान् हैं। तुम रक्षण-शक्ति-द्वारा हम लोगों की और हमारे पुत्रों की देह की रक्षा करो। हमारा पौत्र तुम्हारे व्रत में निरन्तर नियुक्त है। तुम उसकी गौओं की रक्षा करो।

१३. अग्नि ! तुम यजमान-रक्षक हो। यज्ञ को बाधा-शून्य करने के लिए पास में रहकर यज्ञ के चारों ओर दीप्तिमान् हो। तुम अहिंसक

और पोषक हो। तुम्हें जो हव्य दान करता है, उस स्तोत्र-कर्त्ता के मंत्र को तुम ध्यान से ग्रहण करते हो।

१४. अग्नि ! तुम्हारा स्तोता ऋत्विक् जैसे अभिलषित और परम धन प्राप्त करे, वैसी तुम इच्छा करो। संसार कहता है कि, तुम पालनीय या दुर्बल यजमान के लिए प्रसन्न-मति पितृ-स्वरूप हो। तुम अत्यन्त परिज्ञाता हो। अज्ञ यजमान को शिक्षा दो। साथ ही सब दिशाओं का निर्णय भी कर दो।

१५. अग्नि ! जिस यजमान ने ऋत्विकों को दक्षिणा दी है, उसकी तुम सिलाई किये हुए कवच की तरह, अच्छी तरह, रक्षा करो। जो यजमान सुस्वादु अन्न-द्वारा अतिथियों को सुखी करके अपने घर में जीव-तृप्तिकारी या जीवों-द्वारा विधीयमान यज्ञानुष्ठान करता है, वह स्वर्गीय उपमा का पात्र होता है।

१६. अग्नि ! हमारे इस यज्ञ-कार्य की भ्रान्ति को क्षमा करो और बहुत दूर से आकर कुमार्ग में जो पड़ गया है, उसे क्षमा करो। सोम का यज्ञ करनेवाले मनुष्यों के लिए तुम सरलता से प्राप्य हो, पितृ-तुल्य हो, प्रसन्न-मति और कर्म-निर्वाहक हो। उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दो।

१७. पवित्र अग्निदेव ! हे अङ्गिरा ! मनु, अङ्गिरा, ययाति और अन्यान्य पूर्व-पुरुषों की तरह तुम सम्मुखवर्ती होकर यज्ञदेश में गमन करो, देवों को ले आओ, उन्हें कुशों पर बैठाओ और अभीष्ट हव्यदान करो।

१८. अग्नि ! इस मंत्र से वृद्धि को प्राप्त हो। अपनी शक्ति और ज्ञान के अनुसार हमने तुम्हारी स्तुति की। इसके द्वारा हमें विशेष धन दो और हमें अन्न-सम्पन्न शोभन बुद्धि प्रदान करो।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. वज्रधारक इन्द्र ने पहले जो पराक्रम का कार्य किया था, उसी कार्य का हम वर्णन करते हैं। इन्द्र ने मेघ का वध किया था। अनन्तर

उन्होंने वृष्टि की थी। प्रवहमाना पार्वत्य नदियों का मार्ग भिन्न किया था।

२. इन्द्र ने पर्वत पर आश्रित मेघ का वध किया था। विश्वकर्मा या त्वष्टा ने इन्द्र के लिए दूरवेधी वज्र का निर्माण किया था। अनन्तर जिस तरह गाय वेगवती होकर अपने बछड़े की ओर जाती है, उसी तरह धारावाही जल सवेग समुद्र की ओर गया था।

३. बैल की तरह वेग के साथ इन्द्र ने सोम ग्रहण किया था। त्रिकद्रुक यज्ञ अर्थात् ज्योतिष्टोम, गोमेध और आयु नामक त्रिविध यज्ञों में चुवाए हुए सोम का इन्द्र ने पान किया था। धनवान् इन्द्र ने वज्र का सायक ग्रहण किया था और उसके द्वारा अहियों या मेघों के अग्रज को मारा था।

४. जिस समय तुमने मेघों के अग्रज को मारा था, उस समय तुमने मायावियों की माया का विनाश किया था। अनन्तर सूर्य, उषा और आकाश का प्रकाश किया। अन्त को तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहा।

५. संसार में आवरण या अन्धकार करनेवाले वृत्र को महाध्वंसकारी वज्र-द्वारा, छिन्न-बाहु करके विनष्ट किया था। कुठार से काटे हुए वृक्ष-स्कन्ध की तरह अहि या वृत्र पृथिवी पर पड़ा हुआ है।

६. दर्पान्ध वृत्र ने पृथिवी पर अपने समान योद्धा न समझकर महावीर, बहुध्वंसक और शत्रुञ्जय इन्द्र का युद्ध में आह्वान किया था। इन्द्र के विनाश-कार्य से वृत्र त्राण नहीं पा सका। इन्द्र-शत्रु वृत्र ने नदी में गिरकर नदियों को भी पीस दिया।

७. हाथ और पैर से रहित वृत्र ने युद्ध में इन्द्र को बुलाया था। इन्द्र ने गिरि-सानु-तुल्य प्रौढ़ स्कन्ध में वज्र मारा था। जिस प्रकार वीर्य-हीन मनुष्य पौरुषशाली मनुष्य की समानता करने का व्यर्थ यत्न करता है, उसी प्रकार वृत्र ने भी वृथा यत्न किया। अनेक स्थानों में क्षत-विक्षत होकर वृत्र पृथिवी पर गिर पड़ा।

८. जिस तरह भग्न तटों को लाँघकर नद बहता है, उसी तरह मनोहर जल पतित वृत्र की देह को अतिक्रम करके जा रहा है।

जीवितावस्था में अपनी महिमा-द्वारा वृत्र ने जिस जल को बद्ध कर रक्खा था, इस समय वृत्र उसी जल के पद-देश के नीचे सो गया।

९. वृत्र की माता वृत्र की रक्षा के लिए उसकी देह पर टेढ़ी गिरी थी; परन्तु उस समय इन्द्र ने उसके नीचे के भाग पर अस्त्र-प्रहार किया। तब माता ऊपर और पुत्र नीचे हो रहा। अनन्तर बछड़े के साथ गाय की तरह वृत्र की माता 'दनु' अनन्त निद्रा में सो गई।

१०. स्थिति-शून्य, विश्राम-रहित, जलमध्य-निहित और नाम-विरहित शरीर के ऊपर से जल बहता चला जा रहा है और इन्द्र-द्रोही वृत्र अनन्त निद्रा में पड़ा हुआ है।

११. पणि नामक असुर-द्वारा जैसे गायें गुप्त थीं, उसी तरह वृत्र की स्त्रियाँ भी मेघ-द्वारा रहित होकर निरुद्ध थीं। जल का वाहक द्वार भी बन्द था। वृत्र का वध कर इन्द्र ने उस द्वार को खोला था।

१२. इन्द्र! जब उस एक देव वृत्र ने तुम्हारे वज्र के ऊपर आघात किया था, तब तुमने घोड़े की पूँछ की तरह होकर उसका निवारण कर दिया था। तुमने पणि की छिपाई गाय को भी जीत लिया था, त्वष्टा के सोमरस को जीता था और सप्त सिन्धुओं या नदियों के प्रवाह को अप्रतिहत किया था।

१३. जिस समय इन्द्र और वृत्र में युद्ध हुआ था उस समय वृत्र ने जिस बिजली, मेघ-ध्वनि, जल-वृष्टि और वज्र का इन्द्र के प्रति प्रयोग किया था, वह सब इन्द्र को नहीं छू सके। साथ ही इन्द्र ने वृत्र की अन्य मायायें भी जीत ली थीं।

१४. इन्द्र! वृत्र-हनन के समय जब तुम्हारे हृदय में भय नहीं हुआ था, तब तुमने किसी अन्य वृत्र-हन्ता की क्या प्रतीक्षा की थी या सहायक खोजा था? निर्भीक श्येन पक्षी की तरह तुम निन्यानवे नदियाँ और जल पार गये थे।

१५. शत्रु-विनाश के अनन्तर वज्रबाहु इन्द्र स्थावरों, जंगमों, शान्त पशुओं और शृङ्गी पशुओं के राजा हुए थे। इन्द्र मनुष्यों में राजा होकर

निवास कर रहे हैं। जिस प्रकार चक्र-नेमि अराओं को धारण करती है, उसी प्रकार इन्द्र ने भी अपने बीच सबको धारण किया था।

द्वितीय अध्याय समाप्त ।

३३ सूक्त

(तीसरा अध्याय ७ अनुवाक। (आवृत्त) देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. आओ, हम गाय पाने की इच्छा से इन्द्र के पास चलें। इन्द्र हिंसा-रहित हैं और हमारी प्रकृष्ट बुद्धि का परिवर्द्धन करते हैं। अन्त को वह इस गोस्वरूप धन के विषय में हमें उच्च ज्ञान प्रदान करते हैं।

२. जिस प्रकार श्येन पक्षी अपने पूर्व-सेवित नीड़ की तरफ़ दौड़ता है, उसी प्रकार मैं भी उपमानस्थानीय स्तोत्रों से, पूजन करके धनदाता और अप्रतिहत इन्द्र की ओर दौड़ता हूँ। युद्ध-वेला में इन्द्र स्तोताओं के आराध्य हैं।

३. समस्त सेनापति पीठ पर धनुष लगाये हुए हैं। स्वामि-स्वरूप इन्द्र जिसे चाहते हैं, उसके पास गाय भेज देते हैं। उच्चबुद्धि-शाली इन्द्र! हमें भरपूर धन देकर हमारे पास व्यापारी नहीं बनना अर्थात् हमसे गाय का मूल्य नहीं माँगना।

४. इन्द्र! शक्तिशाली मरुतों से संयुक्त रहकर भी तुमने अकेले ही धनवान् और चोर वृत्र का कठिन वज्र-द्वारा वध किया था। यज्ञ-शत्रु वृत्रानुचरों ने तुम्हारे धनुष से विनाश का उद्देश्य करके पहुँचकर मृत्यु प्राप्त की।

५. इन्द्र! वे यज्ञ-रहित और यज्ञ का अनुष्ठान करनेवालों के विरोधी सिर घुमाकर भाग गये हैं। हे हरि नाम के घोड़ोंवाले, पलायन-विरहित और उग्र इन्द्र! तुमने दिव्य लोक, आकाश और पृथिवी से व्रत-विरहित लोगों को उठा दिया है।

६. उन्होंने निर्दोष इन्द्र की सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा की थी। चरित्रवान् मनुष्यों ने इन्द्र को प्रोत्साहित किया था। शूरों के साथ जिस प्रकार युद्ध ठानकर नपुंसक भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे भी इन्द्र-द्वारा निराकृत होकर और अपनी शक्तिहीनता समझकर इन्द्र के पास से सहज-मार्ग से दूर भाग गये।

७. इन्द्र! तुमने हास्यासक्तों को अन्तरिक्ष में युद्ध-दान किया है। दस्यु वृत्र को दिव्य लोक से लाकर अच्छी तरह दग्ध किया है। इसी प्रकार सोम तैयार करनेवालों और स्तोताओं की स्तुति-रक्षा की है।

८. उन वृत्रानुचरों ने पृथिवी को आच्छादन कर डाला था; और, सुवर्ण और मणियों से भी वे सम्पन्न हुए थे। परन्तु वे इन्द्र को नहीं जीत सके। इन्द्र ने उन विघ्नकर्त्ताओं को सूर्य-द्वारा तिरोहित कर डाला था।

९. इन्द्र! चूँकि तुमने महिमा-द्वारा द्युलोक और भूलोक को सम्पूर्ण रूप से वेष्टन करके सारा भोग किया है; इसलिए तुमने मन्त्रार्थ-ग्रहण करने में असमर्थ यजमानों की भी रक्षा करने में समर्थ मन्त्रों-द्वारा वृत्र-रूप चोर को निःसारित किया था।

१०. जब कि, दिव्य लोक से जल पृथिवी पर नहीं प्राप्त हुआ और धन-प्रद भूमि को उपकारी द्रव्य-द्वारा पूर्ण नहीं किया, तब वर्षाकारी इन्द्र ने अपने हाथों में वज्र उठाया और द्युतिमान् वज्र-द्वारा अन्धकार-रूप मेघ से पतन-शील जल का पूर्णरूप से दोहन कर लिया।

११. प्रकृति के अनुसार जल बहने लगा; किन्तु वृत्र नौकागम्य नदियों के बीच में बढ़ा। तब इन्द्र ने महाबलशाली और प्राण-संहारी आयुध-द्वारा कुछ ही दिनों में स्थिर-मना वृत्र का वध किया था।

१२. भूमि पर सोये हुए वृत्र की सेना को इन्द्र ने विद्ध किया था और शृंगी तथा जगच्छोषक वृत्र को विविध प्रकार से ताड़ना दी थी। इन्द्र! तुम्हारे पास जितना वेग और बल है, उससे युद्धाकाङ्क्षी शत्रु को वज्र-द्वारा हनन किया था।

१३. इन्द्र का कार्य-साधक वज्र शत्रु को लक्ष्य कर गिरा था। इन्द्र ने तीक्ष्ण और श्रेष्ठ आयुध-द्वारा वृत्र के नगरों को विविध प्रकार से भिन्न किया था। अन्त को इन्द्र ने वृत्र पर वज्र-द्वारा आघात किया था और उसे मारकर भली भाँति अपना उत्साह बढ़ाया था।

१४. इन्द्र! तुम जिस कुत्स की स्तुति को चाहते हो, उसी कुत्स की तुमने रक्षा की थी। तुमने युद्ध-रत, श्रेष्ठ और दसों दिशाओं में दीप्तिमान् दशद्यु की रक्षा की थी। तुम्हारे घोड़ों के सुमों से पतित धूलि द्युलोक तक फैल गई थी। शत्रु भय से जल में मग्न होकर भी श्वैत्रेय ऋषि, मनुष्यों में अग्रणी होने की अभिलाषा से, आपके अनुग्रह से बाहर निकल आये थे।

१५. इन्द्र! सौम्य, श्रेष्ठ और जल-मग्न श्वैत्रेय को क्षेत्र-प्राप्ति के लिए तुमने बचाया था। जो हमारे साथ बहुत समय से युद्ध कर रहे हैं, उन शत्रुताकाङ्क्षी लोगों को तुम वेदना और दुःख दो।

३४ सूक्त

(देवता अश्विद्वय)

१. हे मेधावी अश्विनीकुमारद्वय! हमारे लिए तुम आज तीन बार आओ। तुम्हारा रथ और दान बहुव्यापी है। जिस प्रकार रश्मियुक्त दिन और हिमयुक्त रात्रि का परस्पर नियम-रूप सम्बन्ध है, उसी प्रकार तुम दोनों के बीच भी सम्बन्ध है। अनुग्रह करके तुम मेधावी ऋत्विकों के वशवर्त्ती हो जाओ।

२. तुम्हारे मधुर-खाद्य-वाहक रथ में तीन दृढ़ चक्र हैं; उन्हें सभी देवों ने चन्द्रमा की रमणीय पत्नी वेना के साथ विवाह-यात्रा करने के समय जाना। उस रथ के ऊपर, अवलम्बन के लिए, तीन खम्भे हैं। अश्विद्वय! उसी रथ से दिन में तीन बार और रात्रि में भी तीन बार गमन करो।

३. अश्विद्वय! तुम एक दिन में तीन बार यज्ञानुष्ठान का दोष शुद्ध करो। आज तीन बार मधुर रस से यज्ञ का हव्य सिक्त करो। रात और दिन में तीन बार पुष्टिकर अन्न-द्वारा हमारा भरण करो।

४. अश्विद्वय! हमारे घर में तीन बार आओ। हमारे अनुकूल व्यापार में लगे मनुष्य के पास तीन बार आओ। रक्षा करने योग्य मनुष्य के पास तीन बार आओ। हमें तीन प्रकार शिक्षा दो। हमें तीन बार आनन्द-जनक फल प्रदान करो। जैसे इन्द्र जल देते हैं, उसी प्रकार हमें तीन बार अन्न दो।

५. अश्विद्वय! हमें तीन बार धन दो। देव-युक्त कर्मानुष्ठान में तीन बार आओ। हमारी बुद्धि-रक्षा तीन बार करो। हमारा तीन बार सौभाग्य-सम्पादन करो। हमें तीन बार अन्न दो। तुम्हारे त्रिचक्र रथ पर सूर्य की पुत्री चढ़ी हुई है।

६. अश्विद्वय! दिव्य लोक की औषध हमें तीन बार दो। पार्थिव औषध तीन बार दो। अन्तरिक्ष से तीन बार औषधप्रदान करो। बृहस्पति के पुत्र शंयू की तरह हमारी सन्तान को सुख-वान करो। शोभनीय-औषध-रक्षक! तुम वात, पित्त, श्लेष्मा आदि आदि तीन धातु-सम्बन्धी सुख दो।

७. अश्विद्वय! तुम हमारे पूजनीय हो। प्रतिदिन तीन बार पृथिवी पर आगमन करके तीन कक्षा-युत कुशों पर शयन करो। हे नासत्यरथिद्वय! जिस प्रकार आत्म-रूप वायु शरीरों में आती है, उसी प्रकार तुम घी, पशु और वेदी नाम के तीन यज्ञस्थानों में आगमन करो।

८. अश्विद्वय! सिन्धु आदि नदियों के सप्त मातृ-जल-द्वारा तीन सोमाभिषव प्रस्तुत हुए हैं। तीन कलस और हव्य भी तैयार हैं। तुमने तीनों संसारों से ऊपर जाकर दिवा-रात्रि-संयुक्त आकाश के सूर्य की रक्षा की थी।

९. हे नासत्य-अश्विद्वय ! तुम्हारे त्रिकोण रथ के तीन चक्र कहाँ हैं ? बन्धनाधार-भूत नीड़ या रथ के उपवेशन-स्थान के तीनों काठ कहाँ हैं ? कब बलवान् गर्दभ तुम्हारे रथ में जोते जाते हैं, जिनके द्वारा हमारे यज्ञ में आते हो।

१०. हे नासत्य-अश्विद्वय ! आओ। हव्य देता हूँ। अपने मधुपायी मुख-द्वारा मधुर हव्य पान करो। उषा-समय से पहले ही सूर्य ने तुम्हारे विचित्र और घृतवत् रथ को यज्ञ में आने के लिए प्रेरित किया है।

११. हे नासत्य-अश्विद्वय ! तैंतीस देवताओं के साथ मधुपान के लिए यहाँ आओ। हमारी आयु को बढ़ाओ। पाप का खण्डन करो। विद्वेषियों को रोको। हमारे साथ रहो।

१२. अश्विकुमारद्वय ! त्रिकोण या त्रिलोक में चलनेवाले रथ द्वारा हमारे पास पुत्र-भृत्यादि-संयुक्त धन लाओ। अपनी रक्षा के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम सुनो; हमारी वृद्धि करो और संग्राम में बल-दान करो।

३५ सूक्त

(देवता सविता, छन्द जगती)

१. अपनी रक्षा के लिए पहले अग्नि का आह्वान करता हूँ। रक्षा के लिए मित्र और वरुण को इस स्थान पर बुलाता हूँ। संसार का विश्राम-कारण रात्रि को मैं बुलाता हूँ। रक्षा के लिए सविता देवता को बुलाता हूँ।

२. अन्धकार-पूर्ण अन्तरिक्ष से बार-बार भ्रमण कर देव और मनुष्य को सचेतन करके सविता देवता सोने के रथ से समस्त भुवनों को देखते-देखते भ्रमण करते हैं।

३. देव सविता उदय से मध्याह्न तक उर्द्धगामी पथ से और मध्याह्न से सायं तक अधोगामी पथ देकर गमन करते हैं। वह पूजनीय सूर्यदेव

दो श्वेत घोड़ों द्वारा गमन करते हैं। समस्त पापों का विनाश करते-करते दूर देश से आते हैं।

४. पूजनीय और विचित्र किरणोंवाले सविता देवता भुवनों के अन्धकार के विनाश के लिए तेज धारण करके पास के सुवर्ण-विचित्रित और सोने की रस्सियों से युक्त विशाल रथ पर सवार हुए।

५. श्वेत पैरोंवाले श्याव नाम के घोड़े सुवर्ण युग या सोने की रस्सियोंवाले रथ को लेकर मनुष्यों के पास प्रकाश करते हैं। सूर्यदेव के पास मनुष्य और संसार उपस्थित हैं।

६. द्युलोक आदि तीन लोक हैं। इनमें द्युलोक और भूलोक—दो सूर्य के पास हैं। एक अन्तरिक्ष यमराज के गृह में जाने का रास्ता है। जिस प्रकार रथ कील का ऊपरी भाग अवलम्बन करता है, उसी प्रकार अमर या चन्द्रमा आदि नक्षत्र सूर्य को अवलम्ब किये हुए हैं। जो सूर्य को जानते हैं; वे इस विषय में बोलें।

७. गंभीर कम्पन से संयुक्त, प्राणदायी सुनयन से संयुक्त किरणें अन्तरिक्ष आदि तीनों लोकों में व्याप्त हैं। इस समय सूर्य कहाँ हैं; कौन कह सकता है ? किस दिव्य लोक में सूर्य की रश्मि विस्तृत है ?

८. सूर्य ने पृथिवी की आठों दिशायें प्रकाशित की हैं। प्राणियों के तीनों संसार और सप्त सिन्धु भी प्रकाशित किये हैं। सोने की आँखोंवाले सविता हव्यदाता यजमान को वरणीय द्रव्यदान देकर यहाँ आवें।

९. सुवर्ण-पाणि और विविध दर्शन से युक्त सविता दोनों लोकों में गमन करते हैं, रोगादि का निराकरण करते हैं, उदय होते हैं और तमोनाशक तेज-द्वारा आकाश को व्याप्त करते हैं।

१०. सुवर्ण-हस्त, प्राणदाता, सुनेता, हर्षदाता और धनदाता सविता अभिमुख होकर आवें। वे देव, राक्षसों और यातुधानों का निराकरण करके प्रतिरात्रि स्तुति प्राप्त कर अवस्थित हैं।

११. सविता देव! तुम्हारा मार्ग पूर्व-निश्चित, धूलि-रहित और अन्तरिक्ष में सुनिर्मित है। वैसे ही मार्गों से आकर आज हमारी रक्षा करो। देव! हमारी बातें देवों के पास प्रकाश कीजिए।

३६ सूक्त

(८ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से ४३ वें सूक्त तक के ऋषि घोर के पुत्र कण्व)

१. तुम लोग बहु-संख्यक प्रजा हो; तुम लोग देवता की कामना करते हो; तुम लोगों के लिए, सूक्त-वाक्य-द्वारा, महान् अग्नि की हम प्रार्थना करते हैं। अन्य ऋषि लोग भी उन्हीं अग्नि की स्तुति करते हैं।

२. अनुष्ठाता लोगों ने बल-वर्द्धन-कारी अग्नि को धारण किया था। अग्निदेव! हम हव्य लेकर तुम्हारी परिचर्या करते हैं। तुम अन्न-दान में तत्पर होकर आज इस अनुष्ठान में हमारे प्रति सुप्रसन्न होकर हमारे रक्षक बनो।

३. अग्नि! तुम देवताओं के होता और सर्वज्ञ हो। हम तुम्हें वरण करते हैं। तुम महान् और नित्य हो। तुम्हारी दीप्ति विस्तृत होती है। तुम्हारी किरण आकाश छूती है।

४. अग्नि! तुम प्राचीन दूत हो। वरुण, मित्र और अर्यमा तुम्हें भली भाँति दीप्तिमान् करते हैं। जो मनुष्य तुम्हें हविर्दान करता है, वह तुम्हारी सहायता से समस्त धन विजय करता है।

५. अग्नि! तुम हर्षदाता हो। तुम देवों को बुलाओ। तुम प्रजाओं के गृहपति हो। तुम देवों के दूत हो। सूर्य, पर्जन्य, पृथिवी आदि देवता जो सब अमोघ व्रत करते हैं, वे सब तुममें सम्मिलित हो जाते हैं।

६. युवक अग्नि! सौभाग्यशाली हो। तुम्हें लक्ष्य करके सब हव्य दिये जाते हैं। तुम हमारे लिए प्रसन्न-मना होकर आज और कल—सर्वदा शोभनीय वीर्य-शाली देवों का अर्चन करो।

७. यजमान लोग नमस्कार-पूर्वक उन स्वयं दीप्तिमान् अग्नि की इसी प्रकार उपासना करते हैं। शत्रु को दृढ़तर पराजय करने की इच्छावाले मनुष्य होत्र लोगों के द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करते हैं।

८. देवों ने प्रहार करके वृत्र का हनन किया था। दोनों जगत् और अन्तरिक्ष को, रहने के लिए, विस्तृत किया था। अग्नि बलशाली हैं। वे गो-प्राप्ति के लिए संग्राम में हिनहिनाते हुए घोड़े की तरह सर्वतोभाव से आहूत होकर कण्व ऋषि के लिए यथेच्छ द्रव्य वर्षण करें।

९. प्रशस्त अग्निदेव! बैठो। तुम बड़े हो; देवों की अतिशय कामना करो। तुम दीप्ति-पूर्ण बनो। हे मेधावी और उत्कृष्ट अग्नि! गमनशील और सुदृश्य धूम उत्पन्न करो।

१०. हव्यवाही अग्नि! तुम अत्यन्त पूजा-पात्र हो। सारे देवों ने, मनु के लिए, तुम्हें इस यज्ञ-स्थान में धारण किया था। तुम धन-द्वारा प्रीति सम्पादन करो। कण्व ने पूजा-पात्र अतिथि के साथ तुम्हें धारण किया है। वर्षाकारी इन्द्र ने तुम्हें धारण किया है। अन्यान्य स्तुति-कारकों ने भी तुम्हें धारण किया है।

११. पूजार्ह और अतिथि-प्रिय कण्व ने अग्नि को आदित्य से भी अधिक दीप्तिमान् किया है। उन्हीं अग्नि की गति-विशिष्ट किरण दीप्तिमान् हैं। ये ऋचायें उन अग्नि को वर्द्धित करती हैं; हम भी परिवर्द्धित करते हैं।

१२. हे अन्न-युक्त अग्नि! हमारे धन की पूर्ति करो। तुम्हारे द्वारा देवों की मित्रता मिलती है। तुम प्रसिद्ध अन्न के स्वामी हो। तुम महान् हो। हमें सुखी करो।

१३. हमारी रक्षा के लिए सूर्य की तरह उन्नत बनो। उन्नत होकर अन्नदाता बनो; क्योंकि विलक्षण यज्ञ-सम्पादक लोगों के द्वारा हम तुम्हें आह्वान करते हैं।

१४. उन्नत होकर हमें, ज्ञान द्वारा, पाप से बचाओ। सब राक्षसों को जलाओ। हमें उन्नत करो, जिससे हम संसार में विचरण कर सकें। इसी प्रकार हमारा हव्य-रूप धन देवों के गृहों में ले जाओ, जिससे हम जीवित रह सकें।

१५. हे विशाल किरणवाले युवक अग्नि! हमें राक्षसों से बचाओ। धन-दान न करनेवाले धूर्त्त से हमारी रक्षा करो। हिंसक पशु से हमारी रक्षा करो। हननेच्छु शत्रु से हमारी रक्षा करो।

१६. हे उत्तप्त किरणवाले अग्निदेव! जिस तरह हम लोग कड़े दण्ड-द्वारा भाँड आदि नष्ट करते हैं, उसी तरह धन-दान न करनेवालों का सदा संहार करो।

१७. सुशोभन वीर्य के लिए अग्नि की याचना की जाती है। अग्नि ने कण्व को सौभाग्य-दान किया। अग्नि ने हमारे मित्रों की रक्षा की। अग्नि ने पूजा-पात्र और अतिथि-संयुक्त ऋषि की रक्षा की। इसी प्रकार धनादि दान के लिए जिस-किसी ने अग्नि की स्तुति की, उसकी अग्नि ने रक्षा की।

१८. चोरों का दमन करनेवाले अग्नि के साथ तुर्वश, यदु और उग्रादेव को दूर देश से हम बुलाते हैं। वह अग्नि नवास्त्व, बृहद्रथ और तुर्वीति को इस स्थान पर बुलावे।

१९. अग्नि! तुम ज्योतिःस्वरूप हो। मनु ने विविध जातियों के मनुष्यों के लिए तुम्हें स्थापित किया था। अग्निदेव! तुम यज्ञ के लिए उत्पन्न होकर और हव्य-द्वारा तृप्त होकर कण्व के प्रति प्रकाशमान हुए हो। मनुष्य तुम्हें नमस्कार करते हैं।

२०. अग्नि की शिखा प्रदीप्त, बलवती और भयंकर है। उसका विनाश नहीं किया जा सकता। अग्निदेव! राक्षसों, यातुधानों और विश्वभक्षक शत्रुओं का दहन करो।

३७ सूक्त

(देवता मरुद्गण)

१. हे कण्व-गोत्रोत्पन्न ऋषिगण! क्रीड़ासक्त और शत्रुशून्य मरुतों को उद्देश्य करके गाओ। वे रथ पर सुशोभित होते हैं।

२. उन्होंने अपनी दीप्ति से सम्पन्न होकर बिन्दु-चिह्न-संयुक्त मृगरूप वाहन के साथ तथा युद्ध-गर्जन, आयुध और नाना रूप अलङ्कारों के साथ जन्म ग्रहण किया है।

३. उनके हाथों में रहनेवाली चाबुक जो शब्द कर रही है, वह हम सुन रहे हैं। वह चाबुक युद्ध में बल-वृद्धि करती है।

४. जो तुम्हारे बल का समर्थन करते, शत्रु-दमन करते और जो दीप्यमान कीर्ति से पूर्ण और बलवान् हैं, हवि के उद्देश्य से उन्हीं मरुतों की स्तुति करो।

५. जो मरुद्गण पृश्नि-रूप या दुग्धदात्री-रूप धेनुओं के बीच स्थित हैं, उनके अविनाशी, क्रीड़ा-परायण और सहन-शील तेज की प्रशंसा करो। दूध के आस्वादन में वही तेज परिवर्द्धित हुआ है।

६. द्युलोक और भूलोक में कम्पन करनेवाले नेतृ-स्थानीय मरुतो, तुममें कौन बड़ा है? तुम वृक्षाग्र की तरह चारों दिशाओं को परिचालित करो।

७. मरुद्गण! तुम्हारी कठोर और भयंकर गति के डर से मनुष्यों ने घरों में सुदृढ़ खम्भे खड़े किये हैं; क्योंकि तुम्हारी गति से अनेक शृङ्ग-युक्त पर्वत भी चालित हो जाते हैं।

८. मरुतों की गति से सारे पदार्थ फेंके जाने लगे। पृथिवी भी बूढ़े और जीर्ण राजा की तरह कम्पित हो जाती है।

९. मरुतों का उद्भव-स्थान आकाश अविकम्प रहता है। उनके मातृ-रूप आकाश से पक्षी भी निकल सकते हैं; क्योंकि उनका बल दोनों लोकों में फैलकर सर्वत्र वर्त्तमान है।

१०. मरुद्गण शब्दों के जनयिता हैं। वे गमन-समय में जल का विस्तार करते हैं और गायों को "हम्बा" शब्द के साथ घुटने भर जल में प्रेरण करते हैं।

११. जो बादल प्रसिद्ध, दीर्घ और छोटे हैं, जो जल-वर्षण नहीं करते और किसी के द्वारा वध्य नहीं हैं, उन्हें भी मरुत् लोग, अपनी गति से, कम्पित करते हैं।

१२. मरुतो ! तुम बलवान् हो; इसलिए आदमियों को अपने-अपने कार्यों में लगाते हो। मेघों को भी प्रेरित करते हो।

१३. जभी मरुद्गण गमन करते हैं, तभी रास्ते में चारों ओर ध्वनि करते हैं। उनकी ध्वनि सभी सुन सकते हैं।

१४. वेगवान् वाहन के द्वारा तुरत आओ। मेधावी अनुष्ठाताओं ने तुम्हारी परिचर्या का समारोह किया है। उनके प्रति तृप्त हो।

१५. तुम्हारी तृप्ति के लिए हव्य है। हम समस्त परमायु जीने के लिए तुम्हारे सेवक बने हुए हैं।

३८ सूक्त

(देवता मरुद्गण)

१. मरुद्गण ! तुम लोग प्रार्थनाप्रिय हो। तुम्हारे लिए कुश छिन्न हैं। जिस प्रकार पिता पुत्र को हाथों से धारण करता है, उसी प्रकार क्या हमें भी तुम धारण करोगे?

२. इस समय तुम कहाँ हो ? कब आओगे ? आकाश से आओ। पृथिवी से मत जाना। यजमान लोग, गायों की तरह, तुम्हें कहाँ बुलाते हैं ?

३. तुम्हारा नया धन कहाँ है ? तुम्हारा सुशोभन द्रव्य कहाँ है ? तुम्हारा समस्त सौभाग्य कहाँ है ?

४. हे पृश्नि नामक धेनु-पुत्र ! यद्यपि तुम मनुष्य हो; परन्तु तुम्हारा स्तोता अमर हो।

५. जिस प्रकार घासों के बीच मृग सेवा-रहित नहीं होता, तृण-भक्षण करता है; उसी प्रकार तुम्हारे स्तोता भी सेवा-शून्य न हों, जिससे वे यम के पथ नहीं जायें।

६. निर्ऋति या पाप-देवी अत्यन्त बलशालिनी है; और, उसका विनाश नहीं किया जा सकता। वह निर्ऋति हमारा वध न करे और हमारी तृष्णा के साथ विलुप्त हो जाय।

७. दीप्तिमान् और बलवान् रुद्रियगण या मरुद्गण सचमुच मरुभूमि में भी वायु-रहित वृष्टि करते हैं।

८. प्रसूत स्तनोंवाली धेनु की तरह बिजली गरजती है। जिस प्रकार गाय बछड़े की सेवा करती है, उसी प्रकार बिजली भी मरुद्गण की सेवा करती है। फलतः मरुद्गण ने वृष्टि की।

९. मरुद्गण जलधारी मेघों-द्वारा दिन में भी अन्धकार करते हैं। पृथिवी को भी सींचते हैं।

१०. मरुद्गण के गर्जन से सारी पृथिवी के ग्रह आदि चारों ओर कांपने लगते हैं। मनुष्य भी कांपने लगते हैं।

११. मरुतो! दृढ़ हस्त-द्वारा विलक्षण कूल से संयुक्त नदी की भाँति अबाध-गति से गमन करो।

१२. मरुद्गण! तुम्हारा रथ-चक्र-वलय या नेमि दृढ़ हो। रथ और घोड़े भी दृढ़ हों। घोड़ों की रज्जु पकड़ने में तुम्हारी अँगुलियाँ सावधान हों।

१३. हे ऋत्विक्गण! ब्रह्मणस्पति या मरुद्गण, अग्नि और सुदृश्य मित्र की प्रार्थना के लिए देवों के स्वरूप-प्रकाशक वाक्यों-द्वारा हमारे सामने होकर उनकी स्तुति करो।

१४. ऋत्विक्गण! अपने मुंह से स्तोत्र बनाओ। मेघ की तरह उस स्तोत्र-श्लोक को विस्तृत करो। शास्त्रयोग्य और गायत्री-छन्द से युक्त सूक्त का पाठ करो।

१५. ऋत्विको ! दीप्त, स्तुति-योग्य और अर्चना से संयुक्त मरुतों की वन्दना करो, जिससे वे हमारे इस कार्य में वर्द्धनशील हों।

३९ सूक्त

(देवता मरुद्गण । छन्द बृहती)

१. कम्पनकारी मरुद्गण ! जब कि, दूर से आलोक की तरह तुम अपने तेज को इस स्थान पर विकीर्ण करते हो, तब तुम किसके यज्ञ-द्वारा, किसके स्तोत्र-द्वारा, आकृष्ट होते हो ? कहाँ किस यजमान के पास जाते हो ?

२. मरुद्गण ! शत्रु-विनाश के लिए तुम्हारे हथियार स्थिर हों। साथ ही शत्रुओं को रोकने के लिए कठिन हों। तुम्हारा बल प्रार्थना-पात्र हो। दुराचारी मनुष्यों का बल हमारे पास स्तुति-भाजन न हो।

३. नेतृ-स्थानीय मरुतो ! जब स्थिर वस्तु को तुम तोड़ते हो, भारी वस्तु को चलाते हो, तब पृथिवी के नव वृक्ष के बीच से और पहाड़ की बगल से तुम जाते हो।

४. शत्रु-विनाशी मरुद्गण ! द्युलोक और पृथिवीलोक में तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। रुद्रपुत्र मरुद्गण ! तुम इकट्ठे हो। शत्रुओं के दमन के लिए तुम्हारा बल शीघ्र विस्तृत हो।

५. मरुद्गण पहाड़ों को विशेष रूप से कँपाते हैं। वनस्पतियों को अलग-अलग कर देते हैं। देव मरुद्गण ! प्रजागण के साथ तुम यथेच्छ उन्मत्तों की तरह सब स्थानों को जाते हो।

६. तुम बिन्दु-चिह्नित या विविध-वर्ण विशिष्ट मृगों को रथ में जोतते हो। लोहित मृग वाहनत्रीय-मध्यवर्ती होकर रथ वहन करता है। पृथिवी ने तुम्हारा आगमन सुना है। मनुष्य डरे हैं।

७. रुद्रपुत्र मरुतो ! पुत्र के लिए तुम्हारी रक्षण-शक्ति की हम शीघ्र प्रार्थना करते हैं। एक समय हमारी रक्षा के लिए तुम्हारा जो रूप आया था, वही रूप भीरु मेधावी यजमान के पास शीघ्र आवे।

८. तुम्हारे या किसी अन्य मनुष्य के द्वारा उत्तेजित होकर जो कोई शत्रु हमारे सामने आवे, उसका खाद्य और जल अपहृत करो। अपनी सहायता भी उससे वापस ले लो।

९. मरुद्गण! तुम सब प्रकार से यज्ञ के भोजन और उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त हो। तुम कण्व अथवा यजमान को धारण करो। जिस प्रकार बिजली वर्षा लाती है, उसी प्रकार तुम भी अपनी समस्त रक्षण-शक्ति के साथ हमारे पास आओ।

१०. सुशोभन दान से युक्त मरुद्गण! तुम समस्त तेज को धारण करो। हे कम्पन-कर्त्ता मरुतो! तुम सम्पूर्ण बल धारण करो। ऋषि-द्वेषी और क्रोध-परायण शत्रु के प्रति, वाण की तरह, अपना क्रोध प्रेरण करो।

४० सूक्त

(देवता ब्रह्मणस्पति)

१. ब्रह्मणस्पति! उठो। देव-कामनाकारी हम तुम्हारी याचना करते हैं। शोभन और दाता मरुद्गण के पास होकर जाओ। इन्द्र! तुम साथ में रहकर सोमरस सेवन करो।

२. हे बहुबल-पालक ब्रह्मणस्पति देवता! शत्रुओं के बीच प्रक्षिप्त धन के लिए मनुष्य तुम्हारी ही स्तुति करता है। मरुद्गण! जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करता है, वह सुशोभन अश्व और वीर्य से युक्त धन पाता है।

३. ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति हमारे पास आवें। सत्यदेवी आवें। देवता लोग वीर शत्रु को दूर करें। हमें हितकारी और हव्य-युक्त यज्ञ में ले जायें।

४. जो मनुष्य ऋत्विक् के ग्रहण-योग्य धन-दान करता है, वह अक्षय अन्न प्राप्त करता है। उसके लिए हम लोग इला के पास याचना

करते हैं। इला सुवीरा हैं। वह शत्रु का हनन करती हैं। उन्हें कोई नहीं मार सकता।

५. ब्रह्मणस्पति अवश्य ही पवित्र मंत्र का उच्चारण करते हैं। उस मंत्र में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देवता अवस्थान करते हैं।

६. देवगण! सुख के लिए उस हिंसा-द्वेष-शून्य मंत्र का यज्ञ में हम उच्चारण करते हैं। हे नेतृ-गण! यदि तुम इस वाक्य की इच्छा करते हो, तो सारे शोभनीय वचन तुम्हारे पास जायँगे।

७. जो देवों की अभिलाषा करते हैं, उनके पास ब्रह्मणस्पति को छोड़कर कौन आवेगा? जो यज्ञ के लिए कुश तोड़ते हैं, उनके पास ब्रह्मणस्पति को छोड़कर कौन आवेगा? ऋत्विकों के साथ द्रव्य-दाता यजमान यज्ञ-भूमि के लिए प्रस्थान कर चुके हैं और अन्तःस्थित बहुधन-युक्त घर में गमन भी कर चुके हैं।

८. अपने शरीर में ब्रह्मणस्पति बल संचय करें। राजाओं के साथ वे शत्रु का विनाश करते हैं और भय के समय वे अपने स्थान पर रहते हैं। वे वज्रधारी हैं। महाधन के लिए बड़े या छोटे युद्ध में उन्हें कोई उत्साहित और निरुत्साहित करनेवाला नहीं है।

४१ सूक्त

(देवता वरुण आदि। छन्द गायत्री)

१. उत्कृष्ट ज्ञान से सम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई नहीं मार सकता।

२. वे जिसको अपने हाथ से धन-युक्त करते और हिंसक से बचाते हैं, वह मनुष्य किसी के द्वारा हिंसित न होकर वृद्धि पाता है।

३. वरुण आदि राजन्य वैसे मनुष्यों के लिए शत्रुओं का क़िला विनष्ट करते हैं; साथ ही शत्रुओं का भी विनाश करते हैं। अनन्तर वैसे मनुष्यों का पाप-मोचन भी कर डालते हैं।

४. आदित्यगण! तुम्हारे यज्ञ में पहुँचने का मार्ग सुख-गम्य और कण्टक-रहित है। इस यज्ञ में तुम्हारे लिए बुरा खाद्य नहीं तैयार होता।

५. नेतृ-स्थानीय आदित्यगण! जिस यज्ञ में तुम सरल मार्ग से आते हो, उस यज्ञ में तुम्हें उपभोग प्राप्त हो।

६. आदित्यगण! वह तुम्हारा अनुगृहीत मनुष्य किसी के द्वारा हिंसित न होकर सारा रमणीय धन सामने ही प्राप्त करता है। साथ ही अपने सदृश अपत्य भी प्राप्त करता है।

७. सखा लोग! मित्र, अर्यमा और वरुण के महत्त्व के अनुकूल स्तोत्र किस तरह हम साधित करेंगे?

८. देवगण! देवाभिलाषी यजमान का जो हनन करता है और जो कटु वचन बोलता है, उसके विरुद्ध तुम्हारे पास अभियोग नहीं उपस्थित करता। मैं धन से तुम्हें तृप्त करता हूँ।

९. अक्ष, द्यूत या जूए के खेल में जो मनुष्य चार कौड़ियाँ अपने हाथों में रखता है, उस मनुष्य से तब तक लोग डरते हैं, जब तक वह कौड़ियों को नहीं फेंक लेता है; उसी प्रकार यजमान दूसरे की निन्दा नहीं करना चाहता है—डरा करता है।

४२ सूक्त

(देवता पूषा)

१. हे पूषन्! मार्ग के पार लगा दो। विघ्न के कारण पाप का विनाश करो। हे मेघ-पुत्र देव! हमारे आगे जाओ।

२. पूषन्! यदि कोई आक्रामक, अपहर्त्ता और दुष्ट हमें उलटा मार्ग दिखा दे, तो उसे उचित मार्ग से दूर हटा दो।

३. उस मार्ग-प्रतिबन्धक, चोर और कपटी को मार्ग से दूर भगा दो।

४. जो कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष—दोनों प्रकार से हरण करता और अनिष्ट-साधन करता है; हे देव! उसकी पर-पीड़क देह को अपने पैरों से रौंद डालो।

५. अरि-मर्दन और ज्ञानी-पूषन्! तुमने जिस रक्षा-शक्ति से पितरों को उत्साहित किया था, तुम्हारी उसी रक्षा-शक्ति के लिए हम प्रार्थना करते हैं।

६. सर्व-सम्पत्शाली और विविध-स्वर्णास्त्र-संयुक्त पूषन्! हमारी प्रार्थना के अनन्तर हमारे निमित्त धन-समूह दान में परिणत करो।

७. बाधक शत्रुओं का अतिक्रम करके हमें ले जाओ। सुख-गम्य और सुन्दर मार्ग से हमें ले जाओ। पूषन्! तुम इस मार्ग में हमारी रक्षा का उपाय करो।

८. सुन्दर और तृण-युक्त देश में हमें ले जाओ। रास्ते में नया सन्ताप न होने पावे। पूषन्! तुम इस मार्ग में हमारी रक्षा का उपाय करो।

९. हमारे ऊपर अनुग्रह करो। हमारा घर धन-धान्य से पूर्ण करो। अन्य अभीष्ट वस्तु भी हमें दान करो। हमें उग्र-तेजा करो। हमारी उदर-पूर्त्ति करो। पूषन्! तुम इस मार्ग से हमारी रक्षा का उपाय करो।

१०. हम पूषा की निन्दा नहीं कर सकते; उनकी स्तुति करते हैं। हम दर्शनीय पूषा के पास धन की याचना करते हैं।

४३ सूक्त

(देवता रुद्र आदि)

१. उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त, अभीष्ट-वर्षी और अत्यन्त महान् रुद्र हमारे हृदय में अवस्थान करते हैं। कब हम उनको लक्ष्य करके सुखकर पाठ करेंगे?

२. जैसे व जिस प्रकार भूमि-देवता हमारे लिए, पशु के लिए, मनुष्य के लिए, गायों के लिए और हमारे अपत्य के लिए रुद्र-सम्बन्धी औषध प्रदान करें।

३. मित्र, वरुण, रुद्र और समान-प्रीतियुक्त सब देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

४. रुद्र स्तुति-रक्षक, यज्ञ-पालक और उदक-रूप औषध से युक्त हैं। उनके पास हम बृहस्पति-पुत्र शंयु की तरह सुख की याचना करते हैं।

५. जो रुद्र सूर्य की तरह दीप्तिमान् और सोने की तरह उज्ज्वल हैं, वे देवों के बीच श्रेष्ठ और अधिवास-कारण हैं!

६. हमारे घोड़े, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्री और गो-जाति के लिए देवता सुगम्य सुख प्रदान करें।

७. सोम, हमें प्रचुर परिमाण में, सौ मनुष्यों का धन दान करो। साथ ही महान् और यथेष्ट बल से युक्त अन्न भी दान करो।

८. सोमदेव के प्रतिबाधक और शत्रुगण हमारी हिंसा न करें। सोमदेव हमें अन्न दान करो।

९. सोम! तुम अमर और उत्तम स्थान प्राप्त किये हुए हो। तुम शिरःस्थानीय होकर यज्ञ-गृह में अपनी प्रजा की कामना करो। वह प्रजा तुम्हें विभूषित करती है, तुम उसे जानो।

४४ सूक्त

(९ अनुवाक। अग्नि प्रभृति देवता हैं। यहाँ से ५० सूक्त तक के कण्व के पुत्र प्रस्कण्व ऋषि हैं। छन्द बृहती)

१. अग्निदेव! तुम अमर और सर्व-भूतज्ञ हो। तुम उषा के पास से हविर्दान शील यजमान के लिए नानाविध और निवास-युक्त धन ला दो। आज उषाकाल में जाग्रत देवों को ले आना।

२. अग्नि! तुम देवों के सेवित दूत हो। हव्य वहन करो। तुम यज्ञ को रथ की तरह वहन करनेवाले हो। तुम अश्विनीकुमारों और उषा के साथ शोभनीय, वीर्य-युक्त और प्रभूत धन हमें दान करो।

३. अग्नि दूत निवासहेतु, विविध-प्रिय, धूम-रूप ध्वजा से युक्त, प्रख्यात ज्योति के द्वारा अलंकृत और उषाकाल में यजमानों का यज्ञ सेवन करनेवाले हैं। उन्हीं अग्नि को आज हम वरण करते हैं।

४. अग्नि श्रेष्ठ, अतिशय युवक, सदा गति-विशिष्ट, सबके द्वारा आहूत, हव्य-दाता के प्रति प्रसन्न और सर्व-भूतज्ञ हैं। उषाकाल में देवगणाभिमुख जाने के लिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ।

५. हे अमर, विश्व-रक्षक, हव्यवाही और यज्ञार्ह अग्निदेव, तुम विश्व के त्राण-कर्त्ता, मरण-रहित और यज्ञ-निर्वाहक हो, मैं तुम्हारी स्तुति करूँगा।

६. युवक अग्नि! तुम स्तोता के स्तुतिपात्र हो और तुम्हारी शिखा अन्नदायिनी है। तुम आहूत होकर हमारे अभिप्राय को उपलब्ध करो। प्रस्कण्व जीवित रहे; इसलिए उसकी आयु बढ़ा दो। उस देव-भक्त जन का सम्मान करो।

७. तुम होमनिष्पादक और सर्वज्ञ हो। तुम्हें संसार दीप्तिमान् कहता है। अग्निदेव! तुम बहुतों के द्वारा आहूत हो। उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त देवों को शीघ्र इस यज्ञ में ले आओ।

८. शोभन यज्ञ से युक्त अग्नि! रात्रि के प्रभात में सविता, उषा, अश्विद्वय, भग और अग्नि को ले आओ। हव्यवाही कण्व लोग सोम तैयार करके तुम्हें दीप्तिमान् करते हैं।

९. अग्नि! तुम लोगों के यज्ञ-पालक और देवों के दूत हो। उषाकाल में प्रबुद्ध सूर्य-दर्शी देवों को आज सोमपान के लिए ले आओ।

१०. प्रभामान् और धनशाली अग्नि! तुम सबके दर्शनीय हो। तुम पूर्वगामिनी उषा के बाद दीप्त हो। तुम ग्रामों के पालक, यज्ञों के पुरोहित और वेदी के पूर्वदिशास्थित मनुष्य हो।

११. अग्निदेव! तुम यज्ञ के साधन, देवों के आह्वानकारी ऋत्विक्, प्रकृष्ट ज्ञान से युक्त, शत्रुओं के आयुनाशक, देवों के दूत और अमर हो। हम मनु की तरह तुम्हें यज्ञस्थान में स्थापन करते हैं।

१२. मित्रों के पूजक अग्नि! जब कि, यज्ञ के पुरोहित-रूप से तुम देवों का यज्ञ-कर्म सम्पादित करते हो, तब समुद्र की प्रकृष्ट ध्वनि से युक्त तरंग की तरह तुम्हारी शिखायें दीप्तिमती रहती हैं।

१३. अग्नि! तुम्हारे श्रवण-समर्थ कर्ण हमारे वचन सुनें। मित्र, अर्यमा तथा अन्य जो देवगण प्रातःकाल में या देवयज्ञ में गमन करते हैं, उन्हीं हव्यवाही सहगामियों के साथ इस यज्ञ को लक्ष्य करके कुश पर बैठो।

१४. मरुद्गण दानशील, अग्निजिह्व और यज्ञवर्द्धनकारी हैं। वे हमारा स्तोत्र सुनें। गृहीतकर्मा वरुण अश्विनीकुमारों और उषा के साथ सोमपान करें।

४५ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द अनुष्टुप)

१. अग्निदेव! तुम इस यज्ञ में वसुओं, रुद्रों और आदित्यों को अर्चित करो। शोभनीय-यज्ञ-युक्त और अन्नदाता अन्य मनुपुत्र देवों को भी पूजित करो।

२. अग्नि! विशिष्ट प्रज्ञावाले देवता हव्यदाता को फल प्रदान करते हैं। अग्नि! तुम्हारे पास रोहित नाम का अश्व है। तुम स्तुति-पात्र हो। तुम उन तैंतीस देवों को यहाँ ले आओ।

३. अग्नि! तुम प्रभूतकर्मा और सर्वभूतज्ञ हो। जैसे तुमने प्रियमेधा, अग्नि, विरूप और अङ्गिरा नाम के ऋषियों का आह्वान सुना, वैसे ही प्रस्कण्व का आह्वान सुनो।

४. यज्ञों के बीच, विशुद्ध प्रकाश-द्वारा, अग्नि प्रकाशमान होते हैं। प्रौढ़कर्मा प्रियमेधा लोगों ने, अपनी रक्षा के लिए, अग्नि का आह्वान किया था।

५. कण्व के पुत्र, अपनी रक्षा के लिए, जिस स्तुति से तुम्हें बुलाते हैं, घृताहुत फलदाता अग्नि! वह सब स्तुति तुम सुनो।

६. अग्निदेव ! तुम यथेष्ट और विविध प्रकार के अन्नोंवाले हो तथा बहुत लोगों के प्रिय हो। तुम्हारे दीप्ति-रूप केश हैं। मनुष्य लोग तुम्हें हव्य वहन के लिए बुलाते हैं।

७. अग्नि ! तुम आह्वानकारी, ऋत्विक् और बहुधनदाता हो। तुम्हारे कर्ण श्रवण-समर्थ हैं। तुम्हारी प्रसिद्धि बहुव्यापक है। मेधावियों ने यज्ञ में तुम्हें स्थापित किया है।

८. अग्नि ! हव्यदाता के लिए हव्य धारण कर और सोमरस तैयार कर मेधावी ऋत्विक् अन्न के पास तुम्हें बुलाते हैं। तुम महान् और प्रभाशाली हो।

९. अग्नि ! तुम काष्ठ-बल-द्वारा घर्षित होकर उत्पन्न हो। तुम फलदाता और निवास हेतु हो। आज इस स्थान पर प्रातरागमन करनेवाले देवों और अन्य देवता जनों को, सोमपान के लिए, कुश के ऊपर बुलाओ।

१०. अग्नि ! सम्मुखस्थ देवरूप प्राणियों को, अन्य देवों के साथ, समान आह्वान के द्वारा यजन करो। दानशील देवो, तुम्हारे लिए यह सोम अभी गत दिवस प्रस्तुत किया गया है। इसे पान करो।

४६ सूक्त

(देवता अश्विनीकुमारद्वय। छन्द गायत्री)

१. प्रिय उषा इसके पहले नहीं दिखाई दी। यह उषा आकाश से अन्धकार दूर करती है। अश्विनीकुमारो ! मैं तुम्हारी प्रभूत स्तुति करता हूँ।

२. जो दर्शनीय समुद्र-पुत्र देवद्वय या अश्विद्वय मनोहर और धनदाता हैं और जो हमारे यज्ञ करने पर निवासस्थान प्रदान करते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ।

३. अश्विनीकुमारद्वय ! जिस समय तुम्हारा प्रशंसित रथ घोड़ों-द्वारा स्वर्ग में चलता है, उस समय हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

४. हे नेतृस्थानीय अश्विद्वय ! पूरक, पालक, यज्ञ-दर्शक और जल-शोषक सविता हमारे हव्य-द्वारा देवों को प्रसन्न करें।

५. हे नासत्यद्वय ! हमारी प्रिय स्तुति ग्रहण कर बुद्धि-परि-चालक तीव्र सोमरस का पान करो।

६. अश्विद्वय ! जो ज्योतिष्क अन्न अन्धकार का विनाश करके हमें तृप्ति-प्रदान करता है, वही अन्न हमें प्रदान करो।

७. अश्विद्वय ! स्तुति-समुद्र के पार जाने के लिए नौकारूप होकर आओ। हमारे सामने अपने रथ में अश्व संयोजित करो।

८. तुम्हारा समुद्र के तीर पर आकाश से भी बड़ा नौकारूप यान है। पृथिवी पर तुम्हारा रथ है। तुम्हारे यज्ञ-कर्म में सोमरस भी मिला हुआ है।

९. कण्ववंशियो ! अश्विद्वय की जिज्ञासा करो। द्युलोक से सूर्य-किरणें आती हैं। वृष्टि के उत्पत्ति-स्थान अन्तरिक्ष में हमारी निवास-हेतु ज्योति प्रादुर्भूत होती है। अश्विनीकुमारद्वय ! इन स्थानों में से किस स्थान पर तुम अपना स्वरूप रखना चाहते हो ?

१०. सूर्य-रश्मि-द्वारा उषाकाल का आलोक उत्पन्न हुआ है। सूर्य उदित होकर हिरण्य के समान हुए हैं। सूर्य के बीच में जाने से अग्नि कृष्णवर्ण होकर अपनी शिखा-द्वारा प्रकाश पाये हुए हैं।

११. रात्रि के पार जाने के निमित्त सूर्य के लिए सुन्दर मार्ग बना हुआ है। सूर्य की विस्तृत दीप्ति दिखाई दी है।

१२. अश्विद्वय प्रसन्नता के लिए सोम पान करते हैं। स्तोता लोग बार-बार उनके रक्षण-कार्य की प्रशंसा करते हैं।

१३. सुखद अश्विद्वय ! मनु की तरह सेवक यजमान के घर में निवास-शील होकर तुम सोमपान और स्तुति-श्रवण के लिए आओ।

१४. अश्विद्वय ! तुम चतुर्दिक्चारी हो। तुम्हारी शोभा का अनुधावन करके उषा आगमन करे। रात्रि में सम्पादित यज्ञ का हव्य तुम ग्रहण करो।

१५. अश्विद्वय ! तुम दोनों पान करो। तुम दोनों प्रशस्त रक्षण-द्वारा हमें सुखदान करो।

तृतीय अध्याय समाप्त ।

४७ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय देवता अश्विद्वय। छन्द बृहती)

१. हे यज्ञवर्द्धनकारी अश्विद्वय! यह अतीव मधुर सोम तुम्हारे लिए अभिषुत हुआ है। यह कल ही तैयार हुआ है। इसे पान करो और हव्यदाता यजमान को रमणीय धन दान करो।

२. अश्विद्वय ! अपने त्रिविध बन्धन-काष्ठों से युक्त, त्रिकोण या लोकत्रय में वर्त्तमान और सुरूप रथ से आओ। कण्वपुत्र या मेधावी ऋत्विक् लोग तुम्हारे लिए स्तोत्र-पाठ कर रहे हैं। उनका सादर आह्वान सुनो।

३. यज्ञवर्द्धनकर्त्ता अश्विद्वय ! अत्यन्त मधुर सोमरस का पान करो। इसके अनन्तर हे अश्विद्वय ! आज रथ पर धन लेकर हव्यदाता यजमान के पास गमन करो।

४. सर्वज्ञाता अश्विद्वय ! तीन स्थानों में अवस्थित कुश पर स्थित होकर मधुर रस-द्वारा यज्ञ सिक्त करो। अश्विद्वय ! दीप्तिमान् कण्वपुत्र सोमरस तैयार करके तुम्हारा आह्वान करते हैं।

५. अश्विद्वय ! जिस अभीष्ट रक्षण-कार्य-द्वारा तुम दोनों ने कण्व की रक्षा की थी, हे शोभन-कर्म-पालक, उसी कार्य-द्वारा हमारी रक्षा करो। हे यज्ञ-वर्द्धक ! सोमपान करो।

६. अश्विनीकुमारद्वय ! तुमने दानशील राजा पुजवन-पुत्र सुदास के लिए लड़ाई में धन को धारण और अन्न को वहन किया था। उसी प्रकार आकाश से अनेक के वांछनीय धन हमें दान करो।

७. नासत्यद्वय ! चाहे तुम पास रहो या दूर रहो; सूर्योदय के समय सूर्य-किरणों के साथ अपने सुनिर्मित रथ पर हमारे पास आओ।

८. तुम सदा यज्ञसेवी हो। तुम्हारे सात घोड़े तुम्हें निकट लाकर सवन-यज्ञ की ओर ले जायँ। हे नेतृ-स्थानीय अश्विद्वय! शुभकर्म-कर्त्ता और दानशील यजमान को अन्न दान करके तुम कुश पर बैठो।

९. अश्विद्वय! तुमने जिस रथ पर धन लाकर हव्यदाता को सदा दान किया है, उसी सूर्य-किरण-सम्बलित रथ पर मधुर सोम-पान के लिए आओ।

१०. हम रक्षा के लिए उक्थ और स्तोत्र-द्वारा अश्विद्वय को अपनी ओर आह्वान करते हैं। अश्विद्वय! कण्वपुत्रों या मेधावी ऋत्विकों के प्रिय सदन में तुमने सदा सोम पान किया है।

४८ सूक्त

(देवता उषा)

१. हे देवपुत्री उषा! हमें धन देकर प्रभात करो। विभावरी उषा देवता! प्रभूत अन्न देकर प्रभात करो। देवी! दानशीला होकर पशु-रूप-धन प्रदान-पूर्वक प्रभात करो।

२. उषा अश्व-संबलिता, गोसम्पन्ना और सकलधनदात्री है। प्रजा के सुख के लिए उसके पास विविध सम्पत्तियाँ हैं। उषा! मुझे सत्यवचन, बल और धनिकों का धन दो।

३. उषा पहले प्रभात करती थीं और अब भी प्रभात करती हैं। जिस प्रकार धनाभिलाषी समुद्र में नाव प्रेरित करते हैं, जिस प्रकार उषा के आगमन में रथ तैयार किये जाते हैं, उसी प्रकार उषा रथ-प्रेरयित्री हैं।

४. उषा, तुम्हारा आगमन होने पर विद्वान् लोग दान की ओर ध्यान देते हैं; अतिशय मेधावी कण्व ऋषि दानशील मनुष्यों के प्रख्यात नाम उषाकाल में ही लेते हैं।

५. उषा घर का काम सँभालनेवाली गृहिणी की तरह सबका पालन करके आती है। वह जंगम प्राणियों की परमायु का ह्रास करती

है या जंगम प्राणियों की आयु को क्रमशः एक-एक दिन कम करती है। पैरवाले प्राणियों को चलाती है और पक्षियों को उड़ाती है।

६. तुम सम्यक् चेष्टावान् पुरुष को कार्य में लगाती हो। तुम भिक्षुकों को भी प्रेरित करती हो। तुम नीहार-वर्षी हो और अधिक क्षण नहीं ठहरतीं। अन्नयुक्त यज्ञसम्पन्ना उषा! तुम्हारे आगमन करने पर उड़नेवाले पक्षी अपने घोंसले में नहीं रहते।

७. उषा ने रथ योजित किया है। यह सौभाग्यशालिनी उषा दूर से, सूर्य के उदयस्थान के ऊपर से या दिव्य-लोक से, सौ रथों-द्वारा मनुष्यों के पास आती हैं।

८. उषा के प्रकाश के लिए समस्त प्राणी नमस्कार करते हैं; क्योंकि ये ही सुनेत्री ज्योति प्रकाश करती हैं और ये ही धनवती स्वर्ग-पुत्री या द्युलोक से उत्पन्ना उषादेवी द्वेषियों और शोषणकर्त्ताओं को दूर करती हैं।

९. स्वर्गतनया उषा! आह्लादकर ज्योति के साथ प्रकाशित हो, अनुदिन हमें सौभाग्य दो और अन्धकार दूर करो।

१०. नेत्री उषा! सारे प्राणियों की इच्छा और जीवन तुम्हारे में ही हैं; क्योंकि तुम्हीं अन्धकार को दूर करती हो। विभावरी उषा! विशाल रथ पर आना। विलक्षण रथ-सम्पन्ना उषा! हमारा आह्वान सुनो।

११. उषा! मनुष्य के पास जो विचित्र अन्न है, वह तुम ग्रहण करो और जो यज्ञ-निर्वाहक लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सुकृतियों को हिंसा-रहित यज्ञ में ले आओ।

१२. उषा! अन्तरिक्ष से सोमपान के लिए सब देवों को ले आओ। उषा! तुम हमें अश्व-गो-युक्त, प्रशंसनीय और वीर्य-सम्पन्न अन्न प्रदान करो।

१३. जिन उषा की ज्योति शत्रुओं को विनाश करके कल्याण-रूप में दिखाई देती है, वह हम सबों को वरणीय, सुरूप और सुखद धन प्रदान करें।

१४. पूज्य उषा! पहले के ऋषियों ने रक्षण और अन्न के लिए तुम्हें बुलाया था। तुम धन और दीप्तिशाली तेज से विशिष्ट होकर हमारी स्तुति पर सन्तुष्ट हो।

१५. उषा! तुमने आज ज्योति से आकाश के दोनों द्वारों को खोल दिया है; इसलिए हमें हिंसकों से रहित और विस्तीर्ण गृह दान करो। साथ ही गो-युक्त अन्न भी दान करो।

१६. उषा! हमें प्रभूत और बहु-विध-रूपयुक्त धन और गौ दान करो। पूजनीय उषा! हमें सर्व-शत्रुनाशक यश दान करो। अन्न-युक्त क्रियासम्पन्न उषा! हमें अन्न दान करो।

४९ सूक्त

(देवता उषा। छन्द अनुष्टुप्)

१. उषा! दीप्यमान आकाश के ऊपर से शोभन पथ-द्वारा आगमन करो। अरुण-वर्ण गायें सोम-युक्त यजमान के घर में तुम्हें ले आवें।

२. उषा! तुम जिस सुरूप और सुखकर रथ पर अधिष्ठान करती हो, हे स्वर्गतनया उषा! उसी से आज हव्यदाता यजमान के पास आओ।

३. हे अर्जुनि या शुभ्रवर्णा उषा! तुम्हारे आगमन के समय द्विपद, चतुष्पद और पक्ष-युक्त पक्षिगण आकाशप्रान्त के उपरि भाग में गमन करते अर्थात् आकाशमण्डल में अपने-अपने कार्य में लगते हैं।

४. उषा! तुम अन्धकार का विनाश करके किरणों के द्वारा जगत् को प्रकाशित करो। कण्वपुत्रों या मेधावी ऋत्विकों ने धन-याचक होकर स्तोत्र-द्वारा तुम्हारा स्तव किया है।

५० सूक्त

(देवता सूर्य। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्)

१. सूर्य प्रकाशमान हैं और सारे प्राणियों को जानते हैं। सूर्य के घोड़े उन्हें सारे संसार के दर्शन के लिए ऊपर ले जाते हैं।

२. सारे संसार के प्रकाशक सूर्य का आगमन होने पर नक्षत्रगण चोरों की तरह रात्रि के साथ चले जाते हैं।

३. दीप्यमान अग्नि की तरह सूर्य की सूचक किरणें समूचे जगत् को एक-एक कर देखती हैं।

४. सूर्य! तुम महान् मार्ग का भ्रमण करो, तुम सारे प्राणियों के दर्शनीय हो। ज्योति के कारण हो। तुम समूचे दीप्यमान अन्तरिक्ष में प्रभा का विकाश करते हो।

५. तुम मरुद्देवों के सामने उदित हो। मनुष्यों के सामने उदित हो। समस्त स्वर्गलोक के दर्शन के लिए उदित हो।

६. हे संस्कारक और अनिष्टहन्ता सूर्य! तुम जिस दीप्ति-द्वारा प्राणियों के पालक बनकर जगत् को देखते हो, हम उसी की प्रार्थना करते हैं।

७. उसी दीप्ति के द्वारा रात्रि के साथ दिवस को उत्पादन और प्राणियों को अवलोकन करके विस्तृत अन्तरिक्ष-लोक में भ्रमण करते हो।

८. दीप्तिमान् और सर्व-प्रकाशक सूर्य! हरित् नाम के सात घोड़े रथ में तुम्हें ले जाते हैं। किरणें ही तुम्हारे केश हैं।

९. सूर्य ने रथवाहिका सात घोड़ियों को रथ में संयोजित किया। उन संयोजित घोड़ियों के द्वारा सूर्य गमन करते हैं।

१०. अन्धकार के ऊपर उठी हुई ज्योति को देखकर हम सब देवों में प्रकाशशाली सूर्य के पास जाते हैं। सूर्य ही उत्कृष्ट ज्योति हैं।

११. अनुरूप-दीप्ति-युक्त सूर्य! आज उदित होकर और उन्नत आकाश में चढ़कर मेरा हृद्रोग या मानसरोग और हरिमाण (हलीमक)-रोग या शरीर-रोग विनष्ट करो।

१२. मैं अपने हरिमाण (हलीमक) रोग को शुक और सारिका पक्षियों पर न्यस्त करता हूँ। अपना हरिमाण रोग हरिद्रा पर स्थापित करता हूँ।

१३. यह आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोग के विनाश के लिए समस्त तेज के साथ उदित हुए हैं। मैं उस रोग का विनाश-कर्त्ता नहीं, वे ही हैं।

५१ सूक्त

(१० अनुवाक। देवता इन्द्र। यहाँ से ५७ सूक्त तक के ऋषि अङ्गिरा के पुत्र सव्य हैं। छन्द जगती और त्रिष्टुप)

१. जिन्हें लोग बुलाते हैं, जो स्तुति-पात्र और धन के सागर हैं, उन्हीं मेष या बलवान् इन्द्र को स्तुति-द्वारा प्रसन्न करो। सूर्य-किरणों की तरह जिनका काम मनुष्यों का हित करना है, उन्हीं क्षमता-शाली और मेधावी इन्द्र को, धन-सम्भोग के लिए, अर्चित करो।

२. इन्द्र का आगमन सुशोभन है। अपने तेज से इन्द्र अन्तरिक्ष को पूरण करते हैं। वे बली, दर्पहर और शतक्रतु हैं। रक्षण और वर्द्धन में तत्पर होकर ऋभुगण या मरुद्गण इन्द्र के सामने आये और उनकी सहायता की। उन्होंने उत्साह-वाक्यों-द्वारा इन्द्र को उत्साहित किया था।

३. तुमने अङ्गिरा ऋषियों के लिए मेघ से वर्षा कराई थी। जब असुरों ने अत्रि के ऊपर शतद्वार नाम का अस्त्र फेंका था, तब भागने के लिए तुमने अत्रि को मार्ग बता दिया था। तुमने विमद ऋषि को अन्न-युक्त धन दिया था। इसी प्रकार संग्राम में विद्यमान स्तोता को, अपना वज्र चलाकर, बचाया था।

४. इन्द्र! तुमने जल-वाहक मेघ को खोल दिया है और पर्वत पर वृत्र आदि असुरों का धन छिपा रक्खा है। इन्द्र! तुमने हत्यारे

वृत्र का वध किया था और संसार को देखने के लिए सूर्य को आकाश में चढ़ा दिया था।

५. जिन असुरों ने यज्ञीय अन्न को अपने शोभन मुख में डाल लिया था, इन्द्र! उन मायावियों को माया-द्वारा तुमने परास्त किया था। मनुष्यों के लिए तुम प्रसन्न-चित्त हो। तुमने पिप्रु असुर का निवासस्थान ध्वस्त किया था। ऋजिश्वान नामक स्तोता को, चोरों के हाथ मरने से आसानी से बचा लिया था।

६. शुष्ण असुर के साथ युद्ध में तुमने कुत्स ऋषि की रक्षा की थी और तुमने अतिथि-वत्सल दिवोदास की रक्षा के लिए शम्बर राक्षस का वध किया था। तुमने महान् अर्बुद नाम के असुर को पादाक्रान्त किया था। इन सब कारणों से विदित होता है कि तुमने दस्युओं के वध के लिए ही जन्म ग्रहण किया है।

७. निःसन्देह तुम्हारे अन्दर समस्त बल निहित है। सोमपान करने पर तुम्हारा मन प्रसन्न होता है। तुम्हारे दोनों हाथों में वज्र है—यह हम जानते हैं। शत्रुओं का सारा वीर्य छिन्न करो।

८. इन्द्र! कौन आर्य और कौन दस्यु है, यह बात जानो। कुशवाले यज्ञ के विरोधियों का शासन करके उन्हें यजमानों के वश कराओ। तुम शक्तिमान् हो; इसलिए यज्ञानुष्ठाताओं की सहायता करो। मैं तुम्हारे हर्षोत्पादक यज्ञ में तुम्हारे उन समस्त कर्मों की प्रशंसा करने की इच्छा करता हूँ।

९. इन्द्र यज्ञ-विमुखों को यज्ञप्रिय यजमानों के वशीभूत करके और अभिमुख स्तोताओं-द्वारा स्तुति-पराङ्मुखों का ध्वंस करके अधिष्ठान करते हैं। वम्र ऋषि वर्द्धनशील और स्वर्ग-व्यापी इन्द्र की स्तुति करते-करते सञ्चित द्रव्य-समूह ले गये थे।

१०. इन्द्र! जब कि उशना के बल-द्वारा तुम्हारा बल तीक्ष्ण हुआ था, तब विशुद्ध तीक्ष्णता-द्वारा तुम्हारे बल ने द्युलोक और पृथिवीलोक को भीत कर दिया था। इन्द्र! तुम्हारा मन मनुष्य के

प्रति प्रसन्न है। तुम्हारे बलशाली होने पर तुम्हारी इच्छा से संयोजित और वायु की तरह वेग-विशिष्ट घोड़े तुम्हें हमारे यज्ञान्न की ओर ले आवें।

११. जब कि शोभन उशना ने इन्द्र की स्तुति की, तब इन्द्र वक्रगतिवाले दोनों घोड़ों पर सवार थे। उग्र इन्द्र ने गमनशील मेघों से जल, प्रवाह-रूप में, बरसाया था। साथ ही शुष्ण असुर के विस्तीर्ण नगर को भी ध्वस्त किया था।

१२. इन्द्र! सोमपान के लिए रथ पर चढ़कर गमन करो। जिस सोम से तुम प्रसन्न होते हो, वही सोम शार्याति राजर्षि ने तैयार किया है; इसलिए अन्य यज्ञों में तुम जैसे प्रस्तुत सोमपान करते हो, उसी प्रकार शार्याति का सोम भी पान करो। ऐसा करने पर दिव्य-लोक में अविचल यश प्राप्त होगा।

१३. इन्द्र! तुमने अभिषव-कारी और स्तुत्याकाङक्षी वृद्ध कक्षीवान् राजा को वृचया नाम की युवती स्त्री प्रदान की थी। शोभन-कर्मा इन्द्र! तुम वृषणश्व राजा की मेना नामक कन्या हुए थे। अभिषवण-समय में इन सब विषयों का वर्णन करना चाहिए।

१४. शोभनकर्मा निर्धनों की रक्षा के लिए इन्द्र की सेवा की गई है। पज्रों या अंगिरोवंशीयों के स्तोत्र, द्वारस्थित स्तम्भ की तरह अचल हैं। धनवाला इन्द्र यजमानों के लिए अश्व, गौ और रथ की इच्छा करते हैं; और, विविध धन की इच्छा करके अधिष्ठान करते हैं।

१५. इन्द्र! वृष्टि दान करो। तुम अपने तेज से स्वराज करते हो। तुम प्रकृत-बल-सम्पन्न और अतीव महान् हो। हमने तुम्हारे लिए इस स्तुति-वाक्य का प्रयोग किया है। हम इस युद्ध में समस्त वीरों-द्वारा युक्त होकर तुम्हारे दिये हुए शोभनीय घर में विद्वानों या ऋत्विकों के साथ वास करें।

५२ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. जिनके स्तुति-कार्य में सौ स्तोता एक साथ ही प्रवृत्त

होते हैं और जो स्वर्ग दिखा देते हैं, उन बली इन्द्र की पूजा करो। गतिशील घोड़े की तरह वेग से इन्द्र का रथ यज्ञ की ओर गमन करता है। मैं अपनी रक्षा के लिए उसी रथ पर चढ़ने के निमित्त स्तुति द्वारा इन्द्र से अनुरोध करता हूँ।

२. जिस समय यज्ञान्न-प्रिय इन्द्र ने जल-वर्षण करके नदी का प्रतिरोध करनेवाले वृत्र का वध किया, उस समय इन्द्र ने धारावाही जल के बीच पर्वत की तरह अचल होकर और प्रजा की हजारों तरह से रक्षा करके यथेष्ट बल प्राप्त किया था।

३. इन्द्र ने आवरणकारी शत्रुओं को जीता। इन्द्र जल की तरह अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं। इन्द्र सबके हर्ष-मूल हैं। वह सोमपान से वर्द्धित हुए हैं। मैं, विद्वान् ऋत्विकों के साथ, उन प्रवृद्ध और धन-सम्पन्न इन्द्र को शोभन-कर्मयोग्य अन्तःकरण के साथ बुलाता हूँ; क्योंकि इन्द्र अन्न के पूरयिता हैं।

४. जिस प्रकार समुद्र की आत्मभूता और अभिमुखगामिनी नदियाँ समुद्र को पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार कुशस्थित सोमरस दिव्यलोक में इन्द्र को पूर्ण करता है। शत्रुओं के शोषक, अप्रतिहत-वेग और सुशोभन मरुद्गण, वृत्रहनन के समय उन्हीं इन्द्र के सहायक होकर पास में उपस्थित थे।

५. जिस प्रकार गमनशील जल नीचे जाता है, उसी प्रकार इन्द्र के सहायक मरुद्गण सोमपान-द्वारा हृष्ट होकर युद्धलिप्त इन्द्र के सामने वृष्टि-सम्पन्न वृत्र के निकट गये। जिस प्रकार त्रित ने परिधि-समुदाय का भेद किया था, उसी प्रकार इन्द्र ने यज्ञ के अन्न से प्रोत्साहित होकर बल नाम के असुर का भेद किया था।

६. जल रोककर जो वृत्रासुर अन्तरिक्ष के ऊपर सोया था और जिसकी वहाँ असीम व्याप्ति है, इन्द्र, जिस समय तुमने उसी वृत्र की केहुनियों को, शब्दायमान वज्र द्वारा, आहत किया था, उस समय तुम्हारी शत्रु-विजयिनी दीप्ति विस्तृत हुई थी और तुम्हारा बल प्रदीप्त हुआ था।

७. जिस प्रकार जलाशय को जल-प्रवाह प्राप्त करता है, उसी प्रकार तुम्हारे लिए कहे हुए स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होते हैं। त्वष्टा ने तुम्हारे योग्य बल-वृद्धि की है और शत्रुविजयी बल से संयुक्त तुम्हारे वज्र को भी अधिकतर बल-सम्पन्न किया है।

८. हे सिद्धकर्मा इन्द्र! मनुष्यों के पास आने के लिए तुमने अश्वयुक्त होकर वृत्र-विनाश किया, वृष्टि की, दोनों हाथों में लौह-वज्र ग्रहण किया और हमारे देखने के लिए आकाश में सूर्य को स्थापित किया।

९. वृत्र के डर के मारे स्तोताओं ने स्तोत्रों का अनुध्यान किया था। वे स्तोत्र बृहत्, आह्लादयुक्त, बल-सम्पन्न और स्वर्ग की सीढ़ियाँ हैं। स्वर्ग-रक्षक मरुद्गण ने उस समय मनुष्यों के लिए युद्ध करके और उनका पालन करके, इन्द्र को प्रोत्साहित किया था।

१०. इन्द्र! अभिषुत सोमपान करके तुम्हारे हृष्ट होने पर जिस समय तुम्हारे वज्र ने द्युलोक और पृथिवीलोक के बाधक वृत्र का मस्तक वेग से छिन्न किया था, उस समय बलवान् आकाश भी उस के शब्द-भय से कम्पित हुआ था।

११. इन्द्र! यदि पृथिवी दसगुनी बड़ी होती और यदि मनुष्य सदा जीवित रहते, तब तुम्हारी शक्ति, प्रकृत रूप में, सर्वत्र प्रसिद्ध होती। तुम्हारी बल-साधित क्रिया आकाश के सदृश विशाल है।

१२. अरिमर्दन इन्द्र! इस व्यापक अन्तरिक्ष के ऊपर रहकर निज भुज-बल से तुमने, हमारी रक्षा के लिए, भूलोक की सृष्टि की है। तुम बल के परिमाण हो। तुम सुगन्तव्य अन्तरिक्ष और स्वर्ग व्याप्त किये हुए हो।

१३. तुम विपुलायतना पृथिवी के परिमाण हो, तुम दर्शनीय देवों के बृहत् स्वर्ग के पालनकारी हो। सचमुच तुम अपनी महिमा-द्वारा समस्त अन्तरिक्ष को व्याप्त किये हुए हो। फलतः तुम्हारे समान कोई नहीं।

१४. जिन इन्द्र की व्याप्ति को द्युलोक और पृथिवीलोक नहीं पा सके हैं, अन्तरिक्ष के ऊपर का प्रवाह जिनके तेज का अन्त नहीं पा सका है, इन्द्र ! वही तुम अकेले अन्य सारे भूतों को अपने वश में किये हुए हो।

१५. इस लड़ाई में मरुतों ने तुम्हारी अर्चना की थी। जिस समय तुमने तीक्ष्णघातक वज्र-द्वारा वृत्र के मुँह के ऊपर आघात किया था, उस समय सारे देवगण संग्राम में तुम्हें आनन्दित देखकर आह्लादित हुए थे।

५२ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. हम महापुरुष इन्द्र के उद्देश से शोभनीय-वाद्य प्रयोग करते हैं और सेवाव्रती यजमान के घर शोभनीय-स्तुति-वाक्य प्रयोग करते हैं। इन्द्र ने असुरों के धन पर उसी तरह तुरत अधिकार कर लिया, जिस तरह सोये हुए मनुष्यों के धन पर अधिकार जमाया जाता है। धनदाताओं को समीचीन स्तुति करनी चाहिए ।

२. इन्द्र ! तुम अश्व, गौ और यव आदि धान्य दान करो। तुम निवासहेतु, प्रभूत धन के स्वामी और रक्षक हो। तुम दान के नेता और प्राचीनतम देव हो। तुम कामना व्यर्थ नहीं करते, तुम याजकों के सखा हो। उन्हीं के उद्देश से हम यह स्तुति पढ़ते हैं।

३. हे प्रज्ञावान्, प्रभूतकर्मा और अतिशय दीप्तिमान् इन्द्र ! चारों ओर जो धन है, वह तुम्हारा ही है—यह हम जानते हैं। शत्रु-विध्वंसी इन्द्र ! वही धन ग्रहण करके हमें दान करो। जो स्तोता तुम्हें चाहते हैं, उनकी अभिलाषा व्यर्थ न करना।

४. इन्द्र ! इस प्रकार हव्य और सोमरस से तुष्ट होकर गौ और घोड़े के साथ धन दान कर और हमारा दारिद्रय दूर कर प्रसन्नमना हो जाओ। इस सोमरस से तुष्ट इन्द्र की सहायता से हम दस्यु को ध्वंस कर और शत्रुओं से मुक्ति प्राप्त कर अच्छी तरह अन्न भोगेंगे।

५. इन्द्र ! हम धन, अन्न और आह्लादकर और दीप्ति-

मान् बल पावें। तुम्हारी प्रकाशमान सुमति हमारी सहायिका हो। वह सुमति वीर शत्रुओं का शोषण करे। वह स्तोताओं को गौ आदि पशु और अन्न दान करे।

६. साधु-रक्षक इन्द्र! वृत्रासुर के वध के समय तुम्हारे आनन्ददाता मरुद्गण ने तुम्हें प्रसन्न किया था। वर्धक इन्द्र! जिस समय तुमने शत्रुओं-द्वारा अप्रतिहत होकर स्तोता और हव्यदाता यजमान के लिए दस हजार उपद्रवों का विनाश किया था, उस समय विविध हव्य और सोमरस ने तुम्हें हृष्ट किया था।

७. इन्द्र! तुम शत्रुओं के धर्षणकारी हो। तुम युद्धान्तर में जाते हो। तुम बल से एक नगर के बाद दूसरे नगर का ध्वंस करते हो। इन्द्र! तुमने, दूर देश में, वज्र सहायता से नमुचि नामक मायावी का वध किया था।

८. तुमने अतिथिग्व नाम के राजा के लिए करंज और पर्णय नामक असुरों को, तेजस्वी शत्रुनाशक अस्त्र से, वध किया था। अनन्तर तुमने अकेले ऋजिश्वान् नामक राजा के द्वारा चारों ओर वेष्टित वंगृद नामक असुर के शतसंख्यक नगरों को उच्छिन्न किया था।

९. असहाय सुश्रवा नामक राजा के साथ युद्ध करने के लिए जो बीस नरपति और उनके साठ हजार निन्यानवे अनुचर आये थे, प्रसिद्ध इन्द्र! तुमने शत्रुओं के अलंघ्य चक्रों-द्वारा उनको पराजित किया था।

१०. तुमने अपनी रक्षा-शक्ति के द्वारा सुश्रवा राजा की रक्षा की थी। तूर्वयाण राजा को अपनी परित्राण-शक्ति द्वारा बचाया था। तुमने कुत्स, अतिथिग्व और आयु राजाओं को महान् युवक सुश्रवा राजा के अधीन किया था।

११. इन्द्र! तुम्हारे मित्ररूप हम यज्ञ-समाप्ति में विद्यमान हैं। हम देवों-द्वारा पालित हुए हैं। हम मङ्गलमय हैं। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारी कृपा से हम शोभनीय पुत्र पावें और उत्तम रूप से दीर्घ जीवन धारण करें।

५४ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. मघवन्! इस पाप में, इस युद्ध-समुदाय में, हमें नहीं प्रक्षेप करना; क्योंकि तुम्हारे बल की अनन्तता है। तुम अन्तरीक्ष में रहकर और अत्यन्त शब्द कर नदी के जल को शब्दायमान करते हो। तब फिर पृथिवी क्यों न भय पाये?

२. शक्तिशाली और बुद्धिमान् इन्द्र की पूजा करो। वह स्तुति सुनते हैं। उनकी पूजा करके स्तुति करो। जो इन्द्र शत्रुजयी बल के द्वारा द्युलोक और पृथिवीलोक को अलंकृत करते हैं, वे वर्षा-विधाता हैं, वर्षण-शक्ति-द्वारा वृष्टि दान करते हैं।

३. जो इन्द्र शत्रुजयी और अपने बल में दृढ़मना हैं, उन्हीं महान् और दीप्तिमान् इन्द्र के उद्देश से सुखकर स्तुति-वाक्य उच्चारण करो; क्योंकि इन्द्र प्रभूत-यशःशाली और असुर अर्थात् बलशाली हैं। इन्द्र शत्रुओं को दूर करते हैं। इन्द्र अश्व-द्वारा सेवित, अभीष्टवर्षी और वेगवान् हैं।

४. इन्द्र! तुमने महान् आकाश के ऊपर का प्रदेश कम्पित किया है; तुमने अपनी शत्रु-विध्वंसिनी क्षमता के द्वारा शम्बर असुर का वध किया है। तुमने हृष्ट और उल्लसित मन से तीक्ष्ण और रश्मि-युक्त वज्र को दलबद्ध मायावियों के विरुद्ध प्रेरित किया है।

५. इन्द्र! तुमने मेघ-गर्जन-द्वारा शब्द करके वायु के ऊपर और जल-शोषक तथा जल-परिपाककारी सूर्य के मस्तक पर जल वर्षण किया है। तुम्हारा मन अपरिवर्त्तनशाली और शत्रु विनाश परायण है। तुमने आज जो काम किया है, उससे तुम्हारे ऊपर कौन है? अर्थात् तुम्हारे ऊपर कोई नहीं—तुम्हीं सर्व-श्रेष्ठ हो।

६. तुमने नर्य, तुर्वश और यदु नाम के राजाओं की रक्षा की है। शत-यज्ञकर्त्ता इन्द्र! तुमने वय्य-कुलोद्भव तुर्वीति नाम के राजा की रक्षा की है। तुमने रथ और एतश ऋषि की, आवश्यक धन के लिए

संग्राम में रक्षा की है। तुमने शम्बर के निन्यानबे नगरों का विनाश किया है।

७. जो इन्द्र को हव्य दान करके इन्द्र की स्तुति का प्रचार करते हैं अथवा हव्य के साथ मंत्र का पाठ करते हैं, वे ही स्वराज करते हैं, साधु-रक्षा करते हैं और अपने को वर्द्धन करते हैं। फलदाता इन्द्र उन्हीं के लिए आकाश से मेघ-जल का वर्षण करते हैं।

८. इन्द्र का बल अतुल है, उनकी बुद्धि भी अतुल है। जो तुम्हें हव्य दान करके तुम्हारा महान् बल और स्थूल पौरुष बढ़ाते हैं, वही सोमपायी लोग यज्ञ-कर्म-द्वारा प्रवृद्ध हों।

९. यह सोमरस पत्थर के द्वारा तैयार किया गया है, बर्त्तन में रक्खा हुआ है और इन्द्र के पीने योग्य है। इन्द्र! यह सब तुम्हारे ही लिए हुआ है। तुम इसे ग्रहण करो। अपनी इच्छा तृप्त करो। अनन्तर हमें धन दान करने में ध्यान दो।

१०. अन्धकार ने वृष्टि की धारा रोकी थी। वृत्रासुर के पेट के भीतर मेघ था। वृत्र के द्वारा रक्खे जाकर जो जल अनुक्रम से अवस्थित था, इन्द्र ने उसे निम्न भू-प्रदेश में प्रवाहित किया।

११. इन्द्र! हमें वर्द्धमान यश दो। महान् शत्रुओं का पराजय-कर्त्ता और प्रभूत बल दान करो। हमें धनवान् करके रक्षा करो। विद्वानों का पालन करो और हमें धन, शोभनीय अपत्य और अन्न दान करो।

५५ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द जगती)

१. आकाश की अपेक्षा भी इन्द्र का प्रभाव विस्तीर्ण है। महत्त्व में पृथिवी भी इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकती। भयावह और बली इन्द्र मनुष्यों के लिए शत्रु को दग्ध करते हैं। जैसे साँड़ अपने सींग रगड़ता है, उसी प्रकार तीखा करने के लिए इन्द्र अपना वज्र रगड़ते हैं।

२. अन्तरिक्षव्यापी इन्द्र, सागर की तरह, अपनी व्यापकता के द्वारा बहुव्यापी जल ग्रहण करते हैं। इन्द्र सोमपान के लिए साँड़ की तरह वेग से दौड़ते हैं और वही योद्धा इन्द्र प्राचीन काल से अपने वीरत्व की प्रशंसा चाहते हैं।

३. इन्द्र! तुम अपने भोग के लिए मेघ को भिन्न नहीं करते। तुम महान् धनाढ्यों के ऊपर आधिपत्य करते हो। इन्द्रदेव अपने वीर्य के कारण अच्छी तरह परिचित हैं। सारे देवों ने उग्र इन्द्र को उनके कर्म के कारण सामने स्थान दिया है।

४. इन्द्र जंगल में स्तोता ऋषियों द्वारा स्तुत होते हैं। मनुष्यों के बीच में अपना वीर्य प्रकट करके बड़ी सुन्दरता से अवस्थित होते हैं। जिस समय हव्यदाता धनी यजमान इन्द्र-द्वारा रक्षित होकर स्तुति-वाक्य उच्चारण करता है, उस समय अभीष्टवर्षी इन्द्र यज्ञेच्छु को यज्ञ में तत्पर करते हैं।

५. योद्धा इन्द्र मनुष्यों के लिए सर्व-विशुद्धकारी बल-द्वारा महान् संग्रामों में संलग्न होते हैं। जिस समय इन्द्र वध-कारण वज्र फेंकते हैं, उस समय दीप्तिमान् इन्द्र को सब लोग बलशाली कहकर उनका आदर करते हैं।

६. शोभनकर्मा इन्द्र यशःकामना करके, बल-द्वारा सुनिर्मित असुर-गृहों का विनाश करके, पृथिवी में समान वृद्धि प्राप्त करके और ज्योतिष्कों या तारकाओं को निरावरण करके यजमान के उपकार के लिए प्रवहमान वृष्टि-जल दान करते हैं।

७. सोमपायी इन्द्र! दान में तुम्हारा मन रत हो। स्तुतिप्रिय! अपने हरि नाम के घोड़ों को हमारे यज्ञ के अभिमुखी करो। इन्द्र! तुम्हारे सारथि घोड़ों को वश में करने में बड़े दक्ष हैं; इसलिए तुम्हारे विरोधी शत्रु हथियार लेकर तुम्हें पराजित नहीं कर सकते।

८. इन्द्र! तुम दोनों हाथों में अनन्त धन धारण करते हो। तुम यशस्वी हो। अपनी देह में अपराजेय बल धारण करते हो।

जैसे जलार्थी मनुष्य कुओं को घेरे रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे सारे अंग वीरतापूर्ण कर्मों-द्वारा घेरे रहते हैं। तुम्हारी देह में अनेक कर्म विद्यमान हैं।

५६ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द जगती)

१. जिस प्रकार घोड़ा घोड़ी की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार प्रभुताहारी इन्द्र उस यजमान के यथेष्ठ पात्र-स्थित सोमरूप खाद्य की ओर दौड़ते हैं। इन्द्र स्वर्णमय, अश्वयुक्त और रश्मियुक्त रथ को रोककर पान करते हैं। वे कार्य में बड़े निपुण हैं।

२. जिस प्रकार धनाभिलाषी वणिक् घूम-घूमकर समुद्र को चारों ओर व्याप्त किये रहते हैं, उसी प्रकार हव्य-वाहक स्तोता लोग चारों ओर से इन्द्र को घेरे हुए हैं। जिस प्रकार ललनायें फूल चुनने के लिए पर्वत पर चढ़ती हैं उसी प्रकार हे स्तोता, एक तेजःपूर्ण स्तोत्र के द्वारा प्रवृद्ध, यज्ञ के रक्षक, बलवान् इन्द्र के पास शीघ्र पहुँचो।

३. इन्द्र शत्रुहन्ता और महान् हैं। इन्द्र का दोष-शून्य और शत्रु-विनाशक बल पुरुषोचित संग्राम में पहाड़ के शृंग की तरह विराजमान है। शत्रु-मर्दक और लौह-कवच-देही इन्द्र ने सोमपान-द्वारा हृष्ट होकर बल-द्वारा, मायावी शुष्ण को हथकड़ी डालकर कारागृह में बन्द कर रक्खा था।

४. जैसे सूर्य उषा का सेवन करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा दीप्तिमान् बल, तुम्हारी रक्षा के लिए, तुम्हारे स्तोम-द्वारा वर्द्धित इन्द्र की सेवा करता है। वही इन्द्र विजयी बल-द्वारा अन्धकार रूप वृत्र का दमन करते और शत्रुओं को रुलाकर अच्छी तरह उनका ध्वंस करते हैं।

५. शत्रु-हन्ता इन्द्र! जिस समय तुमने वृत्र-द्वारा अवरुद्ध, जीवन-रक्षक और विनाश-रहित जल आकाश से चारों ओर वितरण

किया, उस समय सोमपान से हर्ष-युक्त होकर तुमने लड़ाई में वृत्र का वध किया था और जल के समुद्र की तरह मेघ को निम्नमुख कर दिया था।

६. इन्द्र! तुम महान् हो। अपने बल के द्वारा सारे जगत् के धारक-वृष्टि-जल को आकाश से पृथिवी के प्रदेशों पर स्थापित करते हो। तुमने सोमपान से हृष्ट होकर मेघ से जल को बाहर कर दिया है और विशाल पाषाण से वृत्र को ध्वस्त किया है।

५७ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. अतीव दानी, महान्, प्रभूतधनशाली, अमोघबल-सम्पन्न और प्रकाण्ड-देह-विशिष्ट इन्द्र के उद्देश से मैं मननीय स्तुति सम्पादित करता हूँ। निम्नगामिनी जलधारा की तरह इन्द्र का बल कोई नहीं धारण कर सकता। स्तोताओं के बल-साधन के लिए इन्द्र सर्वव्यापी सम्पद् का प्रकाश करते हैं।

२. इन्द्र! यह सारा जगत् तुम्हारे यज्ञ में (तथा) हव्य दाताओं का अभिषुत सोमरस तुम्हारी ओर प्रवाहित हुआ था। इन्द्र का शोभनीय, सुवर्णमय और हननशील वज्र पर्वत पर निद्रित था।

३. शुभ्र उषा! भयावह और अतीव स्तुति-पात्र इन्द्र को इस यज्ञ में इस समय यज्ञान्न दो। उनकी विश्वधारक, प्रसिद्ध और इन्द्रत्व-चिह्न युक्त ज्योति, घोड़े की तरह उनको यज्ञान्न-प्राप्ति करने के अर्थ, इधर-उधर ले जाती है।

४. प्रभूतधनशाली और बहु-लोक-स्तुति इन्द्र! हम तुम्हारा अवलम्बन करके यज्ञ सम्पादन करते हैं। हम तुम्हारे ही हैं। स्तुति-पात्र! तुम्हारे सिवा और कोई यह स्तुति नहीं पाता। जैसे पृथिवी अपने प्राणियों को धारण करती है, उसी तरह तुम भी वह स्तुति-वचन ग्रहण करो।

५. इन्द्र! तुम्हारा वीर्य महान् है। हम तुम्हारे ही हैं। मघवन्! इस स्तोता की कामना पूरी करो। विशाल आकाश ने

तुम्हारे वीर्य का लोहा माना था। यह पृथिवी भी तुम्हारे बल से अवनत है।

६. वज्रधारी इन्द्र! तुमने उस विस्तीर्ण मेघ को, वज्र-द्वारा, टुकड़े-टुकड़े किया। उस मेघ के द्वारा आवृत जल, बहने के लिए, तुमने नीचे छोड़ दिया। केवल तुम्हीं विश्वव्यापी बल धारण करते हो।

५८ सूक्त

(११ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से ६४ सूक्त तक के ऋषि गौतम के पुत्र नोधा)

१. बड़े बल से उत्पन्न और अमर अग्नि व्यथा-दान या ज्वलन में समर्थ हैं। जिस समय देवाह्वानकारी अग्नि यजमान के हव्यवाही दूत हुए थे, उस समय समीचीन पथ-द्वारा जाकर उन्होंने अन्तरिक्ष निर्माण किया था या वहाँ प्रकाश किया था। अग्नि यज्ञ में हव्य-द्वारा देवों की परिचर्या करते हैं।

२. अजर अग्नि तृण-गुल्म आदि अपने खाद्य को ज्वलन-शक्ति-द्वारा मिलाकर और भक्षण कर तुरत काठ के ऊपर चढ़ गये। वहन करने के लिए इधर-उधर जानेवाली अग्नि की पृष्ठ-देश-स्थित ज्वाला गमनशील घोड़े की तरह शोभा पाती है। साथ ही आकाश के उन्नत और शब्दायमान मेघ की तरह शब्द भी करती है।

३. अग्नि हव्य का वहन करते हैं और रुद्रों तथा वसुओं के सम्मुख स्थान पाये हुए हैं। अग्नि देवाह्वानकारी और यज्ञ-स्थानों में उपस्थित रहते हैं। वह धन-जयी और अमर हैं। दीप्तिमान् अग्नि यजमानों की स्तुति लाभ करके और रथ की तरह चल करके प्रजाओं के घर में बार-बार वरणीय या श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं।

४. अग्नि, वायु-द्वारा प्रेरित होकर, महाशब्द, ज्वलन्त जिह्वा और तेज के साथ, अनायास पेड़ों को दग्ध कर देते हैं। अग्नि! जिस समय तुम वन्य वृक्षों को शीघ्र जलाने के लिए साँड़ की

तरह व्यग्र होते हो, हे दीप्त-ज्वाल अजर अग्नि ! उस समय तुम्हारा गमन-मार्ग काला हो जाता है ।

५. अग्नि वायु-द्वारा प्रेरित होकर, शिखारूप आयुध धारण करके, महातेज के साथ, अशुष्क वृक्ष-रस आक्रमण करके और गो-वृन्द के बीच में साँड़ की तरह सबको पराभूत करके चारों ओर व्याप्त होते हैं। सारे स्थावर और जंगम अग्नि से डरते हैं।

६. अग्नि ! मनुष्यों के बीच में महर्षि भृगु लोगों ने, दिव्य जन्म पाने के लिए, तुम्हें शोभन धन की तरह धारण किया था। तुम आसानी से लोगों का आह्वान सुननेवाले और देवों का आह्वान करनेवाले हो। तुम यज्ञ-स्थान में अतिथि-रूप और उत्तम मित्र की तरह सुखदाता हो ।

७. सात आह्वानकारी ऋत्विक् जो यज्ञों में परम यज्ञार्ह और देवाह्वानकारी अग्नि को वरण करते हैं, उसी सर्व-धनदाता अग्नि को मैं यज्ञान्न से सेवित करता हूँ और उनसे रमणीय धन की याचना करता हूँ ।

८. बलपुत्र और अनुरूप दीप्तियुक्त अग्नि ! आज हमें अच्छेद्य सुख दान करो । अन्न-पुत्र ! अपने स्तोता को, लोहे की तरह, दृढ़ रूप से रक्षा करते हुए पाप से बचाओ।

९. प्रभावान् अग्नि ! तुम स्तोता के गृह-रूप बनो। धनवान् अग्नि ! धनवानों के प्रति कल्याण-स्वरूप बनो । अग्नि ! स्तोताओं को पाप से बचाओ। प्रज्ञारूप धन से सम्पन्न अग्नि ! आज प्रातःकाल शीघ्र आओ ।

५९ सूक्त

(देवता अग्नि । छन्द त्रिष्टुप्)

१. अग्निदेव ! अन्यान्य जो अग्नि हैं, वे तुम्हारी शाखायें हैं अर्थात् सब अंग हैं और तुम अङ्गी हो। तुममें सब अमर देवगण

दृष्टि आते हैं। वैश्वानर! तुम मनुष्यों की नाभि हो। तुम निखात स्तम्भ के समान मनुष्यों को धारण करते हो।

२. अग्नि स्वर्ग के मस्तक, पृथिवी की नाभि और द्युलोक तथा पृथिवी के अधिपति हुए थे। वैश्वानर! तुम देवता हो। देवों ने आर्य या विद्वान् मनुष्य के लिए ज्योतिःस्वरूप तुमको उत्पन्न किया था।

३. जिस तरह निश्चल किरणें सूर्य में स्थापित हुई हैं, उसी तरह वैश्वानर अग्नि में सम्पत्तियाँ स्थापित हुई थीं। पर्वतों, ओषधियों, जलों और मनुष्यों में जो धन है, उसके राजा तुम्हीं हो।

४. द्यावापृथिवी वैश्वानर के लिए विस्तृत हुए थे। जैसे बन्दी प्रभु की स्तुति करता है, वैसे ही इस निपुण होता ने सुगति-सम्पन्न, प्रकृत-बलशाली और नेतृश्रेष्ठ वैश्वानर के उद्देश से बहुविध महान् स्तुति-वाक्य का प्रयोग किया है।

५. वैश्वानर! तुम सब प्राणियों को जानते हो। आकाश से भी तुम्हारा माहात्म्य अधिक है। तुम मानव-प्रजाओं के राजा हो। तुमने देवों के लिए युद्ध करके धन का उद्धार किया है।

६. मनुष्य जिन वृत्र-हन्ता या मेघभेदनकारी वैश्वानर या विद्युदग्नि की, वर्षा के लिए, अर्चना करते हैं, उन्हीं जलवर्षी वैश्वानर का माहात्म्य मैं शीघ्र बोलता हूँ। वैश्वानर अग्नि ने दस्यु या राक्षस को हनन किया है, वर्षा का जल नीचे गिराया है और शम्बर को भिन्न किया है।

७. अपने माहात्म्य-द्वारा वैश्वानर सब मनुष्यों के अधिपति और पुष्टिकर तथा अन्नशाली यज्ञ में यजनीय हैं। वैश्वानर प्रभा-सम्पन्न और सुकृत-वाक्यशाली हैं। शतयज्ञकर्त्ता या शतवनि के पुत्र पुरुनीथ राजा, अनेक स्तुतियों के साथ, उन अग्नि की स्तुति करते हैं।

६० सूक्त

(देवता अग्नि)

१. अग्नि हव्यवाहक, यशस्वी, यज्ञप्रकाशक और सम्यक् रक्षणशील तथा देवों के दूत हैं; सदा हव्य लेकर देवों के पास जाते हैं। वह दो काष्ठों से, अरणि-मन्थन से, उत्पन्न और धन की तरह प्रशंसित हैं। मातरिश्वा उन्हीं अग्नि को, मित्र की तरह, भृगु-वंशियों के पास ले आयें।

२. हव्यग्राही देव और मानव—दोनों इन शासनकर्त्ता की सेवा करते हैं; क्योंकि ये पूज्य, प्रजापालक और फलदाता अग्नि सूर्योदय से भी पहले यजमानों के बीच स्थापित हुए हैं।

३. हृदय या प्राण से उत्पन्न और मिष्ठजिह्व अग्नि के सामने हमारी नई स्तुति व्याप्त हो। मनु-पुत्र मानव लोग यथासमय यज्ञ-सम्पादन और यज्ञान्न-प्रदान करके इन अग्नि को संग्राम समय में उत्पन्न करते हैं।

४. अग्नि कामना-पात्र, विशुद्धिकारी, निवास-हेतु, वरणीय और देवाह्वानकारी हैं। यज्ञ में प्रविष्ट मनुष्यों के बीच अग्नि को स्थापित किया गया है। अग्नि शत्रुदमन में कृतसंकल्प और हमारे घरों में पालनकर्त्ता हों। यज्ञ-भवन में धनाधिपति हों।

५. अग्नि! हम गोतमगोत्रज हैं और तुम धनपति, रक्षणशील और यज्ञान्न के कर्त्ता हो। जैसे सवार हाथ से घोड़े को साफ़ करता है, वैसे ही हम भी तुम्हें मार्जित करके मननीय स्तोत्र द्वारा प्रशंसा करेंगे। प्रज्ञा द्वारा अग्नि ने धन प्राप्त किया है। इस प्रातःकाल में तुरत आओ।

६१ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. इन्द्र बली, क्षिप्तकारी, गुण द्वारा महान्, स्तुति-पात्र और अबाध-गति हैं। जैसे बुभुक्षित को अन्न दिया जाता है, वैसे ही मैं इन्द्र की ग्रहण-योग्य स्तुति और पूर्ववर्त्ती यजमान-द्वारा दिया हुआ यज्ञान्न प्रदान करता हूँ।

२. इन्द्र को, अन्न की तरह, हव्य दान करता हूँ। शत्रुपराजय के साधन-स्वरूप स्तुति-वाक्यों का मैंने सम्पादन किया है। अन्य स्तोता भी उस पुरातन स्वामी इन्द्र के लिए हृदय, मन और ज्ञान से स्तुति-सम्पादन करते हैं।

३. उन्हीं उपमानभूत, वरणीय-धनदाता और विज्ञ इन्द्र को वर्द्धन करने के लिए मैं मुख द्वारा उत्कृष्ट और निर्मल स्तुति वचनों से युक्त तथा अति महान् शब्द करता हूँ।

४. जिस प्रकार रथ-निर्माता रथ-स्वामी के पास रथ चलाता है, उसी प्रकार मैं भी इन्द्र के उद्देश से स्तोत्र प्रेरण करता हूँ। स्तुतिपात्र इन्द्र के लिए शोभन स्तुतिवचन प्रेरण करता हूँ। मेधावी इन्द्र के लिए विश्वव्यापी हवि प्रेरण करता हूँ।

५. जैसे घोड़े को रथ में लगाया जाता है, वैसे ही मैं भी अन्न-प्राप्ति की इच्छा से स्तुति-रूप मंत्र उच्चारण करता हूँ। उन्हीं वीर, दानशील, अन्नविशिष्ट और असुरों के नगरविदारी इन्द्र की वन्दना में प्रवृत्त होता हूँ।

६. इन्द्र के लिए, त्वष्टा ने, युद्ध के निमित्त शोभन-कर्मा और सुप्रेरणीय वज्र का निर्माण किया था। शत्रु-नाश के लिए तैयार होकर ऐश्वर्यवान् और अपरिमित बलशाली इन्द्र ने हननकर्त्ता वज्र से वृत्र का मर्म काटा था।

७. जगत् के निर्माणकर्त्ता इन्द्र को इस महायज्ञ में जो तीन अभिषव दिये गये हैं, इन्द्र ने उनमें तुरत सोमरूप अन्न पान किया है। साथ ही शोभनीय हव्यरूप अन्न भी भक्षण किया है। सारे संसार में इन्द्र व्यापक हैं। उन्होंने असुरों का धन हरण किया है। वे शत्रुविजयी और वज्र चलानेवाले हैं। उन्होंने मेघ को पाकर उसे फोड़ा था।

८. इन्द्र-द्वारा अहि या वृत्र का विनाश होने पर नमनशील देव-पत्नियों ने इन्द्र की स्तुति की थी। इन्द्र ने विस्तृत आकाश और पृथिवी को अतिक्रम किया था; किन्तु द्युलोक और पृथिवीलोक इन्द्र की मर्यादा का अतिक्रम नहीं कर सकते।

९. द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्ष की अपेक्षा भी इन्द्र की महिमा अधिक है। अपने अधिवास में अपने तेज से इन्द्र स्वराज करते हैं। इन्द्र सर्व-कार्य-क्षम हैं। इन्द्र का शत्रु सुयोग्य है और इन्द्र युद्ध में निपुण हैं। इन्द्र मेघरूप शत्रुओं को युद्ध में बुलाते हैं।

१०. अपने वज्र से इन्द्र ने जल-शोषक वृत्र को छिन्न-भिन्न किया था। साथ ही चोरों के द्वारा अपहृत गायों की तरह वृत्रासुर-द्वारा अवरुद्ध तथा संसार के रक्षक जल को छुड़वा दिया था। हव्यदाता को इन्द्र उसकी इच्छा के अनुसार अन्न दान करते हैं।

११. इन्द्र की दीप्ति के द्वारा नदियाँ अपने-अपने स्थान पर शोभा पाती हैं; क्योंकि वज्र-द्वारा इन्द्र ने उनकी सीमा निर्दिष्ट कर दी है। अपने को ऐश्वर्यवान् करके और हव्यदाता को फल प्रदान करके इन्द्र ने तुरत तुर्वीति ऋषि के निवास-योग्य एक स्थान बनाया।

१२. इन्द्र क्षिप्तकारी, सर्वेश्वर और अपरिमितशक्तिशाली हैं। इन्द्र! तुम इस वृत्र के ऊपर वज्र-प्रहार करो। पशु की तरह वृत्र के शरीर की संधियाँ तिर्यग् भाव से अवस्थित वज्र से काटो; ताकि वृष्टि बाहर हो सके और पृथिवी पर जल विचरण कर सके।

१३. जो मंत्रों-द्वारा स्तुत्य हैं, उन्हीं युद्धार्थक्षिप्रगामी इन्द्र के पूर्व कर्म्मों का वर्णन करो। इन्द्र युद्ध के लिए बार-बार सारे शस्त्र फेंक-कर और शत्रुओं का वध कर उनके सम्मुख जाते हैं।

१४. इन्हीं इन्द्र के डर के मारे पर्वत निश्चल हो रहते हैं और इन्द्र के प्रकट होने पर आकाश और पृथिवी काँपने लगते हैं। वोधा ऋषि ने इन्हीं कमनीय इन्द्र की रक्षण-शक्ति की, सूक्तों-द्वारा, बार-बार प्रार्थना करके तुरन्त ही वीर्य या शक्ति प्राप्त की थी।

१५. इन्द्र अकेले ही शत्रु-विजय कर सकते हैं। वह बहुविध धनों के स्वामी हैं। स्तोताओं के पास इन्द्र ने जिस स्तोत्र की याचना की थी, उसे ही इन्द्र को दिया गया। स्वश्वपुत्र सूर्य के साथ युद्ध के समय सोमाभिषवकारी एतश ऋषि को इन्द्र ने बचाया था।

१६. अश्वयुक्त-रथेश्वर इन्द्र! तुम्हें यज्ञ में उपस्थित करने के लिए गोतम-गोत्रीय ऋषियों ने स्तुति-रूप मंत्रों को कीर्त्तित किया था या स्मृत किया था। इन्हें बहुविध बुद्धि प्रदान करो। जिन इन्द्र ने बुद्धि-द्वारा धन पाया है, वे ही इन्द्र प्रातःकाल शीघ्र आयें।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

६२ सूक्त

(पञ्चम अध्याय। देवता इन्द्र)

१. वीर्यशाली और स्तव-पात्र इन्द्र को लक्ष्य कर हम, अङ्गिरा की तरह, मन में कल्याणवाहिनी स्तुति धारण करते हैं। इन्द्र शोभन स्तोत्र-द्वारा स्तुति-कर्त्ता ऋषि के पूजा-पात्र हैं। उन प्रसिद्ध नेता की, हम स्तोत्र-द्वारा पूजा करते हैं।

२. तुम लोग उस विशाल और बलवान् इन्द्र को उद्देश कर महान् और ऊँचे स्वर से गाये जानेवाले स्तोत्र अर्पित करो। इन्द्र की सहायता से हमारे पूर्व-पुरुष अङ्गिरा लोगों ने, पद-चिह्न देखते हुए, अर्चना-पूर्वक, पणि नाम के असुर-द्वारा अपहृत गौ का उद्धार किया था।

३. इन्द्र और अङ्गिरा के गौ खोजते समय सरमा नाम की कुतिया ने, अपने बच्चे के लिए, इन्द्र से अन्न या दुग्ध प्राप्त किया था। उस समय इन्द्र ने असुर का वध कर गौ का उद्धार किया था। देवों ने भी गायों के साथ आह्लादकर शब्द किया था।

४. सर्वशक्तिमान् इन्द्र! जिन्होंने नौ महीनों में यज्ञ समाप्त किया है और जिन्होंने दस महीनों में यज्ञ समाप्त किया है—ऐसे सप्तसंख्यक और सद्गति-कामी (अङ्गिरोवंशीय) मेधावियों के सुख-कर-स्वर-युक्त स्तोत्रों से तुम स्तुत किये गये हो। तुम्हारे शब्द से पर्वत और मेघ भी डर जाते हैं।

५. सुदृश्य इन्द्र! अङ्गिरा लोगों के द्वारा स्तुत होकर तुमने उषा और सूर्य की किरणों से अन्धकार का विनाश किया है। इन्द्र! तुमने पृथिवी का ऊबड़खाबड़ प्रदेश समतल और अन्तरिक्ष का मूल प्रदेश दृढ़ किया है।

६. पृथिवी की मधुर-जलपूर्ण नदियों को जो इन्द्र ने जलपूर्ण किया है, वह उन दर्शनीय इन्द्र का अत्यन्त पूज्य और सुन्दर कर्म है।

७. जिस इन्द्र को युद्धरूप प्रयत्न से नहीं पाया जा सकता, स्तोताओं की स्तुति-द्वारा पाया जा सकता है, उन्हीं इन्द्र ने एकत्र संलग्न द्यौ और पृथिवी को अलग-अलग करके स्थित किया है; उन्हीं शोभन-कर्मा इन्द्र ने सुन्दर और उत्तम आकाश में, सूर्य की तरह, द्यौ और पृथिवी को धारण किया है।

८. विषम-रूपिणी, प्रतिदिन सञ्जायमाना और तरुणी रात्रि तथा उषा, द्यावा-पृथिवी पर, सदा से आ-आकर विचरण करती हैं। रात्रि काली और उषा तेजोमयी है।

९. शोभन-कर्म-कर्त्ता, अतीव बली और उत्तम कर्म से सम्पन्न इन्द्र यजमानों से, पहले से, मित्रता करते आते हैं। इन्द्र, तुमने अपरिपक्व गायों को भी दूध दान किया है और कृष्ण तथा लोहित वर्णोंवाली गायों में भी शुक्लवर्ण का दूध दान दिया है।

१०. जिन गति-विहीन उँगलियों ने, सदा सन्नद्ध होकर स्थिति करने पर भी, निरालसी बनकर, अपने बल पर, हजारों व्रतों का पालन किया है या इन्द्र का व्रत अनुष्ठित किया है, वे ही सेवा-तत्परा अँगुली-रूपिणी भगिनी लोग पत्नी या पालयित्री की तरह प्रगल्भ इन्द्र की सेवा करती हैं।

११. दर्शनीय इन्द्रदेव! तुम मन्त्र और प्रणाम से स्तुत होते हो। जो बुद्धिमान् अग्निहोत्रादि सनातन कर्म और धन की इच्छा करते हैं, वे बड़े यत्न के बाद तुम्हें प्राप्त होते हैं। बली इन्द्र! जैसे कामिनी स्त्रियाँ आकांक्षी पति को प्राप्त करती हैं, वैसे ही बुद्धिमानों की स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त करती हैं।

१२. सुदृश्य इन्द्र! जो सम्पत्ति, सदा से, तुम्हारे पास है, वह कभी विनष्ट नहीं होती। इन्द्र! तुम मेधावी, तेजशाली और यश-सम्पन्न हो। कर्मी इन्द्र! अपने कर्मों-द्वारा हमें धन प्रदान करो।

१३. इन्द्र! तुम सबके आदि हो। हे सुलोचन और बलवान् इन्द्र! तुम रथ में घोड़े योजित करते हो। गौतम ऋषि के पुत्र नोधा ऋषि ने हमारे लिए तुम्हारा यह अभिनव सूक्त-रूप स्तोत्र बनाय है। फलतः कर्म-द्वारा जिन इन्द्र ने धन पाया है, वे प्रातःकाल में शीघ्र आवें।

६३ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. इन्द्र! तुम सर्वोत्तम गुणी हो। भय उपस्थित होने पर अपने रिपु-शोषक बल द्वारा तुमने द्यौ और पृथिवी को धारण किया

था। संसार के सारे प्राणी और पर्वत तथा दूसरे जो विशाल और सुदृढ़ पदार्थ हैं, वे सब भी, आकाश में सूर्य-किरणों की तरह, तुम्हारे डर से काँप गये थे।

२. इन्द्र! जिस समय तुम विभिन्न-गतिशाली अश्वों को रथ में संयुक्त करते हो, उस समय तुम्हारे हाथ में स्तोता वज्र देता है; और, तुम उसी वज्र से शत्रुओं का अनभीष्ट कर्म करके उनका विनाश करते हो। बहुलोकाहूत इन्द्र! तुम उसके द्वारा असुरों के अनेक नगर भी ध्वस्त करते हो।

३. इन्द्र! तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम इन शत्रुओं के विनाशक हो। तुम ऋभुगण के स्वामी, मनुष्य-गण के उपकर्ता और शत्रुओं के हन्ता हो। संहारक और तुमुल युद्ध में तुमने प्रकाशक और तरुण कुत्स के सहायक बनकर शुष्ण नामक असुर का वध किया था।

४. हे वृष्टि-वर्षक और वज्रधर इन्द्र! जिस समय तुमने शत्रु का वध किया था, हे वीर, अभीष्ट-वर्षण-कामी और शत्रुजयी इन्द्र! उस समय तुमने लड़ाई के मैदान में दस्युओं को पराङ्मुख करके उन्हें ध्वस्त किया था और कुत्स के सहायक होकर उनको प्रथितयशा बनाया था।

५. इन्द्र! तुम किसी दृढ़ व्यक्ति की हानि करने की इच्छा नहीं करते; तो भी शत्रुओं के द्वारा मनुष्यों का उपद्रव होने पर तुम उनके अश्व के विचरण के लिए चारों ओर खोल देते हो अर्थात् केवल अपने भक्तों के लिए चारों दिशायें निरुपद्रुत कर देते हो। हे वज्रधर! कठिन वज्र से शत्रुओं का विनाश करते हो।

६. इन्द्र! जिस युद्ध में योद्धा लोग लाभ और धन पाते हैं, उसमें सहायता के लिए मनुष्य तुम्हें बुलाते हैं। बली इन्द्र! समर-क्षेत्र में तुम्हारा यह रक्षण-कार्य हमारी ओर प्रसारित हो। योद्धा लोग तुम्हारे रक्षा-पात्र हैं।

७. वज्रिन्! तुमने, पुरुकुत्स नाम के ऋषि के सहायक होकर, उन सातों नगरों का ध्वंस किया था और सुदास नाम के राजा के लिए अंहा नाम के असुर का धन, यज्ञ-कुश की तरह, आसानी से विच्छिन्न किया था। अनन्तर, इन्द्र! उस हव्यदाता सुदास को वह धन दिया था।

८. तुम हमारा विलक्षण या संग्रहणीय धन, व्याप्त पृथिवी पर जल की तरह, वर्द्धित करो। वीर, जैसे चारों ओर जल को तुमने क्षरित किया है, उसी तरह उस अन्न-द्वारा हमें जीवन दिया है।

९. इन्द्र! तुम अश्व-सम्पन्न हो। तुम्हारे लिए गोतमवंशीयों ने भक्ति-पूर्वक मन्त्र कहे थे। तुम हमें नाना प्रकार के अन्न प्रदान करो।

६४ सूक्त

(देवता मरुद्गण)

१. हे नोधा! वर्द्धक, शोभन-यज्ञ और पुष्प, फल आदि के कर्त्ता मरुद्गण को लक्ष्य कर सुन्दर स्तोत्र प्रेरण करो। जिन वाक्यों से, वृष्टि-धारा की तरह अर्थात् मेघों की विविध बूँदों की तरह, यज्ञ-स्थल में देवों को अभिमुख किया जाता है, उन्हीं वाक्यों को धीर और कृताञ्जलि होकर, मनोयोग-पूर्वक, प्रयुक्त करता हूँ।

२. अन्तरिक्ष से मरुत् लोग उत्पन्न हुए हैं। वे दर्शनीय वीर्य-शाली और रुद्र के पुत्र हैं। वे शत्रुजयी, निष्पाप, सबके शोधक सूर्य की तरह दीप्त, रुद्र के गण की तरह अथवा बहादुर की तरह बल-पराक्रमशाली, वृष्टि-बिन्दु-युक्त और घोर रूप हैं।

३. रुद्र के पुत्र मरुद्गण तरुण और जरा-रहित हैं तथा जो देवों को हव्य नहीं देते, उनके नाशक हैं। वे अप्रतिहत-गति और पर्वत की तरह दृढाङ्ग हैं। वे स्तोताओं को अभीष्ट देना चाहते हैं। पृथिवी और द्युलोक की सारी वस्तुएँ दृढ़ हैं, तो भी उनको मरुत लोग अपने बल से संचालित कर देते हैं।

४. शोभा के लिए अनेक अलंकारों से मरुद्गण अपने शरीर को अलंकृत करते हैं। शोभा के लिए हृदय पर सुन्दर हार धारण करते हैं और अंग में आयुध पहनते हैं। नेतृस्थानीय मरुद्गण अन्तरिक्ष से अपने बल के साथ प्रादुर्भूत हुए थे।

५. यजमानों को सम्पत्तिशाली, मेघादि को कम्पित और हिंसक को विनष्ट करके अपने बल-द्वारा मरुतों ने वायु और विद्युत् को बनाया। इसके अनन्तर, चारों दिशाओं में जाकर एवं सबको कम्पित कर द्युलोक के मेघ का दोहन किया तथा जल से भूमि को सींचा।

६. जैसे यज्ञभूमि में ऋत्विक् लोग घी का सिंचन करते हैं, वैसे ही दान-परायण मरुत् लोग साररूप जल का सिंचन करते हैं। वे लोग घोड़े की तरह वेगवान् मेघ को बरसने के लिए विनम्र करते और गर्जनकारी तथा अक्षय्य मेघ का दोहन करते हैं।

७. मरुद्गण! तुम लोग महान्, बुद्धिशाली, सुन्दर, तेजोविशिष्ट, पर्वत की तरह बली और द्रुतगतिशील हो। तुम लोग करयुक्त गज की तरह वन का भक्षण करते हो; क्योंकि तुम लोगों ने अरुण-वर्ण वड़वा को बल प्रदान किया है।

८. उच्च-ज्ञानशाली मरुद्गण सिंह की तरह निनाद करते हैं। सर्वज्ञाता मरुद्गण हिरण की तरह सुन्दर हैं। मरुत् लोग शत्रु-विनाशक, स्तोता के प्रीतिकारी और क्रुद्ध होने पर नाशकारी बल से सम्पन्न हैं। ऐसे मरुद्गण अपने वाहन मृग और हथियार के साथ शत्रु-द्वारा पीड़ित यजमान की रक्षा करने के लिए साथ ही आते हैं।

९. हे बल-बद्ध, मनुष्य-हितैषी और वीर्यशाली मरुद्गण! तुम लोग बल-द्वारा विध्वंसक क्रोध से मुक्त होकर आकाश और पृथिवी को शब्दायमान करो। मरुद्गण! तुम लोगों का तेज विमल-स्वरूप अथवा दर्शनीय विद्युत् की तरह रथ के सारथिवाले स्थान पर अवस्थान करता है।

१०. सर्वज्ञ, धनपति, बलशाली, शत्रु-नाशक, अमित-पराक्रमी, सोम-भक्षक और नेता मरुद्गण भुजाओं में हथियार धारण करते हैं।

११. वृष्टि-वर्द्धन-कर्त्ता मरुद्गण सोने के रथ-चक्र-द्वारा मार्गस्थ तिनके और पेड़ की तरह मेघों को उनके स्थान से ऊपर उठा लेते हैं। वे यज्ञ-प्रिय देवों के यज्ञ-स्थल में गमन करते हैं। स्वयं शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं। अचल पदार्थ का संचालन करते हैं। दूसरे के लिए अशक्य सम्पत् और प्रकाशशाली आयुध धारण करते हैं।

१२. रिपु-विध्वंसक, सर्व-वस्तु-शोधक, वृष्टिदाता, सर्वद्रष्टा और रुद्र-पुत्र मरुद्गण की, हम स्तोत्र-द्वारा, स्तुति करते हैं। धूलिप्रेरक, शक्तिशाली, ऋजीष-युक्त और अभीष्टवर्षी मरुतों के पास, धन के लिए, जाओ।

१३. मरुद्गण! तुम लोग जिसे आश्रय देते हुए रक्षित करते हो, वह पुरुष सबसे बली हो जाता और वह अश्व-द्वारा अन्न और मनुष्य-द्वारा धन प्राप्त करता है। वही बढ़िया यज्ञ करता और ऐश्वर्यशाली होता है।

१४. मरुद्गण! तुम लोग यजमानों को सब कार्यों में निपुण, युद्ध में अजेय, दीप्तिमान्, शत्रु-विनाशक, धनवान्, प्रशंसा-भाजन और सर्वज्ञ पुत्र प्रदान करो। ऐसे पुत्र-पौत्रों को हम सौ वर्ष पोषित करना अर्थात् सौ वर्ष जीवित रखना चाहते हैं।

१५. मरुद्गण! हमें स्थायी, वीर्यशाली और शत्रुजयी धन दो। इस प्रकार शत-सहस्र धन से युक्त होने पर हमारी रक्षा के लिए, जिन्होंने कर्म-द्वारा धन पाया है, वे मरुद्गण आगमन करें।

६५ सूक्त

(१२ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से ७३ सूक्तों तक के ऋषि शक्ति के पुत्र पराशर। द्विपदा विराट् छन्द)

१. अग्नि! पशु चुरानेवाले चोर की तरह तुम भी गुहा में अवस्थान करो। मेधावी और सदृश-प्रीति-सम्पन्न देवों ने तुम्हारे

पद-चिह्नों को लक्ष्य कर अनुगमन किया था। तुम स्वयं हव्य सेवन करो और देवों के लिए हव्य वहन करो। यजनीय सारे देवगण तुम्हारे पास आये थे।

२. देवों ने भागे हुए अग्नि के पलायन-कार्य आदि का अन्वेषण किया था। अनन्तर चारों ओर अन्वेषण किया गया। तुम इन्द्र आदि सब देवों के आने पर स्वर्ग की तरह हुए थे अर्थात् अग्नि का अनुसन्धान करके सब देवता भूलोक आये थे। अग्नि यज्ञ के कारण-स्वरूप, जलगर्भ में प्रादुर्भूत और स्तोत्र-द्वारा प्रवर्द्धित हैं। अग्नि को छिपाने के लिए जल बढ़ गया था।

३. अभीष्ट फल की पुष्टि की तरह अग्नि रमणीय, पृथिवी की तरह विस्तीर्ण, पर्वत की तरह सबके भोजयिता और जल की तरह सुखकर हैं। अग्नि, युद्ध में परिचालित अश्व और सिन्धु की तरह, शीघ्रगामी हैं। ऐसे अग्नि का कौन निवारण कर सकता है?

४. जिस प्रकार भगिनी का हितैषी भ्राता है, उसी प्रकार सिन्धु के हितैषी अग्नि हैं। जैसे राजा शत्रु का विनाश करता है, वैसे ही अग्नि वन का भक्षण करते हैं। जिस समय वायुप्रेरित अग्नि वन जलाने में लगते हैं उस समय पृथिवी के सब ओषधि-रूप रोम छिन्न कर डालते हैं।

५. जल के भीतर बैठे हंस की तरह अग्नि जल के भीतर प्राण धारण करते हैं। उषा-काल में जागकर प्रकाश-द्वारा अग्नि सबको चेतना प्रदान करते हैं। सोम की तरह सारी ओषधियों को वर्द्धित करते हैं। अग्नि गर्भस्थ पशु की तरह जल के बीच संकुचित हुए थे। अनन्तर प्रवर्द्धित होने पर, अग्नि का प्रकाश दूर तक विस्तृत हुआ।

६६ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. अग्नि, धन की तरह विलक्षण, सूर्य की तरह सब पदार्थों के दर्शक, प्राणवायु की तरह जीवन-रक्षक और पुत्र की तरह हितकारी हैं।

अग्नि अश्व की तरह लोक को वहन करते और दुग्धदात्री गौ की तरह उपकारी हैं। दीप्त और आलोक-युक्त अग्नि वन दग्ध करते हैं।

२. अग्नि, रमणीय घर की तरह, धन-रक्षा में समर्थ और पके जौ की तरह लोक-विजयी हैं। अग्नि, ऋषि की तरह, देवों के स्तोता और संसार में प्रशंसनीय तथा अश्व की तरह हर्ष-युक्त हैं। ऐसे अग्नि हमें अन्न प्रदान करें।

३. दुष्प्राप्य-तेजा अग्नि यज्ञकारी की तरह ध्रुव और गृह-स्थित गृहिणी (जाया) की तरह घर के भूषण हैं। जिस समय अग्नि विचित्र-दीप्तियुक्त होकर प्रज्वलित होते हैं, उस समय वह शुभ्रवर्ण सूर्य की तरह हो जाते हैं। अग्नि, प्रजा के बीच में रथ की तरह दीप्ति युक्त और संग्राम में प्रभा युक्त हैं।

४. स्वामी के द्वारा संचालित सेना अथवा धनुर्द्धारी के दीप्ति-मुख बाण की तरह अग्नि शत्रुओं में भय संचार करते हैं। जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा, वह सब अग्नि है। अग्निदेव कुमारियों के जार हैं; (क्योंकि 'लाजा-होम' के अनन्तर ही कन्या विवाहिता समझी जाती है।) विवाहिता स्त्रियों के पति हैं; (क्योंकि विवा-हिता नारी अग्नि की सेवा करने में पुरुष को साहाय्य देती हैं।)

५. जिस प्रकार गायें घर में जाती हैं, उसी प्रकार हम जंगम और स्थावर अर्थात् पशु और धान्य आदि उपहार के साथ प्रदीप्त अग्नि के पास जाते हैं। जल-प्रवाह की तरह अग्नि इधर-उधर ज्वाला प्रेरित करते हैं। आकाश में दर्शनीय अग्नि की किरणें मिलित होती हैं।

६७ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. जैसे राजा सर्व-कर्म-क्षम व्यक्ति का आदर करते हैं, वैसे ही अरण्य-जात और मनुष्यों के मित्र अग्नि यजमान पर अनुग्रह करते

हैं। अग्नि पालक की तरह कर्म-साधक, कर्म-शील की तरह भद्र, देवों को बुलानेवाले और हव्य-वाहक हैं। अग्नि शोभन-कर्मा बनो।

२. अग्नि सारा हव्यरूप धन अपने हाथ में धारण करके गुहा के बीच छिप गये। ऐसा होने पर देवता लोग डर गये। नेता और कर्म-धारयिता देवों ने जिस समय हृदय-धृत मंत्र-द्वारा अग्नि की स्तुति की, उस समय उन्होंने अग्नि को प्राप्त किया।

३. सूर्य की तरह अग्नि पृथिवी और अन्तरिक्ष को धारण किये हुए हैं। साथ ही सत्य मंत्र-द्वारा आकाश को धारण करते हैं। विश्वायु या सर्वाश्न अग्नि! पशुओं की प्रिय भूमि की रक्षा करो और पशुओं के चरने की अयोग्य गुहा में जाओ।

४. जो पुरुष गुहास्थित अग्नि को जानता है और जो यज्ञ का धारयिता अग्नि के पास जाता है तथा जो लोग यज्ञ का अनुष्ठान करते हुए अग्नि की स्तुति करते हैं, ऐसे लोगों को अग्निदेव तुरत धन की बात बता देते हैं।

५. जिन अग्नि ने ओषधियों में उनके गुण स्थापित किये हैं और मातृ-रूप ओषधियों में उत्पद्यमान पुष्प, फल आदि निहित किये हैं, मेधावी पुरुष जलमध्यस्थ और ज्ञानदाता उन्हीं विश्वायु अग्नि की, गृह की तरह, पूजा करके कर्म करते हैं।

६८ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. हव्य-धारक अग्नि हव्य द्रव्य को मिलाकर आकाश में उपस्थित करते हैं तथा स्थावर-जंगम वस्तुओं और रात्रि को अपने तेज-द्वारा प्रकाशित करते हैं। सारे देवों में अग्नि प्रकाशमान और स्थावर, जंगम आदि में व्याप्त हैं।

२. अग्निदेव! तुम्हारे सूखे काष्ठ से जलकर प्रकट होने पर सारे यजमान तुम्हारे कर्म का अनुष्ठान करते हैं। तुम अमर

हो। स्तोत्र-द्वारा तुम्हारी सेवा करके वे सब प्रकृत देवत्व प्राप्त करते हैं।

३. अग्नि के यज्ञस्थल में आने पर उनकी स्तुति और यज्ञ किये जाते हैं। अग्नि विश्वायु हैं। सब यजमान अग्नि का यज्ञ करते हैं। अग्निदेव! जो तुम्हें हव्य देता है अथवा जो तुम्हारा कर्म करने को सीखता है, तुम उसके किये अनुष्ठान को जानकर उसे धन दो।

४. हे अग्नि! तुम मनु के पुत्रों में देवों के आह्वानकारी रूप से अवस्थान करते हो। तुम्हीं उनके धन के अधिपति हो। उन्होंने पुत्र उत्पन्न करने के लिए अपने शरीर में शक्ति की इच्छा की थी अर्थात् तुम्हारे अनुग्रह से उन्होंने पुत्र-प्राप्ति की थी। वे मोह का त्याग करके पुत्रों के साथ त्रिकाल तक जीवित रहें।

५. जिस प्रकार पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करता है, उसी प्रकार यजमान लोग तुरत अग्नि की आज्ञा सुनते और अग्नि-द्वारा आदिष्ट कार्य करते हैं। अनन्त-धनशाली अग्नि यजमानों के यज्ञ के द्वार-रूप धन को प्रदान करते हैं। यज्ञ-रत गृह में अग्नि आसक्त हैं; और, उन्होंने ही आकाश को नक्षत्र-युक्त किया था।

६९ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. शुक्लवर्ण अग्नि उषा-प्रेमी सूर्य की तरह सर्व-पदार्थ-प्रकाशक हैं। अग्नि, प्रकाशक सूर्य की ज्योति की तरह, अपने तेज से द्यौ और पृथिवी को एक साथ परिपूर्ण करते हैं। हे अग्निदेव! तुम प्रकट होकर अपने कर्म-द्वारा सारे जगत् को परिव्याप्त करो। तुम देवों के पुत्र होकर भी उनके पिता हो; क्योंकि पुत्र की तरह देवों के दूत हो और पिता की तरह देवों को हव्य देते हो।

२. मेधावी, निरहंकार और कर्माकर्म-ज्ञाता अग्नि, गौ के स्तन की तरह, सारा अन्न स्वादिष्ट करते हैं। संसार में हितैषी पुरुष

की तरह अग्नि यज्ञ में आहूत होकर और यज्ञस्थल में आकर प्रीति-प्रदान करते हैं।

३. घर में पुत्र की तरह उत्पन्न होकर अग्नि आनन्द प्रदान करते हैं तथा अश्व की तरह हर्षान्वित होकर युद्ध में शत्रुओं को अतिक्रम करते हैं। जब मैं मनुष्यों के साथ में समान-निवासी देवों को बुलाता हूँ, तब तुम अग्नि! सब देवों का देवत्व प्राप्त करते हो।

४. राक्षसादि तुम्हारे व्रत आदि को ध्वंस नहीं करते; क्योंकि तुम उन व्रतादि में वर्त्तमान यजमानों को यज्ञ-फलरूप सुख प्रदान करते हो। यदि राक्षसादि तुम्हारे व्रत का नाश करें, तो अपने साथी नेता मरुतों के साथ तुम उन बाधकगणों को भगा देते हो।

५. उषा-प्रेमी सूर्य की तरह अग्नि ज्योतिः-सम्पन्न और निवास-हेतु हैं। अग्नि का रूप संसार जानता है। अग्नि उपासक को जानें। अग्नि की किरण स्वयं हव्य वहन करके यज्ञ-गृह के द्वार पर फैलती हैं; तदनन्तर दर्शनीय आकाश में जाती है।

७० सूक्त

(देवता अग्नि)

१. जो शोभन दीप्ति से युक्त अग्नि ज्ञान के द्वारा प्रापणीय हैं, जो सारे देवों के कर्म और मनुष्यों के जन्मरूप कर्म के विषय समझ-कर सारे कार्यों में व्याप्त हैं, वैसे अग्नि से हम प्रभूत अन्न माँगते हैं।

२. जो अग्नि जल, वन, स्थावर और जंगम के बीच अवस्थान करते हैं, उन्हें यज्ञ-गृह और पर्वत के ऊपर लोग हवि प्रदान करते हैं। जैसे प्रजावत्सल राजा प्रजा के हित का कार्य करते हैं; वैसे ही अमर अग्नि हमारे हितकर कार्य का सम्पादन करें।

३. मंत्र द्वारा जो यजमान अग्नि की यथेष्ट स्तुति करता है, उसे रात्रि में प्रदीप्त अग्नि धन देते हैं। हे सर्वज्ञाता अग्नि! तुम देवों और

मनुष्यों के जन्म जानते हो; इसलिए समस्त जीवों का पालन करो।

४. विभिन्न-स्वरूप होकर भी उषा और रात्रि अग्नि को वर्द्धन करती हैं। स्थावर और जंगम पदार्थ यज्ञ-वेष्टित अग्नि को वर्द्धन करते हैं। देवों के आह्वानकारी वही अग्नि देव-पूजन-स्थान में बैठकर और सारे यज्ञ कर्मों को सत्य-फल-सम्पन्न करके पूजित होते हैं।

५. अग्नि! हमारे काम में आने योग्य गौओं को उत्कृष्ट करो। सारा संसार हमारे लिए ग्रहण योग्य उपासना-रूप धन ले आवे। अनेक देव-स्थानों में मनुष्यलोग तुम्हारी विविध प्रकार की पूजा करते तथा बूढ़े पिता के समीप से पुत्र की तरह तुम्हारे पास से धन प्राप्त करते हैं।

६. साधक की तरह अग्नि धन अधिकृत करते हैं। अग्नि धनुर्द्धर की तरह शूर, शत्रु की तरह भयंकर और युद्ध-क्षेत्र में प्रज्वलित हैं।

७१ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. जैसे स्त्री स्वामी को प्रसन्न करती है, वैसे ही एक-स्थान-वर्तिनी और आकांक्षिणी भगिनी-रूपिणी अँगुलियाँ अभिलाषी अग्नि को हव्य प्रदान-द्वारा प्रसन्न करती हैं। पहले उषा कृष्णवर्णा और पीछे शुभ्रवर्णा होती हैं, उन उषा की जैसे किरणें सेवा करती हैं, वैसे ही सारी अँगुलियाँ अग्नि की सेवा करती हैं।

२. हमारे अङ्गिरा नाम के पितरों ने मंत्र-द्वारा अग्नि की स्तुति करके बली और दृढ़ाङ्ग पणि असुर को स्तुति-शब्द-द्वारा ही नष्ट किया था तथा हमारे लिए महान् द्युलोक का मार्ग दिया था। अनन्तर उन्होंने सुखकर दिवस, आदित्य और पणि-द्वारा अपहृत गौओं को पाया था।

३. अङ्गिरोवंशीयों ने यज्ञ-रूप अग्नि को, धन की तरह, धारण किया था। अनन्तर जिन यजमानों के पास धन है और जो अन्य-विषयाभिलाष त्याग करके अग्नि को धारण करते एवं अग्नि की सेवा में रत रहते हैं, वे हव्य के द्वारा देवों और मनुष्यों की श्रीवृद्धि करके अग्नि के सामने जाते हैं।

४. मातरिश्वा या व्यान-वायु के विलोड़ित करने पर शुभ्रवर्ण होकर अग्नि समस्त यज्ञ-गृह में प्रकट होते हैं। उस समय जिस तरह मित्र राजा प्रबल राजा के पास अपने आदमी को दूत-कर्म में नियुक्त करता है, उसी तरह भृगु ऋषि की तरह यज्ञ-सम्पादक यजमान अग्नि को दूत-कर्म में नियोजित करता है।

५. जिस समय यजमान महान् और पालक देवता को हव्य-रूप रस देता है, उस समय, अग्निदेव! स्पर्शन-कुशल राक्षस आदि तुम्हें हविर्वाहक जानकर भाग जाते हैं। बाणप्रक्षेपक अग्नि भागते हुए राक्षसों के प्रति अपने रिपु-संहारी धनुष से दीप्तिशाली वाण फेंकते हैं तथा प्रकाशशाली अग्नि अपनी पुत्री उषा में अपना तेज स्थापित करते हैं।

६. अग्नि! अपने यज्ञ-गृह में, मर्यादा के साथ, जो यजमान तुम्हें चारों तरफ़ प्रज्वलित करता है; और, अनुदिन अभिलाष करके तुम्हें अन्न प्रदान करता है, हे द्विवर्हा या दो मध्यम-उत्तम स्थानों में वर्द्धित अग्नि! तुम उनका अन्न वर्द्धित करते हो। जो युद्धार्थी पुरुष को, रथ के साथ, युद्ध में प्रेरण करता है, उसे धन प्राप्त हो।

७. जिस प्रकार विशाल सात नदियाँ समुद्राभिमुख धावित होती हैं, उसी प्रकार हव्य का अन्न अग्नि को प्राप्त होता है। हमारी ज्ञातिवाले हमारे अन्न का भाग नहीं पाते अर्थात् हमारे पास प्रचुर धन नहीं है; इसलिए हे अग्नि! तुम प्रकृष्ट अन्न जानकर देवों को सूचित करो।

८. अग्नि का विशुद्ध और दीप्तिमान् तेज अन्न-प्राप्ति के लिए मनुष्य-पालक या यजमान को व्याप्त हो। उसी तेज-द्वारा अग्नि गर्भ-

निषिक्त वीर्य बलवान् प्रशस्य, युवक और शोभनकर्मा पुत्र उत्पन्न करें तथा यज्ञ आदि कर्म में प्रेरण करें।

९. मन की तरह शीघ्रगामी जो सूर्य स्वर्गीय पथ में अकेले जाते हैं, वे तुरत ही विविध धन प्राप्त करते हैं! शोभन और सुबाहु मित्र और वरुण हमारी गौओं के प्रीतिकर और अमृत-तुल्य दूध की रक्षा करते हुए अवस्थान करें।

१०. हे अग्नि! हमारी पैतृक मित्रता नष्ट नहीं करना; क्योंकि तुम भूतदर्शी और वर्त्तमान विषय-ज्ञाता हो। जैसे सूर्य की किरणें अन्तरिक्ष को ढक लेती हैं, वैसे ही जरा या बुढ़ापा हमारा विनाश करता है। विनाश-कारण जरा जिस प्रकार न आने पाये, वैसा करो।

७२ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. ज्ञाता और नित्य अग्नि की स्तुति आरम्भ करो अथवा नित्य ब्रह्मा के मंत्र अग्नि ग्रहण करते हैं। अग्नि मनुष्यों के हितसाधक धन हाथ में धारण करते हैं। अग्नि स्तुति-कर्त्ताओं को अमृत या हिरण्य प्रदान करते हैं। अग्नि ही सर्वोच्च धन के अधिपति हैं।

२. सारे अमरण-धर्मा देवगण और मोह-रहित मरुद्गण, अनेक कामना करने पर भी हमारे प्रिय और सर्वव्यापी अग्नि को नहीं पा सके। पैदल चलते-चलते थककर और अग्नि के प्रकाश को लक्ष्य कर अन्त को वे लोग अग्नि के घर में उपस्थित हुए।

३. हे दीप्तिमान् अग्नि! दीप्तिमान् मरुतों ने तीन वर्ष तक तुम्हारी घृत से पूजा की थी। अनन्तर उन्हें यज्ञ में प्रयोग योग्य नाम और उत्कृष्ट अमर-शरीर प्राप्त हुआ।

४. यज्ञार्ह देवों ने विशाल द्युलोक और पृथिवी में विद्यमान रहकर रुद्र या अग्नि के उपयुक्त स्तोत्र किया था। मरुतों ने इन्द्र के साथ उत्तम स्थान में निहित अग्नि को समझकर उसे प्राप्त किया था।

५. हे अग्निदेव ! देवता तुम्हें अच्छी तरह जानकर बैठ गये और अपनी स्त्रियों के साथ सम्मुखस्थ जानुयुक्त अग्नि की पूजा की। अनन्तर मित्र अग्नि को देखकर, अग्नि-द्वारा रक्षित, मित्र देवों ने अग्नि के शरीर का शोषण कर यज्ञ किया।

६. अग्नि! तुम्हारे अन्दर निहित एकविंशति निगूढ़ पदों वा यज्ञों को यजमानों ने जाना है और उन्हीं से तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम भी यजमानों के प्रति उसी प्रकार स्नेह-युक्त होकर उनके पशु और स्थावर-जंगम की रक्षा करो।

७. अग्नि! सारे जानने योग्य विषयों को जानकर प्रजाओं के जीवन-धारण के लिए क्षुधा-निवृत्ति करो। आकाश और पृथिवी पर जिस मार्ग से देवलोक जाते हैं, वह जानकर और आलस्य-रहित होकर, दूत-रूप से, हव्य वहन करो।

८. शोभन-कर्म-सम्पन्ना विशाल सप्त नदियाँ द्युलोक से निकली हैं। ये सारी नदियाँ अग्नि-द्वारा स्थापित हैं। यज्ञज्ञाता अङ्गिरा लोगों ने असुरों-द्वारा चुराये हुए गोधन का गमन-मार्ग तुमसे जाना था। तुम्हारी कृपा से सरमा ने उनके पास से प्रचुर गोदुग्ध प्राप्त किया था। उसके द्वारा मनुष्य की रक्षा होती है।

९. आदित्यगण ने अमरत्व-सिद्धि के लिए उपाय करके पतन-निरोध के लिए जो सारे कर्म किये थे, अदिति-रूपिणी जननी पृथ्वी ने सारे जगत् के धारण के लिए उन महानुभाव पुत्रों के साथ जो विशेष महत्त्व प्राप्त किया था, अग्निदेव ! तुमने हव्य भक्षण किया था, यही सबका कारण है।

१०. इस अग्नि में यजमानों ने सुन्दर यज्ञ-सम्पत् स्थापित की थी एवं यज्ञ के चक्षुःस्वरूप घृत दिया था। अनन्तर देवता लोग आये। यह देखकर अग्निदेव ! तुम्हारी समुज्ज्वल शिखा, वेगवती नदी की तरह, सारी दिशाओं में फैली और देवों ने भी उसे जाना।

७३ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. पैतृक धन की तरह अग्नि अन्नदाता हैं; शास्त्रज्ञ व्यक्ति के शासन की तरह अग्नि नेता हैं; उपविष्ट अतिथि की तरह अग्नि प्रीति-पात्र हैं; और, होता की तरह अग्नि यजमान का घर वर्द्धित करते हैं।

२. प्रकाशमान सूर्य की तरह यथार्थदर्शी अग्नि अपने कार्य-द्वारा समस्त दुःखों से रक्षा करते हैं। यजमानों के प्रशंसित अग्नि प्रकृति के स्वरूप की तरह परिवर्तन-रहित हैं। अग्नि आत्मा की तरह सुख-कर हैं। ऐसे अग्नि यजमानों-द्वारा धारणीय हैं।

३. द्युतिमान् सूर्य की तरह अग्नि समस्त संसार को धारण करते हैं। अनुकूल सुहृद्-से सम्पन्न राजा की तरह अग्नि पृथिवी पर निवास करते हैं। संसार अग्नि के सामने पितृ-गृह में पुत्र की तरह बैठता है। अग्नि पति-सेविता और अभिनन्दनीया स्त्री की तरह विशुद्ध हैं।

४. हे अग्नि! संसार उपद्रव-शून्य स्थान पर अपने घर में, अनवरत काष्ठ से जलाकर, तुम्हारी सेवा करता है। साथ ही अनेक यज्ञों में अन्न भी प्रदान करता है। तुम विश्वायु या सर्वान्न होकर हमें धन दो।

५. अग्निदेव! धनशाली यजमान अन्न प्राप्त करे। जो विद्वान् तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हें हव्य-दान करते हैं, वे दीर्घ आयु प्राप्त करें। हम लड़ाई के मैदान में शत्रु का अन्न लाभ करें। अनन्तर यश के लिए देवों का अंश देवों को अर्पण करें।

६. नित्य दुग्धशालिनी और तेजस्विनी गायें अग्नि की अभिलाषा करके यज्ञस्थान में अग्नि को दुग्ध पान कराती हैं। प्रवहमाना नदियाँ अग्नि के पास अनुग्रह की याचना करके, पर्वत के पास दूर देश से प्रवाहित होती हैं।

७. हे द्युतिमान् अग्नि! यज्ञाधिकारी देवों ने तुम्हारे अनुग्रह की याचना करके तुम्हारे ऊपर हव्य स्थापन किया है। अनन्तर भिन्न-भिन्न अनुष्ठान के लिए उषा और रात्रि को भिन्नरूपिणी किया है। रात्रि को कृष्णवर्ण और उषा को अरुणवर्ण किया है।

८. तुम जो मनुष्यों को, अर्थ-लाभ के लिए, यज्ञ-कर्म में प्रेरित करते हो—वे और हम धनी होंगे। तुमने आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को परिपूर्ण किया है। साथ ही सारे संसार को, छाया की तरह, रक्षित करते हो।

९. अग्निदेव! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित होकर हम अपने अश्व से शत्रु के अश्व का वध करेंगे। अपने योद्धाओं के द्वारा शत्रु के योद्धाओं को और अपने वीरों-द्वारा शत्रु के वीरों का वध करेंगे। हमारे विद्वान् पुत्र पैतृक धन के स्वामी होकर सौ वर्ष जीवन का भोग करें।

१०. हे मेधावी अग्नि! हमारे सब स्तोत्र तुम्हारे मन और अन्तःकरण को प्रिय हों। देवों के संभोग योग्य अन्न तुम्हारे अन्दर स्थापित करके हम तुम्हारे दारिद्र्य-विनाशी धन की रक्षा कर सकें।

७४ सूक्त

(१३ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से ९३ सूक्त तक के ऋषि रहूगण के पुत्र गोतम। छन्द त्रिष्टुप्)

१. जो अग्नि दूर रहकर भी हमारी स्तुति सुनते हैं, यज्ञ में आगमनशील उन अग्नि की हम स्तुति करते हैं।

२. जो अग्नि, बधकारिणी शत्रुभूता प्रजाओं के बीच संगत होकर हविर्दानकारी यजमान के लिए धन की रक्षा करते हैं, उन अग्नि की हम स्तुति करते हैं।

३. सारा लोक उत्पन्न होते ही अग्नि की स्तुति करे, अग्नि शत्रु-हन्ता और युद्ध में शत्रु-धन की जय करते हैं।

४. अग्नि! जिस यजमान के यज्ञ-गृह में तुम देव-दूत होकर उनके भोजन के लिए हव्य वहन करते और यज्ञ शोभित करते हो—

५. हे बल के पुत्र अङ्गिरा (अग्नि)! उसी यजमान को सारे मनुष्य शोभन-देव-संयुक्त, शोभन-हव्य-सम्पन्न और शोभन-यज्ञयुक्त करते हैं।

६. हे ज्योतिर्मय अग्नि! इस यज्ञ में, स्तुति ग्रहण करने के लिए देवों को हमारे समीप ले आओ और भोजन करने के लिए हव्य प्रदान करो।

७. हे अग्नि! जिस समय तुम देवों के दूत बनकर जाते हो, उस समय तुम्हारे गतिशाली रथ के अश्व का शब्द नहीं सुनाई देता।

८. जो पुरुष पहले निकृष्ट है, वह तुम्हें हव्य दान करके तुम्हारे द्वारा रक्षित और अन्न-युक्त होकर लज्जा-रहित (ऐश्वर्यशाली) बनता है।

९. हे प्रकाशमान अग्नि! जो यजमान देवों को हव्य प्रदान करता है, उसे प्रभूत, दीप्त और वीर्यशाली धन दान करो।

७५ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द गायत्री)

१. अग्निदेव! मुख में हव्य ग्रहण करके देवों को अतीव प्रसन्न करो और हमारा अतिविशाल स्तोत्र ग्रहण करो।

२. हे अङ्गिरा ऋषि के पुत्रों और मेधावियों में श्रेष्ठ! हम तुम्हारे ग्रहणयोग्य और प्रसन्नता-दायक स्तोत्र सम्पादन करते हैं।

३. अग्नि! मनुष्यों में तुम्हारा योग्य बन्धु कौन है? तुम्हारा यज्ञ कौन कर सकता है? तुम कौन हो? कहाँ रहते हो?

४. अग्नि! तुम सबके बन्धु हो, तुम प्रिय मित्र हो। तुम मित्रों के स्तुति-पात्र मित्र हो।

५. अग्नि! हमारे लिए मित्र और वरुण की अर्चना करो और देवों की पूजा करो। विशाल यज्ञ का सम्पादन करो और अपने यज्ञ-गृह में गमन करो।

७६ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अग्नि! तुम्हारी मनस्तुष्टि करने का क्या उपाय है? तुम्हारी आनन्ददायिनी स्तुति कैसी है? तुम्हारी क्षमता का पर्याप्त यज्ञ कौन कर सकता है? कैसी बुद्धि के द्वारा तुम्हें हव्य प्रदान किया जाय?

२. अग्नि! इस यज्ञ में आओ। देवों को बुलाकर बैठो। तुम हमारे नेता बनो; क्योंकि कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता। सारा आकाश और पृथिवी तुम्हारी रक्षा करें एवं तुम देवों को अत्यन्त प्रसन्न करने के लिए पूजा करो।

३. अग्नि! सारे राक्षसों को दहन करो तथा हिंसाओं से यज्ञ की रक्षा करो। सोम-रक्षक इन्द्र को, उनके हरि नाम के दोनों अश्वों के साथ, इस यज्ञ में ले आओ। हम सुफलदाता इन्द्र का आतिथ्य प्रदर्शन करेंगे।

४. जो अग्नि मुख-द्वारा हव्य वहन करते हैं, उन्हें अपत्य आदि फलों से युक्त स्तोत्र-द्वारा आह्वान करते हैं। अग्नि! तुम अन्य देवों के साथ बैठो और हे यजनीय अग्नि! तुम होता और पोता के कार्य करो। तुम धन के नियामक और जन्मदाता होकर हमें जगाओ।

५. तुमने मेधावियों में मेधावी बनकर जैसे मेधावी मनु के यज्ञ में हव्य-द्वारा देवों की पूजा की थी, वैसे ही हे होम-निष्पादक सभ्य अग्नि! तुम इस यज्ञ में देवों की आनन्ददायक जुहू आस्नुक् से पूजा करो।

७७ सूक्त

(देवता अग्नि)

१. जो अग्नि अमर, सत्यवान् देवाह्वानकारी और यज्ञ-सम्पादक हैं तथा जो मनुष्यों के बीच रहकर देवों को हवियुक्त करते हैं, उन

अग्नि के हम अनुरूप हव्य कैसे प्रदान करेंगे? तेजस्वी अग्नि की, सब देवों के उपयुक्त, कैसी स्तुति करेंगे?

२. जो अग्नि यज्ञ में अत्यन्त सुखकारी, यथार्थदर्शी और देवाह्वानकारी हैं, उन्हें स्तोत्र-द्वारा हमारे अभिमुख करो। जिस समय अग्नि मनुष्यों के लिए देवों के पास जाते हैं, उस समय वे देवों को जानते और मन या नमस्कार-द्वारा पूजा करते हैं।

३. अग्नि यज्ञ-कर्त्ता हैं, अग्नि संसार के उपसंहारक और जनयिता हैं। सखा की तरह अग्नि अलब्ध धन देते हैं। देवाभिलाषी प्रजागण उन दर्शनीय अग्नि के समीप जाकर अग्नि को ही यज्ञ का प्रथम देवता मानकर स्तुति करते हैं।

४. अग्नि नेताओं के बीच उत्कृष्ट नेता और शत्रुओं के विनाशकारी हैं। अग्नि हमारी स्तुति और अन्नयुक्त यज्ञ की अभिलाषा करें तथा जो धनशाली और बलशाली यजमान लोग अन्न प्रदान करके अग्नि के मननीय स्तोत्र की इच्छा करते हैं, अग्नि उन लोगों की स्तुति की भी इच्छा करें।

५. यज्ञयुक्त और सर्वज्ञ अग्नि इसी प्रकार मेधावी गोतम आदि ऋषियों-द्वारा स्तुत हुए थे। अग्नि ने भी उन्हें प्रकाशमान सोमरस का पान और भोजन कराया था। हमारी सेवा जानकर अग्नि पुष्टि प्राप्त करें।

७८ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द गायत्री)

१. हे उत्पन्नज्ञाता और सर्वद्रष्टा अग्नि! गोतम-वंशीयों ने तुम्हारी स्तुति की है। द्युतिमान् स्तोत्र-द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

२. धनाकाङ्क्षी होकर गोतम जिन अग्नि की स्तुति-द्वारा सेवा करते हैं, उन्हीं की, गुण-प्रकाशक स्तोत्र-द्वारा, हम बार-बार स्तुति करते हैं।

३. अङ्गिरा की तरह सर्वापेक्षा अधिकतर अन्नदाता अग्नि को हम बुलाते हैं और द्युतिमान् स्तोत्र-द्वारा स्तुति करते हैं।

४. हे अग्निदेव ! तुम दस्युओं, अनार्यों या शत्रुओं को स्थान-भ्रष्ट करो। तुम सर्वापेक्षा शत्रु-हन्ता हो। द्युतिमान् स्तोत्र-द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

५. हम रहूगण-वंशीय हैं। हम अग्नि के लिए माधुर्ययुक्त वाक्य का प्रयोग करते और द्युतिमान् स्तोत्र-द्वारा स्तुति करते हैं।

७९ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द गायत्री, त्रिष्टुप् और उष्णिक्। प्रथम तीन मंत्र विद्युद्रूप अग्नि के विषय में)

१. सुवर्ण केशवाले अग्नि (विद्युत्-रूप में) हननशील मेघ को कम्पित करते और वायु की तरह शीघ्रगामी हैं। वे सुन्दर दीप्ति से युक्त होकर मेघ से वारि-वर्षण करना जानते हैं। उषा यह बात नहीं जानती। उषा अन्नशाली, सरल और निजकार्य-परायण प्रजा की तरह है।

२. अग्नि ! तुम्हारी सुन्दर और पतनशील किरण, मरुतों के साथ, मेघ को ताडित करती है। कृष्णवर्ण और वर्षणशील मेघ गरजा है। मेघ सुखकर और हास्य-युक्त वृष्टि-बिन्दु के साथ आता है। पानी गिर रहा है, मेघ गरज रहा है।

३. जिस समय अग्नि, वृष्टि-जल-द्वारा, संसार को पुष्ट करते हैं तथा जल के व्यवहार का सरल उपाय (स्नान, पान आदि) दिखा देते हैं, उस समय अर्यमा, मित्र, वरुण और समस्त दिग्गामी मरुद्गण मेघ के जलोत्पत्ति-स्थान का आच्छादन उद्घाटित कर देते हैं।

४. हे बल-पुत्र अग्नि ! तुम प्रभूत गो-युक्त अन्न के मालिक हो। हे सर्वभूतज्ञाता ! हमें तुम बहुत धन दो।

५. दीप्तियुक्त, निवास-स्थानदाता और मेधावी अग्नि स्तोत्र-द्वारा प्रशंसनीय हैं। हे बहुमुख अग्नि! जिस प्रकार हमारे पास धन-युक्त अन्न हो, उसी प्रकार दीप्ति प्रकाशित करो।

६. उज्ज्वल अग्नि! दिन अथवा रात्रि में स्वयं या प्रजा-द्वारा राक्षसादि को विताड़ित करो। हे तीक्ष्ण-मुख अग्नि! राक्षस को दहन करो।

७. अग्निदेव! तुम सारे यज्ञों में स्तुति-भाजन हो। हमारी गायत्री-द्वारा तुष्ट होकर, रक्षण-कार्य-द्वारा, हमें पालित करो।

८. अग्नि! हमें दारिद्र्य-विनाशी, सबके स्वीकार योग्य और सारे संग्रामों में धन दो।

९. अग्नि! हमारे जीवन के लिए सुन्दर ज्ञानयुक्त, सुख-हेतु-भूत और सारी आयु का पुष्टि-कारक धन प्रदान करो।

१०. हे धनाभिलाषी गोतम! तीक्ष्ण-ज्वालायुक्त अग्नि की विशुद्ध स्तुति करो।

११. अग्नि! हमारे पास या दूर रहकर जो शत्रु हमारी हानि करता है, वह विनष्ट हो। तुम हमारा वर्द्धन करो।

१२. सहस्राक्ष या असंख्य-ज्वाला-सम्पन्न और सर्व-दर्शी अग्नि राक्षसों को ताड़ित करते हैं। हमारी ओर से स्तुत होकर देवों के आह्वानकारी अग्नि उनकी स्तुति करते हैं।

८० सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. हे बलशाली और वज्रधर इन्द्र! तुम्हारे इस हर्षकारी सोमरस का पान करने पर स्तोता ने तुम्हारी वृद्धिकारिणी स्तुति की थी। तुमने बल-द्वारा पृथिवी पर से अहि को ताड़ित किया था तथा अपना प्रभुत्व या स्वराज्य प्रकट किया था।

२. इन्द्रदेव! सेचन-स्वभाव, हर्षकर और श्येन पक्षी-द्वारा आनीत तथा अभिषुत सोमरस ने तुम्हें प्रसन्न किया था। वज्रिन्! अपने बल-द्वारा अन्तरीक्ष के पास से तुमने वृत्र का विनाश किया था तथा अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

३. हे इन्द्र! जाओ, शत्रुओं का सामना करो और उन्हें पराजित करो। तुम्हारे वज्र का वेग कोई रोकनेवाला नहीं है। तुम्हारा बल पुरुष-विजयी है। इसलिए तुम वृत्र का वध करो। वृत्र-द्वारा रोका हुआ जल प्राप्त करो और अपना प्रभुत्व प्रकट करो।

४. इन्द्र! तुमने भूलोक और द्युलोक—दोनों लोकों में वृत्र का वध किया है। मरुतों से संयुक्त और जीवों के तृप्तिकर वृष्टि-जल गिराकर अपना प्रभुत्व प्रकट करो।

५. क्रुद्ध इन्द्र ने सामना करके कम्पमान वृत्र के उन्नत हनु-प्रवेश पर प्रहार किया, वृष्टि का जल बहने दिया और अपना प्रभुत्व प्रकट किया।

६. शतधाराओंवाले वज्र से इन्द्र ने वृत्रासुर के कपोल-देश पर आघात किया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर स्तोताओं के लिए अन्न को जुटाने की इच्छा की और अपना प्रभुत्व प्रकट किया।

७. हे मेघ-वाहन और वज्रधर इन्द्र! शत्रु लोग तुम्हारी क्षमता की अवहेलना नहीं कर सकते; क्योंकि तुम मायावी हो, माया-द्वारा तुमने मृग-रूप-धारी वृत्र का वध किया था और अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

८. इन्द्र! तुम्हारे वज्र नब्बे नदियों के ऊपर विस्तृत हुए थे। इन्द्र! तुम्हारा वीर्य यथेष्ट है। तुम्हारी भुजायें बहुबलधारिणी हैं। अपना प्रभुत्व प्रकट करो।

९. एक साथ हज़ार मनुष्यों ने इन्द्र की पूजा की थी। बीस मनुष्यों

(१६ ऋत्विक्, सस्त्रीक यजमान, सदस्य और शमिता—२०) ने इन्द्र की स्तुति की थी। सौ ऋषियों ने इन्द्र की बार-बार स्तुति की थी। इन्द्र के लिए हव्य अन्न ऊपर रखा गया था। इन्द्र ने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

१०. इन्द्र ने अपने बल से वृत्र के बल का विनाश किया था। पराभूत करनेवाले शस्त्र से उन्होंने वृत्र का शस्त्र विनष्ट किया था। इन्द्र के पास असीम शक्ति है; क्योंकि उन्होंने वृत्र का वध करके, वृत्र-द्वारा रोका गया, जल निगत किया था। इन्द्र ने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

११. वज्रधारी इन्द्र! तुम्हारे डर के मारे यह आकाश और पृथिवी कम्पित हुए थे; क्योंकि तुमने मरुतों से मिलकर वृत्र का वध किया तथा अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

१२. अपने कम्पन या गर्जन से वृत्र इन्द्र को नहीं डरा सका। इन्द्र के लौहमय और सहस्रधारायुक्त वज्र ने वृत्र को आक्रान्त किया और इन्द्र ने अपना प्रभुत्व प्रकट किया।

१३. इन्द्र! जिस समय तुमने वृत्र पर प्रहार किया था, उस समय, तुम्हारे अहि के वध के लिए, कृतसंकल्प होने पर तुम्हारा बल आकाश में व्याप्त हुआ था। तुमने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

१४. वज्रधारी इन्द्र! तुम्हारे गर्जन करने पर स्थावर और जंगम काँप जाते हैं। वज्र-निर्माता त्वष्टा भी तुम्हारे कोप-भय से कम्पित हो जाते हैं। तुमने अपना प्रभुत्व प्रकट किया है।

१५. सर्व-व्यापक इन्द्र को हम नहीं जान सकते। अत्यन्त दूर में अवस्थित इन्द्र को अपने सामर्थ्य से कौन जान सकता है? इन्द्र में देवों ने धन, वीर्य और बल स्थापित किया था। इन्द्र ने अपना प्रभुत्व प्रकट किया था।

१६. अथर्वा नामक ऋषि, समस्त प्रजा के पितृ-भूत मनु और अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि ने जितने यज्ञ किये, सबमें प्रयुक्त हव्य, अन्न और स्तोत्र, प्राचीन यज्ञों की तरह, इन्द्र को ही प्राप्त हुए थे।

पञ्चम अध्याय समाप्त

८१ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता इन्द्र। छन्द पङ्क्ति)

१. वृत्र-हन्ता इन्द्र मनुष्यों की स्तुति-द्वारा बल और हर्ष से प्रवर्द्धित हुए थे। उन्हीं इन्द्र को हम महान् और क्षुद्र संग्रामों में बुलाते हैं। इन्द्र हमारी संग्राम में रक्षा करें।

२. वीर इन्द्र! एकाकी होने पर भी तुम सेना-सदृश हो। तुम प्रभूत शत्रुओं का धन दान कर देते हो। तुम क्षुद्र स्तोता को भी वर्द्धित करते हो। सोमरसदाता यजमान को तुम धन प्रदान करते हो; क्योंकि तुम्हारे पास अक्षय धन है।

३. जिस समय युद्ध होता है, उस समय शत्रुओं का विजेता ही धन प्राप्त करता है। इन्द्र! रथ में शत्रुओं के गर्वनाशकारी अश्व संयोजित करो। किसी का नाश करो, किसी को धन दो। इन्द्र! हमें तुम धनशाली करो।

४. यज्ञ-द्वारा इन्द्र विशाल और भयंकर हैं और सोम-पान-द्वारा इन्द्र ने अपना बल बढ़ाया है। इन्द्र दर्शनीय नासिका से युक्त तथा हरि नाम के अश्वों से सम्पन्न हैं। इन्द्र ने हमारी सम्पद् के लिए बलिष्ठ हाथों में लौहमय वज्र धारण किया है।

५. अपने तेज से इन्द्र ने पृथिवी और अन्तरिक्ष को परिपूर्ण किया है। द्युलोक में चमकते नक्षत्र स्थापित किये हैं। इन्द्रदेव तुम्हारे समान न कोई हुआ, न होगा। तुम विशेष रूप से सारे जगत् को धारण करो।

६. जो पालक इन्द्र यजमान को मनुष्योपभोग्य अन्न प्रदान करते हैं, वे हमें वैसा ही अन्न दें। इन्द्र ! तुम्हारे पास असंख्य धन है; इसलिए हमारे लिए धन का विभाग कर दो, ताकि हम उसका एक अंश प्राप्त करें।

७. सोम पान कर हृष्ट होने पर सरलकर्मा इन्द्र हमें गो-समूह देते हैं। इन्द्र ! हमें देने के लिए बहु-शत-संख्यक या अपरिमेय अन्न अपने दोनों हाथों में ग्रहण करो। हमें तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त और धन प्रदान करो।

८. शूर ! हमारे बल और धन के लिए हमारे साथ सोम-रस पान करके तृप्त बनो। तुम्हें हम बहु-धन-शाली जानते और अपनी अभिलाषा ज्ञात कराते हैं। तुम हमारी रक्षा करो।

९. इन्द्र ! ये तुम्हारे ही सब मनुष्य सबके ग्रहण योग्य में हव्य वर्द्धित करते हैं। जो लोग हव्य नहीं प्रदान करते, हे अखिलपति ! हे इन्द्र ! उनका धन तुम जानते हो। उनका धन हमें दो।

८२ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द जगती और पङ्क्ति)

१. धनशाली इन्द्र ! पास आकर हमारी स्तुति सुनो। इस समय तुम पहले से भिन्न-प्रकृति मत होना। तुमने ही हमें प्रिय और सत्य वाक्य से युक्त किया है। उसी वाक्य से हम तुमसे याचना करते हैं। इसलिए अपने दोनों अश्व शीघ्र योजित करो।

२. तुम्हारा दिया हुआ भोजन करके यजमान लोग परितृप्त हुए हैं एवं अतिशय रसास्वादन से अपना प्रिय शरीर कम्पित किया है। दीप्तिमान् मेधावियों ने अभिनव स्तुति-द्वारा तुम्हारी स्तुति की है। इन्द्रदेव ! अपने दोनों अश्व शीघ्र योजित करो।

३. मघवन् ! तुम सबको कृपा-पूर्ण दृष्टि से देखते हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। स्तुत होकर तथा स्तोताओं-द्वारा देय धन

से पूरित रथ-युक्त होकर उन यजमानों के पास जाओ, जो तुम्हारी कामना करते हैं। इन्द्र! अपने दोनों घोड़े रथ में संयुक्त करो।

४. जो रथ अभीष्ट वस्तु का वर्षण करता है, गाय देता तथा धान्य से मिश्रित (सोमरस से) पूर्ण पात्र देता है, इन्द्र! उसी रथ पर चढ़ो। अपने घोड़े शीघ्र योजित करो।

५. शतयज्ञकर्त्ता इन्द्र! तुम्हारे रथ के दाहिने और बायें अश्व संयुक्त हों। सोमपान से हृष्ट होकर तुम उस रथ-द्वारा अपनी प्रिय पत्नी के पास जाओ। अपने घोड़े संयोजित करो।

६. तुम्हारे केश-सम्पन्न दोनों घोड़ों को मैं स्तोत्र-द्वारा रथ में संयोजित करता हूँ। अपनी दोनों भुजाओं में घोड़े को बाँधनेवाली रश्मि धारण करके घर जाओ। इस अभिषुत तीक्ष्ण सोमरस ने तुम्हें हृष्ट किया है। वज्रिन्! तुम सोमपान से उत्पन्न तुष्टि से युक्त होकर अपनी पत्नी के साथ भलीभाँति हर्ष प्राप्त करो।

८३ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द जगती)

१. इन्द्र! तुम्हारी रक्षा-द्वारा जो मनुष्य रक्षित है, वह अश्ववाले घर में रहकर सर्व-प्रथम गौ प्राप्त करता है। जैसे विशिष्ट ज्ञान-दाता नदियाँ चारों ओर से समुद्र को परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही तुम भी अपने रक्षित मनुष्य को यथेष्ट धन से परिपूर्ण करते हो।

२. जैसे द्युतिमान् जल यज्ञ-पात्र में जाता है, वैसे ही ऊपर रहने-वाले देवता लोग यज्ञ-पात्र को देखते हैं। उनकी दृष्टि, सूर्य-किरण की तरह, व्यापक है। जैसे अनेक वर एक ही कन्या को ब्याहने की इच्छा करते हैं, वैसे ही देवता लोग सोम-पूर्ण और देवाभिलाषी पात्र को, उत्तर वेदी के सम्मुख लाकर, चाहते हैं।

३. इन्द्र! जो हव्य और धान्य यज्ञ-पात्र में तुम्हें समर्पित किया गया है, उसमें तुमने मंत्र-वचन संयुक्त किया है। यजमान, युद्ध में

न जाकर, तुम्हारे काम में लगा रहता एवं पुष्टि प्राप्त करता है; क्योंकि सोमाभिषव-दाता बल-लाभ करता ही है।

४. पहले अङ्गिरा लोगों ने इन्द्र के लिए अन्न सम्पादित किया था। अनन्तर उन्होंने अग्नि जलाकर सुन्दर योग-द्वारा इन्द्र की पूजा की थी। यज्ञ-नेता अङ्गिरोवंशीयों ने अश्व, गौ और अन्य पशुओं से युक्त सारा धन प्राप्त किया था।

५. अथर्वा नाम के ऋषि ने, पहले यज्ञ-द्वारा चुराई हुई गायों का मार्ग प्रदर्शित किया था। अनन्तर व्रत-पालक और कान्ति-विशिष्ट सूर्य-रूप इन्द्र आविर्भूत हुए थे। गौओं को अथर्वा ने प्राप्त किया। कवि के पुत्र उशना या भृगु ने इन्द्र की सहायता की थी। असुरों के दमन के लिए उत्पन्न और अमर इन्द्र की हम पूजा करते हैं।

६. सुन्दर-फल-युक्त यज्ञ के लिए जिस समय कुश का छेदन किया जाता है, उस समय स्तोत्र-सम्पादक होता द्युतिमान् यज्ञ में स्तोत्र उद्-घोषित करता है। जिस समय सोम-निस्यन्दी प्रस्तर, शास्त्रीय स्तवन-कारी स्तोता की तरह, शब्द करता है, उस समय इन्द्र प्रसन्न होते हैं।

८४ सूक्त

(देवता इन्द्र। अनुष्टुप् में ६ मंत्र, उष्णिक् में ३, पङ्क्ति में ३, गायत्री में ३, त्रिष्टुप् में ३, बृहती में १ और सतोबृहती छन्द में १ मंत्र)

१. इन्द्र! तुम्हारे लिए सोमरस तैयार है। हे बलिष्ठ और शत्रु-दमन इन्द्र! आओ। जैसे सूर्य किरण-द्वारा, अन्तरिक्ष को पूर्ण करते हैं, वैसे ही प्रभूत शक्ति तुम्हें पूरित करे।

२. इन्द्र के दोनों हरिनाम के घोड़े हिंसा-विरहित बलवाले इन्द्र को वसिष्ठ आदि ऋषियों और मनुष्यों की स्तुति और यज्ञ के समीप वहन करें।

३. हे वृत्र-हन्ता इन्द्र! रथ पर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे दोनों घोड़े मंत्र-द्वारा रथ में हमारे द्वारा संयोजित किये गये हैं। सोम-चुआनेवाले प्रस्तर-द्वारा अपना मन हमारी ओर करो।

४. इन्द्र! तुम इस अतीव प्रशस्त, हर्ष-दायक या मादक और अमर सोमरस का पान करो। यज्ञ-गृह में यह दीप्तिमान् सोमधारा तुम्हारी ओर बहती है।

५. इन्द्र की तुरत पूजा करो; उनकी स्तुति करो; अभिषुत सोम-रस इन्द्र को प्रसन्न करे; प्रशंसनीय और बलवान् इन्द्र को प्रणाम करो।

६. इन्द्र! जिस समय तुम रथ में अपने घोड़े जोत देते हो, उस समय तुमसे बढ़कर रथी कोई नहीं रहता। तुम्हारे बराबर न तो कोई बली है और न सुशोभन अश्वोंवाला।

७. जो इन्द्र केवल हव्य-दाता यजमान को हव्य प्रदान करते हैं, वह समस्त संसार के शीघ्र स्वामी हो जाते हैं।

८. जो हव्य नहीं देता, उसे मण्डलाकार सर्प की तरह इन्द्र कब पैरों से रौंदेंगे? इन्द्र कब हमारी स्तुति सुनेंगे?

९. इन्द्र! जो अभिषुत सोम-द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, उसे तुम शीघ्र धन देते हो।

१०. गौर वर्ण गायें सुस्वादु एवं सब यज्ञों में व्याप्त मधुर सोमरस का पान करती हैं। शोभा के लिए वे गायें अभीष्टदाता इन्द्र के साथ गमन करके प्रसन्न होती हैं। ये सब गायें इन्द्र का राजत्व या 'स्वराज्य' लक्ष्य कर अवस्थित हैं।

११. इन्द्रदेव की स्पर्शाभिलाषिणी उक्त नाना वर्ण की गायें सोम के साथ अपना दुग्ध पिलाती हैं। इन्द्र की प्यारी गायें शत्रुओं पर सर्व-शत्रु-संहारी वज्र प्रेरित करती हैं। ये गायें इन्द्र का राजत्व लक्ष्य कर अवस्थान करती हैं।

१२. ये प्रकृष्ट-ज्ञान-युक्त गायें अपने दुग्ध-रूप अन्न-द्वारा इन्द्र के बल की पूजा करती हैं। ये गायें युद्धकामी शत्रुओं को पहले से ही,

परिज्ञान के लिए, इन्द्र के शत्रु-विनाश आदि अनेक कार्यों को घोषित करती हैं। ये गायें इन्द्र का राजत्व लक्ष्य कर अवस्थित हैं।

१३. अप्रतिद्वन्द्वी इन्द्र ने दधीचि ऋषि की हड्डियों से वृत्र आदि असुरों को नवगुण-नवति या ८१० बार मारा था।

१४. पर्वत में छिपे हुए दधीचि के अश्व-मस्तक को पाने की इच्छा से इन्द्र ने उस मस्तक को शर्यणावति नाम के सरोवर में प्राप्त किया।

१५. इस गमनशील चन्द्रमण्डल में अन्तर्हित जो त्वष्टृ-तेज या सूर्य-तेज है, वह आदित्य-रश्मि ही है—ऐसा जानो।

१६. आज इन्द्र की गतिशील रथ-धुरी में वीर्य-युक्त, तेजोमय, दुःसह क्रोध-सम्पन्न घोड़े को कौन संयोजित कर सकता है? उन घोड़ों के मुख में बाण आबद्ध है। कौन शत्रुओं के हृदयों में पाद-क्षेप और मित्रों को सुख प्रदान करते हैं—अर्थात् वे ही अश्व, जो इन अश्वों के कार्यों की प्रशंसा करते हैं। वे दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं।

१७. शत्रुओं के डर से कौन निकलेगा? शत्रुओं के द्वारा कौन नष्ट होता है? समीपस्थ इन्द्र को कौन रक्षक-रूप से जानता है? कौन पुत्र के लिए, अपने लिए, धन के लिए, शरीर की रक्षा के लिए अथवा परिजन की रक्षा के लिए इन्द्र के पास प्रार्थना करता है?

१८. इन्द्र के लिए अग्नि की स्तुति कौन करता है? वसन्त आदि नित्य ऋतुओं को उपलक्ष्य कर पात्र-स्थित हव्यघृत-द्वारा कौन पूजा करता है? इन्द्र को छोड़कर अन्य कौन देवता किस यजमान को तुरत प्रशंसनीय धन प्रदान करते हैं? यज्ञ-निरत और देव-प्रसाद-सम्पन्न कौन यजमान इन्द्र को अच्छी तरह जानता है?

१९. हे बलिष्ठ देव इन्द्र! स्तुति-परायण मनुष्य की तुम प्रशंसा करो। हे मघवन्! तुम्हें छोड़कर और कोई सुखदाता नहीं है। इसलिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

२०. हे निवास-स्थान-दाता इन्द्र! तुम्हारे भूतगण और सहायक रूप शत्रुगण या मरुद्गण हमारा कभी विनाश नहीं करें। हे मनुष्य-हितैषी इन्द्र! हम मंत्रद्रष्टा हैं; तुम हमारे लिए धन ला दो।

८५ सूक्त

(१४ अनुवाक। देवता मरुद्गण। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. गमन-वेला में मरुत् लोग, स्त्रियों की तरह, अपने शरीर को सजाते हैं; वे गतिशील रुद्र के पुत्र हैं। उन्होंने हितकर कार्य-द्वारा आकाश और पृथिवी को वर्द्धित किया है। वीर और घर्षणशील मरुद्गण यज्ञ में सोमपान-द्वारा आनन्द प्राप्त करते हैं।

२. ये मरुद्गण देवों-द्वारा अभिषिक्त होकर महत्त्व प्राप्त कर चुके हैं। रुद्र पुत्रों ने आकाश में स्थान प्राप्त किया है। पूजनीय इन्द्र की पूजा करके तथा इन्द्र को वीर्यशाली करके पृश्णि या पृथिवी के पुत्र मरुतों ने ऐश्वर्य प्राप्त किया था।

३. गौ या पृथिवी के पुत्र मरुद्गण जब अलंकारों-द्वारा अपने को शोभा-सम्पन्न करते हैं, तब दीप्त मरुद्गण अपने शरीर में उज्ज्वल अलंकार धारण करते हैं। वे सारे शत्रुओं का विनाश करते हैं और मरुतों के मार्ग का अनुगमन करके वृष्टि होती है।

४. सुन्दर यज्ञ से युक्त मरुद्गण आयुध के द्वारा विशेष रूप से दीप्तिमान् होते हैं। वे स्वयं स्थिर होकर पर्वत आदि को भी अपने बल-द्वारा उत्पादित करते हैं। जिस समय तुम लोग रथ में बिन्दु-चिह्नित मृग संयोजित करते हो, उस समय हे मरुद्गण! तुम लोग मन की तरह वेगवान् और वृष्टि-सेवन-कार्य में नियुक्त होते हो।

५. अन्न के लिए मेघ को वर्षणार्थ प्रेरण करके बिन्दुचिह्नित मृग को रथ में लगाओ। उस समय उज्ज्वल सूर्य के पास से वारि-धारा छूटती हैं तथा जल से सारी भूमि भींग जाती है।

६. मरुतो! तुम्हारे वेगवान् और शीघ्रगामी घोड़े तुम्हें इस

यज्ञ में ले आवें। तुम लोग शीघ्र-गन्ता हो—हाथ में धन लेकर आओ। मरुतो! बिछाये हुए कुशों पर बैठो और मधुर सोमरस का पान कर तृप्त बनो।

७. मरुद्गण अपने बल पर बढ़े हैं। अपनी महिमा के कारण स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार वास-स्थान विस्तीर्ण कर चुके हैं। जिनके लिए विष्णु मनोरथदाता और आह्लादकर यज्ञ की रक्षा करते हैं, वे ही मरुत् लोग, पक्षियों की तरह, शीघ्र आकर इस प्रसन्नता-दायक कुश पर बैठें।

८. शूरों, युद्धार्थियों तथा कीर्त्ति या अन्न के प्रेमी पुरुषों की तरह शीघ्रगामी मरुद्गण संग्राम में लिप्त हुए हैं। सारा विश्व उन मरुतों से डरता है। वे नेता हैं एवं राजा की तरह उग्र-रूप हैं।

९. शोभन-कर्मा त्वष्टा ने जो सुनिर्मित, सुवर्णमय और अनेक-धारा-सम्पन्न वज्र इन्द्र को दिया था, उसे ही इन्द्र ने लड़ाई में कार्य-साधन करने के लिए लेकर जल-युक्त मेघ या वृत्र को वध किया था तथा वारि-धारा गिराई थी।

१०. मरुतों ने अपने बल पर कूप को ऊपर उठाकर पथनिरोधक पर्वत को भिन्न किया था। शोभन-दानशील मरुतों ने वीणा बाजा बजाकर तथा सोमपान से प्रसन्न होकर रमणीय धन दिया था।

११. मरुतों ने उन गोतम की ओर कूप को टेढ़ा किया तथा पिपासित गोतम ऋषि के लिए जल का सिंचन किया। विलक्षण दीप्ति से युक्त मरुत् लोग रक्षा के लिए आये एवं जीवनोपाय जल-द्वारा मेधावी गोतम की तृप्ति की।

१२. मरुतो! पृथिवी आदि तीनों लोकों में अपने स्तोताओं को देने लायक़ जो तुम्हारे पास सुख है, उसे तुम लोग हव्यदाता को प्रदान करो। वह सब हमें दो। हे अभीष्टफलप्रद! हमें वीर-पुत्र आदि से युक्त धन दो।

८६ सूक्त

(देवता मरुद्गण । छन्द गायत्री)

१. हे उज्ज्वल मरुद्गण! अन्तरिक्ष से आकर तुम जिसके यज्ञ-गृह में सोमपान करते हो, वह मनुष्य शोभन रक्षकों से युक्त होता है।

२. हे यज्ञवाहक मरुद्गण! यज्ञ-परायण यजमान की स्तुति अथवा मेधावी का आह्वान सुनो।

३. यजमान के ऋत्विक् लोगों ने मरुतों को, हव्य-प्रदान-द्वारा उत्साहित किया है। वह यजमान नाना गौओंवाले गोष्ठ में जाता है।

४. यज्ञ के दिनों में वीर मरुतों के लिए यज्ञ में सोम तैयार किया जाता है एवं मरुतों की प्रसन्नता के लिए स्तोत्र पठित होता है।

५. सर्व-शत्रु-जेता मरुद्गण स्तोता की स्तुति सुनें एवं स्तोता अन्न प्राप्त करें।

६. मरुद्गण! हम सर्व-ज्ञाता मरुतों या तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर तुम्हें अनेक वर्षों से हव्य देते हैं।

७. यजनीय मरुद्गण! जिसका हव्य तुम ग्रहण करते हो, वह सौभाग्यशाली है।

८. हे प्रकृत-बल-सम्पन्न नेता मरुद्गण! तुम्हारे स्तुति-तत्पर और मंत्र उच्चारण करने के कारण परिश्रम से उत्पन्न स्वेद सम्पन्न एवं अपने अभिलाषी स्तोताओं की अभिलाषा समझो।

९. सत्य-बल-सम्पन्न मरुद्गण! तुम उज्ज्वल माहात्म्य प्रकट करो तथा उसके द्वारा राक्षस आदि को विनष्ट करो।

१०. सार्वभौम अन्धकार को हटाओ; राक्षस आदि सब भक्षकों को दूर करो; जो अभीष्ट ज्योति हमें चाहिए, उसे प्रकाशित करो।

८७ सूक्त

(देवता मरुद्गण । छन्द जगती)

१. मरुद्गण शत्रु-घातक, प्रकृष्ट-बल-सम्पन्न, जय-घोष-युक्त, सर्वोत्कृष्ट, संघीभूत, अवशिष्ट (ऋजीष)-सोम-पायी, यजमानों-द्वारा सेवित और मेघ आदि के नेता हैं। मरुद्गण आभरण-द्वारा सूर्य-किरणों की तरह प्रकाशित हुए।

२. मरुद्गण! जिस समय पक्षी की तरह किसी मार्ग से शीघ्र दौड़कर पास के आकाशमण्डल में तुम लोग गतिशील मेघों को एकत्र करते हो, उस समय सब मेघ तुम्हारे रथों में आसक्त होकर वारिवर्षण करते हैं; इसलिए तुम अपने पूजक के ऊपर मधु के समान स्वच्छ जल का सिंचन करो।

३. मंगल-विधायिनी-वृष्टि की तरह जिस समय मरुत् लोग मेघों को तैयार करते हैं, उस समय मरुद्गण-द्वारा उत्क्षिप्त मेघों को नियमित हुए देखकर, पति-रहिता स्त्री की तरह पृथिवी काँपने लगती है। ऐसे विहरणशील, गति-विशिष्ट और प्रदीप्तायुध मरुद्गण पर्वत आदि को कम्पित करके अपनी महिमा प्रकट करते हैं।

४. मरुद्गण स्वयमेव संचालित हैं। श्वेत-बिन्दु-युक्त मृग मरुतों का अश्व है। मरुत् लोग तरुण, वीर्यशाली और क्षमता-सम्पन्न हैं। मरुतो, तुम सत्यरूप हो, ऋण से मुक्त करते हो। तुम निन्दा-रहित और जलवर्षण करनेवाले हो। तुम हमारे यज्ञ के रक्षक हो।

५. अपने पूर्वजों द्वारा उपदिष्ट होकर हम कहते हैं कि सोम की आहुति के साथ मरुतों को स्तुति-वाक्य प्राप्त होता है। मरुत्लोग, वृत्र-वध-कार्य में इन्द्र की स्तुति करते हुए उपस्थित थे और इस तरह यज्ञ-योग्य नाम धारण किया था।

६. जीवों के उपभोग के लिए वे मरुद्गण दीप्तिमान् सूर्य की किरणों के साथ वारि-वर्षण करना चाहते हैं। वे स्तुतिवाले ऋत्विकों

के साथ आनन्द-दायक हव्य का भक्षण करते हैं। स्तुति-युक्त, वेगवान् और निर्भीक मरुद्गण ने सर्वप्रिय मरुद्गण-सम्बन्ध-विशिष्ट स्थान को प्राप्त किया है।

८८ सूक्त

(देवता मरुद्गण। छन्द प्रस्तार, पंक्ति, विराट् आदि)

१. मरुद्गण, तुम बिजली या दीप्ति से युक्त, शोभन गमनवाले, शस्त्रशाली और अश्व-संयुक्त मेघ या रथ पर आरोहण करके आओ। शोभनकर्मा इन्द्र! प्रभूत अन्न के साथ, पक्षी की तरह हमारे पास आओ।

२. मरुद्गण अरुण और पिङ्गलवाले रथ-प्रेरक घोड़ों-द्वारा किस स्तोता का कल्याण करने के लिए आते हैं? सोने की तरह दीप्तिमान् और शत्रु-नाशकारी तथा शस्त्रशाली मरुद्गण रथ-चक्र-द्वारा भूमि को पीड़ित करते हैं।

३. मरुद्गण, ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए तुम्हारे शरीर में शत्रुओं का संहारक शस्त्र है। मरुद्गण वन, वृक्ष आदि की तरह यज्ञ को ऊपर करते हैं। सुजन्मा मरुद्गण, तुम्हारे लिए प्रभूत-धन-शाली यजमान लोग सोम पीसनेवाले पत्थर को धन-सम्पन्न करते हैं।

४. जलाभिलाषी गोतमगण, तुम्हारे सुख के दिन आये हैं और आकर जलनिष्पाद्य यज्ञ को द्युतिमान् किया है। गोतमों ने स्तुति के साथ हव्यदान करके जलपानार्थ कूप को उठाया था।

५. मरुद्गण हिरण्मयचक्र-रथ पर आरूढ़, लौहमय चक्र-धारा से युक्त, इधर-उधर दौड़नेवाले और प्रबल शत्रु-हन्ता हैं। उन्हें देखकर गोतम ऋषि ने जिस स्तोत्र का उच्चारण किया था, वह यही स्तुति है।

६. मरुद्गण, तुम लोगों में से प्रत्येक को योग्य स्तुति स्तव करती है। ऋषियों की वाणी ने इस समय, अनायास, इन ऋचाओं से तुम्हारी स्तुति की है; क्योंकि तुम लोगों ने हमारे हाथ पर बहु-विध अन्न स्थापित किया है।

८९ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। छन्द जगती, विराट् त्रिष्टुप् आदि)

१. कल्याणवाही, अहिंसित, अप्रतिरुद्ध और शत्रु-नाशक समस्त यज्ञ चारों ओर से हमें प्राप्त हों या हमारे पास आवें। जो हमें न छोड़कर प्रतिदिन हमारी रक्षा करते हैं वे ही देवता सदा हमें परिवर्द्धित करें।

२. यजमान-प्रिय देवता लोग कल्याण-वाहक अनुग्रह हमारे सामने ले आवें और उनका दान भी हमारे सामने आवे। हम उन देवों का अनुग्रह प्राप्त करें और वे हमारी आयु बढ़ावें।

३. उन देवों को पूर्व के वेदात्मक वाक्य-द्वारा हम बुलाते हैं। भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अस्त्रिध या मरुद्गण, अर्यमा, वरुण, सोम और अश्विद्वय को बुलाते हैं। सौभाग्यशालिनी सरस्वती हमारे सुख का सम्पादन करे।

४. हमारे पास वायुदेव कल्याण-वाहक भेषज ले आवें; माता मेदिनी और पिता द्युलोक भी ले आवें। सोम चुआनेवाले और सुख-कर प्रस्तर भी उस औषध को ले आवें। ध्यान करने योग्य अश्विनी-कुमारद्वय, तुम लोग हमारी याचना सुनो।

५. उस ऐश्वर्यशाली, स्थावर और जंगम के अधिपति और यज्ञतोष इन्द्र को, अपनी रक्षा के लिए, हम बुलाते हैं। जैसे पूषा हमारे धन की वृद्धि के लिए रक्षण-शील हैं, वैसे ही अहिंसित पूषा हमारे मंगल के लिए रक्षक हों।

६. अपरिमेय-स्तुति-पात्र इन्द्र और सर्वज्ञ पूषा हमें मंगल दें। तृक्ष के पुत्र अरिष्टनेमि (कश्यप) या अहिंसित रथनेमियुक्त गरुड़ तथा बृहस्पति हमें मंगल प्रदान करें।

७. श्वेतबिन्दु-चिह्नित अश्ववाले, पृश्नि (पृथिवी या गौ) के पुत्र, शोभन-गति-शाली, यज्ञगामी, अग्नि-जिह्वा पर अवस्थित, बुद्धि-

शाली और सूर्य के समान प्रकाशशाली मरुत् देव हमारी रक्षा के लिए यहाँ आवें।

८. देवगण, हम कानों से मंगल-प्रद वाक्य सुनें, यजनीय देवगण, हम आँखों से मंगलवाहक वस्तु देखें, हम दृढ़ाङ्ग शरीर से सम्पन्न होकर तुम्हारी स्तुति करके प्रजापति-द्वारा निर्दिष्ट आयु प्राप्त करें।

९. देवगण, मनुष्यों के लिए (आप लोगों के द्वारा) १०० वर्ष की आयु ही कल्पित है। इसी बीच तुम लोग शरीर में बुढ़ापा उत्पन्न करते हो और इसी बीच पुत्र लोग पिता हो जाते हैं। उस निर्दिष्ट आयु के बीच हमें विनष्ट नहीं करना।

१०. अदिति (अदीना वा अखण्डनीया पृथिवी या देवमाता) आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता और समस्त देव हैं। अदिति पंचजन है और अदिति जन्म और जन्म का कारण है।

९० सूक्त

(देवता बहुदेवता। छन्द गायत्री)

१. वरुण (निशाभिमानी देव) और मित्र (दिवाभिमानी देव) उत्तम मार्ग पर अकुटिल गति से हमें ले जायँ तथा देवों के साथ समान प्रेम से युक्त अर्यमा भी हमें ले जायँ।

२. वे धन देते हैं। वे मूढ़ता-शून्य होकर अपने तेज-द्वारा सदा अपने कार्य की रक्षा करते हैं।

३. वे अमरगण हमारे शत्रुओं का विनाश करके हम मर्त्यों को सुखप्रदान करें।

४. वन्दनीय इन्द्र, मरुद्गण, पूषा और भग देवगण उत्तम धन-लाभ के लिए हमें पथ दिखावें।

५. पूषन्, विष्णु और मरुद्गण, हमारा यज्ञ गो-प्रधान करो और हमें विनाश-शून्य बनाओ।

६. यजमान के लिए समस्त वायु और नदियाँ मधु (या कर्मफल) वर्षण करें। सारी ओषधियाँ भी माधुर्य-युक्त हों।

७. हमारी रात्रि और उषा मधुर या मधुर-फल-दाता हों। पृथ्वी की रज उत्तम फलदायक हो। सबका रक्षक आकाश भी सुखदायक हो।

८. हमारे लिए समस्त वनस्पतियाँ सुखदायक हों। सूर्य सुखदायक हों। सारी गायें सुखदायक हों।

९. मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विस्तीर्ण-पाद-क्षेपी विष्णु हमारे लिए सुखकर हों।

९१ सूक्त

(देवता सोम। छन्द गायत्री, उष्णिक् और त्रिष्टुप्)

१. सोमदेव! अपनी बुद्धि से हम तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं। तुम हमें सरल मार्ग से ले जाना। इन्द्र अर्थात् हे सोम, तुम्हारे द्वारा लाये जाकर हमारे पितरों ने देवों के बीच रत्न प्राप्त किया था।

२. सोम, अपने यज्ञ के द्वारा शोभन यज्ञ से संयुक्त और अपने बल-द्वारा शोभन बल से युक्त हो। तुम सर्वज्ञ हो। तुम अभीष्ट फल के वर्षण से वर्षणकारी हो; और तुम महिमा में महान् यजमान के अभिमत फल का प्रदर्शन करके, यजमान के द्वारा दिये गये अन्न से तुम बहुल अन्न से सम्पन्न हो।

३. सोम (चन्द्र), वरुण राजा के सारे कार्य तुम्हारे ही हैं। तुम्हारा तेज विस्तीर्ण और गम्भीर है। प्रिय बन्धु के समान तुम सबके संस्कारक हो। अर्यमा की तरह तुम सबके वर्द्धक हो।

४. सोम, द्युलोक, पृथिवी, पर्वत, ओषधि और जल में तुम्हारा जो तेज है, उसी तेज से युक्त होकर सुमना और क्रोध-रहित राजन्, हमारा हव्य ग्रहण करो।

५. सोम, तुम सत्कर्म में वर्त्तमान ब्राह्मण के अधिपति हो। तुम राजा हो। तुम शोभन यज्ञ हो।

६. स्तुति-प्रिय और सारी ओषधियों के पालक सोम, यदि तुम हमारे जीवनौषध की अभिलाषा करो, तो हम मृत्युरहित हो जायें।

७. सोम, तुम वृद्ध और तरुण याजक को, उसके जीवन के उपयोग योग्य धन देते हो।

८. हे राजा सोम, हमें दुःख देने के अभिलाषी लोगों से बचाओ। तुम्हारे जैसे का मित्र कभी विनष्ट नहीं होता।

९. सोम, तुम्हारे पास यजमानों के लिए सुखकर रक्षण हैं, उनके द्वारा हमारी रक्षा करो।

१०. सोम, तुम हमारा यह यज्ञ और स्तुति ग्रहण करके आओ और हमें वर्द्धित करो।

११. सोम, हम लोग स्तुति-ज्ञाता हैं; स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं। सुखद होकर तुम आओ।

१२. सोम, तुम हमारे धन-वर्द्धक, रोग-हन्ता, धन-दाता, सम्पद्वर्द्धक और सुमित्र-युक्त होओ।

१३. सोम, जैसे गाय सुन्दर तृण से तृप्त होती है, जैसे मनुष्य अपने घर में तृप्त होता है उसी प्रकार तुम भी हमारे हृदय में तृप्त होकर अवस्थान करो।

१४. सोमदेव, जो मनुष्य बन्धुता के कारण तुम्हारी स्तुति करता है, हे अतीत-ज्ञाता और निपुण सोम, तुम उस पर अनुग्रह करते हो।

१५. सोम, हमें अभिशाप या निन्दन से बचाओ। पाप से बचाओ हमें सुख देकर हमारे हितैषी बनो।

१६. सोम, तुम वर्द्धित हो, तुम्हारी शक्ति चारों ओर से तुम्हें प्राप्त हो। तुम हमारे अन्नदाता बनो।

१७. अतीव मद से युक्त सोम, सारे लतावयवों द्वारा वर्द्धित हो। शोभन अन्न से युक्त होकर तुम हमारे सखा बनो।

१८. सोम, तुम शत्रु-नाशक हो। तुममें रस, यज्ञान्न और वीर्य संयुक्त हों। तुम वर्द्धित होकर हमारे अमरत्व के लिए स्वर्ग में उत्कृष्ट अन्न धारण करो।

१९. यजमान लोग हव्य-द्वारा जो तुम्हारे तेज की पूजा करते हैं, वह समस्त तेज हमारे यज्ञ को व्याप्त करे। धनवर्द्धक, पाप-त्राता, वीर पुरुषों से युक्त और पुत्र-रक्षक सोम, तुम हमारे घर में आओ।

२०. जो सोमदेव को हव्य देता है, उसे सोम गौ और शीघ्रगामी अश्व देते हैं; और, उसे लौकिक-कार्य-दक्ष, गृहकार्य-परायण, यज्ञानुष्ठानतत्पर माता-द्वारा आदृत और पिता का नाम उज्ज्वल करनेवाला पुत्र प्रदान करते हैं।

२१. सोम, तुम युद्ध में अजय हो, सेना के बीच विजयी हो, स्वर्ग के प्रापयिता हो। तुम वृष्टि-दाता, बल-रक्षक, यज्ञ में अवस्थाता, सुन्दर निवास और यश से युक्त और जयशील हो। तुम्हें लक्ष्य कर हम प्रफुल्ल हों।

२२. सोम, तुमने सारी ओषधियाँ, वृष्टि, जल और सारी गायें बनाई हैं। तुमने इस व्यापक अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है और ज्योति-द्वारा उसका अन्धकार विनष्ट किया है।

२३. बलशाली सोम, अपनी कान्तिमय बुद्धि-द्वारा हमें धन का अंश प्रदान करो। कोई शत्रु तुम्हारी हिंसा न करे। लड़ाई करनेवाले दोनों पक्षों में तुम्हीं बलशाली हो। लड़ाई में हमें दुष्टता से बचाओ।

९२ सूक्त

(देवता उषा और अश्विद्वय। छन्द जगती, उष्णिक् और त्रिष्टुप्)

१. उषा देवताओं ने आलोक-द्वारा प्रकाश किया है और वे अन्तरिक्ष की पूर्व दिशा में प्रकाश करते हैं। जैसे अपने सारे शस्त्रों को योद्धा लोग परिमार्जित करते हैं, वैसे ही अपनी दीप्ति के द्वारा संसार का संस्कार

करके गमनशीला, दीप्तिमती और मातायें (उषा) प्रतिदिन गमन करती हैं।

२. अरुण भानु-रश्मियाँ (उषायें) उदित हुईं; अनन्तर रथ में जोतने योग्य शुभ्रवर्ण रश्मियों को उषाओं ने रथ में लगाया एवं पूर्व की तरह सारे प्राणियों को ज्ञान-युक्त बनाया। इसके पश्चात् दीप्तिमती उषाओं ने श्वेतवर्ण सूर्य को आश्रित किया।

३. नेतृ-स्थानीया उषायें उज्ज्वल अस्त्रधारी योद्धाओं की तरह हैं और उद्योग-द्वारा ही दूर देशों तक को अपने तेज से व्याप्त करती हैं। वे शोभन-कर्म-कर्त्ता, सोमदाता और दक्षिणा-दाता यजमान को सारा अन्न देती हैं।

४. नर्त्तकी की तरह उषायें अपने रूप को प्रकाशित करती हैं; और जैसे दोहन-काल में गायें अपना अधस्तन भाग प्रकट करती हैं, उसी प्रकार उषायें भी अपना वक्ष प्रकट करती हैं। जैसे गायें गोष्ठ में शीघ्र जाती हैं, उसी प्रकार उषाओं ने भी पूर्व दिशा में जाकर समस्त भुवनों को प्रकाश करके अन्धकार को विमुक्त किया।

५. पहले उषा का उज्ज्वल तेज पूर्व दिशा में दिखाई देता है, अनन्तर सारी दिशाओं में व्याप्त होता और अन्धकार को दूर करता है। जैसे पुरोहित यज्ञ में आज्य-द्वारा यूप-काष्ठ को प्रकट करता है, उसी प्रकार उषायें अपना रूप प्रकट करती हैं। स्वर्ग-पुत्री उषायें दीप्तिमान् सूर्य की सेवा करती हैं।

६. हम रात्रि के अन्धकार को पार कर चुके हैं। उषाओं ने सारे प्राणियों के ज्ञान को प्रकाशित किया है। प्रकाशमयी उषायें प्रीति प्राप्त करने के लिए अपनी दीप्ति के द्वारा मानो हँस रही हैं। आलोक-विलसिताङ्गी उषाओं ने हमारे सुख के लिए अन्धकार का विनाश किया है।

७. दीप्तिमती और सत्य बचनों की उत्पादयित्री आकाश-पुत्री (उषा) की गोतमवंशीय लोग स्तुति करते हैं। उषे, तुम हमें पुत्र-पौत्र, दास-परिजन, अश्व और गौ से युक्त अन्न दो।

८. हे उषे, हम यश, वीर (सहायक), दास और अश्व से संयुक्त धन प्राप्त करें। सुभगे, तुम सुन्दर यज्ञ में स्तोत्र-द्वारा प्रीत होकर, हमें अन्न देकर, वही यथेष्ट धन प्रकट करो।

९. उज्ज्वल उषायें सारे भुवनों को प्रकाशित करके, आलोक-द्वारा, पश्चिम दिशा में विस्तृत होकर, दीप्तिमती हो रही हैं। उषायें सारे जीवों को अपने-अपने कार्यों में लगाने के लिए जगा देती हैं। उषायें बुद्धिमान् लोगों की बातें सुनती हैं।

१०. जैसे व्याध-स्त्री उड़ती चिड़िया का पक्ष काटकर हिंसा करती है, उसी प्रकार पुनः पुनः आविर्भूत, नित्य और एक-रूप-धारिणी उषायें देवी अनुदिन सारे प्राणियों के जीवन का ह्रास करती हैं।

११. आकाश को, अन्धकार से हटाकर, सबके पास उषायें जीवों-द्वारा विदित होती हैं। उषायें गमनकारिणी अथवा भगिनी रात्रि को अन्तर्हित करती हैं। प्रणयी (सूर्य) की स्त्री उषायें अनुदिन मनुष्यों की आयु का ह्रास करके, विशेष रूप से, प्रकाशित होती हैं।

१२. जैसे पशु-पालक पशुओं को चराता है, वैसे ही सुभगा और पूजनीया उषायें अपना तेज विस्तृत करती हैं और नदी की तरह विशाल उषायें सारे जगत् को व्याप्त करती हैं। उषायें देवों के यज्ञ का अनुष्ठान कराकर, सूर्य-रश्मि के साथ, दृष्ट होती हैं।

१३. अन्नयुक्त उषे, हमें विचित्र धन प्रदान करो, जिसके द्वारा हम पुत्रों और पौत्रों का पालन कर सकें।

१४. गौ, अश्व और सत्य वचन से युक्त तथा दीप्तिमती उषे, आज यहाँ हमारा धनयुक्त यज्ञ जैसे हो, वैसे प्रकाशित हो।

१५. अन्नयुक्त उषे, आज अरुण-वर्ण घोड़े या गौ योजित करो और हमारे लिए सारा सौभाग्य लाओ।

१६. शत्रु-मर्दक अश्विनीकुमारो, हमारे घर को गौ और रमणीय धन से युक्त करने के लिए समान-मनोयोगी होकर अपने रथ को हमारे घर की ओर ले चलो।

१७. अश्विद्वय, तुम लोगों ने आकाश से प्रशंसनीय ज्योति प्रेरित की है। तुम हमारे लिए शक्तिशाली अन्न ले आओ।

१८. प्रकाशमान, आरोग्य-प्रद, सुवर्ण-रथ-युक्त एवं शत्रु-विजयी अश्विनीकुमारों को, सोमपान कराने के लिए, उषाकाल में उनके घोड़े जागकर यहाँ ले आयें।

९३ सूक्त

(देवता अग्नि और सोम। छन्द अनुष्टुप्, गायत्री, जगती और त्रिष्टुप्)

१. अभीष्टवर्षी अग्नि और सोम, मेरे इस आह्वान को सुनो, स्तुति ग्रहण करो और हव्य-दाता को सुख प्रदान करो।

२. अग्नि और सोम, जो तुम्हें स्तुति समर्पण करता है, उसे बलवान् गौ और सुन्दर अश्व दान करो।

३. अग्नि और सोम, जो तुम लोगों को आहुति और हव्य प्रदान करता है, वह पुत्र-पौत्रादि के साथ सारी वीर्यशाली आयु प्राप्त हो।

४. अग्नि और सोम, तुमने जिस वीर्य के द्वारा पणि के पास से गो-रूप अन्न, अपहृत किया था, जिस वीर्य के द्वारा बृसय के पुत्र (वृत्र) का वध करके, सबके उपकार के लिए, एकमात्र ज्योतिःपूर्ण सूर्य को प्राप्त किया था, वह सब हमें विदित है।

५. अग्नि और सोम, समान-कर्म-सम्पन्न होकर, आकाश में, तुमने इन उज्ज्वल नक्षत्र आदि को धारण किया है, तुमने दोषाक्रान्त नदियों को प्रकाशित दोष से मुक्त किया है या संशोधित किया है।

६. अग्नि और सोम, तुममें से अग्नि को मातरिश्वा (वायु) आकाश से लाये हैं और सोम को अद्रि (पर्वत) के ऊपर से श्येन

पक्षी (बाज) बल-पूर्वक लाया है। स्तोत्रों के द्वारा वर्द्धित होकर, यज्ञ के लिए, तुम लोगों ने भूमि विस्तीर्ण की है।

७. अग्नि और सोम, प्रदत्त अन्न भक्षण करो; हमारे ऊपर अनुग्रह करो। अभीष्टवर्षी, हमारी सेवा ग्रहण करो। हमारे लिए सुख-प्रद और रक्षण-युक्त बनो एवं यजमान का रोग और भय हटाओ।

८. अग्नि और सोम, जो यजमान देवता-परायण चित्त से हव्य-द्वारा अग्नि और सोम की पूजा करता है, उसके व्रत की रक्षा करो। उसे पाप से बचाओ तथा उस यज्ञ-रत व्यक्ति को प्रभूत सुख दो।

९. अग्नि और सोम, तुम सारे देवों में प्रशंसनीय, समान-धन-युक्त और एकत्र आह्वान-योग्य हो। तुम हमारी स्तुति सुनो।

१०. अग्नि और सोम, जो तुम्हें घृत प्रदान करता है, उसे प्रभूत धन दो।

११. अग्नि और सोम, हमारा यह हव्य ग्रहण करो और एकत्र आगमन करो।

१२. अग्नि और सोम, हमारे अश्वों की रक्षा करो। हमारी क्षीर आदि हव्य की उत्पादिका गायें वर्द्धित हों। हम धनशाली हों; हमें बल प्रदान करो। हमारा यज्ञ धन-युक्त हो।

९४ सूक्त

(१५ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से ९८ सूक्त तक के ऋषि अङ्गिरा के पुत्र कुत्स। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. हम पूजनीय और सर्व-भूतज्ञ अग्नि की रथ की तरह, बुद्धि-द्वारा, इस स्तुति को प्रस्तुत करते हैं। अग्नि की अर्चना से हमारी बुद्धि उत्कृष्ट होती है। हे अग्नि, तुम्हारे हमारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

२. अग्नि, जिसके लिए तुम यज्ञ करते हो, उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है और वह उत्पीड़ित न होकर निवास करता, महाशक्ति

धारण करता और वर्द्धित होता है। उसे कभी दरिद्रता नहीं मिलती। हे अग्नि, तुम्हारे हमारे बन्धु होने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

३. अग्नि, हम तुम्हें अच्छी तरह प्रज्वलित कर सकें। तुम हमारा यज्ञ साधन करो; क्योंकि तुममें फेंका हुआ हव्य देवता लोग खाते हैं। तुम आदित्यों को ले आओ। उन्हें हम चाहते हैं। अग्नि, तुम्हारे मित्र होने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

४. अग्नि, हम इन्धन इकट्ठा करते हैं। तुम्हें ज्ञात कराकर हव्य देते हैं। हमारी आयुर्वृद्धि के लिए तुम यज्ञ सम्पन्न करो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

५. उन (अग्नि) की किरणें प्राणियों की रक्षा करती हुई विचरण करती हैं। द्विपद और चतुष्पद जन्तु उन (अग्नि) की किरणों में विचरण करते हैं। तुम विचित्र दीप्ति से युक्त और सारी वस्तुएँ प्रदर्शित करते हो। तुम उषा से भी महान् हो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

६. अग्नि, तुम अध्वर्यु, मुख्य होता, प्रशास्ता, पोता और जन्म से ही पुरोहित हो। ऋत्विक् के सारे कार्यों से तुम अवगत हो। इसलिए तुम यज्ञ सम्पूर्ण करो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

७. अग्नि, तुम सुन्दर हो, तो भी सबके समान हो। तुम दूर-स्थित हो, तो भी पास ही दीप्यमान हो। अग्निदेव, तुम रात के अन्धकार को मर्दन करके प्रकाशित होते हो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

८. अग्नि के अङ्गभूत देव, सोम का अभिषव करनेवाले यजमान का रथ सबसे आगे करो। हमारा अभिशाप शत्रुओं को परास्त करे। हमारी यह स्तुति समझो और हमें प्रवृद्ध करो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

९. सांघातिक अस्त्र-द्वारा तुम दुष्टों और बुद्धि-विहीनों का विनाश

करो। दूरवर्ती और निकटस्थ शत्रुओं का विनाश करो। अनन्तर अपने स्तुति-कर्त्ता यजमान के लिए सुगम मार्ग कर दो। अग्नि, तुम्हारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

१०. अग्नि, जिस समय तुम दीप्यमान, लोहितवर्ण और वायुगति दोनों घोड़ों को रथ में संयुक्त करते हो, उस समय तुम वृषभ की तरह शब्द करते हो और वन के सारे वृक्षों को धूमरूप केतु (पताका) द्वारा व्याप्त करते हो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु होने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

११. तुम्हारे शब्द सुनकर चिड़ियाँ भी उड़ती हैं। जिस समय तुम्हारी शिखायें तिनके जलाकर चारों दिशाओं में विस्तृत होती हैं, उस समय सारा वन तुम्हारे और तुम्हारे रथ के लिए सुगम हो जाता है। अग्नि, तुम्हारे मित्र होने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

१२. इस स्तोता को मित्र और वरुण धारण करें। अन्तरिक्षचारी मरुतों को क्रोध अत्यधिक होता है। हमें सुखी करो और इन महान् मरुतों का मन प्रसन्न हो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

१३. द्युतिमान् अग्नि, तुम सारे देवों के परम बन्धु हो। तुम सुशोभन और यज्ञ के सारे धनों के निवास-स्थान हो। तुम्हारे विस्तृत यज्ञ-गृह में हम अवस्थान करें। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

१४. अपने स्थान पर प्रज्वलित सोमरस-द्वारा आहूत होकर जिस समय तुम पूजित होते हो, उस समय तुम सुखकर उपभोग करते हो। तुम हमारे लिए सुखकर होकर हव्यदाता को रमणीय फल और धन दान करो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

१५. शोभन धन से युक्त और अखण्डनीय अग्नि, सब यज्ञों में वर्त्तमान जिस यजमान को तुम पाप से उद्धार करते और कल्याणवाही बल प्रदान करते हो, वह समृद्ध होता है। हम भी तुम्हारे स्तोता हैं। हम भी पुत्र-पौत्रादि के साथ तुम्हारे धन से सम्पन्न हों।

१६. अग्निदेव, तुम सौभाग्य जानते हो। इस कार्य में तुम हमारी आयु बढ़ाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और आकाश हमारी उस आयु की रक्षा करें।

षष्ठ अध्याय समाप्त।

९५ सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. विभिन्न रूपों से संयुक्त दोनों समय (दिन और रात), शोभन प्रयोजन के कारण, विचरण करते हैं। दोनों, दोनों के वत्स की रक्षा करते हैं। एक (रात्रि) के पास से सूर्य अन्न प्राप्त करते और दूसरे (दिन) के पास से शोभन दीप्ति से युक्त होकर प्रकाशित होते हैं।

२. दसों अँगुलियाँ इकट्ठी होकर अनवरत काष्ठ-घर्षण करके वायु के गर्भ-स्वरूप और सब भूतों में वर्त्तमान अग्नि को उत्पन्न करती हैं। यह अग्नि तीक्ष्ण-तेजा, यशस्वी और सारे लोक में दीप्यमान हैं। इन अग्नि को सारे स्थानों में ले जाया जाता है।

३. इन अग्नि के तीन जन्म-स्थान हैं—(१) समुद्र, (२) आकाश और (३) अन्तरिक्ष। अग्नि ने (सूर्य-रूप से) ऋतुओं का विभाग करके पृथिवी के सारे प्राणियों के हित के लिए पूर्व दिशा का यथाक्रम निष्पादन किया है अर्थात् सूर्य-काल (ऋतु) और दिक्—दोनों को बनाया है।

४. जल, वन आदि में अन्तर्हित अग्नि को तुममें से कौन जानता है? पुत्र होकर भी विद्युद्रूप अग्नि अपनी माताओं (जल-रूपिणी) को हव्य-द्वारा जन्म दान करते हैं। महान् मेधावी और हव्य-युक्त अग्नि अनेक जलों के गर्भ (सन्तान)-रूप हैं। सूर्य-रूप अग्नि समुद्र से निकलते हैं।

५. कुटिल (मेघ-जल के) पार्श्ववर्त्ती यशस्वी अग्नि ऊपर जलकर, शोभन दीप्ति के साथ, प्रकाशित होकर बढ़ते हैं। अग्नि के दीप्त या

त्वष्टा के साथ उत्पन्न होने पर उभय (काष्ठ) भीत होते और सिंह या सहनशील के सामने आकर उसकी सेवा करते हैं।

६. उभय (काष्ठ या दिवारात्रि) सुन्दरी स्त्री की तरह उन (अग्नि) की सेवा करते और बोलती हुई गौ की तरह, पास में रहकर, उनको वत्स की तरह पालित करते हैं। दक्षिण भाग में अवस्थित ऋत्विक् लोग हव्य-द्वारा जिस अग्नि का सेवन करते हैं, वह सब बलों के बीच बलाधिपति हुए हैं।

७. अग्नि, सूर्य की तरह, अपनी किरण-रूपिणी भुजाओं को बार-बार विस्तृत करते हैं तथा वही भयंकर अग्नि उभय (दिवारात्रि) को अलंकृत करके निज-कर्म साधित करते हैं। वे सारी वस्तुओं से दीप्त और साररूप रस ऊपर खींचते हैं। वे माताओं (जलों) के पास से आच्छादक अभिनव रस बनाते हैं।

८. जिस समय अग्नि अन्तरिक्ष में गमनशील जल द्वारा संयुक्त होकर दीप्त और उत्कृष्ट रूप धारण करते हैं, उस समय वह मेधावी और सर्वलोक-धारक अग्नि (सारे जलों के) मूलभूत (अन्तरिक्ष को) तेज द्वारा आच्छादित करते हैं। उज्ज्वल अग्नि द्वारा विस्तरित वह दीप्ति तेजःपुञ्ज हुई थी।

९. अग्नि, तुम महान् हो। सबको पराजित करनेवाला तुम्हारा दीप्यमान और विस्तीर्ण तेज अन्तरिक्ष को व्याप्त किये हुए है। अग्नि, हमारे द्वारा प्रज्वलित होकर अपने अहिंसित और पालन-क्षम तेज-द्वारा हमारा पालन करो।

१०. आकाशगामी जल-संघ को प्रवाहरूप में अभियुक्त करते और उसी निर्मल जल-संघ-द्वारा पृथिवी को व्याप्त कर डालते हैं। अग्नि जठर में अन्न को धारण करते और इसी लिए (वृष्टिजात) अभिनव शस्य के बीच में निवास करते हैं।

११. विशुद्धकारी अग्नि, काष्ठों-द्वारा वृद्धि प्राप्त कर हमें धन-युक्त अन्न देने के लिए दीप्तिमान् बनो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्न की पूजा करें।

९६ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. बल या काष्ठ-घर्षण-द्वारा उत्पन्न अग्नि तुरत ही, पुरातन की तरह, सत्य ही सारे मेधावियों का यज्ञ ग्रहण करते हैं। जल और शब्द उस विद्युद्रूप अग्नि को मित्र जानते हैं। देवों ने उन धन-दाता अग्नि को दूत-रूप से नियुक्त किया था।

२. अग्नि ने अयु या मनु के प्राचीन और स्तुति-गर्भ मंत्र से तुष्ट होकर मानवी प्रजा की सृष्टि की थी। उन्होंने आच्छादक तेज-द्वारा आकाश और अन्तरिक्ष को व्याप्त किया है। देवों ने उन धन-दाता अग्नि को दूत-रूप से नियुक्त किया था।

३. मनुष्यो, स्वामी अग्नि के पास जाकर उनकी स्तुति करो। वे देवों में मुख्य यज्ञ-साधक हैं। वे हव्य-द्वारा आहूत और स्तोत्र-द्वारा तुष्ट होते हैं। वे अन्न के पुत्र, प्रजा-पोषक और दानशील हैं। देवों ने उन धनद अग्नि को दूत नियुक्त किया था।

४. वे अन्तरिक्षस्थ अग्नि अनेक वरणीय पुष्टि प्रदान करते हैं। अग्नि स्वर्ग-दाता, सर्वलोक-रक्षक और द्यावा-पृथिवी के उत्पादक हैं। अग्नि हमारे पुत्र को अनुष्ठान-मार्ग दिखा दें। देवों ने उन धन-प्रदाता अग्नि को दूत बनाया था।

५. दिवारात्रि परस्पर रूपों का बार-बार परस्पर विनाश करके भी ऐक्य भाव से एक ही शिशु (अग्नि) को पुष्ट करते हैं। वे दीप्तिमान् अग्नि आकाश और पृथिवी में प्रभा विकसित करते हैं। देवों ने उन धनद अग्नि को दूत नियुक्त किया था।

६. अग्नि धन-मूल, निवास-हेतु, अर्थ-दाता, यज्ञ-केतु और उपासक की अभिलाषा के सिद्धि-कर्त्ता हैं। अमर देवों ने उन धन-दाता अग्नि को दूत बनाया था।

७. पहले और इस समय अग्नि सारे धनों का आवास-स्थान हैं। जो कुछ उत्पन्न हुआ है या होगा, उसके निवास-स्थान हैं। जो कुछ

है और भविष्यत् में जो अनेकानेक पदार्थ उत्पन्न होंगे, उनके रक्षक हैं। देवों ने उन धनद अग्नि को दूत-रूप से नियुक्त किया है।

८. धनदाता अग्नि जंगम धन का भाग हमें दान करें। धनद अग्नि स्थावर धन का अंश हमें दें। धनद अग्नि हमें वीरों से युक्त अन्न दान करें। धनद अग्नि हमें दीर्घ आयु दान करें।

९. विशुद्ध कर्त्ता अग्नि, इस प्रकार काष्ठों से वृद्धि प्राप्त कर तुम हमें धन-युक्त अन्न देने के लिए प्रभा प्रकाशित करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्न की पूजा करें।

९७ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द गायत्री)

१. अग्नि, हमारे पाप नष्ट हों। हमारा धन प्रकाश करो। हमारे पाप नष्ट हों।

२. शोभनीय क्षेत्र, शोभन मार्ग और धन के लिए तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे पाप विनष्ट हों।

३. इन स्तोताओं में जैसे कुत्स उत्कृष्ट स्तोता हैं, उसी तरह हमारे स्तोता भी उत्कृष्ट हैं। हमारे पाप नष्ट हों।

४. अग्नि, तुम्हारे स्तोता पुत्र-पौत्रादि प्राप्त करते हैं; इसलिए हम भी तुम्हारी स्तुति करके पुत्र-पौत्रादि लाभ करेंगे। हमारे पाप नष्ट हों।

५. शत्रु-विजयी अग्नि की दीप्तियाँ सर्वत्र जाती हैं; इसलिए हमारे पाप नष्ट हों।

६. अग्नि, तुम्हारा मुख (शिखा) चारों ओर है। तुम हमारे रक्षक बनो। हमारे पाप नष्ट हों।

७. सर्वतोमुख अग्नि, जैसे नौका से नदी को पार किया जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओं से हमें पार करा दो। हमारे पाप नष्ट हों।

८. नदी-पार की तरह हमारे कल्याण के लिए तुम हमें शत्रु से पार कराकर हमें पालन करो। हमारे पाप नष्ट हों।

९८ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. हम वैश्वानर अग्नि के अनुग्रह में रहें। वे सारे भुवनों-द्वारा पूजनीय राजा हैं। इन दो काष्ठों से उत्पन्न होकर ही वैश्वानर ने संसार को देखा और सूर्य के साथ एकत्र गमन किया।

२. सूर्य-रूप से आकाश में और गार्हपत्यादि-रूप से पृथिवी में अग्नि वर्त्तमान हैं। अग्नि ने सारे शस्यों में रहकर, उन्हें पकाने के लिए, उनमें प्रवेश किया है। वे ही बलशाली वैश्वानर अग्नि दिन और रात्रि में हमें शत्रु से बचावें।

३. वैश्वानर, तुम्हारे सम्बन्ध में यह यज्ञ सफल हो। हमें बहुमूल्य धन प्राप्त हों। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस धन की पूजा करें।

९९ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द आर्ष-त्रिष्टुप्)

१. हम सर्वभूतज्ञ अग्नि को उद्देश्य कर सोम का अभिषव करते हैं। जो हमारे प्रति शत्रु की तरह आचरण करते हैं, उनका धन अग्नि दहन करें। जैसे नौका से नदी पार की जाती है, उसी तरह वे हमें सारे दुःखों से पार करा दें। अग्नि हमें पापों से पार करा दें।

१०० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि ऋजाश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान सुराधा नामक वृषागिर के पुत्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. जो इन्द्र अभीष्टवर्षी, वीर्यशाली, दिव्य लोक और पृथिवी के सम्राट् और वृष्टि-दाता तथा रणक्षेत्र में आह्वान के योग्य हैं, वे मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में तत्पर हों।

२. सूर्य की तरह जिनकी गति, दूसरे के लिए, अप्राप्य है, जो संग्राम में शत्रु-हन्ता और रिपु-शोषक हैं और जो, अपने गमनशील

सखा मरुतों के साथ, यथेष्ट परिमाण में अभीष्ट द्रव्य दान करते हैं, वे इन्द्र, मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में तत्पर हों।

३. सूर्य-किरणों की तरह जिनकी सतेज और दुष्प्रापणीय किरणें वृष्टि-जल का दोहन करके चारों ओर फैल जाती हैं, वे ही शत्रु-पराजयी और अपने पौरुष से लब्ध-विजय इन्द्र, मरुतों के साथ हमारी रक्षा में तत्पर हों।

४. वे गमनशील लोगों में अत्यन्त शीघ्रगामी, अभीष्ट-दाताओं में प्रधान अभीष्ट-दाता और मित्रों में उत्तम मित्र होकर पूजनीयों में विशेष पूजा-पात्र और स्तुति-पात्रों में श्रेष्ठ हुए हैं। वे मरुतों के साथ हमारे रक्षण में तत्पर हों।

५. इन्द्र, रुद्र-पुत्र मरुतों की सहायता से, बलशाली होकर, मनुष्यों के संग्राम में शत्रुओं को परास्त करके तथा अपने सहवासी मरुतों की अन्नोत्पादक वृष्टि भेजकर, मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में तत्पर बनो।

६. शत्रु-हन्ता, संग्राम-कर्त्ता, सल्लोकाधिपति और बहुत लोकों-द्वारा आहूत इन्द्र हम ऋषियों को आज सूर्य का आलोक या प्रकाश भोग करने दें (और शत्रुओं को अन्धकार दें) और वे मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में परायण हों।

७. सहायक मरुत् संग्राम में इन्द्र को, शब्द-द्वारा, उत्तेजित करते हैं। मनुष्य इन्द्र को धन-रक्षक बनावें। इन्द्र सर्वफल-दायी कर्मों के ईश्वर हैं। वे मरुतों के साथ, हमारे रक्षण-परायण हों।

८. लड़ाई के मैदान में, रक्षा और धन की प्राप्ति के लिए, नेता लोग इन्द्र की शरण ग्रहण करते हैं; क्योंकि, इन्द्र वृष्टि-प्रतिबन्धक अन्धकार में आलोक प्रदान करते अथवा संग्राम में विजय देते हैं। इन्द्र, मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में परायण हों।

९. इन्द्र वाम हस्त द्वारा हिंसकों को निवारण करते और दक्षिण हस्त-द्वारा यजमान का हव्य ग्रहण करते हैं। वे स्तोत्र-द्वारा स्तुत

होकर धन प्रदान करते हैं। इन्द्र, मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में तत्पर हों।

१०. वे अपने सहायक मरुतों के साथ धन दान करते हैं। आज इन्द्र, अपने रथ-द्वारा, सारे मनुष्यों से परिचित हो रहे हैं। इन्द्र ने अपने पराक्रम से, दुष्ट शत्रुओं को अभिभूत किया है। वे मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में तत्पर हों।

११. अनेक लोगों-द्वारा आहूत होकर बन्धुओं के संग मिलकर या जो बन्धु नहीं हैं, उनको साथ लेकर समर-क्षेत्र में इन्द्र जाते हैं तथा उन शरणागत पुरुषों और उनके पुत्र-पौत्रों का जय-साधन करते हैं। वे मरुतों के साथ हमारी रक्षा में तत्पर हों।

१२. इन्द्र वज्र-धारी, दस्यु-हन्ता, भीम, उग्र, सहस्र-ज्ञान-युक्त, बहु-स्तुति-भाजन और महान् हैं। इन्द्र, सोम-रस की तरह, बल-द्वारा पञ्च श्रेणी (चार वर्ण और पञ्चम वर्ण निषाद) के रक्षक हैं। वे मरुतों के साथ हमारे रक्षण-परायण हों।

१३. इन्द्र का वज्र शत्रुओं को रुलाता है। इन्द्र शोभन जल-दान करते हैं। वे सूर्य की तरह दीप्तिमान् हैं। वे गरजते हैं। वे सामयिक कर्म में रत रहते हैं। धन और धन-दान इन्द्र की सेवा करते हैं। मरुतों के साथ वे हमारी रक्षा में तत्पर हों।

१४. सारे बलों का उपमानभूत जिनका बल उभय (पृथिवी और अन्तरिक्ष) लोकों का सदा, चारों ओर से, पालन करता है, वे हमारे यज्ञ से परितुष्ट होकर हमारे पापों से हमें पार करा दें। वे मरुतों के साथ हमारी रक्षा में तत्पर हों।

१५. देव, मनुष्य या जल-समूह जिन देव (इन्द्र) के बल का अन्त नहीं पाते, वे अपने बल-द्वारा पृथिवी और आकाश से भी अधिक हो गये हैं। वे मरुतों के साथ, हमारी रक्षा में परायण हों।

१६. दीर्घावयव, अलङ्कारधारी, आकाशवासी और रोहितवर्ण एवं श्यामवर्ण दोनों इन्द्र के घोड़े, ऋज्राश्व नामक राजर्षि को धन

देने के लिए, अभीष्टदाता इन्द्र से युक्त, रथ का सम्मुख भाग धारण करके प्रसन्न-वदन मनुष्य-सेना-द्वारा परिचित होते हैं।

१७. अभीष्ट-दाता इन्द्र, वृषागिर के पुत्र ऋजाश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा तुम्हारी प्रीति के लिए तुम्हारा यह स्तोत्र उच्चारण करते हैं।

१८. इन्द्र ने, अनेक लोगों-द्वारा आहूत होकर और गतिशील मरुतों से युक्त होकर, पृथिवी-निवासी दस्युओं या शत्रुओं और शिम्युओं या राक्षसों को प्रहार करके, हननशील वज्र-द्वारा वध किया। अनन्तर श्वेतवर्ण मित्रों या अलंकार-द्वारा दीप्ताङ्ग मरुतों के साथ क्षेत्रों का भाग कर लिया। शोभन-वज्र-युक्त इन्द्र सूर्य एवं जल-समूह को प्राप्त हुए।

१९. सब कालों में वर्त्तमान इन्द्र हमारे पक्ष से बोलें। हम भी अकुटिलगति होकर अन्न भोग करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश उन्हें पूजें।

१०१ सूक्त

(देवता इन्द्र। यहाँ से ११५ सूक्त तक के ऋषि अङ्गिरा के पुत्र कुत्स। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. जिन इन्द्र ने ऋजिश्वा राजा के साथ कृष्ण नाम के असुर की गर्भवती स्त्रियों को निहत किया था, उन्हीं हृष्ट इन्द्र के उद्देश से, अन्न के साथ, स्तुति अर्पित करो। हम रक्षण पाने की इच्छा से उन अभीष्ट-दाता और दक्षिण हाथ में वज्र-धारी इन्द्र को, मरुतों के साथ, अपना सखा होने के लिए, आह्वान करते हैं।

२. प्रवृद्ध क्रोध के साथ जिन इन्द्र ने विगत-भुज वृत्र या व्यंस नामक असुर का वध किया था। जिन्होंने शम्बर और यज्ञ-रहित पिप्रु का वध किया था और जिन्होंने दुर्जन शुष्ण का समूल नाश किया था, उन्हीं इन्द्र को, मरुतों के साथ, अपना सखा होने के लिए, हम बुलाते हैं।

३. जिनके विपुल बल का द्यौ और पृथिवी अनुधावन करती हैं, जिनके नियम से वरुण और सूर्य चलते हैं और जिनके नियम के अनुसार नदियाँ प्रवाहित हैं, उन्हीं इन्द्र को, मरुतों के साथ, अपना सखा होने के लिए, हम बुलाते हैं।

४. जो अश्वों के अधिपति, गोपों के ईश, स्वतंत्र, स्तुति प्राप्त कर जो सारे कर्मों में स्थिर और अभिषव-शून्य दुर्द्धर्ष शत्रुओं के हन्ता हैं, उन्हीं इन्द्र को, मरुतों के साथ, अपना सखा होने के लिए, हम बुलाते हैं।

५. जो गतिशील और निश्वास-सम्पन्न जीवों के अधिपति हैं और जिन्होंने अङ्गिरा आदि ब्राह्मणों के लिए पणि-द्वारा अपहृत गौ का सर्व-प्रथम उद्धार किया था तथा जिन्होंने दस्युओं को निकृष्ट करके वध किया था, उन्हीं इन्द्र को, मरुतों के साथ, अपना बन्धु होने के लिए, हम बुलाते हैं।

६. जो शत्रुओं और भीरुओं के आह्वान योग्य हैं, जिन्हें समर से भागनेवाले और समर में विजयी, दोनों ही आह्वान करते हैं तथा जिन्हें सारे प्राणी, अपने-अपने कार्यों के सम्मुख, स्थापित करते हैं, उन्हीं इन्द्र को, मरुतों के साथ, सखा होने के लिए, हम बुलाते हैं।

७. सूर्य-रूप आलोकमय इन्द्र सारे प्राणियों के प्राण-स्वरूप रुद्र-पुत्र मरुतों को ग्रहण कर उदित होते हैं और उन्हीं रुद्र-पुत्र मरुतों-द्वारा वाक्य-वेग-युक्त होकर विस्तारित होते हैं। प्रख्यात इन्द्र को स्तुति-लक्षण वाक्य पूजित करते हैं। उन्हीं इन्द्र को, मरुतों के साथ, सखा होने के लिए, हम आह्वान करते हैं।

८. मरुत्संयुक्त इन्द्र, तुम उत्कृष्ट घर में ही हृष्ट हो अथवा सामान्य स्थान में ही हृष्ट हो हमारे यज्ञ में आगमन करो। सत्यधन इन्द्र, तुम्हारे लिए उत्सुक होकर हम हव्य प्रदान करते हैं।

९. शोभन बल से युक्त इन्द्र, हम तुम्हारे लिए उत्सुक होकर सोम का अभिषव करते हैं। तुम्हें स्तुति-द्वारा पाया जाता है।

हम, तुम्हारे उद्देश से, हव्य प्रदान करते हैं। अश्व-युक्त इन्द्र, मरुतों के साथ दलबद्ध होकर इस यज्ञ-कुश पर बैठकर हृष्ट बनो।

१०. इन्द्र, अपने घोड़ों के साथ प्रसन्न हो अपने दोनों शिप्र, हनु या जबड़े खोलो; सोमपान के लिए अपनी जिह्वा और उपजिह्वा खोलो। हे सुशिप्र वा सुनासिक इन्द्र, तुम्हें यहाँ घोड़े ले आवें। तुम हमारे प्रति तुष्ट होकर हमारा हव्य ग्रहण करो।

११. जिन इन्द्र का, मरुतों के साथ, स्तोत्र है, उन शत्रु-हन्ता इन्द्र-द्वारा रक्षित होकर तुम उनसे अन्न प्राप्त करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्न की पूजा करें।

१०२ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. तुम महान् हो। तुम्हारे उद्देश से मैं इस महती स्तुति को सम्पादन करता हूँ; क्योंकि तुम्हारा अनुग्रह मेरी स्तुति पर निर्भर करता है। ऋत्विकों ने सम्पत्ति और धन लाभ के लिए स्तुति बल-द्वारा उन शत्रु-विजयी इन्द्र को हृष्ट किया है।

२. सात नदियाँ इन्द्र की कीर्त्ति धारण करती हैं। आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष उनका दर्शनीय रूप धारण करते हैं। इन्द्र, सूर्य और चन्द्र हमारे सामने, प्रकाश देने और हमारा विश्वास उत्पन्न करने के लिए, बार-बार एक के बाद एक विचरण करते हैं।

३. इन्द्र, अपने अन्तःकरण से हम तुम्हारी बहुत स्तुति करते हैं। तुम्हारे जिस विजयी रथ को शत्रुओं के युद्ध में देखकर हम प्रसन्न होते हैं, हमारे धन-लाभ के लिए उसी रथ को प्रेरण करो। मघवन्, हम तुम्हारी कामना करते हैं। हमें सुख दो।

४. तुम्हें सहायक पाकर हम अवरोधक शत्रुओं को परास्त करेंगे। संग्राम में हमारे अंश की रक्षा करो। मघवन्, हम सरलता से धन पा सकें—ऐसा उपाय कर दो। शत्रुओं की शक्ति तोड़ दो।

५. धनाधिपति, ये जो अपनी रक्षा के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं और तुम्हें बुलाते हैं, वे नाना प्रकार के हैं। इनमें हमें ही, धन देने के लिए, रथ पर चढ़ो। इन्द्र, तुम्हारा मन व्याकुलता-रहित और जय-शील है।

६. तुम्हारी भुजायें, जय-द्वारा, गौ के लिए लाभकारी हैं या गौ को जय करनेवाली हैं। तुम्हारा ज्ञान असीम है। तुम श्रेष्ठ हो और पुरोहितों के कार्यों में सैकड़ों रक्षण-कार्य करते हो। इन्द्र युद्ध-कर्त्ता और स्वतंत्र हैं। वे सारे प्राणियों के बल के परिमाण-स्वरूप हैं। इसी लिए धन-लाभार्थी मनुष्य इन्द्र को विविध प्रकार से बुलाते हैं।

७. इन्द्र, तुम मनुष्य को जो अन्नदाता करते हो, वह शतसंख्यक धन से भी अधिक है अथवा उससे भी अधिक है वा सहस्रसंख्यक धन से भी अधिक है। तुम परिमाण-रहित हो। हमारे स्तुति-वचनों ने तुम्हें दीप्त किया है। पुरन्दर, तुमने शत्रुओं को हनन किया है।

८. नर-रक्षक इन्द्र, तुम तिगुनी हुई रस्सी की तरह सारे प्राणियों के बल के परिमाण-स्वरूप हो। तुम तीनों लोकों में तीन प्रकार (सूर्य, विद्युत् और अग्नि) के तेज हो। तुम इस संसार को चलाने में पूर्ण समर्थ हो; क्योंकि, इन्द्र, तुम बहुत समय से, जन्मावधि, शत्रु-शून्य हो।

९. तुम देवों में प्रथम हो। तुम संग्राम में शत्रु-जयी हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। वे इन्द्र हमारे युद्ध-योग्य, तेजस्वी और विभेद-कारी रथ को संग्राम में अन्य रथों के आगे कर दें।

१०. तुम जय प्राप्त करते हो और विजित धन को छिपाकर रखते नहीं। धनद इन्द्र, तुम उग्र हो। क्षुद्र और विशाल युद्ध में, रक्षा के लिए, स्तोत्र-द्वारा हम तुम्हें तीव्र करते हैं। इसलिए इन्द्र, हमें युद्ध के लिए आह्वान में उत्तेजित करो।

११. सदा वर्तमान इन्द्र हमारे पक्ष से बोलें। हम भी अकुटिल-गति होकर अन्न भोग करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश उन्हें पूजें।

१०३ सूक्त

(देवता इन्द्र । छन्द त्रिष्टुप्)

१. इन्द्र, पहले मेधावियों ने तुम्हारे इस प्रसिद्ध परम बल को साक्षात् धारण किया था। इन्द्र की अग्नि-रूप एक ज्योति पृथिवी पर और दूसरी सूर्य-रूप आकाश में है। युद्ध में दोनों पक्षों की ध्वजायें जैसे मिलती हैं, उसी तरह उक्त उभय ज्योतियाँ संयुक्त होती हैं।

२. इन्द्र ने पृथिवी को धारण और विस्तृत किया है। इन्द्र ने वज्र-द्वारा वृत्र का वधकर वृष्टि-जल बाहर किया है। अहि को मारा है। रौहिण नामक असुर का विदारण किया है। इन्द्र ने अपने कार्य-द्वारा विगत-भुज वृत्र का नाश किया है।

३. उन्होंने वज्र-स्वरूप अस्त्र लेकर वीर्य कार्य में उत्साह-पूर्ण होकर दस्युओं के नगरों का विनाश करके विचरण किया था। वज्रधर इन्द्र, हमारी स्तुति जानकर दस्युओं के प्रति अस्त्र निक्षेप करो। इन्द्र, आर्यों का बल और यश बढ़ाओ।

४. वज्रधर और अरिमर्दन इन्द्र, दस्युओं के विनाश के लिए निकलकर, यश के लिए, जो बल धारण किया था, कीर्त्तन-योग्य उस बल को धारण कर धनवान् इन्द्र, स्तोता यजमानों के लिए मनुष्यों के युगों का, सूर्य-रूप से, निष्पादन करते हैं।

५. इन्द्र के इस प्रवृद्ध और विस्तीर्ण वीर्य को देखो। उनकी शक्ति पर श्रद्धा करो। उन्होंने गौ और अश्व प्राप्त किया उन्होंने ओषधियों, जलों और वनों को प्राप्त किया।

६. प्रभूत-कर्मा, श्रेष्ठ, अभीष्टदाता और सत्य-बल इन्द्र को लक्ष्य कर हम सोम अभिषव करते हैं। जैसे पथ-निरोधक चोर पथिकों के पास से धन ले लेता है, वैसे ही वीर इन्द्र धन का आदर करके यज्ञ-हीन मनुष्यों के पास से उस धन का भाग-कर यज्ञ-परायण मनुष्यों के पास ले जाते हैं।

७. इन्द्र, तुमने वह प्रसिद्ध वीर-कार्य किया था। उस निद्रित अहि को वज्र-द्वारा जागरित किया था। उस समय देव-रमणियों ने तुम्हें हृष्ट देखकर हर्ष प्राप्त किया था। गतिशील मरुद्गण और सारे देवगण तुम्हें हृष्ट देखकर हृष्ट हुए थे।

८. इन्द्र, तुमने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र का वध किया है और शम्बर के नगरों का विनाश किया था। अतएव मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी उस प्रार्थित वस्तु को पूजित करें।

१०४ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. इन्द्र, तुम्हारे बैठने के लिए जो वेदी प्रस्तुत हुई है, उस पर शब्दायमान अश्व की तरह बैठो। अश्वों को बाँधनेवाली रस्सियों को छुड़ाकर अश्वों को मुक्त कर दो। वे अश्व, यज्ञ-काल आने पर, दिन-रात, तुम्हें वहन करते हैं।

२. रक्षण के लिए ये मनुष्य इन्द्र के निकट आये हैं। इन्द्र उन्हें तुरत, उसी समय, अनुष्ठान-मार्ग में जाने देते हैं। देवता लोग दस्युओं का क्रोध विनष्ट करें और हमारे सुख-साधन-स्वरूप यज्ञ में अनिष्ट-निवारक इन्द्र को आने दें।

३. कुयव नामक असुर दूसरे के धन का पता जानकर स्वयं अपहरण करता है। वह जल में रहकर स्वयं फेनयुक्त जल को चुराता है। कुयव की दो स्त्रियाँ उसी जल में स्नान करती हैं। वे स्त्रियाँ शिफा नामक नदी के गम्भीर निम्नतल में विनष्ट हों।

४. असु या उपद्रव के लिए इधर-उधर जानेवाला कुयव जल के बीच रहता है। उसका निवास-स्थान गुप्त था। वह शूर, पूर्व-अपहृत जल के साथ, वृद्धि प्राप्त करता और दीप्त होता है। अंजसी, कुलिशी और वीर-पत्नी नाम की तीनों नदियाँ स्वकीय जल से उसे प्रीत करके, जल-द्वारा, उसे धारण करती हैं।

५. वत्स-प्रिय गौ जैसे अपनी शाला या गोष्ठ का पथ जानती है, उसी प्रकार हमने भी उस असुर के घर की ओर गये हुए रास्ते को देखा है। उस असुर के बार-बार किये गये उपद्रव से हमें बचाओ। जैसे कामुक धन का त्याग करता है, उसी प्रकार हमें नहीं छोड़ना।

६. इन्द्र, हमें सूर्य और जल-समूह के प्रति भक्ति-पूर्ण करो। जो लोग, पाप-शून्यता के लिए, जीव-मात्र के प्रशंसनीय हैं, उनके प्रति भक्ति-पूर्ण करो। हमारी गर्भ-स्थित सन्तान को हिंसित नहीं करना। हम तुम्हारे महान् बल पर श्रद्धा करते हैं।

७. अन्तःकरण से हम तुम्हें जानते हैं। तुम्हारे उस बल पर हमने श्रद्धा की है। तुम अभीष्ट-दाता हो; हमें प्रभूत धन प्रदान करो। इन्द्र तुम बहुत लोगों के द्वारा आहूत हो। हमें धन-विहीन घर में नहीं रखना। भूखों को अन्न और जल दो।

८. इन्द्र, हमें नहीं मारना। हमें नहीं छोड़ना। हमारे प्रिय भक्ष्य, उपभोग आदि नहीं लेना। हे समर्थ धनपति इन्द्र, हमारे गर्भ-स्थित अपत्यों को नष्ट नहीं करना। घुटने के बल चलनेवाले अपत्यों को नष्ट नहीं करना।

९. हमारे सामने आओ। लोगों ने तुम्हें सोम-प्रिय बना डाला है। सोम तैयार है; इसे पान कर हृष्ट बनो। विस्तीर्णाङ्ग होकर जठर में सोम-रस की वर्षा करो। जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है, उसी प्रकार हमारे द्वारा आहूत होकर हमारी बातें सुनो।

१०५ सूक्त

(देवता विश्वेदेवगण। इस सूक्त के और १०६ सूक्त के ऋषि आप्त्यत्रित। छन्द त्रिष्टुप्, यवमध्या महाबृहती और पंक्ति।)

१. जलमय अन्तरिक्ष में वर्त्तमान चन्द्रमा, सुन्दर चन्द्रिका के साथ आकाश में दौड़ते हैं। सुवर्ण-नेमिरश्मियो, कूप में पतित हमारी इन्द्रियाँ तुम्हारा पद नहीं जानतीं। द्यावा-पृथिवी, हमारे इस स्तोत्र को जानो।

२. धनाभिलाषी निश्चय ही धन पाता है। स्त्री पास ही पति को पाती है, सहवास करती है; और, गर्भ से सन्तान उत्पन्न होती है। द्यावा-पृथिवी, हमारे इस दुःख को जानो अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से रहित हमारे कष्ट को समझो।

३. देवगण, हमारे स्वर्गस्थ पूर्व पुरुष स्वर्ग से च्युत न हों; हम कहीं सोम-पायी पितरों के सुख के लिए पुत्र से निराश न हों। द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो।

४. देवों में सर्व-प्रथम यज्ञार्ह अग्नि की मैं याचना करता हूँ। वह दूत-रूप से मेरी याचना देवों को बतावें। अग्नि, तुम्हारी पहले की वदान्यता कहाँ गई? इस समय कौन नूतन पुरुष उसे धारण करते हैं? हे द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

५. सूर्य-द्वारा प्रकाशित इन तीनों लोकों में ये देववृन्द रहते हैं। हे देवगण, तुम्हारा सत्य कहाँ है और असत्य कहाँ है? तुम्हारी प्राचीन आहुति कहाँ है? द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय समझो।

६. तुम्हारा सत्य-पालन कहाँ है? वरुण की अनुग्रह-दृष्टि कहाँ है? महान् अर्यमा का वह मार्ग कहाँ है, जिसके द्वारा हम पाप-मति व्यक्तियों का अतिक्रम कर सकें? द्यावा-पृथिवी, मेरी यह अवस्था या दुःख जानो अर्थात् दुःख-महोदधि में पतित मेरे लिए ये सब वस्तुएँ लुप्त-सी हो गई हैं—इस बात के द्यावा-पृथिवी साक्षी हैं।

७. मैं वही हूँ जिसने प्राचीन समय में सोम अभिषुत होने पर कतिपय स्तोत्र उच्चारण किये थे। जैसे पिपासित मृग को व्याघ्र खा जाता है, वैसे ही मुझे दुःख खा रहा है। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

८. जैसे दो सपत्नियाँ (सौतें) दोनों ओर खड़ी होकर स्वामी को सन्ताप देती हैं, वैसे ही कुएँ की दीवारें मुझे सन्ताप दे रही हैं। जैसे चूहा सूता काटता है, हे शतक्रतो, वैसे ही तुम्हारे स्तोता को—मुझे दुःख काटता है। द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो।

९. ये जो सूर्य की सात किरणें हैं, उनमें मेरी नाभि, मर्मात्मा या वास-स्थान है। यह बात आप्त्यत्रित जानते हैं तथा कुएं से निकलने के लिए रश्मि-समूह की स्तुति करते हैं। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१०. विशाल आकाश में ये जो अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र और विद्युत् आदि पाँच अभीष्ट-दाता हैं, वे मेरे इस प्रशंसनीय स्तोत्र को शीघ्र देवों के पास ले जाकर लौट आवें। द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो।

११. सर्वव्यापी आकाश में सूर्य की रश्मियाँ हैं। विशाल जल-राशि पार करते समय, मार्ग में, सूर्य-रश्मियाँ अरण्यकुक्कुर या वृक को निवारण करती हैं। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१२. देवगण, तुम्हारे भीतर वह नव्य, प्रशंसनीय और सुवाच्य बल है। उसके द्वारा वहनशील नदियाँ सदा जल-संचालन करतीं और सूर्य अपना सर्वदा विद्यमान आलोक विस्तार करते हैं। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१३. अग्नि, देवों के साथ तुम्हारा वही प्रशंसनीय बन्धुत्व है। तुम अत्यन्त विद्वान् हो। मनु के यज्ञ की तरह हमारे यज्ञ में बैठकर देवों का यज्ञ करो। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१४. मनु के यज्ञ की तरह हमारे यज्ञ में बैठकर देवों के आह्वानकारी, अतिशय विद्वान् और देवों में मेधावी अग्निदेव देवों को हमारे हव्य की ओर शास्त्रानुसार प्रेरणा करें। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१५. वरुण रक्षा-कार्य करते हैं। उन (वरुण) मार्ग-दर्शक के पास हम याचना करते हैं। अन्तःकरण से स्तोता वरुण को लक्ष्य कर मननीय स्तुति का प्रचार करता है। वही स्तुति-पात्र वरुण हमारे सत्य-स्वरूप हों। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१६. यह जो सूर्य, आकाश में, सर्व-सिद्ध पथ-स्वरूप हैं, देवगण, उन्हें तुम लोग नहीं लाँघ सकते। मनुष्यगण, तुम लोग नहीं उन्हें जानते। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१७. कुएँ में गिरकर त्रित ने, रक्षा के लिए, देवों का आह्वान किया। बृहस्पति ने त्रित का पाप-रूप कुएँ से उद्धार करके उसका आह्वान सुना था। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१८. अरुण-वर्ण वृक ने, एक समय, मुझे मार्ग में जाते देखा था। जैसे अपना कार्य करते-करते, पीठ पर वेदना होने पर, कोई उठ खड़ा होता है, वैसे ही मुझे देखकर वृक भी उठ खड़ा हुआ था। द्यावा-पृथिवी, मेरा यह विषय जानो।

१९. इस घोषणा-योग्य स्तोत्र के द्वारा इन्द्र को पाकर हम लोग, वीरों के साथ मिलकर, समर में शत्रुओं को परास्त करेंगे। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश, हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

१०६ सूक्त

(१६ अनुवाक। देवता विश्वेदेवगण। ऋषि आप्त्यत्रित अथवा अङ्गिरापुत्र कुत्स। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. रक्षा के लिए हम इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि और मरुद्गण को बुलाते हैं। जैसे संसार में लोग रथ को दुर्गम पथ से उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवता लोग हमें, पापों से उद्धार कर, पालन करें।

२. आदित्यगण, युद्ध में हमारी सहायता के लिए, तुम लोग आओ और युद्ध में हमारी विजय के कारण बनो। जैसे संसार में लोग रथ को दुर्गम पथ से उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण, हमें, पापों से उद्धार कर, पालन करें।

३. जिनकी स्तुति सुख-साध्य है, वे पितृगण हमारी रक्षा करें। देवों की पितृ-मातृ-स्वरूपा और यज्ञ-वर्द्धयित्री द्यावा-पृथिवी हमारी रक्षा करें। जैसे संसार में लोग रथ को दुर्गम पथ से उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण, हमें, पापों से उद्धार कर, पालन करें।

४. मनुष्यों के प्रशंसनीय और अन्नवान् अग्नि को इस समय हम जलाकर स्तुति करते हैं। वीर और विजयी पूषा के पास, सुखकर स्तोत्र-द्वारा, याचना करते हैं। जैसे संसार में लोग रथ को दुर्गम पथ से उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण, हमें, पापों से उद्धार कर, पालन करें।

५. बृहस्पतिदेव, हमें सदा सुख प्रदान करो। मनुष्यों के रोगों के उपशम और भयों के दूरीकरण की जो उपकारिणी क्षमता तुममें है, उसकी भी हम याचना करते हैं। जैसे संसार में लोग रथ को दुर्गम पथ से उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण, हमें, पापों से उद्धार कर, पालन करें।

६. कूप में पतित कुत्स ऋषि ने, बचने के लिए, वृत्र-हन्ता और शचीपति इन्द्र का आह्वान किया था। जैसे संसार में लोग रथ को दुर्गम पथ से उद्धार कर लाते हैं, वैसे ही दानशील और वास-गृह-दाता देवगण हमें पापों से उद्धार कर पालन करें।

७. देवों के साथ अदिति देवी हमारा पालन करें। सबके रक्षक दीप्यमान सविता जागरूक होकर हमारी रक्षा करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

१०७ सूक्त

(देवता विश्वेदेवगण। छन्द त्रिष्टुप्)

१. हमारा यज्ञ देवों को सुखी करे। आदित्यगण, तुष्ट हों। तुम्हारा अनुग्रह हमारी ओर प्रेरित हो और वही अनुग्रह दरिद्र मनुष्य के लिए प्रभूत धन का कारण हो।

२. अङ्गिरा ऋषियों-द्वारा गाये गये मंत्रों से स्तुत होकर देवगण, रक्षा के लिए, हमारे पास आवें। धन लेकर इन्द्र, प्राणवायु के साथ मरुत् लोग तथा आदित्यों को लेकर अदिति हमें सुख प्रदान करें।

३. जिस अन्न के लिए हम याचना करते हैं, उसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सविता हमें दें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्न की पूजा करें।

१०८ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि)

१. इन्द्र और अग्नि, तुम लोगों के जिस अतीव विचित्र रथ ने सारे भुवन को उज्ज्वल किया है, उसी रथ पर एक साथ बैठकर आओ; अभिषुत सोम पान करो।

२. इस बहुव्यापक और अपनी गुरुता से गम्भीर जो सारे भुवन का परिमाण है, इन्द्र और अग्नि, तुम लोगों के पीने योग्य सोम वही परिमाण हो; तुम लोगों की अभिलाषा अच्छी तरह पूर्ण करे।

३. तुम लोगों ने अपना कल्याणवाही नाम-द्वय एकत्र किया है। वृत्र-हन्तृ-द्वय, वृत्र-वध के लिए, तुम लोग एक साथ हुए थे। अभीष्ट-दाता इन्द्र और अग्नि, तुम लोग एकत्र होकर और बैठकर अभिषिक्त सोम, अपने उदरों में, सेचन करो।

४. अग्नि के अच्छी तरह प्रज्वलित होने पर दोनों अध्वर्युओं ने पात्र से घृत सेचन करके कुश विस्तार किया है। इन्द्र और अग्नि, चारों ओर अभिषुत तीव्र सोम-रस-द्वारा आकृष्ट होकर, कृपा के लिए, हमारी ओर आओ।

५. इन्द्र और अग्नि, तुम लोगों ने जो कुछ वीर-कार्य किया है, जितने रूप-विशिष्ट जीवों की सृष्टि की है, जो कुछ वर्षण किया है तथा तुम लोगों का जो कुछ प्राचीन कल्याणकर बन्धुत्व है, वह सब ले आकर अभिषुत सोम पीओ।

६. पहले ही कहा था कि, तुम दोनों को वरण करके तुम्हें सोम-द्वारा प्रसन्न करूँगा, वही अकपट श्रद्धा देखकर आओ; अभिषुत सोम पान करो। यह सोम हमारे ऋत्विकों की विशेष आहुति के योग्य हैं।

७. यज्ञ-पात्र इन्द्र और अग्नि, यदि अपने घर में प्रसन्न होकर रहते हो, यदि पूजक वा राजा के प्रति तुष्ट होकर रहते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, इन सारे स्थानों से आकर अभिषुत सोम पान करो।

८. इन्द्र और अग्नि, यदि तुम लोग तुर्वश, द्रुह्य, अनु और पुरु-गण के बीच रहते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सब स्थानों से आकर अभिषुत सोम पान करो।

९. इन्द्राग्नी, यदि तुम लोग निम्न पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा आकाश में रहते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सारे स्थानों से आकर अभिषुत सोम पान करो।

१०. इन्द्राग्नी, तुम लोग यदि उच्च पृथिवी (आकाश), मध्य पृथिवी (अन्तरिक्ष) अथवा निम्न पृथिवी पर अवस्थान करते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सब स्थानों से आकर अभिषुत सोम पान करो।

११. इन्द्र और अग्नि, यदि तुम आकाश, पृथ्वी, पर्वत, शस्य अथवा जल में अवस्थान करते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सब स्थानों से आकर अभिषुत सोम पान करो।

१२. इन्द्र और अग्नि, सूर्य के उदित होने पर दीप्तिमान् अन्तरिक्ष में यदि तुम लोग अपने तेज से हृष्ट होते हो, तो हे अभीष्ट-दातृ-द्वय, उन सारे स्थानों से आकर अभिषुत सोम पान करो।

१३. इन्द्र और अग्नि, इस तरह अभिषुत सोम पान करके हमें समस्त धन दान करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे इस प्रार्थित धन की पूजा करें।

१०९ सूक्त।

(देवता, ऋषि और छन्द पूर्ववत्)

१. इन्द्र और अग्नि, मैं धन की इच्छा करके तुम लोगों को ज्ञाति वा बन्धु की तरह जानता हूँ। तुमने ही मुझे प्रकृष्ट बुद्धि दी

हैं; अन्य किसी ने भी नहीं। फलतः मैंने ध्यान-निष्पन्न और अन्नेच्छा-सूचक स्तुति, तुम्हें उद्देश कर, की है।

२. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग अयोग्य जामाता अथवा श्यालक की अपेक्षा भी अधिक, बहुविध, धन दान करते हो—ऐसा सुना हूँ। इसलिए हे इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे सोम-प्रदान-काल में पठनीय एक नया स्तोत्र निष्पादन करता हूँ।

३. हम पुत्र-पौत्रादि-रूप रज्जु कभी न काटें—ऐसी प्रार्थना करके और पितरों की तरह शक्तिशाली पुत्र आदि उत्पादन करके उत्पादन-समर्थ यजमान इन्द्र और अग्नि की सुख-पूर्वक स्तुति करते हैं। शत्रु-हिंसक इन्द्र और अग्नि स्तुति के पास उपस्थित रहते हैं।

४. इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे लिए दीप्तिमती प्रार्थना की कामना करके तुम्हारे हर्ष के लिए सोमरस का अभिषव करते हैं। तुम अश्व-सम्पन्न शोभन-बाहु-युक्त और सुपाणि हो। तुम लोग शीघ्र आकर उदकस्थ माधुर्य-द्वारा हमारा सोम-रस संयुक्त करो।

५. इन्द्र और अग्नि, स्तोताओं के बीच धन-विभाग में रत रहकर वृत्र-हनन में अतीव बल-प्रकाश किया था—यह सुना है। सर्व-दर्शि-द्वय, तुम लोग हमारे इस यज्ञ में कुश पर बैठकर तथा अभिषुत सोम-पान करके हृष्ट बनो।

६. युद्ध के समय बुलाने पर तुम लोग आकर अपने महत्त्व-द्वारा सारे मनुष्यों में बड़े बनो। पृथिवी, आकाश, नदी और पर्वत आदि की अपेक्षा बड़े बनो। इन्द्र और अग्नि, तुम अन्य सारे भुवनों की अपेक्षा बड़े हो।

७. वज्र-हस्त इन्द्र और अग्नि, धन ले आओ, हमें दो और कार्य-द्वारा हमारी रक्षा करो। सूर्य की जिन रश्मियों के द्वारा हमारे पूर्व पुरुष इकट्ठे हुए थे, वे ये ही हैं।

८. वज्रहस्त पुरन्दर इन्द्र और अग्नि, हमें धनवान करो।

लड़ाई में हमें बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

११० सूक्त

(देवता ऋभुगण। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. ऋभुगण, पहले मैंने बार-बार यज्ञानुष्ठान किया है; इस समय फिर करता हूँ एवं उसमें तुम्हारी प्रशंसा के लिए अत्यन्त मधुर स्तोत्र पढ़ा जाता है। यहाँ सारे देवों के लिए यह सोम-रस प्रस्तुत हुआ है। स्वाहा शब्द के उच्चारण के साथ, अग्नि में उस रस के अर्पित होने पर, उसे पान कर तृप्त बनो।

२. ऋभुगण, तुम मेरे ज्ञाति-भ्राता हो। जिस समय तुम लोगों का ज्ञान अपरिपक्व था, उस पूर्वतन समय में तुम लोगों ने उपभोग्य सोमरस की इच्छा की थी। हे सुधन्वा के पुत्र, उस समय अपने कर्म या तपस्या के महत्त्व-द्वारा तुम लोग हविर्दानशील सविता के घर आये थे।

३. जिस समय तुम लोग प्रकाशमान सविता को अपने सोम-पान की इच्छा बता आये थे तथा त्वष्टा के बनाये उस एक सोम-पात्र के चार टुकड़े किये थे, उस समय सविता ने तुम्हें अमरता प्रदान की थी।

४. ऋभुओं ने शीघ्र कर्मानुष्ठान किया था एवं ऋत्विकों के साथ मिले थे; इसलिए मनुष्य होकर भी अमरत्व प्राप्त किया था। उस समय सुधन्वा के पुत्र ऋभु लोग सूर्य की तरह दीप्तिमान् होकर, सांवत्सरिक यज्ञों में, हव्याधिकारी हुए।

५. ऋभुगण ने पार्श्व-वर्त्तियों के स्तुति-पात्र होकर उत्कृष्ट सोम-रस की आकांक्षा करके, और देवों में हव्य की कामना करके उसी प्रकार तीक्ष्ण अस्त्र-द्वारा एक यज्ञ-पात्र को चार भागों में विभक्त किया था, जिस प्रकार मान-दण्ड लेकर खेत मापा जाता है।

६. हम अन्तरिक्ष के नेता ऋभुओं को पात्र-स्थित घृत अर्पित करते एवं ज्ञान-द्वारा स्तुति करते हैं। ऋभुओं ने एक सूर्य की तरह क्षिप्र-कारिता और दिव्य लोक का यज्ञान्न प्राप्त किया था।

७. नव-बलशाली ऋभु लोग हमारे रक्षक हैं। अन्न और वास-गृह के दाता ऋभु लोग हमारे निवास-हेतु हैं; इसलिए ऋभुगण हमें वरदान दें। ऋभु आदि देववृन्द, हम लोग तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर, अनुकूल दिन में, अभिषव-विहीन शत्रुओं की सेना को परास्त करें।

८. ऋभुगण, तुमने चमड़े से गौ को आच्छादित किया था और उस गौ के साथ बछड़े का फिर योग कर दिया था। सुधन्वा के पुत्र और यज्ञ के नेता शोभन कर्म-द्वारा तुमने वृद्ध माता-पिता को फिर युवा कर दिया था।

९. इन्द्र, ऋभुओं के साथ मिलकर अन्न-दान के समय हमें अन्न-दान करते हो—विचित्र धन-दान करते हो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस धन को पूजित करें।

१११ सूक्त

(देवता आदि पूर्ववत)

१. उत्तम-ज्ञानशाली और शिल्पी ऋभुओं ने अश्विनीकुमारों के लिए सुनिर्मित रथ प्रस्तुत किया था और इन्द्र के वाहक हरि नाम के बलवान् दोनों घोड़ों को बनाया था। ऋभुओं ने अपने माता-पिता को यौवन और बछड़े को सहचरी गौ का दान किया था।

२. हमारे यज्ञ के लिए उज्ज्वल अन्न प्रस्तुत करो। हमारे यज्ञ और बल के लिए सन्तान-हेतु-भूत अन्न प्रस्तुत करो, जिससे हम सारी वीर सन्ततियों के साथ आनन्द से रहें। हमारे बल के लिए ऐसा ही अन्न दो।

३. नेता ऋभुगण, हमारे लिए अन्न प्रस्तुत करो। हमारे रथ के लिए धन तैयार करो। हमारे घोड़े के लिए अन्न प्रस्तुत करो। संसार

हमारे जयशील धन की प्रतिदिन पूजा करे और हम संग्राम में, अपने बीच उत्पन्न या अनुत्पन्न, शत्रुओं को परास्त कर सकें।

४. अपनी रक्षा के लिए महान् इन्द्र को तथा ऋभु, विभु, वाज और मरुतों को, सोम-पानार्थ, हम बुलाते हैं। मित्र, वरुण और अश्विनी-कुमारों को भी बुलाते हैं। वे हमारे धन, यज्ञ, कर्म और विजय को सिद्ध कर दें।

५. संग्राम के लिए हमें ऋभु धन दें। समर-विजयी वाज हमारी रक्षा करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें।

११२ सूक्त

(देवता अश्विद्वय)

१. मैं अश्विनीकुमारों को पहले बताने के लिए द्यावा-पृथिवी की स्तुति करता हूँ। अश्वि-द्वय के आने पर उनकी पूजा के लिए प्रदीप्त और शोभन कान्ति से युक्त अग्नि की स्तुति करता हूँ। अश्वि-द्वय, तुम लोग संग्राम में अपना भाग पाने के लिए जिन सब उपायों के साथ शंख बजाते हो, उन सब उपायों के साथ आओ।

२. जैसे न्याय-वाक्यों से युक्त पण्डित के पास शिक्षा के लिए खड़े होते हैं, हे अश्वि-द्वय, वैसे ही अन्य देवों में अनासक्त स्तोता लोग, शोभन स्तुति के साथ, अनुग्रह-प्राप्ति की आशा में, तुम्हारे रथ के पास खड़े होते हैं। अश्वि-द्वय, तुम लोग जिन उपायों के साथ यज्ञ-सम्पादन के लिए सुमति लोगों की रक्षा करते हो, उन उपायों के साथ, आओ।

३. हे नेतृ-द्वय, तुम लोग स्वर्गीय-अमृत-लब्ध बल-द्वारा तीनों भुवनों में रहनेवाले मनुष्यों का शासन करने में समर्थ हो। जिन सब उपायों-द्वारा तुमने प्रसव-रहित शत्रु की गौओं को दुग्धवती किया था, अश्वि-द्वय, उन उपायों के साथ, आओ।

४. चारों ओर विचरण करनेवाले वायु अपने पुत्र और द्विमातृक अग्नि के बलद्वारा युक्त होकर और शीघ्रगामियों के बीच अतीव शीघ्र-गन्ता होकर जिन सारे उपायों-द्वारा सारे स्थानों में व्याप्त हुए हैं तथा जिन सब उपायों-द्वारा कक्षीवान् ऋषि विशिष्ट-ज्ञान युक्त हुए थे, उन उपायों के साथ, आओ।

५. जिन उपायों से तुम लोगों ने असुरों-द्वारा कूप में फेंके हुए और पाश से बाँधे हुए रेभ नामक ऋषि को जल से बचाया था एवं इसी प्रकार बन्दन नाम के ऋषि को भी जल से बचाया था तथा जिन उपायों-द्वारा असुरों-द्वारा अन्धकार में निःक्षिप्त आलोकेच्छु कण्व ऋषि की रक्षा की थी, अश्वि-द्वय, उन उपायों के साथ, आओ।

६. कूप में फेंककर असुर लोग जिस समय अन्तक नाम के राजर्षि की हिंसा कर रहे थे, उस समय तुम लोगों ने जिन उपायों-द्वारा उनकी रक्षा की थी, जिन सब व्यथा-शून्य नौका-रूप उपायों के द्वारा समुद्र में निमग्न तुग्र-पुत्र भुज्यु की रक्षा की थी और जिन सब उपायों-द्वारा असुरों-द्वारा पीड्यमान कर्कन्धु और वय्य नाम के मनुष्यों की रक्षा की थी, उनके साथ, आओ।

७. जिन उपायों-द्वारा शुचन्ति नामक व्यक्ति को धनवान् और शोभन-गृह-सम्पन्न किया था, जिन उपायों-द्वारा असुरों-द्वारा शतद्वार नाम के घर में प्रक्षिप्त और अग्नि-द्वारा दह्यमान अत्रि के गात्र-दाही उत्ताप को भी सुखकर किया था और जिन उपायों-द्वारा पृश्निगु और पुरुकुत्स नामक व्यक्तियों की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ, आओ।

८. अभीष्ट-वर्षिद्वय, जिन सब कर्मों-द्वारा पंगु परावृज ऋषि को गमन-समर्थ किया था, अन्ध ऋजाश्व को दृष्टि समर्थ किया था और भग्नजानु श्रोण को गमन-समर्थ किया था तथा जिन कार्यों-द्वारा वृक से गृहीत वर्तिका नाम की स्त्री-पक्षी को मुक्त किया था, अश्विद्वय, उन उपायों से आओ।

९. अजर अश्विनीकुमारद्वय, जिन उपायों-द्वारा मधुमयी नदी को प्रवाहित किया था, जिन उपायों-द्वारा वसिष्ठ को प्रीत और कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्य नाम के ऋषियों की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

१०. जिन उपायों-द्वारा धनवती और जंघा टूटने के कारण चलने में असमर्थ, अगस्त्य-पुरोहित खेल ऋषि की पत्नी, विश्पला को बहुधन-युक्त समर में जाने में समर्थ किया था तथा जिन उपायों-द्वारा अश्व ऋषि के पुत्र और स्तोत्र-तत्पर वश ऋषि की रक्षा की थी, उनके साथ आओ।

११. दानशील अश्विद्वय, जिन उपायों-द्वारा दीर्घतमा की उशिज् नामक स्त्री के पुत्र वणिक्-वृत्ति दीर्घश्रवा को मेघ से जल दिया था तथा उशिज् के पुत्र स्तोता कक्षीवान् की रक्षा की थी, उनके साथ आओ।

१२. जिन उपायों-द्वारा नदियों के तटों को जल-पूर्ण किया था, अपने अश्व-रहित रथ को, विजय के लिए, चलाया था तथा तुम्हारे जिन उपायों से कण्वपुत्र त्रिशोक नामक ऋषि ने अपनी अपहृत गौ का उद्धार किया था, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

१३. जिन उपायों-द्वारा दूरवर्त्ती सूर्य के पास, उन्हें ग्रहण के अन्धकार से मुक्त करने के लिए जाते हो यथा क्षेत्रपति के कार्य में मान्धाता राजर्षि की रक्षा की थी और जिन उपायों-द्वारा अन्नदान कर भरद्वाज ऋषि की रक्षा की थी, उनके साथ आओ।

१४. जिन उपायों-द्वारा महान्, अतिथि-वत्सल और असुरों के डर से जल में पैठे हुए दिवोदास को, शम्बर असुर के हनन-काल में, बचाया था तथा जिन उपायों-द्वारा नगर-विनाश-रूप समर में पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु ऋषि की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

१५. जिन उपायों-द्वारा पानरत और स्तुति-पात्र विकन:पुत्र वम्र की रक्षा की थी, स्त्री पा जाने पर कलि नाम के ऋषि की रक्षा की थी और

जिन उपायों-द्वारा अश्व-शून्य पृथि नाम के वेन राजर्षि की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

१६. नेतृद्वय, जिन उपायों-द्वारा शत्रु, अग्नि और पहले मनु को गमन-मार्ग दिखाने की इच्छा की थी और स्यूमरश्मि ऋषि के लिए उनके शत्रु के ऊपर तीर चलाया था, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

१७. जिन उपायों-द्वारा पठर्वा नाम के राजर्षि शरीर-बल से संग्राम में काष्ठ-युक्त प्रज्वलित अग्नि की तरह दीप्तिमान् हुए थे और जिन उपायों द्वारा युद्ध-क्षेत्र में शर्यात राजा की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

१८. अङ्गिरा, अश्विनीकुमारों की स्तुति करो। अश्विद्वय, जिन उपायों से तुम लोग अन्तःकरण से प्रसन्न हुए थे, जिनसे पणि-द्वारा अपहृत गौ के प्रच्छन्न स्थान में सारे देवों से पहले गये थे और जिनसे अन्न देकर शूर मनु की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

१९. जिन उपायों से विमद ऋषि को भार्या दी थी, जिनसे अरुण-वर्ण गायें प्रदान की थीं और जिनसे पिजवन-पुत्र सुदास राजा को उत्कृष्ट धन दिया था, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

२०. जिन उपायों से हव्य-दाता को सुख प्रदान करते हो, जिनसे तुग्र-पुत्र भुज्यु और देवों के शमिता अध्रिगु की रक्षा की थी तथा जिनसे ऋतस्तुभ ऋषि को सुखकर और पुष्टिकर अन्न दिया था, उनके साथ आओ।

२१. जिन उपायों-द्वारा सोमपाल कृशानु की, युद्ध में, रक्षा की थी, जिनसे युवा पुरुकुत्स के अश्व को वेग प्रदान किया था और मधुमक्षिकाओं को मधु दिया था, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

२२. गौ की प्राप्ति के लिए जिन उपायों-द्वारा युद्ध-काल में मनुष्य की रक्षा करते हो और जिनसे क्षेत्र और धन की प्राप्ति में सहायता

करते हो तथा जिन उपायों से मनुष्य या यजमान के रथों और अश्वों की रक्षा करते हो, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

२३. शतक्रतु अश्विद्वय, जिन उपायों से अर्जुन अर्थात् इन्द्र के पुत्र कुत्स, तुर्वीति और दभीति की रक्षा की थी तथा जिन उपायों-द्वारा ध्वसन्ति और पुरुषन्ति नाम के ऋषियों को बचाया था, उन उपायों के साथ आओ।

२४. अश्विद्वय, हमारे वाक्य को विहित-कर्म-युक्त करो; अभीष्ट-वर्षी दस्रद्वय, हमारी बुद्धि को वेद-ज्ञान-समर्थ करो। हम आलोक-विहीन रात्रि के शेष-प्रहर में, रक्षा के लिए, तुम्हें बुलाते हैं। हमारे अन्न-लाभ में वृद्धि कर दो।

२५. अश्विनीकुमारद्वय, दिन और रात में हमें विनाश-रहित सौभाग्य-द्वारा बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें।

सप्तम अध्याय समाप्त।

११३ सूक्त

(अष्टम अध्याय। देवता उषा और रात्रि हैं)

१. ज्योतियों में श्रेष्ठ यह ज्योति (उषा) आई है। उषा की विचित्र और जगत्प्रकाशक रश्मि भी व्याप्त होकर प्रकाशित हुई है। जैसे रात्रि सविता-द्वारा प्रसूत है, वैसे ही रात्रि ने भी उषा की उत्पत्ति के लिए जन्म-स्थान की कल्पना की है अर्थात् रात्रि सूर्य की सन्तान है और उषा रात्रि की सन्तान है।

२. दीप्तिमती शुभ्रवर्णा सूर्य-माता उषा आई है। कृष्णवर्णा रात्रि अपने स्थान को गई है। रात्रि और उषा दोनों ही सूर्य की बन्धुत्व-सम्पन्ना और मरण-रहिता है। एक दूसरे के पीछे आती है और एक दूसरे का वर्ण-विनाश करती है।

३. इन दोनों भगिनियों (उषा और रात्रि) का एक ही अनन्त सञ्चरण-मार्ग दीप्तिमान् सूर्य-द्वारा आदिष्ट है। वे दोनों एक के पश्चात् एक उसी मार्ग पर विचरण करती हैं। सारे पदार्थों की उत्पादयित्री रात्रि और उषा, विभिन्न रूप धारण करने पर भी, समानमनः-सम्पन्ना हैं। वे परस्पर को बाधा नहीं देतीं और कभी स्थिर होकर अवस्थिति नहीं करतीं।

४. हम प्रभा-संयुक्ता सूनृत-वाक्य-नेत्री विचित्रा उषा को जानते हैं; उन्होंने हमारा द्वार खोल दिया है। उन्होंने सारे संसार को आलोक-पूर्ण करके हमारे धन को प्रकाशित कर दिया है। उन्होंने सारे भुवनों को प्रकाशित किया है।

५. जो लोग टेढ़े होकर सोये थे, उनमें से किसी को भोग के लिए, किसी को यज्ञ के लिए और किसी को धन के लिए—सबको अपने-अपने कर्मों के लिए उषा ने जागरित किया है। जो थोड़ा देख सकते हैं, उनकी विशेष रूप से दृष्टि के लिए उषा अन्धकार दूर करती हैं। विस्तीर्ण उषा ने सारे भुवनों को प्रकाशित कर दिया है।

६. किसी को धन के लिए, किसी को अन्न के लिए, किसी को महायज्ञ के लिए और किसी को अभीष्ट-प्राप्ति के लिए उषा जगाती हैं। उन्होंने विविध जीविकाओं के प्रकाश के लिए सारे भुवनों को प्रकाशित किया है।

७. वह नित्य-यौवन-सम्पन्ना, शुभ्रवसना, आकाश-पुत्री उषा अन्धकार दूर करती हुई मनुष्यों के दृष्टिगोचर हुई हैं। वह सारे पार्थिव धनों की अधीश्वरी हैं। सुभगे, तुम आज यहाँ अन्धकार दूर करो।

८. पहले की उषायें जिस अन्तरिक्ष-मार्ग से गई हैं, उसी से उषा जाती हैं और आगे अनन्त उषायें भी उसी पथ का अनुधावन करेंगी। उषा अन्धकार को दूर करके तथा प्राणियों को जाग्रत् करके मृतवत् संज्ञा-शून्य लोगों को चैतन्य प्रदान करती हैं।

९. उषा, तुमने होमार्थ अग्नि प्रज्वलित की है, सूर्य के आलोक से अन्धकार को दूर कर दिया है और यज्ञरत मनुष्यों को अन्धकार से मुक्त कर दिया है; इसलिए तुमने देवों का उपकारी कार्य किया है।

१०. कब से उषा उत्पन्न होती हैं और कब तक उत्पन्न होंगी? वर्त्तमान उषा पूर्व की उषाओं का साग्रह अनुकरण करती हैं और आगामिनी उषायें इन दीप्तिमती उषा का अनुधावन करेंगी।

११. जिन मनुष्यों ने अतीव प्राचीन समय में, आलोक प्रकाशित करते हुए उषा को देखा था, वे इस समय नहीं हैं। हम उषा को देखते हैं; आगे जो लोग उषा को देखेंगे, वे आ रहे हैं।

१२. उषा विद्वेषी निशाचरों को दूर करती हैं, यज्ञ का पालन करती हैं, यज्ञ के लिए आविर्भूत होती हैं, सुख देती हैं और सूनृत शब्द प्रेरण करती हैं। उषा कल्याण-वाहिनी हैं और देवों का वाञ्छित यज्ञ धारण करती हैं। उषा, तुम उत्तम रूप से आज इस स्थान पर आलोक प्रकाशित करो।

१३. पहले उषा प्रतिदिन उदित होती थीं; आज भी धनवती उषा इस जगत् को अन्धकार-मुक्त करती हैं; इसी प्रकार आगे भी दिन-दिन उदित होंगी; क्योंकि वे अजरा और अमरा होकर अपने तेज से विचरण करती हैं।

१४. आकाश की विस्तृत दिशाओं को आलोक-पूर्ण तेज द्वारा उषा दीप्तिमान् करती हैं। उषा ने रात्रि के काले रूप को दूर किया है। सोये हुए प्राणियों को जगाकर उषा अरुण अश्ववाले रथ से आ रही हैं।

१५. उषा पोषक और वरणीय धन लाकर और सबको चैतन्य देकर विचित्र रश्मि प्रकाशित करती हैं। वह पहले की उषाओं की उपमा-रूपिणी हैं और आगामिनी प्रभावती उषाओं की प्रारम्भ-स्वरूपिणी। वह किरण प्रकाश करती हैं।

१६. मनुष्यो, उठो; हमारा शरीर-संचालक जीवन आगया है। अन्धकार गया; आलोक आया। उषा ने सूर्य को जाने के लिए मार्ग बना दिया है। उषा, जिस देश में अन्नदान करके वर्द्धन करती हो, वहाँ हम जायँगे।

१७. स्तुति-वाहक स्तोता प्रभावती उषा की स्तुति करके सुग्रथित वेद-वाक्य उच्चारण करते हैं। धनवती उषा, आज उस स्तोता का अन्धकार नष्ट करो और उसे सन्तति-युक्त अर्थ दान करो।

१८. जो गौ-संयुक्त और सर्व-वीर-सम्पन्न उषायें वायु की तरह शीघ्र सूनृत स्तुति के समाप्त होने पर हव्यदाता मनुष्य का अन्धकार विनष्ट करती हैं, वे ही अश्व-दात्री उषायें सोमाभिषव-कारी के प्रति प्रसन्न हों।

१९. उषा, तुम देवों की माता हो, अदिति की प्रतिस्पर्द्धिनी हो। तुम यज्ञ का प्रकाश करो; विस्तीर्ण होकर किरणदान करो। हमारे स्तोत्र की प्रशंसा करके हमारे ऊपर उदित हो। सबकी वरणीया उषे, हमें जनपद में आविर्भूत करो।

२०. उषायें जो कुछ विचित्र और ग्रहण-योग्य धन लाती हैं, वह यज्ञ-सम्पादक स्तोता के कल्याण-स्वरूप है। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें।

११४ सूक्त

(देवता रुद्र। छन्द जगती और त्रिष्टुप्)

१. महान् कपर्दी या जटाधारी और वीरों के विनाश-स्थान रुद्र को हम यह मननीय स्तुति अर्पण करते हैं, ताकि द्विपद और चतुष्पद सुस्थ रहें और हमारे इस ग्राम में सब लोग पुष्ट और रोग-शून्य रहें।

२. रुद्र, तुम सुखी हो; हमें सुखी करो। तुम वीरों के विनाशक हो। हम नमस्कार के साथ तुम्हारी परिचर्या करते हैं। पिता या

उत्पादक मनु ने जिन रोगों से उपशम और जिन भयों से उद्धार पाया था; रुद्र, तुम्हारे उपदेश से हम भी वह पावें।

३. अभीष्ट-दाता रुद्र, तुम वीरों के क्षयकारी अथवा ऐश्वर्यशाली मरुतों से युक्त हो। हम देव-यज्ञ-द्वारा तुम्हारा अनुग्रह प्राप्त करें। हमारी सन्तानों के सुख की कामना करके उनके पास आओ। हम भी प्रजा का हित देखकर तुम्हें हव्य देंगे।

४. रक्षण के लिए हम दीप्तिमान्, यज्ञ-साधक, कुटिलगति और मेधावी रुद्र का आह्वान करते हैं। वह हमारे पास से अपना क्रोध दूर करें। हम उनका अनुग्रह चाहते हैं।

५. हम उन स्वर्गीय उत्कृष्ट वराह की तरह दृढ़ाङ्ग, अरुणवर्ण, कपर्दी, दीप्तिमान् और उज्ज्वल रूप धर रुद्र को नमस्कार-द्वारा बुलाते हैं। हाथ में वरणीय भेषज धारण करके वे हमें सुख, वर्म और गृह प्रदान करें।

६. मधु से भी अधिक मधुर यह स्तुति-वाक्य मरुतों के पिता रुद्र के उद्देश से उच्चारित किया जाता है। इससे स्तोता की वृद्धि होती है। मरण-रहित रुद्र, मनुष्यों का भोजन-रूप अन्न हमें प्रदान करो। मुझे, मेरे पुत्र को और पौत्र को सुख दान करें।

७. रुद्र, हममें से बूढ़े को नहीं मारना, बच्चे को नहीं मारना, सन्तानोत्पादक युवक को नहीं मारना तथा गर्भस्थ शिशु को भी नहीं मारना। हमारे पिता का वध नहीं करना, माता की हिंसा नहीं करना तथा हमारे प्रिय शरीर में आघात नहीं करना।

८. रुद्र, हमारे पुत्र, पौत्र, मनुष्य, गौ और अश्व को नहीं मारना। रुद्र, क्रुद्ध होकर हमारे वीरों की हिंसा नहीं करना; क्योंकि हव्य लेकर हम सदा ही तुम्हें बुलाते हैं।

९. जैसे चरवाहे सायंकाल अपने स्वामी के पास पशुओं को लौटा देते हैं, रुद्र, वैसे ही मैं तुम्हारा स्तोत्र तुम्हें अर्पण करता हूँ। मरुतों

के पिता, हमें सुख दो। तुम्हारा अनुग्रह अत्यन्त सुखकर और कल्याण-दाही हो। हम तुम्हारा रक्षण चाहते हैं।

१०. वीरों के विनाशक रुद्र, तुम्हारा गो-हनन-साधन और मनुष्य-हनन-साधन अस्त्र दूर रहे। हम तुम्हारा दिया सुख पावें। हमें सुखी करो। दीप्तिमान् रुद्र, हमारे पक्ष में कहना। तुम पृथिवी और अन्तरिक्ष के अधिपति हो। हमें सुख दो।

११. हमने रक्षा-कामना करके कहा है। उन रुद्र देव को नमस्कार है। मरुतों के साथ रुद्र हमारा आह्वान सुनें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें।

११५ सूक्त

(देवता सूर्य)

१. विचित्र तेजःपुञ्ज तथा मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षुः-स्वरूप सूर्य उदित हुए हैं। उन्होंने द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपनी किरणों से परिपूर्ण किया है। सूर्य जंगम और स्थावर—दोनों की आत्मा हैं।

२. जैसे पुरुष स्त्री का अनुगमन करता है, वैसे ही सूर्य भी दीप्तिमती उषा के पीछे-पीछे आते हैं। इसी समय देवाभिलाषी मनुष्य बहु-युग-प्रचलित यज्ञ-कर्म का विस्तार करते हैं; सुफल के लिए कल्याण-कर्म को सम्पन्न करते हैं।

३. सूर्य के कल्याण-रूप हरि नाम के विचित्र घोड़े इस पथ से जाते हैं। वे सबके स्तुति-भाजन हैं। हम उनको नमस्कार करते हैं। वे आकाश के पृष्ठ-देश में उपस्थित हुए हैं। वे घोड़े तुरत ही द्यावा-पृथिवी—चारों दिशाओं का परिभ्रमण कर डालते हैं।

४. सूर्यदेव का ऐसा ही देवत्व और माहात्म्य है कि वे मनुष्यों के कर्म समाप्त होने के पहले ही अपने विशाल किरण-जाल का

उपसंहार कर डालते हैं। जिस समय सूर्य अपने रथ से हरि नाम के घोड़ों को खोलते हैं, उस समय सारे लोकों में रात्रि अन्धकार-रूप आवरण विस्तृत करती है।

५. मित्र और वरुण को देखने के लिए आकाश के बीच सूर्य अपना ज्योतिर्मय रूप प्रकाशित करते हैं। सूर्य के हरि नाम के घोड़े एक ओर अपना अनन्त दीप्तिमान् बल धारण करते हैं, दूसरी ओर कृष्ण वर्ण अन्धकार करते हैं।

६. सूर्य-किरणो, सूर्योदय होने पर आज हमें पाप से छुड़ाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें।

११६ सूक्त

(१७ अनुवाक। देवता अश्विद्वय। यहाँ से १२५ सूक्त तक के ऋषि दीर्घतमा के अपत्य कक्षीवान्। छन्द पूर्ववत्)

१. यज्ञ के लिए जिस प्रकार यजमान कुश का विस्तार करता है तथा वायु मेघ को नाना दिशाओं में प्रेरित करती है, उसी प्रकार मैं नासत्यद्वय या अश्विद्वय को प्रभूत स्तोत्र प्रेरित करता हूँ। अश्विनीकुमारों ने शत्रु-सेना-द्वारा दुष्प्राप्य रथ-द्वारा युवक विमद राजर्षि की, स्वयंवर में प्राप्त, स्त्री को विमद के पास पहुँचा दिया था।

२. नासत्यद्वय, तुम लोग बलवान् और शीघ्रगामी अश्व-द्वारा नीति और देवों के उत्साह से उत्साहित हुए थे। तुम्हारे रथ-वाहक गर्दभ ने यम के प्रिय सहस्र युद्धों में जय-लाभ किया था।

३. जैसे कोई म्रियमाण मनुष्य धन का त्याग करता है, वैसे ही तुग्र नाम के राजर्षि ने बड़े कष्ट से अपने पुत्र भुज्यु को, सेना के साथ, शत्रु-जय के लिए, नौका-द्वारा समुद्र (स्थित द्वीप) में भेजा। मध्य-समुद्र में निमग्न भुज्यु को, अश्विद्वय, तुमने अपनी नौका-द्वारा

उग्र के पास पहुँचाया था। तुम्हारी नौका जल के ऊपर अन्तरिक्ष में चलनेवाली और अप्रविष्ट जलवाली है अर्थात् तुम्हारी नौका में जल नहीं पैठता।

४. नासत्यद्वय, तुमने शीघ्रगामी शतचक्र-विशिष्ट और छः अश्वों से युक्त रथ-त्रय पर भुज्यु को वहन किया था। वह रथ तीन दिन, तीन रात तक अर्द्ध सागर के जल-शून्य प्रदेश में लाये थे।

५. अश्विद्वय, तुम लोगों ने अवलम्बन-शून्य, भूप्रदेश-रहित, ग्रहणीय शाखादि-वस्तु-रहित सागर में यह कार्य किया था। सौ डाँड़ोंवाली नौका में भुज्यु को बैठाकर तुग्र के पास लाये थे।

६. अश्विद्वय, अबध्य अश्व के पति पेदु नाम के राजर्षि को तुमने जो श्वेतवर्ण अश्व दिया था, उस अश्व ने पेदु का नित्यप्रति जय-रूप मंगल साधन किया था। तुम्हारा वह दान महान् और कीर्तनीय हुआ था। पेदु का वह उत्तम अश्व हमारा सदा पूजनीय है।

७. नेतृद्वय, तुमने अङ्गिरा के कुल में उत्पन्न कक्षीवान् को, स्तुति करने पर, प्रचुर बुद्धि दी थी। सुरापात्र के आधार से जैसे सुरा निकाली जाती है, वैसे ही तुम्हारे सेचन-समर्थ अश्व के खुर से तुमने शतकुम्भ सुरा का सिञ्चन किया था।

८. तुमने हिम या जल-द्वारा शतद्वार-पीड़ा-यंत्र-गृह में फँसे हुए अत्रि की, चारों ओर की, असुरों-द्वारा प्रज्वालित और दीप्यमान अग्नि का निवारण किया था तथा अग्नि को अन्नयुक्त और बल-प्रद खाद्य दिया था। अश्विनीकुमारद्वय, अत्रि जो निम्नाभिमुख होकर अन्धकारमय पीड़ा-यंत्र-गृह में प्रक्षिप्त हुए थे, उन्हें तुमने संगियों के साथ सुख से वहाँ से उठाया था।

९. नासत्यद्वय, तुम मरुभूमि में गोतम ऋषि के पास कूप उठा लाये थे और कूप का तल-भाग ऊपर तथा मुख-भाग नीचे किया था। उस कूप से तृष्णातुर गोतम के पान और सहस्र धन लाभ के लिए जल निर्गत हुआ था।

१०. अश्विद्वय, जैसे शरीर का आवरण (कवच आदि) खोल फेंका जाता है, वैसे ही तुमने जीर्ण च्यवन ऋषि की शरीरव्यापिनी जरा खोल फेंकी थी। दस्रद्वय, तुमने पुत्रादि-द्वारा परित्यक्त ऋषि के जीवन को बढ़ाया था; अनन्तर उन्हें कन्याओं का पति बना दिया था।

११. नेता नासत्यद्वय, तुम्हारा वह इष्ट वरणीय कार्य हमारे लिए प्रशंसनीय और आराध्य है—जो तुमने जानकर गुप्त धन की तरह छिपे उन वन्दन ऋषि को पिपासित पथिकों के द्रष्टव्य कूप से निकाला था।

१२. नेतृद्वय, जैसे मेघ-गर्जन आसन्नवृष्टि प्रकटित करता है, मैं धन-प्राप्ति के लिए, तुम्हारे उस उग्र कर्म को वैसे ही प्रकटित करता हूँ—जो अथर्वा के पुत्र दधीचि ऋषि ने घोड़े का मस्तक पहनकर तुम्हें यह मधु-विद्या सिखाई थी।

१३. बहु-लोक-पालक नासत्यद्वय, तुम अभिमत-फल-दाता हो। बुद्धिमती वध्रिमती नाम की ऋषि-पुत्री ने पूजनीय स्तोत्र-द्वारा तुम्हें बार-बार पुकारा था। जैसे शिष्य शिक्षक की कथा सुनता है, तुमने वैसे ही वध्रिमती का आह्वान सुना था। अश्विद्वय, पुत्राभिलाषिणी नपुंसक-पतिका वध्रिमती को तुमने हिरण्यहस्त नाम का पुत्र प्रदान किया था।

१४. नेता नासत्यद्वय, तुमने वृक अथवा सूर्य के मुख से वर्त्तिका नामक पक्षी अथवा उषा को छुड़ाया था। हे बहुलोक-पालक, तुमने स्तोत्र-तत्पर मेधावी को प्रकृत ज्ञान देखने दिया था।

१५. खेल राजा की स्त्री विश्पला का एक पैर, युद्ध में, पक्षी की पंख की तरह, कट गया था। अश्विद्वय, तुमने रातों रात, विश्पला के जाने के लि . तथा शस्त्रु-न्यस्त धन-लाभ के लिए, उसे लौहमय जंघा दे दी थी।

१६. जिन ऋज्राश्व राजर्षि ने अपनी वृकी (वृक की स्त्री) को खाने के लिए सौ भेड़ों को काट डाला था, उनको उनके पिता (वृषागिर)

ने क्रुद्ध होकर नेत्र-हीन कर दिया था। ऋजाश्व के दोनों नेत्र किसी भी वस्तु को देखने में असमर्थ हो गये थे। भिषज-दक्ष नासत्यद्वय, तुमने ऋजाश्व की आँखें अच्छी कर दीं।

१७. अश्विद्वय, सारे देवों में तुम्हारे शीघ्रगामी घोड़ों के होने से सूर्य-पुत्री सूर्या तुम्हारे द्वारा विजित हो गई और तुम्हारे रथ पर आरोहण किया। घुड़दौड़ के जितानेवाले काष्ठ-खण्ड के पास तुम्हारे घोड़ों के पहुँचने से सारे देवों ने हृदय के साथ इस कार्य का अनुमोदन किया। नासत्यद्वय, तुमने सम्पत् प्राप्त की।

१८. अश्विद्वय, राजर्षि दिवोदास के, हव्यान्न प्रदान कर तुम्हें, बुलाने पर तुम उनके घर गये थे। उस समय तुम्हारा सेव्य-रथ धन-संयुक्त अन्न ले गया था। वृषभ और ग्राह उस रथ में युक्त हुए थे।

१९. नासत्यद्वय, तुम शोभन-बल-सम्पन्न और शोभन अपत्य और वीर्य से युक्त होकर तथा समान प्रीति-युक्त होकर महर्षि जह्नु की सन्तानों के पास आये थे। सन्तानों ने हव्यान्न प्रदान किया था तथा दैनिक सोमाभिषव के प्रातःसवन आदि तीन भाग धारण किये थे।

२०. नासत्यद्वय, तुम अजर हो। जिस समय जाहुष राजा शत्रुओं-द्वारा चारों ओर से घेरे गये थे, उस समय अपने सर्व-भेदकारी रथ-द्वारा रातो-रात उन्हें सुगम्य पथ से बाहर कर ले गये थे; और शत्रुओं-द्वारा दुरारोह पर्वतों पर गये थे।

२१. अश्विद्वय, तुमने वश नाम के ऋषि की, एक दिन में हज़ार शोभन धन पाने के लिए, रक्षा की थी। अभीष्ट-वर्षक अश्विद्वय, तुमने इन्द्र के साथ मिलकर पृथुश्रवा राजा के क्लेशदायक शत्रुओं को मारा था।

२२. ऋचत्क के पुत्र शर नामक स्तोता के पाने के लिए तुमने कूप के नीचे से जल को ऊपर किया था। नासत्यद्वय, श्रान्तशयु नामक ऋषि के लिए प्रसव-शून्य गौ को, अपने कार्य्य द्वारा, दुग्धवती बनाया था।

२३. नासत्यद्वय, कृष्ण-पुत्र और ऋजुता-तत्पर विश्वकाय नामक ऋषि के तुम्हारी रक्षा की लालसा में, स्तुति करने पर अपने कार्यों-द्वारा, तुमने, नष्ट पशु की तरह, उनके विष्णापु नामक विनष्ट पुत्र को दिखा दिया था।

२४. असुरों-द्वारा पाश से बद्ध, कूप में निक्षिप्त और शत्रुओं-द्वारा आहत होकर रेभ नामक ऋषि के दस रात नौ दिन जल में पड़े रहने से व्यथा से सन्तप्त और जल से विप्लुत होने पर तुमने उन्हें उसी प्रकार कुएँ से निकाल लिया था, जिस प्रकार अध्वर्यु स्रुव से सोम निकालता है।

२५. अश्विद्वय, तुम्हारे पूर्व-कृत कार्यों का मैंने वर्णन किया। मैं शोभन गौ और वीर से युक्त होकर इस राष्ट्र का अधिपति बनूँ। जैसे गृह-स्वामी निष्कंटक घर में प्रवेश करता है, मैं भी वैसे ही नेत्रों से स्पष्ट देखकर और दीर्घ आयु भोगकर बुढ़ापा पाऊँ।

११७ सूक्त

(देवता अश्विद्वय)

१. अश्विद्वय, तुम्हारे चिरन्तन होता तुम्हारे हर्ष के लिए मधुर सोमरस के साथ तुम्हारी अर्चना करता है। कुश के ऊपर हव्य स्थापित किया हुआ है; ऋत्विकों-द्वारा स्तुत और प्रस्तुत हुआ है। नासत्यद्वय, अन्न और बल लेकर पास आओ।

२. अश्विद्वय, मन की अपेक्षा भी वेगवान् और शोभन-अश्व-युक्त रथ सारे प्रजावर्ग के सामने जाता है और जिस रथ से तुम लोग शुभ-कर्मा लोगों के घर जाते हो, नेतृद्वय, उसी पर हमारे घर पधारो।

३. नेतृद्वय, अभीष्ट-वर्षकद्वय, तुमने शत्रुओं की हिंसा करके और क्लेशदायिनी दस्यु-माया का आनुपूर्विक निवारण करके पाँच श्रेणियों (चार वर्ण और पञ्चम निषाद) द्वारा पूजित अत्रि ऋषि को शतद्वार-यन्त्र-गृह के पाप-तुषानल से, सन्तानादि के साथ, मुक्त किया था।

४. नेतृद्वय, अभीष्ट-वर्षकद्वय, दुर्दान्त दानवों-द्वारा जल में निगूढ़ रेभ ऋषि को तुम लोगों ने निकालकर पीड़ित अश्व की तरह, उनका विनष्ट अवयव, अपनी दवाओं से, ठीक किया था। तुम्हारे पहले के काम जीर्ण नहीं हुए।

५. दस्र अश्विद्वय, पृथिवी के ऊपर सुषुप्त मनुष्य की तरह और अन्धकार में क्षय-प्राप्त सूर्य के शोभन दीप्तिमान् आभूषण की तरह तथा दर्शनीय उस कूप में प्रक्षिप्त बन्दन ऋषि को तुम लोगों ने निकाला था।

६. नेता नासत्यद्वय, अङ्गिरोवंशीय कक्षीवान् मैं मनोनुकूल द्रव्य की प्राप्ति की तरह तुम्हारा अनुष्ठान उद्घोषित करूँगा; क्योंकि तुमने शीघ्र-गामी घोड़ों के खुरों से निकाले हुए मधु से संसार में सैकड़ों घड़े पूरे कर दिये थे।

७. नेतृद्वय, कृष्ण के पुत्र विश्वकाय के, तुम लोगों की स्तुति करने पर, विनष्ट पुत्र विष्णापु को तुम लोग लाये थे। अश्विद्वय, कोढ़ होने के कारण बुढ़ापे तक पितृ-गृह में अविवाहिता रहने पर घोषा नाम की ब्रह्म-वादिनी स्त्री को, कोढ़ दूर कर, पति प्रदान किया था।

८. अश्विद्वय, तुमने कुष्ठरोग-ग्रस्त श्याव या श्यामवर्ण ऋषि को अच्छा कर दीप्तिमती स्त्री दी थी। आँखें न रहने से कण्व नहीं चल सकते थे; तुमने उन्हें आँखें दी थीं। अभीष्ट-वर्षिद्वय, बहरे नृषद-पुत्र को तुमने कान दिये थे; ये कार्य प्रशंसनीय हैं।

९. बहु-रूप-धारी अश्विद्वय, तुमने राजर्षि पेदु को शीघ्रगामी अश्व दिया था। वह घोड़ा हजारों तरह के धन देता था। वह बलवान् शत्रुओं-द्वारा अपराजेय, शत्रु-हन्ता, स्तुति-पात्र और विपद् में रक्षक था।

१०. दानवीर अश्विनीकुमारो, तुम्हारी ये वीर-कीर्तियाँ सबको जाननी चाहिए। तुम द्यावा-पृथिवी-रूप वर्त्तमान हो। तुम्हारा

आह्लादकर घोषणीय मन्त्र निष्पन्न हुआ है। अश्विद्वय, जिस समय अङ्गिराकुल के यजमान तुम्हें बुलाते हैं, उस समय अन्न लेकर आओ तथा मुझ यजमान को बल दो।

११. पोषक नासत्यद्वय, कुम्भ के पुत्र अगस्त्य ऋषि की स्तुति से स्तुत होकर और मेधावी भरद्वाज ऋषि को अन्नवान कर तथा अगस्त्य-द्वारा मंत्र-वर्द्धित होकर तुमने विश्पला को नीरोग किया था।

१२. आकाश-पुत्रद्वय, अभीष्टवर्षक, काव्य (उशना) की स्तुति सुनने के लिए कहाँ उसके घर की ओर जाते हो? हिरण्यपूर्ण कलश की तरह कूप में गिरे रेभ ऋषि को तुमने दसवें दिन उबारा था।

१३. अश्विद्वय, भैषज्यरूप कार्य-द्वारा तुमने वृद्ध च्यवन ऋषि को युवा किया था। नासत्यद्वय, सूर्य-पुत्री सूर्या, कान्ति के साथ, तुम्हारे रथ पर चढ़ी थी।

१४. दुःख-विदारक-द्वय, तुग्र जैसे पहले स्तोत्र-द्वारा तुम्हारी स्तुति करते थे, अनन्तर फिर भी उसी तरह तुम लोगों की अर्चना करते थे; क्योंकि उनके पुत्र भुज्यु को तुम विक्षिप्त समुद्र से गमनशील नौका और शीघ्रगति अश्वद्वारा ले आये थे।

१५. अश्विद्वय, पिता तुग्र-द्वारा समुद्र में भेजे हुए और जल में डूबते हुए भुज्यु ने, सरलता से समुद्र-पार होकर, तुम्हारा आह्वान किया था। मनोवेग-सम्पन्न अभीष्ट-वर्षिद्वय, तुम लोग उत्कृष्ट-अश्व-युक्त रथ पर भुज्यु को लाये थे।

१६. अश्विद्वय, जिस समय तुम लोगों ने वृक के मुख से वर्तिका नाम की चिड़िया को छुड़ाया था, उस समय उसने तुम्हारा आह्वान किया था। तुम लोग जयशील रथ-द्वारा जाहुष को लेकर पर्वत-प्रदेश चले गये थे। तुमने विष्वाङ् असुर के पुत्र को विषयुक्त तीर-द्वारा हत किया था।

१७. जब कि, ऋज्राश्व ने वृकी के लिए सौ भेड़ों का वध किया था, तब उनके क्रुद्ध पिता ने उन्हें अन्धा बना दिया था। इसके अनन्तर

तुमने उन्हें नेत्र प्रदान किया था। देखने के लिए तुम लोगों ने अन्ध को चक्षु दिया था।

१८. उन अन्ध को चक्षु-द्वारा सुख देने की इच्छा से वृकी ने तुम्हें आह्वान किया था—अश्विद्वय, अभीष्ट-वर्षिद्वय, नेतृद्वय, ऋज्राश्व ने, तरुण जार की तरह, अमितव्ययी होकर एक सौ एक भेंड़ों को खण्ड-खण्ड किया था।

१९. अश्विद्वय, तुम्हारा रक्षा-कार्य सुख का कारण है; हे स्तुति-पात्र, तुमने रोगियों के अंगों को ठीक किया है; इसलिए प्रभूत-बुद्धि-शालिनी घोषा ने, तुम्हें रोग-निवृत्ति के लिए बुलाया था। अभीष्ट-दातृद्वय, अपने रक्षण-कार्यों के साथ आओ।

२०. दस्रद्वय, शयु ऋषि के लिए तुमने कृशा, प्रसव-शून्या और दुग्ध-रहिता गौ को दुग्ध-पूर्ण किया था। तुमने अपने कर्म-द्वारा पुरुमित्र राजा की कुमारी को विमद ऋषि की स्त्री बनाया था।

२१. अश्विद्वय, तुमने विद्वान् मनु या आर्य मनुष्य के लिए हल-द्वारा खेत जुतवाकर, यव वपन कराकर, अन्न के लिए वृष्टि-वर्षण करके तथा वज्र-द्वारा दस्यु का वध करके उसके लिए विस्तीर्ण ज्योति प्रकाश की।

२२. अश्विद्वय, तुमने अथर्वा ऋषि के पुत्र दधीचि ऋषि के स्कन्ध पर अश्व का मस्तक जोड़ दिया था। दधीचि ने भी सत्य-रक्षा कर त्वष्टा या इन्द्र से प्राप्त मधुविद्या तुम्हें सिखाई थी। दस्रद्वय, वही विद्या तुम लोगों में प्रवर्ग-विद्या-रहस्य हुई थी।

२३. मेधावि-द्वय, मैं सदा तुम्हारी कृपा के लिए प्रार्थना करता हूँ। तुम मेरे सारे कार्यों की रक्षा करते हो। नासत्यद्वय, हमें विशाल, सन्तान-समेत और प्रशंसनीय धन दो।

२४. दानशील और नेता अश्विद्वय, तुमने वध्रिमती को हिरण्यहस्त नाम का पुत्र दिया था। दानशील अश्विद्वय, तुमने तीन भागों में विभक्त श्याव ऋषि को जीवित किया था।

२५. अश्विद्वय, तुम्हारे इन प्राचीन कार्यों को पूर्वज कह गये हैं। अभीष्ट-दातृद्वय, हम भी तुम्हारी स्तुति करके वीर पुत्र आदि से युक्त होकर यज्ञ को सम्पन्न करते हैं।

११८ सूक्त

(देवता अश्विनीकुमारद्वय)

१. अश्विद्वय, श्येन पक्षी की तरह शीघ्रगामी, सुखकर और धन-युक्त तुम्हारा रथ हमारे सम्मुख आवे। अभीष्ट-वर्षक-द्वय, तुम्हारा वह रथ मनुष्य के मन की तरह वेगवान्, त्रिबन्धुर या त्रिबन्धनाधार-भूत और वायु-वेगी है।

२. अपने त्रिबन्धुर, त्रिकोण या तीनों लोकों में वर्त्तमान, त्रिचक्र और शोभन-गति रथ पर हमारे सम्मुख आओ। अश्विद्वय, हमारी गायों को दुग्धवती करो। हमारे घोड़ों को प्रसन्न करो। हमारे वीर पुत्र आदि को वर्द्धित करो।

३. दस्रद्वय, अपने शीघ्रगामी और शोभन-गति रथ-द्वारा आकर सेवा-परायण स्तोता का यह मंत्र सुनो। अश्विद्वय, क्या पहले के विद्वान् यह नहीं बोले थे कि, तुम स्तोताओं की दरिद्रता दूर करने के लिए सर्वदा जाते हो?

४. अश्विद्वय, रथ में योजित, शीघ्रगन्ता, उछलने में बहादुर और श्येन पक्षी की तरह वेग-विशिष्ट तुम्हारे घोड़े तुम्हें लेकर आवें। नासत्यद्वय, जल की तरह शीघ्रगति अथवा आकाशचारी गृध्र की तरह शीघ्रगति वे घोड़े तुम्हें हव्यान्न के सामने ले आ रहे हैं।

५. नेतृद्वय, प्रसन्न होकर सूर्य की युवती पुत्री तुम्हारे रथ पर चढ़ी थी। तुम्हारे पुष्टाङ्ग, लम्फ-प्रदान-समर्थ, शीघ्रगामी और दीप्तिमान् घोड़े तुम्हें हमारे घर की ओर ले आवें।

६. अपने कार्य-द्वारा तुमने बन्दन ऋषि को बचाया था। काम-वर्षिद्वय, अपने कार्य-द्वारा तुमने रेभ ऋषि को निकाला था तुमने तुग्र-

पुत्र भुज्यु को समुद्र से पार कराया था। च्यवन ऋषि को फिर युवक बना दिया था।

७. अश्विद्वय, तुमने रोके हुए अत्रि की प्रदीप्त अग्नि-शिखा को निवारित किया था और उन्हें रसवान् अन्न प्रदान किया था। स्तुति ग्रहण करके तुमने अन्धकार में प्रविष्ट कण्व ऋषि को चक्षुप्रदान किया था।

८. अश्विद्वय, प्रार्थना करने पर प्राचीन शयु ऋषि की दुग्ध-रहिता गौ को दुग्धवती किया था। तुमने वृक-रूप पाप से वर्त्तिका को छुड़ाया था। तुमने विश्पला की एक जंघा बना दी थी।

९. अश्विद्वय, तुमने पेदु राजा को श्वेतवर्ण घोड़ा दिया था। वह अश्व इन्द्र-प्रदत्त, शत्रु-हन्ता और संग्राम में शब्द करनेवाला था। वह अरि-मर्दन, उग्र और सहस्र या अनेक प्रकार के धन देनेवाला था। वह अश्व सेचन-समर्थ और दृढ़ाङ्ग था।

१०. नेतृद्वय, शोभन-जन्मा अश्विद्वय, हम धन-याचना करके रक्षा के लिए तुम्हें बुलाते हैं। हमारी स्तुति ग्रहण करके तुम लोग धनशाली रथ पर, हमें सुख देने के लिए, हमारे सम्मुख आओ।

११. नासत्यद्वय, समान-प्रीति-सम्पन्न होकर तथा श्येन पक्षी अथवा प्रशंसनीय गमनकारी अश्व के नूतन वेग की तरह हमारे निकट आओ। अश्विद्वय, हव्य लेकर हम नित्य उषा के उदय-काल में तुम्हें बुलाते हैं।

११९ सूक्त

(देवता अश्विद्वय)

१. अश्विद्वय, जीवन धारण के लिए, अन्न के निमित्त, मैं तुम्हारे रथ का आवाहन करता हूँ। वह रथ बहु-विधगति-विशिष्ट, मन की तरह शीघ्रगामी, वेगवान् अश्व से युक्त, यज्ञ-पात्र, सहस्रकेतु-युक्त, शतधन-युक्त, सुखकर और धनदाता है।

२. उस रथ के गमन करने पर अश्विद्वय की प्रशंसा में हमारी बुद्धि ऊपर उठ जाती है। हमारी स्तुतियाँ अश्विद्वय को प्राप्त हुई हैं। मैं हव्य को स्वादिष्ठ करता हूँ। सहायक ऋत्विक् लोग आते हैं। अश्विद्वय, सूर्य-पुत्री उर्जानी तुम्हारे रथ पर चढ़ी है।

३. जिस समय यज्ञ-परायण असंख्य जय-शील मनुष्य संग्राम में धन के लिए परस्पर स्पर्द्धा करके एकत्र होते हैं, हे अश्विद्वय, उस समय तुम्हारा रथ पृथ्वी पर आता हुआ मालूम पड़ता है। उसी रथ पर तुम लोग स्तोता के लिए श्रेष्ठ धन लाते हो।

४. अभीष्ट वर्षकद्वय, जो भुज्यु अपने घोड़ों के द्वारा लाये जाकर समुद्र में निमज्जित हुए थे, उन्हें तुम लोग स्वयं अपने संयोजित घोड़ों के द्वारा लाकर उनके पिता के पास उनके दूरस्थ घर में पहुँचा गये थे। दिवोदास को भी जो तुम लोगों ने महान् रक्षण प्रदान किया था, वह हम जानते हैं।

५. अश्विद्वय, तुम्हारे प्रशंसनीय दोनों घोड़े, तुम्हारे संयोजित रथ को, उसकी सीमा—सूर्य—तक सारे देवों के पहले ही ले गये थे। कुमारी सूर्या ने, इस प्रकार विजित होकर, मैत्री-भाव के कारण, "तुम मेरे पति हो"—कहकर तुम्हें पति बना लिया था।

६. तुमने रेभ ऋषि को, चारों ओर के उपद्रव से बचाया था। तुमने अत्रि के लिए हिम-द्वारा अग्नि का निवारण किया था। तुमने शत्रु की गौ को दुग्ध दिया था। तुमने वन्दन ऋषि को दीर्घ आयु-द्वारा वर्द्धित किया था।

७. जैसे पुराने रथ को शिल्पी नया कर देता है; हे निपुण दस्र-द्वय, उसी प्रकार तुमने भी वार्द्धक्य-पीड़ित वन्दन को फिर युवा कर दिया था। गर्भस्थ वामदेव के तुम्हारी स्तुति करने पर तुमने उन मेधावी को गर्भ से जन्म दिया था। तुम्हारा यह रक्षण-कार्य इस परिचर्या-परायण यजमान के लिए परिणत हो।

८. भुज्यु के पिता ने उनको छोड़ दिया था। भुज्यु ने दूर देश में पीड़ित होने पर तुम्हारी कृपा के लिए प्रार्थना की। तुम उनके पास गये। फलतः तुम्हारी शोभनीय गति और विचित्र रक्षण-कार्य सब लोग सम्मुख पाने की इच्छा करते हैं।

९. तुम मधु-युक्त हो। मधु-कामिनी उस मक्षिका ने तुम्हारी स्तुति की है। उशिज्पुत्र मैं कक्षीवान् तुम्हें सोमपान में प्रसन्नता पाने के लिए बुलाता हूँ। तुमने दधीचि ऋषि का मन तृप्त किया था। उनके अश्व-मस्तक ने तुम्हें मधुविद्या प्रदान की थी।

१०. अश्विद्वय, तुमने पेदु राजा को बहुजन-वाञ्छित और शत्रु-पराजयी शुभ्रवर्ण अश्व दिया था। वह अश्व युद्ध-रत, दीप्तिमान् युद्ध में अपराजेय, सारे कार्यों में संयोज्य और इन्द्र की तरह मनुष्य-विजयी है।

१२० सूक्त

(देवता अश्विद्वय। छन्द गायत्री, ककुप्, काविराट् उष्णिक्, कृति, विराट् आदि)

१. अश्विद्वय, कौन-सी स्तुति तुम्हें प्रसन्न कर सकती है? तुम दोनों को कौन परितुष्ट कर सकता है? एक अज्ञानी जीव तुम्हारी कैसे सेवा कर सकता है?

२. अनभिज्ञ प्राणी इसी प्रकार उन दोनों सर्वज्ञों की परिचर्या के उपायभूत मार्ग की जिज्ञासा करता है। अश्विनीकुमारों के सिवा सभी अज्ञ हैं। शत्रु-द्वारा आक्रमण-रहित अश्विद्वय शीघ्र ही मनुष्य पर अनुग्रह करते हैं।

३. सर्वज्ञद्वय, हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम अभिज्ञ हो, हमें मननीय स्तोत्र बताओ। वही मैं तुम्हारी कामना करके, हव्य-प्रदान करते हुए, स्तुति करता हूँ।

४. मैं तुम्हें ही जिज्ञासा करता हूँ; अपनी पक्व बुद्धि से जिज्ञासा नहीं करता। दस्रद्वय, "वषट्" शब्द के साथ अग्नि में प्रदत्त, अद्भुत और पुष्टिकर सोम-रस पान करो। हमें प्रौढ़ बल प्रदान करो।

५. तुम्हारी जो स्तुति घोषापुत्र सुहस्त्य और भृगु-द्वारा उच्चारित होकर सुशोभित हुई थी, उसी स्तुति-द्वारा वज्रवंशीयऋषि मैं कक्षीवान् तुम्हारी अर्चना करता हूँ। इसलिए स्तुतिज्ञ मैं अन्न-कामना में सफल-यत्न बनूँ।

६. स्खलद्गति वा गति-रहित ऋषि अर्थात् अन्ध ऋज्राश्व की स्तुति सुनो। शोभनीय कर्मों के प्रतिपालक, उसने मेरी तरह स्तुति करके चक्षुद्वय प्राप्त किया था। फलतः मेरा मनोरथ भी पूर्ण करो।

७. तुमने महान् धनदान किया है तथा उसे फिर लुप्त कर डाला है। गृह-दातृद्वय, तुम हमारे रक्षक बनो। पापी वृक वा तस्कर से हमारी रक्षा करो।

८. किसी शत्रु के सामने हमें नहीं अर्पण करना। हमारे घर से दुग्धवती गायें, बछड़ों से अलग होकर, किसी अगम स्थान को न चली जायें।

९. जो तुम्हें उद्देश्य कर स्तुति करता है, वह मित्रों की रक्षा के लिए धन पाता है। हमें अन्नयुक्त धन प्रदान करो तथा धेनु-युक्त अन्न दो।

१०. मैंने अन्नदाता अश्विद्वय का अश्व-रहित, परन्तु गमन-समर्थ, रथ प्राप्त किया है। उसके द्वारा मैं अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ।

११. धन-पूर्ण रथ, मैं सामने ही हूँ। मुझे समृद्ध करो। उस सुखकर रथ को अश्विद्वय, स्तोताओं के सोम-पान स्थान पर ले जाते हैं।

१२. मैं प्रातःकाल के स्वप्न से घृणा करता हूँ और जो धनी दूसरे का प्रतिपालन नहीं करता, उसे भी घृणित समझता हूँ। दोनों शीघ्र नाश को प्राप्त होते हैं।

१२१ सूक्त

(१८ अनुवाक। देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. मनुष्यों के पालन-कर्त्ता और गौ-रूप धन के दाता इन्द्र कब देवाभिलाषी अङ्गिरा लोगों की स्तुति सुनेंगे? जिस समय वे गृहपति यजमान के ऋत्विकों को सामने देखते हैं, उस समय वे यज्ञ में यजनीय होकर प्रभूत उत्साह से पूर्ण होते हैं।

२. उन्होंने स्थिर-रूप से आकाश को धारण किया है। वे असुरों द्वारा अपहृत गायों के नेता हैं। वे विस्तीर्ण प्रभा से युक्त होकर सारे प्राणियों के द्वारा सेवनीय हैं और खाद्य के लिए जीवन-धारक वृष्टि-जल प्रेरित करते हैं। महान् सूर्यरूप इन्द्र, अपनी पुत्री उषा के अनन्तर उदित होते हैं। उन्होंने अश्व की स्त्री को गौ की माता किया था अथवा घोड़ी से गाय उत्पन्न की थी।

३. वे अरुणवर्ण उषा को रंजित करके हमारा उच्चारित पुरातन मंत्र सुनें। वे प्रतिदिन अङ्गिरा गोत्रवालों को अन्न देते हैं। उन्होंने हननशील वज्र बनाया है। वे मनुष्यों, चतुष्पदों और द्विपदों के हित के लिए, दृढ़रूप से, आकाश धारण करते हैं।

४. इस सोमपान से हृष्ट होकर तुमने स्तुति-पात्र और पणिद्वारा छिपाई हुई गौओं को यज्ञार्थ दान किया था। जिस समय त्रिलोक-श्रेष्ठ इन्द्र युद्ध में रत होते हैं, उस समय वे मनुष्यों के क्लेश-दाता पणि असुर का द्वार, गौओं के निकलने के लिए, खोल देते हैं।

५. क्षिप्रकारी तुम्हारे लिए जगत् के पालक पिता द्यौ और माता पृथिवी समृद्धिशाली और उत्पादन-शक्ति-युक्त दुग्ध लाये थे। जिस समय उनने दुग्धवती गौओं का विशुद्ध धन-युक्त दुग्ध तुम्हारे सामने रक्खा था, उस समय तुमने पणि का द्वार खोल दिया था।

६. इस समय इन्द्र प्रकट हुए हैं। वे उषा के समीप में विद्यमान सूर्य की तरह दीप्तिमान् हुए हैं। ये शत्रु-विजयी इन्द्र हमें मत्त

या प्रसन्न करें। हम भी हव्य अर्पण करके, स्तुति-भाजन सोम-रस को, पात्र-द्वारा, यज्ञ-स्थान में सिञ्चित करके, उसी सोम-रस का पान करें।

७. जिस समय सूर्य-किरण-द्वारा प्रकाशित मेघमाला जल-वर्षण करने को तैयार होती है, उस समय प्रेरक इन्द्र, यज्ञ के लिए, वृष्टि के आवरण का निवारण करते हैं। इन्द्र, जिस समय तुम सूर्य-रूप से कर्म के दिन में किरण दान करते हो, उस समय गाड़ीवान्, पशु-रक्षक और क्षिप्रगामी अपने-अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करते हैं।

८. जिस समय ऋत्विक् लोग तुम्हारे वर्द्धन के लिए मनोहर, प्रसन्न-कर, बलदायक और तुम्हारे उपभोग्य सोम से, प्रस्तर-द्वारा, रस निकालें उस समय हर्ष-दायक सोम-रस के उपभोक्ता अपने हरि नाम के दोनों घोड़ों को, दश-यज्ञ में, सोमपान कराओ। तुम युद्ध-निपुण हो। हमारे धनापहारी शत्रु का दमन करो।

९. तुमने ऋभु-द्वारा आकाश से लाये गये, शीघ्रगामी और लौह-मय वज्र को त्वरित-गति शुष्ण असुर के प्रति फेंका था। बहुलोक-पूजा-पात्र, उस समय तुम, कुत्स ऋषि के लिए, शुष्ण को अनेकानेक हननशील अस्त्रों-द्वारा मारते हुए घेरते हो।

१०. जिस समय सूर्य अन्धकार के साथ संग्राम से मुक्त हुए, उस समय हे वज्रधारिन्, तुमने उनके मेघ-रूप शत्रु का विनाश कर दिया। उस शुष्ण का जो बल सूर्य को आच्छादित किये हुए था और सूर्य के ऊपर प्रथित हुआ था, उसे तुमने भग्न कर दिया था।

११. इन्द्र, महान् बली और सर्व-व्यापक द्यौ और पृथिवी ने वृत्र-वध-कार्य में तुम्हें उत्साहित किया था। तुमने उस सर्वत्र व्यापक और श्रेष्ठ हार-युक्त वृत्र को महान् वज्र से, प्रवहमान जल में, फेंक दिया था।

१२. इन्द्र, तुम मानव-बन्धु हो। तुम जिन अश्वों की रक्षा करते हो, उन वायु-तुल्य, शोभन और वाहक अश्वों पर चढ़ो। कवि के पुत्र

उशना ने जो हर्षदायक वज्र तुम्हें दिया था, तुमने उसी वृत्र-ध्वंसक और शत्रु-नाशक वज्र को तीक्ष्ण किया है।

१३. सूर्य-रूप इन्द्र, हरि नामक अश्वों को रोको। इन्द्र का एतश नाम का घोड़ा रथ का चक्का खींचता है। तुम नौका-द्वारा नब्बे नदियों के पार पहुँचकर वहाँ यज्ञ-विहीन असुरों या अनार्यों से कर्त्तव्य कर्म कराओ।

१४. वज्रधर इन्द्र, तुम हमें इस दुर्दान्त दरिद्रता से बचाओ; समीप-वर्त्ती संग्राम में हमें पाप से बचाओ। उन्नत-कीर्त्ति और सत्य के लिए हमें रथ, अश्व, धन आदि दान करो।

१५. धन के लिए पूजनीय इन्द्र, हमारे पास से अपना अनुग्रह नहीं हटाना। हमें अन्न पुष्टि दे। मघवन्, तुम धनपति हो। हमें गौ दो। हम तुम्हारी पूजा में तत्पर हैं। हम पुत्र, पौत्र आदि के साथ धन प्राप्त करें।

अष्टम अध्याय समाप्त।

प्रथम अष्टक समाप्त।

अष्टक २

१२२ सूक्त

(देवता विश्वदेव। यहाँ से १२५ सूक्त तक ऋषि कक्षीवान् और छन्द त्रिष्टुप्।)

१. क्रोध-विरहित ऋत्विको, तुम लोग कर्म-फलदाता रुद्रदेव को पालनशील और यज्ञ-साधन अग्नि अर्पण करो। मैं भी उन द्युलोक के असुर (देव) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवी के मध्यस्थ-वासी मरुद्गण की स्तुति करता हूँ। जैसे तूणीर-द्वारा शत्रुओं को निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर मरुतों के द्वारा शत्रुओं को निरस्त करते हैं।

२. जैसे स्वामी के प्रथम आह्वान पर पत्नी शीघ्र आती है, वैसे ही अहोरात्र-देवता नानाविध स्तुतियों-द्वारा स्तुत होकर हमारे प्रथम आह्वान पर शीघ्र आवें। अरि-मर्दन सूर्य की तरह उषादेवी हिरण्यवर्ण किरणों से युक्त होकर और विशाल रूप धारण कर सूर्य की शोभा से शोभन हों।

३. बसनयोग्य और सर्वतोगामी सूर्य हमारी प्रसन्नता बढ़ायें। वारि-वर्षक वायु हमारा आनन्द बढ़ायें। इन्द्र और पर्वत (मेघ) हमारी बुद्धि को बढ़ायें। विश्वेदेवगण, हमें यथेष्ट अन्न देने की चेष्टा करें।

४. मैं उशिज का पुत्र हूँ। ऋत्विको, मेरे लिए अन्न-भक्षक और स्तुति-भाजन अश्विनीकुमारों को, संसार को प्रकाशित करनेवाली उषा के समय, बुलाओ। जल के नप्ता अग्नि की स्तुति करो तथा मेरे सदृश स्तोता मनुष्यों के मातृ-स्थानीय अहोरात्र-देवताओं की भी स्तुति करो।

५. देवगण, मैं उशिज का पुत्र कक्षीवान् हूँ। मैं तुम्हारे सम्बन्ध में कहने योग्य स्तोत्र का, आह्वान के लिए, पाठ करता हूँ। अश्विद्वय, जैसे अपने शरीरगत श्वेतवर्ण त्वचा-रोग के विनाश के लिए घोषा नामक ब्रह्मवादिनी महिला ने तुम्हारी स्तुति की, वैसे ही मैं भी स्तुति करता हूँ। देवो, फलदाता पूषा देव की भी स्तुति करता हूँ और अग्नि-सम्बन्धी धन की भी स्तुति करता हूँ।

६. मित्र और वरुण, मेरा आह्वान सुनो। यज्ञ-गृह में समस्त आह्वान सुनो। प्रसिद्ध धनशाली जलाभिमानी देव खेतों में जल बरसाकर हमारा आह्वान सुनें।

७. मित्र और वरुण, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जिस स्तोत्र से अन्न का नियमन होता है, वही स्तोत्र पढ़ा जाता है; इसलिए कक्षीवान् (ऋषि) को अपनी प्रसिद्ध गौ दो। कक्षीवान् के प्रति प्रसन्न होकर प्रसिद्ध और सुन्दर रथ से युक्त तुम लोग आओ तथा आकर मुझे पोषण करो।

८. मैं महान् धनवाले देवों के धन की स्तुति करता हूँ। हम मनुष्य हैं; इसलिए शोभन पुत्र-पौत्र आदि से संयुक्त होकर हम इस धन का संभोग करें। जो देव अङ्गिरा गोत्र में उत्पन्न कक्षीवान् के लिए अन्न प्रदान करते हैं, अश्व और रथ देते हैं, उनकी स्तुति करता हूँ।

९. हे मित्र और वरुण, जो तुम्हारा द्रोही है, जो किसी तरह भी तुम्हारा द्रोह करता है, जो तुम्हारे लिए सोमरस का अभिषव नहीं करता, वह अपने हृदय में यक्ष्मा रोग धारण करता है। जो व्यक्ति यज्ञ करता और स्तुति-वचनों से सोमरस तैयार करता है—

१०. वह व्यक्ति शान्त अश्व प्राप्त करता, मनुष्यों को परास्त करता और समान मनुष्यों में अन्न के लिए प्रसिद्ध होता है। अतिथियों को धन देता है और सारे युद्धों में हिंसक मनुष्यों की ओर निःशङ्क होकर सदा जाता है।

११. सर्वाधिपति, आनन्द-वर्द्धक, तुम मरण-रहित स्तोत्रकारी मनुष्य के (अर्थात् मेरे) आह्वान को सुनो और आओ। तुम आकाशव्यापी हो।

तुम अन्य-रक्षक-रहित रथ से संयुक्त यजमान की समृद्धि के साधन हव्य की प्रशंसा करना पसन्द करते हो।

१२. जिस यजमान के दसों इन्द्रियों के बलदायक अन्न की प्राप्ति के लिए हम आये हैं, उसे हमने मनुष्यों को विजय करनेवाला बल दिया—देवों ने ऐसा कहा। इन देवों का प्रकाशमान अन्न और धन अत्यन्त शोभा पाता है। उत्तम यज्ञ में देवता लोग अन्न दान करें।

१३. इन्द्रियाँ दस प्रकार की हैं; इसलिए ऋत्विक् लोग, दस अवयवों से युक्त अन्न धारण करके गमन करते हैं। हम विश्वदेवों की स्तुति करते हैं। इष्टाश्व और इष्टरश्मि नाम के राजा शत्रुतारक नेताओं (वरुणादि) का क्या कर सकते हैं।

१४. विश्वदेव हमें कर्णों में स्वर्ण, ग्रीवा में मणि पहननेवाले रूप-वान् पुत्र प्रदान करें। श्रेष्ठ विश्वदेवगण सद्योनिर्गत स्तुति और हव्य की आकांक्षा करें।

१५. मशर्शार राजा के चार पुत्र और विजयी अयवस राजा के तीन पुत्र मुझे बाधा देते हैं। मित्रावरुण, तुम्हारा अति विस्तृत और शोभन दीप्तिशाली रथ सूर्य की तरह कान्ति प्राप्त किये हुए है।

१२३ सूक्त

(देवता उषा)

१. दक्षिणा या उषा का रथ अश्व-संयुक्त हुआ। अमर देव लोग उस रथ पर सवार हुए। कृष्णवर्ण अन्धकार से उत्थित, पूजनीय, विचित्र-गतिमती और मनुष्य के निवासस्थानों का रोग दूर करनेवाली उषा उदित हुई।

२. सब जीवों के पहले ही उषा जागी। उषा अन्नदायिनी, महती और संसार को सुख देनेवाली है। वह युवती है; बार-बार आविर्भूत होती है। ऊर्ध्वस्थिता उषा देवी हमारे बुलाने पर पहले ही आती है।

३. सुजाता उषा देवी, तुम मनुष्यों की पालिका हो। तुम अभी मनुष्यों को जो प्रकाशांश प्रदान करती हो, उसी को प्रदान कर दानशील सविता या प्रेरक देव, सूर्य के आगमन के लिए, हमें पाप-रहित कहकर स्वीकार करें।

४. अहना या उषा प्रतिदिन नम्र भाव से हर एक घर की ओर जाती है। भोगेच्छाशालिनी और द्युतिमती प्रतिदिन आगमन करती और हव्यरूप धन का श्रेष्ठ भाग ग्रहण करती है।

५. सूनृता उषा, तुम भग या सूर्य की भगिनी और वरुण या प्रकाश देव की सहजाता हो। तुम श्रेष्ठ हो। सब देवता तुम्हारी स्तुति करें। इसके अनन्तर जो दुःख का उत्पादक है, वह आवे। तुम्हारी सहायता पाकर उसे रथ-द्वारा हम जीतेंगे।

६. सच्ची बातें कही जायँ, प्रज्ञा प्रबुद्ध हो। अत्यन्त प्रकाशमान आग प्रज्वलित हों, इससे विचित्र प्रभावती उषा अन्धकारावृत स्पृहणीय धन का आविष्कार करती है।

७. विलक्षण रूपवान् दोनों अहोरात्र-देवता व्यवधान-रहित होकर चलते हैं। एक जाते हैं, एक आते हैं। पर्यायगामी दोनों देवताओं में एक पदार्थों को छिपाते हैं, दूसरे (उषा) अतीव दीप्तिमान् रथ-द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं।

८. उषा देवी जैसी आज है, वैसी ही कल भी विशुद्ध है। प्रतिदिन वह वरुण या सूर्य के अवस्थित-स्थान से तीस योजन आगे अवस्थित होती है। एक-एक उषा उदय-काल में ही गमन-आगमनरूप कार्य सम्पादित करती है।

९. उषा दिन के प्रथमांश के आगमन का काल जानती है। वह स्वयं ही दीप्त और श्वेतवर्ण है। कृष्णवर्ण से उसकी उत्पत्ति हुई है। वह सूर्य-लोक में मिश्रित होती है; किन्तु उसको हानि नहीं पहुँचाती; प्रत्युत उसकी शोभा बढ़ाती है।

१०. देवि, कन्या की तरह अपने अंगों को विकसित करके तुम दानपरायण और दीप्तिमान् सूर्य के निकट जाओ। अनन्तर युवती की तरह अतीव प्रकाश-सम्पन्न होकर, कुछ हँसती हुई, सूर्य के सामने अपना हृदय-देश उघारो।

११. जैसे माता-द्वारा देह के धो दिये जाने पर कन्या का रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शन के लिए अपने शरीर को प्रकाशित करो। तुम कल्याणशीला हो। अन्धकार को दूर कर दो। अन्य उषायें तुम्हारे कार्य को नहीं व्याप्त करेंगी।

१२. अश्व और गौ से सम्पन्न, सर्वकालीन और सूर्यरश्मियों के साथ तमोनिवारण के लिए चेष्टा-विशिष्ट उषा-देवियाँ कल्याणकर नाम धारण करके जाती और आती हैं।

१३. उषा, ऋतु या सूर्य की रश्मि का अनुधावन करती हुई हमें कल्याणकारिणी प्रज्ञा प्रदान करो। हम तुम्हें बुलाते हैं। अन्धकार दूर करो। हम हविर्लक्षण धन से युक्त हैं। हमारे पास धन हो।

१२४ सूक्त

(देवता उषा)

१. अग्नि के समिद्धमान होने पर उषा, अन्धकार का निवारण करती हुई, सूर्योदय की तरह प्रभूत ज्योति फैलाती है। हमारे व्यवहार के लिए सविता द्विपद और चतुष्पद से संयुक्त धन देते हैं।

२. उषा देव-सम्बन्धी व्रतों में विघ्न नहीं करती, मनुष्यों की आयु का ह्रास करती, अतीत और नित्य उषाओं के समान है और आगामिनी उषाओं की प्रथमा है। उषा द्युति फैलाती है।

३. उषा स्वर्ग-पुत्री है। वह प्रकाश-द्वारा आच्छादित होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशा की ओर दिखाई देती है। उषा मानो सूर्य का अभिप्राय जानकर ही उनके मार्ग पर अच्छी तरह भ्रमण करती है। वह कभी दिशाओं को नहीं मारती।

४. जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करते हैं और नोधा ऋषि ने जैसे अपनी प्रिय वस्तु का आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषा ने भी अपने को आविष्कृत किया है। जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, वैसे ही उषा भी मनुष्यों को जगाती है। अभिसारिकाओं के बीच उषा सबसे अधिक आती है।

५. विस्तृत आकाश के पूर्व भाग में उत्पन्न होकर उषा दिशाओं को चेतना-युक्त करती है। उषा पितृ-स्थानीय स्वर्ग और पृथिवी के अन्तराल में रहकर अपने तेज से देवों को परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूप से प्रख्यात हुई है।

६. इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलता से दर्शन-निमित्त मनुष्यादि और देवादि में से किसी को भी नहीं छोड़ती। प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीर में क्रमशः स्पष्ट होकर छोटे या बड़े किसी से भी नहीं हटती।

७. भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादि के अभिमुख गमन करती हैं, गतभर्त्तृका जैसे धन-प्राप्ति के लिए घर आती हैं, उषा भी वैसा ही करती है। जैसे पत्नी पति की अभिलाषिणी होकर सुन्दर वस्त्र पहनती हुई हास्य-द्वारा अपनी दन्त-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती है।

८. भगिनी-रूपिणी रात्रि ने बड़ी बहन (उषा) को अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषा को जनाकर स्वयं चली जाती है। सूर्य-किरणों से अन्धकार हटाकर उषा विद्युद्राशि की तरह जगत् को प्रकाशित करती है।

९. इन सब भगिनीभावापन्न प्राचीन उषाओं में पहली दूसरी के पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं। प्राचीन उषाओं की तरह नई उषा सुदिन पैदा करती हुई हमें प्रभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करे।

१०. धनवती उषा, हविर्दाताओं को जगाओ। पणिलोग न जागकर निद्रा में पड़ें। धनशालिनी, धनी यजमानों को समृद्धि दो।

सूनृते, तुम सारे प्राणियों को क्षीण करती हुई यजमान को समृद्धि दो।

११. युवती उषा पूर्व दिशा से आती है। उसके रथ में लाल अश्व जुते हैं। वह दिन की सूचना करके रूप-रहित अन्तरिक्ष में अन्धकार का निवारण करती है। उसका आगमन होने पर घर-घर में आग जलती है।

१२. उषा, तुम्हारा उदय होने पर चिड़ियाँ अपने घोंसले से ऊपर उड़ती हैं। अन्न-प्राप्ति में आसक्त होकर मनुष्य ऊपर मुँह करके जाते हैं। देवि, देव-पूजन-गृह में अवस्थित हव्य-दाता मनुष्य के लिए प्रभूत धन ले आओ।

१३. स्तुति-पात्र उषाओ, मेरे मन्त्र-द्वारा तुम स्तुत हो। मेरी समृद्धि की इच्छा करके हमें वर्द्धित करो। देवियो, तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके हम सहस्रसंख्यक और शतसंख्यक धन प्राप्त करें।

१२५ सूक्त

(देवता दान)

१. स्वनय राजा ने, प्रातःकाल आकर, रत्नादि रख दिये। कक्षीवान् ने उठकर उन्हें ग्रहण किया। उस रत्नराजि-द्वारा प्रजा और आयु की वृद्धि करके धन लाभ किया।

२. उन राजा के पास बहुत गो-धन हो। उनके पास बहुत सुवर्ण और बहुत घोड़े हों। उन्हें इन्द्र बहुत अन्न दें। जैसे लोग रस्सी से पशु, पक्षी आदि को बाँध देते हैं, उसी तरह उन्होंने भी प्रातःकाल पैदल ही आकर आगमनकारी को धन-द्वारा आबद्ध किया।

३. मैं यज्ञ के त्राता शोभनकर्मा को देखने की इच्छा करके, सुसज्जित रथ पर चढ़कर, आज उपस्थित हुआ हूँ। दीप्तिशाली मादक सोम के अभिषुत रस का पान करो। प्रभूत-वीर-पुत्रादि-विशिष्ट को प्रिय और सत्य वाक्य-द्वारा समृद्ध करो।

४. दुग्धवती और कल्याणदायिनी गायें, यजमान और यज्ञ-संकल्पकारी के पास जाकर, दुग्ध प्रदान करती हैं। समृद्धि के कारणभूत घृतधारा, तर्पणकारी और हितकारी पुरुषों के पास, चारों ओर से उपस्थित होती हैं।

५. जो व्यक्ति देवों को प्रसन्न करता है, वह स्वर्ग के पृष्ठदेश में अवस्थान करता तथा देवों के बीच गमन करता है। प्रवहमान जल, उसके पास, तेजोविशिष्ट सार प्रदान करता है। पृथिवी शस्य आदि से सफल होकर उसे सन्तोष प्रदान करती है।

६. जो व्यक्ति दान देता है, उसी को ये सारी मणि-मुक्तादि वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। दानदाता के लिए द्युलोक में सूर्य रहते हैं। दान-दाता ही जरा-मरण-शून्य स्थान प्राप्त करते हैं। दान देनेवाले दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

७. जो देवों को प्रसन्न रखता है, उसे दुःख और पाप नहीं मिलते; शोभन-व्रतशाली स्तोता भी जराग्रस्त नहीं होते। देवों के प्रीति-प्रदाता और स्तुतिकर्त्ता से भिन्न पुरुषों को पाप आश्रित करता है। जो देवों को प्रसन्न नहीं करते, उन्हें शोक प्राप्त होता है।

१२६ सूक्त

(१ से ५ मंत्र राजा भावयव्य के लिए हैं और इनके ऋषि कक्षीवान् हैं। ६ठा मंत्र राजा की स्त्री के लिए है और इसके ऋषि उक्त राजा हैं। ७ वाँ मंत्र लोमशा के पति के लिए है और इसके ऋषि लोमशा हैं। छन्द १ से ५ तक त्रिष्टुप् और अन्त के दो अनुष्टुप्।)

१. सिन्धुनिवासी भावयव्य-पुत्र स्वनय के लिए, अपने बुद्धि-बल से, बहुसंख्यक स्तोत्र सम्पादन (प्रणयन) करता हूँ। हिंसा-विरहित राजा ने कीर्त्ति-प्राप्ति की इच्छा से मेरे लिए हजार सोम-यज्ञों का अनुष्ठान किया है।

२. असुर-राजा के ग्रहण के लिए मुझसे याचना करने पर मैं (कक्षीवान्) ने उनसे १०० निष्क (आभरण या स्वर्णमाप), १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये। स्वर्ग-लोक में राजा नित्य कीर्त्ति-विस्तार करेंगे।

३. स्वनय द्वारा भूरे रंग के अश्ववाले दस रथ मेरे पास आये, जिन पर वधुएँ आरूढ़ थीं। १०६० गायें भी पीछे से आईं। मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करने के पश्चात् ही सब अपने पिता को दे दिया।

४. हजार गायों के सामने, दसों रथों में चालीस (१-१ में ४-४) लोहितवर्ण अश्व पंक्ति-बद्ध होकर चलने लगे। कक्षीवान् के अनुचर उनके लिए घास आदि जुटाकर मदमत्त और स्वर्णाभरण-विशिष्ट एवं सतत गमनशील अश्वों को मलने लगे।

५. बन्धुगण, पहले के दान का स्मरण करके तुम्हारे लिए तीन और आठ—सब ग्यारह रथ मैंने ग्रहण किये हैं। बहुमूल्य गायों को लिया है। प्रजाओं की तरह परस्पर-अनुराग-सम्पन्न होकर संकटापन्न अङ्गिरा लोग कीर्त्ति प्राप्त करने की चेष्टा करें।

६. यह सम्भोग योग्य रमणी (रोमशा) अच्छी तरह आलिङ्गित होकर, सुतवत्सा नकुली की तरह, चिरकाल तक रमण करती है। यह बहुरेतो-युक्ता रमणी मुझे (स्वनय राजा को) बहु बार भोग प्रदान करती है।

७. पत्नी पति से कहती है—मेरे पास आकर मुझे अच्छी तरह स्पर्श करो। यह न जानना कि मैं कम रोमवाली अतः भोग के योग्य नहीं हूँ। मैं गान्धारी मेषी की तरह लोमपूर्णा और पूर्णावयवा हूँ।

१२७ सूक्त

(९ अनुवाक। दैवता अग्नि। यहाँ से १३९सूक्तों तक के ऋषि दिवोदास के पुत्र परुच्छेद। छन्द अतिधृति।)

१. विद्वान् विप्र या ब्राह्मण की तरह प्रज्ञावान्, बल के पुत्र-स्वरूप सबके निवास-भूमि-रूप और अत्यन्त दानशील अग्नि को मैं होता कहकर

सम्मान-युक्त करता हूँ। यज्ञ-निर्वाहकारी अग्नि उत्कृष्ट-देव-पूजा-समर्थ होकर चारों ओर फैली हुई घृत की दीप्ति का अनुसरण करके अपनी शिखा-द्वारा उस घृत को स्वीकृत करते हैं।

२. मेधावी शुभ्रदीप्ति अग्निदेव, हम यजमान हैं। हम मनुष्यों के उपकार के लिए मननशील और अत्यन्त प्रसन्नता-दायक मन्त्र-द्वारा अङ्गिरा लोगों में महान् तुम्हें बुलाते हैं। सर्वतोगामी सूर्य की तरह तुम यजमानों के लिए देवों को बुलाते हो। केश की तरह विस्तृत ज्वाला-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी हो। यजमान लोग अभिमत फल पाने के लिए तुम्हें प्रसन्न करें।

३. अग्निदेव अतीव दीप्ति से संयुक्त ज्वाला-द्वारा भली भाँति दीप्यमान हैं। वे विद्रोहियों के छेदनार्थ परशु की तरह विनाश में अमूल्य हैं। उनके साथ मिलने पर दृढ़ और स्थिर वस्तु भी जल की तरह शीर्ण हो जाती है। शत्रुओं का विनाश करनेवाला धनुर्धर जैसे नहीं भागता, वैसे ही अग्नि भी शत्रुओं को परास्त किये बिना नहीं भागते।

४. जैसे विद्वान् पुरुष को द्रव्य दान किया जाता है, उसी प्रकार अग्नि को सारवान् हव्य मन्त्रानुक्रम से प्रदान किया जाता है। तेजो-विशिष्ट यज्ञादि-द्वारा अग्नि हमारी रक्षा के लिए स्वर्गादि प्रदान करते हैं। यजमान भी रक्षार्थ, अग्नि को हव्य देते हैं। यजमान के द्वारा प्रदत्त हव्य में प्रवेश करके अग्नि, अपनी ज्योतिःशिखा-द्वारा, उसे वन की तरह जला डालते हैं। अग्निदेव अपनी ज्योति-द्वारा अन्नादि का परिपाक करते और तेज के द्वारा दृढ़ द्रव्य को विनष्ट करते हैं।

५. रात में अग्निदेव दिन से भी अधिक दर्शनीय हो जाते हैं। दिन में अग्नि पूरी आयु या तेजस्विता से शून्य रहते हैं। हम अग्नि के उद्देश्य से वेदी के पास हव्य दान करते हैं। जैसे पिता के पास पुत्र दृढ़ और सुखकर गृह प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अन्न ग्रहण करता है। भक्त और अभक्त को समझकर भी अग्नि दोनों की रक्षा करते हैं। हव्य-भक्षण करके अग्नि अजर हो जाते हैं।

६. मरुत् के बल की तरह स्तवनीय अग्नि यथेष्ट ध्वनि से युक्त हैं। कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् श्रेष्ठ भूमि पर अग्नि का यज्ञ करना उचित है। सेना-विजय करने के लिए अग्नि का याग करना उचित है। अग्नि हव्य भक्षण करते हैं। वे सर्वत्र दानशील और यज्ञ की पताका हैं। वे सर्वत्र पूजनीय हैं। यजमानों के लिए हर्षदाता और प्रसन्न अग्नि के मार्ग की, निर्भय राजपथ की तरह, सुख-लाभ के लिए, सब लोग सेवा करते हैं।

७. श्रौत और स्मार्त्त—उभय प्रकार के अग्नि का गुण कहनेवाले, दीप्तिशाली, नमस्कार-प्रवीण और हव्यदाता भृगुगोत्रज महर्षि लोग, हवि देने के लिए, अरणि-द्वारा अग्नि का मन्थन करके स्तुति करते हैं। प्रदीप्त अग्नि सारे धनों के अधीश्वर हैं। अग्नि यज्ञवाले हैं और भली-भाँति प्रिय हव्य भोगनेवाले हैं। अग्नि मेधावी हैं और वे अन्य देवताओं को भी भाग देते हैं।

८. सारे यजमानों के रक्षक, सारे मनुष्यों के एक से गृह-पालक, सर्व-सम्मत-फल-विशिष्ट, स्तुति-वाहक और मनुष्य आदि के लिए अतिथि की तरह पूज्य अग्नि को, भोग के लिए, हम बुलाते हैं। जैसे पुत्र लोग पिता के पास जाते हैं, वैसे ही हव्य के लिए ये सारे देवता अग्नि के पास आते हैं। ऋत्विक् लोग भी देवों के यज्ञ-काल में अग्नि को हव्य प्रदान करते हैं।

९. जैसे देवों के यजन के लिए धन पैदा होता है, उसी प्रकार हे अग्नि, तुम भी देवों के यज्ञार्थ उत्पन्न होते हो। अपने बल से तुम शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता और अतीव तेजस्वी हो। तुम्हारा आनन्द अत्यन्त बल-दाता है। तुम्हारा यज्ञ अत्यन्त फल-प्रद है। हे अजर और हे भक्तों के जरा-निवारक अग्नि, इसी लिए यजमान लोग, दूतों की तरह, तुम्हारी पूजा करते हैं।

१०. हे स्तोता लोगो हविवाले यजमान इन अग्नि के लिए सारी देवी-भूमि पर बार-बार गमन करते हैं; इसलिए तुम्हारा स्तोत्र उस

पूज्य, शत्रु-पराभवकारी, प्रातःकाल में जागरणशील और पशु-दाता अग्नि की प्रीति उत्पन्न करने में समर्थ हो। धनवान् के पास जैसे बन्दी स्तव करता है, वैसे ही होता लोग पहले, देवों में श्रेष्ठ, अग्नि की स्तुति करते हैं।

११. हे अग्नि, यद्यपि तुम्हें पास में ही हम प्रदीप्त देखते हैं तथापि तुम देवों के साथ आहार करते हो। तुम अपने शोभन अन्तःकरण से अपने अधीन के लिए अनुग्रह करके पूजनीय धन लाते हो। बलवान् अग्निदेव, हमारे लिए यथेष्ट अन्न प्रदान करो, जिससे हम पृथिवी को देख और भोग सकें। मघवन् अग्नि, स्तोताओं के लिए वीर्यशाली धन प्रदान करो। यथेष्ट बल-सम्पन्न होकर क्रूर व्यक्ति जैसे शत्रु-विनाश करता है, वैसे ही हमारे शत्रु का विनाश करो।

१२८ सूक्त

(अतिधृत छन्द)

१. देवों को बुलानेवाले और अतीव यज्ञशील ये अग्नि फल-प्रार्थियों के और अपने व्रत या हविर्भोजन के उद्देश्य से मनुष्य से ही उत्पन्न होते हैं। सारे विषयों के कर्त्ता अग्निदेव बन्धुकामी और अन्नाभिलाषी यजमान के धन-स्थानीय हैं। पृथिवी में सार-भूत वेदी पर, यज्ञ-स्थान में, अहिंसित, होम-निष्पादक तथा ऋत्विग्वेष्टित अग्नि बैठे हैं।

२. हम लोग यज्ञानुष्ठान और घृत आदि से युक्त तथा नम्रता से सम्पन्न स्तोत्र-द्वारा बहु हव्यवाले और देव-यज्ञ में साधक अग्नि की, परितोष के साथ, सेवा करते हैं। वे अग्नि हमारे हव्यरूप अन्न को लेने में समर्थ होकर नाश को नहीं प्राप्त होंगे। मनु के लिए मातरिश्वा ने अग्नि को, दूर से लाकर, प्रदीप्त किया था। इसी प्रकार, दूर से, हमारी यज्ञशाला में अग्नि आवें।

३. सदा गाये या स्तुति किये जानेवाले, हविःसम्पन्न, अभीष्ट-फलदाता और सामर्थ्यशाली अग्नि शब्द करके जाते हुए तुरत पार्थिव वेदी

के चारों ओर शब्द करके आते हैं। अग्निदेव स्तोत्र ग्रहण करके अग्रस्थानीय शिखा-द्वारा चारों ओर प्रकाशित हो रहे हैं। उच्चस्थानीय अग्नि उत्तम यज्ञ में तुरत आते हैं।

४. शोभनकर्मा और पुरोहित अग्नि हर एक यजमान के घर में नाश-रहित यज्ञ को जान सकते हैं। अग्नि कर्म-द्वारा यज्ञ जान सकते हैं। वे कर्मों के विविध फलदाता बनकर यजमान के लिए अन्न की इच्छा करते हैं। अग्नि हव्य आदि को ग्रहण करते हैं; क्योंकि वे घृत-भक्षी अतिथि के रूप में उत्पन्न हुए हैं। अग्नि के प्रवृद्ध होने पर हव्यदाता विविध फल प्राप्त करते हैं।

५. जैसे मरुत् लोग भक्षणीय द्रव्य को एक में मिलाते हैं, इन अग्नि को जैसे भक्ष्य द्रव्य दिया जाता है, वैसे ही यजमान लोग कर्म-द्वारा अग्नि की प्रबल शिखा में, तृप्ति के लिए, भक्षणीय द्रव्य मिलाते हैं। अपने धन के अनुसार यजमान हव्य दान करता है। जो पाप हमारा हरण करता है, उस हरणकारी दुःख और हिंसक पाप से अग्नि हमें बचायें।

६. विश्वात्मक, महान् और विरामरहित अग्नि सूर्य की तरह दक्षिण हाथ में धन रखते हैं। उनका वह हाथ यज्ञकारी के लिए श्लथ होता है, खुला रहता है। केवल हवि पाने की आशा से अग्नि उसे नहीं छोड़ते। अग्निदेव, सारे हविः-कामी देवों के लिए तुम हवि वहन करते हो। सब सुकृत पुरुषों के लिए अग्नि वरणीय धन प्रदान करते और स्वर्ग का द्वार उन्मुक्त करते हैं।

७. मनुष्य के पाप-निमित्तक यज्ञ में अग्नि विशेष हितकारी हैं। विजयी राजा की तरह यज्ञ-स्थल में अग्नि मनुष्य के पालक और प्रिय हैं। यजमानों की यज्ञवेदी में रखे हव्य के लिए अग्नि आते हैं। हिंसक यज्ञ-बाधक के भय से और उन महान् पापदेव की हिंसा से अग्निदेव हमारा उद्धार करें।

८. धनधारक, सर्व-प्रिय, सुबुद्धिदाता और विरामरहित अग्नि की, ऋत्विक् लोग स्तुति करते और उन्हें भली भाँति प्राप्त किये हुए

हैं। हव्यवाही, प्राणियों के प्राण-रूप, सर्वप्रज्ञा-समन्वित, देवों के बुलानेवाले, यजनीय और मेधावी अग्नि को ऋत्विकों ने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। अर्थाभिलाषी होकर ऋत्विक् लोग, अग्नि को हव्य-रूप अन्न देने की इच्छा करते हुए, आश्रय-प्राप्ति के लिए, रमणीय और शब्दकारी अग्नि को प्राप्त हुए हैं।

१२९ सूक्त

(देवता इन्द्र)

१. हर्ष-सम्पन्न यज्ञगामी इन्द्र, यज्ञ-लाभ के लिए रथ पर चढ़कर जिस प्रभूत ज्ञान-युक्त यजमान के पास जाते हो और जिसे धन और विद्या में उन्नत करते हो, उसे तुरत सफल-मनोरथ और हव्य-शाली कर दो। हर्ष-युक्त इन्द्र, हम पुरोहितों में भी पुरोहित हैं; हमारे स्तव करने पर तुम शीघ्रता से हमारी स्तुति और हव्य ग्रहण करते हो।

२. इन्द्र, तुम युद्ध के नेता हो। तुम मरुतों के साथ प्रधान-प्रधान युद्धों में स्पर्द्धा के साथ शत्रु-संहार में समर्थ हो। वीरों के साथ तुम स्वयं संग्राम-सुख अनुभव करते हो। ऋत्विकों की स्तुति करने पर तुम उन्हें अन्न दो। हमारी स्तुति सुनो। प्रार्थनापरायण ऋत्विक् लोग गमनशील अन्नवान् इन्द्र की, अश्व की तरह, सेवा करते हैं।

३. इन्द्र, तुम शत्रुओं का नाश करनेवाले हो। वृष्टिपूर्ण त्वचारूप मेघ का भेदन करके जल गिराते हो और मर्त्य की तरह गमनशील मेघ को पकड़कर और उसे वृष्टि-रहित करके छोड़ देते हो। इन्द्र, तुम्हारे इस कार्य को हम तुमसे और द्यु,यशोयुक्त रुद्र, प्रजाओं के सुखदाता मित्र तथा वरुण से कहेंगे।

४. ऋत्विको, अपने यज्ञ में हम इन्द्र को चाहते हैं। इन्द्र हमारे सखा, सर्व-यज्ञगामी, शत्रुओं के अभिभवकारी और हमारे सहायक हैं। वे यज्ञ-विघ्नकारियों को पराभूत करते और मरुतों में सम्मिलित

हैं। इन्द्र, तुम हमारे पालन के लिए हमारी रक्षा करो। लड़ाई के क्षेत्र में तुम्हारे विरुद्ध शत्रु नहीं खड़ा हो सकता। तुम्हीं सारे शत्रुओं का निवारण करते हो।

५. उग्र इन्द्र, अपने भक्त यजमान के विरुद्धाचारी को, उग्र-रक्षणकार्य-रूप तेजोमय उपायों से, अवनत कर देते हो। जैसे तुम पहले हमारे पूर्वजों को मार्ग दिखाकर ले गये थे, वैसे ही हमें भी ले जाओ। संसार तुम्हें निष्पाप जानता है। इन्द्र, तुम जगत्पालक होकर मनुष्य के सारे पापों को दूर करते हो। हमारे सामने यज्ञ-फल लाकर अनिष्टों का विनाश करो।

६. भव्य चन्द्र के लिए हम इस स्तोत्र को पढ़ते हैं। चन्द्र, आग्रह के साथ, हमारे कर्म के उद्देश्य से, राक्षस-विनाशी और बुलाने योग्य इन्द्र की तरह आते हैं। वे स्वयं हमारे निन्दक दुर्बुद्धि के वध का उपाय उद्भूत करके उसे दूर कर देंगे। चोर क्षुद्र जल की तरह अतीव निकृष्टता से अधःपतित हो।

७. इन्द्र, हम स्तोत्र-द्वारा तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करके तुम्हें भजते हैं। धनवान् इन्द्र, हम सामर्थ्यवान्, रमणीय, सदा वर्त्तमान और पुत्र-भृत्यादि-विशिष्ट धन का उपभोग करें। इन्द्र, तुम्हारी महिमा अज्ञेय है। हम उत्तम स्तोत्र और अन्न प्राप्त करें। हम यज्ञ-निष्पादक इन्द्र को यज्ञाभिलाष फल देनेवाले और यशोवर्द्धक आह्वान-द्वारा प्राप्त हों।

८. ऋत्विको, तुम्हारे और हमारे लिए इन्द्र यशस्कर आश्रयदान-द्वारा दुर्बुद्धि लोगों के विनाशक संग्राम में प्रवृद्ध हों और उन्हें विदीर्ण करें। हमारे भक्षक शत्रुओं ने हमारे विरुद्ध, हमारे नाश के लिए, जो वेगवती सेना भेजी थी, वह सेना स्वयं हत हो गई है; हमारे पास पहुँची भी नहीं; शत्रुओं के पास भी नहीं लौटी।

९. इन्द्र, राक्षस शून्य और पाप-रहित मार्ग से प्रचुर धन लेकर हमारे पास आओ। इन्द्र, तुम दूर देश और निकट से आकर हमारे साथ

मिलो। तुम दूर और निकट प्रदेश से, यज्ञ-निर्वाह के लिए हमारी रक्षा करो। यज्ञ-निर्वाह करके सदा हमें पालित करो।

१०. इन्द्र, जिस धन से हमारी आपदा का उद्धार हो सकता है, उसी धन से हमारा उद्धार करो। तुम उग्ररूप हो। जैसी मित्र की महिमा है, हमारी रक्षा के लिए तुम्हारी भी वैसी ही महिमा हो। हे बलवत्तम, हमारे रक्षक, त्राता और अमर इन्द्र, किसी भी रथ पर चढ़-कर आओ। शत्रुनाशक इन्द्र, हमें छोड़कर सबको बाधा दो। शत्रु-भक्षक, अतीव कुकर्मी शत्रु को बाधा दो।

११. शोभन स्तुति से युक्त इन्द्र, दुःख से हमें बचाओ; क्योंकि तुम सदा दुष्टों को नीचा दिखाते हो। हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर यज्ञ-विघ्नकारियों को दमन करो। तुम पाप-राक्षस के हन्ता और हमारे समान बुद्धिमानों के रक्षक हो। जगन्निवास इन्द्र, इसी लिए परमेश्वर ने तुम्हें उत्पन्न किया है। निवास-प्रद इन्द्र, राक्षसों के विनाश के लिए तुम्हारी उत्पत्ति हुई है।

१३० सूक्त

(देवता इन्द्र। त्रिष्टुप् और अत्यष्टि छन्द।)

१. जैसे यज्ञशाला में ऋत्विकों के पति यजमान हैं और जैसे नक्षत्रों के पति चन्द्र अस्ताचल जाते हैं, वैसे ही तुम भी, पुरोवर्त्ती सोम की तरह, स्वर्ग से हमारे पास आओ। जैसे पुत्र लोग अन्न-भक्षण के लिए पिता को बुलाते हैं, वैसे ही तुम्हें हम सोमाभिषव में बुलाते हैं। ऋत्विकों के साथ हव्य ग्रहण के लिए महान् इन्द्र को हम बुलाते हैं।

२. जैसे शोभनगति वृषभ पिपासित होकर कूप-जल का पान करता है, हे रमणीयगति इन्द्र, वैसे ही तृप्ति, पराक्रम, महत्त्व और आनन्दो-त्पत्ति के लिए प्रस्तर द्वारा अभिषुत और जल-सिक्त अथवा दशापवित्र-द्वारा शोधित सोमरस पान करो। जैसे हरि नामक अश्व सूर्य को लाते हैं, वैसे ही तुम्हारे अश्वगण प्रतिदिन तुम्हें लायें।

३. जैसे चिड़ियाँ दुर्गम स्थान में अपने बच्चों की रक्षा करके उन्हें प्राप्त करती या बच्चोंवाली होती हैं, वैसे ही इन्द्र ने भी अत्यन्त गोपनीय स्थान में स्थापित और अनन्त तथा महान् प्रस्तर-राशि में परिवेष्टित सोमरस को स्वर्ग से प्राप्त किया। अङ्गिरा लोगों में अग्रगण्य वज्रधारी इन्द्र ने जैसे पहले, सोमपान की इच्छा से, गोशाला को प्राप्त किया था, वैसे ही सोमरस को भी पाया। इन्द्र ने चारों ओर मेघावृत और अन्न के कारण जल के द्वारों को खोलते हुए पृथिवी में चारों ओर अन्न विस्तार किया।

४. इन्द्र दोनों हाथों में अच्छी तरह वज्र धारण करके, जैसे मंत्रों-द्वारा जल को तीक्ष्ण किया जाता है, वैसे ही शत्रु के प्रति फेंकने के लिए वज्र के तीक्ष्ण होने पर भी, उसे और भी तीक्ष्ण करते हैं; वृत्र-विनाश के लिए और भी तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र, जैसे वृक्ष काटने-वाले वृक्ष को काटते हैं, वैसे ही तुम अपनी शक्ति, तेज और शरीर-बल से वर्द्धित होकर हमारे शत्रुओं का छेदन करते हो, मानों उन्हें कुठार से काटते हो।

५. इन्द्र, तुमने, समुद्र की ओर गमन करने के लिए, रथ की तरह, नदियों को अनायास बनाया है। जैसे योद्धा रथ को बनाते हैं, वैसे ही तुमने भी बनाया है। जैसे मनु के लिये गायें सर्वार्थदाता हैं और जैसे समर्थ मनुष्य के लिये गायें सर्वदुग्धप्रद हैं, वैसे ही हमारी अभि-मुखिनी नदियाँ एक ही प्रयोजन से जल-संग्रह करती हैं।

६. जैसे कर्म-कुशल और धीर मनुष्य रथ बनाता है, वैसे ही धना-भिलाषी मनुष्यों ने तुम्हारी यह स्तुति की है। उन्होंने अपने कल्याण के लिए तुम्हें प्रसन्न किया है। जैसे संसार में दिग्विजयी की प्रशंसा की जाती है, वैसे ही हे मेधावी और दुर्द्धर्ष इन्द्र, उन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की है। जैसे संग्राम में अश्व की प्रशंसा होती है, वैसे ही बल, धनरक्षण और सारे मंगलों की प्राप्ति के लिए तुम्हारी प्रशंसा होती है।

७. संग्राम-काल में नृत्यकर्त्ता इन्द्र, तुमने हविःप्रद और अभीष्ट-दाता दिवोदास राजा के लिए नब्बे नगरों को नष्ट किया था। नृत्यशील इन्द्र, तुमने वज्र द्वारा नष्ट किया था। उग्र इन्द्र, तुमने अतिथि-सेवक दिवोदास राजा के लिए पर्वत से शम्बर असुर को नीचे पटका था और दिवोदास राजा के लिए अपनी शक्ति से अगाध धन दिया था—और क्या, समस्त धन दिया था।

८. युद्ध में इन्द्र आर्य यजमान की रक्षा करते हैं। असंख्य बार रक्षा करनेवाले इन्द्र सारे युद्धों में उसकी रक्षा करते हैं। सुखकारी युद्ध में उसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र मनुष्य के लिए व्रत-शून्य व्यक्तियों का शासन करते हैं। इन्द्र ने कृष्ण नाम के असुर की काली त्वचा उखाड़कर उसका (अंशुमती नदी के तट पर) वध किया। इन्द्र ने उसे जला डाला। इन्द्र ने सारे हिंसकों को जला डाला। उन्होंने समस्त निष्ठुर व्यक्तियों को भस्मसात् किया।

९. सूर्य का रथ-चक्र ग्रहण करने पर इन्द्र के शरीर में बल की वृद्धि हुई। इन्द्र ने उस चक्र को फेंका और अरुणवर्ण-रूप धारण करके, शत्रुओं के पास जाते हुए, उनके वाक्य का हरण कर लिया। तमोनिवारक इन्द्र ने उनके वाक्य का हरण कर लिया। वीरकर्मा इन्द्र, उशना की रक्षा के लिए, जैसे तुम दूरस्थित स्वर्ग से आये थे, वैसे ही हमारे समस्त सुख-साधन धन के साथ हमारे पास शीघ्र आओ। दूसरों के पास भी तुम इसी प्रकार आते हो। हमारे पास प्रतिदिन आते हो।

१०. जल-वर्षक और नगर-विदारक इन्द्र, हमारे नये मन्त्र से संतुष्ट होकर विविध प्रकार की रक्षा और सुख देते हुए हमें प्रतिपालित करो। हम दिवोदास के गोत्रज हैं; तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम दिन में सूर्य की तरह, हमारी स्तुति से प्रवृद्ध हो जाओ।

१३१ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द अत्यष्टि।)

१. विशाल द्युलोक स्वयं इन्द्र के पास नत हुआ है। विस्तृता पृथिवी वरणीय या स्वीकरणीय स्तुति-द्वारा इन्द्र के पास नत हुई है। अन्न के लिए यजमान लोग वरणीय हव्य-द्वारा नत हुए हैं। सारे देवों ने एक मत से इन्द्र को अग्रणी किया है। मनुष्यों के सारे यज्ञ और मनुष्यों के सारे दान आदि इन्द्र के सुख के निमित्त हों।

२. इन्द्र, तुम्हारे पास अभिमत फल की प्राप्ति की आशा में प्रत्येक सवन में यजमान लोग तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं। तुम सबके लिए समान हो। स्वर्ग-प्राप्ति के लिए केवल तुम्हें ही हव्य दिया जाता है। जैसे नदी पार होने के समय नौका खड़ी की जाती है, वैसे ही हम सेना के आगे तुम्हें खड़ा करते हैं। यज्ञ-द्वारा मनुष्य इन्द्र की ही चिन्ता करते हैं। मनुष्य स्तुति-द्वारा इन्द्र की चिन्ता करता है।

३. इन्द्र, तुम्हारे सेवक और निष्पाप यजमान सस्त्रीक तुम्हारी तृप्ति की इच्छा से, बहुसंख्यक गोधन की प्राप्ति के लिए, बहुत हव्य दान करते हुए तुम्हारे उद्देश्य से यज्ञ-विस्तार करते हैं। वे गोधन चाहते हैं और स्वर्ग-गमन के लिए उत्सुक हैं। तुम उनको अभीष्ट प्रदान करो। इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्धक हो। तुमने अपने सहजन्मा और चिर-सहचर वज्र का आविष्कार किया है।

४. इन्द्र, मनुष्य तुम्हारी महिमा जानते हैं। तुमने जिन शत्रुओं की संवत्सर पर्यन्त खाई या परिखा आदि से दृढ़ीकृत नगरियों को नष्ट किया था, उन्हें पराजित कर विनष्ट किया था—वह कथा मनुष्य जानते हैं। बलपति इन्द्र, तुमने यज्ञ-विघातक मनुष्य का शासन किया था। तुमने असुरों की विशाल पृथ्वी और जलराशि को सरलता से जीता था। और अन्नादि को प्राप्त किया था।

५. इन्द्र, सोमपान कर प्रसन्न होने पर मनोरथ-दाता बनो।

तुम यजमानों की रक्षा किया करते हो; अपने बन्धुताकामी यजमानों की रक्षा किया करते हो; इसलिए वे, तुम्हारी वृद्धि के निमित्त अपने यज्ञों में बार-बार सोम प्रदान करते हैं। युद्ध-सुख के भोग के लिए तुमने सिंहनाद किया था। यजमान लोग तुमसे नाना प्रकार की भोग्य वस्तु पाते हैं; विजय-द्वारा प्राप्त अन्न की इच्छा करते हुए तुम्हारे पास आते हैं।

६. इन्द्र, तुम हमारे प्रातःकालीन यज्ञ को आश्रित करोगे क्या? इन्द्र, आह्वान-मंत्र-द्वारा प्रदत्त, पूजा के लिए, हव्य को जानो। आह्वान मंत्र-द्वारा आहूत होकर सुख-भोग के स्थान पर उपस्थित हो जाओ। वज्रयुक्त इन्द्र, निन्दकों के विनाश के लिए अभीष्टवर्षी होकर जागो। इन्द्र, मैं मेधावी और नया मनुष्य हूँ; मैं असाधारण स्तुतिवाला हूँ; मेरा मनोहर स्तोत्र सुनो।

७. अनेक गुण-विशिष्ट इन्द्र, हे शूर, तुमने हमारी स्तुति से वृद्धि पाई है और हमारे प्रति संतुष्ट हो। जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुता का आचरण करता है और जो हमें दुःख पहुँचाना चाहता है, उसे वज्र-द्वारा विनष्ट करो। हे सुनने के लिए उत्कण्ठित इन्द्र, सुनो। मार्ग में थके-माँदे व्यक्ति को जो दुर्बुद्धि मनुष्य पीड़ा पहुँचाते हैं, उस प्रकार के सारे दुर्मति मनुष्य हमारे पास से दूर हो जायँ।

१३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द अत्यष्टि।)

१. हे सुख-संयुक्त इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम प्रबल वाहिनी से सम्पन्न शत्रुओं को परास्त करेंगे। प्रहार के लिए प्रस्तुत शत्रु पर प्रहार करेंगे। इन्द्र, पूर्व-धन-संयुक्त यह यज्ञ निकटवर्ती है; इसलिए आज हविर्दाता यजमान के उत्साह के लिए कथा कहो। इन्द्र, तुम युद्ध-जयी हो। तुम्हारे उद्देश्य से हम हव्य लाते हैं। तुम युद्ध-विजेता हो।

२. शत्रु वध के लिए इधर-उधर दौड़नेवाले वीर पुरुषों के स्वर्ग-साधन तथा कपटादि-रहित मार्ग-स्वरूप संग्राम के आगे इन्द्र, प्रातःकाल में जागे हुए याज्ञिकों के, शत्रुओं का नाश करते हैं। सर्वज्ञ की तरह इन्द्र की अवनत-मस्तक होकर स्तुति करना सबका कर्त्तव्य है। इन्द्र, तुम्हारा दिया धन केवल हमारे ही लिए हो। तुम भद्र हो, तुम्हारा दिया धन स्थिर हो।

३. इन्द्र, पूर्व की तरह इस समय भी अतीव दीप्त और प्रसिद्ध हव्य-रूप अन्न तुम्हारा ही है। तुम यज्ञ के निवास-स्थान-स्वरूप हो। जिस अन्न द्वारा ऋत्विक् लोग स्थान सुशोभित करते हैं, वह अन्न तुम्हारा ही है। तुम जल की वृष्टि करते हो जिसे संसार आकाश और पृथ्वी के बीच सूर्य-किरण-द्वारा देख सकता है। इन्द्र जल की गवेषणा में तत्पर हैं। वे अपने बन्धु यजमानों के लिए फल देते हैं। वे जलवर्षण के प्रकार को जानते हैं।

४. इन्द्र, पूर्व काल की तरह तुम्हारा कर्म इस समय भी सबकी प्रशंसा के योग्य है। तुमने अङ्गिरा लोगों के लिए वृष्टि की थी। तुमने अपहृत गो-धन का उद्धार करके उन लोगों को दिया था। इन्द्र, तुम उक्त ऋषियों की तरह आर्यों के लिए युद्ध करते और विजयी बनते हो। जो अभिषव करते हैं, उनके लिए यज्ञ-विघ्नकारियों को अवनत करते हो। जो यज्ञ-विघ्नकारी रोष प्रकाशित करते हैं, उन्हें अवनत करो।

५. शूर इन्द्र, कर्म-द्वारा मनुष्यों के विषय में यथार्थ विचार करते हैं; इसलिए अन्नाभिलाषी यजमानगण अभिमत धन प्राप्त करके शत्रुओं का विनाश करते हैं। वे अन्नाभिलाषी होकर विशेष रूप से यज्ञ करते हैं। इन्द्र के उद्देश्य से प्रवत्त अन्न पुत्रादि प्राप्ति का कारण है। अपनी शक्ति से शत्रु के निवारण के लिए लोग इन्द्र की पूजा करते हैं। यज्ञकारी लोग इन्द्र के पास वास-स्थान प्राप्त करते हैं, मानों याज्ञिक लोग देवों के पास ही रहते हैं।

६. हे इन्द्र और पर्वत या मेघ के अभिमानी देव, तुम दोनों अग्रगामी होकर, जो शत्रु हमारे विरोध में सेना-संग्रह करते हैं, उन सबको विनष्ट करो। वज्र-प्रहार-द्वारा उन सबको विनष्ट करो। यह वज्र अत्यन्त दूरगामी शत्रु का भी विनाश करने की इच्छा करता और अति गहन-स्थान पर भी व्याप्त होता है। शूर इन्द्र, तुम हमारे सारे शत्रुओं को त्रिविध उपायों-द्वारा विदीर्ण करते हो। शत्रु-विदारक वज्र विविध उपायों से शत्रुओं को विदीर्ण करता है।

१३३ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री, धृति और अत्यष्टि)

१. मैं आकाश और पृथिवी, दोनों को, यज्ञ-द्वारा पवित्र करता हूँ। मैं इन्द्र के विरोधियों की पृथिवी को अच्छी तरह दग्ध करता हूँ। जिस-किसी स्थान पर शत्रुगण एकत्र हुए, वहीं मारे गये। अच्छी तरह विनष्ट होकर वे श्मशान में चारों ओर पड़ गये।

२. शत्रु-भक्षक इन्द्र, शत्रुओं की सेना के सिर ऐरावत के पैरों से कुचल दो। उसके पद महा विस्तीर्ण हैं।

३. मघवन् इन्द्र, इस हिंसावती सेना का बल चूर्ण कर दो और उसे कुत्सित अथवा महान् श्मशान में फेंक दो।

४. इन्द्र, इस तरह तुमने त्रिगुणित पचास सेनाओं का नाश किया है। तुम्हारे इस कार्य को लोग बहुत पसन्द करते हैं। तुम्हारे लिए यह कार्य सामान्य है।

५. इन्द्र, कुछ रक्तवर्ण, अति भयंकर और शब्दकारी पिशाचों या अनार्यों का विनाश करो और समस्त राक्षसों या अनार्यों को समाप्त करो।

६. इन्द्र, तुम विशाल मेघ को, निम्न मुख करके, विदीर्ण करो। हमारी बात सुनो! मेघ-युक्त इन्द्र, जैसे धान्य न होने से डर के मारे पृथिवी शोक करती है, वैसे ही स्वर्ग भी शोक करता है। मेघ-संपन्न इन्द्र, पृथिवी और स्वर्ग का भय दीप्त अग्नि की मूर्त्ति की

तरह हैं। इन्द्र, तुम महाबली हो; इसलिए तुम अत्यन्त क्रूर वधोपाय का आश्रय करते आ रहे हो। यजमानों का विनाश नहीं कर सकते। तुम शूर हो। जीवगण तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकते। तुम इक्कीस अनुचरों से युक्त हो।

७. इन्द्र, अभिषव करनेवाला यजमान गृह प्राप्त करता है। सोम-यज्ञ करनेवाला चारों ओर के शत्रुओं का विनाश करता है। देव-शत्रुओं का भी विनाश करता है। अन्नवाला और शत्रु के आक्रमण से शून्य अभिषवकर्त्ता अपरिमित धन प्राप्त करता है। इन्द्र, सोमयाजक यजमान चतुर्दिक् उत्पन्न और अति समृद्ध धन प्रदान करता है।

१३४ सूक्त

(२० अनुवाक। देवता वायु)

१. वायुदेव, शीघ्रगामी और बलवान् अश्व तुम्हें, अन्न के उद्देश्य से और देवों के बीच प्रथम, सोमपान के लिए, इस यज्ञ में ले आयें। हमारी प्रिय, सत्य और उच्च स्तुति अच्छी तरह तुम्हारे गुण की व्याख्या करती है। वह तुम्हें अभिमत हो। यज्ञ के हव्य की स्वीकृति और हमें अभीष्ट देने के लिए नियुत नामक अश्वों से युक्त रथ पर आओ।

२. वायु, मादकतोत्पादक, हर्षजनक, सम्यक् प्रस्तुत, उज्ज्वल और मन्त्र-द्वारा हूयमान सोमबिन्दु तुम्हारे सामने जाकर हर्ष उत्पन्न करें; क्योंकि कर्म-कुशल, प्रीति-युक्त, निरन्तर सहगामी नियुत, तुम्हारा उत्साह देखकर, हव्य ग्रहण के लिए, तुम्हें यज्ञभूमि में लाने के लिए मिलते हैं। बुद्धिमान् यजमान लोग तुम्हारे पास आकर मनोगत भाव व्यक्त करते हैं।

३. भारवहन के लिए वायु लोहितवर्ण अश्व योजित करते हैं। वायु अरुणवर्ण अश्व योजित करते हैं। वायु अजिरवर्ण या गमनशील अश्व योजित करते हैं; क्योंकि, ये भारवहन में अत्यन्त समर्थ हैं।

जैसे थोड़ी निद्रा में आई स्त्री को उसका प्रेमी जगा देता है, उसी तरह तुम भी बहुयज्ञ-प्रबोधित यजमान को जगाते हो। तुम आकाश और पृथ्वी को प्रकाशित करते हो। उषा को स्थापित करते हो। हव्य ग्रहण के लिए उषा को स्थापित करते हो।

४. दीप्तियुक्त उषायें, दूर देश में, तुम्हारे ही लिए, घरों को ढकनेवाली किरणों से कल्याणकर वस्त्र का विस्तार करती हैं; नई किरणों से विचित्र वस्त्र का विस्तार करती हैं। अमृत बरसानेवाली गायें तुम्हारे ही लिए समस्त धन-दान करती हैं। तुमने वर्षा और नदियों के उत्पादन के लिए अन्तरिक्ष से मरुतों को उत्पादित किया है।

५. दीप्त, शुद्ध, उग्र और प्रवाहशाली सोम, तुम्हारे आनन्द के लिए आहवनीय अग्नि के पास जाता है और जलभारवाहक मेघ की आकांक्षा करता है। वायु, यजमान लोग, अत्यन्त भीत और क्षीणकाय होकर चोरों के हटाने के लिए तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे धार्मिक होने से हमारी सारे महाभूतों से रक्षा करो। हमारी, धर्म-संयुक्त होने के कारण, असुरों से रक्षा करो।

६. वायु, तुमसे पहले किसी ने सोमपान नहीं किया है। तुम्हीं पहले हमारे इस सोमपान को करने के योग्य हो; अभिषुत सोमपान करने योग्य हो। तुम हवनकर्त्ता और निष्पाप लोगों का हव्य स्वीकार करते हो। सारी गायें तुम्हारे लिए दूध देती हैं और तुम्हारे लिए घी भी देती हैं।

१३५ सूक्त

(देवता वायु। छन्द अत्यष्टि।)

१. नियुत अश्ववाले वायु, तुम कितने ही नियुतों पर चढ़कर, अपने लिए प्रस्तुत हव्य के भक्षण के लिए, हमारे बिछाये कुशों पर आओ। असंख्य नियुतों पर चढ़कर आओ। तुम नियुतवाले हो। तुम्हारे पहले

पान करने के लिये अन्य देवता चुप हैं। अभिषुत मधुर सोम तुम्हारे आनन्द के लिए है, यज्ञ-सिद्धि के लिए है।

२. वायु, तुम्हारे लिए, पत्थर से परिशोधित और आकांक्षणीय तथा तेजः-सम्पन्न सोम अपने पात्र में जाता है; शुक्र तेज से संयुक्त होकर तुम्हारे पास जाता है। मनुष्य लोग देवों के मध्य तुम्हारे लिए यही सुन्दर सोम प्रदान करते हैं। वायु, तुम हमारे लिए नियुत अश्वों को जोतो और प्रस्थान करो। हमारे ऊपर अनुग्रह कर और प्रसन्न होकर प्रस्थान करो।

३. वायु, तुम सैकड़ों और हज़ारों नियुतों पर सवार होकर अभिमत-सिद्धि और हव्य भक्षण के लिए हमारे यज्ञ में उपस्थित हो। यही तुम्हारा भाग है; यह सूर्य के तेज से तेजस्वी है। ऋत्विक् के हाथ का सोम तैयार है। वायु, पवित्र सोम तैयार है।

४. हमारी रक्षा के लिए, हमारे सुगृहीत अन्न-भक्षण के निमित्त और हमारे हव्य की सेवा के लिए, हे वायु, नियुत से युक्त रथ तुम दोनों (इन्द्र और वायु) को ले आये। तुम दोनों मधुर सोमरस पान करो। पहले पान करना ही तुम लोगों के लिए ठीक है। वायु, मनोहर धन के साथ आओ। इन्द्र भी धन के साथ आयें।

५. हे इन्द्र और वायु, हमारे स्तोत्र आदि तुम लोगों के यज्ञ में आने के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे शीघ्रगामी अश्व को परिमार्जित किया जाता है, वैसे ही कलस से लाये हुए सोम को ऋत्विक् लोग परिमार्जित करते हैं। अध्वर्युओं का सोमपान करो। हमारी रक्षा के लिए यज्ञ में आओ। तुम दोनों अन्नदाता हो; इसलिए हमारे प्रति प्रसन्न होकर, आनन्द के लिए, पत्थर के टुकड़े से अभिषुत सोमपान करो।

६. हमारे इस यज्ञ-कार्य में अभिषुत और अध्वर्युओं-द्वारा गृहीत सोम निश्चय ही तुम्हीं दोनों का है। यह दीप्त सोम निश्चय ही तुम लोगों का है। यह यथेष्ट सोम निश्चय ही तुम्हारे लिए टेढ़े सोमाधार

कुश में परिष्कृत हुआ है। तुम्हारा सोम अछिन्न लोगों को लाँघकर प्रचुर परिमाण में जाता है।

७. वायु, तुम निद्रालु यजमानों को अतिक्रम करके उस गृह में जाओ, जिस गृह में प्रस्तर का शब्द होता है। इन्द्र भी उसी गृह में जायें। जिस गृह में प्रिय और सत्य स्तुति का उच्चारण होता है, जिस घर में घृत जाता है, उसी यज्ञस्थान में मोटे नियुत घोड़ों के साथ जाओ। इन्द्र, वहीं जाओ।

८. हे इन्द्र और वायु, तुम इस यज्ञ में मधु के समान उस आहुति को धारण करो, जिसके लिए विजेता यजमान पर्वत आदि प्रदेशों में जाते हैं। हमारे विजेता लोग यज्ञ के निर्वाह के लिए समर्थ हों। इन्द्र और वायु, गायें एक साथ दूध देती हैं और यव से बनाया हव्य तैयार होता है। ये गायें न तो कम हों, न नष्ट हों।

९. वायु, ये जो तुम्हारे बलशाली, जवान बैलों के समान और अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट घोड़े हैं, वे तुम्हें स्वर्ग और पृथ्वी में ले जाते हैं; ये अन्तरिक्ष में भी देर नहीं करते; ये बहुत शीघ्रगामी हैं; इनकी गति नहीं रुकती। सूर्य-किरणों की तरह इनकी गति का रोकना कठिन है।

१३६ सूक्त

(देवता मित्रावरुण। छन्द अत्यष्टि और त्रिष्टुप्।)

१. ऋत्विक्गण, चिरन्तन मित्रावरुण को लक्ष्य कर प्रशंसनीय और प्रवृद्ध सेवा करो। उन्हें हव्य देने में कृत-निश्चय बनो। मित्रा-वरुण यजमानों को सुख देने में कारण हैं। वे स्वादिष्ठ हव्य का भक्षण करते हैं। वे सम्राट् हैं। उनके लिए घृत गृहीत होता है। प्रतियज्ञ में उनकी स्तुति होती है। उनकी शक्ति का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। उनके देवत्व में किसी को सन्देह नहीं होता।

२. श्रेष्ठ उषा विस्तृत यज्ञ की ओर जाती है—ऐसा देखा गया। शीघ्रगामी सूर्य का पथ व्याप्त हुआ। सूर्य-किरणों में मनुष्य की आँखें खुलीं। मित्र, अर्यमा और वरुण के उज्ज्वल गृह प्रकाश से परिपूर्ण हुए; इसलिए तुम दोनों प्रशंसनीय और बहुत अन्न धारण करो। प्रशंसनीय और प्रभूत अन्न धारण करो।

३. यजमान ने ज्योतिष्मती, सम्पूर्ण-लक्षणा और स्वर्ग-प्रदायिनी वेदी तैयार की। तुम लोग सदा जागरूक रहकर और प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होकर तेज और बल प्राप्त करो। तुम लोग अदिति के पुत्र और सर्व-प्रकार दान के कर्त्ता हो। मित्र और वरुण लोगों को अच्छे व्यापार में लगाते हैं। अर्यमा भी ऐसा करते हैं।

४. मित्र और वरुण के लिए यह सोम प्रसन्नता-दायक हो। वे दोनों नीचे मुँह करके इसे पान करें। दीप्यमान सोम देवों की सेवा के उपयुक्त हैं। सारे देवगण अतीव प्रसन्न होकर इसे पियें। प्रकाशशाली मित्र और वरुण, हम जैसी प्रार्थना करते हैं, वैसा ही करो। तुम लोग सत्यवादी हो; हम जिसके लिए प्रार्थना करते हैं, उसे करो।

५. जो व्यक्ति मित्र और वरुण की सेवा करता है, उसे तुम पाप से बचाओ। द्वेष-शून्य और हव्यदाता मनुष्य को सारे पापों से बचाओ। उस सरल-स्वभाव व्यक्ति की, उसके व्रत को लक्ष्यकर, अर्यमा रक्षा करते हैं। वह यजमान मंत्र-द्वारा मित्रावरुण का व्रत ग्रहण करता और स्तोत्र-द्वारा उसकी रक्षा करता है।

६. मैं प्रकाशशाली और महान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, आकाश, मित्र, वरुण और रुद्र को भी नमस्कार करता हूँ। ये सब अभीष्ट फल और सुख के दाता हैं। इन्द्र, अग्नि, दीप्तिमान् अर्यमा और भग की स्तुति करो। हम बहुत दिनों जीकर निश्चयात्मिका बुद्धि से घिरे रहेंगे। इसी प्रकार सोम-द्वारा हम रक्षित होंगे।

७. हमने इन्द्र को प्राप्त किया है। हमारे ऊपर मरुद्गण कृपा करते हैं। देवता लोग हमें बचावें। इन्द्र, अग्नि, मित्र और वरुण हमारे लिए सुखदाता हों। हम अन्न से संयुक्त होकर उसी सुख का भोग करें।

प्रथम अध्याय समाप्त।

१३७ सूक्त

(दूसरा अध्याय। देवता मित्रावरुण। छन्द अतिशक्वरी)

१. हम पत्थर के टुकड़े से सोम चुआते हैं। मित्रावरुण, आओ। दूध-मिला और तृप्ति करनेवाला सोम तैयार है। यह सोम तृप्ति देनेवाला है। तुम राजा, स्वर्गवासी और हमारे रक्षक हो। हमारे यज्ञ में आओ। तुम्हारे ही लिए यह सोम दूध के साथ मिलाया गया है। दूध-मिलाया सोम विशुद्ध होता है।

२. मित्रावरुण, आओ। यह तरल सोमरस दही के साथ मिलाया हुआ है। अभिषुत सोमरस दही के साथ मिलाया गया है। उषा के उदय-काल में ही हो अथवा सूर्य-किरणों के साथ ही हो—तुम्हारे लिए सोम अभिषुत है। यह सुन्दर सोमरस मित्र और वरुण के पान के लिए है—यज्ञ-स्थल में उनके पीने के लिए है।

३. तुम्हारे लिए बहुत रसवाले सोम को, दुग्धवती गाय की तरह, पत्थर के टुकड़ों से वे दुहते हैं। वे प्रस्तर-खण्ड-द्वारा सोम को दुहते हैं। तुम हमारे रक्षक हो। सोम-पान के लिए हमारे सामने हमारे पास तुम आओ। मित्र और वरुण, नेताओं ने तुम्हारे लिए सोम चुआया है—अच्छी तरह पीने के लिए अभिषव किया है।

१३८ सूक्त

(देवता पूषा। छन्द अत्यष्टि)

१. अनेक मनुष्यों-द्वारा पूजित पूषा (सूर्य) देव की शक्ति की महिमा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती है। कोई उसे मारना नहीं चाहता। पूषा के स्तोत्र की विश्रान्ति नहीं है। मैं सुख पाने की इच्छा से पूषा की पूजा करता हूँ। वह तुरन्त सहारा देते और उत्पन्न करते हैं। पूषा यज्ञवाले हैं। वे सारे मनुष्यों के मन के साथ मिल जाते हैं।

२. जैसे शीघ्रगामी घोड़े की प्रशंसा होती है, वैसे ही, हे पूषन्, मंत्रों-द्वारा मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। युद्ध में जाने के लिए तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। ऊँट की तरह तुम हमें युद्ध में पार करते हो। तुम सुख उत्पन्न करनेवाले देवता हो और मैं मनुष्य हूँ; मैत्री पाने के लिए मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरे बुलावे को शक्तिमान् करो और संग्राम में मुझे विजयी बनाओ।

३. पूषन्, तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके विशेष यज्ञ-द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हुए स्तोत्र-परायण यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर नाना प्रकार के भोग भोगते हैं। नया सहारा पाकर तुम्हारे पास असंख्य धन चाहते हैं। बहुतों के द्वारा स्तवनीय पूषा, हमारा अनादर न करके हमारे सामने आओ और युद्ध-काल में हमारे अग्रगामी बनो।

४. अज वाहनवाले पूषन्, हमारे लाभ के सम्बन्ध में अनादर न कर और दानशील होकर हमारे पास आओ। अजाश्व पूषन्, हम अन्न चाहते हैं। हमारे पास आओ। शत्रु-हन्ता पूषा, मंत्र-पाठ करते हुए हम तुम्हारे चारों ओर रहें। वृष्टिदाता पूषा, हम कभी न तो तुम्हारा अपमान करते और न तुम्हारी मित्रता का कभी अपलाप करते हैं।

१३९ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। छन्द त्रिष्टुप्, बृहती, अत्यष्टि आदि)

१. मैंने भक्ति के साथ, सामने अग्नि की स्थापना की है। अग्नि की स्वर्गीय शक्ति की मैं प्रशंसा करता हूँ। इन्द्र और वायु की प्रशंसा करता हूँ। चूँकि पृथिवी की दीप्तिमान् नाभि या यज्ञ-स्थान को लक्ष्य कर नई अर्थकरी स्तुति बनाई गई है, इसलिए अग्नि उसे सुनें। पश्चात् जैसे हमारे क्रिया-कर्म अन्यान्य देवों के पास जाते हैं, वैसे ही इन्द्र और वायु के पास भी जायँ।

२. कर्म-कुशल मित्र और वरुण, अपनी शक्ति-द्वारा सूर्य के पास से जो विनाशी जल पाते हो, वह हमें यथेष्ट परिमाण में देते हो; इसलिए हम क्रिया, कर्म, ज्ञान और सोमरस में आसक्त इन्द्रियों की सहायता से, यज्ञशाला में, तुम लोगों का ज्योतिर्मय रूप देखें।

३. अश्विनीकुमारो, स्तुति-द्वारा तुम्हें अपना देवता बनाने की इच्छा से यजमान लोग श्लोक सुनाते तथा हव्य लेकर तुम्हारे सामने जाते हैं। सर्वधन-सम्पन्न अश्विद्वय, वे लोग तुम्हारी कृपा से सब तरह के धनधान्य और अन्न प्राप्त करते हैं। तुम्हारे सोने के रथ की नेमियाँ मधु गिराती हैं। उसी रथ पर हव्य ग्रहण करो।

४. दस्रद्वय, तुम्हारे मन की बात सब जानते हैं। तुम स्वर्ग में जाना चाहते हो। तुम्हारे सारथि लोग स्वर्ग-पथ में रथ योजित करते हैं। निरालम्ब होते हुए भी अश्वगण रथ को नष्ट नहीं करते। अश्विद्वय, बन्धुर या बन्धनाधारभूत वस्तु से युक्त हिरण्यमय रथ पर हम तुम्हें बैठाते हैं। तुम लोग सरल मार्ग से स्वर्ग को जाते हो। तुम लोग शत्रुओं को परास्त करते और विशेषरूप से वृष्टि की व्यवस्था करते हो।

५. हमारे क्रिया-कर्म ही तुम्हारा धन हैं। हमारे क्रिया-कर्म के लिए दिन-रात अभीष्ट प्रदान करो। न तो तुम्हारा दान बन्द हो और न हमारा।

६. अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्ट-वर्षी के पान के लिए यह सोम अभिषुत हुआ है। यह प्रस्तर-खण्ड द्वारा अभिषुत हुआ है। सोम पर्वत पर उत्पन्न हुआ है। वह तुम्हारे लिए अभिषुत हुआ है। विविध विचित्र लाभों के लिए यथास्थान प्रदत्त सोम तुम्हारी तृप्ति का साधन करे। स्तुति-योग्य, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। आओ, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आओ।

७. अग्नि, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। हमारी स्तुति सुनो। दीप्यमान और यज्ञ-योग्य देवों के पास यजमान की बात कहना; क्योंकि देवों ने अङ्गिरा लोगों को प्रसिद्ध धेनु दी थी। अर्यमा देवों के साथ, सर्वोत्पादक अग्नि के लिए, उस धेनु का दोहन करते हैं और वह जानते हैं कि, वह धेनु हमारे साथ समवेत है।

८. हे मरुतो, तुम्हारा नित्य और प्रसिद्ध बल हमें पराभूत न करे। हमारा धन कम न हो। हमारा नगर क्षीण न हो। तुम्हारा जो कुछ नूतन, विचित्र, मनुष्य-दुर्लभ और शब्द करनेवाला है, वह युग-युग में हमारा हो। जो धन शत्रु लोग नष्ट नहीं कर सकते, वह हमारा हो। तुम जो दुर्लभ धन को धारण करते हो, वह हमारा हो। जिस धन को शत्रु नहीं नष्ट कर पाते, वह हमारा ही हो।

९. प्राचीन दधीचि, अङ्गिरा, प्रियमेध कण्व, अत्रि और मनु मेरे जन्म की बात जानते हैं। ये पूर्व काल के ऋषि और मनु मेरे पूर्व-पुरुषों को जानते हैं; क्योंकि, महर्षियों में वे दीर्घायु हैं और मेरे जीवन के साथ उनका सम्बन्ध है। वे महान् हैं; इसलिए उनकी स्तुति तथा नमस्कार करता हूँ।

१०. होता लोग यज्ञ करें, हव्य की इच्छा करनेवाले देवता रमणीय सोम ग्रहण करें। स्वयं इच्छा करके बृहस्पति प्रभूत और रमणीय सोम-

द्वारा योग करते हैं। हमने सुदूर देश में प्रस्तर-खण्ड की ध्वनि सुनी। सुकृतु यजमान स्वयं जल धारण करते हैं। यह बहु निवास-योग्य घर धारण करते हैं।

११. जो देवता स्वर्ग में ११ हैं, पृथिवी के ऊपर ११ हैं—जब अन्तरिक्ष में रहते हैं, तब भी ११ रहते हैं, वे अपनी महिमा से, यज्ञ की सेवा करते हैं।

१४० सूक्त

(२१ अनुवाक। देवता अग्नि। यहाँ से १६४ सूक्त तक के ऋषि उकथ्य के पुत्र दीर्घतमा। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अध्वर्यु, वेदी पर बैठे हुए, अपने प्रिय धाम उत्तर वेदी पर, प्रीति-सम्पन्न और प्रकाशशील अग्नि के लिए तुम अन्नवान् स्थान या वेदी तैयार करो। उस पवित्र ज्योति से संयुक्त, दीप्त-वर्ण और अन्धकार-विनाशी स्थान के ऊपर, वस्त्र की तरह, मनोहर कुश को बिछाओ।

२. द्विजन्मा या दो काष्ठों के मन्थन-द्वारा उत्पन्न अग्नि आज्य, पुरोडाश और सोम नाम के तीन अन्नों को सम्मुख लाकर खाते हैं। अग्नि के द्वारा भक्षित धन-धान्यादि, संवत्सर के बीच, फिर बढ़ जाते हैं। अभीष्टवर्षी अग्नि, एक ही रूप धारण कर, मुख और जिह्वा की सहायता से बढ़ते हैं। अग्नि दूसरे प्रकार का रूप धारण करके, सबको दूर करके, वन-वृक्षों को जलाते हैं।

३. अग्नि के दोनों काष्ठ चलते हैं। कृष्णवर्ण होकर दोनों ही एक ही कार्य करते हैं और शिशु अग्नि को प्राप्त होते हैं। शिशु की शिखारूपिणी जिह्वा पूर्वाभिमुखिनी है। यह अन्धकार को दूर करते हैं। शीघ्र उत्पन्न होते हैं। धीरे-धीरे काष्ठ-चूर्णों में मिलते हैं। बहुत प्रयत्न से इनकी रक्षा करनी होती है। यह रक्षक को समृद्धि देते हैं।

४. अग्नि की शिखाएँ लघुगति, कृष्णमार्गी या शीघ्रकारिणी, अस्थिर-चित्ता, गमनशीला, कम्पन-शीला, वायुचालिता, व्याप्ति-संयुक्ता, मोक्षप्रदा और मनस्वी यजमान की उपयोगिनी हैं।

५. जिस समय अग्नि गर्जन करके श्वास फेंककर बार-बार विस्तीर्ण, पृथिवी को छूकर, शब्द करते हैं, उस समय अग्नि के सारे स्फुलिंग, एक साथ, चारों ओर जाते हैं। वे अन्धकार का विनाश कर चारों ओर जाते और कृष्णवर्ण मार्ग में उज्ज्वल रूप प्रकाशित करते हैं।

६. अग्नि पीले ओषधों को भूषित करके, उनके बीच, उतरते हैं। जैसे वृषभ गायों की ओर दौड़ता है, वैसे ही, शब्द करते हुए, अग्नि दौड़ते हैं। क्रमशः अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीर को प्रकाशित करते हैं। दुर्द्धर्ष रूप धारण करके भयंकर पशु की तरह सींग घुमाते हैं।

७. अग्नि कभी छिपकर, कभी विराट् होकर ओषधों को व्याप्त करते हैं, मानों यजमान का अभिप्राय जानकर ही अपनी अभिप्राय जाननेवाली शिखा को आश्रित करते हैं। शिखायें, फिर बढ़कर, याग-योग्य अग्नि को व्याप्त करती हैं एवं सब मिलकर पृथिवी और स्वर्ग का अपूर्व रूप विस्तृत करती हैं।

८. शीर्षस्थानीय और आगे स्थित शिखायें अग्नि का आलिङ्गन करती हैं; मृतप्राय होने पर भी अग्नि का आगमन जानकर ऊर्ध्व-मुख होकर, ऊपर उठती हैं। अग्नि, शिखाओं का बुढ़ापा छुड़ाकर उन्हें उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखण्ड जीवन प्रदान करते हुए गर्जन करते आते हैं।

९. पृथिवी माता के ऊपर के ढक्कन या तृण-गुल्म आदि को चाटते-चाटते अग्नि प्रभूत शब्द-कर्त्ता प्राणियों के साथ वेग से गमन करते हैं। पाद-विशिष्ट पशुओं को आहार देते हैं। अग्नि सदा चाटते हैं और क्रमशः जिस मार्ग से जाते हैं, उसे काला करते जाते हैं।

१०. अग्नि, तुम अभीष्टवर्षी और दानशील होकर श्वास फेंकते हुए हमारे धनाढ्य गृह में दीप्त हो। शिशु-बुद्धि छोड़कर, युद्ध-समय में वर्म की तरह, बार-बार शत्रुओं को दूर करके जल उठो।

११. अग्नि, यह जो काठ के ऊपर सावधानी से हव्य रखा गया है, वह तुम्हारी मनोऽनुकूल प्रिय वस्तु से भी प्रिय हो। तुम्हारे शरीर की शिखा से जो निर्मल और दीप्त तेज निकलता है, उसके साथ तुम हमें रत्न प्रदान करो।

१२. अग्नि, हमारे घर या यजमान और रथ के लिए सुदृढ़ डाँड़ या ऋत्विक् और पाद या मंत्र से संयुक्त नौका या यश प्रदान करो। वह हमारे वीरों, धनवाहकों और अन्य लोगों की रक्षा करेगा और हमें सुख से रखेगा।

१३. अग्नि, हमारे ऋङ् मंत्रों के लिए उत्साह बढ़ाओ। द्यावा-पृथिवी और स्वयंगामिनी नदियाँ हमें गौ और शस्य प्रदान करके उत्साह वर्द्धित करें। अरुणवर्ण उषायें सदा पाने योग्य सुन्दर अन्न आदि दें।

१४१ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. प्रकाशमान अग्नि का दर्शनीय तेज, सचमुच, इसी प्रकार लोग शरीर के लिए धारण करते हैं। वह तेज शरीर बल या अरणि-मन्थन से उत्पन्न हुआ है। अग्नि के तेज का आश्रय करके मेरा ज्ञान अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकता है; इसलिए अग्नि के लिए स्तुति और हव्य अर्पण किया जाता है।

२. प्रथम अन्न-साधक शरीरी और नित्य अग्नि रहते हैं, द्वितीय कल्याणवाहिनी सप्त-मातृकाओं में रहते हैं, तृतीय इस अभीष्ट-वर्षी के दोहन के लिए रहते हैं। परस्पर संश्लिष्ट दस दिशायें दसों दिशाओं में पूजनीय अग्नि को उत्पन्न करती हैं।

३. चूँकि महायज्ञ के मूल से सिद्धि करनेवाले ऋत्विक् बल-प्रयोग या अरणि-मन्थन-द्वारा अग्नि को उत्पन्न करते हैं, अनादि काल से अच्छी तरह फैलाने के लिए गुहास्थित अग्नि को वायु चालन करते हैं,—

४. अग्नि की उत्कृष्टता की प्राप्ति के लिए अग्नि का निर्माण किया जाता है, आहार के लिए वाञ्छित लतायें अग्नि की शिखाओं (दाँतों) पर चढ़ जाती हैं और अध्वर्यु तथा यजमान दोनों ही अग्नि की उत्पत्ति के लिए चेष्टा करते हैं; इसलिए पवित्र अग्निदेव, यजमानों के लिए अनुग्रह करते हुए, युवा हुए।

५. मातृरूपिणी दिशाओं के बीच अग्नि, हिंसा-रहित होकर, बढ़े हैं; इस समय प्रदीप्त होकर उन्हीं के मध्य बैठते हैं। स्थापन-समय में, पहले, जो सब औषध प्रक्षिप्त हुए थे, उनके ऊपर अग्नि चढ़ गये थे। इस समय अभिनव और निकृष्ट औषधों के प्रति दौड़ते हैं।

६. हवि का सम्पर्क करनेवाले यजमान, द्युलोक-निवासियों की प्रसन्नता के लिए, होम-सम्पादक अग्नि का वरण करते और राजा की तरह उनका आराधन करते हैं। अग्नि बहुतों के स्तुति-योग्य और विश्व-रूप हैं। वे यज्ञ-सम्पन्न और बलशाली हैं। वे देवों और स्तुति-योग्य मर्त्य यजमानों—दोनों के लिए अन्न की कामना करते हैं।

७. जैसे बकवादी विदूषक आदि बड़ी सरलता से हँसा देते हैं, वैसे ही वायु-द्वारा परिचालित यजनीय अग्नि चारों ओर व्याप्त होते हैं। अग्नि दहन-कर्त्ता हैं, उनका जन्म पवित्र है, उनका मार्ग कृष्णवर्ण है और उनके मार्ग में कुछ भी स्थिरता नहीं है। इसी लिए उनके मार्ग में अन्तरिक्ष स्थित है।

८. रस्सी में बँधे रथ की तरह अपने चञ्चल अंग की सहायता से अग्नि स्वर्ग को जाते हैं। उनका मार्ग एक बारगी ही कृष्णवर्ण है, वे

काठ जलाते हैं। वीर की तरह अग्नि के उद्दीप्त तेज के सामने से चिड़ियाँ भाग जाती हैं।

९. अग्निदेव तुम्हारी सहायता से वरुण अपना व्रत धारण करते, मित्र अन्धकार नाश करते और अर्यमा दानशील होते हैं। जैसे रथ का पहिया डाँड़ों को व्याप्त करके रहता है, उसी प्रकार अग्नि ने यज्ञ-कार्य-द्वारा विश्वात्मक, सर्वव्यापी और सबके पराभवकारी होकर जन्म ग्रहण किया है।

१०. युवा अग्नि, जो तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हारे लिए अभिषव करते हैं, तुम उनका रमणीय हव्य लेकर देवों के पास विस्तार करते हो। हे तरुण, महाधन और बल-पुत्र, तुम स्तवनीय और हविर्भोक्ता हो। स्तुति-काल में हम राजा की तरह तुम्हें स्थापित करते हैं।

११. अग्नि, तुम जैसे हमें अत्यन्त प्रयोजनीय और उपास्य धन देते हो, वैसे ही उत्साही, जन-प्रिय और विद्याध्ययन में चतुर पुत्र दो। जैसे अग्नि अपनी किरणों को विस्तृत करते हैं, वैसे ही अपने जन्माधार (आकाश और पृथिवी) का विस्तार करते हैं। हमारे यज्ञ में यज्ञ-कर्त्ता अग्नि देवों की स्तुति का विस्तार करते हैं।

१२. अग्निदेव प्रकाशशील, द्रुतगामी अश्व से संयुक्त, होता, आनन्दमय, सोने के रथवाले, अप्रतिहतशक्ति और प्रसन्न-स्वभाव हैं। क्या वे हमारा बुलाना सुनेंगे? वे क्या हमें सिद्धिदाता कर्मद्वारा अनायास लभ्य और अभिवांछित स्वर्ग की ओर ले जायँगे?

१३. हव्य-प्रदान आदि कर्म और पूजा-साधक मन्त्र-द्वारा हमने अग्नि की स्तुति की है। अग्नि अच्छी तरह दीप्ति से युक्त हुए हैं। सारे उपस्थित लोग और हम, जैसे सूर्य मेघ का शब्द उत्पन्न करते हैं। वैसे ही अग्नि को लक्ष्य कर स्तुति करते हैं।

१४२ सूक्त

(देवता आप्री। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. हे समिद्ध नाम के अग्नि, जो यजमान स्रुक् ऊँचा किये हुए है, उसके लिए आज तुम देवों को बुलाओ। जिस हव्यदाता यजमान ने होम का अभिषव किया है, उसकी भलाई के लिए पूर्वकालीन यज्ञ विस्तार करो।

२. तनूनपात् नाम के अग्नि, मेरे समान जो हव्यदाता और मेधावी यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उसके घृत और मधु से संयुक्त यज्ञ में आकर यज्ञ-समाप्ति-पर्यन्त रहो।

३. देवों में स्वच्छ, पवित्र, अद्भुत, द्युतिमान् और यज्ञ-सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि द्युलोक से आकर हमारे यज्ञ को मधु से मिश्रित करें।

४. अग्नि, तुम्हारा नाम ईलित है। तुम विचित्र और प्रिय इन्द्र को यहाँ ले आओ। सुजिह्व, तुम्हारे लिए मैं स्तोत्र-पाठ करता हूँ।

५. स्रुक् धारण करनेवाले ऋत्विक् लोग इस यज्ञ में अग्नि-रूप कुश को फैलाते हुए इन्द्र के लिए विस्तीर्ण और सुख-साधक गृह बनाते हैं। इस घर में देवता लोग सदा गमनागमन करेंगे।

६. अग्निरूप, यज्ञ का द्वार खोल दो। देवों के आने के लिए यज्ञ-द्वार खोल दो। ये द्वार यज्ञ-वर्द्धक, यज्ञ-शोधक बहुत लोगों के लिए श्लाघ्य और परस्पर असंलग्न हैं।

७. सबके स्तुति-पात्र, परस्पर सन्निहित, सुन्दर, महान्, यज्ञ-निर्माता और अग्निरूप रात और उषा स्वयं आकर विस्तृत कुशों के ऊपर बैठें।

८. देवों की उन्मादक शिक्षा से युक्त, सदा स्तुतिशील यजमानों के मित्र, अग्निरूप दिव्य दोनों होता हमारे इस सिद्धिप्रद और स्वर्गस्पर्शी यज्ञ का अनुष्ठान करें।

९. शुद्ध, देवों की मध्यस्था, होम-सम्पादिका भारती (स्वर्गस्थ वाक्), इला (पृथिवीस्थ वाक्) और सरस्वती (अन्तरिक्षस्थ वाक्)—ये अग्नि की तीनों मूर्तियाँ यज्ञ के उपयुक्त होकर कुशों पर बैठें।

१०. त्वष्टा हमारे मित्र हैं। वे स्वयं, अच्छी तरह, हमारी पुष्टि और समृद्धि के लिए, मेघ के नाभिस्थित, व्याप्त अद्भुत और असंख्य प्राणियों की भलाई करनेवाला जल बरसायें।

११. हे अग्निरूप वनस्पति, इच्छानुसार ऋत्विकों को भेजकर, स्वयं देवों का यज्ञ करो। द्युतिमान् और मेधावान् अग्नि देवों के बीच हव्य भेजें।

१२. उषा और मरुतों से युक्त विश्वदेवगण, वायु और गायत्री-शरीर इन्द्र को लक्ष्य कर, हव्य देने के लिए, अग्निरूप स्वाहा शब्द का उच्चारण करो।

१३. इन्द्र, हमारा स्वाहाकार-युक्त हव्य खाने के लिए आओ। ऋत्विक् लोग यज्ञ में तुम्हें बुलाते हैं।

१४३ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. अग्नि बल के पुत्र, जल के नप्ता, यजमान के प्रियतम और होम के सम्पादक हैं। वे यथासमय, धन के साथ वेदी पर बैठते हैं। उनके लिए मैं यह नया और शुभफलवर्द्धक यज्ञ आरम्भ करता और स्तुति-पाठ करता हूँ।

२. परम आकाश-देश में उत्पन्न होकर अग्नि सबसे पहले मात-रिश्वा या वायु के पास प्रकट हुए। अनन्तर इन्धन-द्वारा अग्नि बढ़े और प्रबल कर्म-द्वारा उनकी दीप्ति से द्यावापृथिवी प्रदीप्त हुई।

३. अग्नि की दीप्ति से सबका नाश नहीं होता। सुवृश्य अग्नि के सारे स्फुलिङ्ग चारों ओर प्रकाशमान और विलक्षण बलशाली हैं। रात्रि का अन्धकार नष्ट करके सदा जाग्रत् और अजर, अग्नि-शिखायें कभी नहीं काँपतीं।

४. भृगुवंशोत्पन्न यजमानों ने अपने सामने जीवों के बल के लिए उत्तर वेदी पर जिन संवर्धनशाली अग्नि को स्थापित किया है, अपने घर में ले जाकर उनकी स्तुति करो। अग्नि प्रधान हैं और वरुण की तरह सारे धनों के ईश्वर हैं।

५. जैसे वायु के शब्द, पराक्रमी राजा की सेना और द्युलोक में उत्पन्न वज्र का कोई निवारण नहीं कर सकता, उसी प्रकार जिन अग्नि का कोई निवारण नहीं कर सकता, वे ही अग्नि, वीरों की तरह, तीखे दाँतों से शत्रुओं का भक्षण और विनाश तथा वनों का दहन करते हैं।

६. अग्निदेव बार-बार हमारे उक्त स्तोत्र को सुनने की इच्छा करें। धनशाली अग्नि, धन-द्वारा बार-बार हमारी इच्छा पूरी करें। यज्ञ-प्रवर्त्तक अग्नि, यज्ञ-लाभ के लिए, हमें बार-बार प्रेरित करें---मैं ऐसी स्तुति-द्वारा सुवृश्य अग्नि की स्तुति करता हूँ।

७. तुम्हारे यज्ञ-निर्वाहक और प्रदीप्त अग्नि को, मित्र की तरह, जलाकर विभूषित किया जाता है। अच्छी तरह चमकती ज्वालावाले अग्नि यज्ञस्थल में प्रदीप्त होकर हमारी विशुद्ध यज्ञ-विषयक बुद्धि को प्रबुद्ध करते हैं।

८. अग्निदेव, हमारे ऊपर अनुग्रह करके सदा अवहित, माङ्गलिक और सुखकर आश्रय देकर, हमारी रक्षा करो। सर्वजलवाञ्छनीय अग्नि, उत्पन्न होकर तुम हिंसा-रहित अजेय और एकनिष्ठ भाव से हमारी रक्षा भली भाँति करो।

१४४ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द जगती)

१. बहुदर्शी होता, अपनी उच्च और शोभन बुद्धि के बल से अग्नि की सेवा करने के लिए जा रहे हैं और प्रदक्षिणा करके स्रुक् धारण कर रहे हैं। ये स्रुक् अग्नि में प्रथम आहुति देते हैं।

२. सूर्यकिरणों में चारों ओर फैली जल-धारा, उनकी उत्पत्ति के स्थान सूर्य-लोक में फिर नई होकर उत्पन्न होती है। जिस समय जिसकी गोद में आदर के साथ अग्नि रहते हैं उसी समय लोग अमृत-मय जल पीते एवं अग्नि, विद्युत् अग्नि के रूप में, मिलते हैं।

३. समान अवस्थावाले होता और अध्वर्यु, एक ही प्रयोजन की सिद्धि के लिए, परस्पर सहायता देकर अग्नि के शरीर में अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अनन्तर जैसे सूर्य अपनी किरणें फैलाते हैं अथवा सारथि लगाम ग्रहण करता है, वैसे ही आहवनीय अग्नि हमारी दी हुई घृत-धारा ग्रहण करते हैं।

४. समान अवस्थावाले, एक यज्ञ में वर्त्तमान और एक कार्य में नियुक्त दोनों मनुष्य जिन अग्नि की, दिन-रात, पूजा करते हैं, वे अग्नि चाहे बूढ़े हों, चाहे युवा, उन दोनों मनुष्यों का हव्य भक्षण करते हुए अजर हुए हैं।

५. दसों अँगुलियाँ, आपस में अलग होकर, उन प्रकाशशाली अग्नि को प्रसन्न करती हैं। हम मनुष्य हैं; अपनी रक्षा के लिए अग्नि को बुलाते हैं। जैसे धनुष से बाण निकलता है, वैसे ही अग्नि भी स्फुलिङ्ग भेजते हैं। चारों ओर अवस्थित यजमानों की गई स्तुति को अग्निदेव धारण करते हैं।

६. अग्नि, पशु-रक्षकों की तरह, तुम अपनी शक्ति से स्वर्गीय और पृथिवीस्थ लोगों के ईश्वर हो; इसलिए महती ऐश्वर्यवती, हिरण्मयी मंगल-शब्द-कारिणी शुभ्रवर्णा और प्रसन्ना द्यावापृथिवी तुम्हारे यज्ञ में आती हैं।

७. अग्नि, तुम हव्य का उपभोग करो; अपना स्तोत्र सुनने की इच्छा करो। हे स्तुत्य, अन्नवान् और यज्ञ के लिए उत्पन्न तथा यज्ञशाली अग्नि, तुम सारे जगत् के अनुकूल, सबके दर्शनीय, आनन्दोत्पादक और यथेष्ट-अन्न-शाली व्यक्ति की भाँति सबके आश्रयस्थान हो।

१४५ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. अग्नि से पूछो। वे ही ज्ञाता हैं, वे ही गये हैं, उन्हीं को चैतन्य है, वे ही यान हैं, वे ही शीघ्रगन्ता हैं, उन्हीं के पास शासन-योग्यता है, अभीष्ट वस्तु भी उन्हीं के पास है। वे ही अन्न, बल और बलवान् के पालक हैं।

२. अग्नि को ही सारा संसार जानना चाहता है; यह जिज्ञासा अन्याय-पूर्ण नहीं है। धीर व्यक्ति अपने मन में जो स्थिर करता है, उसके पूर्व और पर की बात नहीं सह सकता। इसी लिए दम्भ-विहीन मनुष्य अग्नि का आश्रय प्राप्त करता है।

३. सब जुहू अग्नि को लक्ष्य कर जाते हैं। स्तुतियाँ भी अग्नि के लिए ही हैं। अग्नि मेरी समस्त स्तुतियाँ सुनते हैं। वह बहुतों के प्रवर्त्तक, तारयिता और यज्ञ के साधन हैं। उनकी रक्षा-शक्ति छिद्रशून्य है। वह शिशु की तरह शान्त और यज्ञ के अनुष्ठाता हैं।

४. जभी यजमान अग्नि को उत्पन्न करने की चेष्टा करता है, तभी अग्नि प्रकट होते हैं। उत्पन्न होकर ही तुरंत योजनीय वस्तु के साथ मिल जाते हैं। अग्नि का आनन्द-वर्द्धक कर्म श्रान्त यजमान के सन्तोष के लिए अभीष्ट फल देता है।

५. अन्वेषण-परायण और प्राप्तव्य वन के गामी अग्नि त्वचा की तरह इन्धन के बीच स्थापित हुए हैं। विद्वान्, यज्ञ ज्ञाता और यथार्थ-वादी अग्नि ने मनुष्यों को विशेष करके यज्ञानुष्ठान के समय, ज्ञान प्रदान किया है।

१४६ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. पिता-माता की गोद में अवस्थित, सवन-त्रय-रूप मस्तक-त्रय से युक्त, सप्त छन्दोरूप सप्त रश्मियों से युक्त और विकलता-शून्य अग्नि की स्तुति करो। सर्वत्रगामी, अविचलित, प्रकाशमान और अभीष्टवर्षक अग्नि का तेज चारों ओर व्याप्त हो रहा है।

२. फल-दाता अग्नि, अपनी महिमा से, द्यावा-पृथिवी को व्याप्त किये हुए हैं। अजर और पूज्य अग्निदेव हमारी रक्षा करके अवस्थित हैं। वह व्यापक पृथिवी के सानुप्रदेश या वेदी पर अपने पैर फैलाते हैं। उनकी उज्ज्वल ज्योति अन्तरिक्ष को चाटती है।

३. सेवा-कार्य में चतुर दो (यजमान और उसकी पत्नी के स्वरूप) गायें एक बछड़े (अग्नि) के सामने जाती हैं। वह निन्दनीय विषय से शून्य मार्ग का निर्माण और सब तरह की बुद्धि या प्रज्ञा, अधिक मात्रा में, धारण करती हैं।

४. विद्वान् और मेधावी लोग अज्ञेय अग्नि को अपने स्थान पर स्थापित करते हैं; बुद्धि-बल से, नाना उपायों से, उनकी रक्षा करते हैं। यज्ञ-फल का भोग करने की इच्छा से फलदाता अग्नि की शुश्रूषा करते हैं। उनके पास, सूर्यरूप में, अग्नि प्रकट होते हैं।

५. अग्नि चाहते हैं कि उन्हें सब दिशाओं के निवासी देख सकें। वे सदा जयशील और स्तुति-योग्य हैं। वे शुद्ध और महान्—सबके जीवन-स्वरूप हैं। धनवान् और सबके दर्शनीय अग्नि, अनेक स्थानों में, शिशु-समान यजमानों के लिए पिता के समान रक्षक और पालनकर्त्ता हैं।

१४७ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अग्नि, तुम्हारी उज्ज्वल और शोषक शिखायें कैसे अन्न के साथ आयु प्रदान करती हैं, जिससे पुत्र, पौत्र आदि के लिए अन्न

और आयु प्राप्त कर यजमान लोग याज्ञिक साम-गायन कर सकते हैं ?

२. हे युवा और अन्नवान् अग्नि, मेरी अत्यन्त पूज्य और अच्छी तरह सम्पादित स्तुति ग्रहण करो। कोई तुम्हारी हिंसा करता और कोई तुम्हारी पूजा करता है। मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ। मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ।

३. अग्नि, तुम्हारी जिन प्रसिद्ध और पालक रश्मियों ने (ममता के पुत्र और अन्धे दीर्घतमा को) अन्धत्व से बचाया था, उन सुखकर शिखाओं की सर्वप्रज्ञायुक्त तुम रक्षा करो। विनाशेच्छु शत्रुगण हिंसा न करने पायें।

४. अग्निदेव, जो हमारे लिए पाप चाहते हैं, स्वयं दान नहीं करते, मानसिक और वाचनिक दो प्रकार के मंत्रों-द्वारा हमारी निन्दा करते हैं, उन्हें एक मानस मंत्र गुरुभार हो और वे दुर्वाक्य-द्वारा अपना ही शरीर नष्ट करें।

५. बल के पुत्र अग्नि, जो मनुष्य जान-बूझकर दोनों तरह के मंत्रों से मनुष्य की निन्दा करता है, मैं विनय करता हूँ, हे स्तूयमान अग्नि, उसके हाथ से मेरी रक्षा करो। हमें पाप में मत फेंको।

१४८ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. वायु ने काठ के भीतर घुसकर विविधरूपशाली, सारे देवों के कार्य में निपुण और देवों को बुलानेवाले अग्नि को बढ़ाया। पहले देवों ने अग्नि को विलक्षण प्रकाशवाले सूर्य की तरह मनुष्यों और ऋत्विकों की यज्ञ-सिद्धि के लिए स्थापित किया था।

२. अग्नि को सन्तोषदायक हव्य देने से ही शत्रु लोग मुझे नष्ट नहीं कर सकेंगे। अग्नि मेरे-द्वारा प्रदत्त स्तोत्र आदि के अभिलाषी

हैं। जिस समय स्तोता अग्नि की स्तुति करते हैं, उस समय सारे देवता उनके दिये हुए हव्य को ग्रहण करते हैं।

३. याज्ञिक लोग जिन अग्नि को नित्य अग्नि-गृह में ले जाते और स्तुति के साथ स्थापित करते हैं, उन्हीं अग्नि को ऋत्विकों ने शीघ्र-गामी और रथ-निबद्ध अश्व की तरह यज्ञ के लिए बनाया।

४. विनाशक अग्नि सब प्रकार के वृक्षों को अपनी शिखाओं या दाँतों से नष्ट करके विपिन में चित्र-विचित्र शोभा प्राप्त करते हैं। इसके अनन्तर जैसे धनुर्द्धारी के पास से वेग के साथ तीर जाता है, वैसे ही प्रतिदिन वायु शिखा के अनुकूल होकर बहते हैं।

५. अरणि के गर्भ में अवस्थित जिन अग्नि को शत्रु या अन्य हिंसक दुःख नहीं दे सकते, अन्धा भी जिनका माहात्म्य ही नष्ट कर सकता, उन्हीं की अविचल भक्तिवाले यजमान विशेष रूप से तृप्ति दे करके रक्षा करते हैं।

१४९ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द विराट्)

१. महाधन के स्वामी अग्नि अभीष्ट प्रदान करते हुए हमारे देव-पूजन के सामने जा रहे हैं। प्रभुओं के भी प्रभु अग्नि देव का आश्रय करते हैं। प्रस्तर-हस्त यजमान लोग आगत अग्नि की सेवा करते हैं।

२. मनुष्यों की तरह जो अग्नि द्यावा पृथिवी के भी उत्पादक हैं, वे यशःशाली होकर वर्त्तमान हैं एवं उन्हीं से जीव लोग सृष्टि का आस्वादन प्राप्त करते हैं। उन्होंने गर्भाशय में पैठकर सारे जीवों की सृष्टि की है।

३. अग्निदेव मेधावी हैं, वे अन्तरिक्ष-विहारी वायु की तरह विभिन्न स्थानों में जाते हैं। उन्होंने दस सुन्दर वेदियों को प्रदीप्त किया है। नानारूप अग्नि सूर्य की तरह सुशोभित होते हैं।

४. द्विजन्मा अग्नि दीप्यमान लोकत्रय का प्रकाश करते और सारे रञ्जनात्मक संसार का भी प्रकाश करते हैं। वे देवों के आह्वान-कर्त्ता हैं। जहाँ जल संगृहीत होता है, वहाँ अग्नि वर्त्तमान हैं।

५. जो अग्नि द्विजन्मा हैं, वे ही होता हैं; वे ही हव्य-प्राप्ति की अभिलाषा से सारा वरणीय धन धारण करते हैं। जो मनुष्य अग्नि को हव्य देता है, वह उत्तम पुत्र प्राप्त करता है।

१५० सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द उष्णिक्)

१. हे अग्निदेव, मैं हव्य दान करता हूँ, इसलिए तुम्हारे पास बहुविध प्रार्थनायें करता हूँ। अग्निदेव, मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ। अग्निदेव, महान् स्वामी के घर में जैसे सेवक हैं, वैसे ही तुम्हारे पास मैं हूँ।

२. अग्निदेव, जो धनी मनुष्य तुम्हें स्वामी नहीं मानता, उत्तमरूप हवन के लिए दक्षिणा नहीं देता एवं जो व्यक्ति देवों की स्तुति नहीं करता, उन देवशून्य दोनों व्यक्तियों को धन नहीं देना।

३. हे मेधावी अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, वह स्वर्ग में चन्द्रमा की तरह सबका आनन्ददाता होता है; प्रधानों में भी प्रधान होता है। इसलिए हम विशेषतः तुम्हारे ही सेवक होंगे।

१५१ सूक्त

(देवता मित्रावरुण। छन्द जगती)

१. गोधनाभिलाषी और स्वाध्याय-सम्पन्न यजमानों ने गोधन की प्राप्ति और मनुष्यों की रक्षा के लिए मित्र की तरह प्रिय और यजनीय जिन अग्नि को अन्तरिक्ष-भव जल के मध्य में कर्म-द्वारा उत्पन्न किया है, उनके बल और शब्द से द्यावा-पृथिवी कम्पित होती हैं।

२. चूँकि मित्रवत् ऋत्विकों ने तुम्हारे लिए अभीष्टदायी और अपने कर्म में समर्थ सोमरस धारण किया है, इसलिए पूजक के घर आओ। तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम गृहपति का आह्वान सुनो।

३. अभीष्ट-वर्षक मित्रावरुण, मनुष्य लोग महाबल की प्राप्ति के लिए द्यावा-पृथिवी से तुम्हारे प्रशंसनीय जन्म का कीर्त्तन करते हैं; क्योंकि तुम यजमान के यज्ञफलरूप मनोरथ को देते हो तथा स्तुति और हव्ययुक्त यज्ञ ग्रहण करते हो।

४. हे पर्याप्त-बलशाली मित्रावरुण, जो यज्ञभूमि तुम्हारे लिए प्रियतर है, वह उत्तम रूप से सजाई गई है। हे सत्यवादी मित्रावरुण, तुम हमारे महान् यज्ञ की प्रशंसा करो। दुग्ध आदि के द्वारा शरीर में बलदान के लिए समर्थ धेनु की तरह तुम दोनों विशाल द्युलोक के अग्र-भाग में देवों के आनन्दोत्पादन में समर्थ हो और विविध स्थानों में आरम्भ किये कर्म का उपभोग करते हो।

५. मित्रावरुण, तुम अपनी महिमा से जिन गायों को वरणीय प्रदेश में ले जाते हो, उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता। वे दूध देती और गोशाला में लौट आती हैं। चोरधारी मनुष्यों की तरह वे गायें प्रातःकाल और सायंकाल को उपरिस्थित सूर्य की ओर देखकर चीत्कार करती हैं।

६. मित्रावरुण, तुम जिस यज्ञ में यज्ञभूमि को सम्मान-युक्त करते हो, उसमें केश की तरह अग्नि की शिखा यज्ञ के लिए तुम्हारी पूजा करती है। तुम निम्न-मुख से वृष्टि प्रदान करो और हमारे कर्म को सम्पन्न करो। तुम्हीं मेधावी यजमान की मनोहर स्तुति के स्वामी हो।

७. जो मेधावी, होमनिष्पादक और मनोहर यज्ञों के साधन से संयुक्त यजमान यज्ञ के लिए तुम्हारे उद्देश्य से स्तुति करते हुए, हव्य प्रदान करता है, उसी बुद्धिशाली यजमान के लिए गमन करो।

यज्ञ की कामना करो। हमारे ऊपर अनुग्रह करने की अभिलाषा से हमारी स्तुति स्वीकार करो।

८. हे सत्यवादी मित्रावरुण, जैसे इन्द्रिय का प्रयोग करने के लिए पहले मन का प्रयोग करना होता है, वैसे ही यजमान लोग अन्य देवों के पहले गव्य-द्वारा तुम्हारा पूजन करते हैं। आसक्त चित्त से यजमान लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम मन में दर्प न करके हमारे समृद्ध कार्य में उपस्थित होओ।

९. मित्रावरुण, तुम धन-विशिष्ट अन्न धारण करो, हमें धनयुक्त अन्न प्रदान करो। वह बहुत है और तुम्हारे बुद्धि-बल से रक्षित है। दिन एवं रात्रि को तुम्हारा देवत्व नहीं मिला है। नदियों ने भी तुम्हारा देवत्व नहीं प्राप्त किया, और न पणियों ने ही। पणियों ने तुम्हारा दान भी नहीं पाया।

१५२ सूक्त

(देवता मित्रावरुण। छन्द त्रिष्टुप्)

१. हे स्थूल मित्र और वरुण, तुम तेजोरूप वस्त्र धारण करो। तुम्हारी सृष्टि सुन्दर और दोषशून्य है। तुम सारे असत्य का विनाश करो और सत्य के साथ युक्त होओ।

२. मित्र और वरुण—दोनों ही कर्म का अनुष्ठान करते हैं। दोनों सत्यवादी मंत्रित्व-निपुण, कवियों के स्तवनीय और शत्रु-हिंसक हैं। वे प्रचण्ड रूप से, चतुर्गुण अस्त्रों से संयुक्त होकर त्रिगुण अस्त्रों से युक्तों का विनाश करते हैं। उनके प्रभाव से देव-निन्दक पहले ही जीर्ण हो जाते हैं।

३. मित्रावरुण, पद-संयुक्त मनुष्यों के आगे पदशून्या उषा आती हैं—यह जो तुम्हारा ही कर्म है, यह कौन जानता है? तुम्हारे या दिवारात्रि के पुत्र सूर्य सत्य की पूर्त्ति और असत्य का विनाश करके सारे संसार का भार वहन करते हैं।

४. हम देखते हैं कि, उषा के जार सूर्य क्रमागत चलते ही हैं—कभी भी बैठते नहीं। विस्तृत तेज से आच्छादित सूर्य मित्रावरुण के प्रियपात्र हैं।

५. आदित्य के न तो अश्व हैं न लगाम; परन्तु वे शीघ्र-गमन-शील और अतीव-शब्दकर्त्ता हैं। वे क्रमशः ही ऊपर चढ़ते हैं। संसार इन सब अचिन्तनीय और विशाल कर्मों को मित्र और वरुण के मानकर उनकी स्तुति और सेवा करता है।

६. प्रीति-प्रदायक गायें विशाल कर्म-प्रिय ममता के पुत्र को (मुझे) अपने स्तन से उत्पन्न दूध से प्रसन्न करें। वे यज्ञानुष्ठानों को जानकर यज्ञ में बचे अन्न को मुख-द्वारा खाने के लिए माँगें और मित्रावरुण की सेवा करके यज्ञ को अखण्डित रूप से सम्पूर्ण करें।

७. देव मित्रावरुण, मैं रक्षा के लिए नमस्कार और स्तोत्र करते हुए तुम्हारे हव्य-सेवन के लिए उद्योग करूँगा। हमारा महान् कर्म युद्ध के समय शत्रुओं को परास्त कर सके। स्वर्गीय वृष्टि हमारा उद्धार करे।

१५३ सूक्त

(देवता मित्रावरुण। छन्द त्रिष्टुप्)

१. हे घृतस्रावी (जलवर्षक) और महान् मित्रावरुण, चूँकि हमारे अध्वर्यु लोग अपने कार्य से तुम्हारा पोषण करते हैं; इसलिए हम समान-प्रीति-युक्त होकर हव्य, घृत और नमस्कार-द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं।

२. हे मित्रावरुण, तुम्हारे उद्देश्य से केवल यज्ञ का प्रस्ताव या यज्ञ ही नहीं है; किन्तु उसके द्वारा मैं तुम्हारा तेज प्राप्त करता हूँ। जिस समय सुधी होता तुम्हारे उद्देश्य से यज्ञ करने के लिए आते हैं, उस समय, हे अभीष्टवर्षक, वे सुख प्राप्त करते हैं।

३. मित्रावरुण, रातहव्य नाम के राजा के मनुष्य यजमान के होता की तरह यज्ञ में सेवा-द्वारा तुम्हें प्रसन्न करने पर राजा की धेनु जैसे दुग्धवती हुई थी, वैसे ही तुम्हारे यज्ञ में जो यजमान हव्य देता है, उसकी गायें भी बहुत दूधवाली होकर आनन्द बढ़ायें।

४. मित्र और वरुण, दिव्य धेनुएँ, अन्न और जल तुम्हारे भक्त यजमानों के लिए तुम्हें प्रसन्न करें। हमारे यजमान के पूर्व-पालक अग्नि दानशील हों और तुम क्षीरवर्षिणी धेनु का दूध पीओ।

१५४ सूक्त

(देवता विष्णु। छन्द त्रिष्टुप्)

१. मैं विष्णु के वीर-कार्य का शीघ्र ही कीर्त्तन करूँगा। उन्होंने वामनावतार में तीनों लोकों को मापा था। उन्होंने ऊपर के सत्य-लोक को स्तम्भित किया था। उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था। संसार उनकी बहुत स्तुति करता है।

२. चूँकि विष्णु के तीन पाद-क्षेप में सारा संसार रहता है इसलिए भयंकर, हिंस्र, गिरिशायी और वन्य जानवर की तरह संसार विष्णु के विक्रम की प्रशंसा करता है।

३. उन्नत प्रदेश में रहनेवाले, अभीष्टवर्षक और सब लोकों में प्रशंसित विष्णु को महाबल और स्तोत्र आश्रित करें। उन्होंने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण नियत लोक-त्रय को तीन बार के पद-क्रमण-द्वारा मापा था।

४. जिन विष्णु का ह्रास-हीन, अमृतपूर्ण और त्रिसंख्यक पद-क्षेप अन्न-द्वारा मनुष्यों को हर्ष देता है, जिन विष्णु ने अकेले ही धातु-त्रय, पृथिवी, द्युलोक और समस्त भुवनों को धारण कर रखा है।

५. देवाकांक्षी मनुष्य जिस प्रिय मार्ग को प्राप्त करके हृष्ट

होते हैं, मैं भी उसी को प्राप्त करूँ। उस पराक्रमी विष्णु के परम पद में मधुर (अमृत आदि का) क्षरण है। विष्णु वस्तुतः बन्धु हैं।

६. जिन सब स्थानों में उन्मत्त शृङ्गवाली और शीघ्रगामी गायें हैं, उन्हीं सब स्थानों में तुम दोनों के जाने के लिए मैं विष्णु की प्रार्थना करता हूँ। इन सब स्थानों में बहुत लोगों के स्तवनीय और अभीष्टवर्षक विष्णु का परम पद यथेष्ट स्फूर्ति प्राप्त करता है।

१५५ सूक्त

(देवता इन्द्र और विष्णु। छन्द जगती)

१. अध्वर्य्युगण, तुम स्तुतिप्रिय और महावीर इन्द्र और विष्णु के लिए पीने योग्य सोमरस तैयार करो। वे दोनों दुर्द्धर्ष और महिमावाले हैं। वे मेघ के ऊपर इस तरह भ्रमण करते हैं, मानों सुशिक्षित अश्व के ऊपर भ्रमण करते हैं।

२. इन्द्र और विष्णु, तुम लोग वृष्ट-पद हो, इसलिए यज्ञ में बचे हुए सोम पीनेवाले यजमान तुम्हारे दीप्तिपूर्ण आगमन की प्रशंसा करते हैं। तुम लोग मनुष्यों के लिए, शत्रु-विमर्द्दक अग्नि से प्रदातव्य अन्न सदा प्रेरित करते हो।

३. सारी प्रसिद्ध आहुतियाँ इन्द्र के महान् पौरुष को बढ़ाती हैं। इन्द्र सबकी मातृभूता द्यावा-पृथिवी के रेत, तेज और उपभोग के लिए वही शक्ति प्रदान करते हैं। पुत्र का नाम निकृष्ट या निम्न है और पिता का नाम उत्कृष्ट या उच्च है। द्युलोक के दीप्तिमान् प्रदेश में तृतीय नाम या पौत्र का नाम है अथवा वह द्युलोक में रहनेवाले इन्द्र और विष्णु के अधीन है।

४. हम सबके स्वामी, पालक, शत्रु-रहित और तरुण विष्णु के पौरुष की स्तुति करते हैं। विष्णु ने प्रशंसनीय लोक की रक्षा के लिए तीन बार पाद-विक्षेप-द्वारा सारे पार्थिव लोकों की विस्तृत रूप से प्रदक्षिणा की है।

५. मनुष्यगण कीर्त्तन करते हुए स्वर्गदर्शी विष्णु के दो पाद-क्षेप प्राप्त करते हैं। उनके तीसरे पाद-क्षेप को मनुष्य नहीं पा सकते; आकाश में उड़नेवाले पक्षी या मरुत् भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६. विष्णु ने गति-विशेष द्वारा विविध स्वभावशाली काल के ९४ अंशों को चक्र की तरह वृत्ताकार परिचालित कर रखा है। विष्णु विशाल स्तुति से युक्त और स्तुति-द्वारा जानने योग्य हैं। वे नित्य, तरुण और अकुमार हैं। वे युद्ध में या आह्वान पर जाते हैं।

१५६ सूक्त

(देवता विष्णु। छन्द जगती)

१. विष्णुदेव, मित्र की तरह तुम हमारे सुखदाता, घृताहुति-भाजन, प्रकृत अन्नवान्, रक्षाशील और पृथुव्यापी बनो। विद्वान् यजमान-द्वारा तुम्हारा स्तोत्र बार-बार कहने योग्य है और तुम्हारा यज्ञ हविवाले यजमान का आराधनीय है।

२. जो व्यक्ति प्राचीन मेधावी, नित्य नवीन और स्वयं उत्पन्न या जगन्मादनशीला स्त्रीवाले विष्णु को हव्य प्रदान करता है; जो महानुभाव विष्णु की पूजनीय आदि कथा कहते हैं; वे ही समीप स्थान पाते हैं।

३. स्तोताओ, प्राचीन यज्ञ के गर्भभूत विष्णु को जैसा जानते हो, वैसे ही स्तोत्र आदि के द्वारा उनको प्रसन्न करो। विष्णु का नाम जानकर कीर्त्तन करो। विष्णु, तुम महानुभाव हो, तुम्हारी बुद्धि की हम उपासना करते हैं।

४. राजा वरुण और अश्विनीकुमार ऋत्विक्युक्त यजमान के यज्ञ-रूप विष्णु की सेवा करते हैं। अश्विनीकुमार और विष्णु मित्र होकर उत्तम और विनश्न बल धारण करते और मेघ का आच्छादन हटाते हैं।

५. जो स्वर्गीय और अतिशय शोभनकर्मा विष्णु शोभनकर्मा इन्द्र के साथ मिलकर आते हैं, उन्हीं मेधावी तीनों लोकों में पराक्रमशाली विष्णु ने आनेवाले यजमान को प्रसन्न किया है और यजमान को यज्ञ-भाग दिया है।

१५७ सूक्त

(२२ अनुवाक। देवता अश्विद्वय। छन्द जगती और त्रिष्टुप्)

१. भूमि के ऊपर अग्नि जागे, सूर्य उगे। विराट उषा तेज-द्वारा सबको आह्लादित करके अन्धकार को दूर करती हैं। हे अश्विनीकुमारो, आने के लिए अपना रथ तैयार करो। सारे संसार को अपने-अपने कर्मों में सविता देवता नियुक्त करें।

२. अश्विद्वय, जिस समय तुम लोग वृष्टिवाला रथ को तैयार करते हो, उस समय मधुर जल-द्वारा हमारा बल बढ़ाओ। हमारे आदमियों को अन्न-द्वारा प्रसन्न करो। हम वीर संग्राम में धन प्राप्त करें।

३. अश्विनीकुमारों का तीन पहियोंवाला, मधुयुक्त, तेज घोड़ों से संयुक्त, प्रशंसित, तीन बन्धनोंवाला धन-पूर्ण और सर्व-सौभाग्य-सम्पन्न रथ हमारे सामने आये और हमारे द्विपद (पुत्र आदि) तथा चतुष्पद (गौ आदि) को सुख दे।

४. अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हमें बल प्रदान करो। अपनी मधुमती कथा-द्वारा हमें प्रसन्न करो। हमारी आयु बढ़ाओ, पाप दूर करो, द्वेषियों का विनाश करो और सारे कर्मों में हमारे साथी बनो।

५. अश्विद्वय, तुम दोनों गमनशील गौओं और सारे संसार के प्राणियों में अन्तःस्थित गर्भों की रक्षा करो। अभीष्टवर्षकद्वय, अग्नि, जल और वनस्पतियों को प्रवर्तित करो।

६. अश्विद्वय, तुम दोनों औषध-ज्ञान-द्वारा वैद्य और रथवाहक अश्वों-द्वारा रथवान् हुए हो। तुम्हारा बल बहुत अधिक है; इसलिए

हे उग्र अश्विद्वय, तुम्हें जो आसक्त चित्त से हव्य प्रदान करता है, उसकी रक्षा करो।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

१५८ सूक्त

(तृतीय अध्याय। देवता अश्विद्वय। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. हे अभीष्टवर्षक, निवासदाता, पापहन्ता, बहुज्ञानी, स्तुति-द्वारा बर्द्धमान और पूजित अश्विनीकुमारो, हमें अभीष्ट फल दो; क्योंकि उचथ्यपुत्र दीर्घतमा तुम्हारी प्रार्थना करता है और तुम प्रशंसनीय रीति से आश्रय प्रदान करते हो।

२. निवासप्रद अश्विनीकुमारो, तुम्हारे इस अनुग्रह के सामने कौन तुम्हें हव्य प्रदान कर सकता है? अपने यज्ञीय स्थान पर हमारी स्तुति सुनकर अन्न के साथ तुम लोग बहुत धन देना चाहते हो। शरीर-पुष्टिकरी, शब्दायमाना और बहुत दूधवाली गायें प्रदान करो। यजमानों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए तुम लोग कृत-संकल्प होकर विचरण करते हो।

३. अश्विनीकुमारो, तुम्हारे उद्धार-कुशल और अश्वयुक्त रथ के, तुग्रपुत्र भुज्यु के लिए बल-प्रयोग द्वारा उत्तीर्ण होने पर वह समुद्र में स्थित हुआ था। अतएव जैसे युद्धजेता वीर द्रुतगामी अश्व-द्वारा अपने घर में आता है, वैसे ही हम तुम्हारे आश्रय के लिए शरणागत हुए हैं।

४. अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति दीर्घतमा की रक्षा करे। प्रतिदिन घूमनेवाले अहोरात्र हमें शीर्ण न करें। दस बार प्रज्वलित अग्नि मुझे जला न सके; क्योंकि तुम्हारे आश्रित यह व्यक्ति पाशबद्ध होकर पृथिवी पर लेट रहा है।

५. मातृरूप नदी-जल मुझे डुबो न दे। गर्भदासी या अनार्यों ने इन संकुलिताङ्ग वृद्ध को नीचे मुँह कर फेंक दिया है। त्रैतन ने इनका सिर काटा था। दास ने स्वयं हृदय-देश और अंश-द्वय पर आघात किया था।

६. ममता के पुत्र दीर्घतमा दसवें काल के बीतने पर जीर्ण हुए थे। जो सब लोग कर्म-फल पाने की इच्छा करते हैं, वे अपने नेता और सारथि हैं।

१५९ सूक्त

(देवता द्यावा-पृथिवी। छन्द जगती।)

१. यज्ञ-वर्द्धक, महान् और यज्ञकार्य में चैतन्यकारी द्यावा-पृथिवी की मैं, विशेष रूप से स्तुति करता हूँ। यजमान उनके पुत्र-स्वरूप हैं। उनके कर्म सुन्दर हैं। अनुग्रह करते हुए वे यजमानों को वरणीय धन प्रदान करते हैं।

२. मैंने आह्वान-मंत्र-द्वारा निर्द्रोह और पितृस्थानीय द्युलोक के उदार और सदय मन को जाना है। मातृस्थानीय पृथिवी के मन को भी जाना है। पिता-माता (द्यावा-पृथिवी) अपनी शक्ति से पुत्रों की भली भाँति रक्षा करते हुए बहुत और विस्तीर्ण अमृत देते हैं।

३. तुम्हारी सन्तान, सुकर्मा और सुदर्शन प्रजायें तुम्हारे पहले के अनुग्रह को स्मरण करके तुम्हें महान् और माता कहकर जानते हैं। पुत्र-स्वरूप स्थावर और जंगम पदार्थ द्यावा-पृथिवी के अतिरिक्त और किसी को नहीं जानते। तुम उनकी रक्षा का अबाध स्थान प्रदान करते हो।

४. द्यावा-पृथिवी सहोदरा भगिनी और एक स्थान पर रहनेवाले जोड़े हैं। वे प्रज्ञा-युक्त और चैतन्यकारी हैं। किरणें उनका विभाग करती हैं। अपने कार्य में निरत और सुप्रकाशित रश्मियाँ द्योतमान अन्तरिक्ष के बीच नये-नये सूत फैलाती हैं।

५. आज हम सविता देवता की अनुमति के अनुसार उस वरणीय धन को चाहते हैं। हमारे ऊपर द्यावा-पृथिवी अनुग्रह करके गृह आदि और शत-शत गौओं से युक्त धन दें।

१६० सूक्त

(देवता द्यावा-पृथिवी। छन्द जगती।)

१. द्यावा-पृथिवी संसार के लिए सुखदायिनी, यज्ञवती, जल उत्पन्न करने के लिए चेष्टा-सम्पन्ना, सुजाता और अपने कार्य में निपुणा हैं। द्योतमान और शुचि सूर्य द्यावा-पृथिवी के बीच, अपने कार्य से, सदा गमन करते हैं।

२. विशाल, विस्तीर्ण और परस्पर-वियुक्त माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) प्राणियों की रक्षा करते हैं। शरीरियों के मंगल के लिए ही द्यावा-पृथिवी मानों सचेष्ट हैं; क्योंकि पिता सारे पदार्थों को रूप प्रदान करते हैं।

३. पिता-माता (द्यावा-पृथिवी) के पुत्र सूर्य हैं। वे धीर और फलदाता हैं। अपनी बुद्धि से वे सारे भूतों को प्रकाशित करते हैं। वे शुक्लवर्ण धेनु (पृथिवी) और सेचन-कार्य में समर्थ वृष (द्युलोक) को भी प्रकाशित करते हैं। वे द्युलोक से निर्मल दूध दुहते हैं।

४. वे देवों में देवतम और कर्मियों में कर्मश्रेष्ठ हैं। उन्होंने सर्व-सुखदाता द्यावा-पृथिवी को प्रकट किया है और प्राणियों के सुख के लिए द्यावा-पृथिवी को विभक्त करते हैं। उन्होंने सुदृढ़ शङ्कु या खूँटे में इन्हें स्थिर कर रखा है।

५. द्यावा-पृथिवी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम महान् हो, हमें प्रभूत अन्न और बल प्रदान करो, जिससे हम सदा पुत्र आदि प्रजा का विस्तार करें। हमारे शरीर में प्रशंसनीय बल की वृद्धि कर दो।

१६१ सूक्त

(देवता ऋभु। छन्द जगती।)

१. जो हमारे पास आये हैं, वे क्या हमसे ज्येष्ठ हैं या छोटे? ये क्या देवों के दूत-कार्य के लिए आये हैं। इन्हें क्या कहना होगा? इन्हें कैसे पहचानेंगे? माता अग्नि, हम चमस की निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुल में उत्पन्न है। उस काष्ठमय चमस की स्मृति की हम व्याख्या करेंगे।

२. अग्नि ने कहा—सुधन्वा के पुत्र, एक चमस को चार बनाओ—देवों ने यह बात कहकर मुझे भेजा है। मैं तुम्हें कहने आया हूँ। तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करने पर तुम लोग देवों के साथ यज्ञांशभागी बनोगे।

३. अग्निदेव, देवों ने अपने दूत अग्नि के प्रति जो-जो कार्य बताये हैं, उनमें से अश्व बनाना होगा, रथ का निर्माण करना होगा, गौ का सृजन करना होगा अथवा माता-पिता को फिर तरुण करना होगा? भ्रातृवर, तुम्हारे उन सब कार्यों को करके अन्त में कर्म-फल के लिए तुम्हारे पास आयेंगे।

४. ऋभुगण, वह कार्य करके तुमने पूछा कि जो दूत हमारे पास आया था, वह कहाँ गया? जिस समय त्वष्टा या ब्रह्मा ने चमस के चार टुकड़े देखे, उसी समय वह स्त्रियों में छिप गया।

५. जिस समय त्वष्टा ने कहा कि जिन्होंने देवों के पानपात्र चमस का अपमान किया है, उनका वध करना होगा, उस समय से ऋभुगण ने सोम तैयार होने पर दूसरा नाम ग्रहण किया और कन्या या उनकी माता ने उसी नाम से पुकारकर उन्हें प्रसन्न किया।

६. इन्द्र ने अपने अश्वों को सजाया, अश्विनीकुमारों ने रथ तैयार किया और बृहस्पति ने विश्वरूपा गौ को स्वीकार किया। इसलिए

हे ऋभु, विभु और वाज, तुम देवों के पास गमन करो। हे पुण्यकर्त्ता लोग, तुम यज्ञ-भाग ग्रहण करो।

७. हे सुधन्वा के पुत्रो, तुमने आश्चर्यजनक कौशल से मृत धेनु के शरीर से चमड़ा लेकर उससे धेनु उत्पन्न की, जो पिता-माता बूढ़े थे, उन्हें फिर युवा किया और एक अश्व से अन्य अश्व उत्पन्न किया इसलिए रथ तैयार करके देवों के सामने जाओ।

८. देवो, तुमने कहा था, "हे सुधन्वा के पुत्रो, तुम लोग यही सोम-रस पान करो अथवा मुञ्ज-तृण से शोधित सोमरस पान करो। यदि इन दोनों में तुम्हारी इच्छा न हो, तो तीसरे (सायं) सवन में सोमरस पीकर अत्यन्त तृप्त हो जाओ।"

९. ऋभुओं में से एक ने कहा, "जल ही सबसे श्रेष्ठ है," एक ने अग्नि को श्रेष्ठ बताया और तीसरे ने पृथ्वी को। सच्ची बात कहकर ही उन्होंने चारों चमसों को तैयार किया।

१०. एक लोहितवर्ण जल या रक्त बाहर भूमि पर रखते हैं, दूसरे छूरे से कटे मांस को रखते हैं और तीसरे मांस से मल आदि अलग करते हैं। किस प्रकार पिता-माता (यजमान-दम्पती) पुत्रों (ऋभुओं) का उपकार कर सकते हैं?

११. प्रभूत दीप्तिशाली ऋभुओ, तुम नेता हो। प्राणियों के भले के लिए तुम ऊँचे स्थान पर व्रीहि, यव आदि तृण उत्पन्न करते और सत्कर्म करने की इच्छा से नीचे के प्रदेश में जल उत्पन्न करते हो। सूर्यमंडल में अब तक तुम निहित थे; इस समय वैसा नहीं करना। अपना कार्य सिद्ध करो?

१२. ऋभुओ, जिस समय तुम जलधर में भूतों को मिलाकर चारों ओर जाते हो, उस समय संसार के पिता-माता कहाँ रहते हैं? जो लोग तुम्हारा हाथ पकड़कर रोकते हैं, उन्हें नीचा दिखाओ। जो वचन-द्वारा तुम्हें रोकता है, उसकी भर्त्सना करो।

१३. ऋभुओ, तुम सूर्य-मंडल में सोकर सूर्य से पूछते हो कि "हे सूर्य, किसने हमारे कर्म को जगाया।" सूर्य कहते हैं, "वायु ने तुम्हें जगाया।" वर्ष बीत चला, इस समय फिर तुम लोग संसार को प्रकाशित करो।

१४. बल के नप्ता ऋभुओ, तुम्हारे दर्शन की इच्छा से मरुत् द्युलोक से आ रहे हैं; अग्नि पृथ्वी से आते हैं; वायु, आकाश से आते हैं; और वरुण समुद्र-जल के साथ आते हैं।

१६२ सूक्त

(देवता अश्व। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. चूँकि हम यज्ञ में देवजात और द्रुतगति अश्व के वीर कर्म का कीर्त्तन करते हैं, इसलिए मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और वायु हमारी निन्दा न करें।

२. सुन्दर स्वर्णाभरण से विभूषित अश्व के सामने ऋत्विक् लोग उत्सर्ग के लिए छाग पकड़कर ले जाते हैं। विविध वर्ण के छाग शब्द करते हुए सामने जाते हैं। वह इन्द्र और पूषा का प्रिय अन्न हो।

३. सब देवों के लिए उपयुक्त छाग पूषा के ही अंश में पड़ता है। उसे शीघ्रगामी अश्व के साथ सामने लाया जाता है। अतएव त्वष्टा देवता के सुन्दर भोजन के लिए अश्व के साथ इस छाग से सुखाद्य पुरोडाश तैयार किया जाय।

४. जब ऋत्विक् लोग देवों के लिए प्राप्त करने योग्य अश्व को समय-समय पर तीन बार अग्नि के पास ले जाते हैं तब पूषा के प्रथम भाग का छाग देवों के यज्ञ की बात का प्रचार करके आगे जाता है।

५. होता (देवों को बुलानेवाले), अध्वर्यु (यज्ञ-नेता), आवया (हव्यदाता), अग्निमिद्ध (अग्नि-प्रज्वलन-कर्त्ता), प्रावग्राभ

(प्रस्तर-द्वारा सोमरस निकालनेवाले), शंस्ता (नियमानुसार कर्म का अनुष्ठान करनेवाले) और ब्रह्मा (सब यज्ञ-कार्यों के प्रधान सम्पादक) प्रसिद्ध, अलंकृत और सुन्दर यज्ञ-द्वारा नदियों को पूर्ण करें।

६. जो यूप के योग्य वृक्ष काटते हैं, जो यूप वृक्ष ढोते हैं, जो अश्व को बाँधने के यूप के लिए काष्ठ-मण्डप आदि तैयार करते हैं, जो अश्व के लिए पाक-पात्र का संग्रह करते हैं, हमारा संकल्प भी उन्हीं का हो।

७. हमारा मनोरथ स्वयं सिद्ध हो। मनोहर-पृष्ठ-विशिष्ट अश्व, देवों की आशा-पूर्ति के लिए, आवे। देवों की पुष्टि के लिए हम उसे अच्छी तरह बाँधेंगे। मेधावी ऋत्विक् लोग आनन्दित हों।

८. जिस रस्सी से घोड़े की गर्दन बाँधी जाती है, जिससे उसके पैर बाँधे जाते हैं, जिस रस्सी से उसका सिर बाँधा जाता है, वे सब रस्सियाँ और अश्व के मुख में डाली जानेवाली घासें देवों के पास आवें।

९. अश्व का जो कच्चा ही मांस मक्खी खाती है, काटने या साफ़ करने के समय हथियार में जो लग जाता है और छेदक के हाथों तथा नखों में जो लग जाता है, वह सब देवों के पास जाय।

१०. उदर का जो अजीर्ण अंश बाहर हो जाता है और अपक्व मांस का जो लेशमात्र रहता है, उसे छेदक निर्दोष करे और पवित्र मांस देवों के लिए उपयोगी करके पकावे।

११. अश्व, आग में पकाते समय तुम्हारे शरीर से जो रस निकलता और जो अंश शूल में आबद्ध रहता है, वह मिट्टी में गिरकर तिनकों में मिल न जाय। देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय।

१२. जो लोग चारों ओर से अश्व का पकना देखते हैं, जो कहते हैं कि गन्ध मनोहर है, देवों को दो; तथा जो मांस-भिक्षा की अपेक्षा करते हैं, उनका संकल्प हमारा ही हो।

१३. मांस-पाचन की परीक्षा के लिए जो काष्ठभाण्ड लगाया जाता है, जिन पात्रों में रस रक्षित होता है, जिन आच्छादनों से गर्मी रहती है, जिस वेतस-शाखा से अश्व का अवयव पहले चिह्नित किया जाता है और जिस क्षुरिका से, चिह्नानुसार अवयव काटे जाते हैं, सो सब अश्व का मांस प्रस्तुत करते हैं।

१४. जहाँ अश्व गया था, जहाँ बैठा था, जहाँ लेटा था, जिससे उसके पैर बाँधे गये थे, जो उसने पिया था तथा जो घास उसने खाई थी, सो सब देवों के पास जाय।

१५. अश्वगण, धूमगन्ध अग्नि तुमसे शब्द न करा सकें, अतीव अग्नि-संयोग से प्रतप्त सुगन्धित माँड़ कम्पित न हो। यज्ञ के लिए अभिप्रेत और हवन के लिए लाया हुआ, सम्मुख में प्रदत्त और वषट्कार-द्वारा शोभित अश्व देवता ग्रहण करें।

१६. जिस आच्छादन योग्य वस्त्र से अश्व को आच्छादित किया जाता है, उसको जो सोने के गहने दिये जाते हैं, जिससे उसका सिर और पैर बाँधे जाते हैं, सो सब देवों के लिए प्रिय है। ऋत्विक् लोग देवों को यह सब प्रदान करते हैं।

१७. अश्व, जोर से नासाध्वनि करते हुए गमन करने पर चाबुक के आघात अथवा एँड़ के आघात से जो व्यथा उत्पन्न हुई थी, सो सब व्यथा मैं उसी प्रकार मंत्र-द्वारा आहुति में देता हूँ, जैसे स्रुक्-द्वारा हव्य दिया जाता है।

१८. देवों के बन्धु-स्वरूप अश्व की जो बग़ल की टेढ़ी चौंतीस हड्डियाँ हैं, उन्हें काटने के लिए खड्ग जाता है। हे अश्वच्छेदक, ऐसा करना, जिससे अंग विच्छिन्न न हो जायें। शब्द करके और देख-देखकर एक-एक हिस्सा काटो।

१९. ऋतु ही तेजःपुञ्ज अश्व का एकमात्र विकाशक हैं। उन्हें दो दिन-रात धारण करते हैं। अश्व, तुम्हारे शरीर के जिन अवयवों को,

यथासमय काटता हूँ, उनका पिण्ड बनाकर अग्नि को प्रदान करता हूँ।

२०. अश्व, तुम जिस समय देवों के पास जाते हो, उस समय तुम्हारी प्रिय देह तुम्हें क्लेश न दे। तुम्हारे शरीर में खड्ग अधिक क्षत न करे। मांस-लोलुप और अनभिज्ञ छेदक अस्त्र-द्वारा विभिन्न अंगों को छोड़कर तुम्हारा गात्र वृथा न काटे।

२१. अश्व, तुम न तो मरते हो और न संसार तुम्हारी हिंसा करता है। तुम उत्तम मार्ग से देवों के पास जाते हो। इन्द्र के हरि नाम के दोनों घोड़े और मरुतों के पृषती नाम के दोनों वाहन तुम्हारे रथ में जोते जायेंगे। अश्विनीकुमारों के वाहन रासभ के बदले, तुम्हारे रथ में, कोई शीघ्रगामी अश्व जोता जायगा।

२२. यह अश्व, हमें गौ और अश्व से युक्त तथा संसार-रक्षक धन प्रदान करे; हमें पुत्र प्रदान करे। तेजस्वी अश्व, हमें पाप से बचाओ। हविर्भूत अश्व, हमें शारीरिक बल प्रदान करो।

१६३ सूक्त

(देवता अश्व। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अश्व, तुम्हारा महान् जन्म सबकी स्तुति के योग्य है। अन्तरिक्ष या जल से प्रथम उत्पन्न होकर, यजमान के अनुग्रह के लिए, महान् शब्द करते हो। श्येन पक्षी के पक्ष की तरह तुम्हें पक्ष हैं तथा हरिण के पद की तरह तुम्हें पैर हैं।

२. यम या अग्नि ने अश्व दिया था, त्रित या वायु ने उसे रथ में जोड़ा। रथ पर पहले इन्द्र चढ़े और गन्धर्वों या सोमों ने उसकी लगाम को धारण किया। वसुओं ने सूर्य से अश्व को बनाया।

३. अश्व, तुम यम, आदित्य और गोपनीय व्रतधारी त्रित हो। तुम सोम के साथ मिलित हो। पुरोहित लोग कहते हैं कि द्युलोक में तुम्हारे तीन बन्धन-स्थान हैं।

४. अश्व, द्युलोक में तुम्हारे तीन बन्धन (वसुगण, सूर्य और द्युस्थान) हैं। जल या पृथिवी में तुम्हारे तीन बन्धन (अन्न, स्थान और बीज) हैं। अन्तरिक्ष में तुम्हारे तीन बन्धन (मेघ, विद्युत् और स्तनित) हैं। तुम्हीं वरुण हो। पुरातत्त्वविदों ने जिन सब स्थानों में तुम्हारे परम जन्म का निर्देश किया है, वह तुम हमें बताते हो।

५. अश्व, मैंने देखा है ये सब स्थान तुम्हारे अंग-शोधक हैं। जिस समय तुम यज्ञांश का भोजन करते हो, उस समय तुम्हारा पद-चिह्न यहाँ पड़ता है। तुम्हारी जो फलप्रद वल्गा (लगाम) सत्यभूत यज्ञ की रक्षा करती है, उसे भी यहाँ देखा है।

६. अश्व, दूर से ही मन के द्वारा मैंने तुम्हारे शरीर को पहचाना है। तुम नीचे से, अन्तरिक्ष-मार्ग में सूर्य में जाते हो। मैंने देखा है, तुम्हारा सिर धूलि-शून्य, सुखकर, मार्ग से शीघ्र गति से क्रमशः ऊपर उठता है।

७. मैं देखता हूँ, तुम्हारा उत्कृष्ट रूप पृथिवी पर चारों ओर अन्न के लिए आता है। अश्व, जिस समय मनुष्य भोग लेकर तुम्हारे पास जाता है, उस समय तुम ग्रास-योग्य तृण आदि का भक्षण करते हो।

८. अश्व, तुम्हारे पीछे-पीछे अश्व जाता है, मनुष्य तुम्हारे पीछे जाता है, स्त्रियों का सौभाग्य तुम्हारे पीछे जाता है। दूसरे अश्वों ने तुम्हारा अनुगमन करके मैत्री प्राप्त की है। देव लोग तुम्हारे वीर-कर्म की प्रशंसा करते हैं।

९. अश्व का सिर सोने का है और उसके पैर लोहे के तथा वेग-शाली हैं। वेग के सम्बन्ध में तो इन्द्र भी निकृष्ट हैं। देवगण अश्व के हव्य-भक्षण के लिए आते हैं। पहले इन्द्र ही यहाँ बैठे हैं।

१०. जिस समय अश्व स्वर्गीय पथ से जाता है, उस समय वह निविड़-जघन-विशिष्ट होता है। पतली कमरवाले, विक्रमशाली और स्वर्गीय अश्वगण दल के दल हंसों की तरह पंक्ति-बद्ध होकर उसके साथ जाते हैं।

११. अश्व, तुम्हारा शरीर शीघ्रगामी है, तुम्हारा चित्त भी वायु की तरह शीघ्रगन्ता है। तुम्हारे केसर नाना स्थानों में नाना भावों में अवस्थित तथा जंगल में विविध स्थानों में भ्रमण करते हैं।

१२. वह द्रुतगामी अश्व आसक्त चित्त से देवों का ध्यान करते हुए वध-स्थान में जाता है। उसके मित्र छाग को उसके आगे-आगे ले जाया जाता है। कवि स्तोता पीछे-पीछे जाते हैं।

१३. द्रुतगामी अश्व, पिता और माता को प्राप्त करने के लिए उत्कृष्ट और एक निवास-योग्य स्थान पर गमन करता है। अश्व, आज खूब प्रसन्न होकर देवों के पास जाओ, ताकि हव्यदाता वरणीय धन प्राप्त करे।

१६४ सूक्त

(देवता १ से ४१ तक के विश्वेदेवगण, ४२ के प्रथमार्द्ध के वाक् और द्वितीयार्द्ध के अप्, ४३ के प्रथमार्द्ध के शक रूप और द्वितीयार्द्ध के सोम, ४४ के अग्नि, सूर्य और वायु, ४५ के वाक्, ४६ से ४७ तक के सूर्य, ४८ के संवत्सररूप काल, ४९ की सरस्वती, ५० के साध्याय, ५१ क अग्नि और ५२ के सूर्य।)

१. सबके सेवनीय और जगत्पालक होता या सूर्य के मध्यम भ्राता या वायु सर्वत्र व्याप्त हैं। उनके तीसरे भ्राता या अग्नि आहुति धारण करते हैं। भाइयों के बीच सात किरणों से युक्त विश्पति को देखा गया।

२. सूर्य के एकचक्र रथ में सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामों से रथ ढोता है। चक्र की तीन नाभियाँ हैं। वे न तो कभी शिथिल होतीं हैं न जीर्ण। सारा संसार उनका आश्रय करता है।

३. जो सात, सप्त-चक्र रथ का, अधिष्ठान करते हैं, वे ही सात अश्व हैं; वे ही इस रथ को ढोते हैं। सात भगिनियाँ (किरणें) इस रथ के सामने आती हैं। इसमें सात गायें (किरणें या स्वर) हैं।

४. प्रथम उत्पन्न को किसने देखा था—जिस समय अस्थि-रहिता (प्रकृति) ने अस्थि-युक्त (संसार) को धारण किया? पृथिवी से प्राण और रक्त उत्पन्न हुए; परन्तु आत्मा कहाँ से उत्पन्न हुई? विद्वान् के पास कौन इस विषय की जिज्ञासा करने जायगा?

५. मैं अनाड़ी हूँ; कुछ समझ में न आने से पूछ रहा हूँ। ये सब संदिग्ध बातें देवों के पास भी रहस्यमयी हैं। एक वर्ष के गोवत्स या सूर्य के वेष्टन के लिए मेधावियों ने जो सात सूत या सात सोम-यज्ञ प्रस्तुत किये, वे क्या हैं?

६. मैं अज्ञानी हूँ। कुछ न जानकर ही ज्ञानियों के पास जानने की इच्छा से पूछता हूँ। जिन्होंने इन छः लोकों को रोक रक्खा है, जो जन्म-रहित रूप से निवास करते हैं, वे क्या एक हैं?

७. गमनशील और सुन्दर आदित्य का स्वरूप अतीव निगूढ़ है। वे सबके मस्तक-स्वरूप हैं। उनकी किरणें दूध दुहतीं तथा अति विशाल तेज से युक्त होकर उसी प्रकार पुनः जलपान करती हैं। जो यह सब कथायें जानते हैं, वे कहें।

८. माता (पृथिवी) वृष्टि के लिए पिता या द्युलोक में स्थित आदित्य को अनुष्ठान-द्वारा पूजती हैं। इसके पहले ही पिता भीतर-ही-भीतर, उसके साथ संगत हुए थे। गर्भ-धारण की इच्छा से माता गर्भ-रस से निबिद्ध हुई थी। अनेक प्रकार के शस्य उत्पन्न करने के लिए आपस में बातचीत भी की थी।

९. पिता (द्युलोक) अभिलाष-पूरण में समर्थ पृथिवी का भार वहन करने में नियुक्त थे। गर्भभूत जलराशि मेघमाला के बीच थी। वत्स या वृष्टि जल ने शब्द किया और तीन (मेघ, वायु और किरण) के योग से विश्व-रूपिणी गौ (पृथिवी) हुई अर्थात् पृथिवी शस्याच्छादिता हुई।

१०. एकमात्र आदित्य तीन माता (पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश) और तीन पिता (अग्नि, वायु और सूर्य) को धारण करते हुए ऊपर

अवस्थित हैं, उन्हें थकावट नहीं आती। द्युलोक की पीठ पर देवता लोग सूर्य के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं। उस बातचीत को कोई नहीं जानता; परन्तु उसमें सबकी बातें रहती हैं।

११. सत्यात्मक आदित्य का, बारह अरों (राशियों) से युक्त चक्र स्वर्ग के चारों ओर बार-बार भ्रमण करता और कभी पुराना नहीं होता है। अग्नि, इस चक्र में पुत्र-स्वरूप सात सौ बीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं।

१२. पाँच पैरों (ऋतुओं) और बारह रूपों (महीनों) से संयुक्त आदित्य जिस समय द्युलोक के पूर्वार्द्ध में रहते हैं, उस समय उन्हें कोई-कोई पुरीषी या जलदाता कहते हैं। दूसरे कोई-कोई छः अरों (ऋतुओं) और सात चक्रों (रश्मियों) से संयुक्त रथ पर द्योतमान सूर्य को 'अर्पित' कहते हैं—जब कि, वे द्युलोक के दूसरे आधे में रहते हैं।

१३. नियत परिवर्त्तमान पाँच ऋतुओं या अरों (खूँटों) से युक्त चक्र पर सारे भुवन विलीन हैं। उसका अक्ष प्रभूत भार-वहन में नहीं थकता। उसकी नाभि सदा समान रहती है—कभी शीर्ण नहीं होती।

१४. समान नेमि से संयुक्त और अजीर्ण काल-चक्र निरन्तर घूम रहा है। एक साथ दस (पंच लोक-पाल और निषाद, ब्राह्मण आदि पंच वर्ण) ऊपर मिलकर पृथिवी को धारण करते हैं। सूर्य का नेत्र-रूप मण्डल वृष्टि-जल से छिप गया—सारे प्राणी और जगत् भी उसमें विलीन हुए।

१५. आदित्य की सहजात ऋतुओं में सातवीं (अधिक मासवाली) ऋतु अकेली है। अन्य छः ऋतुएँ जोड़ी हैं, गमनशील हैं और देवों से उत्पन्न हैं। ये ऋतुएँ सबकी इष्ट, स्थान-भेद से पृथक्-पृथक् स्थापित और रूप-भेद से विविध आकृतियों से संयुक्त हैं। वे अपने अधिष्ठाता के लिए बार-बार घूमती हैं।

१६. किरणें स्त्री होकर भी पुरुष हैं। जिनके आँखें हैं, वे ही यह देख सकते हैं; जिनकी दृष्टि मोटी है, वे नहीं। जो पुत्र मेधावी हैं, वे ही यह समझ सकते हैं। जो ये सब बातें समझ सकते हैं; वे ही पिता के पिता हैं।

१७. वत्स, यजमान या अग्नि का पिछला भाग सामने के पैर से और सम्मुख-भाग पीछे के पैर से धारण करते हुए गौ, आदित्य-रश्मि या आहुति ऊपर की ओर जाती है। वह कहाँ जाती है? किसके लिए आधे रास्ते से लौट आये? कहाँ प्रसव करती है? दल के बीच प्रसव नहीं करती।

१८. जो अधःस्थित (अग्नि) लोक-पालक की ऊर्ध्वस्थित (सूर्य) के साथ और ऊर्ध्वस्थित की अधःस्थित के साथ उपासना करते हैं, वे ही मेधावी की तरह आचरण करते हैं। किसने ये सब बातें कही हैं? कहाँ से यह अलौकिक मन उत्पन्न हुआ है?

१९. जिन्हें विद्वान् लोग अधोमुख कहते हैं, उन्हीं को ऊर्ध्वमुख भी कहते हैं और जिन्हें ऊर्ध्वमुख कहते हैं, उन्हें अधोमुख भी कहते हैं। सोम, तुमने और इन्द्र ने जो मण्डलद्वय बनाया है, वह युग-युक्त अश्व आदि की तरह विश्व का भार वहन करता है।

२०. दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) मित्रता के साथ एक वृक्ष या शरीर में रहते हैं। उनमें एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पल का भक्षण करता और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भक्षण (भोग) नहीं करता, केवल द्रष्टा है।

२१. जिनमें (सूर्यरूप मण्डल में) सुन्दर गति रश्मियाँ, कर्त्तव्य-ज्ञान से अमृत का अंश लेकर सदा जाती हैं और जो धीर भाव से सारे भुवनों की रक्षा करते हैं, मेरी अपरिपक्व बुद्धि होने पर भी मुझे उन्होंने, स्थापित किया।

२२. जिस (आदित्य) वृक्ष पर जलग्राही किरणें रात को बैठतीं और संसार के ऊपर प्रातःकाल दीप्ति प्रकट करती हैं; विद्वान्

लोग उनका फल प्रापणीय बताते हैं। जो व्यक्ति पिता (सूर्य या परमात्मा) को नहीं जानता, वह इस फल को नहीं प्राप्त करता।

२३. जो पृथिवी पर अग्नि का स्थान जानते हैं, जो जानते हैं कि, देवों ने, अन्तरिक्ष से, वायु को उत्पन्न किया है तथा जो ऊर्ध्वतन प्रदेश में आदित्य का स्थान जानते हैं, वे अमृतत्व पाते हैं।

२४. उन्होंने गायत्री छन्द-द्वारा पूजन-मंत्र की सृष्टि की, अर्चना-मंत्र-द्वारा साम को बनाया, त्रिष्टुप्-द्वारा द्वच-तृच-रूप वाक् का निर्माण किया, द्विपाद और चतुष्पाद वचन के द्वारा अनुवाक-रचना की तथा अक्षर-योजना-द्वारा सातों छन्दों की रचना की।

२५. जगती छन्द-द्वारा उन्होंने द्युलोक में वृष्टि को स्तम्भित कर रखा है, रथन्तर साम या सूर्य-सम्बन्धीय मंत्र में सूर्य को देखा है। पण्डित लोग कहते हैं कि गायत्री के तीन चरण हैं; इसलिए गायत्री माहात्म्य और ओजस्विता में अन्य सबको लाँघ जाती है।

२६. मैं इस दुग्धवती गौ को बुलाता हूँ। दूध दुहने में निपुण व्यक्ति उसे दूहता है। हमारे सोम के श्रेष्ठ भाग को सविता ग्रहण करें; क्योंकि उससे उनका तेज प्रवृद्ध होगा। इसलिए मैं उन्हें बुलाता हूँ।

२७. धनशाली धेनु वत्स के लिए मन ही मन व्यग्र होकर "हम्बा" करती हुई आती है। यह अश्विनीकुमारों के लिए दूध दे और महा-सौभाग्य-लाभ के लिए प्रवृद्ध हो।

२८. धेनु नेत्र बन्द किये बछड़े के लिए "हम्बा" शब्द करती है। बछड़े का मस्तक चाटने के लिए "हम्बा" रव करती है। बछड़े के ओठों पर गाज या फेन देखकर धेनु "हम्बा" रव करती तथा यथेष्ट दूध पिलाकर उसे परिपुष्ट करती है।

२९. बछड़ा धेनु के चारों ओर घूमकर अव्यक्त शब्द करता है और गोचर-भूमि पर गाय "हम्बा" करती है। धेनु पशु-ज्ञान-द्वारा मनुष्यों को लज्जित करती है और द्योतमान होकर अपना रूप प्रकट करती है।

३०. चञ्चल, श्वास-प्रश्वासशील और अपनी कार्य-सिद्धि में व्यग्र जीव सोकर घर में अविचल भाव से अवस्थित हुआ। मर्त्य के साथ उत्पन्न मर्त्य का अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ सदा विहरण करता है।

३१. मैं इन रक्षक और प्रसन्न आदित्य को अन्तरिक्ष में आते-जाते देखता हूँ। सर्वत्रगामिनी और सहगामिनी किरण-माला से आच्छादित होकर भुवनों में बार-बार आते-जाते हैं।

३२. जिसने गर्भ किया है, वह भी उसका तत्त्व नहीं जानता। जिसने उसको देखा है, वह उसके पास भी लुप्त है। मातृ-योनि के बीच वेष्टित होकर वह गर्भ बहुत सन्तानवान् होता और पाप-लिप्त होता है।

३३. स्वर्ग मेरा पालक और जनक है, पृथिवी की नाभि मेरा मित्र है और यह विस्तृत पृथिवी मेरी माता है। उच्च पात्र-द्वय (आकाश और पृथिवी) के बीच योनि (अन्तरिक्ष) है। वहाँ पिता (द्यु) दूर-स्थिता (पृथिवी) का गर्भ उत्पादन करता है।

३४. मैं तुमसे पूछता हूँ, पृथिवी का अन्त कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, संसार की नाभि (उत्पत्ति-स्थान) कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, सेचन-समर्थ अश्व का रेत क्या है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, समस्त वाक्यों का परम स्थान कहाँ है ?

३५. यह वेद ही पृथिवी का अन्त है, यह यज्ञ ही संसार की नाभि है, यह सोम ही सेचन-समर्थ अश्व का रेत है और यह ब्रह्मा या ऋत्विक् वाक्य का परम स्थान है।

३६. सात किरणें आधे वर्ष तक गर्भ धारण या वृष्टि को उत्पन्न करके तथा संसार में रेतः-स्वरूप या वृष्टि-दान द्वारा जगत् का सार-भूत होकर विष्णु या आदित्य के कार्य में नियुक्त हैं। वे ज्ञाता और सर्वतोगामी हैं। वे प्रज्ञा-द्वारा भीतर-ही-भीतर सारे जगत् को व्याप्त किये हुए हैं।

३७. मैं यह हूँ कि नहीं—मैं नहीं जानता; क्योंकि मैं मूढ़-चित्त हूँ, अच्छी तरह आबद्ध होकर विक्षिप्तचित्त रहता हूँ। जिस समय ज्ञान का प्रथम उन्मेष होता है उसी समय में वाक्य का अर्थ समझ सकता हूँ।

३८. नित्य अनित्य के साथ एक स्थान पर रहता है; अन्नमय शरीर प्राप्त कर वह कभी अधोदेश और कभी ऊर्ध्वदेश में जाता है। वे सदा एक साथ रहते हैं, इस संसार में सर्वत्र एक साथ जाते हैं; परलोक में भी सब स्थानों पर एक साथ जाते हैं। संसार इनमें एक को (अनित्य को) पहचान सकता है—दूसरे (आत्मा) को नहीं।

३९. सारे देवता महाकाश के समान मन्त्राक्षरों पर उपवेशन किये हुए हैं—इस बात को जो नहीं जानता, वह ऋचा से क्या करेगा? इस बात को जो जानता है, वह सुख से रहता है।

४०. अहननीया गौ! शोभन शस्य, तृण आदि का भक्षण करो और यथेष्ट दुग्धवती बनो। ऐसा करने पर हम भी प्रभूत धनवाले हो जायँगे। सदा तृण चरो और सर्वत्र घूमते हुए निर्मल जल का पान करो।

४१. मेघनिनाद-रूपिणी और अन्तरिक्ष-विहारिणी वाक्, वृष्टि-जल की सृष्टि करते हुए, शब्द करती है। वह कभी एकपदी, कभी द्विपदी, कभी चतुष्पदी, कभी अष्टपदी और कभी नवपदी होती है। कभी-कभी तो सहस्राक्षर-परिमिता होकर, अन्तरिक्ष के ऊपर स्थित होकर शब्द करती है।

४२. उसके पास से सारे मेघ वर्षा करते हैं, उसी से चारों दिशाओं में आश्रित भूतों की रक्षा होती है। उसी से जल उत्पन्न होता और जल से सारे जीव प्राण धारण करते हैं।

४३. मैंने पास ही सूखे गोबर से उत्पन्न धूम को देखा। चारों दिशाओं में व्याप्त निकृष्ट धूम के बाद अग्नि को देखा। वीर या ऋत्विक् लोग शुक्ल-वर्ण वृष या फलदाता सोम का पाक करते हैं। उनका यही प्रथम अनुष्ठान है।

४४. केश-युक्त तीन व्यक्ति (अग्नि, आदित्य, वायु) वर्ष के बीच, यथासमय भूमि का परिदर्शन करते हैं। उनमें एक जन पृथिवी का क्षौर कर्म करते हैं, दूसरे अपने कार्य-द्वारा परिदर्शन करते हैं और तीसरे का रूप नहीं देखा जाता, केवल गति देखी जाती है।

४५. वाक् चार प्रकार की है। मेधावी योगी उसे जानते हैं। उसमें तीन गुहा में निहित हैं, प्रकट नहीं हैं। चौथे प्रकार की वाक् मनुष्य बोलते हैं।

४६. मेधावी लोग इन आदित्य को इन्द्र, मित्र, वरुण तौर अग्नि कहा करते हैं। ये स्वर्गीय, पक्षवाले (गरुड़) और सुन्दर गमनवाले हैं। ये एक हैं, तो भी इन्हें अनेक कहा गया है। इन्हें अग्नि, यम और मातरिश्वा कहा जाता है।

४७. सुन्दर गतिवाली और जल-हारिणी सूर्यकिरणें कृष्णवर्ण और नियत-गति मेघ को जलपूर्ण करते हुए द्युलोक में गमन करती हैं। वह वृष्टि के स्थान से नीचे आती हैं और पृथिवी को जल से अच्छी तरह भिगोती हैं।

४८. बारह परिधियाँ (राशियाँ), एक चक्र (वर्ष) और तीन नाभियाँ हैं। यह बात कौन जानता है? इस चक्र (वर्ष) में तीन सौ साठ अर या खूँटे हैं।

४९. सरस्वती, तुम्हारे शरीर में रहनेवाला जो गुण संसार के सुख का कारण है, जिससे सारे वरणीय धनों की रक्षा करती हो, जो गुण बहुरत्नों का आधार है, जो समस्त धन प्राप्त किये हुए है और जो कल्याणवाही है, इस समय हमारे पान के लिए उसे प्रकट करो।

५०. देवों वा यजमानों ने यज्ञ या अग्नि-द्वारा यज्ञ किया है; क्योंकि यही प्रथम धर्म है। वह माहात्म्य आकाश में एकत्र है, जहाँ पहले से ही साधनीय देवता हैं।

५१. जल एक ही तरह का है; कभी ऊपर और कभी नीचे जाता-आता है। प्रसन्नता-दाता मेघ भूमि को प्रसन्न करते हैं। अग्नि द्युलोक को प्रसन्न करते हैं।

५२. सूर्यदेव स्वर्गीय सुन्दर गतिवाले, गमनशील, प्रकाण्ड, जल के गर्भोत्पादक और ओषधियों के प्रकाशक हैं। वे वृष्टि-द्वारा जलाशय को तृप्त और नदी को पालित करते हैं। रक्षा के लिए उन्हें बुलाता हूँ।

१६५ सूक्त

(२३ अनुवाक। देवता इन्द्र। यहाँ से १९१ सूक्तों तक के ऋषि अगस्त्य। छन्द त्रिष्टुप्। इस सूक्त में इन्द्र, मरुत और अगस्त्य की बातचीत है। इसके तीसरे, पाँचवें, सातवें और नवें मंत्र मरुत के वचन हैं; इसलिए उनके ऋषि मरुत् हैं। तीन के ऋषि अगस्त्य हैं। अवशिष्ट के ऋषि इन्द्र हैं।)

१. (इन्द्र) समानवयस्क और एक स्थान-निवासी मरुत् लोग सर्वसाधारण की दुर्ज्ञेय शोभा से युक्त होकर पृथिवी पर सिञ्चन करते हैं। मन में क्या सोचकर वे किस देश से आये हैं? आकर जलवर्षाय-गण धन-लाभ की इच्छा से क्या बल की अर्चना करते हैं?

२. तरुणवयस्क मरुद्गण किसका हव्य ग्रहण करते हैं? वे अन्त-रिक्षचारी श्येन पक्षी की तरह हैं। यज्ञ में उन्हें कौन हटा सकता है? कैसे महा-स्तोत्र-द्वारा हम उन्हें आनन्दित करें?

३. (मरुद्गण) हे साधुपालक और पूज्य इन्द्र, तुम अकेले कहाँ जा रहे हो? तुम क्या ऐसे ही हो? हमारे साथ मिलकर तुमने ठीक ही पूछा है। हरि-वाहन, हमारे लिए जो वक्तव्य है वह मीठे वचनों से कहो।

४. (इन्द्र) सारा हव्य मेरा है; सारी स्तुतियाँ मेरे लिए सुखकर हैं; प्रस्तुत सोम मेरा है। मेरा मजबूत वज्र फेंके जाने पर अव्यर्थ

होता है। यजमान लोग मेरी ही प्रार्थना करते हैं, ऋक्-मंत्र मुझे ही चाहते हैं। ये हरि नाम के दोनों घोड़े हव्य-लाभ के लिए मुझे ढोते हैं।

५. (मरुद्गण) इसी लिए हम महातेज से अपने शरीर को अलंकृत करके, निकटवर्त्ती और बली अश्वों से युक्त होकर, यज्ञस्थान में जाने के लिए शीघ्र ही तैयार हुए हैं। तुम रेत या बल के साथ हमारे साथ ही रहो।

६. (इन्द्र) मरुतो, अहि या वृत्रासुर के वध के समय मेरे साथ रहने का तुम्हारा ढंग कहाँ था? मैं उग्र बलिष्ठ महात्म्यवाला हूँ; इसलिए मैंने सारे शत्रुओं को वध-द्वारा परास्त किया है।

७. (मरुद्गण) अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, हम समान पौरुषवाले हैं। हमारे साथ मिलकर तुमने बहुत कुछ किया है। बलवत्तम इन्द्र, हमने भी बहुत काम किया है। हम मरुत हैं; इसलिए कार्य-द्वारा हम वृष्टि आदि की कामना करते हैं।

८. (इन्द्र) मरुतो, मैंने क्रोध के समय विशाल पराक्रमी बनकर अपने बाहुबल से वृत्र को पराजित किया है। मैं वज्रबाहु हूँ। मैं मनुष्य के लिए सबकी प्रसन्नता-दायक सुन्दर वृष्टि किया करता हूँ।

९. (मरुद्गण) इन्द्र, तुम्हारा सभी कुछ उत्तम है। तुम्हारे समान कोई देवता विद्वान् नहीं है। अतीव बलशाली इन्द्र, तुमने जो कर्त्तव्य-कर्मों को किया है, उन्हें न तो कोई पहले कर सका, न आगे कर सकता है।

१०. (इन्द्र) मैं अकेला हूँ। मेरा ही बल सर्वत्र व्याप्त हो; मैं जो चाहूँ, तुरन्त कर डालूँ; क्योंकि, मरुतो, मैं उग्र और विद्वान् हूँ एवं जिन धनों का मुझे पता है, उनका मैं ही अधीश्वर हूँ।

११. मरुतो, इस सम्बन्ध में तुमने मेरा जो प्रसिद्ध स्तोत्र किया है, वह मुझे आनन्दित करता है। मैं अभीष्ट फलदाता, ऐश्वर्यशाली, विभिन्न रूपोंवाला और तुम्हारा योग्य मित्र हूँ।

१२. मरुतो, तुम सोने के रंग के हो। मेरे लिए प्रसन्न होकर दूरस्थ कीर्ति और अन्न धारण करते हुए मुझे अच्छी तरह से प्रकाश और तेज-द्वारा आच्छादित किया है। मुझे आच्छादित करो।

१३. (अगस्त्य) मरुतो, कौन मनुष्य तुम्हारी पूजा करता है ? तुम सबके मित्र हो। तुम यजमान के सामने आओ। मरुतो, तुम मनोहर धन की प्राप्ति के उपाय-भूत बनो और सत्य कर्म को जानो।

१४. मरुतो, स्तोत्र-द्वारा परिचरण-समर्थ, स्तुति-कुशल और मान्य ऋत्विक् की बुद्धि, तुम्हारी सेवा के लिए हमारे सामने आती है। मरुतो, मैं मेधावी हूँ। मेरे सामने आओ। तुम्हारे प्रसिद्ध कर्म को लक्ष्य कर स्तोता तुम्हारा पूजन करता है।

१५. मरुतो, यह स्तोत्र और यह स्तुति माननीय और प्रसन्नता-दायक है अथवा मान्य मान्दर्य कवि की है। यह शरीर-पुष्टि के लिए तुम्हारे पास जाती है। हम अन्न, बल और दीर्घ आयु अथवा जय, शील और दान पायें।

तृतीय अध्याय समाप्त।

१६६ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय। देवता मरुद्गण। ऋषि अगस्त्य। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. फलवर्षक यज्ञ के सुसम्पादन के लिए, मरुतों के शीघ्र आकर उपस्थित होने के लिए, उनके प्रसिद्ध पूर्वतन महात्म्य को कहता हूँ। हे विशाल ध्वनि से युक्त और सब कार्यों में समर्थ मरुद्गण, तुम्हारे यज्ञस्थल में जाने के लिए प्रस्तुत होने पर जैसे समिधा तेज से आवृत होती है, वैसे ही तुम लोग युद्ध में जाने के लिए प्रभूत बल धारण करो।

२. औरस पुत्र की तरह प्रिय–मधुर हव्य धारण करके घर्षणकारी मरुद्गण, प्रसन्न चित्त से, यज्ञ में क्रीड़ा करते हैं। विनीत यजमान की रक्षा के लिए रुद्रगण मिलते हैं। उनके बल उनके अधीन हैं; वे कभी यजमान को क्लेश नहीं देते।

३. जिस हविर्दाता यजमान की आहुति से प्रसन्न होकर सर्व-रक्षक, अमर और सुखोत्पादक मरुद्गण यथेष्ट धन देते हैं, उसी यजमान के हितकारी सखा की तरह तुम लोग समस्त संसार को अच्छी तरह सींचते हो।

४. मरुतो, तुम्हारे अश्वगण अपने बल से सारे संसार का भ्रमण करते हैं; वे अपने ही रथ से युक्त होकर जाते हैं। तुम्हारी यात्रा अत्यन्त आश्चर्यमयी है। हथियार उठाने पर जैसे लोग संसार में डरते हैं, वैसे ही सारे भुवन और अट्टालिकायें, तुम्हारे यात्रा-काल में, डरती हैं।

५. मरुतों का गमन अत्यन्त प्रदीप्त है। वे जिस समय गिरि-गह्वरों को ध्वनित करते हैं अथवा मनुष्यों के हित के लिए अन्तरिक्ष के ऊपरी भाग में चढ़ते हैं, उस समय उनके पथ के सारे वीरुध, डर के मारे व्याकुल हो जाते और रथारूढ़ा स्त्री की तरह ओषधियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती हैं।

६. उग्र मरुतो, सुबुद्धि के साथ, तुम लोग अहिंसक होकर हमें सुबुद्धि प्रदान करो। जिस समय तुम्हारी क्षेपणशील और दन्त-विशिष्ट विद्युत् दर्शन करती है, उस समय सुलक्षित हेति (अस्त्र-विशेष) की तरह, पशुओं को नष्ट करती है।

७. जिनका दान अविरत है, जिनका धन भ्रंश-रहित है, जिनका शत्रु-वध पर्याप्त है और जिनकी स्तुति सुगीत है, वे मरुद्गण, सोम के पाने के लिए, स्तुति गाते हैं; क्योंकि वे ही लोग इन्द्र की प्रथम वीर-कीर्त्ति जानते हैं।

८. मरुतो, तुमने जिस व्यक्ति को कुटिल-स्वभाव पाप से बचाया है, हे उग्र और बलवान् मरुद्गण, तुमने जिस मनुष्य को पुत्रादि-पुष्टि-साधन-द्वारा निन्दा से बचाया है, उसे असंख्य योग्य वस्तुओं-द्वारा प्रतिपालित करो।

९. मरुतो, सारे कल्याणवाही पदार्थ तुम्हारे रथ पर स्थापित हैं। तुम्हारे स्कन्धदेश में परस्पर स्पर्द्धावाले आयुध हैं। तुम्हारे लिए विश्राम-स्थान पर खाद्य तैयार है। तुम्हारे सारे चक्र अक्ष के पास घूमते हैं।

१०. मनुष्यों की हितकारिणी भुजाओं पर मरुद्गण अनन्त कल्याण-साधक द्रव्य धारण करते हैं, वक्षःस्थल में कान्तियुक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त सोने के आभूषण धारण करते हैं। स्कन्धदेश में श्वेत-वर्ण की माला धारण करते हैं। वज्र-सदृश आयुध पर क्षुर धारण करते हैं। जैसे पक्षी पक्ष धारण करते हैं, वैसे ही मरुत्लोग श्री धारण करते हैं।

११. जो मरुद्गण महान्, महिमान्वित, विभूतिमान् और आकाशस्थ नक्षत्रों की तरह दूर में प्रकाशित हैं, जो प्रसन्न हैं, जिनकी जीभ सुन्दर है, जिनके मुख से शब्द होता है, जो इन्द्र के सहायक हैं और जो स्तुति-युक्त हैं, वे हमारे यज्ञ-स्थल में आयें।

१२. सुजात मरुद्गण, तुम्हारा माहात्म्य प्रसिद्ध है और तुम्हारा दान अदिति के व्रत की तरह अविच्छिन्न है। तुम जिस पुण्यात्मा यज-मान को दान देते हो, उसके प्रति इन्द्र कुटिलता नहीं करते।

१३. मरुद्गण, तुम्हारी मित्रता प्रसिद्ध और चिरस्थायिनी है। अमर होकर तुम लोग हमारी स्तुति की भली भाँति रक्षा करते हो। अनुग्रह-पूर्वक, मनुष्यों की स्तुति की रक्षा करते हुए, उनके साथ मिलकर तथा उनका नेतृत्व स्वीकार कर कर्म-द्वारा सब जान जाते हो।

१४. वेगवान् मरुतो, तुम्हारे महान् आगमन पर हम दीर्घ कर्म-यज्ञ को वर्द्धित करते हैं। उसके द्वारा युद्ध में मनुष्य विजयी होता है। इन सब यज्ञों-द्वारा मैं तुम्हारा शुभागमन प्राप्त कर सकूँ।

१५. मरुतो, कवि मान्य मान्दर्य का यह स्तोम तुम्हारे लिए है; यह स्तुति तुम्हारे लिए है; इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टि के लिए तुम्हारे पास आती है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१६७ सूक्त

(देवता प्रथम मंत्र के इन्द्र; अवशिष्ट के मरुत्। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम हजारों तरह से रक्षा करो। तुम्हारी रक्षायें हमारे पास आयें। हरि नामक अश्ववाले इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरह के प्रशंसनीय अन्न हैं; वे हमें प्राप्त हों। इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरह का धन है। हमारी तृप्ति के लिए वे हमें प्राप्त हों। हजार चौपाये हमें प्राप्त हों।

२. आश्रय देने के लिए मरुद्गण हमारे पास आयें। सुबुद्धि मरुद्गण प्रशस्यतम और महादीप्ति-संयुक्त धन के साथ हमारे पास आयें; क्योंकि उनके नियुत् नाम के उत्कृष्ट अश्व समुद्र के उस पार भी धन धारण करते हैं।

३. सुव्यवस्थित, जल-वर्षक और सुवर्ण-वर्ण विद्युत् मेघमाला की तरह अथवा निगूढ़ स्थान में अवस्थित मनुष्य की भार्या की तरह अथवा कही गई यज्ञीय वाणी की तरह इन मरुतों के साथ मिलती है।

४. साधारण स्त्री की तरह आलिंगन-परायण बिजली के साथ शुभ्रवर्ण, अतिगमनशील और उत्कृष्ट मरुद्गण मिलते हैं। भयंकर मरुद्गण द्यावा-पृथिवी को नहीं हटाते। देवता लोग मैत्री के कारण उनकी समृद्धि का साधन करते हैं।

५. असुर (मरुतों) की अपनी पत्नी रोदसी या बिजली आलुलायित केश और अनुरक्त मन से मरुतों के संगम के लिए उनकी सेवा करती

है। जैसे सूर्या अश्विनीकुमारों के रथ पर चढ़ती है, वैसे ही प्रदीप्तावयवा रोदसी चंचल मरुतों के रथ पर चढ़कर शीघ्र आती है।

६. यज्ञ आरम्भ होने पर वृष्टि दान के लिए तरुण वयस्क तरुणी रोदसी को रथ पर बैठाते हैं। बलवती रोदसी नियमानुरूप उनके साथ मिलती हैं। उसी समय अर्चन-मंत्र-युक्त हव्यदाता और सोमाभिषवकारी यजमान मरुतों की सेवा करते हुए स्तव-पाठ करता है।

७. मरुतों की महिमा सबकी प्रशंसनीय और अमोघ है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। उनकी रोदसी वर्षणाभिलाषिणी अहंकारिणी और अविनश्वरा है। यह सौभाग्यशालिनी और उत्पत्तिशील प्रजा को धारण करती है।

८. मित्र, वरुण और अर्यमा इस यज्ञ को निन्दा से बचाते और उसके अयोग्य पदार्थ का विनाश करते हैं। मरुतो, तुम्हारे जल देने का समय जब आता है, तब वे मेघों के बीच संचित जल की वर्षा करते हैं।

९. मरुतो, हमारे बीच किसी ने भी, अत्यन्त दूर से भी, तुम्हारे बल का अन्त नहीं पाया है। दूसरों को परास्त करनेवाले बल के द्वारा बढ़कर जलराशि की तरह अपनी शक्ति से शत्रुओं को विजित करते हैं।

१०. आज हम इन्द्र के प्रियतम होंगे, यज्ञ में उनकी महिमा गायेंगे। हमने पहले इन्द्र का माहात्म्य गाया था और प्रतिदिन गाते हैं। इसलिए महान् इन्द्र हमारे लिए अनुकूल हों।

११. मरुतो, कवि मान्दर्य की यह स्तुति तुम्हारे लिए है। इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टि के लिए तुम्हारे पास आती है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु पायें।

१६८ सूक्त

(देवता मरुद्गण। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. मरुतो, सारे यज्ञों में ही तुम्हारा समान आग्रह है। अपने सारे कर्मों को देवों के पास ले जाने के लिए धारण करते हो; इसलिए द्यावा-पृथिवी की भली भाँति रक्षा करने के लिए उत्कृष्ट स्तोत्र-द्वारा तुम्हें अपनी ओर आने के लिए बुलाता हूँ।

२. स्वयं उत्पन्न, स्वाधीन बल और कम्पनशील मरुद्गण मानो मूर्ति-मान् होकर अन्न और स्वर्ग के लिए प्रकट होते हैं। असंख्य और प्रशंसनीय धेनु जैसे दूध देती है, वैसे ही, जल-तरंग के समान वे उपस्थित होकर जल-दान करते हैं।

३. सुसंस्कृत शाखावाली सोमलता, अभिषुत और पीत होकर, जैसे हृदय के बीच परिचारिका की तरह कार्य करती है, वैसे ही ध्यान किये जाने पर मरुद्गण भी करते हैं। उनके अंश-देश में, स्त्री की तरह, आयुध-विशेष आलिंगन करता है। मरुतों के हाथ में हस्तत्राण और कर्त्तन है।

४. परस्पर मिले हुए मरुद्गण अनायास स्वर्ग से आते हैं। अमर मरुतो, अपने ही वाक्यों से हमारा उत्साह बढ़ाओ। निष्पाप, अनेक यज्ञों में प्रादुर्भूत और प्रदीप्त मरुद्गण दृढ़ पर्वतों को भी कम्पित कर देते हैं।

५. आयुध-विशेष या भुज-लक्ष्मी से सुशोभित मरुद्गण, जैसे जीभ दोनों जबड़ों को चालित करती है, वैसे ही तुम्हारे बीच रहकर कौन तुम्हें परिचालित करता है। तुम लोग स्वयं परिचालित होते हो। जैसे जलवर्षी मेघ परिचालित होता है, जैसे दिन में मेघ चालित होता है, वैसे ही बहुफलेच्छु यजमान, अन्न-प्राप्ति के लिए, तुम्हें परिचालित करता है।

६. मरुतो, जिस जल के लिए तुम आते हो, उस विशाल वृष्टि-जल का आदि और अन्त कहाँ है? शिथिल तृण की तरह जिस समय

तुम जलराशि को गिराते हो, उस समय वज्र-द्वारा दीप्तिमान् मेघ को विदीर्ण करते हो।

७. मरुतो, जैसा तुम्हारा धन है, वैसा ही दान भी है। दान के सम्बन्ध में तुम्हारे सहायक इन्द्र हैं। उसमें सुख और दीप्ति है। उसका फल परिपक्व है। उससे कृषि-कार्य का भी मंगल होता है। वह दाता की दक्षिणा की तरह शीघ्र फलदाता है। वह असुर्य की जयशील शक्ति की तरह है।

८. जिस समय वज्र मेघ-सम्भूत शब्द उच्चारित करते हैं, उस समय उनसे क्षरणशील जल परिचालित होता है। जिस समय मरुद्गण पृथिवी पर जल सेचन करते हैं, उस समय विद्युद् निम्नमुख पृथिवी पर प्रकट होती है।

९. पृश्नि ने महासंग्राम के लिए प्रदीप्त गमन-युक्त मरुद्गण को प्रसव किया है। समान रूपवाले मरुतों ने जल उत्पन्न किया है। इसके पश्चात् संसार ने अभिलषित अन्न आदि प्राप्त किया है।

१०. मरुतो, कवि मान्य मान्दर्य का यह स्तोत्र तुम्हारे लिए है; यह स्तुति तुम्हारे लिए है। अपने शरीर की पुष्टि के लिए तुम्हारे पास आता है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१६९ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप् और विराट्)

१. इन्द्र, तुम निश्चय ही महान् हो; क्योंकि तुम रक्षक और महान् मरुतों का परित्याग नहीं करते। हे मरुतों के विधाता, तुम हमारे प्रति कृपा करके हमें सुख प्रदान करो। वह सुख प्रियतम है।

२. इन्द्र, सब मनुष्योंवाले, मनुष्यों के लिए जल-सिंचन करनेवाले और विद्वान् मरुद्गण तुम्हारे साथ मिलें। मरुतों की सेना, सुख के उपायभूत युद्ध में, जय-प्राप्ति के लिए सदा प्रसन्न हुई है।

३. इन्द्र, तुम्हारा प्रसिद्ध वज्रायुध-विशेष (ऋष्टि) हमारे लिए, मेघ के पास जाता है। मरुद्गण चिर-सञ्चित जल गिरा रहे हैं। विस्तृत यज्ञ के लिए अग्नि प्रदीप्त हुए हैं। जैसे जल द्वीप को धारण करता है, वैसे ही अग्नि हव्य धारण करते हैं।

४. इन्द्र, तुम अपने दान-योग्य धन का दान करो। तुम दाता हो। हम लोग प्रचुर दक्षिणा-द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे। तुम वायु या शीघ्र वरदाता हो। स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं। मधुर दूध के लिए जैसे लोग स्त्री के स्तन को पुष्ट करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें अन्न आदि के द्वारा पुष्ट करते हैं।

५. इन्द्र, तुम्हारा धन अत्यन्त प्रीति-दाता और यजमान का यज्ञ-निर्वाहकारी है। जो मरुद्गण पहले ही यज्ञ में जाने के लिए तैयार हो जाते हैं, वे ही हमें सुखी करें।

६. इन्द्र, तुम जल-सेचक हो। पुरुषार्थी और विशाल मेघ के सामने जाओ। अन्तरिक्ष प्रदेश में रहकर चेष्टा करो। युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं के पराक्रम की तरह मरुतों के विस्तीर्ण पद—अश्वगण—मेघों पर आक्रमण करते हैं।

७. इन्द्र, भयंकर, कृष्णवर्ण और गमनशील मरुतों के आने का शब्द सुनाई देता है। जैसे अधम शत्रु का विनाश किया जाता है, वैसे ही मनुष्यों की रक्षा के लिए मरुद्गण प्रहरण-द्वारा सैना-बल-संयुक्त शत्रुओं का विनाश करते हैं।

८. इन्द्र, सारे प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। मरुतों के साथ, अपने सम्मान के लिए, तुम दुःख-नाशिका और जल-धारिणी मेघ-पंक्ति को विदीर्ण करो। देव, स्तूयमान देवगण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें अन्न, बल और दीर्घायु प्रदान करो।

१७० सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि प्रथम, तृतीय और चतुर्थ ऋचाओं के इन्द्र और शेष के अगस्त्य । छन्द त्रिष्टुप् और बृहती ।)

१. (इन्द्र) आज या कल कुछ नहीं है। अद्भुत कार्य की बात कौन कह सकता है ? अन्य मनुष्यों का मन अत्यन्त चञ्चल होता है—जो अच्छी तरह पढ़ा जाता है, वह भी भूल जाता है।

२. (अगस्त्य) इन्द्र, तुम क्या मुझे मारना चाहते हो ? मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं। उनके साथ अच्छी तरह यज्ञभाग भोगो। युद्ध-काल में हमें नहीं विनष्ट करना।

३. (इन्द्र) भ्राता अगस्त्य, मित्र होकर तुम क्यों हमें अनादृत कर रहे हो ? हम निश्चय ही तुम्हारे मन की बात जानते हैं। तुम हमें नहीं देना चाहते।

४. ऋत्विक्गण, तुम वेदी को सजाओ और सामने अग्नि को प्रज्वलित करो। अनन्तर उसमें तुम और हम अमृत के सूचक यज्ञ को करेंगे।

५. (अगस्त्य) हे धन के अधिपति, हे मित्रों के मित्रपति, तुम ईश्वर हो, तुम सबके आश्रय-स्वरूप हो। तुम मरुतों से कहो कि हमारा यज्ञ सम्पन्न हुआ है। तुम यथासमय अर्पित हव्य भक्षण करो।

१७१ सूक्त

(देवता मरुद्गण । छन्द त्रिष्टुप्)

१. मरुतो, मैं नमस्कार और स्तुति करता हुआ तुम्हारे पास आता हूँ। हे वेगवान् मरुतो, तुम्हारी दया चाहता हूँ। मरुतो, स्तुति-द्वारा आनन्दित चित्त से क्रोध छोड़ो और रथ से अश्व छोड़ो अर्थात् ठहरने की कृपा करो।

२. मरुतो, तुम्हारे इस स्तोम में अन्न है। देवगण, यह स्तोम, तुम्हारे उद्देश्य से हृदय से सम्पादित हुआ है; कृपा करके इसे मन में रखिए। सादर इसे स्वीकार करते हुए आओ। तुम हव्य-रूप अन्न के वर्द्धयिता हो।

३. मरुद्गण, स्तुत होकर हमें सुखी करो। इन्द्र, स्तुत होकर हमें सर्वापेक्षा सुखी करें। मरुतो, हम लोग जितने दिन जियें, वे सब दिन उत्कृष्ट, स्पृहणीय और भोग-योग्य हों।

४. मरुतो, हम इस बलवान् इन्द्र के पास से डर के मारे भागते हुए काँपने लगे। तुम्हारे लिए जिस हव्य को संस्कृत किया था, उसे दूर कर दिया। हमें सुखी करो।

५. इन्द्र, तुम बल-स्वरूप हो। तुम्हारे माननीय अनुग्रह से किरणें, प्रतिदिन उषा के उदयकाल में प्राणियों को चैतन्य देती हैं। अभीष्ट-वर्षी, उग्र बल-प्रदायी और पुरातन इन्द्र, तुम उग्र मरुतों के साथ अन्न धारण करो।

६. इन्द्र, प्रभूत बलशाली मरुतों की रक्षा करो। उनके प्रति निष्क्रोध बनो। मरुद्गण उत्तम प्रज्ञावाले हैं। उनके साथ शत्रुओं के विनाशक बनो और हमारी रक्षा करो। हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१७२ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. मरुतो, यज्ञ में तुम्हारा आगमन विचित्र हो। दानशील और उत्कृष्ट दीप्तिवाले मरुतो, तुम्हारा आगमन हमारी रक्षा करे।

२. दानशील मरुतो, तुम्हारे दीप्यमान और प्राणिवधकुशल अस्त्र हमारे पास से दूर हों। तुम जिस अश्म नाम के रथ को फेंकते हो, वह भी हमारे पास से दूर हो।

३. दाता मरुतो, तिनके के समान नीच होने पर भी मेरी प्रजाओं को बचाना। हमें उन्नत करो, ताकि हम बच जायें।

१७३ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. इन्द्र, उद्गाता सामवेद का इस प्रकार आकाशव्यापी गान गाता है कि तुम समझ सको। हम उस वर्द्धमान और स्वर्ग-प्रदाता स्तोत्र की पूजा करते हैं। स्वर्गीय इन्द्र, दुग्धवती और हिंसा-शून्या गायें जैसे कुशासन पर बैठने के समय तुम्हारी सेवा करती हैं, वैसे ही मैं भी पूजा करता हूँ।

२. हव्यदाता यजमान, हव्य-प्रदाता अध्वर्यु आदि के साथ अपने दिये हव्य-द्वारा इन्द्र की पूजा करते हैं। पिपासित मृग की तरह इन्द्र, द्रुत वेग से यज्ञ-स्थल में उपस्थित होंगे। उग्र इन्द्र, स्तोत्राभिलाषी देवों की स्तुति करते हुए मर्त्य होता, स्त्री-पुरुष, यज्ञ-सम्पादन करते हैं।

३. होम-सम्पादक अग्नि परिमित गार्हपत्यादि स्थान में चारों ओर व्याप्त हैं तथा शरत्काल के और पृथिवी के गर्भस्थानीय अन्न को ग्रहण करते हैं। अश्व की तरह शब्द करके, वृषभ की तरह शब्द करके, अन्न लेकर, आकाश और पृथिवी के बीच दूत-स्वरूप बात-चीत करते हैं।

४. हम इन्द्र के उद्देश्य से अत्यन्त व्यापक हव्य प्रदान करेंगे। देवाभिलाषी यजमान दृढ़ स्तोत्र करते हैं। दर्शनीय तेजवाले अश्विनी-कुमारों की तरह जानने योग्य और रथ पर अवस्थित इन्द्र हमारे स्तोत्र का सेवन करें।

५. हे होता, जो इन्द्र अनन्त बलवाले, शौर्य्यवान्, बलवान् रथ पर स्थित, सामने के योद्धाओं में श्रेष्ठ योद्धा, वज्र आदिवाले और मेघ आदि के विनाशक हैं, उनकी स्तुति करो।

६. इन्द्र, अपनी महिमा से कर्म-निष्ठ यजमानों को स्वर्ग आदि फल देने में समर्थ हैं। द्यावा-पृथिवी उनकी कक्षा की पूर्त्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। जैसे अन्तरिक्ष पृथिवी को वेष्टित कर रहता है,

वैसे ही वे भी अपनी प्रतिभा से तीनों लोकों को व्याप्त करते हैं। जैसे वृषभ अनायास शृंग धारण करता है, वैसे ही अश्ववान् इन्द्र भी स्वर्ग को अनायास धारण करते हैं।

७. शूर इन्द्र, युद्ध-भूमि में साधुओं के बलप्रद और उत्तम-मार्ग-रूप हो। मरुद्‌गण तुम्हें स्वामी कहकर आनन्दित होते हैं। वे तुम्हारे परिजन हैं। तुम्हारे आनन्द के लिए सब लोग समान आनन्दित होकर तुम्हें अलंकृत करने की चेष्टा कर रहे हैं।

८. यदि अन्तरिक्ष-स्थित और प्रकाशमान जल प्रजाओं के लिए तुम्हें सुखी करे, यदि सारे स्तोत्र आदि तुम्हें प्रसन्न करें और यदि तुम वृष्टि-प्रदान आदि कर्म-द्वारा स्तोताओं की कामना करो, तो तुम्हारा सवन सुखकर हो।

९. प्रभु इन्द्र, जैसे हम तुम्हारे मित्र हो सकें और स्तुति-द्वारा राजाओं की तरह तुम्हारे पास से अभीष्ट प्राप्त कर सकें, वैसा करो। इन्द्रदेव, हमारे स्तुति-काल में उपस्थित होकर शीघ्रता के साथ हमारा यज्ञ उक्त स्तुति के साथ ले जाओ।

१०. जैसे मनुष्यों में प्रतिस्पर्द्धी व्यक्तियों को स्तुति द्वारा सबध किया जाता है वैसे ही हम भी इन्द्र को करेंगे। इन्द्र केवल हमारे ही होंगे। जैसे योग्य शासक नगरपति की हितैषी लोग पूजा करते हैं, वैसे ही हमारे बीच अवस्थानाभिलाषी अध्वर्यु लोग, हव्य आदि द्वारा, इन्द्र की पूजा करते हैं।

११. उसी प्रकार यज्ञपरायण व्यक्ति यज्ञ-द्वारा इन्द्र की वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति मन ही मन सदा चिन्ता-परायण रहता है, जिस प्रकार तीर्थ-मार्ग में सम्मुखस्थित जल तुरत लोगों को प्रसन्न करता और दीर्घ-पथ का जल तृषार्त व्यक्ति को निराश करता है।

१२. इन्द्र, युद्ध-वेला में मरुतों के साथ तुम हमें नहीं छोड़ना; क्योंकि हे बलवान् इन्द्र, तुम्हारे लिए यज्ञ का भाग स्वतंत्र है। हमारी

फल-समन्वित स्तुति महान्, हविष्मान् और जलदाता मरुतों की बन्दना करती है।

१३. इन्द्र, यह स्तोम तुम्हारा ही है। हरिवाहन, इस स्तुति-द्वारा तुम हमारा देव-पूजन-मार्ग जान लो और अनायास आने के लिए हमारे पास पधारो।

१७४ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. इन्द्र, तुम संसार और सारे देवों के राजा हो। तुम मनुष्यों की रक्षा करो। असुर, तुम हमारी रक्षा करो। असुर, तुम हमारी रक्षा करो। तुम साधुओं के पालक, धनवान् और हमारे उद्धार-कर्त्ता हो। तुम सत्य और बल-प्रदाता हो। तुमने अपने तेज से सबको ढक लिया है।

२. इन्द्र, जिस समय तुमने संवत्सर-पर्यन्त दृढ़ीकृत सात पुरियों को भिन्न किया था, उस समय प्रजाओं को संयत-वाक्य करके अनायास दमन किया था। अनवद्य इन्द्र, तुमने गतिशील जल दिया था। तुमने तरुण-वयस्क पुरुकुत्स राजा के लिए वृत्र का वध किया था।

३. इन्द्र, तुम राक्षसों की सारी नगरियों को जाते और वहाँ से, हे पुरुहूत, अनुचरों के साथ स्वर्ग में जाते हो। वहाँ अशोषक और शीघ्रकारी अग्नि को सिंह की तरह बचाते हो जिससे वह अपने गृह में अपना कर्त्तव्य पूरा कर सके।

४. इन्द्र, तुम्हारे शत्रु या मेघ वज्र की महिमा से तुम्हारी प्रशंसा करते हुए अपने जन्मस्थान में शीघ्र शयन करें। जब तुम अस्त्र लेकर जाते हो, तब नीचे जल गिराते और हरियों के ऊपर चढ़ते हो। अपनी शक्ति से तुम शस्य आदि बढ़ाते हो।

५. इन्द्र, तुम जिस यज्ञ में कुत्स ऋषि की कामना करते हो, उसमें अपने वशीभूत, सरलगामी और वायु के समान वेगशाली अश्वों

को परिचालित करते हो। उसके लिए सूर्य रथचक्र को पास ले आयें और वज्रबाहु इन्द्र संग्रामकर्त्ता शत्रुओं के सामने आयें।

६. हरिवाहन इन्द्र, तुमने, स्तोत्र-द्वारा प्रवृद्ध होकर, दान-रहित और यजमानों के विघ्नकारी लोगों का विनाश किया है। जिन्होंने तुम्हें आश्रयदाता रूप से देखा है और जो हव्य प्रदान के लिए मिलित हुए हैं, वे तुमसे संतान प्राप्त करते हैं।

७. इन्द्र, पूजनीय अन्न की प्राप्ति के लिए कवि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुमने पृथिवी को दास की शय्या बना दिया है। इन्द्र ने तीन भूमियों के दान-द्वारा विचित्र कार्य किया है। एवं दुर्योणि राजा के लिए कुयवाच का वध किया है।

८. इन्द्र, नये ऋषिगण तुम्हारे सनातन प्रसिद्ध वीर कर्म की स्तुति करते हैं। तुमने अनेक हिंसकों को, संग्राम-निवारण के लिए, विनष्ट किया है। तुमने देवशून्य विपक्ष नगरों को भिन्न किया है और देवरहित शत्रु का अस्त्र नत किया है।

९. इन्द्र, तुम शत्रुओं में हृत्कम्प पैदा करनेवाले हो। इसी लिए तुम प्रवहमाना सीरा नाम की नदी की तरह तरंग-युक्त जल पृथिवी पर गिराते हो। हे शूर, जिस समय तुम समुद्र को परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमने तुर्वसु और यदु के मंगल के लिए उनका पालन किया है।

१०. इन्द्र, तुम सदा हमारे रक्षक-श्रेष्ठ बनो और प्रजाओं का पालन करो। हमारे सैन्यों को बल दो, जिससे हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१७५ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्)

१. हरिवाहन इन्द्र, हर्षकर, अभीष्टवर्षी, आह्लादकारी, अन्न-वान्, असीम दानवाले और महानुभाव सोम जिस प्रकार पात्र में

स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार तुम भी होकर और पान कर धारण करो और अतीव प्रसन्न बनो।

२. इन्द्र, हर्षकर, अभीष्टवर्षी, तर्पयिता, वरणीय, सहायवान्, शत्रु-सैन्य-विनाशक और अविनाशी सोम तुम्हें प्राप्त हो।

३. इन्द्र, तुम शूर और दाता हो, मैं मनुष्य हूँ। मेरा मनोरथ पूर्ण करो। तुम सहायवान् हो। जैसे अग्नि अपनी ज्वाला से पात्र को जलाता है, वैसे ही तुम व्रत-रहित दस्यु को जलाओ।

४. मेधावी इन्द्र, तुम ईश्वर हो। अपनी सामर्थ्य से तुमने सूर्य के दो चक्रों में से एक का हरण कर लिया। शुष्ण का वध करने के लिए कर्त्तन-साधन वज्र लेकर वायु के समान वेगवाले अश्व के साथ आओ।

५. इन्द्र, तुम्हारी प्रसन्नता सर्वापेक्षा बल-संयुक्त है। तुम्हारा यज्ञ सर्वापेक्षा अन्नवान् है। हे अनेक-अश्व-दाता इन्द्र, अपने वृत्रघाती और धनदायी तथा क्रतु का समर्थन करो।

६. इन्द्र, तुम पुराने स्तोताओं के प्रति, तृषार्त्त के पास जल की तरह हुए थे; इसलिए हम बार-बार तुम्हारी स्तुति करते हैं, जिससे अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१७६ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे सोम, धन-लाभ के लिए इन्द्र को आनन्दित करो। अभीष्ट-वर्षी इन्द्र के बीच प्रवेश करो। प्रसन्न होकर शत्रुओं का विनाश करते हुए क्रमशः व्याप्त होते हो; इसलिए किसी शत्रु को पास में नहीं आने देते।

२. इन्द्र, मनुष्यों के अद्वितीय अधीश्वर हैं। वे यथारीति यव (जौ) की तरह हमारा अभीष्ट सार्थक करते हैं।

३. जिन इन्द्र के हाथों में पंच क्षिति अर्थात् ब्राह्मणादि चार

वर्ण और निषाद का सर्वप्रकार अन्न है, वही इन्द्र, जो हमारा द्रोह करता है, उसे दिव्य वज्र की तरह विनष्ट करें।

४. इन्द्र, जो लोग सोम का अभिषव नहीं करते और जिनका विनाश करना दुःसाध्य है, उनका वध करो; क्योंकि वे तुम्हारे सुख के कारण नहीं हैं। उनका धन हमें दो। तुम्हारा स्तोता ही धन प्राप्त करता है।

५. हे सोम, जिन स्तोत्र और हवि के द्विविध कर्म करनेवाले यजमान के पूजा-साधक मंत्र में तुम सदा अवस्थिति करते हो, उसकी तुम रक्षा करो। हे सोम, इन्द्र के युद्ध में अन्न के लिए अन्नवान् इन्द्र की रक्षा करो।

६. इन्द्र, तुम प्राचीन स्तोताओं के प्रति, तृषार्त्त के पास जल की तरह कृपालु हुए थे; इसलिए हम बार-बार तुम्हारी सुखकर और प्रसिद्ध स्तुति करते हैं, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१७७ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. मनुष्यों के प्रीति-दायक, सबके इच्छित-वर्षक, मनुष्यों के स्वामी और बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र हमारे पास आयें। इन्द्र, हमारी स्तुति ग्रहण कर दोनों तरुण अश्वों को रथ में जोतकर, हव्य ग्रहण करने और रक्षा के लिए हमारे सामने आओ।

२. इन्द्र, तुम्हारे जो तरुण, उत्तम, मंत्र-द्वारा रथ में योजनीय, वर्षक और रथ से युक्त घोड़े हैं, उन पर चढ़ो और उनके साथ हमारे सामने आओ।

३. इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षक रथ पर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे लिए मनोरथ दाता सोम तैयार है—मधुर घृत आदि भी तैयार हैं। अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्टदाता दोनों हरि नाम के घोड़ों को जोतकर यजमानों के ऊपर कृपा करने के लिए वेगवान् रथ से हमारे सामने आओ।

४. इन्द्र, देवों के उद्देश्य से यह यज्ञ जाता है। यह यज्ञीय पशु, ये मंत्र, यह प्रस्तुत सोम और यह बिछाया हुआ कुश तुम्हारे लिए तैयार हैं। तुम जल्दी आओ, बैठो, सोम पिओ और यज्ञ-स्थल में हरि घोड़ों को छोड़ो।

५. इन्द्र हमारे द्वारा अच्छी तरह स्तुत होकर माननीय स्तोता के मंत्र को उपलक्ष्य करके हमारे सामने आओ। हम, स्तुति करते हुए, तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर अनायास वास-स्थान प्राप्त करेंगे। साथ ही अन्न, बल और दीर्घ आयु भी लाभ करेंगे।

१७८ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. इन्द्र, जिस समृद्धि के द्वारा तुम स्तोताओं की रक्षा करते हो, वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो। तुम हमें महान् करने की अभिलाषा को नष्ट न करो। तुम्हारे लिए जो वस्तु प्राप्तव्य और भोग्य है, वह सब हम प्राप्त करें।

२. परस्पर भगिनी-स्वरूप अहोरात्र अपने जन्मस्थान में जो वृष्टि-रूप कर्म करते हैं, राजा इन्द्र वह हमारा कर्म नष्ट न करें। बल का कारण हव्य इन्द्र के लिए पर्याप्त होता है। इन्द्र हमें मैत्री और अन्न प्रदान करें।

३. विक्रमशाली इन्द्र, युद्ध-नेता मरुतों के साथ युद्ध में जय-लाभ करते हुए अनुग्रहार्थी स्तोता का आह्वान सुनते हैं। जिस समय स्वयं स्तुति-वाक्य को वरण करने की इच्छा करते हैं, उस समय हव्यदाता यजमान के पास रथ ले जाते हैं।

४. उत्तम धन के लाभ की इच्छा से यजमान-द्वारा दिया हुआ अन्न, प्रचुर परिमाण में, भक्षण करते तथा सहायताप्राप्ति यजमान के शत्रुओं को पराजित करते हैं। विभिन्न आह्वानों की ध्वनियों से युक्त युद्ध

में सत्यपालक इन्द्र यजमान के कर्म की प्रसिद्धि करते हुए हव्य को स्वीकार करते हैं।

५. इन्द्र, तुम्हारी सहायता लेकर हम उन शत्रुओं का वध करेंगे, जो अपने को अवध्य समझते हैं। तुम हमारे भ्राता हो। तुम हमारे धन के वर्द्धक बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

१७९ सूक्त

(इस सूक्त में अगस्त्य, उनकी स्त्री (लोपामुद्रा) और शिष्य में सम्भोग-विषयक कथोपकथन है; इसलिए सम्भोग ही इसका देवता है। छन्द त्रिष्टुप् और बृहती)

१. (लोपामुद्रा) अगस्त्य, अनेक वर्षों से मैं दिन-रात बुढ़ापा लानेवाली उषाओं में तुम्हारी सेवा करके श्रान्त हुई हूँ। जरा शरीर के सौन्दर्य का नाश करता है। इस समय पुरुष स्त्री के पास क्या गमन करे!

२. अगस्त्य, जो प्राचीन और सत्य-रक्षक ऋषि लोग देवताओं के साथ सच्ची बात कहते थे, उन्होंने भी रेत का स्खलन किया है; परन्तु उन्हें भी अन्त नहीं मिला। पुरुष स्त्री के साथ गमन करे।

३. (अगस्त्य) हम लोग वृथा नहीं श्रान्त हुए; क्योंकि देवता लोग रक्षा करते हैं। हम सारे भोगों का उपभोग कर सकते हैं। यदि हम दोनों चाहें, तो इस संसार में हम सैकड़ों भोगों के साधन प्राप्त कर सकते हैं।

४. यद्यपि मैं जप और संयम में नियुक्त हूँ; तथापि इसी कारण या किसी भी कारण, मुझे काम-भाव हो गया है। सेचन करनेवाली लोपामुद्रा पति के साथ संगत हो। अधीरा स्त्री धीर और महाप्राण पुरुष का उपभोग करे।

५. (शिष्य) हृदय में पीत इस सोम से मैं आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि सोम मुझे सुखी करे। मनुष्य बहुत कामनावाला होता है।

६. उग्र ऋषि अगस्त्य ने अनेक उपायों का उद्भावन करके, बहुत पुत्रों और बल की इच्छा करके, काम और तप, दोनों वरणीय वस्तुओं का पालन किया था। अगस्त्य ने देवों के पास सत्य आशीर्वाद प्राप्त किया था।

१८० सूक्त

(२४ अनुवाक। देवता अश्विद्वय। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अश्विनीकुमारो, जिस समय तुम्हारे शोभनगति घोड़े तुम्हें लेकर अभिमत प्रदेश में जाते हैं, उस समय तुम्हारे हिरण्यमय रथ की नेमि अभिमत प्रदान करती है; इसलिए तुम उषाकाल में सोमपान करते हुए यज्ञ में आ मिलो।

२. सर्वस्तुत्य अश्विद्वय, जिस समय तुम्हारी भगिनी-स्थानीय उषा प्रस्तुत होती है, हे मधुपायी अश्विद्वय, जिस समय अन्न और बल के लिए यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उस समय तुम्हारा सतत-गन्ता, विचित्र गति-शील, मनुष्य-हितैषी और विशिष्ट रूप से पूजनीय रथ निम्नाभिमुख जाता है।

३. अश्विद्वय, तुमने गायों में दुग्ध स्थापित किया है। तुमने गायों के अधोदेश में पूर्ववर्त्ती पक्व दुग्ध स्थापित किया है। सत्यरूप अश्विद्वय, वन-वृक्षावली के बीच चोर की तरह सदा जागरूक विशुद्ध-स्वभाव और हविवाला यजमान हविवाले यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करता है।

४. अश्विद्वय, तुमने सहायता की इच्छावाले अत्रि मुनि के लिए दीप्त दुग्ध और घृत को जल-प्रवाह की तरह किया था; इसलिए हे नराकार अश्विद्वय, तुम्हारे लिए अग्नि में यज्ञ किया जाता है। निम्न-देश में रथ-चक्र की तरह सोमरस तुम्हारे लिए आता है।

५. अश्विनीकुमारो, बूढ़े तुग्र राजा के पुत्र की तरह मैं स्तुति-द्वारा अभिमत लाभ के लिए तुम्हें यज्ञ-देश में ले आऊँगा। तुम्हारी सहिमा

से द्यावा-पृथिवी परस्पर मिली हैं। यजनीय अश्विद्वय, यह जराजीर्ण ऋषि पापमुक्त होकर दीर्घ जीवन लाभ करें।

६. शोभन दानवाले अश्विद्वय, जिस समय तुम नियुत नाम के घोड़ों को जोतते हो, उस समय अन्न से पृथिवी को भर देते हो; इसलिए वायु की तरह स्तोता शीघ्र तुम दोनों को तृप्त और प्राप्त करें। उत्तम कर्मवाले व्यक्ति की तरह स्तोता अपने महत्त्व के लिए अन्न स्वीकार करते हैं।

७. हम भी तुम्हारे स्तोता और सत्यप्रतिज्ञ होकर विभिन्न स्तव करते हैं। द्रोण-कलश स्थापित हुआ है। हे स्तुतिपात्र और अभीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, देवों के पास सोमपान करो।

८. अश्विनीकुमारो, कर्मनिर्वाहक लोगों में श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि ग्रीष्म के दुःख निवारक स्रोत की प्राप्ति के लिए, शब्द उत्पन्न करनेवाले शङ्ख आदि की तरह, हजार स्तुतियों-द्वारा तुम्हें प्रतिदिन जगाते हैं।

९. अश्विनीकुमारो, तुम रथ की महिमा से यज्ञ धारण करो। गतिशील अश्विनीकुमारो, यजमान के होता की तरह तुम गमनागमन करो। स्तोताओं को बल दो, उत्तम घोड़े दो। फलतः हे नासत्यद्वय, हम धन प्राप्त करेंगे।

१०. अश्विद्वय, तुम्हारे स्तुतिपात्र, नये आकाशविहारी अभग्न चक्रवाले रथ की प्राप्ति के लिए स्तोत्र-द्वारा उसे बुलाते हैं, जिससे हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त कर सकें।

१८१ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रियतम अश्विद्वय, तुम कब अन्न और धन को ऊपर के देश में ले जाओगे कि यज्ञ समाप्त करने की इच्छा करते हुए जल को नीचे गिराया जा सकेगा? हे धनधारी के और मनुष्यों के आश्रयदाता अश्विद्वय, इस यज्ञ में तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है।

२. अश्विद्वय, तुम्हारे दीप्तिशाली, वृद्धिप्रद करनेवाले, वायु की तरह वेगवाले, स्वर्गीय गतिशील, मन की तरह वेगवान् युवा और शोभन पृष्ठवाले अश्व तुम्हें इस यज्ञ में ले आयें।

३. हे ऊँचे स्थान के योग्य और रथासीन अश्विद्वय, भूमि की तरह अत्यन्त विस्तृत, उत्तम बन्धुरवाले, वर्षणसमर्थ, मन की तरह वेगवाले, अहंकारी और यजनीय रथ को यज्ञ में ले आइए।

४. अश्विद्वय, तुमने सूर्य और चन्द्र के रूप से जन्म ग्रहण किया था। तुम पाप-शून्य हो। तुम्हारे शरीर-सौन्दर्य और नाम-महिमा के कारण मैं बार-बार तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुममें एक यज्ञ-प्रवर्त्तक होकर संसार को धारण करते हैं और दूसरे द्युलोक के पुत्र-रूप होकर विविध रश्मियों को धारण करते हुए संसार को धारण किये हुए हैं।

५. अश्विद्वय, तुममें से एक का श्रेष्ठ और पीतवर्ण रथ इच्छानुसार हमारे यज्ञ-गृह में जाय और दूसरे के हरि नाम के अश्वों को मनुष्य लोग मथन-निष्पादित खाद्य और स्तुति से प्रसन्न करें।

६. अश्विद्वय, तुम्हारे बीच एक जन मेघों को विदीर्ण करते हैं। वे इन्द्र की तरह शत्रुओं को निकालते हुए हव्य की अभिलाषा से, बहुत अन्न-दान के लिए जाते हैं। दूसरे के गमन के लिए यजमान लोग हव्य-द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हैं। उनके द्वारा भेजी हुई व्यापक और तट-लंघिनी नदियाँ हमारे पास आती हैं।

७. विधाता अश्विद्वय, तुम्हारी स्थिरता की प्राप्ति के लिए अत्यन्त स्थिर स्तुतियाँ बनाई जाती हैं। वह तीन तरह से तुम्हारे पास जाती हैं। तुम प्रशंसित होकर याचमान यजमान की रक्षा करो। जाकर या खड़े होकर उसका आह्वान सुनो।

८. अश्विद्वय, तुम्हारी प्रदीप्त स्तुति कुशत्रय-युक्त यज्ञ-साधन-द्वारा यजमानों को प्रसन्न करे। अभीष्ट-वर्षिद्वय, तुम्हारा मेघ जल-वर्षण करते हुए जल-सेचन की तरह मनुष्यों को धन देकर प्रसन्न करे।

९. अश्विद्वय, पूषा की तरह बहुप्रज्ञाशाली और हविष्मान् यजमान, अग्नि और उषा की तरह तुम्हारी स्तुति करता है। जिस समय पूजा-परायण स्तोता स्तुति करता है, उस समय यजमान भी स्तुति करता है, जिससे हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१८२ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मनीषी ऋत्विको, हमारी ऐसी धारणा हो रही है कि अश्विनी-कुमारों का अभीष्टवर्षी रथ उपस्थित है। उसके आगे जाकर उनकी प्रतीक्षा करो। वे पुण्यात्माओं के कर्म को करते हैं। वे स्तुतियोग्य हैं। उन्होंने विश्पला का भला किया था। वे स्वर्ग के नप्ता हैं। उनका कर्म शुचि है।

२. अश्विद्वय, तुम अवश्य ही इन्द्रश्रेष्ठ, स्तुति-योग्य, मरुत्श्रेष्ठ, शत्रुनाशक, उत्कृष्टकर्मचारी, रथवान् और रथियों में उत्तम हो। तुम मधुपूर्ण हो। तुम चारों ओर सन्नद्ध रथ को ले जाते हो। उसी रथ पर कृपा करके हव्यदाता के पास जाओ।

३. अश्विद्वय, यहाँ क्या करते हो? यहाँ क्यों हो? हव्य-शून्य जो कोई व्यक्ति पूजनीय हुआ हो, उसे परास्त करो। पणि या अयाज्ञिक का प्राण नाश करो। मैं मेधावी की ओर तुम्हारी स्तुति का अभिलाषी हूँ। मुझे ज्योति दो।

४. अश्विद्वय, जो कुत्ते की तरह जघन्य शब्द करते हुए हमारे विनाश के लिए आते हैं, उन्हें नष्ट करो। वे लड़ाई करना चाहते हैं, उन्हें मार डालो। उन्हें मारने का उपाय तुम जानते हो। जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी प्रत्येक कथा को रत्नवती करो। नासत्यद्वय, तुम दोनों मेरी स्तुति की रक्षा करो।

५. अश्विद्वय, तुग्र राजा के पुत्र के लिए तुमने समुद्र-जल में प्रसिद्ध, दृढ़ और पक्ष-विशिष्ट नौका बनाई थी। देवों में तुमने ही अनुग्रह

करके नौका-द्वारा उसको निकाला था। अनायास आकर तुमने महा-समुद्र से उसका उद्धार किया था।

६. जल के बीच, निम्नमुख गिराया हुआ तुग्रपुत्र अवलम्बनरहित अन्धकार के बीच अतीव पीड़ित हुआ था। अश्विद्वय की प्रेरित जल के बीच प्रविष्ट चार नौकायें उसे मिली थीं।

७. तुग्रपुत्र ने याचमान होकर जल के मध्य जिस निश्चल वृक्ष का आलिंगन किया था, वह वृक्ष क्या है? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित उठाकर विपुल कीर्त्ति प्राप्त की है।

८. नराकर अश्विद्वय, तुम्हारे पूजकों ने जो स्तव किया है, उसे तुम ग्रहण करो। अश्विद्वय, आज यज्ञ के सोम-याग-सम्पादक स्तोत्र में व्रती बनो, जिससे हम अन्न, बल और धन प्राप्त करें।

१८३ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। छन्द त्रिष्टुप।)

१. अभीष्टवर्षी अश्विद्वय, जो रथ मन की अपेक्षा भी वेगशाली है, जिसमें तीन सारथि-स्थान और तीन चक्र हैं, जो अभीष्टवर्षी और धातुत्रय-विशिष्ट है, जिस रथ पर चढ़कर जैसे पक्षी पक्षों के बल जाता है, वैसे ही तुम सुकृतकारी के घर जाते हो, उसी रथ को तैयार करो।

२. अश्विनीकुमारो, तुम संकल्पवान् होकर हव्य के लिए जिस रथ पर चढ़ते हो, वही तुम्हारा भली भाँति आवर्त्तनकारी रथ, देवयजन भूमि के सामने, जाता है। तुम्हारे शरीर की हितकारी स्तुति तुम्हारे साथ मिले। तुम द्युलोक की पुत्री उषा के साथ मिलो।

३. अश्विद्वय, जो रथ हविवाले यजमान के कर्म का लक्ष्य करके जाता है, हे नराकार नासत्यद्वय, तुम जिस रथ से यज्ञ-शाला जाने की इच्छा करते हो, उसी अच्छी तरह आवर्त्तनकारी रथ पर चढ़कर यजमान के पुत्र और अपने हित की प्राप्ति के लिए यज्ञ-गृह में जाओ।

४. अश्विद्वय, तुम्हारी कृपा से वृक और वृकी मुझे न रगड़ें। मुझे छोड़कर दूसरे को दान नहीं करना। अश्विनीकुमारो, यही तुम्हारा हव्य-भाग है, यही तुम्हारी स्तुति है, यही तुम्हारे लिए सोमरस का पात्र है।

५. अश्विद्वय, जैसे मार्ग जानने के लिए, पथिक पथ-प्रदर्शक को बुलाता है, वैसे ही गौतम, पुरुमीढ़ और अत्रि हव्य ग्रहण करके तृप्त करने के लिए तुम्हें बुलाते हैं। अश्विद्वय, मेरे आह्वान के पास आओ।

६. अश्विद्वय, तुम्हारे अनुग्रह से हम अन्धकार के पार चले जायँगे। तुम्हारे उद्देश्य से यह स्तुति बनाई गई है। देवों के गन्तव्य-पथ यज्ञ में आओ। वैसा होने पर हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

१८४ सूक्त

(पंचम अध्याय। देवता अश्विद्वय। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अन्धकार का विनाश करने के लिए उषा के आने पर हम आज के यज्ञ में और दूसरे दिन के यज्ञ में तुम्हें बुलाते हैं। अश्विनीकुमारो, तुम असत्यशून्य और द्युलोक के नेता हो। तुम जहाँ-कहीं रहो, स्तोता आर्य ऋग्वेदीय मंत्र-द्वारा, विशिष्ट दानशील यजमान के लिए, तुम्हारी स्तुति करता है।

२. अभीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, सोमरस से बलवान् होकर तुम हमारी तृप्ति करो और पणियों का समूल नाश करो। हे नेतृद्वय, तुम्हें सामने लाने के लिए हम जो तृप्ति-प्रद स्तुति करते हैं, उसे सुनो; क्योंकि तुम लोग स्तुति के अन्वेषक और लक्ष्य करनेवाले हो।

३. नासत्यद्वय, हे सूर्य-चन्द्र-रूपी अश्विनीकुमारो, कल्याणप्राप्ति के लिए, तीर की तरह, शीघ्रगामी होकर सूर्यतनया को ले जाओ। पूर्व युग की तरह यज्ञ-काल में सम्पादित स्तुति महान् वरुण की तुष्टि के लिए तुम्हें स्तुति करती है।

४. मधुपात्रवाले अश्विनीकुमारो, तुम कवि मान्य की स्तुति अंगीकार करो। तुम्हारा दान हमारे उद्देश्य से प्रवृत्त हो। शुभ-फल-प्रदाता अश्विनीकुमारो, अन्न की इच्छा से और वीर्यशाली यजमान के हित के लिए मनुष्य या पुरोहित तुम्हारे साथ हर्षयुक्त हों।

५. अन्नवान् अश्विनीकुमारो, तुम्हारे लिए हव्य के साथ यह पाप-विनाशी स्तोत्र रचित हुआ है। अश्विनीकुमारो, अगस्त्य के प्रति सन्तुष्ट होकर यजमान के पुत्रादि और अपने सुख-भोग के लिए यज्ञ-भूमि में आगमन करो।

६. अश्विनीकुमारो, तुम्हारी कृपा से हम अन्धकार को पार कर जायेंगे। तुम्हारे उद्देश्य से यह स्तव रचित हुआ है। देवों के गन्तव्य पथ से यज्ञ में आओ, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

१८५ सूक्त

(देवता द्यावा-पृथिवी। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. कविगण, द्यु और पृथिवी में पहले कौन उत्पन्न हुआ है, पीछे कौन उत्पन्न हुआ है, किसलिए उत्पन्न हुए हैं, यह बात कौन जानता है? वे दूसरे के ऊपर निर्भर होकर सारे संसार को धारण करते हैं और दिन तथा रात्रि की तरह चक्रवत् परिवर्त्तित होते रहते हैं।

२. पाद-रहित और अविचल द्यावा-पृथिवी पादयुक्त तथा सचल गर्भस्थित प्राणियों को, माता-पिता की गोद में पुत्र की तरह, धारण करते हैं। हे द्यावा-पृथिवी, हमें महापाप से बचाओ।

३. हम अदिति से पापरहित, अक्षीण, हिंसा-रहित, अन्नयुक्त और स्वर्गतुल्य धन के लिए प्रार्थना करते हैं। द्यावा-पृथिवी, स्तोता यजमान के लिए, वही धन उत्पन्न करते हो। हे द्यावा-पृथिवी, हमें महापाप से बचाओ।

४. हम प्रकाशमान दिन और रात्रि के उभयविध धन के लिए दुःख-रहित और अन्न-द्वारा तृप्तिकारी द्यावा पृथिवी का अनुगमन कर सकें। हे द्यावापृथिवी, हमें महापाप से बचाओ।

५. परस्पर संसक्त, सदा तरुण, समान सीमा से संयुक्त, भगिनी-भूत और बन्धु-सदृश द्यावा-पृथिवी माता-पिता के क्रोड़स्थित और प्राणियों के नाभि-स्वरूप, जल का घ्राण करते हुए, हमें महापाप से बचायें।

६. देवों की प्रसन्नता के लिए मैं विस्तीर्ण निवासभूत, महानुभाव और शस्यादि-समुत्पादक द्यावा-पृथिवी को यज्ञ के लिए बुलाता हूँ। इनका रूप आश्चर्य-जनक है और ये जल धारण करते हैं। द्यावा-पृथिवी, हमें महापाप से बचाओ।

७. महान्, पृथु, अनेक आकारों से विशिष्ट और अनन्त द्यावा-पृथिवी की यज्ञस्थल में मैं नमस्कार मंत्र-द्वारा, स्तुति करता हूँ। हे सौभाग्यवती और उद्धार-कुशला द्यावा-पृथिवी, तुम संसार को धारण करो और हमें महापाप से बचाओ।

८. हम देवों के पास जो सदा अपराध करते हैं, बन्धु और जामाता के प्रति जो सब अपराध करते हैं, हमारा वह यज्ञ उन सब पापों को दूर करे।

९. स्तुति-योग्य और मनुष्यों के हितकर द्यावा-पृथिवी मुझे, आश्रय-प्रदान करें। आश्रयदाता द्यावा-पृथिवी आश्रय देने के लिए मेरे साथ मिलें। देवो, हम तुम्हारे स्तोता हैं; अन्न-द्वारा तुम्हें तृप्त करते हुए प्रचुर दान के लिए प्रचुर अन्न चाहते हैं।

१०. मैं बुद्धिमान् हूँ। द्यावा-पृथिवी के उद्देश्य से चारों दिशाओं में प्रकाश के लिए मैंने अत्युत्तम स्तोत्र किया है। माता-पिता निन्दनीय पाप से हमें बचायें तथा हमें सदा पास में रखकर तृप्तिकर वस्तु-द्वारा पालित करें।

११. हे माता और हे पिता, तुम्हारे लिए इस यज्ञ में मैंने जो स्तोत्र पढ़े हैं, उन्हें सार्थक करो। द्यावा-पृथिवी, आश्रय-दान-द्वारा तुम स्तोताओं के समीपवर्ती बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

१८६ सूक्त

(देवता विश्वेदेवगण। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अग्नि और सविता हमारी स्तुतियों के कारण भूस्थानीय देवों के साथ यज्ञ-स्थल में आयें। युवकगण, हमारे यज्ञ में इच्छापूर्वक आकर सारे जगत् की तरह हमें भी प्रसन्न करो।

२. शत्रुओं के आक्रमणकर्त्ता मित्र, वरुण और अर्यमा ये सब समान प्रीति-युक्त होकर आगमन करें। हमारे सब वर्द्धयिता हों और शत्रुओं को परास्त करके, जिस प्रकार हम अन्नहीन न हों, ऐसा करें।

३. देवगण, मैं क्षिप्रकारी और तुम्हारी तरह प्रीति-युक्त होकर तुम्हारे श्रेष्ठ अतिथि (अग्नि) की स्तुति-मन्त्रों-द्वारा स्तुति करता हूँ। उत्तम कीर्तिवाले सूरि वरुण हमारे ही हों। वरुण शत्रुओं के प्रति हुंकार करते हुए अन्न-द्वारा हमें परिपूर्ण करें।

४. देवो, दिन-रात नमस्कार करते हुए, पाप-विजय के लिए, दुग्धवती धेनु की तरह तुम्हारे पास उपस्थित होते हैं। हम यथासमय अधः स्थान से एकमात्र उत्पन्न नाना रूप खाद्य द्रव्य मिश्रित करके लाये हैं।

५. अहिर्बुध्न नामक अन्तरिक्षचारी देव हमें सुख दें। सिन्धु, वत्स की तरह, हमें प्रसन्न करें। हम जल के नप्ता अग्निदेव स्तुति करते हुए प्राप्त हुए हैं। मन की तरह वेगशाली मेघ उन्हें ले जाते हैं।

६. त्वष्टा हमारे सामने आयें। यज्ञ के कारण त्वष्टा स्तोताओं के साथ समान-प्रीति-सम्पन्न हों। अतीव विशाल, वृत्रघातक और मनुष्यों के अभीष्ट-पूरक इन्द्र हमारे यज्ञस्थल में आवें।

७. जैसे गायें बछड़ों को चाटती हैं, वैसे ही अश्वतुल्य हमारा मन तरुण इन्द्र की स्तुति करता है। जैसे स्त्रियाँ पति को प्राप्त कर सन्तान-वाली होती हैं, वैसे ही हमारी स्तुति, अतिशय यशोयुक्त इन्द्र को प्राप्त कर फल उत्पन्न करती है।

८. अतीव बलशाली, समान-प्रीति-युक्त, पृषत् नाम के अश्व से सम्पन्न, अवनतस्वभाव और शत्रु-भक्षक मरुद्गण, मैत्रीवाले ऋषियों की तरह, द्यावा-पृथिवी के पास से एकत्र हमारे इस यज्ञ में आयें।

९. मरुतों की महिमा प्रसिद्ध है; क्योंकि वे स्तुति का प्रयोग जानते हैं। अनन्तर, जैसे प्रकाश संसार को व्याप्त करता है, वैसे ही सुदिन में अन्धकार-विनाशक मरुतों की वृष्टि-प्रद सेना सारे अनुर्वर देशों को उत्पादिका शक्ति से सम्पन्न करती है।

१०. ऋत्विको, हमारी रक्षा के लिए अश्विनीकुमारों और पूषा की स्तुति करो। द्वेष-शून्य विष्णु, वायु और इन्द्र (ऋभुक्षा) नाम के स्वतंत्र बल-विशिष्ट देवों की स्तुति करो। सुख के लिए मैं सारे देवों को सामने लाऊँगा।

११. यजनीय देवो, तुम्हारी प्रसिद्ध ज्योति हमारे लिए प्राणदाता और निवास-स्थान बने। तुम्हारी अन्नवती ज्योति देवों को प्रकाशित करे, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१८७ सूक्त

(देवता पितु। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. मैं क्षिप्रकारी होकर विशाल, सबके धारक और बलात्मक पितु (अन्न) की स्तुति करता हूँ। उनकी ही शक्ति से त्रितदेव या इन्द्र ने वृत्र की सन्धियाँ काटकर उसका वध किया था।

२. हे स्वादु पितु, हे मधुर पितु, हम तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम हमारी रक्षा करो।

३. हे पितु, तुम मंगलमय हो। कल्याणवाही आश्रयदान-द्वारा हमारे पास आकर, हमें सुख दो। हमारे लिए तुम्हारा रस अप्रिय न हो। तुम हमारे लिए मित्र और अद्वितीय सुखकर बनो।

४. पितु, जैसे वायु अन्तरिक्ष का आश्रय किये हुए हैं, वैसे ही तुम्हारा रस सारे संसार के अनुकूल व्याप्त है।

५. स्वादुतम पितु, जो लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, वे भोक्ता हैं। पितु, तुम्हारी कृपा से वे तुम्हें दान देते हैं। तुम्हारे रस का आस्वादन करनेवालों की गर्दन ऊँची या मजबूत होती है।

६. पितु, महान् देवों ने तुममें ही मन निहित किया है। पितु, तुम्हारी चारु बुद्धि और आश्रय-द्वारा ही अहि का वध किया गया था।

७. जिस समय मेघ प्रसिद्ध जल को लाते हैं, उस समय हे मधुर पितु, हमारे सम्पूर्ण भोजन के लिए पास आना।

८. हम यथेष्ट जल और यव आदि ओषधियों को खाते हैं, इसलिए हे शरीर, तुम स्थूल बनो।

९. सोम, तुम्हारे यव आदि और दुग्ध आदि से मिश्रित अंश का हम भक्षण करते हैं। इसलिए हे शरीर, तुम स्थूल बनो।

१०. हे करम्भ ओषधि या सत्तुपिण्ड, तुम स्थूलता-सम्पादक, रोग-निवारक और इन्द्रियोद्दीपक बनो। हे शरीर, तुम स्थूल बनो।

११. पितु, गायों के पास जैसे हव्य गृहीत होता है, वैसे ही तुम्हारे पास स्तुति-द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं। यह रस देवों को ही नहीं, हमें भी हृष्ट करता है।

१८८ सूक्त

(देवता आप्ती। छन्द गायत्री।)

१. अग्नि, ऋत्विकों-द्वारा भली भाँति आज समिद्ध नामक अग्नि सुशोभित होते हैं। हे सहस्रजित् देव, तुम कवि और दूत हो। तुम भली भाँति हव्य वहन करो।

२. पूजनीय तनूनपात् नामक अग्नि हजार प्रकारों से अन्न धारण करके यजमान के लिए मधुर रस से युक्त द्रव्य में मिलते हैं।

३. हे इडच नामक अग्नि, तुम हमारे द्वारा आहूत होकर हमारे लिए यज्ञभागी देवों को बुलाओ। अग्नि, तुम असीम अन्न के दाता हो।

४. सहस्र वीरोंवाले और पूर्वाभिमुख में अग्र भाग से युक्त जिस अग्निरूप कुश पर आदित्य लोग बैठे हैं, उसे ऋत्विक् लोग, मंत्र के प्रभाव से, आच्छादित करते हैं।

५. यज्ञशाला का विराट्, सम्राट्, विभु, प्रभु, बहु और भूयान् (अग्निरूप) द्वारा जल गिराता है।

६. दीप्त आभरण से युक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त अग्निरूप दिवा-रात्रि, अतीव शोभाशाली होकर विराजित होते हैं। वे यहाँ बैठें।

७. यह अत्युत्तम और प्रियभाषी अग्निरूप दैव होता तथा दिव्य कवि-द्वय हमारे यज्ञ में उपस्थित हों।

८. हे अग्निरूपिणी भारती, सरस्वती और इला, में तुम सबको बुलाता हूँ। जैसे मैं सम्पत्तिशाली हो सकूँ, वैसा करो।

९. अग्निरूप त्वष्टा रूप देने में समर्थ हैं। वह सारे पशुओं का रूप व्यक्त करते हैं। त्वष्टा, हमें बहुत पशु दो।

१०. हे अग्निरूप वनस्पति, तुम देवों का पशु रूप अन्न उत्पन्न करो। अग्नि सब हव्यों को स्वादिष्ठ करें।

११. देवों के अग्रगामी अग्नि गायत्री छन्द से लक्षित हुआ करते हैं। स्वाहा देने के समय वे प्रदीप्त होते हैं।

१८९ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. दीप्तिविशिष्ट अग्नि, तुम सब प्रकार के ज्ञान जानते हो; इसलिए हमें सुमार्ग पर, धन की ओर ले जाओ। तुम कुटिल पाप को हमारे पास से ले जाओ। हम बार-बार तुम्हें प्रणाम करते हैं।

२. अग्नि, तुम नये हो। स्तुति के कारण हमें तुम सारे दुर्गम पापों से मुक्त करो। हमारा नगर अतीव प्रशस्त हो। हमारी भूमि प्रशस्त हो। तुम हमारे पुत्रों और अपत्यों को सुख प्रदान करो।

३. अग्नि, तुम हमारे पास से सब रोग दूर करो। जो अग्निहोत्र नहीं करते या जो हमारे विद्रोही हैं, उन्हें भी हटाओ। देव, तुम हमें शोभन फल देने के लिए सारे मरण-रहित देवों के साथ यज्ञशाला में आओ।

४. अग्नि, तुम सतत आश्रय-दान-द्वारा हमें पालित करो। हमारे प्रिय यज्ञ-गृह में चारों ओर दीप्ति-युक्त बनो। युवक अग्नि, मैं तुम्हारा स्तोता हूँ। मुझे न आज भय उत्पन्न हो और न कभी पीछे।

५. अग्नि, हमें अन्नग्रासी, हिंसक और शुभनाशक शत्रु के हाथ में नहीं समर्पण करना। हमें दन्त-विशिष्ट और दंशक सर्प आदि के हाथ में नहीं सौंपना; दन्त-शून्य शृंगादिवाले पशुओं को नहीं सौंपना। बलिष्ठ अग्नि, हिंसक और राक्षस आदि के हाथ भी हमें नहीं सौंपना।

६. यज्ञोत्पन्न अग्निदेव, तुम वरणीय हो। शरीर पुष्टि के लिए स्तुति करते हुए लोग तुम्हें प्राप्त करके सारे हिंसक और निन्दक व्यक्तियों के हाथों से अपने को बचाते हैं। अग्नि, जो सामने कुटिल आचरण करते हैं, ऐसे दुष्ट का तुम दमन करो।

७. यजनीय अग्नि, तुम यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले लोगों को जानकर यज्ञकर्त्ता की ही कामना करो। आक्रमणकारी अग्नि,

पवित्रताभिलाषी यजमान जैसे ऋत्विकों के लिए शिक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी, यथासमय, यजमान के शिक्षणीय हो।

८. मंत्र-पुत्र और शत्रुनाशक इन अग्नि के लिए ये सारे स्तोत्र बनाये गये हैं। हम इन अतीन्द्रिय-प्रकाशक मंत्रों-द्वारा सहस्र धन प्राप्त करेंगे। हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१९० सूक्त

(देवता बृहस्पति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. होता, अभीष्टवर्षी मिष्टजिह्व और स्तुतियोग्य बृहस्पति को पूजा-साधक मंत्रों-द्वारा वर्द्धित करो। वे स्तोता को नहीं त्यागते। दीप्तियुक्त और स्तूयमान बृहस्पति को गाथा-पाठक देवगण और मनुष्यगण स्तुति सुनाते हैं।

२. वर्षा ऋतु-सम्बन्धिनी स्तुतियाँ सृजन-कर्तृ-रूप बृहस्पति के पास जाती हैं। वे देवाभिलाषियों को फल देते हैं। वे सारे विश्व को व्यक्त करते हैं। वे स्वर्गव्यापी मातरिश्वा की तरह वरणीय फल उत्पन्न करके यज्ञ के लिए सम्भूत हुए हैं।

३. जैसे सूर्य किरणें प्रकाशित करने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही बृहस्पति, यजमानों की स्तुति, अन्न, दान और मंत्रों के स्वीकार के लिए चेष्टा करते हैं। राक्षसों और शत्रुओं से शून्य बृहस्पति की शक्ति से दिवसकालीन सूर्य भयंकर जन्तु की तरह बलशाली होकर घूमते हैं।

४. भूलोक और द्युलोक में बृहस्पति की कीर्ति व्याप्त होती है। बृहस्पति सूर्य की तरह पूजित हव्य धारण करते हैं। वे प्राणियों में चैतन्य प्रदान करते और फल देते हैं। बृहस्पति का आयुध शिकारी पुरुषों के आयुध की तरह है। उनका आयुध मायावियों के सामने प्रतिदिन दौड़ता है।

५. बृहस्पति, जो पापी लोग कल्याणवाही बृहस्पति को बूढ़ा बैल

जानते हैं, उन्हें तुम वरणीय धन नहीं देना। बृहस्पतिदेव, जो सोम-यज्ञ करता है, उस पर तुम अवश्य कृपा रखते हो।

६. बृहस्पति, तुम सुखगामी और सुखाद्य-विशिष्ट यजमान के मार्ग-रूप और दुष्टहन्ता राजा के बन्धु हो। जो हमारी निन्दा करते हैं, उनके सुरक्षित होने पर भी, उन्हें रक्षा-शून्य करो।

७. जैसे मनुष्य राजा से मिलता है, तटद्वयवर्त्तिनी नदी जैसे समुद्र में मिलती है, वैसे ही सारी स्तुतियाँ बृहस्पति में मिलती हैं। वे विद्वान् हैं। आकाशचारी पक्षी की तरह बृहस्पति-रूप से जल और तट, दोनों को देखते हैं। अथवा वृष्टिकामी अभिज्ञ बृहस्पति, मध्य में स्थित होकर तट और जल दोनों को उत्पन्न करते हैं।

८. इसी रूप से बृहस्पति महान्, बलवान्, अभीष्टवर्षी, दीप्ति-मान् होकर और बहुतों के उपकार के लिए उत्पन्न हुए हैं। उनका स्तव करने पर वे हमें वीर-विशिष्ट करें, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१९१ सूक्त

(देवता जल, तृण और सूर्य। छन्द त्रिष्टुप् और महापंक्ति।)

१. अल्प विषवाले, महा विषवाले, जलीय अल्प विषवाले, दो प्रकार के, जलचर और स्थलचर, दाहक प्राणी तथा अदृश्य प्राणी मुझे विष-द्वारा अच्छी तरह लिप्त किये हुए हैं।

२. जो औषध खाता है, वह अवश्य विषधर प्राणी को विनष्ट करता है और प्रत्यावर्तन काल में उसे विनष्ट करता है। विनाश के समय नाश करता और घिसे जाने के समय पिसता है।

३. शर, कुशर, दर्भ, सैर्य, मुञ्ज, वीरण आदि घासों में छिपे विषधरगण मिलकर मुझे लिप्त करते हैं।

४. जिस समय गायें गोष्ठ में बैठी रहती हैं, जिस समय हरिण,

अपने-अपने स्थानों पर, विश्राम करते हैं और जिस समय मनुष्य निद्रा में रहता है, उस समय अदृश्य विषधर मुझे लिप्त किये हुए हैं।

५. तस्कर की तरह उन सबको रात को देखा जाता है। वे, अदृश्य होने पर भी, सारे संसार को देखते हैं; इसलिए मनुष्य सावधान हो जायँ।

६. स्वर्ग पिता, पृथिवी माता, सोम भ्राता और अदिति भगिनी हैं। अदृष्ट-समदर्शी लोग, तुम लोग अपने-अपने स्थान पर रहो और यथासुख गमन करो।

७. जो विषधर स्कन्धवाले हैं, जो अंगवाले (सर्प) हैं, जो सूचीवाले (वृश्चिकादि) हैं, जो अतीव विषधर हैं, वैसे अदृष्ट विषधरगण का यहाँ क्या काम है? तुम सब लोग हमारे पास से चले जाओ।

८. पूर्व दिशा में सूर्य उगते हैं, वे सारे संसार को देखते और अदृष्ट विषधरों का विनाश करते हैं। वे सारे अदृष्टों और यातुधानी (राक्षसी वा महोरगी) का विनाश करते हैं।

९. सूर्य, बड़ी संख्या में, विषों का विनाश करते हुए, उदित होते हैं। सर्वदर्शी और अदृश्यों के विनाशक आदित्य जीवों के मंगल के लिए उदित होते हैं।

१०. शौण्डिक के घर में चर्ममय सुरापात्र की तरह मैं सूर्यमण्डल में विष फेंकता हूँ। जैसे पूजनीय सूर्यदेव प्राण-त्याग नहीं करते, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते। अश्व-द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विष को दूर करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृत में परिणत कर देती है।

११. जैसे क्षुद्र शकुन्तिका पक्षी ने तुम्हारा विष खाकर उगल दिया है, जैसे उसने प्राण-त्याग नहीं किया, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करेंगे। अश्व-द्वारा परिचालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विष को दूर करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृत में परिणत करती है।

१२. अग्नि की सातों जिह्वाओं में से प्रत्येक में श्वेत, लोहित और कृष्ण आदि तीन वर्ण अथवा २१ प्रकार के पक्षी विष की पुष्टि का विनाश करते हैं। वे कभी नहीं मरते; वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते। अश्व-द्वारा परिचालित होकर सूर्य दूरस्थित विष का अपनयन करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृत में परिणत करती है।

१३. मैं सारी विष-नाशक निन्यानबे नदियों के नामों का कीर्तन करता हूँ। अश्व-द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूर-स्थित विष का अपनोदन करते हैं। विष, मधुविद्या तुझे अमृत बना देगी।

१४. जैसे स्त्रियाँ घड़े में जल ले जाती हैं, हे देह, वैसे ही २१ मयूरियाँ (पक्षी) और सात नदियाँ तुम्हारा विष दूर करें।

१५. देह, यह छोटा-सा नकुल तुम्हारा विष दूर करे। यदि न करे, तो मैं इस कुत्सित जन्तु को लोष्ट्र-द्वारा मार डालूँगा। मेरे शरीर से विष दूर हो और दूर देश में चला जाय।

१६. पर्वत से आकर, उस समय, नकुल ने कहा—"वृश्चिक का विष रस-शून्य है।" हे वृश्चिक, तुम्हारा विष रसशून्य है।

प्रथम मंडल समाप्त।

१ सूक्त

(२ अष्टक। २ मंडल। १ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि गृत्समद। छन्द जगती)

१. मनुष्यों के स्वामी अग्निदेव, यज्ञ-दिन में तुम उत्पन्न होओ। सर्वतः दीप्तिशाली होकर उत्पन्न होओ। पवित्र होकर उत्पन्न होओ। जल से उत्पन्न होओ। पाषाण से उत्पन्न होओ। वन से उत्पन्न होओ। ओषधि से उत्पन्न होओ।

२. अग्निदेव, होता, पोता, ऋत्विक् और नेष्टा आदि का कार्य तुम्हारा ही कर्म है। तुम अग्नीध्र हो। जिस समय तुम यज्ञ की इच्छा

करते हो, उस समय प्रशास्ता का कर्म भी तुम्हारा ही है। तुम्हीं अध्वर्यु और ब्रह्मा नाम के ऋषि हो। हमारे घर में तुम ही गृहपति हो।

३. अग्निदेव, तुम साधुओं का मनोरथ पूर्ण करते हो; इसलिए तुम्हीं विष्णु हो, तुम बहुतों के स्तुतिपात्र हो; तुम नमस्कार के योग्य हो। धनवान् स्तुति के अधिपति, तुम मन्त्रों के स्वामी हो, तुम विविध पदार्थों की सृष्टि करते और विभिन्न बुद्धियों में रहते हो।

४. अग्नि, तुम धृतव्रत हो; इसलिए तुम राजा वरुण हो। तुम शत्रुओं के विनाशक और स्तुति-योग्य हो; इसलिए तुम मित्र हो। तुम साधुओं के रक्षक हो; इसलिए तुम अर्यमा हो। अर्यमा का दान सर्व-व्यापी है। तुम अंश (सूर्य) हो। अग्निदेव, तुम हमारे यज्ञ में फल-दान करो।

५. अग्निदेव, तुम त्वष्टा हो। तुम अपने सेवक के वीर्यरूप हो। सारी स्तुतियां तुम्हारी ही हैं। तुम्हारा तेज हितकारी है। तुम हमारे बन्धु हो। तुम शीघ्र उत्साहित करते हो और हमें उत्तम अश्वयुक्त धन देते हो। तुम्हारे पास बहुत धन है। तुम मनुष्यों के बल हो।

६. अग्नि, तुम महान् आकाश के असुर रुद्र हो। तुम मरुतों के बलस्वरूप हो। तुम अन्न के ईश्वर हो। तुम सुख के आधार-स्वरूप हो। लोहित-वर्ण और वायु-सदृश अश्व पर जाते हो। तुम पूषा हो, तुम स्वयं कृपा करके परिचालक मनुष्यों की रक्षा करते हो।

७. अग्नि, अलंकारकारी यजमान के लिए तुम स्वर्गदाता हो। तुम प्रकाशमान सूर्य और रत्नों के आधार स्वरूप हो। नृपति, तुम भजनीय धनदाता हो। यज्ञ-गृह में जो यजमान तुम्हारी सेवा करता है, उसकी तुम रक्षा करते हो।

८. अग्नि, लोग अपने-अपने घर में तुम्हें प्राप्त करते और तुम्हें विभूषित करते हैं। तुम मनुष्यों के पालक, दीप्तिमान् और हमारे

प्रति अनुग्रह-सम्पन्न हो। तुम्हारी सेवा अत्युत्तम है। तुम सारे हव्यों के ईश्वर हो। तुम हजारों, सैकड़ों और दसों फल देते हो।

९. अग्नि, यज्ञ-द्वारा लोग तुम्हें तृप्त करते हैं; क्योंकि तुम पिता हो। तुम्हारा भ्रातृत्व प्राप्त करने के लिए लोग कर्म-द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं। तुम भी उनका शरीर प्रदीप्त कर देते हो। जो तुम्हारी सेवा करता है, तुम उसके पुत्र हो। तुम सखा, शुभकर्त्ता और शत्रु-निवारक होकर रक्षा करो।

१०. अग्नि, तुम ऋभु हो। तुम प्रत्यक्ष स्तुति-योग्य हो। तुम सर्वत्र विश्रुत धन और अन्न के स्वामी हो। तुम अतीव उज्ज्वल हो। अंधकार के विनाश के लिए तुम धीरे-धीरे काष्ठ आदि का दहन करते हो। तुम भली भाँति यज्ञ का निर्वाह और उसके फल का विस्तार करते हो।

११. अग्निदेव, तुम हव्यदाता के लिए अदिति हो। तुम होत्रा और भारती हो। स्तुति-द्वारा तुम वृद्धि प्राप्त करो। तुम सौ वर्षों की भूमि हो। तुम दान में समर्थ हो। हे धन-पालक, तुम वृत्रहन्ता और सरस्वती हो।

१२. अग्निदेव, अच्छी तरह पुष्ट होने पर तुम्हीं उत्तम अन्न हो। तुम्हारे स्पृहणीय और उत्तम वर्ण में ऐश्वर्य रहता है। तुम्हीं अन्न, त्राता, बृहत्, धन, बहुल और सर्वत्र विस्तीर्ण हो।

१३. अग्निदेव, आदित्यों ने तुम्हें मुख दिया है। हे कवि, पवित्र देवताओं ने तुम्हें जीभ दी है। दान के समय एकत्र देवता यज्ञ में तुम्हारी अपेक्षा करते और तुम्हें ही आहुति रूप में दिया हुआ हव्य भक्षण करते हैं।

१४. अग्निदेव, सारे अमर और दोष-रहित देवगण तुम्हारे मुख में, आहुतिरूप में, प्रदत्त हवि का भक्षण करते हैं। मर्त्यगण भी तुम्हारे द्वारा अन्नादि का आस्वाद पाते हैं। तुम लता आदि के गर्भ (उत्ताप)-रूप हो। पवित्र होकर तुमने जन्म ग्रहण किया है।

१५. अग्निदेव, बल-द्वारा तुम प्रसिद्ध देवों के साथ मिलो और उनसे पृथक् होओ। सुजात देव, तुम उनसे बलिष्ठ बनो; क्योंकि तुम्हारी ही महिमा से यह यज्ञ-स्थित अन्न शब्दायमान द्यावा-पृथिवी के बीच व्याप्त होता है।

१६. अग्नि, जो मेधावी स्तोताओं को गौ और अश्व आदि दान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थान में ले चलो। हम वीरों से युक्त होकर यज्ञ में विशाल मंत्र पढ़ेंगे।

२ सूक्त

(दैवता अग्नि। छन्द जगती।)

१. अग्निदेव दीप्तिमान्, शोभन-अन्न-सम्पन्न, स्वर्गदाता उद्दीप्त, होम-निष्पादक और बलप्रदाता हैं। उन सर्वभूतज्ञ अग्नि को यज्ञ द्वारा वर्द्धित करो और यज्ञ तथा विस्तृत स्तुति-द्वारा पूजा करो।

२. अग्निदेव, जैसे दिन में गायें बछड़े की इच्छा करती हैं, वैसे ही तुम्हें यजमान लोग दिन और रात्रि में चाहते हैं। अनेक के माननीय अग्निदेव, तुम संयत होकर द्युलोक में व्याप्त हो। मनुष्यों के यज्ञों में सदा रहते हो। रात में प्रदीप्त होते हो।

३. अग्नि सुदर्शन, द्यावा-पृथिवी के ईश्वर, धन-पूर्ण रथ के सदृश, दीप्तवर्ण, ज्वाला-स्वरूप, कार्यसाधक और यज्ञभूमि में प्रशंसित हैं। देवता लोग उन्हीं अग्नि को संसार के मूल देश में स्थापित करते हैं।

४. अग्निदेव, अन्तरिक्ष वृष्टि-जल-दाता, चन्द्रमा की तरह दीप्ति-विशिष्ट, अन्तरिक्षगामी ज्वाला-द्वारा लोगों को चैतन्य देनेवाले, जल की तरह रक्षक और सबकी जनयित्री द्यावा-पृथिवी को व्याप्त करनेवाले हैं। उन्हीं अग्नि को उस विजन गृह में स्थापित किया गया है।

५. होम-निष्पादक होकर अग्निदेव सारे यज्ञों को व्याप्त करें। मानवों ने हव्य और स्तुति-द्वारा उन्हें अलंकृत किया है। दाहक-शिखा-

युक्त अग्नि वर्द्धमान ओषधियों के बीच जलकर, जैसे नक्षत्र आकाश में चमकते हैं, वैसे ही, द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं।

६. अग्निदेव, हमारे मंगल के लिए क्रमागत और वर्द्धित धन देते हुए तुम प्रज्वलित होकर प्रकाशित होओ। अग्नि, द्यावा-पृथिवी में हमें फल दो। मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हव्य देवों के भक्षण के लिए लाया जाय।

७. अग्नि, हमें यथेष्ट गौ, अश्व आदि तथा सहस्र-संख्यक पुत्र, पौत्र आदि दो। कीर्त्ति के लिए अन्न दो और अन्न का द्वार खोलो। उत्कृष्ट यज्ञ-द्वारा द्यावा-पृथिवी को हमारे अनुकूल करो। आदित्य की तरह उषायें तुम्हे प्रकाशित करती हैं।

८. रमणीय उषा में अग्नि प्रज्वलित होकर, सूर्य की तरह, उज्ज्वल किरणों में देदीप्यमान होते हैं। मनुष्यों के होमसाधक, स्तुति-द्वारा स्तूयमान, उत्तम यज्ञवाले और प्रजाओं के स्वामी अग्नि यजमान के पास, प्रिय अतिथि की तरह, आते हैं।

९. अग्नि, तुम यथेष्ट द्युतिवाले हो। देवों के पूर्ववर्ती मनुष्यों की स्तुति तुम्हें आप्यायित करती है। दूधवाली गाय की तरह यह स्तुति यज्ञस्थित स्तोता की तरह स्वयं अपरिमित और विविध प्रकार धन प्रदान करती है।

१०. अग्नि, हम तुम्हारे लिए अन्न और अश्व से यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके सबको लाँघ जायेंगे और इससे, हमारी अनन्त और दूसरों के लिए अप्राप्य धनराशि सूर्य की तरह, पाँच वर्णों (चार वर्ण और पंचम निषाद) के ऊपर दीप्तिमान् होगी।

११. शत्रु-पराजेता अग्नि, तुम हमारी स्तुति के योग्य हो। हमारा स्तोत्र श्रवण करो। सुजन्मा स्तोता लोग तुम्हारे ही उद्देश्य से स्तुति करते हैं। अग्नि, रस और पुत्र की प्राप्ति के लिए हव्य-विशिष्ट यजमान के यागगृह में दीप्यमान और यजनीय अग्नि की पूजा की जाती है।

१२. सर्वभूतज्ञ अग्नि, स्तोता और मेधावी यजमान—हम दोनों सुख-प्राप्ति के लिए तुम्हारे ही होंगे। हमारे निवास-हेतु, अतिशय आह्लादप्रद, प्रभूत और पुत्र-प्रपौत्र आदि से युक्त धन दो।

१३. अग्नि, जो मेधावी लोग स्तोताओं को गौ और अश्व आदि धन प्रदान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थान में ले चलो। वीर-युक्त होकर हम यज्ञ में बृहत् मंत्र का उच्चारण करेंगे।

३ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. वेदी पर निहित समिद्ध नामक अग्नि सारे गृह के सामने अवस्थित हैं। होम-निष्पादक, विशुद्धताकारी, प्राचीन, प्रज्ञा-संयुक्त, द्योतमान और पूजा-योग्य अग्नि देवों की पूजा करें।

२. नराशंस नामक अग्नि, सुन्दर ज्वाला से युक्त होकर, अपनी महिमा से, प्रत्येक आहुति-स्थल और प्रकाशमान तीनों लोकों को व्यक्त करते हुए, घी बरसाने की इच्छा से, हव्य स्निग्ध करके, यज्ञ के सामने देवों को प्रकाशित करें।

३. इलित या इला नामक अग्निदेव, हम पर प्रसन्न चित्त से, यागकर्म के योग्य होकर, आज, हमारे लिए, मनुष्यों के पूर्ववर्ती होकर देवों का यज्ञ करो। मरुतों और अच्युत इन्द्र का सम्बोधन करो। ऋत्विको, कुश पर बैठे हुए इन्द्र का यज्ञ करो।

४. द्योतमान कुश-स्वरूप अग्नि, हमारे धन-लाभ के लिए, इस वेदी पर अच्छी तरह विस्तृत हो जाओ। तुम सदा बढ़नेवाले और वीर-प्रदाता हो। वसुओ, विश्वदेवो, यज्ञ-योग्य आदित्यो, तुम घी-लगाये कुश पर बैठो।

५. हे द्योतमान, द्वार-रूप अग्नि, तुम खुल जाओ। तुम महान् हो। लोग नमस्कार करते हुए तुम्हारे लिए हवन करते और सरलता

से तुम्हारे पास आते हैं। तुम व्यापक, अहिंसनीय, वीर-विशिष्ट, यशोयुक्त और वर्णनीय रूप के सम्पादक हो। तुम भली भाँति प्रसिद्ध होओ।

६. हमें अच्छे कर्म-फल देनेवाली अग्नि-रूप उषायें रात्रि को वयन-चतुरा दो रमणियों की तरह, सहायता के लिए, परस्पर जाते-आते, यज्ञ का रूप बनाने के लिए, परस्पर अनुकूल होकर बड़े तन्तु का वयन करती हैं। वे अतीव फलदाता और जल-युक्त हैं।

७. अग्निरूप दिव्य दो होता पहले ही यज्ञ के योग्य हैं। वे सर्वा-पेक्षा विद्वान् और विशाल शरीर से संयुक्त हैं। वे मंत्र-द्वारा अच्छी तरह पूजा करते और यथासमय देवों के लिए यज्ञ करते हैं। वे पृथिवी की नाभिरूपिणी उत्तर-वेदी के गार्हपत्य आदि तीन अग्नियों के प्रति गमन करते हैं।

८. हमारे यज्ञ की निष्पादिका अग्निरूप सरस्वती, इला और सर्वव्यापिका भारती, ये तीनों देवियाँ यागगृह का आश्रय करके, हव्य-लाभ के लिए, निर्दोषरूप से, हमारे यज्ञ का पालन करें।

९. अग्नि-स्वरूप त्वष्टा की दया से हमारे पिशंग वर्ण, यज्ञकर्त्ता, अन्नदाता, क्षिप्रकर्त्ता, देवाभिलाषी और वीर पुत्र उत्पन्न हों। त्वष्टा हमें कुल-रक्षक संतान दें। देवों का अन्न हमारे पास आवे।

१०. वनस्पति-रूप अग्नि हमारे कर्म जानकर हमारे पास हैं। विशेष कर्म-द्वारा अग्नि भली भाँति हव्य पकाते हैं। दिव्य शमिता नाम के अग्नि तीन प्रकार से अच्छी तरह सिक्त हव्य को जानकर उसे देवों के निकट ले जायें।

११. मैं अग्नि में घी डालता हूँ। घृत ही उनकी जन्मभूमि, आश्रय-स्थान और दीप्ति है। अभीष्टवर्षी अग्नि, हव्य देने के समय देवों को बुलाकर उनकी प्रसन्नता उत्पादन करो और अग्नि-रूप स्वाहाकार में प्रदत्त हव्य ले जाओ।

४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भृगु के अपत्य सोमाहुति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. यजमानो, मैं तुम्हारे लिए अतीव दीप्तियुक्त, निष्पाप, यजमानों के अतिथि-स्वरूप और हव्य-युक्त अग्नि को बुलाता हूँ। वे सर्व-भूत-ज्ञाता और मनुष्यों से देवों तक के धारणकर्त्ता हैं।

२. भृगुओं ने अग्नि की सेवा करके उन्हें जल के निवास-स्थान, अन्तरिक्ष और मानवों की संतानों के बीच स्थापित किया था। शीघ्रगामी अश्ववाले और देवों के स्वामी अग्नि हमारे समस्त विरोधी प्राणियों को पराभूत करें।

३. स्वर्ग जाते समय देवों ने, मित्र की तरह, अग्नि को मनुष्यों के बीच स्थापित किया था। वे अग्नि हव्यदाता यजमान के लिए, उसके योग्य गृह में स्थापित होकर, अपनी अभिलाषा करनेवाली रात्रियों में दीप्त होते हैं।

४. अपने शरीर की पुष्टि करने के सदृश अग्नि के शरीर की पुष्टि करना भी रमणीय है। जिस समय अग्नि चारों ओर फैलते और काष्ठ को भस्म करते हैं, उस समय उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है। जैसे रथ का अश्व बार-बार पूँछ कँपाता है, वैसे ही अग्नि भी काठों पर अपनी शिखा कँपाते हैं।

५. मेरे सहयोगी स्तोता लोग अग्नि के महत्त्व की स्तुति करते हैं, वे आग्रही ऋत्विकों के पास अपना रूप प्रकाशित करते हैं। अग्नि रमणीय हव्य के लिए विचित्र किरणमाला से प्रकाशित होते हैं। अग्नि वृद्ध होकर भी बार-बार उसी क्षण युवा हो सकते हैं।

६. तृषातुर की तरह जो अग्नि वनों को दग्ध करते हैं, जल की तरह इधर-उधर जाते हैं; रथवाहक अश्व की तरह शब्द करते हैं, वे कृष्ण-मार्ग और तापक होने पर भी नभोमण्डलवाले द्युलोक की तरह शोभन हैं।

७. जो अग्नि विश्व को व्याप्त करते हैं, जो अग्नि विस्तृत पृथिवी पर बढ़ते हैं, जो अग्नि रक्षक-रहित पशु की तरह अपनी इच्छा से गमन कर विचरण करते हैं, वही दीप्तिमान् अग्नि सूखे वृक्ष आदि को जलाकर, व्यथाकारी कंटक आदि को दूरकर, अच्छी तरह रसास्वादन करते हैं।

८. अग्निदेव, तुमने पहले, प्रथम सवन में, जो रक्षा की थी, उसे हम आज भी स्मरण करके तृतीय सवन में मनोहर स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं। अग्नि, तुम हमें वीर-विशिष्ट करो। तुम हमें महान् कीर्त्ति-मान् करो। हमें सुन्दर अपत्य और धन दो।

९. अग्नि, गृत्समद-वंशीय ऋषि लोग तुम्हें रक्षक पाकर, छंद का पाठ करते हुए, गुहा में अवस्थित उत्कृष्ट स्थान पर वर्तमान धन-विशेष प्राप्त करेंगे। वे उत्तम पुत्र आदि को प्राप्त कर शत्रुओं को परास्त करेंगे। मेधावी और स्तुतिकारी यजमानों को बहुत अधिक और प्रसिद्ध धन दो।

५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सोमाहुति। छन्द अनुष्टुप्)

१. होता, चैतन्यदाता और पिता अग्नि पितरों की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए। हम भी हव्य-युक्त होकर अतीव पूजनीय, जीतने और रक्षा करने योग्य धन प्राप्त करने में समर्थ होंगे।

२. यज्ञ-नेता अग्नि में सात रश्मियाँ विस्तृत हैं। देवों के पोता के समान, अग्नि मनुष्यों के पोता की तरह, यज्ञ के अष्टम स्थानीय होकर व्याप्त होते हैं।

३. अथवा इस यज्ञ में ऋत्विक्गण जो हव्यादि धारण करते, जो मंत्र आदि पढ़ते हैं, सो सब अग्निदेव जानते हैं।

४. पवित्र प्रशास्ता अग्नि पुण्यक्रतु के साथ उत्पन्न हुए हैं। जैसे लोग फल तोड़ने के लिए एक डाल से दूसरी डाल पर जाते हैं, वैसे ही यजमान,

अग्नि के यज्ञ को अवश्य फलवाला समझकर, एक के अनन्तर दूसरा अनुष्ठान करता है।

५. जो अँगुलियाँ इस कार्य में लगी रहती हैं, वे इन नेष्टा अग्नि के लिए धेनु-स्वरूप हैं और इनकी सेवा करती हैं तथा अग्निरूप होकर इनके गार्हपत्य आदि तीन उत्कृष्ट रूपों की सेवा करती हैं।

६. जिस समय जुहू मातृ-रूपिणी वेदी के पास भगिनी के समान घृत-पूर्ण करके रक्खा जाता है, उस समय जैसे वृष्टि में यव पुष्ट होता है, वैसे ही अध्वर्युरूप अग्नि भी हृष्ट होते हैं।

७. ये ऋत्विक्-रूप अग्नि अपने कर्म के लिए ऋत्विक् का कर्म करते हैं। हम भी, उसके अनन्तर ही, स्तोम, यज्ञ और हव्य प्रदान करेंगे।

८. अग्नि, तुम्हारी महिमा जाननेवाला यजमान जैसे सारे देवों की भली भाँति तृप्ति कर सके, वैसा करो। हम जिस यज्ञ को करेंगे, वह भी, अग्नि, तुम्हारा ही है।

९ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सोमाहुति। छन्द गायत्री)

१. अग्नि, तुम मेरी इस समिधा और आहुति का उपभोग करो; मेरी यह स्तुति सुनो।

२. अग्नि, हम इस आहुति के द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे। बलपुत्र, विस्तीर्ण-यज्ञशाली और सुजन्मा अग्नि, इस स्तुति से तुम्हें हम प्रसन्न करेंगे।

३. धनद अग्नि, तुम स्तुति के योग्य और यज्ञ के अभिलाषी हो। हम तुम्हारे सेवक हैं। स्तुति-द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे।

४. अग्नि, तुम धनवान्, विद्वान् और धनद हो। उठो और हमारे शत्रुओं को दूर करो।

५. वही अग्नि, हमारे लिए, अन्तरिक्ष से वृष्टि प्रदान करते हैं। वे हमें महान् बल और अनन्त प्रकार के अन्न दें।

६. तरुणतम देव-दूत, अतिशय यजनीय अग्नि, मैंने तुम्हारी स्तुति की है; इसलिए आओ। मैं तुम्हारा पूजक हूँ और तुम्हारा प्रश्रय चाहता हूँ।

७. मेधावी अग्नि, तुम मनुष्यों के हृदय को पहचानते हो; तुम उभयरूप जन्म जानते हो। तुम संसार और बन्धुओं के दूत-रूप हो।

८. अग्नि, तुम विद्वान् हो। हमारी मनःकामना पूर्ण करो। तुम चैतन्यवाले हो। यथाक्रम तुम देवों का यज्ञ करो और कुश के ऊपर बैठो।

७ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सोमाहुति। छन्द गायत्री)

१. हे तरुणतम, भरणकर्त्ता और व्याप्त अग्नि, अतिशय प्रशंसनीय, दीप्तिमान् और बहुजन-वाञ्छित धन ले आओ।

२. अग्नि, मनुष्यों या देवों की शत्रुता हमें पराभूत न करे। हमें दोनों प्रकार के शत्रुओं से बचाओ।

३. अग्नि, जल की धारा की तरह हम सारे शत्रुओं को स्वयं ही लाँघ जायेंगे।

४. अग्नि, तुम शुद्ध, पवित्रकर्त्ता और वन्दनीय हो। घृत-द्वारा आहूत होकर तुम अत्यन्त दीप्त हुए हो।

५. भरणकर्त्ता अग्नि, तुम हमारे हो। तुम बन्ध्या गौ, वृष और गर्भिणी गौ-द्वारा आहूत हुए हो।

६. जिनका अन्न समिधा है, जिनमें घृत सिक्त होता है, वे ही पुरातन, होमनिष्पादक, वरणीय और बल के पुत्र अग्नि अतीव रमणीय हैं।

८ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि गृत्समद। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्)

१. होता, अन्नाभिलाषी पुरुष की तरह प्रभूत यशवाले और अभीष्टदाता अग्नि के अश्वों की स्तुति करो।

२. सुनेता, अजर और मनोहर गतिवाले अग्नि हविर्दाता यजमान के शत्रु-नाश के लिए आहूत हुए हैं।

३. सुन्दर ज्वालावाले जो अग्नि गृह में आते हुए दिन-रात स्तुत होते हैं, उनका व्रत कभी नहीं क्षीण होता।

४. जैसे किरण-रूप सूर्य प्रकाशित होते हैं, विचित्र अग्नि भी अजर शिखाओं-द्वारा चारों ओर प्रकाशित होकर वैसे ही रश्मियों-द्वारा सुशोभित होते हैं।

५. शत्रुओं के विनाशक और स्वयं सुशोभित अग्नि के लिए सारे ऋङ् मन्त्र प्रयुक्त होते हैं। अग्नि ने सारी शोभायें धारण की हैं।

६. हमने अग्नि, इन्द्र, सोम और अन्य देवों का प्रश्रय प्राप्त किया है। हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। हम शत्रुओं को जीतेंगे।

पंचम अध्याय समाप्त।

९ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अग्नि देवों के होता, विद्वान्, प्रज्वलित, दीप्तिमान्, प्रकृष्ट-बलशाली, अप्रतिहत, अनुग्रह-विशिष्ट, निवासदाता, सबके भरण-कर्त्ता और विशुद्ध शिखावाले हैं। होता के भवन में अग्नि अच्छी तरह बैठें।

२. अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम हमारे दूत बनो। हमें आपद् से बचाओ। हमें धन दो। प्रमाद-शून्य और दीप्तिशाली होकर हमारे और हमारे पुत्रों के रक्षक बनो। अग्नि, जागो।

३. अग्नि, हम तुम्हारे उत्तम जन्मस्थान में तुम्हारी सेवा करेंगे। जिस स्थान से तुम उद्गत हुए हो, उसकी भी पूजा करेंगे। वहाँ तुम्हारे प्रज्वलित होने पर अध्वर्यु लोग तुम्हें लक्ष्य कर हव्य प्रदान करते हैं।

४. अग्निदेव, याज्ञिकों में तुम श्रेष्ठ हो। हव्य-द्वारा तुम यज्ञ करो। तत्पर होकर तुम देवों के पास हमारे दिये जाने योग्य अन्न की प्रशंसा करो। तुम धनों में उत्कृष्ट धन के अधिपति हो। तुम हमारे प्रदीप्त स्तोत्र को जानो।

५. दर्शनीय अग्नि, तुम प्रतिदिन उत्पन्न होते हो। तुम्हारा दिव्य और पार्थिव धन नष्ट नहीं होता। फलतः तुम स्तोत्रकर्त्ता यजमान को अन्न-युक्त करो। उसे सुन्दर अपत्यवाले धन का स्वामी बनाओ।

६. अग्निदेव, तुम अपने दल के साथ हमारे प्रति अनुग्रह करो। तुम दोनों के याजक, सर्वापेक्षा उत्तम यज्ञकर्त्ता, देवों के रक्षक और हमारे पालक हो। कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता। धन और कान्ति से युक्त होकर तुम चारों ओर देदीप्यमान बनो।

१० सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अग्नि सबसे प्रथम होतव्य और पिता के समान हैं। अग्नि मनुष्यों द्वारा यज्ञ-स्थान में प्रज्वालित हुए हैं। वह दीप्ति-पूर्ण, मरण-रहित, विभिन्न-प्रज्ञा-युक्त, अन्नवान्, बलवान् और सबके सेवनीय हैं।

२. अमर, विशिष्ट प्रज्ञावाले, विचित्र दीप्ति-युक्त अग्नि मेरे सब स्तुति-युक्त आह्वान सुनें। दो लाल घोड़े अग्नि का रथ वहन करते हैं। वे विविध स्थानों में जाते हैं।

३. अध्वर्यु लोगों ने ऊर्ध्वमुख अरणि या काष्ठ में प्रेरित अग्नि को उत्पन्न किया है। अग्नि विविध ओषधियों में गर्भरूप से अवस्थित हैं। रात में उत्तम-ज्ञानवान् अग्नि, महादीप्ति-युक्त होकर वास करते हैं। उन्हें अन्धकार नहीं छिपा सकता।

४. सारे भुवनों के अधिष्ठाता, महान्, सर्वत्रगामी, शरीरवान्, प्रवृद्ध हव्य-द्वारा व्याप्त, बलवान् और सबके दृश्यमान अग्नि की हम हव्य-घृत के द्वारा पूजा करते हैं।

५. सर्वव्यापी और यज्ञ के अभिमुख आने की इच्छा करते हुए अग्नि को घृत-द्वारा हम सिक्त करते हैं। वे शान्त चित्त से उस घृत को ग्रहण करें। मनुष्यों के भजनीय और श्लाघनीय वर्णवाले अग्नि के पूर्ण प्रज्वलित होने पर उन्हें कोई छू नहीं सकता।

६. अपने तेजोबल से शत्रुओं को पराजित करने के समय, हे अग्नि, तुम हमारी सम्भोग-योग्य स्तुति को जानो। तुम्हारा आश्रय पाकर हम मनु की तरह स्तोत्र करते हैं। उन बहुल-मधुस्पर्शी और धन-प्रद अग्नि का जुहू और स्तुति-द्वारा मैं आह्वान् करता हूं।

११ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. इन्द्र, तुम मेरी स्तुति सुनो। तिरस्कार नहीं करना। हम तुम्हारे धन-दान के पात्र हैं। नदी की तरह प्रवाहशाली यह हव्य यजमान के लिए धनेच्छा करता है। यह तुम्हें वर्द्धित करे।

२. शूर इन्द्र, तुमने जो जल बरसाया था, वृत्र ने उसी प्रभूत जल पर आक्रमण किया था। तुमने उस जल को छोड़ दिया था। उस दस्यु या दास (वृत्र) ने अपने को अमर समझा था। स्तुति-द्वारा वर्द्धित होकर उसको तुमने नीचे पटक दिया।

३. शूर इन्द्र, जिस सुखकर या सत्कृत ऋक्, मंत्र और स्तोत्र की तुम इच्छा करते हो और जिसमें तुम्हें आनन्द मिलता है, वह

सब शुभ्र और दीप्यमान स्तुति, यज्ञ के प्रति, तुम्हारे लिए प्रस्तुत होती है।

४. इन्द्र, स्तोत्र-द्वारा हम तुम्हारा सुखकर बल वर्द्धित करते तथा तुम्हारे हाथों में दीप्त वज्र अर्पण करते हैं। वर्द्धित और तेजोयुक्त होकर तुम दास लोगों को, सूर्य-रूप आयुध-द्वारा, पराभूत करते हो।

५. शूर इन्द्र, गुहा में अवस्थित, अप्रकाश्य, लुक्कायित, तिरोहित और जल में अवस्थित जिस वृत्र ने अपनी शक्ति से अन्तरिक्ष और द्युलोक को विस्मित किया था, उसको वज्र-द्वारा तुमने विनष्ट किया था।

६. इन्द्र, हम तुम्हारी प्राचीन महत्कीर्तियों की स्तुति करते हैं तथा तुम्हारे आधुनिक कृतकर्मों की स्तुति करते हैं। तुम्हारे दोनों हाथों में दीप्यमान वज्र की स्तुति करते हैं। तुम सूर्यात्मा हो। तुम्हारे पताका-स्वरूप हरि नाम के अश्वों की हम स्तुति करते हैं।

७. इन्द्र, तुम्हारे शीघ्रगामी दोनों घोड़े जलवर्षी मेघध्वनि करते हैं। समतल पृथिवी मेघ-गर्जन सुनकर प्रसन्न हुई। मेघ ने भी इधर-उधर घूमकर शोभा प्राप्त की।

८. प्रमाद-शून्य मेघ अन्तरिक्ष में आया और मातृ-भूत जल के साथ इधर-उधर घूमने लगा। मरुतों ने अत्यन्त दूर अन्तरिक्ष में अवस्थित शब्द को वर्द्धित करते हुए, इन्द्र-द्वारा प्रेरित उस शब्द को चारों ओर फैला दिया।

९. बली इन्द्र ने इधर-उधर संचारी मेघ में अवस्थित मायावी वृत्र को मार गिराया। जलवर्षक इन्द्र के वज्र के व्यापक शब्द से भय पाकर द्यावा-पृथिवी कम्पित हुई।

१०. जिस समय मनुष्यों के हितकारी इन्द्र ने मनुष्यों के शत्रु वृत्र के विनाश की इच्छा की थी, उस समय अभीष्ट-वर्षक इन्द्र का वज्र बार-बार गर्जन करने लगा। इन्द्र ने अभिषुत सोमपान करके मायावी दानव की सारी माया को निपातित कर दिया था।

११. इन्द्र, तुम अभिषुत सोम पान करो। मददाता सोमरस तुम्हें आमोदित करे। सोमरस तुम्हारे उदर की पूर्ति करके तुम्हें प्रसन्न करे। इस प्रकार उदर-पूरक सोमरस इन्द्र को तृप्त करे।

१२. इन्द्र हम मेधावी हैं। हम तुम्हारे अन्दर स्थान पावेंगे। कर्मफल की कामना से हम तुम्हारी सेवा करके यज्ञ करेंगे। तुम्हारा आश्रय पाने की इच्छा से हम तुम्हारी प्रशंसा का ध्यान करते हैं, ताकि हम इसी क्षण तुम्हारे धनदान के पात्र हो सकें।

१३. इन्द्र, तुम्हारे आश्रय-लाभ की इच्छा से जो तुम्हारा हव्य वर्द्धित करते हैं, हम भी उन्हीं की तरह तुम्हारे अधीन हो जायें। द्युतिमान् इन्द्र, हम जिस धन की इच्छा करते हैं, तुम हमें सर्वापेक्षा बलवान् और वीर-पुत्र-युक्त वही धन दो।

१४. इन्द्र, तुम हमें गृह दो, बन्धु दो और महापुरुषों की तरह वीर्य दो, प्रसन्न-चित्त वायुगण अतीव आनन्दित होकर आगे लाया हुआ सोम पान करें।

१५. इन्द्र, जिन मरुतों के सहायक होने पर तुम हृष्ट होते हो, वे शीघ्र सोमपान करें। तुम भी अपने को दृढ़ करके तृप्तिकर सोम पान करो। शत्रुनाशक इन्द्र, बलवान् और पूजनीय मरुतों के साथ तुम युद्ध में हमें वर्द्धित करो---द्युलोक को भी वर्द्धित करो।

१६. अनिष्ट-निवारक इन्द्र, तुम सुख-प्रद हो। जो पुरुष उक्थ-द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह शीघ्र ही महान् हो जाता है। जो कुश बिछा-कर तुम्हारी सेवा करते हैं, वे तुम्हारा आश्रय प्राप्तकर गृह के साथ अन्न प्राप्त करते हैं।

१७. शूर इन्द्र, तुम उग्र त्रिकद्रु दिन-विशेषों में अत्यन्त हृष्ट होकर सोमपान करो। अनन्तर प्रसन्न होकर और अपनी दाढ़ी-मूँछ में लगे सोम को झाड़कर सोमपान के लिए हरि नामक घोड़े पर चढ़कर आओ।

१८. इन्द्र, जिस बल के द्वारा तुमने दनु के पुत्र वृत्र को ऊर्णनाभि कीट की तरह विनष्ट किया था, वही बल धारण करो। आर्य के लिए तुमने ज्योति दी है। दस्यु तुम्हारे विरोधी हैं।

१९. इन्द्र, जिन लोगों ने तुम्हारा आश्रय प्राप्त करके सारे गर्व-कारी मनुष्यों को अतिक्रम किया है और आर्यभाव-द्वारा दस्यु का अतिक्रम किया है, हम उनको भजते हैं। तुमने त्रित के बन्धुत्व के लिए त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का वध किया है। हमारे लिए भी वैसा ही करो।

२०. इन हृष्ट और सुतवान् त्रित-द्वारा वर्धित होकर इन्द्र ने अर्बुद का विनाश किया था। जैसे सूर्य रथ-चक्र चलाते हैं, वैसे ही इन्द्र ने अंगिरा लोगों की सहायता प्राप्त करके वज्र को घुमाया था और बल को विनष्ट किया था।

२१. इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोता का मनोरथ पूरा करती है, उसे हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर और किसी को भी नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

१२ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. मनुष्यो या असुरो, जो प्रकाशित हैं, जिन्होंने जन्म के साथ ही देवों में प्रधान और मनुष्यों में अग्रणी होकर वीरकर्म-द्वारा सारे देवों को विभूषित किया था, जिनके शरीर-बल से द्यावा-पृथिवी भीत हुई थी और जो महती सेना के नायक थे, वे ही इन्द्र हैं।

२. मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने व्यथित पृथिवी को दृढ़ किया है, जिन्होंने प्रकुपित पर्वतों को नियमित किया है, जिन्होंने प्रकाण्ड अन्तरिक्ष को बनाया है और जिन्होंने द्युलोक को निस्तब्ध किया है, वे ही इन्द्र हैं।

३. मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वृत्र का विनाश करके सात नदियों को प्रवाहित किया है, जिन्होंने बल असुर-द्वारा रोकी हुई गायों का उद्धार किया था, जो दो मेघों के बीच से अग्नि को उत्पन्न करते हैं और जो समर-भूमि में शत्रुओं का नाश करते हैं, वे ही इन्द्र हैं।

४. मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने समस्त विश्व का निर्माण किया है, जिन्होंने दासों को निकृष्ट और गूढ़ स्थान में स्थापित किया है, जो लक्ष्य जीतकर व्याध की तरह शत्रु के सारे धन को ग्रहण करते हैं, वे ही इन्द्र हैं।

५. मनुष्यो या असुरो, जिन भयंकर देव के सम्बन्ध में लोग जिज्ञासा करते हैं, वे कहाँ हैं? जिनके विषय में लोग बोलते हैं कि वे नहीं हैं और जो शासक की तरह शत्रुओं का सारा धन विनष्ट करते हैं। विश्वास करो, वे ही इन्द्र हैं।

६. मनुष्यो या असुरो, जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं, जो दरिद्र याचक और स्तोता को धन देते हैं और जो शोभन हनु या केहुनीवाले होकर सोमाभिषव-कर्त्ता और हाथों में पत्थरवाले यजमान के रक्षक हैं, वे ही इन्द्र हैं।

७. मनुष्यो या असुरो, घोड़े, गायें, गाँव और रथ जिनकी आज्ञा के अधीन हैं, जो सूर्य और उषा को उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं, वे ही इन्द्र हैं।

८. मनुष्यो या असुरो, दो सेनादल परस्पर मिलने पर जिन्हें बुलाते हैं, उत्तम-अधम दोनों प्रकार के शत्रु जिन्हें बुलाते हैं और एक ही तरह के रथों पर बैठे हुए दो मनुष्य जिन्हें नाना प्रकार से बुलाते हैं, वे ही इन्द्र हैं।

९. मनुष्यो या असुरो, जिनके न रहने से कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकाल में, रक्षा के लिए जिन्हें लोग बुलाते हैं, जो सारे संसार के प्रतिनिधि हैं और जो क्षय-रहित पर्वतादि को भी नष्ट करते हैं, वे ही इन्द्र हैं।

१०. मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वज्र-द्वारा अनेक महापापी अपूजकों का विनाश किया है, जो गर्वकारी मनुष्य को सिद्धि प्रदान करते हैं और जो दस्युओं के हन्ता हैं, वे ही इन्द्र हैं।

११. मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने पर्वत में छिपे शम्बर असुर को चालीस वर्ष खोजकर प्राप्त किया था और जिन्होंने बल-प्रकाशक अहि नाम के सोये हुए दैत्य का विनाश किया था, वे ही इन्द्र हैं।

१२. मनुष्यो या असुरो, जो सप्त वर्ण या वराह, स्वपत, विद्युत्, महः, धूपि, स्वापि, गृहमेध आदि सात रश्मियोंवाले, अभीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नदियों को प्रवाहित किया है और जिन्होंने वज्र-बाहु होकर स्वर्ग जाने को तैयार रौहिण को विनष्ट किया था, वे ही इन्द्र हैं।

१३. मनुष्यो या असुरो, द्यावा-पृथिवी उन्हें प्रणाम करती हैं। उनके बल के सामने पर्वत काँपते हैं और जो सोमपान-कर्त्ता, दृढ़ांग, वज्र-बाहु और वज्रयुक्त हैं, वे ही इन्द्र हैं।

१४. मनुष्यो, जो सोमाभिषवकर्त्ता यजमान की रक्षा करते हैं, जो पुरोडाश आदि पकानेवाले, स्तोता और स्तुतिपाठक यजमान की रक्षा करते हैं और जिनके वर्द्धक स्तोत्र, सोम और हमारा अन्न हैं, वे ही इन्द्र हैं।

१५. इन्द्र, दुर्धर्ष होकर सोमाभिषव-कर्त्ता और पाककारी यजमान को अन्न प्रदान करते हो, इसलिए तुम्हीं सत्य हो। हम प्रिय और वीर पुत्र-पौत्र आदि से युक्त होकर चिरकाल तक तुम्हारे स्तोत्र का पाठ करेंगे।

१३ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. वर्षा-ऋतु सोम की माता है। उत्पन्न होकर सोम जल में बढ़ता है; इसलिए उसी में प्रवेश करता है। जो सोमलता जल की सार-

भूत होकर वृद्धि को प्राप्त होती है, वह अभिषव के उपयुक्त है। उसी सोमलता का पीयूष इन्द्र का हव्य है।

२. परस्पर मिली हुई उदक-वाहिनी नदियाँ चारों ओर बह रही हैं और सारे जलों के आश्रयभूत समुद्र को भोजन प्रदान करती हैं। निम्नगामी जल का गन्तव्य मार्ग एक ही है। इन्द्र, तुमने पहले ये सब काम किये हैं; इसलिए तुम स्तुति-योग्य हो।

३. एक यजमान जो दान करता है, दूसरा उसका अनुवाद करता है। एक जल पशुहिंसा करके, हिंसाकर्त्ता बनकर, जाता है, दूसरा सारे बुरे कर्मों का शोधन करता है। इन्द्र, तुमने पहले ये सब कर्म किये हैं; इसलिए तुम स्तुतिपात्र हो।

४. इन्द्र, जैसे गृहस्थ लोग अभ्यागत अतिथि को प्रचुर धन देते हैं, वैसे ही तुम्हारा दिया धन प्रजाओं में विभक्त होकर रहता है। लोग पिता-द्वारा दिया भोजन दाँतों से खाते हैं। इन्द्र, तुमने पहले ये सब कार्य किये हैं; इसलिए स्तुति-योग्य हो।

५. इन्द्र, तुमने आकाश के लिए पृथिवी को दर्शनीय किया है। तुमने प्रवाहित नदियों का मार्ग गमन-योग्य किया है। वृत्र-हन्ता इन्द्र, जैसे जल के द्वारा अश्व को तृप्त करते हो, वैसे ही स्तोता लोग स्तोत्र-द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं।

६. इन्द्र, तुम भोजन और वर्द्धमान धन देते हो और आर्द्र काष्ठ से शुष्क और मधुर रसवाले शस्य आदि का दोहन करते हो। सेवक यजमान को तुम धन देते हो। संसार में तुम अद्वितीय हो। इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो।

७. इन्द्र, कर्म-द्वारा तुमने खेत में फूल और फलवाली ओषधि की रक्षा की है। प्रकाशमान सूर्य की नाना प्रकार की ज्योति उत्पन्न की है। तुमने महान् होकर चारों ओर महान् प्राणियों को उत्पन्न किया है। तुम स्तुति-पात्र हो।

८. बहु-कर्म-कर्त्ता इन्द्र, तुमने हव्यप्राप्ति और दासों के विनाश के उद्देश्य से नृमर के पुत्र सहवसु का विनाश करने के लिए बलवती वज्रधारा का निर्मल मुख-प्रदेश इसको दिया था। तुम स्तुति-योग्य हो।

९. इन्द्र, तुम एक हो। तुम्हारे सुख के लिए दस सौ घोड़े हैं। तुमने दभीति ऋषि के लिए रज्जुरहित दस्युओं का विनाश किया था। तुम सबके प्राप्य हो; इसलिए स्तुति-योग्य हो।

१०. सारी नदियाँ इन्द्र की शक्ति का अनुवर्त्तन करती हैं। यजमान लोग इन्द्र को अन्न प्रदान करते हैं और सब लोग कर्मकर्त्ता इन्द्र के लिए धन धारण करते हैं। तुमने विशाल द्यु, पृथ्वी, दिन-रात्रि, जल और ओषधि नाम के छः स्थानों को निश्चित किया है। पंचजन के पालक हो। इन्द्र, तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

११. तुम्हारा वीर्य सबके लिए श्लाघनीय है। तुमने एक कर्म-द्वारा शत्रुओं का धन प्राप्त किया है। तुमने बलिष्ठ जातुष्ठिर को अन्न दिया है। चूँकि ये सब कार्य तुमने किये हैं; इसलिए तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

१२. इन्द्र, सरलता से प्रवाहशील जल के पार जाने के लिए तुमने तुर्वीति और वय्य को मार्ग दे दिया था। तुमने अन्धे और पंगु, परावृज को तल से उद्धार करके अपने को कीर्त्तिशाली बनाया है; इसलिए तुम स्तुति-योग्य हो।

१३. निवास-दाता इन्द्र, हमें भोग के लिए धन दो। तुम्हारा वह धन प्रभूत, वासयोग्य और विचित्र है। हम प्रतिदिन उस धन के भोग की इच्छा करते हैं। हम उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञ में प्रभूत स्तोत्र का पाठ करेंगे।

१४ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. अध्वर्युगण, इन्द्र के लिए सोम ले आओ। चमस के द्वारा मादक अन्न अग्नि में फेंको। वीर इन्द्र सदा सोमपान के अभिलाषी रहते हैं। अभीष्टवर्षी इन्द्र के लिए सोम प्रदान करो। इन्द्र उसे चाहते हैं।

२. अध्वर्युगण, जिन इन्द्र ने जल को आच्छादित करनेवाले वृत्र का वज्रद्वारा वृक्ष की तरह विनाश किया है, उन्हीं सोमाभिलाषी इन्द्र के लिए सोम ले आओ। इन्द्रदेव सोमपान के उपयुक्त पात्र हैं।

३. अध्वर्युगण, जिन इन्द्र ने दृभीक का विनाश किया था, जिन्होंने बल असुर-द्वारा अवरुद्ध गायों का उद्धार करके उसे विनष्ट किया था, उन्हीं इन्द्र के लिए, जैसे वायु अन्तरिक्ष में व्याप्त है, वैसे ही, सोम को सर्वत्र व्याप्त करो। जैसे जीर्ण को वस्त्र के द्वारा आच्छादित किया जाता है, वैसे ही सोम-द्वारा इन्द्र को आच्छादित करो।

४. अध्वर्युगण, जिन इन्द्र ने निन्नानबे बाहु दिखानेवाले उरण का विनाश किया था तथा अर्बुद को अधोमुख करके विनष्ट किया था, सोम तैयार होने पर उन्हीं इन्द्र को प्रसन्न करो।

५. अध्वर्युगण, जिन इन्द्र ने सरलता से अश्न का विनाश किया था, जिन्होंने अशोषणीय शुष्ण को स्कन्धहीन करके मार डाला था, जिन्होंने पिप्रु, नमुचि और रुधिक्रा का विनाश किया था, उन्हीं इन्द्र के लिए अन्न प्रदान करो।

६. अध्वर्युगण, जिन इन्द्र ने प्रस्तर के सदृश वज्र-द्वारा शम्बर की अतीव प्राचीन नगरियों को छिन्न-भिन्न किया था, जिन्होंने वर्ची के सौ हज़ार पुत्रों को भूमिशायी किया था, उन्हीं इन्द्र के लिए सोम ले आओ।

७. अध्वर्युगण, जिन शत्रुहन्ता इन्द्र ने भूमि की गोद में सौ

हजार असुरों को मार गिराया था, जिन इन्द्र ने कुत्स, आयु और अतिथिग्व के प्रतिद्वन्द्वियों का वध किया था, उनके लिए सोम ले आओ।

८. नेता अध्वर्युगण, तुम जो चाहते हो, वह इन्द्र को सोम प्रदान करने पर तुरत मिल जायगा। प्रसिद्ध इन्द्र के लिए हस्त-द्वारा शोधित सोम ले आओ। हे याज्ञिकगण, इन्द्र के लिए वह प्रदान करो।

९. अध्वर्युगण, इन्द्र के लिए सुखकर सोम तैयार करो। संभोग-योग्य जल में शोधित सोम ऊपर ले आओ। इन्द्र प्रसन्न होकर तुम्हारे हाथों से तैयार किया हुआ सोम चाहते हैं। इन्द्र के लिए तुम लोग मदकारक सोम प्रदान करो।

१०. अध्वर्युगण, गाय का अधोदेश जैसे दुग्ध से पूर्ण रहता है, वैसे ही इन फल-प्रदाता इन्द्र को सोम-द्वारा पूर्ण करो। सोम का गूढ़ स्वभाव मैं जानता हूँ। यजनीय इन्द्र सोमप्रद यजमान को अच्छी तरह जानते हैं।

११. अध्वर्युगण, इन्द्रदेव, स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष के धन के राजा हैं। जैसे यव (जौ) से धान्य रखने का स्थान पूर्ण किया जाता है, वैसे ही सोम-द्वारा इन्द्र को पूर्ण करो। वह कार्य तुम लोगों के द्वारा पूर्ण हो।

१२. निवास-प्रद इन्द्र, हमें भोग के लिए धन प्रदान करो। तुम्हारा वह धन प्रभूत, वास-योग्य और विचित्र है। हम प्रतिदिन उसी धन को भोग करने की इच्छा करते हैं। इस उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञ में प्रभूत स्तोत्र का पाठ करेंगे।

१५ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. मैं बलवान् हूँ। सत्य-संकल्प इन्द्र की यथार्थ और महती कीर्त्तियों का वर्णन करता हूँ। इन्द्र ने त्रिकद्रु यज्ञ में सोमपान किया है। सोमजन्य प्रसन्नता होने पर इन्द्र ने अहि का वध किया।

२. आकाश में इन्द्र ने द्युलोक को रोक रक्खा है। द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूर्ण किया है। विस्तीर्ण पृथिवी को धारण किया है और उसे प्रसिद्ध किया है। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

३. यज्ञ-गृह की तरह इन्द्र ने माप करके, सारे संसार को पूर्वाभि-मुख करके बनाया है। उन्होंने वज्र-द्वारा नदी के निकलनेवाले दरवाजों को खोल दिया। उन्होंने अनायास ही दीर्घ काल तक जाने योग्य मार्गों से नदियों को प्रेरित किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

४. जो असुर दभीति ऋषि को उनके नगर के बाहर ले जा रहे थे, मार्ग में उपस्थित होकर इन्द्र ने उनके सारे आयुधों को दीप्यमान अग्नि में दग्ध कर डाला। अनन्तर दभीति को अनेक गायें, घोड़े और रथ दिये। सोमजन्य हर्ष के उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

५. उन इन्द्र ने धुनि, इरावती या परुष्णी नामक महानदी को, पार जाने के लिए, शान्त किया था। नदी के पार जाने में असमर्थ लोगों को निरापद पार किया था। वे नदी पार होकर धन को लक्ष्य करके गये थे। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

६. अपनी महिमा से इन्द्र ने सिन्धु को उत्तर-वाहिनी किया है। वेगवती सेना के द्वारा, दुर्बल सेना को भिन्न करके वज्र-द्वारा उषा के रथ को चूर्ण किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

७. अपने ब्याह के लिए आई हुई कन्याओं का भागना जानकर परावृज ऋषि सबके सामने ही उठकर खड़े हो गये। पंगु होने पर भी कन्याओं के प्रति दौड़े; चक्षुहीन होने पर भी उन्हें देखा; क्योंकि स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें पैर और आँखें दे दी थीं। सोमजन्य हर्ष होने पर इन्द्र ने यह सब किया था।

८. अङ्गिरा लोगों की स्तुति करने पर इन्द्र ने बल को विदीर्ण किया था। पर्वत के सुदृढ़ द्वार को खोला था। इनकी कृत्रिम रुकावट को भी हटाया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

९. इन्द्र, तुमने चुमुरि और धुनि नाम के असुरों को दीर्घ निद्रा में प्रसिद्ध करके विनष्ट किया था। दभीति नामक राजर्षि की रक्षा की थी। उनके वेत्रधारी दौवारिक ने भी शत्रु का हिरण्य प्राप्त किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र ने यह सब काम किया था।

१०. इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तुतिकारी का मनोरथ पूरा करती है, वही दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो, हमें छोड़कर और किसी को नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

१६ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. तुम्हारे उपकार के लिए देवों में ज्येष्ठतम इन्द्र के लिए दीप्यमान अग्नि में हम हव्य प्रदान करते हैं। अनन्तर उनकी मनोहर स्तुति करते हैं। अपनी रक्षा के लिए स्वयं जरा-रहित, सारे संसार को जरा देनेवाले, सोमसिक्त, सनातन और तरुण-वयस्क इन्द्र को हम बुलाते हैं।

२. विराट् इन्द्र के बिना संसार नहीं है। जिन इन्द्र में सारी शक्तियाँ हैं, वही इन्द्र उदर में सोमरस धारण करते हैं। उनके शरीर में बल और तेज है। उनके हाथ में वज्र और मस्तक में ज्ञान है।

३. इन्द्र, जब कि तुम शीघ्रगामी अश्व पर चढ़कर अनेक योजन जाते हो, तब द्यावा-पृथिवी तुम्हारे बल को पराजित नहीं कर सकतीं। समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथ का परिभव नहीं कर सकते। कोई भी व्यक्ति तुम्हारे बल का परिभव नहीं कर सकता।

४. सब लोग यजनीय, शत्रुनाशक, अभीष्टवर्षी और सदा सज्जित इन्द्र का यज्ञ करते हैं। तुम सोमदाता और विद्वान् हो। इन्द्र के लिए तुम भी यज्ञ करो। इन्द्र, अभीष्टवर्षी और दीप्यमान अग्नि के साथ सोमपान करो।

५. अभीष्टवर्षी और मादक सोमरस अनुष्ठाताओं के लिए उत्तेजक होकर बलप्रद, अन्न-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी इन्द्र के पाने के लिए जाता है। सोमरसप्रद अध्वर्यद्वय और अभीष्टवर्षी अभिषव-प्रस्तर अभीष्ट-वर्षी सोम का, तुम्हारे लिए अभिषवण करते हैं। तुम भी अभीष्ट-वर्षी हो।

६. अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे वज्र, रथ हरिनाम के अश्व और तुम्हारे सारे हथियार अभीष्टवर्षी हैं। तुम भी मादक और अभीष्ट-वर्षी सोम के अधिकारी हो। इन्द्र, अभीष्टवर्षी सोम से तुम भी तृप्त बनो।

७. तुम शत्रुनाशक हो। तुम संग्राम में स्तोत्राभिलाषी और नौका की तरह उद्धारक हो। यज्ञ-काल में मैं स्तोत्र करते-करते तुम्हारे पास जाता हूँ। इन्द्र, हमारे इस स्तुतिवाक्य को अच्छी तरह जानो, हम कूप की तरह दानाधार इन्द्र को सिक्त करेंगे।

८. जैसे तृण खाकर तृप्त गाय वत्स को लौटाती है, वैसे ही हे इन्द्र, हमें अनिष्ट से पहले ही लौटा दो। शतक्रतु, जैसे पत्नियाँ युवा को व्याप्त करती हैं, वैसे ही हम सुन्दर स्तोत्र-द्वारा एक बार तुम्हें व्याप्त करेंगे।

९. इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोता को सारे मनोरथ प्रदान करती है, वह दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्य को नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

१७ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. स्तोताओ, तुम लोग अङ्गिरा लोगों की तरह नई स्तुति-द्वारा इन्द्र की उपासना करो; क्योंकि इन्द्र का शोषक तेज पूर्वकाल की तरह उदित होता है। सोमजनित हर्ष के उत्पन्न होने पर इन्द्र ने वृत्र-द्वारा आक्रान्त सारी मेघराशि को उद्घाटित किया था।

२. जिन इन्द्र ने बल का प्रकाश करके प्रथम सोमपान के लिए अपनी महिमा को बढ़ाया है और जिन शत्रुहन्ता इन्द्र ने युद्धकाल में अपने शरीर को सुरक्षित रखा था, वे ही इन्द्र प्रसन्न हों। उन्होंने अपनी महिमा से अपने मस्तक पर द्युलोक को धारण किया था।

३. इन्द्र, तुमने अपना महावीर्य प्रकट किया है; क्योंकि स्तोत्र-द्वारा प्रसन्न होकर तुमने शत्रु-विनाशक बल प्रकट किया है। तुम्हारे रथस्थित हरि नामक अश्वों के द्वारा स्वस्थान से विच्युत होकर अनिष्ट-कारी लोगों में से कुछ दल बाँधकर और कुछ अलग-अलग होकर भाग गये हैं।

४. बहुत अन्नवाले इन्द्र अपने बल से सारे भुवनों को अभिभूत करके और अपने को सबका अधिपति करके वर्द्धित हुए हैं। अनन्तर संसार के वाहक इन्द्र ने द्यावा-पृथिवी को व्याप्त किया है। इन्द्र ने कुःस्थित तमोराशि को चारों ओर फेंकते हुए संसार को व्याप्त किया है।

५. इन्द्र ने इधर-उधर घूमनेवाले पर्वतों को अपने बल से अचल किया है। मेघ-स्थित जलराशि को नीचे गिराया है। उन्होंने संसार-धारयित्री पृथिवी को अपने बल से धारण किया है और बुद्धि-बल से द्युलोक को पतन से बचाया है।

६. इन्द्र, इस संसार के लिए पर्याप्त हुए हैं। वे सबके रक्षक हैं। उन्होंने सारे जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट ज्ञान-बल से अपने हाथों संसार को निर्माण किया है। विविध-कीर्तिमान् इन्द्र ने इस ज्ञान से क्रिवि

को वज्र द्वारा मारते हुए पृथिवी पर लेटकर रहने के लिए बाधित किया था।

७. इन्द्र, जैसे आमरण माता-पिता के साथ रहनेवाली पुत्री अपने पितृ-कुल से ही अंश के लिए प्रार्थना करती है, वैसे ही मैं तुम्हारे पास धन की याचना करता हूँ। उस धन को तुम सबके पास प्रकट करो, उस धन को मापो और उसे सम्पादित करो। मेरे शरीर के भोगने योग्य धन दो। इस धन से स्तोताओं को सम्मानित करो।

८. इन्द्र, तुम पालक हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम कर्म और अन्न के दाता हो। नाना प्रकार से आश्रय प्रदान कर तुम हमें बचाओ। अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम हमें अत्यन्त धनशाली करो।

९. इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोता को सारे मनोरथ प्रदान करती है, वही दक्षिणा तुम हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्य किसी को नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र से संयुक्त होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

१८ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. स्तुतियोग्य और विशुद्ध यज्ञ प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ है। इस यज्ञ में चार पत्थर, तीन प्रकार के स्वर, सात प्रकार के छन्द और दस प्रकार के पात्र हैं। यह मनुष्यों के लिए हितकर और स्वर्ग-प्रदाता है। यह मनोहर स्तुति और होम आदि के द्वारा प्रसिद्ध होगा।

२. यह यज्ञ इस इन्द्र के लिए प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवन में यथेष्ट हुआ। यह मानवों के लिए शुभ फल ले आता है। दूसरे ऋत्विक् लोग भी दूसरे सिद्ध वाक्यों का गर्भ उत्पन्न करते हैं। अभीष्टवर्षी और जयशील यज्ञ अन्य देवों के साथ मिलित होता है।

३. इन्द्र के रथ में नये स्तोत्रों के द्वारा शीघ्र जाने के लिए

हरिनाम के अश्वों को जोड़ा जाता है। इस यज्ञ में अनेक मेधावी स्तोता हैं। दूसरे यजमान लोग तुम्हें अच्छी तरह तृप्त नहीं कर सकते।

४. इन्द्र, तुम बुलाये जाकर दो, चार, छः, आठ अथवा दस हरि नामक घोड़ों के द्वारा सोमपान के लिए आओ। शोभन धनवाले इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिए प्रस्तुत हुआ है। तुम उसे नष्ठ नहीं करना।

५. इन्द्र, तुम उत्तम गतिवाले बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ अथवा सत्तर घोड़ों के द्वारा हमारे सामने सोमपान के लिए आओ।

६. इन्द्र, अस्सी, नब्बे अथवा सौ अश्वों के द्वारा ढोये जाकर हमारे सामने आओ; क्योंकि इन्द्र तुम्हारे लिए तुम्हारे आनन्द के लिए पात्र में सोम रखा हुआ है।

७. इन्द्र, मेरी स्तुति के सामने आओ। जगद्व्यापी दोनों अश्वों को रथ के अग्रभाग में संयोजित करो। बहु-संख्यक यजमान तुम्हें बुलाते हैं। शूर, तुम इस यज्ञ में हृष्ट होओ।

८. इन्द्र के साथ मेरी मैत्री वियुक्त न हो। इन्द्र की यह दक्षिणा हमें अभिमत फल प्रदान करे। हम इन्द्र के प्रशंसनीय और आपद् को हटानेवाले दोनों हाथों के पास अवस्थिति करते हैं। प्रत्येक युद्ध में हम विजयी बनें।

९. इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोता के मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर दूसरे को दक्षिणा नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

१९ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सोमाभिषवकर्त्ता मनीषी यजमान का मादक अन्न, आनन्द के लिए, इन्द्र भक्षण करें। इस प्राचीन अन्न में वर्द्धमान होकर इन्द्र इसमें निवास करते हैं। इन्द्र के स्तोत्राभिलाषी ऋत्विक् भी इसमें निवास कर चुके हैं।

२. इस मदकर सोम से आनन्द-निमग्न होकर इन्द्र ने हाथों में वज्र धारण करके जल के आवरक अहि का छेदन किया था। उस समय प्रसन्नतादायक जल-राशि, जैसे पक्षिगण पुष्करिणी के सामने जाते हैं, वैसे ही समुद्र के सामने जाने लगी।

३. अहिहन्ता और पूजनीय इन्द्र ने जल-प्रवाह को समुद्र के सामने प्रेरित किया। उन्होंने समुद्र को उत्पन्न करके गायें प्राप्त कीं तथा तेजोबल से दिवसों को प्रकाशित किया।

४. इन्द्र ने हव्यदाता मनुष्य को यजमान के लिए बहुसंख्यक उत्कृष्ट धन दान किया। वृत्र का विनाश किया। सूर्य की प्राप्ति के लिए स्तोताओं में विरोध उपस्थित होने पर इन्द्र आश्रयदाता हुए थे।

५. इन्द्र की स्तुति करने पर प्रकाशमान इन्द्र सोमाभिषवकर्त्ता मनुष्य एतश के लिए सूर्य को लाये थे; क्योंकि जैसे पिता पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही यज्ञकाल में एतश ने इन्द्र को प्रच्छन्न और अमूल्य सोम प्रदान किया था।

६. अपने सारथि राजर्षि कुत्स के लिए दीप्तियुक्त इन्द्र ने शुष्ण, अशुष और कुयव को वशीभूत किया था और दिवोदास के लिए शम्बर के निन्नानबे नगरों को भग्न किया था।

७. इन्द्र, अन्न की अभिलाषा से हम तुम्हें बलवान् करके तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हें प्राप्त करके हम सप्तपदी सख्यता का लाभ करें। देवशून्य पीयु के विरोध में तुम वज्र फेंको।

८. बलिष्ठ इन्द्र, जैसे गमनाभिलाषी पथिक मार्ग साफ़ करता है, वैसे ही गृत्समदगण तुम्हारे लिए मनोरम स्तुति की रचना करते हैं। तुम सर्वापेक्षा नूतन हो। तुम्हारे स्तोत्राभिलाषी गृत्समदगण अन्न, बल, गृह और सुख प्राप्त करें।

९. इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोता के सारे मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें दो। भजनीय तुम हो। हमें छोड़-

कर अन्य किसी को नहीं देना। हम पुत्र और पौत्र से युक्त होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

२० सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, जिस प्रकार अन्नाभिलाषी व्यक्ति रथ तैयार करता है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं। तुम हमें अच्छी तरह जानते हो। हम स्तुति द्वारा तुम्हें दीप्यमान करते हैं। हम तुम्हारे जैसे पुरुष से सुख माँगते हैं।

२. इन्द्र, तुम हमारा पालन करते हुए हमारी रक्षा करो। जो तुम्हें चाहते हैं, उनकी, तुम शत्रुओं से, रक्षा करते हो। तुम हव्यदाता यजमान के ईश्वर और उसके शत्रु को दूर करनेवाले हो। हव्य-द्वारा जो तुम्हारी सेवा करता है, उसके लिए तुम यह सब कर्म करते हो।

३. हम यज्ञ-कार्य करते हैं। तरुण वयस्क, आह्वान-योग्य, मित्र-तुल्य और सुखदाता इन्द्र हमारी रक्षा करें। जो स्तोत्र का उच्चारण करता है, क्रिया का समाधान करता है, हव्य का पाक करता है और स्तुति करता है, उसे आश्रय देकर इन्द्र कर्म के पार ले जाते हैं।

४. मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ, उन्हीं की प्रशंसा करता हूँ। उनके स्तोता पहले वर्द्धित हुए थे और उन्होंने शत्रुओं का विनाश किया था। इन्द्र के निकट प्रार्थना करने पर इन्द्र स्तोत्राभिलाषी नये यजमान की धनेच्छा को पूर्ण करते हैं।

५. अंगिरा लोगों के मंत्रों-द्वारा प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें गायें लाने का मार्ग दिखा दिया था और उनकी स्तुति भी पूर्ण की थी। स्तोताओं की स्तुति करने पर इन्द्र ने, सूर्य के द्वारा उषा का अपहरण करके, अश्न के प्राचीन नगरों को विनष्ट किया था।

६. द्युतिमान्, कीर्त्तिमान् और अतीव दर्शनीय इन्द्र, मनुष्य के लिए सदा तैयार रहते हैं। शत्रुहन्ता और बलवान् इन्द्र संसार के अनिष्ट-कर्त्ता दास का प्रिय मस्तक नीचे फेंकते हैं।

७. वृत्रहन्ता और पुरनाशन इन्द्र ने कृष्णजन्मा दाससेना का विनाश किया है। मनु के लिए पृथिवी और जल की सृष्टि की है। वह यजमान का उच्चाभिलाष पूरण करें।

८. स्तोताओं ने जल-प्राप्ति के लिए उन इन्द्र के लिए सदा बल-वर्द्धक अन्न प्रदान किया है। जिस समय इन्द्र के हाथ में वज्र दिया गया, उस समय उन्होंने उसके द्वारा दस्युओं का हनन करके उनकी लौहमयी पुरी को ध्वस्त किया था।

९. इन्द्र, तुम्हारी धनवती दक्षिणा स्तोता के सारे मनोरथ पूर्ण करती है। उसी दक्षिणा को हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें अतिक्रम करके अन्य किसी को नहीं देना। पुत्र और पौत्र से युक्त होकर हम इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

२१ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. धनजयी, स्वर्गजयी, सदाजयी, मनुष्यजयी, उर्वरा भूमिजयी, अश्वजयी, गोजयी, जलजयी—अतएव सर्वजयी और यजनीय इन्द्र को लक्ष्य करके वांछनीय सोम ले आओ।

२. सबके पराजय-कर्त्ता, विमर्दक, भोक्ता, अजेय, सर्वसह, पूर्ण-ग्रीव, सर्वविधाता, सर्ववोढ़ा, दूसरों के लिए दुर्द्धर्ष और सर्वदा जयशील इन्द्र को लक्ष्य करके नमः शब्द का उच्चारण करते हुए स्तुति करो।

३. बहुतों के पराजयकर्त्ता, लोगों के भजनीय, बलवानों के विजेता, शत्रुनिवारक, योद्धा, हर्षकर-सोम-सिक्त, शत्रुहिंसक, शत्रुओं के अभिभव-कर्त्ता और प्रजापालक इन्द्र के उत्कृष्ट वीर-कर्म की सब स्तुति करते हैं।

४. अतुलदान-सम्पन्न, अभीष्टवर्षी, हिंसकों के हन्ता, गंभीर, दर्शनीय, कर्म में अपराजेय, समृद्ध लोगों के उत्साहदाता, शत्रुओं के कर्त्तनकारी, वृढ़ाङ्ग, जगद्व्यापी और सुन्दर-यज्ञ-विशिष्ट इन्द्र ने उषा से सूर्य को उत्पन्न किया है।

५. इन्द्र के स्तोता, इन्द्राभिलाषी और मनीषी अङ्गिरा लोगों ने यज्ञ-द्वारा जल-प्रेरक इन्द्र के पास चुराई हुई गायों का मार्ग जाना। अनन्तर रक्षा के अभिलाषी इन्द्र के स्तोता अङ्गिरा लोगों ने स्तोत्र और पूजा के द्वारा गोधन प्राप्त किया ।

६. इन्द्र, हमें उत्तम धन दो। हमें निपुणता की प्रसिद्धि दो। हमें सौभाग्य दो। हमारा धन बढ़ा दो। हमारे शरीर की रक्षा करो। बातों में मीठापन दो। दिन को सुदिन करो।

२२ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द अनुष्टुप् अत्यष्टि और शक्वरी)

१. पूजनीय, बहुबलशाली और तृप्तिकर इन्द्र ने जैसी पहले इच्छा की थी, वैसे ही त्रिकद्रु को यव मिलाया। अभिषुत सोम विष्णु के साथ पान करें। महान् सोम ने तेजस्वी इन्द्र को महान् कार्य की सिद्धि के लिए प्रसन्न किया था। सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्र को व्याप्त करे।

२. दीप्तिमान इन्द्र ने अपने बल से युद्ध-द्वारा क्रिवि को जीता था। अपने तेज से इन्द्र ने द्यावा-पृथिवी को चारों ओर से पूर्ण किया था। वे सोम के बल से बहुत बढ़े हैं। इन्द्र ने एक भाग अपने पेट में धारण करके अन्य भाग को देवों को प्रदान किया। सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और द्योतमान इन्द्र को व्याप्त करे।

३. इन्द्र, तुम यज्ञ के साथ सबल उत्पन्न हुए हो। तुम सब ले जाने की इच्छा करते हो। तुमने पराक्रम के साथ बढ़कर हिंसकों को जीता है। तुम सत्य और असत् के विचारक हो। तुम स्तोता को कर्मसाधक

और वाञ्छनीय धन दो। सत्य और द्योतमान सोम सत्य और प्रकाश-मान इन्द्र को व्याप्त करे।

४. इन्द्र, तुम सबको नचानेवाले हो। तुमने जो पूर्वकाल में मनुष्यों के हितकर कर्म को किया था, वह द्युलोक में श्लाघनीय हुआ है। अपने पराक्रम से तुमने देव (वृत्र) की प्राण-हिंसा करके उसके द्वारा जल को बहा दिया था। इन्द्र ने अपने बल से वृत्र या अदेव को परास्त किया। शतक्रतु बल और अन्न जानें।

२३ सूक्त

(३ अनुवाक। देवता ब्रह्मणस्पति। छन्द त्रिष्टुप् और जगती)

१. हे ब्रह्मणस्पति, तुम देवों में गणपति और कवियों में कवि हो। तुम्हारा अन्न सर्वोच्च और उपमान-भूत है। तुम प्रशंसनीय लोगों में राजा और मंत्रों के स्वामी हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारी स्तुति सुनकर आश्रय प्रदान करने के लिए यज्ञगृह में बैठो।

२. असुरहन्ता और प्रकृष्ट ज्ञानी बृहस्पति, देवों ने तुम्हारा यज्ञीय भाग प्राप्त किया है। जैसे ज्योति-द्वारा पूजनीय सूर्य किरण उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब मंत्र उत्पन्न करो।

३. बृहस्पति, चारों तरफ़ से निन्दकों और अन्धकारों को दूर करके, तुम ज्योतिर्मान् यज्ञ-प्रापक, भयानक, शत्रुहिंसक, राक्षसनाशक, मेघ-भेदक और स्वर्गप्रदायक रथ में चढ़े हो।

४. बृहस्पति, जो तुम्हें हव्य देता है, उसे तुम सन्मार्ग में ले जाते हो। उसे बचाते हो। उसे पाप नहीं लगता। तुम्हारा ऐसा माहात्म्य है कि तुम मंत्र-द्वेषियों के सन्तापक और क्रोधी के हिंसक हो।

५. सुरक्षक ब्रह्मणस्पति, जिसकी तुम रक्षा करते हो उसे कोई दुःख कष्ट नहीं दे सकता, पाप उसे कष्ट नहीं दे सकता। शत्रु लोग उसे किसी तरह मार नहीं सकते, ठग उसे सता नहीं सकते। उसके लिए तुम सारे हिंसकों को दूर कर दो।

६. बृहस्पति, तुम हमारे रक्षक, सन्मार्गदाता और विलक्षण हो। तुम्हारे यज्ञ के लिए स्तोत्र-द्वारा हम स्तुति करते हैं। जो हमारे प्रति कुटिल आचरण करता है, उसकी दुर्बुद्धि वेगवती होकर उसे शीघ्र विनष्ट करे।

७. बृहस्पति, जो गर्वोन्मत्त और सर्वग्रासी व्यक्ति हमारे सामने आकर हमारी हिंसा करता है, उसे सन्मार्ग से हटा दो। और यज्ञ के लिए हमारा पथ सुगम कर दो।

८. बृहस्पति, तुम सबको उपद्रव से बचाओ। तुम हमारे पौत्र आदि का पालन करो। हमारे लिए मीठे वचन बोलो और हमारे प्रति प्रसन्न होओ। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम देव-निन्दकों का विनाश करो। दुर्बुद्धि लोग उत्कृष्ट सुख न पावें।

९. ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे द्वारा वर्द्धित होने पर मनुष्यों के पास से हम स्पृहणीय धन प्राप्त करें। दूर या पास हमारे जो शत्रु हमें पराजित करते हैं, उन यज्ञहीन शत्रुओं को विनष्ट करो।

१०. बृहस्पति, तुम मनोरथ के पूरयिता और पवित्र हो। तुम्हारी सहायता पाकर उत्कृष्ट अन्न प्राप्त करेंगे। जो दुष्ट हमें पराजित करना चाहता है, वह हमारा अधिपति न हो। हम उत्कृष्ट स्तुति-द्वारा पुण्यवान् होकर उन्नति करें।

११. ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे दान की उपमा नहीं है। तुम अभीष्ट-वर्षी हो। युद्ध में जाकर तुम शत्रुओं को सन्ताप देते और उन्हें विनष्ट करते हो। तुम्हारा पराक्रम सत्य है। तुम ऋण का परिशोध करते हो। तुम उग्र हो और मदोन्मत्त व्यक्तियों का दमन करते हो।

१२. जो व्यक्ति देवशून्य मन से हमारी हिंसा करता है और जो उग्र आत्माभिमानी हमारा वध करने की इच्छा करता है, हे बृहस्पति, उसका आयुध हमें न छू सके। हम वैसे बलवान् और दुष्ट शत्रु का क्रोध नाश करने में समर्थ हों।

१३. युद्ध-काल में बृहस्पति आह्वान-योग्य और नमस्कार-पूर्वक उपासना-योग्य हैं। वे युद्ध में जाते हैं। सब प्रकार का धन देते हैं। सबके स्वामी बृहस्पति विजिगीषावाली सारी हिंसक सेनाओं को रथ की तरह, निहत और विध्वस्त करते हैं।

१४. बृहस्पति, अतीव तीक्ष्ण और सन्तापक हेति आयुध से राक्षसों को सन्तप्त करो। इन्हीं राक्षसों ने, तुम्हारे पराक्रम के प्रभूत होने पर भी, तुम्हारी निन्दा की थी। पूर्वकाल में तुम्हारा जो प्रशंसनीय वीर्य था, इस समय उसका आविष्कार करो और उसके द्वारा निन्दकों का विनाश करो।

१५. यज्ञजात बृहस्पति, जिस धन की आर्य लोग पूजा करते हैं, जो दीप्ति और यज्ञवाला धन लोगों में शोभा पाता है, जो धन अपने तेज से दीप्तिवाला है, वही विचित्र धन या ब्रह्मचर्य तेज हमें दो।

१६. बृहस्पति, जो चोर द्रोह करने में प्रसन्न होते हैं, जो शत्रु हैं, जो दूसरे का धन चाहते हैं, जो अपने मन से सर्वांशतः देवों का बहिष्कार करने की इच्छा करते हैं और जो राक्षसनाशक साम-स्तुति नहीं जानते, उनके हाथ में हमें नहीं देना।

१७. बृहस्पति, त्वष्टा ने तुम्हें सर्वश्रेष्ठ उत्पन्न किया है; इसलिए तुम सारे सामों के उच्चारण-कर्त्ता हो। यज्ञ आरम्भ करने पर ब्रह्मणस्पति उसका सारा ऋण स्वीकार करते और ऋण का परिशोध करते हैं। वे द्रोहकारी का विनाश करते हैं।

१८. अङ्गिरोवंशीय बृहस्पति, पर्वतों ने गायों को छिपाया था। तुम्हारी सम्पद् के लिए जिस समय वह उद्घाटित हुआ और तुमने गायों को बाहर किया, उस समय इन्द्र को सहायक पाकर तुमने वृत्र-द्वारा आक्रान्त जलाधारभूत जल-राशि को नीचे किया था।

१९. ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसार के नियामक हो। इस सूक्त को जानो। हमारी सन्ततियों को प्रसन्न करो। देवता लोग जिसकी रक्षा

करते हैं, वह भली भाँति कल्याणवाहक है। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

षष्ठ अध्याय समाप्त ।

२४ सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता ब्रह्मणस्पति। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. ब्रह्मणस्पति, तुम सारे संसार के स्वामी हो। हमारे द्वारा भली भाँति की गई स्तुति को ग्रहण करो। हम तुम्हारी, इस नवीन और बृहत् स्तुति के द्वारा, सेवा करते हैं। हमें अभिमत फल प्रदान करो; क्योंकि, बृहस्पति, हम तुम्हारे बन्धु हैं। हमारा स्तोता तुम्हारी स्तुति करता है।

२. बृहस्पति, अपनी सामर्थ्य से, तुमने तिरस्करणीयों का तिरस्कार किया था, क्रोध-परवश होकर शम्बर को विदीर्ण किया था, निश्चल जल को चालित किया था और गोधनपूर्ण पर्वत में प्रवेश किया था।

३. देव-श्रेष्ठ देव बृहस्पति के कार्य से सुदृढ़ पर्वत शिथिल हुआ था और स्थिर वृक्ष भग्न हुआ था। उन्होंने गायों का उद्धार किया था। मंत्र-द्वारा बलासुर को भिन्न किया था। अन्धकार को अदृश्य किया था। आदित्य को प्रकट किया था।

४. बृहस्पति ने पत्थर की तरह दृढ़ मुखवाले, मधुर जल से पूर्ण और निम्न अवनत जिस मेघ का, बल-प्रयोग द्वारा, वध किया था, उसका आदित्य-किरणों ने जलपान किया था और उन्होंने ही जलधारामय वृष्टि का सिञ्चन किया था।

५. ऋत्विको, तुम्हारे ही लिए बृहस्पति के सनातन और विचित्र प्रज्ञान ने महीने-महीने और साल-साल होनेवाली वर्षा का द्वार

उद्घाटित किया था। बृहस्पति ने ऐसे प्रज्ञानों को मंत्र-विषयक किया था। चेष्टा करके द्यावा-पृथिवी परस्पर सुख बढ़ाती हैं।

६. विज्ञ अङ्गिरा लोगों ने, चारों ओर खोजते हुए, पणियों के दुर्ग में छिपाये हुए परमधन को प्राप्त किया था। माया का दर्शन करके वे जिस स्थान से गये थे, फिर वहीं गये।

७. सत्यवादी और सर्वज्ञाता अङ्गिरा लोग माया का दर्शन करके पुनः प्रधान मार्ग से उसी ओर गये। उन्होंने हाथों से जलाये अग्नि को पर्वत पर फेंका। पहले वे ध्वंसक अग्नि वहाँ नहीं थे।

८. बृहस्पति बाण-क्षेपक और सत्यरूप ज्यावाले हैं। वे जो चाहते हैं, धनुष के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। जिस बाण को वे फेंकते हैं, वह कार्य-साधन में कुशल है। वे बाण दर्शनार्थ उत्पन्न हुए हैं। कर्ण ही उनका उत्पत्ति-स्थान है।

९. ब्रह्मणस्पति पुरोहित हैं। वे सारे पदार्थों को पृथक् और एकत्र करते हैं। सब उनकी स्तुति करते हैं। वे युद्ध में प्रकट होते हैं। सर्वदर्शी बृहस्पति जिस समय अन्न और धन धारण करते हैं, उस समय अनायास सूर्य उगते हैं।

१०. वृष्टिदाता बृहस्पति का धन चारों ओर व्याप्त, प्रापणीय, प्रभूत और उत्तम है। कमनीय और अन्नवान् बृहस्पति ने यह सारा धन दान किया है। दोनों प्रकार के मनुष्य (यजमान और स्तोता) ध्यानावस्थित चित्त से इस धन का उपभोग करते हैं।

११. चारों ओर व्याप्त और स्तवनीय ब्रह्मणस्पति अतीव और महान् बली, दोनों प्रकार के स्तोताओं की, अपने शक्ति से, रक्षा करते हैं। दानादि गुणवाले बृहस्पति देवों के प्रतिनिधि रूप से सर्वत्र अत्यन्त विख्यात हैं। इसी लिए वे सारे प्राणियों के स्वामी भी हुए हैं।

१२. इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, तुम धनवान् हो। सारा सत्य तुम्हारा ही है। तुम्हारे व्रत को जल नहीं मार सकता जैसे रथ में जुते हुए

घोड़े खाद्य के सामने दौड़ते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे हव्य के लिए दौड़ो।

१३. ब्रह्मणस्पति के वेगवान् घोड़े हमारा स्तोत्र सुनते हैं। मेधावी और सभ्य अध्वर्यु, मनोरम स्तोत्र-द्वारा, हव्य प्रदान करते हैं। पराक्रमियों के दमनकारी ब्रह्मणस्पति हमारे पास इच्छानुसार ऋण स्वीकार करते हैं। अन्नवान् ब्रह्मणस्पति युद्ध में हव्य ग्रहण करें।

१४. जिस समय ब्रह्मणस्पति किसी महान् कर्म में प्रवृत्त होते हैं, उस समय उनका मंत्र उनकी अभिलाषा के अनुसार सफल होता है। जिन्होंने गायों को बाहर किया है, उन्होंने द्युलोक के लिए उनका भाग किया है। महान् स्रोत की तरह गायें, अपने बल से, अलग-अलग गई हैं।

१५. ब्रह्मणस्पति, हम सब समय उत्कृष्ट नियम और अन्नवाले धन के अधिपति हों। तुम हमारे वीर पुत्र को पौत्र दो; क्योंकि तुम सबके ईश्वर हो। हमारी स्तुति और अन्न को चाहो।

१६. ब्रह्मणपति, तुम इस संसार के नियामक हो। तुम इस सूक्त को जानो। तुम हमारी सन्ततियों को प्रसन्न करो। देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह कल्याणभागी है। पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

२५ सूक्त

(देवता ब्रह्मणस्पति। छन्द जगती)

१. अग्नि को प्रज्वलित करके यजमान शत्रुओं की हिंसा कर सके। स्तोत्र पढ़ते और हव्य दान करते हुए यजमान समृद्धि प्राप्त कर सके। जिस यजमान को सखा कहकर ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, वह पुत्र के पुत्र से भी अधिक जीवित रहता है।

२. यजमान वीर पुत्रों के द्वारा शत्रुओं के वीर पुत्रों को मारे। वह गोधन के लिए विख्यात हुआ है और स्वयं सब समझ सकता है।

बृहस्पति जिस यजमान को सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका पुत्र और पौत्र भी समृद्धि प्राप्त करता है।

३. जैसे नदी तट को तोड़ती है, साँड़ जैसे बैलों को पराजित करता है, वैसे ही बृहस्पति की सेवा करनेवाला यजमान अपनी शक्ति से शत्रुओं को पराभूत करता है। जैसे अग्नि-शिखा का निवारण नहीं किया जाता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति जिस यजमान को सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका भी निवारण नहीं किया जा सकता।

४. जिस यजमान को बृहस्पति सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसके पास, अप्रतिहत निर्झरिणी होकर, स्वर्गीय जल आता है। परिचर्या-कारियों में भी वही सबसे पहले गोधन प्राप्त करता है। उसका बल अनिवार्य है। वह बल-द्वारा शत्रुओं का विनाश करता है।

५. जिस यजमान को सखा रूप से ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, उसकी ओर सारी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वह सदा नानाविध सुख का उपभोग करता है। वह सौभाग्यशाली है। वह देवों-द्वारा प्रदत्त सुख तथा समृद्धि पाता है।

२६ सूक्त

(देवता ब्रह्मणस्पति। छन्द जगती।)

१. ब्रह्मणस्पति का सरल स्तोता शत्रुओं का विनाश कर डाले। देवाकांक्षी अदेवाकांक्षी को पराभूत कर डाले। जो बृहस्पति को अच्छी तरह तृप्त करता है, वह युद्ध में दुर्धर्ष शत्रुओं का विनाश करता है। यज्ञपरायण अयाज्ञिक के धन का उपभोग कर सके।

२. वीर, तुम ब्रह्मणस्पति की स्तुति करो। अभिमानी शत्रुओं के विरुद्ध यात्रा करो। शत्रुओं के साथ संग्राम में मन को दृढ़ करो। ब्रह्मणस्पति के लिए हव्य तैयार करो। वैसा करने पर तुम उत्तम धन पाओगे। हम ब्रह्मणस्पति के पास से रक्षा चाहते हैं।

३. जो यजमान श्रद्धावान् होकर देवों के पिता ब्रह्मणस्पति की हव्य-द्वारा परिचर्या करता है, वह अपने मनुष्य और आत्मीय, अपने पुत्र और अन्यान्य परिचारकों के साथ अन्न और धन प्राप्त करता है।

४. जो ब्रह्मणस्पति की परिचर्या घृत-युक्त हव्य से करता है, उसे ब्रह्मणस्पति प्राचीन सरल मार्ग से ले जाते हैं। उसे वे पाप, शत्रु और दरिद्रता से बचाते हैं। आश्चर्यरूप ब्रह्मणस्पति उसका महान् उपकार करते हैं।

२७ सूक्त

(देवता आदित्यगण। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मैं जुहू-द्वारा, सर्वदा शोभन आदित्यों को लक्ष्य कर घृत-स्राविणी स्तुति अर्पण करता हूँ। मित्र, अर्यमा, भग, बहुव्यापक वरुण, दक्ष और अंश मेरी स्तुति सुनें।

२. दीप्तिमान्, वृष्टिपूत, अनुग्रहपरायण, अनिन्दनीय, हिंसा-रहित और एकविध कर्मकर्त्ता मित्र, अर्यमा और वरुणनामक आदित्य आज मेरे इस स्तोत्र का उपभोग करें।

३. महान्, गंभीर, दुर्दमनीय, दमनकारी और बहुदृष्टिवाले आदित्य-गण प्राणियों का अन्तःकरण देखते हैं। दूर-देश-स्थित पदार्थ भी आदित्यों के पास निकट है।

४. आदित्यगण स्थावर और जंगम को अवस्थापित करते और सारे भुवनों की रक्षा करते हैं। वे बहुयज्ञवाले और असूर्य अथवा प्राण के हेतुभूत जल की रक्षा करते हैं। वे सत्यवाले और ऋण-परिशोधक हैं।

५. आदित्यगण, हम तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें। भय आने पर तुम्हारा आश्रय सुख प्रदान करता है। हे अर्यमा, मित्र और वरुण, तुम्हारा अनुसरण करके मैं गड्ढों की तरह पापों को दूर कर दूँ।

६. अर्यमा, मित्र और वरुण, तुम्हारा मार्ग सुगम, कण्टक-रहित

और सुन्दर है। आदित्यगण, उसी मार्ग से तुम हमें ले जाओ, मीठे वचन बोलो और अविनाशी सुख दो।

७. राजमाता अदिति शत्रुओं को लाँघकर हमें दूसरे देश में ले जायें। अर्यमा हमें सुगम मार्ग में ले जायें। हम बहुवीर-युक्त और अहिंसक होकर मित्र और वरुण का सुख प्राप्त करें।

८. ये पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा मर्त्य, जन और सत्य लोकों को धारण करते हैं। इनके यज्ञ में तीन व्रत (तीन सवन) हैं। आदित्यगण, यज्ञ द्वारा तुम्हारी महिमा श्रेष्ठ हुई है। अर्यमा, मित्र और वरुण तुम्हारा वह महत्त्व सुन्दर है।

९. स्वर्णालङ्कार-भूषित, दीप्तिमान्, वृष्टिपूत, निद्रारहित, अनिमेषनयन, हिंसारहित और सबके स्तुतियोग्य आदित्यगण सरल-स्वभाव संसार के लिए तीन प्रकार (अग्नि, वायु और सूर्य) के स्वर्गीय तेज धारण करते हैं।

१०. असुर वरुण, तुम देवता हो या मनुष्य, सबके राजा हो। हमें सौ वर्ष देखने दो, ताकि हम पूर्वजों की उपभुक्त आयु को प्राप्त कर सकें।

११. वास-प्रदाता आदित्यो, हम न तो दाहिने जानते, न बायें जानते, न सामने जानते और न पीछे जानते हैं। मैं अपरिपक्व-बुद्धि और अतीव कातर हूँ। मुझे तुम ले जाओगे, तो मैं निर्भय ज्योति को प्राप्त करूँगा।

१२. यज्ञ के नायक और राजा आदित्यों को जो हव्य प्रदान करता है, उनका नित्य अनुग्रह जिसकी पुष्टि करता है, वही व्यक्ति धनवान्, विख्यात, वदान्य और प्रशंसित होकर तथा रथ पर चढ़कर यज्ञस्थल में जाता है।

१३. वह दीप्तिमान्, हिंसा-रहित, प्रचुर-अन्नशाली और सुपुत्रवान् होकर उत्तम शस्यवाले जल के पास निवास करता है। जो आदित्यों

का अनुसरण करता है, उसका दूर या निकट का शत्रु वध नहीं कर सकता।

१४. अदिति, मित्र, वरुण, हम यदि तुम्हारे पास कोई अपराध करें, तो कृपा कर उसका मार्जन कर डालो। इन्द्र, हम विस्तीर्ण और निर्भय ज्योति प्राप्त कर सकें। अन्धकारमयी रजनी हमें छिपा न सके।

१५. जो आदित्यों का अनुसरण करता है, उसकी द्यावा-पृथिवी एकत्र होकर पुष्टि करती हैं। वह सौभाग्यशाली है और स्वर्गीय जल प्राप्त करके समृद्धि पाता है। युद्धकाल में वह शत्रुओं को पराजित करके अपने और शत्रु के निवास-स्थान पर जाता है। संसार का आधा भाग ही उसका मंगल-जनक है।

१६. पूजनीय आदित्यगण, द्रोहकारियों के लिए तुम्हारी जो माया बनाई गई है और जो पाश शत्रुओं के लिए प्रथित हुआ है, हम उनको अश्वारोही पुरुष की तरह अनायास लाँघ जायें। हम हिंसाशून्य होकर परम सुख में निवास करें।

१७. वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्ति के पास जाति की दरिद्रता की बात न कहनी पड़े। राजन्, मुझे आवश्यक धन का अभाव न हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

२८ सूक्त

(देवता वरुण। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. कवि और स्वयं सुशोभित वरुण के लिए यह हव्य है। वे अपनी महिमा के द्वारा सारे भूतों को पराजित करते हैं। प्रकाशमान स्वामी वरुण यजमान को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। मैं उनकी स्तुति की प्रार्थना करता हूँ।

२. वरुण, हम भली भाँति तुम्हारी स्तुति, ध्यान और परिचर्या करके सौभाग्यशाली हो सकें। किरण-युक्ता उषा के आने पर अग्नि की तरह हम प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करके प्रकाशमान हों।

३. विश्व-नायक वरुण, तुम कितने ही वीरोंवाले हो, बहुत लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम तुम्हारे घर में निवास कर सकें। हिंसा-शून्य और दीप्तिमान् अदिति के पुत्रो, तुम हमारी मैत्री के लिए हमारे अपराध को मिटा दो।

४. विश्व-धारक और अदिति वरुण ने अच्छी तरह जल की सृष्टि की है। वरुण की महिमा से नदियाँ प्रवाहित होती हैं। ये कभी विश्राम नहीं करतीं, लौटती भी नहीं। ये पक्षियों की तरह वेग के साथ पृथिवी पर जाती हैं।

५. वरुण, मेरे पाप ने मुझे रस्सी की तरह बाँध रखा है; मुझे छुड़ाओ। हम तुम्हारी जलपूर्ण नदी प्राप्त करें। बुनने के समय हमारा तन्तु कभी टूटने न पावे। असमय में यज्ञ की मात्रा कभी विफल न हो।

६. वरुण, मेरे पास से भय को दूर कर दो। हे सम्राट् और सत्य-वान् मुझ पर कृपा करो। जैसे रस्सी से बछड़े को छुड़ाया जाता है, वैसे ही पाप से मुझे बचाओ; क्योंकि तुमसे अलग होकर कोई एक पल के लिए भी आधिपत्य नहीं कर सकता।

७. असुर वरुण, तुम्हारे यज्ञ में अपराध करनेवालों को जो आयुध मारते हैं, वे हमें न मारें। हम प्रकाश से निर्वासित न हों। हमारे जीवन के लिए हिंसक को हटाओ।

८. हे बहुस्थानोत्पन्न वरुण, हम भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् समयों में तुम्हारे लिए नमस्कार करेंगे; क्योंकि हे अहिंसनीय वरुण, पर्वत की तरह तुममें सारे अच्युत कर्म आश्रित हैं।

९. वरुण, पूर्वजों ने जो ऋण किया था, उसका परिशोध करो। इस समय में जो ऋण करता हूँ, उसका भी परिशोध करो; ताकि

वरुण, मुझे दूसरे का उपार्जित धन भोग करने की आवश्यकता न हो। ऋण के कारण ऋणकर्त्ता के लिए मानो अनेक उषाओं का उदय ही नहीं हुआ। वरुण, हम उन सारी उषाओं में जीवित रहें, ऐसी आज्ञा करो।

१०. राजा वरुण, मैं भीरु हूँ। मुझसे जो बन्धु लोग स्वप्न की भयंकर बातें कहते हैं, उनसे मुझे बचाओ। तस्कर या वृक मुझे मारना चाहता है। उससे मुझे बचाओ।

११. वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्ति के पास जाति की दरिद्रता की बात न कहनी पड़े। राजन्, मुझे आवश्यक धन का अभाव न हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

२९ सूक्त

(देवता विश्वेदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे व्रतकारी, शीघ्र गमनशील और सबके प्रार्थनीय आदित्यो, गुप्तप्रसविनी स्त्री के गर्भ की तरह मेरा अपराध दूर देश में फेंक दो। मित्र और वरुण, तुम्हारे मंगल-कार्य को मैं जानकर, रक्षा के लिए, तुम्हें बुलाता हूँ। तुम हमारी स्तुति सुनो।

२. देवगण, तुम्हीं अनुग्राहक और बल हो। तुम द्वेषियों को हमारे पास से अलग करो। शत्रु-हिंसक, शत्रुओं को पराजित करो। वर्त्तमान और भविष्यत् में हमें सुखी करो।

३. देवगण, अब और पीछे तुम्हारा कौन कार्य हम सिद्ध कर सकेंगे? वसु और सनातन प्राप्तव्य कार्य-द्वारा हम तुम्हारा कौन कार्य सिद्ध कर सकेंगे? मित्रावरुण, अदिति, इन्द्र और मरुद्गण, तुम हमारा मंगल करो।

४. देवगण, तुम्हीं हमारे बन्धु हो। हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। कृपा करो। हमारे यज्ञ में आने में तुम्हारा रथ मन्द-गति न हो। तुम्हारे समान बन्धु पाकर हम श्रान्त न हों।

५. देवगण, तुम लोगों के बीच एक मनुष्य होकर मैंने अनेक विध पाप नष्ट कर डाले। जैसे पिता कुमार्गगामी पुत्र को उपदेश देता है, वैसे तुमने मुझे उपदेश दिया है। देवो, सारे पाश और पाप दूर हों। जैसे व्याध बच्चे के सामने पक्षी को मारता है, वैसे ही मुझे नहीं मारना।

६. पूजनीय देवो, आज हमारे सामने आओ। मैं डरकर तुम्हारे हृदयावस्थित आश्रय को प्राप्त करूँ। देवो, वृक के हाथ से मारे जाने से हमें बचाओ। पूजनीयो, जो हमें आपद् में फेंक देता है, उसके हाथ से हमें बचाओ।

७. वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्ति से अपनी जाति की दरिद्रता की बात न कहनी पड़े। राजन्, मुझे नियमित या आवश्यक धन का अभाव न हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

३० सूक्त

(देवता १—५ तक के इन्द्र, ६ के सोम और इन्द्र, ७ के इन्द्र, ८ के सरस्वती और इन्द्र, ९ के बृहस्पति, १० के इन्द्र और ११ मंत्र के मरुद्गण। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. वृष्टिकारी, द्युतिमान्, सबके प्रेरक और वृत्र-नाशक इन्द्र के यज्ञ के लिए कभी जल नहीं रुकता, उसका स्रोत प्रतिदिन चला करता है। कभी उसकी पहली सृष्टि हुई थी?

२. जिस व्यक्ति ने वृत्र को अन्न प्रदान किया था, उसकी बात माता अदिति ने इन्द्र से कह दी थी। इन्द्र की इच्छा के अनुसार नदियाँ अपना मार्ग बनाती हुई प्रतिदिन समुद्र की ओर जाती हैं।

३. चूँकि अन्तरिक्ष में उठकर वृत्र ने सारे पदार्थों को घेर डाला था; इसलिए इन्द्र ने उसके ऊपर वज्र फेंका। वृष्टि-प्रद मेघ से

आच्छादित होकर वृत्र इन्द्र के सामने दौड़ा था। उसी समय तीक्ष्णायुधधारी इन्द्र ने उसको पराजित किया था।

४, बृहस्पति, वज्र के समान दीप्त अस्त्र से वृक-द्वारा असुर के पुत्रों को छेदो। इन्द्र, जैसे प्राचीन समय में तुमने शक्ति-द्वारा शत्रुओं को जीता था, उसी प्रकार इस समय हमारे शत्रुओं का विनाश करो।

५. इन्द्र, तुम ऊपर रहते हो। स्तोताओं के स्तव करने पर तुमने जिसके द्वारा शत्रु का विनाश किया था, वही पत्थर की तरह कठिन वज्र द्युलोक से निम्नाभिमुख फेंको। जिससे हम लोग यथेष्ट पुत्र, पौत्र और गोधन प्राप्त कर सकें, वैसी ही हमें तुम समृद्धि दो।

६. इन्द्र और सोम, जिसकी तुम हिंसा करते हो, उस द्वेषी को उन्मूलित करो। यजमानों को शत्रुओं के विरुद्ध प्रेरित करो। इन्द्र और सोम, तुम मेरी रक्षा करो। इस भय-स्थान में भय-शून्य स्थान बनाओ।

७. इन्द्र मुझे क्लेश न दें, श्रान्त न करें, आलसी न बनावें। हम कभी यह न कहें कि सोमाभिषव न करो। इन्द्र मेरी अभिलाषा पूर्ण करते, अभीष्ट दान करते, यज्ञ को जानते और गो-समूह लेकर अभिषवकर्त्ता के पास उपस्थित होते हैं।

८. सरस्वती, तुम हमें बचाओ। मरुतों के साथ इकट्ठे होकर दृढ़तापूर्वक शत्रुओं को जीतो। इन्द्र ने शूराभिमानी और स्पर्द्धावान् शण्डिकों के प्रधान (शण्डामर्क) को मारा था।

९. बृहस्पति, जो अन्तर्हित देश में छिपकर हमारा प्राण-नाश करने का अभिलाषी है, उसे खोजकर तीखे हथियार से छेदो। आयुध से हमारे शत्रुओं को जीतो। राजा बृहस्पति, द्रोहकारियों के विरुद्ध प्राण-नाशक वज्र चारों ओर फेंको।

१०. शूर इन्द्र, हमारे शत्रु-हन्ता वीरों के साथ अपने सम्पादनीय वीर-कार्यों को सम्पन्न करो। हमारे शत्रु बहुत दिनों से गर्वपूर्ण हो रहे हैं। उनका विनाश कर उनका धन हमें दो।

११. मरुतो, हम सुख की अभिलाषा से स्तुति और नमस्कार-द्वारा तुम्हारे दैव और प्रादुर्भूत तथा एकत्र बल की स्तुति करते हैं, ताकि उसके द्वारा हम प्रतिदिन वीर अपत्यवाले होकर प्रशंसनीय धन का उपयोग कर सकें।

३१ सूक्त

(देवता विश्वेदेव। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. जिस समय हमारा रथ अन्नाभिलाषी, मदमत्त और वन-निषण्ण पक्षियों की तरह निवास-स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, उस समय हे मित्र और वरुण, तुम लोग आदित्य, रुद्र और वसुओं के साथ मिलकर उसकी रक्षा करते हो।

२. समान प्रीतिवाले देवो, इस समय हमारे रथ की रक्षा करो। वह अन्न खोजने के लिए देश में गया है। इस रथ में जोते हुए घोड़े कदम से मार्ग तय करते और विस्तीर्ण भूमि के उन्नत प्रदेश पर आघात करते हैं।

३. अथवा—सर्वदर्शी इन्द्र मरुतों के पराक्रम से उक्त कर्म सम्पन्न करके, स्वर्गलोक से आते हुए, हिंसा-शून्य आश्रय के द्वारा महाधन और अन्न-प्राप्ति के लिए हमारे रथ के अनुकूल हों।

४. अथवा—संसार के सेवनीय वे त्वष्टा देव, देवपत्नियों के साथ, प्रीतियुक्त होकर हमारे रथ को चलावें। इला, महादीप्तिमान् भग, द्यावा-पृथिवी, बहुधी पूषा और सूर्या के स्वामी दोनों अश्विनी-कुमार हमारा यह रथ चलायें।

५. अथवा—प्रसिद्ध, द्युतिमती, सुभगा, परस्पर-दर्शिनी और जीवों की प्रेरयित्री उषा और रात्रि हमारा रथ चलायें। हे आकाश और पृथिवी, तुम दोनों की, नये स्तोत्र से स्तुति करता हूँ। स्थावर व्रीहि आदि अन्न देता हूँ। ओषधि, सोम और पशु—मेरे तीन प्रकार के अन्न हैं।

६. देवगण, तुम हमारी स्तुति की इच्छा करो। हम तुम्हारी स्तुति करने की इच्छा करते हैं। अन्तरिक्ष-जात अहि देवता (अहि-र्बुध्न्य), सूर्य (अज एकपात्), त्रित, उरुनिवास इन्द्र (ऋभुक्षा) और सविता हमें अन्न प्रदान करें। शीघ्रगामी जल-नप्ता (अग्नि) हमारी स्तुति से प्रसन्न हों।

७. यजनीय विश्वदेवगण, हम तुम्हारी स्तुति करने की इच्छा करते हैं। तुम सर्वापेक्षा स्तुति-योग्य हो। अन्न और बल के अभिलाषी मनुष्यों ने तुम्हारे लिए स्तुति बनाई है। रथ के अश्व की तरह तुम्हारा बल हमारे लिए आये।

३२ सूक्त

(देवता १ के द्यावापृथिवी, २—३ के इन्द्र, ४—५ की राका, ६—७ की सिनीवाली और ८ की छः देवियाँ। छन्द अनुष्टुप् और जगती।)

१. द्यावा-पृथिवी, जो स्तोता यज्ञ और तुम्हें प्रसन्न करने की इच्छा करता है, उसके तुम आश्रयदाता होओ। तुम्हारा अन्न सर्वा-पेक्षा उत्कृष्ट है। सभी द्यावा-पृथिवी की स्तुति करते हैं। अन्नकामी होकर मैं महास्तोत्र-द्वारा तुम्हारा स्तव करूँगा।

२. इन्द्र, शत्रु की गुप्त माया हमें दिन या रात में मारने न पाये। हमें कष्ट-दात्री शत्रु-सेना के वश में नहीं करना। हमारी मैत्री नहीं छुड़ाना। हृदय में हमारे सुख की आकांक्षा करके हमारी मित्रता की स्मृति करना। तुम्हारे पास हम यही कामना करते हैं।

३. इन्द्र, प्रसन्न चित्त से सुखकरी, दुग्धवती, मोटी और मजबूत गाय को ले आना। इन्द्र, तुम्हें सब बुलाते हैं। तुम बहुत जोर चलते हो। तुम द्रुतभाषी हो। मैं दिन-रात तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

४. मैं उत्कृष्ट स्तोत्र-द्वारा आह्वान-योग्य राका वा पूर्णिमा रात्रि देवी को बुलाता हूँ। वे सुभग हैं, हमारा आह्वान सुनें। वे स्वयं

हमारा अभिप्राय जानकर अच्छेद्य सूची के द्वारा हमारे कर्म को बुनें। वे अक्लान्त बहुधनवान् और वीर्यवान् पुत्र प्रदान करें।

५. राका देवी, तुम जिस सुन्दर अनुग्रह से हव्यदाता को धन देती हो, आज प्रसन्न चित्त से उसी अनुग्रह के साथ पधारो। शोभन-भाग्यवती, हज़ारों प्रकार से तुम हमारी पुष्टि करती हो।

६. हे स्थूल-जाता सिनीवाली ! (अमावास्या), तुम देवों की भगिनी हो। प्रदत्त हव्य की सेवा करो। हमें अपत्य दो।

७. सिनीवाली (अमावस्या वा देवपत्नी) सुबाहु, सुन्दर अँगुलियों-वाली, सुप्रसविनी और बहुप्रसवित्री हैं। उन्हीं लोक-रक्षिका देवी को लक्ष्य करके हव्य दो।

८. जो गुङ्गू, कुहू अथवा देवपत्नी हैं, जो सिनीवाली, राका और सरस्वती हैं, उन्हें मैं बुलाता हूँ। मैं आश्रय के लिए इन्द्राणी और सुख के लिए वरुणानी को बुलाता हूँ।

३३ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता रुद्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मरुतों के पिता रुद्र, तुम्हारा दिया हुआ सुख हमारे पास आये। सूर्य-दर्शन से हमें अलग नहीं करना। हमारे वीर पुत्र शत्रुओं को पराजित करें। रुद्र, हम पुत्रों और पौत्रों में अनेक हो जायें।

२. रुद्र, हम तुम्हारी दी हुई सुखकारी ओषधि के द्वारा सौ वर्ष जीवित रहें। हमारे शत्रुओं का विनाश करो, हमारा पाप सर्वांशतः दूर कर दो। सर्वशरीरव्यापी व्याधि को भी दूर करो।

३. रुद्र, ऐश्वर्य में तुम सबसे श्रेष्ठ हो। हे वज्रबाहु, प्रवृद्धों में तुम अतीव प्रवृद्ध हो। हमें पाप के उस पार ले चलो, हमारे पास पाप न आने पाये।

४. अभीष्टवर्षी रुद्र, हम अन्याय्य नमस्कार, अन्याय्य स्तुति अथवा विसदृश देवों के सत्य आह्वान-द्वारा तुम्हें क्रुद्ध न करें। हमारे पुत्रों को ओषधि-द्वारा परिपुष्ट करो। मैंने सुना है, तुम वैद्यों में सर्वश्रेष्ठ हो।

५. जो रुद्रदेव हव्य के साथ आह्वान-द्वारा आहूत होते हैं, उनका, स्तोत्र-द्वारा, मैं क्रोध दूर करूँगा। कोमलोदर, शोभन आह्वानवाले, बभ्रु (पीत) वर्ण और सुनासिक रुद्र हमें न मारें।

६. मैं प्रार्थना करता हूँ कि अभीष्टवर्षी और मरुत्‌वाले रुद्र मुझे दीप्त अन्न-द्वारा तृप्त करें। जैसे धूप का मारा मनुष्य छाया को आश्रित करता है, वैसे ही मैं भी पाप-शून्य होकर रुद्रदत्त सुख प्राप्त करूँगा। मैं रुद्र की परिचर्या करूँगा।

७. रुद्र, तुम्हारा वह सुखदाता हाथ कहाँ है, जिससे तुम दवा तैयार करके सबको सुखी करते हो। अभीष्टवर्षी रुद्र, दैव-पाप के विघातक होकर तुम मुझे शीघ्र क्षमा करो।

८. बभ्रुवर्ण, अभीष्टवर्षी और श्वेत आभावाले रुद्र को लक्ष्य करके अतीव महती स्तुति का हम उच्चारण करते हैं। हे स्तोता, नमस्कार-द्वारा तेजस्वी रुद्र की पूजा करो। हम उनके उज्ज्वल नाम का संकीर्त्तन करते हैं।

९. दृढ़ाङ्ग, बहुरूप, उग्र और बभ्रुवर्ण रुद्र दीप्त और हिरण्मय अलंकार से सुशोभित होते हैं। रुद्र सारे भुवनों के अधिपति और भर्त्ता हैं। उनका बल अलग नहीं होता।

१०. पूजायोग्य रुद्र, तुम धनुर्वाणधारी हो। पूजार्ह, तुम नाना रूपोंवाले हो और तुमने पूजनीय निष्क को धारण किया है। अर्चनार्ह, तुम सारे व्यापक संसार की रक्षा करते हो। तुम्हारी अपेक्षा अधिक बली कोई नहीं है।

११. हे स्तोता, विख्यात रथ पर चढ़े, युवा, पशु की तरह भयंकर और शत्रुओं के विनाशक तथा उग्र रुद्र की स्तुति करो। रुद्र,

स्तुति करने पर तुम हमें सुखी करते हो। तुम्हारी सेना शत्रु का विनाश करे।

१२. जैसे आशीर्वाद देते समय पिता को पुत्र नमस्कार करता है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आने के समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। रुद्र, तुम बहुधनदाता और साधुओं के पालक हो। स्तुति करने पर तुम हमें ओषधि देते हो।

१३. मरुतो, तुम्हारी जो निर्मल ओषधि है, हे अभीष्टवर्षीगण तुम्हारी जो ओषधि अतीव सुखदात्री है, जिस ओषधि को हमारे पिता मनु ने चुना था, वही सुखकर और भयहारक ओषधि हम चाहते हैं।

१४. रुद्र का हेति-आयुध हमें छोड़ दे। दीप्त रुद्र की महती दुर्मति भी हमें छोड़ दे। सेचन-समर्थ रुद्र, धनवान् यजमान के प्रति अपने धनुष की ज्या शिथिल करो। हमारे पुत्रों और पौत्रों को सुखी करो।

१५. अभीष्टवर्षी, बभ्रुवर्ण, दीप्तिमान्, सर्वज्ञ और हमारा आह्वान सुननेवाले रुद्र, हमारे लिए तुम यहाँ ऐसी विवेचना करो कि हमारे प्रति कभी क्रुद्ध न हो, हमें कभी विनष्ट न करो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करेंगे।

३४ सूक्त

(देवता मरुद्गण। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. जलधारा से मरुत् लोग आकाश को छिपा लेते हैं। उनका बल दूसरे को पराजित करता है। वे पशु की तरह भयंकर हैं। वे बल-द्वारा संसार को व्याप्त कर लेते हैं। वे वह्नि की तरह दीप्तिमान् और जल से परिपूर्ण हैं। वे भ्रमणकर्त्ता मेघ को इधर-उधर भेजकर जल को गिराते हैं।

२. सुवर्णहृदय मरुतो, चूँकि सेचन-समर्थ रुद्र ने पृश्नि के निर्मल उदर में तुम्हें उत्पन्न किया है; इसलिए, जैसे आकाश नक्षत्रों से सुशोभित होता है, वैसे ही तुम भी अपने आभरण से सुशोभित होओ।

तुम शत्रु-भक्षक और जल-प्रेरक हो। तुम मेघस्थ विद्युत् की तरह शोभित होओ।

३. युद्ध में तुरंग की तरह मरुद्गण विशाल भुवन को सिक्त करते हैं। वे घोड़े पर चढ़कर शब्दायमान मेघ के कान के पास से होकर द्रुत वेग से जाते हैं। मरुतो, तुम हिरण्य-शिरस्त्राणवाले और समान-क्रोधवाले हो। तुम वृक्ष आदि कम्पित करते हो। तुम पृषती (बिन्दु-चिह्नित) मृग पर चढ़कर अन्न के लिए जाते हो।

४. मरुद्गण मित्र की तरह, हव्ययुक्त यजमान के लिए, सर्वदा समस्त जल ढोते हैं। वे दानशील, पृषती-मृगवाले, अक्षय, अन्नवाले और अकुटिलगामी अश्व की तरह पथिकों के आगे जाते हैं।

५. हे समान-क्रोध और दीप्तिमान् आयुधवाले मरुतो, जैसे हंस अपने निवास-स्थान पर जाता है, वैसे ही तुम भी महाजल स्रोतवाले मेघों के साथ और धेनु-युक्त होकर विघ्न-शून्य मार्ग से, मधुर सोम-रस से उत्पन्न हर्ष-लाभ के लिए आओ।

६. हे समान-क्रोधवाले मरुतो, जैसे तुम स्तोत्र से आते हो, वैसे ही हमारे अभिषुत अन्न के पास आओ। घोड़ी की तरह गाय का अधोदेश पुष्ट करो और यजमान का यज्ञ अन्नवाला करो।

७. मरुतो, तुम हमें अन्न-युक्त पुत्र दो। वह, तुम्हारे आगमन के समय, प्रतिदिन तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करेगा। तुम स्तोताओं को अन्न दो। युद्ध-काल में स्तोता को दानशीलता, युद्ध-कौशल, ज्ञान और अक्षय तथा अतुल बल दो।

८. मरुतों के वक्षःस्थल में दीप्त आभरण है। उनका दान सबके लिए सुखकर है। वे जिस समय रथ में घोड़े जोतते हैं, उसी समय जैसे धेनु बछड़े को दूध देती है वैसे ही वे हव्यदाता यजमान के लिए उसके गृह में यथेष्ट अन्न देते हैं।

९. मरुतो जो मनुष्य वृक की तरह हमसे शत्रुता करता है, हे वसुगण, उस हिंसक के हाथ से हमें बचाओ। उसे ताप-प्रद चक्र-

द्वारा चारों ओर से हटाओ। रुद्रगण, तुम उसके सारे अस्त्रों को दूर फेंककर उसे विनष्ट करो।

१०. मरुतो, जिस समय तुमने पृश्नि के अधोभाग का दोहन किया था, उस समय स्तोता के निन्दक की हत्या की थी और त्रित के शत्रुओं का वध किया था। अहिंसनीय रुद्रपुत्रो, उस समय तुम्हारी विचित्र क्षमता को सबने जाना था।

११. महासुभग मरुतो, तुम सदा यज्ञ-स्थल में जाते हो। यथेष्ट और प्रार्थनीय सोम के तैयार हो जाने पर हम तुम्हें बुलाते हैं। स्तुति-पाठक स्रक् को उठाकर स्वर्ण-वर्ण और सर्व-श्रेष्ठ स्तुति-योग्य मरुद्गण से प्रशंसनीय धन की याचना करते हैं।

१२. स्वर्गगामी अङ्गिरोरूपी मरुतों ने प्रथम यज्ञ का वहन किया था। उषा के आने पर मरुद्गण हमें यज्ञ आदि में प्रवृत्त करें। जैसे उषा अरुणवर्ण किरण-जाल से कृष्णवर्णा रात्रि को हटाती है, वैसे ही मरुद्गण विशाल, दीप्तिमान् और जल-स्रावी ज्योति से अन्धकार को दूर करते हैं।

१३. रुद्रपुत्र मरुद्गण वीणा-विशेष और अरुणवर्ण अलंकार से युक्त होकर जल के निवास-भूत मेघ में वर्द्धित हुए हैं। मरुद्गण सर्वत्र प्रभाववाले बल से जल लाते हुए प्रसन्नता-दायक और मनोहर सौन्दर्य धारण करते हैं।

१४. मरुतों से वरणीय धन की याचना करते हुए अपनी रक्षा के लिए स्तोत्र-द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं। अभीष्ट-सिद्धि के लिए चक्र-द्वारा त्रित उन मुख्य प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान आदि पाँच होताओं (मरुतों) को आवर्तित करते हैं।

१५. मरुतो, तुम जिस आश्रय से आराधक यजमान को पाप से बचाते हो, जिससे स्तोता को शत्रु के हाथ से मुक्त करते हो, मरुतो, तुम्हारा वही आश्रय हमारे सामने आवे।

३५ सूक्त

(देवता अपां नपात्। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मैं अन्न की इच्छा से इस स्तुति का उच्चारण करता हूँ। शब्दकर्त्ता और शीघ्रगन्ता अपां नपात् (जल-पौत्र अग्नि) नाम के देवता हमें प्रचुर अन्न और सुन्दर रूप दें। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। वे स्तुति को पसन्द करते हैं।

२. उनके लिए हम हृदय से सुरचित इस मंत्र का अच्छी तरह उच्चारण करेंगे; वे उसे बार-बार जानें। स्वामी अपां नपात् ने शत्रु-क्षेपणकारी बल से समस्त भुवन को उत्पन्न किया है।

३. कोई-कोई जल इकट्ठा होता है, उसके साथ दूसरा मिलता है। वे सब समुद्र के बड़वानल को प्रसन्न करते हैं। विशुद्ध जल निर्मल और दीप्तिमान् अपां नपात् नामक देवता को चारों ओर घेरकर रहता है।

४. दर्परहित युवती जल-संहति, युवा की तरह, अपां नपात् देवता को अलंकृत और परिवेष्ठित करती है। इन्धन-रहित और घृत-पूत अपां नपात् हमारे धनवाले अन्न की उत्पत्ति के लिए जल के बीच निर्मल तेजोबल से दीप्त हैं।

५. इला, सरस्वती और भारती नाम की तीनों देवियाँ दुःख-रहित अपां नपात् देवता के लिए अन्न धारण करती हैं। वे जल के बीच उत्पन्न पदार्थ के लिए प्रसारित होती हैं। अपां नपात् सबसे प्रथम उत्पन्न जल के सारभूत सोम को पीते हैं।

६. अपां नपात्-द्वारा अधिष्ठित समुद्र में उच्चैःश्रवा नामक अश्व का जन्म है—इस वरणीय का जन्म है। हे देव, तुम अपहर्त्ता हो। हिंसक के संपर्क से स्तोताओं की रक्षा करो। दानशून्य और झूठे लोग अपरिपक्व अथवा परिपाक-योग्य जल में रहकर भी इस अहिंसनीय देवता को नहीं प्राप्त होते।

७. जो अपने घर में हैं और जिनकी गाय को सरलता से दुहा जाता है, वे ही अपां नपात् देवता वृष्टि का जल बढ़ाते और उत्तम अन्न भक्षण करते हैं। वे जल के बीच प्रबल होकर यजमान को धन देने के लिए भली भाँति दीप्तियुक्त होते हैं।

८. जो अपां नपात् सत्यवान, सदा एक रूप से रहनेवाले और अति विस्तीर्ण हैं, जो जल के बीच पवित्र देवतेज के द्वारा प्रकाशित होते हैं, सारे भूत उन्हीं की शाखायें हैं। फल-फूल के साथ सारी ओषधियाँ उन्हीं से उत्पन्न हैं।

९. अपां नपात् कुटिलगति मेघ के बीच स्वयं ऊर्ध्व भाव से अवस्थित होने पर भी बिजली को पहनकर अन्तरिक्ष में चढ़े हैं। सर्वत्र उनके उत्तम माहात्म्य का कीर्त्तन करते हुए हिरण्यवर्णा नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

१०. वे हिरण्यरूप, हिरण्याकृति और हिरण्यवर्ण हैं। वे हिरण्मय स्थान के ऊपर बैठकर शोभा पाते हैं। हिरण्यदाता उन्हें अन्न देते हैं।

११. अपां नपात् का रश्मिसमूह-रूप शरीर और नाम सुन्दर हैं। ये दोनों, गूढ़ होने पर भी, वृद्धि को प्राप्त होते हैं। युवती जलसंहति उन हिरण्यवर्ण को अन्तरिक्ष में भली भाँति दीप्ति-युक्त करती हैं; क्योंकि जल ही उसका अन्न है।

१२. अपने मित्र और बहुत देवों के आदि अपां नपात् देवता की, यज्ञ, हव्य और नमस्कार-द्वारा, हम परिचर्या करेंगे। मैं उनके उन्नत प्रदेश को भली भाँति अलंकृत करूँगा। मैं काष्ठ और अन्न-द्वारा उनको धारण करता और मंत्र-द्वारा उनकी स्तुति करता हूँ।

१३. सेचन-समर्थ उन अपां नपात् ने इस सारे जल के बीच गर्भ उत्पन्न किया है। वे ही कभी पुत्ररूप होकर जल पीते हैं। सारा जल उन्हीं को चाटता है। दीप्तियुक्त वे ही स्वर्गीय अग्नि इस पृथिवी पर अन्य शरीर से व्याप्त हैं।

१४. अपां नपात् उत्कृष्ट स्थान में रहते हैं। वे तेज-द्वारा प्रतिदिन दीप्तियुक्त हैं। महान् जल-समूह उनके लिए अन्न होते हुए सतत गति-द्वारा उनको वेष्टित किये हुए है।

१५. अग्निदेव, तुम शोभनीय हो। पुत्र-लाभ के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। यजमान के हित के लिए सुरचित स्तुति लेकर आया हूँ। समस्त देवगण जो कल्याण करते हैं, वह सब हमारा हो। पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति कर सकें।

३६ सूक्त

(देवता १ के इन्द्र और मधु, २ के मरुद्गण और माधव, ३ के त्वष्टा और शुक्र, ४ के अग्नि और शुचि, ५ के इन्द्र और नभ तथा ६ के नमस्य। छन्द जगती।)

१. इन्द्र, तुम्हारे उद्देश्य से प्रेरित यह सोम गव्य और जल से युक्त है। यज्ञ के नेता लोग इस सोम को प्रस्तरखण्ड-द्वारा अभिषुत करके मेष-लोममय दशापर्व-द्वारा इसे संस्कृत करते हैं। इन्द्र, तुम सारे संसार के ईश्वर हो। सारे देवों के प्रथम, स्वाहाकार में अग्नि में प्रक्षिप्त और वषट्कार-द्वारा त्यक्त सोम होता के पास से पान करो।

२. यज्ञ के साथ संयुक्त, पृषतीयोजित रथ पर अवस्थित, अपने आयुध से शोभित, आभरण-प्रिय, भरत वा रुद्र के पुत्र और अन्तरिक्ष के नेता मरुतो, तुम कुश पर बैठकर पोता के पास से सोमपान करो।

३. शोभन आह्वानवाले देवो, तुम हमारे साथ आओ, कुश पर बैठो और विहार करो। अनन्तर हे त्वष्टा, तुम देवों और देवपत्नियों के शोभनीय दल के साथ अन्न की सेवा करके तृप्ति प्राप्त करो।

४. मेधावी अग्नि, इस यज्ञ में देवों को बुलाओ और उनके लिए यज्ञ करो। देवों के आह्वानकारी अग्नि, तुम हमारे हव्य के अभिलाषी होकर गार्हपत्य आदि के तीनों स्थानों पर बैठो। होम के लिए उत्तर

वेदी पर लाये हुए सोम-रूप मधु स्वीकार करो। अग्नीध्र के पास से सोमपान करो और अपने अंश में तृप्त होओ।

५. धनवान् इन्द्र, तुम प्रार्थीत हो। जिस सोम-द्वारा तुम्हारे हाथ में शत्रु-विजयी सामर्थ्य और बल है, वही तुम्हारे लिए अभिषुत और आहूत हुआ है। तुम तृप्त होकर ब्राह्मण ऋत्विक् के पास से सोमपान करो।

६. हे मित्रावरुण, तुम हमारे यज्ञ की सेवा करो। होता बैठकर चिरन्तनी स्तुति का उच्चारण करते हैं। तुम हमारा आह्वान सुनो। तुम शोभावाले हो। ऋत्विकों-द्वारा परिवेष्टित अन्न तुम्हारे सामने है। इस मधुर सोमरस का, प्रशास्ता के पास से, पान करो।

सप्तम अध्याय समाप्त।

३७ सूक्त

(अष्टम अध्याय देवता १—४ द्रविणोदा, ५ के अश्विद्वय और ६ के अग्नि। छन्द जगती।)

१. हे द्रविणोदा वा धनप्रिय अग्नि, होतृ-कृत यज्ञ में अन्न ग्रहण करके प्रसन्न और हृष्ट बनो। अध्वर्युगण, द्रविणोदा पूर्णाहुति चाहते हैं; इसलिए उनके लिए यह सोम प्रदान करो। सोमाभिलाषी द्रविणोदा अभीष्ट फल देनेवाले हैं। द्रविणोदा, होता के यज्ञ में ऋतुओं के साथ सोम पान करो।

२. हमने पहले जिनको बुलाया है, इस समय भी उन्हीं को बुलाते हैं। वे आह्वान-योग्य हैं; क्योंकि वे दाता और सबके अधिपति हैं। उनके लिए अध्वर्युओं-द्वारा सोम-रूप मधु तैयार किया गया है। द्रविणोदा, पोता के यज्ञ में ऋतुओं के साथ सोम पान करो।

३. द्रविणोदा, तुम जिस अश्व पर जाते हो, वह तृप्त हो। वनस्पति, किसी की हिंसा न करके दृढ़ होओ। धर्षणकारी, नेष्टा के यज्ञ में आकर ऋभुओं के साथ सोम पान करो।

४. द्रविणोदा, जिन्होंने होता के यज्ञ में सोम पान किया है, जो पिता के यज्ञ में हृष्ट हुए हैं, जिन्होंने नेष्टा के यज्ञ में प्रदत्त अन्न भक्षण किया है, वे ही सुवर्ण-दाता ऋत्विक् के अशोधित और मृत्यु-निवारक चतुर्थ सोम-पात्र का पान करें।

५. अश्विनीकुमारो, जो रथ शीघ्रगामी, तुम्हारा वाहन और अभीष्ट स्थान पर तुम्हें उतार देनेवाला है, आज उसी रथ को इस यज्ञ में हमारे सामने योजित करो। हमारा हव्य सुस्वादु करो और यहाँ आओ। अन्नवाले अश्विद्वय, हमारा सोम पान करो।

६. अग्निदेव, तुम समिधा, आहुति, लोगों के हितकर स्तोत्र और सुन्दर स्तुति से युक्त होओ। तुम सबके आश्रय-दाता और हमारे हव्य के अभिलाषी होओ। हमारा हव्य चाहनेवाले सारे देवों को, ऋभुओं और विश्वदेवों के साथ, सोम पान कराओ।

३८ सूक्त

(देवता सविता। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रकाशक और जगद्वाहक सविता वा सूर्य, प्रसव के लिए प्रतिदिन उदित होते हैं। यही उनका कर्म है। वे स्तोताओं को रत्न देते और सुन्दर यज्ञवाले यजमान को मंगलभागी बनाते हैं।

२. प्रलम्बबाहु और प्रकाशवाले सविता, विश्व के आनन्द के लिए, उदित होकर बाहु प्रसारित करते हैं। उनके कार्य के लिए अतीव पवित्र जल-समूह प्रवाहित होता है और वायु भी सर्वतोव्यापी अन्तरिक्ष में विहरण करता है।

३. जाते-जाते जिस समय सविता शीघ्रगामी किरणों-द्वारा विमुक्त होते हैं, उस समय वे निरन्तरगामी पथिक को भी विरत

करते हैं। जो शत्रु के विरुद्ध जाते हैं; सविता उनकी जाने की इच्छा को भी निवृत्त करते हैं। सविता के कर्म के अनन्तर रात्रि का आगमन होता है।

४. वस्त्र बुननेवाली रमणी की तरह रात्रि पुनः आलोक को भली भाँति वेष्टन करती है। बुद्धिमान् लोग जो कर्म करते हैं, वह करने में समर्थ होने पर भी मध्य मार्ग में रख देती है। विराम-रहित और ऋतुविभाग-कर्त्ता प्रकाशक सविता जिस समय फिर उदित होते हैं, उस समय लोग शय्या छोड़ते हैं।

५. अग्नि के गृह में स्थित प्रभूत तेज यजमान के भिन्न-भिन्न गृह और समस्त अन्न में अधिष्ठित है। माता उषा ने सविता-द्वारा प्रेरित प्रज्ञापक यज्ञ का श्रेष्ठ भाग पुत्र अग्नि को दान किया है।

६. स्वर्गीय सविता के व्रत की समाप्ति होने पर जयाभिलाषी राजा युद्ध-यात्रा कर चुकने पर भी लौट आता है। सारे जंगम पदार्थ घर की अभिलाषा करते और सदा कार्य-रत व्यक्ति अपने किये आधे कर्म को भी छोड़कर घर की ओर लौटता है।

७. सविता, अन्तरिक्ष में तुमने जो जल-भाग रख छोड़ा है, जलान्वेषणकर्त्ता लोग चारों ओर उसे पाते हैं। तुमने पक्षियों के लिए वृक्षों का विभाग किया है। कोई भी सविता के कार्य की हिंसा नहीं कर सकता।

८. सविता के अस्त होने पर सदा गमनशील वरुण सारे जंगम पदार्थों को सुखकर, वाञ्छनीय और सुगम वासस्थान प्रदान करते हैं। जिस समय सविता सारे भूतों को स्थान-स्थान पर अलग-अलग कर देते हैं, उस समय पशु-पक्षिगण भी अपने-अपने स्थान को जाते हैं।

९. इन्द्र जिसके व्रत की हिंसा नहीं करते, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र भी हिंसा नहीं करते, शत्रुगण भी हिंसा नहीं करते, उन्हीं द्युतिमान् सविता को कल्याण के लिए इस प्रकार नमस्कार-द्वारा हम आह्वान करते हैं।

१०. जिनकी स्तुति सारे मनुष्य करते हैं, जो देवपत्नियों के रक्षक हैं, वे ही सविता हमारी रक्षा करें। हम भजनीय, बहुप्रज्ञ और ध्यान-योग्य सविता को बलवान् करते हैं। हम धन और पशु की प्राप्ति के और संचय के सम्बन्ध में सविता के प्रिय हों।

११. सविता, तुमने हमें जो प्रसिद्ध और रमणीय धन प्रदान किया है, वह द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षलोक से हमारे पास आये। जो धन स्तोताओं के वंशजों के लिए शुभकर है, मैं बहुत-बहुत स्तुति करता हूँ कि मुझे वही धन दो।

३९ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अश्विद्वय, शत्रु के प्रति प्रेरित प्रस्तर-खण्डद्वय की तरह शत्रु को बाधा दो। जैसे दो पक्षी वृक्ष पर आते हैं, वैसे ही तुम भी यजमान के निकट आओ। मंत्रोच्चारक ब्रह्मा नाम के ऋत्विक् और देश में दो दूतों की तरह तुम बहुतों के बुलाने योग्य हो।

२. अश्विद्वय, प्रातःकाल जानेवाले दो रथियों की तरह तुम वीर हो, दो छागों की तरह यमज हो, दो स्त्रियों की तरह सुन्दर शरीरवाले हो, दम्पती की तरह संगत और सबके कर्मज्ञाता हो। तुम दोनों भक्त के पास आओ।

३. देवों में प्रथम अश्विद्वय, तुम पशु की दोनों सींगों वा अश्व आदि के दोनों खुरों की तरह वेगवान् होकर हमारे सामने आओ। शत्रु-हन्ता और स्वकर्म-समर्थ अश्विद्वय, जैसे दिन में चक्रवाक-दम्पती आते हैं अथवा जैसे दो रथी आते हैं, वैसे ही तुम हमारे सामने आओ।

४. अश्विद्वय, नौका की तरह तुम हमें पार उतार दो। रथ के युग की तरह, रथचक्र के नाभि-फलक की तरह उसके पार्श्वस्थ फलक की तरह और चक्र के बाह्यदेश के वलय की तरह हमें पार करो। दो कुक्करों की तरह तुम हमारे शरीर को हिंसा से बचाओ। दो वर्म की तरह तुम हमें जरा से बचाओ।

५. अश्विद्वय, दो वायुओं की तरह अक्षय, दो नदियों की तरह शीघ्रगामी और दो नेत्रों की तरह दर्शक हो। तुम हमारे सामने आओ। तुम दोनों हाथों और पैरों तरह शरीर के सुखदाता हो। तुम हमें श्रेष्ठ धन की ओर ले जाओ।

६. अश्विद्वय, दोनों ओठों की तरह मधुर-वाक्य का उच्चारण करो, दोनों स्तनों की तरह हमारे जीवन धारण के लिए दूध पिलाओ, दोनों नाकों की तरह हमारे शरीर के रक्षक होओ और दोनों कानों की तरह हमारे श्रोता होओ।

७. अश्विद्वय, दोनों हाथों की तरह हमें सामर्थ्य प्रदान करो। द्यावा-पृथिवी की तरह हमें जल दो। अश्विद्वय, ये सब स्तुतियाँ तुम्हें चाहती हैं। तुम शान चढ़ाने के यंत्र के द्वारा तलवार की तरह उन्हें तीक्ष्ण करो।

८. अश्विद्वय, गृत्समद ऋषि ने तुम्हारी वृद्धि के लिए ये सब स्तोत्र और मंत्र बनाये हैं। तुम नेता और अतीव प्रीतिवाले हो। तुम्हारे पास ये सब स्तुतियाँ पहुँचें। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करें।

४० सूक्त

(देवता सोम और पूषा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सोम और पूषा, तुम धन, द्युलोक और पृथ्वी के जनक हो। जन्म के अनन्तर ही तुम सारे संसार के रक्षक हुए हो। देवों ने तुम्हें अमरता का कारण बनाया है।

२. जन्मते ही द्युतिमान् सोम और पूषा की देवों ने सेवा की थी। ये दोनों अप्रिय अन्धकार का विनाश करते हैं। इनके साथ इन्द्रदेव तरुणी धेनुओं के अधःप्रदेश में पक्व दुग्ध उत्पन्न करते हैं।

३. अभीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम संसार के विभाजक, सप्तचक्र (सात ऋतु, मलमास लेकर) वाले संसार के लिए अविभाज्य,

सर्वत्र वर्त्तमान और पंचरश्मि (पांच ऋतु, हेमन्त और शीत को एक में करके) वाले हो। इच्छा होते ही योजित रथ हमारे सामने प्रेरित करते हो।

४. तुममें एक जन (पूषा) उन्नत द्युलोक में रहते हैं। दूसरे (सोम) ओषधि रूप से पृथ्वी और चन्द्र-रूप से अन्तरिक्ष में रहते हैं। तुम दोनों अनेक लोगों में वरणीय, बहुकीर्त्तिशाली हमारे भाग का कारण और पशु-रूप धन हमें दो।

५. सोम और पूषा, तुममें से एक (सोम) ने सारे भूतों को उत्पन्न किया है। दूसरे (पूषा) सारे संसार का पर्यवेक्षण कर जाते हैं। सोम और पूषा, तुम हमारे कर्म की रक्षा करो। तुम्हारे द्वारा हम सारी शत्रुसेना की जय कर डालें।

६. संसार को प्रसन्नता देनेवाले पूषा हमारे कर्म से तृप्ति प्राप्त करें। धनपति सोम हमें धन दान करें। द्युतिमती और शत्रु-रहिता अदिति हमारी रक्षा करें। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति कर सकें।

४१ सूक्त

(देवता १-३ के इन्द्र और वायु, ४-६ के मित्रावरुण, ७-९ के अश्विद्वय, १०-१२ के इन्द्र, १३-१५ के विश्वदेवगण, १६-१८ की सरस्वती और १९-२१ के द्यावा-पृथिवी।)

१. वायु, तुम्हारे पास जो हजार रथ हैं, उनके द्वारा नियुत्‌गण से युक्त होकर सोम पान के लिए आओ।

२. वायु, नियुत्‌गण से युक्त होकर आओ। तुमने दीप्तिमान् सोम ग्रहण किया है। सोमाभिषवकारी यजमान के घर में तुम जाते हो।

३. नेता इन्द्र और वायु, तुम आज नियुत्‌गण से युक्त होकर और सोम के लिए आकर गव्य-मिला सोम पीओ।

४. मित्रावरुण, तुम्हारे लिए यह सोम तैयार हुआ है। सत्यवर्द्धक तुम हमारा आह्वान सुनो।

५. शत्रुता-शून्य राजा मित्रावरुण स्थिर, उत्कृष्ट और हजार स्तम्भोंवाले इस स्थान पर बैठें।

६. सम्राट्, घृतान्नभोजी, अदिति-पुत्र और दाता मित्रावरुण सरल-गति यजमान की सेवा करते हैं।

७. अश्विद्वय, नासत्यद्वय, रुद्रद्वय, यज्ञ के नेता जो सोमपान करेंगे, उसी सोम को धेनु और अश्व से युक्त करके तथा रथ पर लेकर आओ।

८. धनवर्षी अश्विद्वय, दूरस्थित वा समीपवर्त्ती मन्दभाषी मर्त्यरिपु जिस धन को नहीं चुरा सकता, उसे ही हमें दो।

९. ज्ञानार्ह अश्विद्वय, तुम हमारे पास नानारूप और धन-प्रापक धन ले आओ।

१०. इन्द्र अधिक और अभिभवकारी भय को दूर करते हैं। वे स्थिर प्रज्ञावान् हैं।

११. यदि इन्द्र हमें सुखी करें, तो हमारे साथ पाप नहीं आयेगा; हमारे सामने कल्याण उपस्थित होगा।

१२. प्रज्ञावान् और शत्रुजेता इन्द्र चारों ओर से हमें भय-शून्य करें।

१३. विश्वदेवगण, यहाँ आओ। हमारा आह्वान सुनो और कुश के ऊपर बैठो।

१४. विश्वदेवगण, तीव्र मदवाला, रसशाली और हर्षकर यह सोम तुम्हारे लिए गृत्समदवंशीयों के पास है। इस शोभन सोम का पान करो।

१५. जिन मरुतों में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनके दाता पूषा हैं, वे ही मरुद्गण हमारा आह्वान सुनें।

१६. मातृगण में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ और देवों में श्रेष्ठ सरस्वती, हम दरिद्र हैं; हमें धनी करो।

१७. सरस्वती, तुम द्युतिमती हो। तुम्हारे आश्रय से अन्न है। शुन-होत्रों में तुम सोम पान करके तृप्त होओ। देवी, तुम हमें पुत्र दो।

१८. अन्नवती और जलवती सरस्वती, इस हव्य को स्वीकार करो। यह माननीय और देवों के लिए प्रिय है। गृत्समद लोग इसे तुम्हें देते हैं।

१९. यज्ञ के सुख-सम्पादक द्यावा-पृथिवी, तुम आओ। हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। हम हव्य-वाहन अग्नि की भी प्रार्थना करते हैं।

२०. द्यावा-पृथिवी स्वर्ग आदि के साधक और देवों के ओर जानेवाली हैं। हमारे इस यज्ञ को देवों के पास ले जायँ।

२१. शत्रुता-शून्य द्यावा-पृथिवी, सोमपान के लिए यज्ञार्ह देवगण आज तुम्हारे पास बैठें।

४२ सूक्त

(देवता कपिञ्जलरूपी इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. बारम्बार शब्दायमान और भविष्यद्वक्ता कपिञ्जल जैसे कर्णधार नौका को परिचालित करता है, वैसे ही वाक्य को प्रेरित करता है। शकुनि, तुम कल्याण-सूचक होओ। किसी ओर से किसी प्रकार की पराजय तुम्हारे पास न आये।

२. शकुनि, तुम्हें श्येन पक्षी न मारे—गरुड़ पक्षी भी न मारे। वह बलवान्, वीर और धनुर्धारी होकर तुम्हें न प्राप्त करे। दक्षिण दिशा में बार-बार शब्द करके और सुमंगल-शंसी होकर हमारे लिए प्रियवादी बनो।

३. शकुनि, सुमंगल-सूचक और प्रियवादी होकर घर की दक्षिण दिशा में बोलो, जिससे चोर और दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे। पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करें।

४३ सूक्त

(देवता कपिञ्जलरूपी इन्द्र। छन्द जगती, मध्या, शक्करी और अष्टि।)

१. समय-समय पर अन्न की खोज करके स्तोताओं की तरह शकुनि-गण प्रदक्षिण करके शब्द करें। जैसे सामगायक लोग गायत्रीः और

त्रिष्टुप् (दोनों साम) का उच्चारण करते हैं, वैसे ही कपिञ्जल भी दोनों वाक्य उच्चारण करता और श्रोताओं को अनुरक्त करता हैं।

२. शकुनि, जैसे उद्गीता साम गान करते हैं, वैसे ही तुम भी गाओ। यज्ञ में ब्रह्मपुत्र ऋत्विक् की तरह तुम शब्द करो। जैसे सेचन-समर्थ अश्व अश्वी के पास जाकर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो। शकुनि, तुम सर्वत्र हमारे लिए मंगल-सूचक और पुण्य-जनक शब्द करो।

३. शकुनि, जिस समय तुम शब्द करते हो, उस समय हमारे लिए मंगल-सूचना करते हो। जिस समय चुप रहकर तुम बैठते हो, उस समय हमारे प्रति सुप्रसन्न रहते हो। उड़ने के समय तुम कर्करि (एक बाजा) की तरह शब्द करते हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञ में प्रभूत स्तुति करें।

द्वितीय मण्डल समाप्त।

१ सूक्त

(२ अष्टक। ३ मण्डल। ८ अध्याय। १ अनुवाक्। देवता अग्नि। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्निदेव, यज्ञ करने के लिए तुमने मुझे सोम का वाहक किया है; इसलिए मुझे बलवान् करो। अग्नि, मैं प्रकाशमान होकर, देवों को लक्ष्य कर, अभिषवण के लिए, प्रस्तरखंड ग्रहण और स्तव करता हूँ। अग्नि, तुम मेरे शरीर की रक्षा करो।

२. अग्नि, हमने भली भाँति यज्ञ किया है। हमारी स्तुति वर्द्धित हो। समिधा और हव्य-द्वारा लोग अग्नि की परिचर्या करें। द्युलोक से आकर देवों ने स्तोताओं को स्तोत्र सिखाया है। स्तोतागण स्तवनीय और प्रवृद्ध अग्नि की स्तुति करने की इच्छा करते हैं।

३. जो मेधावी, विशुद्ध-बल-शाली और जन्म से ही उत्कृष्ट बन्धु हैं, जो द्युलोक का सुख-विधान करते हैं, उन्हीं दर्शनीय अग्नि को, देवों ने, यज्ञ-कार्य के लिए, वहनशील नदियों के जल के बीच, प्राप्त किया है।

४. शोभन धनवाले, शुभ्र और अपनी महिमा से दीप्तिशाली अग्नि के उत्पन्न होते ही उन्हें सात नदियों ने संवर्द्धित किया था। जैसे अश्वी नवजात शिशु के पास जाती है, वैसे ही नदियाँ नवजात अग्नि के पास गई थीं। उत्पत्ति के साथ ही अग्नि को देवों ने दीप्तिमान् किया।

५. शुभ्रवर्ण तेज के द्वारा अन्तरिक्ष को व्याप्त करके अग्निदेव यजमान को स्तुति-योग्य और पवित्र तेज के द्वारा परिशोधित करते तथा दीप्ति का परिधान करके यजमान को अन्न और प्रभूत तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति देते हैं।

६. अग्नि जल के चारों ओर जाते हैं। वह जल अग्नि को नहीं बुझाता अथवा वह अग्नि द्वारा नहीं सूखता। अन्तरिक्ष के अपत्य-भूत अग्नि वस्त्र से आच्छादित नहीं हैं; तो भी, जल से वेष्टित होने के कारण, नग्न भी नहीं हैं। सनातन, नित्य, तरुण और एक स्थान से उत्पन्न सात नदियाँ एक अग्नि का गर्भ धारण करती हैं।

७. जल-वर्षण के अनन्तर जल के गर्भ-स्वरूप और अन्तरिक्ष में पुञ्जी-भूत नानावर्ण अग्नि की किरणें रहती हैं। इस अग्नि में जलरूप स्थूल धेनुएँ सबकी प्रीति-दायिका होती हैं। सुन्दर और महान् द्यावा-पृथिवी दर्शनीय अग्नि के माता-पिता हैं।

८. बल के पुत्र, सबके द्वारा तुम्हें धारण करने पर तुम उज्ज्वल और वेगवान् किरण धारण करके प्रकाशित होओ। जिस समय अग्नि यजमान के स्तोत्र-द्वारा बढ़ते हैं, उस समय मधुर जलधारा गिरती है।

९. जन्म के साथ ही अग्नि ने पिता (अन्तरिक्ष) के अधस्तन जल-प्रदेश को जाना था और अधस्तन-सम्बन्धिनी धारा या वृष्टि और

अन्तरिक्षचारी वज्र को गिराया था। अग्नि, शुभकर्त्ता वायु आदि बन्धुओं के साथ, अवस्थान करते और अन्तरिक्ष के अपत्यभूत जल के साथ गुहा में वर्तमान रहते हैं। इन अग्नि को कोई नहीं पाता।

१०. अग्नि पिता (अन्तरिक्ष) और जनयिता का गर्भ धारण करते हैं। एक अग्नि बहुतर वृद्धि को प्राप्त ओषधि का भक्षण करते हैं। सपत्नी और मनुष्यों की हितकारिणी द्यावा-पृथिवी अभीष्टवर्षी अग्नि के बन्धु हैं। अग्नि, तुम द्यावा-पृथिवी को अच्छी तरह बचाओ।

११. महान् अग्नि असम्बाध और विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में वर्द्धित होते हैं; क्योंकि बहु-अन्नवान् जल उनको अच्छी तरह वर्द्धित करता है। जल के जन्मस्थान अन्तरिक्ष में स्थित अग्नि भगिनी-स्थानीया नदियों के जल में प्रशान्त चित्त से शयन करते हैं।

१२. जो अग्निदेव समस्त संसार के जनक, जल के गर्भभूत, मनुष्यों के सुरक्षक, महान्, शत्रुओं के आक्रमणकर्त्ता, संग्राम में अपनी महती सेना के रक्षक, सबके दर्शनीय और अपनी दीप्ति से प्रकाशमान हैं, उन्होंने ही यजमान के लिए जल उत्पन्न किया है।

१३. सौभाग्यशाली अरणि ने दर्शनीय, विविध रूपवान् तथा जल और ओषधियों के गर्भभूत अग्नि को उत्पन्न किया है। सारे देवता लोग भी स्तुति-योग्य, प्रवृद्ध तथा सद्योजात अग्नि के पास स्तुति-सम्पन्न होकर गये थे। उन्होंने अग्नि की परिचर्या भी की थी।

१४. दीप्तिशाली बिजली की तरह महान्, सूर्यगण अगाध समुद्र के बीच अमृत का दोहन करके, गुहा की तरह, अपने भवन अन्तरिक्ष में प्रवृद्ध और प्रभा-द्वारा प्रदीप्त अग्नि का आश्रय करते हैं।

१५. हव्य-द्वारा मैं यजमान तुम्हारी स्तुति करता हूँ। धर्म-क्षेत्र में वृद्धि पाने की इच्छा से तुम्हारे साथ बन्धुत्व के लिए प्रार्थना करता हूँ। देवों के साथ मुझ स्तोता के पशु आदि की और मेरी, दुर्दम्य तेज के द्वारा, रक्षा करो।

१६. सुनेता अग्नि, हम तुम्हारा आश्रय चाहते हैं। हम समस्त धन की प्राप्ति का कारणीभूत कर्म करते और हव्य प्रदान करते हैं। हम तुम्हें वीर्यशाली अन्न प्रदान करके अदेवों और अहितकारी शत्रुओं को जीत सकें।

१७. अग्नि, तुम देवों के स्तवनीय दूत हो। तुम सारे स्तोत्रों के ज्ञाता हो। तुम मनुष्यों को उनके अपने-अपने गृह में वास देते हो। तुम रथी हो। तुम देवों का कार्य-साधन करके उनके पीछे-पीछे जाते हो।

१८. नित्य राजा अग्नि यज्ञ का साधन करके मनुष्यों के गृह में बैठते हैं। अग्नि सारे स्तोत्र जानते हैं। अग्नि का अंग घी के द्वारा दीप्ति-युक्त है। विशाल अग्नि प्रकाशमान होते हैं।

१९. गमनेच्छु महान् अग्नि, मंगलमयी मैत्री और महान् रक्षा के साथ हमारे पास आओ और हमें बहुल, निरुपद्रव, शोभन स्तुतिवाला और कीर्तिशाली धन दो।

२०. अग्नि, तुम पुराण पुरुष हो। तुम्हें लक्ष्य करके इन सब सनातन और नवीन स्तोत्रों का हम पाठ करते हैं। सर्व-भूतज्ञ अग्नि मनुष्यों के बीच निहित हैं। उन अभीष्टवर्षी अग्नि को लक्ष्य करके हमने यह सब स्तवन किया है।

२१. सारे मनुष्यों में निहित और सर्व-भूतज्ञ अग्नि विश्वामित्र-द्वारा अनवरत प्रदीप्त होते हैं। हम उनका अनुग्रह प्राप्त करके यज्ञार्ह अग्नि का अभिलषणीय अनुग्रह प्राप्त करें।

२२. बलवान् और शोभन कर्मवाले अग्नि, तुम सदा विहार करते-करते हमारे यज्ञ को देवों के पास ले जाओ। देवों के बुलानेवाले अग्नि, हमें अन्न दो। अग्नि, हमें महान् धन दो।

२३. अग्नि, स्तोता को अनेक कर्मों के हेतुभूत और धेनुप्रदात्री भूमि हमें दो। हमारे वंश का विस्तार करनेवाला और सन्तति-जनयिता एक पुत्र उत्पन्न हो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

२ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। छन्द जगती।)

१. हम यज्ञ-वर्द्धक वैश्वानर को लक्ष्य करके विशुद्ध घृत की तरह प्रसन्नता-दायक स्तुति करेंगे। जैसे कुठार रथ का संस्कार करता है, वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् लोग देवों को बुलानेवाले गार्हपत्य और आहवनीय, इन दो प्रकार के रूपोंवाले अग्नि का संस्कार करते हैं।

२. जन्म के साथ ही वे द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं। वे माता-पिता के अनुकूल पुत्र हुए थे। हव्यवाही, जरा-रहित, अन्नदाता, अहिंसित और प्रभावन अग्नि मनुष्यों के अतिथि के समान पूज्य हैं।

३. ज्ञानी देवता लोग विपद् से उद्धार करनेवाले बल के द्वारा यज्ञ में अग्नि को उत्पन्न करते हैं। जैसे भारवाही अश्व की स्तुति करता हूँ, वैसे ही अन्नाभिलाषी होकर दीप्तिमान तेज के द्वारा प्रकाशमान और महान् अग्नि की स्तुति करता हूँ।

४. मैं स्तुति-योग्य वैश्वानर के श्रेष्ठ, लज्जा-रहित और प्रशंसनीय अन्न के अभिलाषी होकर भृगु-वंशियों के अभिलाषप्रद, अभिलषणीय, प्रज्ञावान् और स्वर्गीय दीप्ति के द्वारा शोभावाले अग्नि का भजन करता हूँ।

५. सुख की प्राप्ति के लिए ऋत्विक् लोग कुश को फैलाकर और स्रुक् को उठाकर अन्नदाता, अतीव प्रकाशक, सारे देवों के हितैषी, दुःखनाशक और यजमानों के यज्ञ-साधक अग्नि की स्तुति करते हैं।

६. पवित्र दीप्तिवाले और देवों को बुलानेवाले अग्नि, तुम्हारी सेवा के अभिलाषी यजमान लोग यज्ञ में कुश फैलाकर तुम्हारे योग्य याग-गृह की सेवा करते हैं। उन्हें धन दो।

७. अग्नि ने द्यावा-पृथिवी और विशाल आकाश को भी पूर्ण किया था। यजमानों ने नवजात अग्नि को धारण किया था। सर्वत्र व्याप्त

और अन्नदाता अग्नि, अश्व की तरह अन्न लाभ के लिए, लाये जाते हैं।

८. नेता और महान् यज्ञ के दर्शक जो अग्नि देवों के सम्मुख उपस्थित हुए थे, उन्हीं हव्यदाता, शोभन यज्ञवाले, गृह के हितैषी और सर्वभूतज्ञ अग्नि की पूजा और परिचर्या करो।

९. अमर देवों ने अग्नि की इच्छा करके महान् और जगत्-व्यापी अग्नि की पार्थिव, वैद्युतिक और सूर्यरूप तीन मूर्तियों को शोभित किया था। उन्होंने तीनों मूर्तियों में से जगत्पालिका पार्थिव मूर्त्ति को मर्त्यलोक में रक्खा, शेष दो अन्तरिक्ष में गईं।

१०. धनाभिलाषी प्रजाओं ने अपने प्रभु मेधावी अग्नि को तलवार की तरह तीखी करने के लिए संस्कृत किया था। वे उन्नत और निम्न प्रदेशों को व्याप्त करके गमन करते और सारे भुवनों का गर्भ धारण करते हैं।

११. नवजात और अभीष्टवर्षी वैश्वानर अग्नि नाना स्थानों में सिंह की तरह गर्जन करके अनेक जठरों में वर्द्धित होते हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी और अमर हैं। वे यजमान को रमणीय वस्तु प्रदान करते हैं।

१२. स्तोताओं-द्वारा स्तुति किये जानेवाले वैश्वानर अग्नि चिरन्तन की तरह अन्तरिक्ष की पीठ—स्वर्ग—पर चढ़ते हैं। प्राचीन ऋषियों के सदृश यजमानों को धन देकर वे जागरूक होकर देवों के साधारण मार्ग पर, सूर्यरूप से, भ्रमण करते हैं।

१३. बलवान्, यज्ञार्ह, मेधावी, स्तुतियोग्य और द्युलोक-वासी जिन अग्नि को द्युलोक से लाकर वायु ने पृथ्वी पर स्थापित किया है, हम उन्हीं नाना गतिवाले, पिंगलवर्ण किरण से युक्त और प्रकाशमान अग्नि से नया धन चाहते हैं।

१४. प्रदीप्त, यज्ञ में गमनकारी, सारे पदार्थों के ज्ञानभूत, द्युलोक के पताका-स्वरूप, सूर्य में अवस्थित, उषाकाल में जागरूक, अन्नवान् और महान् अग्नि की स्तोत्र-द्वारा याचना करता हूँ।

१५. स्तुत्य, देवाह्वानकारी, सर्वदा, शुद्ध, अकुटिल, दाता, श्रेष्ठ, विश्वदर्शक, रथ की तरह नाना वर्णवाले, दर्शनीय रूपवाले और मनुष्यों के सदा कल्याणकर्त्ता उन अग्निदेव के पास में धन की याचना करता हूँ।

३ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। छन्द जगती।)

१. मेधावी स्तोता लोग, सन्मार्ग की प्राप्ति के लिए, बहु-बलशाली वैश्वानर को लक्ष्य कर यज्ञ में रमणीय स्तोत्रों का पाठ करते हैं। अमर अग्नि हव्य प्रदान के द्वारा देवों की परिचर्या करते हैं। इसलिए कोई सनातन यज्ञ को दूषित नहीं कर सकता।

२. दर्शनीय होता अग्नि, देवों के दूत होकर, द्यावा-पृथिवी के बीच जाते हैं। देवों-द्वारा प्रेरित धीमान् अग्नि यजमान के सामने स्थापित और उपविष्ट होकर महान् यज्ञ-गृह को अलंकृत करते हैं।

३. मेधावी लोग यज्ञ के केतु-स्वरूप और यज्ञ के साधनभूत अग्नि को अपने वीर कर्म-द्वारा पूजित करते हैं। जिन अग्नि में स्तोता लोग अपने-अपने करने योग्य कर्मों को अर्पण करते हैं, उन्हीं अग्नि से यजमान सुख की आशा करते हैं।

४. यज्ञ के पिता, स्तोताओं के बलदाता, ऋत्विकों के ज्ञानहेतु और यज्ञादि कर्मों के साधनभूत अग्नि पार्थिव और वैद्युतादि रूप के द्वारा द्यावा-पृथिवी में प्रवेश करते हैं। अत्यन्त प्रिय और तेजस्वी अग्नि यजमान-द्वारा स्तुत होते हैं।

५. आह्लादक, आह्लादजनक रथवाले, पिङ्गलवर्ण, जल के बीच निवास करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त, शीघ्रगामी, बलशाली, भर्त्ता और दीप्तिवाले वैश्वानर अग्नि को देवों ने इस लोक में स्थापित किया है।

६. जो यज्ञ-साधक देवों और ऋत्विकों के साथ कर्म-द्वारा यजमान के नानाविध यज्ञों का सम्पादन करते हैं, जो नेता, शीघ्रगामी,

दानशील और शत्रुओं के नाशक हैं; वे ही अग्नि द्यावा-पृथिवी के बीच जाते हैं।

७. हम सुपुत्र और दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे; इसलिए, हे अग्नि, तुम देवों की स्तुति करो। अन्न-द्वारा उन्हें प्रीत करो। हमारे धान्य के लिए भली भाँति वृष्टि को संचालित करो। अन्न दान करो। सदा जागरण-शील अग्नि, तुम महान् यजमान को अन्न दो; क्योंकि तुम सुकर्मा और देवों के प्रिय हो।

८. मनुष्यों के पति, महान्, अतिथि-भूत, बुद्धि-नियन्ता, ऋत्विकों के प्रिय, यज्ञ के ज्ञापक, वेगयुक्त और सर्वभूतज्ञ अग्नि की नेता लोग समृद्धि के लिए नमस्कार और स्तुति के द्वारा प्रशंसा करते हैं।

९. दीप्तिमान्, स्तूयमान, कमनीय और सुन्दर रथवाले अग्नि बल के द्वारा सारी प्रजा को व्याप्त करते हैं। हम अनेक के पालक और गृह में निवासी अग्नि के सारे कर्मों को, सुन्दर स्तोत्र-द्वारा, प्रकाशित करेंगे।

१०. विज्ञ वैश्वानर, तुम जिस तेज के द्वारा सर्वज्ञ हुए हो, मैं तुम्हारे उसी तेज का स्तव करता हूँ। जन्म के साथ ही तुम द्यावा-पृथिवी और सारे भुवनों को व्याप्त कर लेते हो। अग्नि, तुम अपने सारे भूतों को व्याप्त करते हो।

११. वैश्वानर के सन्तोषजनक कर्म से महान् धन होता है; क्योंकि वे सुन्दर यज्ञ आदि कर्म की इच्छा से यजमानों को धन देते हैं। वे वीर्यशाली हैं। माता-पिता द्यावा-पृथिवी की पूजा करते हुए उत्पन्न हुए हैं।

४ सूक्त

(देवता आप्री। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे समिद्ध अग्नि, अनुकूल मन से जागो। तुम अतीव गति-शील तेज से युक्त होकर हमारे ऊपर धन के लिए अनुग्रह करो।

द्योतमान अग्नि, देवों को तुम यज्ञ में ले आओ। अग्नि, तुम देवों के सखा हो। अनुकूल मन से मित्र देवों का यज्ञ करे।

२. वरुण, मित्र और अग्नि जिन तनूनपात नामक अग्नि का, प्रतिदिन तीन बार करके, यज्ञ करते हैं, वे ही हमारे इस जल-कारण यज्ञ को वृष्टि आदि फल दें।

३. देवों के आह्वानकारी अग्नि के पास सर्वजन-प्रिय स्तुति गमन करे। इला, प्रसन्नता उत्पन्न करने के लिए, प्रधान, अतीव अभीष्टवर्षी और वन्दनीय अग्नि के पास जायँ। यज्ञकर्म में कुशल अग्नि, हमारे द्वारा प्रेरित होकर यज्ञ करें।

४. अग्नि और बर्हिरूप अग्नि के लिए यज्ञ में एक उन्नत मार्ग किया हुआ है। दीप्तियुक्त हव्य ऊपर जाता है। दीप्तिमान् यज्ञ-गृह के नाभिप्रदेश में होता उपविष्ट हैं। हम देवों के द्वारा व्याप्त कुश को बिछायेंगे।

५. जल-द्वारा संसार के प्रसन्नकर्त्ता देवता लोग सप्त यज्ञ में जाते हैं। वे अकपट चित्त से याचित होकर नररूपी यज्ञजात (अग्नि-रूप यज्ञ-द्वार-द्वय) प्रत्यक्ष होकर हमारे इस यज्ञ में आयें।

६. स्तूयमान अग्निरूप रात और दिन, परस्पर-संगत होकर अथवा पृथक् रूप से, सशरीर प्रकाशित होकर आयें। मित्र, वरुण अथवा इन्द्र हमें जिस रूप से अनुगृहीत करते हैं, तेजस्वी होकर, उसी रूप को धारण करें।

७. मैं दिव्य और प्रधान अग्निरूप दोनों होताओं को प्रसन्न करता हूँ। यज्ञाभिलाषी, सप्त और अन्नवान् ऋत्विक् लोग हव्य-द्वारा अग्नि को प्रमत्त करते हैं। व्रत के रक्षक और दीप्तिशाली ऋत्विक् लोग प्रत्येक व्रत में यज्ञरूप अग्नि को यह बात बोलते हैं।

८. भारती लोगों (सूर्य-सम्बन्धियों) के साथ अग्नि-रूप भारती आयें, देवों और मनुष्यों के साथ इला आयें, अग्नि भी आयें।

सारस्वतगणों (अन्तरिक्षस्थ वचनों) के साथ सरस्वती भी आयें। ये तीनों देवियाँ आकर सम्मुखस्थ कुश पर बैठें।

९. अग्निरूप त्वष्टा देव, जिससे वीर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमाभिषव के लिए प्रस्तर-हस्त और देवाभिलाषी पुत्र उत्पन्न हो सके, सन्तुष्ट होकर तुम हमें वैसा ही त्राण-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो।

१०. अग्निरूप वनस्पति, तुम देवों को पास ले आओ। पशु के संस्कारक अग्नि (वनस्पति) देवों के लिए हव्य दें। वे ही यज्ञ-रूप देवता लोगों को बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि वे ही देवों का जन्म जानते हैं।

११. अग्नि, तुम दीप्ति-युक्त होकर इन्द्र और शीघ्रताकारी देवों के साथ एक रथ पर हमारे सामने आओ। सुपुत्र-युक्ता अदिति हमारे कुश पर बैठें। नित्य देवगण अग्निरूप स्वाहाकारवाले होकर तृप्ति प्राप्त करें।

५ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि उषा को जानते हैं। मेधावी अग्नि ज्ञानियों के मार्ग पर जाने के लिए जागते हैं। अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवाभिलाषी व्यक्तियों के द्वारा प्रदीप्त होकर अज्ञान का द्वार उद्घाटित करते हैं।

२. पूज्य अग्नि स्तोताओं के स्तोत्र, वाक्य और मंत्र-द्वारा वृद्धि पाते हैं। देव-दूत अग्नि अनेक यज्ञों में दीप्ति प्राप्त करने की इच्छा से प्रातःकाल प्रकाशित होते हैं।

३. यजमानों के मित्र, यज्ञ के द्वारा अभिलाषा पूरी करनेवाले और जल के पुत्र अग्नि मनुष्यों के बीच स्थापित हुए हैं। अग्नि स्पृहणीय और यजनीय हैं। वे उन्नत स्थान पर बैठे हैं। ज्ञानी अग्नि स्तोताओं की स्तुति के योग्य हुए हैं।

४. जिस समय अग्नि समिद्ध होते हैं, उस समय मित्र बनते हैं। वे ही, मित्र होता और सर्वज्ञ वरुण हैं। वे ही, मित्र, दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु हैं। वे नदियों और पर्वतों के मित्र हैं।

५. सुन्दर अग्नि सर्वव्याप्त पृथिवी के प्रिय स्थान की रक्षा करते हैं। महान् अग्नि सूर्य के विहरण-स्थान अन्तरिक्ष की रक्षा करते हैं। अन्तरिक्ष के बीच मरुतों की रक्षा करते हैं। वे देवों के प्रसन्नता-कारक यज्ञ की रक्षा करते हैं।

६. महान् और सारे ज्ञातव्यों के ज्ञाता अग्नि प्रशंसनीय और सुन्दर जल उत्पन्न करते हैं। अग्नि के निद्रित रहने पर भी उनका चर्म या रूप दीप्तिमान् रहता है। वे अग्नि सावधानी से उसकी रक्षा करते हैं।

७. दीप्तिमान्, विशेष रूप से स्तुत और स्वस्थान-प्रिय अग्नि अधिरूढ़ हुए हैं। दीप्तिशाली, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्नि माता-पिता द्यावापृथिवी को नवीनतर करते हैं।

८. जन्म लेते ही अग्नि ओषधियों-द्वारा धृत होते हैं। उस समय पथ-प्रवाहित जल की तरह शोभित ओषधियाँ जल-द्वारा वर्द्धित होकर फल देती हैं। माता-पिता द्यावा-पृथिवी के क्रोड़ में बढ़कर अग्नि हमारी रक्षा करें।

९. हमारे द्वारा स्तुति और दीप्ति-द्वारा महान् अग्नि ने पृथिवी की नाभि वा उत्तर वेदी पर स्थित होकर अन्तरिक्ष को प्रकाशित किया है। सबके मित्र और स्तुति-योग्य अरणि-प्रदीप्त अग्नि देवों के दूत होकर यज्ञ में देवों को बुलायें।

१०. जिस समय मातरिश्वा ने भृगुओं वा आदित्य-रश्मियों के लिए गुहास्थित और हव्य-वाहक अग्नि को प्रज्वलित किया था, उस समय तेजस्वियों में श्रेष्ठ महान् अग्नि ने तेज-द्वारा स्वर्ग को स्तब्ध किया था।

११. अग्नि, तुम स्तोता को अनेक कर्मों के हेतुभूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमारे वंश का विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

६ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्)

१. यज्ञकर्त्ता लोग, तुम सोमाभिलाषी हो। मंत्र-द्वारा प्रेरित होकर तुम देवार्चन-साधक स्रुक् ले आओ। जिसे आहवनीय अग्नि की दक्षिण दिशा में ले जाया जाता है, जिसके अन्न है, जिसका अग्र भाग पूर्व दिशा में है और जो अग्नि के लिए अन्न धारण करता है, वही घृत-युक्त स्रुक् जाता है।

२. जन्म के साथ ही तुम द्यावा-पृथिवी को पूर्ण करो। याग-योग्य, महिमा-द्वारा तुम अन्तरिक्ष और पृथिवी से प्रकृष्टतर होओ और तुम्हारे अंशभूत विशिष्ट अग्नि—सप्त जिह्वायें—पूजित हों।

३. अग्नि, तुम होता हो। जिस समय देवाभिलाषी और हव्य-युक्त मनुष्य तुम्हारे दीप्त तेज की स्तुति करते हैं, उस समय अन्तरिक्ष, पृथिवी और यज्ञार्ह देवगण, यज्ञ-सम्पादन के लिए, तुम्हारी स्तुति करते हैं।

४. महान् और यजमानों के प्रिय अग्नि, द्यावा-पृथिवी के बीच, महिमावाले अपने स्थान पर, बैठे हैं। आक्रमणशील, सपत्नीभूता, जरारहिता, अहिंसिता और क्षीरप्रसविनी द्यावा-पृथिवी अत्यन्त गमन-शील अग्नि की गायें हैं।

५. अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा कर्म महान् है। तुमने यज्ञ-द्वारा द्यावा-पृथिवी को विस्तृत किया है। तुम दूत हो। अभीष्टवर्षी अग्नि, उत्पन्न होने के साथ ही तुम यजमान के नेता बनो।

६. द्युतिमान् अग्नि, प्रशस्त केशवाले, रज्जुयुक्त और घृतस्रावी रोहित नामक दोनों घोड़ों को यज्ञ के सम्मुख योजित करो।

अनन्तर तुम सारे देवों को बुलाओ। सर्वभूतज्ञ, तुम उन्हें सुन्दर यज्ञ-युक्त करो।

७. अग्नि, जिस समय तुम वन में जल का शोषण करते हो, उस समय सूर्य से भी अधिक तुम्हारी दीप्ति होती है। तुम भली भाँति प्रकाशमान पुरातन उषा के पीछे शोभित होते हो। स्तोता लोग स्तुतियोग्य होता अग्नि की स्तुति करते हैं।

८. विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में जो देवगण हृष्ट हैं, आकाश की दीप्ति में जो सब देवता हैं, 'उम' संज्ञक जो यजनीय पितर लोग भली भाँति आहूत होकर आगमन करते हैं, रथी अग्नि के जो सब अश्व हैं—

९. अग्नि, उक्त सब देवों के साथ एक रथ अथवा नाना रथों पर चढ़कर हमारे सामने आओ; क्योंकि तुम्हारे अश्वगण समर्थ हैं। ३३ देवों को, उनकी स्त्रियों के साथ, अन्न के लिए, ले आओ और सोम-द्वारा हृष्ट करो।

१०. विशाल द्यावा-पृथिवी, प्रत्येक यज्ञ में, समृद्धि के लिए, जिन अग्नि की प्रशंसा करती हैं, वे ही देवों के होता, सुरूपा, जलवती और सत्यस्वरूपा द्यावा-पृथिवी, यज्ञ की तरह, सत्य से उत्पन्न होता अग्नि के अनुकूल हैं।

११. अग्नि, तुम स्तोता को अनेक कर्मों के हेतुभूत और अनुगामी भूमि सदा दो। हमारे वंश का विस्तारक और सन्ततिजनयिता एक पुत्र दो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

अष्टम अध्याय समाप्त।

द्वितीय अष्टक समाप्त।

३ अष्टक

७ सूक्त

(३ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक । देवता अग्नि। ऋषि तृतीय मण्डल के विश्वामित्र और उनके वंशोद्भव । यहाँ से १२ सूक्त तक के ऋषि स्वयं विश्वामित्र । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. श्वेत पृष्ठवाले और सबके धारक अग्नि की जो किरणें उत्तमता के साथ उठती हैं, वे मातृ-पितृ-रूपा द्यावा-पृथिवी की चारों दिशाओं में प्रविष्ट होती हैं; सात नदियों में भी प्रविष्ट होती हैं । चारों ओर वर्त्तमान मातृ-पितृ-भूता द्यावा-पृथिवी भली भाँति फैली हैं और अच्छी तरह यज्ञ करने के लिए अग्नि को दीर्घजीवन प्रदान करती हैं ।

२. द्युलोकवासी धेनु ही अभीष्टवर्षी अग्नि का अश्व है । मधुर-जल-वाहिनी और प्रकाशवती नदियों में अग्नि निवास करते हैं । अग्नि, तुम ऋत या सत्य के गृह में रहना चाहते और अपनी ज्वाला देते हो । अग्नि, एक गौ या मध्यमिका वाक् तुम्हारी सेवा करती है ।

३. धनों में श्रेष्ठ धन के स्वामी, ज्ञानवान् और अधिपति अग्नि सुख से संगमनीय वड़वाओं में चढ़ गये । श्वेत पृष्ठवाले और चारों ओर प्रसृत अग्नि ने वड़वाओं को, सतत गमन करने के लिए, छोड़ दिया ।

४. बलकारिणी और प्रवहमाना नदियाँ अग्नि को धारण करती हैं । वे महान्, त्वष्टा के पुत्र, जरारहित और सारे संसार को धारण करने के अभिलाषी हैं । जैसे पुरुष एक स्त्री के पास जाता है, वैसे ही अग्नि जल के पास प्रदीप्त होकर द्यावा-पृथिवी में प्रवेश करते हैं ।

५. लोग अभीष्टवर्षी और अहिंसक अग्नि के आश्रय-जन्य सुख को जानते और महान् अग्नि की आज्ञा में रत रहते हैं। जिन मनुष्यों के श्रेष्ठ स्तुति-रूप वाक्य गणनीय होते हैं, वे द्युलोक के दीप्तिकर्त्ता और शोभन दीप्ति-युक्त होकर देदीप्यमान होते हैं।

६. महान् से भी महान् मातृ-पितृ-स्थानीय द्यावा-पृथिवी के ज्ञान के पश्चात् ऊँचे स्वर में की गई स्तुति से उत्पन्न सुख अग्नि के निकट जाता है। जलसेचनकर्त्ता अग्नि रात्रि के चारों ओर व्याप्त स्वकीय तेज स्तोता के पास भेजते हैं।

७. पाँच अध्वर्युओं के साथ सात होता गमनशील अग्नि के प्रिय स्थान की रक्षा करते हैं। सोमपान के लिए पूर्व की ओर जानेवाले अजर और सोम-रसवर्षी स्तोता लोग प्रसन्न होते हैं; क्योंकि देवता लोग देव-तुल्य स्तोताओं के यज्ञ में जाते हैं।

८. दैव्य-होतृ-द्वय-स्वरूप दो मुख्य अग्नियों को मैं अलंकृत करता हूँ। सात जन होता सोम-द्वारा प्रसन्न होते हैं। स्तोत्रकर्त्ता, यज्ञ-रक्षक और दीप्तिशाली होता लोग "अग्नि ही सत्य है," ऐसा कहते हैं।

९. हे देदीप्यमान और देवों को बुलानेवाले अग्नि, तुम महान्, सबको अतिक्रम करके रहनेवाले, नाना वर्णोंवाले और अभीष्टवर्षक हो। तुम्हारे लिए प्रभूत, अतीव विस्तृत और सर्वत्र व्याप्त ज्वालायें वृष के समान आचरण करती हैं। तुम मादयिता और ज्ञानी हो। तुम पूज्य देवों और द्यावा-पृथिवी को इस कर्म में बुलाते हो।

१०. सतत गमनशील अग्नि, जिस उषाकाल में भली भाँति अन्न-द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया जाता है, जो उषाकाल शोभन-वाक्ययुक्त तथा पक्षियों और मनुष्यों के शब्दों से सुचिह्नित है, वही सब उषाकाल तुम्हारे लिए धनयुक्त होकर प्रकाशित होते हैं। हे अग्नि, अपनी विशाल महिमा के कारण तुम यजमान के किये पाप का नाश करते हो।

११. अग्नि, स्तोता को तुम अनेक कर्मों की कारणभूता और धेनु-प्रदात्री भूमि अथवा गो-रूप देवता सदा प्रदान करो। हमें वंशविस्तारक

और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

८ सूक्त

(इस सूक्त के देवता यूप। ११ वीं ऋचा के छिन्न यूप के देवता मूलभूत स्थाणु। ८ म के देवता विश्वदेव या यूप। छठी ऋचा से लेकर सारी ऋचाओं के देवता विविध यूप। अवशिष्ट ऋचाओं के देवता एक यूप। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. वनस्पतिदेव, देवों के अभिलाषी अध्वर्यु लोग देव-सम्बन्धी मधु-द्वारा तुम्हें सिक्त करते हैं। तुम चाहे उन्नत भाव से रहो अथवा मातृ-भूत पृथिवी की गोद में ही शयन करो, हमें धन दो।

२. यूप, तुम समिद्ध अथवा आहवनीय नामक अग्नि की पूर्व दिशा में रहकर अजर, सुन्दर और अपत्ययुक्त अन्न देते हुए तथा हमारे पाप को दूर करते हुए महती सम्पत्ति के लिए उन्नत होओ।

३. वनस्पति, तुम पृथिवी के उन्नत यज्ञ-प्रदेश में उन्नत होओ। तुम सुन्दर परिमाण से युक्त हो। यज्ञ-निर्वाहक को अन्न दान करो।

४. वृक्षाङ्ग, सुन्दर जिह्वावाला तथा जिह्वा से परिवेष्टित यूप आता है। वह यूप ही, समस्त वनस्पतियों की अपेक्षा, उत्तम रूप से उत्पन्न है। ज्ञानी मेधावी लोग हृदय से देवों की इच्छा करके सुन्दर ध्यान के साथ उसे उन्नत करते हैं।

५. पृथिवी पर वृक्ष रूप से उत्पन्न यूप मनुष्यों के साथ यज्ञ में सुशोभित होकर दिनों को सुदिन करता है। कर्मनिष्ठ और विद्वान् अध्वर्यु लोग यथाबुद्धि उसी यूप को प्रक्षालन-द्वारा शुद्ध करते हैं। देवों के याजक और मेधावी होता वाक्य वा मन्त्र का उच्चारण करते हैं।

६. यूपो, देवाभिलाषी और कर्मों के नायक अध्वर्यु आदि ने तुम्हें गड्ढे में फेंक दिया है! वनस्पति, कुठार ने तुम्हें काटा है। तुम

दीप्तिमान् और काष्ठ-खण्डवाले हो। हमें अपत्य के साथ उत्तम धन दो।

७. जो फरसे से भूमि पर काटे जाते हैं, जो ऋत्विकों-द्वारा गड्ढे में फेंके जाते हैं और जो यज्ञ के साधक हैं, वे ही सब यूप देवों के पास हमारा हव्य ले जावें।

८. सुन्दर नायक आदित्य, रुद्र, वसु, द्यावा-पृथिवी और विस्तीर्ण अन्तरिक्ष, ये सब मिलकर यज्ञ की रक्षा करें और यज्ञ की ध्वजा यूप को उन्नत करें।

९. दीप्त वस्त्र से आच्छादित, हंस की तरह श्रेणीपूर्वक गमन करनेवाले और खण्ड-युक्त यूप हमारे पास आयें। मेधावी अध्वर्यु आदि के द्वारा यज्ञ की पूर्व दिशा में उन्नीयमान तथा दीप्तिशाली सारे यूप देवों का मार्ग प्राप्त करते हैं।

१०. स्वरूपवाले और मुक्तकण्टक यूप पृथिवी के शृङ्गी पशुओं की सींग की तरह भली भाँति दिखाई देते हैं। यज्ञ में ऋत्विकों की स्तुतियाँ सुननेवाले यूप युद्ध में हमारी रक्षा करें।

११. हे छिन्नमूल स्थाणु, इस तीखी धारवाले फरसे ने तुम्हें महान् सौभाग्य प्रदान किया है। तुम हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति उत्पन्न होओ। हम भी हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति प्रादुर्भूत हों।

९ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप् और बृहती।)

१. अग्नि, तुम जल के नप्ता, सुन्दर धनवाले, दीप्तिमान्, निरुपद्रवी और संसार के प्राप्तव्य हो। हम तुम्हारे मित्रभूत मनुष्य हैं। अपनी रक्षा के लिए तुम्हें हम वरण करते हैं।

२. अग्नि, तुम सारे वनों की रक्षा करते हो। तुम मातृ-रूप जल में पैठकर शान्त होओ। तुम्हारा शान्त भाव सदा नहीं सहा जाता; इसलिए तुम दूर में रहकर भी हमारे काठ के बीच उत्पन्न होते हो।

३. अग्नि, स्तोता की अभिलाषा को तुम विशेष रूप से वहन करने की इच्छा करते हो। तुम सन्तुष्ट रहते हो। तुम जिन १६ ऋत्विकों के साथ मित्रता के साथ रहते हो, उनमें से कुछ विशेष-रूप से होम करने के लिए जाते हैं; अवशिष्ट मनुष्य चारों ओर बैठते हैं।

४. गुहा-स्थित सिंह की तरह जल में छिपे हुए तथा शत्रुओं और बहुसेनाओं को हरानेवाले अग्नि को द्रोह-रहित और चिरन्तन विश्वदेवों ने प्राप्त किया था।

५. जैसे स्वच्छन्दगामी पुत्र को पिता खींच ले आता है, वैसे ही मातरिश्वा स्वेच्छा से छिपे हुए और मन्थन-द्वारा प्राप्त अग्नि को देवों के लिए लाये थे।

६. मनुष्यों के हितैषी और सदा तरुण अग्निदेव, अपनी महिमा से तुम सारे यज्ञ का विशेष रूप से पालन करते हो। इसलिए हे हव्यवाहन, मनुष्यों ने तुम्हें देवों के लिए ग्रहण किया है।

७. अग्नि, चूँकि सायंकाल में तुम्हारे समिद्ध होने पर तुम्हारे पास सारे पशु बैठते हैं; इसलिए तुम्हारा यह सुन्दर कर्म बालक की तरह अज्ञ को भी फलप्रदान करके सन्तुष्ट करता है।

८. पवित्र दीप्तिवाले, काष्ठादि के बीच सोये हुए और सुकर्मा अग्नि का होम करो। बहुव्याप्त, दूतस्वरूप, शीघ्रगामी, पुरातन, स्तुतियोग्य और दीप्तिमान अग्नि की शीघ्र पूजा करो।

९. तीन हजार तीन सौ उनतालीस देवों ने अग्नि की पूजा की है, घृत-द्वारा उन्हें सिक्त किया है और उनके लिए कुश विस्तृत किये हैं। पश्चात् उन्होंने अग्नि को होता मानकर कुशों के ऊपर बैठाया है।

१० सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द उष्णिक्।)

१. अग्निदेव, तुम प्रजाओं के अधिपति और दीप्तिमान् हो। तुम्हें बुद्धिमान् मनुष्य उद्दीप्त करते हैं।

२. अग्नि, तुम होता और ऋत्विक् हो। यज्ञ में अध्वर्यु तुम्हारी स्तुति करते हैं। यज्ञ के रक्षक होकर अपने गृह (यज्ञशाला) में दीप्त होओ।

३. अग्निदेव, तुम जातवेदा (प्राप्त-बुद्धि) हो। तुम्हें जो यजमान समिन्धनकारी हव्य प्रदान करते हैं, वह सुवीर्य पुत्र प्राप्त करते और पशु, पुत्र आदि के द्वारा समिद्ध होते हैं।

४. यज्ञ के प्रज्ञापक वही अग्नि सात होताओं-द्वारा सिक्त होकर, यजमान के लिए, देवों के साथ आयें।

५. ऋत्विको, मेधावी व्यक्तियों का तेज धारण करनेवाले, संसार के विधाता और देवों को बुलानेवाले अग्नि को लक्ष्य करके तुम लोग महान् और प्राचीन वाक्य का सम्पादन करो।

६. महान् अन्न और धन के लिए अग्नि दर्शनीय हैं। जिन वाक्य के द्वारा अग्नि प्रशंसनीय होते हैं, हमारा वही स्तुति-रूप वाक्य उन्हें वर्द्धित करे।

७. अग्नि, तुम यज्ञ-कर्त्ताओं में श्रेष्ठ हो। यज्ञ में यजमानों के लिए देवों का याग करो। अग्नि, तुम होता और यजमानों के हर्षदाता हो। तुम शत्रुओं को हराकर शोभा पा रहे हो।

८. पावक, तुम हमें कान्तिवाला और शोभन शक्तिवाला धन दो। स्तोताओं के कल्याण के लिए उनके पास जाओ।

९. अग्नि, हव्यवाहक, अमर और मंथन-रूप बल-द्वारा तुम वर्द्धमान हो। प्रबुद्ध मेधावी स्तोता लोग तुम्हें भली भाँति उद्दीप्त करते हैं।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द गायत्री।)

१. अग्निदेव होता, पुरोहित और यज्ञ के विशेष द्रष्टा हैं। वे यज्ञ को क्रमबद्ध जानते हैं।

२. हव्यवाहक, अमर, हव्याभिलाषी, देवों के दूत और अन्नप्रिय अग्नि प्रज्ञावान् हो रहे हैं।

३. यज्ञ के केतुस्वरूप और प्राचीन अग्नि, प्रज्ञा के बल से, सब कुछ जानते हैं। इन अग्नि का तेज अन्धकार का विनाश करता है।

४. बल के पुत्र, सनातन कहकर प्रसिद्ध तथा जातवेदा अग्नि को देवों ने हव्यवाहक किया है।

५. मनुष्यों के नेता, शीघ्रकारी, रथ के समान और सदा नवीन अग्नि की कोई हिंसा नहीं कर सकता।

६. सारी शत्रु-सेना के विजेता, शत्रुओं-द्वारा अवध्य और देवों के पोषणकर्त्ता अग्नि, यथेष्ट मात्रा में, विविध अन्नों से युक्त हैं।

७. हव्यदाता मनुष्य हव्यवाहक अग्नि-द्वारा सारे अन्न प्राप्त करता है। ऐसा मनुष्य पवित्रकारक और दीप्ति-विशिष्ट अग्नि के पास से गृह प्राप्त करता है।

८. हम मेधावी और जातवेदा अग्नि के स्तोत्रों-द्वारा समस्त अभिलषित धन प्राप्त कर सकें।

९. अग्नि, हम सारे अभिलषणीय धन प्राप्त कर सकें। देवता लोग तुम्हारे ही भीतर प्रविष्ट हुए हैं।

१२ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। छन्द गायत्री।)

१. हे इन्द्र और अग्नि, स्तुति-द्वारा आहूत होकर तुम लोग स्वर्ग से तैयार किये हुए और वरणीय इस सोम को लक्ष्य कर आओ। हमारी भक्ति के कारण आकर इस सोम का पान करो।

२. इन्द्र और अग्नि, स्तोता का सहायक, यज्ञ का साधक और इन्द्रियों का हर्ष-वर्द्धक सोम जाता है। इस अभिषुत सोम का पान करो।

३. यज्ञ के साधक सोम-द्वारा प्रेरित होकर स्तोताओं के सुखदाता इन्द्र और अग्नि की मैं सेवा करता हूँ। वे इस यज्ञ में सोमपान करके तृप्त हों।

४. मैं शत्रु-नाशक, वृत्रहन्ता, विजयी, अपराजित और प्रचुर परिमाण में अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्नि को बुलाता हूँ ।

५. हे इन्द्र और अग्नि, मन्त्र-शाली होकर लोग तुम्हारी पूजा करते हैं। स्तोत्र-ज्ञाता स्तोता लोग तुम्हारी अर्चना करते हैं। अन्न-प्राप्ति के लिए मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ ।

६. इन्द्र और अग्नि, तुम लोगों ने एक ही बार की चेष्टा से दासों के नब्बे नगरों को एक साथ कम्पित किया था ।

७. इन्द्र और अग्नि, स्तोता लोग यज्ञ के मार्ग का लक्ष्य करके हमारे कर्म के चारों ओर आते हैं ।

८. इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा बल और अन्न तुम दोनों के बीच में, एक साथ ही है। वृष्टि-प्रेरण-कार्य तुम्हीं दोनों के बीच निहित है ।

९. इन्द्र और अग्नि, तुम स्वर्ग के प्रकाशक हो। तुम युद्ध में सर्वत्र विभूषित होओ। तुम्हारी सामर्थ्य उस युद्ध-विजय को भली भाँति विदित करती है ।

१३ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि १३—१४ सूक्त के विश्वामित्र के पुत्र ऋषभ। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अध्वर्युओ, अग्निदेव को लक्ष्य करके यथेष्ट स्तुति करो। देवों के साथ वह हमारे पास आवें। याजक-श्रेष्ठ अग्नि कुश पर बैठें ।

२. जिनके वश में द्यावा-पृथिवी हैं, जिनके बल की सेवा देवता लोग करते हैं, उनका संकल्प व्यर्थ नहीं होता ।

३. वे ही मेधावी अग्नि इन यजमानों के प्रवर्त्तक हैं। वे यज्ञ के प्रवर्त्तक हैं। वे सबके प्रवर्त्तक हैं। अग्नि कर्मफल और धन के दाता हैं। तुम उन अग्नि की सेवा करो ।

४. वे अग्नि हमारे भोग के लिए अतीव सुखकर गृह प्रदान करें। समृद्धि-युक्त पृथिवी आकाश और स्वर्गलोक का धन अग्नि के पास से हमारे पास आवे।

५. स्तोता लोग दीप्तिमान्, प्रतिक्षण नवीन, देवों के आह्वानकारी और प्रजाओं के पालक अग्नि को श्रेष्ठ स्तुति-द्वारा उद्दीपित करते हैं।

६. अग्निदेव, स्तोत्र-समय में हमारी रक्षा करो। तुम देवों के प्रधान आह्वानकर्त्ता हो। मन्त्रोच्चारण-काल में हमारी रक्षा करो। तुम हजार धनों के दाता हो। मरुत लोग तुम्हें वर्द्धित करते हैं। तुम हमारे सुख की वृद्धि करो।

७. अग्नि, तुम हमें पुत्र-युक्त, पुष्टिकारक, दीप्तिमान्, सामर्थ्यशाली, अत्यधिक और अक्षय्य सहस्रसंख्यक धन दो।

१४ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवों को बुलानेवाले, स्तोताओं के आनन्दवर्द्धक, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकारी, अतीव मेधा और संसार के विधाता अग्नि हमारे यज्ञ में अवस्थान करते हैं। उनका रथ द्युतिमान् है। उनकी शिखा उनका केश है। वे बल के पुत्र हैं। वे पृथिवी पर प्रभा को प्रकट करते हैं।

२. यज्ञवान् अग्नि, तुम्हें लक्ष्य करके नमस्कार करता हूँ। तुम बलवान् और कर्मज्ञापक हो। तुम्हें लक्ष्य करके नमस्कार किया जाता है, उसे ग्रहण करो। हे यजनीय, तुम विद्वान् हो; विद्वानों को ले आओ। हमें आश्रय देने के लिए कुश पर बैठो।

३. अन्न-सम्पादक उषा और रात्रि तुम्हें लक्ष्य करके जाते हैं। अग्नि, वायुमार्ग से तुम उनके सम्मुख जाओ; क्योंकि ऋत्विक् लोग हव्य-

द्वारा पुरातन अग्नि को भली भाँति सिक्त करते हैं। युगद्वय की तरह परस्पर संसक्त उषा और रात्रि हमारे घर में बार-बार आकर रहें।

४. बलवान् अग्नि, मित्र, वरुण और सारे देवता तुम्हें लक्ष्य करके स्तोत्र करते हैं; क्योंकि हे बल के पुत्र अग्नि, तुम्हीं सूर्य या स्वामी हो। मनुष्यों की पथ-प्रदर्शक किरणों को फैलाकर प्रभा में समान स्थित हो।

५. अग्नि, आज हाथ उठाकर हम तुम्हें शोभन हव्य प्रदान करेंगे। तुम मेधावी हो। नमस्कार से प्रसन्न होकर तुम अपने मन में यज्ञाभिलाष करते हुए प्रभूत स्तोत्रों-द्वारा देवों की पूजा करो।

६. बल के पुत्र अग्नि, तुम्हारे पास से होकर यजमान के पास प्रभूत रक्षण जाता है; अन्न भी जाता है। प्रिय वचन-द्वारा तुम हमें अचल और सहस्र-संख्यक धन दो।

७. हे समर्थ, सर्वज्ञ और दीप्तिमान् अग्निदेव, हम मनुष्य हैं। हम तुम्हें उद्देश्य करके यज्ञ में यह जो हव्य देते हैं, हे अमर, वह सब हव्य तुम आस्वादित करो और सारे यजमानों की रक्षा करने के लिए जागरित होओ।

१५ सूक्त

(देवता अग्नि। १५ और १६ सूक्तों के ऋषि कतगोत्रोत्पन्न उत्कील। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्निदेव, विस्तीर्ण तेज के द्वारा तुम अतीव प्रकाशवान् हो। तुम शत्रुओं और रोग-रहित राक्षसों का विनाश करो। अग्निदेव उत्कृष्ट, सुखदाता, महान् और उत्तम आह्वानवाले हैं। मैं उनके ही रक्षण में रहूँगा।

२. अग्निदेव, तुम उषा के प्रकट होने और सूर्य के उदित होने पर हमारी रक्षा के लिए जागरित होओ। अग्निदेव, तुम स्वयम्भू हो। जैसे पिता पुत्र को ग्रहण करता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोम को ग्रहण करो।

३. अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम मनुष्यों के दर्शक हो। तुम अँधेरी रात में अधिक दीप्तिमान् होते हो। तुम बहुत ज्वाला विस्तृत करते हो। हे पिता, हमें कर्मफल प्रदान करो। हमारे पाप का निवारण करो। युवक अग्नि, तुम हमें धनाभिलाषी करो।

४. अग्नि, शत्रु लोग तुम्हें परास्त नहीं कर सकते। तुम अभीष्ट-वर्षक हो। तुम सारी शत्रु-पुरी और धन जीत करके प्रदीप्त होओ। हे सुप्रणीत और जातवेदा अग्नि, तुम महान्, आश्रयदाता और प्रथम यज्ञ के निर्वाहक होओ।

५. हे जगज्जीर्णकर्त्ता अग्निदेव, तुम सुमेधा और दीप्तिमान् हो। देवों के लिए तुम सारे कर्मों को छिद्र-रहित करो। अग्निदेव, तुम यहीं ठहरकर रथ की तरह देवों को लक्ष्य करके हमारा हव्य वहन करो। तुम द्यावा-पृथिवी को उत्तम रूप से युक्त करो।

६. अभीष्टवर्षक अग्नि, तुम हमें वर्द्धित करो। हमें अन्न प्रदान करो। हे देव, सुन्दर दीप्ति-द्वारा तुम सुशोभित होकर देवों के साथ हमारी द्यावा-पृथिवी को दोहन के योग्य बनाओ। मनुष्यों की दुर्बुद्धि हमारे पास न आये।

७. अग्निदेव, तुम स्तोता को अनेक कर्मों की कारणीभूत और धन-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-वर्द्धक और सन्तति-जनक एक पुत्र प्राप्त हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

१६ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द बृहती।)

१. अग्निदेव उत्तम सामर्थ्यवाले, महासौभाग्य के स्वामी, गौ आदि से युक्त, अपत्यवाले धन के अधिपति और वृत्रहन्ताओं के ईश्वर हैं।

२. नेता मरुतो, सौभाग्यवर्द्धक अग्नि में मिलो। अग्नि में सुख-वर्द्धक धन है। मरुद्गण सेनावाले संग्राम में शत्रुओं को परास्त करते हैं। वे सदा ही शत्रुओं की हिंसा करते हैं।

३. बहुधनशाली और अभीष्टवर्धक अग्नि, हमें तुम प्रभूत, प्रजायुक्त एवं आरोग्य, बल और सामर्थ्यवाला धन देकर तीक्ष्ण करो।

४. जो अग्नि संसार के कर्त्ता हैं, वे सारे संसार में अनुप्रविष्ट होते हैं। भार को सहन करके अग्निदेवों के पास हव्य ले आते हैं। अग्नि स्तोताओं के सामने आते हैं, यज्ञनेताओं के स्तोत्र में आते हैं और मनुष्यों के युद्ध में आते हैं।

५. बल के पुत्र अग्नि, तुम हमें शत्रुग्रस्त, वीर-शून्य, पशुहीन अथवा निन्दनीय नहीं करना। हमारे प्रति द्वेष मत करो।

६. सुभग अग्नि, तुम यज्ञ में प्रभूत और अपत्यशाली अन्न के अधीश्वर हो। हे महाधन, तुम हमें प्रभूत, सुखकर और यशोवर्द्धक धन दो।

१७ सूक्त

(देवता अग्नि। १७-१८ सूक्तों के ऋषि विश्वामित्र के अपत्य कत। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि धर्मधारक, ज्वालावाले केश से संयुक्त, सबके स्वीकरणीय दीप्ति-रूप, पवित्र और सुक्रतु हैं। वे यज्ञ के आरम्भ में क्रमशः प्रज्वलित होकर देवों के यज्ञ के लिए घृतादि-द्वारा सिक्त होते हैं।

२. अग्निदेव, तुमने जैसे पृथिवी को हव्य दिया था; हे जातवेदा, तुम सर्वज्ञ हो; द्युलोक को जैसे हव्य प्रदान किया था, वैसे ही हमारे हव्य के द्वारा देवों का यज्ञ करो। मनु के यज्ञ की तरह हमारे इस यज्ञ को पूर्ण करो।

३. हे जातवेदा, तुम्हारा अन्न आज्य, ओषधि और सोम के रूप से तीन प्रकार का है। हे अग्नि, एकाह, आहीन और सत्रगत नामक तीन उषा देवतायें तुम्हारी मातायें हैं। तुम उनके साथ देवों को हव्य प्रदान करो। तुम विद्वान् हो। तुम यजमान के सुख और कल्याण के कारण बनो।

४. जातवेदा, तुम दीप्तिशाली, सुदर्शन और स्तुति-योग्य अग्नि हो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। देवों ने तुम्हें आसक्ति-शून्य और हव्य-वाहक दूत बनाया है; अमृत की नाभि बनाया है।

५. अग्निदेव, तुमसे प्रथम और विशेष यज्ञ-कर्त्ता जो होता मध्यम और उत्तम नामक दो स्थानों पर, स्वधा के साथ, बैठकर सुखी हुए थे, हे सर्वज्ञ अग्नि, उनके धर्म को लक्ष्य करके विशेष रूप से यज्ञ करो। अनन्तर हे अग्नि, देवों की प्रसन्नता के लिए हमारे इस यज्ञ को धारण करो।

१८ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्निदेव, जैसे मित्र मित्र के प्रति और माता-पिता पुत्र के प्रति हितैषी होते हैं, वैसे ही हमारे सामने आने में प्रसन्न होकर हितैषी बनो। मनुष्यों के द्रोही मनुष्य हैं; इसलिए तुम विरुद्धाचारी शत्रुओं को भस्म-सात् करो।

२. अग्निदेव, अभिभवकर्त्ता शत्रुओं को भली भाँति बाधा दो। जो सब शत्रु हव्य दान नहीं करते, उनकी अभिलाषा व्यर्थ कर दो। निवास-दाता और सर्वज्ञ अग्नि, तुम चञ्चल-चित्त मनुष्यों को सन्तप्त करो। इसी लिए तुम्हारी किरणें अजर और बाधा-शून्य हों।

३. अग्नि, मैं धनाभिलाषी होकर तुम्हारे वेग और बल के लिए समिधा और घृत के साथ हव्य प्रदान करता हूँ। स्तोत्र-द्वारा तुम्हारी स्तुति करके मैं जब तक रहूँ, तब तक मुझे धन दो। इस स्तुति को अपरिमित धन दान के लिए दीप्त करो।

४. बल के पुत्र अग्नि, तुम अपनी दीप्ति से दीप्तिमान् बनो। स्तुत होकर तुम प्रशंसक विश्वामित्र के वंशधरों को धन-युक्त करो, प्रभूत अन्नदान करो तथा आरोग्य और अभय प्रदान करो। कर्मकारक अग्नि, हम लोग बार-बार तुम्हारे शरीर का परिमार्जन करेंगे।

५. दाता अग्नि, धनों में श्रेष्ठ धन प्रदान करो। जिस समय तुम समिद्ध होओ, उसी समय वैसा धन दो। भाग्यवान् स्तोता के गृह की ओर अपनी रूपवती दोनों भुजाओं को, धन देने के लिए, पसारो।

१९ सूक्त

(देवता अग्नि। १९—२२ सूक्तों के ऋषि कुशिक के अपत्य गाथी। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवों के स्तोता, मेधावी, सर्वज्ञ और अमूढ़ अग्नि को हम इस यज्ञ में होतृ-रूप से स्वीकार करते हैं। वे अग्नि सर्वापेक्षा यज्ञ-परायण होकर हमारे लिए देवों का यज्ञ करें। धन और अन्न के लिए वे हमारे हव्य का ग्रहण करें।

२. अग्नि, मैं हव्य-युक्त, तेजस्वी, हव्यदाता और घृतसमन्वित जुहू को तुम्हारे सामने प्रदान करता हूँ। देवों के बहुमानकर्त्ता अग्नि हमारे दातव्य धन के साथ प्रदक्षिणा करके यज्ञ में सम्मिलित हों।

३. अग्नि, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसका मन अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है। उसे उत्तम अपत्यवाला धन प्रदान करो। फलदानेच्छुक अग्नि, तुम अतीव धनदाता हो। हम तुम्हारी महिमा से रक्षित होंगे तथा तुम्हारी स्तुति करते हुए धनाधिपति होंगे।

४. द्युतिमान् अग्निदेव, यज्ञ-कर्त्ताओं ने तुममें प्रभूत दीप्ति प्रदान की है। अग्नि, चूँकि तुम यज्ञ में स्वर्गीय तेज की पूजा करते हो; इसलिए देवों को बुलाओ।

५. अग्निदेव, चूँकि यज्ञ के लिए बैठे हुए दीप्तिशाली ऋत्विक् लोग यज्ञ में तुम्हें होता कहकर सिक्त करते हैं; इसलिए तुम हमारी रक्षा के लिए जागो। हमारे पुत्रों को अधिक अन्न दो।

२० सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हव्यवाहक उषा के अधिकार दूर करते समय अग्निदेव उषा, अश्विनीकुमारों और दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) नामक देवता को ऋचा के द्वारा बुलाते हैं। सुन्दर द्युतिमान् और परस्पर मिलित देवता लोग हमारे यज्ञ की अभिलाषा करके उस ऋचा को सुनें।

२. अग्निदेव, तुम्हारा अन्न तीन प्रकार का है; तुम्हारा स्थान तीन प्रकार का है। यज्ञ-सम्पादक अग्नि, देवों की उदर-पूर्ति करनेवाली तुम्हारी तीन जिह्वायें हैं। तुम्हारे तीन प्रकार के शरीर देवों के द्वारा अभिलषित हैं। अप्रमत्त होकर तुम उन्हीं तीनों शरीरों के द्वारा हमारी स्तुति की रक्षा करो।

३. हे द्युतिमान्, जातवेदा, मरण-शून्य और अन्नवान् अग्नि, देवों ने तुम्हें अनेक प्रकार के तेज दिये हैं। हे संसार के तृप्तिकर्त्ता और प्रार्थित फलदाता अग्नि, मायावियों की जिन मायाओं को देवों ने तुम्हें प्रदान किया है, वह सब तुममें ही हैं।

४. ऋतुकर्त्ता सूर्य की तरह जो अग्निदेवों और मनुष्यों के नियन्ता हैं, जो अग्नि सत्यकारी, वृत्रहन्ता, सनातन, सर्वज्ञ और द्युतिमान् हैं, वे स्तोता को, सारे पापों को लँघाकर, पार ले जायें।

५. मैं दधिक्रा, अग्नि, देवी उषा, बृहस्पति, द्युतिमान् सविता, अश्विद्वय, भग, वसु, रुद्र और आदित्यों को इस यज्ञ में बुलाता हूँ।

२१ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती।)

१. जातवेदा अग्नि, हमारे इस यज्ञ को देवों के पास समर्पित करो। हमारे हव्य का सेवन करो। हे होता, बैठकर सबसे पहले मेद और घृत के बिन्दुओं को भली भाँति खाओ।

२. पावक, इस साङ्ग यज्ञ में घृत से दो बिन्दु तुम्हारे और देवों के पीने के लिए गिर रहे हैं। इसलिए हमें श्रेष्ठ और वरणीय धन दो।

३. भजनीय अग्निदेव, तुम मेधावी हो। घृतस्रावी सब बिन्दु तुम्हारे लिए हैं। तुम ऋषि और श्रेष्ठ हो। तुम प्रज्वलित होते हो। यज्ञ-पालक बनो।

४. हे सततगमनशील और शक्तिमान् अग्नि, तुम्हारे लिए मेदो-रूप हव्य के सब बिन्दु क्षरित होते हैं। कवि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। महान् तेज के साथ आओ। हे मेधावी, हमारे हव्य का सेवन करो।

५. अग्निदेव, हम अतीव सार-युक्त मेद, पशु के मध्य भाग से, उठाकर तुम्हें देंगे। निवासप्रद अग्नि, चमड़े के ऊपर जो सब बिन्दु तुम्हारे लिए गिरते हैं, वे देवों में से प्रत्येक को विभाग करके दो।

२२ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. सोमाभिलाषी इन्द्र ने जिस अग्नि में अभिषुत सोम को अपने उदर में रखा था, ये वे ही अग्नि हैं। हे सर्वज्ञ अग्नि, जो हव्य नाना-रूपवाला और अश्व की तरह वेगशाली है, उसकी तुम सेवा करो। संसार तुम्हारी स्तुति करता है।

२. यजनीय अग्नि, तुम्हारा जो तेज द्युलोक, पृथ्वी, ओषधियों को और जल में है, जिसके द्वारा तुमने अन्तरिक्ष को व्याप्त किया है, वह तेज उज्ज्वल, समुद्र के समान विशाल और मनुष्यों के लिए दर्शनीय है।

३. अग्नि, तुम द्युलोक के जल के सामने जा रहे हो, प्राणात्मक देवों को एकत्र करते हो। सूर्य के ऊपर अवस्थित रोचन नाम के लोक में और सूर्य के नीचे जो जल है, उन दोनों को तुम्हीं प्रेरित करते हो।

४. सिकता-संमिश्रित अग्नि, खोदाई करनेवाले हथियारों में मिलकर इस यज्ञ का सेवन करें। द्रोह-रहित, रोगादिशून्य और महान् अन्न हमें दान करें।

५. अग्नि, तुमने स्तोता को अनेक कर्मों की कारणभूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा दी। हमारे वंश का विस्तारक और सन्तति-जन-यिता एक पुत्र हो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

२३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरत के पुत्र देवश्रवा और देववात। छन्द बृहती और त्रिष्टुप्।)

१. जो अग्नि मन्थन-द्वारा उत्पन्न, यजमान के घर में स्थापित, युवा, सर्वज्ञ, यज्ञ के प्रणेता, जातवेदा और महारण्य का विनाश करके भी स्वयं अजर हैं, वे ही अग्नि इस यज्ञ में अमृत धारण करते हैं।

२. भरत के पुत्र देवश्रवा और देववात सुदक्ष और धनवान् अग्नि को मन्थन-द्वारा उत्पन्न करते हैं। अग्निदेव, तुम बहुत धन के साथ हमारी ओर देखो और प्रतिदिन हमारा अन्न ले आओ।

३. दस अंगुलियों ने इन पुरातन और कमनीय अग्नि को उत्पन्न किया है। हे देवश्रवा, अरणिरूप माताओं के बीच सुजात और प्रिय तथा देववात-द्वारा उत्पादित अग्नि की स्तुति करो। वे ही अग्नि लोगों के वशवर्ती होते हैं।

४. अग्नि, सुदिन (प्रधान-देव-पूजा-दिन) की प्राप्ति के लिए गो-रूपिणी पृथ्वी के उत्कृष्ट स्थान में तुम्हें हम स्थापित करते हैं। अग्निदेव, तुम दृषद्वती (राजपूताने की सिकता में विनष्ट घग्घर नदी), आपया (कुरुक्षेत्रस्थ नदी) और सरस्वती (कुरुक्षेत्रीय सरस्वती नदी) के तटों पर रहनेवाले मनुष्यों के गृह में धन-युक्त होकर दीप्त होओ।

५. अग्नि, तुम स्तोता को अनेक कर्मों के कारण और धेनुप्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्नि, हमारे ऊपर तुम्हारा अनुग्रह हो।

२४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि २४-२५ के विश्वामित्र। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री)

१. अग्नि, तुम शत्रु-सेना को पराभूत करो। विघ्न-कर्त्ताओं को दूर कर दो। तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। तुम शत्रुओं को जीत-कर यजमान को अन्न दो।

२. अग्नि, तुम यज्ञ में प्रीतमान और अमर हो। तुम्हें उत्तरवेदी पर प्रज्वलित किया जाता है। तुम हमारे यज्ञ की भली भाँति सेवा करो।

३. अग्नि, तुम अपने तेज से सदा जागरित हो। तुम बल के पुत्र हो। मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरे इस कुश पर बैठो।

४. अग्नि, जो तुम्हारे पूजक हैं, उनके यज्ञ में समस्त तेजस्वी अग्नियों के साथ स्तुति की मर्यादा की रक्षा करो।

५. अग्नि, तुम हव्यदाता को वीर्ययुक्त और प्रभूत धन दो। हम पुत्र-पौत्रवाले हैं। हमें तीक्ष्ण करो।

२५ सूक्त

(देवता चतुर्थ ऋचा के इन्द्र और अग्नि; शेष के अग्नि। छन्द विराट्।)

१. अग्निदेव, तुम सर्वज्ञ, धनवान्, द्युदेवता के पुत्र और पृथ्वी के तनय हो। चेतनावान् अग्नि, तुम देवों के इस यज्ञ में पृथक्-पृथक् यज्ञ करो।

२. विद्वान् अग्नि सामर्थ्य प्रदान करते हैं। अग्नि अपने को विभूषित करके देवों को अन्न प्रदान करते हैं। हे बहुविधि अन्नवाले अग्नि, हमारे लिए देवों को इस यज्ञ में ले आओ।

३. सर्वज्ञ, जगत्पति, बहुदीप्ति-युक्त, बल और अन्नवाले अग्नि संसार की माता, द्युतिमती और मरण-शून्या द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं।

४. अग्नि, तुम और इन्द्र यज्ञ की हिंसा न करके अभिषव-प्रदाता इस गृह में सोमपान के लिए आओ।

५. बल के पुत्र, नित्य और सर्वज्ञ अग्नि, आश्रयदान-द्वारा तुम जीवलोकों को अलंकृत करते हुए जल के स्थान अन्तरिक्ष में सुशोभित होते हो।

२६ सूक्त

(ऋषि ४, ६, ८ और १० मन्त्रों की नदी, अवशिष्ट के विश्वामित्र। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. हम कुशिक-गोत्रोद्भूत हैं। धन की अभिलाषा से हव्य को संग्रह करते हुए भीतर ही भीतर वैश्वानर अग्नि को जानकर स्तुति-द्वारा उन्हें बुलाते हैं। वे सत्य के द्वारा अनुगत हैं; स्वर्ग का विषय जानते हैं; यज्ञ का फल देते हैं; उनके पास रथ है; वे यज्ञ में आते हैं।

२. आश्रय-प्राप्ति और यजमान के यज्ञ के लिए उन शुभ्र, वैश्वानर, मातरिश्वा (विद्युद्रूप) ऋचायोग्य, यज्ञपति, मेधावी, श्रोता, अतिथि और क्षिप्रगामी अग्नि को हम बुलाते हैं।

३. हिनहिनानेवाला घोड़े का बच्चा जैसे अपनी माता के द्वारा वर्द्धित होता है, वैसे ही प्रतिदिन वैश्वानर अग्नि कौशिकों के द्वारा

वर्द्धित होते हैं। देवों में जागरूक अग्नि हमें उत्तम अश्व, उत्तम वीर्य और उत्तम धन प्रदान करें।

४. अग्नि-रूप अश्वगण गमन करें; बली मरुतों के साथ मिलकर पृषती (वाड़व) वाहनों को संयुक्त करें। सर्वज्ञ और अहिंसनीय मरुद्गण अधिक जलशाली और पर्वतसदृश मेघ को कम्पित करते हैं।

५. मरुद्गण अग्नि के आश्रित और संसार के आकर्षक हैं। उन्हीं मरुतों के दीप्त और उग्र आश्रय के लिए हम भली भाँति याचना करते हैं। वर्षण-रूप-धारी, हरेषा (हिनहिनाना)-शब्द-कारी और सिंह के समान गरजनेवाले मरुद्गण विशेषरूप से जल देते हैं।

६. दल के दल और झुण्ड के झुण्ड स्तुतिमंत्रों-द्वारा अग्नि के तेज और मरुत् के बल की हम याचना करते हैं। बिन्दु-चिह्नित अश्व (पृषती) वाले और अक्षय धन-संयुक्त तथा धीर मरुद्गण हव्य के उद्देश्य से यज्ञ में जाते हैं।

७. मैं अग्नि या परब्रह्म जन्म से ही जातवेदा या परतत्त्व-रूप हूँ। घृत या प्रकाश ही मेरा नेत्र है। मेरे मुख में अमृत है। मेरे प्राण त्रिविध (वायु-सूर्य-दीप्ति) हैं। मैं अन्तरिक्ष को मापनेवाला हूँ। मैं अक्षय उत्ताप हूँ। मैं हव्य-रूप हूँ।

८. अन्तःकरण-द्वारा मनोहर ज्योति को भली भाँति जानकर अग्नि ने अग्नि-वायु-सूर्य-रूप तीन पवित्र स्वरूपों से पूजनीय आत्मा को शुद्ध किया है। अग्नि ने अपने रूपों-द्वारा अपने को अतीव रमणीय किया था तथा दूसरे ही क्षण द्यावा-पृथिवी को देखा था।

९. शत धारवाले स्रोत की तरह अविच्छिन्न प्रवाहवाले, विद्वान् पालक, वाक्यों का मेल करानेवाले माता-पिता की गोद में प्रसन्न और सत्यवादी (विश्वामित्र के उपाध्याय वा अग्नि) को, हे द्यावा-पृथिवी, तुम पूर्ण करो।

२७ सूक्त

(देवता प्रथम ऋचा के ऋतु या अग्नि; शेष के अग्नि। ऋषि यहाँ से ३२ सूक्त तक के विश्वामित्र। छन्द गायत्री।)

१. ऋतुओ, स्रुक् और हविवाले देवता, पशु, मास, अर्द्ध मास आदि तुम्हारे यजमान के लिए सुख की इच्छा करते हैं और यजमान देवों को प्राप्त करता है।

२. मेधावी, यज्ञ-निर्वाहक, वेगवान् और धनवान् अग्नि की, स्तुति-वचनों के द्वारा, मैं पूजा करता हूँ।

३. दीप्तिमान् अग्निदेव, हव्य तैयार करके तुम्हें हम यहीं रख सकेंगे और पाप से उत्तीर्ण होंगे।

४. यज्ञ के समय प्रज्वलित, ज्वालावाले केश से संयुक्त, पावक तथा पूजनीय अग्नि के पास हम अभिलषित फल की याचना करते हैं।

५. प्रभूत तेजवाले, मरण-शून्य, घृतशोधन-कर्त्ता और सम्यक् पूजित अग्नि यज्ञ का हव्य ले जायें।

६. यज्ञ-विघ्न-नाशक और हव्ययुक्त ऋत्विकों ने स्रुक को संयत करके आश्रय-प्राप्ति के लिए, एवं प्रकार स्तुति के द्वारा उन अग्नि को अपने अभिमुख किया था।

७. होम-निष्पादक, अमर और द्युतिमान् अग्नि यज्ञ-कार्य में लोगों को उत्तेजित करके यज्ञ-कार्य की अभिज्ञता के सहयोग से अग्रगन्ता होते हैं।

८. बलवान् अग्नि युद्ध में आगे स्थापित किये जाते हैं। यज्ञ-काल में वे यथास्थान निक्षिप्त होते हैं। वे मेधावी और यज्ञ-सम्पादक हैं।

९. जो अग्नि कर्मद्वारा वरणीय हैं, भूतों के गर्भ-रूप से अवस्थित हैं; पितृ-स्वरूप हैं, उन्हीं अग्नि को दक्ष की पुत्री (यज्ञ-भूमि) धारण करती हैं।

१०. बल-सम्पादित अग्नि, तुम उत्कृष्ट दीप्ति से युक्त, हव्याभिलाषी और वरणीय हो। तुम्हें दक्ष की तनया इला (वेदी-रूपा भूमि) धारण करती हैं।

११. मेधावी भक्त लोग संसार के नियामक और जल के प्रेरक अग्नि को, यज्ञ के सम्पादन के लिए, अन्न-द्वारा, भली भाँति उद्दीप्त करते हैं।

१२. अन्न के नप्ता, अन्तरिक्ष के पास दीप्तिमान् और सर्वज्ञ अग्नि की वा यज्ञ की मैं स्तुति करता हूँ।

१३. पूजनीय, नमस्कार-योग्य, दर्शनीय और अभीष्टवर्षी अग्नि अन्धकार को दूर करते हुए प्रज्वलित होते हैं।

१४. अभीष्टवर्षी और अश्व की तरह देवों के हव्यवाहक अग्नि प्रज्वलित होते हैं। हविष्मान् अग्नि की मैं पूजा करता हूँ।

१५. अभीष्टवर्षी अग्नि, हम घृत आदि का सेचन करते हैं, तुम जल का सेचन करते हो। हम तुम्हें दीप्त करते हैं। तुम दीप्तिमान् और बृहत् हो।

२८ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप् और जगती।)

१. जातवेदा अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र ही धन-प्रदायक है। प्रातः-सवन में तुम हमारे पुरोडाश और हव्य की सेवा करो।

२. युवतम अग्नि, तुम्हारे लिए पुरोडाश का पाक किया गया है; उसे संस्कृत किया गया है, तुम उसका सेवन करो।

३. अग्नि, दिनान्त में सम्यक् प्रदत्त पुरोडाश का भक्षण करो। तुम बल के पुत्र हो, यज्ञ में निहित होओ।

४. हे जातवेदा और मेधावी अग्नि, माध्यन्दिन सवन में पुरोडाश का सेवन करो। धीर अध्वर्यु लोग यज्ञ में तुम्हारा भाग नष्ट नहीं करते। तुम महान् हो।

५. बल के पुत्र अग्नि, तृतीय सवन में दिये गये पुरोडाश की तुम अभिलाषा करो। अनन्तर अविनाशी, रत्नवान् और जागरणकारी सोम को, स्तुति के साथ अमर देवों के पास, स्थापित करो।

६. जातवेदा अग्नि, दिन के अन्त में तुम पुरोडाश-रूप आहुति का सेवन करो।

२९ सूक्त

(देवता अग्नि। छन्द अनुष्टुप्, जगती और त्रिष्टुप्।)

१. यही अग्निमन्थन और उत्पत्ति के साधन हैं। संसार-रक्षक अरणि को ले आओ। पहले की तरह हम अग्नि का मन्थन करेंगे।

२. गर्भिणी के गर्भ की तरह जातवेदा अग्नि काष्ठ (अरणि)-द्वय में निहित हैं। अपने कर्म में जागरूक और हवि से युक्त अग्नि मनुष्यों के प्रतिदिन पूजनीय हैं।

३. हे ज्ञानवान् अध्वर्यु, ऊर्ध्वमुख अरणि पर अधोमुख अरणि रखो। सद्यो गर्भयुक्त अरणि ने अभीष्टवर्षी अग्नि को उत्पन्न किया। उसमें अग्नि का दाहकत्व था। उज्ज्वल तेज से युक्त इला के पुत्र अग्नि अरणि में उत्पन्न हुए।

४. जातवेदा अग्नि, हम तुम्हें पृथ्वी के ऊपर, उत्तर वेदी के नाभि-स्थल में, हव्य वहन करने के लिए स्थापित करते हैं।

५. नेता अध्वर्युगण, कवि, द्वैध-शून्य, प्रकृष्ट ज्ञानवान्, अमर, सुन्दर शरीरवाले अग्नि को मन्थन-द्वारा उत्पन्न करो। नेता अध्वर्युगण यज्ञ के सूचक, प्रथम और सुखदाता अग्नि को कर्म के प्रारम्भ में उत्पन्न करो।

६. जिस समय हाथों से मन्थन किया जाता है, उस समय काष्ठ से अग्नि, अश्व की तरह, सुशोभित होकर तथा द्रुतगामी अश्विद्वय के विचित्र रथ की तरह शीघ्र गन्ता होकर शोभा धारण करते हैं। कोई

भी अग्नि का मार्ग नहीं रोक सकता। अग्नि ने तृण और उपल को भस्म कर उस स्थान को छोड़ दिया।

७. उत्पन्न अग्नि भी सर्वज्ञ, अप्रतिहतगमन और कर्म-कुशल हैं; इसलिए मेधावी लोग उनकी स्तुति करते हैं। यह कर्म-फल प्रदान करके शोभा प्राप्त करते हैं। देवता लोगों ने पूजनीय और सर्वज्ञ अग्नि को यज्ञ में हव्यवाहक किया था।

८. होम-निष्पादक अग्नि, अपने स्थान पर बैठो। तुम सर्वज्ञ हो। यजमान को पुण्यलोक में स्थापित करो। तुम देवों के रक्षक हो। हव्य के द्वारा देवों की पूजा करो। मैं यज्ञ करता हूँ; मुझे यथेष्ट अन्न प्रदान करो।

९. अध्वर्युगण, अभीष्टवर्षी धूम उत्पन्न करो। तुम सबल होकर युद्ध के सामने जाओ। अग्नि वीर-प्रधान और सेना-विजेता हैं। इन्हीं की सहायता से देवों ने असुरों को परास्त किया था।

१०. अग्नि, ऋतु-काष्ठ (पलाश-अश्वत्थादि)-वान् यह अरणि तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान है। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्राप्त करो। उसे जानकर तुम बैठ जाओ। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्राप्त करो। तुम वह जानकर उपवेशन करो। हमारी स्तुति को वर्द्धित करो।

११. गर्भस्थ अग्नि को तनूनपात् कहा जाता है। जिस समय अग्नि प्रत्यक्ष होते हैं, उस समय वह आसुर (असुर-हन्ता अथवा अरणि-रूप-काष्ठ-पुत्र) नराशंस (अग्नि-नाम) होते हैं। जिस समय अन्तरिक्ष में तेज का विकाश करते हैं, उस समय मातरिश्वा (अग्नि-नाम) होते हैं। अग्नि के प्रसूत होने पर वायु की उत्पत्ति होती है।

१२. अग्नि, तुम मेधावी और मन्थन के द्वारा उत्पन्न हो। तुम्हें अत्युत्तम स्थान में स्थापित किया गया है। हमारा यज्ञ निर्विघ्न करो और देवाभिलाषी के लिए देवों की पूजा करो।

१३. मर्त्य ऋत्विक् लोगों ने अमर, अक्षय, दृढ़-दन्त-विशिष्ट और पाप-तारक अग्नि को उत्पन्न किया है। पुत्र-सन्तान की तरह उत्पन्न

अग्नि को लक्ष्य कर भगिनी-स्वरूप दस अँगुलियाँ, परस्पर मिलकर, आनन्द-सूचक शब्द करती हैं।

१४. अग्नि सनातन हैं। जिस समय सात मनुष्य उनका हवन करते हैं, उस समय वे शोभा पाते हैं। जिस समय वे माता के स्तन और क्रोड़ पर शोभा पाते हैं, उस समय देखने में वे सुन्दर मालूम पड़ते हैं। वे प्रतिदिन सजग रहते हैं; क्योंकि वे असुर के जठर से उत्पन्न हुए हैं।

१५. मरुतों के समान शत्रुओं के साथ युद्ध करनेवाले और ब्रह्मा से प्रथम उत्पन्न कुशिक-गोत्रोत्पन्न ऋषि लोग निश्चय ही सारा संसार जानते हैं। अग्नि को लक्ष्य करके हव्य-युक्त स्तोत्र का पाठ करते हैं। वे लोग अपने-अपने गृह में अग्नि को दीप्त करते हैं।

१६. होम-निष्पादक, विद्वान् और सर्वज्ञ अग्नि, इस प्रवर्तित यज्ञ में तुम्हें हम वरण करते हैं; इसलिए तुम इस यज्ञ में देवों को हव्य प्रदान करो। नित्य स्तव करो। सोम की बात को जानकर उसके पास आओ।

प्रथम अध्याय समाप्त।

३० सूक्त

(द्वितीय अध्याय। ३ अनुवाक। देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, सोमार्ह ऋत्विक् लोग तुम्हारी स्तुति करने की इच्छा करते हैं। सखा लोग तुम्हारे लिए सोम का अभिषवण करते हैं; कुछ हव्य धारण करते हैं; शत्रुओं की हिंसा को सहते हैं। तुम्हारी अपेक्षा संसार में कौन अधिक प्रसिद्ध है ?

२. हे हरिवर्ण अश्ववाले इन्द्र, दूरस्थ स्थान भी तुम्हारे लिए दूर नहीं है। हरिवर्ण अश्व से युक्त होकर शीघ्र आओ। तुम दृढ़चित्त

और अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे ही लिए यह सब सवन किया गया है। अग्नि के समिद्ध होने पर, सोमाभिषव के लिए, प्रस्तर-खण्ड प्रयुक्त हुए हैं।

३. अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम परम ऐश्वर्यवाले हो। तुम्हारा शिप्र (शिरस्त्राण) सुन्दर है। तुम धनवान्, विजेता, महान् मरुद्गणवाले, संग्राम में नानाविधि कर्म करनेवाले, शत्रुहिंसक और भयंकर हो। संग्राम में बाधा प्राप्त करके मनुष्यों के प्रति तुमने जो वीर्य धारण किया है, तुम्हारा वह वीर्य कहाँ है?

४. इन्द्र, अकेले ही तुमने दृढ़मूल राक्षसों को उनके स्थानों से गिराया है। वृत्रादि को मारा है। तुम्हारी आज्ञा से द्यावा-पृथिवी और पर्वत अचल हैं।

५. इन्द्र, तुम बहुत लोगों के द्वारा आहूत और वीर्ययुक्त हो। अकेले ही तुमने वृत्र का वध करके देवों को जो अभय वाक्य प्रदान किया था, वह ठीक है। मघवन्, तुम अपार द्यावा-पृथिवी को संयोजित करते हो। तुम्हारी ऐसी महिमा प्रख्यात है।

६. इन्द्र, तुम्हारा अश्ववाला रथ शत्रु को लक्ष्य करके निम्नमार्ग से शीघ्र आगमन करे। शत्रु को वध करते-करते तुम्हारा वज्र आये। अपने सामने आनेवाले शत्रुओं का विनाश करो। भागनेवाले शत्रुओं का वध करो। संसार को यज्ञ-युक्त करो। तुम्हारे अन्दर ऐसी सामर्थ्य निविष्ट हो।

७. इन्द्र, तुम निरन्तर ऐश्वर्य को धारण करते हो। तुम जिस मनुष्य को दान करते हो, वह पहले अप्राप्त गृह-सम्बन्धीय पशु, सुवर्ण आदि धन प्राप्त करता है। अनेक लोकों से आहूत, घृत, हव्य आदि से युक्त तुम्हारा अनुग्रह कल्याणवाही होता है। तुम्हारी धन देने की शक्ति असीम है।

८. अनेक लोकों से आहूत इन्द्र, तुम दानवीर के साथ वर्त्तमान हो। बाधक और गर्जनशील वृत्र को हस्तहीन करके चूर्ण-विचूर्ण कर

डालते हो। इन्द्र, वर्द्धमान और हिंस्र वृत्र को पाद-हीन करके तुमने बल से विनष्ट किया था।

९. इन्द्र, तुमने महती, अनन्ता और चला पृथिवी को समभावापन्न करके उसके स्थान में निविष्ट किया था। अभीष्टवर्षक इन्द्र ने, द्युलोक और अन्तरिक्ष जैसे पतित न हो, इस प्रकार धारण किया है। इन्द्र, तुम्हारा प्रेरित जल पृथिवी पर आये।

१०. इन्द्र, अतीव हिंसक बल नाम का गोव्रज अथवा गोष्ठभूत मेघ वज्र-प्रहार के पहले ही डरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। गौ के निकलने के लिए इन्द्र ने मार्ग सुगम कर दिया था। रमणीय शब्दायमान जल अनेक लोकों से आहूत इन्द्र के सम्मुख आया था।

११. अकेले इन्द्र ने ही पृथिवी और द्युलोक को परस्पर संगत और धनयुक्त करके परिपूर्ण किया है। शूर, तुम रथवाले हो। हमारे पास रहने के अभिलाषी होकर योजित अश्वों को अन्तरिक्ष से हमारे सामने प्रेरित करो।

१२. सूर्य इन्द्र-द्वारा प्रेरित हैं। वे अपने गमन के लिए प्रकाशित दिशाओं का प्रतिदिन अनुसरण करते हैं। जिस समय वह अश्व के द्वारा अपना मार्ग-गमन समाप्त कर देते हैं, तब हमें छोड़ देते हैं—यह भी इन्द्र के ही लिए।

१३. गमनशील रात्रि के पश्चात् उषा के गत होने पर सब लोक महान् तथा विचित्र सूर्य-तेज का दर्शन करने की इच्छा करते हैं। जिस समय उषाकाल विगत हो जाता है, उस समय सब अग्निहोत्र आदि कर्म को कर्त्तव्य समझने लगते हैं। इन्द्र के कितने ही सत्कार्य हैं।

१४. इन्द्र ने नदियों में महान् तेजवाला जल स्थापित किया है। इन्द्र ने जल से स्वादुतर दधि, घृत, क्षीर आदि, भोजन के लिए गौ में संस्थापित किया है। नवप्रसूता गौ दुग्ध धारण करके विचरण करती है।

१५. इन्द्र तुम दृढ़ बनो। शत्रुओं ने मार्ग बन्द किया है। यज्ञ और स्तुति करनेवाले तथा सखा लोगों को अभीष्ट फल प्रदान करो। शत्रुओं का वध करना उचित है। वे धीरे-धीरे जाते और हथियार फेंकते हैं। वे हत्यारे और तूणीरवाले हैं।

१६. इन्द्र, हम समीपस्थ शत्रुओं-द्वारा छोड़ा हुआ वज्र-नाद सुनते हैं। अतीव सन्ताप देनेवाली इन सब अशनियों को इन सब शत्रुओं के सामने ही रखकर इनका विनाश करो; समूल छेदन करो; विशेष रूप से बाधा दो; अभिभूत करो। इन्द्र, राक्षसों का वध करो; पीछे यज्ञ सम्पन्न करो।

१७. इन्द्र, राक्षस-कुल का समूल उन्मूलन करो। उनका मध्य भाग छेदो; अग्रभाग विनष्ट करो। गमनशील राक्षस को दूर करो। यज्ञ-विद्वेषी (ब्राह्मण-शत्रु) के प्रति सन्तापप्रद अस्त्र फेंको।

१८. संसार के निर्वाहक इन्द्र, हमें अश्व से युक्त करो। हमें अविनाशी करो। तुम जब हमारे निकट रहोगे, तब हम महान् अन्न और प्रभूत धन का भोग करके बड़े हो सकेंगे। हमें पुत्र, पौत्र आदि से युक्त धन प्राप्त हो।

१९. इन्द्र, हमारे लिए दीप्ति से युक्त धन ले आओ। तुम दानशील हो और हम तुम्हारे दान के पात्र हैं। हमारी अभिलाषा बड़वानल की तरह बढ़ी हुई है। धनपति, हमारी अभिलाषा पूर्ण करो।

२०. हमारी इस अभिलाषा को गौ, अश्व और दीप्तिवाले धन के द्वारा पूर्ण करो तथा उसके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकनन्दनों ने मन्त्र-द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

२१. स्वर्गाधिपति इन्द्र, मेघ को विदीर्ण करके हमें जल दो। उपभोग के योग्य अन्न हमारे पास आये। अभीष्टवर्षक, तुम द्युलोक को व्याप्त करके स्थित हो। सत्यबल मघवन्, हमें गौ दो।

२२. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्ध में उत्साह के द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता; उग्र, युद्ध में शत्रु-विनाशी और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

३१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि इषीरथ के अपत्य कुशिक अथवा विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. पुत्रहीन पिता रेतोधा जामाता को सम्मानयुक्त करते हुए शास्त्र के अनुशासन के अनुसार पुत्री से उत्पन्न पौत्र (दौहित्र) के पास गया। अपुत्र पिता, पुत्री को गर्भ रहेगा, ऐसा विश्वास करके शरीर धारण करता है।

२. औरस पुत्र पुत्री को धन नहीं देता। वह पुत्री को उसके भर्त्ता (पति) के रेतःसेचन का आधार बनाता है। यदि माता-पिता पुत्र और कन्या, दोनों का ही उत्पादन करते हैं, तब उनमें से एक (पुत्र) उत्कृष्ट क्रिया-कर्म का अधिकारी होता है और दूसरा (पुत्री) सम्मानयुक्त होता है।

३. इन्द्र, तुम दीप्ति-युक्त हो। तुम्हारे यज्ञ के लिए ज्वाला-द्वारा कम्पमान अग्नि ने यथेष्ट-पुत्ररूप रश्मियों को उत्पन्न किया है। इन रश्मियों का जल-रूप गर्भ महान् है; ओषधि-रूप जन्म महान् है। हे हर्यश्व, तुम्हारी सोमाहुति-द्वारा प्रयुक्त इन रश्मियों की प्रवृत्ति महती है।

४. विजेता मरुद्गण वृत्र के साथ युद्ध करनेवाले इन्द्र के साथ संगत हुए थे। सूर्य-संज्ञक महान् तेज तमोरूप वृत्र से निर्गत होता है, इस बात को मरुतों ने जाना था। उषायें, इन्द्र को सूर्य समझ करके, उनके सामने गई थीं। अकेले इन्द्र सारी रश्मियों के पति हुए थे।

५. धीमान् और मेधावी सात अङ्गिरा लोगों ने सुदृढ़ पर्वत पर रोकी हुई गायों को खोज निकाला था। वे, पर्वत पर गायें हैं, ऐसा निश्चय करके जिस मार्ग से वहाँ गये थे, उसी मार्ग से लौट आये। उन्होंने यज्ञ-मार्ग में सारी गायों को प्राप्त किया था। यह सब जानकर इन्द्र, नमस्कार-द्वारा, अङ्गिरा लोगों की सम्भावना करके पर्वत पर गये थे।

६. जिस समय सरमा पर्वत के टूटे हुए द्वार पर पहुँची, उस समय इन्द्र ने अपने कहे हुए यथेष्ट अन्न को, अन्यान्य सामग्रियों के साथ, उसे दिया। अच्छे पैरोंवाली सरमा शब्द पहचानकर सामने जाते हुए अक्षय्य गायों के पास पहुँच गई।

७. अतीव मेधावी इन्द्र अङ्गिरा लोगों की मित्रता की इच्छा से गये थे। पर्वत ने महायोद्धा के लिए अपने गर्भस्थ गोधन को बाहर कर दिया। शत्रु-हन्ता इन्द्र ने तरुण मरुतों के साथ उन्हें प्राप्त किया। अङ्गिरा ने तुरत उनकी पूजा की।

८. जो इन्द्र उत्तम पदार्थ के प्रतिनिधि हैं, जो समर-भूमि में अग्र-गामी हैं, जो सब उत्पन्न पदार्थों को जानते हैं, जिन्होंने शुष्ण का वध किया था, वे ही दूरदर्शी और गोधन के अभिलाषी इन्द्र, द्युलोक से सम्मान करते हुए, हमें पाप से बचायें।

९. भीतर ही भीतर गोधन की प्राप्ति की इच्छा करके, स्तोत्र के द्वारा अमरता प्राप्त करने की युक्ति करते हुए यज्ञ-कार्य में लगे थे। इनके इस यज्ञ में यथेष्ट उपवेशन हैं। इन्होंने इस सत्यभूत यज्ञ के द्वारा महीनों को अलग करने की इच्छा की थी।

१०. अङ्गिरा लोग अपने गोधन को लक्ष्य करके पहले के उत्पन्न पुत्र की रक्षा के लिए दूध दुहकर हृष्ट हुए थे। उनकी आनन्दध्वनि द्यावा-पृथिवी में व्याप्त हुई थी। पहले की ही तरह वे संसार में अवस्थित हुए थे। गायों की रक्षा के लिए वीर पुरुष को नियुक्त किया था।

११ सहायता के लिए, मरुतों के साथ, इन्द्र ने वृत्र का वध किया था। वे ही पूजनीय और होम-योग्य हैं। मरुतों के साथ गायों का, यज्ञ के लिए, दान किया था। घृत-युक्त-हव्य-धारिणी, प्रभूत-हव्य-दात्री और प्रशस्ता गौ ने इनके लिए स्वादुतर क्षीर आदि दिया था।

१२. अङ्गिरा लोगों ने पालक इन्द्र के लिए महान् और दीप्तिमान् स्थान-संस्कार किया था। सुकर्म-शाली अङ्गिरा लोगों ने इन्द्र के उपयुक्त इस स्थान को विशेष रूप से दिखा दिया था। यज्ञ में बैठकर उन लोगों ने जनयित्री द्यावा-पृथिवी को स्तम्भ-रूप अन्तरिक्ष-द्वारा रोककर वेगवान् इन्द्र को द्युलोक में संस्थापित किया था।

१३. द्यावा-पृथिवी के परस्पर विश्लिष्ट होने पर यदि महान् स्तुति इन्द्रदेव को तत्क्षणात् वृद्धि-प्राप्त और धारण-क्षम करे, तो इन्द्र के प्रति दोष-रहित स्तुति सङ्गत हो। फलतः इन्द्र का सारा बल स्वभावसिद्ध है।

१४. इन्द्र, मैं तुम्हारी महती मित्रता के लिए प्रार्थना करता हूँ। तुम्हारी शक्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ। तुम वृत्र-हन्ता हो। तुम्हारे पास अनेक अश्व वहन करने के लिए आते हैं। तुम विद्वान् हो। हम तुम्हें महत्सख्य, स्तोत्र और हव्य प्रदान करेंगे। इन्द्र, तुम हमारे रक्षक हो, ऐसा जानना।

१५. भली भाँति समझकर इन्द्र ने मित्रों को महान् क्षेत्र और यथेष्ट हिरण्य दान किया है। इसके अनन्तर उन्होंने उन लोगों को गौ आदि भी दान किया है। वे दीप्तिमान् हैं। उन्होंने नेता मरुद्गण के साथ सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्नि को उत्पन्न किया है।

१६. शान्तमना इन इन्द्र ने विस्तीर्ण, परस्पर सङ्गत और संसार के आनन्ददायक जल को उत्पन्न किया है। वह माधुर्ययुक्त सोम-समूह को पवित्र (जल-परिष्कारक) अथवा अग्नि, सूर्य और वायु के

द्वारा शोभित करके और सारे संसार को प्रसन्न करके दिन-रात संसार को अपने व्यापार में प्रेरित करता है।

१७. सूर्य की महिमा से सारे पदार्थों के धारण-कर्ता और यज्ञार्ह दिन-रात क्रमानुसार घूम रहे हैं। ऋजुगति, मित्र-भूत और कमनीय मरुद्‌गण शत्रु को परास्त करने के लिए तुम्हारी शक्ति का अनुसरण करने योग्य होते हैं।

१८. वृत्रहन्ता इन्द्र, तुम अविनाशी, अभीष्टवर्षी और अन्नदाता हो। हमारी प्रियतम स्तुति के स्वामी बनो। तुम महान् हो। यज्ञ में तुम जाने के अभिलाषी हो। महान् आश्रय और कल्याण-वाहिनी मैत्री के लिए हमारे सामने आओ।

१९. इन्द्र, तुम पुरातन हो। अङ्गिरा लोगों की तरह मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करने के लिए अभिनवता लाता हूँ। तुम देवरहित द्रोहियों को मार डालते हो। इन्द्र, हमें उपभोग के योग्य धन दो।

२०. इन्द्र, पवित्र जल चारों ओर फैला है। हमारे लिए अविनाशी जल-समूह के तीर को जल से पूर्ण करो। तुम रथवाले हो। हमें शत्रु से बचाओ। हमें शीघ्र गायों के विजेता करो।

२१. वृत्रहन्ता और गायों के स्वामी इन्द्र हमें गौ दान करें। कृष्णों अथवा यज्ञ-विघातक असुरों को दीप्ति-युक्त तेज के द्वारा विनष्ट करें। उन्होंने सत्य-वचन से अङ्गिरा लोगों को प्रियतम गायें दान करके सारे द्वारों को बन्द कर दिया था।

२२. इन्द्र, तुम अन्न-लाभकर्त्ता, युद्ध में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध धन-वान्, प्रभूत-ऐश्वर्ययुक्त नेतृ-श्रेष्ठ स्तुति-श्रवणकर्त्ता, उग्र, संग्राम में शत्रु-विनाशकारी और धन-जेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए तुम्हें बुलाता हूँ।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. सोमपति इन्द्र, इस माध्यन्दिन सवन के अवसर पर तुम सोम-पान करो; क्योंकि यह तुम्हारा प्रिय है । हे धनवान् और ऋजीष सोम से युक्त इन्द्र, दोनों घोड़ों को रथ से खोलकर और उनके जबड़ों को घास से पूर्ण करके इस यज्ञ में उन्हें प्रसन्न करो ।

२. इन्द्र, गव्यसंयुक्त और मन्थन-सम्पन्न नूतन सोम का पान करो । तुम्हारे हर्ष के लिए हम उसे दान करते हैं । स्तोता मरुतों और रुद्रों के साथ जब तक तृप्ति न हो, तब तक सोम-पान करो ।

३. इन्द्र, जो मरुद्गण तुम्हारे शत्रु-शोषक तेज को बढ़ाते हैं, वे ही मरुद्गण तुम्हारा बल वर्द्धित करते हैं; वे ही मरुद्गण स्तुति करके तुम्हारी युद्ध-शक्ति को बढ़ाते हैं । वज्रहस्त, शोभन-शिरस्त्राण-युक्त इन्द्र, माध्यन्दिन सवन में रुद्रों के साथ सोम-पान करो ।

४. मरुद् लोग इन्द्र के सहायक हुए थे, वृत्र समझता था कि, मेरा रहस्य कोई नहीं जानता । परन्तु मरुतों के द्वारा प्रेरित होकर इन्द्र ने वृत्र का रहस्य जाना था । ये ही मरुद्गण तुम्हारे लिए शीघ्र माधुर्य युक्त उत्साह-वाक्य बोले थे ।

५. इन्द्र, मनु के यज्ञ की तरह तुम मेरे इस यज्ञ का सेवन करते हुए शाश्वत बल के लिए सोम-पान करो । हर्यश्व, यज्ञ-योग्य मरुतों के साथ तुम आओ । गमनशील मरुतों के साथ अन्तरिक्ष से जल प्रेरित करो ।

६. इन्द्र, चूँकि तुम दीप्तिमान् जल के आवरणकर्त्ता हो, दीप्ति-शून्य और सोये हुए वृत्र को, युद्ध में, निहत किया है; इसलिए तुमने युद्ध-समय में अश्व की तरह जल को छोड़ दिया है ।

७. फलतः हम हव्य-द्वारा प्रवृद्ध और महान्, अजर और नित्य-तरुण स्तोतव्य इन्द्र की पूजा करते हैं । परिमाणशून्य, द्यावा-पृथिवी यज्ञार्ह इन्द्र की महिमा को परिमित नहीं कर सकती ।

८. सारे देवगण इन्द्र के कर्म—सुकृत और बहुतर यज्ञादि—की हिंसा नहीं कर सकते। इन्द्रदेव भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष-लोक को धारण किये हुए हैं। उनका कर्म रमणीय है। उन्होंने सूर्य और उषा को उत्पन्न किया है।

९. दौरात्म्य-शून्य इन्द्र, तुम्हारी महिमा ही वास्तविक महिमा है; क्योंकि तुम उत्पन्न होकर ही सोम-पान करते हो। तुम बलवान् हो। स्वर्गादि लोक तुम्हारे तेज का निवारण नहीं कर सकते; दिन, मास और वर्ष भी नहीं निवारण कर सकते।

१०. इन्द्र, उत्पन्न होने के साथ ही तुमने सर्वोच्च स्वर्गप्रदेश में रहकर तुरत आनन्द-प्राप्ति के लिए सोम-पान किया था। जिस समय तुम द्यावा-पृथिवी में अनुप्रविष्ट हुए हो, उसी समय तुम प्राचीन सृष्टि के विधाता हुए हो।

११. इन्द्र, तुमसे अनेक उत्पन्न हुए हैं। जो अहि अपने को बलवान् समझकर जल को परिवेष्टित किये था, उसी अहि को प्रवृद्ध होकर तुमने विनष्ट किया है। परन्तु जिस समय तुम पृथिवी को एक कटि में छिपाकर अवस्थान करते हो, उस समय स्वर्ग तुम्हारी महिमा की समानता नहीं कर सकता।

१२. इन्द्र, हमारा यज्ञ तुम्हारी वृद्धि करता है। जिस कार्य में सोम अभिषुत होता है, वह तुम्हारा प्रिय है। हे यज्ञ-योग्य, यज्ञ के लिए अपने यजमान की तुम रक्षा करो। अहि का विनाश करने के लिए यह यज्ञ तुम्हारे वज्र को दृढ़ करे।

१३. पुरातन, मध्यतन और अधुनातन स्तोत्र-द्वारा जो इन्द्र वर्द्धित होते हैं, उन्हीं इन्द्र को यजमान, रक्षक यज्ञ के द्वारा, अपने सामने ले आता है; नये धन के लिए उन्हें आवर्तित करता है।

१४. जभी मैं मन-ही-मन इन्द्र की स्तुति करने की इच्छा करता हूँ, तभी स्तुति करता हूँ। मैं दूरवर्ती अशुभ दिन के पहले ही इनकी स्तुति करता हूँ। इन्द्र हमें दुःख के पार ले जायें। इसी लिए दोनों

तटों के रहनेवाले लोग जैसे नौकारोही को पुकारते हैं, वैसे ही हमारे मातृ-पितृ-कुलों के लोग इन्द्र को पुकारते हैं।

१५. इन्द्र का कलस पूर्ण हुआ है; पानार्थ स्वाहा शब्द का उच्चारण हुआ है। जैसे जल-सेक्ता जल-पात्र में जल-सेक करता है, वैसे ही मैं सोम का सेचन करता हूँ। सुस्वादु सोम प्रदक्षिण करता हुआ इन्द्र के सम्मुख, उनकी प्रसन्नता के लिए, गमन करता है।

१६. बहुलोकाहूत इन्द्र, गम्भीर सिन्धु तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता। उसके चारों ओर वर्त्तमान उपसागर तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता; क्योंकि बन्धुओं-द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर तुमने अति प्रबल गव्य उर्व (बड़वानल या अवरोधक वृत्र) का निवारण कर डाला है।

१७. इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक, युद्ध में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-सम्पन्न नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवणकर्त्ता, उग्र, संग्राम में शत्रुविनाशी और धनजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

३३ सूक्त

(ऋषि ४, ६, ८ और १० मन्त्रों की नदी, अवशिष्ट के विश्वामित्र। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. जलप्रवाहवती विपाशा (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) नाम की दो नदियाँ पर्वत की गोद से सागरसङ्गमाभिलाषिणी होकर घोड़साल से विमुक्त घोड़ियों की तरह स्पर्द्धा करती हुईं, दो गायों के समान सुशोभित होकर वत्सलेहाभिलाषिणी हो, गायों की तरह वेग से समुद्र की तरफ़ जाती हैं।

२. नदीद्वय, तुम्हें इन्द्र प्रेरित करते हैं। तुम उनकी प्रार्थना सुनती हो। दो रथियों की तरह समुद्र की ओर जाती हो। तुम एक साथ

प्रवाहित होकर, तरङ्ग-द्वारा वर्द्धित होकर, परस्पर आस-पास जाती हुई सुशोभित हो रही हो।

३. मातृ-तुल्य सिन्धु नदी के पास उपस्थित हुआ हूँ, परम सौभाग्य-वती विपाशा के पास उपस्थित हुआ हूँ। ये दोनों वत्स को चाटने की इच्छावाली गायों की तरह एक स्थान की ओर जाती हैं।

४. हम (दोनों नदियाँ) इस जल से घुलकर देवकृत स्थान के सामने जाती हैं। हमारे गमन का उद्योग बन्द होनेवाला नहीं है। किस लिए यह विप्र हम दोनों नदियों को पुकारता है।

५. जलवती नदियो, मेरे (विश्वामित्र के) सोम-सम्पादक वचन के लिए एक क्षण के लिए, गमन से विरत होओ। मैं कुशिक का पुत्र हूँ; प्रसन्नता के लिए महती स्तुति के द्वारा नदियों को, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए बुलाता हूँ।

६. नदियों के परिवेष्टक वृत्र को मारकर वज्रबाहु इन्द्र ने हम दोनों नदियों को खोदा है। जगत्प्रेरक, सुहस्त और द्युतिमान् इन्द्र ने हमें प्रेरित किया है। इन्द्र की आज्ञा से हम प्रभूत होकर जाती हैं।

७. इन्द्र ने जिस अहि (वृत्र) को विदीर्ण किया था, उनके उस वीर कार्य का सदा कीर्तन करना चाहिए। इन्द्र ने चारों ओर आसीन अवरोधक लोगों को वज्र से विनष्ट किया था। गमनाभिलाषी जल आया था।

८. हे स्तोता, तुम यह जो वाक्य-घोषणा करते हो, उसे नहीं भूलना। भविष्यत् यज्ञ-दिन में मन्त्र-रचना करके तुम हमारी सेवा करो। हम (दोनों नदियाँ) तुम्हें नमस्कार करती हैं। हमें पुरुष की तरह प्रगल्भ नहीं करना।

९. हे भगिनीभूत नदीद्वय, मैं (विश्वामित्र) स्तुति करता हूँ; सुनो। मैं दूर देश से रथ और अश्व लेकर आता हूँ। तुम निम्नस्थ बनो, ताकि मैं पार हो जाऊँ। नदीद्वय, स्रोतवत् जल के साथ रथचक्र के अधोदेश में गमन करो।

१०. स्तोता, हमने (दो नदियों ने) तुम्हारी सारी बातें सुनीं। तुम दूर से आये हो; इसलिए रथ और शकट के साथ गमन करो। जैसे पुत्र को स्तन-पान कराने के लिए माता और जैसे मनुष्य को आलिङ्गन करने के लिए युवती स्त्री, अवनत होती हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे लिए अवनत होती हैं।

११. नदीद्वय, चूँकि भरत-कुलोत्पन्न तुम्हें पार करेंगे, चूँकि पार जाने के इच्छुक भरतवंशीय लोग इन्द्र-द्वारा प्रेरित और तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर पार होंगे, चूँकि ये लोग पार होने की चेष्टा करते हैं और तुम्हारी अनुमति पा चुके हैं, इसलिए मैं (विश्वामित्र) सर्वत्र तुम्हारी स्तुति करूँगा। तुम यज्ञार्ह हो।

१२. गोधनाभिलाषी भरतवंशीय लोग पार हो गये; ब्राह्मण लोग नदियों की सुन्दर स्तुति करते हैं। तुम अन्न-कारिणी और धन-समन्विता होकर छोटी-छोटी नदियों को तृप्त और परिपूर्ण करो तथा शीघ्र गमन करो।

१३. नदीद्वय, तुम्हारी तरङ्ग इस प्रकार प्रवाहित हो कि युगकील उसके ऊपर रहे; तुम लोग रज्जु को नहीं छूना। पाप-शून्या, कल्याण-कारिणी और अनिन्दनीया विपाशा और शुतुद्री इस समय न बढ़ें।

३४ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. पुरभेदी, महिमावाले और धनशाली इन्द्र ने शत्रुओं को मारते हुए, तेज के द्वारा, दास को जीता है। स्तोत्र-द्वारा आकृष्ट, वर्द्धित-शरीर और बहु-अस्त्रधारी इन्द्र ने द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण किया है।

२. इन्द्र, तुम पूजनीय और बलवान् हो। तुम्हें अलंकृत करके, अन्न के लिए, तुम्हारी प्रेरित स्तुति का उच्चारण करता हूँ। तुम मनुष्यों और देवों के अग्रगामी हो।

३. इन्द्र, तुम्हारा कर्म प्रसिद्ध है। तुमने वृत्र को रोका था। शत्रुओं के आक्रमण-निवारक इन्द्र ने मायावियों का, विशेष रूप से, वध किया था। शत्रुवधाभिलाषी इन्द्र ने वन में छिपे स्कन्ध-हीन शत्रु का विनाश किया है। उन्होंने राम्यों या रात्रियों की गायों को आविष्कृत किया है।

४. स्वर्गदाता इन्द्र ने दिन को उत्पन्न करके युद्धाभिलाषी अङ्गिरा लोगों के साथ परकीय सेना का अभिभव करके परास्त किया है। मनुष्य के लिए दिन के पताका-स्वरूप सूर्य को प्रदीप्त किया था। महायुद्ध के लिए ज्योति प्रकट हुई।

५. बहुत धन का ग्रहण करके बाधादात्री और वर्द्धमान शत्रु-सेना के बीच इन्द्र बैठे। स्तोता के लिए, उन्होंने, उषा को चैतन्य प्रदान किया और उनके शुक्रवर्ण तेज को वर्द्धित किया।

६. इन्द्र महान् हैं। उपासक लोग उनके प्रभूत सत्कर्मों की प्रशंसा करते हैं। बल-द्वारा वे बलवानों को चूर-चूर करते हैं। पराभव-कर्त्ता ज्यासम्पन्न इन्द्र ने, माया-द्वारा, दस्युओं को चूर्ण किया है।

७. देवों के पति और मानवों के वर-प्रदाता इन्द्र ने महायुद्ध में धन प्राप्त करके स्तोताओं को दान दिया। मेधावी स्तोता लोग यजमान के घर में मन्त्र-द्वारा इन्द्र की कीर्त्ति की प्रशंसा करते हैं।

८. स्तोता लोग सबके जेता, वरणीय, जलप्रद, स्वर्ग और स्वर्गीय जल के स्वामी इन्द्र के आनन्द में आनन्दित होते हैं। इन्द्र ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को दान कर दिया है।

९. इन्द्र ने अश्व का दान किया है, सूर्य का दान किया है, अनेक लोगों के उपभोग के योग्य गोधन दान किया है, सुवर्णमय धन दान किया है तथा दस्युओं का वध करके आर्यवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों) की रक्षा की है।

१०. इन्द्र ने ओषधिप्रदान किया है, दिन दिया है, वनस्पति और अन्तरिक्ष प्रदान किया है। उन्होंने मेघ को भिन्न किया है, विरोधियों का वध किया है, जो युद्ध करने सामने आये, उनका वध किया है।

११. इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्ति-कर्त्ता हो, युद्ध में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान् हो, प्रभूत-वैभव-सम्पन्न हो, नेतृश्रेष्ठ हो, स्तुति-श्रोता हो, उग्र हो, संग्राम में अरि-मर्दन और धन-जेता हो। आश्रयप्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

३५ सूक्त

(देवता इन्द्र। छन्द त्रिष्टुप्)

१. इन्द्र, हरि नाम के दोनों अश्व रथ में योजित किये जाते हैं। जैसे वायु अपने नियुत नामक अश्वों की प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही तुम भी इन दोनों की कुछ क्षण प्रतीक्षा करके हमारे सामने आओ। हमारा दिया सोम पियो। हम स्वाहा शब्द का उच्चारण करके, तुम्हारे आनन्द के लिए, सोम दान करते हैं।

२. अनेक लोकों में आहूत इन्द्र के शीघ्र गमन के लिए रथ के अग्र भाग में द्रुतगामी अश्वद्वय को हम संयोजित करते हैं। विधिवत् अनुष्ठित इस यज्ञ में अश्वद्वय इन्द्र को ले आयें।

३. अभीष्टवर्षक और अन्नवान् इन्द्र, अपने वीर्यवान् और शत्रुभयत्राता अश्वद्वय को हमारे निकट ले आओ। तुम इस यजमान की रक्षा करो। रक्तवर्ण हरि नाम के अश्वद्वय को इस देव-यजन स्थान में छोड़ दो। वे खावें। तुम समान रूपवाले उपयुक्त धान्य अथवा भूँजे हुए जौ का भक्षण करो।

४. इन्द्र, मन्त्र-द्वारा तुम्हारे अश्वद्वय योजित होते हैं तथा युद्ध में जिनकी समान प्रसिद्धि है, उन्हीं दोनों अश्वों को मन्त्र-द्वारा हम योजित करते हैं। इन्द्र, तुम विद्वान् हो। तुम समझकर सुदृढ़ और सुखकर रथ पर आरोहण करके सोम के पास आओ।

५. इन्द्र, दूसरे यजमान तुम्हारे वीर्यवान् और कमनीय पृष्ठों-वाले हरिद्वय को आनन्दित करें हम अभिषुत सोम के द्वारा, यथेष्ट रीति से, तुम्हारी तृप्ति करेंगे। तुम अनेक यजमानों को अतिक्रम करके शीघ्र आओ।

६. यह सोम तुम्हारा है। इसके सामने आओ। प्रसन्न-वदन होकर इस प्रभूत सोम का पान करो। इन्द्र, इस यज्ञ में कुश के ऊपर बैठकर इस सोम को जठर में रखो।

७. इन्द्र, तुम्हारे लिए कुश फैलाये गये हैं। सोम अभिषुत हुआ है। तुम्हारे अश्वद्वय के भोजन के लिए धान्य तैयार है। तुम्हारा आसन कुश है; अनेक लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे पास मरुत्सेना है। तुम्हारे लिए हव्य विस्तृत है।

८. इन्द्र, तुम्हारे लिए अध्वर्युगण, प्रस्तर और जल ने इस सोम-द्रव्य को मधुररस-विशिष्ट किया है। दर्शनीय और विद्वान् इन्द्र, प्रसन्न वदन से अपनी हितकर स्तुति को जान करके सोम-पान करो।

९. इन्द्र, सोम-पान-समय में जिन मरुतों को तुम सम्मानान्वित करते हो, युद्ध में जो तुम्हें वर्द्धित करते और तुम्हारे सहायक होते हैं, उन्हीं सब मरुतों के साथ सोमपानाभिलाषी होकर अग्नि की जिह्वा द्वारा सोमपान करो।

१०. यजनीय इन्द्र, स्वधा अथवा अग्नि की जिह्वा-द्वारा अभिषुत सोमपान करो। शक्र, अध्वर्यु के हाथ से प्रदत्त सोम अथवा होता के भजनीय हव्य का सेवन करो।

११. इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक युद्ध में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रोता, उग्र, संग्राम में शत्रु-हन्ता और धनजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

३६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि केवल १० म ऋचा के अंगिरा के वंशज घोर । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. इन्द्र, धन-दान के लिए मरुतों के साथ सदा आकर विशेष रूप से प्रस्तुत सोम को धारण करो । जो इन्द्र विशाल कर्म के कारण प्रसिद्ध हैं, वे प्रत्येक सोमाभिषव में पुष्टिकर हव्य-द्वारा वर्द्धित हुए हैं ।

२. पूर्व समय में इन्द्र को लक्ष्य करके सोम दिया गया था, जिससे इन्द्र कालात्मक, दीप्त और महान् हुए हैं । इन्द्र, तुम इस प्रदत्त सोम को ग्रहण करो । स्वर्गादि फल देनेवाले और प्रस्तर-द्वारा अभिषुत सोम का पान करो ।

३. इन्द्र पान करो और परिपुष्ट बनो। तुम्हारे लिए प्राचीन और नवीन सोम अभिषुत हुआ है । इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो । जैसे तुमने प्राचीन सोम का पान किया था, वैसे ही इस क्षण में नूतन सोम का पान करो ।

४. जो इन्द्र अतीव शक्तिशाली हैं, जो समर-भूमि में शत्रुओं के विजेता हैं, जो शत्रुओं के आह्वानकर्त्ता हैं, उन्हीं इन्द्र का उग्र बल और दुर्धर्ष तेज सर्वत्र विस्तृत हो रहा है । जिस समय हर्यश्व इन्द्र को सोमरस हृष्ट करता है, उस समय पृथिवी और स्वर्ग भी इन्द्र को धारण नहीं कर सकते ।

५. बली, उग्र, अभीष्ट-वर्षक और दाता इन्द्र, वीर कीर्त्ति के लिए, प्रवृद्ध हुए हैं, स्तोत्र के साथ मिल गये हैं । इन्द्र की सब गायों ने दुग्धदायी होकर जन्म लिया है । इन्द्र का दान बहुत है ।

६. जिस समय नदियाँ स्रोत का अनुकरण करके दूरस्थ समुद्र की ओर जाती हैं, उस समय रथों की भाँति जल भागता है। ठीक इसी भाँति वरणीय इन्द्र इस अन्तरिक्ष से अभिषुत लता-खण्ड-रूप अल्प सोम की ओर दौड़ते हैं ।

७. समुद्र सङ्गमाभिलाषिणी नदियाँ जैसे समुद्र को पूर्ण करती हैं, वैसे ही अध्वर्युलोग इन्द्र के लिए अभिषुत सोम का सम्पादन करते हुए हस्त-द्वारा लता का दोहन करते और प्रस्तर-द्वारा धारारूप मधुर सोम-रस का शोधन करते हैं।

८. इन्द्र का उदर तालाब के समान सोम का आधार है। वह एक ही साथ अनेक यज्ञों को व्याप्त करते हैं। इन्द्र ने प्रथम भक्षणीय सोम आदि का भक्षण किया है; अनन्तर वृत्र को निहत करके देवों को भाग दे दिया है।

९. इन्द्र, शीघ्र धन दो। तुम्हारे इस धन को कौन रोक सकता है! हम तुम्हें धनाधिपति जानते हैं। तुम्हारे पास जो पूजनीय धन है, उसे हमें दो।

१०. इन्द्र, ऋजीषी (उच्छिष्ट) सोमवाले इन्द्र, तुम सबके वरणीय हो, हमें प्रभूत धन दो। जीने के लिए हमें सौ वर्ष दो। सुन्दर जबड़ोंवाले इन्द्र, हमें बहु वीर पुत्र दो।

११. इन्द्र, तुम अन्नप्रापक यज्ञ में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान्, प्रभूत वैभववाले, नेतृवर, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, प्रचण्ड, युद्ध में शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो। आश्रय पाने के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

३७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. इन्द्र, वृत्र-विनाशक बल की प्राप्ति और शत्रु-सेना के पराभव के लिए तुम्हें हम प्रवर्त्तित करते हैं।

२. शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे मन और चक्षु को प्रसन्न करके स्तोता लोग हमारे सामने तुम्हें प्रेरित करें।

३. शतक्रतु इन्द्र, अभिमानी शत्रुओं के पराभवकर्त्ता युद्ध में हम सारी स्तुतियों से तुम्हारा नामकीर्त्तन करेंगे।

४. इन्द्र सबकी स्तुति के योग्य, असीम तेजवाले और मनुष्यों के स्वामी हैं। हम उनकी स्तुति करते हैं।

५. इन्द्र, वृत्र का विनाश करने और युद्ध में धन-प्राप्ति के लिए बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र का हम आह्वान करते हैं।

६. शतक्रतु इन्द्र, युद्ध में तुम शत्रुओं के पराभव-कर्त्ता हो। हम, वृत्र के विनाश के लिए, तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

७. इन्द्र, जो धन, युद्ध, वीर-निचय और बल में हमारे अभिमानी शत्रु हैं, उन्हें पराजित करो।

८. शतक्रतु, हमारे आश्रय-लाभ के लिए अत्यन्त बलवान्, दीप्ति-युक्त और स्वप्न-निवारक सोम पान करो।

९. शतक्रतु, पञ्च जनों में जो सब इन्द्रियाँ हैं, उनको हम तुम्हारी ही समझते हैं।

१०. इन्द्र, प्रभूत अन्न तुम्हारे निकट जाय। शत्रुओं का दुर्धर्ष अन्न हमें प्रदान करो। हम तुम्हारे उत्कृष्ट बल को वर्द्धित करेंगे।

११. शक्र इन्द्र, निकट अथवा दूर देश से हमारे पास आओ। वज्रवान इन्द्र, तुम्हारा जो उत्कृष्ट स्थान है, वहीं से इस यज्ञ में आओ।

३८ सूक्त

(देवता इन्द्र और इन्द्रावरुण। ऋषि विश्वामित्र-गोत्रीय प्रजापति अथवा वाच-गोत्रीय प्रजापति अथवा विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तोता, त्वष्टा की तरह, इन्द्र की स्तुति को जागरित करो। उत्कृष्ट, भारवाही और द्रुतगामी अश्व की तरह कर्म में प्रवृत्त होकर तथा इन्द्र के प्रिय कर्म के विषय पर चिन्ता कर मैं, मेधावान् होते हुए, स्वर्गगत कवियों को देखने की इच्छा करता हूँ।

२. इन्द्र, कवियों के जन्म के सम्बन्ध में उन गुरुओं से पूछो, जिन्होंने मनःसंयम और पुण्य कार्य-द्वारा स्वर्ग का निर्माण किया था। इस समय

इस यज्ञ में तुम्हारे लिए प्रणीत स्तुतियाँ वृद्धिङ्गत होकर, मन की तरह, वेग से जाती हैं।

३. इस भूलोक में, सर्वत्र, कवियों ने गूढ़ कर्म का निधान करके पृथिवी और स्वर्ग को, बल-प्राप्ति के लिए, अलंकृत किया है। उन्होंने मात्राओं या मूलतत्त्वों के द्वारा पृथिवी और स्वर्ग का परिमाण किया है। उन्होंने परस्पर-मिलिता, विस्तीर्णा और महती द्यावा-पृथिवी को सङ्गत किया है और द्यावा-पृथिवी के बीच में, धारणार्थ, अन्तरिक्ष को स्थापित किया है।

४. सारे कवियों ने रथस्थित इन्द्र को विभूषित किया है। स्वभावतः दीप्तिमान् इन्द्र दीप्ति से आच्छादित होकर स्थित हैं। अभीष्ट-वर्षी और असुर इन्द्र की कीर्ति अद्भुत है। विश्वरूप धारण करके वे अमृत में अवस्थित हैं।

५. अभीष्टवर्षक, सनातन और सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ने जल-सृष्टि की है। इस प्रभूत जल ने उनकी पिपासा को रोका है। स्वर्ग के पौत्र-स्वरूप और शोभायमान इन्द्र और वरुण द्युतिमान् यज्ञकर्त्ता की स्तुति से लाभ-योग्य धन, हमारे लिए, धारण करते हैं।

६. राजा इन्द्र और वरुण, व्यापक और सम्पूर्ण सवन-त्रय को इस यज्ञ में अलंकृत करो। इन्द्र, तुम यज्ञ में गये थे; क्योंकि मैंने इस यज्ञ में वायु की तरह केश-विशिष्ट गन्धर्वों को देखा था।

७. जो यजमान लोग अभीष्टदाता इन्द्र के लिए गौओं के भोग-योग्य हव्य को शीघ्र दुहते हैं, जिनके अनेक नाम हैं, उन्होंने नवीन असुर-बल को धारण करते हुए तथा माया का विकाश करते हुए अपने-अपने रूप को इन्द्र को समर्पित किया था।

८. सूर्य की स्वर्णमयी दीप्ति की कोई सीमा नहीं कर सकता। इस दीप्ति के जो आश्रय हैं, उत्तम स्तुति-द्वारा स्तुत होकर जैसे माता सन्तान का आलिङ्गन करती है, वैसे ही सर्व-व्यापक द्यावा-पृथिवी को आलिङ्गित करते हैं।

९. इन्द्र और वरुण, तुम दोनों प्राचीन स्तोता का कल्याण करो अर्थात् उसको स्वर्गीय मङ्गल-रूप श्रेय दो। हमें चारों ओर से बचाओ। इन्द्र की जीभ सबको अभय प्रदान करती है। इन्द्र स्थिर हैं। सारे मायावी लोग उनकी नानाविध कीर्तियाँ देखते हैं।

१०. इन्द्र, तुम अन्न-लाभ-कर्त्ता यज्ञ में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य से युक्त नेतृश्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्ध में शत्रु-संहारक और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

३९ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि ३५ से ५३ सूक्त तक के विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम विश्वपति हो। हृदय से उच्चारित और स्तोताओं-द्वारा सम्पादित स्तोत्र तुम्हारे सामने जाता है। तुम्हें जगाकर यज्ञ में जो स्तुति कही जाती है और जो मुझसे ही उत्पन्न है, उसे तुम जानो।

२. इन्द्र, सूर्य से भी पहले उत्पन्न जो स्तुति यज्ञ में उच्चारित होकर तुम्हें जगाती है, वह स्तुति कल्याणकारी शुभ्र वस्त्र धारण करके हमारे पितरों के पास से ही आगत और सनातन है।

३. यमक-पुत्रों (अश्विनीकुमारों) की माता ने उन्हें उत्पन्न किया। उनकी प्रशंसा करने के लिए मेरी जीभ का अगला भाग नाच रहा है। अन्धकार-नाशक दिन के आदि में आगत मिथुन (जोड़ा) जन्म के साथ ही स्तुति में मिलता है।

४. इन्द्र, हमारे जिन पितरों ने, गोधन के लिए, युद्ध किया था, उनका पृथिवी पर, कोई भी निन्दक नहीं है। महिमा और कीर्तिवाले इन्द्र ने अङ्गिरा लोगों को समिद्ध गोवृन्द प्रदान किया था।

५. नवग्व (अङ्गिरा लोगों) के सखा इन्द्र जिस समय घुटने के ऊपर ज़ोर देकर गोधन की खोज में गये थे, उस समय अङ्गिरा लोगों के साथ अन्धकार में छिपे सूर्य को देख सके थे।

६. इन्द्र ने प्रथम दुग्धदायी धेनुओं पर मधु सिञ्चित किया; पश्चात् चरण और खुर से युक्त धन ले आये। उदारचेता इन्द्र ने गुहा-मध्यस्थित, प्रच्छन्न और अन्तरिक्ष में छिपे मायावी को दाहिने हाथ से पकड़ा।

७. रात्रि से ही उत्पन्न होकर इन्द्र ने ज्योति धारण की। हम पाप से दूर भय-शून्य स्थान में रहेंगे। हे सोमपा और सोम-पुष्ट इन्द्र, बहुस्तोम-विनाशक और स्तोत्रकारी की इस स्तुति का सेवन करो।

८. यज्ञ के लिए सूर्य द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करें। हम प्रभूत पाप से दूर रहेंगे। वसुओ, स्तुति-द्वारा तुम्हें अनुकूल किया जा सकता है। प्रभूत और समृद्ध धन को प्रभूत-दान-शील मनुष्य को प्रदान करो।

९. इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्ति-कर्त्ता युद्ध में उत्साह-द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेतृश्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, संग्राम में शत्रु-नाशक और धन विजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

४० सूक्त

(तृतीय अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द गायत्री।)

१. हे इन्द्र, तुम अभीष्टपूरक हो। अभिषुत सोमपान के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं। मदकारक और अन्नमिश्रित सोम का तुम पान करो।

२. हे बहुजनस्तुत इन्द्र, यह अभिषुत सोम बुद्धिवर्द्धक है। इसे पीने की अभिलाषा प्रकट करो और इस तृप्तिकारक सोम से जठर का सिञ्चन करो।

३. हे स्तूयमान, मरुत्पति इन्द्र, सम्पूर्ण यजनीय देवों के साथ तुम हमारे इस हविवाले यज्ञ का भली भाँति वर्द्धन करो अर्थात् हविः स्वीकार कर इस यज्ञ को पूर्ण करो।

४. हे सत्पति इन्द्र, हमारे द्वारा प्रदत्त, आह्लादक, दीप्त, अभिषुत सोम तुम्हारे जठर-देश में जा रहा है। इसे धारण करो।

५. हे इन्द्र, यह अभिषुत सोम सबके द्वारा वरणीय है। इसे तुम अपने जठर में धारण करो। यह सब दीप्त सोमरस तुम्हारे साथ द्युलोक में रहता है।

६. हे स्तुतिपात्र इन्द्र, मदकारक सोम की धारा से तुम प्रसन्न होते हो; अतः हमारे अभिषुत सोम का पान करो। तुम्हारे द्वारा वर्द्धित अन्न ही हम लोगों को प्राप्त होता है।

७. देवयाजकों की द्युतिमान्, क्षयरहित सोम आदि सम्पूर्ण हवि इन्द्र के अभिमुख जाती है। सोमपान कर इन्द्र वर्द्धित होते हैं।

८. हे वृत्रविदारक इन्द्र, निकटतम प्रदेश से या अत्यन्त दूर देश से हमारी ओर आओ। हमारी इस स्तुति-वाणी का आकर ग्रहण करो।

९. हे इन्द्र, यद्यपि तुम अत्यन्त दूर देश, निकटतम प्रदेश और मध्य भाग देश में आहूत होते हो; तथापि सोमपान के लिए इस यज्ञ में आओ।

४१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द गायत्री।)

१. हे वज्रधर इन्द्र, होताओं के द्वारा आहूत होने पर हमारे पास हमारे यज्ञ में, तुम, सोमपान के लिए हरि नामक घोड़ों के साथ, शीघ्र आओ।

२. हमारे यज्ञ में यथासमय ऋत्विक् होता, तुम्हें बुलाने के लिए, बैठे हैं। कुश परस्पर सम्बद्ध करके बिछा दिये गये हैं। प्रातःसवन में सोमाभिषव के लिए प्रस्तर सब भी परस्पर सम्बद्ध किये हुए हैं; अतः सोमपान के लिए आओ।

३. हे स्तुतिलभ्य इन्द्र, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं; अतः इस यज्ञीय कुश पर बैठो। हे शूर, हमारे द्वारा प्रदत्त इस पुरोडाश का भक्षण करो।

४. हे स्तुतिपात्र और वृत्रहन्ता इन्द्र, हमारे यज्ञ के तीनों सवनों में किये गये स्तोत्रों और उकथों (शस्त्रों) में रमण करो।

५. महान् सोमपायी और बलपति इन्द्र को स्तुतियाँ वैसे ही चाटती हैं, जैसे गौएँ बछड़े को चाटती हैं।

६. हे इन्द्र, प्रभूत धन-दान के लिए सोम के द्वारा तुम शरीर को प्रसन्न करो; परन्तु मुझ स्तोता को निन्दित नहीं करना।

७. हे इन्द्र, हम तुम्हारी इच्छा करते हुए हवि से युक्त होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे सबके निराशयिता इन्द्र, तुम भी हवि के स्वीकरणार्थ हमारी रक्षा करो।

८. हे हरि-(अश्व) प्रिय, हमसे दूर देश में घोड़ों को रथ से मत खोलो। हमारे निकट आओ। हे सोमवान् इन्द्र, इस यज्ञ में हृष्ट बनो।

९. हे इन्द्र, श्रमजल से युक्त और लम्बे केशवाले घोड़े, बैठने योग्य कुश के सामने, तुम्हें सुखकर रथ पर हमारे पास ले आयें।

४२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द गायत्री।)

१. हे इन्द्र, हमारे दुग्धमिश्रित अभिषुत सोम के निकट आओ; क्योंकि तुम्हारा अश्व-संयुक्त रथ हमारी कामना करता है।

२. हे इन्द्र, इस सोम के निकट आओ। यह पत्थरों पर पीस कर निकाला गया है और कुशों पर रखा गया है। इसका प्रचुर परिमाण में पान करके शीघ्र तृप्त होओ।

३. इन्द्र के लिए उच्चारित हमारी यह स्तुति-वाणी इन्द्र को, सोमपानार्थ बुलाने के लिए इस यज्ञ-देश से इन्द्र के निकट जाय।

४. स्तोत्रों और उक्थों द्वारा सोमपान के लिए यज्ञ में हम इन्द्र को बुलाते हैं। बहुबार आहूत इन्द्र यज्ञ में आयें।

५. हे शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे लिए सोम तैयार है, इसे जठर में धारण करो। तुम अन्नधन हो।

६. हे कवि, युद्ध में तुम शत्रुओं के अभिभव-कर्त्ता और धनजेता हो। हम तुम्हें ऐसा ही जानते हैं; अतएव हम तुमसे धन की याचना करते हैं।

७. हे इन्द्र, हमारे इस यज्ञ में आकर गव्य-मिश्रित तथा यव-मिश्रित अभिषुत सोम का पान करो।

८. हे इन्द्र, तुम्हारे पीने के लिए ही इस अभिषुत सोम को हम तुम्हारे जठर में प्रेरित करते हैं। यह सोम तुम्हारे हृदय में तृप्तिकर हो।

९. हे पुरातन इन्द्र, हम कुशिक-वंशोत्पन्न तुम्हारे द्वारा रक्षित होने की इच्छा करते हुए, अभिषुत सोमपान के लिए स्तुति-वचनों-द्वारा तुम्हें बुलाते हैं।

४३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, जूएवाले रथ पर चढ़कर तुम हमारे निकट आओ। यह सोम प्राचीन काल से ही तुम्हारे उद्देश से प्रस्तुत है तुम अपने प्रियतम सखास्वरूप अश्व को कुश के निकट खोलो। ये ऋत्विक् सोमपान के लिए तुम्हें बुला रहे हैं।

२. हे स्वामी इन्द्र, तुम समस्त पुरातन प्रजा का अतिक्रमण करके आओ। घोड़ों के साथ यहाँ आकर सोमपान करो, यही हमारी प्रार्थना है। स्तोताओं के द्वारा प्रयुक्त सख्याभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान कर रही हैं।

३. हे द्योतमान इन्द्र, हमारे अन्नवर्द्धक यज्ञ में, घोड़ों के साथ, तुम शीघ्र आओ। घृतसहित अन्नरूप हवि लेकर हम सोमपान करने के स्थान में तुम्हारा, स्तुति-द्वारा , प्रभूत आह्वान कर रहे हैं।

४. हे इन्द्र, सेचनसमर्थ, सुन्दर धुरा और शोभन अंगवाले, सखास्वरूप ये दोनों घोड़े तुम्हें यज्ञभूमि में रथ पर ले जाते हैं। भूँजे जौ से युक्त यज्ञ की सेवा करते हुए सखा-स्वरूप इन्द्र हम स्तोताओं की स्तुतियाँ सुनें।

५. हे इन्द्र, मुझे लोगों का रक्षक बनाओ। हे मघवन्, हे सोम-वान् इन्द्र, मुझे सबका स्वामी बनाओ। मुझे अतीन्द्रियद्रष्टा (ऋषि) बनाओ तथा अभिषुत सोम का पानकर्त्ता बनाओ और मुझे अक्षय धन प्रदान करो।

६. हे इन्द्र, महान् और रथ में संयुक्त हरि नामक मत्त घोड़े तुम्हें हमारे अभिमुख ले आयें। कामनाओं के वर्षक इन्द्र के अश्व शत्रुओं के विनाशक हैं। इन्द्र के हाथों से संस्पृष्ट होने पर वे घोड़े आकाश-मार्ग से अभिमुख आते हुए और दिशाओं को द्विधा करते हुए गमन करते हैं।

७. हे इन्द्र, तुम सोमाभिलाषी हो। तुम अभीष्टफलदायक, और प्रस्तर-द्वारा अभिषुत सोम का पान करो। सुपर्णपक्षी तुम्हारे लिए सोम को लाया है। सोमपानजन्य हर्ष के उत्पन्न होने पर तुम शत्रु-भूत मनुष्यादि को पालित करते हो एवं सोमजन्य हर्ष के उत्पन्न होने पर तुम वर्षा-ऋतु में मेघों को अपावृत करते हो।

८. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्ध में उत्साह के द्वारा प्रवृद्ध, धनवान् प्रभूत, ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्ध में

शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रयप्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

४४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द बृहती।)

१. हे इन्द्र, पत्थरों-द्वारा अभिषुत, प्रीतिवर्द्धक, कमनीय सोम तुम्हारे लिए हो। हरिनामक घोड़ों से युक्त, हरिद्वर्ण रथ पर तुम अधिष्ठान करो और हमारे अभिमुख आगमन करो।

२. हे इन्द्र, सोमाभिलाषी होकर तुम उषा की अर्चना करते हो तथा सोमाभिलाषी होकर तुम सूर्य को भी प्रदीप्त करते हो। हे हरिनामक घोड़ोंवाले, तुम विद्वान् हो, हमारे मनोभिलाष के ज्ञाता हो तथा अभिमतफल प्रदान से तुम हमारी सम्पूर्ण सम्पत्ति को परिवर्द्धित करते हो।

३. हरिद्वर्ण रश्मिवाले द्युलोक को तथा ओषधियों से हरिद्वर्णवाली पृथिवी को, इन्द्र ने धारण किया है। हरिद्वर्णवाली द्यावा-पृथिवी के मध्य में अपने घोड़ों के लिए इन्द्र प्रभूत भोजन प्राप्त करते हैं। इन्द्र इसी द्यावा-पृथिवी के मध्य में विचरण करते हैं।

४. कामनाओं के पूरक, हरिद्वर्णवाले इन्द्र जन्म ग्रहण करते ही सम्पूर्ण दीप्तिमान् लोकों को प्रकाशित करते हैं। हरि नामक घोड़ोंवाले इन्द्र हाथों में हरिद्वर्ण आयुध धारण करते हैं तथा शत्रुओं का प्राण-संहारक वज्र धारण करते हैं।

५. इन्द्र ने कमनीय, शुभ्र, क्षीरादि के द्वारा व्याप्त होने के कारण शुभ्र, वेगवान् और प्रस्तरों-द्वारा अभिषुत सोम को अपावृत किया है। पणियों-द्वारा अपहृत गौओं को इन्द्र ने अश्वयुक्त होकर गुहा से बाहर निकाला है।

४५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द बृहती।)

१. हे इन्द्र, मादक और मयूरों के रोमों (पुच्छों) के समान रोमों से युक्त घोड़ों के साथ तुम इस यज्ञ में आओ। जैसे उड़ते पक्षी को व्याध फाँस रखते हैं, वैसे कोई भी तुम्हारे मार्ग में प्रतिबन्धक न हो। पथिक मरुभूमि को जैसे उल्लंघित कर जाते हैं, वैसे ही तुम भी इन सकल बाधाओं का अतिक्रमण करके हमारे यज्ञ में शीघ्र आओ।

२. इन्द्र वृत्रहन्ता हैं। ये मेघों को विदीर्ण करके जल को प्रेरित करते हैं। इन्होंने शत्रुपुरी को विदीर्ण किया है। इन्द्र ने हमारे सम्मुख दोनों घोड़ों को चलाने के लिए रथ पर आरोहण किया है। इन्द्र ने बलवान् शत्रुओं को नष्ट किया है।

३. हे इन्द्र, साधु गोपगण जैसे गौओं को यव आदि खाद्य-पदार्थों से पुष्ट करते हैं, महाअकाश समुद्र को जिस प्रकार तुम जल-द्वारा पुष्ट करते हो, वैसे ही यज्ञ करनेवाले इस यजमान को भी तुम अभिमत-फल-प्रदान से सन्तुष्ट करो। धेनुगण जैसे तृणादि को और छोटी सरिताएँ जैसे महाजलाशय को प्राप्त करती हैं, वैसे ही यज्ञीय सोम तुम्हें प्राप्त करता है।

४. हे इन्द्र, जैसे व्यवहारज्ञ पुत्र को पिता अपने धन का भाग दे देता है, वैसे ही शत्रुओं को परास्त करनेवाला, धनवान् पुत्र हमें दो। पके फलों के लिए जैसे अङ्कुश (लग्गी) वृक्ष को चालित कर देता है, वैसे ही तुम हमारी इच्छा को पूर्ण करनेवाला धन दो।

५. हे इन्द्र, तुम धनवान् हो, स्वर्ग के राजा हो, सुवचन हो और प्रभूत कीर्तिवाले हो। हे बहु-जनस्तुत, तुम अपने बल से वर्द्धमान होकर हमारे लिए अतिशय शोभन अन्नवाले होओ।

४६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र।)

१. हे इन्द्र, तुम युद्ध करनेवाले अभिमत-फलदाता, धनों के स्वामी, सामर्थ्यवान्, नितान्त तरुण, चिरन्तन, शत्रुओं के पराजित-कर्त्ता, जरारहित, वज्रधारी और तीनों लोकों में विश्रुत हो। तुम्हारा वीर्य महान् है।

२. हे पूजनीय उग्र इन्द्र, तुम महान् हो। तुम अपने धन को पार ले जाते हो। पराक्रम से शत्रुओं को तुम अभिभूत करते हो। तुम सम्पूर्ण संसार के एकमात्र राजा हो। तुम शत्रुओं का संहार करो और साधुचरित जनों को स्थापित करो।

३. दीप्यमान और सब प्रकार से अपरिमित, सोमवान् इन्द्र पर्वतों से भी श्रेष्ठ हैं, बल में देवताओं से भी अधिक हैं, द्यावा-पृथिवी से भी अधिक हैं तथा विस्तीर्ण, महान् अन्तरिक्ष से भी श्रेष्ठ हैं।

४. हे इन्द्र, तुम महान् हो; अतएव गंभीर हो तथा स्वभाव से ही शत्रुओं के लिए भयङ्कर हो। तुम सर्वत्र व्याप्त हो, स्तोताओं के रक्षक हो। नदियाँ जैसे समुद्र के अभिमुख गमन करती हैं, वैसे ही यह पूर्वकालिक अभिषुत सोम इन्द्र के अभिमुख गमन करे।

५. हे इन्द्र, माता जिस प्रकार गर्भधारण करती है, उसी प्रकार द्यावा-पृथिवी तुम्हारी कामना से सोम को धारण करती हैं। हे कामनाओं के पूरक, उसी सोम को अध्वर्यु लोग तुम्हारे लिए प्रेरित करते हैं और उसे तुम्हारे पीने के लिए शुद्ध करते हैं।

४७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुम जलवर्षक मरुत्वान् हो। रमणीय पुरोडाशादि रूप अन्न से युक्त सोम को तुम संग्राम के लिए और हर्ष के लिए पियो। तुम विशेष रूप से सोम संघात का जठर में सेक करो; क्योंकि तुम पूर्वकाल से ही अभिषुत सोमों के स्वामी हो।

२. हे शूर इन्द्र, तुम देवगणों से संगत, मरुद्गणों से युक्त, वृत्र-हन्ता और कर्मविप्रयज्ञाता हो। तुम सोमपान करो। हमारे शत्रुओं को मारो, हिंसक जन्तुओं का अपनोदन करो और हमें सर्वत्र निर्भय करो।

३. हे ऋतुपा इन्द्र, सखा-स्वरूप मरुतों और देवों के साथ तुम हमारे अभिषुत सोम का पान करो। युद्ध में सहायता पाने के लिए जिन मरुतों का तुमने सेवन—ग्रहण—किया था और जिन मरुतों ने तुम्हें स्वामी माना था, उन्हीं मरुतों ने तुम्हें संग्राम में शत्रुहननादि-रूप पराक्रमवान् किया था; तब तुमने वृत्र को मारा था।

४. हे मघवन्, हे अश्ववन् इन्द्र, जिन मरुतों ने, अहिहनन-कार्य में, बलिदान-द्वारा, तुम्हें संवर्द्धित किया था, जिन्होंने तुम्हें शम्बर-वध में संवर्द्धित किया था और जिन्होंने गौओं के लिए पणि असुरों के साथ युद्ध में संवर्द्धित किया था, जो मेधावी मरुत् तुम्हें आज भी प्रसन्न कर रहे हैं, उन मरुद्गणों के साथ तुम सोम-पान करो।

५. हे इन्द्र, तुम मरुद्गण युक्त, जलवर्षी, प्रोत्साहक, प्रभूतशब्द-विशिष्ट, दिव्य, शासनकर्त्ता, विश्व के अभिभविता, उग्र तथा बलप्रद हो। हम नूतन आश्रय (रक्षा) लाभ के लिए तुम्हें बुलाते हैं।

४८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जलवर्षक, सद्यःउत्पन्न, कमनीय इन्द्र हविर्युक्त सोमरूप अन्न के संग्रहकर्त्ता की रक्षा करें। प्रत्येक कार्य में सोमपान की इच्छा होने पर तुम देवताओं के पहले गव्यमिश्रित साधु सोम का पान करो।

२. हे इन्द्र, तुम जिस दिन उत्पन्न हुए थे, उसी दिन पिपासित होने पर तुमने पर्वतस्थ सोमलता के रस का पान किया था। तुम्हारे महान् पिता कश्यप के (सूक्ति का) गृह में, तुम्हारी युवती माता अदिति ने, स्तन्यदान के पहले तुम्हारे मुंह में सोमरस का ही सिञ्चन किया था।

३. इन्द्र ने माता से प्रार्थनापुरःसर अन्न की याचना की और उसके स्तन में क्षीररूप से स्थित दीप्त सोम को देखा। गृत्स (शत्रुहननार्थ देवताओं-द्वारा अभिकांक्षित इन्द्र) शत्रुओं को अपने स्थानों से उच्चालित कर सर्वत्र विचरण करने लगे। बहु प्रकार से अङ्गविक्षेप कर इन्द्र ने वृत्रहननादि बहुविध महान् कार्य किये।

४. शत्रुओं के लिए भयङ्कर, शीघ्र अभिभवकर्त्ता और पराक्रमवान् इन्द्र ने अपने शरीर को नाना प्रकार का बनाया। इन्द्र ने अपनी सामर्थ्य से त्वष्टा नामक असुर को पराजित कर चमस-स्थित सोम को चुराकर पिया।

५. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। युद्ध में उत्साह के द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत, ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्त्ता, उग्र, युद्ध में शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रयप्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

४९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे स्तोता, महान् इन्द्र की स्तुति करो। इन्द्र-द्वारा रक्षित होने पर सब मनुष्य यज्ञ में सोमपान कर अभीष्ट प्राप्त करते हैं। देवताओं और द्यावा-पृथिवी ने ब्रह्मा-द्वारा आधिपत्य के लिए नियुक्त शोभन कर्मवाले तथा पापों के हन्ता इन्द्र को उत्पन्न किया।

२. संग्राम में अपने तेज से राजमान, हरिनामक घोड़ों से युक्त रथ पर स्थित, बल-युद्ध के नेता और संग्राम में सेनाओं को दो भागों में विभक्त करनेवाले जिन इन्द्र को कोई भी अतिक्रान्त नहीं कर सकता, वे ही इन्द्र सेनाओं के उत्कृष्ट स्वामी हैं। वे युद्ध में शत्रु-बल-शोषक मरुतों के साथ तीव्रवेग होकर शत्रुओं के प्राणों को नष्ट करते हैं।

३. जैसे बलवान् अश्व शत्रुबल का सन्तरण करता है, वैसे ही बलवान् इन्द्र संग्राम में शत्रुओं का उत्क्रमण करते हैं। द्यावा-पृथिवी को व्याप्त कर इन्द्र धनवान् होते हैं। यज्ञ में पूषदेव की तरह हवनीय इन्द्र स्तुतिकर्त्ताओं के पिता हैं। आहूत होकर कमनीय इन्द्र अन्न-दाता होते हैं।

४. इन्द्र द्युलोक तथा अन्तरिक्ष के धारक हैं। वे ऊर्द्ध्वगामी रथ की तरह वर्तमान हैं। वे गमनशील मरुतों के द्वारा सहायवान् हैं। वे रात्रि को आच्छादित करते हैं, सूर्य को उत्पन्न करते हैं और भजनीय कर्मफल-रूप अन्न का वैसे ही विभाग करते हैं, जैसे धनी का वाक्य धन-विभाग करता है।

५. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्ध में उत्साह के द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नरश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्त्ता उग्र, युद्ध में शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

५० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र यज्ञ में आकर स्वाहाकृत इस सोम का पान करें। जिस इन्द्र का यह सोम है, वे विघ्नकारियों के हिंसक, याजकों के अभिमतफल-वर्षक और मरुद्वान् हैं। अतिशय व्यापक इन्द्र हम लोगों के द्वारा दिये गये अन्न से तृप्त हों। हव्य इन्द्र की अभिलाषा पूर्ण करे।

२. हे इन्द्र, तुम्हें यज्ञ में आने के लिए हम रथ को परिचारक-अश्वयुक्त करते हैं। तुम पुरातन हो, घोड़ों के वेग का अनुगमन करते हो। हे शोभन-हनु इन्द्र, घोड़े तुम्हें यज्ञ में धारण करें। आकर तुम इस कमनीय और भलीभाँति अभिषुत सोम का शीघ्र पान करो।

३. स्तोताओं के अभिमतफलवर्षक और स्तुति-द्वारा प्रसन्न करने योग्य इन्द्र को स्तोत्र करनेवाले ऋत्विक् लोग श्रेष्ठत्व और चिरकालीन

प्राप्ति के लिए गव्यमिश्रित सोम-द्वारा धारण करते हैं। हे सोमवान् इन्द्र, प्रमुदित होकर तुम सोमपान करो और स्तोताओं को अग्निहोत्रादि कार्यसिद्धि के लिए बहुविध धेनु दो।

४. हमारी इस अभिलाषा को गौ, अश्व और दीप्तिवाले धन के द्वारा पूर्ण करो तथा उनके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि-सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकनन्दनों ने मन्त्र-द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

५. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्ध में उत्साह के द्वारा प्रबृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्त्ता, उग्र, युद्ध में शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

५१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द जगती, गायत्री और त्रिष्टुप्।)

१ अभिमत फल प्रदान से मनुष्यों के धारक, धनवान् उक्थ-द्वारा प्रशंसनीय, बल-धन आदि सम्पत्ति से प्रतिक्षण वर्द्धमान, स्तोताओं-द्वारा बहुशः आहूत, मरणधर्मरहित और शोभन स्तुतिवचन से प्रतिदिन स्तूयमान इन्द्र की प्रभूत स्तुति-वचनों से सब प्रकार से स्तुति की जाय।

२. इन्द्र सौ यज्ञ करनेवाले, जलवाले, मरुतों से युक्त, सम्पूर्ण जगत् के नेता, अन्न के दाता, शत्रुपुरी के भेदक, युद्धार्थ शीघ्रगन्ता, मेघभेदन-द्वारा जल के प्रेरक, धन-प्रदाता, शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता तथा स्वर्ग के प्रदाता हैं। इन्द्र के निकट हमारी स्तुतिवाणी सब प्रकार से जाय।

३. इन्द्र शत्रुओं के बलसंहारक हैं, संग्राम में वे सबसे स्तुत होते हैं। वे निष्पाप स्तुतियों को सम्मानित करते हैं। अग्निहोत्रादि करनेवाले यजमान के गृह में सोमपान कर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

विश्वामित्र, मरुतों के साथ शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता और शत्रुसंहारक इन्द्र की स्तुति करो ।

४. हे इन्द्र, तुम मनुष्यों के नेता तथा वीर हो । राक्षसों-द्वारा पीड़ित ऋत्विक् स्तुतियों तथा उक्थों (शस्त्रों)-द्वारा तुम्हें भली भाँति अर्चित करते हैं। वृत्रहननादि कर्म करनेवाले इन्द्र बल के लिए गमनो-द्यम करते हैं । एकमात्र पुरातन इन्द्र ही इस अन्न के ईश्वर हैं; अतः इन्द्र को नमस्कार है ।

५. मनुष्यों में इन्द्र का अनुशासन नाना प्रकार का है । शासक इन्द्र के लिए पृथिवी बहुत धन धारण करती है। इन्द्र की आज्ञा से द्युलोक, ओषधियाँ, जल, मनुष्यों और वृक्ष उनके उपभोगयोग्य धन की रक्षा करते हैं ।

६. हे अश्ववान् इन्द्र, तुम्हारे लिए स्तोत्रों और शस्त्रों को ऋत्विक् लोग यथार्थ ही धारण करते हैं, तुम उनका ग्रहण करो । हे सबके निवासयिता और सखिस्वरूप इन्द्र, तुम व्याप्त हो। यह अभिनव हवि तुम्हें दी गई है, इसे ग्रहण करो। स्तोताओं को अन्न दो।

७. हे मरुतों से युक्त इन्द्र, शर्याति राजा के यज्ञ में जैसे तुमने अभिषुत सोम का पान किया था, वैसे ही इस यज्ञ में सोम-पान करो । हे शूर, तुम्हारे निर्बाध निवासस्थान में स्थिर और सुन्दर यज्ञ करनेवाले मेधावी यजमान हवि के द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं ।

८. हे इन्द्र, सोम की कामना करते हुए तुम मित्र मरुतों के साथ हमारे इस यज्ञ में अभिषुत सोम का पान करो । हे पुरुओं-द्वारा आहूत इन्द्र, तुम्हारे जन्म-ग्रहण करते ही सब देवताओं ने तुम्हें महासंग्राम के लिए भूषित किया था ।

९. हे मरुतो, जल के प्रेरणा से इन्द्र तुम्हारे मित्र होते हैं । उन्हें तुमने प्रसन्न किया था। वृत्रविनाशक इन्द्र तुम्हारे साथ हवि देनेवाले यजमान के गृह में अभिषुत सोम का पान करें ।

१०. हे धन के स्वामी स्तूयमान इन्द्र, उद्देशानुक्रम से बल-द्वारा इस अभिषुत सोम का शीघ्र पान करो।

११. हे इन्द्र, तुम्हारे लिए जो अन्नमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है, उसमें अपने शरीर को निमग्न करो। तुम सोमपान के योग्य हो। तुम्हें वह सोम प्रसन्न करे।

१२. हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षियों को व्याप्त करे, स्तोत्रों के साथ वह तुम्हारे शरीर को व्याप्त करे। हे शूर, धन के लिए वह तुम्हारी दोनों भुजाओं को भी व्याप्त करे।

५२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती।)

१. हे इन्द्र, भुने जौ से युक्त, दधिमिश्रित, सत्तू से युक्त, सवनीय पुरोडाश से युक्त और शस्त्रवाले हमारे सोम का प्रातःसवन में तुम सेवन करो।

२. हे इन्द्र, पक्व पुरोडाश का तुम सेवन करो। पुरोडाश के भक्षण के लिए उद्यम करो। हवन के योग्य यह पुरोडाश आदि हवि तुम्हारे लिए गमन करती है।

३. हे इन्द्र, हमारे इस पुरोडाश का भक्षण करो। हमारी इस श्रुतिलक्षणा वाणी का वैसे ही सेवन करो, जैसे स्त्री की भक्ति करनेवाला कामी पुरुष युवती स्त्री का सेवन करता है।

४. हे पुराणकाल से प्रसिद्ध इन्द्र, हमारे इस पुरोडाश का प्रातःसवन में सेवन करो, जिससे तुम्हारा कर्म महान् हो।

५. हे इन्द्र, माध्यन्दिन-सवन-सम्बन्धी भुने जौ के कमनीय पुरोडाश का यहाँ आकर भक्षण करके संस्कृत करो। तुम्हारी परिचर्या करनेवाले, स्तुति के लिए त्वरितगमन (व्यग्र), अतएव वृष की तरह इधर-उधर

दौड़नेवाले, स्तोता जब स्तुतिलक्षण वचनों से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तभी तुम पुरोडाश आदि का भक्षण करते हो ।

६. हे बहुजनस्तुत इन्द्र, तृतीय सवन में हमारे भुने जौ का और हुत पुरोडाश का भक्षण करो । हे कवि, तुम ऋभुवाले तथा धनयुक्त पुत्रवाले हो । हम लोग हवि लेकर स्तुतियों-द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं ।

७. हे इन्द्र, तुम पूषा नामक देववाले हो । तुम्हारे लिए हम दही मिला सत्तू बनाते हैं । तुम हरि नामक घोड़ेवाले हो । तुम्हारे खाने के लिए हम भुना जौ तैयार करते हैं । मरुतों के साथ तुम पुरोडाश का भक्षण करो । हे शूर, तुम वृत्रहन्ता हो, विद्वान् हो, सोम पियो ।

८. अध्वर्युओ, इन्द्र के लिए शीघ्र भुना जौ दो । यह नेतृतम हैं । इन्हें पुरोडाश प्रदान करो । हे शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य कर प्रतिदिन की गई स्तुति तुम्हें सोमपान के लिए उत्साहित करे ।

५३ सूक्त

(१४ ऋचा के दैवता इन्द्र और पर्वत, १५-१६ के वाग्, १७-२० के रथांग, अवशिष्ट के इन्द्र । ऋषि विश्वामित्र । छन्द जगती आदि ।)

१. हे इन्द्र और पर्वत, महान् रथ पर मनोहर और सुन्दर पुत्र से युक्त अन्न लाओ । हे द्योतमान, हमारे यज्ञ में तुम दोनों हव्य का भक्षण करो । हव्य-द्वारा हृष्ट होकर हमारे स्तुतिलक्षण वचनों से वर्द्धित होओ ।

२. हे मघवन्, इस यज्ञ में कुछ काल तक तुम सुखपूर्वक ठहरो । हमारे यज्ञ से चले मत जाओ । क्योंकि, सुन्दर अभिषुत सोम-द्वारा हम शीघ्र ही तुम्हारा यजन करते हैं । हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र, मधुर वचनों-

द्वारा पुत्र जैसे पिता के वस्त्रप्रान्त का ग्रहण करता है, वैसे ही हम सुमधुर स्तुतियों-द्वारा तुम्हारे वस्त्रप्रान्त को गृहीत करते हैं ।

३. हे अध्वर्युओ, हम दोनों स्तुति करेंगे । तुम हमें उत्तर दो। हम दोनों इन्द्र के उद्देश्य से प्रीति-युक्त स्तुति करते हैं । तुम यजमान के कुश के ऊपर उपवेशन करो । इन्द्र के लिए, हम दोनों के द्वारा किया गया उक्थ (शस्त्र) प्रशस्त हो।

४. हे मघवन्, स्त्री ही गृह होती है और स्त्री ही पुरुषों का मिश्रण-स्थान है । रथ में युक्त होकर अश्व तुम्हें उस गृह में ले जायें । हम जब कभी तुम्हारे लिए सोम को अभिषुत करेंगे, तब हमारे-द्वारा प्रहित, दूतस्वरूप अग्नि तुम्हारे निकट गमन करें ।

५. हे मघवन्, तुम स्वकीय गृहाभिमुख होओ अथवा हमारे इस यज्ञ में आगमन करो । हे पोषक, दोनों स्थानों में तुम्हारा प्रयोजन है; क्योंकि वहाँ गृह में स्त्री है और यहाँ सोम है । गृह-गमन के लिए तुम महान् रथ के ऊपर अधिष्ठान करो अथवा ह्रेषारव करनेवाले घोड़ों को रथ से विमुक्त करो ।

६. हे इन्द्र, यहीं ठहरकर सोम-पान करो । सोम पीकर घर जाना । तुम्हारे रमणीय गृह में मङ्गलकारिणी जाया और सुन्दर ध्वनि है । गृह-गमन के लिए तुम महान् रथ के ऊपर अवस्थान करो अथवा अश्व को रथ से विमुक्त करो—इसी यज्ञ में ठहरो ।

७. हे इन्द्र, यज्ञ करनेवाले ये भोज सुदास राजा के याजक हैं, नाना रूप हैं अर्थात् अङ्गिरा मेधातिथि आदि हैं । देवों से भी बलवान् रुद्र के पुत्र बलवान् मरुत् मुझ विश्वामित्र के लिए, अश्वमेध में महनीय धन देते हुए, अन्न को भली भाँति वर्द्धित करें ।

८. इन्द्र जिस रूप की कामना करते हैं, उस रूप के हो जाते हैं । मायावी इन्द्र अपने शरीर को नानाविध बनाते हैं । वे ऋतवान् होकर भी अऋतु में सोमपान करते हैं । वे स्वकीय स्तुति-द्वारा आहूत होकर, स्वर्गलोक से मुहूर्त-मध्य में तीनों सवनों में गमन करते हैं ।

९. अतिशय सामर्थ्यवान्, अतीन्द्रियार्थद्रष्टा द्योतमान तेजों के जनयिता तेजों-द्वारा आकृष्ट और अध्वर्यु आदि के उपदेष्टा विश्वामित्र ने जलवान् सिन्धु को निरुद्धवेग किया। पिजवन के पुत्र सुदास राजा को जब विश्वामित्र ने यज्ञ कराया था, तब इन्द्र ने कुशिकगोत्रोत्पन्न ऋषियों के साथ प्रिय व्यवहार किया था।

१०. हे मेधावियो, हे अतीन्द्रियार्थद्रष्टाओ, हे नेतृगण के उपदेशको, हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, यज्ञ में पत्थरों-द्वारा सोम के अभिषुत होने पर तुम लोग स्तुतियों-द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हुए श्लोक (मन्त्र) का भली भाँति उच्चारण करो, जैसे हंस शब्दों का भली भाँति उच्चारण करते हैं। देवगण के साथ तुम लोग मधुर सोम रस का पान करो।

११. हे कुशिकगोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, तुम लोग अश्व के समीप जाओ, अश्व को उत्तेजित करो। धन के लिए सुदास के अश्व को छोड़ दो। राजा इन्द्र ने विघ्नकारक वृत्र का पूर्व, पश्चिम और उत्तर देश में वध किया है। अतएव सुदास राजा पृथिवी के उत्तम स्थान में यज्ञ करें।

१२. हे कुशिक पुत्रो, हम (विश्वामित्र) ने द्यावा-पृथिवी-द्वारा इन्द्र का स्तव किया है। स्तोता विश्वामित्र का यह इन्द्र-विषयक स्तोत्र भरतकुल के मनुष्य की रक्षा करे।

१३. विश्वामित्र-वंशीयों ने वज्रधर इन्द्र के लिए स्तोत्र किया है। इन्द्र हम लोगों को शोभन धन से युक्त करें।

१४. हे इन्द्र, अनार्यों के निवासयोग्य देशों में कीकटसमूह के मध्य में गौएँ तुम्हारे लिए क्या करेंगी? वे सोम के साथ मिश्रित होने के योग्य दुग्ध दान नहीं करती हैं। दुग्ध प्रदान-द्वारा वे पात्र को भी दीप्त नहीं करती हैं। हे धनवान् इन्द्र, उन गौओं को तुम हमारे निकट लाओ और प्रमगन्द (अत्यन्त कुसीदिकुल) के धन का भी आनयन करो। हे मघवन्, नीच वंशवालों का धन हमें दो।

१५. अग्नि को प्रज्वलित करनेवाले ऋषियों-द्वारा सूर्य से लाकर हम लोगों को दी गई, अज्ञान को बाधित करनेवाली, रूप, शब्द तथा सर्वत्र सर्पणशीला वाक् (वचन) आकाश में प्रभूत शब्द करती हैं। सूर्य की दुहिता वाग्देवता इन्द्र आदि देवताओं के निकट पत्थररहित अमृत रूप अन्न को विस्तृत करती है।

१६. गद्य-पद्य-रूप से सर्वत्र सर्पणशीला वाग्देवता चारों वर्ण तथा निषाद में जो अन्न विद्यमान है, उससे अधिक अन्न हमें शीघ्र दे। दीर्घ आयुवाले जमदग्नि आदि मुनियों ने जिस वचन को सूर्य से लाकर हमें दिया है, पक्षों के निर्वाहक सूर्य की दुहिता, वह वाग्देवता हमारे लिए नूतन अन्न दान करे।

१७. सुदास के यज्ञ में अवभृथ करने के उपरान्त यज्ञशाला से जाने की इच्छा करते हुए विश्वामित्र रथाङ्ग की स्तुति करते हैं--गोद्वय स्थिर होओ, अक्ष दृढ़ होओ। दण्ड जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिससे विशीर्ण नहीं हो। पतनशील कीलकद्वय के विशीर्ण होने के पहले ही इन्द्र धारण करें। हे अहिंसित नेमिविशिष्ट रथ, तुम हम लोगों के अभिमुख आगमन करो।

१८. हे इन्द्र, तुम हम लोगों के शरीर में बलदान करो, हमारे वृषभों को बलदान करो और हमारे पुत्र-पौत्रों को चिरजीवी होने के लिए बलदान करो; क्योंकि तुम बलप्रद हो।

१९. हे इन्द्र, रथ के खदिर-काष्ठ के सार को दृढ़ करो, रथ के शीशम के काठ को दृढ़ करो। हे हम लोगों के द्वारा दृढ़ीकृत अक्ष, तुम दृढ़ होओ। हमारे गमनशील इस रथ से हमें फेंक नहीं देना।

२०. वनस्पतियों-द्वारा निर्मित यह रथ हम लोगों को मत त्यक्त करे, मत विनष्ट करे। जब तक हम लोग गृह न प्राप्त करें, जब तक रथ चलता रहे और जब तक कि, अश्व विमुक्त न हो जायँ, तब तक हम लोगों का मङ्गल हो।

२१. हे शूर, हे धनवान् इन्द्र, हम लोग शत्रुओं के हिंसक हैं। हम लोगों को तुम प्रभूत और श्रेष्ठ आश्रय दान-द्वारा सन्तुष्ट करो। जो हम लोगों से द्वेष करता है, वह निकृष्ट होकर पतित हो। हम लोग जिससे द्वेष करते हैं, उसे प्राणवायु परित्याग करे।

२२. हे इन्द्र, जैसे कुठार को पाकर वृक्ष प्रतप्त होता है, वैसे ही हमारे शत्रु प्रतप्त हों। शाल्मली पुष्प जैसे अनायास ही वृन्तच्युत हो जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओं के अवयव विच्छिन्न हों। प्रहृत, जल-स्रावी स्थाली (हाँड़ी) पाककाल में जैसे फेनोद्गीर्ण करती है, वैसे ही मेरी मन्त्रसामर्थ्य से प्रहृत होकर शत्रु मुख-द्वारा फेनोद्गीर्ण करें।

२३. वसिष्ठ के भृत्यों को विश्वामित्र कहते हैं—हे पुरुषो, अवसान करनेवाले विश्वामित्र की मन्त्र-सामर्थ्य को तुम लोग नहीं जानते हो। तपस्या का क्षय न हो जाय, इसी लोभ से चुपचाप बैठे हुए को पशु मानकर ले जा रहे हो। वसिष्ठ मेरे साथ स्पर्द्धा करने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि प्राज्ञ व्यक्ति मूर्ख व्यक्ति को उपहासास्पद नहीं करते हैं; अश्व के सम्मुख गर्दभ नहीं लाया जाता है।

२४. हे इन्द्र, भरतवंशीय (वसिष्ठ के साथ) अपगमन (पार्थक्य) जानते हैं, गमन (एकता) नहीं जानते हैं अर्थात् शिष्टों के साथ उनकी संगति नहीं है। संग्राम में सहज शत्रु की तरह उन लोगों के प्रति वे अश्व प्रेरण करते हैं और धनुर्धारण करते हैं।

५४ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता विश्वदेवगण। ऋषि विश्वामित्र के पुत्र प्रजापति अथवा वाक् के पुत्र प्रजापति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. महान् यज्ञ में मन्थन-द्वारा निष्पाद्यमान और स्तुति-योग्य अग्नि के उद्देश्य से यह सुखकर स्तोत्र बारम्बार उच्चारित होता है। अग्नि गृह में विद्यमान होकर तथा तेजोविशिष्ट होकर हमारे इस

स्तोत्र को सुनें। दिव्य तेज से निरन्तर युक्त होकर अग्नि हमारे इस स्तोत्र को सुनें।

२. हे स्तोता, महती द्यावा-पृथिवी की सामर्थ्य को जानते हुए तुम उनकी अर्चना करो। मेरा मनोरथ सम्पूर्ण भोग का इच्छुक है, सर्वत्र वर्तमान है। पूजाभिलाषी देवगण सम्पूर्ण मनुष्यों के यज्ञ में द्यावा-पृथिवी के स्तोत्र करने में मत्त होते हैं।

३. हे द्यावा-पृथिवी, तुम्हारा ऋत (अनृशंसता) यथार्थ हो। तुम हमारे महान् यज्ञ की समाप्ति के लिए समर्थ होओ। हे अग्नि, द्युलोक और पृथिवी को नमस्कार है। हविर्लक्षण अन्न से मैं परिचर्या करता हूँ, उत्तम धन की याचना करता हूँ।

४. हे सत्ययुक्त द्यावा-पृथिवी, पुरातन सत्यवादी महर्षियों ने तुमसे हितकर अर्थ (अभिलषित) प्राप्त किया था। हे पृथिवी, युद्ध में जानेवाले मनुष्यगण तुम्हारे माहात्म्य को जानकर तुम्हारी वन्दना करते हैं।

५. उस सत्यभूत अर्थ को कौन जानता है? कौन उस जाते हुए अर्थ को बोलता है। कौन समीचीन पथ देवताओं के निकट ले जाता है। देवगण के अधःस्थान अर्थात् द्युलोकस्थित नक्षत्रादि देखे जाते हैं। वे उत्कृष्ट और दुर्ज्ञेय व्रत में अवस्थिति करते हैं।

६. कवि, मनुष्यों के द्रष्टा सूर्य इस द्यावा-पृथिवी को सर्वत्र देखते हैं। जल के उत्पत्ति-स्थान अन्तरिक्ष में हर्षकारिणी, रसवती और समान कर्मों-द्वारा परस्पर ऐक्यभावापन्ना द्यावा-पृथिवी पक्षियों के घोसलों की तरह पृथक्-पृथक् नाना स्थान को अधिकृत करती हैं।

७. परस्पर प्रीतियुक्त कर्म-द्वारा ऐकमत्य प्राप्त, वियुक्त होकर वर्तमान अविनाशिनी द्यावा-पृथिवी जागरणशील होकर अनश्वर अन्तरिक्ष में नित्य तरुण भगिनीद्वय की तरह एक आत्मा से जायमान होकर ठहरी हैं। वे दोनों आपस में द्वन्द्व (मिथुन) नाम अभिहित करती हैं।

८. यह द्यावा-पृथिवी सम्पूर्ण भौतिक वस्तु को अवकाश-दान द्वारा विभक्त करती है। महान् सूर्य, इन्द्र आदि अथवा सरित्, समुद्र, पर्वत आदि को धारण करके भी व्यथित नहीं होती है। जङ्गमात्मक और स्थावरात्मक जगत् केवल एक पृथिवी को ही प्राप्त करता है। चञ्चल पशु और पक्षिगण नाना रूप होकर द्यावा-पृथिवी के मध्य में ही अवस्थित होते हैं।

९. हे द्यौ, तुम महान् हो, तुम सबका जनन करती हो और पालन करती हो। तुम्हारी सनातनता, पूर्वक्रमागता और हम लोगों का जननत्व सब एक से ही उत्पन्न हुआ है। द्यौ भगिनी होती है। हम अभी उसका (भगिनीत्व का) स्मरण करते हैं। द्युलोक में, विस्तीर्ण और विविक्त आकाश में तुम्हारी स्तुति करनेवाले देवता अपने वाहनों के सहित स्थित हैं। वहाँ ठहरकर वे स्तोत्र सुनते हैं।

१०. हे द्यावा-पृथिवी, तुम्हारे इस स्तोत्र का हम अच्छी तरह से उच्चारण करते हैं। सोम को उदर में धारण करनेवाले, अग्नि-रूपी जिह्वावाले, भली भाँति दीप्यमान, नित्य तरुण, कवि, अपने-अपने कर्म को प्रकट करनेवाले मित्र आदि देवता इस स्तोत्र को सुनें।

११. दानार्थ हिरण्य को हाथ में रखनेवाले, शोभन वचनवाले सविता यज्ञ के तीनों सवनों में आकाश से आते हैं। हे सविता, तुम स्तोताओं के स्तोत्र को प्राप्त करो। इसके अनन्तर, सम्पूर्ण, अभिलषित फल को हम लोगों के लिए प्रेरित करो।

१२. सुन्दर जगत् के कर्त्ता, कल्याणपाणि, धनवान्, सत्यसङ्कल्प त्वष्टदेव रक्षा के लिए हम लोगों को सम्पूर्ण अपेक्षित फल प्रदान करें। हे ऋभुओ, पूषा के सहित तुम हम लोगों को धन प्रदान करके हृष्ट करो। क्योंकि, सोमाभिषेक के लिए प्रस्तर को उत्तोलन करनेवाले ऋत्विकों ने यह यज्ञ किया है।

१३. द्योतमान रथवाले, आयुधवान् दीप्तिमान्, शत्रुओं के विनाशक, यज्ञोत्पन्न, सतत गमनशील, यज्ञार्ह मरुद्गण और वाग्देवता हमारे इस

स्तोत्र को सुनें। हे त्वरान्वित मरुद्गण, हमें पुत्रविशिष्ट धन दान करो।

१४. धन का हेतुभूत यह स्तोत्र और अर्चनीय शस्त्र, इस विस्तृत यज्ञ में, बहुकर्मा विष्णु के निकट गमन करे। सबकी जनयित्री और परस्पर असङ्कीर्णा दिशायें, जिस विष्णु को हिंसित नहीं करती हैं, वह विष्णु उरुविक्रमी हैं। त्रिविक्रमावतार में एक ही पैर से उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को आक्रान्त किया था।

१५. सकल-सामर्थ्य-सम्पन्न इन्द्र ने द्यावा और पृथिवी दोनों को महिमा-द्वारा पूर्ण किया है। शत्रुपुरी को विदीर्ण करनेवाले, वृत्र को मारनेवाले और शत्रुओं को पराजित करनेवाली सेनावाले इन्द्र पशुओं का संग्रह करके हमें प्रचुर परिमाण में पशुदान करें।

१६. हे अश्विनीकुमारो, तुम हम बन्धुओं की अभिलाषा की जिज्ञासा करनेवाले हो, हमारे पालक होओ। तुम दोनों का मिलन कमनीय है। हे अश्विन्, हमारे लिए तुम उत्तम धन के देनेवाले होओ। तुम्हारा तिरस्कार कोई भी नहीं करता है। तुम्हें हम हवि देते हैं। तुम शोभन कर्म-द्वारा हमारा पालन करो।

१७. हे कवि देवगण, तुम्हारा वह प्रभूत कर्म मनोहर है, जिससे तुम लोग इन्द्रलोक में देवत्व प्राप्त करते हो। हे बहुजनाहूत इन्द्र, तुम प्रियतम ऋभुओं के साथ सख्यभावापन्न हो। तुम हमारी इस स्तुति को, धनादिलाभ के लिए, स्वीकृत करो।

१८. सर्वदा गमनशील सूर्य, देवमाता अदिति, यज्ञार्ह देवगण और अहिंसित कर्म करनेवाले वरुण हम लोगों की रक्षा करें। वे हमारे मार्ग से पुत्रों के अहित कर्म को अथवा पतनकारक कर्म को दूर करें। हमारे गृह को वे पशु आदि से तथा अपत्य से युक्त करें।

१९. अग्निहोत्र के लिए बहु देशों में प्रसूत या विहित और देवताओं के दूत अग्नि हैं। कर्मसाधन की विगुणता से हम सापराध हैं। हमें अग्नि

सर्वत्र निरपराध कहें। द्यावा-पृथिवी, जलसमूह, सूर्य और नक्षत्रों-द्वारा पूर्ण विशाल अन्तरिक्ष हमारी स्तुति सुनें।

२०. अभिमत-फल-सेचक मरुद्गण, अर्थियों की कामना को पूर्ण करनेवाले निश्चल पर्वत हविरस से प्रसन्न होकर हमारी स्तुति सुनें। अदिति अपने पुत्रों के साथ हमारी स्तुति सुनें। मरुद्गण हमें कल्याण-कर सुख दें।

२१. हे अग्नि, हमारा मार्ग सदा सुख से जाने योग्य तथा अन्नवान् हो। हे देवो, मधुर जल से ओषधियों को संसिक्त करो। हे अग्नि, तुमसे मैत्री प्राप्त करने पर हमारा धन विनष्ट नहीं हो। हम जिससे धन के और प्रभूत अन्न के स्थान को प्राप्त करें।

२२. हे अग्नि, हवन-योग्य हवि का आस्वादन करो, हमारे अन्न को भली भाँति प्रकाशित करो और उन अन्नों को हमारे अभिमुख करो। तुम संग्राम में बाधा डालनेवाले सब शत्रुओं को जीतो और प्रफुल्लित मनवाले होकर तुम हमारे सम्पूर्ण दिवसों को प्रकाशित करो।

५५ सूक्त

(देवता १ के वैश्वदेव, २—९ के अग्नि, १० के अहोरात्र, ११—१४ के द्यावा-पृथिवी, १५ के द्युनिशा, १६ के दिक्, १७—२२ के इन्द्र। ऋषि प्रजापति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. उदयकाल से प्राचीन उषा जब व्यक्त होती हैं, तब अविनाशी आदित्य समुद्र से या आकाश में उदित होते हैं। सूर्य के उदित होने पर अग्निहोत्रादि के लिए तत्पर यजमान कर्म करते हैं और शीघ्र ही देवताओं के समीप उपस्थित होते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

२. हे अग्नि, इस समय देवता हमें अच्छी तरह से मत हिंसित करें। देव-पदवी को प्राप्त पुरातन पुरुष (पितर) हमें मत हिंसित

करें। यज्ञ के प्रज्ञापक, पुरातन द्यावा-पृथिवी के मध्य में उदित सूर्य हमें मत हिंसित करें। देवताओं का महान् बल एक ही है।

३. हे अग्नि, हमारी बहुविध अभिलाषायें विविध दिशा में गमन करती हैं। अग्निष्टोमादि यज्ञ को लक्ष्य कर हम पुरातन स्तोत्र को दीप्त करते हैं। यज्ञार्थ अग्नि के दीप्त होने पर हम सत्य बोलेंगे। देवताओं का महान् बल एक ही है।

४. सर्वसाधारण के राजा दीप्यमान अग्नि (या सोम) बहुत देशों में अग्निहोत्र के लिए स्थापित होते हैं। वे वेदी के ऊपर शयन करते हैं। अरणि-काष्ठ या चमस के ऊपर विभक्त होते हैं। द्यावा-पृथिवी इनके माता-पिता हैं, उनमें अन्य अर्थात् द्युलोक इन्हें वृष्टि आदि के द्वारा पुष्ट करते हैं और अन्य माता वसुधा इन्हें केवल निवास देती हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

५. जीर्ण ओषधियों में वर्त्तमान तथा नव्य ओषधियों में गुणानुरूप से स्थित अग्नि या सूर्य सद्योजात, पल्लवित ओषधियों के अभ्यन्तर में वर्त्तमान हैं। ओषधियाँ बिना किसी पुरुष के रेतः-संयोग से अग्नि के द्वारा गर्भवती होकर फल-पुष्प आदि को उत्पन्न करती हैं। यह देवों का ऐश्वर्य है। देवताओं का महान् बल एक ही है।

६. दोनों लोकों के निर्माता अथवा द्यावा-पृथिवीरूप माता-पिता-वाले सूर्य पश्चिम दिशा में, अस्तवेला में, शयन करते हैं; किन्तु उदय-वेला में वे ही द्यावा-पृथिवी के पुत्र सूर्य अप्रतिबद्ध-गति होकर आकाश में अकेले चलते हैं। यह सकल कर्म मित्र और वरुण का है। देवताओं का महान् बल एक ही है।

७. दोनों लोकों के निर्माता, यज्ञ के होता तथा यज्ञ में भली भाँति राजमान अग्नि, आकाश में सूर्य रूप से विचरण करते हैं। वे सब कर्मों के मूलभूत होकर भूमि में निवास करते हैं। रमणीय वचनवाले स्तोता अच्छी तरह से रमणीय स्तोत्रों को करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

८. युद्ध करनेवाले शूर व्यक्ति के अभिमुख आनेवाली शत्रु-सेना जैसे पराङ्मुख दीख पड़ती है, वैसे ही समीप में वर्त्तमान अग्नि के अभिमुख आनेवाला भूतजात पराङ्मुख होता दीख पड़ता है। सबके द्वारा ज्ञायमान अग्नि जल को हिंसित करनेवाली दीप्ति को मध्य में धारण करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

९. पालक और देवों के दूत अग्नि ओषधियों के मध्य में अत्यन्त व्याप्त होकर वर्त्तमान हैं। वे सूर्य के साथ द्यावा-पृथिवी के मध्य में चलते हैं। नानाविध रूपों को धारण करते हुए वे हम लोगों को विशेष अनुग्रह-दृष्टि से देखें। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१०. व्याप्त, सबके रक्षक, प्रियतम और क्षयरहित तेज को धारण करनेवाले अग्नि परम स्थान की रक्षा करते हैं अथवा लोकधारक जल को धारण करते हुए जल के स्थान अन्तरिक्ष की रक्षा करते हैं। अग्नि उन सम्पूर्ण भूतजात को जानते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

११. मिथुनभूत अहोरात्र नानाविध रूप धारण करते हैं। कृष्णवर्णा तथा शुक्लवर्णा जो दोनों भगिनियाँ हैं, उनके मध्य में एक अर्जुनवर्णा या दीप्तिशालिनी है और दूसरी कृष्णवर्णा है। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१२. माता पृथिवी और दुहिता द्युलोकस्वरूप दोनों क्षीरदायिनी धेनु जिस अन्तरिक्ष में परस्पर सङ्गत होकर अपने रस को एक दूसरी को पिलाती हैं, जल के स्थानभूत उस अन्तरिक्ष के मध्य में स्थित द्यावा-पृथिवी की हम स्तुति करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१३. द्युलोक पृथिवी के पुत्र अग्नि को उदकधारारूप जिह्वा से चाटते हैं और मेघ-द्वारा ध्वनि करते हैं। द्युरूपा धेनु पृथिवी को जल-वर्जित करके अपने ऊधःप्रदेश को पुष्ट करती है। वह जलवर्जित पृथिवी सत्यभूत आदित्य के जल से वर्षाकाल में सिक्त होती है। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१४. पृथ्वी नानाविध शरीर को आच्छादित करती हैं। उन्नत होकर वे तीनों लोकों को व्याप्त करनेवाले अथवा डेढ़ वर्ष की अवस्था-वाले सूर्य को चाटती हुई अवस्थान करती हैं। सत्यभूत आदित्य के स्थान को जानते हुए हम उनकी परिचर्या करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही हैं।

१५. पदद्वय की तरह दर्शनीय अहोरात्र द्यावा-पृथिवी के मध्य में स्थापित हैं। उनके मध्य में एक गूढ़ और अन्य आविर्भूत हैं। अहोरात्र का परस्पर मिलन-पथ (काल) पुण्यकारी और अपुण्यकारी दोनों को ही प्राप्त होता है। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१६. वृष्टि-द्वारा सबकी प्रीणयित्री, शिशुरहिता, आकाश में वर्त-माना, अक्षीणरसा, क्षीरप्रसविणी युवती और सर्वदा नूतनस्वरूपा दिशायें (या मेघ) कम्पित हों। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१७. जल के वर्षक पर्जन्यरूप इन्द्र अन्य दिशाओं में मेघ-द्वारा प्रभूत शब्द करते हैं। वे अन्य दिशासमूह में वारिवर्षण करते हैं। वे जल या शत्रु के क्षेपनवान् हैं, सबके द्वारा भजनीय हैं और सबके राजा हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१८. हे जनो, शूर इन्द्र के शोभन अश्वों का हम शीघ्र ही प्रभूत वर्णन करते हैं। देवता भी इन्द्र के अश्वों को जानते हैं। दो-दो मासों को मिलाने पर छः ऋतुएँ होती हैं; फिर हेमन्त और शिशिर को मिला देने पर पाँच ही ऋतुएँ होती हैं। ये ही इन्द्र के अश्व हैं। ये कालात्मक इन्द्र का वहन करती हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

१९. अन्तर्यामी होने के कारण सबके प्रेरक, नानाविध रूपविशिष्ट त्वष्टृदेव बहुत प्रकार से प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं और उनका पोषण करते हैं। ये सम्पूर्ण भुवन त्वष्टा के हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

२०. इन्द्र ने महती और परस्पर संगत द्यावा-पृथिवी को पशु-पक्षियों से युक्त किया है। वह द्यावा-पृथिवी इन्द्र के तेज से अतिशय व्याप्त

है। समर्थ इन्द्र शत्रुओं को पराजित कर उनके धन को ग्रहण करने में विख्यात हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

२१. विश्वधाता और हम लोगों के राजा इन्द्र इस पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष में हितकारी मित्र की तरह निवास करते हैं। वीर मरुद्गण संग्राम के लिए इन्द्र के आगे जाते हैं। वे इन्द्र के गृह में निवास करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।

२२. हे पर्जन्यात्मक इन्द्र, ओषधियों ने तुमसे सिद्धि पाई है, जल तुमसे ही निःसृत हुआ है और पृथ्वी तुम्हारे भोग के लिए धन को धारण करती है। हम लोग तुम्हारे सखा हैं। हम लोग तुम्हारे धन के भागी हो सकें। देवताओं का महान् बल एक ही है।

तृतीय अध्याय समाप्त।

५६ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय। देवता विश्वदेवगण। ऋषि प्रजापति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मायावीगण देवों की सृष्टि के अनन्तर होनेवाले, स्थिर और प्रसिद्ध कर्मों को हिंसित न करें, विद्वान् लोग भी न करें। द्रोह-रहित द्यावा-पृथिवी प्रजागण के साथ उन्हें विघ्नयुक्त नहीं करें। अचल पर्वतों को कोई अवनत नहीं कर सकता है।

२. एक स्थायी संवत्सर वसन्त आदि छः ऋतुओं को धारण करता है। सत्यभूत और प्रवृद्ध आदित्यात्मक संवत्सर को रश्मियाँ प्राप्त करती हैं। उज्ज्वल लोकत्रय ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं। स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुहा में निहित हैं; एक पृथिवी ही दीख पड़ती है।

३. ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त नामक तीन उरवाले, जलवर्षक, नाना-रूप, तीन ऊध (वसन्त, शरत्, हेमन्त)-विशिष्ट, बहु प्रकार, प्रजावान्,

उष्ण, वर्षा और शीतात्मक तीन गुणवाले तथा महत्त्ववान् संवत्सर आते हैं। सेचन-समर्थ संवत्सर सबके लिए उदक धारण करते हैं।

४. संवत्सर इन सकल ओषधियों के समीप उनके पदस्वरूप जागरित हुआ है। मैं आदित्यों (चैत्रादि मासों) का मनोहर नाम उच्चारण करता हूँ। द्युतिमान् और स्वतन्त्र पथ-द्वारा आनेवाला जल-समूह इस संवत्सर को चार महीनों तक वृष्टि-द्वारा प्रीत करता है और आठ महीनों तक छोड़ देता है।

५. हे नदियो, त्रिगुणित त्रिसंख्यक स्थान देवों का निवासस्थान हैं। तीनों लोकों के निर्माता संवत्सर या सूर्य यज्ञ के सम्राट् हैं। जल-वती अन्तरिक्षचारिणी इला, सरस्वती और भारती नामक तीन योषित् यज्ञ के तीनों सवनों में आगमन करें।

६. हे सबके प्रेरक आदित्य, द्युलोक से आकर प्रतिदिन तीन बार रमणीय धन हम लोगों को प्रदान करो। हे हम लोगों के रक्षक आदित्य, हम लोगों को दिन के मध्य में तीन बार अर्थात् तीनों सवनों में पशु, कनक, रत्न और गोधन प्रदान करो। हे धिषणा, हम लोगों को जिससे धन लाभ हो, वैसा करो।

७. सविता दिन में तीन बार हम लोगों को धन प्रदान करें। कल्या-णपाणि, राजा, मित्रावरुण, द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष आदि देवता सविता देव की वदान्यता से अपेक्षित अर्थ की याचना करें।

८. विनाश-रहित और द्युतिमान् तीन उत्तम स्थान हैं। इन तीनों स्थानों में कालात्मक संवत्सर के अग्नि, वायु और सूर्य नामक पुत्र शोभा पाते हैं। यज्ञवान्, शीघ्रगामी और अतिरस्कृत देवगण दिन में तीन बार हमारे यज्ञ में आगमन करें।

५७ सूक्त

(देवता विश्वगण। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. विवेकवान् इन्द्र मेरी देवता-विषयक स्तुति को इतस्ततः विहा-रिणी, एकाकिनी और रक्षक-विहीना धेनु की तरह अवगत करें।

जिस स्तुतिरूपा धेनु से तत्क्षण बहुत अपेक्षित फल दोहन किया जाता है, इन्द्र और अग्नि उस धेनु की प्रशंसा करें।

२. इन्द्र, पूषा एवम् अभीष्टवर्षी कल्याणपाणि मित्रावरुण प्रीत होकर सम्प्रति अन्तरिक्षशायी मेघ का अन्तरिक्ष से दोहन करते हैं। हे निवास-प्रद विश्वदेवगण, तुम सब इस वेदि पर विहार करो, जिससे हम लोगों को तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त हो।

३. जो ओषधियाँ जलवर्षक इन्द्र की शक्ति की वाञ्छा करती हैं, वे ओषधियाँ नम्र होकर इन्द्र की गर्भाधान-शक्ति को जानती हैं। फलाभिलाषिणी, सबकी प्रीणयित्री ओषधियाँ नाना रूपधारी व्रीहि, यव, नीवारादि शस्यस्वरूप पुत्र के अभिमुख विचरण करती हैं।

४. यज्ञ में प्रस्तर धारण करके हम सुन्दर रूप-विशिष्ट द्यावा-पृथिवी की स्तुति-लक्षण वचन-द्वारा स्तुति करते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी अतिशय वरणीय, कमनीय और पूज्य दीप्तियाँ मनुष्यों के लिए ऊर्ध्वमुख होती हैं।

५. हे अग्नि, तुम्हारी जो मधुमती और प्रज्ञाशालिनी ज्वाला अत्यन्त व्याप्तिविशिष्ट होकर देवों के मध्य में आह्वानार्थ प्रेरित होती है, उस जिह्वा से यजनीय देवों को हमारी रक्षा के लिए इस कर्म में उपवेशित कराओ। उन देवों को हर्ष कर सोमपान कराओ।

६. हे द्युतिमान् अग्नि, नानारूपा और हम लोगों को छोड़कर अन्यत्र न जानेवाली तुम्हारी जो अनुग्रह बुद्धि है, वह हम लोगों को अपेक्षित फल-प्रदान-द्वारा वर्द्धित करे, जैसे मेघ की धारा वनस्पतियों को वर्द्धित करती है। हे निवासप्रद जातवेदा, हम लोगों को उसी अनुग्रह बुद्धि का प्रदान करो और सर्वजन-हितकारिणी शोभन बुद्धि को दो।

५८ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रीणयित्री उषा पुरातन अग्नि के लिए कमनीय दुग्ध दोहन करती है। उषापुत्र सूर्य उसके मध्य में विचरण करते हैं। शुभ्रदीप्ति दिवस

सबके प्रकाशक सूर्य का वहन करता है। उसके पूर्व ही अश्विद्वय के स्तोता जागरित होते हैं।

२. हे अश्विद्वय, उत्तम रूप से रथ में युक्त अश्वद्वय सत्यरूप रथ-द्वारा तुम दोनों को यज्ञ में ले आने के लिए वहन करते हैं। यज्ञ तुम्हारे लिए उन्मुख होते हैं, जैसे माता-पिता को लक्ष्य कर पुत्र जाते हैं। हम लोगों के निकट से पणियों की आसुरी बुद्धि को विशेष रूप से नष्ट करो। हम लोग तुम्हारे लिए हवि प्रस्तुत करते हैं। तुम दोनों आगमन करो।

३. हे अश्विद्वय, सुन्दर चक्रविशिष्ट रथ पर आरोहण करके और उत्तम रूप से योजित अश्वों-द्वारा वाहित होकर तुम दोनों स्तुतिकारियों के इस श्लोक का श्रवण करो। हे अश्विद्वय, पुरातन मेधाविगण क्या नहीं बोलते हैं, जो हमारी वृत्तिहानि के विरुद्ध तुम दोनों गमन करते हो।

४. हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारी स्तुति को अवगत करो और अश्वों के साथ यज्ञ में आगमन करो। सब स्तोता स्तुतिलक्षण वचनों से तुम दोनों का आह्वान करते हैं। वे मित्र की तरह दुग्धमिश्रित और हर्ष-कर हवि तुम दोनों को प्रदान करते हैं। सूर्य उषा के आगे उदित होते हैं। इसलिए आगमन करो।

५. हे अश्विद्वय, नाना देशों को अपने तेज से तिरस्कृत करके तुम दोनों देवयान पथ-द्वारा इस स्थल में आगमन करो। हे धनवान् अश्विद्वय, तुम दोनों के लिए स्तोताओं का स्तोत्र उद्घोषित होता है। हे शत्रुओं के क्षयकारक, तुम दोनों के लिए ये मदकारक सोम के पात्र विशेष सञ्चित हैं।

६. हे अश्विद्वय, तुम दोनों का पुरातन सख्य वाञ्छनीय है और कल्याणकर है। हे नेतृद्वय, तुम दोनों का धन जह्नुकुलजा में है। तुम दोनों के सुखकर सख्य को बारम्बार प्राप्त करके हम लोग मित्रभूत

(तुम्हारे समान) होती हैं। हर्षकारक सोम के द्वारा तुम दोनों के साथ हम शीघ्र ही हृष्ट होते हैं।

७. शोभन सामर्थ्य से युक्त, नित्य तरुण, असत्यरहित एवम् शोभन फल के दाता हे अश्विद्वय, वायु और नियुद्गण के साथ मिलकर अक्षीण और सोमपायी तुम दोनों दिवस के शेष में सोम पान करो।

८. हे अश्विद्वय, प्रचुर हवि तुम लोगों के निकट गमन करती है। दोषरहित और कर्मकुशल स्तोता लोग स्तुतिलक्षण वचनों-द्वारा तुम दोनों की परिचर्या करते हैं। स्तोताओं-द्वारा आकृष्ट जलप्रद रथ द्यावा-पृथिवी के मध्य में सद्यः गमन करता है।

९. हे अश्विद्वय, जो सोम अत्यन्त मधुर रस से मिश्रित हुआ है, उसका पान करो। तुम लोगों का धनदानकारी रथ सोमाभिषव करने-वाले यजमान के संस्कृत गृह में बारम्बार आगमन करता है।

५९ सूक्त

(देवता मित्र। ऋषि विश्वामित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तुत होने पर देवता सकल लोक को कृष्यादि कार्य में प्रवर्तित करते हैं। वृष्टि-द्वारा अन्न और यज्ञ को उत्पन्न करते हुए मित्र देवता पृथ्वी और द्युलोक दोनों का धारण करते हैं। कर्मवान् मनुष्यों को चारों तरफ़ से मित्र देवता अनुग्रह दृष्टि से देखते हैं। मित्र के उद्देश से घृतविशिष्ट हव्य प्रदान करो।

२. हे आदित्य, मित्र, यज्ञयुक्त होकर जो मनुष्य तुम्हें हविरन्न प्रदान करता है, वह अन्नवान् हो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर वह मनुष्य किसी से भी विनष्ट और अभिभूत नहीं होता है। तुम्हें जो हविः देता है, उस पुरुष को दूर अथवा निकट से पाप छू नहीं सकता है।

३. हे मित्र, रोग-वर्जित होकर अन्नलाभ से हृष्ट होकर और पृथिवी के विस्तीर्ण प्रदेश में मितजानु होकर हम सर्वत्रगामी आदित्य के

व्रत (कर्म) के निकट अवस्थिति करते हैं। हम लोगों के ऊपर आदित्य अनुग्रह-बुद्धि करें।

४. नमस्कारयोग्य, सुन्दर-मुख-विशिष्ट, स्वामी, अत्यन्त बल-विशिष्ट और सबके विधाता ये सूर्य प्रादुर्भूत हुए हैं। ये यज्ञार्ह हैं। इनके अनुग्रह और कल्याणकर वात्सल्य को हम यजमान प्राप्त कर सकें।

५. जो आदित्य महान् हैं, जो सकल लोक के प्रवर्त्तक हैं, नमस्कार-द्वारा उनकी उपासना करना उचित है। वे स्तुति करनेवालों के प्रति प्रसन्नमुख होते हैं। स्तुतियोग्य मित्र के लिए प्रीतिकर हव्य अग्नि में अर्पित करो।

६. वृष्टि-द्वारा मनुष्यों के धारक मित्रदेव का अन्न और सबके द्वारा भजनीय धन अतिशय कीर्तियुक्त है।

७. जिस मित्रदेव ने अपनी महिमा से द्युलोक को अभिभूत किया है, उसी ने कीर्तियुक्त होकर पृथ्वी को प्रचुर अन्न-विशिष्टा किया है।

८. निषाद को लेकर पाँचों वर्ण शत्रुजयक्षम और बलविशिष्ट मित्र के उद्देश्य से हव्य प्रदान करते हैं। मित्र अपने स्वरूप से समस्त देवगण को धारण करते हैं।

९. देवों और मनुष्यों के मध्य में जो व्यक्ति कुशच्छेदन करता है, उसे मित्रदेव कल्याणकर अन्न प्रदान करते हैं।

६० सूक्त

(देवता ऋभुगण। ऋषि विश्वामित्र। छन्द जगती।)

१. हे ऋभुगण, तुम लोगों के कर्म को सब कोई जानता है। हे मनुष्यगण, तुम सब सुधन्वा के पुत्र हो। तुम लोग जिस सकल कर्म-द्वारा शत्रुपराभवोपयुक्त और तेजोविशिष्ट होकर यज्ञीय भाग को प्राप्त करते हो, कामना-काल में उस सकल कर्म को तुम लोग जान जाते हो।

२. हे ऋभुओ, जिस शक्ति के द्वारा तुम लोगों ने चमस को विभक्त किया था, जिस प्रज्ञाबल से गो-शरीर में चर्मयोजना की थी और जिस

मनीषा के द्वारा इन्द्र के अश्वद्वय का निर्माण किया था, उन्हीं सकल कर्मों-द्वारा तुम लोगों ने यज्ञभागार्हत्व देवत्व प्राप्त किया है।

३. मनुष्यपुत्र ऋभुगण ने यागादि कर्म करके इन्द्र के सखित्व को प्राप्त किया है। पूर्व में मरणधर्मा होकर भी वे इन्द्र के सखित्व से प्राण धारण करते हैं। सुधन्वा के पुण्य-कार्यकारी पुत्रगण कर्मबल और यज्ञादि-बल से व्याप्त होकर अमृतत्व को प्राप्त हुए हैं।

४. हे ऋभुगण, तुम लोग इन्द्र के साथ एक रथ पर आरोहण करके सोमाभिषव के स्थान में गमन करो। पीछे मनुष्यों की स्तुतियों को ग्रहण करो। हे अमृत-बलवाहक सुधन्वा के पुत्रो, तुम्हारे शोभन कर्मों की इयत्ता कोई नहीं कर सकता है। हे ऋभुओ, तुम्हारी सामर्थ्य की इयत्ता भी कोई नहीं कर सकता है।

५. हे इन्द्र, तुम वाज (अन्न या ऋभुओं के भ्राता)-विशिष्ट हो। ऋभुओं के साथ तुम अच्छी तरह से जल-द्वारा सिक्त और अभिषुत सोम को दोनों हाथों से ग्रहण करके पान करो। हे मघवन्, तुम स्तुति-द्वारा प्रेरित होकर यजमान के गृह में सुधन्वा के पुत्रों के साथ सोमपान से हृष्ट होते हो।

६. हे बहुस्तुत इन्द्र, ऋभु और वाज से युक्त होकर तथा इन्द्राणी के साथ होकर हमारे इस तृतीय सवन में आनन्दित होओ। हे इन्द्र, तीनों सवनों में सोमपान के लिए ये दिन तुम्हारे लिए नियत हुए हैं। किन्तु देवों के व्रत और मनुष्यों के कर्मों के साथ सकल दिन तुम्हारे लिए नियत हुए हैं।

७. हे इन्द्र, तुम स्तोताओं के अन्नों का सम्पादन करते हुए वाज-युक्त ऋभुओं के साथ इस यज्ञ में स्तोताओं के स्तोत्रों के अभिमुख आगमन करो। मरुद्गण भी शतसंख्यक गमन कुशल अश्वों के साथ यजमान के सहस्र प्रकार से प्रणीत अध्वर के अभिमुख आगमन करें।

६१ सूक्त

(देवता उषा । ऋषि विश्वामित्र । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हे अन्नवती तथा धनवती उषा, प्रकृष्ट ज्ञानवती होकर तुम स्तोत्र करनेवाले स्तोता के स्तोत्र का ग्रहण करो। हे सबके द्वारा वरणीया, पुरातनी युवती की तरह शोभमाना और बहुस्तोत्रवती उषा, तुम यज्ञ कर्म को लक्ष्य कर आगमन करो।

२. हे मरणधर्म-रहिता, सुवर्णमय रथवाली उषा देवी, तुम प्रिय सत्यरूप वचन का उच्चारण करनेवाली हो। तुम सूर्य-किरण के सम्बन्ध से शोभमाना होओ। प्रभूतबल युक्त जो अरुण-वर्ण अश्व हैं, वे सुखपूर्वक रथ में योजित किये जा सकते हैं। वे तुम्हें आवाहन करें।

३. हे उषादेवी, तुम निखिल भूतजात के अभिमुख आगमनशीला, मरणधर्म-रहिता और सूर्य की केतु-स्वरूपा हो। तुम आकाश में उन्नत होकर रहती हो। हे नवतरा उषा, तुम एक मार्ग में विचरण करने की इच्छा करती हुई आकाश में चलनेवाले सूर्य के रथाङ्ग की तरह पुनः-पुनः उसी मार्ग में प्रवृत्त होओ।

४. जो धनवती उषा वस्त्र की तरह विस्तीर्ण अन्धकार को क्षयित करती हुई सूर्य की पत्नी होकर गमन करती है, वही सौभाग्यवती और सत्प्रकार्यशालिनी उषा द्युलोक और पृथ्वी के अवसान से प्रकाशित होती है।

५. हे स्तोताओ, तुम लोगों के अभिमुख उषादेवी शोभमाना होती है। तुम लोग नमस्कार-द्वारा उसकी शोभनस्तुति करो। स्तुति को धारण करनेवाली उषा आकाश में ऊर्द्ध्वाभिमुख तेज को आश्रित करती है। रोचनशीला और रमणीयदर्शना उषा अतिशय दीप्त होती है।

६. जो उषा सत्यवती है, उसे सब कोई द्युलोक के तेजः प्रभाव से जानते हैं। धनवती उषा नानाविध रूप से युक्त होकर द्यावा-पृथिवी को व्याप्त करके रहती है। हे अग्नि, तुम्हारे अभिमुख आनेवाली, भासमाना

उषा देवी से हवि की याचना करनेवाले तुम रमणीय धन को प्राप्त करते हो।

७. वृष्टि-द्वारा जल के प्रेरक आदित्य सत्यभूत दिवस के मूल में उषा का प्रेरण करके विस्तीर्ण द्यावा-पृथिवी के मध्य में प्रवेश करते हैं। तदनन्तर महती उषा मित्र और वरुण की प्रभास्वरूपा होकर सुवर्ण की तरह अपनी प्रभा को अनेक देशों में प्रसारित करती है।

६२ सूक्त

(देवता १—३ के इन्द्रावरुण, ४—६ के बृहस्पति, ७—९ के पूषा, १०—१२ के सविता, १३—१५ के सोम और १६—१८ के मित्रावरुण। ऋषि विश्वामित्र, किसी-किसी के मत से अन्तिम तीन ऋचा के ऋषि जमदग्नि। छन्द १—३ त्रिष्टुप् और शेष गायत्री।)

१. हे मित्रावरुण, शत्रुओं-द्वारा अभिमन्यमान अतएव भ्रमणशीला तुम्हारी ये प्रजायें जिससे तरुण वयस्क शत्रुओं-द्वारा हिंसित न हों, तुम लोगों का तादृश यश और कहाँ है, जिससे तुम लोग हम बन्धुओं के लिए अन्न-सम्पादन करते हो।

२. हे इन्द्रावरुण, धन की इच्छा करनेवाले ये महान् यजमान रक्षा या अन्न के लिए तुम दोनों का सर्वदा आह्वान करते हैं। मरुद्गण, द्युलोक और पृथिवी के साथ मिलित होकर तुम दोनों मेरी स्तुति सुनो।

३. हे इन्द्रावरुण, हम लोगों को वही अभिलषित धन हो। हे मरुद्-गण, सर्वकर्म-समर्थ पुत्र और पशुसंघ हम लोगों को हो। सबके द्वारा भजनीय देव-पत्नियाँ शरण-(गृह) द्वारा हम लोगों की रक्षा करें। होत्रा भारती (होत्रा अग्निपत्नी, भारती सूर्यपत्नी) उदार वचनों-द्वारा हम लोगों का पालन करें।

४. हे सब देवों के हितकर बृहस्पति, हम लोगों के पुरोडाश (हवि) आदि का सेवन करो। तदनन्तर हवि देनेवाले यजमान को तुम उत्तम धन दो।

५. हे ऋत्विको, तुम लोग यज्ञ-समूह में अर्चनीय स्तोत्रों-द्वारा विशुद्ध बृहस्पति की परिचर्या करो। मैं शत्रुओं-द्वारा अनभिभवनीय बल की याचना करता हूँ।

६. मनुष्यों के लिए अभिमतफलवर्षक, विश्वरूप नामक गोवाहन से युक्त, अतिरस्करणीय और सबके द्वारा भजनीय बृहस्पति के निकट मैं अभिमत फल की याचना करता हूँ।

७. हे दीप्तिमान् पूषा, ये नवीनतम और शोभन स्तुतिरूप वचन तुम्हारे लिए हैं। इस स्तुति का उच्चारण हम लोग तुम्हारे लिए करते हैं।

८. हे पूषा, मेरी उस स्तुति को ग्रहण करो। स्त्रीकामी व्यक्ति जैसे स्त्री के अभिमुख आगमन करता है, वैसे ही तुम इस हर्षकारिणी स्तुति के अभिमुख आगमन करो।

९. जो पूषा निखिल लोक को विशेष रूप से देखते हैं और उसे देखते हैं, वे ही पूषा हम लोगों के रक्षक हों।

१०. जो सविता हम लोगों की बुद्धि को प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियों में प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वर के संभजनीय पर-ब्रह्मात्मक तेज का हम लोग ध्यान करते हैं।

११. हम लोग धनाभिलाषी होकर स्तुति-द्वारा द्योतमान सविता से भजनीय धन के दान की याचना करते हैं।

१२. कर्मनेता मेधावी अध्वर्युगण बुद्धि-द्वारा प्रेरित होकर यजनीय हवि और शोभन स्तोत्रों-द्वारा सविता देवता की अर्चना करते हैं।

१३. पथज्ञ सोम जानेवालों को स्थान दिखाते हैं। उपवेशनकारी देवों के लिए संस्कृत यज्ञ-स्थान में गमन करते हैं।

१४. सोम हम स्तोताओं के लिए एवम् द्विपदों, चतुष्पदों और पशुओं के लिए रोगशून्य अन्न प्रदान करें।

१५. सोमदेव हम लोगों के अन्न या आयु को बढ़ाते हुए और कर्म-विघातक शत्रुओं को अभिभूत करते हुए हम लोगों के यज्ञस्थान में उप-वेशन करें।

१६. हे शोभन कर्मकारी मित्रावरुण, हम लोगों के गोष्ठ को दुग्ध-पूर्ण करो। हम लोगों के आवास-स्थान को मधुर रस से पूर्ण करो।

१७. हे विशुद्धकर्मकारी मित्रावरुण, तुम दोनों बहुतों-द्वारा स्तुत हो एवम् हविरन्न या स्तोत्र-द्वारा वर्द्धमान हो। दीर्घ स्तुतियुक्त होकर तुम लोग धन या बल के महत्त्व से विराजमान होओ।

१८. हे मित्रावरुण, तुम दोनों जमदग्नि नामक महर्षि-द्वारा अथवा अग्नि को प्रज्वलित करनेवाले विश्वामित्र-द्वारा स्तुत होकर यज्ञ देश में उपवेशन करो। तुम दोनों ही कर्मफल के वर्द्धयिता हो, सोमपान करो।

तृतीय मण्डल समाप्त।

१ सूक्त

(१ अनुवाक। ३ अष्टक। ४ मण्डल। ४ अध्याय। देवता अग्नि २—४ ऋचा के देवता वरुण। ऋषि वामदेव। छन्द अष्टि, अति धृति जगती और त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, तुम द्योतमान और शीघ्रगामी हो। स्पर्द्धावान् देव-गण तुम्हें सर्वदा ही युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं; अतएव यजमान लोग तुम्हें स्तुति-द्वारा प्रेरित करें। हे यजनीय अग्नि, तुम अमर, द्युतिमान् और उत्कृष्ट ज्ञान-विशिष्ट हो। यज्ञ करनेवाले मनुष्यों के मध्य में आने के लिए देवों ने तुम्हें उत्पन्न किया है। तुम कर्माभिज्ञ हो। समस्त यज्ञों में उपस्थित रहने के लिए देवों ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

२. हे अग्नि, तुम्हारे भ्राता वरुण हैं। वे हव्यभाजन, यज्ञभोक्ता, अतिशय प्रशंसनीय, उदकवान्, अदिति-पुत्र, जलदान-द्वारा मनुष्यों के धारक, सुबुद्धियुक्त और राजमान हैं। तुम ऐसे वरुणदेव को स्तोताओं के अभिमुख करो।

३. हे सखिभूत दर्शनीय अग्नि, तुम अपने सखा वरुण को हमारे अभिमुख करो, जैसे गमनकुशल और रथ में युक्त अश्वद्वय शीघ्रगामी चक्र को लक्ष्य देश के अभिमुख ले जाते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी सहायता से वरुण ने सुखकर हव्य लाभ किया है तथा तेजोविशिष्ट मरुतों के लिए भी सुखकर हव्य लाभ किया है। हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम हमारे पुत्र-पौत्रों को सुखी करो। हे दर्शनीय अग्नि, हम लोगों का कल्याण करो।

४. हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थ के साधनोपाय को जानते हो। हम लोगों के प्रति द्योतमान वरुण के क्रोध का अपनोदन करो। तुम सबकी अपेक्षा अधिक याज्ञिक, हविर्वाही और अतिशय दीप्तिमान् हो। तुम हम लोगों को सब प्रकार के पापों से विशेष रूप से विमुक्त करो।

५. हे अग्नि, रक्षादान-द्वारा तुम हम लोगों के प्रत्यासन्न होओ। उषा के विनष्ट होने पर प्रातःकाल में अग्निहोत्रादि कार्य की सिद्धि के लिए तुम हम लोगों के अत्यन्त निकटस्थ होओ। हम लोगों के लिए जो वरुणकृत जलोदरादि रोग और पाप हैं, उनका विनाश करो। तुम यजमानों के लिए अत्यन्त फलप्रद हो। तुम इस सुखकर हवि का भक्षण करो। हम तुम्हारा उत्तम रूप से आह्वान करते हैं; हमारे निकट आगमन करो।

६. उत्तम रूप से भजनीय अग्निदेव का प्रशंसनीय अनुग्रह मनुष्यों के लिए अत्यन्त भजनीय तथा स्पृहणीय होता है, जैसे क्षीराभिलाषी देवों के लिए गौओं का तेजोयुक्त, क्षरणशील और उष्ण दुग्ध स्पृहणीय होता है और जैसे मनुष्यों के लिए पयस्विनी गौ भजनीय होती है।

७. अग्निदेव का प्रसिद्ध, उत्तम और यथार्थभूत अग्नि, वायु तथा सूर्यात्मक तीन जन्म सबके द्वारा स्पृहणीय हैं। अनन्त, आकाश में अपने तेज-द्वारा परिवेष्टित, सबके शोधक, दीप्तियुक्त और अत्यन्त दीप्यमान स्वामी अग्नि हमारे यज्ञ में आगमन करें।

८. दूत, देवों के आह्वानकारी, सुवर्णमय रथोपेत, एवम् रमणीय ज्वाला-विशिष्ट अग्नि समस्त यज्ञ की कामना करते हैं। रोहिताश्व, रूपवान् और सदा कान्तियुक्त अग्नि अन्न-द्वारा समृद्ध गृह की तरह रमणीय हैं।

९. अग्नि यज्ञ में विनियुक्त होते हैं। वे यज्ञ में प्रवृत्त मनुष्यों को जानते हैं। अध्वर्युगण महती रशना-द्वारा उत्तर वेदि में उनका प्रणयन करते हैं। यजमान के गृहों में अभीष्ट-साधन करते हुए वे निवास करते हैं। वे द्योतमान अग्नि धनियों के साथ एकत्र वास करते हैं।

१०. स्तोताओं-द्वारा भजनीय जो उत्कृष्ट रत्न अग्नि का है, उस रत्न को सर्वज्ञ अग्नि हमारे अभिमुख प्रेरित करें। मरण-धर्म-रहित समस्त देवों ने यज्ञ के लिए अग्नि का उत्पादन किया है। द्युलोक उनके पालक और जनक हैं। अध्वर्युगण घृतादि आहुतियों-द्वारा यथार्थभूत अग्नि को सिञ्चित करते हैं।

११. अग्नि ही श्रेष्ठ हैं। वे यजमानों के गृहों में और महान् अन्तरिक्ष के मूल स्थान में उत्पन्न हुए हैं। अग्नि पादरहित और शिरोवर्जित हैं। वे शरीर के अन्तर्भाग का गोपन करके जलवर्षी मेघ के निलय में अपने को धूमाकार बनाते हैं।

१२. हे अग्नि, तुम स्तुतियुक्त उदक के उत्पत्ति-स्थान में मेघ के कुलायभूत (घोंसला) अन्तरिक्ष में वर्तमान हो। तेज तुम्हारे निकट सर्वप्रथम उपस्थित होता है। जो अग्नि स्पृहणीय, नित्य तरुण, कमनीय और दीप्तिमान् हैं, उन्हीं अग्नि के उद्देश से सप्त होता स्तुति करते हैं।

१३. इस लोक में हमारे पितृपुरुषों (अङ्गिरा आदि) ने यज्ञ करने के लिए अग्नि के अभिमुख गमन किया था। प्रकाश के लिए

उषादेवी का आह्वान करते हुए उन लोगों ने अग्नि-परिचर्या के बल से पर्वतविलान्तर्वर्ती अन्धकार के मध्य से दोहवती धेनुओं को बाहर किया था।

१४. उन लोगों ने पर्वत को विदीर्ण करते समय अग्नि की परिचर्या की थी। अन्य ऋषियों ने उनके कर्म का कीर्त्तन सर्वत्र किया था। उन्हें पशुओं को बचाने के उपाय ज्ञात थे। अभिमत फलप्रद अग्नि का स्तवन करते हुए उन्होंने ज्योति-लाभ किया था, और बुद्धिबल से यज्ञ किया था।

१५. अङ्गिरा आदि कर्मों के नेता और अग्नि की कामनावाले थे। उन्होंने मन से गो-लाभ की इच्छा करके द्वारनिरोधक, दृढ़बद्ध, सुदृढ़, गौओं के अवरोधक एवम् सर्वतः व्याप्त गोपूर्ण गोष्ठ-रूप पर्वत का अग्निविषयक स्तुति-द्वारा उद्घाटन किया था।

१६. हे अग्नि, स्तोत्र करनेवाले अङ्गिरा आदि ने ही पहले-पहल जननी वाक् के सम्बन्धी स्तुतिसाधक शब्दों को जाना, पश्चात् वचन-सम्बन्धी सत्ताईस छन्दों को प्राप्त किया। अनन्तर इन्हें जाननेवाली उषा का स्तवन किया एवम् सूर्य के तेज के साथ अरुणवर्णा उषा प्रादुर्भूत हुई।

१७. रात्रिकृत अन्धकार उषा-द्वारा प्रेरित होने पर विनष्ट हुआ। अन्तरिक्ष दीप्त हुआ। उषादेवी की प्रभा उद्गत हुई। मनुष्यों के सत् और असत् कर्मों का अवलोकन करते हुए सूर्यदेव महान् अजर पर्वत के ऊपर आरूढ़ हुए।

१८. सूर्योदय के अनन्तर अङ्गिरा आदि ने पणियों-द्वारा अपहृत गौओं को जानकर पीछे की ओर से उन गौओं को अच्छी तरह से देखा एवम् दीप्तियुक्त धन धारण किया। इनके समस्त गृहों में पूज-नीय देवगण आये। वरुण-जनित उपद्रवों का निवारण करनेवाले हे मित्र-भूत अग्नि, जो तुम्हारी उपासना करता है, उसे सत्य फल लाभ हो।

१९. हे अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान्, देवों के आह्वाता, विश्व-पोषक और सर्वापेक्षा यागशील हो। तुम्हारे उद्देश से हम स्तुति करते हैं। यजमान लोग तुम्हें आहुति देने के लिए गौओं के ऊधः-प्रदेश से शुद्ध दुग्ध का दोहन नहीं करते हैं और न सोमलता-सम्बन्धी शोधित अन्न को ही गृह में प्रक्षिप्त करते हैं। वे लोग केवल तुम्हारी स्तुति करते हैं।

२०. अग्नि समस्त यज्ञार्ह देवों के पोषक हैं। अग्नि सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए अतिथिवत् पूज्य हैं। स्तोताओं के अन्नभोजी अग्नि स्तोताओं के लिए सुखकर हों।

२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो मरणधर्म-रहित अग्नि मनुष्यों के मध्य में सत्यवान् होकर निहित हैं, जो दीप्तिमान् अग्नि इन्द्रादि देवताओं के मध्य में शत्रुओं के पराभवकर्त्ता हैं, वे ही अग्नि देवों के आह्वाता और सबकी अपेक्षा अधिक यज्ञ करनेवाले हैं। वे अपनी महिमा से प्रदीप्त होने के लिए उत्तर वेदि पर स्थापित हुए हैं एवम् हवि-द्वारा यजमानों को स्वर्ग भेजने के लिए स्थापित हुए हैं।

२. हे बल पुत्र अग्नि, तुम आज हमारे इस कार्य में संस्कृत हुए हो। हे दर्शनीय अग्नि, तुम ऋजु, मांसल, दीप्तिमान् और बलवान् अश्वों को रथ में युक्त करके जन्मविशिष्ट देव और मनुष्यों के मध्य में हव्य पहुँचाने के लिए दूत बनकर जाते हो।

३. हे अग्नि, तुम सत्यभूत हो। मैं तुम्हारे रोहितवर्णवाले अश्व-द्वय की स्तुति करता हूँ। वे अश्व मन की अपेक्षा भी अधिक वेगवान् हैं, वे अन्न और जल का क्षरण करते हैं। तुम दीप्तिमान् अश्वद्वय को रथ में युक्त करके देवों और मनुष्यों के मध्य में प्रवेश करो।

४. हे अग्नि, तुम्हारा अश्व उत्तम है, रथ उत्तम है और धन भी उत्तम है। इन मनुष्यों के मध्य में शोभन हविवाले यजमान के लिए अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्राविष्णु, मरुद्गण और अश्विद्वय का आनयन करो।

५. हे बलवान् अग्नि, हमारा यह यज्ञ गोविशिष्ट, मेषविशिष्ट और अश्वविशिष्ट हो। जो यज्ञ अध्वर्यु और यजमानविशिष्ट है, वह यज्ञ सर्वदा अप्रधृष्य, हविरन्न से युक्त तथा पुत्र-पौत्रवान् हो एवम् अविच्छिन्न अनुष्ठान से संयुक्त, धनसम्पन्न, बहुत धनों का हेतुभूत और उपवेष्टाओं से युक्त हो।

६. हे अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारे लिए स्वेद (पसीने से) युक्त होकर लकड़ियों को ढोता है, जो तुम्हें प्राप्त करने की कामना से अपने मस्तक को काष्ठभार से उत्तप्त करता है, उसे तुम धनवान् बनाते हो और उसका पालन करते हो। जो कोई उसकी अनिष्ट-कामना करता है, उससे तुम उसकी रक्षा करो।

७. हे अग्नि, अन्न की इच्छा करने पर जो कोई तुम्हें देने के लिए हविरन्न धारण करता है, जो तुम्हें हर्षकर सोम प्रदान करता है, जो अतिथि-रूप से तुम्हारा उत्तर वेदि पर प्रणयन करता है और जो व्यक्ति देवत्व की इच्छा करके तुम्हें गृह में समिद्ध करता है, उसका पुत्र धर्मपथ में निश्चल और औदार्यविशिष्ट हो।

८. हे अग्नि, जो मनुष्य रात्रिकाल में और जो व्यक्ति उषाकाल में तुम्हारी स्तुति करता है एवम् जो यजमान प्रिय हव्य से युक्त होकर तुम्हें प्रसन्न करता है, तुम अपने गृह में सुवर्ण-निर्मित सज्जा (काठी) विशिष्ट अश्व की तरह विचरण करते हुए उस यजमान को दरिद्रता से रक्षा करो।

९. अग्नि, तुम अमर हो। जो यजमान तुम्हारे लिए हव्य प्रदान करता है, जो तुम्हारे लिए स्रुक् को संयत करता है, जो तुम्हारी

परिचर्या करता है, वह स्तोत्र करनेवाला यजमान धन-शून्य न हो, हिंसकों का आहनन उसका स्पर्श न करे।

१०. हे अग्नि, तुम आनन्दयुक्त और दीप्तिमान् हो। तुम जिस मनुष्य का सुसम्पादित और हिंसा-रहित अन्न भक्षण करते हो, हे युवतम, वह होता निश्चय ही प्रीत होता है। अग्नि के परिचर्याकारी जो यजमान यज्ञ के वर्द्धयिता हैं, हम उन्हीं के होंगे।

११. अश्वपालक जिस तरह से अश्वों के कान्त एवम् दुर्वह पृष्ठों को पृथक् कर सकते हैं, उसी तरह विद्वान् अग्नि पाप और पुण्य को पृथक् करें। हे अग्निदेव, हम लोगों को सुन्दर पुत्र से युक्त धन दो। तुम दाता को धन दो और अदाता के समीप से उसकी रक्षा करो।

१२. हे अग्नि, मनुष्यों के गृहों में निवास करनेवाले अतिरस्कृत देवों ने तुम मेधावी को होता होने के लिए कहा है। हे अग्नि, तुम मेधावी हो, यज्ञस्वामी हो; अतएव तुम अपने उज्ज्वल तेज से दर्शनीय और अद्भुत देवों को देखो।

१३. हे दीप्तिमान् युवतम अग्नि, तुम मनुष्यों की अभिलाषा के पूरक एवम् उत्तर वेदि पर प्रणयन के योग्य हो। जो यजमान तुम्हारे लिए सोमाभिषव करता है, तुम्हारी परिचर्या करता है और तुम्हारा स्तवन करता है, उसकी रक्षा के लिए तुम उसे प्रभूत, आह्लादकर तथा उत्तम धन दो।

१४. हे अग्नि, जिस लिए हम लोग तुम्हारी कामना से हाथ, पैर और शरीर द्वारा कार्य करते हैं, उसी लिए यज्ञरत और शोभनकर्मा अङ्गिरा आदि ने बाहु-द्वारा काष्ठ मन्थन करके तुम सत्यभूत को उत्पन्न किया है, जैसे शिल्पिगण रथ निर्माण करते हैं।

१५. हम सात व्यक्ति (वामदेव और छः अङ्गिरा) प्रथम मेधावी हैं। हम लोगों ने माता उषा के समीप से अग्नि के परिचारकों या रश्मियों को उत्पन्न किया है। हम द्योतमान आदित्य के पुत्र अङ्गिरा हैं। हम दीप्तिमान् होकर उदक-विशिष्ट पर्वत का या मेघ का भेदन करेंगे।

१६. हे अग्नि, हम लोगों के श्रेष्ठ, पुरातन और सत्यभूत यज्ञ में रत पितृपुरुषों ने दीप्तस्थान तथा तेज प्राप्त किया था। उन्होंने उक्थों का उच्चारण करके अन्धकार को विनष्ट किया था तथा पणियों-द्वारा अपहृत अरुणवर्णा गौओं को या उषा को प्रकाशित किया था।

१७. सुन्दर यज्ञादि कार्य में रत दीप्तियुक्त तथा देवाभिलाषी स्तोता धौंकनी-द्वारा निर्मल लोहे की तरह अपने मनुष्य जन्म को यागादि कार्य-द्वारा निर्मल करते हैं। वे अग्नि को दीप्त तथा इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। चारों ओर उपवेशन करके उन्होंने महान् गो-समूह को प्राप्त किया था।

१८. हे तेजस्वी अग्नि, जिस तरह अन्न-विशिष्ट गृह में पशु-समूह रहता है, वैसे ही अङ्गिरा आदि देवों के गो-समूह के निकट हैं। उनके द्वारा लाई गई गौओं से प्रजा समर्थ हुई थी। आर्य-अपत्य वर्द्धन-समर्थ और मनुष्य पोषण-समर्थ हुए थे।

१९. हे अग्नि, हम तुम्हारी परिचर्या करते हैं, जिससे हम शोभन कर्मवाले होते हैं। तमोनिवारिका उषा सकल तेज धारण करती है। वह पूर्ण रूप से आह्लादकर अग्नि को बहुधा धारण करती है। तुम द्योतमान हो। हम तुम्हारे मनोहर तेज की परिचर्या करते हैं।

२०. हे विधाता अग्नि, तुम मेधावी हो। हम तुम्हारे उद्देश्य से इस सम्पूर्ण उक्थ का उच्चारण करते हैं, तुम इसका सेवन करो। तुम उद्दीप्त होकर हमें विशेष रूप से धनवान् करो। तुम बहुतों-द्वारा वरणीय हो। तुम हम लोगों को महान् धन प्रदान करो।

३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे यजमानो, यज्ञ के अधिपति, देवों के आह्वाता, द्यावा-पृथिवी के अन्नदाता, सुवर्ण की तरह प्रभावाले और शत्रुओं को रुलाने-वाले रुद्रात्मक अग्नि की, अपनी रक्षा के लिए वज्र-रूप मृत्यु के पूर्व ही, सेवा करो।

२. हे अग्नि, पतिकामिनी एवम् सुवस्त्राच्छादिता जाया जिस तरह पति के लिए स्थान प्रस्तुत करती है, उसी तरह हम लोग भी उत्तर वेदिरूप प्रवेश प्रस्तुत करते हैं, यही तुम्हारा स्थान है। हे सुकर्मा अग्नि, तुम तेज-द्वारा परिवृत होकर हम लोगों के अभिमुख उपवेशन करो। यह सकल स्तुति तुम्हारे अभिमुख उपवेशन करे।

३. हे स्तोता, स्तोत्र-श्रवण-परायण, अप्रमत्त, मनुष्यों के द्रष्टा, सुखकर और अमर अग्निदेव के उद्देश्य से स्तोत्र और शस्त्र का पाठ करो। प्रस्तर की तरह सोमाभिषवकारी यजमान अग्नि की स्तुति करते हैं।

४. हे अग्नि, हम लोगों के इस कर्म के तुम देवता होओ। हे सत्यज्ञ अग्नि, तुम सुकर्मा हो। तुम्हें हमारा स्तोत्र अवगत हो। उन्माद-कारक तुम्हारे स्तोत्र कब उच्चारित होंगे? हमारे गृह में तुम्हारे साथ कब सखाभाव होगा?

५. हे अग्नि, वरुण के निकट तुम हम लोगों की पापजन्य निन्दा क्यों करते हो? अथवा सूर्य के निकट क्यों निन्दा करते हो? हम लोगों का क्या अपराध है? अभिमत फलदाता मित्र और पृथिवी को तुमने क्यों कहा? अथवा अर्यमा और भग नामक देवों से ही तुमने क्यों कहा?

६. हे अग्नि, जब तुम यज्ञ में वर्द्धमान होते हो, तब उस कथा को क्यों कहते हो? प्रकृष्ट बलयुक्त, शुभप्रद, सर्वत्रगामी, सत्य के नेता वायु से वह कथा क्यों कहते हो? पृथिवी से क्यों कहते हो? हे अग्नि, पापी मनुष्यों को मारनेवाले रुद्रदेव से वह कथा क्यों कहते हो?

७. हे अग्नि, महान् एवम् पुष्टिप्रद पूषा से वह पाप-कथा क्यों कहते हो? यज्ञभाजन, हविःप्रद रुद्र से वह क्यों कहते हो? बहुस्तुति-भाजन विष्णु से पाप की कथा क्यों कहते हो? बृहत् संवत्सर अथवा निर्ऋति से वह कथा क्यों कहते हो?

८. हे अग्नि, सत्यभूत मरुद्गण से वह कथा (मेरा अपराध) क्यों कहते हो? पूछे जाने पर महान् सूर्य से वह कथा क्यों कहते हो? देवी अदिति से और त्वरितगमन वायु से क्यों कहते हो? हे सर्वज्ञ जातवेदा, तुम द्युलोक के कार्य का साधन करो।

९. हे अग्नि, हम सत्यभूत यज्ञ के साथ नित्य सम्बद्ध दुग्ध की याचना गौओं के निकट करते हैं। अपक्व होकर भी वह गौ मधुर और पक्व दुग्ध धारण करती है। वह कृष्णवर्णा होकर भी शुभ्र, पुष्टिकारक और प्राणधारक दुग्ध-द्वारा मनुष्यों का पोषण करती है।

१०. अभिमत फलवर्षक और श्रेष्ठ अग्नि सत्यभूत और पुष्टिकर दुग्ध-द्वारा सिक्त होते हैं। अप्रमत्त अग्नि एकत्र अवस्थिति करके सर्वत्र तेज-द्वारा विचरण करते हैं। जलवर्धक सूर्य अन्तरिक्ष या मेघ से पयोदोहन करते हैं।

११. मेधातिथि आदि ने यज्ञ-द्वारा गो-निरोधक पर्वत को विदीर्ण करके फेंक दिया था, और गौओं के साथ मिले थे। कर्मों के नेता उन अङ्गिरोगण ने सुखपूर्वक उषा को प्राप्त किया था। तदनन्तर सूर्यदेव मन्थन-द्वारा अग्नि के उत्पन्न होने पर उदित हुए।

१२. हे अग्नि, मरण-रहिता, विघ्नशून्या और मधुर जलयुक्ता देवी नदियाँ यज्ञ-द्वारा प्रेरित होकर जाने के लिए प्रोत्साहित अश्व की तरह सर्वदा प्रवाहित होती हैं।

१३. हे अग्नि, जो कोई हमारी हिंसा करता है, उसके यज्ञ में तुम कभी न जाना। किसी दुष्ट बुद्धिवाले प्रतिवासी (पड़ोसी) के यज्ञ में न जाना। हमें छोड़कर दूसरे बन्धु के यज्ञ में न जाना। तुम कुटिलचित्त भ्राता के ऋण (हवि) की कामना न करना। हम लोग भी मित्र या शत्रु-द्वारा प्रदत्त धन का भोग नहीं करेंगे। केवल तुम्हारे ही द्वारा प्रदत्त धन का भोग करेंगे।

१४. हे सुयज्ञ अग्नि, तुम हम लोगों के रक्षक हो। तुम हव्य-द्वारा प्रीत होकर आश्रय दान-द्वारा हमारी रक्षा करो। तुम हम लोगों को

प्रदीप्त करो। हम लोगों के दृढ़ पाप का तुम विनाश करो एवम् महान् और वर्द्धमान राक्षस का विनाश करो।

१५. हे अग्नि, हमारे इस अर्चनीय शास्त्र-द्वारा तुम प्रीतमना होओ। हे शूर, हमारे इस स्तोत्र-सहित अन्न का ग्रहण करो। हे हवि-रन्न के गृहीता अग्नि, मन्त्रों का सेवन करो। देवों के उद्देश से प्रयुक्त स्तुति तुम्हें संवर्द्धित करे।

१६. हे विधाता अग्नि, तुम कर्म विषय को जानेवाले और उत्कृष्ट द्रष्टा हो। हम प्राज्ञ लोग तुम्हारे उद्देश्य से फलप्रापक, गूढ़, अतिशय वक्तव्य और हम कवियों-द्वारा ग्रथित इस समस्त वाक्य का स्तोत्र और शस्त्रों के साथ उच्चारण करते हैं।

४ सूक्त

(देवता रक्षोदाग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, तुम अपने तेजःपुञ्ज को विस्तारित करो, जैसे व्याध अपने जाल को विस्तारित करता है। जैसे अमात्य के साथ राजा हाथी के ऊपर गमन करता है, वैसे ही तुम भयशून्य तेजःसमूह के साथ गमन करो। तुम शीघ्रगामिनी सेना का अनुगमन करके शत्रु-सैन्य को हिंसित करो और शत्रुओं को नष्ट करो। अत्यन्त तीक्ष्ण तेज-द्वारा तुम राक्षसों का भेदन करो।

२. हे अग्नि, तुम्हारी भ्रमणकारिणी और शीघ्रगामिनी रश्मियाँ सर्वत्र प्रसृत होती हैं। तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो। अभिभवसमर्थ तेजोराशि-द्वारा तुम शत्रुओं को वध करो। शत्रु तुम्हें निरुद्ध नहीं कर सकते हैं। तुम जुहू-द्वारा तापप्रद तथा पतनशील विस्फुलिङ्ग को और उल्का (तेजःपुञ्ज) को सर्वत्र विकीर्ण करो।

३. हे अग्नि, तुम अतिशय वेगवान् हो। शत्रुओं को बाधा देनेवाली रश्मियों को तुम शत्रुओं के प्रति प्रेरित करो। कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता है। जो कोई दूर से हम लोगों की अनिष्ट-कामना

करता है अथवा जो निकट से अनिष्ट करने की इच्छा करता है, तुम उसके निकट से इस सकल प्रजा की रक्षा करो। हम लोग तुम्हारे हैं। जिससे कोई शत्रु हम लोगों को पराभूत न कर सके।

४. हे तीक्ष्ण ज्वालाविशिष्ट अग्नि, उठो, राक्षसों को मारने के लिए प्रस्तुत होओ। शत्रुओं के ऊपर ज्वालाजाल का विस्तार करो। तेजोराशि-द्वारा शत्रुओं को भली भाँति दग्ध करो। हे समिद्ध अग्नि, जो व्यक्ति हमारे साथ शत्रुता करता है, उस व्यक्ति को शुष्क काष्ठ की तरह तुम दग्ध कर दो।

५. हे अग्नि, तुम राक्षसों को मारने के लिए उद्यत होओ। हमसे जितने अधिक बलवान् हैं, उन सबको एक-एक करके मारो। अपने देव-सम्बन्धी तेज को आविष्कृत करो। प्राणियों को क्लेश देनेवालों के दृढ़ धनुष को ज्या-शून्य करो और पूर्व में पराजित अथवा अपराजित शत्रुओं को विनष्ट करो।

६. युवतम अग्नि, तुम गमनशील और प्रधान हो। जो कोई तुम्हारे लिए स्तुति प्रेरित करता है, वह पुरुष तुम्हारे अनुग्रह को प्राप्त करता है। तुम यज्ञस्वामी हो। तुम उसके लिए समस्त शोभन दिनों को, धनों को और रत्नों को ग्रहण करो। तुम उसके गृह के अभिमुख द्योतित होओ।

७. हे अग्नि, जो व्यक्ति नित्य सङ्कल्पित हव्य-द्वारा अथवा उक्थ मन्त्र-द्वारा तुम्हें प्रीत करने की इच्छा करता है, वह पुरुष सौभाग्यवान् और सुदाता हो। वह कठिनता से लाभ करने के योग्य अपनी सौ वर्षों की आयु को प्राप्त करे। उस यजमान के लिए सब दिन शोभन हों। वह यज्ञफल-साधन-समर्थ हो।

८. हे अग्नि, हम तुम्हारी अनुग्रह-बुद्धि की पूजा करते हैं। तुम्हारे उद्देश से उच्चारित वाक्य प्रतिध्वनित होकर तुम्हारी स्तुति करें। हम लोग पुत्र-पौत्रादि के साथ उत्तम रथ और उत्तम अश्वों से

युक्त होकर तुम्हारी परिचर्या करेंगे। तुम हम लोगों के लिए प्रतिदिन धन धारण करो।

९. हे अग्नि, तुम अहर्निश प्रदीप्त होते हो। इस लोक में पुरुष तुम्हारे समीप तुम्हारी परिचर्या प्रतिदिन करते हैं। हम भी शत्रुओं के धन को आत्मसात् करके अपने गृह में पुत्र-पौत्रों के साथ विहार करते हुए प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

१०. हे अग्नि, जो पुरुष सुन्दर अश्वयुक्त होकर यागयोग्य धन-विशिष्ट होकर और ब्रीहि आदि धन से संयुक्त रथ के साथ तुम्हारे समीप गमन करता है। उस पुरुष के तुम रक्षक होओ। जो पुरुष अनुक्रम से अतिथियोग्य पूजा तुम्हें प्रदान करता है, उसके तुम सखा होओ।

११. हे होता, युवतम और प्रज्ञावान् अग्नि, स्तोत्र-द्वारा जो बन्धुता उत्पन्न हुई है, उसके द्वारा हम महान् राक्षसरूप शत्रुओं को भग्न करें। यह स्तोत्रात्मक वचन पिता गोतम के निकट से हमारे समीप आया है। तुम शत्रुओं के विनाशक हो। तुम हमारे स्तुति-वचन को जानो।

१२. हे सर्वज्ञ अग्नि, तुम्हारी रश्मियाँ सतत जागरूक, सर्वदा गमनशील सुखान्वित, आलस्य-रहित, अहिंसित, अश्रान्त, परस्पर सङ्गत और रक्षणक्षम हैं। वे इस स्थान पर उपवेशन करके हमारी रक्षा करें।

१३. हे अग्नि, रक्षा करनेवाली तुम्हारी इन रश्मियों ने कृपा करके ममता के पुत्र चक्षुहीन दीर्घतमा की शाप से रक्षा की थी। तुम सर्व-प्रज्ञावान् हो। तुम आदरपूर्वक उन रश्मियों का पालन करते हो। तुम्हारे शत्रु तुम्हें विनष्ट करने की इच्छा करके भी तुम्हारा विनाश नहीं कर सकते हैं।

१४. हे अग्नि, तुम्हारा गमन लज्जाशून्य है। हम स्तोता तुम्हारे अनुग्रह से समान धनवाले होकर तुम्हारे द्वारा रक्षित हों। तुम्हारी प्रेरणा से अन्न लाभ करें। हे सत्यविस्तारक और पाप-नाशक, निकटस्थ

या दूरस्थ शत्रुओं को विनष्ट करो तथा अनुक्रम से समस्त कार्य (इस सूक्त में प्रतिपादित) करो।

१५. हे अग्नि, इस प्रदीप्त स्तुति-द्वारा हम तुम्हारी परिचर्या करें। हमारे इस स्तोत्र को प्रतिगृहीत करो। स्तुतिविहीन राक्षसों को भस्मसात् करो। हे मित्रों के पूजनीय अग्नि, शत्रु और निन्दकों के परिवाद से हमारी रक्षा करो।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

५ सूक्त

(पञ्चम अध्याय। देवता वैश्वानर अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. समान रूप से प्रीतियुक्त होकर हम यजमान वैश्वानर नामक अभीष्टवर्षी, एवम् महान् दीप्तियुक्त अग्नि को किस प्रकार से हव्य प्रदान करें? स्तम्भ जिस तरह से छादन (छप्पर) को धारण करता है, उसी तरह से वे सम्पूर्ण अतएव बृहत् शरीर-द्वारा द्युलोक का धारण करते हैं।

२. हे होताओ, जो अग्निदेव हव्ययुक्त होकर मरणशील और परिपक्व बुद्धिविशिष्ट हम यजमानों को धन दान करते हैं, उनकी निन्दा मत करो। वे मेधावी, अमर और प्रज्ञावान् हैं। वे वैश्वानर, नेतृश्रेष्ठ एवम् महान् हैं।

३. मध्यम और उत्तम रूप स्थानद्वय को परिव्याप्त करनेवाले, तीक्ष्ण तेजोविशिष्ट, प्रभूत सारवान् अभीष्टवर्षी और धनवान् अग्नि अत्यन्त गुप्त गोपद की तरह रहस्य हैं। वे ज्ञातव्य हैं। महान् स्तोत्र को विशेष रूप से जानकर विद्वान् हमें कहें।

४. विद्वान् मित्र और वरुण के प्रिय एवम् स्थिर तेज को जो द्वेषी हिंसित करता है, उसे सुन्दर धनविशिष्ट और तीक्ष्णदन्त अग्नि अत्यन्त सन्तापकर तेज-द्वारा दग्ध करें।

५. भ्रातृरहिता, विपथगामिनी योषित् की तरह तथा पतिविद्वेषिणी दुष्टाचारिणी स्त्री की तरह यज्ञविहीन, अग्निविद्वेषी, सत्यरहित तथा सत्यवचनशून्य पापी नरकस्थान को उत्पन्न करता है।

६. हे शोधक अग्नि, हम तुम्हारे कर्म का परित्याग नहीं करते हैं। क्षुद्र व्यक्ति को जैसे गुरु भार दिया जाता है, उसी तरह तुम हमें प्रभूत धन दान करो। वह धन शत्रुधर्षक, अन्नयुक्त, दूसरों के द्वारा अनवगाहनीय महान् स्पर्शनयोग्य एवम् सात प्रकार (सात ग्राम्य पशु और सात वन्य पशु) का है।

७. यह सुयोग्य एवम् सबके प्रति समान शोधयित्री स्तुति उपयुक्त पूजाविधि के साथ वैश्वानर के निकट शीघ्र गमन करे। वह वैश्वानर के आरोहणकारी दीप्त मण्डल पृथ्वी के निकट से अचल द्युलोक के ऊपर विचरण करने के लिए पूर्व दिशा में आरोपित हुई है।

८. लोग कहते हैं कि दोग्धागण जल की तरह जिस दुग्ध का दोहन करते हैं, उस दुग्ध को वैश्वानर गुहा में छिपा रखते हैं। वे विस्तीर्ण पृथिवी के प्रिय एवम् श्रेष्ठ स्थान की रक्षा करते हैं। मेरे इस वाक्य के अतिरिक्त और क्या वक्तव्य हो सकता है?

९. क्षीरप्रसविणी गौ अग्निहोत्रादि कर्म में जिनकी सेवा करती है, जो अन्तरिक्ष में अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, जो गुहा में निहित हैं, जो शीघ्र स्पन्दमान हैं और जो शीघ्र गमनकारी हैं, वे महान् और पूज्य हैं। सूर्य मण्डलात्मक वैश्वानर को हम जानते हैं।

१०. इसके अनन्तर पिता-मातास्वरूप द्यावा-पृथिवी के मध्य में व्याप्त होकर दीप्तिमान् वैश्वानर गौ के ऊधःप्रदेश में निगूढ़ रमणीय दुग्ध को मुख-द्वारा पान करने के लिए प्रबोधित हों। अभीष्टवर्षी, दीप्त और

प्रयत वैश्वानर की जिह्वा माता गौ के ऊधःप्रदेशरूप उत्कृष्ट स्थान में पान करने की इच्छा से वर्तमान है ।

११. हम यजमान पूछे जाने पर नमस्कारपूर्वक सत्य बोलते हैं । हे जातवेदा, तुम्हारी स्तुति-द्वारा यदि हम इस धन को प्राप्त करें, तो तुम्हीं इस धन के स्वामी होओ । तुम सम्पूर्ण धन के स्वामी होओ । पृथ्वी में जितने धन हैं और द्युलोक में जितने धन हैं, उन सब धनों के तुम स्वामी हो ।

१२. इस धन का साधनभूत धन क्या है ? इसका हितकर धन क्या है ? हे जातवेदा, तुम जानते हो, हमें कहो । इस धन की प्राप्ति के लिए जो मार्ग है, उसका गूढ़ और उत्कृष्ट उपाय हमसे कहो ? हम जिससे गन्तव्य स्थान को निन्दित होकर न प्राप्त करें ।

१३. पूर्व आदि सीमा क्या है ? पदार्थ ज्ञान क्या है ? और रमणीय पदार्थसमूह क्या है ? शीघ्रगामी अश्व जिस तरह से संग्राम के अभिमुख गमन करता है, उसी तरह हम इन्हें अधिगत करेंगे । द्युतिमती, मरणरहिता और आदित्य की पत्नी प्रसवित्री उषा किस समय हम लोगों के लिए प्रकाशित होकर व्याप्त होंगी ?

१४. हे अग्नि, अन्नरहित, उक्थ मन्त्र और आरोपणीय अल्पाक्षर वचन-द्वारा अतृप्त मनुष्य अभी इस लोक में तुम्हें क्या कहता है ? अर्थात् हविर्विहीन वाक्य-द्वारा कुछ लाभ नहीं हो सकता है । हविरादि साधन से हीन जन दुःख प्राप्त करते हैं ।

१५. समिद्ध, अभीष्टवर्षी और निवासप्रद अग्नि का तेजःसमूह, यज्ञगृह में, दीप्त होता है । यजमान के मङ्गल के लिए वे दीप्त तेज का परिधान करते हैं; इसलिए उनका रूप रमणीय है । वे अनेक यजमानों-द्वारा स्तुत होकर द्योतित होते हैं, जैसे अश्व आदि धन से राजा द्योतित होता है ।

६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे यज्ञहोता अग्नि, तुम श्रेष्ठ याज्ञिक हो। तुम हम लोगों से ऊर्ध्व स्थान में अवस्थिति करो। तुम सम्पूर्ण शत्रुओं के धन को जीतो। तुम स्तोताओं की स्तुति को प्रवर्द्धित करो।

२. प्रगल्भ, होमनिष्पादक, हर्षयिता और प्रकृष्ट ज्ञानविशिष्ट अग्निदेव यज्ञ में प्रजाओं के मध्य में स्थापित होते हैं। वे उदित सूर्य की तरह ऊर्ध्वमुख होते हैं, और स्तम्भ की तरह द्युलोक के ऊपर धूम को धारण करते हैं।

३. संयत और पुरातन जुहू घृतपूर्ण हुआ है। यज्ञ को दीर्घ करनेवाले अध्वर्यु गण प्रदक्षिण करते हैं। नवजात यूप उन्नत होता है। आक्रमणकारी और सुदीप्त कुठार पशुओं के निकट गमन करता है।

४. कुश के विस्तृत होने पर और अग्नि समिद्ध होने पर अध्वर्यु, देवों को प्रीत करने के लिए उत्थित होते हैं। होमनिष्पादक और पुरातन अग्नि अल्प हव्य को भी बहुत कर देते हैं तथा पशु-पालकों की तरह पशुओं के चारों तरफ़ तीन बार गमन करते हैं।

५. होता, हर्षवाला, मिष्टभाषी और यज्ञवान् अग्नि परि-मितगति होकर पशुओं के चारों तरफ़ गमन करते हैं। अग्नि का दीप्तिसमूह अश्व की तरह चारों तरफ़ धावित होता है। अग्नि जब प्रदीप्त होते हैं तब समस्त भूतजात भीत होते हैं।

६. हे सुन्दर ज्वालाविशिष्ट अग्नि, तुम भीतिजनक हो और सर्वत्र व्याप्त हो। तुम्हारी मनोहर और कल्याणी मूर्ति अच्छी तरह से दृष्टि होती है। रात्रि अन्धकार-द्वारा तुम्हारी दीप्ति को निवारित नहीं कर सकती है। राक्षस आदि तुम्हारे शरीर में पाप को नहीं रख सकते हैं।

७. हे वृष्टि को उत्पन्न करनेवाले वैश्वानर, तुम्हारा दान (या दीप्ति) किसी के द्वारा निवारित नहीं हो सकता। मातापिता-स्वरूप द्यावा-पृथिवी जिसे प्रेषित करने में शीघ्र समर्थ नहीं होती है, वे सुतृप्त और शोधक अग्नि मनुष्यों के मध्य में सखा की तरह दीप्तिमान् होते हैं।

८. मनुष्यों की दसों अँगुलियाँ स्त्री की तरह जिन अग्नि को उत्पन्न करती हैं, वे अग्नि उषाकाल में बुध्यमान, हव्यभाजी, दीप्तिमान्, सुन्दर-वदन और तीक्ष्ण कुठार की तरह शत्रुरूपी राक्षसों के हन्ता हैं।

९. हे अग्नि, तुम्हारे वे अश्व हमारे यज्ञ के अभिमुख आहूत होते हैं। उनकी नासिका से फेन निर्गत होता है। वे लोहितवर्ण, अकुटिल, सुन्दरगामी, दीप्तिमान्, युवा, सुगठित और दर्शनीय हैं।

१०. हे अग्नि, तुम्हारी वे शत्रुओं को अभिभूत करनेवाली, गमन-शील, दीप्ति और पूजनीय रश्मियाँ, मरुतों की तरह अत्यन्त ध्वनि करती हैं, जब वे अश्व की तरह गन्तव्य स्थान में जाती हैं।

११. हे समिद्ध अग्नि, तुम्हारे लिए हम लोगों ने स्तोत्र किया है। होता उक्थ (शस्त्ररूप स्तोत्र) का उच्चारण करते हैं। यजमान तुम्हारा यजन करते हैं। अतएव तुम हम लोगों को धन दो। मनुष्यों के प्रशंसनीय होता अग्नि की पूजा करने के लिए ऋत्विक् आदि पशु आदि धन की कामना से उपविष्ट हुए हैं।

७ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. अप्नवान् आदि भृगुवंशीयों ने वन के मध्य में दावाग्नि-रूप से दर्शनीय एवम् समस्त लोक के ईश्वर अग्नि को प्रदीप्त किया था। वे होता, याज्ञिकश्रेष्ठ, स्तुतिभाजन और देवश्रेष्ठ अग्नि यज्ञकारियों-द्वारा संस्थापित हुए हैं।

२. हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और मनुष्यों-द्वारा स्तुतियोग्य हो। तुम्हारी दीप्ति कब प्रसृत होगी? मर्त्य लोग तुम्हें ग्रहण करते हैं।

३. मायारहित, विज्ञ, नक्षत्र-परिवृत द्युलोक की तरह और समस्त यज्ञ के वृद्धिकारक अग्नि के दर्शन करके ऋत्विक् आदि प्रत्येक यज्ञगृह में उनका ग्रहण करते हैं।

४. जो अग्नि प्रजाओं को अभिभूत करते हैं, उन्हीं शीघ्रगामी, यजमान के दूत, केतु-स्वरूप और दीप्तिमान् अग्नि का आनयन समस्त प्रजाओं के लिए मनुष्यगण करते हैं।

५. उन होता और विद्वान् अग्नि को अध्वर्यु आदि मनुष्यों ने यथास्थान पर उपविष्ट कराया है। वे रमणीय, पवित्र दीप्तिविशिष्ट, याज्ञिकश्रेष्ठ और सप्त-तेजोयुक्त हैं।

६. मातृ-स्वरूप जलसमूह में और वृक्षसमूह में विद्यमान, कमनीय, दाह-भय से प्राणियों-द्वारा असेवित, विचित्र, गुहा में निहित, सुविज्ञ और सर्वत्र हव्यग्राही उन अग्नि को अध्वर्यु आदि मनुष्यों ने उपविष्ट कराया है।

७. देवगण निद्रा से विमुक्त होकर अर्थात् उषाकाल में जल के स्थान-स्वरूप सम्पूर्ण यज्ञ में जिन अग्नि को स्तोत्र आदि के द्वारा प्रसन्न करते हैं, वे महान् एवम् सत्यवान् अग्नि नमस्कारपूर्वक दत्त हव्य को ग्रहण करके सदा यजमानकृत यज्ञ को अवगत करें—जानें।

८. हे अग्नि, तुम विद्वान् हो। तुम यज्ञ के दूत-कार्य को जानते हो। इन दोनों द्यावा-पृथिवी के मध्य में अवस्थित अन्तरिक्ष को तुम भली-भाँति जानते हो। तुम पुरातन हो। तुम अल्प हव्य को बहुत कर देते हो। तुम विद्वान्, श्रेष्ठ और देवों के दूत हो। तुम देवताओं को हवि देने के लिए स्वर्ग के आरोहणयोग्य स्थान में जाते हो।

९. हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो। तुम्हारा गमनमार्ग कृष्णवर्ण है। तुम्हारी दीप्ति पुरोवर्तिनी है। तुम्हारा सञ्चरणशील तेज सम्पूर्ण

तैजस पदार्थों के मध्य में श्रेष्ठ है। तुम्हें न पाकर यजमान लोग तुम्हारी उत्पत्ति के कारण-स्वरूप काष्ठ को धारण करते हैं। उत्पन्न होकर तुम तुरत ही यजमान के दूत होते हो।

१०. अरणिमन्थन के अनन्तर उत्पन्न अग्नि का तेज ऋत्विक् आदि के द्वारा दृष्ट होता है। जब अग्नि-शिखा को लक्ष्य करके वायु बहती है तब अग्नि वृक्ष-संघ में तीक्ष्ण ज्वाला को संयुक्त कर देते हैं और स्थिर अन्नरूप काष्ठ आदि को तेज के द्वारा विखण्डित करते हैं अर्थात् भक्षण करते हैं।

११. अग्नि क्षिप्रगामी रश्मिसमूह-द्वारा अन्नरूप काष्ठ आदि को शीघ्र दग्ध करते हैं। महान् अग्नि अपने को क्षिप्रगामी दूत बनाते हैं। वे काष्ठसमूह को विशेष रूप से दग्ध करके वायु के बल के साथ सङ्गत होते हैं। घुड़सवार जैसे अश्व को बलवान् करता है, वैसे ही गमनशील अग्नि अपनी रश्मि को बलवान् करते और प्रेरित करते हैं।

८ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. हे अग्नि, तुम सब धन के स्वामी अथवा सर्वविद्, देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले, मरणधर्म-रहित, अतिशय यजनशील और देवदूत हो। हम स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं।

२. अग्नि यजमानों के अभीष्टफल-साधक धन के दान को जानते हैं। वे महान् हैं। वे देवलोक के आरोहण-स्थान को जानते हैं। वे इन्द्रादि देवताओं को यज्ञ में बुलावें।

३. वे द्युतिमान् हैं। इन्द्रादि देवताओं को यजमानों-द्वारा क्रम-पूर्वक नमस्कार करना जानते हैं। वे यज्ञगृह में यज्ञाभिलाषी यजमान को अभीष्ट धन दान करते हैं।

४. अग्नि होता हैं। वे व्रत-कर्म को जान करके और स्वर्ग के आरोहण-योग्य स्थान को जान करके द्यावा-पृथिवी के मध्य में गमन करते हैं।

५. जो हव्य दान देकर अग्नि को प्रसन्न करता है, जो उन्हें वर्द्धित करता है और जो यजमान उन्हें काष्ठ-द्वारा प्रदीप्त करता है, उसी यजमान की तरह हम भी आचरण करें।

६. जो यजमान अग्नि की परिचर्या करते हैं, वे अग्नि का सम्भजन करके धन-द्वारा विख्यात होते हैं और पुत्र-पौत्र आदि के द्वारा भी विख्यात होते हैं।

७. ऋत्विक् आदि के द्वारा अभिलषित धन हम यजमानों के निकट प्रतिदिन आगमन करे। अन्न हम लोगों को (यज्ञकार्य में) प्रेरित करें।

८. अग्नि मेधावी हैं। वे बल-द्वारा मनुष्यों के विनाशयोग्य पाप को विशेष रूप से विनष्ट करें।

९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. हे अग्नि, तुम हम लोगों को सुखी करो। तुम महान् हो। तुम देवों की कामना करनेवाले हो। तुम यजमान के निकट कुश पर बैठने के लिए आगमन करते हो।

२. राक्षसों आदि-द्वारा अहिंसनीय अग्नि मनुष्यलोक में प्रकर्ष रूप से गमन करते हैं। वे मृत्युविवर्जित हैं। वे समस्त देवों के दूत हों।

३. यज्ञगृह में ऋत्विक् आदि के द्वारा नीयमान होकर अग्नि यज्ञों में स्तुतियोग्य होते हैं। अथवा पोता होकर यज्ञ-गृह में प्रवेश करते हैं।

४. अथवा यज्ञ में अग्नि देवपत्नी या अध्वर्यु होते हैं। अथवा यज्ञ-गृह में वे गृहपति होते हैं। अथवा ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होकर उपवेशन करते हैं।

५. हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी मनुष्यों के हव्य की कामना करते हो। तुम अध्वर्यु आदि के सब कर्मों को जाननेवाले ब्रह्मा हो। तुम यज्ञकर्मों के अविकल उपद्रष्टा या सदस्य हो।

६. हे अग्नि, तुम हव्य वहन करने के लिए जिस यजमान के यज्ञ की सेवा करते हो, उसके दौत्य कार्य की भी तुम कामना करते हो।

७. हे अङ्गिरा अग्नि, तुम हमारे यज्ञ की सेवा करो, हमारे हव्य का सेवन करो और हमारे आह्वान-कारक स्तोत्र का श्रवण करो।

८. हे अग्नि, तुम जिस रथ-द्वारा समस्त दिशा में गमन करके हवि देनेवाले यजमान की रक्षा करते हो, तुम्हारा वही अहिंसनीय रथ मुझ यजमान के चारों तरफ़ व्याप्त हो।

१० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द पदपंक्ति, उष्णिक् आदि।)

१. हे अग्नि, आज हम ऋत्विग्गण, इन्द्रादि-प्रापक स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं। अश्व जैसे सवार का वहन करता है, उसी तरह तुम हव्यवाहक हो। तुम यज्ञकर्त्ता की तरह उपकारक हो। तुम भजनीय हो और अतिशय प्रिय हो।

२. हे अग्नि, तुम इसी समय हमारे भजनीय, प्रवृद्ध, अभीष्टफल-साधक, सत्यभूत और महान् यज्ञ के नेता हो।

३. हे अग्नि, तुम ज्योतिर्मान् सूर्य की तरह समस्त तेज से युक्त और शोभन अन्तःकरणवाले हो। तुम हम लोगों के अर्चनीय स्तोत्र-द्वारा नीत होओ, और हम लोगों के अभिमुख आगमन करो।

४. हे अग्नि, आज हम ऋत्विक् वचनों-द्वारा स्तुति करके तुम्हें हव्य दान करेंगे। सूर्य की रश्मि की तरह तुम्हारी शोभक ज्वाला शब्द करती है। अथवा मेघ की तरह तुम्हारी ज्वाला शब्द करती है।

५. हे अग्नि, तुम्हारी प्रियतम दीप्ति अहर्निश अलङ्कार की तरह पदार्थों को आश्रयित करने के लिए उनके समीप शोभा पाती है।

६. हे अन्नवान् अग्नि, तुम्हारी मूर्ति शोधित घृत की तरह पापरहित है। तुम्हारा शुद्ध एवं रमणीय तेज अलङ्कार की तरह दीप्त होता है।

७. हे सत्यवान् अग्नि, तुम यजमानों-द्वारा निर्मित हो; तथापि चिरन्तन हो। तुम यजमानों के पाप को निश्चय ही दूर कर देते हो।

८. हे अग्नि, तुम द्युतिमान् हो। तुम्हारे प्रति जो हम लोगों का सख्य और भ्रातृभाव है, वह मङ्गलजनक हो। वह सखित्व और भ्रातृकार्य देवों के स्थान में और सम्पूर्ण यज्ञ में हम लोगों का नाभिबन्धन हो।

११ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे बलवान् अग्नि, तुम्हारा भजनीय तेज सूर्य के समीपभूत दिवस में चारों तरफ़ दीप्तिमान् होता है। तुम्हारा सुन्दर और दर्शनीय तेज रात्रि में भी दिखाई देता है। तुम रूपवान् हो। तुम्हारे उद्देश से स्निग्ध और दर्शनीय अन्न बहुत होता है।

२. हे बहुजन्मा अग्नि, तुम यज्ञकारियों-द्वारा स्तुत होकर स्तुतिकारी यजमान के लिए पुण्य लोक के द्वार को विमुक्त करो। हे सुन्दर तेजोविशिष्ट अग्नि, देवों के साथ यजमान को तुम जो धन देते हो, हमें भी वही प्रभूत और अभिलषित धन दो।

३. हे अग्नि, हविर्वहन और देवतानयन आदि अग्नि-सम्बन्धी कार्य तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, स्तुतिरूप वचन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं और आराधनयोग्य उक्थ तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। सत्यकर्म्मा और हव्यदाता

यजमान के लिए वीर्ययुक्त रूप और धन भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं ।

४. हे अग्नि, बलवान्, हव्यवाहक, महान् यज्ञकारी और सत्यबल-विशिष्ट पुत्र तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं । देवों-द्वारा प्रेरित सुखप्रद धन तुमसे ही उत्पन्न होता है और शीघ्रगामी, गतिविशिष्ट तथा वेगवान् अश्व तुमसे ही उत्पन्न हुआ है ।

५. हे अमर अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य स्तुति-द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं । तुम देवों में आदिदेव हो । तुम प्रकाशवान् हो । तुम्हारी जिह्वा देवों को हृष्ट करनेवाली है । तुम पापों को पृथक् करनेवाले हो और राक्षसों को दमन करने की इच्छावाले हो । तुम गृहपति और प्रगल्भ हो ।

६. हे बलपुत्र अग्नि, तुम रात्रिकाल में मङ्गलजनक और द्युतिमान् होकर हमारे कल्याण के लिए सेवा करते हो । जिस कारण तुम यजमानों का विशेष रूप से पालन करते हो, उसी से तुम हम लोगों के निकट से अमति को दूर करो । हम लोगों के निकट से पाप को दूर करो और हमारे निकट से समस्त दुर्मति को दूर करो ।

१२ सूक्त

(देवता अग्नि । ऋषि वामदेव । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हे अग्नि, जो यजमान स्रुक् को संयत करके तुम्हें प्रदीप्त करता है, जो व्यक्ति तुम्हें प्रतिदिन तीनों सवनों में हविरन्न देता है, हे जातवेदा, वह व्यक्ति तुम्हारे तृप्तिकर (इन्धन-दान आदि) कार्य-द्वारा तुम्हारे प्रसहमान तेज को जानकर धन-द्वारा शत्रुओं का पराभूत करता है ।

२. हे अग्नि, जो तुम्हारे लिए होमसाधन काष्ठ का आहरण करता है, हे महान् अग्नि, जो व्यक्ति काष्ठ के अन्वेषण में श्रान्त होकर तुम्हारे तेज की परिचर्या करता है और रात्रिकाल तथा दिवाकाल में

जो तुम्हें प्रदीप्त करता है, वह यजमान प्रजा और पशुओं द्वारा पुष्ट होकर शत्रुओं को विनष्ट करता है और धन लाभ करता है।

३. अग्नि महान् बल के ईश्वर तथा उत्कृष्ट अन्न और पशु-स्वरूप धन के स्वामी हैं। युवतम और अन्नवान् अग्नि परिचर्या करनेवाले यजमान को रमणीय धन से संयुक्त करें।

४. हे युवतम अग्नि, यद्यपि तुम्हारे परिचारकों के मध्य में हम अज्ञानवश कुछ पाप करते हैं; तथापि तुम पृथ्वी के निकट हमें सम्पूर्ण रूप से निष्पाप कर दो। हे अग्नि, सर्वत्र विद्यमान हमारे पापों को तुम शिथिल करो।

५. हे अग्नि, हम तुम्हारे सखा हैं। हमने इन्द्रादि देवों के निकट अथवा मनुष्यों के निकट जो पाप किया है, उस महान् और विस्तृत पाप से हम कभी भी विघ्न न पायें। तुम हमारे पुत्र और पौत्र को पाप-रूप उपद्रवों से शान्ति और सुकृतजनित सुख दो।

६. हे पूजार्ह और निवासयिता अग्नि, तुमने जिस तरह पदबद्ध गौरी गौ को विमुक्त किया था, उसी तरह हम लोगों को पाप से विमुक्त करो। हे अग्नि, हमारी आयु तुम्हारे द्वारा प्रवृद्ध है, तुम इसे और प्रवृद्ध करो।

१३ सूक्त

(देवता अग्नि अथवा जिस मन्त्र में जिस देवता का नामोल्लेख है। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. शोभन मनवाले अग्नि तमोनिवारिणी उषा के घन प्रकाशकाल के पूर्व ही प्रवृद्ध होते हैं। हे अश्विद्वय, तुम यजमान के गृह में गमन करो। ऋत्विक् आदि के प्रेरक सूर्यदेव अपने तेज के साथ उषाकाल में प्रादुर्भूत होते हैं।

२. सवितादेव उन्मुख किरण को विकासित करते हैं। रश्मियाँ जब सूर्य को द्युलोक में आरूढ़ कराती हैं तब वरुण, मित्र और

अन्यान्य देवगण अपने-अपने कर्मों का अनुगमन करते हैं, जैसे बलवान् वृषभ गौओं की कामना करके धूलि विकीर्ण करता हुआ गौओं का अनुगमन करता है।

३. सृष्टि करनेवाले देवों ने संसार के कार्य का परित्याग न करके सर्वतोभाव से अन्धकार को दूर करने के लिए जिस सूर्य को सृष्ट किया था, उस समस्त प्राणिसमूह के विज्ञाता सूर्य का धारण महान् हरिनामक सप्ताश्व करते हैं।

४. हे द्युतिमान् सूर्य, तुम जगन्निर्वाहक रस को ग्रहण करने के लिए तन्तुस्वरूप रश्मिसमूह को विस्तारित करते हो, कृष्णवर्णा रात्रि को तिरोहित करते हो और अत्यन्त वहनसमर्थ अश्वों-द्वारा गमन करते हो। कम्पनयुक्त सूर्य की रश्मियाँ अन्तरिक्ष के मध्य में स्थित चर्म-सदृश अन्धकार को दूर करें।

५. अदूरवर्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्य को कोई भी बाँध नहीं सकता। अधोमुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं। ये किस बल से ऊर्ध्वमुख भ्रमण करते हैं? द्युलोक में समवेत स्तम्भ-स्वरूप सूर्य स्वर्ग का पालन करते हैं। इसे किसने देखा है? अर्थात् इस तत्त्व को कोई भी नहीं जानता।

१४ सूक्त

(देवता अग्नि अथवा जिस मन्त्र में जिस देवता का नामोल्लेख है। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जातवेदा अग्नि के तेज से दीप्यमाना उषा प्रबुद्ध हुई है। हे प्रभूत गमनशाली अश्विद्वय, तुम दोनों रथ-द्वारा हमारे यज्ञ के अभिमुख आगमन करो।

२. सविता देवता समस्त भुवन को आलोकयुक्त करके उन्मुख किरण का आश्रय लेते हैं। सबको विशेष रूप से देखनेवाले

सूर्य ने अपनी किरणों से द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष को परिपूर्ण किया है।

३. धनधारिणी, अरुणवर्णा, ज्योतिःशालिनी महती, रश्मियिचित्रिता और विदुषी उषा आई है। प्राणियों को जागृत करके उषादेवी सुयोजित रथ-द्वारा सुख-प्राप्ति के लिए गमन करती है।

४. हे अश्विद्वय, उषा के प्रकाशित होने पर अत्यन्त वहनक्षम और गमनशील अश्व तुम्हें इस यज्ञ में ले आयें। हे अभीष्टवर्षिद्वय, यह सोम तुम्हारे लिए है। इस यज्ञ में सोम पान करके हृष्ट होओ।

५. अदूरवर्त्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्य को कोई भी बाँध नहीं सकता है। अधोमुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं। ये किस बल से ऊर्ध्वमुख भ्रमण करते हैं? द्युलोक में समवेत स्तम्भस्वरूप सूर्य स्वर्ग का पालन करते हैं। इसे किसने देखा है? अर्थात् इस तत्त्व को कोई भी नहीं जानता।

१५ सूक्त

(देवता १—६ के अग्नि, ७ और ८ के सोमक राजा, ९ और १० के अश्विद्वय। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. होम-निष्पादक देवों के मध्य में दीप्त और यज्ञार्ह अग्नि हमारे यज्ञ में शीघ्रगामी अश्व की तरह लाये जाते हैं।

२. अग्नि देवों के लिए अन्न धारण करके प्रतिदिन तीन बार रथी की तरह यज्ञ में परिगमन करते हैं।

३. अन्न के पालक मेधावी अग्नि हवि देनेवाले यजमान को रमणीय धन देकर हवि को चारों तरफ़ से व्याप्त करते हैं।

४. जो अग्नि देवता के पुत्र सृञ्जय के लिए पूर्व दिशा में स्थित होते हैं और उत्तर वेदी पर समिद्ध होते हैं, वे शत्रु-नाशकारी अग्नि दीप्तियुक्त हों।

५. स्तुति करनेवाले वीर मनुष्य तीक्ष्ण तेजवाले, अभीष्टवर्षी और गमनशील अग्नि के ऊपर आधिपत्य का विस्तार करें।

६. यजमान लोग अश्व की तरह हव्यवाही, द्युलोक के पुत्रभूत सूर्य की तरह दीप्तिमान् और सम्भजनीय अग्नि की प्रतिदिन बारम्बार परिचर्या करें।

७. सहदेव के पुत्र सोमक राजा ने जब हमें इन दोनों अश्वों को देने की बात कही थी तब हम उनके निकट जाकर अश्वों को प्राप्त करके आये हैं।

८. सहदेव के पुत्र सोमक राजा के निकट से उसी दिन उन पूजनीय और प्रयत अश्वों को हमने ग्रहण किया था।

९. हे कान्तिमान् अश्विनीकुमारो, तुम दोनों के तृप्तिकारक सहदेव के पुत्र सोमक राजा सौ वर्ष की आयुवाले हों।

१०. हे कान्तिमान् अश्विनीकुमारो, तुम दोनों सहदेव के पुत्र सोमक राजा को दीर्घायु करो।

१६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. ऋजीषी अर्थात् सोमवान् और सत्यवान् इन्द्र हमारे निकट आगमन करें। इनके अश्व हमारे निकट आगमन करें। हम यजमान इन्द्र के उद्देश से सारविशिष्ट अन्नरूप सोम का अभिषव करेंगे। वे स्तुत होकर हम लोगों के अभीष्ट को सिद्ध करें।

२. हे शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले इन्द्र, इस माध्यन्दिन के सवन में तुम हम लोगों को विमुक्त करो, जैसे गन्तव्य मार्ग के अन्त में मनुष्य घोड़ों को छोड़ देता है। जिससे इस सवन में हम तुम्हें हृष्ट करें। हे इन्द्र, तुम सर्वविद् हो और असुरों के हिंसक हो। यजमान लोग उशना की तरह तुम्हारे लिए मनोहर उक्थ का उच्चारण करते हैं।

३. कवि जिस प्रकार से गूढ़ अर्थ का सम्पादन करते हैं, उसी प्रकार अभीष्टवर्षी इन्द्र कार्यों का सम्पादन करते हैं। जब सेचन योग्य सोम का अधिक परिमाण में पान करके इन्द्र हृष्ट होते हैं तब द्युलोक से सप्त-संख्यक रश्मियों को सचमुच उत्पन्न कर देते हैं। स्तूयमान रश्मियाँ दिन में भी मनुष्यों के ज्ञान का सम्पादन करती हैं।

४. जब प्रभूत एवम् ज्योतिःस्वरूप द्युलोक रश्मियों-द्वारा अच्छी तरह से दर्शनीय होता है तब देवगण उस स्वर्ग में निवास करने के लिए दीप्तियुक्त होते हैं। नेतृश्रेष्ठ सूर्य ने आगमन करके मनुष्यों को अच्छी तरह से देखने के लिए घनीभूत अन्धकार को नष्ट कर दिया है।

५. ऋजीषी अर्थात् सोमविशिष्ट इन्द्र अमित महिमा धारण करते हैं। वे अपनी महिमा के बल से द्यावा और पृथिवी दोनों को परिपूर्ण करते हैं। इन्द्र ने समस्त भुवनों को अभिभूत किया है। इन्द्र की महिमा समस्त भुवनों से अधिक है।

६. इन्द्र सम्पूर्ण मनुष्यों के हितकर वृष्टि आदि कार्य को जानते हैं। उन्होंने अभिलाषकारी और मित्रभूत मरुतों के लिए जलवर्षण किया था। जिन मरुतों ने वचनरूप ध्वनि से पर्वतों को विदीर्ण किया था, उन मरुतों ने इन्द्र की अभिलाषा करके गोपूर्ण गोशाला का आच्छादन किया है।

७. हे इन्द्र, तुम्हारे लोकपालक वज्र ने जलावरक मेघ को प्रेरित किया था। चेतनावती भूमि तुमसे संगत हुई थी। हे शूर और वर्षणशील इन्द्र, तुम अपने बल से लोकपालक होकर समुद्र-सम्बन्धी और आकाशस्थित जल को प्रेरित करो।

८. हे बहुजनाहूत इन्द्र, जब तुमने वृष्टि जल को लक्ष्य करके मेघ को विदीर्ण किया था तब तुम्हारे लिए पहले ही सरमा (देवों की कुतिया) ने पणियों-द्वारा अपहृत गौओं को प्रकाशित किया था। अङ्गिराओं-द्वारा स्तूयमान होकर तुम हम लोगों को प्रभूत अन्न प्रदान करते हो और हम लोगों का आदर करते हो।

९. हे धनवान् इन्द्र, मनुष्य तुम्हें सम्मानित करते हैं। तुमने धन प्रदान करने के लिए कुत्स के अभिमुख गमन किया था। याचना करने पर शत्रुओं के उपद्रवों से आश्रयदान-द्वारा तुमने उनकी रक्षा की थी। कपटी ऋत्विकों के कार्यों को अपनी अनुज्ञा से जानकर तुमने कुत्स के धन-लोभी शत्रु को युद्ध में विनष्ट किया था।

१०. हे इन्द्र, तुमने मन में शत्रुओं को मारने का संकल्प करके कुत्स के गृह में आगमन किया था। कुत्स भी तुम्हारे साथ मैत्री करने के लिए अतिशय आग्रहवान् हुआ था तब तुम दोनों अपने स्थान में उपविष्ट हुए थे। तुम्हारी सत्यदर्शिनी भार्या शची तुम दोनों का समान रूप देखकर संशयान्विता हुई थी।

११. जिस दिन प्राज्ञ कुत्स ग्रहणीय अन्न की तरह ऋजुगामी अश्व-द्वय को अपने रथ में युक्त करके आपत्ति से निस्तीर्ण होने में समर्थ हुए थे, उस दिन हे इन्द्र, तुमने कुत्स की रक्षा करने की इच्छा से उसके साथ एक रथ पर गमन किया था। तुम शत्रुनाशक और वायु के सदृश घोड़ों के अधिपति हो।

१२. हे इन्द्र, तुमने कुत्स के लिए सुखरहित शुष्ण का वध किया था। दिवस के पूर्व भाग में तुमने कुयव नामवाले असुर को मारा था। बहुत परिजनों से आवृत होकर तुमने उसी समय वज्र-द्वारा शत्रुओं को भी विनष्ट किया था। तुमने संग्राम में सूर्य के चक्र को छिन्न कर दिया था।

१३. हे इन्द्र, तुमने पिप्रु नामक असुर को तथा प्रवृद्ध मृगय नामक असुर को विनष्ट किया था। तुमने विदीथ के पुत्र ऋजिश्वा को बन्दी बनाया था। तुमने पचास हज़ार कृष्णवर्ण राक्षसों को मारा था। जरा जिस तरह से रूप को विनष्ट करती है, उसी तरह से तुमने शम्बर के नगरों को विनष्ट किया था।

१४. हे इन्द्र, तुम मरण-रहित हो। जब तुम सूर्य के निकट अपना शरीर धारण करते हो तब तुम्हारा रूप प्रकाशित होता है। सूर्य के

समीप सबका रूप मलिन हो जाता है; किन्तु इन्द्र का रूप और भासमान होता है। हे इन्द्र, तुम मृगविशेष की तरह शत्रुओं को वध करके आयुध धारण करते हो और सिंह की तरह भयंकर होते हो।

१५. राक्षस-जनित भय को निवारित करने के लिए इन्द्र की कामना करनेवाले और धन की इच्छा करनेवाले स्तोता लोग युद्ध-सदृश यज्ञ में इन्द्र से अन्न की याचना करते हैं, उक्थों-द्वारा उनकी स्तुति करते हैं और उनके निकट गमन करते हैं। इन्द्र उस समय स्तोताओं के लिए आवासस्थान की तरह होते हैं और रमणीय तथा दर्शनीय लक्ष्मी की तरह होते हैं।

१६. जिन इन्द्र ने मनुष्यों के हितकर बहुतेरे प्रसिद्ध कार्य किये हैं, जो स्पृहणीय धनविशिष्ट हैं, जो हमारे सदृश स्तोता के लिए ग्रहणीय अन्न को शीघ्र लाते हैं, हे यजमानो, हम स्तोता लोग उन इन्द्र का शोभन आह्वान तुम्हारे लिए करते हैं।

१७. हे शूर इन्द्र, मनुष्यों के किसी भी युद्ध में अगर हम लोगों के मध्य में तीक्ष्ण अशनिपात हो अथवा शत्रुओं के साथ अगर हम लोगों का घोरतर युद्ध हो, तब हे स्वामिन्, तुम हम लोगों के शरीर की रक्षा करना।

१८. हे इन्द्र, तुम वामदेव के यज्ञकार्य के रक्षक होओ। तुम हिंसा-रहित हो। तुम युद्ध में हम लोगों के सुहृद् होओ। तुम मति-मान् हो। हम लोग तुम्हारे निकट गमन करें। तुम सर्वदा स्तोत्र-कारियों के प्रशंसक होओ।

१९. हे धनवान् इन्द्र, हम शत्रुओं को जीतने के लिए समस्त युद्ध में तुम्हारी अभिलाषा करते हैं। धनी जिस तरह धन-द्वारा दीप्त होता है, हम भी उसी तरह हव्ययुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि परिजनों के साथ दीप्त हों और शत्रुओं को अभिभूत करके रात्रि तथा सम्पूर्ण संवत्सरों में तुम्हारी स्तुति करें।

२०. इन्द्र के साथ हम लोगों की मैत्री जिस कार्य से वियुक्त न हो, तेजस्वी और शरीर-पालक इन्द्र जिससे हम लोगों के रक्षक हों, हम लोग उसी प्रकार का आचरण करेंगे। दीप्त रथ-निर्माता जिस तरह रथ का निर्माण करते हैं, उसी तरह हम लोग भी अभीष्टवर्षी तथा नित्य तरुण इन्द्र के लिए स्तोत्र की रचना करते हैं।

२१. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों-द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश्य से अभिनव स्तोत्र करते हैं। जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुम महान् हो। महत्त्व से युक्त होकर पृथ्वी ने तुम्हारे बल का अनुमोदन किया था एवम् द्युलोक ने भी तुम्हारे बल का अनुमोदन किया था। लोकों को आवृत करनेवाले वृत्र नामक असुर को तुमने बल-द्वारा मारा था। वृत्र ने जिन नदियों को ग्रस्त किया था, तुमने उन नदियों को विमुक्त कर दिया था।

२. हे इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो। तुम्हारे जन्म होने पर द्युलोक तुम्हारे कोप-भय से कम्पित हुआ था, पृथ्वी कम्पित हुई थी और वृष्टि प्रदान के लिए बृहत् मेघसमूह तुम्हारे द्वारा आबद्ध हुआ था। इन मेघों ने प्राणियों की पिपासा को विनष्ट करके मरुभूमि में जल-प्रेरण किया था।

३. शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता इन्द्र ने तेजःप्रकाशन करके और बलपूर्वक वज्र का प्रेरण करके पर्वतों को विदीर्ण किया था। सोम-पान से हृष्ट होकर इन्द्र ने वज्र-द्वारा वृत्र को विनष्ट किया था। वृत्र के विनष्ट होने पर जल आवरणरहित होकर वेग से आने लगा था।

४. हे इन्द्र, तुम अतिशय स्तुत्य, उत्तम वज्रविशिष्ट, स्वर्गस्थान से अच्युत अर्थात् विनाशरहित और महिमावान् हो। तुम्हें जिन द्युतिमान् प्रजापति ने उत्पन्न किया था, वे अपने को सुन्दर पुत्रवान् मानते थे। इन्द्र के जनयिता प्रजापति का कर्म अत्यन्त शोभन हुआ था।

५. सम्पूर्ण प्रजाओं के राजा, बहुजनाहूत और देवों के मध्य में एक-मात्र प्रधान इन्द्र शत्रुजनित भय को विनष्ट करते हैं। द्युतिमान् और धनवान् बन्धु इन्द्र के उद्देश से सचमुच समस्त यजमान स्तुति करते हैं।

६. सम्पूर्ण सोम सचमुच इन्द्र के ही हैं। ये मदकारक सोम महान् इन्द्र के लिए सचमुच हर्षकारक हैं। हे इन्द्र, तुम धनपति हो, केवल धनपति ही नहीं; बल्कि सम्पूर्ण पशुओं के भी पति हो। हे इन्द्र, धन के लिए तुम सचमुच समस्त प्रजाओं को धारण करते हो।

७. हे धनवान् इन्द्र, पहले ही उत्पन्न होकर तुमने वृत्रभीत होकर सम्पूर्ण प्रजाओं को धारण किया था। तुमने उदकवान् देश के उद्देश्य से जलनिरोधक वृत्रासुर को छिन्न किया था।

८. अनेक शत्रुओं के हन्ता, अत्यन्त दुर्द्धर्ष शत्रुओं के प्रेरक, महान्, विनाशरहित, अभीष्टवर्षी और शोभन वज्रविशिष्ट इन्द्र की स्तुति हम लोग करते हैं। जिन इन्द्र ने वृत्र नामक असुर को मारा था, जो अन्न-दाता और शोभन धन से युक्त हैं तथा जो धन दान करते हैं, हम उनकी स्तुति करते हैं।

९. जो धनवान् इन्द्र संग्राम में अद्वितीय सुने जाते हैं, वे मिलित और विस्तृत शत्रु-सेना को विनष्ट करते हैं। वे जो अन्न यजमान को देते हैं, उसी अन्न को धारण भी करते हैं। इन्द्र के साथ हम लोगों की मैत्री प्रिय हो।

१०. शत्रुविजयी और शत्रुहिंसक होकर इन्द्र सर्वत्र प्रख्यात हैं। इन्द्र शत्रुओं के समीप से पशुओं को छीन लाते हैं। इन्द्र जब सचमुच

कोप करते हैं तब स्थावर और जंगम-रूप समस्त जगत् इन्द्र से डरने लगता है।

११. जिन धनवान् इन्द्र ने असुरों को जीता था, शत्रुओं के रमणीय धन को जीता था, अश्वसमूह को जीता था तथा अनेक शत्रुसेनाओं को जीता था, वे सामर्थ्यवान् नेतृश्रेष्ठ स्तोताओं-द्वारा स्तुत होकर पशुओं के विभाजक तथा धन के धारक हों।

१२. इन्द्र अपनी जननी के समीप कितना बल प्राप्त करते हैं और पिता के समीप कितना बल प्राप्त करते हैं। जिन इन्द्र ने अपने पिता प्रजापति के समीप से इस दृश्यमान जगत् को उत्पन्न किया था तथा उन्हीं प्रजापति के समीप से जगत् को मुहुर्मुहुः बल प्रदान किया था, वे इन्द्र गर्जनशील मेघ-द्वारा प्रेरित वायु की तरह आहूत होते हैं।

१३. धनवान् इन्द्र किसी एक धनशून्य व्यक्ति को धनपूर्ण करते हैं अर्थात् कोई पुरुष इन्द्र की स्तुति करके धनसमृद्ध हुआ है। वज्रयुक्त अन्तरिक्ष की तरह शत्रुविनाशक इन्द्र समूढ़ पाप को विनष्ट करते हैं और स्तोता को धन प्रदान करते हैं।

१४. इन्द्र ने सूर्य के आयुध को प्रेरित किया था और युद्ध के लिए जानेवाले एतश को निवारित किया था। कुटिल-गति और कृष्णवर्ण मेघ ने तेज के मूलभूत और जल के स्थान-स्वरूप अन्तरिक्ष में स्थित इन्द्र को अभिषिक्त किया था।

१५. जैसे रात्रिकाल में यजमान सोम-द्वारा अग्नि को अभिषिक्त करते हैं।

१६. हम मेधावी स्तोता गौओं की अभिलाषा करते हैं, अश्वों की अभिलाषा करते हैं, अन्न की अभिलाषा करते हैं और स्त्री की अभिलाषा करते हैं। हम सखिता के लिए कामना-पूरक, भार्याप्रद और सर्वदा रक्षक इन्द्र को, लोग जैसे कूप में जलपात्र को अवनमित करते हैं, उसी तरह अवनमित करेंगे।

१७. हे इन्द्र, तुम आप्त हो। रक्षक रूप से सबको देखते हुए तुम हमारे रक्षक होओ। तुम सोमयोग्य यजमानों के अभिद्रष्टा और सुखयिता हो। प्रजापति के समान तुम्हारी ख्याति है। तुम पालक हो और पालकों के मध्य में श्रेष्ठ हो। तुम पितरों के स्रष्टा हो। तुम स्वर्गाभिलाषी स्तोताओं के लिए अन्नप्रद होओ।

१८. हे इन्द्र, हम तुम्हारी मैत्री की अभिलाषा करते हैं। तुम हमारे रक्षक होओ। तुम स्तुत होते हो, तुम हमारे सखा होओ। तुम स्तोताओं को अन्न दान करो। हे इन्द्र, हम बाधायुक्त होकर भी स्तुति-रूप कर्म-द्वारा पूजा करके तुम्हारा आह्वान करते हैं।

१९. जब इन्द्र हम लोगों के द्वारा स्तुत होते हैं तब वे अकेले ही अनेक अभिगन्ता शत्रुओं को मार डालते हैं। जिस इन्द्र की शरण में वर्तमान स्तोता का निवारण न देवगण करते हैं और न मनुष्यगण करते हैं, उस इन्द्र का स्तोता प्रिय होता है।

२०. विविध शब्दवान्, समस्त प्रजाओं के धारक, शत्रुरहित और बलवान् इन्द्र इस प्रकार स्तुत होकर हम लोगों के सत्यरूप अभिलषित को सम्पादित करें। हे इन्द्र, तुम समस्त जन्मधारियों के राजा हो। स्तोता जिस महिमायुक्त यश को प्राप्त करता है, वह यश तुम अधिक परिमाण में हम लोगों को दो।

२१. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश्य से अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१८ सूक्त

(इस सूक्त में इन्द्र, अदिति और वामदेव का कथोपकथन है; अतएव ये ही तीनों देवता और ऋषि हैं। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र कहते हैं—"यह योनिनिर्गमणरूप मार्ग अनादि और पूर्वापर लब्ध है। इसी योनिमार्ग से सम्पूर्ण देव और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; अतएव तुम गर्भ में प्रवृद्ध होकर इसी मार्ग द्वारा उत्पन्न होओ। माता की मृत्यु के लिए मत कार्य करो।"

२. वामदेव कहते हैं—"हम इस योनिमार्ग द्वारा नहीं निर्गत होंगे। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। हम पार्श्वभेद करके निर्गत होंगे। दूसरों के द्वारा अकरणीय बहुतेरे कार्य हमें करने हैं। हमें एक के साथ युद्ध करना है। हमें एक के साथ वाद-विवाद करना है।

३. इन्द्र कहते हैं—"हमारी माता मर जायगी; तथापि हम पुरातन मार्ग का अनुधावन नहीं करेंगे, शीघ्र बहिर्गत होंगे।" (इन्द्र ने जो यथेच्छाचरण किया था, उसी को वामदेव कहते हैं) इन्द्र ने अभिषवकारी त्वष्टा के गृह में सोमाभिषव-फलक-द्वारा अभिषुत सोम का पान बलपूर्वक किया था, वह सोम बहुत धन-द्वारा क्रीत था।

४. "अदिति ने इन्द्र को अनेक मासों और अनेक संवत्सरों तक धारण किया था। इन्द्र ने यह विरुद्ध कार्य क्यों किया था? अर्थात् गर्भ में बहुत दिनों तक रहकर इन्द्र ने अदिति को क्लेश दिया था।"

इन्द्र के ऊपर किये गये आक्षेप को सुनकर अदिति कहती हैं—"हे वामदेव, जो उत्पन्न हुए हैं और जो देवादि उत्पन्न होंगे, उनके साथ इन्द्र की तुलना नहीं हो सकती है।

५. "गह्वररूप सूतिका-गृह में उत्पन्न इन्द्र को निन्दनीय मानकर माता ने उन्हें अतिशय सामर्थ्यवान् किया था। अनन्तर, उत्पन्न होते ही इन्द्र अपने तेज को धारण करके उत्थित हुए थे और द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण किया था।

६. "अ-ल-ला शब्द करती हुई ये जलवती नदियाँ इन्द्र के महत्त्व को प्रकट करने के लिए हर्षपूर्वक बहुविध शब्द करती हुई बहती हैं। हे ऋषि, तुम इन नदियों को पूछो कि ये क्या बोलती हैं? यह शब्द इन्द्र के माहात्म्य का सूचक है। मेरे पुत्र इन्द्र ने ही उदक के आवरक मेघ को विदीर्ण करके जल को प्रवर्तित किया था।

७. "वृत्रवध से ब्रह्महत्यारूप पाप को प्राप्त करनेवाले इन्द्र को निवित् क्या कहती है? जल फेन रूप से इन्द्र के पाप को धारण करता है। मेरे पुत्र इन्द्र ने महान् वज्र से वृत्र का वध किया था। अनन्तर इन नदियों को विसृष्ट किया था।"

८. वामदेव कहते हैं—"तुम्हारी युवती माता अदिति ने प्रमत्त होकर तुम्हारा प्रसव किया था। कुषवा नाम की राक्षसी ने प्रमत्त होकर तुम्हें ग्रास बनाया था। हे इन्द्र, उत्पन्न होने पर तुम्हें जलसमूह ने प्रमत्त होकर सुखी किया था। इन्द्र प्रमत्त होकर अपने वीर्य के प्रभाव से सूतिका-गृह में राक्षसी को मारने के लिए उत्थित हुए थे।

९. "हे धनवान् इन्द्र, व्यंस नामक राक्षस ने प्रमत्त होकर तुम्हारे हनुद्वय (चिबुक के अधोभाग) को विद्ध करके अपहृत किया था। हे इन्द्र, इसके अनन्तर अधिक बलवान् होकर तुमने व्यंस राक्षस के सिर को वज्र-द्वारा पीस डाला था।

१०. "सकृत्प्रसूता (एक बार ब्यायी हुई) गौ जैसे वत्स प्रसव करती है, उसी तरह इन्द्र की माता अदिति अपनी इच्छा से सञ्चरण करने के लिए इन्द्र को प्रसव करती है। इन्द्र अवस्था में वृद्ध, प्रभूत बलशाली, अनभिभवनीय, अभीष्टवर्षी, प्रेरक, अनभिभूत, स्वयं गमनक्षम और शरीराभिलाषी हैं।

११. "इन्द्र की माता अदिति ने महान् इन्द्र से पूछा, 'हे मेरे पुत्र इन्द्र, अग्नि आदि देव तुम्हें त्याग रहे हैं।' इन्द्र ने विष्णु से कहा, 'हे सखा विष्णु, तुम यदि वृत्र को मारने की इच्छा करते हो, तो अत्यन्त पराक्रमशाली होओ।'

१२. "हे इन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त किस देव ने माता को विधवा किया था ! तुम जिस समय सो रहे थे अथवा जाग रहे थे; उस समय किसने तुम्हें मारना चाहा था ? कौन देवता सुख देने में तुम्हारी अपेक्षा अधिक हैं ? किस कारण तुमने पिता के दोनों चरणों को पकड़कर उनका वध किया था ?

१३. "हमने जीवनोपाय के अभाव में कुत्ते की अँतड़ी को पकाकर खाया था। हमने देवों के मध्य में इन्द्र के अतिरिक्त अन्य देव को सुखदायक नहीं पाया। हमने अपनी भार्या को अमहीयमान् (असम्मानित) होते देखा। इसके अनन्तर इन्द्र हमारे लिए मधुर जल लाये।"

पञ्चम अध्याय समाप्त।

१९ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे वज्रवान् इन्द्र, इस यज्ञ में शोभन आह्वान से युक्त तथा रक्षक निखिल देवगण और दोनों द्यावा-पृथिवी वृत्रवध के लिए एक-मात्र तुम्हारा ही सम्भजन करती हैं। तुम स्तूयमान, महान् गुणोत्कर्ष से प्रवृद्ध और दर्शनीय हो।

२. हे इन्द्र, वृद्ध पिता जैसे युवा पुत्र को प्रेरित करते हैं, उसी तरह देवगण तुम्हें असुर-वध के लिए प्रेरित करते हैं। हे इन्द्र, तुम सत्य विकास-स्वरूप हो। तब से तुम समस्त लोकों के अधीश्वर हुए हो। जल को लक्ष्य करके परिशयन करनेवाले वृत्रासुर का तुमने वध किया था। सबको प्रसन्न करनेवाली नदियों का तुमने खनन किया था।

३. हे इन्द्र, तुमने भोग में अतृप्त, शिथिलाङ्ग, दुर्विज्ञान, अज्ञान-भावापन्न, सुप्त और सपणशील जल को आच्छादित करके सोनेवाले वृत्र को पौर्णमासी में वज्र-द्वारा मारा था।

४. वायु जैसे बल-द्वारा जल को क्षोभित करती है, उसी तरह परमैश्वर्यवान् इन्द्र बल-द्वारा अन्तरिक्ष को क्षीणजल करके पीस डालते हैं। बलाभिलाषी इन्द्र दृढ़ मेघ को भग्न करते हैं और पर्वतों के पक्षों को छिन्न करते हैं।

५. हे इन्द्र, मातायें जिस तरह पुत्र के निकट गमन करती हैं, उसी तरह मरुतों ने तुम्हारे निकट गमन किया था; जैसे वृत्र को मारने के लिए तुम्हारे साथ वेगवान् रथ गया था। तुमने विस्तरणशील नदियों को वारिपूर्ण किया था; मेघ को भग्न किया था और वृत्र-द्वारा आवृत जल को प्रेरित किया था।

६. हे इन्द्र, तुमने महती तथा सबको प्रीति देनेवाली और तुर्वीति तथा वय्य राजा के लिए अभीष्ट फल देनेवाली भूमि को अन्न से अचल किया था तथा जल से रमणीय किया था अर्थात् पृथ्वी को तुमने अन्न-जल से समृद्ध किया था। हे इन्द्र, तुमने जल को सुतरणीय (सुगमता से तैरने के योग्य) बना दिया था।

७. इन्द्र ने शत्रुहिंसक सेना की तरह तटध्वंसिनी, जलयुक्ता तथा अन्नजनयित्री नदियों को भली-भाँति पूर्ण किया है। इन्द्र ने जलशून्य देशों को वृष्टि-द्वारा पूर्ण किया है तथा पिपासित पथिकों को पूर्ण किया है। इन्द्र ने दस्युओं की अधिकृता, प्रसव-निवृत्ता गौओं को दुहा था।

८. वृत्रासुर को मारकर इन्द्र ने तमिस्रा-द्वारा आच्छादित अनेक उषाओं को तथा संवत्सरों को विमुक्त किया था। एवं वृत्र-द्वारा निरुद्ध जल को भी विमुक्त किया था। इन्द्र ने मेघ के चारों तरफ़ वर्तमान तथा वृत्र-द्वारा अध्यमान नदियों को पृथ्वी के ऊपर बहने के लिए विमुक्त किया था।

९. हे हरि नामक घोड़ोंवाले इन्द्र, तुमने उपजिह्विका-(कीटविशेष) द्वारा भक्ष्यमान अग्रू-पुत्र को बल्मीक (दीमक) के स्थान से बाहर किया था। बाहर किये जाते समय वह अग्रू-पुत्र यद्यपि अन्धा था,

तथापि उसने सर्प को अच्छी तरह से देखा था। उसके जपजिह्विका-द्वारा छिन्न अङ्ग इन्द्र-द्वारा संयुक्त हुए थे।

१०. हे राजमान प्राज्ञ इन्द्र, तुम सर्ववेत्ता हो। वर्षणयोग्य और स्वयं सम्पन्न मनुष्यों के वृष्टि-सम्बन्धी कर्मों को तुमने जिस प्रकार से किया था, वामदेव उन सकल पुरातन कर्मों का उल्लेख करते हैं।

११. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश्य से अभिनव स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अभीष्टप्रद और तेजस्वी इन्द्र, हम लोगों को आश्रय प्रदान करने के लिए दूर से आयें; हम लोगों को आश्रय प्रदान करने के लिए निकट से आगमन करें। वे संग्राम में संगत होने पर शत्रुओं का वध करते हैं। वे वज्रबाहु, मनुष्यों के पालक और तेजस्वी मरुतों से युक्त हैं।

२. हम लोगों के अभिमुखवर्ती इन्द्र आश्रय और धन प्रदान करने के लिए हम लोगों के निकट अश्वों के साथ आयें। वज्रवान्, धन-शाली और महान् इन्द्र युद्ध में उपस्थित होने पर हमारे इस यज्ञ में उपस्थित हों।

३. हे इन्द्र, तुम हम लोगों को पुरःसर करके हमारे इस क्रियमाण यज्ञ का सम्भजन करो। हे वज्रधर, हम तुम्हारे स्तोता हैं। व्याध जिस तरह से मृगों का शिकार करता है, उसी तरह से हम तुम्हारे द्वारा धन लाभ के लिए युद्ध में जय लाभ करें।

४. हे अन्नवान् इन्द्र, तुम प्रसन्न मन से हम लोगों के समीप आगमन करो और हमारी कामना करके उत्तम रूप से अभिषुत, सम्भृत और मादक सोमरस का पान करो एवम् माध्यन्दिन सवन में उदीयमान स्तोत्र के साथ सोम पान करके हृष्ट होओ।

५. जो पके फलवाले वृक्ष की तरह एवम् आयुधकुशल विजयी व्यक्ति की तरह हैं और जो नूतन ऋषियों-द्वारा विविध प्रकार से स्तूयमान होते हैं, उन पुरुहूत इन्द्र के उद्देश से हम स्तुति करते हैं। जैसे स्त्रैण मनुष्य स्त्री की प्रशंसा करता है।

६. जो पर्वत की तरह प्रवृद्ध और महान् हैं, जो तेजस्वी हैं और जो शत्रुओं को अभिभूत करने के लिए सनातन काल में उत्पन्न हुए हैं, वे इन्द्रजल-द्वारा पूर्ण जलपात्र की तरह तेजःपूर्ण बृहत् वज्र का आदर करते हैं।

७. हे इन्द्र, तुम्हारे जन्म से (उत्पन्न-मात्र से) ही कोई निवारक नहीं रहा, यज्ञादि कर्म के लिए तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन का नाशक कोई नहीं रहा। हे बलशाली, तेजस्वी, पुरुहूत, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम हम लोगों को धन दो।

८. हे इन्द्र, तुम प्रजाओं के धन और गृह का पर्यवेक्षण करते हो और निरोधक असुरों से गौओं के समूह को उन्मुक्त करते हो। हे इन्द्र, तुम शिक्षा के विषय में प्रजाओं के नेता या शासक हो और युद्ध में प्रहार करनेवाले हो। तुम प्रभूत धनराशि के प्रापक होओ।

९. अतिशय प्राज्ञ इन्द्र किस प्रज्ञाबल से विश्रुत होते हैं? महान् इन्द्र जिस प्रज्ञाबल से मुहुर्मुहुः कर्मसमूह का सम्पादन करते हैं (उसी के द्वारा विश्रुत हैं)। वे यजमानों के बहुल पाप को विनष्ट करते हैं और स्तोताओं को धन दान करते हैं।

१०. हे इन्द्र, तुम हम लोगों की हिंसा मत करो; बल्कि हम लोगों के पोषक होओ। हे इन्द्र, तुम्हारा जो प्रभूत धन हव्यदाता को दान देने के लिए है, वह धन लाकर हमें दो। हम तुम्हारा स्तव

करते हैं। इस नूतन दानयोग्य और प्रशस्त उक्थ में हम तुम्हारा विशेष रूप से कीर्तन करते हैं।

११. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश से अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिनका बल प्रभूत है। जो सूर्य की तरह अभिभवसमर्थ बल का पोषण करते हैं, वे हम लोगों के समीप रक्षा के लिए आएँ। पराक्रमवान् और प्रवृद्ध इन्द्र हमारे साथ हृष्ट हों।

२. हे स्तोताओ, यज्ञार्ह सम्राट् की तरह जिनका अभिभवकारक तथा त्राणकारक कर्म शत्रु-सम्बन्धिनी प्रजाओं को अभिभूत करता है, उन प्रभूतयशा तथा अतिशय धनशाली इन्द्र के बलभूत नेता मरुतों की तुम लोग इस यज्ञ में स्तुति करो।

३. इन्द्र हम लोगों को आश्रय देने के लिए मरुतों के साथ स्वर्गलोक से, भूलोक से, अन्तरिक्ष लोक से, जल से, आदित्यलोक से, दूर देश से और जल के स्थानभूत मेघलोक से यहाँ आयें।

४. जो स्थूल एवम् महान् धन के अधिपति हैं, जो प्राणरूप बल-द्वारा शत्रु-सेना को जीतते हैं, जो प्रगल्भ हैं और जो स्तोताओं को श्रेष्ठ धन दान करते हैं, यज्ञ-स्थल में हम उन इन्द्र के उद्देश्य से स्तुति करते हैं।

५. जो निखिल लोकों का स्तम्भन करके यज्ञार्थं गर्जनशील वचन को उत्पन्न करते हैं और हव्य प्राप्त करके वृष्टि-द्वारा अन्न दान करते

हैं, जो प्रसाधनयोग्य तथा उक्थ-द्वारा स्तुतियोग्य हैं, यज्ञ-गृह में होता उन इन्द्र का आह्वान करते हैं।

६. जब इन्द्र की स्तुति के अभिलाषी, यजमान के गृह में निवास-कारी, स्तोता, स्तुति के सहित, इन्द्र के निकट, उपगत होते हैं, तब वे इन्द्र आयें। वे युद्ध में हम लोगों की सहायता करें। वे यजमानों के होता हैं। उनका क्रोध दुस्तर है।

७. जगद्भर्ता, प्रजापति के पुत्र एवम् अभीष्टवर्षी इन्द्र का बल स्तोत्र-कारी यजमान की सेवा करता है। वह बल सचमुच यजमानों के भरण के लिए गुहारूप हृदय में उत्पन्न होता है, यजमानों के गृह और कर्म में सचमुच अवस्थान करता है तथा यजमानों की अभीष्ट-प्राप्ति और हर्ष के लिए सचमुच वह बल उत्पन्न होता है। इन्द्र का बल यजमानों का सदा पालन करता है।

८. इन्द्र ने मेघ के द्वार को अपावृत किया था और जल के वेग को जलसमूह-द्वारा परिपूर्ण किया था; अतएव जब सुकर्मा यजमान इन्द्र को अन्न दान करते हैं, तब वे गौर मृग और गवयमृग प्राप्त करते हैं।

९. हे इन्द्र, तुम्हारा कल्याणकारक हस्तद्वय सत्कर्म का अनुष्ठान करता है एवम् तुम्हारा हस्तद्वय यजमान को धन दान करता है। हे इन्द्र, तुम्हारी स्थिति क्या है? क्यों तुम हम लोगों को हृष्ट नहीं करते हो? क्यों तुम हम लोगों को धन देने के लिए हृष्ट नहीं होते हो।

१०. इस प्रकार स्तुत होकर सत्यवान्, धनेश्वर और वृत्रहन्ता इन्द्र यजमानों को धन देते हैं। हे बहुस्तुत, हम लोगों की स्तुति के लिए तुम हमें धन दो। जिससे हम दिव्य अन्न का भक्षण कर सकें।

११. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम

तुम्हारे उद्देश्य से अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२२ सूक्त

(३ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. महान् बलवान् इन्द्र हम लोगों के हविरन्न का सेवन करते हैं। वे बलवान् हैं। वे वज्र धारण करके बल से युक्त होकर आगमन करते हैं। इन्द्र हव्य, स्तोम, सोम और उक्थ को स्वीकार करते हैं।

२. अभीष्टवर्षी इन्द्र दोनों बाहुओं से वृष्टिकारी चतुर्धाराविशिष्ट वज्र को शत्रुओं के ऊपर फेंकते हैं। वे उग्र, नेतृश्रेष्ठ और कर्मवान् होकर आच्छादनकारिणी परुष्णी नदी की आश्रय के लिए सेवा करते हैं। इन्द्र ने परुष्णी के भिन्न-भिन्न प्रदेश को सखिकर्म के लिए संवृत किया था।

३. जो दीप्तिमान्, जो दातृश्रेष्ठ और जो उत्पन्न होते ही प्रभूत अन्न तथा महाबल से युक्त हुए थे, वे दोनों बाहुओं में कामयमान वज्र धारण करके बल-द्वारा द्युलोक और भूलोक को प्रकम्पित करते थे।

४. महान् इन्द्र के जन्म होने पर समस्त पर्वत, अनेक समुद्र, द्युलोक और पृथिवी उनके भय से कम्पित हुई थी। बलवान् इन्द्र गतिशील सूर्य के माता-पिता द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं। इन्द्र-द्वारा प्रेरित होकर वायु मनुष्य की तरह शब्द करती है।

५. हे इन्द्र, तुम महान् हो, तुम्हारा कर्म महान् है और तुम समस्त सवन में स्तुतियोग्य हो। हे प्रगल्भ, शूर, इन्द्र, तुमने सम्पूर्ण लोक को धारण करके धर्षणशील वज्र-द्वारा बलपूर्वक अहि को विनष्ट किया था।

६. हे अधिक बलशाली इन्द्र, तुम्हारे वे सकल कर्म निश्चय ही सत्य हैं। हे इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे भय से गौएँ अपने

ऊधःप्रदेशों में क्षीर की रक्षा करती हैं। हे हर्षणशील, नदियाँ तुम्हारे भय से वेगपूर्वक प्रवाहित होती हैं।

७. हे हरिवान् इन्द्र, जब तुमने वृत्र-द्वारा बद्ध इन नदियों को दीर्घकालिक बन्धन के अनन्तर प्रवाहित होने के लिए मुक्त किया था, तब उसी समय वे प्रसिद्ध द्युतिमती नदियाँ तुम्हारे द्वारा रक्षित होने के लिए तुम्हारा स्तवन करती थीं।

८. हर्षजनक सोम निष्पीड़ित हुआ है, स्पन्दमान होकर यह तुम्हारे निकट आगमन करे। शीघ्रगामी आरोही गमनशील अश्व की वृढ़ बल्गा (लगाम) धारण करके जैसे अश्व को प्रेरित करता है, उसी तरह तुम दीप्तिमान् स्तोता की स्तुति को हमारे निकट प्रेरित करो।

९. हे सहनशील इन्द्र, तुम सर्वदा शत्रुओं को अभिनव करनेवाला, प्रवृद्ध और प्रशस्त बल हम लोगों को दो। वधयोग्य शत्रुओं को हमारे वशीभूत करो। हिंसक मनुष्यों के अस्त्रों को नष्ट करो।

१०. हे इन्द्र, तुम हम लोगों की स्तुति श्रवण करो। हम लोगों को विविध प्रकार का अन्न दो। हमारे लिए समस्त बुद्धि प्रेरित करो। हमारे लिए तुम गौदाता होओ।

११. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश से अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२३ सूक्त

(देवता इन्द्र अथवा ८, ९, १० के देवता ऋत। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम लोगों की स्तुति महान् इन्द्र को किस प्रकार से वर्द्धित करेगी? वे किस होता के यज्ञ में प्रीत होकर आगमन करते हैं? महान्

इन्द्र सोमरस का आस्वादन करते हुए तथा अन्न की कामना और सेवा करते हुए किस यजमान को देने के लिए प्रदीप्त धन को धारण करते हैं।

२. कौन वीर इन्द्र के साथ सोमपान करने पाता है ? कौन व्यक्ति इन्द्र के अनुग्रह को प्राप्त करता है ? कब इनके विचित्र धन वितरित होंगे ? कब ये स्तोता यजमान को वर्द्धित करने के लिए रक्षायुक्त होंगे ?

३. हे इन्द्र, परमैश्वर्य से युक्त होकर तुम होता की कथा को क्योंकर श्रवण करते हो ? स्तोत्रों को सुनकर स्तुति करनेवाले होता की रक्षण-कथा को क्योंकर जानते हो ? इन्द्र के पुरातन दान कौन हैं ? वे दान इन्द्र को स्तोताओं की अभिलाषा के पूरक क्यों कहते हैं ?

४. जो यजमान पीड़ायुक्त होकर इन्द्र की स्तुति करते हैं और यज्ञ-द्वारा दीप्तियुक्त होते हैं, वे किस प्रकार से इन्द्र-सम्बन्धी धन प्राप्त करते हैं ? जब द्युतिमान् इन्द्र हव्य ग्रहण करके हमारे ऊपर प्रसन्न होते हैं, तब वे हमारी स्तुति को विशेष रूप से ज्ञात करते हैं।

५. द्योतमान इन्द्र उषा के प्रारम्भ में (प्रभात में) किस प्रकार और कब मनुष्यों के बन्धुत्व की सेवा करते हैं ? जो होता इन्द्र के उद्देश से सुयोग तथा कमनीय हव्य को विस्तारित करते हैं, उन बन्धुओं के प्रति कब और किस प्रकार से अपने बन्धुत्व को इन्द्र प्रकाशित करते हैं ?

६. हे इन्द्र, हम यजमान तुम्हारे शत्रुपराभवकारी सख्य को स्तोताओं के निकट किस प्रकार से भली भाँति कहेंगे ? कब हम तुम्हारे भ्रातृत्व का प्रचार करेंगे ? सुदर्शन इन्द्र का उद्योग स्तोताओं के कल्याण के लिए होता है। सूर्य की तरह गतिशील इन्द्र का अतिशय दर्शनीय शरीर सबके द्वारा अभिलषित है।

७. द्रोह करनेवाली, हिंसा करनेवाली तथा इन्द्र को न जाननेवाली राक्षसी को मारने के लिए पहले से ही तीक्ष्ण आयुधों को अत्यन्त तीक्ष्ण करते हैं। ऋण भी हम लोगों को उषाकाल में बाधित करता है, ऋणविनाशक बलवान् इन्द्र उन उषाओं को दूर से ही अज्ञातभाव से पीड़ित करते हैं।

८. ऋत (सत्य, आदित्य अथवा यज्ञ) देव के पास बहुत जल है। ऋतदेव की स्तुति पाप को नष्ट करती है। ऋतदेव का बोध योग्य तथा दीप्तिमान् स्तुतिवाक्य मनुष्यों के बधिर कर्ण में भी प्रवेश पाता है।

९. वपुष्मान् ऋतदेव के दृढ़, धारक, आह्लादक आदि अनेक रूप हैं। लोग ऋतदेव के निकट प्रभूत अन्न की इच्छा करते हैं। ऋतदेव-द्वारा गौएँ दक्षिणारूप से यज्ञ में प्रवेश करती हैं।

१०. स्तोता लोग ऋतदेव को वशीभूत करने के लिए सम्भजन करते हैं। ऋतदेव का बल शीघ्र ही जलकामना करता है। विस्तीर्णा तथा दुरवगाह्या द्यावा-पृथिवी ऋतदेव की है। प्रीतिदायिका तथा उत्कृष्टा द्यावा-पृथिवी ऋतदेव के लिए दुग्ध दोहन करती है।

११. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश से अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति-द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. हम लोगों को धन देने के लिए तथा हम लोगों के अभिमुख किस प्रकार से सुन्दर स्तुति बल के पुत्र इन्द्र को आवर्तित करे। हे यजमानो, वीर तथा पशुपालक इन्द्र हम लोगों को शत्रुओं का धन दें। हम लोग उनकी स्तुति करते हैं।

२. वृत्र को मारने के लिए इन्द्र संग्राम में आहूत होते हैं। वे स्तुतियोग्य हैं। वे सुन्दर रूप से स्तुत होने पर यजमानों को धन देने के लिए सत्यवन्द होते हैं। धनवान् इन्द्र स्तोत्राभिलाषी तथा सोमाभिलाषी यजमान को धन दान करते हैं।

३. मनुष्यगण युद्ध में इन्द्र का ही आह्वान करते हैं। यजमान लोग शरीर को तपस्या-द्वारा क्षीण करके उन्हीं को त्राणकर्त्ता करते हैं। यजमान तथा स्तोता दोनों ही परस्पर संगत होकर पुत्र-पौत्र लाभ के लिए इन्द्र के निकट गमन करते हैं।

४. हे बलवान् इन्द्र, चतुर्दिक् में व्याप्त मनुष्य जल लाभ के लिए एकत्र होकर यज्ञ करते हैं। जब युद्धकारी लोग युद्ध में एकत्र होते हैं तब कौन इन्द्र की अभिलाषा करता है।

५. उस समय युद्ध में कोई योद्धा बलवान् इन्द्र की पूजा करते हैं। अनन्तर कोई पुरोडाश प्रस्तुत करके इन्द्र को देते हैं। उस समय सोमाभिषव करनेवाले यजमान अनभिषुत सोमवाले यजमान को धन से पृथक् कर देते हैं। उस समय कोई अभीष्टवर्षी इन्द्र के उद्देश से यज्ञ करने की अभिलाषा करते हैं।

६. जो सोमाभिलाषी स्वर्गलोकस्थित इन्द्र के उद्देश से अभिषव करते हैं, उन्हें इन्द्र धन दान करते हैं। एकान्त चित्त से इन्द्र की अभिलाषा करनेवाले तथा सोमाभिषव करनेवाले यजमान के साथ संग्राम में इन्द्र मित्रता करते हैं।

७. जो आज इन्द्र के लिए सोमाभिषव करते हैं, जो पुरोडाश प्रस्तुत करते हैं और जो भर्जन योग्य जौ को भूँजते हैं, उसी स्तोत्र-कारी के स्तोत्र को स्वीकार करके इन्द्र यजमान की अभिलाषा के पूरक बल को धारण करते हैं।

८. जब शत्रुओं के हिंसक स्वामी इन्द्र शत्रुओं को जानते हैं, जब वे दीर्घ संग्राम में व्याप्त रहते हैं तब उनकी पत्नी सोमाभिषव-

कारी ऋत्विक्-द्वारा तीक्ष्णीकृत अर्थात् सोमपान करने से उत्साहवान् तथा अभीष्टवर्षी इन्द्र का यज्ञगृह में आह्वान करती हैं।

९. कोई बहुत पुण्य-द्वारा अल्प धन प्राप्त करता है, फिर क्रेता के निकट गमन करके 'हमने विक्रय नहीं किया है' कहकर अवशिष्ट मूल्य की प्रार्थना करता है। विक्रेता 'बहुत दिया है' कहकर अल्प मूल्य का अतिक्रम नहीं करता है। चाहे 'समर्थ होओ या असमर्थ, विक्रय काल में जो वचन हुआ है, वही रहेगा।'

१०. कौन हमारे इन्द्र को दस धेनुओं-द्वारा खरीदेगा? जब इन्द्र शत्रुओं का वध करेंगे तब इन्द्र को फिर मुझे देना।

११. हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों-द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों के द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदी को पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओं के अन्न को प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देश से अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. आज कौन मनुष्य हितकर, देवताभिलाषी, कामयमान व्यक्ति इन्द्र के साथ मैत्री चाहता है? सोमाभिषवकारी कौन व्यक्ति अग्नि के प्रज्वलित होने पर महान् तथा पारगामी आश्रय लाभ के लिए इन्द्र का स्तव करता है?

२. कौन यजमान स्तुति-वाक्य-द्वारा सोमार्ह इन्द्र के निकट अवनत होता है? कौन इन्द्र की स्तुतिकामना करता है? कौन इन्द्र-द्वारा प्रदत्त गौओं को धारण करता है? कौन इन्द्र के साहाय्य की इच्छा करता है? कौन इन्द्र के साथ मैत्री की इच्छा करता है? कौन इन्द्र के भ्रातृत्व की इच्छा करता है? कौन क्रान्तदर्शी इन्द्र से आश्रय-प्रार्थना करता है?

३. आज कौन यजमान इन्द्र आदि देवताओं की रक्षा के लिए प्रार्थना करता है? कौन आदित्य, अदिति तथा उदक की प्रार्थना करता है। अश्विद्वय, इन्द्र और अग्नि स्तुति से प्रसन्न होकर किस यजमान के अभिषुत सोम का यथेच्छ पान करते हैं?

४. जो यजमान कहते हैं कि नेता मनुष्यों के बन्धु एवम् नेताओं के मध्य में श्रेष्ठ नेता इन्द्र के लिए सोमाभिषव करेंगे, उन यजमानों को हविर्भर्ता अग्नि सुख प्रदान करें तथा चिर काल से उदित सूर्य को देखें।

५. अल्प अथवा अधिक शत्रु उन यजमानों को हिंसित न करें। जो यजमान इन्द्र के लिए सोमाभिषव करते हैं। इन्द्र-माता अदिति उन यजमानों को अधिक सुख प्रदान करें। शोभन यज्ञ याग करनेवाले यजमान इन्द्र के प्रिय हों। जो इन्द्र की स्तुति-कामना करते हैं, वे इन्द्र के प्रिय हों। जो इन्द्र के निकट साधुभाव से गमन करते हैं, वे इन्द्र के प्रिय हों। सोमवान् यजमान इन्द्र के प्रिय हों।

६. जो व्यक्ति इन्द्र के निकट गमन करता है और सोमाभिषव करता है उसके पाककार्य को शीघ्र अभिनवकारी तथा विक्रान्त इन्द्र स्वीकार करते हैं। जो यजमान सोमाभिषव नहीं करता है, उसके लिए इन्द्र व्याप्त नहीं होते हैं, सखा नहीं होते हैं और बन्धु भी नहीं होते हैं। जो व्यक्ति इन्द्र के निकट गमन नहीं करता है और उनकी स्तुति नहीं करता है, इन्द्र उसकी हिंसा करते हैं।

७. अभिषुत सोमपायी इन्द्र सोमाभिषव-कर्म-रहित, धनवान् और लोभी बनियों के साथ मैत्री संस्थापित नहीं करते हैं। वे उनके निरर्थक धन को उद्धरित करते हैं और नष्ट करते हैं। वे सोमाभिषवकारी तथा हव्यपाककारी यजमान के असाधारण बन्धु होते हैं।

८. उत्कृष्ट तथा निकृष्ट व्यक्ति इन्द्र का आह्वान करते हैं एवम् मध्यम व्यक्ति भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं। चलनेवाले लोग इन्द्र का आह्वान करते हैं तथा उपविष्ट लोग भी इन्द्र का ही आह्वान

करते हैं। गृहवासी लोग इन्द्र का आह्वान करते हैं तथा युद्ध करनेवाले भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं। अन्न की इच्छा करनेवाले लोग भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं।

२६ सूक्त

(प्रथम तीन मन्त्रों-द्वारा वामदेव ने इन्द्र रूप से आत्मा की स्तुति की है अथवा इन्द्र ने ही आत्मा की स्तुति की है; अतएव वामदेव के वाक्य के पक्ष में ऋषि वामदेव, देवता इन्द्र अथवा इन्द्र के वाक्य के पक्ष में ऋषि इन्द्र देवता परमात्मा। अवशिष्ट ऋचाओं के ऋषि वामदेव। सुपर्णात्मक देवता परमब्रह्म। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम प्रजापति हैं, हम सबके प्रेरक सविता हैं, हम ही दीर्घतमा के पुत्र मेधावी कक्षीवान् ऋषि हैं, हमने ही अर्जुनीपुत्र कुत्स को भली भाँति अलङ्कृत किया था, हम ही उशना नामक कवि हैं। हे मनुष्यो, हमें अच्छी तरह से देखो।

२. हमने आर्य को पृथिवी-दान किया था। हमने हव्यदाता मनुष्य को सस्य की अभिवृद्धि के लिए वृष्टि-दान किया था। हमने शब्दायमान जल का आनयन किया था। देवगण हमारे सङ्कल्प का अनुगमन करते हैं।

३. हमने सोमपान से मत्त होकर शम्बर के ९९ नगरों को एक काल में ही ध्वस्त किया था। जिस समय हम यज्ञ में अतिथियों के अभिगन्ता राजर्षि दिवोदास का पालन कर रहे थे, उस समय हमने दिवोदास को सौ नगर निवास करने के लिए दिये थे।

४. हे मरुद्गण, श्येन पक्षी पक्षियों के मध्य में प्रधान हो। अन्य श्येनों की अपेक्षा शीघ्रगामी श्येन प्रधान हो। जिस लिए कि देवों-द्वारा सेवित सोमरूप हव्य को मनुष्यों के लिए स्वर्गलोक से चक्ररहित रथ-द्वारा सुपर्ण लाया था।

५. जब भयभीत होकर श्येन पक्षी द्युलोक से सोम लाया था तब वह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष मार्ग में मन की तरह वेगयुक्त होकर उड़ा

था। एवम् सोममय मधुर अन्न के साथ वह शीघ्र गया था; और सोम लाने के कारण सुपर्ण ने इस लोक में यशोलाभ किया था।

६. देवों के साथ होकर ऋजुगामी और प्रशंसित-गमन श्येन पक्षी ने दूर से सोम को धारण करके एवम् स्तुतियोग्य तथा मदकर सोम को उन्नत द्युलोक से ग्रहण करके दृढ़भाव से उसका आनयन किया था।

७. श्येन पक्षी ने सहस्र और अयुत संख्यक यज्ञ के साथ सोम को ग्रहण करके उस अन्न का आनयन किया था। उस सोम के लाये जाने पर बहुकर्मविशिष्ट प्राज्ञ इन्द्र ने सोम-सम्बन्धी हर्ष के उत्पन्न होने पर मूढ़ शत्रुओं का बध किया था।

२७ सूक्त

(देवता श्येन। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. गर्भ में विद्यमान होकर ही हम (वामदेव) ने इन्द्र आदि समस्त देवों के जन्म को यथाक्रम से जाना था। अर्थात् परमात्मा के समीप से सब देव उत्पन्न हुए हैं। बहुतेरे लौहमय शरीरों ने हमारा पालन किया था। अभी हम श्येन की तरह स्थित होकर आवरण-रहित आत्मा को जानते हुए शरीर से निर्गत होते हैं।

२. उस गर्भ ने हमारा पर्याप्तरूप से अपहरण नहीं किया था अर्थात् गर्भ में निवास करते समय हमें मोह नहीं हुआ था। हमने गर्भस्थ दुःख को तीक्ष्ण वीर्य-द्वारा अर्थात् ज्ञानसामर्थ्य से पराभूत किया था। सबके प्रेरक परमात्मा ने गर्भस्थित शत्रुओं का वध किया था और वर्द्धमान होकर गर्भ में क्लेशकारक वायु को अतिक्रान्त किया था।

३. सोमाहरणकाल में जब श्येन ने द्युलोक से अधोमुख होकर शब्द किया था, जब सोमपालों ने श्येन के निकट से सोम छीन लिया था, जब शरप्रक्षेपक सोमपाल कृशानु ने मनोवेग से जाने की इच्छा करके

धनुष की कोटि पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई थी और श्येन के प्रति शरक्षेपण किया था तब श्येन ने सोम का आनयन किया था ।

४. अश्विद्वय ने जिस प्रकार सामर्थ्यवान् इन्द्रविशिष्ट देश से भुज्युनामक राजा का अपहरण किया था, उसी प्रकार ऋजुगामी श्येन ने इन्द्ररक्षित महान् द्युलोक से सोम का आहरण किया था । उस समय युद्ध में कृशानु के अस्त्रों से विद्ध होने पर उस गमनशील पक्षी का एक मध्यस्थित तथा पतनशील पक्ष गिर पड़ा था ।

५. इस समय विक्रमवान् इन्द्र शुभ पात्रस्थित, गव्यमिश्रित, तृप्तिकर, सारसमन्वित एवम् अध्वर्युओं-द्वारा प्रदत्त सोम लक्षण अन्न का और मधुर सोमरस का हर्ष के लिए पहले ही पान करें ।

२८ सूक्त

(देवता इन्द्र और सोम। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे सोम, इन्द्र के साथ तुम्हारी मैत्री होने पर इन्द्र ने तुम्हारी सहायता से मनुष्यों के लिए सरणशील जल को प्रवाहित किया था, वृत्र का वध किया था, सर्पणशील जल को प्रेरित किया था और वृत्र-द्वारा तिरोहित जल-द्वार को उद्घाटित किया था ।

२. हे सोम, इन्द्र ने तुम्हारी सहायता से क्षण-भर में प्रेरक सूर्य के रथ के ऊपर स्थित बृहत् अन्तरिक्ष में वर्तमान द्विचक्र रथ के एक चक्र को बलपूर्वक तोड़ डाला था । प्रभूत द्रोहकारी सूर्य के सर्वतोगामी चक्र को इन्द्र ने अपहृत किया था ।

३. हे सोम, तुम्हारे पान से बलवान् इन्द्र ने मध्याह्नकाल के पहले हीं संग्राम में शत्रुओं को मार डाला था और अग्नि ने भी कितने शत्रुओं को जला डाला था । किसी कार्य से रक्षाशून्य दुर्गम स्थान से जानेवाले व्यक्ति को जैसे चोर मार डालता है, उसी तरह इन्द्र ने बहु सहस्र सेनाओं का वध किया है ।

४. हे इन्द्र, तुम इन दस्युओं को सकल सद्गुणों से रहित करते हो। तुम कर्महीन मनुष्यों (दासों) को गर्हित (निन्दित) बनाते हो। हे इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओं को बाधा दो और उनका वध करो। उन्हें मारने के लिए लोगों से पूजा ग्रहण करो।

५. हे सोम, तुम और इन्द्र ने महान् अश्वसमूह और गोसमूह को दान किया था एवम् पणियों-द्वारा आच्छादित गोवृन्द और भूमि को बल-द्वारा विमुक्त किया था। हे धनयुक्त इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओं के हिंसक हो। तुम दोनों ने इस प्रकार से जो कुछ किया है, वह सत्य है।

२९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुम स्तुत होकर हम लोगों को रक्षित करने के लिए हम लोगों के अन्नयुक्त अनेक यज्ञों में अश्वों के साथ आगमन करो। तुम मोदमान, स्वामी, स्तोत्रों-द्वारा स्तूयमान और सत्य-धन हो।

२. मनुष्यों के हितकारी तथा सर्ववेत्ता इन्द्र सोमाभिषवकारियों-द्वारा आहूत होकर यज्ञ के उद्देश से आगमन करें। वे सुन्दर अश्वों से युक्त हैं, वे निर्भय हैं, वे सोमाभिषवकारियों-द्वारा स्तुत होते हैं एवम् वीर मरुतों के साथ हृष्ट होते हैं।

३. हे स्तोता, तुम इन्द्र के कर्णद्वय में इन्द्र को बली करने के लिए और सब दिशाओं में अतिशय हृष्ट करने के लिए स्तोत्रों को सुनाओ। सोमरस से सिक्त बलवान् इन्द्र हम लोगों के धन के लिए शोभन तीर्थों को भयरहित करें।

४. वज्रबाहु इन्द्र अपने वशीभूत सहस्रसंख्यक तथा शतसंख्यक शीघ्रगामी अश्वों को रथवहन प्रदेश में संस्थापित करते हैं एवम् रक्षा

करने के लिए याचक, मेधावी आह्लादकारी और स्तवकारी यजमान के निकट गमन करते हैं।

५. हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारे स्तोता हैं। हम लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित हैं, मेधावी और स्तुतिकारी हैं। तुम दीप्तिविशिष्ट, स्तुतियोग्य और अन्नविशिष्ट हो। धनदान-काल में हम लोग तुम्हारा सम्भजन कर सकें।

३० सूक्त

(देवता इन्द्र। नवम के देवता उषा और इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. हे वृत्रनाशक इन्द्र, लोक में तुम्हारी अपेक्षा कोई भी उत्कृष्टतर नहीं है, तुम्हारी अपेक्षा कोई भी प्रशस्यतर नहीं है। हे इन्द्र, तुम जिस तरह लोक में प्रसिद्ध हो, उस तरह कोई भी नहीं है।

२. सर्वत्र व्याप्त चक्र जिस तरह शकट का अनुवर्त्तन करता है, उसी तरह प्रजागण तुम्हारा अनुवर्त्तन करते हैं। हे इन्द्र, तुम सचमुच महान् और गुण-द्वारा प्रख्यात हो।

३. जयाभिलाषी सब देवों ने बलरूप से तुम्हारी सहायता प्राप्त करके असुरों के साथ युद्ध किया था। जिस लिए कि तुमने अहर्निश शत्रुओं का वध किया था।

४. हे इन्द्र, जिस युद्ध में तुमने युद्धकारी कुत्स एवम् उसके सहायकों के लिए सूर्य के रथचक्र को अपहृत किया था।

५. हे इन्द्र, जिस युद्ध में तुमने एकाकी होकर देवों के बाधक सकल राक्षसों के साथ युद्ध किया था तथा उन हिंसकों का वध किया था।

६. हे इन्द्र, जिस संग्राम में तुमने एतश ऋषि के लिए सूर्य की हिंसा की थी, उस समय युद्ध कर्म-द्वारा तुमने एतश की रक्षा की थी।

७. हे आवरक अन्धकार के हननकर्त्ता धनवान् इन्द्र, उसके बाद क्या तुम अत्यन्त क्रोधवान् हुए थे ? इस अन्तरिक्ष में और दिवस में तुमने दानु पुत्र वृत्र का वध किया था।

८. हे इन्द्र, तुमने बल को इस प्रकार से सामर्थ्ययुक्त किया था। तुमने हननाभिलाषिणी तथा द्युलोक की दुहिता उषा का वध किया।

९. हे महान् इन्द्र, तुमने द्युलोक की दुहिता तथा पूजनीया उषा को सम्पिष्ट किया था।

१०. अभीष्टवर्षी इन्द्र ने जब उषा के शकट को भग्न किया था तब उषा भीत हो करके इन्द्र-द्वारा भग्न शकट के ऊपर से अवतीर्ण हुई थी।

११. इन्द्र-द्वारा विचूर्णित उषा देवी का शकट विपाशा नदी के तीर पर गिर पड़ा। शकट के टूट जाने पर उषादेवी दूर देश में अप-सृत हो गईं।

१२. हे इन्द्र, तुमने सम्पूर्ण जलों तथा तिष्ठमाना नदी को पृथ्वी के ऊपर बुद्धिबल से सर्वत्र संस्थापित किया था।

१३. हे इन्द्र, तुम वर्षणकारी हो। जिस समय तुमने शुष्ण के नगरों को सम्पिष्ट किया था, उस समय तुमने उसके धन को लूटा था।

१४. हे इन्द्र, तुमने कुलितर के पुत्र दास शम्बर को बृहत् पर्वत के ऊपर निम्नमुख करके मारा था।

१५. हे इन्द्र, चक्र के चतुर्दिक् स्थित शंकु (हिंसक) की तरह वर्चि नामक दास के चतुर्दिक् स्थित पञ्चशत-संख्यक और सहस्र-संख्यक अनुचरों को तुमने विशेष रूप से मारा था।

१६. शतकर्मा इन्द्र ने अग्रु के पुत्र परावृक्त को स्तोत्र-भागी किया था।

१७. ययाति के शाप से अनभिषिक्त प्रसिद्ध राजा यदु और तुर्वश को शचीपति विद्वान् इन्द्र ने अभिषेक-योग्य बनाया था।

१८. हे इन्द्र, तुमने तत्क्षण सरयू नदी के पार में रहनेवाले आर्य-स्वाभिमानी अर्ण और चित्ररथ नामक राजा का वध किया था।

१९. हे वृत्रहन्ता, तुमने बन्धुओं-द्वारा त्यक्त अन्ध और पंगु को अनुनीत किया था अर्थात् उनके अन्धत्व और पंगुत्व को विनष्ट किया था। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख को अतिक्रमण करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है।

२०. इन्द्र ने हव्यदाता यजमान दिवोदास को शम्बर के पाषाण-निर्मित शतसंख्यक नगर दिये।

२१. इन्द्र ने दभीति के लिए अपनी शक्ति से त्रिशत्-सहस्र-संख्यक राक्षसों को हनन-साधन आयुधों के द्वारा सुला दिया था।

२२. हे इन्द्र, तुमने इन समस्त शत्रुओं को प्रच्युत किया है। हे शत्रुओं के हिंसक इन्द्र, तुम गौओं के पालक हो। तुम सम्पूर्ण यजमानों के लिए समान रूप से प्रख्यात हो।

२३. हे इन्द्र, जिस लिए तुमने अपने बल को सामर्थ्योपेत किया है; उसी लिए आज भी कोई व्यक्ति उसकी हिंसा नहीं कर सकता है।

२४. हे शत्रुविनाशक इन्द्र, अर्यमादेव तुम्हें वह मनोहर धन दान करें, दन्तहीन पूषा वह मनोहर धन दान करें और भग वह मनोहर धन दान करें।

३१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. सर्वदा वर्द्धमान, पूजनीय और मित्रभूत इन्द्र किस तर्पण-द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करेंगे? किस प्रज्ञायुक्त श्रेष्ठ कर्म-द्वारा हम लोगों के अभिमुख आगमन करेंगे।

२. हे इन्द्र, पूजनीय, सत्यभूत और हर्षकर सोमरसों के मध्य में कौन सोमरस शत्रुओं के धन को विनष्ट करने के लिए तुम्हें हृष्ट करेगा?

३. हे इन्द्र, तुम सखा-स्वरूप स्तोताओं के रक्षक हो। तुम बहुत प्रकार की रक्षा के साथ हमारे अभिमुख आगमन करो।

४. हे इन्द्र, हम लोग तुम्हारे उपगन्ता हैं। तुम हम मनुष्यों की स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे निकट वृत्ताकार चक्र की तरह प्रत्यागत होओ।

५. हे इन्द्र, तुम यज्ञ के प्रवण-प्रदेश में अपने स्थान को जानकर आगमन करते हो। हे इन्द्र, हम सूर्य के साथ तुम्हारा सम्भजन करते हैं।

६. हे इन्द्र, तुम्हारे लिए सम्पादित स्तुति और कर्म जब हम लोगों के द्वारा अनुमन्यमान होते हैं तब वे पहले तुम्हारे होते हैं और उसके बाद सूर्य के होते हैं।

७. हे कर्मपालक इन्द्र, तुम्हें लोग धनवान्, स्तोताओं के अभीष्ट-प्रद और दीप्तिमान् कहते हैं।

८. हे इन्द्र, तुम क्षणभर में ही स्तुतिकारी तथा सोमाभिषवकारी यजमान को बहुत धन प्रदान करते हो।

९. हे इन्द्र, बाधक राक्षस आदि तुम्हारे शतपरिमित धन का निवारण नहीं कर सकते हैं। शत्रुओं की हिंसा करनेवाले तुम्हारे बल का निवारण वे नहीं कर सकते हैं।

१०. हे इन्द्र, तुम्हारी शतसंख्यक रक्षा हम लोगों की रक्षा करे। तुम्हारी सहस्रसंख्यक रक्षा हम लोगों की रक्षा करे। तुम्हारा समस्त अभिगमन हम लोगों की रक्षा करे।

११. हे इन्द्र, इस यज्ञ में तुम हम यजमानों को सखा, अविनाशी तथा दीप्तियुक्त धन का भागी बनाओ।

१२. हे इन्द्र, तुम प्रतिदिन हम लोगों की महान् धन-द्वारा रक्षा करो और समस्त रक्षा-द्वारा रक्षा करो।

१३. हे इन्द्र, तुम शूर की तरह नूतन रक्षा-द्वारा हम लोगों के लिए गोविशिष्ट गोव्रज (गौओं के निवासस्थान) का उद्धार करो।

१४. हे इन्द्र, हम लोगों का शत्रुधर्षक, दीप्तिमान्, विनाशरहित, गोयुक्त और अश्वयुक्त रथ सर्वत्र गमन करे। उस रथ के साथ हम लोगों की रक्षा करो।

१५. हे सबके प्रेरक आदित्य, तुमने जिस प्रकार से सेचन-समर्थ द्युलोक को ऊपर में स्थापित किया है, उसी प्रकार से देवों के मध्य में हम लोगों के यश को उत्कृष्ट करो।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. हे शत्रुहिंसक इन्द्र, तुम शीघ्र ही हम लोगों के निकट आगमन करो। तुम महान् हो। महान् रक्षा के साथ तुम हमारे निकट आगमन करो।

२. हे पूजनीय इन्द्र, तुम भ्रमणशील और हम लोगों के अभीष्ट-दाता हो। चित्रकर्मयुक्त प्रजा को तुम रक्षा के लिए धन दान करते हो।

३. हे इन्द्र, जो यजमान तुम्हारे साथ संगत होते हैं, उन थोड़े से भी यजमानों के साथ तुम उत्प्लवमान तथा वर्द्धमान शत्रुओं को अपने बल से विनष्ट करते हो।

४. हे इन्द्र, हम यजमान तुमसे संगत हुए हैं। हम अधिक परिमाण में तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम सबकी विशेष रूप से रक्षा करो।

५. हे वज्रधर, तुम मनोहर, अनिन्दित और शत्रुओं के द्वारा अप्रहर्षित अर्थात् अनाक्रमणीय रक्षाओं के साथ हमारे निकट आगमन करो।

६. हे इन्द्र, हम तुम्हारे सदृश गोयुक्त देवता के सखा हैं। प्रभूत अन्न के लिए तुम्हारे साथ संयुक्त होते हैं।

७. हे इन्द्र, जिस कारण तुम ही एक गोयुक्त अन्न के स्वामी हो; इसलिए तुम हमें प्रभूत अन्न दान करो।

८. हे स्तुतियोग्य इन्द्र, जब तुम स्तुत होकर स्तोताओं को धन दान करने की इच्छा करते हो तब कोई भी उसे अन्यथा नहीं कर सकता है।

९. हे इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य करके गोतम नामवाले ऋषि धन और प्रभूत अन्न के लिए स्तुति वाक्य-द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१०. हे इन्द्र, सोमपान से हृष्ट होकरके तुम क्षेपक असुरों कि सम्पूर्ण नगरों में अभिगमन करके उन्हें भग्न कर देते हो। हे इन्द्र, हम स्तोता तुम्हारे उसी वीर्य का कीर्तन करते हैं।

११. हे इन्द्र, तुम स्तुतियोग्य हो। तुमने जिन बलों को प्रदर्शित किया है, हे इन्द्र, प्राज्ञगण सोमाभिषव होने पर तुम्हारे उन्हीं बल का संकीर्तन करते हैं।

१२. हे इन्द्र, स्तोत्रवाहक गोतमगण तुम्हें स्तोत्र-द्वारा वर्द्धित करते हैं। तुम इन्हें पुत्र पौत्रयुक्त अन्न दान करो।

१३. हे इन्द्र, यद्यपि तुम सब यजमानों के साधारण देवता हो, तथापि हम स्तोता तुम्हारा आह्वान करते हैं।

१४. हे निवासप्रद इन्द्र, तुम हम यजमानों के अभिमुख आगमन करो। हे सोमपा, तुम सोमरूप अन्न-द्वारा हृष्ट होओ।

१५. हे इन्द्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं। हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे निकट ले आये। तुम अश्वद्वय को हमारे अभिमुख परिवर्तित करो।

१६. हे इन्द्र, तुम हमारे पुरोडाश रूप अन्न का भक्षण करो। स्त्री-कामी पुरुष जैसे स्त्रियों के वचन की सेवा करता है, उसी तरह तुम हमारे स्तुतिवाक्य का सेवन करो।

१७. हम स्तोता इन्द्र के निकट शिक्षित, शीघ्रगामी तथा सहस्रसंख्यक अश्वों की याचना करते हैं एवम् शतसंख्यक सोम-कलश की याचना करते हैं अर्थात् अपरिमित कलशवाले यज्ञ की याचना करते हैं।

१८. हे इन्द्र, हम तुम्हारी शतसंख्यक और सहस्रसंख्यक गौओं को अपने अभिमुख करते हैं। हम लोगों का धन तुम्हारे निकट से आवे।

१९. हे इन्द्र, हम तुम्हारे समीप से दश कुम्भ-परिमित सुवर्ण धारण करते हैं। हे शत्रु-हिंसक इन्द्र, तुम सहस्रप्रद होते हो।

२०. हे इन्द्र, तुम बहुप्रद हो। तुम हम लोगों को बहुत धन दान करो। अल्प धन मत दो। तुम बहुत धन हम लोगों के लिए लाओ; क्योंकि तुम हम लोगों को प्रभूत धन देने की इच्छा करते हो।

२१. हे वृत्रहिंसक विभ्रान्त इन्द्र, तुम बहुप्रद रूप से बहुतेरे यजमानों के निकट विख्यात हो। तुम हम लोगों को धन का भागी करो।

२२. हे प्राज्ञ इन्द्र, हम तुम्हारे पिङ्गलवर्ण अश्वद्वय की प्रशंसा करते हैं। हे गोप्रद, तुम स्तोताओं का विनाश नहीं करते हो। तुम इस अश्वद्वय-द्वारा हमारी गौओं को विनष्ट न करना।

२३. हे इन्द्र, दृढ़, नव और क्षुद्र द्रुमाख्य स्थान में स्थित कमनीय शाल-भञ्जिका-द्वय (पुत्तलिका) की तरह तुम्हारे पिङ्गलवर्ण दोनों घोड़े यज्ञ में शोभा पाते हैं।

२४. हे इन्द्र, हम जब वृषभयुक्त रथ-द्वारा गमन करें अथवा जब पद-द्वारा गमन करें, तब तुम्हारे अहिंसक तथा पिङ्गलवर्ण अश्वद्वय हमारे मंगलकारी हों।

षष्ठ अध्याय समाप्त।

३३ सूक्त

(सप्तम अध्याय। ४ अनुवाक। देवता ऋभुगण। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम यजमान ऋभुओं के निकट दूत की तरह स्तुतिवाक्य प्रेरित करते हैं। हम उनके निकट सोम-उपस्तरण के लिए पयोयुक्त धेनु की याचना करते हैं। ऋभुगण वायु के समान गमन करनेवाले हैं। वे जगत् के उपकार-जनक कर्म को करनेवाले हैं। वे वेग से जानेवाले घोड़ों-द्वारा अन्तरिक्ष को क्षणमात्र में परिव्याप्त करते हैं।

२. जब ऋभुओं ने माता-पिता को परिचर्या-द्वारा युवा किया था एवम् चमस-निर्माणादि अन्य कार्य करके वे अलंकृत हुए थे तब इन्द्रादि देवों के साथ उन्होंने उसी समय सख्य लाभ किया था। धीर ऋभुगण प्रकृष्ट मनस्वी हैं। वे यजमानों के लिए पुष्टि धारण करते हैं।

३. ऋभुओं ने यूपकाष्ठ की तरह जीर्ण और शयनशील माता-पिता को नित्य तरुण किया था। वाज विभु और ऋभु इन्द्र के साथ सोम पान करके हम लोगों के यज्ञ की रक्षा करें।

४. ऋभुओं ने संवत्सर-पर्यन्त मृतक गौ का पालन किया था। ऋभुओं ने उस गौ के मांस को संवत्सर-पर्यन्त अवयवयुक्त किया था एवम् संवत्सर-पर्यन्त उसके शरीर के सौन्दर्य की रक्षा की थी। इन सकल-कार्यों-द्वारा उन्होंने देवत्व प्राप्त किया था।

५. ज्येष्ठ ऋभु ने कहा, "एक चमस को दो करेंगे।" उसके अवरज विभु ने कहा, "तीन करेंगे।" उसके कनिष्ठ वाज ने कहा, "चार प्रकार से करेंगे।" हे ऋभुओ, तुम्हारे गुरु त्वष्टा ने इस चतुष्करण-रूप तुम्हारे वचन को अङ्गीकार किया था।

६. मनुष्य-रूप ऋभुओं ने सत्य कहा था; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा, वैसा किया था। इसके अनन्तर वे ऋभुगण तृतीय सवनगत स्वधा के भागी हुए थे। दिवस की तरह दीप्तिमान् चार चमसों को देखकर त्वष्टा ने उसकी कामना की थी—उसे अङ्गीकार किया था।

७. अगोपनीय सूर्य के गृह में जब ऋभुगण आर्द्रा से लेकर वृष्टि-कारक बारह नक्षत्रों तक अतिथिरूप से (सत्कृत होकर) सुखपूर्वक निवास करते हैं तब वे वृष्टि-द्वारा खेतों को शस्य-सम्पन्न करते और नदियों को प्रेरित करते हैं। जलविहीन स्थान में ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं; और नीचे की तरफ़ जल जमा होता है।

८. हे ऋभुओ, जिन्होंने सुचक्र और चक्रविशिष्ट रथ का निर्माण किया था, जिन्होंने विश्व की प्रेरयित्री और बहुरूपा धेनु को उत्पन्न

किया था, वे सुकर्मा, सुन्दर, अन्नयुक्त और सुहस्त ऋभु हम लोगों के धन का निष्पादन करें।

९. इन्द्र आदि देवों ने वरप्रदान-रूप कर्म-द्वारा एवम् प्रसन्न अन्तःकरण-द्वारा देदीप्यमान होकर इन ऋभुओं के अश्व, रथ आदि निर्माण रूप कर्म को स्वीकार किया था। शोभन व्यापारवाले कनिष्ठ वाज सब देवों के सम्बन्धी हुए, ज्येष्ठ ऋभु इन्द्र के सम्बन्धी हुए और मध्यम विभु वरुण के सम्बन्धी हुए।

१०. हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्वद्वय को प्रज्ञा तथा स्तुति-द्वारा हृष्ट किया था, जिन्होंने उस अश्वद्वय को इन्द्र के लिए सुयोजमान किया था, वही ऋभुगण हम लोगों को मंगलाकांक्षी मित्र की तरह धन, पुष्टि-गो आदि धन तथा सुख दान करें।

११. चमस आदि निर्माण के अनन्तर तृतीय सवन में देवों ने तुम लोगों को सोमपान तथा तदुत्पन्न हर्ष प्रदान किया था। तपोयुक्त व्यक्ति को छोड़कर दूसरे के सखा देवगण नहीं होते हैं। हे ऋभुओ, इस तृतीय सवन में तुम निश्चय ही हम लोगों को धन दान करो।

३४ सूक्त

(देवता ऋभुगण। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे ऋभु, विभु, वाज और इन्द्र, रत्न दान करने के लिए तुम लोग हमारे इस यज्ञ में आओ; क्योंकि अभी दिन में वाक्देवी तुम लोगों को सोमाभिषव-सम्बन्धी प्रीति दान करती है। इसलिए सोमजनित हर्ष तुम लोगों के साथ संगत हो।

२. हे अन्न-द्वारा शोभमान ऋभुगण, पहले तुम लोगों का जन्म मनुष्यों में हुआ था, अब देवत्वप्राप्ति को जान करके तुम लोग देवों के साथ हृष्ट होओ। हर्षकर सोम और स्तुति तुम लोगों के लिए एकत्र हुए हैं। तुम लोग हमारे लिए पुत्र-पौत्र-विशिष्ट धन प्रेरित करो।

३. हे ऋभुओ, तुम लोगों के लिए यह यज्ञ किया गया है। मनुष्य की तरह दीप्तिशाली होकर तुम लोग इसे धारण करो। सेवमान सोम तुम लोगों के निकट रहता है। हे वाजगण, तुम लोग ही प्रथम उपास्य हो।

४. हे नेतृगण, तुम्हारे अनुग्रह से अभी इस तृतीय सवन में दानयोग्य रत्न परिचर्याकारी, हव्यदाता यजमान के लिए हो। हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग पान करो। तृतीय सवन में हर्ष के लिए प्रभूत सोम हम तुम लोगों के लिए दान करते हैं।

५. हे वाजो, हे ऋभुक्षाओ, तुम लोग नेता हो। महान् धन की स्तुति करते हुए तुम लोग हमारे निकट आगमन करो। दिवस की समाप्ति में अर्थात् तृतीय सवन में जैसे नव प्रसवा गौएँ गृह के प्रति आगमन करती हैं, उसी तरह यह सोम रस का पान तुम लोगों के निकट आगमन करता है।

६. हे बलपुत्रो या बलवानो, स्तोत्र-द्वारा आहूत होकर तुम लोग इस यज्ञ में आगमन करो। तुम लोग इन्द्र के साथ प्रीत होते हो और मेधावी हो; क्योंकि तुम लोग इन्द्र के सम्बन्धी हो। तुम लोग इन्द्र के साथ रत्न दान करते हुए मधुर सोमरस का पान करो।

७. हे इन्द्र, तुम रात्र्यभिमानी वरुणदेव के साथ समान-प्रीति-युक्त होकर सोम पान करो। हे स्तुतियोग्य इन्द्र, तुम मरुतों के साथ संगत होकर सोमपान करो। प्रथम पानकारी ऋतुओं के साथ, देव-पत्नियों के साथ और रत्न देनेवाले ऋतुओं के साथ सोम पान करो।

८. हे ऋभुओ, आदित्यों के साथ संगत होकर तुम हृष्ट होओ, पर्व में अर्चमान देवविशेष के साथ संगत होकर तुम हृष्ट होओ, देवों के हितकर सविता देव के साथ संगत होकर हृष्ट होओ और रत्न-दाता नद्यभिमानी देवों के साथ संगत होकर हृष्ट होओ।

९. हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्विद्वय को रथनिर्माणादि कार्य-द्वारा प्रीत किया था, जिन्होंने जीर्ण माता-पिता को युवा किया था, जिन्होंने

धेनु और अश्व का निर्माण किया था, जिन्होंने देवों के लिए अंसत्रा कवच निर्माण किया था, जिन्होंने द्यावा-पृथिवी को पृथक् किया था, जो व्याप्त एवम् नेता हैं और जिन्होंने सुन्दर अपत्य-प्राप्ति-साधन रूप कार्य किया था, वे प्रथम पानकारी हैं।

१०. हे ऋभुओ, जो गोविशिष्ट, अन्नविशिष्ट, पुत्रपौत्रादिविशिष्ट निवासयोग्य गृह आदि धनों से युक्त तथा बहुत अन्नवाले धन को धारण करते हैं एवम् जो धन की प्रशंसा करते हैं, वे प्रथम पानकारी ऋभुगण हृष्ट होकर हम लोगों को धन दान करें।

११. हे ऋभुओ, तुम लोग चले न जाना। हम तुम लोगों को अत्यन्त तृषित नहीं करेंगे। हे देवो (ऋभुओ), तुम लोग अनिन्दित होकर रमणीय धन दान करने के लिए इस यज्ञ में इन्द्र के साथ हृष्ट होओ, मरुतों के साथ हृष्ट होओ और अन्यान्य दीप्तिमान् देवों के साथ हृष्ट होओ।

३५ सूक्त

(देवता ऋभुगण। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे बल के पुत्र, सुधन्वा के पुत्र, ऋभुओ, तुम सब इस तृतीय सवन में आओ, अपगत मत होओ। इस सवन में मदकर सोम रत्न-दाता इन्द्र के अनन्तर तुम लोगों के निकट गमन करे।

२. ऋभुओं का रत्नदान इस तृतीय सवन में मेरे निकट आये; क्योंकि तुम लोगों ने शोभन हस्त-व्यापार-द्वारा और कर्म की इच्छा-द्वारा एक चमस को चतुर्धा किया था एवम् अभिषुत सोमपान किया था।

३. हे ऋभुओ, तुम लोगों ने चमस को चतुर्धा किया था एवम् कहा था कि, "हे सखा अग्नि, अनुग्रह करो।" अग्नि ने तुम लोगों से कहा— "हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग कुशलहस्त हो। तुम लोग अमर-त्वपथ में अर्थात् स्वर्ग मार्ग में गमन करो।"

४. जिस चमस को कौशल-पूर्वक चार किया था, वह चमस किस प्रकार का था ? हे ऋत्विको, तुम लोग हर्ष के लिए सोमाभिषव करो। हे ऋभुओ, तुम लोग मधुर सोमरस का पान करो।

५. हे रमणीय सोमवाले ऋभुओ, तुम लोगों ने कर्म-द्वारा माता-पिता को युवा किया था, कर्म-द्वारा चमस को देवपान के योग्य चतुर्धा किया था और कर्म-द्वारा शीघ्रगामी इन्द्र के वाहक अश्वद्वय को सम्पादित किया था।

६. हे ऋभुओ, तुम लोग अन्नवान् हो। जो यजमान तुम लोगों के उद्देश से हर्ष के लिए दिवावसान में तीव्र सोम का अभिषव करता है, हे फलवर्षी ऋभुओ, तुम लोग हृष्ट होकर उस यजमान के लिए बहु-पुत्रयुक्त धन का सम्पादन करो।

७. हे हरिविशिष्ट इन्द्र, तुम प्रातःसवन में अभिषुत सोमपान करो। माध्यन्दिन सवन केवल तुम्हारा ही है। हे इन्द्र, तुमने शोभन कर्म-द्वारा जिसके साथ मैत्री की है, उस रत्नदाता ऋभुओं के साथ तुम तृतीय सवन में पान करो।

८. हे ऋभओ, तुम लोग सुकर्म-द्वारा देवता हुए थे। हे बल के पुत्रो, तुम लोग श्येन (गृद्ध-विशेष) की तरह द्युलोक में निषण्ण हो। तुम लोग धनदान करो। हे सुधन्वा के पुत्रो, तुम लोग अमर हुए थे।

९. हे सुहस्त ऋभुओ, तुम लोग रमणीय सोमदानयुक्त तृतीय सवन को शोभन कर्म की इच्छा से प्रयुक्त और प्रसाधित करते हो, इसलिए तुम लोग हृष्ट इन्द्रियों के साथ अभिषुत सोमपान करो।

३६ सूक्त

(देवता ऋभुगण। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. हे ऋभुओ, तुम लोगों का कर्म स्तुतियोग्य है। तुम लोगों-द्वारा प्रदत्त अश्विनीकुमार का त्रिचक्र रथ अश्व के बिना और प्रग्रह के बिना अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करता है। जिसके द्वारा तुम लोग

द्यावा पृथिवी का पोषण करते हो, वह रथनिर्माण-रूप महान् कर्म तुम लोगों के देवत्व को प्रख्यात करता है।

२. हे सुन्दरान्तःकरण ऋभुओ, तुम लोगों ने मानसिक ध्यान-द्वारा सुवर्तन चक्रवाला अकुटिल रथ निर्माण किया था। हे वाजगण और हे ऋभुगण, हम सोमपान के लिए तुम लोगों को आवेदित करते हैं।

३. हे वाजगण, हे ऋभुगण और हे विभुगण, तुम लोगों ने जो वृद्ध और जीर्ण माता-पिता को नित्य तरुण और सर्वदा विचरणक्षम किया था, तुम लोगों का वही माहात्म्य देवों के मध्य में प्रख्यात है।

४. हे ऋभुओ, तुम लोगों ने एक चमस को चार भागों में विभक्त किया था, कर्म-द्वारा गौ को चर्म से परिवृत किया था; अतएव तुम लोगों ने देवों के बीच अमरत्व पाया है। हे वाजगण, ऋभुगण, तुम लोगों का यह कर्म प्रशंसा के योग्य है।

५. बाजों के साथ विख्यात नेता ऋभुओं ने जिस धन को उत्पन्न किया था, प्रधान और प्रभूत वह अन्नविशिष्ट धन ऋभुओं के निकट से हमारे निकट आये। यज्ञ में ऋभुओं-द्वारा सम्पन्न रथ विशेषरूप से प्रशंसा के योग्य है। हे दीप्तिविशिष्ट ऋभुओ, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह दर्शन-योग्य होता है।

६. वाजि, विभु और ऋभु जिस पुरुष की रक्षा करते हैं, वह बलवान् होकर रणकुशल होता है, वह ऋषि होकर स्तुतियुक्त होता है, वह शूर होकर शत्रुओं का प्रक्षेपक होता है, वह युद्ध में उद्धर्ष होता है और वह धन, पुष्टि तथा पुत्र-पौत्रादि धारण करता है।

७. हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग अत्युत्कृष्ट और दर्शनीय रूप धारण करते हो। हम लोगों ने तुम्हारे लिए यह उचित स्तोत्र रचा है। तुम लोग इसका सेवन करो। तुम लोग धीमान्, कवि और ज्ञानवान् हो। स्तोत्र-द्वारा हम तुम लोगों को आवेदित करते हैं।

८. हे ऋभुओ, हमारी स्तुति के लिए मनुष्यों की हितकारिणी समस्त भोग्य वस्तुओं को जानकर तुम उनकी समाप्ति करो एवम्

हमारे लिए दीप्तिमान्, बलकारक और बलवान् शत्रुओं के शोषक धन और अन्न का सम्पादन करो।

९. हे ऋभुओ, तुम लोग हमारे इस यज्ञ में प्रीत होकर पुत्र-पौत्रादि का सम्पादन करो, इस यज्ञ में धन-सम्पादन करो और इस यज्ञ में भृत्यादि-युक्त यश-सम्पादन करो। हम लोग जिस अन्न के द्वारा दूसरों का अतिक्रमण कर सकें, उस तरह का रमणीय अन्न हम लोगों को दो।

३७ सूक्त

(देवता ऋभुगण। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. हे रमणीय ऋभुओ, तुम लोग जिस तरह से दिवसों को सुदिन करने के लिए मनुष्यों के यज्ञ को धारण करते हो, हे वाजगण, हे ऋभुगण, उसी तरह से तुम लोग देवमार्ग-द्वारा हमारे यज्ञ में आगमन करो।

२. आज यह सारे यज्ञ तुम्हारे हृदय और मन में प्रीतिदायक हों, घृतमिश्रित पर्याप्त सोमरस तुम्हारे हृदय में गमन करे। चमसपूर्ण अभिषुत सोमरस तुम्हारी कामना करता है। वह प्रीत होकर तुम्हें सुकर्म के लिए हृष्ट करे।

३. हे वाजिगण, हे ऋभुगण, जो लोग सवनत्रयोपेत देवों के हितकर सोम को तुम लोगों के उद्देश से धारण करते हैं अथवा सोम को तुम लोगों के उद्देश से धारण करते हैं, उन समवेत प्रजाओं के मध्य में हम मनु की तरह प्रभूत-दीप्तियुक्त होकर तुम्हारे उद्देश से सोम प्रदान करते हैं।

४. हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व मोटे हैं, तुम्हारे रथ दीप्तिशाली हैं, तुम्हारा हनुद्वय लोहे की तरह सारवान् है। तुम अन्नवान् और शोभन निष्क (दान) वाले हो। हे इन्द्र के पुत्रो और बल के पुत्रो, तुम लोगों के हर्ष के लिए यह प्रथम सवन अनुष्ठित हुआ है।

५. हे ऋभुओ, हम अत्यन्त वृद्धिशील धन का आह्वान करते हैं, संग्राम में अत्यन्त बलवान् रक्षक का आह्वान करते हैं और सर्वदा दानशील, अश्ववान् तथा इन्द्रवान् या इन्द्रियवान् आपके गण का आह्वान करते हैं।

६. ऋभुओ, तुम और इन्द्र जिस मनुष्य की रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता है। वह कर्म-द्वारा धनभागी हो। वह यज्ञ में अश्वयुक्त हो।

७. हे वाजिगण, हे ऋभुगण, हम लोगों को यज्ञमार्ग प्रज्ञापित करो। हे मेधावियो, तुम लोग स्तुत होने पर समस्त दिशाओं को उत्तीर्ण करने की सामर्थ्य को वितरित करो।

८. हे वाजगण हे ऋभुगण, हे इन्द्र, हे अश्विद्वय, तुम लोग हम स्तुति करनेवाले मनुष्यों के लिए धन-दानार्थ प्रभूत धन और अश्व के दान की आज्ञा करो।

३८ सूक्त

(देवता प्रथम के द्यावा-पृथिवी और अवशिष्ट के दधिक्रा। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे द्यावा-पृथिवी, दाता त्रसदस्यु राजा ने तुम्हारे समीप से बहुत धन पा करके याचक मनुष्यों को दिया था, तुमने उन्हें अश्व और पुत्र दिया था एवम् दस्युओं को मारने के लिए अभिभव-समर्थ उग्र अस्त्र दिया था।

२. गमनशील, अनेक शत्रुओं के निषेधक, समस्त मनुष्यों के रक्षक, सुन्दर गामी, दीप्ति-विशिष्ट, शीघ्रगामी एवम् बलवान् राजा की तरह शत्रु-विनाशक दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) देव को तुम दोनों (द्यावा-पृथिवी) धारण करती हो।

३. सब मनुष्य हृष्ट होकर जिस दधिक्रा देव की स्तुति करते हैं, वे निम्नगामी जल की तरह गमनशील संग्रामाभिलाषी शूर की तरह

पद-द्वारा दिशाओं के लङ्घनाभिलाषी, रथगामी और वायु की तरह शीघ्रगामी हैं।

४. जो संग्राम में एकत्रीभूत पदार्थों को निरुद्ध करते हुए अत्यन्त भोगवासना से समस्त दिशाओं में गमन करते और वेग से विचरण करते हैं, जिनकी शक्ति आविर्भूत रहती है, वे ज्ञातव्य कर्मों को जानते हुए स्तुतिकारी यजमानों के शत्रुओं को तिरस्कृत करते हैं।

५. मनुष्य जैसे वस्त्रापहारक तस्कर को देखकर चीत्कार करता है, वैसे ही संग्राम में शत्रुगण दधिक्रा देव को देखकर चीत्कार करते हैं। पक्षिगण जिस प्रकार नीचे की ओर आनेवाले क्षुधार्त्त श्येन पक्षी को देखकर पलायन करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य अन्न और पशु-यूथ के उद्देश से गमन करनेवाले दधिक्रा देव को देखकर चीत्कार करते हैं।

६. वे असुर-सेनाओं में जाने की अभिलाषा करके रथपंक्तियों से युक्त होकर गमन करते हैं। वे अलंकृत हैं। वे मनुष्यों के हितकर अश्व की तरह शोभायमान हैं। वे मुखस्थित लौह-दण्ड या लगाम का दंशन करते और अपने पदाघात से उद्भूत धूलि का लेहन करते हैं।

७. इस प्रकार का वह अश्व सहनशील, अन्नवान्, स्व-शरीर-द्वारा समर में कार्य-साधन करता है। वह ऋजुगामी और वेगगामी है। शत्रु-सेनाओं के मध्य में वह वेग से गमन करता है। वह धूलि को उठाकरके भ्रूदेश के ऊपर विक्षिप्त करता है।

८. युद्धाभिलाषी लोग दीप्तिमान् शब्दकारी वज्र की तरह हिंसाकारी दधिक्रा देव से भीत होते हैं। जब वे चारों तरफ़ हज़ारों के ऊपर प्रहार करते हैं तब वे उत्तेजित होकर भीम और दुर्वार हो जाते हैं।

९. मनुष्यों की अभिलाषा के पूरक एवम् वेगवान् दधिक्रा देव के अभिभवकारक वेग की स्तुति मनुष्यगण करते और कहते हैं कि

शत्रुगण पराभूत होंगे। दधिक्रा देव सहस्र सेना के साथ गमन करते हैं।

१०. सूर्य जिस प्रकार से तेज-द्वारा जल दान करते हैं, उसी तरह से दधिक्रा देव बल-द्वारा पञ्चकृष्टि (देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और पितृगण अथवा चारों वर्ण और निषाद) को विस्तृत करते हैं। शत-सहस्रदाता, वेगवान् (दधिक्रा देव) हमारे स्तुतिवाक्य को मधुर फल-द्वारा संयोजित करें।

३९ सूक्त

(देवता दधिक्रा। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. हम लोग शीघ्रगामी उसी दधिक्रा देव की शीघ्र स्तुति करेंगे। द्यावा-पृथिवी के समीप से उनके सम्मुख घास विक्षेप करेंगे। तमो-निवारिणी उषा देवी हमारी रक्षा करें एवम् समस्त दुरितों से हमें पार करें।

२. हम यज्ञ के सम्पादक हैं। हम बहुतों-द्वारा वरणीय, महान् और अभीष्टवर्षी दधिक्रा देव की स्तुति करेंगे। हे मित्रावरुण, तुम दोनों दीप्तिमान् अग्नि की तरह स्थित तथा त्राणकर्त्ता दधिक्रा देव को मनुष्यों के उपकार के लिए धारण करते हो।

३. जो यजमान उषा के प्रकाशित होने पर अर्थात् प्रभात होने पर और अग्नि के समिद्ध होने पर अश्वरूप दधिक्रा की स्तुति करते हैं, मित्र, वरुण और अदिति के साथ दधिक्रा देव उस यजमान को निष्पाप करें।

४. हम अन्नसाधक, बलसाधक, महान् और स्तोताओं के कल्याण-कारक दधिक्रा के नाम की स्तुति करते हैं। कल्याण के लिए हम वरुण, मित्र, अग्नि और वज्रबाहु इन्द्र का आह्वान करते हैं।

५. जो युद्ध के लिए उद्योग करते हैं और जो यज्ञ आरम्भ करते हैं वे दोनों ही इन्द्र की तरह दधिक्रा का आह्वान करते हैं। हे मित्रा-

वरुण, तुम मनुष्यों के प्रेरक अश्वस्वरूप दधिक्रा को हमारे लिए धारण करो।

६. हम जयशील, व्यापक और वेगवान् दधिक्रा देव की स्तुति करते हैं। वे हमारी चक्षु आदि इन्द्रियों को सुगन्ध-विशिष्ट करें। वे हमारी आयु को वर्द्धित करें।

४० सूक्त

(देवता दधिक्रा। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. हम बारम्बार दधिक्रा देव की स्तुति करेंगे। सम्पूर्ण उषा हमें कर्म में प्रेरित करें। हम जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और अङ्गिरा-गोत्रोत्पन्न जिष्णु की स्तुति करेंगे।

२. गमनशील, भरणकुशल, गौओं के प्रेरक और परिचारकों के साथ निवास करनेवाले दधिक्रा देव अभिलषणीय उषाकाल में अन्न की इच्छा करें। शीघ्रगामी, सत्यगमनशील, वेगवान् और उत्प्लवन-द्वारा गमनशील दधिक्रा देव अन्न, बल और स्वर्ग उत्पादन करें।

३. पक्षिगण जिस तरह से पक्षियों की गति का अनुसरण करते हैं, उसी तरह से सब वेगवान् लोग त्वरायुक्त और आकांक्षावान् दधिक्रा देव की गति का अनुसरण करते हैं। श्येन पक्षी की तरह द्रुतगामी और त्राणकारी दधिक्रा के उस प्रदेश के चारों तरफ़ एकत्र होकर अन्न के लिए सब गमन करते हैं।

४. वह अश्व-रूप देव कण्ठप्रदेश में, कक्षप्रदेश में और मुखप्रदेश में बद्ध होते हैं एवम् बद्ध होकर पैदल शीघ्र गमन करते हैं। दधिक्रा देव अधिक बलवान् होकर यज्ञाभिमुख कुटिल मार्गों का अनुसरण करके सर्वत्र गमन करते हैं।

५. हंस (आदित्य) दीप्त आकाश में अवस्थित रहते हैं। वसु (वायु) अन्तरिक्ष में अवस्थिति करते हैं। होता (वैदिकाग्नि) वेदीस्थल पर गार्हपत्यादि रूप से अवस्थिति करते हैं एवम् अतिथिवत् पूज्य होकर

गृह में (पाकादिसाधन रूप से) अवस्थिति करते हैं। ऋत (सत्य, ब्रह्म, यज्ञ) मनुष्यों के मध्य में अवस्थान करते हैं, वरणीय स्थान में अवस्थान करते हैं, यज्ञस्थल में अवस्थान करते हैं एवम् अन्तरिक्ष-स्थल में अवस्थान करते हैं। वे जल में उत्पन्न हुए हैं, रश्मियों में उत्पन्न हुए हैं, सत्य में उत्पन्न हुए हैं और पर्वतों में उत्पन्न हुए हैं।

४१ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, हे वरुण, अमरहोता अग्नि की तरह कौन हविर्युक्त स्तोम (स्तोत्र) तुम दोनों का अनुग्रह लाभ करेगा? हे इन्द्र, हे वरुण, वह स्तोम (प्रशंसा) हम लोगों के द्वारा अभिहित होकर एवम् प्रज्ञोपेत और हविर्युक्त होकर तुम दोनों के हृदयङ्गम हो।

२. हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुणदेव, जो मनुष्य हविलक्षण अन्नवान् होकर संख्या के लिए तुम दोनों से बन्धुत्व करता है, वह मनुष्य पापनाश करता है, संग्राम में शत्रु का विनाश करता है और महती रक्षाद्वारा प्रख्यात होता है।

३. हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुण, तुम दोनों देव हम स्तोत्र करनेवाले मनुष्यों के लिए रमणीय धन देनेवाले होओ। यदि तुम दोनों परस्पर (यजमान के) सखा हो और सख्य-कर्म के लिए अभिषुत सोम-द्वारा अन्नवान् और हृष्ट हो, तो धन देनेवाले होओ।

४. हे उग्र इन्द्र और वरुण, तुम दोनों इस शत्रु के ऊपर दीप्त और अतिशय तेजोविशिष्ट वज्र प्रक्षेप करो। जो शत्रु हम लोगों के द्वारा दुर्दमनीय, अत्यन्त अदाता और हिंसक है, उस शत्रु के विरुद्ध तुम दोनों अभिभवकर बल का प्रयोग करो।

५. हे इन्द्र और वरुण, वृषभ जिस तरह से धेनु को प्रीत करता है, उसी तरह से तुम दोनों स्तुतियों के प्रीणयिता होओ। तृणादि का भक्षण

करके सहस्रधारा महती गौ जिस तरह से दुग्ध दोहन करती हैं, उसी तरह से स्तुतिरूपा धेनु हम लोगों की अभिलाषा का दोहन करे।

६. हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों रात्रि में रक्षायुक्त होकर शत्रुओं की हिंसा करने के लिए अवस्थान करो, जिससे हम लोग पुत्र, पौत्र और उर्वरा भूमि लाभ कर सकें एवम् चिर कालपर्यन्त सूर्य को देख सकें अर्थात् चिरजीवी हों तथा सन्तानोत्पादन शक्ति प्राप्त कर सकें।

७. हे इन्द्र और वरुण, हम लोग धेनु-लाभ की अभिलाषा से तुम लोगों के निकट प्राचीन रक्षा की प्रार्थना करते हैं। तुम दोनों क्षमताशाली, बन्धुस्वरूप, शूर एवम् अतिशय पूज्य हो। हम लोग तुम दोनों के निकट सुखदायक पिता की तरह सख्य और स्नेह की प्रार्थना करते ह ।

८. हे शोभन फल के देनेवाले देवद्वय, योद्धा जिस तरह से संग्राम की कामना करता है, उसी तरह से हम लोगों की रत्नाभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम दोनों की कामना करती हुई रक्षा-लाभ के लिए तुम दोनों के निकट गमन करती हैं। दध्यादि-द्वारा शोभन करने के लिए जैसे गौएँ सोम के निकट रहती हैं, वैसे ही हमारी आन्तरिक स्तुतियाँ इन्द्र और वरुण के निकट गमन करती हैं।

९. धन-लाभ के लिए जैसे सेवक धनियों के निकट गमन करते हैं, उसी तरह हमारी स्तुतियाँ सम्पत्ति-लाभ की इच्छा से इन्द्र और वरुण के निकट गमन करें। भिक्षुक स्त्रियों की तरह अन्न की भिक्षा माँगते हुए इन्द्र के निकट गमन करें।

१०. हम लोग बिना प्रयत्न के अश्वसमूह, रथ-समूह, पुष्टि एवम् अविचल धन के स्वामी होंगे। वे दोनों देव गमन-शील हों एवम् नूतन रक्षा के साथ हम लोगों के अभिमुख अश्व और धन नियुक्त करें।

११. हे महान् इन्द्र और वरुण, तुम दोनों महान्, रक्षा के साथ आगमन करो। जिस अन्नप्रापक युद्ध में शत्रुसेना के आयुध क्रीड़ा करते हैं, उस युद्ध में हम लोग तुम दोनों के अनुग्रह से जय-लाभ कर सकें।

४२ सूक्त

(देवता १-६ ऋचाओं के पुरुकुत्स-तनय राजर्षि त्रसदस्यु । अवशिष्ट के इन्द्र और वरुण। ऋषि त्रसदस्यु। छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हम क्षत्रिय-जात्युत्पन्न (अतिशय बलवान्) और सम्पूर्ण मनुष्यों के अधीश हैं। हमारा राज्य दो प्रकार का है। सम्पूर्ण देवगण जैसे हमारे हैं, वैसे ही सारी प्रजा भी हमारी ही है। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञ की सेवा करते हैं। हम मनुष्य के भी राजा हैं।

२. हम राजा वरुण हैं। देवगण हमारे लिए ही असुर-विघातक श्रेष्ठ बल धारण करते हैं। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञ की सेवा करते हैं हम मनुष्य के भी राजा हैं।

३. हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्ता के कारण विस्तीर्ण, दुरव-गाह्य, सुरूपा, द्यावा-पृथिवी हम ही हैं। हम विद्वान् हैं। हम सकल भूतजात को प्रजापति की तरह प्रेरित करते हैं। हम द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं।

४. हमने ही सिञ्चमान जल का सेचन किया है, उदक या आदित्य के स्थानभूत द्युलोक का धारण किया है अथवा आकाश में आदित्य का धारण किया है। जल के निमित्त से हम अदिति-पुत्र ऋतावा (यज्ञ-वान्) हुए हैं। हमने व्याप्त आकाश को तीन प्रकार से प्रथित किया है अर्थात् परमेश्वर ने हमारे लिए ही क्षिति आदि तीन लोकों को बनाया है।

५. सुन्दर अश्ववाले और संग्रामेच्छु नेता हमारा ही अनुगमन करते हैं। वे सब वृत होकर युद्ध के लिए संग्राम में हमारा ही आह्वान करते हैं। हम धनवान् इन्द्र होकर युद्ध करते हैं। हम अभिभव करने-वाले बल से युक्त हैं। हम संग्राम में धूलि उत्थित करते हैं।

६. हमने उन सकल कार्यों को किया है। हम अप्रतिहत-दैवबल

से युक्त हैं। कोई भी हमारा निवारण नहीं कर सकता। जब सोमरस हमें हृष्ट करता है एवम् उक्थ-समूह हमें हृष्ट करता है, तब अपार और उभय द्यावा-पृथिवी चलित हो जाती हैं।

७. हे वरुण, तुम्हारे कर्म को सकल भूतजात जानता है। हे स्तोता, वरुण के लिए बोलो अर्थात् वरुण की स्तुति करो। हे इन्द्र, तुमने वैरियों का वध किया है—यह तुम्हारी प्रसिद्धि है। हे इन्द्र, तुमने आच्छन्न नदियों को उन्मुक्त किया है।

८. दुर्गह के पुत्र पुरुकुत्स के बन्दी होने पर इस देश या पृथिवी के पालयिता सप्तर्षि हुए थे। उन्होंने इन्द्र और वरुण के अनुग्रह से पुरुकुत्स की स्त्री के लिए यज्ञ करके त्रसदस्यु को लाभ किया था। त्रसदस्यु इन्द्र की तरह शत्रु-विनाशक और अर्द्धदेव देवताओं के समीप में वर्तमान या देवताओं के अर्द्धभूत इन्द्र की तरह थे।

९. हे इन्द्र और वरुण, ऋषि-द्वारा प्रेरित होने पर पुरुकुत्स की पत्नी ने तुम दोनों को हव्य और स्तुति-द्वारा प्रसन्न किया था। अनन्तर तुम दोनों ने उसे शत्रुनाशक अर्द्ध देव राजा त्रसदस्यु को दान दिया था।

१०. हम लोग तुम दोनों की स्तुति करके धन-द्वारा परितृप्त होंगे। देवगण हव्य-द्वारा तृप्त हों और गौएँ तृणादि-द्वारा परितृप्त हों। हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों विश्व के हन्ता हो। तुम दोनों हम लोगों को सदा अहिंसित धन दान करो।

४३ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि सुहोत्र के पुत्र पुरुमीह्ळ और अजमीह्ळ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. यज्ञार्ह देवों के मध्य में कौन देव इसे सुनेंगे? कौन देव इस वन्दनशील स्तोत्र का सेवन करेंगे? देवताओं के मध्य किस देव के

हृदय में हम इस प्रियतरा, द्योतमाना, हव्ययुक्ता शोभन स्तुति को सुनावें अर्थात् अश्विद्वय के अतिरिक्त स्तुति के स्वामी कौन देव होंगे ?

२. कौन देवता हम लोगों को सुखी करेंगे ? कौन देवता हमारे यज्ञ में सबकी अपेक्षा अधिक आगमन करते हैं ? देवों के मध्य में कौन देवता हम लोगों को सबकी अपेक्षा अधिक सुखी करते हैं ? इस तरह उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट अश्विद्वय ही हैं। कौन रथ वेगवान् अश्वयुक्त और शीघ्रगामी है, जिसका सूर्य की पुत्री ने सम्भजन किया था ?

३. रात्रि के व्यतीत होने पर इन्द्र जिस तरह से अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हैं, हे गमनशील अश्विद्वय तुम दोनों भी उसी तरह से अभिषवण-काल में गमन करो। तुम दोनों ने द्युलोक से आगमन किया है। तुम दोनों दिव्य और शोभन गति से विशिष्ट हो। तुम दोनों के कर्मों के मध्य में कौन कर्म सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है ?

४. कौन स्तुति तुम दोनों के समान हो सकती है ? किस स्तुति-द्वारा आहूयमान होने पर तुम दोनों हमारे निकट आगमन करोगे ? कौन तुम दोनों के महान् क्रोध का सहन कर सकता है ? हे मधुर जल के सृष्टिकर्त्ता एवम् शत्रु-विनाशक अश्विद्वय, तुम दोनों हम लोगों को आश्रय-दान-द्वारा रक्षित करो।

५. हे अश्विद्वय, तुम दोनों का रथ द्युलोक के चारों तरफ़ विस्तृत भाव से गमन करता है। वह समुद्र से तुम दोनों के अभिमुख गमन करता है। तुम दोनों के लिए पके जौ के साथ सोमरस संयोजित हुआ है। हे मधुर जल के सृष्टिकर्त्ता, शत्रु-विनाशक अश्विद्वय, अध्वर्युगण मधुर दुग्ध के साथ सोमरस को मिश्रित कर रहे हैं।

६. मेघ या उदक रस-द्वारा तुम दोनों के अश्वों का सेचन हुआ है। पक्षिसदृश अश्वगण दीप्ति-द्वारा दीप्यमान होकर गमन करते हैं। जिस रथ-द्वारा तुम दोनों सूर्या के पालयिता हुए थे, तुम दोनों का वह शीघ्रगामी रथ प्रसिद्ध है।

७. हे अश्विद्वय, इस यज्ञ में तुम दोनों समान मनवाले अर्थात् सदृश हो। हम स्तुति-द्वारा तुम दोनों को संयुक्त करते हैं। वह शोभन स्तुति हम लोगों के लिए फलवती हो। हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोता की रक्षा करो। हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनों के निकट जाने से पूर्ण होती है।

४४ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि पुरुमीह्ल और अजमीह्ल। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अश्विनीकुमारो, हम आज तुम्हारे विख्यात वेगवाले और गोसंगत या गोप्रद रथ का आह्वान करते हैं। वह रथ सूर्या को धारण करता है। उसके निवासाधारभूत (बैठने की जगह का) काष्ठ बंधुर है। वह रथ स्तुतिवाहक, प्रभूत और धनवान् है।

२. हे आदित्य या द्युलोक के पुत्रस्थानीय अश्विनीकुमारो, तुम दोनों देवता हो। तुम दोनों कर्म-द्वारा प्रसिद्ध शोभा का सम्भोग करते हो। तुम दोनों के शरीर को सोमरस प्राप्त करता है। महान् अश्व (या स्तुतियाँ) तुम दोनों के रथ का वहन करते हैं।

३. कौन सोमदाता यजमान, आज, रक्षा के लिए, सोमपान के लिए, यज्ञ की पूर्ति के लिए अथवा सम्भजन के लिए तुम दोनों की स्तुति करता है? हे अश्विद्वय, कौन नमस्कार करनेवाला तुम दोनों को यज्ञ के प्रति आवर्तित करता है।

४. हे नासत्यद्वय, तुम दोनों बहुविध हो। इस यज्ञ में हिरण्मय रथ-द्वारा तुम दोनों आओ। मधुर सोमरस का पान करो एवम् परिचर्या करनेवाले को अर्थात् हमें रमणीय धन दान करो।

५. शोभन आवर्तनवाले हिरण्मय रथ-द्वारा तुम दोनों द्युलोक या पृथिवी से हमारे अभिमुख आगमन करते हो। तुम दोनों की इच्छा करनेवाले दूसरे यजमान तुम दोनों को नहीं रोक रखें; अतएव हमने पूर्व में ही स्तुति अर्पित की है।

६. हे अश्विद्वय, तुम लोग हम दोनों (पुरुमीह्ळ और अजमीह्ळ) को शीघ्र ही बहुपुत्रयुक्त प्रभूत धन दान करो। हे अश्विद्वय, पुरुमीह्ळ के ऋत्विकों ने तुम दोनों को स्तोत्र-द्वारा प्राप्त किया है एवम् अजमीह्ळ के ऋत्विकों की स्तुति भी उसी के साथ संगत हुई है।

७. अश्विद्वय, इस यज्ञ में तुम दोनों समान मनवाले हो अर्थात् सदृश हो। हम जिस स्तुति-द्वारा तुम दोनों को संयुक्त करते हैं, वह शोभन स्तुति हम लोगों के लिए फलवती हो। हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोता की रक्षा करो। हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनों के निकट जाने से पूर्ण होती है।

४५ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. दीप्तिमान् आदित्य उदित होते हैं। हे अश्विद्वय, तुम दोनों का रथ चारों तरफ़ गमन करता है। वह द्युतिमान् आदित्य के साथ समुच्छ्रित प्रदेश में मिलित होता है। इस रथ के ऊपरी भाग में मिथुनीभूत त्रिविध (अशन, पान, खाद) अन्न है एवम् सोमरसपूर्ण चर्ममय पात्र चतुर्थ रूप में शोभा पाता है।

२. उषा के आरम्भ-काल में तुम दोनों का त्रिविधान्नवान्, सोम-रसोपेत, अश्वयुक्त रथ चारों तरफ़ व्याप्त अन्धकार को दूर करता हुआ और सूर्य की तरह दीप्त तेज को विस्तारित करता हुआ उन्मुख होकर गमन करता है।

३. सोमपान करने योग्य मुख-द्वारा तुम दोनों सोमरस का पान करो। सोमरस के लाभ के लिए प्रिय रथ की योजना करो एवम् यज-मान के गृह में आगमन करो। गमनमार्ग को सोम-द्वारा प्रीत करो। तुम दोनों सोमपूर्ण चर्ममय पात्र धारण करो।

४. तुम दोनों के पास शीघ्रगामी, माधुर्ययुक्त, द्रोहरहित, हिरण्मय, (रमणीय) पक्षविशिष्ट, सहनशील, उषाकाल में जागरणकारी, जलप्रेरक,

हर्षयुक्त, एवम् सोमस्पर्शी अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम लोग हम लोगों के सवनों में आगमन करते हो, जैसे मधुमक्षिका मधु के समीप गमन करती है।

५. जब कर्म करनेवाले अध्वर्युगण अभिमंत्रित जल से हस्त शोधन करते हुए, प्रस्तर-खण्ड-द्वारा मधुयुक्त सोम अभिषव करते हैं, तब यज्ञ के साधनभूत सोमवान् गार्हपत्यादि अग्नि एकत्र निवासकारी अश्विद्वय की प्रत्यह स्तुति करते हैं।

६. समीप में निपतित होनेवाली रश्मियाँ दिवस-द्वारा अन्धकार को ध्वंस करती हुई सूर्य की तरह दीप्त तेज को विस्तारित करती हैं। सूर्य अश्वयोजना करके गमन करते हैं। हे अश्विद्वय, तुम दोनों सोम-रस के साथ उनका अनुगमन करके समस्त पथ प्रज्ञापित करो।

७. हे अश्विनीकुमारो, यज्ञ करनेवाले हम तुम दोनों की स्तुति करते हैं। तुम दोनों का सुन्दर अश्वयुक्त, नित्य तरुण जो रथ है एवम् जिस रथ-द्वारा तुम दोनों क्षण मात्र में लोकत्रय का परिभ्रमण करते हो, उसी रथ-द्वारा तुम दोनों हव्य-युक्त, शीघ्र अतिवाही एवम् भोग-प्रद यज्ञ में आगमन करो।

४६ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता प्रथम ऋचा के वायु, अवशिष्ट के इन्द्र और वायु। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. हे वायु, स्वर्ग-प्रापक यज्ञ में तुम सर्वप्रथम अभिषुत सोमरस का पान करो; क्योंकि तुम पूर्वपा हो।

२. हे वायु, तुम नियुद्वान् हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। तुम अपरिमित कामना को पूर्ण करने के लिए आगमन करो। तुम अभिषुत सोम का पान करो।

३. हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों को सहस्रसंख्यक अश्व त्वरायुक्त होकर सोमपान के लिए ले आयें।

४. हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों हिरण्मय निवासाधार काष्ठ से युक्त द्युलोकस्पर्शी और शोभन यज्ञशाली रथ पर आरोहण करो।

५. हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों प्रभूत बलसम्पन्न रथ-द्वारा हव्य-दाता यजमान के निकट आगमन करो एवम् उसी लिए इस यज्ञ में आगमन करो।

६. हे इन्द्र और वायु, यह सोम अभिषुत हुआ है, तुम दोनों देवों के साथ समान प्रीतियुक्त होकर हव्यदाता यजमान की यज्ञशाला में उसका पान करो।

७. हे इन्द्र और वायु, इस यज्ञ में तुम दोनों का आगमन हो। इस यज्ञ में तुम लोगों के सोमपान के लिए अश्व विमुक्त हों।

४७ सूक्त

(देवता इन्द्र और वायु। ऋषि वामदेव। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे वायु, व्रतचर्यादि के द्वारा दीप्त (पवित्र) होकर हम द्युलोक जाने की अभिलाषा से तुम्हारे लिए मधुर सोमरस का प्रथम आनयन करते हैं। हे वायुदेव, तुम स्पृहणीय हो। तुम अपने नियुद् (अश्व) वाहन-द्वारा सोमपान के लिए आगमन करो।

२. हे वायु, तुम और इन्द्र इस गृहीत सोम के पानयोग्य हो, तुम दोनों ही सोम को प्राप्त करते हो; क्योंकि जल जिस तरह से गर्त की ओर गमन करता है, उसी तरह से सकल सोमरस तुम दोनों के अभिमुख गमन करते हैं।

३. हे वायु, तुम इन्द्र हो। तुम दोनों बल के स्वामी हो। तुम दोनों पराक्रमशाली और नियुद्गण से युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथ पर आरोहण करके हम लोगों को अन्न प्रदान करने के लिए और सोमपान करने के लिए यहाँ आओ।

४. हे नेता तथा यज्ञवाहक इन्द्र और वायु, तुम दोनों के पास जो

बहुतेरे लोगों-द्वारा स्पृहणीय नियुद्गण हैं, वे हमें दे दो। हम तुम दोनों को हवि देनेवाले यजमान हैं।

४८ सूक्त

(देवता वायु। ऋषि वामदेव।)

१. हे वायु, शत्रुओं के प्रकम्पक राजा की तरह तुम पूर्व में ही दूसरे के द्वारा अपीत सोम का पान करो एवम् स्तोताओं के धन का सम्पादन करो। हे वायु, तुम सोमपान के लिए आह्लादकर रथ-द्वारा आगमन करो।

२. हे वायु तुम अभिशस्ति का निःशेष नियोग करते हो। तुम नियुद्गण से युक्त हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। हे वायु, तुम सोमपान के लिए अह्लादकर रथ-द्वारा आगमन करो।

३. हे वायु, कृष्णवर्ण, वसुओं की धात्री, विश्वरूपा द्यावा-पृथिवी तुम्हारा अनुगमन करती हैं। हे वायु, तुम सोमपान के लिए आह्लादकर रथ-द्वारा आगमन करो।

४. हे वायु, मन की तरह वेगवान्, परस्पर संयुक्त, नव-नवति-संख्यक (९९) अश्व तुम्हारा आनयन करते हैं। हे वायु, तुम सोमपान के लिए आह्लादकर रथ-द्वारा आगमन करो।

५. हे वायु, तुम शतसंख्यक पोषणीय अश्वों को रथ में योजित करो अथवा सहस्रसंख्यक अश्वों को रथ में योजित करो। उनसे युक्त होकर तुम्हारा रथ वेगपूर्वक आये।

४९ सूक्त

(देवता इन्द्र और बृहस्पति। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों के मुंह में हम इस प्रिय सोम-रूप हवि का प्रक्षेप करते हैं। हम तुम दोनों को उक्थ (शस्त्र) और मदजनक सोमरस प्रदान करते हैं।

२. हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों के मुँह में पान के लिए और हर्ष के लिए यह मनोहर सोम भली भाँति से दिया जाता है।

३. हे सोमपा इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों सोमपान के लिए हमारे यज्ञ-गृह में आगमन करो।

४. हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हमें शतसंख्यक गोयुक्त और सहस्रसंख्यक अश्वयुक्त धन दान करो।

५. हे इन्द्र और बृहस्पति, सोम के अभिषुत होने पर हम स्तुति-द्वारा तुम दोनों का सोमपान के लिए आह्वान करते हैं।

६. हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हव्यदाता यजमान के गृह में सोमपान करो और उसके गृह में निवास करके हृष्ट होओ।

५० सूक्त

(देवता १-९ ऋचाओं के बृहस्पति, १०-११ के इन्द्र और बृहस्पति। ऋषि वामदेव। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. देव या यज्ञ के पालयिता बृहस्पति देव ने बलपूर्वक पृथिवी की दसों दिशाओं को स्तम्भित किया था। वे शब्द-द्वारा तीनों स्थानों में वर्तमान हैं। उन आह्लादक जिह्वाविशिष्ट बृहस्पति देव को पुरातन, द्युतिमान् मेधावियों ने पुरोभाग में स्थापित किया है।

२. हे प्रभूत प्रज्ञावान् बृहस्पति, जिनकी गति शत्रुओं को कँपानेवाली है, जो तुम्हें हृष्ट करते हैं और जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, उनके लिए तुम फलप्रद, वर्द्धनशील और अहिंसित होते हो एवम् तुम उनके विस्तीर्ण यज्ञ की रक्षा करते हो।

३. हे बृहस्पति, जो अत्यन्त दूरवर्ती स्वर्गनामक उत्कृष्ट स्थान है, उस स्थान से तुम्हारे अश्व यज्ञ में आगमन करके निषण्ण होते हैं। खात कूप के चारों तरफ़ से जैसे जलस्राव होता है, उसी तरह से तुम्हारे चारों तरफ़ स्तुतियों के साथ प्रस्तर-द्वारा अभिषुत सोम मधुर रस का सिञ्चन करता है।

४. मन्त्राभिमानी बृहस्पतिदेव जब महान् आदित्य के निरतिशय आकाश में प्रथम जायमान हुए थे तब सप्त छन्दोमय मुख-विशिष्ट होकर और बहुप्रकार से सम्भूत होकर तथा शब्दयुक्त एवम् गमनशील तेजोविशिष्ट होकर उन्होंने अन्धकार का नाश किया था।

५. बृहस्पति ने दीप्तियुक्त और स्तुतिशाली अङ्गिरागण के साथ शब्द-द्वारा बल नामक असुर को विनष्ट किया था। उन्होंने शब्द करके भोगप्रदात्री और हव्यप्रेरिका गौओं को बाहर किया था।

६. हम लोग इस प्रकार से पालक, सर्वदेवता स्वरूप और अभीष्टवर्षी बृहस्पति की यज्ञ-द्वारा, हव्य-द्वारा और स्तुति-द्वारा, परिचर्या करेंगे। हे बृहस्पति, हम लोग जिससे सुपुत्रवान्, वीर्यशाली और धन के स्वामी हो सकें।

७. जो बृहस्पति (पुरोहित) को सुन्दर रूप से पोषण करता है एवम् उन्हें प्रथम हव्यग्राही कहकर उनकी स्तुति करता है और नमस्कार करता है, वह राजा अपने वीर्य-द्वारा शत्रुओं के बल को अभिभूत करके अवस्थित करता है।

८. जिस राजा के निकट ब्रह्मा (ब्रह्मणस्पति) प्रथम गमन करते हैं, वह सुतृप्त होकर अपने गृह में निवास करता है। पृथिवी उसके लिए सब काल में फल प्रसव करती है। प्रजागण स्वयम् उसके निकट अवनत रहते हैं।

९. जो राजा रक्षणकुशल और धनरहित ब्राह्मण या बृहस्पति को धन दान करता है, वह अप्रतिहत रूप से शत्रुओं और प्रजाओं का धन जीतता है एवम् महान् होता है। देवगण उसी की रक्षा करते हैं।

१०. हे बृहस्पति, तुम और इन्द्र इस यज्ञ में हृष्ट होकर यजमानों को धन दान करो। सर्वव्यापक सोम तुम दोनों के शरीर में प्रवेश करे। तुम दोनों हम लोगों को पुत्र-पौत्रादियुक्त धन दान करो।

११. हे बृहस्पति और इन्द्र, तुम दोनों हम लोगों को वर्द्धित करो। हम लोगों के प्रति तुम दोनों का अनुग्रह एक समय में ही प्रयुक्त हो।

तुम दोनों हम लोगों के यज्ञ की रक्षा करो, हमारी स्तुति से जागरित होओ और स्तोताओं के शत्रुओं के साथ युद्ध करो।

सप्तम अध्याय समाप्त ।

५१ सूक्त

(अष्टम अध्याय। देवता उषा। ऋषि वामदेव। छन्द त्रिष्टुप।)

१. हम लोगों के द्वारा स्तुति, सर्वप्रसिद्ध, अत्यन्त प्रभूत और कान्तिशाली तेज पूर्व दिशा से अन्धकार के मध्य से उत्थित होता है। आदित्य-दुहिता और दीप्तिमती उषा यजमानों के गमन-कार्य में सच-मुच सामर्थ्ययुक्ता हों।

२. यज्ञ-खात के यूपकाष्ठ की तरह शोभमाना होकर विचित्रा उषा पूर्व दिशा को व्याप्त कर अवस्थिति करती हैं। वे बाधाजनक अन्ध-कार के द्वार का उद्घाटन करके एवम् दीप्त और पवित्र हो करके प्रका-शित होती हैं।

३. आज तमोनिवारिका और धनवती उषा भोज्यदाता यजमान को सोमादि धन प्रदान करने के लिए उत्साहित करती हैं। अत्यन्त गाढ़ अन्धकार के मध्य में बनियों की तरह अदातृगण अप्रबुद्धभाव से निद्रित हों।

४. हे द्योतमान उषाओ, जिस रथ-द्वारा तुम लोगों ने सप्तछन्दो-युक्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अङ्गिराओं को धनशाली रूप से प्रदीप्त किया था, हे धनवती उषाओ, तुम लोगों का वही पुरातन अथवा नूतन रथ आज इस यज्ञ-गृह में बहु बार आगमन करे।

५. हे द्युतिमती उषाओ, तुम लोग निद्रित द्विपदों और चतुष्पदों को अर्थात् मनुष्यों और गौओं आदि को अपने-अपने गमन आदि कार्यों

में प्रबोधित करके यज्ञ में गमनकारी अश्वों के द्वारा भवनों का क्षण-मात्र में परिभ्रमण करो।

६. जिन उषा के लिए ऋभुओं ने चमस आदि का निर्माण किया था, वे पुरातन उषा कहाँ हैं? दीप्त, नित्य नूतन, समान रूपविशिष्ट उषायें जब दीप्ति प्रकाश करती हैं तब वे विज्ञात नहीं होती हैं अर्थात् वे सब दिनों में एक रूप-सदृश रहती हैं, इसलिए ये पुरातन और ये नूतन उषा हैं, इस तरह से वे पहचानी नहीं जा सकती हैं।

७. यज्ञकर्त्तागण जिन उषाओं का उक्थों-द्वारा स्तुति करके एवम् स्तोत्रों और शस्त्रों-द्वारा उच्चारण करके शीघ्र धन-लाभ करते हैं, वे ही कल्याणकारिणी उषायें पुरातन काल से ही अभिगमन करके धन दान करें। वे यज्ञ के लिए उत्पन्न हुई हैं और सत्य फल प्रदान करती हैं।

८. एकरूप-विशिष्ट और समान विख्यात उषायें पूर्व दिशा में एक-मात्र अन्तरिक्ष देश से सर्वत्र विचरण करती हैं। द्युतिमती उषायें यज्ञ-गृह को प्रबोधित करके जलसृष्टिकारिणी रश्मियों की तरह स्तुत होती हैं।

९. उषायें समान, एकरूपविशिष्ट, अपरिमित वर्णयुक्त, दीप्त, शुद्ध और कान्तिपूर्ण शरीर-द्वारा दीप्तियुक्त हैं। वे अत्यन्त महान् अन्धकार का गोपन करके विचरण करती हैं।

१०. हे द्योतमान आदित्य की दुहिताओ, तुम हम लोगों को पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन दान करो। हे देवियो, हम लोग सुख लाभ के लिए तुम लोगों को प्रतिबोधित करते हैं, जिससे हम लोग पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन के पति हो सकें।

११. हे द्योतमान आदित्य की दुहिताओ, हम लोग यज्ञ के प्रज्ञापक हैं। तुम्हारे निकट हम लोग प्रार्थना करते हैं, जिससे लोगों के मध्य में हम लोग कीर्त्ति और अन्न के स्वामी हो सकें। द्युलोक और द्युतिमती पृथिवी वह यश धारण करें।

५२ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री।)

१. वह आदित्य-दुहिता उषा दृष्ट होती है। वह स्तुत है और प्राणियों की नेत्री है एवम् सुन्दर फलों की उत्पादयित्री है। वह भगिनी-स्वरूपा रात्रि के पर्यवसानकाल में अन्धकार का विनाश करती है।

२. अश्व की तरह मनोहरा, दीप्तिमती, रश्मियों की माता और यज्ञवती उषा अश्विद्वय के साथ स्तूयमाना हो अर्थात् अश्विद्वय से बन्धुत्व करे।

३. तुम अश्विद्वय की बन्धु और रश्मियों की माता हो। हे उषा, तुम धन की ईश्वरी हो।

४. हे सुनृता (सत्यवचन) उषा, तुम शत्रुओं को पृथक् कर दो, तुम संज्ञा दान करो। हम स्तुतियों-द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं।

५. स्तुतियोग्य रश्मियाँ दृष्ट होती हैं। उषा ने जगत् को वर्षा की धारा की तरह महान् तेज से परिपूर्ण किया है।

६. हे कान्तिमती उषा, तुम जगत् को तेज-द्वारा परिपूर्ण करो, तेज-द्वारा अन्धकार को दूर करो उसके अनन्तर नियमानुसार हवि-लक्षण अन्न की रक्षा करो।

७. हे उषा, तुम दीप्त तेजोयुक्त होकर रश्मि-द्वारा द्युलोक को एवम् विस्तीर्ण और प्रिय अन्तरिक्ष को व्याप्त करो।

५३ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि वामदेव। छन्द जगती और साविती।)

१. हम लोग असुर (बलवान्) और बुद्धिमान् प्रेरक सविता देव के उस वरणीय एवम् पूज्य धन की प्रार्थना करते हैं, जिसे वे यजमान हव्यदाता को स्वेच्छापूर्वक देते हैं। महान् सविता हम लोगों को वह धन सब दिनों में दें।

२. द्युलोक एवम् समस्त लोक के धारक, प्रजाओं को प्रकाश, वृष्टि, आदि के द्वारा पालन करनेवाले कवि सविता देव हिरण्मय कवच परिधान करते हैं। विचक्षण सविता प्रख्यात होकर भी जगत् को तेज-द्वारा परिपूर्ण करते हैं और स्तुतियोग्य प्रभूत सुख उत्पादन करते हैं।

३. सवितादेव तेज-द्वारा द्युलोक और पृथिवीलोक को परिपूर्ण करते हैं एवम् अपने कार्य की प्रशंसा करते हैं। वे प्रतिदिन जगत् को अपने-अपने कार्य में स्थापन करते हैं और प्रेरण करते हैं। वे सृजनकार्य के लिए बाहु को प्रसारित करते हैं।

४. सवितादेव अहिंसित होकर भुवनों को प्रदीप्त करते हैं और व्रतों की रक्षा करते हैं। वे भुवनस्थ प्रजाओं के लिए बाहु प्रसारण करते हैं। धृतव्रत सवितादेव महान् जगत् के ईश्वर हैं।

५. सवितादेव महिमा-द्वारा परिभव करते हुए अन्तरिक्षत्रय (वायु, विद्युत् और वरुण नामक लोकत्रय अन्तरिक्ष के भेद हैं) को व्याप्त करते हैं। वे लोकत्रय को व्याप्त करते हैं। वे दीप्तिमान् अग्नि, वायु और आदित्य को व्याप्त करते हैं। वे तीन द्युलोक (इन्द्र, प्रजापति और सत्य नामक लोकत्रय) को व्याप्त करते हैं। वे तीन पृथिवियों को व्याप्त करते हैं। वे तीन व्रतों-(ग्रीष्म, वर्षा और हिम) द्वारा हम लोगों का अनुग्रहपूर्वक पालन करें।

६. जिनके पास प्रभूत धन है, जो कर्मों का प्रसव करते हैं, जो सबके लिए गन्तव्य हैं एवम् जो स्थावर और जंगम दोनों को वश में रखते हैं, वे सवितादेव हम लोगों के पापक्षय के लिए हम लोगों को लोकत्रयस्थित सुख दान करें।

७. सवितादेव ऋतुओं के साथ आगमन करें। हम लोगों के गृह को वर्द्धित करें। हम लोगों को पुत्र-पौत्रादि युक्त अन्न दान करें। वे दिन और रात्रि दोनों में हम लोगों के प्रति प्रीत हों। वे हम लोगों को अपत्ययुक्त धन दान करें।

५४ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि वामदेव। छन्द सावित्री और त्रिष्टुप्।)

१. सवितादेव प्रादुर्भूत हुए हैं। हम शीघ्र ही उनकी वन्दना करेंगे। वे इस समय और तृतीय सवन में होताओं-द्वारा स्तुत हों। जो मानवों को रत्न दान करते हैं, वे सवितादेव हम लोगों को इस यज्ञ में श्रेष्ठ धन दान करें।

२. तुम पहले यज्ञार्हदेवों के लिए अमरत्व के साधनभूत सोम के उत्कृष्टतम भाग को उत्पन्न करो। हे सविता, उसके अनन्तर तुम हव्य-दाता को प्रकाशित करो एवम् पिता, पुत्र और पौत्रादि क्रम से मनुष्यों को जीवन दान करो।

३. हे सवितादेव, अज्ञानतावश अथवा दुर्बल या बलशाली लोगों के प्रभाववश अथवा ऐश्वर्य के गर्व से या परिजन के गर्व से तुम्हारे प्रति अथवा देव या मनुष्यों के प्रति हमने जो अपराध किया है, इस यज्ञ में तुम हमें उससे निष्पाप करो।

४. सवितादेव का वह कर्म हिंसायोग्य नहीं है; क्योंकि वे विश्व भुवन धारण करते हैं। वे सुन्दर अंगुलिविशिष्ट होकर पृथिवी को विस्तीर्ण होने के लिए प्रेरित करते हैं एवम् द्युलोक को भी विस्तीर्ण होने के लिए प्रेरित करते हैं। सवितादेव का यह कर्म सचमुच अबाध्य है।

५. हे सविता, परमैश्वर्यवान् इन्द्र हम लोगों के मध्य में पूजनीय हैं। तुम हम लोगों को महान् पर्वतों की अपेक्षा भी उन्नत करो। इन सम्पूर्ण यजमानों को गृहविशिष्ट निवास (ग्राम, नगर आदि) प्रदान करो। वे सब गमनकाल में जिससे तुम्हारे द्वारा नियत हों और तुम्हारी आज्ञा के अनुसार अवस्थिति करें।

६. हे सविता, जो यजमान तुम्हारे उद्देश से प्रतिदिन तीन बार सौभाग्यजनक सोम का अभिषव करता है, इन्द्र, द्यावा-पृथिवी,

जलविशिष्ट सिन्धु, देवता और आदित्यों के साथ अदिति, उस यजमान को और हमें सुख दान करें।

५५ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री और त्रिष्टुप्।)

१. हे वसुओ, तुम लोगों के मध्य में कौन त्राणकर्त्ता है? कौन दुःखों का निवारक है? हे अखण्डनीया द्यावा-पृथिवी हम लोगों की रक्षा करो। हे वरुण, हे मित्र, तुम दोनों अभिभवकर मनुष्यों से हम लोगों की रक्षा करो। हे देवो, यज्ञ में, तुम लोगों के मध्य में कौन देव धन दान करता है?

२. जो देव स्तोताओं को पुरातन स्थान प्रदान करते हैं, जो दुःखों के अभिश्रयिता हैं, जो अमूढ़ हैं और जो अन्धकार का विनाश करते हैं, वही देव विधाता (सम्पूर्ण फल के कर्त्ता) हैं और नित्य अभीष्टफल प्रदान करते हैं। वे सत्यकर्मविशिष्ट और दर्शनीय होकर शोभा पाते हैं।

३. सबके द्वारा गन्तव्य देवमाता अदिति, सिन्धु और स्वस्ति (सुख से निवास करनेवाली) देवी की हम मन्त्र-द्वारा सखिता के लिए स्तुति करते हैं, जिससे द्यावा-पृथिवी हम लोगों को विशेष रूप से पालन करें, उसी के लिए स्तुति करते हैं। उषा और अहोरात्राभिमानी देव हम लोगों के अभिमत का सम्पादन करें।

४. अर्यमा और वरुणदेव ने यज्ञमार्ग ज्ञापित कर दिया है। हविर्लक्षण अन्न के पति अग्नि ने सुखकर मार्ग दिखा दिया है। इन्द्र और विष्णु सुन्दर रूप से स्तुत होकर हम लोगों को पुत्र-पौत्रादि युक्त और बलयुक्त रमणीय सुख दान करें।

५. इन्द्र के सखा पर्वत, मरुद्गण तथा भगदेव से हम रक्षा की याञ्चा करते हैं। स्वामी वरुणदेव जन-सम्बन्धियों के पाप से हमारी रक्षा करें और मित्रदेव मित्रभाव से हम लोगों की रक्षा करें।

६. हे द्यावा-पृथिवीरूप देवीद्वय, जैसे धनाभिलाषी व्यक्ति समुद्र के मध्य में जाने के लिए समुद्र की स्तुति करता है, उसी तरह हम भी अभिलषित कार्यलाभ के लिए अहिर्बुध्न्य नामक देवता के साथ तुम दोनों की स्तुति करते हैं। वे देवगण दीप्त ध्वनियुक्त नदियों को अपावृत करें।

७. देवमाता अदिति देवी अन्य देवों के साथ हम लोगों का पालन करें। त्राता इन्द्र अप्रमत्त होकर हम लोगों का पालन करें। मित्र, वरुण और अग्नि के सोमादिरूप समुच्छ्रित अन्न की हम लोग हिंसा नहीं कर सकते हैं; किन्तु अनुष्ठानों के द्वारा संवर्द्धित कर सकते हैं।

८. अग्नि धन के ईश्वर हैं और महान् सौभाग्य के ईश्वर हैं; अतएव वे हम लोगों को धन और सौभाग्य प्रदान करें।

९. हे धनवती, हे प्रिय सत्यरूप वचन की अभिमानिनी और हे अन्नवती उषा, हम लोगों को तुम बहुत रमणीय धन दान करो।

१०. जिस धन के साथ सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र आगमन करते हैं, उस धन को वे सब हमें दें।

५६ सूक्त

(देवता द्यावा-पृथिवी। ऋषि वामदेव। छन्द गायत्री और त्रिष्टुप्।)

१. महती और श्रेष्ठा द्यावा-पृथिवी इस यज्ञ में दीप्तिकर मन्त्र और सोमादि से युक्त होकर दीप्तिविशिष्ट हों। जिस लिए कि सेचनकारी पर्जन्य विस्तीर्ण और महती द्यावा-पृथिवी को स्थापित करते हुए प्रथमान और गमनशील मरुतों के साथ सर्वत्र शब्द करते हैं।

२. यजनयोग्य, अहिंसक, अभीष्टवर्षी, सत्यशील, द्रोहरहित, देवों के उत्पादक और यज्ञों के निर्वाहक द्यावा-पृथिवी रूप देवीद्वय यष्टव्य देवों के साथ दीप्तिकर मन्त्रों या हविर्लक्षण अन्नों से युक्त हों।

३. जिन्होंने इस द्यावा-पृथिवी को उत्पन्न किया है; जिन धीमान् ने विस्तीर्ण, अविचला सुरूपा और आधाररहिता द्यावा-पृथिवी को

सम्यग्रूप से कुशल कर्म-द्वारा परिचालित किया है, वे ही भुवनों के मध्य में शोभनकर्मा हैं।

४. हे द्यावा-पृथिवी, तुम दोनों हम लोगों के लिए अन्न दान की अभिलाषिणी और परस्पर सङ्गता हो। विस्तीर्णा, व्याप्ता एवम् यागयोग्या होकर तुम दोनों हमें पत्नीयुक्त महान् गृह दो एवम् हम लोगों की रक्षा करो। हम लोग कर्मबल-द्वारा रथ और दास लाभ करें।

५. हे द्युतिमती द्यावा-पृथिवी, हम लोग तुम दोनों के उद्देश से महान् स्तोत्र का सम्पादन करेंगे। तुम दोनों विशुद्ध हो। हम लोग प्रशंसा करने के लिए तुम्हारे निकट गमन करते हैं।

६. हे देवियो, तुम दोनों अपनी मूर्तियों और बल-द्वारा परस्पर प्रत्येक को शोधित करके शोभमाना होओ एवम् सर्वदा यज्ञ वहन करो।

७. हे महती द्यावा-पृथिवी, तुम दोनों मित्रभूत स्तोता के अभिमत का साधन करो एवम् अन्न को विभक्त और पूर्ण करके यज्ञ के चतुर्दिक् उपविष्ट होओ।

५७ सूक्त

(देवता प्रथम तीन ऋचाओं के क्षेत्रपति, चतुर्थ के शुन, पञ्चम और अष्टम के शुनासीर तथा षष्ठ और सप्तम की सीता। ऋषि वामदेव। छन्द उष्णिक्, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. हम यजमान बन्धुसदृश क्षेत्रपति देव के साथ क्षेत्र जय करेंगे। वे हम लोगों की गौओं और अश्वों को पुष्टि प्रदान करें। वे देव हम लोगों को उक्त प्रकार से दातव्य धन देकर सुखी करें।

२. हे क्षेत्रपति, धेनु जिस तरह से दुग्धदान करती है, उसी तरह से तुम मधुस्रावी, सुपवित्र, घृततुल्य और माधुर्ययुक्त प्रभूत जल दान करो। यज्ञ के या उदक के स्वामी हम लोगों को सुखी करें।

३. व्रीहि और प्रियंगु आदि ओषधियाँ हम लोगों के लिए मधुयुक्त हों। तीनों द्युलोक, जलसमूह और अन्तरिक्ष हम लोगों

के लिए मधुयुक्त हों। क्षेत्रपति हम लोगों के लिए मधुयुक्त हों। हम लोग शत्रुओं-द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुसरण करें।

४. बलीवर्दगण सुख का वहन करें। मनुष्यगण सुखपूर्वक कृषि-कार्य करें। लाङ्गल सुखपूर्वक कर्षण करे। प्रग्रहसमूह सुखपूर्वक बद्ध हों। प्रतोद सुख प्रेरण करें।

५. हे शुन, हे सीर, तुम दोनों हमारी इस स्तुति का सेवन करो। तुम दोनों ने द्युलोक में जिस जल को सृष्ट किया है, उसी के द्वारा इस पृथिवी को सिक्त करो।

६. हे सौभाग्यवती सीता, तुम अभिमुखी होओ। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम लोगों को सुन्दर धन प्रदान करो और सुन्दर फल दो। इसी से हम तुम्हारी वन्दना करते हैं।

७. इन्द्रदेव सीताधार काष्ठ को ग्रहण करें। पूषा उस सीता को नियमित करें। वे उदकवती सीता संवत्सर के उत्तर संवत्सर में सस्य दोहन करें।

८. फाल (भूमिविदारक काष्ठ) सुख-पूर्वक भूमिकर्षण करे। रक्षकगण बलीवर्दों के साथ अभिगमन करें। पर्जन्य मधुर जल-द्वारा पृथिवी को सिक्त करें। हे शुन, सीर (इन्द्र-वायु या वायु-आदित्य), हम लोगों को सुख प्रदान करो।

५८ सूक्त

(देवता अग्नि, सूर्य, जल, गो अथवा घृत। ऋषि वामदेव। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. समुद्र (अग्नि, अन्तरिक्ष, आदित्य अथवा गौओं के ऊधःप्रदेश) से मधुमान् ऊर्मि उद्भूत होती है। मनुष्य किरण-द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं। घृत का जो गोपनीय नाम है, वह देवों की जिह्वा और अमृत की नाभि है।

२. हम यजमान घृत की प्रशंसा करते हैं। इस यज्ञ में नमस्कार-द्वारा उसे धारण करते हैं। परिवृद्ध देव इस स्तव का श्रवण करें। वेदचतुष्टय रूप शृङ्गविशिष्ट गौरवर्ण देव इस जगत् का निर्वाह करते हैं।

३. इस यज्ञात्मक अग्नि के चार शृङ्ग हैं अर्थात् शृङ्गस्थानीय चार वेद हैं। इसे सवनस्वरूप तीन पाद हैं। ब्रह्मोदन एवम् प्रवर्ग्य-स्वरूप दो मस्तक हैं। छन्दःस्वरूप सात हाथ हैं। ये अभीष्टवर्षी हैं। ये मंत्र, कल्प एवम् ब्राह्मण-द्वारा तीन प्रकार से बद्ध हैं। ये अत्यन्त शब्द करते हैं। वे महान् देव मर्त्यों के मध्य में प्रवेश करते हैं।

४. प्राणियों ने गौओं के मध्य में तीन प्रकार के दीप्त पदार्थों (क्षीर, दधि और घृत) को छिपाकर रखा था। देवों ने उन्हें प्राप्त किया था। इन्द्र ने एक क्षीर को उत्पन्न किया था। सूर्य ने भी एक को उत्पन्न किया था। देवों ने कान्तिमान् अग्नि या गमनशील वायु को निकट से अन्न-द्वारा और एक पदार्थ घृत को निष्पन्न किया था।

५. अपरिमित गतिविशिष्ट यह जल हृदयङ्गम अन्तरिक्ष से अधो-देश में निपतित होता है। प्रतिबन्धकारी शत्रु उसे नहीं देख सकता है। उस सकल घृतधारा को हम देख सकते हैं। इसके मध्य में अग्नि को भी देख सकते हैं।

६. घृत की धारा प्रीतिप्रद नदी की तरह क्षरित होती है। यह सकल जल हृदयमध्यगत चित्त के द्वारा पूत होता है। घृत की ऊर्मि प्रवाहित होती है। जैसे व्याधा के निकट से मृग पलायित होता है।

७. नदी का जल जैसे निम्नदेश की तरफ़ शीघ्र गमन करता है, वैसे ही वायु की तरह वेगशालिनी होकर महती घृत-धारा द्रुत वेग से गमन करती है। यह घृत-राशि परिधि भेद करके ऊर्मि-द्वारा वर्द्धित होती है, जैसे गर्ववान् अश्व गमन करता है।

८. कल्याणी और हास्यवदना स्त्री जैसे एकचित्त होकर पति के प्रति आसक्त होती है, उसी तरह घृतधारा अग्नि के प्रति गमन करती है वह सम्यग्रूप से दीप्तिप्रद होकर सर्वत्र व्याप्त होती है। जातवेदा प्रीत होकर इस सकल धारा की कामना करते हैं।

९. कन्या (अनूढ़ा बालिका) जिस तरह से पति के निकट जाने के लिए वेश-विन्यास करती है, हम देखते हैं, यह सकल घृतधारा उसी तरह से करती है। जिस स्थल में सोम अभिषुत होता है अथवा जिसके स्थल में यज्ञ विस्तीर्ण होता है, उसी को लक्ष्य कर वह धारा गमन करती है।

१०. हे हमारे ऋत्विको, गौओं के निकट गमन करो, उनकी शोभन स्तुति करो। हम यजमानों के लिए वह स्तुति योग्य धन धारण करें। हमारे इस यज्ञ को देवों के निकट ले जायें। घृत की धारा मधुर भाव से गमन करती है।

११. तुम्हारा तेज समुद्र के मध्य में वड़वाग्नि रूप से, अन्तरिक्ष के मध्य में सूर्यमण्डल रूप से हृदय-मध्य में वैश्वानर रूप से, अन्न में आहार रूप से, जलसमूह में विद्युत रूप से और संग्राम में शौर्याग्नि रूप से अवस्थित है। समस्त भूतजात उसके अधिश्रित हैं। उसमें जो घृत रूप रस स्थापित हुआ है, उस मधुर रस को हम प्राप्त करते हैं।

चतुर्थ मण्डल समाप्त।

१ सूक्त

(३ अष्टक। ५ मंडल। ८ अध्याय। ६ अनुवाक।
देवता अग्नि। ऋषि अत्रिवंशीय बुध
और गविष्ठिर। छन्द त्रिष्टुप्)

१. धेनु की तरह आगमनकारिणी उषा के उपस्थित होने पर अग्नि अध्वर्युओं के काष्ठ-द्वारा प्रबुद्ध होते हैं। उनका शिखासमूह

महान् हैं एवम् शाखा-विस्तारकारी वृक्ष की तरह वह अन्तरिक्षाभिमुख प्रसृत होता है।

२. होता अग्नि देवों के यजन के लिए प्रबुद्ध होते हैं। अग्नि प्रातःकाल में प्रसन्न मन से ऊर्द्ध्वाभिमुख उत्थित होते हैं। समिद्ध अग्नि का दीप्तिमान् बल दृष्ट होता है। इस तरह के महान् देव अन्धकार से मुक्त होते हैं।

३. जब अग्नि सङ्घातमक जगत् के रज्जुरूप अन्धकार को ग्रहण करते हैं, तब वे प्रदीप्त हो करके दीप्त रश्मि-द्वारा जगत् को प्रकाशित करते हैं। इसके अनन्तर वे प्रवृद्ध और अन्नाभिलाषिणी घृत-धारा के साथ युक्त होते हैं एवम् उन्नत होकर ऊपरी भाग में विस्तृत उस घृतधारा को जुहू-द्वारा पीते हैं।

४. प्राणियों का चक्षु जिस तरह से सूर्य के अभिमुख सञ्चरण करता है, उसी तरह से यजमानों का मानस अग्नि के अभिमुख सञ्चरण करता है। जब विरूपा द्यावा-पृथिवी उषा के साथ अग्नि को उत्पन्न करती है, तब प्रकृष्ट वर्ण (श्वेत) से युक्त होकर वाजी स्वरूप अग्नि प्रातःकाल में उत्पन्न होते हैं।

५. उत्पादनीय अग्नि उदय काल में प्रादुर्भूत होते हैं और दीप्ति-युक्त होकर बन्धुभूत वनसमूह में स्थापित होते हैं। इसके अनन्तर वे रमणीय सात ज्वाला (शिखा) धारण करके होता और यागयोग्य होकर प्रत्येक गृह में उपवेशन करते हैं।

६. होता और यष्टव्य हो करके अग्नि माता पृथिवी की गोद में आज्य आदि से सुगन्धयुक्त वेदीरूप स्थान पर उपविष्ट होते हैं। वे पुत्र, कवि, बहुस्थान-विशिष्ट यज्ञवान् और सबके धारक हैं। यजमानों के मध्य में समिद्ध होकर रहते हैं।

७. जो द्यावा-पृथिवी को उदक-द्वारा विस्तारित करते हैं, उन मेधावी, यज्ञफलसाधक और होता अग्नि की स्तुति-द्वारा यजमानगण शीघ्र

स्तुति करते हैं। यजमानगण अन्नवान् अग्नि की, घृत-द्वारा, नित्य परिचर्या करते हैं।

८. संमार्जनीय अग्नि अपने स्थान में पूजित होते हैं। वेदान्त (प्रशान्त) मना हैं। कविगण उनकी स्तुति करते हैं। वे हम लोगों के लिए अतिथि की तरह पूज्य और सुखकर हैं। उनकी अपरिमित शिखायें हैं। वे अभीष्टवर्षी और प्रसिद्ध बलशाली हैं। हे अग्नि, तुम अपने से अतिरिक्त अन्य सब लोगों को बल-द्वारा परिभूत करते हो।

९. हे अग्नि, तुम यज्ञ को प्राप्त कर जिसके निकट चारुतम रूप से आविर्भूत होते हो, उसके निकट से तुम शीघ्र ही दूसरों को अतिक्रान्त करके गमन करते हो। तुम स्तुतियोग्य, दीप्तिकर एवम् विशिष्ट दीप्तिमान् हो। तुम प्राणियों के प्रिय और मनुष्यों के अतिथि (पूज्य) हो।

१०. हे युवतम अग्नि, मनुष्यगण निकट से और दूर से तुम्हारी पूजा करते हैं। जो तुम्हारी अधिक स्तुति करता है, तुम उसी की स्तुति ग्रहण करते हो। हे अग्नि, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख बृहत्, महान् और स्तुतियोग्य हैं।

११. हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम आज दीप्तिमान् और समीचीन प्रान्तयुक्त रथ पर देवों के साथ आरोहण करो। तुम्हें पथ अवगत है। प्रभूत अन्तरिक्ष प्रदेश से होकर तुम देवों को हव्य भक्षण के लिए इस स्थान में ले आते हो।

१२. हम अत्रिवंशी लोग मेधावी, पवित्र, अभीष्टवर्षी और युवा अग्नि के उद्देश से वन्दनायोग्य स्तोत्र का उच्चारण करते हैं। गविष्ठिर ऋषि आकाश में दीप्यमान, विस्तीर्ण गतिविशिष्ट, आदित्य के अग्नि के उद्देश से नमस्कारयुक्त स्तोत्र का उच्चारण करते हैं।

२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रिपुत्र कुमार अथवा जरपुत्र वृश अथवा दोनों। छन्द शक्वरी और त्रिष्टुप्।)

१. कुमार को उत्पन्न करनेवाली यौवनवती माता ने मार्ग में सञ्चरण करनेवाले कुमार को रथचक्र-द्वारा निहत देखकर गुहामध्य में धारण किया उसके जनक को नहीं दिया। लोग उसे हिंसित रूप में नहीं देख सके; किन्तु अरणिस्थान में स्थापित होने पर उसे फिर देख सके।

२. (उत्पाद्यमान होने के कारण यहाँ कुमार शब्द से अग्नि का व्यवहार है) हे युवती, तुम पिशाची होकर किस कुमार को धारण करती हो? पूजनीय अरणि ने इसे उत्पन्न किया है। अनेक संवत्सर-पर्यन्त अरणि-सम्बन्धी गर्भ वर्द्धित हुआ था। इसके अनन्तर माता अरणि ने जिस पुत्र को उत्पन्न किया था, उसे हमने देखा था।

३. हमने समीपवर्ती प्रदेश से हिरण्यदन्त (हिरण्य सदृश ज्वाला-युक्त), प्रदीप्त वर्ण और आयुधस्थानीय ज्वाला निर्माण करनेवाले अग्नि को देखा था। हम (वृश) ने उन्हें सर्वतोव्याप्त और अविनाशी स्तोत्र प्रदान किया है। जो इन्द्र (परमैश्वर्ययुक्त अग्नि) को नहीं मानते हैं और जो उनकी स्तुति नहीं करते हैं, वे हमारा क्या कर लेंगे?

४. हम (वृश) ने गोसमूह की तरह क्षेत्र में निगूढ़भाव से सञ्चरण करनेवाले एवम् अनेक प्रकार से स्वयम् शोभमान अग्नि को देखा है। पिशाचों के आक्रमण-कालवाली निर्वीर्य ज्वाला को वे ग्रहण नहीं करते हैं। अग्नि पुनर्वार प्रादुर्भूत होते हैं एवम् उनकी वृद्धा ज्वाला युवती होती है।

५. कौन हमारे राष्ट्र को गौओं के साथ नियुक्त करता है? उनके साथ क्या रक्षक नहीं था? जो हमारे राष्ट्रसमूह पर आक्रमण करता है, वह विनष्ट हो। अग्नि हम लोगों की अभिलाषा को जानते हैं, वे हम लोगों के पशुओं के निकट गमन करते हैं।

६. प्राणियों के स्वामी और लोगों के आवासभूत अग्नि को शत्रुगण मर्त्यों के मध्य में छिपाकर रखते हैं। अत्रिगोत्रोत्पन्न वृश का स्तोत्र उन्हें मुक्त करे। निन्दक लोग निन्दनीय हों।

७. हे अग्नि, तुमने अत्यन्त बद्ध शुनःशेप ऋषि को सहस्र यूप से मुक्त किया था; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा स्तव किया था। हे होता और विद्वान् अग्नि, तुम इस वेदी पर उपवेशन करो। इस तरह हम लोगों को सकल पाश से मुक्त करो।

८. हे अग्नि, तुम जब क्रुद्ध होते हो तब हमारे निकट से अपगत होते हो। देवों के व्रतपालक इन्द्र ने हमसे यह कहा था। वे विद्वान् हैं, उन्होंने तुम्हें देखा है। हे अग्नि, उनके द्वारा अनुशिष्ट होकर हम तुम्हारे निकट आगमन करते हैं।

९. अग्नि महान् तेज-द्वारा विशेष रीति से दीप्त होते हैं। वे अपनी महिमा के बल से सकल पदार्थों को प्रकट (प्रकाशित) करते हैं। अग्निदेव प्रबुद्ध होकर दुःखजनक आसुरी माया को पराभूत करते हैं। राक्षसों को विनष्ट करने के लिए वे शृङ्ग (ज्वाला) को तीक्ष्ण करते हैं।

१०. अग्नि की शब्द करनेवाली ज्वाला तीक्ष्ण आयुध की तरह राक्षसों को विनष्ट करने के लिए द्युलोक में प्रादुर्भूत होती है। हर्ष के उत्पन्न होने पर अग्नि का क्रोध या दीप्तिसमूह राक्षसों को पीड़ा देता है। बाधा देनेवाली आसुरी सेना उन्हें बाधा नहीं दे सकती।

११. हे बहुभाव-प्राप्त अग्नि, हम तुम्हारे स्तोता हैं। धीर और कर्मकुशल व्यक्ति जिस तरह से रथ निर्माण करता है, उसी तरह से हम तुम्हारे लिए इस स्तोत्र का निर्माण करते हैं। हे अग्निदेव, यदि तुम इस स्तोम को ग्रहण करो तो हम बहु व्याप्त जय-लाभ करें।

१२. बहु ज्वाला विशिष्ट, अभीष्टवर्षी तथा वर्द्धमान अग्नि निष्कण्टक भाव से शत्रुओं के धन का संग्रह करते हैं। इस बात को देवों ने

अग्नि से कहा था कि वे यज्ञ करनेवाले मनुष्यों को सुख दान करें एवम् हव्य देनेवाले मनुष्यों (यजमानों) को भी सुख दान करें ?

३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रिवंशीय वसुश्रुत। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, तुम उत्पन्न होते ही वरुण (अन्धकार के निवारक रात्र्यभिमानी देव) होते हो। समिद्ध होकर तुम मित्र (हितकारी) होते हो। समस्त देवगण तब तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं। हे बल-पुत्र, तुम हव्यदाता यजमान के इन्द्र हो।

२. हे अग्नि, तुम कन्याओं के सम्बन्ध में अर्यमा (सबके नियामक) होते हो। हे हव्यवान् अग्नि, तुम गोपनीय नाम (वैश्वानर) धारण करते हो। जब तुम दम्पती को एक मनवाले बना देते हो तब वे तुम्हें बन्धु की तरह गव्य-द्वारा सिक्त करते हैं।

३. हे अग्नि, तुम्हारे आश्रय के लिए मरुद्गण अन्तरिक्ष का मार्जन करते हैं। हे रुद्र, तुम्हारे लिए वैद्युत लक्षण, अति विचित्र और मनोहर जो विष्णु (व्यापनशील देव) का अगम्य पद (अन्तरिक्ष) है, वह स्थापित हुआ है। उसके द्वारा तुम उदक के गुह्य नाम का पालन करो।

४. हे अग्निदेव, तुम्हारी समृद्धि के द्वारा इन्द्रादि देवगण दर्शनीय होते हैं। वे देवगण तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रीति धारण करके अमृत का स्पर्श करते हैं। ऋत्विग्गण फलाभिलाषी यजमान के लिए हव्य वितरण करते हुए होता अग्नि की परिचर्या करते हैं।

५. हे अग्नि, तुमसे भिन्न कोई अन्य होता नहीं है, यज्ञकारी नहीं है और कोई पुरातन भी नहीं है। हे अन्नवान्, भविष्यत्काल में भी तुम्हारी अपेक्षा कोई स्तुतियोग्य नहीं होगा। हे देव, तुम जिस ऋत्विक् के अतिथि होते हो, वह यज्ञ-द्वारा शत्रु मनुष्यों को विनष्ट करता है।

६. हे अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत्रुओं को पीड़ा-दान करेंगे। हम धनाभिलाषी हैं। हम लोग तुम्हें हव्य-द्वारा प्रवृद्ध करते हैं। हम लोग युद्ध में जय-लाभ करें और प्रतिदिन यज्ञ में बल प्राप्त करें। हे बलपुत्र, हम लोग धन के साथ पुत्र-लाभ करें।

७. जो मनुष्य हम लोगों के प्रति अपराध या पाप करता है, उस पापकारी व्यक्ति के प्रति अग्नि पापाचरण करें—उसे पापी बनायें। हे विद्वान् अग्नि, जो हम लोगों को अपराध और पाप-द्वारा बाधा देता है, उस पापकारी को विनष्ट करो।

८. हे देव, पुरातन यजमान तुम्हें देवों का दूत बनाकर उषा-काल में यज्ञ करते हैं। हे अग्नि, हव्य संग्रह होने के अनन्तर तुम द्युति-मान् होकर भी निवासप्रद मनुष्यों-द्वारा समिद्ध होकर गमन करते हो।

९. हे बलपुत्र, तुम पिता हो। जो विद्वान् पुत्र तुम्हारे लिए हव्य वहन करता है, तुम उसे पार कर देते हो और उसे पाप से पृथक् करते हो। हे विद्वान् अग्नि, कब तुम हम लोगों को देखोगे? हे यज्ञ के प्रेरक कब तुम हम लोगों को सन्मार्ग में प्रेरित करोगे?

१०. हे निवासप्रद अग्नि, तुम पालक हो। तुम उस हवि का सेवन करते हो जो तुम्हारे नाम की वन्दना करके दिया गया है। यजमान उससे पुत्र धारण करता है। यजमान के बहुत हव्य की अभिलाषा करनेवाले और वर्द्धमान अग्नि बलयुक्त होकर सुख-दान करते हैं।

११. हे स्वामी, हे युवतम अग्नि, तुम स्तोता को अनुगृहीत करने के लिए समस्त दुरितों (विघ्न) से पार कर देते हो। तस्करगण दिखाई देने लगते हैं। अपरिज्ञात चिह्नवाले शत्रुभूत मनुष्य हमारे द्वारा वर्जित किये जाते हैं।

१२. ये स्तोम तुम्हारे अभिमुख गमन करते हैं अथवा हम निवा-सप्रद अग्नि के निकट उस याच्यमान अपराध का उच्चारण करते हैं। अग्नि हमारी स्तुति-द्वारा वर्द्धित होकर हमें निन्दकों अथवा हिंसकों के हाथ में न सौंपें।

४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसुश्रुत। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे धनसमूह के स्वामी अग्नि, हम तुम्हारे उद्देश से यज्ञ में स्तुति करते हैं। हे राजा, हम अन्नाभिलाषी हैं। तुम्हारी अनुकूलता से हम अन्न लाभ करें और मनुष्य-सेना को अभिभूत करें।

२. हव्यवाहक अग्नि जरारहित होकर हम लोगों के पालक हों। हम लोगों के निकट वे सर्वव्याप्त दीप्यमान और दर्शनीय हों। हे अग्नि, तुम शोभन गार्हपत्ययुक्त अन्न को भली भाँति से प्रकाशित करो अथवा प्रदान करो। तुम हम लोगों को प्रचुर परिमाण में अन्न-प्रदान करो।

३. हे ऋत्विको, तुम लोग मनुष्यों के स्वामी, मेधावी, विशुद्ध, दूसरों को शुद्ध करनेवाले, घृतपृष्ठ, होमनिष्पादक और सर्वविद् अग्नि को धारण करो। अग्निदेव देवों के मध्य में संग्रहणीय धन को हम लोगों के लिए सम्भक्त करते हैं।

४. हे अग्नि, इला (वेदीभूमि) के साथ समान प्रीतियुक्त होकर और सूर्य की रश्मियों-द्वारा यतमान होकर तुम (स्तुति की) सेवा करो। हे जातवेदा, हम लोगों के काष्ठ (समिध्) की सेवा करो। हव्य भोजन करने के लिए देवों का आह्वान करो और हव्य वहन करो।

५. तुम पर्याप्त, दान्तमना और गृहागत अतिथि की तरह पूज्य होकर हम लोगों के इस यज्ञ में आगमन करो। हे विद्वान् अग्नि, तुम समस्त शत्रुओं को विनष्ट करो और शत्रुताचरण करनेवालों का धन अपहरण करो।

६. हे अग्नि, तुम अपने यजमानादिरूप पुत्र को अन्न-दान करते हो और आयुध-द्वारा दस्युओं को विनष्ट करते हो। हे बलपुत्र, जिस कारण तुम देवों को तृप्त करते हो, उसी कारण से हे नेतृश्रेष्ठ अग्नि, तुम हम लोगों की संग्राम में रक्षा करो।

७. हे अग्नि, हम लोग शस्त्र-द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हम लोग हव्य-द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हे शोधक, तथा हे कल्याण-कर-दीप्तिविशिष्ट अग्नि, तुम हम लोगों को सबके द्वारा वरणीय धन दो। हम लोगों को समस्त धन प्रदान करो।

८. हे अग्नि, हम लोगों के यज्ञ की सेवा करो। हे बलपुत्र, हे क्षिति आदि तीनों स्थानों में रहनेवाले अग्नि, तुम हव्य की सेवा करो। हम लोग देवों के मध्य में सुकर्मकारी होंगे। तुम हम लोगों की वाचिकादि भेद से तीन प्रकार के सर्ववरणीय सुख-द्वारा अथवा त्रितल-विशिष्ट गृह-द्वारा रक्षा करो।

९. हे जातवेदा, नाविक नौका द्वारा जिस तरह से नदी पार करता है, उसी तरह से तुम हम लोगों को समस्त दुःसह दुरितों से पार करो। हे अग्नि, अत्रि की तरह हम लोगों के स्तोत्रों-द्वारा स्तुत होकर तुम हम लोगों के शरीररक्षक रूप से अवगत होओ।

१०. हे अग्नि, हम मरणशील हैं और तुम अमर हो। हम स्तुति-युक्त हृदय से स्तव करके तुम्हारा पुनः-पुनः आह्वान करते हैं। हे जातवेदा, हम लोगों को सन्तानदान करो। हम जिससे सन्ततियों के अविच्छेद से अमरत्व लाभ कर सकें।

११. हे जातवेदा अग्नि, तुम जिस सुकर्मकृत यजमान के प्रति सुखकर अनुग्रह करते हो, वह यजमान अश्वयुक्त, पुत्रयुक्त, वीर्ययुक्त और गोयुक्त होकर अक्षय धन-लाभ करता है।

५ सूक्त

(देवता आप्री। ऋषि वसुश्रुत। छन्द गायत्री।)

१. हे ऋत्विको, जातवेदा, दीप्तिमान् और सुसमिद्ध नामक अग्नि के लिए तुम प्रभूत घृत से हवन करो।

२. नराशंस (मनुष्यों के द्वारा शंसनीय) नामक अग्नि इस यज्ञ को प्रदीप्त करें। वे अहिंसनीय, मेधावी एवम् हस्त-विशिष्ट हैं।

३. हे अग्नि, तुम स्तुत हो। हम लोगों की रक्षा के लिए विचित्र एवम् प्रिय इन्द्र को सुखकर रथ-द्वारा इस यज्ञ में लाओ।

४. हे बर्हि, तुम कम्बल की तरह मृदुभाव से विस्तृत होओ। स्तोता लोग स्तुति करते हैं। हे दीप्त, तुम हम लोगों के लिए धन-प्रद होओ।

५. हे सुगमन-साधिका यज्ञद्वार की अभिमानिनी देवियो, तुम सब विमुक्त होओ और हम लोगों की रक्षा के लिए यज्ञ को सम्पूर्ण करो।

६. सुरूपा, अन्नवर्द्धयित्री, महती और यज्ञ या उदक की निर्मात्री रात्रि तथा उषा देवी की हम लोग स्तुति करते हैं।

७. हे अग्नि-आदित्य से समुद्भूत होतृद्वय, तुम दोनों स्तुत होकर वायुपथ से गमन करते हो। हम यजमानों के इस यज्ञ में आगमन करो।

८. इला, सरस्वती और मही नामक तीनों देवियाँ सुख उत्पन्न करें। वे हिंसाशून्य होकर हम यजमानों के इस यज्ञ में आगमन करें।

९. हे त्वष्टृदेव, तुम सुखकर होकर इस यज्ञ में आगमन करो। तुम पोषक रूप में व्याप्त हो। सब यज्ञों में तुम हम लोगों की उत्कृष्ट रूप से रक्षा करो।

१०. हे वनस्पति (यूपाभिमानी देव), तुम जिस स्थान में देवों के गुप्त नाम को जानते हो, उस स्थान में हव्य प्रेरित करो।

११. यह हव्य अग्नि और वरुण को स्वाहा (आहुत) रूप से प्रदत्त है, इन्द्र और मरुतों को स्वाहा रूप से प्रदत्त है तथा देवों को स्वाहा रूप से प्रदत्त है।

६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसुश्रुत। छन्द पंक्ति।)

१. जो निवासप्रद हैं, जो सबके लिए गृह की तरह आश्रयभूत हैं और जिन्हें गौएँ, शीघ्रगामी घोड़े तथा नित्य प्रवृत्त हव्य देनेवाले

यजमान प्रसन्न करते हैं, हम उन अग्नि की स्तुति करते हैं। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

२. जो अग्नि निवासप्रद रूप से स्तुत होते हैं, जिनके निकट गौएँ होमार्थ समागत होती हैं, द्रुतगामी घोड़े समागत होते हैं और सत्कुलोत्पन्न मेधावी समागत होते हैं, वे ही अग्नि हैं। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

३. सबके कर्मों के दर्शक अग्नि यजमानों को अन्नयुक्त पुत्र प्रदान करते हैं। अग्नि प्रीत होकर सर्वत्र व्याप्त और सबके द्वारा वरणीय धन देने के लिए गमन करते हैं। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

४. हे अग्निदेव, तुम दीप्तिमान् और जरारहित हो। तुम्हें हम सर्वतोभाव से प्रदीप्त करते हैं। तुम्हारी वह स्तुतियोग्य दीप्ति द्युलोक में दीप्त होती है। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

५. हे दीप्ति-समूह के स्वामी, आह्लादक, शत्रुओं के विनाशक, प्रजापालक और हव्यवाहक अग्नि, तुम दीप्त हो। तुम्हारे उद्देश से मन्त्रों के साथ हव्य हुत होता है। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

६. ये लौकिकाग्नि गार्हपत्यादि अग्नि में समस्त वरणीय या अपेक्षित धन का पोषण करते हैं। ये प्रीतिदान करते हैं, ये चारों तरफ़ व्याप्त होते हैं और ये अनवरत अन्न की इच्छा करते हैं। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

७. हे अग्नि, तुम्हारी वे रश्मियाँ अत्यन्त अधिक अन्नयुक्त होकर वर्द्धित हों। वे रश्मियाँ पतन के द्वारा खुरयुक्त गोसमूह की इच्छा करें अर्थात् होम की आकांक्षा करें। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

८. हे अग्नि, हम सब तुम्हारे स्तोता हैं। तुम हम लोगों को नूतन गृहयुक्त अन्न दान करो। हम लोग जिससे तुम्हारी प्रत्येक यज्ञ-गृह में

अर्चना करके तुम्हें दूत रूप से लाभ कर सकें। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

९. हे आह्लादक अग्नि, तुम घृतपूर्ण दर्वीद्वय को मुख में ग्रहण करते हो। हे बल के पालयिता, तुम यज्ञ में हम लोगों को फल-द्वारा पूर्ण करो। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

१०. इस प्रकार से लोग अनुवक्त अग्नि के निकट स्तुति और यज्ञ के साथ गमन करते हैं और उन्हें स्थापित करते हैं। वे हम लोगों को शोभन पुत्र-पौत्रादि और वेगवान् अश्व दान करें। हे अग्नि, स्तोताओं के लिए अन्न आहरण करो।

७ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि इष। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. हे सखिभूत ऋत्विको, तुम यजमानों के लिए अत्यन्त प्रवृद्ध, बल के पुत्र और बलशाली अग्नि के उद्देश से अर्चना योग्य अन्न और स्तुति प्रदान करो।

२. जिन्हें प्राप्त करके ऋत्विग्गण प्रीत होते हैं, यज्ञगृह में पूजा करके जिन्हें प्रदीप्त करते हैं एवम् जिनके लिए जन्तुओं का उत्पादन करते हैं वे अग्नि कहाँ हैं?

३. जब हम अग्नि को अन्न प्रदान करते हैं और जब वे हम मनुष्यों के हव्य की सेवा करते हैं, तब वे द्योतमान अन्न की सामर्थ्य से उदक-ग्राहक रश्मि को ग्रहण करते हैं।

४. जब पावक और जरारहित अग्नि वनस्पतियों को दग्ध करते हैं, तब वे रात्रिकाल में भी दूर स्थित व्यक्ति को प्रज्ञापित करते हैं।

५. अग्नि की परिचर्या के कार्य में क्षरित घृतों को अध्वर्यु आदि ज्वालाओं के मध्य में प्रक्षिप्त करते हैं। पुत्र जिस तरह से पिता के अंक में आरोहण करता है, उसी तरह से घृतधारा इन अग्नि के ऊपर आरोहण करती है।

६. यजमान अग्नि को जानते हैं। अग्नि अनेक द्वारा स्पृहणीय, सबके धारक अन्नों के आस्वादक और यजमानों के निवासप्रद हैं।

७. अग्नि तृणच्छेदक पशुओं की तरह निर्जल एवम् तृणकाष्ठपूर्ण प्रदेश को छिन्न करते हैं। वे सुवर्णश्मश्रुविशिष्ट, उज्ज्वलदन्त, महान् और अप्रतिहत बल-सम्पन्न हैं।

८. जिनके निकट लोग अश्व की तरह गमन करते हैं, जो कुठार की तरह वृक्षादि का विनाश करते हैं, वे अग्नि दीप्त हैं। जो अन्न ग्रहण करते हैं और जो जगत् के उपकारक हैं, माता अरणि ने उन्हीं अग्नि का प्रसव किया था।

९. हे हव्यभोजी अग्नि, तुम सबके धारक हो। हम लोगों की स्तुतियों से तुम्हें सुख हो। तुम स्तोताओं को धन दान करो, अन्न दान करो और अन्तःकरण दान करो।

१०. हे अग्नि, इसी प्रकार से दूसरों के द्वारा अकृत्य स्तोत्रों के उच्चारणकारी ऋषि तुमसे पशु ग्रहण करते हैं। जो अग्नि को हव्य दान नहीं करता है, उस दस्यु को अग्नि पुनः-पुनः अभिभूत करें और विरोधियों को पुनः-पुन अभिभूत करें।

८ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि इष। छन्द जगती।)

१. हे बलकर्त्ता अग्नि, तुम पुरातन हो। पुरातन यज्ञकारी आश्रय लाभ के लिए तुम्हें भली भाँति से प्रदीप्त करते हैं। तुम अत्यन्त प्रीतिदायक, यागयोग्य, बहु अन्न-विशिष्ट, गृहपति और वरणीय हो।

२. हे अग्नि, यजमानों ने तुम्हें गृहस्वामी के रूप से स्थापित किया है। तुम अतिथि की तरह पूज्य हो। तुम पुरातन, दीप्तशिखाविशिष्ट, प्रभूत केतुविशिष्ट, बहुरूप, धनदाता, सुखप्रद, सुरक्षक और जीर्ण वृक्षों के ध्वंसकारी हो।

३. हे सुन्दर धनविशिष्ट अग्नि, मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम होमविद्, विवेचक, रत्नदाताओं के मध्य में श्रेष्ठ, गुहास्थित, सबके दर्शन योग्य, प्रभूत ध्वनियुक्त यज्ञकारी और घृतग्राहक हो।

४. हे अग्नि, तुम सबके धारक हो। हम लोग बहुत प्रकार के स्तोत्र और नमस्कार-द्वारा स्तुति करके तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं। तुम हम लोगों को धन प्रदान करके प्रीत करो। हे अङ्गिरा के पुत्र अग्निदेव, तुम भली भाँति से प्रदीप्त होकर शिखाओं के साथ यजमानों के अन्न-द्वारा प्रीत होओ।

५. हे अग्नि, तुम बहुरूपयुक्त होकर समस्त यजमानों को पुराकाल की तरह अन्न दान करते हो। हे बहुस्तुत, तुम अपने बल से ही बहुत अन्नों के स्वामी होते हो। तुम दीप्तिमान् हो। तुम्हारी दीप्ति दूसरों के द्वारा अधृष्य है।

६. हे युवतम अग्नि, तुम सम्यग्रूप से प्रदीप्त हो। देवों ने तुम्हें हव्यवाहक किया था। देवों और मनुष्यों ने प्रभूत वेगशाली, घृत-योनि और आहूत अग्नि को बुद्धिप्रेरक, दीप्त और चक्षुः स्थानीय बनाकर धारण किया था।

७. हे अग्नि, घृत-द्वारा आहूत करके पुरातन तथा सुखाभिलाषी यजमान तुम्हें सुन्दर काष्ठों-द्वारा प्रदीप्त करते हैं। तुम वर्द्धित होकर ओषधियों-द्वारा सिक्त होकर और पार्थिव अन्नों को व्यक्त करके अव-स्थिति करते हो।

अष्टम अध्याय समाप्त।

तृतीय अष्टक समाप्त।

चौथा अष्टक

१ सूक्त

(५ मण्डल। १ अध्याय। १ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि अग्नि के अपत्य गय। छन्द पङ्क्ति और अनुष्टुप्)

१. हे अग्नि, तुम दीप्यमान देव हो। होमसाधक द्रव्य से युक्त होकर मर्त्यलोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम चराचर भूतजात को जानते हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हवन-साधन हव्य का, निरन्तर, वहन करते हो।

२. निश्चल यज्ञ जिन अग्नि के साथ गमन करते हैं, यजमान की प्रभूत कीर्ति के सम्पादक हव्य जिन अग्नि को प्राप्त करते हैं, वह अग्नि हव्य-दाता और कुशाच्छेदक यजमान के यज्ञ के लिए देवों के आह्वाता होते हैं।

३. आहारादि के पाक-द्वारा मनुष्यों के पोषक और यज्ञ-शोभाकारी अग्नि को अरणिद्वय नव शिशु की तरह उत्पन्न करते हैं।

४. हे अग्नि, कुटिलगति सर्प या वक्रगति अश्व के शिशु की तरह तुम कष्टपूर्वक धारण करने के योग्य हो। तृणमध्य में परित्यक्त पशु जिस तरह से तृण भक्षण करता है, उसी तरह से तुम समग्र वन के दाहक होते हो।

५. धूमवान् अग्नि की शिखायें शोभन रूप से सर्वत्र व्याप्त होती हैं। तीनों स्थानों में व्याप्त अग्नि अपनी ज्वाला को स्वयमेव अन्तरिक्ष में उपवर्द्धित करते हैं, जैसे भस्त्रादि के द्वारा कर्मकार अग्नि को संवर्द्धित करते हैं। अग्नि कर्मकार-द्वारा सन्धुक्षित अग्नि की तरह अपने को तीक्ष्ण करते हैं।

६. हे अग्नि, तुम सबके मित्र-स्वरूप हो। तुम्हारी रक्षा-द्वारा और तुम्हारा स्तव करके हम शत्रुभूत मनुष्यों के पाप साधन कर्म्मों से उत्तीर्ण हों। तुम्हारी रक्षा और तुम्हारे स्तोत्रों के द्वारा हम बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं से उत्तीर्ण हों।

७. हे अग्नि, तुम बलवान् और हव्यवाहक हो। तुम हम लोगों के निकट प्रसिद्ध धन आहरण करो। हम लोगों के शत्रुओं को पराभूत करके हम लोगों का पोषण करो। अन्न प्रदान करो और युद्ध में हम लोगों की समृद्धि का विधान करो।

१० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि गाय। छन्द ४-७ पंक्ति।)

१. हे अग्नि, तुम हम लोगों के लिए अत्युत्कृष्ट (कटक-मुकुटादिरूप) धन आहरण करो। तुम अप्रतिहत-गति हो। तुम हम लोगों को सर्वत्र व्याप्त धन से युक्त करो और अन्न-लाभ के लिए हम लोगों के पथ का आविष्कार करो।

२. हे अग्नि, तुम सबके मध्य में आश्चर्यभूत हो। तुम हम लोगों के यज्ञादि व्यापार से प्रसन्न होकर के हम लोगों के लिए बल या धन का दान करो। तुम्हारा बल असुरों को विनष्ट करनेवाला है। तुम सूर्य की तरह यज्ञ-कार्य का सम्पादन करो।

३. हे अग्नि, प्रसिद्ध स्तवकारी मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करके उत्कृष्ट (गौ आदि) धन लाभ करते हैं। हम भी तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम लोगों के लिए धन और पुष्टि का वर्द्धन करो।

४. हे आनन्ददायक अग्नि, जो लोग सुन्दर रूप से तुम्हारी स्तुति करते हैं, वे अश्वधन लाभ करते हैं और बलशाली होकर अपने बल से शत्रुओं को विनष्ट करते हैं एवम् स्वर्ग से भी बड़ी सुकीर्ति लाभ करते हैं। गय ऋषि ने तुम्हें स्वयं जागरित किया है।

५. हे अग्नि, तुम्हारी अत्यन्त प्रगल्भ और दीप्तिमती रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त विद्युत् की तरह, शब्दायमान रथ की तरह और अन्नार्थियों की तरह सर्वत्र गमन करती हैं। (इससे आहुति-विषयक अभिलाष व्यक्त हुआ है।)

६. हे अग्नि, तुम शीघ्र ही हम लोगों की रक्षा करो और धन-दान करके दारिद्र्य दुःख का अपनोदन करो। हमारे पुत्र और मित्र तुम्हारी स्तुति करके पूर्ण-मनोरथ हों।

७. हे अङ्गिरा, पुरातन महर्षियों ने तुम्हारी स्तुति की है और इस समय के महर्षि भी तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। धन महान् व्यक्तियों को भी अभिभूत करनेवाला है, वह धन हमारे लिए लाओ। हे देवों के आह्वानकारी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें स्तुति सामर्थ्य प्रदान करो एवम् युद्ध में हमारी समृद्धि का विधान करो।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य सुतम्भर। छन्द जगती।)

१. लोगों के रक्षक, सदा प्रबुद्ध और सबके द्वारा श्लाघनीय बलवाले अग्नि लोगों के नूतन कल्याण के लिए उत्पन्न हुए हैं। घृत-द्वारा प्रज्वलित होने पर तेजोयुक्त और शुद्ध अग्नि ऋत्विकों के लिए द्युतिमान् होकर प्रकाशित होते हैं।

२. अग्नि यज्ञ के केतुस्वरूप हैं अर्थात् प्रज्ञापक हैं। अग्नि यजमानों-द्वारा पुरस्कृत होते हैं—पुरोभाग में स्थापित होते हैं। अग्नि इन्द्रादि देवों के समकक्ष हैं। ऋत्विकों ने तीन स्थानों में अग्नि को समिद्ध किया था। शोभनकर्मा और देवों के आह्वानकारी अग्नि उस कुशयुक्त स्थान पर यज्ञ के लिए प्रतिष्ठित हुए थे।

३. हे अग्नि, तुम जननीस्वरूप अरणिद्वय से, निर्विघ्न होकर, जन्म ग्रहण करते हो। तुम पवित्र, कवि और मेधावी हो। तुम यजमानों से उदित होते हो। पूर्व महर्षियों ने घृत-द्वारा तुम्हें वर्द्धित किया था।

हे हव्यवाहक, तुम्हारा अन्तरिक्षव्यापी धूम केतुस्वरूप है—तुम्हारा प्रज्ञापक या अनुमापक है।

४. सब पुरुषार्थों के साधक अग्नि हमारे यज्ञ में आगमन करें। मनुष्य प्रतिगृह में अग्नि-संस्थापन करते हैं। हव्यवाहक अग्नि देवों के दूत-स्वरूप हैं। यज्ञसम्पादक कहकर लोग अग्नि का सम्भजन करते हैं।

५. हे अग्नि, तुम्हारे उद्देश्य से यह सुमधुर वाक्यप्रयुक्त होता है। यह स्तुति तुम्हारे हृदय में सुख उत्पन्न करे। महानदियाँ जिस तरह से समुद्र को पूर्ण और सबल करती हैं, उसी तरह से स्तुतियाँ तुम्हें पूर्ण और सबल करती हैं।

६. हे अग्नि, तुम गुहागध्य में निगूढ़ होकर और वन (वृक्ष) का आश्रय ग्रहण करके अवस्थान करते हो। अङ्गिराओं ने तुम्हें प्राप्त (आविष्कृत) किया है। हे अङ्गिरा, तुम विशेष बल के साथ मथित होने पर उत्पन्न होते हो; इसी लिए सब तुम्हें बलपुत्र कहते हैं।

१२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सुतम्भर। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि सामर्थ्यातिशय से महान्, याग-योग्य और जल-वर्षणकारी, असुर (बलवान्) और अभीष्टवर्षी हैं। यज्ञ में, अग्नि के मुख में हुत परम पवित्र घृत की तरह हमारी स्तुतियाँ अग्नि के लिए प्रीतिकर हों।

२. हे अग्नि, हम यह स्तुति करते हैं, तुम इसे जानो एवम् इसका अनुमोदन करो तथा प्रचुर वारिवर्षण के लिए अनुकूल होओ। हम बल-पूर्वक यज्ञ में विघ्नोत्पादक कार्य नहीं करते हैं और न अवैध वैदिक कार्य में प्रवृत्त होते हैं। तुम दीप्तिमान् हो, कामनाओं के पूरक हो। हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं।

३. हे जलवर्षणकारी अग्नि, तुम स्तुति-योग्य हो। हम लोगों के किस सत्य-कार्य-द्वारा तुम हम लोगों की स्तुति के ज्ञाता होओगे? ऋतुओं (वसन्त आदि) के रक्षाकर्त्ता और दीप्तिमान् अग्नि हमें जानें। हम

अग्नि के सम्भजनकर्त्ता हैं। अपने पशु आदि धन के स्वामी अग्नि को हम नहीं जानते हैं।

४. हे अग्नि, कौन शत्रुओं का बन्धनकारी है? कौन लोकरक्षक है? कौन दीप्तिमान् और दानशील है? कौन असत्यचारकों का आश्रयदाता है? अथवा कौन अभिशापादि-रूप दुष्ट वचन का उत्साहदाता है? अर्थात् अग्नि-सम्बन्धी कोई पुरुष इस तरह का नहीं है।

५. हे अग्नि, सर्वत्र व्याप्त तुम्हारे ये बन्धुगण पूर्व में तुम्हारी उपासना के त्याग से असुखी हुए थे, पश्चात् तुम्हारी आराधना करके फिर सौभाग्यशाली हुए। हम सरल आचरण करते हैं; फिर भी जो हमें, असाधुभाव से, कुटिलाचारी कहता है, वह हमारा शत्रु स्वयम् अपना अनिष्ट उत्पादन करता है।

६. हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और अभीष्टपूरक हो। जो हृदय से तुम्हारी स्तुति करता है और तुम्हारे लिए यज्ञ-रक्षा करता है, उस यजमान का गृह विस्तीर्ण होता है। जो भली भाँति से तुम्हारी परिचर्या करता है, उस मनुष्य को कामनाओं को सिद्ध करनेवाला पुत्र प्राप्त होता है।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सुतम्भर। छन्द गायत्री।)

१. हे अग्नि, हम तुम्हारी पूजा करके आह्वान करते हैं एवम् स्तुति करके हम लोग अपनी रक्षा के लिए तुम्हें प्रज्वलित करते हैं।

२. आज हम लोग धनार्थी होकर दीप्तिमान् और आकाशस्पर्शी अग्नि की पुरुषार्थ-साधक स्तुति का पाठ करते हैं।

३. जो अग्नि मनुष्यों के मध्य में अवस्थान करके देवों का आह्वान करते हैं, वे अग्नि हम लोगों की स्तुतियों को ग्रहण कर एवं यज्ञीय द्रव्य-जात को देवों के समक्ष वहन करें।

४. हे अग्नि, तुम सर्वदा प्रीत हो। तुम होता और लोगों-द्वारा वरणीय होकर स्थूल (पृथु) होते हो। तुम्हें प्राप्त कर यजमान यज्ञ सम्पादन करते हैं।

५. हे अग्नि, तुम अन्नदाता और स्तुतियोग्य हो। मेधावी स्तोता समुचित स्तुति-द्वारा तुम्हें संवर्द्धित करते हैं। तुम हम लोगों को उत्कृष्ट बल प्रदान करो।

६. हे अग्नि, नेमि जिस तरह से चक्र के अरों (कीलों) को वेष्टित करती है, उसी तरह से तुम देवों को व्याप्त करते हो। तुम हम लोगों को नाना प्रकार का धन प्रदान करो।

१४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सुतम्भर। छन्द गायत्री।)

१. हे यजमान, तुम अमर अग्नि को स्तोत्र-द्वारा प्रबोधित करो। अग्नि के प्रदीप्त होने पर वे देवों-समक्ष हम लोगों के लिए हव्य वहन करेंगे।

२. मनुष्यगण दीप्तिमान्, अमर और मनुष्यों के मध्य में परमाराध्य अग्नि की, यज्ञस्थल में, स्तुति करते हैं।

३. यज्ञस्थल में बहुतेरे स्तोता घृतसिक्त स्रुक् के सहित, देवों के निकट हव्य वहनार्थ, दीप्तिमान् अग्नि की स्तुति करते हैं।

४. अरणि-मन्थन से उत्पन्न अग्नि अपने तेजःप्रभाव से अन्धकार को और यज्ञविघातक वस्तुओं को विनष्ट कर प्रदीप्त होते हैं। गौ, अग्नि और सूर्य अग्नि से ही उत्पन्न हुए हैं।

५. हे मनुष्यो, तुम उस ज्ञानी और आराध्य अग्नि की पूजा करो, जो ऊर्ध्व भाग में घृताहुति-द्वारा प्रदीप्त होते हैं। अग्नि हमारे इस आह्वान को सुनें और जानें।

६. ऋत्विग्गण घृत और स्तोम-द्वारा स्तुत्यभिलाषी और ध्यानगम्य देवों के साथ सर्वदर्शी अग्नि को संवर्द्धित करते हैं।

१५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अङ्गिरा के अपत्य धरुण। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हविस्वरूप घृत से अग्नि प्रसन्न होते हैं। वे बलवान्, सुखस्वरूप, धन के अधिपति, हविर्वाहक गृहदाता, विधाता, क्रान्तदर्शी, स्तुतियोग्य, यशस्वी और श्रेष्ठ हैं। ऐसे अग्नि के लिए हम स्तुति प्रणयन करते हैं।

२. जो यजमान द्युलोक के धारक, यज्ञस्थल में आसीन, नेता देवों को ऋत्विकों-द्वारा प्राप्त करते हैं, वे यजमान यज्ञधारक, सत्यस्वरूप अग्नि को, यज्ञ के लिए उत्तम स्थान में अर्थात् उत्तम वेदी पर, स्तोत्र-द्वारा, धारण करते हैं।

३. जो यजमान मुख्य अग्नि के लिए राक्षसों-द्वारा दुष्प्राप्य हविस्वरूप अन्न प्रदान करते हैं, वे यजमान निष्पाप कलेवर होते हैं। नवजात अग्नि क्रुद्ध सिंह की तरह संगत शत्रुओं को दूर करें। सर्वत्र वर्त्तमान शत्रु मुझे छोड़कर दूर में अवस्थिति करें।

४. सर्वत्र प्रख्यात अग्नि जननी की तरह निखिल जन को धारण करते हैं। धारण करने के लिए और दर्शन देने के लिए सब कोई उनकी प्रार्थना करते हैं। जब वे धार्यमाण होते हैं, तब वे सब अन्न को जीर्ण कर देते हैं। नानारूप होकर अग्नि सर्वभूतजात का परिगमन करते हैं।

५. हे द्युतिमान् अग्नि, पृथु कामनाओं के पूरक और धनधारक हविर्लक्षण अन्न तुम्हारे सम्पूर्ण बल की रक्षा करे। तस्कर जिस तरह से गुहामध्य में छिपाकर अपहृत धन की रक्षा करता है, उसी तरह तुम प्रचुर धन-लाभ के लिए सन्मार्ग को प्रकाशित करो और अत्रि मुनि को प्रीत करो।

१६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के पुत्र पुरु। छन्द पङ्क्ति और अनुष्टुप्।

१. मनुष्यगण जिन सखिभूत अग्नि की, प्रकृष्ट स्तुतियों-द्वारा, स्तुति करके पुरोभाग में स्थापित करते हैं, उन द्युतिमान् अग्नि को महान् हविर्लक्षण अन्न दिया जाता है।

२. जो अग्नि देवों के लिए हव्य वहन करते हैं, जो बाहुबल की द्युति से युक्त हैं, वे अग्नि यजमानों के लिए देवों का आह्वान करते हैं, वे सूर्य की तरह मनुष्यों को विशेष रूप से वरणीय धन प्रदान करते हैं।

३. सब ऋत्विक् हव्य और स्तोत्र-द्वारा जिन बहुशब्दविशिष्ट स्वामी अग्नि में बल का आधान, भली भाँति से, करते हैं, हम लोग उन्हीं प्रवृद्ध तेजवाले और धनवान् अग्नि की स्तुति करते हैं। हम लोग उनके साथ मित्रता करते हैं।

४. हे अग्नि, हम यजमानों को तुम सबके द्वारा स्पृहणीय बल प्रदान करो। द्यावा-पृथिवी ने सूर्य की तरह श्रवणीय अग्नि को परिगृहीत किया है।

५. हे अग्नि, हम यजमान तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम शीघ्र ही हमारे यज्ञ में आओ और हमारे लिए वरणीय धन का सम्पादन करो। हम यजमान स्तोता तुम्हारे लिए स्तुति करते हैं। हम लोगों को तुम युद्ध में समृद्धियुक्त करो।

१७ सूक्त

(देवता अग्नि ऋषि पुरु। छन्द पङ्क्ति और अनुष्टुप्।)

१. हे देव, ऋत्विग्गण अपने तेज से प्रवृद्ध अग्नि को, स्तोत्रों-द्वारा तृप्त करने के लिए, आहूत करते हैं। मनुष्य स्तोता यज्ञकाल में रक्षा के लिए अग्नि की स्तुति करते हैं।

२. हे धर्मविशिष्ट स्तोता, तुम्हारा यश श्रेष्ठ है। तुम प्रकृष्ट बुद्धि-द्वारा उन्हीं अग्नि की, वचन से, स्तुति करते हो, जिन्हें दुःख नहीं है, जिनका तेज विचित्र है और जो स्तुति-योग्य है।

३. जो अग्नि जगद्रक्षण समर्थ बल से और स्तुति से युक्त हैं, जो आदित्य की तरह द्युतिमान् हैं, जिन अग्नि की प्रभा से जगत् व्याप्त है, जिन अग्नि की बृहती दीप्ति प्रकाशित होती है, उन्हीं अग्नि की प्रभा से आदित्य प्रभावान् होते हैं।

४. सुन्दर मतिवाले ऋत्विक् दर्शनीय अग्नि का यज्ञ (पूजा) करके धन और रथ प्राप्त करते हैं। यज्ञार्थ आहूत होनेवाले अग्नि उत्पन्न होते ही, सम्पूर्ण प्रजा-द्वारा, स्तुत होते हैं।

५. हे अग्नि, हम लोगों को शीघ्र ही वही वरणीय धन दान करो, जिस धन को स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करके प्राप्त करते हैं। हे बलपुत्र, हमें अभिलषित अन्न प्रदान करो, हम लोगों की रक्षा करो। हम मंगल-कारक पशु आदि की याचना तुमसे करते हैं। हे अग्नि, तुम संग्राम में हम लोगों की समृद्धि के लिए, उपस्थित रहो।

१८ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य द्वित।
छन्द अनुष्टुप् और पङ्क्ति।)

१. अग्नि बहुप्रिय हैं, यजमानों के लिए धनदाता हैं और यजमानों के गृह में अभिगमन करते हैं। इस तरह के अग्नि प्रातःकाल में स्तुत होते हैं। अमरणशील अग्नि यजमानों के मध्य में स्थित निखिल हव्य की कामना करते हैं।

२. हे अग्नि, अत्रिपुत्र द्वित ऋषि विशुद्ध हव्य वहन करते हैं, तुम उन्हें अपना बल प्रदान करो; क्योंकि वे सब काल में तुम्हारे लिए सोम-रस का आनयन करते हैं और तुम्हारी स्तुति करते हैं।

३. हे अग्नि, हे अश्वदाता, तुम दीर्घगमन-दीप्तिवाले हो। धनिकों के लिए हम तुम्हारा आह्वान, स्त्रोत्र-द्वारा, करते हैं, जिससे धनिकों का रथ शत्रुओं-द्वारा अहिंसित होकर युद्ध में गमन करे।

४. जिन ऋत्विकों-द्वारा नानाविध यज्ञ-विषयक कार्य सम्पादन होता है, जो मुख (उच्चारण) द्वारा स्तोत्रों की रक्षा करते हैं, उन ऋत्विकों-द्वारा, यजमानों के स्वर्गप्रापक यज्ञ में, विस्तीर्ण कुशों के ऊपर अन्न स्थापित होता है।

५. हे अमर अग्नि, तुम्हारी स्तुति के अनन्तर जो धनदाता मुझे पचास अश्व प्रदान करते हैं; तुम उन धनिक मनुष्यों को दीप्तिशील परिचारकयुक्त महान् अन्न प्रदान करो।

१९ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य वव्रि। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. जो अग्नि माता पृथिवी के समीप स्थित होकर पदार्थजात को देखते हैं, वे ही अग्नि वव्रि ऋषि की अशोभन दशा को जानें और उनके हव्य को ग्रहण कर उसका अपनोदन करें।

२. तुम्हारे प्रभाव को जानकर जो लोग, यज्ञ के लिए, सदा तुम्हारा आह्वान करते हैं तथा जो लोग हवि और स्तोत्र के द्वारा तुम्हारे बल की रक्षा करते हैं, वे शत्रुओं-द्वारा अशक्य (दुर्गम्य) पुरी में प्रवेश करते हैं।

३. महान् स्तोत्र करनेवाले, अन्नाभिलाषी, सुवर्णालङ्कार को कण्ठ में धारण करनेवाले, जायमान (उत्पन्नशील) मनुष्य (ऋत्विगादि) स्तोत्र-द्वारा, अन्तरिक्षवर्ती वैद्युत अग्नि के दीप्तिमान् बल को वर्धित करते हैं।

४. पयोमिश्रित हव्य की तरह जिन अग्नि के जठर में अन्न है अर्थात् जो हव्य जठर हैं, जो स्वयम् शत्रुओं-द्वारा अहिंसित होकर सदा शत्रुओं के हिंसक हैं, द्यावा-पृथिवी के सहायभूत वे ही अग्नि दुग्ध की तरह कमनीय और निर्दोष होकर हमारे स्तोत्र को सुनें।

५. हे प्रदीप्त अग्नि, तुम अपने द्वारा किये गये भस्म से वन में क्रीड़ा करते हो। प्रेरक वायु-द्वारा भली भाँति से जायमान होकर तुम हमारे अभिमुख होओ। तुम्हारी शत्रुनाशक ज्वालायें हम यजमानों के निकट सुकोमल हों।

२० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य प्रयस्वंत्। छन्द अनुष्टुप् और पङ्क्ति)

१. हे अग्नि, हे अत्यन्त अन्नप्रद, हम लोगों-द्वारा प्रदत्त जो हवि-स्वरूप अन्न तुम्हारा अभिमत है, हम लोगों की स्तुतियों के साथ उसी हव्य धन को तुम देवों के निकट ले जाओ।

२. हे अग्नि, जो व्यक्ति पशु आदि धन से समृद्ध होकर तुम्हें हव्य प्रदान नहीं करता है, वह अन्न या बल से अत्यन्त हीन होता है। जो व्यक्ति वेद-भिन्न अन्य कर्म करता है, वह असुर तुम्हारा विरोध-भाजन होता है और तुम्हारे द्वारा हिंसित होता है।

३. हे अग्नि, तुम देवों के आह्वाता और बल के साधयिता हो। हम लोग प्रयस्वत् (अन्नवान्) तुम्हारा वरण करते हैं। यज्ञ में हम श्रेष्ठ अग्नि की, स्तुति रूप वचन से, स्तवन करते हैं।

४. हे बलवान् अग्नि, प्रतिदिन जिससे हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें, वैसा करो। हे सुक्रतु, हम लोग जिससे धन लाभ कर सकें और यज्ञ कर सकें, वैसा करो। हम लोग जिससे गौओं को प्राप्त करें और वीर पुत्रों को प्राप्त कर सुखी हों, वैसा करो।

२१ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य सस। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. हे अग्नि, मनु की तरह हम तुम्हें स्थापित और संदीप्त करते हैं। हे अङ्गारात्मक अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य यजमानों के लिए तुम देवों का यजन करो।

२. हे अग्नि, स्तोत्रों-द्वारा सुप्रीत होकर तुम मनुष्यों के लिए दीप्त होते हो। हे सुजात, घृतयुक्तान्न, हव्य-विशिष्ट पात्र तुम्हें निरन्तर प्राप्त करता है।

३. हे क्रान्तदर्शी अग्नि, प्रसन्न हो करके सब देवों ने तुम्हें दूत बनाया था; इसी लिए परिचर्या करनेवाले यजमान तुम्हारा (अग्निदेव का), यज्ञ में देवों को बुलाने के लिए, यजन करते हैं।

४. हे दीप्तिशील अग्नि, मनुष्य लोग देवयज्ञ के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं। हवि-द्वारा प्रवृद्ध होकर तुम दीप्त होओ। तुम सत्यभूत सत्त ऋषि के स्वर्गसाधन यज्ञस्थल में देवरूप से ठहरो।

२२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य विश्वसामा। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. हे विश्वसामा ऋषि, तुम अत्रि की तरह शोधक दीप्तिवाले उन अग्नि की अर्चना करो, जो यज्ञ में सब ऋत्विकों-द्वारा स्तुत्य हैं, देवों के आह्वाता हैं और जो अत्यन्त स्तवनीय हैं।

२. हे यजमानो, तुम सब जातवेदा, द्युतिमान् और यज्ञकारक अग्नि को धारण करो—संस्थापित करो, जिससे आज देवों के प्रिय, यज्ञसाधन और हम लोगों के द्वारा प्रदत्त हव्य अग्नि को प्राप्त करे।

३. हे दीप्तिशील अग्नि, तुम्हारा हृदय ज्ञानसम्पन्न है। तुम्हारे निकट हम लोग रक्षा के लिए उपस्थित होते हैं। हम मनुष्य सम्भजनीय अग्नि को तृप्त करने के लिए स्तवन करते हैं।

४. हे बलपुत्र अग्नि, तुम हमारे इस परिचरण स्तवन को जानो। हे सुन्दर हनू-नासिकावाले, हे गृहपति, अत्रि के पुत्र स्तोत्रों-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं और वचनों-द्वारा अलंकृत करते हैं।

२३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य द्युम्न। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. हे अग्नि, तुम मुझ द्युम्न ऋषि के लिए एक बलशाली शत्रु-विजेता पुत्र प्रदान करो। जो पुत्र स्तोत्र से युक्त होकर संग्राम में निखिल शत्रुओं को अभिभूत करे।

२. हे बलवान् अग्नि, तुम सत्यभूत, अद्भुत और गोयुक्त अन्न के दाता हो। तुम इस तरह का एक पुत्र प्रदान करो, जो सेनाओं का अभिभूत करने में समर्थ हो।

३. हे अग्नि, तुम देवों के आह्वाता और सबके प्रियकर हो। समान प्रीतिवाले और कुशच्छेद करनेवाले निखिल ऋत्विक् यज्ञगृह में बहुविध वरणीय धन की याचना करते हैं।

४. हे अग्नि, लोकप्रसिद्ध विश्वचर्षणि ऋषि शत्रुओं के हिंसक बल को धारण करें। हे द्युतिमान्, तुम हमारे गृह में धनयुक्त प्रकाश करो। हे पापशोषक अग्नि, तुम दीप्तियुक्त और यशोयुक्त होकर दीप्यमान होओ।

२४ सूक्त

(देवता अग्नि। बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु क्रम से चारों ऋचाओं के ऋषि। ये गौपायन एवम् लौपायन नाम से प्रसिद्ध। छन्द चार द्विपदा से विराट।)

१-२. हे अग्नि, तुम सम्भजनीय, रक्षक और सुखकर हो। तुम हमारे निकटतम होओ। हे गृहदाता और अन्नदाता, तुम हम लोगों के प्रति अनुकूल होकर अतिशय दीप्तिशील पशुस्वरूप धन हम लोगों को प्रदान करो।

३-४. हे अग्नि, तुम हम लोगों को जानो। हम लोगों के आह्वान को श्रवण करो। समस्त पापाचारियों से हम लोगों की रक्षा करो। हे अपने तेज से प्रदीप्त अग्नि, हम लोग सुख के लिए और पुत्र के लिए तुमसे याचना करते हैं।

२५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रि के अपत्य वसुयु। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे वसुयु ऋषियो, रक्षा के लिए तुम लोग अग्नि का स्तवन करो। अग्निहोत्र के लिए यजमानों के घर में रहनेवाले अग्नि हम लोगों

की कामना पूर्ण करें। ऋषियों के पुत्र (अरणि-मन्थन से उत्पन्न) सत्यवान् अग्नि हम लोगों की शत्रुओं से रक्षा करें।

२. पूर्ववर्ती महर्षियों और देवों ने जिन अग्नि को सन्दीप्त किया था, जो अग्नि मोदनजिह्व (हव्य ग्रहण करके जिनकी जिह्वा मुदित होती है), शोभन दीप्ति से युक्त, अतिशय प्रभावान् और देवों के आह्वाता हैं, वे अग्नि सत्यप्रतिज्ञ हैं।

३. हे स्तुतियों-द्वारा स्तूयमान और वरणीय अग्नि, तुम हम लोगों के अतिशय प्रशस्य और अत्यन्त श्रेष्ठ परिचरणात्मक कर्म से और शस्त्र (स्तोत्र) से प्रसन्न होकर हम लोगों को धन प्रदान करो।

४. जो अग्नि देवों के मध्य में देवता-रूप से प्रकाशित होते हैं, जो मनुष्यों के बीच आहवनीय रूप से प्रविष्ट होते हैं और जो हम लोगों के यज्ञों में देवता के लिए,] हव्य वहन करते हैं, हे यजमानो, स्तुतियों-द्वारा तुम लोग उन अग्नि की परिचर्या करो।

५. हवि देनेवाले यजमानों को अग्नि एक ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो बहुविध अन्नों से युक्त, बहुत स्तोत्रवाला, उत्तम, शत्रुओं-द्वारा अहिंसित और अपने कर्म से पिता-पितामह आदि के यश को प्रख्यात करनेवाला हो।

६. अग्नि हम लोगों को उस तरह का पुत्र दें, जो सत्य का पालन करनेवाला हो और अपने परिजनों के साथ, युद्ध में, शत्रुओं को पराभूत करनेवाला हो एवम् द्रुत वेगवाला और शत्रुओं को जीतनेवाला घोड़ा भी दें।

७. जो श्रेष्ठतम स्तोत्र है, वह अग्नि के लिए ही किया जाता है। हे तेजोधन अग्नि, हम लोगों को बहुत धन प्रदान करो; क्योंकि तुम्हारे समीप से ही महान् धन उत्पन्न हुए हैं और निखिल अन्न भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं।

८. हे अग्नि, तुम्हारी शिखायें दीप्तिमती हैं। तुम सोमलतापेषक

पत्थर की तरह महान् कहे जाते हो। तुम द्युतिमान् हो। तुम्हारा शब्द मेघगर्जन की तरह द्युतिमान् व्याप्त होता है।

९. हम (वसुयुगण) इस प्रकार से बलवान् अग्नि का स्तवन करते हैं। शोभनकर्मा अग्नि हम लोगों को निखिल शत्रुओं से उत्तीर्ण करें, जैसे नौका-द्वारा नदी पार की जाती है।

२६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसुयु। छन्द गायत्री।)

१. हे शोधक और द्युतिमान् अग्नि, तुम अपनी दीप्ति से और देवों को प्रहृष्ट करनेवाली जिह्वा से, यज्ञ में देवों का आनयन करो और उनका यजन करो।

२. हे घृतोत्पन्न और हे बहुविध रश्मिवाले अग्नि, तुम सर्वद्रष्टा हो। हम लोग तुमसे याचना करते हैं कि हव्य भक्षण के लिए तुम देवों का वहन करो।

३. हे क्रान्तदर्शी (ज्ञानसम्पन्न) अग्नि, तुम हव्य-भक्षणशील, दीप्तिमान् और महान् हो। हम लोग तुम्हें यज्ञस्थल में सन्दीप्त करते हैं।

४. हे अग्नि, सब देवों के साथ तुम हव्यदाता यजमान के यज्ञ में उपस्थित होओ। तुम देवों के आह्वानकारी हो। हम लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं।

५. हे अग्नि, अभिषव (यज्ञस्नान) करनेवाले यजमान को तुम शोभन बल प्रदान करो एवम् देवों के साथ कुश पर उपवेशन करो।

६. हे सहस्रों को जीतनेवाले अग्नि, हवि-द्वारा प्रज्वलित होकर, प्रशस्यमान होकर और देवों के दूत होकर तुम हम लोगों के यज्ञकर्म का पोषण करते हो।

७. हे यजमानो, तुम लोग अग्नि को संस्थापित करो। वे भूतजात को जाननेवाले, यज्ञ के प्रापक, युवतम द्युतिमान् और ऋत्विक् (यष्टा) हैं।

८. प्रकाशमान स्तोताओं-द्वारा प्रदत्त हविरन्न आज देवों के निकट निरन्तर गमन करे। हे ऋत्विक् तुम अग्नि के उपवेशनार्थ (बैठने के लिए) कुश विस्तृत करो—बिछाओ।

९. मरुद्गण, देवभिषक् अश्विद्वय, सूर्य, वरुण आदि देव अपने परिजनों के साथ कुश पर उपवेशन करें।

२७ सूक्त

(देवता अग्नि। देवता ६ के अग्नि और इन्द्र। ऋषि अत्रि अथवा त्रिवृष्ण के अपत्य त्र्यरुण, पुरुकुत्स के अपत्य त्रसदस्यु और भरत के अपत्य अश्वमेध। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।

१. हे मनुष्यों के नेता अग्नि, तुम साधुओं के पालक, ज्ञानसम्पन्न, बलवान् और धनवान् हो। त्रिवृष्ण के पुत्र त्र्यरुण नामक राजर्षि ने शकट-संयुत दो वृषभ और दस सहस्र सुवर्ण मुझे प्रदान करके ख्याति-लाभ किया था अर्थात् उसी दान के कारण सब लोगों ने उन्हें जाना था।

२. जिस त्र्यरुण ने मुझे सौ सुवर्ण, बीस गौएँ और रथ से युक्त भार वहन करनेवाले दो घोड़े दिये थे, हे वैश्वानर अग्नि, हम लोगों के द्वारा स्तुत होकर और हवि-द्वारा वर्द्धमान होकर तुम उस त्र्यरुण को सुख प्रदान करो।

३. हे अग्नि, हम बहुत सन्तानवालों की स्तुति से प्रसन्न होकर त्र्यरुण ने जैसे हमें कहा था, "यह ग्रहण करें, यह ग्रहण करें।" हे स्तुतियोग्य अग्नि, वैसे ही तुम्हारी स्तुतिकामना करनेवाले त्रसदस्यु ने भी हमसे प्रार्थना की थी कि "यह ग्रहण करें, यह ग्रहण करें।"

४. हे अग्नि, जब कोई भिक्षाभिलाषी, तुम्हारी स्तुति के साथ, धनदाता राजर्षि अश्वमेध के निकट जाकर कहता है कि "हमें धन दो", तब वे उस याचक को धन देते हैं। हे अग्नि, यज्ञ की इच्छा करनेवाले अश्वमेध को तुम यज्ञ करने की बुद्धि प्रदान करो।

५. राजर्षि अश्वमेध-द्वारा प्रदत्त, अभिलाषाओं के पूरक सौ बैलों ने हमें प्रमुदित किया है। हे अग्नि, दही, सत्तू और दूध आदि तीन द्रव्यों से मिश्रित सोम की तरह वे बैल तुम्हारी प्रीति के लिए हों।

६. हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों याचकों के लिए, अपरिमित धन के दाता राजर्षि अश्वमेध को अन्तरिक्ष-स्थित सूर्य की तरह, शोभन बल के साथ (दीप्तिमान्), महान् और जरारहित (अक्षय) धन प्रदान करो।

२८ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्ववारा। छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. भली भाँति से दीप्त अग्नि द्युतिमान् अन्तरिक्ष में तेज को प्रकाशित करते हैं और उषा के अभिमुख विस्तृत होकर विशेष शोभा पाते हैं। इन्द्र आदि देवों का स्तवन करती हुई और पुरोडाश आदि से युक्त स्रुक् को लेकर विश्ववारा पूर्व की ओर मुँह करके अग्नि के अभिमुख गमन करती हैं।

२. हे अग्नि, तुम भली भाँति से प्रज्वलित होकर उदक के ऊपर प्रभुत्व करते हो और हव्यदाता यजमान-द्वारा, मङ्गलार्थ, सेवित होते हो। तुम जिस यजमान के निकट गमन करते हो, वह पशु आदि समस्त धन को धारण करता है। हे अग्नि, तुम्हारे आतिथ्य-योग्य हव्य को वह यजमान तुम्हारे सम्मुख स्थापित करता है।

३. हे अग्नि, तुम हम लोगों के प्रभूत ऐश्वर्य के लिए और शोभन धन के लिए शत्रुओं को दमन करो। तुम्हारे धन या तेज उत्कृष्ट हों। हे अग्नि, तुम दाम्पत्य कार्य को, अच्छी तरह से, सुनियमित करो और शत्रुओं के तेज को आक्रान्त करो।

४. हे अग्नि, जब तुम प्रज्वलित और दीप्तिमान् होते हो, तब हम यजमान तुम्हारी दीप्ति का स्तवन करते हैं। तुम कामनाओं के पूरक, धनवान् और यज्ञस्थल में भली भाँति से दीप्त होते हो।

५. हे अग्नि, हे यजमानों-द्वारा आहूत, हे शोभन यज्ञवाले, भली भाँति से दीप्त होकर तुम इन्द्र आदि देवों का यजन करो; क्योंकि तुम हव्य का वहन करते हो।

६. हे ऋत्विको, तुम लोग हमारे यज्ञ में प्रवृत्त होकर हव्यवाहक अग्नि में हवन करो और उनका परिचरण तथा सम्भजन करो एवम् देवों के निकट हव्यवहनार्थ उनका वरण करो।

२९ सूक्त

(देवता इन्द्र एवम् नवम ऋक् के प्रथम चरण के उशना। ऋषि शक्तिगोत्रोत्पन्ना गौरिवीति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मनु-सम्बन्धी यज्ञ में जो तीन तेज हैं तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न होनेवाले जो रोचमान वायु, अग्नि और सूर्यात्मक तेज हैं, उनको मरुतों ने धारण किया है। हे इन्द्र, शुद्ध बलवाले मरुद्गण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम बुद्धिमान् हो, इन मरुतों को देखो।

२. जब मरुतों ने अभिषुत सोमरस के पान से तृप्त इन्द्र की स्तुति की, तब इन्द्र ने वज्र ग्रहण किया और वृत्र को मारा एवम् वृत्रनिरुद्ध महान् जल-राशि को, स्वेच्छानुसार से, बहने के लिए मुक्त किया।

३. हे बृहत् मरुतो, तुम सब और इन्द्र भली भाँति से हमारे इस अभिषुत सोमरस का पान करो। तुम लोगों के द्वारा यह सोमात्मक हव्य पिया जाय, जिससे मनुष्य यजमान गौओं को प्राप्त करे। इस सोमरस को पीकर इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

४. सोमपान के अनन्तर इन्द्र ने द्यावा-पृथिवी को निश्चल किया था। गमनशील होकर इन्द्र ने मृगवत् पलायमान वृत्र को भयभीत किया था। दनुपुत्र (वृत्र) छिप रहा था और भय से श्वास ले रहा था। इन्द्र ने उसे आच्छादनविहीन करके मारा था।

५. हे धनवान् इन्द्र, तुम्हारे इस कर्म से वह्नि आदि निखिल देवों ने

तुम्हें अनुक्रम से सोमरस, पान के लिए, दिया था। तुमने एतश के लिए सम्मुखवर्ती सूर्य के अश्वों का गतिरोध किया था।

६. जब धनवान् इन्द्र ने वज्र-द्वारा शम्बर के ९९ नगरों को एक काल में ही विनष्ट किया था, तब मरुतों ने संग्राम-भूमि में ही इन्द्र की स्तुति, त्रिष्टुप् छन्द में, की थी। इस तरह से मरुतों के मन्त्रों-द्वारा स्तुत होने पर दीप्त इन्द्र ने शम्बर असुर को पीड़ित किया था।

७. इन्द्र के मित्रभूत अग्नि ने मित्र इन्द्र के कार्य के लिए सौ महिषों को शीघ्र ही पकाया था। परमैश्वर्ययुक्त इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिए मनु-सम्बन्धी तीन पात्रों में स्थित सोमरस को एक काल में ही पिया था।

८. हे इन्द्र, जब तुमने तीन सौ महिषों के मांस का भक्षण किया था, धनवान् होकर जब तुमने तीन पात्रों में स्थित सोमरस का पान किया था, जब तुमने वृत्र का वध किया था, तब सब देवों ने युद्ध के लिए सोमपान से पूर्ण इन्द्र का आह्वान किया था, जैसे स्वामी दास का आह्वान करते हैं।

९. हे इन्द्र, तुम और कवि (उशना) जब अभिभवनशील एवम् द्रुतगामी अश्वों के साथ कुत्स के गृह में उपस्थित हुए थे, तब तुमने शत्रुओं को हिंसित करके कुत्स और देवों के साथ एक रथ पर आरूढ़ हुए थे। हे इन्द्र, शुष्ण नामक असुर को तुमने ही मारा है।

१०. हे इन्द्र, पहले ही तुमने सूर्य के दो चक्कों में से एक चक्के को पृथक् किया था एवम् दूसरे एक चक्के को तुमने धन-लाभ के लिए कुत्स को दिया था। तुमने शब्द-रहित असुरों को हतबुद्धि करके वज्र-द्वारा संग्राम में मारा था।

११. हे इन्द्र, गौरिवीति ऋषि के स्तोत्र तुम्हें वर्द्धित करें। तुमने विदथिपुत्र ऋजिश्वा के लिए पिप्रु नामक असुर को वशीभूत किया था। ऋजिश्वा नामवाले किसी ऋषि ने तुम्हारी सखिता के लिए पुरोडाश

आदि को पकाकर तुम्हें अभिमुख किया था। तुमने ऋजिश्वा के सोम का पान किया था।

१२. नौ महीनों में समाप्त होनेवाले और दस महीनों में समाप्त होनेवाले यज्ञ को करनेवाले अङ्गिरा लोग सोमाभिषव करके अर्चनीय स्तोत्रों-द्वारा इन्द्र की स्तुति करते हैं। स्तुति करनेवाले अङ्गिरा लोगों ने असुरों-द्वारा आच्छादित गो-समूह को उन्मुक्त किया था।

१३. हे धनवान् इन्द्र, तुमने जिस वीर्य (पराक्रम) को प्रकट किया था, हम उसको जानते हुए भी किस प्रकार से तुम्हारे लिए प्रकट करें—क्योंकर स्तवन करें? हे बलवान् इन्द्र, तुम जिस नूतन वीर्य (पराक्रम) को प्रकट करोगे, हम यज्ञ में तुम्हारे उस वीर्य का कीर्तन करेंगे।

१४. हे इन्द्र, तुम शत्रुओं-द्वारा दुर्द्धर्ष हो। तुमने अपने प्रकृत बल से प्रत्यक्ष दृश्यमान बहुतेरे भुवनजात को किया है। हे वज्रधर, शत्रुओं को शीघ्र ही विनष्ट करते हुए तुम जो कुछ करते हो, तुम्हारे उस बल या कर्म का निवारण कोई भी नहीं कर सकता है।

१५. हे अतिशय बलवान् इन्द्र, हम लोगों ने आज तुम्हारे लिए जिन नूतन स्तोत्रों को रचा है, हम लोगों-द्वारा विहित उन सकल स्तोत्रों को तुम ग्रहण करो। हम धीमान्, शोभन कर्म करनेवाले और धनाभिलाषी हैं। इन भजनीय स्तोत्रों को हम वस्त्र और रथ की तरह तुम्हें अर्पित करते हैं।

३० सूक्त

(देवता इन्द्र और कहीं ऋणञ्चय राजा। ऋषि बभ्रु। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वज्रधर, बहुतों-द्वारा आहूत इन्द्रदान योग्य धन के साथ सोमाभिषव करनेवाले यजमान की इच्छा करते हुए, रक्षा के लिए यजमान के गृह में जाते हैं। वे पराक्रमी इन्द्र कहाँ विद्यमान हैं? अपने दोनों घोड़ों-द्वारा आकृष्ट सुखकर रथ पर जानेवाले इन्द्र को किसने देखा है?

२. हमने इन्द्र के अन्तर्हित और उग्र स्थान को देखा है। अन्वेषण करते हुए हम आधारभूत इन्द्र के स्थान में गये हैं। हमने अन्य विद्वानों से भी इन्द्र के सम्बन्ध में पूछा है। पूछे जाने पर यज्ञ के नेता और ज्ञानाभिलाषियों ने हमें कहा कि हम लोगों ने इन्द्र को प्राप्त किया है।

३. हे इन्द्र, तुमने जिन कार्यों को किया है, सोमाभिषव करने पर हम स्तोता उनका वर्णन करते हैं। तुमने भी हमारे लिए जिन कर्मों का सेवन किया है, उन कर्मों को इसके पहले नहीं जाननेवाले लोग जानें। जो लोग जानते हैं, वे नहीं जाननेवालों को सुनावें। सब सेनाओं से युक्त होकर धनवान् इन्द्र अश्व पर आरोहण कर उन जाननेवाले और सुननेवाले के पास गमन करे।

४. हे इन्द्र, उत्पन्न होते ही तुमने सब शत्रुओं को जीतने के लिए चित्त को स्थिर (दृढ़संकल्प) किया था। हे इन्द्र, अकेले ही तुमने बहुतेरे राक्षसों से युद्ध करने के लिए गमन किया था। गौओं के आवरक पर्वत को तुमने बल द्वारा विदीर्ण किया था। तुमने क्षीरदायिनी गौओं के समूह को प्राप्त किया था।

५. हे इन्द्र, तुम सर्व-प्रधान और उत्कृष्टतम हो। दूर से ही श्रवणीय नाम को धारण करके जब तुम उत्पन्न हुए थे, तब अग्नि आदि देवता इन्द्र से भयभीत हुए थे। वृत्र-द्वारा पालित सकल उदक को इन्द्र ने वशीभूत किया था।

६. ये स्तुतिपाठ करनेवाले सुखी मरुद्गण स्तोत्र-द्वारा सुख उत्पन्न करते हैं। हे इन्द्र, ये तुम्हारा ही स्तवन करते हैं और सोमलक्षण अन्न प्रदान करते हैं। जो वृत्र समस्त जलराशि को आच्छन्न करके निद्रित था, अपनी शक्ति-द्वारा इन्द्र ने उस कपटी और देवों को बाधा पहुँचानेवाले वृत्र को अभिभूत किया था।

७. हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम देव-पीड़क वृत्र को वज्र-द्वारा पीड़ित करो। तुमने जन्म से ही शत्रुओं का

संहार किया है। हे इन्द्र, इस युद्ध में तुम हमारे सुख के लिए दास नमुचि के सिर को चूर्ण करो।

८. हे इन्द्र, तुमने शब्द करनेवाले और भ्रमण-शील मेघ की तरह, दास नमुचि असुर के मस्तक को चूर्ण करके हमारे साथ मैत्री की थी। उस समय मरुतों के प्रभाव से द्यावापृथिवी चक्र की तरह घूमने लगी थी।

९. दास नमुचि ने स्त्रियों को युद्धसाधन (सेना) बनाया था। असुर की वह स्त्री-सेना मेरा क्या कर लेगी? इस तरह सोचकर इन्द्र ने उन सेनाओं के मध्य से उस असुर की दो प्रेयसी स्त्रियों को, अपने घर में रख लिया और नमुचि से लड़ने के लिए प्रस्थान किया।

१०. जब गौएँ बछड़ों से विमुख हुई थीं, तब उस समय वे नमुचि-द्वारा अपहृत गौएँ इधर-उधर सर्वत्र भटक रही थीं। बभ्रु ऋषि-द्वारा अभिषुत सोम से जब इन्द्र प्रहृष्ट हुए, तब समर्थ मरुतों के साथ इन्द्र ने बभ्रु की गौओं को बछड़ों के साथ मिला दिया।

११. जब बभ्रु के अभिषुत सोम ने इन्द्र को प्रहृष्ट किया, तब कामनाओं के पूरक इन्द्र ने, संग्राम में, महान् शब्द किया। पुरन्दर (नगर-विनाशक) इन्द्र ने सोम-पान किया और बभ्रु को फिर से दुग्ध देनेवाली गौएँ दीं।

१२. हे अग्नि, ऋणञ्चय राजा के किंकर रुशम देशवासियों ने मुझे चार सहस्र गौएँ देकर कल्याण-कारक कर्म किया था। नेताओं के बीच श्रेष्ठ नेता ऋणञ्चय राजा-द्वारा प्रदत्त गोरूप रत्नों को मैंने ग्रहण किया है।

१३. हे अग्नि, ऋणञ्चय राजा के किंकर रुशम देशवासियों ने मुझे अलंकार और आच्छादन आदि से सुसज्जित गृह तथा हजार गौएँ दी हैं। रात्रि के बीतने पर अर्थात् उषाकाल में सरस सोम ने इन्द्र को प्रसन्न किया था। (गौओं को पाकर बभ्रु ने तुरन्त ही इन्द्र को सोमरस पिलाया था)।

१४. रुशम देश के राजा ऋणञ्चय के समीप में ही सर्वत्र गमन करनेवाली रात्रि बीत गई। बुलाये जाने पर बभ्रु ऋषि ने वेगवान् घोड़े की तरह चार सहस्र शीघ्रगामिनी गौओं को प्राप्त किया।

१५. हे अग्नि, हमने रुशम देशवासियों से चार सहस्र गौएँ प्राप्त की हैं। हम मेधावी हैं। यज्ञ के लिए महावीर की तरह सन्तप्त हिरण्मय कलश को, हमने रुशम देशवासियों से दूध दुहने के लिए, ग्रहण किया है।

३१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अत्रि के अपत्य अवस्यु। छन्द त्रिष्टुप्)

१. धनवान् इन्द्र जिस रथ पर अधिष्ठान करते हैं, उस रथ का संचालन भी करते हैं। गोपालक जिस तरह से पशुओं के समूह को प्रेरित करते हैं, उसी तरह से इन्द्र शत्रुसेनाओं को प्रेरित करते हैं। शत्रुओं-द्वारा अहिंसित और देव-श्रेष्ठ इन्द्र शत्रुओं के धन की कामना करते हुए गमन करते हैं।

२. हे हरिनामक अश्ववाले, तुम हम लोगों के अभिमुख भली भाँति से गमन करो; किन्तु हम लोगों के प्रति हीनमनोरथ—उदासीन—मत होओ। हे बहुविध धनवाले इन्द्र, तुम हम लोगों का सेवन करो। हे इन्द्र, दूसरी कोई भी वस्तु तुमसे श्रेष्ठ नहीं है। अपत्नीकों को तुम स्त्री प्रदान करते हो।

३. जब सूर्य का तेज उषा के तेज से बढ़ जाता है, तब इन्द्र यजमानों को निखिल धन प्रदान करते हैं। वे निवारक पर्वत के मध्य से दुग्धदायिनी निरुद्ध गौओं को मुक्त करते हैं और तेज-द्वारा संवरणशील (सर्वत्र व्याप्त) अन्धकार को दूर करते हैं।

४. हे बहुजनाहूत इन्द्र, ऋभुओं ने तुम्हारे रथ को घोड़ों से संयुक्त होने के योग्य बनाया है, त्वष्टा ने तुम्हारे वज्र को द्युतिमान् किया है। इन्द्र की पूजा करनेवाले अङ्गिरा लोगों ने अथवा मरुतों ने वृत्रवध के लिए स्तोत्रों-द्वारा, इन्द्र को संवर्द्धित किया है।

५. हे इन्द्र, तुम अभिलाषाओं के पूरक हो। सेचनसमर्थ मरुतों ने जब तुम्हारी स्तुति की थी, तब सोमाभिषव करनेवाले पत्थर भी प्रसन्न होकर संगत हुए थे। इन्द्र-द्वारा प्रेषित होने पर अश्वहीन और रथहीन मरुतों ने अभिगमन करके शत्रुओं को अभिभूत किया था।

६. हे इन्द्र, हम तुम्हारे पुरातन तथा नूतन कर्मों का स्तवन करते हैं। हे धनवान् इन्द्र, तुमने जिन कार्यों को किया है, हम उसे कहते हैं। हे वज्रधर इन्द्र, तुम द्यावा-पृथिवी को वशीभूत करके मनुष्यों के लिए विचित्र जल धारण करते हो।

७. हे दर्शनीय तथा बुद्धिमान् इन्द्र, वृत्र को मार करके तुमने जो अपने बल को इस लोक में प्रकाशित किया है, वह तुम्हारा ही कर्म है। तुमने शुष्ण असुर की युवती को ग्रहण किया है। हे इन्द्र, युद्धस्थल में जाकर तुमने असुरों को विनष्ट किया है।

८. हे इन्द्र, नदी के तीर में प्रवृद्ध होकर अर्थात् अवस्थान करके यदु और तुर्वश राजाओं को तुमने वनस्पतियों को बढ़ानेवाला जल दिया है। हे इन्द्र, कुत्स के प्रति आक्रमण करनेवाले भयानक शुष्ण को मारकर तुमने कुत्स को अपने गृह में पहुँचा दिया था। तब उशना (भार्गव) और देवों ने तुम दोनों का सम्भजन किया था।

९. हे इन्द्र और कुत्स, एक रथ पर आरूढ़ तुम दोनों को अश्वगण यजमानों के निकट आनयन करें। तुम दोनों ने शुष्ण को उसके आवासभूत जल से दूर किया था। तुम दोनों ने धनवान् यजमानों के हृदय से अज्ञान-रूप अन्धकार को दूर किया था।

१०. विद्वान् अवस्यु नामक ऋषि ने वायु की तरह वेगवान् और रथ में भली भाँति से युक्त करने के योग्य अश्वों को प्राप्त किया है। हे इन्द्र, अवस्यु के मित्रभूत सकल स्तोताओं ने, स्तोत्रों-द्वारा, तुम्हारे बल को संवर्द्धित किया है।

११. पूर्व में जब एतश ऋषि के साथ सूर्य का संग्राम हुआ था, तब इन्द्र ने सूर्य के वेगवान् रथ की गति को अवरुद्ध किया था। इन्द्र ने पूर्व

में द्विचक्र रथ के एक चक्र को हरण किया था। उसी चक्र-द्वारा इन्द्र शत्रुओं को विनष्ट करते हैं। हम लोगों को पुरस्कृत करके इन्द्र हम लोगों के यज्ञ का सम्भजन करें।

१२. हे मनुष्यो, तुम लोगों को देखने के लिए इन्द्र सोमाभिषव करनेवाले मित्रस्वरूप यजमानों की इच्छा करते हुए आये हैं। अध्वर्युगण जिस पत्थर का प्रेरण करते हैं, वह सोमाभिषव करनेवाला पत्थर शब्द करता हुआ वेदी के ऊपर आरोहण करता है।

१३. हे इन्द्र, हे अमरणशील, जो मनुष्य तुम्हारी कामना करता है और शीघ्रतापूर्वक तुम्हारी अभिलाषा करता है, उस मरणशील मनुष्य का कोई अनर्थ नहीं हो। तुम यजमानों का सम्भजन करो—उनके प्रति प्रसन्न होओ। जिन मनुष्यों के मध्य में हम लोग स्तोता हैं, वे सब तुम्हारे हों। हे इन्द्र, तुम उन मनुष्यों को बल प्रदान करो।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अत्रि के अपत्य गातु। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुमने बरसनेवाले मेघ को विदीर्ण किया है और मेघस्थ जल के निर्गमन द्वार को विसृष्ट किया है—बनाया है। हे इन्द्र, तुमने प्रभूत मेघ को उद्घाटित करके जल बरसाया है एवम् दनुपुत्र वृत्र का संहार किया है।

२. हे वज्रवान् इन्द्र, तुम वर्षाकाल में निरुद्ध मेघों को बन्धनमुक्त करो। तुम मेघ को बलसम्पन्न करो। हे उग्र, जल में शयन करनेवाले वृत्र को तुमने मारा है और अपने बल को प्रख्यात किया है अर्थात् वृत्रवध के अनन्तर इन्द्र लोगों के मध्य प्रख्यात होते हैं।

३. अप्रतिद्वन्द्वी एकमात्र इन्द्र ने हवि प्रभूत मृग की तरह शीघ्रगामी उस वृत्र के आयुधों को अपने बल-द्वारा विनष्ट किया। उस समय वृत्र के शरीर से दूसरा अतिशय बलवान् असुर प्रादुर्भूत हुआ।

४. वर्षणशील मेघ के ऊपर प्रहार करनेवाले वज्रधर इन्द्र ने वज्र-द्वारा बलवान् शुष्ण को मारा था। शुष्ण वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न होकर अन्धकार में विचरण करता था और सेचन-समर्थ मेघ की रक्षा करता था। वह सम्पूर्ण प्राणियों के अन्न को स्वयम् खाकर प्रमुदित होता था।

५. हे इन्द्र, हे बलवान्, मादक सोमरस के पान से हृष्ट होकर तुमने अन्धकार में निमग्न युद्धाभिलाषी वृत्र को जाना था। अपने को मर्महीन (अवध्य) समझनेवाले वृत्र के प्राणस्थान को तुमने उसके कार्यों-द्वारा जाना था।

६. वृत्र सुखकर उदक के साथ जल में शयन करता हुआ अन्धकार में वर्द्धमान हो रहा था। अभिषुत सोमपान से हृष्ट होकर अभिलाषाओं के पूरक इन्द्र ने वज्र को ऊपर उठाकर उसे मारा था।

७. जब इन्द्र ने उस प्रभूत दानव वृत्र के प्रति विजयी वज्र को उठाया था, जब वज्र के द्वारा उसके ऊपर प्रहार किया था, तब सब प्राणियों के बीच उसे नीच बनाया था।

८. उग्र इन्द्र ने महान्, गमनशील मेघ को घेरकर शयन करनेवाले, जल-रक्षक, शत्रुओं के संहारक और सबको आच्छादित करनेवाले वृत्र को ग्रहण किया और उसके अनन्तर संग्राम में पाद-रहित परिमाण-रहित और जृम्भाभिभूत वृत्र को अपने प्रभूत वज्र-द्वारा भली भाँति से मारा।

९. इन्द्र के शोषक बल का निवारण कौन कर सकता है? किसी के द्वारा भी अप्रतीयमान इन्द्र अकेले ही शत्रुओं के धन को हरण करते हैं। द्युतिमान् द्यावा-पृथिवी वेगवान् इन्द्र के बल से भीत होकर शीघ्र ही चलायमान होती हैं।

१०. स्वयम् धार्यमाण और द्युतिमान् द्युलोक इन्द्र के लिए नीचभाव से गमन करता है। भूमि अभिलाषिणी स्त्री की तरह इन्द्र के लिए आत्म-समर्पण करती है। जब इन्द्र अपने समस्त बल को प्रजाओं के मध्य में

स्थापित करते हैं, तब मनुष्यगण अनुक्रम से, बलवान् इन्द्र के लिए नमस्कार करते हैं।

११. हे इन्द्र, हमने ऋषियों से सुना है कि तुम मनुष्यों के मध्य में मुख्य हो, सज्जनों के पालक हो, पञ्चजन मनुष्यों के हित के लिए उत्पन्न हुए हो और यशोयुक्त हो। दिन-रात स्तुति करनेवाली और अपनी अभिलाषाओं को कहनेवाली हमारी सन्तान स्तुतियोग्य इन्द्र को प्राप्त करे।

१२. हे इन्द्र, हमने सुना है कि तुम समय-समय पर जन्तुओं को प्रेरित करते हो और स्तोताओं को धन प्रदान करते हो, यह झूठ ही मालूम पड़ता है। हे इन्द्र, जो स्तोता तुममें अपनी अभिलाषा स्थापित करते हैं, तुम्हारे वे महान् सखा तुमसे क्या प्राप्त करते हैं?

प्रथम अध्याय समाप्त।

३३ सूक्त

(द्वितीय अध्याय। ३ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि प्रजापति के अपत्य सम्वरण। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम सम्वरण ऋषि अत्यन्त दुर्बल हैं। हम महाबलवान् इन्द्र के लिए प्रभूत स्तोत्र करते हैं, जिससे हमारी तरह के मनुष्य बलवान् हों। संग्राम में अन्न लाभ के लिए स्तुत होने पर इन्द्र स्तोताओं के साथ हमारे (सम्वरण के) प्रति अनुग्रह प्रदर्शन करें।

२. हे अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले इन्द्र, तुम हम लोगों का ध्यान करते हुए एवम् जो स्तोत्र तुम्हें प्रीति उत्पन्न करें, उन स्तोत्रों-द्वारा रथ में जुते हुए घोड़ों की लगाम को ग्रहण करते हो। हे मघवा, इस तरह से तुम हमारे शत्रुओं को पराभूत करो।

३. हे तेजोविशिष्ट इन्द्र, जो मनुष्य तुम्हारे भक्तों से भिन्न हैं और जो तुम्हारे साथ नहीं रहता है, ब्रह्मकर्म से हीन होने के कारण वह

मनुष्य तुम्हारा नहीं है। हे वज्रधारी इन्द्र, इसलिए तुम हमारे यज्ञ में आने के लिए उस रथ पर आरोहण करो, जिस रथ का सञ्चालन तुम स्वयम् करते हो।

४. हे इन्द्र, तुम्हारे स्वविषयक अनेक स्तोत्र हैं; इसी लिए तुम उर्वरा भूमि के ऊपर जल वर्षण करने के लिए वृष्टि-निरोधकारकों का संहार करते हो। तुम कामनाओं के पूरक हो। तुम सूर्य के अपने स्थान में वृष्टि प्रतिबन्धकारक दासों के साथ युद्ध करके, उनके नाम तक को नष्ट कर देते हो।

५. हे इन्द्र, हम लोग जो ऋत्विक् यजमान आदि हैं, वे सब तुम्हारे हैं। यज्ञ करके हम लोग तुम्हारे बल को वर्द्धित करते हैं और होम करने के लिए तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारा बल सर्व-व्यापी है। तुम्हारे अनुग्रह से युद्ध-क्षेत्र में भग की तरह प्रशंसनीय (चारु) विश्वस्त भृत्य आदि हमारे निकट आवें।

६. हे इन्द्र, तुम्हारा बल पूजनीय है। तुम सर्वव्यापी और अमरण-शील हो। अपने तेज से तुम जगत् को आच्छादित करके श्वेतवर्ण का प्रभूत धन हम लोगों को दो। हम लोग प्रभूत धनवाले दाता के दान की स्तुति करते हैं।

७. हे शूर इन्द्र, हम लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं और यजन करते हैं। रक्षा-द्वारा तुम हम लोगों का पालन करो। संग्राम में तुम अपने आच्छादक रूप को प्रदान करके हमारे अभिषुत सोमरस के द्वारा सन्तुष्ट होओ।

८. गिरिक्षित-गोत्रोत्पन्न पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु हिरण्यवान् और प्रेरक हैं। उन्होंने हमें जो दस अश्व प्रदान किये थे, वे शुभ्रवर्णवाले दसों अश्व हमें वहन करें। रथनियोजनादि कार्यों-द्वारा हम शीघ्र ही गमन करें।

९. मरुताश्व के पुत्र विदथ ने हमारे लिए जिन रक्तवर्ण और श्रेष्ठ (शीघ्रगामी) अश्वों को प्रदान किया था, वे हमें वहन करें। उन्होंने

हम पूज्य को सहस्र परिमित धन दिया है और अपने शरीर का अलंकार प्रदान किया है।

१०. लक्ष्मण के पुत्र ध्वन्य ने हमें जो दीप्तिमान् और कर्मक्षम अश्व प्रदान किया था, वह हमें वहन करे। गौएँ जैसे, गोचरण-स्थान (गोष्ठ) को प्राप्त करती हैं, उसी तरह से उनके (ध्वन्य) द्वारा प्रदत्त महान् धन सम्बरण ऋषि के गृह में उपस्थित हो।

३४ सूक्त

(दैवता इन्द्र। ऋषि सम्वरण। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. जिनके शत्रु उत्पन्न नहीं हुए हैं और जो शत्रुओं का विनाश करते हैं, उन्हें अक्षीण, स्वर्गप्रद और अपरिमित हव्य प्राप्त करते हैं। हे ऋत्विको, उन्हीं इन्द्र के लिए तुम लोग पुरोडाश आदि का पाक करो और अपने उचित कर्म को धारण करो। इन्द्र स्तोत्रवाहक हैं और बहुस्तुत हैं।

२. इन्द्र ने सोमरस-द्वारा अपने जठर को परिपूर्ण किया था और मधुर सोमपान से प्रमुदित हुए थे, जब कि मृगनामक असुर को मारने की इच्छा करके उन्होंने अपरिमित तेजवाले महान् वज्र को ऊपर उठाया था।

३. जो यजमान इन्द्र के लिए अहर्निश सोमाभिषव करते हैं, वे द्युतिमान् होते हैं। जो यजमान यज्ञ नहीं करते हैं; लेकिन धर्म-सन्तति की कामना करते हैं और शोभनीय अलंकार आदि धारण करते हैं तथा धनवान् होकर कुत्सित पुरुषों का साहाय्य करते हैं, समर्थ इन्द्र उन्हें छोड़ देते हैं।

४. समर्थ इन्द्र के जिस यष्टा ने माता-पिता और भ्राता का वध किया है, उस यष्टा के निकट से भी इन्द्र दूर नहीं जाते हैं और उसके द्वारा प्रदत्त हव्य की कामना भी करते हैं। शासक और धनाधिपति इन्द्र पाप से भी विचलित नहीं होते हैं।

५. शत्रुओं को मारने के लिए इन्द्र पाँच या दस सहायकों की कामना नहीं करते हैं। जो सोमाभिषव नहीं करता है और बन्धुओं का पोषण नहीं करता है, उसके साथ इन्द्र संगति नहीं करते हैं। शत्रुओं के कम्पक इन्द्र उसे बाधा पहुँचाते हैं और उसका वध करते हैं। इन्द्र यज्ञ करनेवाले यजमानों के गोष्ठ को गोविशिष्ट करते हैं।

६. संग्राम में शत्रुओं को क्षीण करनेवाले इन्द्र रथचक्र को वेगवान् करते हैं। सोमाभिषव नहीं करनेवाले यजमान से वे दूर रहते हैं और सोमाभिषव करनेवाले यजमान को वर्द्धित करते हैं। विश्वशिक्षक और भयजनक स्वामी इन्द्र यथेच्छ दासकर्म करनेवाले को अपने वश में लाते हैं।

७. इन्द्र बनियों (लोभियों) की तरह धन चुराने के लिए गमन करते हैं और मनुष्यों की शोभा को बढ़ानेवाले उस धन को तथा बहुविध अन्य धन को लाकर यजन करनेवाले यजमानों को देते हैं अर्थात् यज्ञ नहीं करनेवालों का धन यज्ञ करनेवालों को देते हैं। जो व्यक्ति इन्द्र के बल को क्रुद्ध करता है अर्थात् बली इन्द्र को कोपयुक्त करता है, वह व्यक्ति महाविपद् में स्थापित होता है।

८. शोभन धनवाले और बृहत् साहाय्यवाले दो व्यक्ति जब शोभन गौओं के लिए परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होते हैं, तब ऐसा जानकर इन्द्र यज्ञ करनेवाले यजमान की सहायता करते हैं। मेघों को कँपानेवाले इन्द्र उस यज्ञकारी यजमान को गोसमूह प्रदान करते हैं।

९. हे अञ्जनादि गुणविशिष्ट इन्द्र, हम अपरिमित धन के दाता, अग्निवेश के पुत्र प्रसिद्ध शत्रिनामक राजर्षि की स्तुति करते हैं। वे उपमानभूत और प्रख्यात हैं। जलराशि उन्हें अच्छी तरह से सन्तुष्ट करे। उनका धन बलवान् और दीप्तिमान् हो।

३५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अङ्गिरा के अपत्य प्रभुवसु। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुम्हारा जो अतिशय साधक कर्म (प्रज्ञा) है, वह हम लोगों की रक्षा के लिए हो। तुम्हारा कर्म सब मनुष्यों को अभि[illegible]

करनेवाला है, शुद्ध है और संग्राम में दूसरों के द्वारा अनभिभवनीय है।

२. हे इन्द्र, चार वर्णों में जो तुम्हारा रक्षाकार्य है, हे शूर, तीन लोकों में जो तुम्हारा रक्षाकार्य विद्यमान है और जो पञ्चजन-सम्बन्धी तुम्हारा रक्षाकार्य है, उस समस्त रक्षाकार्य को तुम हम लोगों के लिए भली भाँति से आहरण करो।

३. हे इन्द्र, तुम अभिनत फल के निरतिशय साधक, वृष्टिकर्त्ता और शीघ्र शत्रुसंहारक हो। हे इन्द्र, तुम्हारा रक्षणकार्य वरणीय है। हम उसका आह्वान करते हैं। तुम सर्वव्यापी मरुतों के साथ मिलित होकर प्रदान करो।

४. हे इन्द्र, तुम अभीष्ट फलवर्षक हो। यजमानों को धन देने के लिए तुमने जन्म ग्रहण किया है। तुम्हारा बल फल वर्षण करता है। तुम्हारा मन स्वभाव से ही बलवान् है और विरोधियों का दमनकारी है। हे इन्द्र, तुम्हारा पौरुष संघविनाशक है।

५. हे इन्द्र, तुम वज्रधारी हो। तुम्हारा रथ सर्वत्र अप्रतिहतगति से गमन करता है। तुम सौ यज्ञों के अनुष्ठानकर्त्ता हो और बल के अधिपति हो। जो मनुष्य तुम्हारे प्रति शत्रुता का आचरण करता है, तुम उसके विरुद्ध यात्रा करते हो।

६. हे शत्रुओं के हन्ता इन्द्र, यज्ञ करनेवाले मनुष्य संग्राम में तुम्हारा ही आह्वान करते हैं; क्योंकि तुम उद्यतायुध और बहुत प्रजा के मध्य में पुरातन हो।

७. हे इन्द्र, तुम हमारे रथ की रक्षा करो। यह रथ संग्राम में सब प्रकार के धन की इच्छा करता है, अनुचरों के साथ गमन करता है, दुर्निवार्य है और रणसंकुल है।

८. हे इन्द्र, हमारे निकट तुम आत्मीय होकर आओ। अपनी उत्कृष्ट बुद्धि-द्वारा हमारे रथ की रक्षा करो। तुम निरतिशय बलशाली और

दीप्तिमान् हो। तुम्हारे अनुग्रह से हम वरणीय धन या कीर्त्ति तुममें स्थापित करते हैं। तुम द्युतिमान् हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

३६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अङ्गिरा के अपत्य प्रभुवसु। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. इन्द्र हमारे यज्ञ में आगमन करें। जो देव धन के लिए जानते हैं, वे किस तरह के हैं? इन्द्र धन के दाता हैं अथवा स्वभाव से ही दानी हैं। धनुष के साथ गमन करनेवाले धानुष्क की तरह साहसपूर्ण गमन करनेवाले और अत्यन्त तृषित इन्द्र अभिषुत सोमपान करें।

२. हे अश्वद्वय-सम्पन्न शूर इन्द्र, हम लोगों के द्वारा दिया गया सोमरस पर्वतशिखर की तरह तुम्हारे संहारक हनुप्रदेश में आरोहण करे। हे राजमान इन्द्र, तृण-द्वारा जैसे घोड़े तृप्त होते हैं, उसी तरह से हम तुम्हें स्तुतियों-द्वारा प्रीत करते हैं। हे इन्द्र, तुम बहुस्तुत हो।

३. हे बहुस्तुत, हे वज्रवान् इन्द्र, भूमि में वर्तमान चक्र की तरह हमारा हृदय दारिद्रय-भय से काँप रहा है। हे सर्वदा वर्द्धमान इन्द्र, स्तोता पुरुवसु ऋषि शीघ्र ही बहुलता से तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम रथाधिरूढ़ हो।

४. हे इन्द्र, प्रभूत फल को भोगनेवाले स्तोता अभिषव करनेवाले पत्थर की तरह तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे धनवान् और हरिनामक अश्ववाले इन्द्र, तुम वामहस्त से धन दान करते हो और दक्षिण हस्त से भी धन दान करते हो। तुम हमें विफलमनोरथ मत करो।

५. हे इन्द्र, तुम अभिलाषाओं के पूरक हो। अभीष्टवर्षी द्यावा-पृथिवी तुम्हें संवर्द्धित करें। तुम वर्षणकारी हो। घोड़े तुम्हें यज्ञस्थल में वहन करते हैं। हे शोभन हनुवाले, हे वज्रधर इन्द्र, तुम्हारा रथ कल्याणवर्षी है। संग्राम में तुम हम लोगों की रक्षा करो।

६. हे इन्द्र के सहायक मरुतो, अन्नवान् श्रुतरथ राजा ने हमें लोहित वर्णवाले दो अश्व और तीन सौ धेनुरूप धन दिया था। नित्य तरुण उस

श्रुतरथ राजा के लिए सकल प्रजा परिचर्या-सम्पन्न होकर प्रणाम करती है।

३७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अत्रि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. यथाविधि आहूत अग्नि में हव्य प्रदान करने से अग्नि प्रदीप्त होकर सूर्यरश्मि के साथ आहूयमान होते हैं। जो यजमान "इन्द्र के लिए होम करो" यह कहता है, उस यजमान के लिए उषा अहिंसित होती है।

२. अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले और कुश को विस्तृत करनेवाले यजमान सम्भजन करते हैं। पाषाणोत्तोलनपूर्वक जिन्होंने सोमरस निःसृत किया है, वे स्तुति करते हैं। जिस अध्वर्यु के पाषाण से सुमधुर शब्द होता है, वह अध्वर्यु हव्य लेकर नदी में अवगाहन करते हैं।

३. पत्नी पति की इच्छा करती हुई यज्ञ में उसका अनुगमन करती है। इन्द्र इसी प्रकार से अनुगामिनी महिषी का आनयन करते हैं। इन्द्र का रथ हम लोगों के निकट प्रचुर धन वहन करे। वह अधिक शब्द करता है। वह चारों तरफ़ सहस्र धन निःक्षेप करे।

४. जिनके यज्ञ में इन्द्र दुग्धमिश्रित मदजनक सोमरस पान करते हैं, वे राजा कभी व्यथित नहीं होते हैं। वे राजा अनुचरों के साथ सर्वत्र गमन करते हैं, शत्रुओं का संहार करते हैं, प्रजाओं की रक्षा करते हैं और सुख-सम्भोग से युक्त होकर इन्द्र की स्तुति का पोषण करते हैं।

५. जो इन्द्र को अभिषुत सोम प्रदान करता है, वह बन्धुबान्धवों का पोषण करता है, वह प्राप्त धन की रक्षा करने और अप्राप्त धन की प्राप्ति में समर्थ होता है। वह वर्तमान तथा नियत अहोरात्र को जीतता है। वह सूर्य और अग्नि दोनों का ही प्रियपात्र होता है।

सूक्त ३८

(देवता इन्द्र। ऋषि अत्रि। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुमने बहुत कर्म किया है। तुम प्रभूत धन का महान् दान करते हो। हे सर्वदर्शी, हे शोभन धनवाले, तुम हम लोगों को महान् धन प्रदान करो।

२. हे महाबलशाली हिरण्यवर्ण इन्द्र, यद्यपि तुम सुप्रसिद्ध प्रचुर अन्न के अधिपति हो; तथापि वह अत्यन्त दुर्लभ रूप से सर्वत्र कीर्तित होता है।

३. हे वज्रधर इन्द्र, पूजनीय एवम् विख्यात कर्मवाले मरुद्गण तुम्हारे बलस्वरूप हैं। तुम और वे (इन्द्र-मरुत) दोनों ही पृथ्वी के ऊपर स्वेच्छाविहारी होकर शासन करते हो।

४. हे वृत्रहन्ता इन्द्र, हम लोग तुम्हारी उपासना करते हैं। तुम हम लोगों को किसी क्षमताशाली का धन लाकर देते हो; क्योंकि तुम हम लोगों को धनाढ्य करने के अभिलाषी हो।

५. हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र, तुम्हारे अभिगमन से हम शीघ्र ही समृद्ध हों। हे इन्द्र, तुम्हारे सुख में हम अंशभागी हों। हे शूर, तुम्हारे द्वारा हम सुरक्षित हों।

३९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अत्रि। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. हे इन्द्र, हे वज्रधर, तुम्हारा रूप अत्यन्त विचित्र है। देने के लिए तुम्हारे पास जो महामूल्य धन है, हे धनवान् इन्द्र, उसे तुम हम लोगों को, दोनों हाथों से, प्रदान करो।

२. हे इन्द्र, जिस अन्न को तुम श्रेष्ठ समझते हो, वह अन्न हम लोगों को प्रदान करो। हम तुम्हारे उस श्रेष्ठ अन्न के दानपात्र हों।

३. हे इन्द्र, तुम्हारा मन दान देने के लिए विश्रुत और महान् है। हे वज्रधर, तुम हम लोगों को सारवान् अन्न प्रदान करने के लिए आदर प्रदर्शित करते हो।

४. इन्द्र हविर्लक्षण धन से युक्त हैं। वे तुम लोगों के अत्यन्त पूजनीय हैं। वे मनुष्यों के अधिपति हैं। स्तोता लोग प्राचीन स्तोत्रों-द्वारा प्रशंसा करने के लिए उनकी सेवा करते हैं।

५. इन्द्र के लिए ही यह काव्य, वाक्य और उक्थ उच्चरित हुआ है। वे स्तोत्रवाहक हैं। अत्रिपुत्र उनके निकट में ही स्तोत्रों को उच्चस्वर से उच्चारित करते और उद्दीपित करते हैं।

४० सूक्त

(देवता, प्रथम ४ ऋक् के इन्द्र, ५ के सूर्य और अवशिष्ट ४ ऋक् के अत्रि। ऋषि अत्रि। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुम हम लोगों के यज्ञ में आओ। हे सोम के स्वामी इन्द्र, आकर पत्थरों-द्वारा अभिषुत सोम का पान करो। हे फलवर्षक, हे शत्रुओं के अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतों के साथ तुम सोमपान करो।

२. अभिषवसाधन पाषाण वर्षणकारी है। सोमपान-जनित हर्ष वर्षणकारी है। यह अभिषुत सोम वर्षणकारी है। हे फलवर्षक, हे शत्रुओं के अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतों के साथ तुम सोमपान करो।

३. वज्रधर इन्द्र, तुम सोमरस के सेचनकर्त्ता और अभीष्टवर्षी हो। हम विचित्र रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं। हे फलवर्षक, हे शत्रुओं के अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतों के साथ तुम सोमपान करो।

४. इन्द्र ऋजीषी (सोमरस की सिट्ठीवाले) और वज्रधर हैं। इन्द्र अभीष्टवर्षी, शत्रु-संहारकर्त्ता, बलवान्, सबके ईश्वर, वृत्रहन्ता और सोमपानकर्त्ता हैं। इस तरह के इन्द्र घोड़ों को रथ में युक्त करके हम लोगों के अभिमुख आवें और माध्यन्दिन सवन में सोमपान से हृष्ट हों।

५. हे सूर्य (प्रेरक देव), स्वर्भानु नामक असुर ने जब तुम्हें अन्धकार से आच्छन्न कर लिया था, तब उस समय सकल भवन उसी तरह से दीख रहा था, जैसे वहाँवाले सब लोग अपने-अपने स्थान को नहीं जान रहे हैं और मूढ़ हैं।

६. हे इन्द्र, जब तुमने सूर्य के अधोदेश में वर्तमान, स्वर्भानु असुर की द्युतिमान् माया को दूर में ही अपसारित किया था, तब व्रतविघातक अन्धकार-द्वारा समाच्छन्न सूर्य को अत्रि ने चार ऋचाओं-द्वारा प्रकाशित किया था।

७. (सूर्यवाक्य—) हे अत्रि, ऐसी अवस्थावाले हम तुम्हारे हैं। अन्न की इच्छा से द्रोह करनेवाले असुर भयजनक अन्धकार-द्वारा हमें नहीं निगल जायें; अतः तुम और वरुण दोनों हमारी रक्षा करो। तुम हमारे मित्र और सत्यपालक हो।

८. उस समय ऋत्विक् अत्रि ने सूर्य को उपदेश दिया, प्रस्तरखण्डों का घर्षण करके इन्द्र के लिए सोमाभिषव किया, स्तोत्रों-द्वारा देवों की पूजा की और मन्त्र-प्रभाव से अन्तरिक्ष में सूर्य के चक्षु को संस्थापित किया। उस समय उन्होंने स्वर्भानु की समस्त माया को दूर में अपसारित किया।

९. असुर स्वर्भानु ने जिस सूर्य को अन्धकार-द्वारा आच्छन्न किया था, अत्रिपुत्र ने अवशेष में उन्हें मुक्त किया। दूसरे कोई समर्थ नहीं हुए।

४१ सूक्त

(देवता विश्वेदेव। ऋषि अत्रि के अपत्य भौम। छन्द जगती, विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. हे मित्रावरुण देव, तुम दोनों के यज्ञ करने की इच्छा करनेवाला कौन यजमान समर्थ होता है? तुम दोनों स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष के किस स्थान में रहकर हम लोगों की रक्षा करते हो और हव्यदाता यजमान को पशु तथा धन प्रदान करते हो।

२. हे मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुद्गण, तुम सब देव हमारे शोभन और पापवर्जित स्तोत्र का सेवन करो। तुम सब रुद्र के साथ प्रीयमाण होकर पूजा ग्रहण करो।

३. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों दमनकारी हो। हम तुम्हारे रथ को वायुवेग-द्वारा वेगवान् करने के लिए तुम दोनों का आह्वान करते हैं। हे ऋत्विको, तुम लोग द्युतिमान् और प्राणापहारक रुद्र के लिए स्तोत्र और हव्य का सम्पादन करो।

४. मेधावी लोग जिनका आह्वान करते हैं, जो यज्ञ का सेवन करते हैं, शत्रुओं का विनाश करते हैं और स्वर्गीय हैं, वे (वायु, अग्नि, पूषा) क्षिति आदि तीनों स्थानों में जायमान होकर सूर्य के साथ तुल्यरूप से प्रीति उत्पन्न करते हैं। ये सकल विश्वरक्षक देव यज्ञस्थल में शीघ्र आगमन करें जैसे वेगवान् अश्व संग्राम में वेग से प्रधावित होते हैं।

५. हे मरुतो, तुम लोग अश्वसहित धन का सम्पादन करो। स्तोता लोग गो, अश्व आदि धन लाभ के लिए और प्राप्त धन की रक्षा के लिए तुम लोगों की स्तुति करते हैं। उशिजपुत्र कक्षीवान् के होता अत्रि गमनशील अश्वों-द्वारा सुखी हों। जो घोड़े वेगवान् और तुम्हारे हैं।

६. हे हमारे ऋत्विको, तुम लोग द्युतिमान्, कामनाओं के विशेष-पूरक या विप्रवत् पूज्य और स्तुतियोग्य अथवा फलप्रदाता वायुदेव को यज्ञ में जाने के लिए अर्चनीय स्तोत्रों-द्वारा रथाधिरूढ़ करो। गमनवती, यज्ञ ग्रहणकारिणी, रूपवती और प्रशंसनीय देवपत्नियाँ हमारे यज्ञ में आगमन करें।

७. हे अहोरात्राभिमानी देवो, तुम दोनों महान् हो। वन्दनीय स्वर्गस्थ देवों के साथ हम तुम दोनों को सुखदायक और ज्ञापक मन्त्रों के साथ हव्य प्रदान करते हैं। हे देवो, तुम दोनों सब कर्मजात को जानकर यजमान के यज्ञाभिमुख आगमन करो।

८. तुम सब बहुत लोगों के पोषक और यज्ञ के नेता हो। स्तोत्र आदि के द्वारा अथवा हवि देकर हम तुम्हारी स्तुति, धन-लाभ के लिए

करते हैं। वास्तुपति त्वष्टा की हम स्तुति करते हैं। धन देनेवाली और अन्यान्य देवों के साथ गमन करनेवाली या आनन्दित होनेवाली धिषणा (वाणी) की हम स्तुति करते हैं। वनस्पतियों और ओषधियों की हम स्तुति करते हैं।

९. वीरों की तरह जगत् के संस्थापक मेघ, विस्तृत दान के विषय में, हम लोगों के प्रति अनुकूल हों। वे स्तुतियोग्य, आप्त्य, यजनीय, मनुष्यों के हितकारी और हम लोगों की स्तुति से सदा प्रसन्न होकर हम लोगों को समृद्ध करें।

१०. हम वर्षणकारी, अन्तरिक्ष (मेघ) के गर्भस्थानीय जल के रक्षक वैद्युत् अग्नि की, पापवर्जित शोभन स्तोत्रों-द्वारा, स्तुति करते हैं। अग्नि तीन स्थानों में व्याप्त और त्रिविध हैं। मेरे गमनकाल में अग्नि सुख-कर रश्मियों द्वारा मेरे ऊपर क्रुद्ध नहीं होते हैं; किन्तु प्रदीप्त ज्वाला धारण कर वे जंगलों को जलाते हैं।

११. हम अग्निगोत्रोत्पन्न किस प्रकार से महान् रुद्रपुत्र मरुतों की स्तुति करें? सर्वविद् भगदेव को, धन-लाभ के लिए, कौन-सा स्तोत्र कहें। जलदेवता, ओषधियाँ, द्युदेवता, वन और वृक्ष जिनके केशस्वरूप हैं, वे पर्वत हम लोगों की रक्षा करें।

१२. बल अथवा अन्न के अधिपति और आकाशचारी वायु हमारी स्तुतियों को सुनें। नगर की तरह उज्ज्वल, बड़े पर्वत के चतुर्दिक् सरण-शील वारिधारा हमारी वाणी सुनें।

१३. हे महान् मरुतो, तुम लोग शीघ्र ही स्तोत्रों को जानो। हे दर्शनीयो, तुम्हारी स्तुति करनेवाले हम लोग श्रेष्ठ हव्य धारण करके तुम्हारी स्तुति करते हैं। मरुद्गण अनुकूल भाव से आगमन करके, क्षोभ-द्वारा अभिभूत मनुष्य वैरियों को अस्त्रों-द्वारा मार करके, हम लोगों के निकट उपस्थित हों।

१४. हम देव-सम्बन्धी और पृथ्वी-सम्बन्धी जन्म तथा जल-लाभ करने के लिए सुन्दर यज्ञवाले मरुतों की स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ वर्द्धमान हों। प्रीतिदायक स्वर्ग समृद्धि-सम्पन्न हों। मरुतों-द्वारा परिपुष्ट नदियाँ जलपूर्ण हों।

१५. हम सदा स्तुति करते हैं। जो उपद्रवों का निवारण करके हम लोगों की रक्षा करने में समर्थ होती है, वह सबकी निर्मात्री, पूज्या भूमि हम लोगों की स्तुति को ग्रहण करे। प्रशस्त बचनवाले मेधावी स्तोताओं के प्रति वह प्रसन्न हो और अनुकूल हस्त होकर हम लोगों को कल्याण प्रदान करे।

१६. हम लोग किस प्रकार से दानशील मरुतों का समुचित स्तवन करें? किस प्रकार वर्तमान स्तोत्र-द्वारा मरुतों के योग्य उपासना करें? वर्तमान स्तोत्र-द्वारा मरुतों का स्तवन कैसे सम्भव है? अहिर्बुध्न्य देव हम लोगों का अनिष्ट नहीं करें; शत्रुओं को विनष्ट करें।

१७. हे देवो, मनुष्य यजमान सन्तान के लिए और पशुओं के लिए शीघ्र ही तुम लोगों की उपासना करते हैं। हे देवो, मनुष्य लोग तुम्हारी उपासना करते हैं। इस यज्ञ में निर्ऋति देवता कल्याणकर अन्न-द्वारा हमारे शरीर का पोषण करें और जरा दूर करें।

१८. हे द्युतिमान् वसुओ, हम लोग तुम्हारी उस सुमति धेनु से बल-कारक और हृदय-पोषक अन्न लाभ करें। वह दानशीला और सुखदायिनी देवी हम लोगों के सुख के लिए शीघ्र आगमन करे।

१९. गोसंघ की निर्मात्री इड़ा और उर्वशी नदियों के साथ हम लोगों के प्रति अनुकूल हों। निरतिशय दीप्तिशालिनी उर्वशी हम लोगों के यज्ञ आदि कार्य की प्रशंसा करके यजमानों को दीप्ति-द्वारा समाच्छादित करके उपस्थित हो।

२०. पोषक ऊर्जव्य राजा का देवसंघ हम लोगों का सेवन करे।

४२ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि भौम। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रदत्त हव्य के साथ हम लोगों का निरतिशय सुखदायक स्तोत्र वरुण, मित्र, भग और आदित्य के निकट उपस्थित हो। जो प्राण आदि पञ्च वायु के साधक हैं, जो विविध वर्ण के अन्तरिक्ष में अवस्थान करते हैं, जिनकी गति अप्रतिहत है, जो प्राणदाता और सुखसम्पादक हैं, वे वायु हम लोगों का स्तोत्र श्रवण करें।

२. हमारे हृदयंगम और सुखकर स्तोत्र को अदिति देवता ग्रहण करें, जैसे जननी अपने पुत्र को ग्रहण करती है। अहोरात्राभिमानी देव मित्र और वरुण के उद्देश से हम मनोहर, आनन्ददायक और देवग्राह्य स्तोत्र (मन्त्रजात) प्रदान करते हैं।

३. हे ऋत्विको, तुम लोग अतिशय क्रान्तदर्शी और पुरोवर्ती अग्नि अथवा सविता को उद्दीप्त करो—प्रमुदित करो। मधुर सोमरस और घृत-द्वारा इन्हें अभिषिक्त करो—तृप्त करो। वे सविता देव हम लोगों को शुद्ध, हितकर तथा आह्लादक हिरण्य प्रदान करें।

४. हे इन्द्र, तुम हम लोगों को प्रसन्न मन से गौएँ प्रदान करते हो। हे अश्वद्वय-सम्पन्न इन्द्र, तुम हम लोगों को मेधावी पुत्र अथवा ऋत्विक्, कल्याण, देवताओं के हितकर अन्न और यज्ञीय देवों का अनुग्रह प्रदान करते हो।

५. भगदेव, धनस्वामी सविता, वृत्रहन्ता इन्द्र, भली भाँति से धन के विजेता ऋभुक्षा, वाज और पुरन्धि आदि समस्त अमर शीघ्र ही हम लोगों के यज्ञ में उपस्थित होकर हम लोगों की रक्षा करें।

६. हम यजमान मरुत्वान् इन्द्र के कार्यों का वर्णन करते हैं। वे युद्ध से कभी पलायमान नहीं होते हैं। वे जयनशील और जरारहित हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे पराक्रम को किसी पुरातन पुरुष ने नहीं पाया है, उनके

पीछे होनेवालों ने भी नहीं पाया है। और क्या, किसी नवीन ने भी तुम्हारे पराक्रम को नहीं पाया है।

७. हे अन्तरात्मा, तुम अतिशय श्रेष्ठ और रमणीय धनदाता बृहस्पति (मन्त्रपति) की स्तुति करो। वे हविर्लक्षण धन के विभागकर्ता हैं। वे स्तोत्रकर्ता यजमान को महान् सुख प्रदान करते हैं। आह्वान करनेवाले यजमान के निकट वे प्रभूत धन लेकर आगमन करते हैं।

८. हे बृहस्पति, तुम्हारे द्वारा रक्षित होने पर मनुष्य लोग अहिंसित, धनवान् और सुन्दर पुत्रों से युक्त होते हैं। तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत होकर जो कोई धनवान् अश्व, गौ और वस्त्र दान करता है, वह धनलाभ करे।

९. हे बृहस्पति, जो स्तुतिप्रतिपादक हम लोगों को नहीं दान देकर स्वयं उपभोग करता है, जो व्रत धारण नहीं करता है, जो मन्त्रविद्वेषी है, उसके धन को तुम नष्ट करो। सन्तति-सम्पन्न होकर; यद्यपि वह मनुष्य लोक में वर्द्धमान हो रहा है; तथापि तुम उसे सूर्य से पृथक् करो अर्थात् अन्धकार में रक्खो।

१०. हे मरुतो, जो यजमान देव-यज्ञ में राक्षसों को बुलाता है अर्थात् अनुष्ठान को आसुरी बना देता है, अन्न, अश्व, कृषि आदि के द्वारा उत्पन्न भोग के लिए, जो अपने को क्लेश देता (घर्माक्त करता) है और जो तुम्हारी स्तुति करनेवाले की निन्दा करता है, उस यजमान को चक्रविहीन रथ-द्वारा तुम लोग अन्धकार में निमग्न कर देते हो।

११. हे आत्मा, तुम रुद्रदेव की स्तुति करो, जिनके बाण और धनुष सुन्दर हैं—विरोधियों के नाशक हैं। जो समस्त औषधों के ईश्वर हैं, उन्हीं रुद्र का यजन करो और महान् कल्याण के लिए द्युतिमान् और बलवान् या प्राणदाता रुद्र की परिचर्या करो।

१२. दान्त मनवाले और चमस-अश्व-रथ-गौ आदि के निर्माण में कुशलहस्त ऋभुगण, वर्षणकारी इन्द्र की पत्नी गंगा आदि नदियाँ, विभु-द्वारा कृत सरस्वती नदी और दीप्तिमती राका आदि अभीष्टवर्षी तथा दीप्त हैं। ये हम लोगों को धन प्रदान करें।

१३. महान् और शोभन रक्षक इन्द्र या पर्जन्य के लिए हम अतिशय स्तुत्य और सद्योजात स्तुति प्रदान करते हैं। इन्द्र वर्षणकारी हैं। वे कन्यारूप पृथ्वी के हित के लिए नदियों का रूप-विधान करते हैं और हम लोगों को जल प्रदान करते हैं।

१४. हे स्तोताओ, तुम्हारी शोभन स्तुति गर्जनशील और शब्दकारी उदकस्वामी पर्जन्य के पास पहुँचती है। वे मेघों को धारण करते हैं और वारि वर्षण करके द्यावा-पृथिवी को वैद्युतालोक से आलोकित करके गमन करते हैं।

१५. हमारे द्वारा सम्पादित स्तोत्र रुद्र के तरुण पुत्र मरुतों के अभिमुख भली भाँति से उपस्थित हो। हे मन, धनेच्छा हम लोगों को निरन्तर उत्तेजित करती है। विविध (पृषत्) वर्ण के अश्व पर आरोहण करके, जो यज्ञ में गमन करते हैं, उनकी स्तुति करो।

१६. धन के लिए हमारे द्वारा विहित यह स्तोत्र पृथ्वी, स्वर्ग, वृक्ष और ओषधियों के निकट गमन करे। हमारे लिए सब देवों का सुन्दर आह्वान हो। माता पृथ्वी हम लोगों को दुर्मति में मत स्थापित करे।

१७. हे देवो, हम लोग निरन्तर निर्विघ्न महा सुख का भोग करें।

१८. हम लोग अश्विद्वय की उस रक्षा को प्राप्त करें, जिसका पहले किसी ने भी अनुभव नहीं किया है, जो आनन्ददायक तथा सुख-सम्पन्न है। हे अमरणशील अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हम लोगों को ऐश्वर्य, वीर पुत्र और समस्त सौभाग्य प्रदान करो।

४३ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि अत्रि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. द्रुतगामिनी नदियाँ अहिंसित होकर (कोई अनिष्ट नहीं उत्पन्न करके) मधुर रस के साथ हम लोगों के निकट आगमन करें। विशेष प्रीति उत्पन्न करनेवाले स्तोता महान् धन लाभ के लिए आनन्ददायक सप्त महानदियों का आह्वान करें।

२. हम अन्न-लाभ के लिए शोभन स्तव और हव्य-द्वारा हिंसारहित द्यावा-पृथिवी को प्रसन्न करने की इच्छा करते हैं। प्रियवचन, शोभनहस्त और यशोयुक्त मातृ-पितृ-स्वरूप द्यावा-पृथिवी सम्पूर्ण संग्राम या यज्ञ में हम लोगों की रक्षा करें।

३. हे अध्वर्युओ, तुम लोग मधुर आज्य आदि हव्य प्रस्तुत करो और वह रमणीय तथा दीप्त सोम सर्वप्रथम वायु को अर्पित करो। हे वायु, तुम होता की तरह इस सोम को अन्य देवों से पहले पियो। हे वायुदेव, यह मधुर सोमरस तुम्हारे हर्ष के लिए देते हैं।

४. ऋत्विकों की सोमपेषक दसों अँगुलियाँ और सोमरस-निस्सारण पटु दोनों बाहु पाषाण ग्रहण करते हैं। कुशलाङ्गुल्युक्त ऋत्विक् आनन्दित होकर मधुर सोम से शैलज रस दोहन करते हैं एवम् सोम से निर्मल रस निःसृत होता है।

५. हे इन्द्र, तुम्हारी सेवा के लिए, वृत्रवधादि कार्य के लिए, बल के लिए और महान् हर्ष के लिए सोमरस समर्पित किया जाता है। हे इन्द्र, इसलिए हम लोग तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम प्रिय, सुशिक्षित और विनम्र अश्वद्वय को रथ में युक्त करके हम लोगों के निकट आगमन करो।

६. हे अग्नि, तुम हम लोगों के साथ प्रीयमाण होकर मधुर सोम-पान से प्रहृष्ट होने के लिए देवगन्तव्य मार्ग-द्वारा गुना देवी को हम लोगों के निकट लाओ। वह बलशालिनी देवी सर्वत्र गमन करे और समस्त यज्ञ को जाने। स्तोत्र के साथ उस देवी को हव्य समर्पित हो।

७. मेधावी अध्वर्युओं ने अग्नि के ऊपर हव्यपात्र स्थापित किया है, जैसे पिता की गोद में प्रियतम पुत्र हो। मालूम पड़ता है जैसे स्थूल-काय पशु को वे सब अग्नि-द्वारा दग्ध कर रहे हैं।

८. हम लोगों का यह पूजनीय, महान् और सुखदायक स्तोत्र अश्विद्वय को इस स्थान में आह्वान करने के लिए दूत की तरह गमन करे। हे सुखदायक अश्विद्वय, तुम दोनों एक रथ पर आरोहण करके

अर्पित सोम के निकट भारवाहक कील की तरह आगमन करो। जैसे बिना कीलवाली नाभि से रथ का निर्वहण नहीं होता है, उसी तरह से बिना तुम्हारे सोमयाग का निर्वाह नहीं होता है।

९. हम (ऋषि) बलवान् और वेगपूर्वक गमन करनेवाले पूषा तथा वायुदेव की स्तुति करते हैं। ये दोनों देव धन और अन्न के लिए लोगों की बुद्धि को प्रेरित करें अथवा जो देव संग्राम के प्रेरक हैं, वे धनप्रदान करें।

१०. हे उत्पन्न मात्र को जाननेवाले अग्नि, हम लोगों के द्वारा आहूयमान होकर तुम विविध (इन्द्र, वरुण आदि) नामधारी और विभिन्नाकृति निखिल मरुतों का यज्ञ में वहन करते हो। हे मरुतो, तुम सब रक्षा के साथ यजमान के यज्ञ में, शोभन फलवाली स्तुति में और पूजा में उपस्थित होओ।

११. हम लोगों-द्वारा यष्टव्य सरस्वती द्युतमान द्युलोक से यज्ञ-स्थल में आगमन करे तथा महान् मेघ से आगमन करे। हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर वह स्वेच्छापूर्वक हमारे सम्पूर्ण सुखकर स्तोत्रों को सुने।

१२. बलवान्, पुष्टिकारक और स्निग्धाङ्ग बृहस्पति को यज्ञगृह में स्थापित करो। वे गृह में मध्य के अवस्थित होकर सर्वत्र प्रभा विस्तृत करते हैं। वे हिरण्यवर्ण और दीप्तिमान् हैं। हम लोग उनकी पूजा करते हैं।

१३. अग्नि सबको धारण करते हैं। वे अत्यन्त दीप्तिशाली, अभीष्ट-वर्षी तथा शिखा और ओषधि समूह-द्वारा आच्छादित हैं। वे अप्रति-हतगति और त्रिविध भृङ्गविशिष्ट (लोहित, शुक्ल और कृष्णवर्ण की ज्वालाओं से व्याप्त) हैं। वे वर्षणकारी और अन्नदाता हैं। हम लोग उनका आह्वान करते हैं। वे सम्पूर्ण रक्षा के साथ आगमन करें।

१४. यजमान के होता, हव्यपात्रधारी ऋत्विग्गण जननीस्वरूप पृथिवी के उज्ज्वल और अत्युत्कृष्ट स्थान (उत्तर वेदी) पर गमन करते हैं।

जीवनवृद्धि के लिए जैसे लोग शिशु के अङ्गों का घर्षण करते हैं, उसी तरह वे नवजात कोमलप्रकृति अग्नि का पोषण, स्तुतियों के साथ हव्य प्रदान करके, करते हैं।

१५. हे अग्नि, तुम बृहत्स्वरूप हो। धर्म-कार्य-द्वारा जीर्ण होकर स्त्री-पुरुष (दम्पति) एक साथ ही तुम्हें प्रभूत अन्न प्रदान करते हैं। देवगण हमारे द्वारा भली भाँति से आहूत हों। जननी-स्वरूप पृथिवी हमारे प्रति विरुद्ध बुद्धि नहीं धारण करें।

१६. हे देवो, हम लोग निर्मर्याद और बाधा-शून्य सुख प्राप्त करें।

१७. हम लोग अश्विद्वय की उस रक्षा को प्राप्त करें, जिसका पहले किसी ने भी अनुभव नहीं किया है, जो आनन्ददायक तथा सुख-सम्पन्न है। हे अमरणशील अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हम लोगों को ऐश्वर्य, वीर्य, पुत्र और समस्त सौभाग्य प्रदान करो।

४४ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि कश्यप के अपत्य अवत्सार।)

१. प्राचीन यजमानगण, हमारे पूर्ववर्ती लोग, समस्त प्राणी और आधुनिक लोग जिस तरह से इन्द्र की स्तुति करके पूर्णमनोरथ हुए हैं, हे अन्तरात्मा, उसी तरह से तुम भी उनकी स्तुति करके पूर्णमनोरथ होओ। वे देवों के मध्य में ज्येष्ठ, कुशासीन, सर्वज्ञ, हम लोगों के सम्मुख-वर्ती, बलशाली, वेगवान् और जयशील हैं। इस तरह की स्तुति-द्वारा तुम उन्हें संवर्द्धित करो।

२. हे इन्द्र, तुम स्वर्ग में प्रभा विस्तारित करते हो। अवर्षणकारी मेघ के मध्य में जो सुन्दर जलराशि है, उसे मनुष्यों के हित के लिए समस्त दिशाओं में प्रेरित करते हो। वृष्टि आदि सुन्दर कर्म-द्वारा तुम मनुष्यों की रक्षा करो। प्राणियों का वध तुम मत करो। शत्रुओं की माया का तुम अतिक्रम करते हो। तुम्हारा नाम सत्यलोक में विद्यमान है।

३. अग्नि नित्य, फलसाधक और विश्वधारक हव्य को सतत वहन करते हैं। अग्नि अप्रतिहतगति, होमनिर्वाहक और बल-विधायक हैं। वे विशेषतः कुश के ऊपर होकर गमन करते हैं। फलवर्षणकारी, शिशु, तरुण, जरारहित और ओषधियों के मध्य में स्थित हैं।

४. इन यजमानों के लिए यज्ञ को बढ़ानेवाली ये सूर्य की किरणें परस्पर भली भाँति से संयुक्त होकर यज्ञभूमि में गमन करने की अभिलाषा से अवतीर्ण होती हैं। वेगपूर्वक गमन करनेवाली और सबका नियमन करनेवाली इन समस्त किरणों-द्वारा आदित्य जलराशि को निम्न-देश में प्रेरण करते हैं।

५. हे अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र अत्यन्त मनोहर है। जब निःसृत सोमरस काष्ठमय पात्र में गृहीत होता है एवम् तुम उस सोमरस को ग्रहण करके मनोहर स्तोत्र को सुनकर उल्लसित होते हो, तब उपासकों के मध्य में तुम्हारी विशेष शोभा होती है। हे जीवनदाता, यज्ञ में तुम रक्षण करनेवाली शिखा को सर्वत्र वर्द्धित करो।

६. यह वैश्वदेवी जिस प्रकार दृष्ट होती है, उसी प्रकार वर्णित भी होती है। साधक दीप्ति के साथ वह जल के मध्य में अपना रूप या स्तुति धारण करती है। वे देवता हम लोगों के द्वारा पूज्य प्रभूत धन, महावेग, असंख्य वीर्यशाली पुत्र और अकाम्य बल प्रदान करें।

७. यह सर्वदर्शी, अग्रगामी सूर्य असुरों के साथ युद्धाभिलाषी होकर पत्नी उषा के समभिव्याहार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होते हैं। धन इन्हीं के अधीन हैं। वे हम लोगों को उज्ज्वल और सर्वत्र रक्षाकारी गृह तथा पूर्ण सुख प्रदान करें।

८. हे देवश्रेष्ठ सूर्य या अग्नि, यजमान तुम्हारे निकट गमन करते हैं। तुम उदयादि लक्षण-द्वारा परिज्ञात होते हो। ऋषि लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं, जिससे तुम्हारा नाम वर्द्धित होता है। वे जिस विषय की कामना करते हैं, कार्य-द्वारा उसे प्राप्त करते हैं। एवम् जो अपनी इच्छा से पूजा करते हैं, वे प्रचुर पुरस्कार प्राप्त करते हैं।

९. हम लोगों के इन समस्त स्तोत्रों के मध्य में प्रधान स्तोत्र समुद्र-तुल्य सूर्य के निकट उपस्थित हो। यज्ञ-गृह में जो उनका स्तोत्र विस्तीर्ण होता है, वह नष्ट नहीं होता है। जिस स्थान में (स्तोताओं के गृह में) पवित्र सूर्य के प्रति चित्त समर्पित होता है, वहाँ उपासकों का हृदयगत अभिलाष विफल नहीं होता है।

१०. वह सविता देव सबके द्वारा स्तुत्य हैं—सबकी कामनाओं के पूरक हैं। उनके निकट से हम क्षत्र, मनस, अवद, यजत, सध्रि और अवत्सार नामक ऋषि ज्ञानियों-द्वारा भोगयोग्य बलवान् अन्न को चिन्ता-द्वारा पूर्ण करते हैं।

११. विश्ववार, यजत और मायी ऋषि का सोमरस-जनित मद प्रशंसनीय-गमन श्येन पक्षी की तरह शीघ्रगामी है, अदिति की तरह विस्तृत और कक्षापूरक है। वे सोमपान करने के लिए परस्पर प्रार्थना करते हैं और प्रचुर पान करके अतिरिक्त मत्तता लाभ करते हैं।

१२. सदापृण, यजत, बाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य ऋषि तुम लोगों के साथ मिलित होकर शत्रु-संहार करें। वे ऋषि इहलोक और परलोक दोनों लोकों की सकल श्रेष्ठ कामना लाभ कर दीप्तिमान् हों; क्योंकि वे सुमिश्रित हव्य या स्तोत्र-द्वारा विश्वदेवों की उपासना करते हैं।

१३. यजमान अवत्सार के यज्ञ में सुतम्भर ऋषि सुन्दर फलों के पालयिता होते हैं। समस्त यज्ञ-कार्य को ऊर्द्ध्व में उन्नीत करते हैं। गौयें सुन्दर रसयुक्त दुग्ध प्रदान करती हैं। यह दुग्ध वितरित होता है। इस क्रम से घोषणा करके अवत्सार निद्रा-परित्याग-पूर्वक अध्ययन करते हैं।

१४. जो देव सर्वदा गृह में जागरित रहते हैं, ऋचायें उनकी कामना करती हैं। जो देव सदा जागरूक रहते हैं, साम (स्तोत्र आदि) उन्हें प्राप्त करता है। जो देव सर्वदा जागरित रहते हैं, उनसे यह अभिषुत सोम कहें कि "हमें स्वीकार करें। हे अग्नि, हम तुम्हारे नियत स्थान में सहवास करें।"

१५. अग्निदेव सर्वदा गृह में जागरित रहते हैं, ऋचायें उनकी कामना करती हैं। अग्निदेव सदा जागरूक रहते हैं, साम (स्तोत्र आदि) उन्हें प्राप्त करता है। अग्निदेव सर्वदा जागरित रहते हैं, उनसे यह अभिषुत सोम कहे कि "हमें स्वीकार करें। हे अग्नि, हम तुम्हारे नियत स्थान में सहवास करें।"

४५ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता विश्वदेवगण। ऋषि सदापृण। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अङ्गिराओं की स्तुतियों से इन्द्र ने स्वर्ग से वज्र निक्षेप करके पणियों-द्वारा अपहृत निगूढ़ धेनुओं का पुनरुद्धार किया था। आगामिनी उषा की रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं। पुञ्जीभूत अन्धकार (निशा) को विनष्ट करके सूर्य उदित होते हैं। मनुष्यों के गृहद्वारों को उन्होंने उन्मुक्त किया है।

२. पदार्थ (घट-पट आदि) जिस प्रकार से भिन्न-भिन्न रूप (नील-पीत आदि) प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार से सूर्य अपनी दीप्ति विस्तारित करते हैं। किरण-जाल की जननी उषा सूर्य के आगमन की उत्प्रेक्षा करके विस्तृत अन्तरिक्ष से अवतीर्ण होती हैं। तट को विध्वंस करनेवाली नदियाँ प्रवहमान वारिराशि के साथ प्रवाहित होती हैं। गृह में स्थापित सुघटित स्तम्भ की तरह स्वर्ग सुदृढ़ भाव से अवस्थान करता है।

३. महान् स्तोत्रों के उत्पादक प्राचीनों की तरह जब तक हम स्तुति करते हैं, तब तक मेघ के गर्भ में स्थित वारि-राशि हमारे ऊपर पतित होती है। मेघ से जल पतित होता है। आकाश अपने कार्य का साधन करता है। सर्वत्र परिचर्या करनेवाले अङ्गिरा लोग कर्मानुष्ठान-द्वारा नितान्त परिश्रान्त होते हैं।

४. हे इन्द्र, हे अग्नि, हम परित्राण के लिए देवों के द्वारा सेवनीय उत्कृष्ट स्तोत्रों से तुम दोनों का आह्वान करते हैं। भली भाँति से यज्ञ

करनेवाले मरुतों की तरह कर्मतत्पर-परिचरण करनेवाले ज्ञानी लोग, स्तोत्र-द्वारा, तुम दोनों की उपासना करते हैं।

५. इस यज्ञ-दिन में शीघ्र आगमन करो। हम लोग शोभन कर्म करनेवाले होते हैं। विशेष रूप से शत्रुओं की हिंसा करते हैं। प्रच्छन्न शत्रुओं को दूर करते हैं और यजमानों के अभिमुख शीघ्र गमन करते हैं।

६. हे मित्रो, आओ। हम लोग स्तोत्रपाठ करें। जिसके द्वारा अपहृत धेनुओं का गोष्ठ उद्घाटित हुआ था। जिसके द्वारा मनु ने हनुविहीन शत्रु को जीता था। जिसके द्वारा वणिक् की तरह बहु-फलाकांक्षी कक्षीवान् ने जल की इच्छा से वन में जाकर जल-लाभ किया था।

७. इस यज्ञ में ऋत्विकों के हस्त-द्वारा संचालित पाषाण-खण्ड से शब्द उत्थित होता है, जिसके द्वारा नवग्वों और दशग्वों ने इन्द्र की पूजा की थी। यज्ञ में उपस्थित होकर सरमा ने गौओं को प्राप्त किया था और अङ्गिराओं के सकल स्तवादि कर्म सफल हुए थे।

८. इस पूजनीय उषा के उदयकाल में जब अङ्गिरा लोग प्राप्त धेनुओं के साथ मिलित हुए थे, तब उस उत्कृष्ट यज्ञशाला में उपयुक्त दुग्धस्राव होने लगा; क्योंकि सत्य मार्ग से सरमा ने गौओं को देख पाया था।

९. सात अश्वों के अधिपति सूर्य हम लोगों के सम्मुख उपस्थित हों; क्योंकि उन्हें आयाससाध्य पथ-द्वारा एक सुदूरवर्ती गन्तव्य स्थान में उपस्थित होना होगा। वे श्येन पक्षी की तरह शीघ्रगामी होकर प्रदत्त हव्य के उद्देश से अवतरण करते हैं। वे स्थिर-यौवन तथा दूरदर्शी देव निज रश्मि के मध्य में अवस्थान करके प्रभा विस्तारित करते हैं।

१०. उज्ज्वल वारिराशि के ऊपर सूर्य आरोहण करते हैं। जब वे कान्तपृष्ठवाले अश्वों को रथ में युक्त करते हैं, तब उन्हें धीमान् यजमान, जैसे जल के ऊपर नाव हो, उसी तरह से आनयन करते हैं। वारिराशि उनके आदेश को श्रवण करके अवनत होती है।

११. हे देवो, हम जल के लिए तुम लोगों के सर्वदायक स्तोत्र का पाठ करते हैं। नवग्वगण ने जिसके द्वारा दशमास-साध्य यज्ञ का सम्पादन किया था। जिस स्तोत्र-पाठ से हम लोग देवों के द्वारा रक्षणीय हों और पाप की सीमा का अतिक्रमण करें।

४६ सूक्त

(देवता प्रथम ६ ऋक् के विश्वदेवगण और सप्तम तथा अष्टम के देवपत्नी। ऋषि प्रतिक्षत्र। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. सर्वज्ञ प्रतिक्षत्र ने यज्ञभार में अपने को शकट में अश्व की तरह नियोजित किया है। हम होता अथवा अध्वर्यु उस अलौकिक रक्षाविधायक भार को वहन करते हैं। इस भारवहन से हम छुटकारा पाने की इच्छा नहीं करते हैं। यह भार बारम्बार हमारे प्रति समर्पित हो, ऐसी कामना भी हम नहीं करते हैं। मार्गाभिज्ञ, अन्तर्यामी देव पुरोगामी होकर सरल पथ-द्वारा मनुष्यों को ले जायें।

२. हे अग्नि, इन्द्र वरुण और मित्र आदि देवो, तुम सब हमें बल प्रदान करो। विष्णु और मरुत बल प्रदान करें। नासत्यद्वय, रुद्र, देव-पत्नियाँ, पूषा, भग और सरस्वती हम लोगों की पूजा से प्रसन्न हों।

३. हम रक्षा के लिए इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, द्यावा-पृथिवी, मरुद्गण, पर्वत, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति और सविता का आह्वान करते हैं।

४. विष्णु अथवा अहिंसाकारी वायु अथवा धनदाता सोम हम लोगों को सुख प्रदान करें। ऋभुगण, अश्विद्वय, त्वष्टा और विभु हम लोगों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए अनुकूल हों।

५. पूजनीय तथा स्वर्गलोक में वर्त्तमान मरुद्गण कुश के ऊपर उपवेशन करने के लिए हम लोगों के निकट आगमन करें। बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा हम लोगों को सम्पूर्ण गृह-सम्बन्धी सुख प्रदान करें।

६. शोभन स्तुतिवाले पर्वत और दानशीला नदियाँ हम लोगों की रक्षा करें। धनदाता भगदेव अन्न और रक्षा के साथ आगमन करें। सर्वत्र व्याप्त होनेवाली देवमाता अदिति हमारे स्तोत्र या आह्वान को श्रवण करें।

७. इन्द्र आदि देवों की पत्नियाँ हम लोगों के स्तोत्र की कामना करके हम लोगों की रक्षा करें। वे हम लोगों की इस तरह से रक्षा करें, जिससे हम लोग बलवान् पुत्र तथा प्रभूत अन्न लाभ करें। देवियो, तुम सब पृथिवी पर रहो या अन्तरिक्ष में उदकव्रत (कर्म) में निरत रहो; परन्तु हम लोग तुम्हारा सुन्दर आह्वान करते हैं। तुम सब हम लोगों को सुख प्रदान करो।

८. देवियाँ, देवपत्नियाँ हव्य भक्षण करें। इन्द्राणी, अग्नायी, दीप्तिमती अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि प्रत्येक हम लोगों की स्तुति को श्रवण करें। देवियाँ हव्य भक्षण करें। देवपत्नियों के मध्य में जो ऋतुओं की अधिष्ठात्री देवी हैं, वे स्तोत्र श्रवण करें और हव्य भक्षण करें।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

---

४७ सूक्त

(तृतीय अध्याय। देवता विश्वदेवगण। ऋषि प्रतिरथ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. परिचर्याकारिणी, नित्य तरुणी, पूजनीया और पूजिता उषा आहूत होकर शक्तिमती जननी की तरह कन्या-स्वरूप पृथिवी का चैतन्य विधान करती हैं, मानवों के कार्य को प्रवर्तित करती हैं और द्युलोक से रक्षाकारी देवों के साथ यज्ञगृह में आगमन करती हैं।

२. असीम और सर्वव्यापिनी रश्मियाँ प्रकाशनरूप अपने कर्त्तव्य का सम्पादन करके, अमर सूर्यमण्डल के साथ एकत्र उपवेशन करके द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष में परितः गमन करती हैं।

३. उबक अथवा कामनाओं के सेचक, देवों के आनन्द-विधायक, दीप्तिमान् और द्रुतगामी रथ ने जनक-स्वरूप पूर्व दिशा में प्रवेश किया था। पश्चात् स्वर्ग के मध्य में निहित विभिन्नवर्ण और सर्वव्यापी सूर्य अन्तरिक्ष के उभय प्रान्त में अग्रसर हुए थे और जगत् की रक्षा की थी।

४. अपनी कल्याण-कामना करके चार ऋत्विक् सूर्य को हवि-द्वारा धारण करते हैं। दसों दिशायें निज गर्भजात आदित्य को दैनिक गति के लिए प्रेरित करती हैं। आदित्य की, शीत, ग्रीष्म और वर्षा के भेद से, त्रिविध रश्मियाँ अन्तरिक्ष की सीमा में द्रुतवेग से परिभ्रमण करती हैं।

५. हे ऋत्विको, यह पुरोभाग में दृश्यमान शरीर-मण्डल अतिशय स्तवनीय है। इसी मण्डल से नदियाँ प्रवाहित होती हैं। जलराशि इसमें अवस्थान करती है। अन्तरिक्ष से अन्य युग्मभूत समान बल अहोरात्र इसी से उत्पन्न हुए हैं। वे इसे धारण करते हैं।

६. इसी सूर्य के लिए यजमान स्तोत्र और यज्ञ का विस्तार करते हैं। इसी पुत्रस्वरूप सूर्य के लिए मातायें (उषा या दिशायें) तेजोरूप वस्त्र बुनती हैं। वर्षणकारी सूर्य के सम्पर्क से हृष्ट होकर पत्नीस्वरूप रश्मियाँ आकाश-मार्ग होकर हम लोगों के निकट उपस्थित हों।

७. हे मित्र और वरुण, इस स्तोत्र को ग्रहण करो। हे अग्नि, हम लोगों के मिश्र (विशुद्ध) सुख के लिए इस स्तोत्र को ग्रहण करो। हम लोग स्थिति और प्रतिष्ठा लाभ करें। हम दीप्तिमान्, शक्तिमान् और सबके आश्रयभूत सूर्य को नमस्कार करते हैं।

४८ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि अत्रि के अपत्य प्रतिभानु। छन्द जगती।)

१. सबके प्रिय और पूजनीय उस वैद्युत तेज की कब हम पूजा करेंगे? जो स्वाधीन बल है और जिसके सब अन्न अपने हैं। जब आच्छादन-

कारिणी या सेव्यमाना आग्नेय शक्ति प्रज्ञावती होकर परिमेय अन्तरिक्ष में मेघ के ऊपर वृष्टिजल को विस्तारित करती है।

२. ऋत्विकों-द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञान को ये उषायें विस्तारित करती हैं क्या? एक प्रकार की आवरक दीप्ति-द्वारा सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करती हैं। देवाभिलाषी लोग निवृत्त (व्यतीत) और आगामिनी उषाओं को त्यागकर वर्तमान उषा के द्वारा अपनी बुद्धि को वर्द्धित करते हैं।

३. अहोरात्र में निष्पन्न सोम-द्वारा हृष्ट होकर इन्द्र मायावी वृत्र के लिए दीर्घ वज्र को दीप्त करते हैं। इन्द्रात्मक आदित्य की शतसंख्यक रश्मियाँ दिवसों को भली भाँति से निर्वातित और प्रवर्तित करके अपने गृह आकाश में विचरण करती हैं।

४. परशु की तरह अग्नि की उस स्वाभाविक जाति को हम देखते हैं। रूपवान् आदित्य के रश्मिसमूह का कीर्त्तन हम भोग के लिए करते हैं। वह देव (आदित्य) सहायक होकर यज्ञस्थल में आह्वानकारी यजमान को अन्नपूर्ण गृह तथा रत्न प्रदान करते हैं।

५. रमणीय तेज से आच्छादित होकर अग्नि अन्धकार और शत्रुओं को विनष्ट करते हैं तथा चारों तरफ़ ज्वाला को विस्तारित करके जिह्वा-द्वारा घृतादि को प्राप्त करते हैं। पुरुषत्व-द्वारा कामनाओं के पूरक अग्नि को हम नहीं जानते हैं; क्योंकि ये महान् भजनीय सविता देव वरणीय धन प्रदान करते हैं।

४९ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि अत्रि के अपत्य प्रतिप्रभ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अभी हम तुम यजमानों के लिए सविता और भगदेव के समीप उपस्थित होते हैं। वे मनुष्य यजमानों को धन प्रदान करते हैं। हे नेतृस्वरूप बहुभोगकर्त्ता अश्विद्वय, तुम दोनों से मैत्री की कामना करके हम प्रतिदिन तुम दोनों की उपस्थिति-प्रार्थना करते हैं।

२. हे अन्तरात्मा, शत्रुओं के निवारक सविता का प्रत्यागमन जानकर सूक्तों-द्वारा उनकी परिचर्या करो। वे मनुष्यों को श्रेष्ठ धन दान करते हैं। नमस्कार अथवा हविर्विशेष से उनका स्तवन करो।

३. पोषक, भजनीय तथा अखण्डनीय अग्नि जिह्वा-द्वारा वरणीय काष्ठ को वहन करते हैं अथवा वरणीय अन्न यजमान को प्रदान करते हैं। सूर्य तेज को आच्छादित करते हैं। इन्द्र, विष्णु, वरुण, मित्र और अग्नि आदि दर्शनीय देव शोभन (याग-दानादिविशिष्ट) दिवस को उत्पन्न करते हैं।

४. किसी के द्वारा भी अतिरस्कृत सविता देव हम लोगों को अभिमत धन प्रदान करें। उस धन को देने के लिए स्पन्दनशील नदियाँ गमन करें। इसी लिए हम यज्ञ के होता स्तोम-पाठ करते हैं। हम बहुविध धन के स्वामी हों, अन्न और बल से रमणीय हों।

५. जिन यजमानों ने वसुओं को (यज्ञ में निवास करनेवाले देवों को) गमनशील अन्न दिया है और जिन्होंने मित्र तथा वरुण के लिए स्तोत्र-पाठ किया है, उन्हें महान् तेज प्राप्त हो। हे देवो, उन्हें दीर्घतर सुख प्रदान करो। हम द्यावा-पृथिवी की रक्षा प्राप्त कर हृष्ट हों।

५० सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि अत्रि के अपत्य स्वति। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. सम्पूर्ण मनुष्य सविता देव से सखिता की प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उनसे धन चाहते हैं। उनके अनुग्रह से सब लोग, पुष्टि के लिए, पर्याप्त धन प्राप्त करते हैं।

२. हे नेता, हे देव, तुम्हारे उपासक हम यजमान तथा इन्द्रादि के उपासक होता प्रभृति तुम्हारे ही हैं। हम और वे दोनों ही धनयुक्त हों। हम लोगों की कामना सिद्ध हो।

३. इसलिए इस यज्ञ में हम ऋत्विजों के, अतिथि की तरह, पूज्य देवों की परिचर्या करो। इसलिए इस यज्ञ में हविः प्रदान करके देव-

पत्नियों की परिचर्या करो। हे देवो, पृथक्कर्त्ता देवसमूह या सविता दूर मार्ग में वर्तमान समस्त वैरियों को या अन्य शत्रुओं को दूर करें।

४. जिस यज्ञ में यज्ञ को वहन करनेवाला, यूपयोग्य पशु यूप के निकट उपस्थित होता है, उस यज्ञ में सविता यजमान को कुशल तथा धीर स्त्री की तरह गृह, पुत्र, भृत्यादि और धन प्रदान करते हैं।

५. हे नेता, हे सविता देव, तुम्हारा यह धनवान् और सबको पालन करनेवाला रथ हम लोगों का कल्याण करे। हम सब स्तुतियोग्य सविता के स्तोता हैं। हम धन के लिए, सुख के लिए तथा अविनष्ट होने के लिए उनकी स्तुति करते हैं एवम् हम सविता देव के स्तोता उनकी स्तुति करते हैं।

५१ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि स्वस्ति। छन्द गायत्री, जगती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. हे अग्नि, तुम सोमपान के लिए इन्द्र आदि सम्पूर्ण रक्षक देवों के साथ हव्य देनेवाले हम यजमानों के समीप आओ।

२. हे सत्यस्तुतिवाले अथवा अबाध्य कर्म करनेवाले देवो, हे सत्य को धारण करनेवालो, तुम सब हमारे यज्ञ में आगमन करो और अग्नि की जिह्वा-द्वारा आज्य अथवा सोमरस आदि का पान करो।

३. हे मेधाविन् अथवा विविध कामनाओं के पूरक सम्भजनीय अग्नि, प्रातःकाल में आनेवाले मेधावी देवों के साथ तुम सोमपान के लिए आगमन करो।

४. यह पुरोभाग में वर्तमान सोम अभिषवण फलक-द्वारा अभिषुत हुआ है और पात्र में पूर्ण किया गया है। यह इन्द्र और वायु के लिए प्रिय है। हे इन्द्र और वायु, इस सोमरस को पीने के लिए आगमन करो।

५. हे वायु, हवि देनेवाले यजमान के लिए प्रीयमाण होकर तुम सोम-पान करने के लिए आगमन करो। आकर के अभिषुत सोमरूप अन्न का भक्षण करो।

६. हे वायु, तुम और इन्द्र इस अभिषुत सोम को पान करने के योग्य हो; इसी लिए अहिंसक होकर तुम दोनों इस सोमरस का सेवन करो और सोमात्मक अन्न के उद्देश से आगमन करो।

७. इन्द्र तथा वायु के लिए दधिमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है—सम्पादित हुआ है। हे इन्द्र और वायु, निम्नगामिनी नदियों की तरह वह सोम तुम दोनों के अभिमुख गमन करता है।

८. हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण देवों के साथ मिलकर तथा अश्विद्वय और उषा के साथ समान प्रीति स्थापित करके आगमन करो। यज्ञ में जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोम में रमण करो।

९. हे अग्नि, तुम मित्र, वरुण, सोम तथा विष्णु के साथ मिलकर आगमन करो। यज्ञ में जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोम में रमण करो।

१०. हे अग्नि, तुम आदित्य, वसुगण, इन्द्र और वायु के साथ मिलकर आगमन करो। यज्ञ में जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोम में रमण करो।

११. हम लोगों के लिए अश्विद्वय अविनश्वर कल्याण करें, भग कल्याण करें तथा देवी अदिति कल्याण करें। बलवान् अथवा सत्यशील और शत्रु-संहारक अथवा बलदाता पूषा हम लोगों का मङ्गल करें। शोभन ज्ञानविशिष्ट द्यावा-पृथिवी हम लोगों का मङ्गल करें।

१२. कल्याण के लिए हम लोग वायु का स्तवन करते हैं और सोम का भी स्तवन करते हैं। सोम निखिल लोक के पालक हैं। सब देवों के साथ मन्त्रपालक बृहस्पति की स्तुति कल्याण के लिए करते हैं। अदिति के पुत्र देवगण अथवा अरुणादि द्वादश देव हम लोगों के लिए कल्याण-कर हों।

१३. इस यज्ञ दिन में सम्पूर्ण देव हम लोगों के लिए कल्याण करें और रक्षा करें। मनुष्यों के नेता और गृहदाता अग्नि हम लोगों के लिए कल्याण करें और रक्षा करें। दीप्तिमान् ऋभुगण भी हम लोगों के कल्याण की रक्षा करें। रुद्रदेव हम लोगों के कल्याण की, पाप से, रक्षा करें।

१४. हे अहोरात्राभिमानी मित्र और वरुण देव, तुम दोनों मंगल करो। हे हितमार्गाभिमानिनी धनवती देवी, कल्याण करो। इन्द्र और अग्नि दोनों ही हम लोगों का कल्याण करें। हे अदिति देवी; तुम हम लोगों का कल्याण करो।

१५. सूर्य और चन्द्र जिस तरह से निरालम्ब मार्ग में राक्षसादि के उपद्रव के बिना सञ्चरण करते हैं, उसी तरह से हम लोग भी मार्ग में सुखपूर्वक विचरण करें। प्रवास में चिरकाल हो जाने से भी अक्रुद्ध और स्मरण करनेवाले बन्धुओं से हम मिलित हों।

५२ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि अत्रि के अपत्य श्यावाश्व। छन्द अनुष्टुप् और पंक्ति।)

१. हे श्यावाश्व ऋषि, तुम धीरता से स्तुति-योग्य मरुतों की अर्चना करो। यागयोग्य मरुद्गण प्रतिदिन हविर्लक्षण अहिंसक अन्न को प्राप्त करके प्रमुदित होते हैं।

२. वे अविचलित बल के सखा हैं, वे धीर हैं, वे मार्ग में परिभ्रमण करते हैं और स्वेच्छापूर्वक हमारे पुत्र-भृत्यादि की रक्षा करते हैं।

३. स्पन्दनशील और जलवर्षक मरुद्गण रात्रि को अतिक्रम करके गमन करते हैं। जिस लिए वे इस प्रकार के हैं; इसी लिए हम अभी मरुतों के द्युलोक और भूमि में वर्तमान तेज की स्तुति करते हैं।

४. हे होताओ, तुम लोग धीरतापूर्वक मरुतों को किस लिए स्तवन

और हव्य प्रदान करते हो ? इसी लिए कि वे सम्पूर्ण मरणशील मनुष्यों को सब काल में हिंसकों से बचाते हैं।

५. हे होताओ, जो पूजनीय, सुन्दर दानविशिष्ट, कर्म के नेता और अधिक बलवाले हैं, ऐसे यागयोग्य द्युतिमान् मरुतों को यज्ञसाधन हव्य प्रदान करो।

६. वृष्टि के नेता महान् मरुद्गण रोचमान आभरण-विशेष से तथा आयुध-विशेष से शोभित होते हैं। मेघभेदन के लिए वे आयुध-विशेष को प्रक्षिप्त करते हैं। विद्युत् शब्द करनेवाली जलराशि की तरह मरुतों का अनुगमन करती है। द्युतिमान् मरुतों की दीप्ति स्वयम् निःसृत होती है।

७. जो पृथ्वी-सम्बन्धी मरुद्गण हैं, और वर्द्धमान होते हैं, जो महान् अन्तरिक्ष में वर्द्धमान होते हैं, वे नदियों के बल (धारा) में तथा महान् द्युलोक के मध्य में वृद्धि प्राप्त करें। इस प्रकार वृष्टि के लिए सर्वत्र वर्द्धमान मरुत् मेघभेदन के लिए आयुध-विशेष को प्रक्षिप्त करते हैं।

८. हे स्तोताओ, मरुतों के उत्कृष्ट बल की स्तुति करो। वह बल अत्यन्त प्रवृद्ध तथा सत्यमूल है। वृष्टि के नेता मरुद्गण, गमनशील होकर सबकी रक्षा-बुद्धि से, जल के लिए, स्वयं परिश्रान्त होते हैं।

९. मरुद्गण परुष्णी नामक नदी में वर्तमान रहते हैं और सबको शुद्ध करनेवाली दीप्ति-द्वारा अपने को आच्छादित करते हैं। वे अपने रथचक्र के द्वारा या बल के द्वारा मेघ अथवा पर्वत को विदीर्ण करते हैं।

१०. जो मरुद्गण हम लोगों के अभिमुख मार्ग से गमन करते हैं, जो सर्वत्र गमन करते हैं, जो गिरि-कन्दराओं में गमन करते हैं और जो अनुकूल मार्गगामी हैं, वे उपर्युक्त चारों नामवाले मरुद्गण विस्तृत होकर हमारे लिए यज्ञ वहन करते हैं।

११. अभिमत वृष्ट्यादि के नेता जगत् का अतिशय वहन करते हैं। स्वयं सम्मिलित करनेवाले जगत् का अतिशय वहन करते हैं। दूर देश

अन्तरिक्ष में वे ग्रह, तारा, मेघ आदि को धारण करते हैं। इस प्रकार से उनके रूप नानाविधि और दर्शनीय होते हैं।

१२. छन्द-द्वारा स्तुति करनेवाले और जल की इच्छा करनेवाले स्तोता लोगों ने मरुतों की स्तुति की थी तथा तृषित गौतम के पानार्थ कूप का आनयन किया था। उनमें कुछ मरुतों ने अदृश्य तस्कर की तरह स्थित होकर हमारी रक्षा की थी तथा कितने ही प्राण रूप से दृश्यमान होकर शरीर का बल साधन किया था।

१३. हे श्यावाश्व ऋषि, जो मरुद्गण दर्शनीय विद्युद्रूपी आयुध से विद्योतमान, मेधावी और सबके विधाता हैं, उन मरुद्गण की, रमणीय स्तुति से, तुम परिचर्या करो।

१४. हे ऋषि, तुम हविर्दान तथा स्तुति के साथ मरुतों के निकट आदित्य की तरह उपस्थित होओ। हे बल-द्वारा पराभूत करनेवाले मरुतो, तुम लोग द्युलोक से अथवा अन्य दोनों लोकों से हमारे यज्ञ में आगमन करो। हम सब तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१५. स्तोता शीघ्रता से मरुतों की स्तुति करके अन्य देवों की अभि-प्राप्ति-कामना नहीं करते हैं। स्तोता ज्ञानसम्पन्न, शीघ्र गमन में प्रसिद्ध तथा फलदाता मरुतों से अभिमत दान प्राप्त करते हैं।

१६. जिन प्रेरक मरुतों ने हमें अपने बन्धुओं के अन्वेषण में यह वचन कहा था। उन्होंने द्युदेवता अथवा पृश्निवर्ण गौ को माता बताया था और अन्नवान् अथवा गमनवान् रुद्र को अपना पिता बताया था, वे समर्थ हैं।

१७. सप्त-सप्त-सङ्ख्यक सर्वसमर्थ मरुद्गण एक-एक होकर हमें शतसंख्यक गौ-अश्व आदि दें। इनके द्वारा प्रदत्त गौसमूहात्मक प्रसिद्ध धन को हम यमुनातीर में प्राप्त करें। उनके द्वारा प्रदत्तअश्व-समूहात्मक धन को प्राप्त करें।

५२ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि अत्रि के अपत्य श्यावाश्व। छन्द ककुभ, बृहती, गायत्री, अनुष्टुप् और उष्णिक्।)

१. कौन पुरुष मरुतों की उत्पत्ति को जानता है? कौन पहले मरुतों के सुख में वर्तमान था? जब उन्होंने पृथ्वी को रथ में युक्त किया था, तब इनके बल-रक्षक सुख को कौन जानता था?

२. ये मरुद्गण रथ पर उपविष्ट हुए हैं, यह किसने सुना है अथवा इनकी रथध्वनि को किसने सुना है? यह किस प्रकार गमन करते हैं, यह कौन जानता है? अथवा देव आदि किस प्रकार इनका अनुगमन करें? किस दानशील के लिए बन्धुभूत वर्षक मरुद्गण, बहुत अन्न के साथ, अवतीर्ण होंगे?

३. सोमपान-जनित हर्ष के लिए द्युतिमान् अश्वों पर आरोहण करके जो मरुत् हमारे निकट आये थे, उन्होंने कहा था—वे नेता, मनुष्यों के हितकर्त्ता और मूर्त्ति-हीन हैं। उस प्रकार हम लोगों की स्थित देखकर उन्होंने कहा कि हे ऋषि, स्तवन करो।

४. हे मरुतो, जो दीप्ति तुम लोगों के आभरण के आश्रयभूत है, जो आयुधों में है जो माला-विशेष में है, जो उरोभूषण में है और जो हस्त-पादस्थित कटक में हैं एवम् जो दीप्ति रथ तथा धनुष में विद्यमान है उन समस्त दीप्तियों की हम वंदना करते हैं।

५. हे शीघ्र दान देनेवाले मरुतो, वृष्टि की सर्वत्र गमनशील दीप्ति की तरह तुम लोगों के दृश्यमान रथ को देखकर हम प्रमुदित होते हैं और स्तुति करते हैं।

६. नेता तथा शोभन दानवाले मरुद्गण हवि देनेवाले यजमान के लिए अन्तरिक्ष से जलधारक मेघ को बरसाते हैं। वे द्यावा-पृथिवी के लिए मेघ को विमुक्त करते हैं। इसके अनन्तर वृष्टिप्रद मरुत् सर्वत्र गमनशील उदक के साथ व्याप्त होते हैं।

७. निर्भिद्यमान मेघ से निःसृत जलराशि उदक के साथ अन्तरिक्ष में प्रसारित होती है, जैसे दुग्ध सिञ्चन करनेवाली नवप्रसूता गौ हो। मार्ग में जाने के लिए विमुक्त शीघ्रगामी अश्व की तरह नदियाँ महावेग से प्रधावित होती हैं।

८. हे मरुतो, तुम लोग द्युलोक से, अन्तरिक्ष से अथवा इसी लोक से आगमन करो। दूर देश द्युलोक इत्यादि में अवस्थान नहीं करो।

९. हे मरुतो, रसा, अनितभा और कुभा नाम की नदियाँ एवम् सर्वत्र गमनशील सिन्धु (समुद्र) तुम लोगों को नहीं रोकें। जलमयी सरयू तुम लोगों को निरुद्ध नहीं करें। हम सब तुम्हारे आगमन-जनित सुख प्राप्त करें।

१०. तुम लोगों के प्रेरक नूतन रथ के बल पर और दीप्त मरुद्गण का हम स्तवन करते हैं। वृष्टि मरुतों का अनुगमन करती है अथवा वृष्टि-प्रद मरुद्गण सर्वत्र गमन करते हैं।

११. हे मरुतो, हम शोभन स्तुति और हविः प्रदानादि लक्षण कार्य-द्वारा तुम्हारे बल को, अविवक्षित गण का और सप्त-सप्त समुदायात्मक गण का अनुसरण करते हैं।

१२. आज के दिन किस हव्य देनेवाले यजमान के निकट, प्रकृष्ट रथ-द्वारा, मरुद्गण गमन करेंगे?

१३. जिस दयायुक्त हृदय से तुम लोग पुत्र और पौत्र को अक्षीण धान्यबीज बहु बार प्रदान करते हो, उसी चित्त से हम लोगों को भी वह धान्यबीज प्रदान करो। क्योंकि हम लोग तुम्हारे निकट सर्वाङ्गोपेत अथवा आयुर्युक्त तथा सौभाग्यात्मक धन की याचना करते हैं।

१४. हे मरुतो, हम लोग कल्याण-द्वारा पाप को परित्याग करके निन्दक शत्रुओं को जीतें। तुम्हारे द्वारा वृष्टि के प्रेरित होने पर हम सुख, पाप-निवारक उदक और गोयुक्त औषध प्राप्त करें।

१५. हे पूजित और नेता मरुतो, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह देवों-द्वारा अनुगृहीत और शोभन पुत्र-पौत्रादि से युक्त होता है। हम लोग उसी व्यक्ति की तरह हों; क्योंकि हम लोग तुम्हारे ही हैं।

१६. हे ऋषि, स्तुति करनेवाले इस यजमान के यज्ञ में तुम दाता मरुद्गण की स्तुति करो। तृणादि भक्षण करने के लिए गमन करनेवाली गौओं की तरह मरुद्गण आनन्दित होते हैं। पुरातन बन्धु की तरह गमनशील मरुतों का आह्वान करो। स्तवन की इच्छा करनेवाले मरुतों की, वचन-द्वारा, स्तुति करो।

५४ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. मरुत्सम्बन्धी बल के लिए इस क्रियमाण स्तुति को प्रेषित करो अर्थात् मरुतों के बल की प्रशंसा करो। वे स्वयं तेजोविशिष्ट पर्वतों को विदीर्ण करनेवाले, घर्मशोषक, द्युलोक से आगत और द्युतिमान् अन्नवाले हैं। इन्हे प्रचुर अन्न प्रदान करो।

२. हे मरुतो, तुम्हारे गण प्रादुर्भूत होते हैं। वे दीप्तिमान् जगद्रक्षणार्थ जलाभिलाषी, अन्न के वर्द्धयिता, गमन करने के लिए अश्वों को रथ में युक्त करनेवाले सर्वत्र गमनशील और विद्युत् के साथ सम्मिलित होनेवाले हैं। उसी समय त्रित (मेघ या मरुद्गण) शब्द करते हैं और चतुर्दिक् गमन करनेवाली जलराशि भूमि पर पतित होती हैं।

३. द्युतिमान् तेजवाले, वृष्टि आदि के नेता, आयुध से युक्त (पत्थर रूप आयुधवाले), प्रदीप्त, पर्वत अथवा मेघ को विदीर्ण करनेवाले, बारम्बार उदक-दाता, वज्रक्षेपक, एकत्र शब्द करनेवाले, उद्धतबल, मरुद्गण वृष्टि के लिए प्रादुर्भूत होते हैं।

४. हे रुद्रपुत्र मरुतो, तुम लोग अहोरात्र को प्रवर्तित करो। हे सर्वसमर्थ, तुम लोग अन्तरिक्ष तथा लोकों को विक्षिप्त करो। हे कम्पनकारी, तुम लोग समुद्रगर्भस्थ नौका की तरह मेघों को कम्पित करो। तुम लोग शत्रुओं के नगरों को विध्वस्त करो। हे मरुतो, हिंसा मत करो।

५. हे मरुतो, सूर्य जिस तरह से बहुत दूर तक अपनी दीप्ति को विस्तारित करते हैं अथवा देवों के अश्व जिस तरह से गमन में दीर्घता

को विस्तारित करते हैं, उसी तरह से तुम्हारे सुप्रसिद्ध वीर्य और महिमा को स्तोता लोग दूर तक विस्तारित करते हैं।

६. हे वृष्टि के विधाता मरुतो, तुम लोग उदकवान् मेघ को ताड़ित करते हो। तुम्हारा बल शोभमान होता है। हे परस्पर समान प्रीतिवाले मरुतो, नयन जिस तरह से मार्गप्रदर्शन में नायक होता है, उसी तरह से तुम लोग हमें सुगम मार्ग-द्वारा धनादि के समीप ले जाओ।

७. हे मरुतो, तुम लोग जिस मन्त्र-द्रष्टा ब्राह्मण या राजा को सत्कर्म में प्रेरित करते हो, वह दूसरों के द्वारा न पराभूत होता है और न हिंसित होता है। वह न कभी क्षीण होता है, न पीड़ित होता है और न कोई बाधा प्राप्त करता है। उसका धन और उसकी रक्षा कभी नष्ट नहीं होती है।

८. नियुत्संज्ञक अश्वों से युक्त, संघातमक पदार्थों के विश्लेषयिता (मिलित पदार्थों को पृथक् करनेवाले), नराकार अथवा नेता अथवा ग्रामजेता मनुष्य की तरह और आदित्य की तरह दीप्त मरुद्गण उदकवान् होते हैं। जब वे अधिपति होते हैं, तब कूपादि निम्न प्रदेश को अथवा मेघ को जलपूर्ण करते हैं और शब्दायमान होकर सुमधुर तथा सारभूत जल से पृथ्वी को सिंचित करते हैं।

९. यह पृथ्वी मरुतों के लिए विस्तीर्ण प्रदेशवाली होती है अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी मरुतों की है। द्युलोक भी मरुतों के संचारण के लिए विस्तीर्ण होता है। अन्तरिक्षस्थित मार्ग मरुतों के गमन के लिए विस्तीर्ण होता है। मरुतों के लिए ही मेघ या पर्वत शीघ्र वर्षक होते हैं।

१०. हे महाबलवाले सबके नेता मरुतो तथा हे द्युलोक के नेता, तुम लोग सूर्य के उदित होने पर सोमपान के लिए हृष्ट होते हो, उस समय तुम लोगों के अश्व गमनकार्य में शिथिल नहीं होते हैं। तुम लोग भी तीनों लोकों के सम्पूर्ण मार्ग को पार करते हो।

११. हे मरुतो, तुम लोगों के स्कन्धप्रदेश में आयुध शोभमान होते हैं। पैरों में कटक, वक्षःस्थल में हार और रथ के ऊपर शोभमान दीप्ति है। तुम लोगों के हस्तद्वय में अग्निदीप्त रश्मियाँ हैं और मस्तक पर विस्तीर्ण हिरण्मयी पगड़ी है।

१२. हे मरुतो, जब तुम लोग गमन करते हो, तब अप्रतिहत दीप्तिशाली स्वर्ग और समुज्ज्वल वारिराशि विचलित हो जाती है। जब तुम लोग हमारे द्वारा प्रदत्त हव्य को खाकर बलशाली होते हो और उज्ज्वल भाव से दीप्ति प्रकाशित करते हो एवम् जब तुम लोग उदकवर्षण की अभिलाषा प्रकट करते हो, तब तुम लोग भीषण रूप से गर्जना करते हो।

१३. हे विविध बुद्धिवाले मरुतो, हम लोग रयाधिपति हैं। हम लोग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्नवान् धन के स्वामी हों। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन कभी नष्ट नहीं होता है, जैसे आकाश से सूर्य कभी नहीं विलुप्त होते हैं। हे मरुतो, हम लोगों को अपरिमित धन-द्वारा आनन्दित करो।

१४. हे मरुतो, तुम लोग धन और स्पृहणीय पुत्र-भृत्यादि प्रदान करो। हे मरुतो, तुम लोग सोमसहित विप्र की रक्षा करो। हे मरुतो, तुम लोग श्यावाश्व को धन और अन्न प्रदान करो। वे देवों का यजन करते हैं। हे मरुतो, तुम लोग राजा को सुखयुक्त करो।

१५. हे सद्यः रक्षणशील मरुतो, तुम लोगों से हम धन की याचना करते हैं। सूर्य जिस तरह से अपनी रश्मि को दूर तक विस्तारित करते हैं, उसी तरह से हम भी अपने पुत्र-भृत्यादि को उसी धन से विस्तारित करें। हे मरुतो, तुम लोग हमारे इस स्तोत्र की कामना करो, जिससे हम सौ हेमन्त अतिक्रमण करें अर्थात् सौ वर्ष जीवित रहें।

५५ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. अतिशय यष्टव्य और दीप्त आयुधवाले मरुद्गण यौवन रूप प्रभूत अन्न धारण करते हैं। वे वक्षःस्थल पर हार धारण करते हैं। सुख-

पूर्वक नियमन योग्य (विनीत) तथा शीघ्रगामी अश्व उन्हें वहन करते हैं। शोभन भाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

२. हे मरुतो, तुम लोग जैसा जानते हो अर्थात् जो उचित समझते हो, वैसी सामर्थ्य स्वयम् धारण करते हो—तुम्हारी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध है। हे मरुतो, तुम लोग महान् और दीर्घ होकर शोभमान होओ; अन्तरिक्ष को बल-द्वारा व्याप्त करो। शोभमान भाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

३. महान् मरुद्गण एक साथ ही उत्पन्न हुए हैं और एक साथ ही वर्धक होते हैं। वे अतिशय शोभा के लिए सर्वत्र वर्द्धमान हुए हैं। सूर्य-रश्मि की तरह वे यागादि कार्य के नेता तथा शोभासम्पन्न हैं। शोभमानभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

४. हे मरुतो, तुम लोगों की महत्ता स्तवनीय है। तुम लोगों का रूप सूर्य की तरह दर्शनीय है। हमारे मोक्ष में अर्थात् स्वर्ग-प्राप्ति के विषय में तुम लोग हमारे सहायक होओ। शोभमानभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

५. हे मरुतो, तुम लोग अन्तरिक्ष से वृष्टि को प्रेरित करो। हे बलसम्पन्न, तुम लोग वर्षण करो। हे दर्शनीयो अथवा शत्रुसंहारको, तुम्हारे प्रीणयिता (सन्तुष्ट करनेवाले) मेघ कभी भी शुष्क नहीं होते हैं। शोभमानभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

६. हे मरुतो, जब तुम लोग रथ के अग्र भाग में पृषती (मरुतों के घोड़े का नाम अथवा पृषद्वर्णवाली घोड़ी) अश्व को युक्त करते हो, तब हिरण्य वर्णवाले कवच को उतार देते हो। तुम लोग सब संग्रामों में विजय प्राप्त करते हो। शोभमानभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

७. हे मरुतो, पर्वत तथा नदियाँ तुम लोगों के लिए प्रतिरोधक नहीं हों। तुम लोग जिस किसी यज्ञादि स्थान में जाने के लिए संकल्प करते हो, वहाँ जाते ही हो। वृष्टि के लिए तुम लोग द्यावा-पृथिवी में व्याप्त होते हो। शोभमानभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

८. हे मरुतो, जो यागादि कार्य पूर्व में अनुष्ठित हुआ है और जो अभी हो रहा है, हे वसुओ, जो कुछ मन्त्रगीत होता है तथा जो कुछ स्तोत्रपाठ होता है, तुम लोग वह सब जानो। शोभनभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

९. हे मरुतो, तुम लोग हमें सुखी करो। हम लोगों के द्वारा किसी अनिष्ट कार्य के हो जाने से, जो तुम्हें कोप उत्पन्न हुआ है, उससे हम लोगों को बाधा मत पहुँचाओ। हम लोगों को अत्यन्त सुख प्रदान करो। स्तुति को अवगत करके हम लोगों के साथ मैत्री करो। शोभनभाव से अथवा उदक के प्रति गमन करनेवाले मरुतों के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

१०. हे मरुतो, तुम लोग हमें ऐश्वर्य के अभिमुख ले जाओ। हम लोगों के स्तोत्र से प्रसन्न होकर हम लोगों को पाप से उन्मुक्त करो। हे यजनीय मरुतो, तुम लोग हम लोगों के द्वारा प्रदत्त हव्य ग्रहण करो, जिससे हम लोग बहुविध धन के अधिपति हों।

५६ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व। छन्द बृहती।)

१. हे अग्नि, रोचमान आभरणों से युक्त और शत्रुओं को पराभूत करनेवाले अथवा यज्ञ के प्रति उत्साहित होनेवाले मरुतों का आह्वान करो। आज यज्ञदिन में दीप्तिमान् स्वर्ग से हम लोगों के अभिमुख आने के लिए मरुतों का आह्वान करते हैं।

२. हे अग्नि, जिस प्रकार से तुम मरुतों को अत्यन्त पूजित जानते हो—उनका आदर करते हो, उसी प्रकार से वे हम लोगों के निकट उपकारक-भाव से आगमन करें। जो तुम्हारे आह्वान-श्रवण मात्र से ही आगमन करते हैं, उन भयंकर दर्शनवाले मरुतों को हव्य प्रदान-द्वारा वर्द्धित करो।

३. पृथ्वी पर अधिष्ठित मनुष्य दूसरे व्यक्ति-द्वारा अभिभूत होने पर जैसे अपने प्रबल स्वामी के निकट गमन करता है, उसी प्रकार मरुत्सेना उल्लासित होकर हम लोगों के निकट आगमन करती है। हे मरुतो, तुम लोग अग्नि की तरह कर्मक्षम और भीषण की तरह दुर्द्धर्ष हो।

४. दुर्द्धर्ष (कठिनता से हिंसनीय) अश्व की तरह जो मरुद्गण अपने बल से बिना आयास के ही शत्रुओं को विनष्ट करते हैं, वे गमन-द्वारा शब्दायमान, व्याप्त और संसार को पूर्ण करनेवाले जल से युक्त मेघ को जल के लिए प्रेरित करते हैं।

५. हे मरुतो, तुम लोग उत्थित होओ। हम लोग स्तोत्र-द्वारा वर्द्धित, वारिराशि की तरह समृद्धिशाली, बलसम्पन्न और अपूर्व मरुतों का (स्तोत्र-द्वारा) आह्वान करते हैं।

६. हे मरुतो, तुम लोग रथ में अरुषी (रोचमान वड़वा) को युक्त करो। रथसमूह में रोहित वर्ण अश्व को युक्त करो। भारवहन के लिए शीघ्र गमनवाले हरिद्वय को युक्त करो। जो वहनकार्य में सुदृढ़ हैं, उन्हें भारवहन के लिए युक्त करो।

७. हे मरुतो, रथ में नियोजित, दीप्तिमान् प्रभूत ध्वनिकारी और दर्शनीय वह अश्व तुम लोगों की यात्रा के सम्बन्ध में विलम्बोत्पादन नहीं करे। रथ में नियुक्त उस अश्व को तुम लोग इस प्रकार से प्रेरित करो, जिससे वह विलम्बोत्पादन नहीं करे।

८. हम लोग मरुद्गण के उस अन्नपूर्ण रथ का आह्वान करते हैं, जिस रथ के ऊपर सुरमणीय जल को धारण करके मरुतों के साथ रोदसी (रुद्र

की पत्नी अथवा मरुतों की माता या वायुपत्नी, माध्यमिका देवी) अवस्थित हैं।

९. हे मरुतो, हम तुम लोगों के उस रथ का आह्वान करते हैं, जो शोभाकारी, दीप्तिमान् और स्तुति-योग्य हैं। जिसके मध्य में सुजाता, सौभाग्यशालिनी मीढ़ुषी मरुतों के साथ पूजित होती हैं।

५७ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व।
छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. हे परस्पर सदयचित्त, सुवर्णमय रथारूढ़, इन्द्र के अनुचर रुद्रपुत्रो, तुम लोग सुगम्य यज्ञ में आगमन करो। हम तुम लोगों के उद्देश्य से यह स्तोत्रपाठ करते हैं। तुम लोग तृषार्त और जलाभिलाषी गोतम के निकट जिस प्रकार स्वर्ग से जल लाये थे, उसी प्रकार हम लोगों के निकट भी आगमन करो।

२. हे सुबुद्धि मरुतो, तुम लोगों को भक्षणसाधन आयुध, छुरिका, उत्कृष्ट धनुर्बाण, तूणीर और श्रेष्ठ अश्व तथा रथ हैं। तुम लोग अस्त्र-द्वारा सुसज्जित होओ। हे पृश्निपुत्रो, हम लोगों के कल्याण-विधानार्थ आगमन करो।

३. हे मरुतो, तुम लोग अन्तरिक्ष में मेघों को विक्षिप्त करो, हव्य-दाता को धन प्रदान करो। तुम लोगों के आगमन-भय से वन विकम्पित होते हैं। हे पृश्निपुत्रो, हे कोपनशील बलवालो, जब तुम लोग जल के लिए अपने पृषती अश्व को रथ में युक्त करते हो, तब पृथ्वी के ऊपर कोप प्रकाशित करते हो।

४. मरुद्गण दीप्तिमान्, वृष्टिशोषक, यमज की तरह तुल्यरूप, दर्शनीय-मूर्ति, श्यामवर्ण और अरुणवर्ण, अश्वों के अधिपति, निष्पाप और शत्रुक्षयकारी हैं। वे विस्तृत आकाश की तरह विस्तीर्ण हैं।

५. प्रभूत वारि वर्षणकारी, आवरणधारी, दानशील, उज्ज्वलमूर्ति, अक्षय धनसम्पन्न, सुजन्मा, वक्षःस्थल पर हार धारण करनेवाले और पूजनीय मरुद्गण द्युलोक से आगमन करके अमरण-साधक उदक (अमृत) प्राप्त करते हैं।

६. हे मरुतो, तुम लोगों के स्कन्ध देश में आयुध-विशेष, बाहुद्वय में शत्रुनाशक बल, शिरोदेश में सुवर्णमय पगड़ी, रथ के ऊपर आयुध प्रभृति और अंगों में शोभा अवस्थित है।

७. हे मरुतो, तुम लोग हम लोगों को बहुत गौ, अश्व, रथ, प्रशस्त पुत्र और हिरण्य के साथ अन्न प्रदान करो। हे रुद्रपुत्रो, तुम लोग हम लोगों की समृद्धि को वर्द्धित करो। हम तुम लोगों की स्वर्गीय रक्षा का भोग करें।

८. हे मरुतो, तुम लोग हम लोगों के प्रति अनुकूल होओ। तुम लोग नेता, अतुल ऐश्वर्यशाली, अविनश्वर, वारिवर्षक, सत्य फल से प्रसिद्ध, ज्ञानसम्पन्न तरुण, प्रचुर स्तुतियुक्त और प्रभूत वर्षणकारी हो।

५८ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. आज यज्ञ दिन में हम दीप्तिमान् और स्तुतियोग्य मरुतों का स्तवन करते हैं। मरुद्गण शीघ्रगामी अश्वों के अधिपति, बलपूर्वक सर्वत्र गतिशील, जल के अधिपति और निज प्रभा-द्वारा प्रभान्वित हैं।

२. हे होता, तुम दीप्तिमान् बलशाली वलय-मण्डित-हस्त, कम्पन-विधायक, ज्ञानसम्पन्न और धनदाता मरुतों की पूजा करो। जो सुखदाता हैं, जिनका महत्त्व अपरिमित है, जो अतुल ऐश्वर्य-सम्पन्न नेता हैं, उन मरुतों की वन्दना करो।

३. जो विश्वव्यापी मरुद्गण वृष्टि प्रेरित करते हैं, वे जलवाहक मरुद्गण अभी तुम लोगों के निकट उपस्थित हों। हे तरुण और ज्ञान-

सम्पन्न मरुतो, तुम लोगों के लिए जो अग्नि प्रज्वलित हुआ है, उसी के द्वारा तुम लोग प्रीति लाभ करो।

४. हे पूजनीय मरुतो, तुम लोग यजमान को अथवा राजा को एक पुत्र प्रदान करो, जो दीप्तिमान्, शत्रुसंहारक और विश्व-द्वारा निर्मित हो। हे मरुतो, तुम लोगों से ही अपने भुजबल-द्वारा शत्रुहन्ता, शत्रुओं के प्रति बाहुप्रेरक और असंख्य अश्वों के अधिपति पुत्र उत्पन्न होते हैं।

५. रथ के शङ्कु (कील) की तरह तुम लोग एक साथ ही उत्पन्न हुए हो। दिवसों की तरह परस्पर समान हो। पृश्नि के पुत्र समान रूप से ही उत्पन्न हुए हैं, कोई भी दीप्ति के विषय में निकृष्ट नहीं हैं। वेगगामी मरुद्गण स्वतः प्रवृत्त होकर भली भाँति से वारिवर्षण करते हैं।

६. हे मरुतो, जब तुम लोग पृषती अश्व-द्वारा आकृष्ट दृढ़चक्र रथ पर आरोहण करके आगमन करते हो, तब वारिराशि पतित होती है, वन भग्न होते हैं और सूर्य-किरण से सम्पृक्त वारिवर्षणकारी पर्जन्य अधोमुख होकर वृष्टि के लिए शब्द करते हैं।

७. मरुतों के आगमन से पृथ्वी उर्वरता प्राप्त करती है। पति जिस तरह से भार्या का गर्भ उत्पादन करते हैं, उसी तरह मरुद्गण पृथ्वी के ऊपर गर्भस्थानीय सलिल स्थापित करते हैं। रुद्र के पुत्र शीघ्रगामी अश्वों को रथ के अग्रभाग में युक्त करके वृष्टि उत्पन्न करते हैं।

८. हे मरुतो, तुम लोग हमारे प्रति अनुकूल होओ। तुम लोग नेता, विपुल ऐश्वर्यशाली, अविनश्वर, वारिवर्द्धक, सत्य फल से प्रसिद्ध, ज्ञान-सम्पन्न, तरुण, प्रचुर स्तुतियुक्त और प्रभूत वर्षणकारी हो।

५९ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. हे मरुतो, कल्याण के लिए हव्यदाता होता तुम लोगों का स्तवन भली भाँति से करते हैं। हे होता, तुम द्युतिमान् द्युदेव का स्तवन करो। हे आत्मा, हम पृथ्वी का स्तवन करते हैं। मरुद्गण सर्वव्यापिनी वृष्टि को

पातित करते हैं। वे अन्तरिक्ष में सर्वत्र सञ्चरण करते हैं और मेघों के साथ अपने तेज को प्रकाशित करते हैं।

२. प्राणियों से पूर्ण नौका जैसे जल मध्य में कम्पित होकर गमन करती है, वैसे ही मरुतों के भय से पृथिवी कम्पित होती है। वे दूर से ही दृश्यमान होने पर भी गति-द्वारा परिज्ञात होते हैं। नेता मरुद्गण द्यावा-पृथिवी के मध्य में अधिक हव्य भक्षण के लिए चेष्टा करते हैं।

३. हे मरुतो, तुम लोग शोभा के लिए गोशृङ्ग की तरह उत्कृष्ट शिरोभूषण धारण करते हो। दिवस के नेता सूर्य जिस प्रकार से निज रश्मि विकीर्ण करते हैं, उसी तरह तुम लोग वृष्टि के लिए सर्वप्रकाशक तेज धारण करते हो। तुम लोग अश्वों की तरह वेगवान् और मनोहर हो। हे नेता मरुतो, यजमान आदि जैसे यज्ञादि कार्य को जानते हैं, वैसे ही तुम लोग भी जानते हो।

४. हे मरुतो, तुम सब पूजनीय हो। तुम लोगों की पूजा कौन कर सकता है? कौन तुम लोगों के स्तोत्र-पाठ में समर्थ हो सकता है? कौन तुम लोगों के वीरत्व की घोषणा कर सकता है? क्योंकि तुम लोगों के द्वारा वृष्टिपात होने से भूमि किरण की तरह कम्पित होने लगती है।

५. अश्वों की तरह वेगगामी, दीप्तिमान् समान बन्धुवाले मरुदगण वीरों की तरह युद्ध-कार्य में व्याप्त हैं। समृद्धि-सम्पन्न मनुष्यों की तरह नेता मरुद्गण अत्यन्त शक्तिशाली होकर, वृष्टि-द्वारा, सूर्य के चक्षु को आवृत करते हैं।

६. मरुतों के मध्य में कोई भी किसी की अपेक्षा, ज्येष्ठ या कनिष्ठ नहीं हैं। शत्रुसंहारक मरुतों के मध्य में कोई भी मध्यम नहीं हैं। सब तेजोविशेष से वर्द्धमान हैं। हे सुजन्मा, मानवों के हितकारी, पृश्निपुत्र मरुतो, तुम लोग द्युलोक से हम लोगों के अभिमुख आगमन करो।

७. हे मरुतो, तुम लोग पंक्तिबद्ध होकर उड़नेवाले पक्षी की तरह बलपूर्वक विस्तीर्ण और समुन्नत नभोमंडल के उपरि भाग में होकर अन्तरिक्ष

पर्यन्त गमन करते हो। तुम्हारे अश्व मेघ से वृष्टि पातित करते हैं—यह देव और मनुष्य दोनों ही जानते हैं।

८. द्यावा-पृथिवी हम लोगों की पुष्टि के लिए वृष्टि उत्पादन करें। निरतिशय दानशीला उषा हम लोगों के कल्याण के लिए यत्न करे। हे ऋषि, ये रुद्रपुत्र तुम्हारे स्तवन से प्रसन्न होकर स्वर्गीय वृष्टि-वर्षण करें।

६० सूक्त

(देवता अग्नि और मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. हम श्यावाश्व ऋषि स्तोत्र द्वारा रक्षाकारी अग्नि की स्तुति करते हैं। वे अभी यज्ञ में उपस्थित होकर प्रसन्नतापूर्वक उस स्तोत्र को जानें। जैसे रथ अभिमत स्थान को प्राप्त करता है, उसी तरह से हम अन्नाभिलाषी स्तोत्रों-द्वारा अपने अभीष्ट का सम्पादन करते हैं। प्रदक्षिणा करके हम मरुतों के स्तोत्र को वर्द्धित करें।

२. हे उद्यतायुध रुद्रपुत्र मरुतो, तुम लोग प्रसिद्ध अश्वों-द्वारा आकृष्ट, शोभन तथा अक्षसमन्वित रथ पर आरूढ़ होकर गमन करो। जब तुम लोग रथाधिरूढ़ होते हो, तब वन तुम्हारे भय से कम्पित होते हैं।

३. हे मरुतो तुम लोगों के द्वारा भयंकर शब्द किये जाने पर अत्यन्त वर्द्धमान पर्वत भी भीत हो जाते हैं और अन्तरिक्ष के उन्नत या विस्तृत प्रदेश भी कम्पित हो जाते हैं। हे मरुतो, तुम सब आयुधवान् हो। जब तुम लोग क्रीड़ा करते हो, तब उदक की तरह प्रधावित होते हो।

४. विवाह के योग्य धनवान् युवा जिस प्रकार सुवर्णमय-अलंकार तथा उदक के द्वारा अपने शरीर को भूषित करता है, उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ, बलशाली मरुद्गण रथ के ऊपर समवेत होकर अपने शरीर की शोभा के लिए तेज धारण करते हैं।

५. ये मरुद्गण एक साथ ही उत्पन्न हुए हैं अथवा समान बलवाले हैं। परस्पर ज्येष्ठ और कनिष्ठ भाव से वर्जित हैं। ये मरुद्गण परस्पर भ्रातृ-

भाव से सौभाग्य के लिए वर्द्धमान होते हैं। नित्य तरुण तथा सत्कर्म के अनुष्ठानकारी मरुतों के पिता रुद्र और जननी-स्वरूपा दोहनयोग्या पृश्नि (गो-देवता) मरुतों के लिए शोभन दिन उत्पन्न करें।

६. हे सौभाग्यशाली मरुतो, तुम लोग उत्तम (उत्कृष्ट) द्युलोक में, मध्यम द्युलोक में अथवा अधोद्युलोक में वर्तमान होते हो। हे रुद्रो, उन स्थानों (तीनों द्युलोकों) से हम लोगों के लिए आगमन करो। हे अग्नि, हम आज जो हवि प्रदान करते हैं, उसे तुम जानो।

७. हे सर्वज्ञ मरुतो, तुम लोग और अग्नि द्युलोक के उत्कृष्टतर उपरि प्रदेश में अवस्थान करते हो। तुम लोग हमारे स्तवन और हव्य से प्रसन्न होकर शत्रुओं को कम्पित तथा विनष्ट करो और अभिषव करनेवाले यजमानों को अभिलषित धन प्रदान करो।

८. हे वैश्वानर अग्नि, पुरातन ज्वाल-पुञ्ज से युक्त होकर तुम शोभमान, पूजनीय, गणभाव का आश्रय (समवेत) करनेवाले, पवित्रताविधायक, प्रीतिदायक और दीर्घजीवी मरुतों के साथ सोमपान करो।

६१ सूक्त

(देवता मरुद्गण, तरन्त राजा की भार्या शशीयसी, पुरुमीह्ल, तरन्त और रथवीति। ऋषि श्यावाश्व। छन्द गायत्री, अनुष्टुप् और बृहती।)

१. हे श्रेष्ठतम नेताओ, तुम लोग कौन हो? दूर देश अर्थात् अन्तरिक्ष से तुम लोग एक-एक करके उपस्थित होओ।

२. हे मरुतो, तुम लोगों के अश्व कहाँ हैं? लगाम कहाँ है? शीघ्र गमन में समर्थ होते हो? किस प्रकार का गमन है? अश्वों के पृष्ठ देश पर आस्तरण और नासिकाद्वय में बन्धनरज्जु लक्षित होते हैं।

३. अश्वों के जघन देश में शीघ्र गमन के लिए कशा (कोड़ा) घात होता है। पुत्रोत्पादन (संगम) काल में जैसे रमणियाँ ऊरुद्वय को विवृत

करती है, उसी प्रकार नेता मरुद्गण अश्वों को, उत्पन्न विद्युत करने के लिए बाध्य करते हैं।

४. हे वीरो, शत्रुसंहारको, हे मनुष्यों के लिए कल्याण करनेवालो हे शोभन जन्मवालो, मरुत्पुत्रो, तुम लोग अग्नितप्त ताम्र की तरह प्रदीप्त पुष्ठ होते हो।

५. श्यावाश्व (हम) ने जिसकी स्तुति की है, जिसने वीर तरन्त को भुजपाश में बद्ध किया है, वही तरन्त महिषी शशीयसी हमें अश्व, गौ और शतमेषात्मक पशुयूथ प्रदान करती है।

६. जो पुरुष देवों की आराधना और धनदान नहीं करता है, उस पुरुष की अपेक्षा स्त्री शशीयसी सर्वांश में श्रेष्ठ है।

७. वह शशीयसी व्यथित (ताड़ित-उपेक्षित) को जानती है, तृष्णार्त को जानती है और धनाभिलाषी को जानती है अर्थात् कृपावश हो अभिमत धन प्रदान करती है। वह देवों के प्रीत्यर्थ प्रदान-बुद्धि करती है अर्थात् देवों के प्रति अपने चित्त को समर्पित करती है।

८. शशीयसी के अर्द्धाङ्गभूत पुरुष तरन्त की स्तुति करके भी हम बोलते हैं कि उनका समुचित स्तव नहीं हुआ है; क्योंकि वे दान के विषय में सब समय में एक रूप हैं।

९. यौवनवती शशीयसी ने मुदित मन से श्यावाश्व को (हमें) पथ-प्रदर्शित किया था। उसके द्वारा प्रदत्त लोहित वर्णवाले दोनों अश्व हमें यशस्वी, विज्ञ, पुरुमीह्ळ के निकट वहन करते हैं अर्थात् सज्जित रथ पर बैठाकर उसने ही हमें पुरुमीह्ळ के घर तक पहुँचा दिया था।

१०. विदश्व के पुत्र पुरुमीह्ळ ने भी हमें तरन्त की ही तरह शत धनु और महामूल्यवान् धन आदि प्रदान किया था।

११. जो मरुद्गण शीघ्रगामी अश्वों पर आरूढ़ होकर हर्षविधायक सोमरस को पान करते हुए इस स्थान में आगत हुए थे, वे मरुद्गण इस स्थान पर विविध स्तव धारण करते हैं।

१२. जिन मरुतों की कान्ति से द्यावा-पृथिवी व्याप्त होती है। अम्बर

द्युलोक में रोचमान आदित्य की तरह वे मरुद्गण रथ के ऊपर विशेष दीप्त होते हैं।

१३. वे मरुद्गण नित्य तरुण, दीप्त रथ विशिष्ट, अनिन्द्य, शोभन रूप से गमन करनेवाले और अप्रतिहतगति हैं।

१४. जलवर्षणार्थ उत्पन्न अथवा यज्ञ में प्रादुर्भूत, शत्रुओं के कम्पक और निष्पाप मरुद्गण जिस स्थान पर हृष्ट हुए थे, मरुतों के उस स्थान को कौन व्यक्ति जानता है?

१५. हे स्तवाभिलाषी मरुतो, जो मनुष्य यजमान इस प्रकार स्तुति-कर्म-द्वारा तुम लोगों को प्रसन्न करता है, उसे तुम लोग अभिमत स्वर्गादि स्थान प्रदर्शित करते हो। यज्ञ में आहूत होने पर तुम लोग उस आह्वान को श्रवण करते हो।

१६. हे शत्रुसंहारक, पूजनीय, विविध धनशाली मरुतो, तुम लोग हम लोगों को अभिवाञ्छित धन प्रदान करो।

१७. हे रात्रिदेवी, तुम हमारे निकट से रथवीति के निकट इस मरुत्स्तुति को प्रापित करो। यह स्तुति मरुतों के लिए की गई है। हे देवी, रथी जिस प्रकार से रथ के ऊपर विविध वस्तु रख करके गन्तव्य स्थान पर उसे ले जाता है, उसी प्रकार तुम हमारे इस सकल स्तव का वहन करो।

१८. हे रात्रि देवी, सोम यज्ञ सम्पन्न होने पर रथवीति को तुम यह कहना कि तुम्हारी पुत्री के प्रति हमारी कामना कम नहीं हुई है।

१९. ये धनवान् रथवीति गोमती के तीर में निवास करते हैं और हिमवान् पर्वत के प्रान्त में उनका गृह अवस्थित है।

६२ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि अत्रि के अपत्य श्रुतविद।
छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम तुम लोगों के आवासभूत, उदक-द्वारा आच्छादित, शाश्वत और सत्यभूत सूर्यमण्डल का दर्शन करते हैं। उस स्थान में अवस्थित

अश्वों को स्तोता लोग मुक्त करते हैं। उस मण्डल में सहस्र-संख्यक रश्मियाँ अवस्थिति करती हैं। तेजोवान् अग्नि आदि शरीरवान् देवों के मध्य में हमने सूर्य के उस श्रेष्ठ मण्डल को देखा है।

२. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों का यह माहात्म्य अत्यन्त प्रशस्त है, जिसके द्वारा निरन्तर परिभ्रमणकारी सूर्य दैनिक गति से सम्बद्ध स्थावर जलराशि को दुहते हैं। तुम लोग स्वयं भ्रमणकारी सूर्य की प्रीतिदायक दीप्ति को वर्द्धित करते हो। तुम दोनों का एक मात्र रथ अनुक्रम से परिभ्रमण करता है।

३. हे मित्र और वरुण, स्तोता लोग तुम्हारे अनुग्रह से राजपद प्राप्त करते हैं। तुम दोनों अपनी सामर्थ्य से द्यावा-पृथिवी को धारण करके अवस्थित हो। हे शीघ्र दानकर्त्ताओ, तुम लोग ओषधियों और धेनुओं को वर्द्धित करो एवम् वृष्टिवर्षण करो।

४. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों के अश्व रथ में भली भाँति से युक्त होकर तुम दोनों को वहन करें। सारथि के द्वारा नियन्त्रित होकर अनुवर्तन करें। जल का रूप (मूर्तिमान् जल) तुम दोनों का अनुसरण करता है। तुम दोनों के अनुग्रह से पुरातन नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

५. हे अन्नवान् तथा बलसम्पन्न मित्र और वरुण, तुम दोनों विश्रुत शरीर-दीप्ति को वर्द्धित करते हो। यज्ञ जैसे मन्त्र-द्वारा रक्षित होता है, उसी प्रकार तुम दोनों भी पृथ्वी का पालन करो। तुम दोनों यज्ञ-भूमि के मध्यस्थित रथ पर आरोहण करो।

६. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों यज्ञ-भूमि में जिस यजमान की रक्षा करते हो, शोभन स्तुति करनेवाले उस यजमान के प्रति तुम दोनों दान-शील होओ और उसकी रक्षा करो। तुम दोनों राजा और क्रोधविहीन होकर धन एवम् सहस्र स्तम्भसमन्वित सौध (मंजिलवाला मकान) धारण करते हो।

७. इनका रथ हिरण्मय है और कीलकादि भी हिरण्मय ही है। यह रथ विद्युत् की तरह अन्तरिक्ष में शोभा पाता है। हम लोग कल्याणकर

स्थान में अथवा यूपयष्टि-समन्वित यज्ञ-भूमि में रथ के ऊपर, सोमरस स्थापन करें ।

८. हे मित्र और वरुण, तुम लोग उषाकाल में सूर्य के उदित होने पर लौहकील-समन्वित सुवर्णमय रथ पर यज्ञ में जाने के लिए आरोहण करो एवम् अदिति अर्थात् अखण्डनीय भूमि और दिति अर्थात् खण्डित प्रजा का अवलोकन करो ।

९. हे दानशील तथा विश्वरक्षक मित्र और वरुण, जो सुख व्याघात-रहित, अछिन्न और बहुतम है, उस सुख को तुम दोनों धारण करते हो । उसी सुख से हम लोगों की रक्षा करो । हम लोग अभिलक्षित धन लाभ करें और शत्रु विजयी हों ।

तृतीय अध्याय समाप्त ।

६३ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय । देवता मित्रावरुण । ऋषि अत्रि के अपत्य अर्चनाना । छन्द जगती ।)

१. हे उदक के रक्षक सत्य धर्मवाले मित्र और वरुण, तुम दोनों हमारे यज्ञ में आने के लिए निरतिशय आकाश में रथ के ऊपर अधिरोहण करते हो । हे मित्र और वरुण, इस यज्ञ में तुम दोनों जिस यजमान की रक्षा करते हो, उस यजमान के लिए मेघ द्युलोक से सुमधुर वारिवर्षण करता है ।

२. हे स्वर्ग के द्रष्टा मित्र और वरुण, इस यज्ञ में राजमान होकर तुम दोनों भुवन का शासन करते हो । हम लोग तुम दोनों के निकट वृष्टिरूप धन तथा स्वर्ग की प्रार्थना करते हैं । तुम दोनों की विस्तृत रश्मियाँ द्यावा-पृथिवी के मध्य में विचरण करती हैं ।

३. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों अत्यन्त राजमान, उद्यतबल, वारि-वर्षक, द्यावा-पृथिवी के पति और सर्वद्रष्टा हो। तुम दोनों महानुभाव विचित्र मेघों के साथ स्तुति श्रवण करने के लिए आगमन करो। पश्चात् वृष्टिविधायक पर्जन्य की सामर्थ्य-द्वारा द्युलोक से वृष्टि पातित करो।

४. हे मित्र और वरुण, जब तुम दोनों के अस्त्रभूत ज्योतिर्मय सूर्य अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करते हैं, तब तुम दोनों की माया (सामर्थ्य) स्वर्ग में आश्रित (प्रकटित) होती है। तुम दोनों द्युलोक में मेघ और वृष्टि-द्वारा सूर्य की रक्षा करते हो। हे पर्जन्य देव, मित्र और वरुण-द्वारा प्रेरित होने पर तुम्हारे द्वारा सुमधुर वारिबिन्दु पतित होता है।

५. हे मित्र और वरुण, वीर जिस प्रकार से युद्ध के लिए अपने रथ को सज्जित करता है, उसी प्रकार मरुद्गण तुम दोनों के अनुग्रह से वृष्टि के लिए सुखकर रथ को सज्जित करते हैं। वारिवर्षण करने के लिए मरु-द्गण विभिन्न लोक में सञ्चरण करते हैं। हे राजमान देवो, तुम दोनों मरुतों के साथ द्युलोक से हम लोगों के ऊपर वारिवर्षण करो।

६. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों के अनुग्रह से ही मेघ अन्नसाधक, प्रभाव्यञ्जक और विचित्र गर्जन शब्द करता है। मरुद्गण अपनी प्रज्ञा के बल से मेघों की रक्षा, भली भाँति से करते हैं। उनके साथ तुम दोनों अरुणवर्ण तथा निष्पाप आकाश से वृष्टि पातित करते हो।

७. हे विद्वान् मित्र और वरुण, तुम दोनों जगत् के उपकारक वृष्ट्यादि कार्य-द्वारा यज्ञ की रक्षा करते हो। जल के वर्षक पर्जन्य की प्रज्ञा-द्वारा उदक या यज्ञ से समस्त भूतजात को दीप्त करते हो। पूज्य और वेगवान् सूर्य को द्युलोक में धारण करो।

६४ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि अर्चनाना।
छन्द अनुष्टुप् और पङ्क्ति।)

१. हे मित्र और वरुण, हम इस मन्त्र से तुम दोनों का आह्वान करते हैं। बाहुबल से गोयूथ के सञ्चालकद्वय की तरह दोनों शत्रुओं को अपसारित करो और स्वर्ग के पथ को प्रदर्शित करो।

२. तुम दोनों प्रज्ञासम्पन्न हो। तुम दोनों हम स्तुतिकर्त्ता को अभिमत सुख प्रदान करो। हम शोभन हस्त-द्वारा स्तुति करते हैं। तुम दोनों द्वारा प्रदत्त स्तुति-योग्य सुख सब स्थान में व्याप्त है।

३. हम अभी गमन (संगति) प्राप्त करें। मित्रभूत अथवा मित्र-द्वारा दर्शित मार्ग से हम गमन करें। अहिंसक मित्र का प्रिय सुख हमें गृह में प्राप्त हो।

४. हे मित्र और वरुण, हम तुम, दोनों की स्तुति करके इस प्रकार धन धारण करेंगे कि धनिकों और स्तुतिकर्ताओं के घर में ईर्ष्या का उदय होगा।

५. हे मित्र, हे वरुण, तुम दोनों सुन्दर दीप्ति से युक्त होकर हमारे यज्ञ में उपस्थित होओ। ऐश्वर्यशाली यजमानों के गृह में एवम् तुम दोनों के मित्रों के अर्थात् हमारे गृह में समृद्धि वर्द्धन करो।

६. हे मित्र और वरुण, हमारी स्तुतियों के निमित्त तुम दोनों हमारे लिए प्रचुर अन्न तथा बल धारण करते हो। तुम दोनों हमें अन्न, धन और कल्याण विशेष रूप से प्रदान करो।

७. हे अधिनायक मित्र और वरुण, उषाकाल में, सुन्दर किरण से युक्त प्रातः सवन में, देव-बल-विशिष्ट गृह में तुम दोनों पूजनीय होते हो। उस गृह में हमारे द्वारा अभिषुत सोम का तुम दोनों अवलोकन करो। तुम दोनों अर्चनाना के प्रति प्रसन्न होकर गमन साधन अश्वों पर आरोहण करके अभी आगमन करो।

६५ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण । ऋषि अत्रि के अपत्य रातहव्य । छन्द पंक्ति और अनुष्टुप् ।)

१. जो स्तोता देवों के मध्य में तुम दोनों की स्तुति जानता है, वही शोभनकर्म (अनुष्ठान) करनेवाला है । वह शोभनकर्मा स्तोता हमें स्तुतिविषयक उपदेश दें, जिनकी स्तुति को सुन्दर मूर्तिवाले मित्र और वरुण, ग्रहण करते हैं ।

२. प्रशस्त तेजवाले और ईश्वरभूत मित्रावरुण दूर देश से आहूत होने पर भी आह्वान श्रवण कर लेते हैं । यजमानों के स्वामी और यज्ञ के वर्द्धयिता वे दोनों प्रत्येक स्तोता के कल्याण-विधानार्थ विचरण करते हैं ।

३. तुम दोनों पुरातन हो । हम तुम दोनों के निकट उपस्थित होकर रक्षा के लिए स्तवन करते हैं । वेगवान् अश्वों के अधिपति होकर हम अन्नप्रदानार्थ तुम दोनों की स्तुति करते हैं । तुम दोनों शोभन ज्ञानवाले हो ।

४. मित्रदेव पापी स्तोता को भी विशाल गृह में निवास करने का उपाय बताते हैं । हिंसक परिचारक के लिए भी मित्रदेव की शोभन बुद्धि है ।

५. हम यजमान दुःखनिवारक मित्रदेव की विपुल रक्षा के लिए अधिकारी हों । हम तुम्हारे द्वारा रक्षित और निष्पाप होकर हम सब एक काल में ही वरुण के पुत्रस्वरूप हों ।

६. हे मित्र और वरुण, हम तुम दोनों की स्तुति करते हैं । तुम दोनों हमारे निकट आगमन करो । आकर समस्त अभिलषित वस्तु प्राप्त कराओ । हम अन्नसम्पन्न हैं । हमारा परित्याग नहीं करना । ऋषियों के अर्थात् हमारे पुत्रों का परित्याग नहीं करना । सुतसोम यज्ञ में हम लोगों की रक्षा करना ।

६६ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि अत्रि के अपत्य
यजत। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे स्तुतिविज्ञाता मनुष्य, तुम शोभनकर्म को करनेवाले और शत्रुओं के हिंसक देवद्वय का आह्वान करो। उदकस्वरूप, हविर्लक्षण, अन्नवान् और पूजनीय वरुण को हव्य प्रदान करो।

२. तुम दोनों का बल अहिंसनीय और असुर-विघातक है अर्थात् तुम दोनों महान् बलवाले हो। सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में दृश्यमान होते हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के मध्य में तुम दोनों का दर्शनीय बल यज्ञ में स्थापित होता है।

३. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों रात हव्य की प्रकृष्ट स्तुति से शत्रु-पराभवकारी बल लाभ करके हम लोगों के इस रथ के सम्मुख बहुत दूर तक मार्गरक्षार्थ गमन करते हो। तुम दोनों हम लोगों के द्वारा स्तुत होते हो।

४. हे स्तुतियोग्य और हे शुद्ध बलवाले देवद्वय, हम प्रवृद्धमान की पूरक स्तुति से तुम दोनों अत्यन्त आश्चर्यभूत हो। तुम दोनों अनुकूल मन से यजमानों के स्तोत्र को जानते हो।

५. हे पृथिवी देवी, हम ऋषियों के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए तुम्हारे ऊपर प्रभूत जल अवस्थित है। गमनशील देवद्वय निज गति विधि-द्वारा अति प्रचुर परिमाण में वारि-वर्षण करते हैं।

६. हे दूरदर्शी मित्र और वरुण, हम और स्तोता लोग तुम दोनों का आह्वान करते हैं। हम तुम्हारे सुविस्तीर्ण और बहुतों-द्वारा गन्तव्य अथवा बहुतों के द्वारा रक्षितव्य राज्य में गमन करें।

६७ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि अत्रि के अपत्य यजत। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे द्युतिमान् अदिति पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमा, तुम सब अभी वर्तमान प्रकार से यजनीय बृहत् और अत्यन्त प्रवृद्ध बल धारण करते हो।

२. हे मित्र और वरुण, हे मनुष्यों के रक्षक तथा शत्रुसंहारक, जब तुम लोग आनन्दजनक यज्ञभूमि में आगमन करते हो, तब तुम लोग हमें सुखी करते हो।

३. सर्वविद् मित्र, वरुण, अर्यमा अपने-अपने पद (स्थान) के अनुरूप हमारे यज्ञ में संगत होते हैं और हिंसकों से मनुष्यों की रक्षा करते हैं।

४. वे सत्यदर्शी, जलवर्षी और यज्ञरक्षक हैं। वे प्रत्येक यजमान को सत्पथ प्रदर्शित करते हैं और प्रचुर दान करते हैं। वे महानुभाव वरुणादि पापी स्तोता को प्रभूत धन प्रदान करते हैं।

५. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों के मध्य में सबके द्वारा स्तुतियों से कौन अस्तूयमान है? अर्थात् दोनों ही स्तुतियोग्य हैं। हम लोग अल्प बुद्धि हैं। हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। अत्रिगोत्रज लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

६८ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि यजत। छन्द गायत्री।)

१. हे हमारे ऋत्विको, तुम लोग उच्च स्वर से मित्र और वरुण का भली भाँति से स्तवन करो। हे प्रभूत बलशाली मित्र और वरुण, तुम दोनों इस महायज्ञ में उपस्थित होओ।

२. जो मित्र और वरुण दोनों ही परस्परापेक्षा सबके स्वामी, जल के उत्पादक, द्युतिमान् और देवों के मध्य में अतिशय स्तुत्य हैं, हे ऋत्विजो, तुम लोग उन दोनों की स्तुति करो।

३. वे दोनों देव हम लोगों को पार्थिव धन तथा दिव्य धन दोनों ही देने में समर्थ हैं। हे मित्र और वरुणदेव, तुम दोनों का पूजनीय बल देवों के मध्य म प्रसिद्ध है। हम लोग उसका स्तवन करते हैं।

४. उदक-द्वारा यज्ञ का स्पर्शन करके वे दोनों देव अन्वेषणकारी प्रवृद्ध यजमान को अथवा हव्य को व्याप्त करते हैं। हे द्रोहरहित मित्रा-वरुण देव, तुम दोनों प्रवृद्ध होते हो।

५. जिन दोनों के द्वारा अन्तरिक्ष वर्षणकारी होता है, जो दोनों अभिमत फल के प्रापक हैं, वृष्टिप्रद होने से जो अन्न के अधिपति हैं, और जो दाता के प्रति अनुकूल हैं, वे दोनों महानुभाव यज्ञ के लिए महान् रथ पर अधिष्ठित होते हैं।

६९ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि अत्रि के अपत्य उरुचक्रि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे वरुण, हे मित्र, तुम दोनों रोचमान तीन द्युलोकों को धारण करते हो, तीन अन्तरिक्ष लोकों को धारण करते हो और तीन भूलोकों को धारण करते हो। तुम दोनों क्षत्रिय यजमान के अथवा इन्द्र के रूप और कर्म की अविरत रक्षा करते हो।

२. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों की आज्ञा से गौएँ दुग्धवती होती हैं। स्यन्दनशील मेघ वा नदियाँ सुमधुर जल प्रदान करती हैं। तुम दोनों के अनुग्रह से जलवर्षक और उदकधारक तथा द्युतिमान् अग्नि, वायु और आदित्य नामक तीन देव पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक के स्वामी होकर प्रत्येक अधिष्ठित होते हैं।

३. प्रातःकाल में और सूर्य के समृद्धि काल में अर्थात् माध्यन्दिन सवन में हम ऋषि देवों की द्युतिमती जननी अदिति का आह्वान करते हैं। हे मित्र और वरुण, हम धन, पुत्र, पौत्र, अरिष्ट शान्ति और सुख के लिए तुम दोनों का स्तवन, यज्ञ में, करते हैं।

४. हे द्युलोकोत्पन्न अदिति-पुत्रद्वय, तुम दोनों द्युलोक तथा भूलोक के धारणकर्ता हो। हम तुम दोनों का स्तवन करते हैं। हे मित्र और वरुण, तुम्हारे कार्य स्थिर हैं, उन कार्यों की हिंसा इन्द्र आदि अमर देवगण भी नहीं कर सकते हैं।

७० सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि उरुचक्रि। छन्द गायत्री।)

१. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों का रक्षण-कार्य निश्चय ही अत्यन्त दीर्घतर है। हे वरुण और मित्र, हम तुम दोनों की अनुग्रहबुद्धि का सम्भजन करें।

२. हे द्रोहविवर्जित देवद्वय, हम तुम दोनों के निकट से भोजन के लिए अन्नलाभ करें। हे रुद्रो, हम लोग तुम्हारे स्तोता हों। समृद्ध हों अथवा तुम्हारे ही हों।

३. हे रुद्ररूप देवद्वय, तुम दोनों रक्षा-द्वारा हमारी रक्षा करो। शोभन त्राण-द्वारा पालन करो, अर्थात इष्ट की प्राप्ति हो, अनिष्ट का निराकरण हो और अभिमत फल लाभ हो। हम अपने पुत्रों के साथ अथवा अपने शरीर से ही शत्रुओं को हिंसित करें।

४. हे आश्चर्य-जनक कर्म करनेवाले, हम अपने शरीर-द्वारा किसी के पूजित (श्रेष्ठ) धन का भी उपभोग नहीं करते हैं। हम तुम्हारे अनुग्रह से समृद्ध हैं—किसी के धन से शरीर पोषण भी नहीं करते हैं। पुत्र-पौत्रों के साथ भी हम दूसरे (तुम्हारे व्यतिरिक्त) के धन का उपभोग नहीं करते हैं। हमारे कुल में कोई भी दूसरे के धन का उपभोग नहीं करता है।

७१ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि बाहुवृक्त। छन्द गायत्री।)

१. हे वरुण, हे मित्र, तुम दोनों शत्रुओं के प्रेरक और हन्ता हो। तुम दोनों हमारे इस हिंसावर्जित यज्ञ में आगमन करो।

२. हे प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त मित्र और वरुण, तुम दोनों सबके स्वामी होते हो। हे हमारे ईश्वरद्वय, फल प्रदान-द्वारा हमारे कर्मों का तुम दोनों पालन करो।

३. हे मित्रावरुण, तुम दोनों हमारे अभिषुत सोम के प्रति आगमन करो। हम हवि देनेवाले हैं। हमारे इस सोम को पीने के लिए आगमन करो।

७२ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। छन्द बाहुवृक्त। ऋषि गायत्री।)

१. हमारे गोत्रप्रवर्तक अत्रि की तरह हम लोग मन्त्र-द्वारा तुम दोनों का आह्वान करते हैं। इसलिए मित्रावरुण सोमपान के लिए कुश के ऊपर उपवेशन करें।

२. हे मित्र और वरुण, जगद्धारक कर्म के द्वारा तुम दोनों के स्थान विचलित नहीं होते हैं। अर्थात् तुम दोनों स्थानच्युत नहीं होते हो। ऋत्विक् लोग तुम दोनों को यज्ञ प्रदान करते हैं। इसलिए मित्रावरुण सोमपान के लिए कुश के ऊपर उपवेशन करें।

३. हे मित्र और वरुण, तुम दोनों हमारे यज्ञ को अभिलाषपूर्वक ग्रहण करो और आकर सोमपान के लिए कुश के ऊपर उपवेशन करो।

७३ सूक्त

(६ अनुवाक। देवता अश्विद्वय। ऋषि अत्रि के अपत्य पौर। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे अगणित यज्ञ में भोजन करनेवाले, अश्विनीकुमारो, यद्यपि इस समय तुम दोनों अत्यन्त दूर देश द्युलोक में वर्तमान हो, गमनशक्य अन्तरिक्ष में वर्तमान हो अथवा बहुतेरे प्रदेश में वर्तमान हो; तथापि उन सब स्थानों से यहाँ आगमन करो।

२. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों बहुत यजमानों के उत्साहदाता, विविध कर्मों के धारणकर्ता, वरणीय, अप्रतिहतगति और अनिरुद्धकर्मा

हो। इस यज्ञ में हम दोनों के समीप उपस्थित होते हैं। प्रभूततम भोग और रक्षा के लिए हम तुम दोनों का आह्वान करते हैं।

३. हे अश्विनीकुमारो, सूर्य की मूर्ति को प्रदीप्त करने के लिए तुम दोनों ने रथ के एक दीप्तिमान् चक्र को नियमित किया है। अपनी सामर्थ्य से मनुष्यों के अहोरात्रादि काल को निरूपित करने के लिए अन्य चक्र-द्वारा (तीनों) लोकों में परिभ्रमण करते हो।

४. हे व्यापक देवद्वय, हम जिस स्तोत्र-द्वारा तुम दोनों का स्तवन करते हैं, वह तुम दोनों का स्तोत्र इस पुरवासी के द्वारा सुसम्पादित हो। हे पृथक् उत्पन्न तथा निष्पाप देवद्वय, तुम दोनों हमें प्रचुर परिमाण में अन्न प्रदान करो।

५. हे अश्विनीकुमारो, जब तुम दोनों की पत्नी सूर्या तुम दोनों के सर्वदा शीघ्रगामी रथ पर आरोहण करती हैं, तब आरोचमान और दीप्त आतप (दीप्तियाँ) तुम दोनों के चतुर्दिक् विस्तृत होते हैं।

६. हे नेता अश्विद्वय, हम लोगों के पिता अत्रि ने तुम दोनों का स्तवन करके जब अग्नि के उत्ताप को सुखसेव्य समझा था, तब उन्होंने अग्नि-दाहोपशम रूप सुखहेतु कृतज्ञ चित्त से तुम दोनों के उपकार को स्मरण किया था।

७. तुम दोनों का दृढ़, उन्नत, गमनशील, सतत विघूर्णित रथ यज्ञ में प्रसिद्ध है। हे नेता अश्विद्वय, तुम दोनों के ही कार्य-द्वारा हमारे पिता अत्रि आवर्तमान होते हैं अर्थात् तुम दोनों के कार्य-द्वारा उन्होंने परित्राण पाया था।

८. हे मधुर सोमरस के मिश्रयिता देवो, हम लोगों की पुष्टिकर स्तुति तुम लोगों के ऊपर मधुर रस सिंचन करती है। तुम लोग अन्तरिक्ष की सीमा का अतिक्रमण करते हो। सुपक्व हव्य तुम दोनों का पोषण करता है।

९. हे अश्विनीकुमारो, पुराविद्गण (पण्डित लोग) तुम दोनों को

जो सुखदाता कहते हैं, वह निश्चय ही सत्य हैं। हमारे यज्ञ में सुखदानार्थ आहूत होने पर दोनों अतिशय सुखदाता होओ।

१०. शिल्पी जिस प्रकार रथों को प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार हम लोग अश्विद्वय को संवर्द्धित करने के लिए स्तुति प्रस्तुत करते हैं। वे स्तुतियाँ उन्हें प्रीतिकर हों।

७४ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि पौर। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे स्तुतिधन, धनवर्षणकारी देवद्वय, आज इस यज्ञदिन में तुम दोनों द्युलोक से आगमन करके भूमि पर ठहरो और उस स्तोत्र को श्रवण करो, जिसे तुम्हारे उद्देश से अत्रि सर्वदा पाठ करते हैं।

२. वे दीप्तिमान् नासत्यद्वय कहाँ हैं? आज इस यज्ञदिन में वे द्युलोक के किस स्थान में श्रुत हो रहे हैं? हे देवद्वय, तुम दोनों किस यजमान के निकट आगमन करते हो? कौन स्तोता तुम दोनों की स्तुतियों का सहायक है?

३. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों किस यजमान या यज्ञ के प्रति गमन करते हो? जाकर किसके साथ मिलित होते हो? किसके अभिमुखवर्ती होने के लिए रथ में अश्वयोजना करते हो? किसके स्तोत्र तुम दोनों को प्रीत करते हैं? हम लोग तुम दोनों को पाने की कामना करते हैं।

४. हे पौर-सम्बन्धी अश्विनीकुमारो, तुम दोनों पौर के निकट पौर को अर्थात् वारिवाहक मेघ को प्रेरित करो। जङ्गल में व्याधगण जैसे सिंह को ताड़ित करते हैं, वैसे ही यज्ञकर्म में व्याप्त पौर के निकट तुम दोनों इसे ताड़ित करो।

५. तुम दोनों ने जराजीर्ण च्यवन के हेय, पुरातन, कुरूप को, कवच की तरह विमोचित किया था। जब तुम दोनों ने उन्हें पुनर्बार युवा किया था, तब उन्होंने सुरूपा कामिनी के द्वारा वाञ्छित मूर्त्ति को पाया था।

६. हे अश्विद्वय, इस यज्ञस्थल में तुम दोनों के स्तोता विद्यमान हैं। हम लोग समृद्धि के लिए तुम दोनों के दृष्टिपथ में अवस्थान करें। आज तुम लोग हमारा आह्वान श्रवण करो। तुम लोग अन्नरूप धन से धनवान् हो। तुम लोग रक्षा के साथ यहाँ आगमन करो।

७. हे अन्नरूप धनवान् अश्विद्वय, असंख्य मर्त्यों के मध्य में कौन व्यक्ति आज सर्वापेक्षा तुम दोनों को अधिक प्रसन्न करता है! हे ज्ञानियों द्वारा वन्दित अश्विद्वय, कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम दोनों को सर्वापेक्षा अधिक प्रसन्न करता है अथवा कौन यजमान ही यज्ञ द्वारा तुम दोनों को अधिक तृप्त करता है।

८. हे अश्विद्वय अन्य देवताओं के रथों के मध्य में सर्वापेक्षा वेगगामी और असंख्य शत्रु-संहारी एवं सम्पूर्ण मनुष्य यजमानों द्वारा स्तुत तुम दोनों का रथ हम लोगों की हित-कामना करके इस स्थान में आगमन करे।

९. हे मधुमान् अश्विद्वय, तुम दोनों के लिए पुनः पुनः सम्पादित स्तोत्र हम लोगों के लिए सुखोत्पादक हो। हे विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न अश्विद्वय, तुम दोनों श्येन पक्षी की तरह सर्वत्र गमनशील अश्व पर आरूढ़ होकर हम लोगों के अभिमुख आगमन करो।

१०. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों जिस किसी स्थान में अवस्थान करो; किन्तु हमारा यह आह्वान श्रवण करो। तुम दोनों के निकट गमन करने की कामनावाला यह उत्कृष्ट हव्य तुम दोनों के निकट उपस्थित हो।

७५ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि अत्रि के अपत्य अवस्यु। छन्द पङ्क्ति।)

१. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों के स्तुतिकारी अवस्यु ऋषि तुम दोनों के फलवर्षणकारी और धनपूर्ण रथ को अलंकृत करते हैं। हे मधुविद्या को जाननेवालो, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

२. हे अश्विद्वय, तुम दोनों सब यजमानों को अतिक्रमण करके इस स्थान में आगमन करो, जिससे हम समस्त विरोधियों को पराभूत करें। हे शत्रुसंहारक, सुवर्णमय-रथारूढ़, प्रशस्त-धनसम्पन्न, नदियों को वेग-प्रवाहित करनेवालो एवम् मधुविद्या-विशारद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

३. हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारे लिए रत्न लेकर आगमन करो। हे हिरण्य-रथाधिरूढ़, स्तुतियोग्य, अन्न-रूप धनवालो, यज्ञ में अधिष्ठान करनेवालो एवम् मधुविद्या-विशारद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

४. हे धनवर्षणकारी अश्विद्वय, तुम दोनों के स्तोता का (मेरा) स्तोत्र तुम दोनों के उद्देश से उच्चारित होता है। तुम दोनों का प्रसिद्ध, मूर्त्तिमान् यजमान एकाग्रचित्त होकर तुम दोनों को हव्य प्रदान करता है। हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

५. हे अश्विद्वय, तुम दोनों विज्ञ मनवाले, रथाधिरूढ़, द्रुतगामी एवम् स्तोत्र-श्रवणकर्ता हो। तुम दोनों शीघ्र ही अश्व पर आरोहण करके कपटताविहीन च्यवन के निकट उपस्थित हुए थे। हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

६. हे नेता अश्विद्वय, तुम दोनों के सुशिक्षित, द्रुतगामी और विचित्र-मूर्त्ति अश्व सोमपान के लिए ऐश्वर्य के साथ इस स्थान में तुम दोनों का आनयन करें। हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

७. हे अश्विद्वय, तुम दोनों इस स्थान में आगमन करो। हे नासत्यद्वय, तुम दोनों प्रतिकूल नहीं होना। हे अजेय प्रभु, तुम दोनों प्रच्छन्न प्रवेश से हमारे यज्ञगृह में आगमन करो। हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

८. हे जल के अधिपति अजेय अश्विद्वय, इस यज्ञ में तुम दोनों

स्तवकारी अवस्यु के लिए अनुग्रह प्रदर्शन करो। हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

९. उषा विकसित हुई है। समुज्ज्वल किरण-सम्पन्न अग्नि वेदी के ऊपर संस्थापित हुए हैं। हे धनवर्षणकारी, शत्रुसंहारक अश्विद्वय, तुम दोनों के अक्षय्य रथ में अश्व युक्त हों। हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

७६ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि अत्रि के अपत्य भौम। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. उषाकाल में प्रबुध्यमान अग्नि दीप्ति होते हैं। मेधावी स्तोताओं के देवाभिलाषी स्तोत्र उद्गीत होते हैं। हे रथाधिपति अश्विद्वय, तुम दोनों आज इस यज्ञस्थान में अवतीर्ण होकर इस सोमरसपूर्ण समृद्ध यज्ञ में आगमन करो।

२. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों संस्कृत यज्ञ की हिंसा नहीं करो; किन्तु यज्ञ के समीप शीघ्र आगमन करके स्तुति-भाजन होओ। प्रातःकाल में रक्षा के साथ तुम दोनों आगमन करो, जिससे अन्नाभाव नहीं हो। आकर हव्यदाता यजमान को सुखी करो।

३. तुम दोनों रात्रि के शेष में, गोदोहन-काल में, प्रातःकाल में, सूर्य जिस समय अत्यन्त प्रवृद्ध होते हैं अर्थात् अपराह्ण काल में; सायाह्न में, रात्रि में अथवा जिस किसी समय में सुखकर रक्षा के साथ आगमन करो। अश्विनीकुमारों को छोड़कर दूसरे देव सोमपान के लिए प्रवृत्त नहीं होते।

४. हे अश्विनीकुमारो, यह उत्तर वेदी तुम दोनों का निवासयोग्य प्राचीन स्थान है। ये समस्त गृह और आलय तुम दोनों के ही हैं। तुम दोनों वारिपूर्ण मेघ-द्वारा समाकीर्ण अन्तरिक्ष से अन्न और बल के साथ हम लोगों के निकट आगमन करो।

५. हम सब अश्विनीकुमार की श्रेष्ठ रक्षा तथा सुखदायक आगमन के साथ सङ्गत हों। हे अमरणशील देवद्वय, तुम दोनों हमें धन, सन्तति और समस्त कल्याण प्रदान करो।

७७ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि भौम। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे ऋत्विको, अश्विद्वय प्रातःकाल में ही सब देवों से प्रथम ही उपस्थित होते हैं, तुम सब उनका यजन करो। वे अभिकाङ्क्षी और नहीं देनेवाले राक्षस प्रभृति के पूर्व ही हव्य पान करते हैं। अश्विद्वय प्रातःकाल में यज्ञ का संभजन करते हैं। पूर्वकालीन ऋषिगण प्रातःकाल में ही उनकी प्रशंसा करते हैं।

२. हे हमारे पुरुषो, प्रातःकाल में ही तुम लोग अश्विनीकुमारों का पूजन करो। उन्हें हव्य प्रदान करो। सायंकालीन हव्य देवों के निकट जानेवाला नहीं होता है। देवगण उसे स्वीकृत नहीं करते हैं, वह हव्य असेवनीय हो जाता है। हमसे अन्य जो कोई सोम-द्वारा उनका यजन करता है और हव्य-द्वारा उन्हें तृप्त करता है; जो व्यक्ति हम लोगों से और दूसरों से पहले उनका यजन करता है, वह व्यक्ति देवों का सम्भजनीय या संभाव्य (अभिमत) होता है।

३. हे अश्विद्वय, तुम दोनों का हिरण्य-द्वारा आच्छादित, मनोहर वर्ण, जलवर्षण करनेवाला मन की तरह वेगवाला, वायु के सदृश वेग-पूर्ण और अन्न को धारण करनेवाला रथ आगमन करता है। उस रथ के द्वारा तुम दोनों सम्पूर्ण दुर्गम मार्गों का अतिक्रमण करते हो।

४. जो यजमान हविर्विभाग होनेवाले यज्ञ में अश्विनीकुमारों को विपुल अन्न या हव्य प्रदान करता है, वह यजमान कर्म-द्वारा अपने पुत्र का पालन करता है। जो अग्नि को उद्दीप्त नहीं करते हैं अर्थात् अयज्वा हैं, उनकी सदा हिंसा करते हैं।

५. हम सब अश्विनीकुमार की श्रेष्ठ रक्षा तथा सुखदायक आगमन के साथ संगत हों। हे अमरणशील देवद्वय, तुम दोनों हमें धन, सन्तति और समस्त कल्याण प्रदान करो।

७८ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि अत्रि के अपत्य सप्तवध्रि। छन्द उष्णिक्, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. हे अश्विनीकुमारो, इस यज्ञ में तुम दोनों आगमन करो। हे नासत्यद्वय, तुम दोनों स्पृहाशून्य मत होओ। जैसे हंसद्वय निर्मल उदक के प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोम के प्रति आगमन करो।

२. हे अश्विनीकुमारो, हरिण और गौर मृग जैसे घास का अनुधावन करते हैं एवम् जैसे हंसद्वय निर्मल उदक के प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोम के प्रति आगमन करो।

३. हे अन्न के निमित्त निवासप्रद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारे यज्ञ में अभीष्ट सिद्धि के लिए आगमन करो। जैसे हंसद्वय निर्मल उदक के प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोम के प्रति आगमन करो।

४. हे अश्विनीकुमारो, विनय करने पर स्त्री जैसे पति को प्रसन्न करती है, उसी प्रकार हम लोगों के पिता अत्रि ने तुम्हारी स्तुति करके तुषाग्नि-कुण्ड से मुक्ति-लाभ किया था। तुम दोनों श्येन पक्षी के नवजात वेग से सुखकर रथ-द्वारा हम लोगों की रक्षा के लिए आगमन करो।

५. हे वनस्पति-विनिर्मित पेटिके (काठ के बने बक्स), प्रसव करने के लिए उद्यत रमणी की योनि की तरह तुम विवृत (विस्तृत) होओ या फैल जाओ। खुले हुए बक्स की ओर संकेत है। तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो। हम सप्तवध्रि ऋषि को मुक्त करो।

६. हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों भीत और निर्गमन के लिए प्रार्थना करनेवाले ऋषि सप्तवध्रि के लिए माया-द्वारा पेटिका (बक्स) को संगत और विभक्त करते हो।

७. वायु जिस प्रकार सरोवर आदि को संचालित करती है, उसी प्रकार तुम्हारा गर्भ सचालित हो। दस मास के अनन्तर गर्भस्थ जीव निर्गत हो।

८. वायु, वन और समुद्र जिस प्रकार कम्पित होते हैं, उसी प्रकार दस मास-पर्यन्त गर्भस्थ जीव जरायु-वेष्टित होकर पतित हो।

९. दस मास-पर्यन्त जननी के जठर में अवस्थित जीव जीवित तथा अक्षत रूप से जीविता जननी से उत्पन्न हो।

७९ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि अत्रि के सत्यश्रवा। छन्द पंक्ति।)

१. हे दीप्तिमती उषा, तुमने हम लोगों को जैसे पहले प्रबोधित किया था, उसी प्रकार आज भी प्रचुर धन-प्राप्ति के लिए प्रबोधित करो। हे शोभन प्रादुर्भाववाली अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम वय्यपुत्र सत्यश्रवा के प्रति अनुग्रह करो।

२. हे सूर्यतनया उषा, तुमने शुचद्रथ के पुत्र सुनीथि का अन्धकार दूर किया था। हे शोभन प्रादुर्भाववाली, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम वय्यपुत्र अतिशय बलवान् सत्यश्रवा का तमो-निवारण करो।

३. हे द्युलोक की दुहिता, तुम धन आहरण करनेवाली हो। तुम आज हम लोगों का तमोनिवारण करो। हे सुजाता, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुमने वय्यपुत्र अतिशय बलवान् सत्यश्रवा का तमोनाश किया था।

४. हे प्रकाशवती उषा, जो ऋत्विक् स्तोत्र-द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं, वे ऐश्वर्य-द्वारा समृद्धि-सम्पन्न और दानशील होते हैं। हे धन-शालिनी सुजाता उषा, लोग अश्वलाभ के लिए तुम्हारा स्तवन करते हैं।

५. हे उषा, धन प्रदान करने के लिए तुम्हारे सम्मुख उपस्थित ये उपासकगण अक्षय्य हव्यरूप धन प्रदान करके हम लोगों के प्रति अनुकूल हुए थे। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्व-प्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

६. हे धनशालिनी उषादेवी, तुम यजमान स्तोताओं को वीर पुत्रादि से युक्त अन्न प्रदान करो, जिससे वे धनवान् होकर हम लोगों को प्रचुर परिमाण में धन प्रदान करें। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

७. हे धनशालिनी उषा, जिस धनवान् ने हम लोगों को अश्व और धेनुओं से युक्त धन प्रदान किया था, उस सम्पूर्ण यजमान को तुम धन और प्रभूत अन्न प्रदान करो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८. हे द्युलोक की दुहिता उषा, तुम सूर्य की शुभ्र रश्मि एवम् प्रज्वलित अग्नि की प्रदीप्त ज्वाला के साथ हम लोगों के निकट अन्न और धेनुओं का आनयन करो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

९. हे द्युलोक की दुहिता उषा, तुम विभात (प्रकाश) उत्पादन करो। हम लोगों के प्रति विलम्ब नहीं करना। राजा चोर या शत्रु को जिस प्रकार सन्तप्त करते हैं, उसी प्रकार सूर्य तुम्हें रश्मि-द्वारा सन्तप्त नहीं करें। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

१०. हे उषा, जो प्रार्थित हुआ है और जो प्रार्थित नहीं हुआ है, वह सब हमें प्रदान करने में तुम समर्थ हो। हे दीप्तिमती, तुम स्तोताओं का तमोनाश करती हो और उनकी हिंसा नहीं करती हो। हे शोभन उत्पन्न वाली, अश्वप्राप्ति के लिए लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८० सूक्त

(देवता उषा। ऋषि सत्यश्रवा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. दीप्तिमान् रथ पर आरूढ़, सर्वव्यापिनी, यज्ञ में भली भाँति से पूजित, अरुणवर्ण, सूर्य की पुरोवर्तिनी और दीप्तिमती उषा का स्तवन ऋत्विक् लोग स्तोत्रों-द्वारा करते हैं।

२. दर्शनीय उषा प्रसुप्त जनों को प्रबोधित करती हैं और मार्गों को सुगम करके विस्तृत (प्रभूत) रथ पर आरोहण करती हैं एवम् सूर्य के पुरोभाग में गमन करती हैं। महती और विश्वव्यापिनी उषा दिवस के आरम्भ में दीप्ति विस्तार करती हैं।

३. रथ में अरुण वर्ण के बलीवर्दों को युक्त करके वे अक्षीण धनों को अविचलित करती हैं। दीप्तिमती, बहुस्तुता और सबके द्वारा वरणीया उषा मार्गों को प्रकाशित करके शोभमान या प्रकाशित होती हैं।

४. प्रथम और मध्यम स्थान में अर्थात् ऊर्ध्व और मध्य अन्तरिक्ष में अवस्थिति करके उषा अपनी मूर्ति को पूर्व दिशा में प्रकटित करती हैं। विशेष श्वेतवर्णवाली उषा अभी ब्रह्माण्ड को प्रबोधित करके आदित्य के मार्ग का भली भाँति से अनुधावन करती हैं। वे दिशाओं की हिंसा नहीं करती हैं; बल्कि दिशाओं को प्रकाशित करती हैं।

५. सुन्दर अलकार से युक्त रमणी की तरह अपने शरीर को प्रकाशित करती हुई और स्नान कर चुकनेवाली की तरह उषा हम लोगों के पुरोभाग में पूर्व की ओर उदित होती हैं। द्युलोक की दुहिता उषा द्वेषक अन्धकार को बाधित करके तेज के साथ आगमन करती हैं।

६. द्युलोक की दुहिता उषा पश्चिमाभिमुखी होकर कल्याणकारक वेश धारण करनेवाली रमणी की तरह अपने रूप को प्रेरित करती हैं। वह हव्य देनेवाले यजमान को वरणीय धन प्रदान करती हैं। नित्य यौवनवाली उषा पूर्व की तरह अपनी दीप्ति प्रकाशित करती हैं।

८१ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि अत्रि के अपत्य श्यावाश्व। छन्द जगती।)

१. ऋत्विक् यजमान लोग अपने मन को सब कर्मों में लगाते हैं। मेधावी, महान् और स्तुतियोग्य सविता की आज्ञा से यज्ञकार्य में निविष्ट होते हैं। वे होताओं के कार्यों को जानकर उन्हें यज्ञकार्य में प्रेरित करते हैं। सविता देव की स्तुति अत्यन्त प्रभूत है अर्थात् उनकी महिमा स्तुति के अगोचर है।

२. मेधावी सविता स्वयं सम्पूर्ण रूप धारण करते हैं। वे मनुष्यों तथा पशुओं के गमनादि-विषयक कल्याण को जानते हैं। सबके प्रेरक वरणीय सविता देव स्वर्ग को प्रकाशित करते हैं। वे उषा के उदित होने के पश्चात् प्रकाशित होते हैं।

३. अग्नि आदि अन्यान्य देवगण द्युतिमान् सविता का अनुगमन करके महिमा और बल प्राप्त करते हैं अर्थात् सूर्य के उदित होने पर ही अग्नि-होत्रादि कार्य होता है। जो सविता देव अपने माहात्म्य से पृथिव्यादि लोक को परिच्छिन्न करते हैं, वे शोभमान होकर विराजमान हैं।

४. हे सविता, रोचमान तीनों लोकों में तुम गमन करते हो और सूर्य की किरणों से मिलित होते हो, तुम रात्रि के उभय पार्श्व होकर गमन करते हो। हे सविता देव, तुम जगद्धारक कर्म द्वारा मित्र नामक देव होते हो।

५. हे सविता देव, अकेले तुम ही सब (लौकिक) या वैदिक कर्मों के अनुशासन में समर्थ हो। हे देव, गमन-द्वारा तुम पूषा (पोषक) होओ। तुम समस्त भुवनजात को धारण करने में समर्थ हो। हे सविता देव, श्यावाश्व ऋषि तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८२ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि अत्रि के अपत्य श्यावाश्व।
छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. हम लोग सविता देव से प्रसिद्ध और भोगयोग्य धन के लिए प्रार्थना करते हैं। सविता देव के अनुग्रह से हम भग के निकट से श्रेष्ठ, सर्व-भोगप्रद और शत्रुसंहारक धन लाभ करें।

२. सविता के स्वयम् असाधारण, सर्वप्रिय और राजमान ऐश्वर्य को कोई असुर आदि भी नष्ट नहीं कर सकता है।

३. वह सविता और भजनीय भग देव हम हव्यदाता को रमणीय धन प्रदान करते हैं। हम उस भजनीय भगदेव से रमणीय धन की याचना करते हैं।

४. हे सविता देव, आज यज्ञ-दिन में तुम हम लोगों को पुत्रादि से युक्त सौभाग्य (धन) प्रदान करो एवम् हम लोगों के दुस्वप्नजनित दारिद्रय को दूर करो।

५. हे सविता देव, तुम हम लोगों के समस्त अमङ्गल को दूर करो एवम् प्रजा, पशु और गृहादिरूप कल्याण को हम लोगों के अभिमुख प्रेरित करो।

६. हम अनुष्ठान करनेवाले प्रेरक सविता देव की आज्ञा से अखण्ड-नीया देवी (भूमि) अदिति के निकट निरपराधी हों। हम सम्पूर्ण रमणीय या वाञ्छित धन धारण करें।

७. आज हम लोग इस यज्ञ-दिन में, सूक्तों (स्तोत्रों) के द्वारा सर्व-देवस्वरूप, अनुष्ठाताओं के पालक और सत्य शासक या रक्षक सविता देव का संभजन अथवा उपासना करते हैं।

८. जो सविता देव भली भाँति से ध्यान करने के योग्य हैं या सुन्दर कर्मवाले हैं। जो अप्रमत्त होकर दिन और रात के पुरोभाग में

गमन करते हैं, उन सविता देव का हम इस यज्ञ-दिन में, सूक्तों के द्वारा संभजन अथवा उपासना करते हैं।

९. जो सविता देव समस्त उत्पन्न प्राणियों के निकट यश सुनाते हैं अर्थात् सविता देव के यश को सब सुनते हैं, जो सब प्राणियों को प्रेरित करते हैं, उन सविता देव का इस यज्ञ-दिन में हम सूक्तों के द्वारा संभजन अथवा उपासना करते हैं।

८३ सूक्त

(देवता पर्जन्य। ऋषि अत्रि के अपत्य भौम।
छन्द जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. हे स्तोता, तुम बलवान् पर्जन्य देव के अभिमुखवर्ती होकर उनकी प्रार्थना करो। स्तुतिवचनों से उनका स्तवन करो। हविर्लक्षण अन्न से उनकी परिचर्या करो। जलवर्षक, दानशील, गर्जनकारी पर्जन्य वृष्टिपात-द्वारा ओषधियों को गर्भयुक्त करते हैं।

२. पर्जन्य वृक्षों को नष्ट करते हैं, राक्षसों का वध करते हैं और महान् वध-द्वारा समग्र भुवन को भय प्रदर्शित करते हैं। गरजनेवाले पर्जन्य पापियों का संहार करते हैं; अतएव निरपराधी भी वर्षण करनेवाले पर्जन्य के निकट से भीत होकर पलायमान हो जाते हैं।

३. रथी जिस प्रकार से कशाघात-द्वारा अश्वों को उत्तेजित करके योद्धाओं को आविष्कृत करते हैं, उसी प्रकार पर्जन्य भी मेघों को प्रेरित करके वारिवर्षक मेघों को प्रकटित करते हैं। जब तक पर्जन्य जलद-समूह को अन्तरिक्ष में व्याप्त करते हैं, तब तक सिंह की तरह गरजनेवाले मेघ का शब्द दूर में ही उत्पन्न होता है।

४. जब तक पर्जन्य वृष्टि-द्वारा पृथिवी की रक्षा करते हैं, तब तक वृष्टि के लिए हवा बहती रहती है, चारों तरफ़ बिजलियाँ चमकती रहती हैं, ओषधियाँ बढ़ती रहती हैं, अन्तरिक्ष स्रवित होता रहता है और सम्पूर्ण भुवन की हितसाधना में पृथिवी समर्थ होती रहती है।

५. हे पर्जन्य, तुम्हारे ही कर्म से पृथिवी अवनत होती है, तुम्हारे ही कर्म से पाद-युक्त या खुरविशिष्ट पशुसमूह पुष्ट होते हैं या गमन करते हैं। तुम्हारे ही कर्म से ओषधियाँ विविध वर्ण धारण करती हैं। तुम हम लोगों को महान् सुख प्रदान करो।

६. हे मरुतो, तुम लोग अन्तरिक्ष से हम लोगों के लिए वृष्टि प्रदान करो। वर्षणकारी और सर्वव्यापी मेघ की उदक धारा को क्षरित करो (बर्साओ)। हे पर्जन्य, तुम जलसेचन करके गर्जनशील मेघ के साथ हम लोगों के अभिमुख आगमन करो। तुम वारिवर्षक और हम लोगों के पालक हो।

७. पृथिवी के ऊपर तुम शब्द करो—गर्जन करो, उदक द्वारा ओषधियों को गर्भ-धारण कराओ, वारिपूर्ण रथ-द्वारा अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करो, उदकधारक मेघ को वृष्टि के लिए आकृष्ट करो या विमुक्तबन्धन करो, उस बन्धन को अधोमुख करो, उन्नत और निम्नतम प्रदेश को समतल करो। अर्थात् सब उदकपूर्ण हो।

८. हे पर्जन्य, तुम कोशस्थानीय (जल-भाण्डार) महान् मेघ को ऊर्ध्व भाग में उत्तोलित करो एवम् वहाँ से उसे नीचे की ओर क्षारित करो अर्थात् वारिवर्षण कराओ। अप्रतिहत वेगशालिनी नदियाँ पूर्वाभिमुख या पुरोभाग में प्रवाहित हों। जल-द्वारा द्यावा-पृथिवी को क्लिन्न (आर्द्र) करो। गौओं के लिए पानयोग्य सुन्दर जल प्रचुर मात्रा में हो।

९. हे पर्जन्य, जब तुम गम्भीर गर्जन करके पापिष्ठ मेघों को विदीर्ण करते हो, तब यह सम्पूर्ण विश्व और भूमि में अधिष्ठित चराचरात्मक पदार्थ हृष्ट होते हैं अर्थात् वृष्टि होने से सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होता है।

१०. हे पर्जन्य, तुमने वृष्टि की है। अभी वृष्टि संहारण करो। तुमने मरुभूमियों को सुगम्य बनाने के लिए जलयुक्त किया है। मनुष्यों के भोग के लिए ओषधियों को उत्पन्न किया है। प्रजाओं के समीप से तुमने स्तुतियाँ प्राप्त की हैं।

८४ सूक्त

(देवता पृथ्वी। ऋषि अत्रि के पुत्र भौम। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हे पृथिवी (हे मध्य स्थान की देवी), तुम यहाँ अन्तरिक्ष में पर्वतों या मेघों के भेदन को धारण करती हो। तुम बलशालिनी और श्रेष्ठ हो; क्योंकि तुम माहात्म्य-द्वारा पृथिवी को प्रसन्न करती हो।

२. हे विविध प्रकार से गमन करनेवाली पृथिवी देवी, स्तोता लोग गमनशील स्तोत्रों-द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अर्जुनी (शुभ्रवर्णे या गमनशीले) तुम शब्द करनेवाले अश्व की तरह जलपूर्ण मेघ को प्रक्षिप्त करते हो।

३. हे पृथिवी, जब की विद्योतमान अन्तरिक्ष से तुम्हारे सम्बन्धी मेघ वृष्टि पातित करते हैं, तब तुम दृढ़ भूमि के साथ वनस्पतियों को धारण करती हो अथवा वनस्पतियों को दृढ़ करके धारण करती हो।

८५ सूक्त

(देवता वरुण। ऋषि अत्रि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अत्रि, तुम भली भाँति से राजमान, सर्वत्र विश्रुत (प्रसिद्ध) और उपद्रवों के निवारक वरुण देव के लिए प्रभूत, दुरवगाह (बहुत अर्थ से युक्त) और प्रिय स्तोत्र का उच्चारण करो। पशु-हन्ता जिस प्रकार से निहत पशुओं के चर्म को विस्तृत करता है, उसी प्रकार वे सूर्य के आस्तरणार्थ अन्तरिक्ष को विस्तारित करते हैं।

२. वरुणदेव वृक्षों के उपरिभाग में अन्तरिक्ष को विस्तारित करते हैं। अश्वों में बल, गौओं में दुग्ध और हृदय में संकल्प विस्तारित करते हैं। वे जल में अग्नि, अन्तरिक्ष में सूर्य और पर्वतों पर सोमलता स्थापित करते हैं।

३. वरुणदेव स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष के हित के लिए मेघ के निम्न-भाग को सछिद्र करते हैं। वृष्टि जिस प्रकार से यव आदि शस्य

को सिक्त करती है, उसी प्रकार अखिल भुवन के अधिपति वरुणदेव समग्र भूमि को आर्द्र करते हैं।

४. वरुणदेव जब वृष्टिरूप दुग्ध की कामना करते हैं, तब वे पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को आर्द्र करते हैं। अनन्तर पर्वतसमूह वारिदों के द्वारा शिखरों को आवृत करते हैं। मरुद्गण अपने बल से उल्लसित होकर मेघों को शिथिल करते हैं।

५. हम प्रसिद्ध असुरहन्ता वरुणदेव की इस महती प्रज्ञा की घोषणा करते हैं। जो वरुणदेव अन्तरिक्ष में अवस्थित होकर मानदण्ड की तरह सूर्य-द्वारा पृथिवी और अन्तरिक्ष को परिच्छिन्न करते हैं।

६. प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न और द्युतिमान् वरुणदेव की सर्वप्रसिद्ध महती प्रज्ञा की हिंसा (खण्डन) कोई नहीं कर सकता है। जल-सेचनकारिणी शुभ्र नदियाँ वारि-द्वारा एकमात्र समुद्र को भी पूर्ण नहीं कर सकती हैं। यह वरुण का महान् कर्म है।

७. हे वरुण, यदि हम लोग कभी किसी दाता, मित्र, वयस्य, भ्राता, पड़ोसी अथवा मूक के प्रति कोई अपराध करें, तो उन अपराधों का विनाश करो।

८. हे वरुणदेव, द्यूतक्रीड़ा-द्वारा प्रवञ्चनाकारी पाशक्रीड़क की तरह यदि हम लोग ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक कोई अपराध करें, तो तुम शिथिल बन्धन की तरह उन्हें मुक्त करो। हे देव, अनन्तर हम तुम्हारे प्रियपात्र हों।

८६ सूक्त

(दैवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि अत्रि।
छन्द अनुष्टुप् और विराट्।)

१. हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों संग्राम में मर्त्य की रक्षा करो। वे शत्रु-सम्बन्धी द्युतिमान् धन को अतिशय भिन्न करते हैं। वे प्रतिवादियों के वाक्य का खण्डन करते हैं और शत्रुओं के वाक्य की तरह तीनों स्थानों में वर्तमान रहते हैं।

२. जो इन्द्र और अग्नि संग्राम में अनभिभवनीय हैं, जो संग्राम में या अन्न के विषय में स्तवनीय हैं और जो पञ्चश्रेणी के मनुष्यों की रक्षा करते हैं, उन दोनों महानुभावों का हम लोग स्तवन करते हैं।

३. इन दोनों का बल शत्रुओं को पराभूत करनेवाला है। जब ये दोनों देव एक रथ पर आरूढ़ होकर धेनुओं के उद्धारार्थ और वृत्र के विनाशार्थ गमन करते हैं, तब इन दोनों धनवानों के हाथों में तीक्ष्ण वज्र विराजमान रहता है।

४. हे गमनशील, धन के अधिपति, सर्वज्ञ तथा निरतिशय वन्दनीय इन्द्र और अग्नि, युद्ध में रथ प्रेरित करने के लिए हम लोग तुम दोनों का आह्वान करते हैं।

५. हे अहिंसनीय देवद्वय, हम लोग अश्व लाभ के लिए तुम दोनों का स्तवन करते हैं। तुम दोनों मनुष्यों की तरह सर्वदा वर्द्धमान होते हो एवम् आदित्यद्वय की तरह दीप्तिमान् हो।

६. पत्थरों-द्वारा पिसे हुए सोमरस की तरह बलकारक हव्य सम्प्रति प्रवत्त हुआ है। तुम दोनों ज्ञानियों को अन्न प्रदान करो। स्तवकारियों को प्रभूत धन और अन्न प्रदान करो।

८७ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि अत्रि के अपत्य एवयामरुत्।
छन्द जगती।)

१. एवया ऋषि के वचन-निष्पन्न स्तोत्र मरुतों के साथ विष्णु के निकट उपस्थित हों एवम् वे ही स्तोत्र बलशाली, पूजनीय, शोभनालंकृत, शक्तिसम्पन्न, स्तुतिप्रिय, मेघसञ्चालनकारी और द्रुतगामी मरुतों के निकट उपस्थित हों।

२. जो महान् इन्द्र के सहित प्रादुर्भूत हुए हैं, जो यज्ञ-गमन-विषयक ज्ञान के साथ प्रादुर्भूत हुए हैं, उन मरुतों का एवयामरुत् स्तवन करते हैं। हे मरुतो, तुम लोगों का बल अभिमत फल दान से महान् है और अनभिभवनीय है। तुम लोग पर्वत की तरह अटल हो।

३. जो दीप्त और स्वच्छन्दतया विस्तीर्ण स्वर्ग से आह्वान श्रवण करते हैं, अपने गृह में अवस्थिति करने पर जिन्हें चालित करने में कोई समर्थ नहीं है, जो अपनी दीप्ति-द्वारा दीप्तिमान् हैं, जो अग्नि की तरह नदियों को सञ्चालित करते हैं। एवयामरुत् स्तुति-द्वारा उनकी उपासना करते हैं।

४. मरुतों के स्वेच्छानुसार गमन करनेवाले अश्व जब रथ में युक्त होते हैं, तब एवयामरुत् उनके लिए अपेक्षा करते हैं। सर्वव्यापी मरुद्गण महान् तथा सर्वसाधारण स्थान अन्तरिक्ष से निर्गत हुए हैं। परस्पर स्पर्द्धाकारी, बलशाली और सुखदाता मरुद्गण निर्गत हुए हैं।

५. हे मरुतो, तुम लोग स्वाधीनतेजा, स्थिरदीप्ति, स्वर्णाभरणभूषित और अन्नदाता हो। तुम लोग जिस शब्द से शत्रुओं को अभिभूत करके अपना कार्यसाधन करते हो, वह प्रबल वारिवर्षणकारी, दीप्त, विस्तृत और प्रवृद्ध ध्वनि एवयामरुत् को कम्पित न करे।

६. हे समधिक बलशाली मरुतो, तुम लोगों की महिमा अपार है, निरवधि है। तुम लोगों की शक्ति एवयामरुत् की रक्षा करे। नियमयुक्त यज्ञ के सन्दर्शन-विषय में तुम लोग ही नियामक हो। तुम लोग प्रज्वलित अग्नि के सदृश दीप्त हो। निन्दकों से तुम लोग हमारी रक्षा करो।

७. हे पूजनीय और अग्नि की तरह प्रभूत दीप्तिशाली रुद्रपुत्रो, एवयामरुत् की रक्षा करो। अन्तरिक्ष-सम्बन्धी दीर्घ और विस्तीर्ण गृह मरुतों के द्वारा विख्यात होता है। निष्पाप मरुद्गण गमनकाल में प्रभूत-शक्ति प्रकाशित करते हैं।

८. हे विद्वेषहीन मरुतो, तुम लोग हमारे स्तोत्र के सन्निहित होओ एवं स्तवनकारी एवयामरुत् का आह्वान श्रवण करो। हे इन्द्र के साथ एकत्र यज्ञभाग प्राप्त करनेवाले मरुतो, योद्धा लोग जिस प्रकार से शत्रुओं को अपसारित करते हैं, उसी प्रकार तुम लोग हमारे गूढ़ शत्रुओं को दूर करो।

९. हे यजनयोग्य मरुतो, तुम लोग हमारे यज्ञ में आगमन करो, जिससे यह यज्ञ सुसम्पन्न हो। तुम लोग रजोवर्जित या निर्विघ्न हो। हमारा आह्वान श्रवण करो। हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न मरुतो, अत्यन्त वर्द्धमान विन्ध्यादि पर्वत की तरह अन्तरिक्ष में अवस्थान करके तुम लोग निन्दकों का शासन करते हो।

पञ्चम मण्डल समाप्त ।

१ सूक्त

(षष्ठ मण्डल। ४ अष्टक। ४ अध्याय। १ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि बृहस्पति के अपत्य भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, तुम देवताओं के मध्य में प्रकृष्टतम हो। देवताओं का मन तुममें सम्बद्ध है। हे दर्शनीय, इस यज्ञ में तुम्हीं देवों के आह्वान करनेवाले होते हो। हे अभीष्टवर्षी, समस्त बलशाली शत्रुओं को पराभूत करने के लिए तुम हमें अनिवार्य बल प्रदान करो।

२. हे अग्नि, तुम अतिशय यज्ञकर्त्ता और होमनिष्पादक हो। तुम हव्य ग्रहण करके स्तुतियोग्य होते हो। तुम वेदी रूप स्थान पर उपवेशन करो। धर्मानुष्ठानकारी ऋत्विक् लोग महान् धन प्राप्त करने की आशा से देवों के मध्य में प्रथम ही तुम्हारा अनुसरण करते हैं।

३. हे अग्नि, तुम दीप्तिमान्, दर्शनीय, महान् हव्यभोजी और सम्पूर्ण काल में दीप्तिमान् हो। तुम वसुओं के मार्ग से अर्थात् अन्तरिक्ष से गमन करते हो। धनाभिलाषी यजमान तुम्हारा अनुसरण करते हैं।

४. अन्नाभिलाषी होकर यजमान लोग स्तोत्र के साथ दीप्तिमान् अग्नि के आहवनीय स्थान में गमन करते हैं और अप्रतिहत भाव से अथवा अबाध्य रूप से प्रचुर अन्न प्राप्त करते हैं। हे अग्नि, दर्शन होने पर वे स्तुतियों से आनन्दित होते हैं और तुम्हारे यागयोग्य नामों को धारण करते हैं—जातवेदा, वैश्वानर इत्यादि नामों का संकीर्तन करते हैं।

५. हे अग्नि, मनुष्यगण तुम्हें वेदी के ऊपर वर्द्धित करते हैं। तुम यजमानों के पशु और अपशु रूप दोनों प्रकार के धन को वर्द्धित करते हो। अध्वर्यु आदि भी उभय विध धन प्राप्त करने के लिए तुम्हें वर्द्धित करते हैं। हे दुःखविनाशक अग्नि, तुम स्तुतिभाजन होकर मनुष्यों के रक्षक और पितृ-मातृ-स्थानीय हो।

६. पूजनीय, अभीष्टवर्षी, प्रजाओं के मध्य में होमनिष्पादक, मोहप्रद और अतिशय यजनीय अग्नि वेदी के ऊपर उपविष्ट होते हैं। हे अग्नि, तुम गृह में प्रज्वलित होते हो। हम लोग जानु को अवनत करके, स्तोत्र के साथ, तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं।

७. हे अग्नि, तुम स्तुतियोग्य हो। हम शोभन बुद्धिवाले, सुखाभिलाषी और तुम्हारी कामना करनेवाले हैं। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अग्नि, तुम दीप्यमान हो। महान् रोचमान मार्ग से अर्थात् आदित्य मार्ग से तुम हम स्तोताओं को स्वर्ग पहुँचाओ।

८. नित्यस्वरूप ऋत्विक् यजमान आदि के स्वामी, ज्ञानसम्पन्न, शत्रुविनाशक, कामनाओं के पूरक, स्तोता मनुष्यों के प्राप्तव्य, अन्नविधायक, शुद्धता-सम्पादक, धनार्थियों के द्वारा यष्टव्य और दीप्यमान अग्नि का हम लोग स्तवन करते हैं।

९. हे अग्नि, जो यजमान तुम्हारा यजन करता है, जो स्तवन करता है, जो यजमान प्रज्वलित इन्धन के साथ तुम्हें हव्य प्रदान करता है, जो स्तुति के साथ तुम्हें आहुति प्रदान करता है, वह यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होता है और समस्त अभिलषित धन प्राप्त करता है।

१०. हे अग्नि, तुम महान् हो। हम नमस्कार, इंधन और हव्य के द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं। हे बलपुत्र, हम लोग स्तोत्र और शस्त्र के साथ वेदी के ऊपर तुम्हारी अर्चना करते हैं। हम लोग तुम्हारा शोभन अनुग्रह प्राप्त करने के लिए यत्न करते हैं। हम लोग सफल हों।

११. हे अग्नि, दीप्ति-द्वारा तुमने द्यावा-पृथिवी को विस्तृत किया है। तुम परित्राणकर्त्ता और स्तुति-द्वारा पूजनीय हो। तुम प्रचुर अन्न और विशिष्ट धन के साथ हम लोगों के निकट भली भाँति से दीप्त होओ।

१२. हे धनवान् अग्नि, मनुष्यों से युक्त अर्थात् पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन तुम हमें प्रदान करो। हमारे पुत्र-पौत्रों को प्रभूत पशु प्रदान करो। कामनाओं के पूरक और पापरहित पर्याप्त अन्न तथा सौभाग्य हमें प्राप्त हो।

१३. हे दीप्तिमान् अग्नि, हम तुम्हारे निकट से गो-अश्वादिरूप बहुविध धन प्राप्त करें। तुम धनवान् हो। हे सर्ववरणीय अग्नि, तुम शोभन हो। तुममें बहुविध धन निहित है।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

२ सूक्त

(पञ्चम अध्याय। देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द अनुष्टुप् और शक्वरी।)

१. हे अग्नि, तुम मित्र देव की तरह शुष्क काष्ठ के द्वारा हवि के ऊपर अभिपतित होते हो; अतएव हे सर्वदर्शी, धन-सम्पन्न अग्नि, तुम अन्न और पुष्टि-द्वारा हम लोगों को वर्द्धित करो।

२. हे अग्नि, मनुष्यगण हव्यसाधन हव्य और स्तुति के द्वारा तुम्हारी अर्चना करते हैं। हिंसावर्जित, जल के प्रेरक अथवा लोगों में अभिगमन करनेवाले, सर्वद्रष्टा सूर्यदेव तुम्हारा अभिगमन करते हैं।

३. हे अग्नि, समान प्रीति धारण करनेवाले ऋत्विक् लोग तुम्हें समिद्ध अर्थात् प्रज्वलित करते हैं। तुम यज्ञ के प्रज्ञापक हो। मनु के अपत्य यजमान लोग सुखाभिलाषी होकर यज्ञ में तुम्हारा आह्वान करते हैं।

४. हे अग्नि, तुम दानशील हो, जो मरणशील यजमान यज्ञ-कर्म में रत होकर तुम्हारा स्तवन करता है, वह समृद्धिशाली हो। हे अग्नि, तुम दीप्तियुक्त हो। वह यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर भीषण पाप की तरह शत्रुओं को पराभूत करे।

५. हे अग्नि, जो मनुष्य काष्ठ-द्वारा तुम्हारी मन्त्र-संस्कृत आहुति को व्याप्त (पुष्ट) करता है, वह मनुष्य पुत्र-पौत्रादि से युक्त गृह में सौ वर्षों तक आयु का भोग करता है।

६. हे अग्नि, तुम दीप्तिशाली हो। तुम्हारा शुभ्र वर्ण का धूम अन्त-रिक्ष में विस्तृत होता है और मेघरूप में परिणत होता है। हे पावक (शुद्धि विधायक), तुम स्तोत्र-द्वारा प्रसन्न होकर सूर्य की तरह दीप्ति-द्वारा रुचि-मान् होते हो।

७. हे अग्नि, तुम प्रजाओं के स्तुतिभाजन हो; क्योंकि तुम अतिथि की तरह हम लोगों के प्रिय हो। नगर में वर्तमान हितोपदेष्टा वृद्ध की तरह तुम आश्रययोग्य हो एवम् पुत्र की तरह पालनीय हो।

८. हे अग्नि, अरणिमन्थन रूप कर्म से तुम्हारी विद्यमानता प्रकाशित होती है। अश्व जिस प्रकार से अपने आरोही का वहन करता है, उसी प्रकार तुम हव्य वहन करो। तुम वायु की तरह सर्वत्र गमन करते हो। तुम अन्न और गृह प्रदान करो। तुम शिशु और अश्व की तरह कुटिलगामी हो।

९. हे अग्नि, तृण आदि चरने के लिए विसृष्ट (छोड़ा गया) पशु जिस प्रकार सम्पूर्ण तृण भक्षण कर लेता है, उसी प्रकार तुम प्रौढ़ काष्ठों को क्षण मात्र में भक्षण कर लेते हो। हे अविनश्वर अग्नि, तुम दीप्ति-शाली हो। तुम्हारी शिखायें अरण्यों को छिन्न कर देती हैं।

१०. हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी यजमानों के गृह में होता रूप से प्रविष्ट होते हो। हे मनुष्यों के पालक अग्नि, तुम हम लोगों का समृद्धि-विधान करो। हे अंगार-रूप अग्नि, तुम हमारे हव्य को स्वीकार करो।

११. हे अनुकूल दीप्तिवाले, देव-दानवादि गुणयुक्त और द्यावा-पृथिवी में वर्तमान अग्निदेव, तुम देवों के निकट हम लोगों की स्तुति का उच्चारण करो। हम स्तोताओं को शोभन निवास-युक्त सुख में ले जाओ। हम लोग शत्रुओं, पापों और कष्टों का अतिक्रमण करें। हम लोग जन्मान्तर में कृतपापों से मुक्त हों। हे अग्नि, तुम्हारी रक्षा के द्वारा हम शत्रु आदि से उद्धार पायें।

३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, वह यजमान चिरकालपर्यन्त जीवन धारण करे, जो यजमान यज्ञ का पालन करता है और यज्ञ के निमित्त उत्पन्न हुआ है। वरुण और मित्र के साथ समान प्रीति धारण करके, तेज-द्वारा तुम पाप से जिसकी रक्षा करते हो, वह देवाभिलाषी यजमान तुम्हारी विस्तीर्ण ज्योति प्राप्त करता है।

२. वरणीय धन से समृद्धिमान् अग्नि के लिए जो यजमान हव्य प्रदान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञ के द्वारा यज्ञवान् अर्थात् सफल-यज्ञ होता है। तथा कृच्छ्र चान्द्रायणादि कर्म-द्वारा शान्त होता है यानी अग्नि कर्म-द्वारा वह सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है। वह यजमान यशस्वी पुत्रों के अभाव को भी नहीं प्राप्त करता है। उसे पाप तथा अनर्थक गर्व नहीं छूते।

३. सूर्य के समान अग्नि का दर्शन पापरहित है। हे अग्नि, तुम्हारी प्रज्वलित ज्वाला भयंकर है और सर्वत्र गमन करती है। अग्निदेव रात्रि में शब्दायमान धेनु की तरह विस्तृत होते हैं। सबके आवासभूत अर्थात् निवासप्रद और अरण्यजात अग्नि पर्वत के अग्र भाग में रमणीय होते हैं।

४. अग्नि का मार्ग तीक्ष्ण है। इनका रूप अत्यन्त दीप्तिमान् है। अग्नि अश्व की तरह मुख-द्वारा तृणादि को प्राप्त करते हैं। कुठार जैसे अपनी धार को काष्ठ पर प्रक्षिप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि अपनी

ज्वाला को तरु गुल्म आदि पर प्रक्षिप्त करते हैं। स्वर्णकार जैसे सुवर्ण आदि को द्रवीभूत करता है, उसी प्रकार अग्नि सम्पूर्ण वन को द्रवित करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण वस्तु को अग्नि भस्मीभूत कर डालते हैं।

५. वाण चलानेवाला जैसे लक्ष्य के अभिमुख वाण चलाता है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को प्रक्षिप्त करते हैं। कुठार आदि को चलानेवाला जैसे कुठार आदि की धार को तीक्ष्ण करता है वैसे ही अग्नि भी अपनी ज्वाला को फेंकते समय तीक्ष्ण करते हैं। वृक्ष के ऊपर निवास करनेवाले और लघुपतन-समर्थ पाद-विशिष्ट पक्षी की तरह विचित्रगति अग्नि रात्रि का अतिक्रमण करते हैं अर्थात् धीरे-धीरे अन्धकार का विनाश करते हैं।

६. वे अग्नि स्तवनीय सूर्य की तरह दीप्त ज्वाला को आच्छादित करते हैं। सबके अनुकूल प्रकाश को विस्तारित करके वे तेज-द्वारा अत्यन्त शब्द करते हैं। अग्नि रात्रि में शोभित होकर मनुष्यों को दिवस की तरह अपने-अपने कार्यों में लगाते हैं। अमरणशील और सुन्दर अग्नि द्युतिमान् तेज-द्वारा अपनी किरणों को नेताओं के लिए प्रेरित करते हैं। अथवा सुन्दर अग्नि दिन में देवों को हवि के संयुक्त करते हैं।

७. दीप्तिमान् सूर्य की तरह रश्मि विस्तीर्ण करनेवाले जिस अग्नि का महान् शब्द हुआ है, वे अभीष्टवर्षी और दीप्त अग्नि ओषधियों के (जलाने योग्य) मध्य में अत्यन्त शब्द करते हैं। जो दीप्त और गमनशील तथा इतस्ततः ऊर्द्धगामी तेज-द्वारा गमन करते हैं, वे अग्नि हमारे शत्रुओं को दमन करते हुए शोभनपति-सम्पन्न स्वर्ग और पृथिवी को धन-द्वारा पूर्ण करते हैं।

८. जो अग्नि अश्व की तरह स्वयमेव युज्यमान अर्चनीय दीप्ति के साथ गमन करते हैं, वे अग्नि अपने तेज के द्वारा विद्युत् की तरह चमकते हैं। जो अग्नि मरुतों के बल को स्वल्प करते हैं, वे निरतिशय दीप्तिशाली, सूर्य की तरह प्रदीप्त और वेगसम्पन्न अग्नि प्रकाशमान होते हैं।

४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे देवों के आह्वान करनेवाले बलपुत्र अग्नि, जिस प्रकार प्रजापति (यजमान) के यज्ञ में तुमने हव्य-द्वारा देवों का यजन किया था, उसी प्रकार हम लोगों के इस यज्ञ में आज यजनीय इन्द्रादि देवों को अपने समान समझकर तुम उनका शीघ्र यजन करो।

२. जो दिन के प्रकाशक हैं, जो सूर्य की तरह अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, जो सबके बोधगम्य हैं, जो सबके जीवनभूत हैं, अविनश्वर हैं, अतिथि हैं, जातवेदा हैं और जो मनुष्यों के मध्य में उषाकाल में प्रबुद्ध होते हैं, वे अग्नि हम लोगों को वन्दनीय (उत्कृष्ट) धन प्रदान करें।

३. स्तोता लोग अभी जिन अग्नि के महान् कर्म की स्तुति करते हैं, वे सूर्य की तरह शुभ्रवर्ण अग्नि अपने तेज को आच्छादित करते हैं। जरारहित और पवित्र बनानेवाले अग्नि दीप्ति-द्वारा सब पदार्थों को प्रकाशित करते हैं और व्यापनशील राक्षसादि को तथा पुरातन नगरों की हिंसा करते हैं।

४. हे सबके प्रेरक अग्नि, तुम वन्दनीय हो। अग्नि हव्य के ऊपर आसीन होकर स्वभावतः ही उपासकों को गृह और अन्न प्रदान करते हैं। हे अन्नप्रदायक अग्नि, तुम हम लोगों को अन्न प्रदान करो तथा राजा की तरह हमारे शत्रुओं को जीतो एवम् उपद्रव-शून्य हमारे अभ्यागार में निवास करो।

५. जो अग्नि अन्धकार के निवारक हैं, जो अपने तेज को तीक्ष्ण करते हैं, जो हवि का भक्षण करते हैं और जो वायु की तरह सब पर शासन करते हैं, वे अग्नि रात्रि का अतिक्रमण करते हैं अर्थात् रात्रि के अन्धकार का विनाश करते हैं। हे अग्नि, हम तुम्हारे प्रसाद से उस व्यक्ति को जीतें, जो तुम्हें हव्य प्रदान नहीं करता है। तुम अश्व की तरह वेगगामी होकर हमारे आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को विनष्ट करो।

६. हे अग्नि, तुम द्यावा-पृथिवी को विशेष रूप से आच्छादित करते हो जैसे सूर्य देव अपनी दीप्तिमान् और पूजनीय किरणों से द्यावा-पृथिवी को आच्छादित करते हैं। अपने पथ से गमन करनेवाले सूर्य की तरह विचित्र अग्नि अन्धकारों को दूर करते हैं।

७. हे अग्नि, तुम अत्यन्त स्तवनीय, पूजार्ह और दीप्तियुक्त हो। हम लोग तुम्हारा सम्भजन करते हैं; इसलिए तुम हमारे महान् स्तोत्र का श्रवण करो। हे अग्नि, नेता रूप ऋत्विक् लोग तुम्हें हविर्लक्षण धन से सन्तुष्ट करते हैं। तुम बल में वायु के सदृश और इन्द्र की तरह देव-स्वरूप हो।

८. हे अग्नि, तुम शीघ्र ही वृक से रहित मार्ग-द्वारा हम लोगों को निर्विघ्न-पूर्वक ऐश्वर्य के समीप ले जाओ। पाप से हम लोगों का उद्धार करो। तुम स्तोताओं को जो सुख प्रदान करते हो, वही सुख हमें प्रदान करो। हम लोग शोभन सन्तति-सम्पन्न होकर सौ वर्ष पर्यन्त सुख-भोग करें।

५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, हम स्तोत्रों-द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम बल-पुत्र, नित्य तरुण, प्रशस्त स्तुति-द्वारा स्तवनीय, अतिशय युवा, प्रकृष्ट ज्ञानवाले, बहुस्तुत और द्रोह-रहित हो। इस प्रकार के अग्नि स्तोताओं को अभिलषित धन प्रदान करते हैं।

२. हे बहु-ज्वाला-विशिष्ट देवों के आह्वान करनेवाले अग्नि, याग-योग्य यजमान तुममें हव्य रूप धन को अहर्निश समर्पित करते हैं। देवों ने जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवों को पृथिवी पर स्थापित किया था, उसी प्रकार अग्नि में सम्पूर्ण धन को रखा था।

३. हे अग्नि, तुम प्राचीन तथा परिदृश्यमान प्रजाओं में सर्वतोभाव से अवस्थान करते हो एवम् अपने कार्य-द्वारा यजमानों को वाञ्छित धन

प्रदान करते हो। हे ज्ञानी जातवेदा, अतएव तुम परिचर्याकारी यज-मान को निरन्तर धन प्रदान करो।

४. हे अनुकूल दीप्तिवाले अग्नि, जो शत्रु अन्तर्हित देश में वर्तमान होकर हम लोगों को बाधित करता है और जो शत्रु अभ्यन्तरवर्ती होकर हम लोगों को बाधित करता है, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को तुम अपने तेज-द्वारा दग्ध करो। तुम्हारा तेज जरारहित वृष्टि-हेतुभूत और असा-धारण है।

५. हे बलपुत्र अग्नि, जो यजमान यज्ञ-द्वारा तुम्हारी परिचर्या करता है, जो इन्धन शस्त्र और अर्चनीय स्तोत्रों-द्वारा तुम्हारी परिचर्या करता है, हे अमर अग्नि, वह यजमान मनुष्यों के मध्य में प्रकृष्ट ज्ञान से युक्त होता है और धन तथा द्युतिमान् अन्न से अतिशय शोभित होता है।

६. हे अग्नि, तुम जिस कार्य के लिए प्रेषित हुए हो, उस कार्य को शीघ्र ही करो। तुम बलवान् हो; अतएव दूसरों को अभिभूत करनेवाले बल से शत्रुओं को विनष्ट करो। स्तुतिरूप वचन से जो स्तोता तुम्हारा स्तवन करता है, उस स्तोता के उच्चारित स्तोत्र का तुम सेवन करो। अग्नि, द्युतिमान् तेज से युक्त हैं।

७. हे अग्नि, तुम्हारी रक्षा-द्वारा हम अभिलषित फल प्राप्त करें। हे धनाधिपति, हम शोभन पुत्र आदि से युक्त धन प्राप्त करें। अन्नाभि-लाषी होकर हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न लाभ करें। हे जरारहित अग्नि, हम तुम्हारे अजर और द्युतिमान् यश का लाभ करें।

६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तुति के योग्य, बलपुत्र अग्नि के निकट अन्न की अभिलाषा करनेवाले यजमान (स्तोता) नवीन यज्ञ से युक्त होकर गमन करते हैं। अग्नि वन को दग्ध करनेवाले, कृष्णवर्त्मा, श्वेतवर्ण, कमनीय, होता और स्वर्गीय हैं।

२. अग्नि श्वेतवर्ण, शब्दकारी, अन्तरिक्ष में वर्तमान, अजर और अत्यन्त शब्दकारी मरुतों के साथ मिलित एवम् युवतम हैं। अग्नि पावक और सुमहान् हैं। वे असंख्य स्थूल काष्ठों को भक्षण करके अनुगमन करते हैं।

३. हे विशुद्ध अग्नि, तुम्हारी प्रदीप्त शिखायें पवन-द्वारा सञ्चालित होकर बहुत काष्ठों को भक्षण करती हैं और सर्वत्र व्याप्त होती हैं। प्रदीप्त अग्नि से सम्भूत नवोत्पन्न रश्मियाँ घर्षणकारी दीप्ति-द्वारा वनों को मज्जित करती हुई दग्ध करती हैं।

४. हे दीप्तिसम्पन्न अग्नि, तुम्हारी जो सम्पूर्ण शुभ्र रश्मियाँ पृथिवी के केशस्थानीय ओषधियों को दग्ध करती हैं, वे विमुक्त अश्वों की तरह इतस्ततः गमन करती हैं। तुम्हारी भ्रमणशील शिखायें विचित्र रूप पृथ्वी के ऊपर स्थित उन्नत प्रदेश पर आरोहण करके अभी विराजित होती हैं।

५. वर्षणकारी अग्नि की शिखायें बारम्बार निर्गत होती हैं। जैसे, धेनुओं के लिए युद्ध करनेवाले इन्द्र के द्वारा प्रयुक्त वज्र बारम्बार निर्गत होता है। वीरों के पौरुष (बन्धन) की तरह अग्नि की शिखा दुःसह, दुर्निवार है। भयंकर अग्नि वनों को दग्ध करते हैं।

६. हे अग्नि, तुम प्रबल और उत्तेजक रश्मि-द्वारा पृथिवी के गन्तव्य स्थानों को दीप्ति-द्वारा आच्छन्न करो। तुम सम्पूर्ण विपत्तियों को दूर करो एवम् अपने तेजः प्रभाव से स्पर्द्धा-कारियों को अभिभूत करके शत्रुओं को विनष्ट करो।

७. हे विचित्र अद्भुत बल-सम्पन्न, आनन्द-दायक अग्नि, हम लोग, आह्लादक स्तोत्रों-द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम अद्भुत, अत्यद्भुत् यशस्कर, अन्नप्रद, अन्नदायक और पुत्र-पौत्रादि समन्वित विपुल ऐश्वर्य प्रदान करो।

७ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. वैश्वानर अग्नि स्वर्ग के शिरोभूत, भूमि में गमन करनेवाले, यज्ञ के लिए उत्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न, भली भाँति से राजमान, यजमानों के अतिथिस्वरूप, मुखस्वरूप (अग्नि-लक्षण मुख से ही देवगण भोजन करते हैं) और रक्षाविधायक हैं। देवों, स्तोताओं या ऋत्विकों ने अग्नि को उत्पन्न किया है।

२. स्तोता लोग यज्ञ के बन्धक, धन के स्थान और हव्य के आश्रयस्वरूप अग्नि का, भली भाँति से, स्तवन करते हैं। देवगण यज्ञीय द्रव्यों के वहनकारी और यज्ञ के केतुस्वरूप वैश्वानर अग्नि को उत्पन्न करते हैं।

३. हे अग्नि, हवीरूप अन्न से युक्त पुरुष तुम्हारे समीप से ही ज्ञानवान् होता है। वीर लोग तुम्हारे समीप से ही शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले होते हैं। इसलिए हे दीप्तिशाली वैश्वानर, तुम हम लोगों को वाञ्छित धन प्रदान करो।

४. हे अमरणशील अग्नि, तुम पुत्र की तरह अरणिद्वय से उत्पन्न हुए हो। समस्त देवगण तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे वैश्वानर, जब तुम पालक द्यावा-पृथिवी के मध्य में दीप्यमान होते हो, तब यजमान लोग तुम्हारे यज्ञकार्य-द्वारा अमरत्व लाभ करते हैं।

५. हे वैश्वानर, तुम्हारे उन प्रसिद्ध महान् कर्मों में कोई भी बाधा उपस्थित नहीं कर सकता है। पितृ-मातृ-स्वरूप द्यावा-पृथिवी के क्रोड़भूत अन्तरिक्ष-मार्ग में उत्पन्न होकर तुमने दिवसों के प्रज्ञापक सूर्य को अन्तरिक्ष-पथ में संस्थापित किया है।

६. वैश्वानर के वारिप्रज्ञापक तेज-द्वारा द्युलोक के उन्नत स्थल (नक्षत्र आदि अथवा मेघ) निर्मित हुए हैं। वैश्वानर के शिरःस्थान (मेघरूप में परिणत धूम) में वारिराशि अवस्थान करती हैं एवं उससे सात नदियाँ

शाखा की तरह उद्भूत होती हैं। अर्थात् आहुति-द्वारा सम्पूर्ण जगत् अग्नि से उत्पन्न होता है।

७. शोभन कर्म करनेवाले जिन वैश्वानर अग्नि ने उदक अथवा लोकों का निर्माण किया था, ज्ञान-सम्पन्न होकर जिन्होंने द्युलोक के दीप्तिमान् नक्षत्रों को सृष्ट किया था और जिन्होंने समस्त भूत-जात को चतुर्दिक् प्राप्त किया था, वे अजेय, पालक और वारिरक्षक अग्नि विराजमान होते हैं।

८ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। ऋषि भरद्वाज।
छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. हम लोग सर्वव्यापी, वारिवर्षक और दीप्तिमान् जातवेदा के बल के लिए इस यज्ञ में भली भाँति से स्तवन करते हैं। वैश्वानर अग्नि के अभिमुख नवीन, निर्मल और शोभन स्तोत्र सोमरस की तरह निर्गत होता है।

२. सत्कर्मपालक वैश्वानर उत्कृष्ट आकाश में जायमान होकर लौकिक तथा वैदिक दोनों कर्मों की रक्षा करते हैं और अन्तरिक्ष का परिमाण करते हैं। शोभन कर्म करनेवाले वैश्वानर अपने तेजों से द्युलोक का स्पर्श करते हैं।

३. सबके मित्रभूत और महान् आश्चर्यभूत वैश्वानर ने द्यावा-पृथिवी को अपने-अपने स्थान पर विशेष रूप से स्तम्भित किया है। तेज-द्वारा उन्होंने अन्धकार को अन्तर्हित किया है। आधारभूत द्यावा-पृथिवी को उन्होंने पशुचर्म की तरह विस्तृत किया है। वैश्वानर अग्नि समस्त वीर्य धारण करते हैं।

४. महान् मरुतों ने अन्तरिक्ष के मध्य में अग्नि को धारण किया था और मनुष्यों ने पूजनीय स्वामी कहकर इनकी स्तुति की थी। देवों के

हुत थे। वेगवान् मातरिश्वा (वायु) दूर देश-स्थित सूर्यमण्डल से वैश्वानर अग्नि को इस लोक में लाये हैं।

५. हे अग्नि, तुम यागयोग्य हो। तुम्हारे उद्देश्य से जो नवीन स्तोत्र का उच्चारण करते हैं, उन्हें तुम धन और यशस्वी पुत्र प्रदान करो। हे जरारहित और हे राजमान अग्नि, तुम अपने तेज-द्वारा शत्रु को उसी प्रकार निपातित करो, जैसे वज्र वृक्ष को निपातित करता है।

६. हे अग्नि, हम लोग हविर्लक्षण धन से युक्त हैं। हमें तुम अनपहार्य, अक्षय और सुवीर्य धन प्रदान करो। हे वैश्वानर अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत-सहस्र प्रकार अन्न लाभ करें।

७. हे तीनों लोकों में वर्तमान यागार्ह अग्नि, किसी के द्वारा भी अहिंसित और रक्षाकारी बल-द्वारा तुम हम स्तोताओं की रक्षा करो। हे वैश्वानर अग्नि, तुम हम हव्यदाताओं के बल की रक्षा करो। हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं, तुम हमें प्रवर्द्धित करो।

९ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. कृष्णवर्ण रात्रि और शुक्लवर्ण दिवस अपनी-अपनी ज्ञातव्य प्रवृत्ति-द्वारा सम्पूर्ण जगत् को रञ्जित करके नियत परिवर्तित होते हैं। वैश्वानर अग्नि राजा की तरह प्रकाशित होकर दीप्ति-द्वारा तमोनाश करते हैं।

२. हम तन्तु (सूत्र) अथवा ओतु (तिरश्चीन सूत्र) नहीं जानते हैं एवम् सतत चेष्टा-द्वारा जो वस्त्र वयन किया जाता है, वह भी हमें कुछ अवगत नहीं है। इस लोक में अवस्थित पिता-द्वारा उपदिष्ट होकर किसका पुत्र अन्य जगत् के वक्तव्य वाक्यों को बोलने में समर्थ होता है?

३. एक मात्र वैश्वानर ही तन्तु एवम् ओतु को जानते हैं। वे समय-समय पर वक्तव्यों को कहते हैं। वारिरक्षक और भूलोक में संचरण करनेवाले अग्नि अन्तरिक्ष में सूर्यरूप से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हुए इन परिदृश्यमान भूतों को अवगत करते हैं।

४. ये वैश्वानर अग्नि आदि होता हैं। हे मनुष्यो, तुम लोग अग्नि का भजन करो। अमरणशील अग्नि मरणशील शरीर में जाठर रूप से वर्तमान रहते हैं। निश्चल, सर्वव्यापी, अक्षय अग्नि शरीर, धारण-पूर्वक उत्पन्न और वर्द्धमान होते हैं।

५. मन की अपेक्षा भी अतिशय वेगवान् (वैश्वानर की) निश्चल ज्योति सुख के पथों को प्रदर्शित करने के लिए जंगम-जीवों में अन्तर्निहित रहती है। सम्पूर्ण देवगण एकमत और समान-प्रज्ञ होकर सम्मान के साथ, प्रधान कर्म-कर्त्ता वैश्वानर के अभिमुखवर्ती होते हैं।

६. तुम्हारे गुण को श्रवण करने के लिए हमारे कर्णद्वय और तुम्हारे रूप को देखने के लिए हमारे चक्षु धावित होते हैं। हृदय-कमल में जो ज्योति (बुद्धि) निहित है, वह भी तुम्हारे स्वरूप को अवगत करने के लिए समुत्सुक होती है। दूरस्थ-विषयक चिन्ता से युक्त हमारा हृदय तुम्हारे अभिमुख धावित होता है। हम वैश्वानर के किस प्रकार के स्वरूप का वर्णन करें। अथवा किस रूप में उन्हें हृदय में धारण करें।

७. हे वैश्वानर, सम्पूर्ण देवगण तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम अन्धकार में अवस्थित हो। वैश्वानर अपनी रक्षा-द्वारा हम लोगों की रक्षा करें। अमर अग्नि अपनी रक्षा द्वारा हम लोगों की रक्षा करें।

१० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. हे यजमानो, तुम लोग इस प्रवर्तमान, विघ्न-रहित यज्ञ में स्तवनीय, स्वर्गोद्भव और सब प्रकार से दोष-विवर्जित अग्नि को, स्तोत्र-द्वारा, सम्मुख में स्थापित करो; क्योंकि जातवेदा यज्ञ में हम लोगों का समृद्धि-विधान करते हैं।

२. हे दीप्तिमान्, बहुज्वाला-विशिष्ट, देवों के आह्वानकर्त्ता अग्नि, अपने अवयवभूत अन्य अग्नियों के साथ समिद्धमान होकर तुम मनुष्य

स्तोता के इस स्तोत्र का श्रवण करो। स्तोता लोग ममता की तरह अग्नि के उद्देश्य से मनोहर स्तोत्र को घृत की तरह अर्पित करते हैं।

३. जो यजमान स्तोत्र के साथ अग्नि में हव्य प्रदान करता है, वह मनुष्यों के मध्य में अग्नि-द्वारा समृद्धि लाभ करता है। विचित्र दीप्तिवाले अग्नि, विचित्र या आश्चर्यभूत रक्षा के द्वारा उस यजमान को गो-युक्त गोष्ठ के भोग का अधिकारी बनाते हैं।

४. प्रादुर्भूत होकर कृष्णवर्त्मा अग्नि ने दूर से ही दृश्यमान दीप्ति-द्वारा विस्तीर्ण द्यावा-पृथिवी को पूर्ण किया है। वह पावक अग्नि रात्रि के सघन अन्धकार को अपनी दीप्ति-द्वारा नष्ट करते हैं और परिदृश्यमान होते हैं।

५. हे अग्नि, हम लोग हविर्लक्षण धन से युक्त हैं। हमें तुम शीघ्र ही बहुत अन्न और रक्षा के साथ विचित्र धन प्रदान करो। धन, अन्न और उत्कृष्ट वीर्य-द्वारा अन्य मनुष्यों को जो पराजित कर सके ऐसा पुत्र हमें प्रदान करो।

६. हे अग्नि, बैठकर जो हव्ययुक्त यजमान तुम्हारे लिए हवन करता है, तुम हव्याभिलाषी होकर उस यज्ञ-साधन अन्न को स्वीकार करो। भरद्वाज-वंशीयों के निर्दोष स्तोत्र को ग्रहण करो। उनके प्रति अनुग्रह करो, जिससे वे नाना प्रकार का अन्न प्राप्त कर सकें।

७. हे अग्नि, शत्रुओं को विलीन करो। हम लोगों के अन्न को वर्द्धित करो। हम लोग शोभन पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर शत हेमन्त-पर्यन्त सुख भोग कर सकें।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे देवों के आह्वानकारी तथा यजन करनेवालों में श्रेष्ठ, हम लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। तुम अभी हम लोगों के इस आरब्ध यज्ञ में शत्रुबाधक मरुतों का यजन करो। तुम मित्र, वरुण, नासत्यद्वय और द्यावा-पृथिवी को हमारे यज्ञ के लिए लाओ।

२. हे अग्नि, तुम अतिशय स्तवनीय, हम लोगों के प्रति द्रोह-रहित और दानादि गुण से युक्त हो। हे अग्नि, तुम हव्य वहन करनेवाले हो। तुम शुद्धि-विधायक और देवों के मुख-स्वरूप ज्वाला के द्वारा अपने शरीर का यजन करो।

३. हे अग्नि, धनाभिलाषिणी स्तुति तुम्हारी कामना करती है; क्योंकि तुम्हारे प्रादुर्भाव से इन्द्रादि देवों के यजन में यजमान समर्थ होते हैं। ऋषियों के मध्य में अंगिरा स्तुति के अतिशय प्रेरयिता हैं और मेधावी भरद्वाज यज्ञ में हर्षकारक स्तोत्र का उच्चारण करते हैं।

४. बुद्धिमान् और दीप्तिमान् अग्नि भली भाँति से शोभा पाते हैं। हे अग्नि, तुम विस्तृत द्यावा-पृथिवी का हव्य-द्वारा पूजन करो। तुम शोभन हव्य सम्पन्न हो। मनुष्य यजमान की तरह अग्नि को, हवि देनेवाले ऋत्विक्-यजमान आदि हव्य-द्वारा, तृप्त करते हैं।

५. जब अग्नि के समीप हव्य के साथ कुश आनीत होता है एवम् दोषवर्जित घृतपूर्ण स्रुक् कुश के ऊपर रखा जाता है, तब भूमि के ऊपर अग्नि के लिए आधारभूत वेदि रचित होती है। सूर्य जिस प्रकार से तेजोराशि को समवेत करते हैं, उसी प्रकार यजमान का यज्ञ-कार्य समाश्रित होता है।

६. हे बहुज्वाला-विशिष्ट देवों के आह्वानकर्त्ता अग्नि, तुम दीप्तिशाली अन्य अग्नियों के साथ प्रदीप्त होकर हम लोगों को धन प्रदान करो। हे बलपुत्र, हम लोग हवि-द्वारा तुम्हें आच्छादित करते हैं। शत्रु तुल्य पाप से हम लोग मुक्त हों।

१२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवों के आह्वानकारी और यज्ञ के अधिपति अग्नि द्यावा-पृथिवी का यजन करने के लिए यजमान के गृह में अवस्थित होते हैं। यज्ञ-सम्पन्न, बलपुत्र अग्नि दूर से ही दीप्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को सूर्य की तरह प्रकाशित करते हैं।

२. हे यागार्ह, दीप्तिसम्पन्न अग्नि, तुम बुद्धि-सम्पन्न हो। सम्पूर्ण यजमान तुममें आग्रहपूर्वक प्रचुर हव्य समर्पण करते हैं। तुम त्रिभुवन में अवस्थित होकर मनुष्यदत्त उत्कृष्ट हव्य को देवों के निकट वहन करने के लिए सूर्य की तरह वेगशाली होओ।

३. जिनकी सर्वव्यापिनी और अतिशय तेजस्विनी ज्वाला वन में दीप्त होती है, वे प्रवृद्धमान अग्नि सूर्य की तरह अन्तरिक्ष मार्ग में विराजमान होते हैं। सबके कल्याण-विधायक वायु की तरह अक्षय और अनिवार्य ओषधियों के मध्य में वेगपूर्वक गमन करते हैं और अपनी दीप्ति-द्वारा सम्पूर्ण जगत् को प्रवुद्ध करते हैं।

४. जातवेदा अग्नि याजकों के सुखदायक स्तोत्र की तरह हम लोगों के स्तोत्र-द्वारा हमारे यज्ञ-गृह में स्तुत होते हैं। यजमान लोग द्रुमभोजी, अरण्याश्रयकारी और वत्सों के पिता वृषभ की तरह क्षिप्र-कर्मकारी अग्नि का स्तवन करते हैं।

५. जब अग्नि अनायास ही वनों को भस्म करके पृथ्वी के ऊपर विस्तृत होते हैं, तब स्तोता लोग इस लोक में अग्नि की शिखाओं का स्तवन करते हैं। अप्रतिहत भाव से विचरण करनेवाले और चोर की तरह द्रुतगमन करनेवाले अग्नि मरुभूमि के ऊपर विराजित होते हैं।

६. हे शीघ्र गमन करनेवाले अग्नि, तुम समस्त अग्नियों के साथ प्रज्वलित होकर हम लोगों की निन्दा से रक्षा करो। तुम हम लोगों को धन प्रदान करो। दुःखदायक शत्रु-सैन्य को दूर करो। हम लोग शोभन पुत्र-पौत्र से युक्त होकर शत हेमन्त अर्थात् सौ वर्षपर्यन्त सुख भोग करें।

१३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे शोभन धनवाले अग्नि, विविध प्रकार के धन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। जैसे वृक्ष से विविध प्रकार की शाखायें उत्पन्न होती है। तुमसे पशुसमूह शीघ्र ही उत्पन्न होता है। संग्राम में शत्रुओं को

जीतने के लिए बल भी तुमसे ही उत्पन्न होता है। अन्तरिक्ष की वृष्टि तुमसे ही उत्पन्न होती है; अतएव तुम सबके स्तवनीय हो।

२. हे अग्नि, तुम संभजनीय हो। तुम हमें रमणीय धन प्रदान करो। हे दर्शनीय-दीप्ति, तुम सर्वव्यापी वायु की तरह सर्वत्र अवस्थिति करो। हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम मित्र की तरह प्रचुर यज्ञ और पर्याप्त वाञ्छित धन प्रदान करो।

३. हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न और यज्ञ के लिए समुद्भूत अग्नि, तुम वारिपुत्र वैद्युताग्नि के साथ संगत होकर धन के लिए जिस व्यक्ति को प्रेरित करते हो, वह साधुओं का रक्षाकारी और बुद्धिमान् व्यक्ति बल-द्वारा शत्रुओं का संहार करता है एवम् पणिकी शक्ति का अपहरण करता है।

४. हे बलपुत्र और द्युतिमान् अग्नि, जो यजमान स्तुति, उपासना और यज्ञ-द्वारा यज्ञभूमि में तुम्हारी तीक्ष्ण दीप्ति को आकृष्ट करता है; वह मनुष्य समस्त प्राचुर्य और धान्य धारण करता है एवं धनसम्पन्न होता है।

५. हे बलपुत्र अग्नि, तुम हम लोगों के पोषणार्थ, शत्रुओं से लाकर, उत्कृष्ट पुत्रों के साथ शोभन अन्न प्रदान करो। विद्वेषपूर्ण शत्रुओं से बल-द्वारा जो पशु-सम्बन्धी दध्यादि अन्न तुम आहरण करते हो, वह प्रचुर परिमाण में हमें प्रदान करो।

६. हे बलपुत्र अग्नि, तुम बलशाली हो। तुम हम लोगों के उपदेष्टा होओ। हम लोगों को अन्न के साथ पुत्र और पौत्र प्रदान करो। हम स्तुतियों के द्वारा पूर्ण मनोरथ हों। हम लोग शोभन पुत्र-पौत्रों के साथ शत हेमन्त अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त सुख भोग करें।

१४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द शक्वरी और त्रिष्टुप्।)

१. जो मनुष्य स्तोत्र के साथ अग्नि की परिचर्या करता है और यागादि कार्य करता है, वह मनुष्यों के मध्य में शीघ्र ही प्रधान होकर

प्रकाशमान होता है। अपने पुत्र आदि की रक्षा के लिए वह शत्रुओं के समीप से प्रचुर अन्न प्राप्त करता है।

२. एकमात्र अग्नि ही प्रकृष्ट ज्ञान से युक्त हैं और दूसरा कोई भी नहीं है। वे यज्ञ-कार्य के अतिशय निर्वाहक और सर्वद्रष्टा हैं। यजमानों के पुत्र आदि (ऋत्विग्गण) यज्ञ में अग्नि को देवों के आह्वानकर्त्ता कहकर स्तवन करते हैं।

३. हे अग्नि, शत्रुओं का धन उनके निकट से पृथक् होकर तुम्हारे स्तोताओं की रक्षा करने के लिए परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। शत्रुविजयी तुम्हारे स्तोता लोग तुम्हारा यज्ञ करके व्रतविरोधियों को पराभूत करने की इच्छा करते हैं।

४. अग्नि स्तोताओं को सुन्दर कार्य करनेवाला, शत्रुविजयी और साधुजनोचित कार्यों का पालन करनेवाला पुत्र प्रदान करते हैं, जिसे देखकर ही शत्रुगण उसके बल से भीत होकर कम्पित होने लगते हैं।

५. जिस मनुष्य का हव्यरूप धन यज्ञ में राक्षसों के द्वारा अनावृत (निर्विघ्न) होता है और अन्यान्य यजमानों के द्वारा असंभक्त होता है, बलशाली और ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव उस यजमान की निन्दकों से रक्षा करते हैं।

६. हे अनुकूल दीप्तिवाले, दानादिगुणयुक्त और द्यावा-पृथिवी में वर्तमान अग्निदेव, तुम देवों के निकट हम लोगों की स्तुति का उच्चारण करो। हम स्तोताओं को शोभन निवास-युक्त सुख में ले जाओ। हम लोग शत्रुओं, पापों और कष्टों का अतिक्रमण करें। हम लोग जन्मान्तर में कृत पापों से मुक्त हों। हे अग्नि, हम तुम्हारी रक्षा के द्वारा शत्रुओं से उद्धार पावें।

१५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अङ्गिरा के पुत्र वीतहव्य अथवा भरद्वाज छन्द जगती, शाक्करी, अतिशाक्करी, अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप्।)

१. हे वीतहव्य अथवा भरद्वाज ऋषि, तुम उषाकाल में प्रबुद्ध, लोक-रक्षक और जन्म से ही अथवा स्वभाव से ही शुद्ध या निर्मल अतिथिरूप

अग्नि को प्रसन्न करो। अग्नि सब समय में द्युलोक से अवतीर्ण होते हैं और अक्षय हव्य भक्षण करते हैं।

२. हे अद्भुत अग्नि, तुम अरणि के मध्य में निहित, स्तुतिवाही और ऊर्ध्व ज्वालावाले हो। तुम्हें भृगु लोग (महर्षि) गृह में सखा की तरह स्थापित करते हैं। वीतहव्य अथवा भरद्वाज प्रतिदिन उत्कृष्ट स्तोत्र-द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम उनके प्रति प्रसन्न होओ।

३. हे अग्नि, जो यागादि के अनुष्ठान में निपुण है, उसे तुम समृद्ध बनाते हो और दूरस्थ तथा समीपस्थ शत्रु से उसकी रक्षा करते हो। हे महान् अग्नि, तुम मनुष्यों के मध्य में भरद्वाज को धन और गृह प्रदान करो।

४. हे वीतहव्य, तुम शोभन स्तुति-द्वारा हव्यवाहक, दीप्तिमान्, अतिथिवत् पूजनीय; स्वर्गप्रदर्शक मनु के यज्ञ में देवों का आह्वान करनेवाले यज्ञसम्पादक, मेधावी और ओजस्वी वक्ता अग्निदेव को प्रसन्न करो।

५. जैसे उषा प्रकाश से शोभित होती है, वैसे ही जो पृथिवी के ऊपर पवित्रताकारक और चेतनाविधायक दीप्ति के द्वारा विराजित होते हैं, जो संग्राम में शत्रुसंहार-कारक वीर के सदृश एतश ऋषि की सहायता करने के लिए शीघ्र प्रदीप्त हुए थे और जो सर्वभक्षणशील तथा क्षयरहित हैं हे वीतहव्य, उन्हें तुम प्रसन्न करो।

६. हे हमारे स्तोताओ, अत्यन्त प्रिय और अतिथि की तरह पूजनीय अग्नि का ईंधन-द्वारा तुम लोग निरन्तर पूजन करो। देवों के मध्य में दानादिगुणसम्पन्न अग्नि ईंधन ग्रहण करते हैं और हम लोगों का पूजन ग्रहण करते हैं; इसलिए अविनश्वर अग्नि के सम्मुख होकर स्तोत्र-द्वारा उनकी पूजा करो।

७. हम समिध से प्रदीप्त अग्नि को, स्तुति-द्वारा, प्रसन्न करते हैं। स्वतः शुद्ध, पवित्रता-विधायक और निश्चल अग्नि को हम यज्ञ में स्थापित करते हैं। ज्ञान-सम्पन्न देवों को बुलानेवाले, सबके द्वारा वरणीय, सदाशयसम्पन्न, सर्वदर्शी और सर्व-भूतज्ञ अग्नि का हम सुखकर स्तोत्र

से सम्भजन करते हैं अथवा अग्नि के निकट धन के लिए प्रार्थना करते हैं।

८. हे अग्नि, देवता और मनुष्य तुमको दूत बनाते हैं। तुम अमरणशील, प्रत्येक समय में हव्य वहन करनेवाले, पालक और स्तवनीय हो। वे दोनों (वीतहव्य और भरद्वाज) जागरणशील, व्याप्त और प्रजाओं के पालक अग्नि को, नमस्कार-द्वारा अथवा हव्य-द्वारा, स्थापित करते हैं।

९. हे अग्नि, तुम देवों और मनुष्यों को विशेष प्रकार से अलंकृत करके और यज्ञ में देवों का दूत हो करके द्यावा-पृथिवी में सञ्चरण करते हो। हम लोग शोभन स्तुति-द्वारा और यज्ञ-द्वारा तुम्हारा सम्भजन करते हैं; अतएव तुम त्रिभुवनवर्त्ती होकर हमारे लिए सुख-विधान करो।

१०. हम अल्पबुद्धिवाले सर्वज्ञ, शोभनाङ्ग, मनोज्ञमूर्ति और गमनशील अग्निदेव का परिचरण करते हैं। ज्ञातव्य वस्तुओं को जाननेवाले अग्नि देवों का यजन करें और देवों के मध्य में हमारे हव्य को प्रचारित करें।

११. हे शौर्यसम्पन्न अग्नि, तुम दूरदर्शी हो। जो पुरुष तुम्हारा स्तवन करता है, तुम उसकी रक्षा करते हो और उसका मनोरथ पूर्ण करते हो। जो यज्ञसम्पादन करता है और जो हव्य उत्क्षेप (प्रदान) करता है, उसको तुम बल और धन से पूर्ण करते हो।

१२. हे अग्नि, तुम शत्रुओं से हम लोगों की रक्षा करो। हे बलसम्पन्न अग्नि, तुम हम लोगों का पाप से परित्राण करो। तुम्हारे समीप हम लोगों-द्वारा प्रदत्त निर्दोष हव्य उपस्थित हो। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सहस्र प्रकार का धन हमारे समीप उपस्थित हो।

१३. देवों को बुलानेवाले, दीप्तिमान् अग्नि गृह के अधिपति और सर्वज्ञ हैं; अतएव वे सम्पूर्ण प्राणियों को जानते हैं। जो अग्नि देवों और मनुष्यों के मध्य में अतिशय यज्ञकारी हैं, वे सत्य-सम्पन्न अग्नि उत्तम रूप से यज्ञ करें।

१४. हे यज्ञनिष्पादक और शोधक दीप्तिवाले अग्नि, इस समय जो यजमान का कर्त्तव्य है, उसकी तुम कामना करो। तुम देवों का यजन करनेवाले हो, अतएव तुम यज्ञ में देवों का यजन करो। हे युवतम अग्नि, तुम अपने माहात्म्य से सर्वव्यापी हो। आज तुम्हारे लिए जो हव्य प्रदान करते हैं, उसे तुम स्वीकार करो।

१५. हे अग्नि, वेदी के ऊपर यथाविधि स्थापित हव्य को देखो। यजमान ने तुम्हें द्यावा-पृथिवी में यज्ञ के लिए स्थापित किया है। हे ऐश्वर्य-सम्पन्न अग्नि, तुम संग्राम में हम लोगों की रक्षा करो, जिससे हम समस्त पाप से परित्राण पावें।

१६. हे शोभन शिखासम्पन्न अग्नि, तुम समस्त देवों के सहित सर्वाग्रगण्य होकर ऊर्णा (कम्बल) युक्त, कुलाय सदृश और घृतसंयुक्त उत्तर वेदी पर अवस्थान करो। हव्यदाता यजमान के यज्ञ को समुचित रूप से देवों के निकट ले जाओ।

१७. कर्म का विधान करनेवाले ऋत्विक् लोग अथर्वा ऋषि की तरह अग्नि का मन्थन करते थे। देवता से निर्गत होकर इतस्ततः पलायमान और बुद्धिमान् अग्नि को रात्रि के अन्धकारों से आनयन करते थे।

१८. हे अग्नि, देवाभिलाषी यजमान के कल्याण को अविनश्वर करने के लिए तुम यज्ञ में मथ्यमान होकर प्रादुर्भूत होओ। यज्ञवर्द्धक और अमरणशील देवों का आनयन करो। अनन्तर, देवों के निकट हमारे यज्ञ को पहुँचा दो।

१९. हे यज्ञपालक अग्नि, प्राणियों के मध्य में हम लोग ही तुम्हें ईंधन-द्वारा महान् बनाते हैं। अतएव हम लोगों के गार्हपत्य अग्नि-पुत्र, पशु और धनादि द्वारा सम्पूर्णता लाभ करें। तीक्ष्ण तेज-द्वारा तुम हम लोगों को योजित करो।

१६ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द गायत्री, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण यज्ञ के होमनिष्पादक हो अथवा देवों के आह्वानकर्त्ता हो। तुम मनु-सम्बन्धी मनुष्य के यज्ञ में देवों-द्वारा होतृकार्य में नियुक्त हो।

२. हे अग्नि, तुम हम लोगों के यज्ञ में मदकारक ज्वाला-द्वारा महान् देवों का यजन करो। इन्द्रादि देवों का आनयन करो और उन्हें हव्य प्रदान करो।

३. हे विधाता, हे शोभन कर्म करनेवाले दानादि गुणविशिष्ट अग्नि, तुम दर्शपूर्णमासादि यज्ञ में महान् और क्षुद्र मार्गों को वेग-द्वारा जानते हो; अतः यज्ञमार्ग से भ्रष्ट यजमान को पुनः सन्मार्गाभिरूढ़ करो।

४. हे अग्नि, दुष्यन्ततनय भरत हव्यदाता ऋत्विकों के साथ सुख के उद्देश्य से तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुमसे इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का निवारण होता है। स्तवन के उपरान्त तुम्हारा यजन करते हैं। तुम यागयोग्य हो।

५. हे अग्नि, सोमाभिषवकारी राजा दिवोदास को तुमने जिस प्रकार से बहुविध रमणीय धन प्रदान किया था, उसी प्रकार से हव्य प्रदान करनेवाले भरद्वाज ऋषि को बहुविध रमणीय धन प्रदान करो।

६. हे अग्नि, तुम अमरणशील और दूत हो। मेधावी भरद्वाज ऋषि की शोभन स्तुति श्रवण कर तुम हमारे यज्ञ में देवों को ले आओ।

७. हे द्युतिमान अग्नि, सुन्दर चिन्ता करनेवाले मनुष्य देवों को तृप्त करने के लिए यज्ञ में तुम्हारा स्तवन करते हैं अथवा तुमसे याचना करते हैं।

८. हे अग्नि, हम तुम्हारे दर्शनीय तेज का पूजन भली भाँति से करते हैं और तुम्हारे शोभन दानशील कार्य का भी पूजन करते हैं। अकेले

हम ही नहीं; किन्तु दूसरे यजमान लोग भी तुम्हारे अनुग्रह से सफलाभिलाष होकर तुम्हारे यज्ञ या कार्य का सेवन करते हैं।

९. हे अग्नि, होतृकार्य में मनु ने तुम्हें नियुक्त किया है। तुम ज्वालारूप मुख-द्वारा हव्य वहन करनेवाले और अतिशय विद्वान् हो। तुम द्युलोक-सम्बन्धिनी प्रजाओं (देवों) का यजन करो।

१०. हे अग्नि, तुम हव्य भक्षण करने के लिए आगमन करो और देवों के समीप हव्य वहन करने के लिए, स्तुति-भाजन होकर होता रूप से कुश के ऊपर उपवेशन करो।

११. हे अङ्गार रूप अग्नि, हम लोग काष्ठ और आज्य-द्वारा तुम्हें प्रवर्द्धित करते हैं; इसलिए हे युवतम अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान् होओ।

१२. हे द्युतिमान् अग्नि, तुम हम लोगों को विस्तीर्ण, प्रशंसनीय और महान् धन प्रदान करो।

१३. हे अग्नि, मस्तक की भाँति संसार के धारक पुष्करपत्र के ऊपर अरणिद्वय के मध्य से तुम्हें अथर्वा ऋषि ने उत्पन्न किया है।

१४. हे अग्नि, अथर्वा के पुत्र दध्यङ ऋषि ने तुम्हें समुज्ज्वलित किया था। तुम आवरणकारी शत्रुओं के हननकर्ता और असुरों के नगर विनाशक हो।

१५. हे अग्नि, पाथ्य वृषा नाम के किसी ऋषि ने तुम्हें समुद्दीपित किया है। तुम दस्युहन्ता और प्रत्येक युद्ध में धन के जेता हो।

१६. हे अग्नि, तुम यहाँ आगमन करो; क्योंकि हम तुम्हारे लिए जिस प्रकार का स्तोत्र उच्चारित करते हैं, उसे तुम श्रवण करो। यहाँ आकर तुम इन सोमरसों-द्वारा वर्द्धमान होओ।

१७. हे अग्नि, तुम्हारा अनुग्रहात्मक अन्तःकरण जिस देश में और जिस यजमान में वर्तमान होता है, वह श्रेष्ठ बल और अन्न धारण करता है। तुम उसी यजमान में अपना स्थान बनाते हो।

१८. हे अग्नि, तुम्हारा दीप्तिपुञ्ज नेत्र-विघातक नहीं हो, वह सदा हमें दर्शनसमर्थ बनावे। हे कतिपय यजमानों के गृहप्रदाता, तुम हम यजमानों के द्वारा विहित परिचरण को ग्रहण करो।

१९. स्तुतियों के द्वारा हम लोग अग्नि का अभिगमन करते हैं। अग्नि हवि के स्वामी, दिवोदास राजा के शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले, सर्वज्ञ और यजमानों के पालक हैं।

२०. अग्नि अपनी महिमा के द्वारा हम लोगों को सम्पूर्ण पार्थिव धन (भूतजात) प्रचुर परिणाम में प्रदान करें। अग्नि अपने तेज से शत्रुओं या काष्ठों के विनाशक, शत्रुओं के द्वारा अजेय और किसी के भी द्वारा अहिंसित हैं।

२१. हे अग्नि, तुम प्राचीनवत् नवीन दीप्ति-द्वारा इस विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विस्तारित करते हो।

२२. हे मित्रभूत ऋत्विग्गण, तुम लोग शत्रुहन्ता और विधातास्वरूप अग्नि का स्तोत्र गान करो एवम् यज्ञसाधन हव्य प्रदान करो।

२३. वह अग्नि हमारे यज्ञ में कुशों के ऊपर उपवेशन करें, जो अग्नि देवों के आह्वाता, अतिशय बुद्धिमान्, मनुष्य-सम्बन्धी यज्ञकाल में देवों के दूत और हव्य के वाहक हैं।

२४. हे गृहप्रदाता अग्नि, तुम इस यज्ञ में प्रसिद्ध, राजमान, सुन्दर कर्म करनेवाले मित्रावरुण, अदितिपुत्र, मरुद्गण और द्यावा-पृथिवी का यजन करो।

२५. हे बलपुत्र अग्नि, तुम मरणरहित हो। तुम्हारी प्रशस्त दीप्ति मनुष्य यजमानों को अन्न प्रदान करती है।

२६. हे अग्नि, आज हवि देनेवाले यजमान परिचरण कर्म-द्वारा तुम्हारा संभजन करके अतिशय प्रशंसनीय और शोभन धनवाले हों। वह मनुष्य तुम्हारी स्तुति का सर्वदा स्तोता हो।

२७. हे अग्नि, तुम्हारे स्तोता लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित होते हैं, वे

सब अभिलाषी होकर सम्पूर्ण आयु और अन्न प्राप्त करते हैं। वे आक्रमण-कारी शत्रुओं को पराजित और विनष्ट करते हैं।

२८. अग्नि अपने तीक्ष्ण तेज के द्वारा सब वस्तुओं के भोजनकर्त्ता, राक्षसों के संहारकर्त्ता और हम लोगों के धन-प्रदाता हैं।

२९. हे जातवेदा अग्नि, तुम शोभन पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन आहरण करो। हे शोभन कर्म करनेवाले तुम राक्षसों का विनाश करो।

३०. हे जातवेदा, तुम पाप से हम लोगों की रक्षा करो। हे स्तुति-रूपमन्त्रों के कर्त्ता अग्नि, तुम विद्वेषकारियों से हमारी रक्षा करो।

३१. हे अग्नि, जो मनुष्य दुष्ट अभिप्राय से हम लोगों को मारने के लिए आयुध प्रदर्शित करता है अर्थात् आयुध-द्वारा हमारी हिंसा करता है, उस मनुष्य से और पाप से तुम हमारी रक्षा करो।

३२. हे द्युतिमान् अग्नि, जो मनुष्य हम लोगों को मारने की इच्छा करता है, उस दुष्कर्मकारी मनुष्य को तुम ज्वाला-द्वारा परिबाधित करो।

३३. हे शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले अग्नि, तुम हमें अर्थात् भरद्वाज ऋषि को विस्तीर्ण (विपुल) सुख अथवा गृह प्रदान करो और वरणीय धन भी दो।

३४. भली भाँति से दीप्त; अतएव शुक्लवर्ण और हवि-द्वारा आहूत अग्नि स्तुति से स्तूयमान होकर हवि की इच्छा करते हैं। अग्नि शत्रुओं का अथवा अन्धकार का विनाश करें।

३५. माता पृथिवी की गर्भस्थानीय और क्षरणरहित वेदी पर अग्नि विद्युतिमान् होते हैं और हवि-द्वारा द्युलोक के पालक अग्नि यज्ञ की उत्तर वेदी पर उपविष्ट होकर शत्रुओं का विनाश करते हैं।

३६. हे सर्वदर्शी जातवेदा, तुम पुत्र-पौत्रों के साथ उस अन्न का आनयन करो, जो अन्न द्युलोक में देवों के मध्य में प्रशस्त अन्न होकर शोभमान हो।

३७. हे बल-द्वारा उत्पाद्यमान अग्नि, तुम्हारा दर्शन अत्यन्त रमणीय

हैं। हवीरूप अन्न लेकर हम लोग तुम्हारे समीप स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं।

३८. हे अग्नि, तुम्हारा तेज सुवर्ण की तरह रोचमान है और तुम दीप्तिसम्पन्न हो। हम लोग तुम्हारी शरण में उसी तरह प्राप्त होते हैं, जैसे कि घर्मार्त्त पुरुष छाया का आश्रय ग्रहण करता है।

३९. अग्नि प्रचण्ड बलशाली धानुष्क की तरह बाणों-द्वारा शत्रुओं के हन्ता हैं और तीक्ष्ण शृङ्ग वृषभ की तरह हैं। हे अग्नि तुमने त्रिपुरासुर के तीनों पुरों को भग्न किया है।

४०. अध्वर्यु लोग अरणिमन्थन से उत्पन्न जिस सद्योजात अग्नि को पुत्र की तरह हाथ में पानी अभिमुख धारण करते हैं, उस हव्य-भक्षक और मनुष्यों के शोभन यज्ञ के निष्पादक अग्नि का हे ऋत्विक्गण तुम लोग परिचरण करो।

४१. हे अध्वर्युगण, तुम लोग देवों के भक्षणार्थ आहवनीय अग्नि में प्रक्षेप करो। अग्नि द्युतिमान् और धनों के ज्ञाता हैं। अग्नि अपने आहवनीय स्थान में उपवेशन करें।

४२. हे अध्वर्युओ, प्रादुर्भूत, अतिथि की तरह प्रिय और गृहस्वामी अग्नि को ज्ञानप्रदायक और सुखकर आहवनीय अग्नि में संस्थापित करो।

४३. हे द्युतिमान् अग्नि, तुम उन समस्त सुशील अश्वों को अपने रथ में युक्त करो, जो तुम्हें यज्ञ के प्रति पर्याप्त रूप से वहन करते हैं।

४४. हे अग्नि, तुम हमारे अभिमुख आगमन करो। हव्य-भोजन और सोमपान करने के लिए तुम देवों का आनयन करो।

४५. हे हव्यवाहक अग्नि, तुम अत्यन्त ऊर्ध्वतेज होकर दीप्यमान होओ। हे जरारहित अग्नि, तुम अजस्र द्युतिमान् तेज से प्रकाशित होओ। तुम पहले उद्दीप्त होओ और पश्चात् अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करो।

४६. हवि से युक्त जो यजमान हविर्लक्षण अन्न-द्वारा जिस किसी देवता की परिचर्या करता है, उस यज्ञ में भी अग्नि स्तुत होते हैं अर्थात् अग्नि की पूजा सब यज्ञों में होती है। अग्नि द्यावा-पृथिवी में वर्तमान देवों के आह्वानकर्त्ता और सत्य रूप हवि-द्वारा यष्टव्य हैं। यजमान लोग बद्धाञ्जलि होकर नमस्कार-पूर्वक ऐसे अग्नि की परिचर्या करें।

४७. हे अग्नि, हम तुम्हें संस्कृत ऋक्रूप हव्य प्रदान करते हैं। अर्थात् ऋचा को ही हव्य बनाकर प्रदान करते हैं। ऋक्स्वरूप वह हवि तुम्हारे भक्षण के लिए सेचनसमर्थ वृषभ और गौरूप में परिणत हो।

४८. जिस बलवान् अग्नि ने यज्ञविरोधक राक्षसों का संहार किया है, जिस अग्नि ने असुरों के समीप से धन आहरण किया है, उस वृत्रहन्ता प्रधान अग्नि को देवगण उद्दीप्त करते हैं।

पञ्चम अध्याय समाप्त।

१७ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज।
छन्द त्रिष्टुप् और द्विपदा।)

१. हे युद्धतायुध या प्रचण्ड बलशाली इन्द्र, अङ्गिराओं-द्वारा स्तूयमान होकर तुमने सोमपान करने के लिए पणियों-द्वारा अपहृत गौओं को प्रकाशित किया था। तुम सोमपान करो। हे शत्रुओं के विनाशक वज्रधर इन्द्र, बल से युक्त होकर तुमने सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश किया है।

२. हे रसविहीन सोम के पानकर्त्ता इन्द्र, तुम शत्रुओं से त्राण करने-वाले, शोभन कपोलवाले और स्तोताओं की कामना के पूरक हो। तुम इस सोमरस का पान करो। हे इन्द्र, तुम वज्रधर, पर्वतों या मेघों के विदारक और अश्वों के संयोजक हो। तुम हम लोगों के विचित्र अन्न को प्रकाशित करो।

३. हे इन्द्र, तुमने जैसे प्राचीन सोमरस पान किया था, वैसे ही हमारे इस सोमरस को पियो। यह सोमरस तुम्हें प्रसन्न करे। हमारे स्तोत्र को सुनो और स्तुतियों-द्वारा वर्द्धमान होओ। सूर्य को आविष्कृत करो। हम लोगों को अन्न भोजन कराओ। हमारे शत्रुओं का विनाश करो और पणियों-द्वारा अपहृत गौओं को प्रकाशित करो।

४. हे अन्नवान् इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो। यह पिया गया मादक सोमरस तुम्हें अतिशय सिञ्चित करे। हे इन्द्र, यह मदकारक सोमरस तुम्हें अतिशय हर्षित करे। तुम महान्, निखिल गुणवान्, प्रवृद्ध, विभववान् और शत्रुओं को पराभूत करनेवाले हो।

५. हे इन्द्र, सोमरस से मोदमान होकर तुमने दृढ़ अन्धकार का भेदन किया है और सूर्य तथा उषा को अपने-अपने स्थान पर निवेशित किया है। तुमने अपने स्थान से अविचलित अर्थात् विनाश-रहित, स्थिर पर्वत को विदीर्ण किया है, जिस पर्वत के चारों तरफ़ पणियों-द्वारा अपहृत गौएँ वर्तमान थीं।

६. हे इन्द्र, तुमने अपनी बुद्धि, कार्य और सामर्थ्य के द्वारा अपरिपक्व गौओं को परिणत दुग्ध प्रदान किया है अर्थात् अकाल में ही गौओं को क्षीरदायिनी बनाया है। हे इन्द्र, तुमने गौओं को बाहर आने के लिए पाषाणादि के दृढ़ द्वारों को उद्घाटित किया है। अङ्गिराओं के साथ मिलित होकर तुमने गौओं को गोष्ठ से उन्मुक्त किया था।

७. हे इन्द्र, तुमने महान् कर्म-द्वारा विस्तीर्ण पृथिवी को विशेष प्रकार से पूर्ण किया है। हे इन्द्र, तुम महान् हो। तुमने महान् द्युलोक को धारण किया है, जिससे वह निपतित न हो जाय। तुमने पोषण करने के लिए द्यावा-पृथिवी को धारण किया है। देवता लोग द्यावा-पृथिवी के पुत्र हैं। द्यावा-पृथिवी पुरातन, यज्ञ अथवा उदक का निर्माण करनेवाली और महान् हैं।

८. हे इन्द्र, जब कि, वृत्रासुर-संग्राम के लिए देवगण चले थे, तब सम्पूर्ण देवों ने एक तुम्हें ही संग्राम के लिए अगुआ बनाया था।

तुम अत्यन्त बलशाली हो। तुमने मरुतों के संग्राम में इन्द्र को साहाय्य दिया था।

९. विपुल अन्नवाले इन्द्र ने जब कि सोने (मरने) के लिए आक्रमणकारी वृत्र का वध किया था, तब हे इन्द्र, तुम्हारे क्रोध और वज्र के भय से द्युलोक अवसन्न हो गया था।

१०. हे अत्यन्त बलशाली इन्द्र देवशिल्पी त्वष्टा ने तुम्हारे लिए सहस्र धारावाले और सौ पर्व (गाँठ) वाले वज्र का निर्माण किया था। हे नीरस सोमपान करनेवाले इन्द्र, उसी वज्र-द्वारा तुमने नियताभिलाष, उद्धत-प्रकृति और शब्दायमान वृत्रासुर को चूर्ण किया था।

११. हे इन्द्र, सम्पूर्ण मरुद्गण समान प्रीतिभाजन होकर स्तोत्र-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं और तुम्हारे निमित्त पूषा तथा विष्णुदेव शतसंख्यक महिषों का पाक करते हैं। तीन पात्रों को पूर्ण करने के लिए मदकारक और वृत्रविनाशक सोम धावित होता है अर्थात् पूषा और विष्णु सोमपात्र को पूर्ण करें। सोमपान करने के बाद वृत्र-विनाश में इन्द्र समर्थ होते हैं।

१२. हे इन्द्र, तुमने वृत्र-द्वारा समाच्छादित सर्वतः स्थित नदियों के जल को उन्मुक्त किया था, जिससे नदियाँ प्रवाहित हुईं। तुमने उदक तरङ्ग को उन्मुक्त किया है। हे इन्द्र, तुमने उन नदियों को निम्न मार्ग से प्रवाहित किया है। तुमने वेगयुक्त उदक को समुद्र में पहुँचाया है।

१३. हे इन्द्र, इस प्रकार से तुम सम्पूर्ण कार्यों के करनेवाले, ऐश्वर्यशाली, महान् ओजस्वी, अजर, बलदाता, शोभन मरुतों से सहायता पानेवाले, अस्त्रधारी और वज्रधर हो। हम लोगों का नवीन स्तोत्र तुम्हें प्रवर्तित करे, जिससे हम लोगों की रक्षा हो।

१४. हे इन्द्र, तुम हम लोगों को बल, पुष्टि, अन्न और धन के लिए धारण करो। हम लोग शक्तिसम्पन्न और मेधावी हैं। हे इन्द्र, हम भरद्वाज को परिचारकों से युक्त करो। तुम्हारी स्तुति करनेवाले पुत्र-पौत्रों को करो। हे इन्द्र, तुम आनेवाले दिवस में हमारी रक्षा करो।

१५. इस स्तुति के द्वारा हम लोग द्युतिमान् इन्द्र-द्वारा प्रदत्त अन्न-लाभ करें। हम लोग शोभन पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त प्रमुदित हों।

१८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे भरद्वाज, तुम अनभिभूत तेजवाले, शत्रुओं की हिंसा करनेवाले, अधृष्य और बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र का स्तवन करो। तुम इन स्तोत्रों-द्वारा अनभिभूत, ओजस्वी, शत्रुविजयी और मनुष्यों के अभीष्ट-पूरक इन्द्र को संवर्द्धित करो।

२. इन्द्र संग्राम में रेणुओं के उत्थापक, मुख्य, बलवान्, योद्धा, दाता, युद्ध में संलग्न, सहानुभूति-सम्पन्न, वृष्टि-द्वारा बहुतों के उपकारक, शब्द-विधायक, तीनों सवनों में सोमपान करनेवाले और मनु की सन्तानों की रक्षा करनेवाले हैं।

३. हे इन्द्र, तुम कर्मविहीन मनुष्यों को शीघ्र ही वशीभूत करो। अकेले तुमने ही कर्मानुष्ठानकारी आर्यों को पुत्र-दासादि प्रदान किया था। हे इन्द्र, तुममें इस प्रकार की पूर्वोक्त सामर्थ्य है अथवा नहीं? तुम समय-समय पर अपने वीर्य का विशेष परिचय प्रदान करो।

४. तथापि हे बलवान् इन्द्र, तुम संसार के बहुल यज्ञों में प्रादुर्भूत हुए हो और हमारे शत्रुओं का विनाश किया है। तुममें प्रचण्ड और प्रवृद्ध बल है हम ऐसा समझते हैं। तुम ओजस्वी, समृद्धिसम्पन्न, शत्रुओं-द्वारा अजेय तथा जयशील शत्रुओं के निधनकर्त्ता हो।

५. हे अविचलित पर्वतादि के संचालनकर्त्ता और मनोज्ञदर्शन इन्द्र, हम लोगों का चिरकालानुवर्ती सख्य चिरस्थायी हो। तुमने स्तवकारी अङ्गिराओं के साथ अस्त्रनिक्षेप करनेवाले बल नामक असुर का वध किया था एवं उसके नगरों और नगरों के द्वारों को उद्घाटित किया था।

६. ओजस्वी और स्तोताओं की सामर्थ्य को करनेवाले इन्द्र महान् संग्राम में स्तोताओं या स्तुतियों-द्वारा आहूत होते हैं। पुत्र, लाभ के लिए इन्द्र आहूत होते हैं। वज्रधारी इन्द्र संग्राम में विशेष रूप से वन्दनीय होते हैं।

७. इन्द्र ने विनाशरहित और शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले बल-द्वारा मनुष्यों के जन्म को अतिशय प्राप्त किया है। इन्द्र यश-द्वारा समान स्थानवाले होते हैं और नेतृतम इन्द्र धन तथा सामर्थ्य के द्वारा समान स्थानवाले होते हैं।

८. जो इन्द्र संग्राम में कभी भी कर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं होते हैं, जो कभी भी वृथा वस्तुओं को उत्पन्न नहीं करते हैं; किन्तु जो प्रख्यात नामवाले हैं, वही इन्द्र शत्रुओं के नगरों को विनष्ट करने के लिए और शत्रुओं को मारने के लिए शीघ्र ही कार्यरत होते हैं। हे इन्द्र, तुमने चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्ण नामक असुरों को विनष्ट किया है।

९. हे इन्द्र, तुम ऊर्ध्वगामी और शत्रुओं के संहारकर्त्ता हो। तुम स्तवनीय बल से युक्त होकर शत्रुओं को मारने के लिए अपने रथ पर आरोहण करो। दक्षिण हस्त में अपने अस्त्र वज्र को धारण करो। हे बहु-धनवाले इन्द्र, तुम जाकर आसुरी माया को विशेष प्रकार से उच्छिन्न करो।

१०. हे इन्द्र, अग्नि जिस प्रकार से नीरस वृक्षों को दग्ध करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा वज्र शत्रुओं को नष्ट करता है। तुम वज्र की तरह भयंकर हो। तुम वज्र-द्वारा राक्षसों को अतिशय भस्मसात् करो। इन्द्र ने अनभिभूत और महान् वज्र-द्वारा शत्रुओं को भग्न किया है। इन्द्र संग्राम में शब्द करते हैं और समस्त दुरितों का भेदन करते हैं।

११. हे बहुधन-सम्पन्न, बहुतों के द्वारा आहूत, बलपुत्र इन्द्र, कोई भी असुर तुम्हें बल से पृथक् करने में समर्थ नहीं हो सकता है। धन से युक्त होकर तुम असंख्य बलशाली वाहनों के द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करो।

१२. बहुत धनवाले या बहुत यशवाले, शत्रुओं के निहन्ता और प्रवर्धमान इन्द्र की महिमा द्यावा-पृथिवी से भी महान् है। बहुत बुद्धिवाले और शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले इन्द्र का कोई शत्रु नहीं है, कोई प्रतिनिधि नहीं है और न कोई आश्रय है।

१३. हे इन्द्र, तुम्हारा वह कर्म प्रकाशित होता है। तुमने शुष्ण नामक राक्षस से कुत्स को और शत्रुओं के समीप से आयु तथा दिवोदास की रक्षा की थी। तुमने हम अतिथिग्व को शम्बर के समीप से बहुत धन प्रदान किया था। हे इन्द्र, तुमने विजयी वज्र-द्वारा शम्बर को मार करके पृथिवी में वर्तमान शीघ्र गमन करनेवाले दिवोदास को विपद् से बचाया था।

१४. हे द्युतिमान् इन्द्र, सम्पूर्ण स्तोता लोग अभी मेघ को विनष्ट करने के लिए अर्थात् वृष्टि प्रदान करने के लिए तुम्हारा स्तवन कर रहे हैं। तुम सम्पूर्ण मेधावियों में श्रेष्ठ हो। स्तोताओं के स्तवन से प्रसन्न होकर तुम दारिद्र्यादि से पीड़ित यजमानों और उनके पुत्रों को धन प्रदान करते हो।

१५. हे इन्द्र, द्यावा-पृथिवी और अमरदेव तुम्हारे बल को स्वीकार करते हैं। हे बहुत कार्य के करनेवाले इन्द्र, तुम असम्पादित कार्यों का अनुष्ठान करो और उसके अनन्तर यज्ञ में नवीनतर स्तोत्र को उत्पन्न करो।

१९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. राजा की तरह स्तोता मनुष्यों की कामनाओं के पूरक प्रभूत इन्द्र आगमन करें। दोनों लोकों के ऊपर पराक्रम को विस्तारित करने-वाले और शत्रुओं-द्वारा अहिंसनीय इन्द्र हम लोगों के निकट वीरत्व प्रकाशित करने के लिए वर्द्धित होते हैं। इन्द्र विस्तीर्ण शरीरवाले और प्रख्यात गुणवाले हैं। वे यजमानों-द्वारा भली भाँति से परिचित होते हैं।

२. इन्द्र उत्पन्न होते ही अत्यधिक वर्द्धमान होते हैं। हमारी स्तुति दान के लिए इन्द्र को धारण करती है। इन्द्र महान्, गमनशील, जरा-रहित, युवा और शत्रुओं-द्वारा अनभिभूत होनेवाले बल से वर्द्धमान हैं।

३. हे इन्द्र, तुम अन्नदान करने के लिए हम लोगों के अभिमुख अपने विस्तीर्ण, कार्यकर्त्ता और अतिशय दानशील हाथों को करो। हे इन्द्र, तुम शान्त मनवाले हो। पशुपालक जिस प्रकार से पशुओं के समूह को संचारित करता है, उसी प्रकार तुम संग्राम में हम लोगों को संचारित करो।

४. हम स्तोता लोग अन्नाभिलाषी होकर इस यज्ञ में समर्थ सहायक मरुतों के साथ शत्रुनिहन्ता प्रसिद्ध इन्द्र का स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे पुरातन स्तोता की तरह हम लोग भी अनिन्द्य, पापरहित और अहिंसित हों।

५. जिस तरह नदियाँ प्रवाहित होकर समुद्र में निपतित होती हैं, उसी प्रकार स्तोताओं का हितकर धन इन्द्र के प्रति गमन करता है। इन्द्र धन से कर्म करनेवाले, वाञ्छित धन के स्वामी और सोमरस-द्वारा प्रवर्द्धमान हैं।

६. हे पराक्रमशाली इन्द्र, तुम हम लोगों को प्रकृष्टतम बल प्रदान करो। हे शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले इन्द्र, तुम हम लोगों को असह्य और अतिशय ओजस्वी दीप्ति प्रदान करो। हे अश्ववाले इन्द्र, तुम हम लोगों को सेवन-समर्थ, द्युतिमान् और मनुष्यों के भोग्य के लिए कल्पित सम्पूर्ण धन प्रदान करो।

७. हे इन्द्र, तुम हम लोगों को शत्रु-सेनाओं को अभिभूत करनेवाला और अहिंसित हर्ष प्रदान करो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम लोग जयशील हों। पुत्र-पौत्र के लाभ के निमित्त हम लोग उसी हर्ष से तुम्हारा स्तवन करें।

८. हे इन्द्र, तुम हम लोगों को अभिलाषपूरक सेनारूप बल प्रदान करो। वह (बल) धन का पालक, प्रवृद्ध और शोभन बल हो। हे इन्द्र,

तुम्हारी रक्षा-द्वारा हम संग्राम में जिस बल से आत्मीय तथा अपरिचित शत्रुओं का वध कर सकें।

९. हे इन्द्र, तुम्हारा अभीष्टवर्षी बल पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और पूर्व की ओर से हमारे अभिमुख आगमन करे। वह प्रत्येक दिशा होकर हमारे निकट आगमन करे। तुम हम लोगों को सब प्रकार के साथ धन प्रदान करो।

१०. हे इन्द्र, परिचारकों से युक्त और श्रोतव्य यश के साथ हम लोग श्रेष्ठ धन का उपभोग, तुम्हारी रक्षा के द्वारा, करते हैं। हे राजमान इन्द्र, तुम पार्थिव और दिव्य धन के अधिपति हो; अतएव तुम हम लोगों को महान्, असीम एवम् गुणयुक्त रत्न प्रदान करो।

११. हम लोग अभिनव रक्षा के लिए इस यज्ञ में प्रसिद्ध इन्द्र का आह्वान करते हैं। वे मरुतों के साथ युक्त, अभीष्टवर्षी, समृद्ध, शत्रुओं के द्वारा अकुत्सित (अकदर्य), दीप्तिमान्, शासनकारी, लोक का अभिभव करनेवाले, प्रचण्ड और बलप्रद हैं।

१२. हे वज्रधर, हम जिन मनुष्यों के मध्य में वर्तमान हैं, उन मनुष्यों से अपने को अधिक माननेवाले व्यक्ति को तुम वशीभूत करो। हम लोग अभी इस लोक में युद्ध के समय में एवम् पुत्र, पशु और उदक लाभ के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं।

१३. हे बहुजनाहूत इन्द्र, हम लोग इन स्तोत्र रूप सखिकर्म के द्वारा तुम्हारे साथ समुदित शत्रुओं का संहार करें और उनकी अपेक्षा प्रबल हों। हे पराक्रमवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर महान् धन से प्रसन्न हों।

२० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे बलपुत्र इन्द्र, सूर्य जिस प्रकार से अपनी दीप्ति-द्वारा पृथिवी को आक्रान्त करते हैं उसी प्रकार संग्राम में शत्रुओं को आक्रान्त करनेवाला

पुत्ररूप धन तुम हमें प्रदान करो। वह सहस्र प्रकार के धन का भर्ता, शस्यपूर्ण भूमि का अधिपति और शत्रुओं का निहन्ता हो।

२. हे इन्द्र, स्तोताओं ने स्तोत्र-द्वारा सूर्य की तरह तुममें सचमुच समस्त बल अर्पित किया था। हे नीरस सोमपान करनेवाले इन्द्र, तुमने विष्णु के साथ युक्त होकर बल-द्वारा वारिनिरोधक आदि वृत्र का वध किया था।

३. जब इन्द्र ने सम्पूर्ण शत्रु-पुरियों के विदारक वज्र को प्राप्त किया, तब वे मधुर सोमरस के स्वामी हुए। इन्द्र हिंसकों की हिंसा करनेवाले अतिशय ओजस्वी, बलवान्, अन्न देनेवाले और प्रवृद्ध तेजवाले हैं।

४. हे इन्द्र, युद्ध में बहुत अन्न प्रदान करनेवाले और तुम्हारी सहायता करनेवाले मेधावी कुत्स से भीत होकर शतसंख्यक सेनाओं के साथ पणि नामक असुर ने पलायन किया था। इन्द्र ने बलशाली शुष्ण नामक असुर की कपटता को आयुध-द्वारा नष्ट करके उसके समस्त अन्न को अपहृत किया था।

५. वज्र के पतित होने से जब शुष्ण ने प्राण त्याग किया, तब महान् द्रोही शुष्ण का सम्पूर्ण बल नष्ट हो गया। इन्द्र ने सूर्य का संभजन करने के लिए सारथीभूत कुत्स को अपने रथ को विस्तृत करने के लिए कहा।

६. इन्द्र ने प्राणियों को उपद्रुत करनेवाले नमुचि नामक असुर के मस्तक को चूर्ण किया एवम् सप के पुत्र निद्रित नमी ऋषि की रक्षा करके उन्हें पशु आदि धन तथा अन्न से युक्त किया। उस समय श्येन पक्षी ने इन्द्र के लिए मदकर सोम का आनयन किया था।

७. हे वज्रधर इन्द्र, तुमने तुरन्त मायावाले पिप्रु नामक असुर के दृढ़ दुर्गों को बल-द्वारा विदीर्ण किया था। हे शोभन दान-सम्पन्न इन्द्र, तुमने हव्यरूप धन प्रदान करनेवाले राजर्षि ऋजिश्वा को अप्रतिबाध धन प्रदान किया था।

८. अभिलषित सुख-प्रदाता इन्द्र ने वेतसु, दशोणि, तूतुजि, तुग्र और इभ नामक असुरों को राजा द्योतन के निकट सर्वदा गमन करने के लिए उसी तरह वशीभूत किया था, जैसे कि माता के निकट गमन करने में पुत्र वशीभूत होते हैं।

९. शत्रुओं-द्वारा नहीं निरस्त होनेवाले इन्द्र हाथ में शत्रुओं को मारनेवाले अपने आयुध को धारण करते हुए स्पर्द्धाकारी वृत्रादि शत्रुओं को विनाश करते हैं। शूर जिस प्रकार से रथ पर आरोहण करता है, उसी प्रकार वे अपने अश्वों पर आरोहण करते हैं। वचन-मात्र से पूजित होकर वे दोनों घोड़े महान् इन्द्र का वहन करें।

१०. हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा के द्वारा हम स्तोता लोग नवीन धन के लिए सम्भजन करते हैं। मनुष्य स्तोता लोग इस प्रकार से युक्त यज्ञों के द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं कि यज्ञविद्वेषी प्रजाओं की हिंसा करते हुए पुरुकुत्स राजा को धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र, तुमने शरत् नामक असुर की सात पुरियों को वज्र-द्वारा विदीर्ण किया है।

११. हे इन्द्र, धनाभिलाषी होकर तुम कविपुत्र उशना के लिए प्राचीन उपकारक हुए थे अर्थात् स्तोताओं के वर्द्धक हुए थे तुमने नववास्त्व नामक असुर का वध किया और क्षमताशाली पिता उशना के निकट उसके देय पुत्र को समर्पित किया।

१२. हे इन्द्र, तुम शत्रुओं को कँपानेवाले हो। तुमने धुनि नामक असुर-द्वारा निरुद्ध जल को नदी की तरह प्रवहणशील बनाया था अर्थात् धुनि का हनन करके निरुद्ध जलराशि को बहाया था। हे वीर इन्द्र, जब तुम समुद्र का अतिक्रमण करके उत्तीर्ण होते हो, तब समुद्र के पार में वर्तमान तुर्वश और यदु को समुद्र पार कराते हो।

१३. हे इन्द्र, संग्राम में उस तरह के सब कार्य तुम्हारे ही हैं। धुनी और चुमुरी नामक असुरों को तुमने संग्राम में सुलाया है अर्थात् मार डाला है। हे इन्द्र, इसके अनन्तर हव्यपाक करनेवाले, ईंधन के भर्ता

और तुम्हारे निमित्त सोमाभिषव करनेवाले राजर्षि दभीति ने हवीरूप अन्न से तुम्हें प्रदीप्त किया है।

२१ सूक्त

(देवता इन्द्र। नवम और एकादश ऋचा के विश्वदेवगण देवता। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे शूर इन्द्र, बहुत कार्य की अभिलाषा करनेवाले, स्तोता भरद्वाज की प्रशंसनीय स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान करती हैं। इन्द्र रथ पर स्थित, जरारहित और नवीनतर हैं। श्रेष्ठ विभूति (हविर्लक्षण धन) इन्द्र का अनुगमन करती है।

२. जो सब जानते हैं अथवा जो सबके द्वारा जाने जाते हैं, जो स्तुतियों-द्वारा प्रापणीय हैं और जो यज्ञ-द्वारा प्रवर्द्धमान होते हैं, उन इन्द्र का हम स्तवन करते हैं। बहुत प्रज्ञावाले इन्द्र का माहात्म्य द्यावा-पृथिवी का अतिक्रमण करता है।

३. इन्द्र ने ही वृत्त-द्वारा विस्तीर्ण और अप्रज्ञात (अप्रकाशित) अन्धकार को सूर्य-द्वारा प्रकाशित किया था। हे बलवान् इन्द्र, तुम अमरणशील हो। मनुष्यगण तुम्हारे स्वर्ग नामक स्थान का (वहाँ रहनेवालों देवों का) सर्वदा यजन करना चाहते हैं। वे किसी प्राणी की हिंसा नहीं करते।

४. जिन इन्द्र ने उन वृत्र-वधादि प्रसिद्ध कार्यों को किया है, वे अभी कहाँ वर्तमान हैं, किस देश और किन प्रजाओं के मध्य में वर्तमान हैं (अतिशय विभूति के कारण यह निश्चय किया जा सकता है कि वे कहाँ हैं।) हे इन्द्र, किस तरह का यज्ञ तुम्हारे चित्त के लिए सुखकर होता है? तुम्हारा वरण करने में किस तरह का मन्त्र समर्थ होता है? तुम्हारा वरण करने में जो समर्थ होता है, वह कौन है?

५. हे बहुत कार्यों के करनेवाले इन्द्र, पूर्वकालोत्पन्न पुरातन अङ्गिरा आदि आजकल की तरह कार्य करते हुए तुम्हारे स्तोता हुए थे। मध्य-

कालीन और नवीन (आजकलवाले) भी तुम्हारे स्तोता हुए हैं; अतएव हे बहुजनाहूत इन्द्र, तुम मुझ अर्वाचीन की स्तुति को समझो (सुनो)।

६. हे शूर और मन्त्र-द्वारा प्रापणीय इन्द्र, अर्वाचीन मनुष्यगण, उक्त गुणों से युक्त, तुम्हारी अर्चना करते हैं। तुम्हारे प्राचीन और उत्कृष्ट महान् कार्यों को स्तुति रूप वचनों में बाँधते हैं। तुम्हारे जिन कार्यों को हम लोग जानते हैं, उन्हीं से हम लोग तुम्हारी अर्चना करते हैं। तुम महान् हो।

७. हे इन्द्र, राक्षसों का बल तुम्हारे अभिमुख प्रतिष्ठित है। तुम भी उस प्रादुर्भूत महान् बल के अभिमुख स्थिर होओ। हे शत्रुओं के धर्षक इन्द्र, स्थिर होकर तुम अपने वज्र-द्वारा उस बल का अपनोदन करो। तुम्हारा वज्र पुरातन, योजनीय और नित्य सहायक है।

८. हे स्तोताओं के धारक वीर इन्द्र, तुम हमारे स्तोत्र को शीघ्र सुनो। हम इदानीन्तन (आधुनिक) और स्तोत्र करने की इच्छा रखनेवाले हैं। हे इन्द्र, यज्ञ में तुम शोभन आह्वानवाले होकर पूर्वकाल में अङ्गिराओं के चिरकाल तक बन्धु हुए थे। इसलिए तुम हमारे स्तोत्र को सुनो।

९. हे भरद्वाज, तुम अभी हम लोगों की तृप्ति और रक्षा के लिए राज्याभिमानी वरुण, दिनाभिमानी मित्र, इन्द्र, मरुद्गण, पूषा, सर्वव्यापी विष्णु, बहु कर्मकारी अग्नि, सबके प्रेरक सविता, ओषधियों के अभिमानी देव और पर्वतों को स्तुति के अभिमुख करो।

१०. हे बहुत शक्तिवाले अतिशय यजनीय इन्द्र, ये स्तोता लोग अर्चनीय स्तोत्रों के द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अमरणशील इन्द्र, स्तूयमान होकर तुम स्तुति करनेवाले मेरे स्तोत्र को सुनो; क्योंकि तुम्हारे सदृश दूसरे देव नहीं हैं।

११. हे बलपुत्र इन्द्र, तुम सर्वज्ञ हो। तुम सम्पूर्ण यजनीय देवों के साथ शीघ्र ही मेरे स्तुतिरूप वचन के अभिमुख आगमन करो। जो देव अग्नि-जिह्व हैं, जो यज्ञ में भोजन करते हैं और जिन्होंने राजर्षि मनु

को, शत्रुओं को नष्ट करने के लिए, दस्युओं के ऊपर किया है, उन्हीं के साथ आगमन करो।

१२. हे इन्द्र, तुम मार्ग-निर्माता और विद्वान् हो। तुम सुखपूर्वक जाने योग्य मार्ग में तथा दुःख से जाने योग्य मार्ग में हम लोगों के अग्रसर होओ। श्रमरहित, महान् और वाहक श्रेष्ठ जो तुम्हारे अश्व हैं, उनके द्वारा हे इन्द्र, तुम हम लोगों के लिए अन्न आहरण करो।

२२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो इन्द्र प्रजाओं की आपत्तियों में एकमात्र आह्वान करने के योग्य हैं। जो स्तोताओं के प्रति आगमन करते हैं। जो अभीष्टवर्षक, बलवान्, सत्यवादी, शत्रुपीड़क, बहुप्रज्ञ और अभिभवकर्त्ता हैं उन इन्द्र का स्तुतियों-द्वारा स्तवन करते हैं।

२. पुरातन, नौ महीनों में यज्ञ करनेवाले, सप्त-संख्यक मेधावी, हमारे पिता अङ्गिरा आदि ने इन्द्र को बलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों-द्वारा उनका स्तवन किया था। इन्द्र गमनशील, शत्रुओं के हिंसक, पर्वतों पर अवस्थिति करनेवाले और अनुल्लंघनीय शासन हैं।

३. बहुत पुत्र-पौत्रों से युक्त, परिचारकों के साथ और पशुओं के साथ हम लोग इन्द्र के निकट अविच्छिन्न, अक्षय और सुखदायक धन की प्रार्थना करते हैं। हे अश्वों के अधिपति, तुम हम लोगों को सुखी करने के लिए वह धन आहरण करो।

४. हे इन्द्र, जब पूर्वकाल में तुम्हारे स्तोताओं ने सुख-लाभ किया था, तब हम लोगों को भी वह सुख बताओ। हे दुर्द्धर्ष, शत्रु-विजयी, ऐश्वर्यशाली, बहुजनाहूत इन्द्र, तुम असुरों के मारनेवाले हो। तुम्हारे लिए यज्ञ में कौन भाग और कौन हव्य कल्पित हुआ है?

५. यागादि लक्षण कर्म से युक्त और गुणवाचक स्तुति करनेवाले भ्राजमान वज्र धारण करनेवाले और रथ पर अवस्थिति करनेवाले इन्द्र

की अर्चना करते हैं। इन्द्र बहुतों के ग्रहण करनेवाले (आश्रयदाता) बहुत कर्म करनेवाले और बल के दाता हैं। वह यजमान सुख प्राप्त करता है और शत्रु के अभिमुख गमन करता है।

६. हे निज बल से बलवान् इन्द्र, तुमने मन की तरह गमन करनेवाले और बहुत पर्व (गाँठ) वाले वज्र से माया-द्वारा प्रवृद्ध उस वृत्र को चूर्ण किया था। हे शोभन तेजवाले महान् इन्द्र, तुमने धर्षक, वज्र-द्वारा नाश-रहित, अशिथिल और दृढ़ पुरियों को भग्न किया था।

७. हे इन्द्र, हम चिरन्तन ऋषियों की तरह नवीन स्तुतियों के द्वारा तुम्हें (तुम्हारे गौरव को) विस्तारित करते हैं। तुम अतिशय बलवान् और प्राचीन हो। अपरिमाण और शोभन वहनकारी इन्द्र हम लोगों की समस्त विघ्नों से, रक्षा करें।

८. हे इन्द्र, तुम साधु-द्रोही राक्षसों के लिए द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्षस्थित स्थानों को सन्तप्त करते हो। हे कामनाओं के वर्षक इन्द्र, तुम अपनी दीप्ति-द्वारा सर्वत्र विद्यमान उन राक्षसों को भस्मीभूत करो। ब्राह्मणद्वेषी राक्षसों को वध करने के लिए पृथिवी और अन्तरिक्ष को दीप्त करो।

९. हे दीप्य-दर्शन इन्द्र, तुम स्वर्गीय तथा पार्थिव जन के ईश्वर होते हो। हे अतिशय स्तवनीय इन्द्र, तुम दक्षिण हस्त में वज्र धारण करते हो और असुरों की माया को उच्छिन्न करते हो।

१०. हे इन्द्र, तुम हम लोगों को महान्, अहिंसित, संगच्छमान और कल्याणयुक्त सम्पत्ति प्रदान करो, जिससे शत्रुगण धर्षण करने में समर्थ न हों। हे वज्रधर इन्द्र, जिस कल्याण के द्वारा तुमने कर्महीन मनुष्यों को कर्मयुक्त बनाया था और मनुष्य-सम्बन्धी शत्रुओं को शोभन हिंसा से युक्त किया था।

११. हे बहुजनाहूत, विधाता, अतिशय यजनीय इन्द्र, तुम सबके द्वारा सम्भजनीय अश्वों के द्वारा हमारे निकट आगमन करो। जिन अश्वों का

निवारण देव या असुर कोई भी नहीं करते हैं; उन अश्वों के साथ तुम शीघ्र ही हमारे अभिमुख आगमन करो।

२३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, सोम के अभिषुत होने पर और महान् स्तोत्र के उच्चार्यमाण होने पर एवम् शास्त्र (वैदिक स्तुति) विहित होने पर तुम रथ में अपने अश्व को संयुक्त करते हो। हे धनवान् इन्द्र, तुम दोनों हाथों में वज्र धारण करके रथ में योजित अश्वद्वय के साथ आगमन करते हो।

२. हे इन्द्र, तुम स्वर्ग में शूरों-द्वारा सम्भजनीय संग्राम में उपस्थित होकर अभिषवकारी यजमान की रक्षा करते हो एवम् निर्भीक होकर धार्मिक तथा सन्त्रस्त यजमान के विघ्नकारी दस्युओं को वशीभूत करते हो।

३. इन्द्र अभिषुत सोम के पानकर्त्ता होते हैं। भीषण इन्द्र स्तवकारी को (निरापद) मार्ग से ले जाते हैं। इन्द्र यज्ञ करने में दक्ष तथा सोमाभिषव करनेवाले यजमान को स्थान प्रदान करते हैं एवम् स्तोत्र करनेवाले को धन प्रदान करते हैं।

४. इन्द्र अपने अश्वद्वय के साथ हृदयस्थानीय तीनों सवनों में गमन करते हैं। इन्द्र वज्र धारण करनेवाले, अभिषुत सोम के पान करनेवाले, गोदाता, मनुष्यों के हित के लिए बहु पुत्रोपेत पुत्र प्रदान करनेवाले और स्तवकारी यजमान के स्तोत्र को श्रवण करनेवाले तथा स्वीकार करनेवाले हैं।

५. जो पुरातन इन्द्र हम लोगों के लिए पोषणादि कर्म करते हैं, उन्हीं इन्द्र के अभिलषित स्तोत्र का हम लोग उच्चारण करते हैं। सोमाभिषुत होने पर हम लोग इन्द्र का स्तवन करते हैं। उक्थों का उच्चारण करते हुए हम लोग इन्द्र को हविर्लक्षण अन्न उस प्रकार से देते हैं, जिससे उनका वर्द्धन हो।

६. हे इन्द्र, जिस लिए तुमने स्तोत्रों को स्वयं बढ़ाया है; अतः हम लोग उस तरह के स्तोत्रों का, तुम्हारे उद्देश्य से, बुद्धिपूर्वक, उच्चारण करते हैं। (हमारे स्तोत्र जिस प्रकार से वर्द्धमान हों, तुमने वैसा ही किया है)। हे अभिषुत-सोमपान-कर्त्ता इन्द्र, तुम्हारे उद्देश्य से सोमाभिषव होने पर तुम्हारे उद्देश्य से निरतिशय सुखदायक, कमनीय और हवि से युक्त स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं।

७. हे इन्द्र, प्रमुदित होकर तुम हम लोगों के पुरोडाश को स्वीकार करो। दही आदि से संस्कृत सोमरस को शीघ्र पियो। सोमपान करने के लिए यजमान-सम्बन्धी कुशों पर बैठो। तदनन्तर तुम्हारी इच्छा करनेवाले यजमान के स्थान को विस्तीर्ण करो।

८. हे उद्यतायुध इन्द्र, तुम अपनी इच्छा के अनुसार प्रमुदित होओ। यह सोमरस तुम्हें प्राप्त हो। हे बहुजनाहूत इन्द्र, हमारे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों। यह स्तुति हम लोगों की रक्षा के लिए तुम्हें नियुक्त (प्रवृत्त) करें।

९. हे स्तोताओ, सोमाभिषव होने पर तुम लोग दाता इन्द्र को, सोमरस-द्वारा, यथाभिलाषपूर्ण करो। इन्द्र के लिए वह (सोम) बहुत परिमाण में हो, जिससे वह हम लोगों का पोषण करें। इन्द्र अभिवर्षण-शील यजमान की तृप्ति (सुख) में बाधा नहीं देते हैं।

१०. सोमाभिषव होने पर हवीरूप धनवाले और यजमान के ईश्वर इन्द्र स्तोता के सन्मार्ग-प्रदर्शक और वरणीय धन-प्रदाता जैसे हों, वैसा ही जानकर भरद्वाज ऋषि ने स्तुति की।

२४ सूक्त

(३ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सोमवान् यज्ञ में इन्द्र का सोमपान-जनित हर्ष यजमान की कामनाओं का पूरक हो और देविकोपासना-सहित स्तोत्र अभिलाषवर्धक हो। अभिषुत सोमरस पान करनेवाले, नीरस सोम का भी त्याग नहीं करने-

वाले धनवान् इन्द्र स्तुतिकारकों की स्तुतियों-द्वारा अर्चनीय होते हैं। द्युलोकनिवासी और स्तुतियों के अधिपति इन्द्र रक्षक होते हैं।

२. शत्रुओं के हिंसक, विक्रमवान्, मनुष्यों के हितकर्त्ता, विवेकशील, हम लोगों के स्तोत्र को सुननेवाले स्तोताओं के अतिशय रक्षक, गृहप्रदाता, स्तोताओं-द्वारा प्रशंसनीय, स्तोताओं के धारक यज्ञ में स्तूयमान होने पर हम लोगों को अन्न प्रदान करते हैं।

३. हे विक्रान्त इन्द्र, चक्रद्वय के अक्ष की तरह (रथ-सम्बन्धी अक्ष जैसे पहियों से बाहर हो जाता है) तुम्हारी बृहत् महिमा द्यावा-पृथिवी को अतिक्रान्त करती है। हे बहुजनाहूत, वृक्ष की शाखाओं की तरह तुम्हारा रक्षण-कार्य वर्द्धमान होता है।

४. हे बहुकर्मा इन्द्र, तुम प्रज्ञावान् हो। तुम्हारी शक्तियाँ (अथवा कर्म) उसी तरह से सर्वत्र विचरण करती हैं, जैसे धेनुओं के मार्ग सर्वत्र सञ्चारी होते हैं। हे शोभन दानवाले इन्द्र, बछड़ों की डोरियों की तरह तुम्हारी शक्तियाँ स्वयम् अनिरुद्ध होकर बहुत शत्रुओं को बन्धन युक्त करती हैं।

५. इन्द्र आज एक काम करते हैं, तो दूसरे दिन इससे कुछ विलक्षण ही कार्य करते हैं। वे पुनः-पुनः सत् और असत् कार्यों का अनुष्ठान करते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा, सविता इस यज्ञ में हम लोगों की कामनाओं के पूरक हों।

६. हे इन्द्र, तुम्हारे समीप से शस्त्र और हवि के द्वारा स्तोता लोग कामनाओं को प्राप्त करते हैं, जैसे पर्वत के उपरिभाग से जल प्राप्त होता है। हे स्तुतियों-द्वारा वन्दनीय इन्द्र, अश्वगण जैसे वेगपूर्वक संग्राम में उपस्थित होते हैं, वैसे ही स्तुति करनेवाले अन्नाभिलाषी भरद्वाज आदि स्तुतियों के साथ तुम्हारे निकट गमन करते हैं।

७. संवत्सर और मास आदि जिस इन्द्र को वृद्ध नहीं बना सकते हैं; दिवस जिस इन्द्र को अल्प (दुर्बल) नहीं बना सकते हैं, उस प्रवर्द्धमान

इन्द्र का शरीर हम लोगों की स्तुतियों और स्तोत्रों-द्वारा स्तूयमान होकर प्रवृद्ध हो।

८. हम लोगों की स्तुति-द्वारा स्तूयमान इन्द्र दृढ़गात्र, संग्राम में अविचलित और दस्युओं (कर्मविवर्जितों) द्वारा उत्साहित तथा प्रेरित यजमान के वशीभूत नहीं होते हैं। अर्थात् यद्यपि स्तोता बहुत गुणवाले हैं; तथापि इन्द्र दस्यु-सहित स्तोता के वशीभूत नहीं होते हैं। महान् पर्वत भी इन्द्र के लिए सुगम हैं और अगाध स्थान भी इन्द्र के लिए विषयीभूत हैं।

९. हे बलवान् और सोमपानकर्त्ता इन्द्र, तुम किसी के द्वारा भी अनवगाहनीय उदार चित्त से हम लोगों को अन्न और बल प्रदान करो। हे इन्द्र, तुम दिन-रात हम लोगों की रक्षा के लिए तत्पर रहो।

१०. हे इन्द्र, तुम संग्राम में स्तुति-कर्त्ता की रक्षा के लिए उनका सेवन करो। निकटस्थ या दूरस्थ शत्रुओं से उनकी रक्षा करो। गृह में अथवा कानन में रिपुओं से उनकी रक्षा करो। शोभन पुत्रवाले होकर हम लोग सौ वर्षों तक प्रमुदित हों।

२५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे बलवान् इन्द्र, तुम संग्राम में हम लोगों का, अधम, उत्तम और मध्यम सब प्रकार की रक्षा-द्वारा, भली भाँति से, पालन करो। हे भीषण इन्द्र, तुम महान् हो। तुम हम लोगों को भोज्य साधन अन्नों से युक्त करो।

२. हे इन्द्र, तुम हमारी स्तुतियों से शत्रुसेनाओं को नष्ट करनेवाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए संग्राम में विद्यमान शत्रु के कोप को नष्ट करो। यज्ञादि कार्य करनेवाले यजमान के लिए तुम कार्यों को विनष्ट करनेवाले सम्पूर्ण प्रजाओं को स्तुतियों-द्वारा विनष्ट करो।

३. हे इन्द्र, ज्ञातिरूप निकटस्थ अथवा दूर देशस्थित जो शत्रु हमारे अभिमुखी न होकर हिंसा के लिए उद्यत होते हैं, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं के बल को तुम नष्ट करो। इनके वीर्यों को नष्ट करो और इन्हें पराङ्मुख करो।

४. हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत वीर अपने शरीर से शत्रुवीरों को विनष्ट करता है। जब कि वे दोनों परस्पर विरोधी, शोभित शरीर से संग्राम में प्रवृत्त होते हैं। जब कि वे पुत्र, पौत्र, धेनु, जल और उर्वरा (उपजाऊ भूमि) के लिए हल्ला मचाते हुए विवाद करते हैं।

५. हे इन्द्र, विक्रान्त जन, शत्रुनिहन्ता, विजयी और युद्ध में प्रकुपित योद्धा तुम्हारे साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं होता है। हे इन्द्र, इनके मध्य में कोई भी तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। तुम इन व्यक्तियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हो।

६. महान् शत्रुओं का निरोध करने के लिए अथवा परिचारकों से युक्त गृह के लिए जो दो व्यक्ति परस्पर युद्ध करते हैं, उन दोनों के मध्य में वही जन, धन-लाभ करता है, जिसके यज्ञ में ऋत्विक् लोग इन्द्र का हवन करते हैं।

७. हे इन्द्र, तुम्हारे पुरुष (स्तोता) जब कम्पित हों, तब तुम उनके पालक होओ। उनके रक्षक होओ। हे इन्द्र, हमारे जो नेतृतम पुरुष तुम्हें प्राप्त करनेवाले होते हैं, तुम उनके त्राता होओ। हे इन्द्र, जिन स्तोताओं ने हमें पुरोभाग में स्थापित किया है, तुम उनके त्राता होओ।

८. हे इन्द्र, तुम महान् हो। शत्रु-वध के लिए तुममें समस्त शक्ति अर्पित हुई है। हे यजनीय इन्द्र, युद्ध में समस्त देवों ने तुम्हें शत्रुओं को अभिभूत करनेवाला बल और विश्वधारक बल प्रदान किया था।

९. हे इन्द्र, इस प्रकार से स्तुत होकर तुम संग्राम में हम लोगों को शत्रुओं को मारने के लिए प्रोत्साहित करो और प्रेरित करो। तुम हम लोगों के लिए हिंसा करनेवाली असुर-सेना को वशीभूत करो। हे इन्द्र,

तुम्हारी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज अन्न के साथ अवश्य ही निवास प्राप्त करें।

२६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, हम स्तोता लोग अन्न-लाभ करने के लिए सोमरस के द्वारा तुम्हारा सिञ्चन करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हम लोगों के आह्वान को श्रवण करो। जब मनुष्यगण युद्ध के लिए गमन करेंगे, तब तुम हम लोगों की भली भाँति से रक्षा करना।

२. हे इन्द्र, सबके द्वारा प्रापणीय और महान् अन्न-लाभ करने के लिए वाजिनी-पुत्र भरद्वाज अन्नवान् होकर तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम सज्जनों के पालक और दुर्जनों के विघातक हो। उपद्रुत होने पर भरद्वाज तुम्हारा आह्वान करते हैं। वे मुष्टिबल-द्वारा शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले हैं। जब वे गौओं के लिए युद्ध करते हैं, तब तुम्हारे ऊपर निर्भर रहते हैं।

३. हे इन्द्र, अन्न-लाभ करने के लिए तुम भार्गव ऋषि को प्रेरित करो। हव्यदाता कुत्स के लिए तुमने शुष्णासुर का छेदन किया था। तुमने अतिथिग्व (दिवोदास) को सुखी करने के लिए शम्बरासुर का शिरश्छेदन किया था। वह अपने को मर्महीन (दुर्भेद्य) समझता था।

४. हे इन्द्र, तुमने वृषभ नामक राजा को युद्ध-साधन महान् रथ प्रदान किया था। जब वे शत्रुओं के साथ दस दिनों तक युद्ध कर रहे थे, तब तुमने उनकी रक्षा की थी। वेतसु राजा के सहायभूत होकर तुमने तुग्रासुर को मारा था। तुमने स्तवकर्ता तुजि राजा की समृद्धि को बढ़ाया था।

५. हे इन्द्र, तुम शत्रुनिहन्ता हो। तुमने प्रशंसनीय कार्यों का संपादन किया है; क्योंकि हे वीर इन्द्र, तुमने शत-शत और सहस्र-सहस्र शम्बर-सेनाओं को विदीर्ण किया है। तुमने पर्वत से निर्गत, यज्ञादि

कार्यों के विघातक शम्बरासुर का वध किया है। विचित्र रक्षा-द्वारा तुमने दिवोदास की रक्षा की है।

६. हे इन्द्र, श्रद्धापूर्वक अनुष्ठित कार्यों-द्वारा और सोमरस-द्वारा मोदमान होकर तुमने दभीति राजा के लिए चुमुरि नामक असुर का वध किया था। हे इन्द्र, तुमने पिठीनस् को रजि नामक कन्या या राज्य प्रदान किया था। तुमने बुद्धि से साठ हजार योद्धाओं को एक काल में ही विनष्ट किया था।

७. हे वीरों के साथी बलवत्तम इन्द्र, तुम त्रिभुवनों के रक्षक और शत्रुविजयी हो। स्तोता लोग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख और बल की स्तुति करते हैं। हे इन्द्र, हम भरद्वाज तुम्हारे द्वारा प्रदत्त उत्कृष्ट सुख और बल को अपने स्तोताओं के साथ प्राप्त करें।

८. हे पूजनीय इन्द्र, हम लोग तुम्हारे मित्रभूत और स्तोता हैं। धन-लाभार्थ किये गये इन स्तोत्रों-द्वारा हम लोग तुम्हारे निरतिशय प्रीति-भाजन हों। प्रातर्दन के पुत्र हमारे राजा क्षत्र श्री शत्रुओं का वध और धन-लाभ करके सबसे उत्कृष्ट हों।

२७ सूक्त

(देवता इन्द्र। अष्टम ऋचा के देवता दान। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सोमरस से प्रसन्न होकर इन्द्र ने क्या किया? इस सोमरस को पान करके क्या किया? इस सोमरस के साथ मैत्री करके उन्होंने क्या किया? पुरातन और आधुनिक स्तोताओं ने सोमगृह में तुमसे क्या प्राप्त किया?

२. सोमपान से प्रमुदित होकर इन्द्र ने सुन्दर (शोभन) कार्यों को किया था। सोमपान करके उन्होंने सुन्दर कर्म किया था। इसके साथ उन्होंने शुभ कार्य किया था। हे इन्द्र पुरातन तथा इदानीन्तन स्तोताओं ने सोमगृह में तुमसे शुभ कर्म को प्राप्त किया था।

३. हे धनवान् इन्द्र, तुम्हारे तुल्य दूसरे की महिमा हमें अवगत नहीं है। तुम्हारे तुल्य धनिकत्व और धन भी हमें अवगत नहीं। हे इन्द्र, तुम्हारी तरह सामर्थ्य कोई भी नहीं दिखा सकता है।

४. हे इन्द्र, तुमने जिस वीर्य-द्वारा वरशिख नामक असुर के पुत्रों का संहार किया था, तुम्हारा वह वीर्य हम लोगों के द्वारा अवगत नहीं है। हे इन्द्र, बल-पूर्वक निक्षिप्त तुम्हारे वज्र के शब्द से ही बलिष्ठतम वरशिख के पुत्र विदीर्ण हुए थे।

५. इन्द्र ने चायमान राजा के अभ्यवर्ती नामक पुत्र को अभिलषित धन देते हुए वरशिख नामक असुर के पुत्रों का संहार किया था। हरियूपिया नामक नदी या नगरी के पूर्व भाग में अवस्थित वरशिख के गोत्रोत्पन्न वृचीवान् के पुत्रों का इन्द्र ने वध किया था। तब अपर भाग में अवस्थित वरशिख के श्रेष्ठ पुत्र भय से विदीर्ण हुए थे।

६. हे बहुजनाहूत इन्द्र, युद्ध में तुम्हें जीत (मार) कर अन्न अथवा यश प्राप्त करें ऐसी कामना करनेवाले, यज्ञ-पात्रों का भञ्जन करनेवाले और कवच धारण करनेवाले वरशिख के एक सौ तीस पुत्र यव्यावती (हरियूपिया) के निकट आगमन करके एक काल में ही विनष्ट हुए थे।

७. जिनके रोचमान, शोभन तृणाभिलाषी पुनः-पुनः घास का आस्वादन करनेवाले अश्वगण द्यावा-पृथिवी के मध्य भाग में विचरण करते हैं। वे इन्द्र, सृञ्जय नामक राजा के निकट तुर्वश (राजा) को समर्पित करते हैं और देववाक-वंशोत्पन्न अभ्यवर्ती राजा के निकट वरशिख के पुत्रों को वशीभूत किया था।

८. हे अग्नि, अतिशय धन देनेवाले और राजसूय यज्ञ करनेवाले चयमान के पुत्र राजा अभ्यवर्त्ती ने हमें (भरद्वाज को) स्त्रियों से युक्त रथ और बीस गौएँ दी थीं। पृथु के वंशधर राजा अभ्यवर्त्ती की यह दक्षिणा किसी के भी द्वारा अविनाशनीय है।

२८ सूक्त

(देवता गो किन्तु द्वितीय तथा अष्टम ऋचा के कुछ अंश के इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. गौएँ हमारे घर आवें और हमारा कल्याण करें। वे हमारे गोष्ठ में उपवेशन करें और हमारे ऊपर प्रसन्न हों। इस गोष्ठ में नाना वर्ण-वाली गौएँ सन्तति सम्पन्न होकर उषाकाल में इन्द्र के लिए दुग्ध प्रदान करें।

२. इन्द्र यज्ञ करनेवाले और स्तुति करनेवाले को अपेक्षित धन प्रदान करते हैं। वे उन्हें सर्वदा धन प्रदान करते हैं। और उनके स्वकीय धन को कभी भी नहीं लेते हैं। वे निरन्तर उनके धन को बढ़ाते हैं और उन इन्द्राभिलाषी को शत्रुओं के द्वारा दुर्भेद्य स्थान में स्थापित करते हैं।

३. गौएँ हमारे समीप से नष्ट नहीं हों। चोर हमारी गौओं को नहीं चुरावें। शत्रुओं का शस्त्र हमारी गौओं पर पतित नहीं हों। गो-स्वामी यजमान जिन गौओं से इन्द्रादि का यजन करते हैं और जिन गौओं को इन्द्र के लिए प्रदान करते हैं उन गौओं के साथ वे चिरकाल तक संगत हों।

४. रेणुओं के उद्भेदक और युद्धार्थ आगमन करनेवाले अश्व उन्हें (गौओं को) नहीं प्राप्त करें। वे गौएँ विशसनादि संस्कार को नहीं प्राप्त करें। यागशील मनुष्य की गौएँ निर्भय और स्वाधीन भाव से विचरण करती हैं।

५. गौएँ हमारे लिए धन हों। इन्द्र हमें गौएँ प्रदान करें। गौएँ हव्य-श्रेष्ठ सोमरस का भक्षण प्रदान करें। हे मनुष्यो, ये गौएँ ही इन्द्र होता हैं, श्रद्धायुक्त मन से हम जिनकी कामना करते हैं।

६. हे गौओ, तुम हमें पुष्ट करो। तुम क्षीण और अमंगल अंग को सुन्दर बनाओ। हे कल्याण-युक्त वचनवाली गौओ, हमारे घर को कल्याण-युक्त करो अर्थात् गौओं से युक्त करो। हे गौओ, याग-सभा में तुम्हारा महान् अन्न ही कीर्तित होता है।

७. हे गौओ, तुम सन्तानयुक्त होओ। शोभन तृण का भक्षण करो और सुख से प्राप्त करने योग्य तड़ागादि का निर्मल जल पान करो। तुम्हारा शासक चोर नहीं हो और व्याघ्रादि तुम्हारा ईश्वर नहीं हो अर्थात् हिंसक जन्तु तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करें। कालात्मक परमेश्वर का आयुध तुमसे दूर रहे।

८. हे इन्द्र, तुम्हारे बलाधान के निमित्त गौओं की पुष्टि प्रार्थित हो एवम् गौओं के गर्भाधानकारी वृषभों का बल प्रार्थित हो अर्थात् गौओं के पुष्ट (सन्तुष्ट) होने पर तत्सम्बन्धी क्षीरादि-द्वारा इन्द्र आप्यायित (सन्तुष्ट) होते हैं।

षष्ठ अध्याय समाप्त।

२९ सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे यजमानो, तुम्हारे नेतृ-स्वरूप ऋत्विक् लोग सखि-भाव से इन्द्र की परिचर्या करते हैं। वे महान् स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं और उनकी बुद्धि शोभन तथा अनुग्रहात्मिका है; क्योंकि वज्रपाणि इन्द्र महान् धन प्रदान करते हैं; इसलिए रमणीय और महान् इन्द्र की पूजा, रक्षा के लिए, करो।

२. जिस इन्द्र के हाथ में मनुष्यों के हितकर धन सञ्चित हैं, जो रथ पर चढ़नेवाले इन्द्र सुवर्णमय रथ पर आरूढ़ होते हैं, जिनके विशाल बाहुओं में रश्मियाँ नियमित हैं, जिन इन्द्र को सेचन करनेवाले (बलिष्ठ) और रथ में युक्त अश्वगण वहन करते हैं, हम उन इन्द्र का स्तवन करते हैं।

३. हे इन्द्र, ऐश्वर्यलाभ के लिए भरद्वाज तुम्हारे चरणों में परिचरण समर्पित करते हैं। तुम बल-द्वारा शत्रुओं को पराजित करते हो,

वज्र धारण करते हो। और श्रोताओं को धन देनेवाले हो। हे नेता इन्द्र, तुम सबके दर्शनार्थ प्रशस्त और सतत-गमनशील रूप धारण करके सूर्य की तरह परिभ्रमणशील होते हो।

४. सोम के अभिषुत होने पर वह भली भाँति मिश्रित हुआ है, जिसके अभिषुत होने पर पाकयोग्य पुरोडाशादि पकाया जाता है। भुने जौ हवि के लिए संस्कृत होते हैं। हविर्लक्षण अन्न के कर्ता ऋत्विक् लोग स्तोत्रों के द्वारा इन्द्र का स्तवन करते हैं। शास्त्रों का उच्चारण करते हुए वे देवता के निकटस्थ होते हैं।

५. हे इन्द्र, तुम्हारे बल का अवसान नहीं है अर्थात् तुम्हारे बल को हम लोग नहीं जानते। द्यावा-पृथिवी जिस महान् बल से भीत होती है, गोपाल जैसे जल-द्वारा गौओं को तृप्त करता है, उसी प्रकार स्तोता शीघ्र ही तृप्तिकारक हव्य-द्वारा भली भाँति यज्ञ करके तुम्हें तृप्त करते हैं।

६. हरित नासावाले महेन्द्र इस प्रकार से सुखपूर्वक आह्वान करने के योग्य होते हैं। इन्द्र स्वयं उपस्थित अथवा अनुपस्थित हों; किन्तु स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं। इस प्रकार से प्रादुर्भूत होकर उत्कृष्टतर बलवाले इन्द्र बहुतेरे वृत्रादि राक्षसों को तथा शत्रुओं को मारते हैं।

३० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वृत्रवधादि वीरकार्य करने के लिए इन्द्र पुनः प्रवृद्ध हुए हैं। मुख्य (श्रेष्ठ) और जरारहित इन्द्र स्तोताओं को धन प्रदान करें। इन्द्र द्यावा-पृथिवी का अतिक्रमण करते हैं। इन्द्र का आधा भाग ही द्यावा-पृथिवी के बराबर है अर्थात् प्रतिनिधि है।

२. अभी हम इन्द्र के बल का स्तवन करते हैं। वह बल असुरों के हनन में कुशल है। इन्द्र जिन कर्मों को धारण करते हैं, उनकी हिंसा

कोई भी नहीं करता। वे प्रतिदिन वृत्रावृत सूर्य को दर्शनीय बनाते हैं। शोभन कर्म करनेवाले इन्द्र ने भुवनों को विस्तीर्ण किया है।

३. हे इन्द्र, पहले की तरह आज भी तुम्हारा नदी-सम्बन्धी कार्य विद्यमान है। नदियों को बहने के लिए तुमने मार्ग बनाया है। भोजनार्थ उपविष्ट मनुष्यों की तरह पर्वतगण तुम्हारी आज्ञा से निश्चल भाव से उपविष्ट हैं। हे शोभन कर्म करनेवाले इन्द्र, सम्पूर्ण लोक तुम्हारे द्वारा स्थिर हुए हैं।

४. हे इन्द्र, तुम्हारे सदृश अन्य देव नहीं हैं, यह एकदम सत्य है। तुम्हारे सदृश कोई दूसरा मनुष्य भी नहीं है। तुमसे अधिक न कोई देव है, न मनुष्य, यह जो कहा जाता है, सो एकदम सत्य है। वारिराशि को आवृत करके सोनेवाले मेघ का तुमने वध किया था। वारिराशि को समुद्र में पतित होने के लिए तुमने मुक्त किया था।

५. हे इन्द्र, वृत्र से आवृत जल को सर्वत्र प्रवाहित होने के लिए तुमने मुक्त किया था। तुमने मेघ के दृढ़ बन्धन को छिन्न किया था। तुम सूर्य द्युलोक और उषा को एक काल में ही प्रकाशित करके जगत्-सम्बन्धी प्रजाओं के राजा होओ।

३१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि सुहोत्र। छन्द शक्वरी और त्रिष्टुप्।)

१. हे धन के पालक इन्द्र, तुम धन के प्रधान स्वामी हो। हे इन्द्र, तुम अपने बाहुद्वय में प्रजाओं को धारण करते हो अर्थात् सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी आज्ञा का अनुवर्ती है। मनुष्यगण विविध प्रकार से तुम्हारा स्तवन पुत्र, शत्रु विजयी पौत्र और वृष्टि के लिए करते हैं।

२. हे इन्द्र, तुम्हारे भय से व्यापक और अन्तरिक्षोद्भव उदक पतनयोग्य नहीं होने पर भी मेघ द्वारा बरसाये जाते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे आगमन से द्यावापृथिवी, पर्वत, वृक्ष और सम्पूर्ण स्थावर प्राणिजात भीत होते हैं।

३. हे इन्द्र, कुत्स के साथ प्रबल शुष्ण के विरुद्ध तुमने युद्ध किया था अर्थात् कुत्स के साहाय्यार्थ तुमने शुष्ण के साथ युद्ध किया था। संग्राम में तुमने कुयव का वध किया था। संग्राम में तुमने सूर्य के रथचक्र का हरण किया था। तब से सूर्य का रथ ही एक चक्र का हो गया है। पापकारी राक्षसों को तुमने मारा था।

४. हे इन्द्र, तुमने दस्यु शम्बरासुर के सौ नगरों को उच्छिन्न किया था। हे प्रज्ञावान् तथा अभिषुत सोम-द्वारा क्रीत इन्द्र, उस समय तुमने सोमाभिषव करनेवाले दिवोदास को प्रज्ञापूर्वक धन प्रदान किया था तथा स्तुति करनेवाले भरद्वाज को धन प्रदान किया था।

५. हे अवध्य भटवाले तथा विपुल धनवाले इन्द्र, तुम महान् संग्राम के लिए अपने भयंकर रथ पर आरोहण करो। हे प्रकृष्ट मार्गवाले इन्द्र, तुम रक्षा के साथ हमारे अभिमुख आगमन करो। हे विख्यात इन्द्र, प्रजाओं के मध्य में हमें प्रख्यात करो।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि सुहोत्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हमने महान्, विविध शत्रुओं को मारनेवाले, बलवान् वेगसम्पन्न विशेष प्रकार से स्तुतियोग्य वज्रधारी और प्रवृद्ध इन्द्र के लिए, मुख-द्वारा, अपूर्व, सुविस्तीर्ण और सुखदायक स्तोत्रों को पढ़ा है।

२. इन्द्र ने मेधावी अङ्गिराओं के लिए जननीस्वरूप स्वर्ग और पृथिवी को सूर्य-द्वारा प्रकाशित किया था एवम् अङ्गिराओं-द्वारा स्तूयमान होकर पर्वतों को चूर्ण किया था। इन्द्र ने शोभन ध्यानशील स्तोता अङ्गिराओं-द्वारा बारम्बार प्रार्थित होने पर धेनुओं के बन्धन को मुक्त किया था।

३, बहुत कर्म करनेवाले इन्द्र ने हवन करनेवाले, स्तुति करनेवाले और संकुचित-जानु अङ्गिराओं के साथ मिलित होकर धेनुओं के लिए

शत्रुओं को पराजित किया था। मित्रभूत, मेधावी अङ्गिराओं के साथ मित्राभिलाषी और दूरदर्शी होकर इन्द्र ने असुरपुरियों को भग्न किया था।

४. हे कामनाओं के पूरक, हे स्तुति-द्वारा संभजनीय इन्द्र, तुम महान् अन्न, महान् बल और बहुत वत्सवती युवती वड़वा के साथ अपने स्तुति-कर्त्ता को मनुष्यों के मध्य में सुखी करने के लिए उनके अभिमुख आगमन करते हो।

५. हिंसकों के अभिभवकर्त्ता इन्द्र सदा उद्यत बल-द्वारा सतत गमन-शील तेज से युक्त होकर सूर्य के दक्षिणायन होने पर जल को मुक्त करते हैं। इस प्रकार विसृष्ट वारिराशि उस क्षोभशून्य समुद्र में प्रति-दिन पतित होती है, जिससे वारिराशि का पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि शुनहोत्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अभीष्टवर्षक इन्द्र, तुम हम लोगों को बलवत्तम, स्तुतियों-द्वारा स्तवनकर्ता, शोभनयज्ञ-कर्ता और हव्य प्रदान करनेवाला एक पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र उत्कृष्ट अश्व पर आरूढ़ होकर संग्राम में शोभन अश्वों और प्रतिकूलताचारी शत्रुओं को पराभूत करे।

२. हे इन्द्र, विविध स्तुतिरूप वचनवाले मनुष्यगण, युद्ध में रक्षा के लिए, तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुमने मेधावी अङ्गिराओं के साथ पणियों का संहार किया था। तुम्हारा संभजन करनेवाला पुरुष तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अन्न-लाभ करता है।

३. हे शूर इन्द्र, तुम दस्युओं अथवा आर्यों दोनों प्रकार के शत्रुओं का संहार करते हो। हे नेतृश्रेष्ठ, जैसे काष्ठछेदक कुठारादि से वृक्षों को छिन्न कर देता है उसी प्रकार तुम संग्राम में भली भाँति प्रयुक्त अस्त्रों-द्वारा शत्रुओं का विदारण करते हो।

४. हे इन्द्र, तुम सर्वत्र गमन करनेवाले हो। तुम श्रेष्ठ रक्षा के द्वारा हम लोगों की समृद्धि के वर्द्धक तथा मित्र होओ। कुछ पुरुषों से युक्त

संग्राम में युद्ध करनेवाले हम लोग धन-लाभ के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं।

५. हे इन्द्र, इस समय में तथा दूसरे समय में तुम निश्चय ही हमारे होओ। हम लोगों की अवस्था के अनुसार सुख-प्रदाता होओ। इस प्रकार से स्तुति करनेवाले हम लोग गौओं के संभजन करनेवाले होकर तुम्हारे द्युतिमान् सुख में अवस्थान करें। तुम महान् हो।

३४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि शुनहोत्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुममें असंख्य स्तोत्र संगत होते हैं। तुमसे स्तोताओं की पर्याप्त प्रशंसा निर्गत होती है। पूर्व काल में और इस समय में भी ऋषियों को स्तोत्र, उपासना और मन्त्र इन्द्र की पूजा के विषय में परस्पर स्पर्द्धा करते हैं।

२. हम लोग सर्वदा इन्द्र की प्रसन्न करते हैं। वे बहुजनाहूत, बहुतों के द्वारा प्रबोधित, महान्, अद्वितीय एवम् यजमानों-द्वारा भली भाँति स्तुत हैं। हम लोग महान् लाभ करने के लिए रथ की तरह इन्द्र के प्रति अनुरक्त होकर सर्वदा उनका स्तवन करें।

३. समृद्धि-विधायक स्तोत्र इन्द्र के अभिमुख गमन करें। कर्म और स्तुतियाँ इन्द्र को बाधित नहीं करतीं। शत सहस्र-स्तव-कारी स्तुतिभाजन इन्द्र की स्तुति करके प्रीति उत्पन्न करते हैं।

४. इस यज्ञ-दिन में स्तोत्र की तरह पूजा के साथ प्रवृत्त होने के लिए इन्द्र के निमित्त मिश्रित सोमरस प्रस्तुत हुआ है। मरुदेश के अभिमुख गमन करनेवाला जल जिस प्रकार प्राणियों का पोषण करता है, उसी प्रकार हव्य के साथ स्तोत्र उन्हें वर्द्धित करें।

५. सर्वत्र गन्ता इन्द्र महान् संग्राम में हम लोगों के रक्षक और समृद्धिविधायक जिससे हों; अतः स्तोताओं का स्तोत्र आग्रह के साथ इन्द्र के प्रति उक्त होता है।

३५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि नर। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे इन्द्र, तुम रथाधिरूढ़ के निकट हमारे स्तोत्र कब उपस्थित होंगे? कब तुम मुझ स्तोत्र करनेवाले को सहस्र पुरुषों के गो-समूह या पुत्र प्रदान करोगे? कब तुम मुझ स्तोता के स्तोत्र को धन-द्वारा पुरस्कृत करोगे? कब तुम अग्नि-होत्रादि कार्य को अन्न से रमणीय बनाओगे?

२. हे इन्द्र, कब तुम हमारे पुरुषों के साथ शत्रुओं के पुरुषों को तथा हमारे पुत्रों के साथ शत्रुओं के पुत्रों को मिलित कराओगे? (युद्ध में इस तरह का संश्लेषण कब होगा?) हमारे लिए तुम कब संग्राम में जय प्राप्त करोगे? कब तुम गमनशील शत्रुओं से क्षीर, दधि और घृतादि धारण करनेवाली गौओं को जीतोगे? हे इन्द्र, कब तुम हम लोगों को व्याप्त धन प्रदान करोगे?

३. हे बलवत्तम इन्द्र, कब तुम स्तोता को विविध अन्न प्रदान करोगे? कब तुम अपने में यज्ञ और स्तोत्र को युक्त करोगे? कब तुम स्तोत्रों को गोदायक करोगे?

४. हे इन्द्र, तुम गोदायक, अश्वों-द्वारा आह्लादित करनेवाला और बल-द्वारा प्रसिद्ध अन्न हम स्तुति करनेवाले भरद्वाज-पुत्रों को प्रदान करो। तुम अन्नों को तथा सुगमता से दोहन योग्य गौओं को परिपुष्ट करो। वे गौएँ जिससे शोभन दीप्तिवाली हों, वैसा तुम करो।

५. हे इन्द्र, तुम हमारे शत्रु को अन्य प्रकार से (जीवन के विपरीत अर्थात् मरणपथ से) युक्त करो। हे इन्द्र, तुम शक्तिमान्, वीर और शत्रु-निहन्ता हो, इस प्रकार से हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम विशुद्ध वस्तुओं के प्रदानकर्त्ता हो। हम तुम्हारे स्तोत्र के उच्चारण करने में विरत नहीं हों। हे प्राज्ञ इन्द्र, तुम अङ्गिराओं को अन्न-द्वारा तृप्त (प्रसन्न) करो।

३६ सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि नर । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हे इन्द्र, तुम्हारा सोमपानजनित हर्ष निश्चय ही सब लोगों के लिए हितकर होता है। त्रिभुवन में अवस्थित तुम्हारा धन-समूह सचमुच सब लोगों के लिए हितकर है। तुम सचमुच अन्नदाता हो। देवों के मध्य में तुम बल धारण करते हो।

२. यजमान विशेष प्रकार से इन्द्र के बल की पूजा करते हैं। वीरत्व-प्राप्ति के लिए अथवा वीरकर्म करने के लिए यजमान इन्द्र को पुरोभाग में धारण करते हैं। अविच्छिन्न शत्रु-श्रेणी के निरोधकर्त्ता, हिंसाकारी और आक्रमणकारी इन्द्र वृत्र (शत्रु) का संहार करेंगे; अतः यजमान उनकी परिचर्या करते हैं।

३. संगत होकर मरुद्गण इन्द्र का सेवन करते हैं एवम् वीर्य, बल और रथ में नियोज्यमान अश्व भी इन्द्र का सेवन करते हैं। नदियाँ जिस प्रकार समुद्र में प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार उपासना (उक्थ, शस्त्र) रूप बलवाली स्तुतियाँ विश्वव्यापी इन्द्र के साथ संगत होती हैं।

४. हे इन्द्र, स्तूयमान होने पर तुम बहुतों के अन्नदायक और गृह-प्रदायक धन की धारा को प्रवाहित करो। तुम सम्पूर्ण प्राणी के उत्कृष्ट अधिपति और सम्पूर्ण भूतजात के असाधारण अधीश्वर हो।

५. हे इन्द्र, तुम श्रोतव्य स्तोत्रों को शीघ्र सुनो। हम लोगों की परिचर्या की कामना करके सूर्य की तरह शत्रुओं के धन को जीतो। तुम बल-सम्पन्न हो। प्रत्येक काल में स्तूयमान और हव्यरूप अन्न-द्वारा भली भाँति से ज्ञायमान होकर हमारे निकट पहले की ही तरह (असाधारण) रहो।

३७ सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि भरद्वाज । छन्द त्रिष्टुप ।)

१. हे उद्यतायुध इन्द्र, तुम्हारे रथ में युक्त अश्व हमारे सम्मुख तुम्हारे विश्ववन्दनीय रथ को लावें। गुणवान् स्तोता भरद्वाज ऋषि तुम्हारा

आह्वान करते हैं। अभी तुम्हारे साथ हृष्ट होकर हम लोग वर्द्धित हों।

२. हरितवर्ण सोमरस हमारे यज्ञ में प्रवाहित (गमनकर्त्ता) होता है और पूयमान (पवित्र) होकर कलशमें ऋजुभाव से गमन करता है। पुरातन, दीप्तिसम्पन्न और मदकारक सोमरस के अधिपति इन्द्र हमारे सोमरस का पान करें।

३. चतुर्दिक् गमन करनेवाले, रथ में युक्त और सरलतापूर्वक गमन करनेवाले अश्वगण सुदृढ़चक्र रथ पर अवस्थित बलशाली इन्द्र को हमारे अभिमुख लावें। अमृतमय सोमलक्षण हवि वायु से नष्ट (शुष्क) नहीं हों। अर्थात् सोमरस के बिगड़ने के पहले ही इन्द्र सोम को पी जायें।

४. निरतिशय बलशाली और बहुविध कार्य करनेवाले इन्द्र हवि-स्वरूप धनवाले व्यक्तियों के मध्य में यजमान को दक्षिणा प्रदान करते हैं। हे वज्रधर, तुम दक्षिणा-द्वारा पाप नाश करो। हे शत्रुविजयी, तुम वैसी दक्षिणा प्रेरित करो, जिससे धन-राशि और स्तुतिकर्त्ता पुत्र हमें प्राप्त हो।

५. इन्द्र श्रेष्ठ अन्न अथवा बल के दाता हों। अत्यधिक तेजोयुक्त इन्द्र हम लोगों की स्तुति-द्वारा वर्द्धित हों। शत्रुओं को सतानेवाले इन्द्र आवरक शत्रु का संहार करें। प्रेरक इन्द्र वेगवान् होकर हम लोगों को समस्त धन प्रदान करें।

३८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. आश्चर्यतम इन्द्र हम लोगों के पानपात्र से सोमरस पान करें। वे महान् और दीप्तिमान् आह्वान (स्तुति) को स्वीकार करें। दानशील इन्द्र धार्मिक यजमान के यज्ञ में अतिशय स्तुत्य परिचरण और हव्य ग्रहण करें।

२. इन्द्र के कर्णयुगल दूर देश से भी स्तोत्र श्रवण करने के लिए आते हैं। स्तोता उच्च स्वर से स्तोत्र-पाठ करते हैं। इन्द्र का आह्वान करनेवाली यह स्तुति स्वयं प्रेरित होकर इन्द्र को हमारे अभिमुख लावे।

३. हे इन्द्र, तुम प्राचीन और क्षयरहित हो। हम उत्कृष्टतम स्तुति और हव्य-द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं; इसी लिए इन्द्र में हव्यरूप अन्न और स्तोत्र निहित है। महान् स्तोत्र अधिक वर्द्धमान होता है।

४. जिन इन्द्र को यज्ञ और सोमरस वर्द्धित करते हैं, जिन इन्द्र को हव्य, स्तुति, उपासना और पूजा वर्द्धित करती हैं, दिन और रात्रि की गति जिन्हें वर्द्धित करती है एवम् जिन्हें मास, संवत्सर और दिन वर्द्धित करते हैं।

५. हे मेधावी इन्द्र, तुम इस प्रकार से प्रादुर्भूत, समृद्ध, बलशाली और प्रचण्ड हो। हम लोग आज धन, कीर्ति, रक्षा और शत्रुविनाश के लिए तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

३९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम हमारे उस सोम को पियो, जो मदकारक पराक्रम-कर्त्ता, स्वर्गीय, विज्ञ-सम्मत फलदाता प्रसिद्ध और सेवनीय है। देव, तुम हमें गो-प्रमुख अन्न दो।

२. इन्हीं इन्द्र ने पर्वत के बीच गुप्त रीति से रक्खी गायों के उद्धार के लिए यज्ञ-कर्त्ता अङ्गिरा लोगों के साथ होकर और उनके सत्य-रूप स्तोत्र-द्वारा उत्तेजित होकर दुर्भेद्य पर्वत को भिन्न और ताड़ना-द्वारा पणियों को अभिभूत किया था।

३. इन्द्र, इस सोम ने दीप्ति-शून्य रात्रि, दिन और वर्ष—सबको प्रदीप्त किया था। प्राचीन समय में देवों ने इस सोम को दिन का केतु-स्वरूप स्थापित किया था। इसी सामने अपनी दीप्ति से उषाओं को प्रकाशित किया था।

४. इन्हीं इन्द्र ने सूर्य-रूप से प्रकाशित होकर प्रकाश-शून्य भुवनों को प्रकाशित किया था और सर्वत्र गतिशील दीप्ति-द्वारा उषाओं का अन्धकार नष्ट किया था। मनुष्यों के अभीष्ट फलदाता ये इन्द्र स्तोत्र-द्वारा नियोजित

होनेवाले अश्वों-द्वारा आकृष्ट और धनपूर्ण रथ पर आरूढ़ होकर गये थे।

५. हे पुरातन और प्रकाशमान इन्द्र, तुम स्तुति किये जाने पर धन देने योग्य स्तोता को प्रचुर धन दो। तुम स्तोता को जल, ओषधि, विष-शून्य वृक्षावली, धेनु, अश्व और मनुष्य प्रदान करो।

४० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम्हारे मद-वर्द्धन के लिए जो सोम अभिषुत हुआ है, उसे पान करो। अपने मित्र-भूत दोनों अश्वों को रथ में जोतो और इसके पीछे रथ में उन्हें छोड़ दो। स्तोताओं के बीच बैठकर हमारे द्वारा किये गये स्तोत्रों के उच्चारण में योग दो। स्तोता यजमान को अन्न दो।

२. हे महेन्द्र, तुमने उल्लास और वीरता प्रकट करने के लिए जन्म लेते ही जैसे सोमपान किया था, उसी तरह सोमपान करो। तुम्हारे लिए सोम तैयार करने के लिए गायें, ऋत्विक्, जल और पाषाण इकट्ठे होते हैं।

३. इन्द्र, आग प्रज्वलित और सोमरस अभिषुत हुआ है। ढोने में शक्तिशाली तुम्हारे अश्व इस यज्ञ में ले आवें। हम तुम्हारी ओर चित्त लगाकर तुम्हें बुला रहे हैं। तुम हमारी विशाल समृद्धि के लिए आओ।

४. इन्द्र, तुम सोमपान के लिए कई बार यज्ञ में उपस्थित हुए हो। इसलिए इस समय सोमपान की इच्छा से महान् अन्तःकरण के साथ इस यज्ञ में आओ। हमारे स्तोत्रों को सुनो। तुम्हारी देह की पुष्टि के लिए यजमान तुम्हें सोमरूप अन्न प्रदान करे।

५. इन्द्र, तुम दूरस्थित स्वर्ग, किसी अन्य स्थान वा अपने गृह में अथवा कहीं हो; स्तुति-पात्र और अश्वों के अधिपति तुम मरुतों के साथ प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करने के लिए हमारे यज्ञ की रक्षा करो।

४१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र तुम क्रोध-शून्य होकर हमारे यज्ञ में आओ; क्योंकि तुम्हारे लिए पवित्र सोमरस अभिषुत हुआ है। वज्रधर, जैसे गायें गोशाला में जाती हैं, वैसे ही सोमरस कलश में पैठ रहा है। इसलिए इन्द्र, तुम आओ। तुम यज्ञ-योग्य देवों में प्रधान हो।

२. इन्द्र, तुम जिस सुनिर्मित और सुविस्तृत जीभ से सदा सोमपान करते हो उसी जीभ से हमारे सोमरस का पान करो। सोमरस लेकर ऋत्विक् तुम्हारे सामने खड़ा है। इन्द्र, शत्रुओं की गौओं को आत्मसात् करने के लिए अभिलाषी तुम्हारा वज्र शत्रुओं का संहार करे।

३. द्रवीभूत, अभीष्टवर्षी और विविध-मूर्ति यह सोम मनोरथवर्षक इन्द्र के लिए सुसंस्कृत हुआ है। हे अश्वों के अधिपति सबके शासक और प्रचण्ड बलशाली इन्द्र, बहुत दिनों से, जिसके ऊपर तुमने प्रभुत्व किया है और जो तुम्हारे लिए अन्नरूप माना गया है, वही तुम इस सोमरस का पान करो।

४. इन्द्र, अभिषुत सोम अनभिषुत सोम से श्रेष्ठतर है और विचारशाली तुम्हारे लिए अधिक प्रसन्नताकारक है। शत्रु-विजयी इन्द्र, तुम यज्ञ-साधन इस सोम के पास आओ। और इसके द्वारा अपनी सारी शक्तियाँ सम्पूर्ण करो।

५. इन्द्र, हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारे सामने आओ। हमारा यह सोम तुम्हारे शरीर के लिए पर्याप्त हो। शतक्रतु इन्द्र, अभिषुत सोमपान के द्वारा उल्लासित होओ और युद्ध में सब लोगों से हमें चारों ओर से रक्षित करो।

४२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द अनुष्टुप् और बृहती।)

१. ऋत्विको, इन्द्र को सोमरस दो; क्योंकि वे पिपासु, सर्वज्ञाता, सर्वगामी, यज्ञ में अधिष्ठाता, यज्ञ के नायक और सबके अग्रगामी हैं।

२. ऋत्विको, तुम सोमरस के साथ, अतिशय सोमरस-पानकारी इन्द्र के पास उपस्थित होओ। अभिषुत सोमरस से भरे हुए पात्र के साथ बलशाली इन्द्र के सम्मुख आओ।

३. ऋत्विको, अभिषुत और दीप्त सोमरस के साथ इन्द्र के पास उपस्थित होओ। मेधावी इन्द्र तुम्हारा अभिप्राय जानते हैं और शत्रु-संहार के साथ वह तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करते हैं।

४. ऋत्विक्, एकमात्र इन्द्र को ही सोम-रूप अन्न का अभिषुत रस दो। इन्द्र हमारे सारे उत्साही और जीते जानेवाले रिपुओं के द्वेष से हमारी सदा रक्षा करें।

४३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द उष्णिक्।)

१. इन्द्र, जिस सोमरस-पान के उल्लास में तुमने, दिवोदास के लिए, शम्बर को वश किया था, वही सोमरस तुम्हारे लिए अभिषुत हुआ है। इसलिए इसे तुम पान करो।

२. इन्द्र, जब सोम का मादक रस, प्रातः, मध्याह्न और सायं की पूजा में अभिषुत होता है, तब तुम इसे धारण करते हो। यही सोमरस तुम्हारे लिए अभिषुत हुआ है। इसे पान करो।

३. इन्द्र, जिस सोम के मादक रस का पान करके तुमने पर्वत के बीच, अच्छी तरह से बँधी हुई गायों को छुड़ाया था, वही सोमरस तुम्हारे लिए अभिषुत है इसे पान करो।

४. इन्द्र, जिस सोमरूप अन्न के रस-पान से उल्लसित होकर तुम असाधारण बल को धारण करते हो, वही सोमरस तुम्हारे लिए अभिषुत हुआ है। इसे पान करो।

४४ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि बृहस्पति के पुत्र शंयु। छन्द विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. हे धनशाली और सोमरूप अन्न के रक्षक इन्द्र, जो सोम अतिशय धनशाली है और जो दीप्त यश के द्वारा समुज्ज्वल है, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

२. हे विपुल-सुखकारी और सोमरूप अन्न के रक्षाकारी इन्द्र, जो सोम तुम्हारा प्रसन्नता-कारक और तुम्हारे स्तोताओं का ऐश्वर्य-विधायक है, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

३. हे सोमरूप अन्न के रक्षक, इन्द्र, जिस सोम के पान से प्रवृद्ध-बल होकर, अपने रक्षक मरुतों के साथ, रिपु-विनाश करते हो, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

४. यजमानो, हम तुम्हारे लिए उन इन्द्र की स्तुति करते हैं, जो भक्तों के कृपालु, बल के स्वामी, विश्वजेता, यागादि क्रियाओं के नायक और श्रेष्ठ धाता तथा सर्व-दर्शक हैं।

५. हमारी स्तुतियों द्वारा इन्द्र का जो शत्रु-धन-हरण करनेवाला बल वर्द्धित होता है, उसी बल की परिचर्या स्वर्गदेव और पृथ्वी-देवी करती हैं।

६. स्तोताओ, इन्द्र के लिए अपना स्तोत्र विस्तृत करो; क्योंकि मेधावी व्यक्ति की भाँति तुम्हारी रक्षा इन्द्र के साथ है।

७. जो यजमान यज्ञादि कार्य में दक्ष है, उसकी बातें इन्द्र जानते हैं। मित्र और नवीनतर सोम का पान करनेवाले इन्द्र स्तोताओं को श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं। हव्य-रूपी अन्न भोजन करनेवाले वह इन्द्र प्रवृद्ध और पृथ्वी को कँपानेवाले अश्वों के साथ स्तोताओं की रक्षा की इच्छा से आकर उनकी रक्षा करते हैं।

८. यज्ञमार्ग में सर्वदर्शी सोम पिया गया है। ऋत्विक् लोग उसी सोम को, इन्द्र का चित्त आकृष्ट करने के लिए प्रदर्शित करते हैं।

शत्रुजेता और विशाल देह धारण करनेवाले वही इन्द्र हमारे स्तव से प्रसन्न होकर हमारे सामने प्रकट हों।

९. इन्द्र, तुम हमें अतीव दीप्ति से युक्त बल दो। अपने उपासकों के असंख्य शत्रुओं को दूर करो। अपनी बुद्धि से हमें यथेष्ट अन्न दो। धन का भोग करने के लिए हमारी रक्षा करो।

१०. धनशाली इन्द्र, तुम्हारे लिए ही हम हव्य दे रहे हैं। अश्वों के स्वामी इन्द्र, हमारे प्रतिकूल नहीं होना। मनुष्यों के बीच हम तुम्हारे सिवा किसी को अपना मित्र नहीं देखते। इन्द्र, यदि तुम्हारे अन्दर यह गुण नहीं रहता, तो तुम्हें प्राचीन लोग "धनद" क्यों कहते ?

११. अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, तुम हमें कार्य-विनाशक राक्षसादिकों के पास नहीं छोड़ना। तुम धनयुक्त हो। तुम्हारे बन्धुत्व के ऊपर अवलम्बित होकर हम कोई विघ्न न पावें। मनुष्यों के बीच तुम्हारे लिए अनेक प्रकार के विघ्न उत्पन्न किये जाते हैं। जो अभिषवकर्त्ता नहीं हैं, उनका संहार करो और जो तुम्हें हव्य नहीं देते, उनका विनाश करो।

१२. गर्जन करनेवाले पर्जन्य जैसे मेघ उत्पन्न करते हैं, वैसे ही इन्द्र स्तोताओं को देने के लिए अश्व और गायें उत्पन्न करते हैं। इन्द्र, तुम स्तोताओं के प्राचीन रक्षक हो। तुम्हें हव्य न देकर धनी लोग तुम्हारे प्रति अन्यथा आचरण न करें।

१३. ऋत्विको, तुम इन्हीं महेन्द्र को अभिषुत सोम अर्पित करो; क्योंकि ये ही सोम के स्वामी हैं। यही इन्द्र स्तोता ऋषियों के प्राचीन और नवीन स्तोत्रों के द्वारा परिवर्द्धित हुए हैं।

१४. ज्ञानी और अबाध प्रभाव इन्द्र ने इसी सोम का पान कर और उल्लसित होकर असंख्य प्रतिकूल आचरण करनेवाले शत्रुओं का विनाश किया है।

१५. इन्द्र इस अभिषुत सोम का पान करें और इससे उल्लसित होकर वज्र-द्वारा वृत्र का संहार करें। गृहदाता, स्तोतृरक्षक और यजमान-पालक वह इन्द्र दूर देश से भी हमारे यज्ञ में आवें।

१६. इन्द्र के पीने के योग्य और प्रिय यह सोम-रूप अमृत इन्द्र के द्वारा इस प्रकार पिया जाय कि वे उल्लसित होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करें और हमारे शत्रुओं तथा पाप को हमसे दूर करें।

१७. शौर्यशाली इन्द्र, इस सोम के पान से प्रसन्न होकर हमारे आत्मीय और अनात्मीय प्रतिकूलाचरण-कर्ता शत्रुओं का विनाश करो। इन्द्र, हमारे सामने आये हुए अस्त्र छोड़नेवाले शत्रु-सैन्यों को पराङ्मुख और उच्छिन्न करो।

१८. इन्द्र, हमारे इस सारे संग्राम में अतुल धन हमें सुलभ करो। जय-प्राप्ति में हमें समर्थ बनाओ। वर्षा, पुत्र और पौत्र के द्वारा हमें समृद्ध करो।

१९. इन्द्र, तुम्हारे अभीष्ट-वर्षक, स्वेच्छा के अनुसार रथ में नियुक्त, अभीष्ट-वाला रथ के ढोनेवाले, वारिवर्षक, किरणों-द्वारा संयुक्त, द्रुतगामी, हमारे सामने आनेवाले, नित्य तरुण, वज्र-वाहक और शोभन रूप से योजित अश्व बहुत नशा करनेवाले सोम को पीने के लिए तुम्हें ले आवें।

२०. अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे जल-वर्षक और तरुण अश्व जल का सेवन करनेवाली समुद्र-तरङ्गों के समान उल्लसित होकर तुम्हारे रथ में जुते हैं। तुम तरुण और काम-वर्षक हो। ऋत्विक् लोग तुम्हें पाषाण-द्वारा अभिषुत सोमरस अर्पण करते हैं।

२१. इन्द्र, तुम स्वर्ग के सेवनकर्त्ता, पृथ्वी के वर्षण-कर्त्ता, नदियों के पूरण-कर्त्ता और एकत्र समवेत स्थावर और जङ्गम विश्व-भूतों के अभीष्ट-कर्त्ता हो। अभीष्ट-प्रदायक इन्द्र, तुम श्रेष्ठ सेचनकारी हो। तुम्हारे लिए मधु की तरह पीने योग्य माठा सोमरस बढ़ रहा है।

२२. इस दीप्तिमान् सोम ने मित्र इन्द्र के साथ जल लेकर बल-पूर्वक पणि की स्तुति की थी। इसी सोम ने गोरूप धन को चुरानेवाले दूषियों की माया और अस्त्रों को व्यर्थ किया था।

२३. इसी सोम ने उषाओं के पति-स्वरूप सूर्य को शोभा-सम्पन्न किया था। इसी सोम ने सूर्य-मण्डल में दीप्ति स्थापित की थी। इसी

सोम ने दीप्ति-संयुक्त तीनों भुवनों के बीच स्वर्ग में गूढ़ भाव से अवस्थित त्रिविध अमृतों को प्राप्त किया था।

२४. इसी सोम ने स्वर्ग और पृथ्वी को अपने-अपने स्थानों पर संस्थापित किया था। इसी सोम ने सप्तरश्मि रथ को योजित किया था। इसी सोम ने स्वेच्छानुसार गौओं के बीच परिणत दुग्ध के दस यन्त्रों के कूप को या बहुधारा-विशिष्ट प्रस्रवण को स्थापित किया था।

४५ सूक्त

(देवता दस मन्त्रों के इन्द्र और अवशिष्ट के बृहस्पति। ऋषि बृहस्पति के पुत्र शंयु। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. जो उत्कृष्ट नीति-द्वारा तुर्वश और यदु को दूर देश से लाये थे, वही तरुण इन्द्र हमारे मित्र बनें।

२. जो व्यक्ति इन्द्र की स्तुति नहीं करता, उसे भी इन्द्र अन्न प्रदान करते हैं। इन्द्र मन्थर-गति अश्व पर चढ़कर शत्रुओं के बीच निहित सम्पत्ति को जीतते हैं।

३. इन्द्र की नीतियाँ उत्कृष्ट और महान् हैं। उनकी स्तुतियाँ भी नाना प्रकार की हैं। उनकी रक्षा का कथन कभी क्षीण नहीं होता।

४. बन्धुओ, मन्त्र-द्वारा आह्वान के योग्य उन्हीं इन्द्र की पूजा करो और उन्हीं की स्तुति करो; क्योंकि वही हमें वस्तुतः प्रकृष्ट बुद्धि प्रदान करते हैं।

५. वृत्र-विनाशक इन्द्र, तुम एक या दो स्तोताओं के रक्षक हो। तुम्हीं हमारे जैसे लोगों के रक्षक हो।

६. इन्द्र, हमारे पास से विद्वेषियों को दूर करो और स्तोताओं को समृद्धि दो। इन्द्र, तुम शोभन पुत्र-पौत्र आदि देनेवाले हो; इसलिए मनुष्य तुम्हारी स्तुति करते हैं।

७. मैं स्तोत्र के बल से मित्र, महान् मन्त्र-द्वारा आह्वान के योग्य और स्तुति-पात्र इन्द्र को, धेनु की तरह अभीष्ट दुहने के लिए, बुलाता हूँ।

८. वीर्यवान् और शत्रु-सेना को पराजित करनेवाले इन्द्र के दोनों हाथों में दिव्य और पार्थिव धन है—ऐसा ऋषि लोग बराबर कहा करते हैं।

९. हे वज्रधारक और यज्ञपति इन्द्र, तुम शत्रुओं के दृढ़ नगरों को निर्मूल करते हो। हे सर्वोन्नित इन्द्र, तुम शत्रुओं की मायाओं को विनष्ट करते हो।

१०. हे सत्यस्वभाव, सोमपायी और अन्नरक्षक इन्द्र, हम, अन्नाभिलाषी होकर, ऐसे गुणों से संयुक्त तुम्हें ही बुलाते हैं।

११. इन्द्र, तुम पहले आह्वान के योग्य थे और इस समय शत्रुओं के बीच रखे हुए धन की प्राप्ति के लिए आहुत होते हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारा आह्वान सुनो।

१२. इन्द्र, हमारे स्तोत्र को सुनकर तुम्हारे प्रसन्न होने पर तुम्हारी कृपा से हम अश्वों के द्वारा शत्रुओं के अश्व, उत्कृष्ट अन्न और गूढ़ धन को जीतने में समर्थ हों।

१३. वीर और स्तुति-पात्र इन्द्र, तुम शत्रुओं के बीच निहित धन की प्राप्ति के लिए युद्ध में शत्रुओं को जीतने में समर्थ हुए हो।

१४. रिपुञ्जय इन्द्र, तुम्हारी गति अतिशय वेग से संयुक्त है। उसी गति के द्वारा शत्रु की जय करने के लिए हमारा रथ चलाओ।

१५. जयशील और रथि-श्रेष्ठ इन्द्र, तुम हमारे शत्रु-विजयी रथ के द्वारा शत्रुओं के द्वारा निहित धन को जीतो।

१६. जो सर्वदर्शी और वर्षणशील हैं, जिन्होंने एक-एक मनुष्यों के अधिपति-रूप से जन्म धारण किया है, उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो।

१७. इन्द्र, तुम रक्षा के कारण सुखदाता और मित्र हो। हमारी स्तुति पर तुमने प्राचीन समय में बन्धुता प्रकट की थी। इस समय हमें सुखी करो।

१८. वज्रधर इन्द्र, तुम राक्षसों के नाश के लिए अपने हाथों में वज्र धारण करते हो और स्पर्द्धावालों को भली भाँति पराजित करते हो।

१९. जो धनद, मित्र, स्तोताओं के उत्साहदाता और मन्त्रों के द्वारा आह्वान के योग्य हैं, उन्हीं प्राचीन इन्द्र को मैं आह्वान करता हूँ।

२०. जो स्तुति-द्वारा वन्दनीय और अप्रतिहत गति हैं, वही एकमात्र इन्द्र ही सारे पार्थिव धनों के ऊपर एकाधिपत्य करते हैं।

२१. हे गौओं के अधिपति, तुम बहुवा लोगों के साथ आकर अन्न, असंख्य अश्वों और धेनुओं से भली भाँति हमारे मनोरथ को पूरा करो।

२२. स्तोताओं, जैसे घास गौ के लिए सुखावह होती है, वैसे ही सोमरस के तैयार होने पर इन्द्र का सुखदायक स्तोत्र भी बहुसंख्यक लोगों के द्वारा वन्दनीय होता है। रिपुञ्जय इन्द्र के पास एकत्र होकर गान करो।

२३. गृह-प्रदाता इन्द्र जिस समय हमारा स्तोत्र सुनते हैं, उस समय वे धेनुओं के साथ अन्न प्रदान करने में विरत नहीं होते।

२४. दस्युओं के वधकर्ता इन्द्र कुवित्स की असंख्य धेनुओंवाली गोशाला में गये और उन्होंने अपने बुद्धि-बल से हमारे लिए उस निगूढ़ गो-वृन्द को प्रकट किया।

२५. बहुविध कर्मों के अनुष्ठाता इन्द्र, जैसे गायें बार-बार बछड़ों के सामने जाती हैं, वैसे ही हमारी ये सारी स्तुतियाँ बार-बार तुम्हारी ओर जाती हैं।

२६. इन्द्र, तुम्हारे बन्धुत्व का विनाश नहीं होता। वीर, तुम गौ चाहनेवाले को गौ और घोड़ा चाहनेवाले को घोड़ा देते हो।

२७. इन्द्र, महाधन के लिए प्रदत्त सोमरस का पान करके अपने को परितृप्त करो। तुम अपने उपासक को निन्दक के हाथ नहीं सौंपते।

२८. स्तुति द्वारा वन्दनीय इन्द्र, जैसे दूध देनेवाली गायें बछड़ों के पास जाती हैं, वैसे ही बार-बार सोमरस के अभिषुत होने पर हमारी ये स्तुतियाँ, बड़े वेग से, तुम्हारी ओर जाती हैं।

२९. यज्ञ-मण्डप में हव्यरूप अन्न के साथ दिये गये असंख्य स्तोताओं के स्तोत्र, असंख्य शत्रुओं के नाशक तुम्हें, बलशाली करें।

३०. इन्द्र, अतीव उन्नति-कारक हमारे स्तोत्र तुम्हारे पास जायें। हमें, महाधन की प्राप्ति के लिए, प्रेरित करो।

३१. गङ्गा के ऊँचे तटों की तरह प्राणियों के बीच ऊँचे स्थान पर बृबु ने अधिष्ठान किया था।

३२. मैं धनार्थी हूँ। बृबु ने मुझे वायु-वेग के समान वदान्यता के साथ एक हजार गायें तुरत दी थीं।

३३. हम सब लोग स्तुति करके हजार गायें देनेवाले, विद्वान् और हजारों स्तोत्रों के पात्र उन्हीं बृबु की सदा प्रशंसा करते हैं।

४६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि शंयु। छन्द बृहती और सतोबृहती।)

१. हम स्तोता हैं। अन्न-प्राप्ति के लिए तुम्हें बुलाते हैं। तुम साधुओं के रक्षक हो; इसलिए अश्वों से युक्त संग्राम में शत्रुओं को जीतने के लिए वे तुम्हें ही बुलाते हैं।

२. विचित्र-वज्र-पाणि वज्री, जैसे तुम युद्ध में विजयी पुरुष को यथेष्ट अन्न देते हो, वैसे ही तुम हमारे स्तव से प्रसन्न होकर हमें यथेष्ट गो और रथ वहन करने में पटु अश्व दो; तुम शत्रु-नाशक और प्रतापी हो।

३. जो प्रबल शत्रुओं के निधन-कर्त्ता और सर्वदर्शी हैं, उन्हीं इन्द्र को हम बुलाते हैं। सहस्र-शोक, अतुलधन-सम्पन्न और सत्पालक इन्द्र, रण-स्थल में तुम हमें समृद्धि दो।

४. इन्द्र, जैसा ऋचा में वर्णन मिलता है, वैसा ही तुम्हारा रूप है। तुम तुमुल युद्ध में, वृषभ की तरह, अत्यन्त क्रोध के साथ हमारे शत्रुओं पर आक्रमण करो। जिससे हम सन्तति, जल और सूर्य का दर्शन (अथवा बहुत समय तक भोग) कर सकें, उसके लिए तुम रण-भूमि में हमारे रक्षक बनो।

५. शोभन हनु (केहुनी) वाले और अद्भुत-वज्रपाणि इन्द्र, जिस

अन्न से तुम स्वर्ग और पृथ्वी का पोषण करते हो, हमारे पास वही प्रकृष्टतम, अत्यन्त बल-वर्द्धक और पुष्टिसाधक अन्न ले आओ।

६. दीप्तिशाली इन्द्र, तुम हमारी रक्षा करोगे; इसलिए तुम्हें हम बुलाते हैं। तुम देवों में सबसे बली और शत्रु-जयी हो। गृहदाता इन्द्र, तुम समस्त राक्षसों को अलग करो और हमें शत्रुओं के ऊपर विजय दो।

७. इन्द्र, मनुष्यों में जो कुछ बल और धन है और पाँचो वर्णों में जो अन्न हैं, सो सब सारे महान् बल के साथ, हमें दो।

८. ऐश्वर्यशाली इन्द्र, शत्रुओं के साथ युद्ध प्रारम्भ होने पर हम उन्हें युद्ध में जीत सकें, इसके लिए तुम हमें तक्षु, द्राह्यु और पुरु का सारा बल दे देना।

९. इन्द्र, हव्यरूप धन से युक्त मनुष्यों कोऔर मुझे एक ऐसा घर दो, जो लकड़ी, ईंट और पत्थर का बना हुआ हो और जिसमें शीत, ताप और ग्रीष्म न सतावें तथा जो घर समृद्ध और आच्छादक हो। शत्रुओं के सारे दीप्तियुक्त आयुधों को दूर करो।

१०. ऐश्वर्यशाली इन्द्र, जिन्होंने हमारी गायें अपहृत करने के लिए हमारे ऊपर शत्रुवत् आक्रमण किया था अथवा जिन्होंने धृष्टता के साथ हमें उत्पीड़ित किया था, उनसे (हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न होकर) हमारी रक्षा करने के लिए हमारे पास आओ।

११. इन्द्र, इस समय हमें धन दो। जिस समय पक्ष-युक्त, तीक्ष्णाग्र और दीप्त शत्रुओं के बाण आकाश से गिरते हैं, उस समय जो हमारी रक्षा करते हैं, उनकी रक्षा तुम समर-भूमि में करना।

१२. शत्रुओं के सामने जिस समय वीर लोग अपनी देह को दिखाते और पैतृक स्थानों का परित्याग करते हैं, उस समय तुम हमें और हमारी सन्तानों को शरीर-रक्षा के लिए, गुप्त रूप से, कवच देना और शत्रुओं को दूर करना।

१३. महायुद्ध का समारोह होने पर तुम विकट मार्ग से हमारे अश्वों

को, कुटिल प्रान्त से जानेवाले, द्रुतगति और आमिषार्थी श्येन की तरह, भेजना।

१४. यद्यपि डर के मारे घोड़े जोर से हिनहिनाते हैं, तथापि निम्न-गामिनी नदियों की तरह, वे ही वेगगामी और दृढ़संयत घोड़े, आमिषार्थी पक्षियों की तरह, धेनु-प्राप्ति के लिए, प्रवृत्त संग्राम में, बार-बार दौड़ते हैं।

४७ सूक्त

(पाँच मन्त्रों के सोम, बीसवें के प्रथम पाद के देवगण, द्वितीय देवता की पृथ्वी, तृतीय के बृहस्पति और चतुर्थ पाद के इन्द्र। बीस से चौबीस तक सृञ्जय-पुत्र प्रस्तोक छब्बीस से तीन मन्त्रों के रथ, उनतीस से एकतीस के दुन्दुभि और शेष मन्त्रों के इन्द्र। ऋषि भरद्वाज के पुत्र गर्ग। छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती और जगती।)

१. यह अभिषुत सोम सुस्वादु, मधुर, तीव्र और रसवान है। इसका इन्द्र पान कर लेते हैं, तब संग्राम में उनके सामने कोई नहीं ठहर सकता।

२. इस यज्ञ में पीने पर ऐसे ही सोम ने अत्यन्त हर्ष प्रदान किया था। वृत्र के विनाश के समय इन्द्र ने इसे पीकर प्रसन्नता प्राप्त की थी। इसने शम्बर की निन्यानबे पुरियों का विनाश किया था।

३. पीने पर यह सोमरस मेरे वाक्य की स्फूर्ति को बढ़ाता है। यह अभिलषित बुद्धि को प्रदान करता है। इसी सुबुद्धि सोम ने स्वर्ग, पृथ्वी, दिन-रात्रि, जल और ओषधि आदि छः अवस्थाओं की सृष्टि की है। भूतगण में कोई भी इससे दूर नहीं ठहर सकता।

४. फलतः इसी सोमरस ने पृथ्वी का विस्तार और स्वर्ग की दृढ़ता की है। इसी सोमरस ने ओषधि, जल और धेनु नामक तीन उत्कृष्ट आधारों में रस दिया था। यही विस्तृत अन्तरिक्ष को धारण किये हुए है।

५. निर्मल आकाश में स्थित उषा के पहले यही सोम विचित्र दर्शन सूर्य-ज्योति को प्रकट करता है, वारिवर्षी और बलशाली यह सोमरस ही मरुतों के साथ सुदृढ़ स्तम्भ-द्वारा स्वर्ग को धारण किये हुए है।

६. वीर इन्द्र, धन-प्राप्ति के लिए आरम्भ किये गये संग्राम में तुम शत्रु संहार करो। साहस के साथ कलस-स्थित सोमरस का पान करो। मध्याह्न के यज्ञ में तुम बहुत सोम पान करो। हे धन-पात्र, हमें धन दो।

७. इन्द्र, मार्गरक्षक की तरह तुम अग्रगामी होकर हमारे प्रति दृष्टि रखना और हमारे सामने श्रेष्ठ धन ले आना। तुम भली भाँति हमें दुःख और शत्रु से बचाओ और उत्कृष्ट नेता होकर हमें अभिलषित धन में ले जाओ।

८. इन्द्र, तुम ज्ञानी हो। हमें विस्तीर्ण लोक में—सुखमय और भय-शून्य आलोक में भी—निर्विघ्न ले जाना। तुम प्राचीन हो। हम तुम्हारे मनोज्ञ और बृहत् बाहुओं के ऊपर रक्षा के लिए आश्रित हैं।

९. धनाढ्य इन्द्र, तुम हमें अपने पराक्रमी अश्वों के पीछे विस्तृत रथ पर चढ़ाओ। विविध अन्नों के बीच तुम हमारे लिए प्रकृष्टतम अन्न ले आओ। मघवन् कोई भी धनी धन में हमें न लाँघ सके।

१०. इन्द्र, तुम मुझे सुखी करो। मेरी जीवन-वृद्धि करने में प्रसन्न होओ। लौहमय खड्ग की धार की तरह मेरी बुद्धि को तेज करो। तुम्हें प्रसन्न करने के लिए इस समय जो कुछ मैं कह रहा हूँ, सो सब ग्रहण करो। देवगण मेरी रक्षा करें।

११. जो शत्रुओं से रक्षा करते और मनोरथ पूर्ण करते हैं, जो अनायास आह्वान-योग्य, शौर्यशाली और सभी कामों में समर्थ हैं, मैं उन्हीं बहुलोक-वन्दनीय इन्द्र को, प्रत्येक यज्ञ में, बुलाता हूँ। धनवान् इन्द्र हमें समृद्धि दें।

१२. शोभन रक्षा करनेवाले और धनशाली इन्द्र रक्षा-द्वारा हमें सुख देते हैं। वही सर्वज्ञ इन्द्र हमारे शत्रुओं का वध करके हमें निर्भय करते हैं। उनकी प्रसन्नता से हम अतीव वीर्य-शाली बनें।

१३. हम उन्हीं योगार्ह इन्द्र के अनुग्रह, बुद्धि और कल्याणवाही प्रीति के पात्र बनें। रक्षक और धनी वही इन्द्र विद्वेषियों को बहुत दूर ले जायँ।

१४. इन्द्र, स्तोताओं की स्तुति, उपासना, विशाल धन और प्रचुर अभिषुत सोमरस, निम्न देश-प्रवण जलराशि की तरह, तुम्हारी ओर जाते हैं। वज्रधर इन्द्र, तुम जल, दूध और सोमरस भली भाँति मिलाते हो।

१५. भली भाँति कौन मनुष्य इन्द्र की स्तुति, प्रसन्नता और यज्ञ करने में समर्थ है ? धनशाली इन्द्र प्रतिदिन अपनी उग्र शक्ति को जानते हैं। जैसे पथिक अपने पैरों को कभी आगे और कभी पीछे करता है, वैसे ही इन्द्र अपने बुद्धि-बल से स्तोता को कभी परवर्ती और कभी अग्रवर्ती करते हैं।

१६. प्रबल शत्रु का दमन करके और स्तोताओं का स्थान सदा परिवर्तन करके इन्द्र, अपनी वीरता के लिए, प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। उद्धत व्यक्तियों के द्वेषी और स्वर्गीय तथा पार्थिव धनों के अधिपति इन्द्र अपने सेवकों को, रक्षा के लिए, बार-बार बुलाते हैं।

१७. इन्द्र पूर्वतन प्रशस्त कर्मों के अनुष्ठाताओं की मित्रता त्याग देते हैं और उनसे द्वेष करके उनकी अपेक्षा निकृष्ट व्यक्तियों के साथ मित्रता करते हैं। अथवा अपनी उपासना से रहित व्यक्तियों को छोड़कर परिचारकों के साथ अनेक वर्ष रहते हैं।

१८. सारे देवों के प्रतिनिधि इन्द्र तीन प्रकार की मूर्तियाँ धारण करते हैं और इन रूपों को धारण कर वे अलग-अलग प्रकट होते हैं। वे माया-द्वारा अनेक रूप धारण करके यजमानों के पास उपस्थित होते हैं; क्योंकि इन्द्र के रथ में हजार घोड़े जोते जाते हैं।

१९. रथ में इन्द्र ही घोड़े जोतकर त्रिभुवनों के अनेक स्थानों में प्रकट होते हैं। दूसरा कौन व्यक्ति प्रतिदिन उपस्थित स्तोताओं के बीच जाकर शत्रुओं से उनकी रक्षा करता है ?

२०. देवो, हम गमन घूमते-घूमते उस देश में आ पहुँचे हैं, जहाँ गायें नहीं हैं। विस्तृत पृथ्वी दस्युओं को आश्रय देती है। बृहस्पति, तुम धेनुओं के अनुसन्धान में हमें परिचालित करो। इन्द्र, इस तरह से पथ-भ्रष्ट अपने उपासक को मार्ग दो।

२१. इन्द्र अन्तरिक्षस्थित गृह से सूर्य-रूप से प्रकट होकर दिन का अपरार्द्ध प्रकाशित करने के लिए प्रतिदिन, समान रीति से रात्रि को दूर करते हैं। "उदव्रज" नामक देश में शम्बर और वर्चो नाम के दो धनार्थी दासों का वर्षक इन्द्र ने संहार किया था।

२२. इन्द्र, प्रस्तोक ने तुम्हारे स्तोताओं को (हमें) सोने से भरे दस कोश और दस घोड़े प्रदान किये थे। अतिथिग्व ने शम्बर को जीतकर जो धन प्राप्त किया था, उसी धन को हमने दिवोदास से पाया है।

२३. मैंने दिवोदास के पास से दस घोड़े, दस सोने के कोश, कपड़े, यथेष्ट अन्न और दस हिरण्य पिण्ड पाये हैं।

२४. मेरे भाई अश्वत्थ ने पायु को घोड़ों के साथ दस रथ और अथर्व-गोत्रीय ऋषियों को एक सौ गायें प्रदान कीं।

२५. भरद्वाज के पुत्र ने सबकी भलाई के लिए जो ये सब ऐश्वर्य ग्रहण किये थे, सृञ्जयपुत्र ने उनकी पूजा की थी।

२६. वनस्पति-निर्मित रथ, तुम्हारे सब अवयव दृढ़ हों। तुम हमारे रक्षक और मित्र बनो। तुम प्रतापी वीरों से युक्त होओ। तुम गोचर्म द्वारा बाँधे गये हो। हमें सुदृढ़ करो। तुम्हारे ऊपर आरूढ़ रथी अनायास ही संग्राम में शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो।

२७. ऋत्विको, तुम हव्य से रथ का यज्ञ करो। यह रथ स्वर्ग और पृथ्वी के सारांश से बना है, वनस्पतियों के स्थिरांश से घटित है, जल के वेग की तरह वेगवान् है, गोचर्म द्वारा ढका हुआ तथा वज्र की तरह है।

२८. हे दिव्य रथ, हमारे यज्ञ में प्रसन्न होकर हव्य ग्रहण करो; क्योंकि तुम इन्द्र के वज्रस्वरूप, मरुतों के अग्रवर्ती, मित्र के गर्भ और वरुण की नाभि हो।

२९. हे युद्ध-दुन्दुभि, अपने शब्द से स्वर्ग और धरणी को परिपूर्ण करो—स्थावर और जंगम इस बात को जानें। तुम इन्द्र और अन्य देवों के साथ होकर हमारे रिपुओं को दूर फेंक दो।

३०. दुन्दुभि, हमारे शत्रुओं को रुलाओ हमें बल दो। इतने जोर से बजो कि दुर्द्धर्ष शत्रुओं को दुःख मिले। दुन्दुभि, जो हमारा अनिष्ट करके आनन्दित होते हैं, उन्हें दूर हटाओ। तुम इन्द्र की मुष्टिका-सी हो; इसलिए हमें दृढ़ता दो।

३१. इन्द्र, हमारी सारी गायों को रोककर हमारे पास ले आओ। सबके पास घोषणा करने के लिए दुन्दुभि नियत उच्च रव करता है। हमारे सेनानी घोड़ों पर चढ़कर इकट्ठे हुए हैं। इन्द्र, हमारे रथारूढ़ सैनिक और सेनायें युद्ध में विजयी बनें।

सप्तम अध्याय समाप्त

४८ सूक्त

(अष्टम अध्याय। देवता प्रथम दस ऋकों के अग्नि, ग्यारह से पन्द्रह तक मरुद्गण, सोलह से उन्नीस तक पूषन, बीस से इक्कीस तक पृश्नि और बाईसवें मन्त्र के पृश्नि, गर्ग अथवा पृथिवी। ऋषि बृहस्पति के पुत्र शंयु। छन्द बृहती, महाबृहती, अनुष्टुप् सतोबृहती, जगती, ककुप्, उष्णिक्, गायत्री, पुरउष्णिक्, अनुष्टुप् आदि हैं।)

१. स्तोताओ, तुम प्रत्येक यज्ञ में स्तोत्र-द्वारा शक्तिमान् अग्नि की बार-बार स्तुति करो। हम उन अमर, सर्व-द्रष्टा और मित्र की तरह अनुकूल अग्निदेव की प्रशंसा करते हैं।

२. हम शक्ति-पुत्र की प्रशंसा करते हैं; क्योंकि वे वस्तुतः हमसे प्रसन्न हैं। हव्य वहन करनेवाले अग्नि को हम हव्य प्रदान करते हैं। वे संग्राम में हमारे रक्षक और समृद्धि-विधायक हों। वे हमारे पुत्रों की रक्षा करें।

३. हे अग्नि, आप ईप्सित फलों के देनेवाले जरारहित, महान् और दीप्ति से विभासित हैं। हे दीप्ताग्नि, अविच्छिन्न तेज से दीप्यमान् आप अपनी दीप्ति-द्वारा हमें भी प्रकाशित कीजिए।

४. अग्नि, तुम महान् देवों का यज्ञ किया करते हो; इसलिए हमारे यज्ञ में सदा देवों का यज्ञ करो। हमारी रक्षा के लिए अपनी बुद्धि और काय से देवों को हमारे सामने ले आओ। तुम हमें हव्य-रूप अन्न दो और स्वयं इसे स्वीकार करो।

५. तुम यज्ञ के गर्भ हो, तुम्हें सोम में मिलाने के लिए जल (वसतीवरी), अभिषव-पाषाण और अरणि-काष्ठ पुष्ट करते हैं। तुम ऋत्विकों-द्वारा बल-पूर्वक मथे जाकर पृथ्वी के अत्युन्नत स्थान में (देवयजन-देश में) प्रादुर्भूत होओ।

६. जो अग्नि दीप्ति-द्वारा स्वर्ग और पृथिवी को पूर्ण करते हैं, जो धुएँ के साथ आकाश में उठते हैं, वही दीप्तिमान् और अभीष्ट-वर्षी अग्नि अँधेरी रात का तम नष्ट करते देखे जाते हैं। दीप्तिमान् और अभीष्टवर्षी वे ही अग्नि रात्रियों के ऊपर अधिष्ठान करते हैं।

७. देव, देवों में कनिष्ठ और प्रदीप्त अग्नि, तुम हमारे भ्राता भारद्वाज-द्वारा समिध्यमान होकर हमें धन देते हुए निर्मल और प्रबल दीप्ति के साथ प्रज्वलित होओ। प्रदीप्त अग्नि, तुम प्रज्वलित होओ।

८. अग्नि, तुम सारे मनुष्यों के गृहपति हो। मैं तुम्हें सौ हेमन्तों तक प्रज्वलित करता हूँ। तुम मुझे सैकड़ों रक्षाओं-द्वारा पाप से बचाओ, जो तुम्हारे स्तोताओं को अन्न देते हैं, उन्हें भी बचाओ।

९. गृहदाता विचित्र अग्नि, तुम हमारे पास रक्षक के साथ धन भेजो; क्योंकि तुम्हीं सारे धनों के प्रेरक हो। शीघ्र ही हमारी सन्तानों को प्रतिष्ठित करो।

१०. अग्नि, समवेत और हिंसा-रहित रक्षा के द्वारा हमारे पुत्र-पौत्र का पालन करो। हमारे यहाँ से तुम देवों का क्रोध और मनुष्यों का विद्वेष हटाओ।

११. बन्धुगण, नये स्तोत्रों के साथ तुम दूध देनेवाली गाय के पास आओ। इसके पश्चात् उसे इस प्रकार छुड़ाओ, जिससे उसकी कोई हानि न होने पावे।

१२. जो सहिष्णु, स्वाधीनतेजा, मरुतों को अमरण-हेतु पयोरूप अन्न देती है, जो वेग मरुतों के सुख-साधन में तत्पर है और जो वृष्टि-जल के साथ सुख वर्षण करके अन्तरिक्ष मार्ग में घूमती है, उस धेनु के पास आओ।

१३. मरुतो, भरद्वाज के लिए विशेष दूध देनेवाली गाय और सभी के खाने के लिए यथेष्ट अन्न इन दो सुखों का दोहन करो।

१४. मरुतो, तुम इन्द्र के महान् कर्मों के अनुष्ठाता हो, वरुण की तरह बुद्धिमान् हो, अर्यमा के समान स्तुति-पात्र हो, विष्णु के समान दानशील हो। धन के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

१५. मरुद्गण सैकड़ों-हजारों तरह के धन हमें एक ही समय दें। इसके लिए मैं उच्च शब्दकारी हूँ अप्रतिहत-प्रभाव और पुष्टिकारक मरुतों के दीप्त बल की स्तुति करता हूँ। वे ही मरुद्गण हमारे पास गूढ़ धन प्रकट करें और समस्त धन सुलभ करें।

१६. हे पूषन् तुम शीघ्र मेरे पास आओ। दीप्तिमान् देव भीषण आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को पीड़ा पहुँचाओ। मैं भी तुम्हारे कान के पास आकर गुण-गान करता हूँ।

१७. पूषन् तुम कौओं (सन्तानों) के आश्रय-भूत वनस्पति को (मुझे) नष्ट नहीं करना। मेरे निन्दकों को पूर्णतः नष्ट कर दो। जैसे व्याध चिड़ियों को फँसाने के लिए जाल फैलाता है, वैसे शत्रु लोग, किसी तरह भी, मुझे नहीं बाँध सकें।

१८. पूषन् दधिपूर्ण और निश्छिद्र चर्म की तरह तुम्हारी मित्रता सदा अविच्छिन्न रहे।

१९. पूषन् तुम मनुष्यों को अतिक्रम करके अवस्थित हो। धन में देवों के बराबर हो। इसलिए संग्राम में हमारी ओर अनुकूल दृष्टि

रखना। प्राचीन समय में तुमने मनुष्यों की जैसे रक्षा की थी, वैसे ही इस समय हमारी रक्षा करो।

२०. कम्पनकारी और भली भाँति स्तुति-पात्र मरुतो, तुम्हारी जो प्रशस्त वाणी देवों और यजमानों को वाञ्छित धन देती है, वही सत्य और सूनृत वाणी हमारी पथ-प्रदर्शिका बने।

२१. जिन मरुतों के सारे कार्य दीप्तिमान् सूर्य की तरह सहसा आकाश में व्याप्त होते हैं, वे ही मरुद्गण दीप्त, शत्रु-विजयी, पूजनीय और शत्रुनाशक बल धारण करते हैं। शत्रु-नाशक बल सर्वापेक्षा प्रशस्त होता है।

२२. एक ही बार स्वर्ग उत्पन्न हुआ और एक ही बार पृथिवी। एक ही बार पृश्नि (पृश्नि) या मरुतों की माता गाय से दूध दुहा गया है। इनके समय और कुछ उत्पन्न नहीं हुआ।

४९ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि भरद्वाज के पुत्र ऋजिश्वा।
छन्द शक्वरी और त्रिष्टुप्।)

१. मैं नये स्तोत्रों के द्वारा देवों और स्तोताओं के सुखाभिलाषी मित्र और वरुण की स्तुति करता हूँ। अतीव बली मित्र, वरुण और अग्नि इस यज्ञ में आवें और हमारे स्तोत्र सुनें।

२. जो अग्नि प्रत्येक व्यक्ति के यज्ञ में पूजा-पात्र हैं, जो कार्य करके अहंकार नहीं करते, जो स्वर्ग और पृथिवी नामक दो कन्याओं के स्वामी हैं, जो स्तोता के पुत्र-भूत शक्ति-पुत्र हैं और जो यज्ञ के प्रदीप्त केतु-रूप हैं, मैं उन्हीं अग्नि का यज्ञ करने के लिए यजमान को उत्तेजित करता हूँ।

३. दीप्तिमान् सूर्य की विभिन्न-रूपिणी दो कन्यायें (दिन और रात्रि) हैं। इनमें एक नक्षत्र-समूह और एक सूर्य के द्वारा समुज्ज्वल है। पर-

स्पर-विरोधी, पृथक् रूप से संचरण-शील, पवित्रता-विधायक और हमारे स्तुति-भाजन ये दोनों हमारा स्तोत्र सुनकर प्रसन्न हों।

४. हमारी महती स्तुति महाधन-सम्पन्न, अखिल लोकों के वन्दनीय और रथ के पूरक वायु के सामने उपस्थित हों। हे सम्यक् यज्ञ-पात्र, समुज्ज्वल रथ पर आरूढ़, जुते हुए अश्वों के अधिपति और दूरदर्शी मरुत्, तुम मेधावी स्तोता को धन के द्वारा संवर्द्धित करो।

५. जो रथ सोचने के साथ अश्व से जुत जाता है, अश्विनीकुमारों का वही समुज्ज्वल रथ दीप्ति-द्वारा मेरी देह को आच्छादित करे। नेता अश्विनीकुमारो, रथ पर चढ़कर, अपने स्तोता का मनोरथ पूर्ण करने के लिए उसके घर जाना।

६. वर्षा करनेवाले पर्जन्य और वायु, अन्तरिक्ष से तुम प्राप्त जल भेजो। ज्ञान-सम्पन्न, स्तोत्र सुननेवाले और संसार-स्थापक मरुतो, जिसके स्तोत्र से तुम प्रसन्न होते हो, उसके सारे प्राणियों को समृद्ध करते हो।

७. पवित्रता-कारिणी, मनोहरा, विचित्र-गमना और वीर-पत्नी सरस्वती, हमारे यागादि कर्मों का निर्वाह करें। वे देव-पत्नियों के साथ प्रसन्न होकर स्तोता को छेद-रहित, शीत और वायु के लिए दुर्द्धर्ष गृह और सुख प्रदान करें।

८. स्तोता, वाञ्छित फल के वश में आकर सारे मार्ग के अधिपति पूजनीय पूषा के पास, स्तोत्र के साथ, उपस्थित होओ। वे हमें सोने की सींगवाली गायें दें। पूषा हमारे सारे कार्य पूर्ण करें।

९. देवों को बुलानेवाले और दीप्तिमान् अग्नि त्वष्टा का यज्ञ करें। त्वष्टा सबके आदि विभाजक, प्रसिद्ध अन्नदाता, शोभन-पाणि, दान-शील महान् गृहस्थों के यजनीय और अनायास आह्वान के योग्य हैं।

१०. स्तोता, दिन में इन सारे स्तोत्रों के द्वारा भुवन-पालक रुद्र को वर्द्धित करो और रात्रि में रुद्र की संवर्द्धना करो।

११. नित्य तरुण, ज्ञान-सम्पन्न और पूजनीय मरुद्गण, जहाँ यजमान स्तोत्र करता है, वहाँ आओ। नेताओ, तुम इसी प्रकार समृद्ध होकर और चलनेवाली रश्मियों की तरह व्याप्त होकर वृष्टि-द्वारा विरल-पादप वनों को तृप्त करो।

१२. जैसे पशु-पालक गोयूथ को शीघ्र परिचालित करता है, वैसे ही पराक्रान्त, बली और द्रुतगामी मरुतों के पास शीघ्र स्तोत्र प्रेरित करो। जैसे अन्तरिक्ष नक्षत्र-मण्डल-द्वारा संश्लिष्ट है, वैसे ही वे ही मरुद्गण मेधावी स्तोता के सुश्राव्य स्तोत्र-द्वारा अपनी देह को संश्लिष्ट करें।

१३. जिन विष्णु ने उपद्रुत मनु के लिए त्रिपाद पराक्रम के द्वारा पार्थिव लोकों को नाप डाला था, वही तुम्हारे द्वारा प्रदत्त गृह में निवास करें और हम धन, देह और पुत्र-द्वारा अनुभव करें।

१४. हमारे मन्त्रों-द्वारा स्तूयमान अहिर्बुध्न्य, पर्वत और सविता हमें जल के साथ अन्न दें। दानशील विश्वदेवगण हमें ओषधि के साथ वही अन्न दें। सुबुद्धिदेव भग हमें धन के लिए प्रेरित करें।

१५. विश्वदेवगण, तुम हमें रथ-युक्त और असंख्य अनुचरों के साथ अनेक पुत्रों से युक्त यज्ञ का साधन-भूत गृह और अक्षय्य अन्न प्रदान करो, जिसके द्वारा हम स्पर्द्धा करके शत्रुओं और देवशून्य सैन्यों को पराजित करेंगे और देव-भक्तों को आश्रय प्रदान करने में समर्थ होंगे।

५० सूक्त

(पञ्चम अनुवाक। देवता नाना। ऋषि ऋजिश्वा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवो, मैं सुख के लिए स्तोत्र के साथ अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, शत्रु-हन्ता और सेव्य, अर्यमा, सविता, भग और समस्त रक्षक देवों को बुलाते हैं।

२. दीप्तिसम्पन्न सूर्य, दक्ष से सम्भूत शोभन-दीप्तिशाली देवों को हमारे अनुकूल करो। द्विजन्मा (स्वर्ग और पृथिवी से उत्पन्न) देवगण यज्ञ-प्रिय, सत्यवादी, धन-सम्पन्न, यागार्ह और अग्नि-जिह्व होते हैं।

३. स्वर्ग और पृथ्वी तुम अधिक बल दो। स्वर्ग और पृथ्वी, हमारी स्वतन्त्रता के लिए विशाल गृह हमें दो। ऐसा उपाय करो कि हमारे पास अतुल ऐश्वर्य हो जाय। सदय देव-द्वय, हमारे घर से पाप को हटाओ।

४ गृह-दाता और अजेय रुद्र पुत्रगण इस समय बुलाये जाकर हमारे पास आवें। ये महान् और क्षुद्र क्लेश के समय हमें सहायता देंगे; इसलिए हम मरुतों को बुलाते हैं।

५. जिन मरुतों के साथ दीप्तिमान् स्वर्ग और पृथ्वी संश्लिष्ट हैं, जिन मरुतों की सेवा, धन के द्वारा, स्तोताओं को समृद्ध करनेवाले पूषा करते हैं, ऐसे तुम, मरुतो, जिस समय हमारा आह्वान सुनकर आते हो, उस समय तुम्हारे विभिन्न मार्गों में अवस्थित प्राणी काँप जाते हैं।

६. स्तोता, अभिनव स्तुति-द्वारा स्तुति-पात्र वीर इन्द्र की स्तुति करो। इस प्रकार स्तुति किये जाने पर इन्द्र हमारा आह्वान सुनें; हमें प्रभूत अन्न दें।

७. वारि-राशि तुम मानव-हितैषी हो; इसलिए हमारे पुत्र-पौत्रों के लिए अनिष्ट-घातक और रक्षक अन्न प्रदान करो। तुम सारे उपद्रवों को शान्त और विदूरित करो। तुम माताओं की अपेक्षा श्रेष्ठ चिकित्सक हो। तुम स्थावर-जंगम-रूप संसार के उत्पादक हो।

८. जो उषा-मुख की तरह यजमान के पास अभिलषित धन प्रकट करते हैं, वे ही रक्षक, हिरण्य-पाणि और पूजनीय सविता हमारे पास आवें।

९. शक्ति-पुत्र अग्नि, हमारे यज्ञ में आज देवों को ले आओ। मैं सदा तुम्हारी उदारता का अनुभव करूँ। देव, तुम्हारी रक्षा के कारण मैं शोभन पुत्र-पौत्र आदि से युक्त बनूँ।

१०. हे प्राज्ञ अश्विनीकुमारो, तुम शीघ्र परिचर्यावाले मेरे स्तोत्र के पास आओ। जैसे अन्धकार से तुमने अत्रि ऋषि को छुड़ाया था, वैसे ही हमें भी छुड़ाओ। नेतृद्वय तुम हमें युद्ध-दुःख से बचाओ।

११. देवो, तुम हमें दीप्ति-युक्त, बलकारी, पुत्रादि-सम्पन्न और सुप्रसिद्ध धन प्रदान करो। स्वर्गीय (आदित्यगण), पार्थिव (वसुगण), गोजात (पृश्नि-पुत्र मरुद्‌गण) और जलजात (रुद्रगण), हमारे मनोरथ को पूर्ण कर सुखी करो।

१२. रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, वाज और विधाता-समान-रूप से प्रसन्न होकर हमें सुखी करें। पर्जन्य और वायु हमारे अन्न को बढ़ावें।

१३. प्रसिद्ध देव सविता, भग और वारि-राशि के पौत्र दानशील अग्नि हमारी रक्षा करें। देवों और देव-स्त्रियों के साथ समान-रूप से प्रसन्न हुए त्वष्टा, देवों के साथ समान-प्रसन्न स्वर्ग तथा समुद्रों के साथ समान-प्रसन्न पृथिवी हमारी रक्षा करें।

१४. अहिर्बुध्न, अज-एक-पाद, पृथिवी और समुद्र हमारे स्तोत्र सुनें। यज्ञ के समृद्धिकर्त्ता, हमारे द्वारा, आहूत और स्तुत, मन्त्र-प्रतिपाद्य और मेधावी ऋषियों-द्वारा स्तूयमान विश्वदेवगण हमारी रक्षा करें।

१५. भरद्वाज-गोत्रीय मेरे पुत्र इसी प्रकार के पूजा-साधक स्तोत्र-द्वारा देवों की स्तुति करते हैं। यज्ञार्ह देवो, तुम हव्य-द्वारा हुत, गृहदाता और अजेय हो। तुम देव-पत्नियों के साथ नियत पूजित होते हो।

५१ सूक्त

(देवता नाना। ऋषि ऋजिश्वा। छन्द उष्णिक, अनुष्टुप और त्रिष्टुप्।)

१. सूर्य की प्रसिद्ध, प्रकाशक, विस्तृत तथा मित्र और वरुण की प्रिय, अप्रतिहत, निर्मल और मनोहर दीप्ति प्रकाशित होकर अन्तरिक्ष में भूषण की तरह शोभा पा रही है।

२. जो तीनों ज्ञातव्य भुवनों को जानते हैं, जो ज्ञानशाली हैं और देवों के दुर्ज्ञेय जन्म को जानते हैं, वही सूर्य मनुष्यों के सत् और असत्

कर्मों का परिदर्शन करते हैं और स्वामी होकर मानवों के अनुकूल मनो-रथ को पूर्ण करते हैं।

३. मैं यज्ञ-रक्षक और शोभन-जन्मा अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमा और भग की स्तुति करता हूँ। जिनके कार्य अप्रतिहत हैं, जो धनशाली और संसार को पवित्र करनेवाली हैं, उनके यश का मैं कीर्तन करता हूँ।

४. हे हिंसकों को फेंकनेवाले, साधुओं के पालक, अबाध-प्रभाव, शक्तिमान् अधीश्वर, शोभन-गृह-दाता, नित्य तरुण, अतीव ऐश्वर्यशाली स्वर्ग के नेता अदिति-पुत्रो, मैं अदिति की शरण लेता हूँ; क्योंकि वह मेरी परिचर्या चाहती है।

५. हे पिता स्वर्ग, माता पृथिवी, भ्राता अग्नि और वसुओ, तुम हमें सुखी करो। हे अदिति के पुत्रो और अदिति, इकट्ठे होकर तुम हमें अधिक सुख दो।

६. यागयोग्य देवो, तुम हमें वृक और वृकी (अरण्य-कुक्कुर और कुक्करी अथवा दस्यु और उसकी पत्नी) के हाथ में नहीं जाने देना। तुम हमारी देह, बल और वाक्य के संचालक हो।

७. देवो, हम तुम्हारे ही हैं। हम दूसरे के पापी क्लेश का अनुभव न करें। वसुओ, जिसका तुम निषेध करते हो, उसका अनुष्ठान हम न करें। विश्वदेवगण, तुम विश्व के अधिपति हो; इसलिए ऐसा उपाय करो कि शत्रु अपनी देह का अनिष्ट कर डाले।

८. नमस्कार सबसे बड़ी वस्तु है; इसलिए मैं नमस्कार करता हूँ। नमस्कार ही स्वर्ग और पृथिवी को धारण करता है; इसलिए मैं देवों को नमस्कार करता हूँ। देवता लोग नमस्कार के वशीभूत हैं; इसलिए मैं नमस्कार-द्वारा किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करता हूँ।

९. यज्ञ-पाल देवो, मैं नमस्कार के साथ तुम लोगों के पास प्रणत हो रहा हूँ; क्योंकि तुम यज्ञ के नेता, विशुद्ध बल से युक्त, देव-यजन-गृह के निवासी, अजेय, बहुदर्शी, अधिनायक और महान् हो।

१०. वे अच्छी तरह से दीप्ति-सम्पन्न हैं। वे ही हमारे सारे पापों का नाश करें। वरुण, मित्र और अग्नि शोभन बलवाले, सत्यकर्मा और स्तोत्र-निरत व्यक्तियों के एकान्त पक्षपाती हैं।

११. इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन (देव, गन्धर्व आदि) हमारी वास-भूमि को वर्द्धित करें। वे हमारे सुखदाता, अन्नदाता, सत्पथ-प्रदर्शक, शोभन रक्षा करनेवाले और आश्रयदाता हों।

१२. देवो, भरद्वाज-गोत्रीय यह स्तोता शीघ्र ही एक स्वर्गीय निवास (वा दीप्तिमान् गृह) प्राप्त करे; क्योंकि वह तुम्हारी कृपा चाहता है। हव्यदाता ऋषि, अन्य यजमानों के साथ, धनार्थी होकर देवों की स्तुति करते हैं।

१३. अग्नि, तुम कुटिल, पापी और दुष्ट शत्रु को दूर करो। हे साधुओं के रक्षक, हमें सुख दो।

१४. हे सोम, हमारे ये अभिषव पोषण तुम्हारी मित्रता चाहते हैं। तुम भोजन-निपुण पणि का संहार करो; क्योंकि वह वास्तविक दस्यु है।

१५. इन्द्रादि देवो, तुम दान-शील और दीप्ति-शाली हो। मार्ग में तुम हमारे रक्षक और सुख-दाता बनो।

१६. हम उस पवित्र और सरल मार्ग में आगये हैं, जिसमें जाने पर शत्रु का परिहार और धन का लाभ होता है।

५२ सूक्त

(देवता नाना। ऋषि ऋजिश्वा। छन्द त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती।)

१. मैं इसे (ऋजिश्वा के यज्ञ को) स्वर्गीय अथवा देवों के उपयुक्त नहीं समझता। यह मेरे द्वारा अनुष्ठित यज्ञ अथवा दूसरों द्वारा सम्पादित यज्ञ की तुलना करेगा, यह भी नहीं समझता। इसलिए सारे महान् पर्वत उसको (अतियाज ऋषि को) पीड़ित करें। अतियाज के ऋत्विक् भी अत्यन्त दीनता प्राप्त करें।

२. मरुतो, जो व्यक्ति तुमको हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है और मेरे किये स्तोत्र की निन्दा करता है, सारी शक्तियाँ उसका अनिष्टकारिणी बनें और स्वर्ग उस ब्राह्मण-द्वेषी को दग्ध करे ।

३. सोम, लोग तुम्हें क्यों मन्त्र-रक्षक कहते हैं ? और, क्यों तुम्हें निन्दा से हमें उद्धार करनेवाला बताया जाता है ? शत्रुओं द्वारा हमारे निन्दित होने पर तुम क्यों निरपेक्ष भाव से देखते रहते हो ? ब्राह्मण-विद्वेषी के प्रति अपना सन्तापक आयुध फेंको ।

४. आविर्भूत उषायें मेरी रक्षा करें । सारी स्फीत नदियाँ मेरी रक्षा करें । निश्चल पर्वत मेरी रक्षा करें । देव-यजन-काल में यज्ञ में उपस्थित पितर और देवता मेरी रक्षा करें ।

५. हम सदा स्वतन्त्र-चित्त हों । हम सदा उदयोन्मुख सूर्य के दर्शन करें । देवों के पास हमारा हव्य ढोनेवाले यज्ञ के अधिष्ठाता और महैश्वर्यशाली अग्नि हमें उक्त प्रकार से बनावें ।

६. इन्द्र और वारि-राशि के द्वारा स्फीत सरस्वती नदी, रक्षा के साथ, हमारे पास आवें । ओषधियों के साथ पर्जन्य हमारे लिए सुख-दाता हों । पिता की तरह अग्नि अनायास स्तुत्य और आह्वान-योग्य हों ।

७. विश्वदेवगण, आओ, मेरे आह्वान को सुनो और बिछे हुए कुशों पर बैठो ।

८. देवो, जो व्यक्ति घृत में मिले हव्य के द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, उसके पास तुम सब आओ ।

९. जो अमर के पुत्र हैं, वही विश्वदेवगण हमारा स्तोत्र सुनें और हमें सुख दें ।

१०. यज्ञ के समृद्धिकारी और यथासमय स्तोत्र-श्रवणकारी विश्वदेवगण, अच्छी तरह से अपने-अपने उपयुक्त दुग्ध ग्रहण करो ।

११. मरुतों के साथ इन्द्र, त्वष्टा के साथ मित्र और अर्यमा हमारे स्तोत्र और समस्त हव्य को ग्रहण करें ।

१२. देवों को बुलानेवाले अग्नि, देवों में जो महायोग्य हैं, उन्हें जानकर उनकी मर्यादा के अनुसार हमारी इस यज्ञ-क्रिया का सम्पादन करो।

१३. विश्वदेवगण, तुम अन्तरिक्ष, भूलोक वा स्वर्ग में रहते हो। हमारा आह्वान सुनो। अग्नि-रूप जिह्वा-द्वारा वा किसी भी प्रकार से हमारे इस यज्ञ को ग्रहण करो। सब लोग इन बिछे कुशों पर बैठकर और सोम-रस पान कर उल्लसित होओ।

१४. यज्ञार्ह विश्वदेवगण, स्वर्ग, पृथिवी और जल-राशि के पौत्र अग्नि हमारे स्तोत्र को सुनें। देवो, जो स्तोत्र तुम्हें अग्राह्य है, उसका हम उच्चारण न करें। हम तुम्हारे निकटस्थ होकर और सुख प्राप्त कर उल्लसित हों।

१५. पृथिवी, स्वर्ग अथवा अन्तरिक्ष में प्रादुर्भूत, महान् और संहारक शक्ति से युक्त देवगण दिन-रात हमें और हमारी सन्ततियों को अन्न दें।

१६. अग्नि और पर्जन्य, हमारे यज्ञ-कार्य की रक्षा करो। तुम अनायास आह्वान के योग्य हो; इसलिए इस यज्ञ में हमारा स्तोत्र सुनो। तुममें से एक व्यक्ति अन्न देते हैं और दूसरे गर्भ उत्पन्न करते हैं। इसलिए तुम हमें सन्तति के साथ अन्न दो।

१७. पूजनीय विश्वदेवगण, आज हमारे इस यज्ञ में, कुश बिछने पर, अग्नि प्रज्वलित होने पर और मेरे स्तोत्रोच्चारण और नमस्कार के साथ तुम्हारी सेवा करने पर हव्य-द्वारा तुम तृप्ति प्राप्त करो।

५३ सूक्त

(देवता पूषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. मार्ग-पति पूषन्, कर्मानुष्ठान और अन्न-लाभ के लिए रण-स्थल में रथ की तरह हम तुम्हें अपने अभिमुख करते हैं।

२. पूषन्, हमारे यहाँ मानव-हितैषी, धन-दान में मुक्तहस्त और विशुद्ध दानवाला एक गृहस्थ भेजो।

३. दीप्ति-सम्पन्न पूषन्, कृपण को दान देने के लिए उत्तेजित करो और उसके हृदय को कोमल करो।

४. प्रचण्ड-बलशाली पूषन्, अन्न-लाभ के लिए सारे पथ परिष्कृत करो। विघ्नकारी चोर आदि का संहार करो और हमारे अनुष्ठानों को सफल करो।

५. ज्ञानी पूषन्, सूक्ष्म लोहाग्रदण्ड (आरा) से पणियों या लुब्धकों का हृदय विद्ध करो और उन्हें हमारे वश में करो।

६. पूषन्, सूक्ष्म लोहाग्रदण्ड (प्रतोद या आरा) से पणि या चोर का हृदय चीरो। उसके हृदय में सद्भावना भरो और उसे मेरे वश में करो।

७. ज्ञानी पूषन्, चोरों के हृदयों को रेखाङ्कित करो। उनके हृदयों की कठोरता को भली भाँति कम करो और उन्हें हमारे वश में करो।

८. दीप्ति-सम्पन्न पूषन्, तुम अन्न-प्रेरक प्रतोद धारण करो और उसके द्वारा सारे लोभी व्यक्तियों का हृदय रेखाङ्कित करो एवम् उसकी कठोरता शिथिल करो।

९. दीप्तिशाली पूषन्, तुम जिस अस्त्र से धेनुओं और पशुओं को परिचालित करते हो, तुम्हारे उसी अस्त्र से हम उपकार की प्रार्थना करते हैं।

१०. पूषन्, हमारे उपभोग के लिए हमारे याग-कर्म को गौ, अश्व, अन्न और परिचारकों का उत्पादन करो।

५४ सूक्त

(देवता पूषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द गायत्री।)

१. पूषन्, तुम हमें एक ऐसे विलक्षण व्यक्ति से मिलाओ, जो हमें वस्तुतः पथ-प्रदर्शन करावेगा और जो हमारे अपहृत द्रव्य को मिला देगा।

२. हम पूषा की कृपा से ऐसे व्यक्ति से मिलें, जो सारे गृह में दिखावेगा और कहेगा कि ये ही तुम्हारे खोये हुए पशु हैं।

३. पूषा का आयुध-चक्र विनष्ट नहीं होता। इस चक्र का कोश हीन नहीं होता और इसकी धार कुण्ठित नहीं होती।

४. जो व्यक्ति हव्य-द्वारा पूषा की सेवा करता है, उसका पूषा जरा भी अपकार नहीं करते और प्रधानतः वही व्यक्ति धन पाता भी है।

५. रक्षा के लिए हमारी गायों का पूषा अनुसरण करें। वे हमारे अश्वों की रक्षा करें। वे हमें अन्न दें।

६. पूषन्, रक्षा के लिए सोम का अभिषव करनेवाले यजमान की गायों का अनुसरण करो और स्तोत्र उच्चारण करनेवाली हमारी गायों का भी अनुसरण करो।

७. पूषन्, हमारा गोधन नष्ट न करने पावे। यह व्याघ्रादि-द्वारा निहित न होने पावे। यह कुएँ में न गिरे। इसलिए तुम अहिंसित धेनुओं के साथ सायंकाल आओ।

८. हमारे स्तोत्रों को सुननेवाले, दारिद्र्य-नाशक, अविनष्ट-धन और सारे संसार के अधिपति पूषा के पास हम धन की प्रार्थना करते हैं।

९. पूषन्, जब तक हम तुम्हारी उपासना में लगे रहते हैं, तब तक हम कभी मारे न जायें। इस समय हम तुम्हारी स्तुति करके वैसे ही हों।

१०. पूषा अपने दाहिने हाथ से हमारे गोधन को विपथगामी होने से बचावें। वे हमारे नष्ट गोधन को फिर ले आवें।

५५ सूक्त

(देवता पूषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द गायत्री।)

१. हे दीप्ति-सम्पन्न प्रजापतिपुत्र पूषन्, तुम्हारा स्तोता मेरे पास आवे। हम दोनों मिलें। तुम हमारे यज्ञ के नेता बनो।

२. हम अपने रथि-श्रेष्ठ, चूड़ावान् (कपर्दी), अतुल ऐश्वर्य के अधिपति और अपने मित्र पूषा के पास धन की प्रार्थना करते हैं।

३. दीप्ति-शाली पूषन् तुम धन के प्रवाह हो, धन की राशि हो और छाग ही तुम्हारे अश्व का कार्य करता है। तुम प्रत्येक स्तोता के मित्र हो।

४. आज हम उन्हीं छाग वाहन और अन्नयुक्त सूर्य वा पूषा की स्तुति करते हैं, जिन्हें लोग भगिनी या उषा का प्रणयी अथवा जार कहते हैं।

५. रात्रि-रूपिणी माता के पति पूषा की हम स्तुति करते हैं। अपनी भगिनी (उषा) के जार पूषा (सूर्य) हमारा स्तोत्र सुनें। इन्द्र के सहोदर पूषा हमारे मित्र हों।

६. रथ में नियुक्त छागगण स्तोताओं के आश्रय पूषा का रथ ढोते हुए उन्हें यहाँ ले आवें।

५६ सूक्त

(देवता पूषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. जो पूषा को घी-मिले जौ के सत्तू का भोगी कहकर उनकी स्तुति करता है, उसे अन्य देवों की स्तुति नहीं करनी पड़ती।

२. रथि-श्रेष्ठ, साधुओं के रक्षक और सुप्रसिद्ध देव इन्द्र अपने मित्र पूषा की सहायता से शत्रु-संहार करते हैं।

३. चालक और रथि-श्रेष्ठ पूषा सूर्य के हिरणमय रथ का चक्र नियत परिचालित करते हैं।

४. हे बहुलोक-वन्दनीय, मनोहर-मूर्ति और ज्ञानी पूषन्, रोज हम जिस धन को लक्ष्य करके तुम्हारी स्तुति करते हैं, उसी वांच्छित धन को हमें प्रदान करो।

५. गोकामी इन समस्त मनुष्यों को गो-लाभ कराओ। पूषन्, तुमने दूर देश में भी प्रसिद्धि पाई है।

६. पूषन्, हम आज और कल के यज्ञों के सम्पादन के लिए तुम्हारी उसी रक्षा को चाहते हैं। वह रक्षा पाप से दूर और धन के पास है।

५७ सूक्त

(देवता इन्द्र और पूषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द गायत्री।)

१. हे इन्द्र और पूषन्, अपने मंगल के लिए आज हम तुम्हारी मित्रता और अन्न की प्राप्ति के लिए तुम्हें बुलाते हैं।

२. तुममें से एक (इन्द्र) पात्र-स्थित अभिसुत सोम का पान करने के लिए जाते हैं और दूसरे (पूषा) जौ का सत्तू खाने की इच्छा करते हैं।

३. एक के वाहन छाग हैं और दूसरे के वाहन स्थूल-काय दो अश्व हैं। दूसरे (इन्द्र) इन्हीं दोनों अश्वों के साथ वृत्रासुर का संहार करते हैं।

४. जिस समय अतिशय वर्षक इन्द्र महावृष्टि करते हैं उस समय इनके सहायक पूषा होते हैं।

५. हम वृक्ष की सुदृढ़ शाखा की तरह पूषा और इन्द्र की कृपा-वृद्धि के ऊपर निर्भर रहते हैं।

६. जैसे सारथि रश्मि (लगाम) खींचता है, वैसे ही हम भी, अपने प्रकृष्ट कल्याण के लिए, पूषा और इन्द्र को अपने पास खींचते हैं।

५८ सूक्त

(देवता पूषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. पूषन्, तुम्हारा यह रूप (दिन) शुक्लवर्ण है और अन्य रूप (रात्रि) केवल यजनीय है। इस प्रकार दिन और रात्रि के रूप विभिन्न प्रकार के हैं। तुम सूर्य की तरह प्रकाशमान हो; क्योंकि तुम अभी दाता हो और सब प्रकार के ज्ञान धारण करते हो। इस समय तुम्हारा कल्याणवाही दान प्रकाशित हो।

२. जो छाग-वाहन और पशु-पालक हैं, जिनका गृह अन्न से परिपूर्ण है, जो स्तोताओं के प्रीतिवाला हैं, जो अखिल भुवनों के ऊपर स्थापित हैं; वही देव (पूषा) सूर्यरूप से सारे प्राणियों को प्रकाशित करके और अपने हाथ से आरा उठाकर नभोमण्डल में जाते हैं।

३. पूषन् तुम्हारी जो सारी हिरणमयी नौकायें समुद्र-मध्यस्थित अन्तरिक्ष में चलती हैं, उनके द्वारा तुम सूर्य का दूत-कार्य करते हो। तुम हव्यरूप अन्न चाहते हो। स्तोता लोग तुम्हें स्वेच्छा से दिये पशु आदि के द्वारा वशीभूत करते हैं।

४. पूषा स्वर्ग और पृथिवी के शोभन बन्धु हैं, अन्न के अधिपति हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, मनोहर-मूर्त्ति हैं। वे बलशाली, स्वेच्छा से दिये पशु आदि के द्वारा प्रसन्नता के योग्य और शोभन गमन-कर्त्ता हैं। उन्हें देवों ने सूर्य की स्त्री के पास भेजा था।

५९ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द अनुष्टुप् और बृहती।)

१. इन्द्र और अग्नि, तुमने जो वीरता प्रकट की है, उसी वीरता का बखान हम, सोमरस के अभिषुत होने पर, बड़े आग्रह के साथ करते हैं। देवद्वेष्टा असुर तुम्हारे द्वारा मारे गये हैं और तुम लोग अक्षत हो।

२. इन्द्र और अग्नि, तुम लोगों को जो जन्म-माहात्म्य प्रतिपादित होता है, वह सब यथार्थ और अतीव प्रशस्य है। तुम दोनों के एक ही पिता हैं। तुम यमज भाई हो और तुम्हारी माता सर्वत्र विद्यमान हैं।

३. इन्द्र और अग्नि, जैसे द्रुतगामी दोनों अश्व भक्षणीय घास की ओर जाते हैं, तुम भी उसी तरह, सोमरस के अभिषुत होने पर, एक साथ जाते हो। अपनी रक्षा के लिए आज हम वज्रधर और दानादि गुण से युक्त इन्द्र और अग्नि को इस यज्ञ में बुलाते हैं।

४. यज्ञ के समृद्धिदाता इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र प्रसिद्ध है। जो व्यक्ति सोमरस के अभिषुत होने पर प्रेम-रहित स्तोत्र द्वारा, कुत्सित रूप से, तुम्हारी स्तुति करता है, उसका दिया सोम तुम नहीं छूते।

५. दीप्ति-सम्पन्न इन्द्र और अग्नि, जिस समय तुममें से सूर्यात्मक इन्द्र नाना प्रकार का गमन करनेवाले अश्वों को जोतकर, अग्नि के साथ एक रथ पर चढ़कर, जाते हैं, उस समय कौन मनुष्य तुम्हारे इस कार्य का विचार करेगा या जानेगा? (कोई भी नहीं)

६. हे इन्द्र और अग्नि, पाद-रहित यही उषा प्राणियों के शिरोदेश को उत्तेजित करके और उनकी जिह्वाओं से उच्च शब्द कराकर

पादसम्पन्न और निद्रित जीवों की अभिमुख वर्त्तिनी हो रही हैं और इसी प्रकार तीस पद (मुहूर्त्त) अतिक्रम करती हैं।

७. इन्द्र और अग्नि, योद्धा लोग दोनों हाथों से धनुष फैलाते हैं। इस महासंग्राम में, गौओं के अनुसन्धान के समय, हमें नहीं छोड़ना।

८. इन्द्र और अग्नि, हनन-परायण और आक्रमण-कर्त्ता शत्रु हमें पीड़ित कर रहे हैं। उन्हें तुम दूर करो और उन्हें सूर्य-दर्शन से भी वञ्चित करो (विनष्ट करो)।

९. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग दिव्य और पार्थिव—सारे धनों के अधिपति हो; इसलिए इस यज्ञ में हमें जीवन-पोषक सारे धन दो।

१०. स्तोत्र-द्वारा आकर्षणीय इन्द्र और अग्नि, हमारे इस सोमरस का पान करने के लिए आओ; क्योंकि तुम लोग स्तोत्रों और उपासनाओं से युक्त आह्वान सुनते हो।

६० सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती और अनुष्टुप्।)

१. जो विशाल धन के स्वामी हैं, जो बलात् शत्रुहन्ता हैं और जो अन्नाभिलाषी इन्द्र और अग्नि की सेवा करते हैं, वे शत्रु-संहार और अन्न-लाभ करते हैं।

२. इन्द्र और अग्नि, तुमने अपहृत धेनुओं, वारि-राशि, सूर्य और उषा के लिए युद्ध किया था। इन्द्र, तुमने दिशाओं, सूर्य, उषाओं, विचित्र जल और गौओं को संसार के साथ योजित किया है। हे अश्वों के अधिपति अग्नि, तुमने भी ऐसे कार्य किये हैं।

३. हे वृत्र-हन्ता इन्द्र और अग्नि, तुम हमारे हव्यान्न-द्वारा परिपुष्ट होने के लिए शत्रु-नाशक बल के साथ हमारे सामने आओ। इन्द्र और अग्नि, तुम लोग अनिन्द्य और अत्युत्कृष्ट धन के साथ हमारे पास आविर्भूत होओ।

४. प्राचीन समय में ऋषियों-द्वारा जिनके सारे वीर-कार्य कीर्त्तित हुए हैं, मैं उन्हीं इन्द्र और अग्नि को बुलाता हूँ। वे स्तोताओं की हिंसा नहीं करते।

५. हम प्रचण्ड-बलशाली, शत्रुहन्ता इन्द्र और अग्नि को बुलाते हैं। वे हमें ऐसे युद्ध में कृतकार्य करके सुखी बनावें।

६. साधुओं के रक्षक इन्द्र और अग्नि, धार्मिकों और अधार्मिकों-द्वारा कृत समस्त उपद्रवों का निवारण करते हैं। उन्होंने सारे विद्वेषियों का संहार किया है।

७. इन्द्र और अग्नि, ये स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे सुखदाता इन्द्र और अग्नि, तुम इस अभिषुत सोम को पियो।

८. नेता इन्द्र और अग्नि, बहु-लोग-वाञ्छनीय और हव्यदाता के लिए उत्पन्न जो तुम्हारे घोड़े हैं, उन सब पर चढ़कर आओ।

९. नेता इन्द्र और अग्नि, इस सवन में अभिषुत सोमरस का पान करने के लिए आओ।

१०. स्तोता, जो अग्नि अपनी शिखा-द्वारा समस्त वनों को ढक लेते हैं और ज्वाला-रूप जिह्वा-द्वारा उन्हें काले कर देते हैं, तुम उन्हीं अग्नि की स्तुति करो।

११. जो मनुष्य प्रज्वलित अग्नि में इन्द्र के लिए सुखकर हव्य प्रदान करते हैं, इन्द्र उन्हीं व्यक्ति के दीप्ति-सम्पन्न अन्न के लिए कल्याणकर वारि-वर्षण करते हैं।

१२. इन्द्र और अग्नि, हमें बलकर अन्न दो और हमारे हव्य को बलवान् करने के लिए हमें वेगवान् अश्व दो।

१३. हे इन्द्र और अग्नि, होम-द्वारा तुम्हें अनुकूल करने के लिए मैं तुम दोनों को बुलाता हूँ। हव्य-द्वारा तुरत तृप्ति करने के लिए मैं तुम दोनों को बुलाता हूँ। तुम दोनों अन्न और धन को देनेवाले हो; इसलिए मैं अन्न-लाभ के लिए दोनों को बुलाता हूँ।

१४. इन्द्र और अग्नि, तुम गौओं, अश्वों और विपुल धन के साथ हमारे सामने आओ। हम मित्रता के लिए मित्रभूत, दानादि गुणों से युक्त और सुख-प्रदाता इन्द्र और अग्नि का आह्वान करते हैं।

१५. इन्द्र और अग्नि, तुम सोम का अभिषव करनेवाले यजमान का आह्वान सुनो। हव्य की इच्छा करो, आओ और मधुर सोमरस का पान करो।

६१ सूक्त

(देवता सरस्वती। ऋषि भरद्वाज। छन्द जगती त्रिष्टुप् और गायत्री।)

१. इन्हीं सरस्वती देवी ने हव्यदाता वध्र्यश्व को वेगवान् तथा ऋण-मोचक दिवोदास नाम का एक पुत्र दिया है। उन्होंने बहुल आत्म-तर्पक तथा दान-विमुख पणि का संस्कार किया। सरस्वति, तुम्हारे ये दान बहुत महान् हैं।

२. ये सरस्वती (नदी) मृणाल-खननकारी की तरह प्रबल और वेगवान् तरंगों के साथ पर्वततटों को भग्न करती हैं। रक्षा के लिए हम स्तुति और यज्ञ द्वारा दोनों तटों का विनाश करनेवाली सरस्वती की परिचर्या करते हैं।

३. सरस्वति, तुमने देव-निन्दकों का वध किया है और सर्वव्यापी वृसय या त्वष्टा के पुत्र का संहार किया है अथवा तुम्हारी सहायता से इन्द्र ने संहार किया है। अन्न-सम्पन्ना सरस्वति, तुमने मनुष्यों को भूमि-प्रदान किया है और उनके लिए वारि-वर्षण भी किया है।

४. दानशालिनी, अन्न-युक्ता और स्तोताओं की रक्षाकारिणी सरस्वती अन्न द्वारा भली भाँति हमारी तृप्ति करें।

५. देवी सरस्वति, जो व्यक्ति इन्द्र की तरह तुम्हारी स्तुति करता है, वही व्यक्ति जिस समय धन-प्राप्ति के लिए युद्ध में प्रवृत्त होता है, उस समय उसकी तुम रक्षा करना।

६. अन्न-शालिनी सरस्वति, संग्राम में हमारी रक्षा करना और पूषा की तरह हमारे भोग्य के लिए धन प्रदान करना।

७. भीषण, हिरण्मय रथ पर आरूढ़ और शत्रुघातिनी वही सरस्वती हमारे मनोहर स्तोत्र की इच्छा करें।

८. सरस्वती का अपरिमित, अकुटिल, दीप्त और अप्रतिहत-गति जलवर्षक वेग, प्रचण्ड शब्द करता, विचरण करता है।

९. नियत भ्रमणकारी सूर्य जैसे दिन को ले आते हैं, वैसे ही वे सरस्वती हमारे सारे शत्रुओं को पराजित करें और अपनी अन्यान्य जल-मयी भागिनियों को हमारे पास ले आवें।

१०. सप्तनदी-रूपिणी, सप्त भगिनी-संयुता, प्राचीन ऋषियों-द्वारा सेविता और हमारी प्रियतमा सरस्वती देवी सदा हमारी स्तुति-पात्री हों।

११. पृथिवी और स्वर्ग के विस्तीर्ण प्रदेशों को जिन्होंने अपनी दीप्ति से पूर्ण किया है, वही सरस्वती देवी निन्दकों से हमारी रक्षा करें।

१२. त्रिलोक-व्यापिनी, गंगा आदि सप्त नदियों से युक्ता, चारों वर्णों और निषाद की समृद्धि-विधायिनी सरस्वती देवी प्रतियुद्ध में लोगों के आह्वान योग्य होती हैं।

१३. जो माहात्म्य और कीर्ति-द्वारा देवों में प्रसिद्ध हैं, जो नदियों में सबसे वेगवती हैं और श्रेष्ठता के कारण जो अतीव गुण-शालिनी हैं, वही सरस्वती देवी ज्ञानी स्तोता की स्तुति-पात्रा होती हैं।

१४. सरस्वती, हमें प्रशस्त धन में ले जाओ। हमें हीन नहीं करो। अधिक जल-द्वारा हमें उत्पीड़ित नहीं करना। तुम हमारा बन्धुत्व और गृह स्वीकार करो। हम तुम्हारे पास से निकृष्ट स्थान में न जायें।

अष्टम अध्याय समाप्त

चतुर्थ अष्टक समाप्त

५ अष्टक

६२ सूक्त

६ मण्डल । १ अध्याय । ६ अनुवाक ।

(देवता अश्वि-द्वय । ऋषि भरद्वाज । छन्द अनुष्टुप् ।)

१. जो क्षणमात्र में शत्रुओं को हराते हैं और प्रभात में पृथिवी-पर्यन्त प्रभूत अन्धकार दूर करते हैं, उन्हीं द्युलोक के नेता और भुवनों के ईश्वर अश्विनीकुमारों की मैं स्तुति करता हूँ और मन्त्रों-द्वारा स्तुति करता हुआ उन्हें बुलाता हूँ।

२. अश्विनीकुमार यज्ञ की ओर आते हुए, निर्मल तेजोबल से, रथ की दीप्ति प्रकट करते हैं और असीम रूप से तेजों का निर्माण करते हुए जल के लिए अश्वों को, मरुदेश को लँघाकर, ले गये।

३. अश्विद्वय, उग्र तुम लोग उस असमृद्ध गृह में जाते हो। इस प्रकार वाञ्छनीय और मन के समान वेगवान् अश्वों-द्वारा स्तोताओं को स्वर्ग ले जाओ। हव्य-दाता मनुष्य के हिंसक को दीर्घ निद्रा में सुला दो।

४. अश्विद्वय अश्व जोतते हुए सुन्दर अन्न, पुष्टि और रस का वहन करते हुए अभिनव स्तोता की मनोज्ञ स्तुति के समीप आवें। वे युवक हैं। होता, द्रोह-रहित और प्राचीन अग्नि उनका याग करें।

५. जो स्तुतिकारी (शस्त्र-स्तोता) और स्तोत्रकर्त्ता व्यक्ति को सुखी करते हैं और स्तुति-कर्त्ता को बहुविधि दान देते हैं, उन्हीं स्थिर, बहु-कर्मा, प्राचीन और दर्शनीय अश्विद्वय की, नई स्तुति से, मैं परिचर्या करता हूँ।

६. तुमने तुग्र के पुत्र भुज्यु को नौका-रहित हो जाने पर धूलि-रहित मार्ग में रथ-युक्त और गमनशील अश्वों-द्वारा जल के उत्पत्ति-स्थान समुद्र के जल से बाहर किया था।

७. रथारोही अश्विनीकुमारो, विजयी रथ के द्वारा मार्ग में स्थित पर्वत का विनाश करो। तुम काम-वर्षी हो। पुत्रार्थिनी का आह्वान सुनो। स्तोताओं का मनोरथ पूर्ण करते हो। तुम स्तोता की निवृत्त-प्रसवा गाय को दुग्धशालिनी करो। इस प्रकार सुबुद्धशाली होकर सर्व-अगामी बनो।

८. प्राचीन द्यावा-पृथिवी आदित्यो, वसुओ और रुद्रपुत्रो, अश्वि-द्वय के परिचारक मनुष्यों के प्रति देवताओं का जो महान् क्रोध है उस तापकारी क्रोध को राक्षस-पति को मारने के काम में लाओ।

९. जो व्यक्ति लोकों के राजा इन अश्विनीकुमारों की यथासमय परिचर्या करता है, उसे मित्र और वरुण जानते हैं। वह व्यक्ति महा-बली राक्षस के विरुद्ध अस्त्र फेंकता है। वह अभिद्रोहात्मक मनुष्यों के वचनानुसार अस्त्र-क्षेप करता है।

१०. अश्विद्वय, तुम उत्तम चक्र, दीप्ति और सारथिवाले रथ पर चढ़कर सन्तान देने के लिए हमारे घर में आओ और क्रोध छोड़ते हुए मनुष्यों के विघ्न-कर्त्ताओं के मस्तक छिन्न करो।

११. अश्विद्वय, उत्कृष्ट, मध्यम और साधारण घोड़ों के साथ हमारे सामने आओ। दूध और गौओं से भरी गोशाला का दरवाजा खोलो। मैं स्तुति करता हूँ। मुझे विचित्र धन दो।

६३ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अनेकाहूत और मनोहर अश्विनीकुमार जहाँ ठहरते हैं, वहाँ हव्य-युक्त पञ्चदशादि स्तोम दूत की तरह उन्हें प्राप्त करे। इसी स्तोम ने

अश्विद्वय को मेरी ओर घुमाया था। अश्विद्वय, स्तोता की स्तुति पर तुम प्रसन्न होते हो।

२. अश्विद्वय, हमारे आह्वान के अनुसार भली भाँति गमन करो। स्तुति किये जाने पर सोम पान करो। शत्रु से हमारे घर को बचाओ, पास या दूर का शत्रु हमारे घर को नष्ट न करने पावे।

३. सोम का विस्तृत अभिषव, तुम्हारे लिए, प्रस्तुत किया गया है। मृदुतम कुश बिछाये गये हैं। तुम्हारी कामना से होता हाथ जोड़कर तुम्हारी स्तुति करता है। पत्थरों ने तुम्हें व्याप्त करके सोम रस प्रकट किया है।

४. तुम्हारे यज्ञ के लिए अग्नि ऊपर उठते, यज्ञ में जाते तथा हव्य और घृतवाले बनते हैं। जो स्तोता अश्विद्वय का स्तोत्र—युक्त करता है, वही बहुकर्मा और अतीव उद्युक्त-मना होता है।

५. अनेकों के रक्षक अश्विद्वय, सूर्य-पुत्री तुम्हारे बहुरक्षक रथ को सुशोभित करने के लिए अधिष्ठित हुई थी। तुम देवों की इसी जन्म की प्रज्ञा से प्राज्ञ नेता और नृत्यशाली बनो।

६. इस दर्शनीय कांति-द्वारा तुम सूर्या की शोभा के लिए पुष्टि प्राप्त करो। शोभा के लिए तुम्हारे घोड़े भली भाँति अनुगमन करते हैं। स्तवनीय अश्विद्वय, भली भाँति की गई स्तुतियाँ तुम्हें व्याप्त करें।

७. अश्विनीकुमारो, गतिशील और ढोने में अत्यन्त चतुर घोड़े तुम्हें अन्न की ओर ले आवें। मन की तरह वेगशाली तुम्हारा रथ सम्पर्क के योग्य और अभिलषणीय प्रभूत अन्न के लिए छोड़ा गया है।

८. बहु-पालक अश्विनीकुमारो, तुम्हारे पास बहुत धन है; इसलिए हमारे लिए प्रीति-करी और दूसरे स्थान पर न जानेवाली धेनु तथा अन्न दो। मादयिता अश्विद्वय, तुम्हारे लिए स्तोता हैं, स्तुतियाँ हैं और जो तुम्हारे दान के उद्देश्य से जाते हैं; वे सोमरस भी हैं।

९. पुण्य की सरल गति और शीघ्रगामिनी दो वड़वायें मेरे पास हैं; समीढ़ की सौ गायें मेरे पास हैं। पेरुक के पक्व अन्न भी मेरे पास हैं।

शान्त नाम के राजा ने अश्विद्वय के स्तोताओं को हिरण्ययुक्त और सुदृश्य दस रथ या अश्व दिये और उनके अनुरूप ही शत्रु-नाशक तथा दर्श-नीय पुरुष भी दिये थे।

१०. नासत्यद्वय, तुम्हारे स्तोता को पुरुपन्था नाम के राजा सैकड़ों और हजारों अश्व देते हैं। वीर अश्विद्वय, यह स्तोता भरद्वाज को भी शीघ्र दें। बहुकर्मशाली अश्विनीकुमारो, राक्षस विनष्ट हों।

११. अश्विद्वय, मैं, विद्वान् व्यक्तियों के साथ, तुम्हारे सुखद धन से परिवेष्टित बनूँ।

६४ सूक्त

(देवता ऊषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. दीप्तिमती और शुक्लवर्ण उषायें, शोभा के लिए, जल-लहरी की तरह, उत्थित होती हैं। समस्त स्थानों को उषा सुपथवाले और सरलता से जाने योग्य बनाती हैं। धनवती उषा प्रशस्ता और समृद्धिमती हैं।

२. उषादेवी, तुम कल्याणी की तरह दिखाई दे रही हो और विस्तृत होकर शोभा पा रही हो। तुम्हारी दीप्तिमती किरणें शोभा पा रही हैं। तुम्हारी दीप्तिमती किरणें अन्तरिक्ष में उठ रही हैं। तुम तेजों में शोभमाना और दीप्यमाना होकर रूप प्रकाश कर रही हो।

३. लोहित-वर्ण और दीप्तिमान् रश्मियाँ सुभगा, विस्तीर्ण और प्रथमा उषा देवता को वहन करती हैं। जैसे शस्त्र फेंकने में निपुण वीर शत्रु को दूर करता है, वैसे ही उषा अन्धकार को दूर करती हैं तथा शीघ्र गामी सेनापति की तरह अन्धकार को रोकती हैं।

४. पर्वत और वायुरहित प्रदेश तुम्हारे लिए सुपथ और सुगम हैं। हे स्वप्रकाश-युक्ता, तुम अन्तरिक्ष को पार कर डालती हो। विशाल रथवाली और सुदृश्य द्युलोक-दुहिता, हमें अभिलषणीय धन दो।

५. उषा देवी मुझे धन दो। तुम अप्रतिगत होकर प्रीति-पूर्वक अश्व द्वारा धन ढोती हो। हे द्युलोकपुत्री तुम दीप्तमती हो। प्रथम आह्वान में पूजनीया हो। इसलिए तुम दर्शनीया होओ।

६. उषादेवी तुम्हारे प्रकट होने पर चिड़ियाँ घोसलों से निकलती हैं और अन्न के उपार्जक मनुष्य सोकर उठते हैं। समीप में वर्तमान हव्य-दाता मनुष्य को यथेष्ट धन देती हो।

६५ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो उषा दीप्तिमान् किरणों से युक्त होकर रात्रि में तेजःपदार्थ (नक्षत्रादि) और अन्धकार को तिरस्कृत करती दिखाई देती हैं, वही द्युलोकोत्पन्ना पुत्री उषा हमारे लिए अन्धकार दूर करके प्रजागण को प्रकाशित करती हैं।

२. कान्तियुक्त रथवाली उषादेवी उसी समय बृहत् यज्ञ का प्रथम चरण सम्पादित करके लाल रंग के घोड़ों से विस्तृत रूप से गमन करती हैं। वे विचित्र रूप से शोभा पाती हैं और रात्रि के अन्धकार को भली भाँति दूर हटाती हैं।

३. उषादेवियो, तुम हव्यदाता मनुष्य को कीर्त्ति, बल, अन्न और रस दान करती हो। तुम धनशालिनी और गमनशीला हो। आज परि-चर्या करनेवाले को पुत्र-पौत्र आदि से युक्त अन्न और धन दो।

४. उषा देवियो, तुम्हारी परिचर्या करनेवाले के लिए इस समय धन हैं। इस समय वीर हव्यदाता के लिए तुम्हारे पास धन है। इस समय प्राज्ञ स्तोता के लिए तुम्हारे पास धन है जिस विप्र में उक्थ नामक मन्त्र हैं, ऐसे मेरे समान व्यक्ति को, पहले की तरह, वही धन दो।

५. गिरितट-प्रिय उषादेवी, अङ्गिरा लोगों ने तुम्हारी कृपा से तुरत ही गायों को छोड़ दिया था और पूजनीय स्तोत्र-द्वारा अन्धकार का विनाश किया था। नेता अङ्गिरा लोगों की स्तुति सत्यफलवती हुई थी।

६. द्युलोक-पुत्री उषा, प्राचीन लोगों की तरह हमारे लिए अन्धकार दूर करो। धनशालिनी उषा, भरद्वाज की तरह स्तुति करनेवाले मुझे पुत्र-पौत्र आदि से युक्त धन दो। हमें अनेकों के गन्तव्य अन्न दो।

६६ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मरुतों के समान, स्थिर पदार्थों में भी स्थिर प्रीतिकर और गति-परायण रूप, विद्वान् स्तोता के निकट, शीघ्र प्रकट हो। वह अन्तरिक्ष में एक बार शुक्लवर्ण जल क्षरण करता और मर्त्यलोक में अन्य पदार्थ दोहन करने के लिए बढ़ता है।

२. जो धनी अग्नि के समान दीप्त होते हैं, जो इच्छानुसार द्विगुण और त्रिगुण बढ़ते हैं, उन मरुतों के रथ धूलि-शून्य और सुवर्णालङ्कार-वाले हैं। वे ही मरुत् धन और बल के साथ प्रादुर्भूत होते हैं।

३. सेचनकारी रुद्र के जो मरुद्गण पुत्र हैं और जिनको धारण-कर्त्ता अन्तरिक्ष धारण करने में समर्थ है, उन्हीं महान् मरुतों की माता (पृश्नि) महती है। वह माता मनुष्योत्पत्ति के लिए गर्भ या जल धारण करती है।

४. जो स्तोताओं के पास यान पर नहीं जाते; परन्तु उनके अन्तःकरण में रहकर पापों को विनष्ट करते हैं, जो दीप्तिमान् हैं, जो स्तोताओं की अभिलाषा के अनुसार जल दूह लेते हैं, जो दीप्तियुक्त होकर अपने को प्रकाशित करते हैं और भूमि को सींचते हैं।

५. जिनको उद्देश्य करके इस समय समीपवर्ती स्तोता मरुत्संज्ञक शब्द का उच्चारण करते हुए शीघ्र मनोरथ प्राप्त करते हैं, जो अपहरण-कर्त्ता, गमनशील और महत्वयुक्त हैं, उन्हीं उग्र मरुतों को इस समय दान-कर्त्ता यजमान क्षोभ-शून्य करता है।

६. वे उग्र और बलशाली हैं। वे घर्षण करनेवाली सेना को सुरूपिणी द्यावा-पृथिवी के सहित योजित करते हैं। इनकी रोदसी

(माध्यमिकी वाक्) स्वदीप्ति से संयुक्त है। इन बलवान् मरुतों में दीप्ति नहीं है।

७. मरुतो, तुम्हारा रथ पाप-रहित हो। सारथि न होकर भी स्तोता जिसे चलाता है, वही रथ अश्व-रहित होकर भी, भोजन-शून्य और पाश-रहित होकर भी, जल-प्रेरक और अभीष्टप्रद होकर द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष में गमन करता है।

८. मरुतो, तुम लोग संग्राम में जिसकी रक्षा करते हो, उसका कोई प्रेरक नहीं होता और न उसकी कोई हिंसा ही होती है। तुम पुत्र, पौत्र, गो और जल के संचरण में जिसकी रक्षा करते हो, वह संग्राम में शत्रुओं के गो-समूह को विदीर्ण करता है।

९. अग्नि, जो बल-द्वारा शत्रुओं का बल दबा देते हैं, जिन महान् मरुतों से पृथिवी काँपती है, उन्हीं शब्दकर्ता शीघ्र बलवान् मरुतों को दर्शनीय अन्न दो।

१०. मरुद्गण यज्ञ की तरह प्रकाशमान हैं। जो शीघ्रगामी अग्नि-शिखा की तरह दीप्तिमान और पूजनीय हैं, वे शत्रुओं के प्रकम्पक व्यक्तियों की तरह वीर, दीप्त शरीर से युक्त और अनभिभूत हैं।

११. मैं उन्हीं वर्द्धमान और दीप्तिमान्, खड्ग से युक्त रुद्रपुत्र मरुतों की स्तोत्र-द्वारा परिचर्या करता हूँ। स्तोता की निर्मल स्तुतियाँ उग्र होकर मेघ की तरह मरुतों के बल की बराबरी करती हैं।

६७ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सारे विश्व में श्रेष्ठ मित्र और वरुण, तुम्हें मैं स्तुति-द्वारा वर्द्धित करता हूँ। तुम दोनों विषम और यन्तृ-श्रेष्ठ हो। रज्जु की तरह अपनी भुजाओं-द्वारा तुम मनुष्यों को संयत करते हो।

२. प्रिय मित्र और वरुण, हमारी यही स्तुति तुम्हें प्रच्छादित करती है। हव्य के साथ तुम्हारे पास यही स्तुति जाती है और तुम्हारे यज्ञ की

ओर जाती है। हे सुन्दर दानवाले मित्र और वरुण, हमें शीत आदि का निवारक और अनभिभूत गृह दो।

३. प्रिय मित्र और वरुण, अन्न और स्तोत्र-द्वारा आहूत होकर आओ। जैसे कर्म-नियुक्त कर्म-द्वारा असार्थी व्यक्तियों को संयत करता है, वैसे ही तुम भी अपनी महिमा-द्वारा करो।

४. जो अश्व की तरह बली, पवित्र स्तोत्र से युक्त और सत्यरूप हैं, उन्हीं गर्भभूत मित्र और वरुण को अदिति ने धारण किया था। जन्म लेने के साथ ही जो महान् से भी महान् और हिंसक मनुष्य के घातक हुए, उन्हें अदिति ने धारण किया था।

५. परस्पर प्रीतियुक्त होकर समस्त देवों ने, तुम्हारी महिमा का कीर्त्तन करते हुए, बल धारण किया है। तुम लोग विस्तीर्ण द्यावापृथिवी को परिभूत करते हो। तुम्हारी रश्मि अहिंसित और अगूढ़ हैं।

६. तुम प्रतिदिन बल धारण करते हो। अन्तरिक्ष के उन्नत प्रदेश (मेघ अथवा सूर्य) को खूँटे की तरह दृढ़ रूप से धारण करो। तुम्हारे द्वारा दृढ़ीकृत मेघ अन्तरिक्ष में व्याप्त होता है और विश्वदेव (सूर्य) मनुष्य के हव्य से तृप्त होकर भूमि और द्युलोक में व्याप्त होते हैं।

७. सोम-द्वारा उदर पूर्ण करने के लिए तुम लोग प्राज्ञ व्यक्ति को धारण करते हो। हे विश्वजिन्वा मित्र और वरुण, जिस समय ऋत्विक् लोग यज्ञ-गृह पूर्ण करते हैं और तुम जल भेजते हो, उस समय युवतियाँ (नदियाँ अथवा दिशायें) धूलि से नहीं भरतीं; परन्तु अशुष्क और अवात होकर विभूति धारण करती हैं।

८. मेधावी व्यक्ति तुमसे सदा वचन-द्वारा इस जल की याचना करता है। हे घृतान्नयुक्त मित्र और वरुण, जैसे तुम्हारा अभिगन्ता यज्ञ में माया-रहित होता है, वैसे ही तुम्हारी महिमा हो। हव्यदाता का पाप विनष्ट करो।

९. मित्र और वरुण, जो लोग स्पर्द्धा करके तुम्हारे द्वारा विहित और तुम्हारे प्रिय कर्म में विघ्न करते हैं, जो देवता और मनुष्य स्तोत्र-

रहित हैं, जो कर्मशील होकर भी यज्ञ-सम्पन्न नहीं हैं और जो पुत्र-रूप नहीं हैं, उन्हें विनष्ट करो।

१०. जिस समय मेधावी लोग स्तुति का उच्चारण करते हैं, कोई-कोई स्तुति करते हुए सूक्तपाठ करते हैं, और जब हम, तुम्हें लक्ष्यकर, सत्य मन्त्रों का पाठ करते हैं, उस समय तुम लोग महिमान्वित होकर देवों के साथ नहीं चला जाना।

११. रक्षक वरुण और मित्र, जिस समय स्तुतियाँ उच्चारित होती हैं और जब सरलगामी, घर्षक तथा अभीष्टवर्षी सोम को यज्ञ में संयुक्त किया जाता है, उस समय गृह-दान के लिए तुम्हारे आने पर तुम्हारा दातव्य गृह अविच्छिन्न होता है, यह सत्य है।

६८ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. महान् इन्द्र और वरुण, मनु की तरह कुश-विस्तारक यजमान के अन्न और सुख के लिए जो यज्ञ आरम्भ होता है, आज, तुम लोगों के लिए, वही क्षिप्र यज्ञ ऋत्विकों-द्वारा प्रवृत्त किया गया है।

२. तुम श्रेष्ठ हो, यज्ञ में धन देनेवाले हो और वीरों में अतीव बल-वान् हो। दाताओं में श्रेष्ठ दाता तथा बहु-बलशाली सत्य के द्वारा शत्रुओं के हिंसक और सब प्रकार की सेनाओंवाले हो।

३. स्तुति, बल और सुख के द्वारा स्तुत इन्द्र और वरुण की स्तुति करो। उनमें से एक (इन्द्र) वृत्र का वध करते हैं, दूसरे प्रजा में युक्त (वरुण) उपद्रवों से रक्षा करने के लिए बलशाली होते हैं।

४. इन्द्र और वरुण, मनुष्यों में पुरुष और स्त्री एवम् समस्त देव-गण स्वतः उद्यत होकर जब तुम्हें स्तुति-द्वारा वर्द्धित करते हैं, तब महि-मान्वित होकर तुम लोग उनके प्रभु बनो। विस्तीर्ण द्यावापृथिवी, तुम इनके प्रभु बनो।

५. इन्द्र और वरुण, जो यजमान तुम्हें स्वयं हवि देता है, वह सुन्दर दानवाला धनवान् और यशशाली होता है। वही दाता, जय-प्राप्त अन्न के साथ, शत्रु के हाथ से उद्धार पाता तथा धन और सम्पत्ति-शाली पुत्र प्राप्त करता है।

६. देव, इन्द्र और वरुण, तुम हव्यदाता को धनानुगामी और बहु-अन्नशाली जो धन देते हो और जो शत्रु-कृत अयश को दूर करता है, वही धन हमें मिले।

७. इन्द्र और वरुण, हम तुम्हारे स्तोता हैं। जो धन सुरक्षित है और जिसके रक्षक देवगण हैं, वही धन हम स्तोता को हो। हमारा बल संग्राम में शत्रुओं को दबानेवाला और हिंसक होकर तुरत उनके यश को तिरस्कृत करे।

८. इन्द्र और वरुण, तुम लोग स्तुत होकर सुयश के लिए हमें शीघ्र धन दो। देवो, तुम लोग महान् हो। हम इस प्रकार तुम्हारे बल की स्तुति करते हैं। हम नौका-द्वारा जल की तरह पापों को पार कर सकें।

९. जो वरुण महिमान्वित, महाकर्मा, प्रज्ञा-युक्त, तेजःसम्पन्न और अजर हैं, जो विस्तीर्ण द्यावापृथिवी को विभासित करते हैं, उन्हीं सम्राट् और विराट् वरुण को लक्ष्य कर आज मनोहर और सब प्रकार से विशालस्तोत्र पढ़ो।

१०. इन्द्र और वरुण, तुम सोम का पान करनेवाले हो; इसलिए इस मादक और अभिषुत सोम का पान करो। हे धृत-व्रत मित्र और वरुण, देवों के पान के लिए तुम्हारा रथ यज्ञ की ओर आता है।

११. हे कामवर्षी इन्द्र और वरुण, तुम अतीव मधुर और मनोरथ-वर्षक सोम का पान करो। तुम्हारे लिए हमने इस सोम-रूप अन्न को ढाला है; इसलिए इसमें बैठकर इस यज्ञ में सोमपान से मत्त होओ।

६९ सूक्त

(देवता इन्द्र और विष्णु। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र और विष्णु, तुम्हें लक्ष्य कर स्तोत्र और हवि में प्रेरित करता हूँ। इस कर्म के समाप्त होने पर तुम लोग यज्ञ की सेवा करो। उपद्रव-शून्य मार्ग-द्वारा हमें पार करते हो। तुम हमें धन दो।

२. इन्द्र और विष्णु, तुम स्तुतियों के जनक हो। तुम कलस-स्वरूप और सोम के निधान-भूत हो। कहे जानेवाले स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों। स्तोताओं-द्वारा गीयमान स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों।

३. इन्द्र और विष्णु, तुम सोमों के अधिपति हो। धन देते हुए तुम सोम के अभिमुख आओ। स्तोताओं के स्तोत्र, उक्थों के साथ, तुम्हें तेज-द्वारा वर्द्धित करें।

४. इन्द्र और विष्णु, हिंसाकारियों को हरानेवाले और एकत्र मत्त अश्वगण तुम्हें वहन करें। स्तोताओं के सारे स्तोत्रों का तुम सेवन करो। मेरे स्तोत्रों और वचनों को भी सुनो।

५. इन्द्र और विष्णु, सोम का मद या हर्ष उत्पन्न होने पर तुम लोग विस्तृत रूप से परिक्रमा करते हो। तुमने अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है। तुमने लोकों को हमारे जीने के लिए प्रसिद्ध किया है। तुम्हारे ये सब कर्म प्रशंसा के योग्य हैं।

६. घृत और अन्न से युक्त इन्द्र और विष्णु, तुम सोम से बढ़ते हो और सोम के अग्र भाग का भक्षण करते हो। नमस्कार के साथ यजमान लोग तुम्हें हव्य देते हैं। तुम हमें धन दो। तुम लोग समुद्र की तरह हो। तुम सोम की खान और कलस के रूप हो।

७. दर्शनीय इन्द्र और विष्णु, तुम इस मदकारी सोम को पियो और उदर भरो। तुम्हारे पास मदकर सोम-रूप अन्न जाय। मेरा स्तोत्र और आह्वान सुनो।

८. इन्द्र और विष्णु, तुम विजयी हो; कभी पराजित नहीं होते। तुम दोनों में से कोई भी पराजित होनेवाला नहीं है। तुमने जिस वस्तु के लिए असुरों के साथ स्पर्द्धा की है, वह यद्यपि त्रिधा (लोक, वेद और वचन के रूपों में) स्थित और असंख्य है, तथापि तुमने अपने विक्रम से उसे प्राप्त किया है।

७० सूक्त

(देवता द्यावापृथिवी। ऋषि भरद्वाज। छन्द जगती।)

१. हे द्यावापृथिवी, तुम जलवती, भूतों के आश्रय-स्थल, विस्तीर्णा, प्रसिद्धा, जलदोहन-कर्त्री, सुरूपा, वरुण के धारण-द्वारा पृथक् रूप से धारिता, नित्या और बहुकर्मा हो।

२. असंगता, बहुधारावती, जलवती और शुचिकर्मा द्यावापृथिवी, सुकृती व्यक्ति को तुम, जल देती हो। हे द्यावापृथिवी, तुम भुवन की राज्ञी हो। तुम मनुष्यों का हितैषी वीर्य हमें दान दो।

३. सर्व-निवासभूता द्यावा-पृथिवी, जो मनुष्य तुम्हें, सरल गमन के लिए, यह देता है, वह सिद्ध-मनोरथ होता और अपत्यों के साथ बढ़ता है। कर्मों के ऊपर तुम्हारे द्वारा सिक्तरेत नाना रूप है और वह समान-कर्मा उत्पन्न होता है।

४. द्यावा-पृथिवी जल-द्वारा ढकी हुई हैं और और जल का आश्रय करती हैं। वे जल से ओत प्रोत हैं, जलवर्षाविधायिनी और विस्तृता हैं, प्रसिद्धा और यज्ञ में पुरस्कृता हैं। यज्ञ के लिए विद्वान् उनसे सुख की याचना करता है।

५. जल का क्षरण करनेवाली, जल दूहनेवाली, उदककर्मा देवी तथा हमें यज्ञ, धन, महान् यश, अन्न और वीर्य देनेवाली द्यावा-पृथिवी हमें मधु से सींचे।

६. पिता द्युलोक और माता पृथिवी, हमें अन्न दो। संसार को जाननेवाली, सुकर्मा परस्पर रममाण और सबको सुख देनेवाली द्यावा-पृथिवी हमें पुत्रादि बल और धन दो।

७१ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि भरद्वाज। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. वही सुकृति सविता देवता दान के लिए हिरण्मय बाहुओं को ऊपर उठाते हैं। विशाल, तरुण और विद्वान् सविता, संसार की रक्षा के लिए दोनों जलमय बाहुओं को प्रेरित करते हैं।

२. हम उन्हीं सविता के प्रसव-कर्म और प्रशस्त धन दान के विषय में समर्थ हों। सविता, तुम सारे द्विपदों और चतुष्पदों की स्थिति और प्रसव (उत्पत्ति) में समर्थ हो।

३. सविता, तुम आज अहिंसित और सुखावह तेज के द्वारा हमारे घरों की रक्षा करो। तुम हिरण्यवाक् हो। नया सुख दो और हमारी रक्षा करो। हमारा अहित करनेवाला व्यक्ति प्रभुत्व न करने पावे।

४. शान्तमना, हिरण्य-हस्त, हिरण्मय हनु (जबड़ा) वाले, यश के योग्य और मनोहर वचनवाले वही सविता देव रात्रि के अन्त में उठें। वे हव्यदाता के लिए, यथेष्ट अन्न प्रेरित करें।

५. सविता, अधिवक्ता की तरह हिरण्मय और शोभनांश, दोनों बाहुओं को उठावें। वे पृथिवी से द्युलोक के उन्नत प्रदेश में चढ़ते हैं। गतिशील, जो कुछ महान् वस्तुएँ हैं, सबको वे प्रसन्न करते हैं।

६. सविता, आज हमें धन दो। कल हमें धन देना। प्रतिदिन हमें धन देना। हे देव, तुम निवास-भूत प्रचुर धन के दाता हो; इसलिए हम इसी स्तुति के द्वारा धन प्राप्त करेंगे।

७२ सूक्त

(देवता इन्द्र और सोम। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र और सोम, तुम्हारी महिमा महान् है। तुमने महान् और मुख्य भूतों को बनाया है। तुमने सूर्य और जल को प्राप्त किया है। तुमने सारे अन्धकारों और निन्दकों का वध किया है।

२. इन्द्र और सोम, तुम उषा को प्रकाशित करो और सूर्य को

ज्योति के साथ ऊपर उठाओ तथा अन्तरिक्ष के द्वारा द्युलोक को स्तम्भित करो। माता पृथिवी को प्रसिद्ध करो।

३. इन्द्र और सोम, जल को रोकनेवाले अहि (मारक) वृत्र का वध करो। द्युलोक ने तुम्हें संवर्द्धित किया था। नदी के जल को प्रेरित करो। जल-द्वारा समुद्र को पूर्ण करो।

४. इन्द्र और सोम, तुमने गायों के लिए अपक्व अन्तर्देश में पक्व दुग्ध रक्खा है। नाना वर्ण गौओं के बीच तुमने अबद्ध और शुक्ल वर्ण दुग्ध धारण किया है।

५. इन्द्र और सोम, तुम लोग तारक, सन्तान-युक्त और श्रवण-योग्य धन हमें शीघ्र दो। उग्र इन्द्र और सोम, मनुष्यों के लिए हितकर और शत्रुसेना को हरानेवाले बल को तुम वर्द्धित करो।

७३ सूक्त

(देवता बृहस्पति। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिन बृहस्पति ने पर्वत को तोड़ा था, जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुए थे, जो सत्य-रूप, अङ्गिरा और यज्ञ-पात्र हैं, जो दोनों लोकों में भली भाँति जाते हैं, जो प्रदीप्त स्थान में रहते हैं और जो हम लोगों के पालक हैं, वही बृहस्पति, वर्षक होकर द्यावापृथिवी में गर्जन करते हैं।

२. जो बृहस्पति यज्ञ में स्तोता को स्थान देते हैं, वही वृत्रों या आवरक अन्धकारों को विनष्ट करते, युद्ध में शत्रुओं को जीतते, द्वेषियों को अभिभूत करते और असुर-पुरियों को अच्छी तरह छिन्न-भिन्न करते हैं।

३. इन्हीं बृहस्पति देव ने असुरों का धन और गौओं के साथ गोचरों को जीता था। अप्रतिगत होकर यज्ञ-कर्म-द्वारा, भोग करने की इच्छा करके, बृहस्पति स्वर्ग के शत्रु का, अर्चना-साधन मन्त्र-द्वारा, वध करते हैं।

७४ सूक्त

(देवता सोम और रुद्र। ऋषि भरद्वाज। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सोम और रुद्र, तुम हमें असुर-सम्बन्धी बल दो। सारे यज्ञ तुम्हें प्रतिगृह में अच्छी तरह व्याप्त करें। तुम सप्तरत्न धारण

करते हो; इसलिए हमारे लिए तुम सुखकर होओ और द्विपदों और चतुष्पदों के लिए भी कल्याणवाही बनो।

२. सोम और रुद्र, जो रोग हमारे घर में पैठा है, उसी संक्रामक रोग को विदूरित करो। ऐसी बाधा दो, जिससे दरिद्रता पराङ्मुखी हो। हमारे पास सुखावह अन्न हो।

३. सोम और रुद्र, हमारे शरीर के लिए सब प्रसिद्ध औषध धारण करो। हमारे किये पाप, जो शरीर में निबद्ध हैं, उसे शिथिल करो—हमसे हटा दो।

४. सोम और रुद्र, तुम्हारे पास दीप्त धनुष और तीक्ष्ण शर हैं। तुम लोग सुन्दर सुख देते हो। शोभन स्तोत्र की अभिलाषा करते हुए हमें इस संसार में खूब सुखी करो। तुम हमें वरुण के पाश से छुड़ाओ और हमारी रक्षा करो।

७५ सूक्त

(देवता प्रथम मन्त्र के वर्म, द्वितीय के धनु, तृतीय की ज्या, चतुर्थ की अर्त्नी, पञ्चम के इषुधि, षष्ठ के पूर्वार्द्ध के सारथि और उत्तरार्द्ध की रश्मि, सप्तम के अश्व, अष्टम के रथ, नवम के रथगोपगण, दशम के स्तोता, पिता, सोम्य, द्यावा, पृथ्वी और पूषा, एकादश और द्वादश के इषु, त्रयोदश के प्रतोद, चतुर्दश के हस्तघ्न, पञ्चदश और षोडश के इषु, सप्तदश की युद्धभूमि, ब्रह्मणस्पति और अदिति, अष्टादश के कवच, सोम और वरुण तथा ऊनविंश के देवगण और ब्रह्म। ऋषि भरद्वाज-पुत्र पायु। छन्द अनुष्टुप्, पङ्क्ति और त्रिष्टुप्।)

१. युद्ध छिड़ जाने पर यह राजा जिस समय लौहमय कवच पहन कर जाता है, उस समय मालूम पड़ता है कि यह साक्षात् मेघ है। राजन् अविद्ध शरीर रहकर जय प्राप्त करो। वर्म (कवच) की वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे।

२. हम धनुष के द्वारा शत्रुओं की गायों को जीतेंगे, युद्ध जीतेंगे और मदोन्मत्त शत्रु-सेना का वध करेंगे। शत्रु की अभिलाषा धनुष नष्ट करे। हम इस धनुष से समस्त दिशाओं में स्थित शत्रुओं को जीतेंगे।

३. धनुष की यह ज्या, युद्ध-वेला में, युद्ध से पार ले जाने की इच्छा करके मानो प्रिय वचन बोलने के लिए ही धनुर्धारी के कान के पास आती है। जैसे स्त्री प्रिय पति का आलिङ्गन करके बात करती है, वैसे ही यह ज्या भी बाण का आलिङ्गन करके ही शब्द करती है।

४. वे दोनों धनुस्कोटियाँ, अन्यमनस्का स्त्री की तरह, आचरण करके शत्रु के ऊपर आक्रमण करते समय माता की तरह पुत्र-तुल्य राजा की रक्षा करें और अपने कार्य को भली भाँति जानकर जाते हुए इस राजा के द्वेषियों का वध कर शत्रुओं को छेद डालें।

५. यह तूणीर अनेक बाणों का पिता है। कितने ही बाण इसके पुत्र हैं। बाण निकालने के समय यह तूणीर "चिश्चा" शब्द करता है। यह योद्धा के पृष्ठ-देश में निबद्ध रहकर युद्ध-काल में बाणों का प्रसव करता हुआ सारी सेना को जीत डालता है।

६. सुन्दर सारथि रथ में अवस्थान करके आगे के घोड़ों को, जहाँ इच्छा होती है, वहाँ, ले जाता है। रस्सियाँ अश्वों के कण्ठ तक फैल कर और अश्वों के पीछे फैलकर सारथि के मन के अनुकूल नियुक्त होती हैं। रस्सियों की महिमा बखानो।

७. अश्व टापों से धूलि उड़ाते हुए और रथ के साथ सवेग जाते हुए हिनहिनाते हैं तथा पलायन न करके हिंसक शत्रुओं को टापों से पीटते हैं।

८. जैसे हव्य अग्नि को बढ़ाता है, वैसे ही इस राजा के रथ-द्वारा ढोया जानेवाला धन इसे वर्द्धित करे। रथ पर इस राजा के अस्त्र, कवच आदि रहते हैं। हम सदा प्रसन्न-चित्त से उस सुखावह रथ के पास जाते हैं।

९. रथ के रक्षक शत्रुओं के सुस्वादु अन्न को नष्ट करके अपने पक्ष के लोगों को अन्न दान करते हैं। विपत्ति के समय इनका आश्रय लिया

जाता है। ये शक्तिमान्, गम्भीर, विचित्र सेना से युक्त, वाण-बल-सम्पन्न अहिंसक, वीर, महान् और अनेक शत्रुओं को जीतने में समर्थ हैं।

१०. हे ब्राह्मणो, पितरो और यज्ञ-वर्द्धक सोम-सम्पादक, तुम हमारी रक्षा करो। पापशून्या द्यावापृथिवी हमारे लिए सुखकारी हों। पूषा हमें पाप से बचावें। हमारा पापी शत्रु प्रभुत्व न करने पावे।

११. वाण शोभन पंख धारण करता है। इसका दाँत मृग-शृंग है। यह ज्या अथवा गोचर्म (ताँत) से अच्छी तरह बद्ध है। यह प्रेरित होकर पतित होता है। जहाँ नेता लोग एकत्र वा पृथक् रूप से विचरण करते हैं, वहाँ वाण हमें शरण दे।

१२. वाण, हमें परिवर्द्धित करो। हमारा शरीर पाषाण की तरह हो। सोम हमारे पक्ष पर बोले। अदिति सुख दें।

१३. कशा (चाबुक), प्रकृष्ट ज्ञानी सारथि लोग तुम्हारे द्वारा अश्वों के उरु और जघन में मारते हैं। संग्राम में तुम अश्वों को प्रेरित करो।

१४. हस्तघ्न (ज्या के आघात से हाथ को बचाने के लिए बँधा हुआ चर्म) ज्या के आघात का निवारण करता हुआ सर्प की तरह शरीर के द्वारा प्रकोष्ठ (जानु से मणिबन्ध तक) को परिवेष्टित करता है, सारे ज्ञातव्य विषयों को जानता है और पौरुषशाली होकर चारों ओर से रक्षा करता है।

१५. जो विषाक्त है, जिसका अग्रभाग हिंसक है और जिसका मुख लौहमय है, उसी पर्जन्य से उत्पन्न विशाल वाण-देवता को नमस्कार।

१६. मन्त्र-द्वारा तेज किये गये और हिंसा-निपुण वाण, तुम छोड़े जाकर गिरो, जाओ और शत्रुओं को मिलो। किसी भी शत्रु को जीते जी नहीं छोड़ना।

१७. मुण्डित कुमारों की तरह जिस युद्ध में वाण गिरते हैं, उसमें हमें ब्रह्मणस्पति सदा सुख दें, अदिति सुख दें।

१८. राजन्, तुम्हारे शरीर के मर्मस्थानों को कवच से आच्छादित कर रहा हूँ। सोम राजा तुम्हें अमृत-द्वारा आच्छादित करें, वरुण तुम्हें श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ सुख दें। तुम्हारे विजयी होने पर देवगण हर्ष मनावें।

१९. जो कुटुम्बी हमारे प्रति प्रसन्न नहीं और जो अलग रहकर हमारे वध की इच्छा करता है, उसे सारे देवगण मारें। हमारे लिए तो मन्त्र ही त्राण-निवारक कवच है।

षष्ठ मण्डल समाप्त

सूक्त १

(सप्तम मण्डल। १ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. नेता ऋत्विक् लोग प्रशस्त, दूरस्थित, गृहपति और गतिशील अग्नि को दो काष्ठों से हस्तगति और अँगुलियों के द्वारा, उत्पन्न करते हैं।

२. जो अग्नि गृह में नित्य पूजनीय थे, उन्हीं सुदृश्य अग्नि को, सब प्रकार के भयों से बचाने के लिए, वसिष्ठगण ने गृह में रक्खा था।

३. तरुणतम अग्नि, भली भाँति समृद्ध होकर, सतत ज्वाला के साथ, हमारे आगे प्रदीप्त होओ। तुम्हारे पास बहुत अन्न जाता है।

४. सुजन्मा नेता या ऋत्विक् लोग जिन अग्नि के पास बैठते हैं, वह लौकिक अग्नियों से अधिक दीप्तिमान्, कल्याणवाही, पुत्र-पौत्र-प्रद और विशेष रूप से दीप्ति प्राप्त करनेवाले हैं।

५. अभिमथननिपुण अग्नि, हिंसक शत्रु जिसमें बाधा न दे सकें, ऐसी कल्याणकर, पुत्र-पौत्र-प्रद और सुन्दर सन्तति से युक्त धन, स्तोत्र सुनकर, हमें दो।

६. हव्ययुक्ता युवती जुहू कुशल अग्नि के पास दिन-रात आती है। स्वकीय दीप्ति धनाभिलाषी होकर उसके निकट आती है।

७. अग्नि, जिस तेज से तुम कठोर-शब्द-कर्त्ता राक्षस को जलाते हो, उसी तेज के बल से सारे शत्रुओं को जलाओ। उपताप दूर करके रोग को नष्ट करो।

८. हे श्रेष्ठ, शुभ्र, दीप्त और पावक अग्नि, जो तुम्हें समिद्ध करते हैं, उन्हीं के समान हमारे इस स्तोत्र से भी प्रसन्न होकर इस यज्ञ में ठहरो।

९. अग्नि, जो पितृ-हितैषी और (कर्म-नेता) मनुष्यों ने तुम्हारे तेज को अनेक देशों में विभक्त किया है, उन्हीं के समान हमारे इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर इस यज्ञ में ठहरो।

१०. जो मनुष्य मेरे श्रेष्ठ कर्म की स्तुति करते हैं, वही वीर नेता संग्रामों में सारी आसुरी माया को दबा दें।

११. अग्नि, हम शून्य गृह में नहीं रहेंगे; दूसरे के घर में भी नहीं रहेंगे। गृह के हितैषी अग्निदेव, हम पुत्र-शून्य और वीर-रहित हैं। तुम्हारी परिचर्या करते हुए हम प्रजा से सम्पन्न घर में रहें।

१२. जिस यज्ञाश्रय गृह में अश्ववाले अग्नि नित्य जाते हैं, हमें वही, नौकर आदि से युक्त, सुन्दर सन्तानवाले तथा औरसजात पुत्र के द्वारा वर्द्धमान गृह दो।

१३. हमें अप्रीतिकर राक्षस से बचाओ। अदाता और पापी हिंसक से बचाओ। हम तुम्हारी सहायता से सेना के अभिलाषी व्यक्ति को पराजित करेंगे।

१४. बलवान्, दृढ़हस्त, प्रभूत अन्नवाला हमारा पुत्र क्षय-रहित स्तोत्र-द्वारा जिस अग्नि की सेवा करता है, वही अग्नि दूसरे के अग्नि को आविर्भूत करें।

१५. जो यज्ञकर्त्ता प्रबोधक को हिंसा और पाप से बचाते हैं और जिनकी सेवा कुलीन वीरगण करते हैं, वही अग्नि हैं।

१६. जिन्हें समृद्ध और हविष्मान् व्यक्ति भली भाँति दीप्त करता

है और यज्ञ में जिनकी परिक्रमा होता (देवों को बुलानेवाला) करता है, वे ही ये अग्नि अनेक देशों में बुलाये जाते हैं।

१७. अग्निदेव, धनपति होकर हम तुम्हें लक्ष्य करके नित्य स्तोत्र और उक्थ-द्वारा यज्ञ में प्रभूत हव्य देंगे।

१८. अग्नि, देवताओं के पास तुम सदा इस अतीव कमनीय हव्य को ले जाओ और गमन करो। प्रत्येक देवता हमारे इस शोभन हव्य की इच्छा करता है।

१९. अग्नि, हमें निस्सन्तान नहीं करना। खराब कपड़े नहीं देना। हमें कुबुद्धि नहीं देना। हमें भूख नहीं देना। हमें राक्षस के हाथ में नहीं देना। हे सत्यवान् अग्नि, हमें न घर में मारना, न वन में।

२०. अग्नि, हमारा अन्न विशेष रूप से शोधित करना। देव, याज्ञिकों को अन्न देना। हम दोनों (स्तोता और यजमान) तुम्हारे दान में रहें। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२१. अग्नि, तुम सुन्दर आह्वानवाले और रमणीय-दर्शन हो। शोभन दीप्ति के साथ प्रदीप्त होओ। सहायक बनो और औरस पुत्र को नहीं जलाओ। हमारा मनुष्यों का हितैषी पुत्र नष्ट न होने पावे।

२२. अग्नि, तुम सहायक होओ; और ऋत्विकों द्वारा समिद्ध अग्निगण को कहो कि वे सुख के साथ हमारा भरण करें। बल के पुत्र अग्नि, तुम्हारी दुर्बुद्धि भ्रम से भी हमें व्याप्त न करे।

२३. सुतेजा और देवात्मा अग्नि, जो मनुष्य तुम्हें हव्य देता है, वही धनी होता है। जिसके पास धनाभिलाषी स्तोता जानने की इच्छा से जाता है, वही अग्निदेव यजमान की रक्षा करते हैं।

२४. अग्नि, तुम हमारे महान् कल्याणवाले कार्य को जानते हो। बल के पुत्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं। जिससे हम अक्षय, पूर्णायु और कल्याणकर पुत्र-पौत्र आदि से सम्पन्न होकर प्रसन्न हो सकें, ऐसा महान् धन हमें दो।

२५. अग्निदेव, हमारे अन्न का भली भाँति शोधन करो। देव, तुम याज्ञिकों को अन्न दो। हम दोनों (स्तोता और यजमान) तुम्हारे दान में रहें। तुम हमें सदा कल्याण-द्वारा पालन करो।

प्रथम अध्याय समाप्त

२ सूक्त

(द्वितीय अध्याय। देवता आप्री। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि आज हमारी समिधा को ग्रहण करो। यज्ञ के योग्य धुआँ देते हुए अतीव दीप्त होओ। तप्त ज्वाला-माला से अन्तरिक्ष का तट-प्रदेश स्पर्श करो और सूर्य की किरणों के साथ मिलित होओ।

२. जो सुकर्मा, शुचि और कर्मों के धारक देवगण सौमिक और हविःसंस्थादि, दोनों का भक्षण करते हैं, उनके बीच हम स्तोत्र-द्वारा यजनीय और नर-प्रशस्य अग्नि की महिमा की स्तुति करते हैं।

३. यजमानो, तुम स्तुतियोग्य, असुर (बली), सुदक्ष, द्यावापृथिवी के बीच दूत, सत्यवक्ता, मनुष्य की तरह मनु-द्वारा समिद्ध अग्निदेव की सदा पूजा करो।

४. सेवाभिलाषी लोग घुटने टेककर पात्र पूर्ण करते हुए अग्नि को हव्य के साथ बर्हिदान करते हैं। अध्वर्युओ, घृत पृष्ठ और स्थूल बिन्दु से युक्त बर्हि हवन करते हुए उसे प्रदान करो।

५. सुकर्मा, देवाभिलाषी और रथेच्छुक लोगों ने यज्ञ में द्वार का आश्रय किया है। जैसे गायें बछड़ों को चाटती हैं, वैसे ही चाटनेवाले और पूर्वाभिलाषी (जुहू और उपभृति) को अध्वर्युगण नदी की तरह यज्ञ में सिक्त करते हैं।

६. युवती, दिव्या, महती, कुशों पर बैठी हुई, बहु-स्तुता, धनवती और यज्ञार्हा अहोरात्रि, कामदुधा धेनु की तरह, कल्याण के लिए, हमें आश्रय करें।

७. हे विप्र और जातधन तथा मनुष्यों के यज्ञ में कर्मकर्त्ता, यज्ञ करने के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। स्तुति हो जाने पर हमारे अकुटिल यज्ञ को देवाभिमुख करो। देवों के बीच विद्यमान वरणीय धन का विभाग कर दो।

८. भारतीगण (सूर्य-सम्बन्धियों) के साथ भारती (अग्नि) आवें। देवों और मनुष्यों के साथ इला (अग्नि) भी आवें। सारस्वतों (अन्तरिक्षस्थ वचनों) के साथ सरस्वती आवें। ये तीनों देवियाँ आकर इन कुशों पर बैठें।

९. अग्निरूप त्वष्टा देव, जिससे वीर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमाभिषव के लिए प्रस्तर-हस्त और देवाभिलाषी पुत्र उत्पन्न हो सके, तुम सन्तुष्ट होकर हमें वैसा ही रक्षा-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो।

१०. अग्निरूप वनस्पति, देवों को पास ले आओ। पशु के संस्कारक अग्नि वनस्पति देवों के लिए हव्य दें। वे ही यज्ञ-रूप देवता लोगों को बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि वे ही देवों का जन्म जानते हैं।

११. अग्नि, तुम दीप्तिशाली होकर इन्द्र और शीघ्रताकारी देवों के साथ एक रथ पर हमारे सामने आओ। सुपुत्र-युक्ता अदिति हमारे कुश पर बैठें। नित्य देवगण अग्नि-रूप स्वाहाकारवाले होकर तृप्ति प्राप्त करें।

३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवो, जो अग्नि मनुष्यों में स्थिर भाव से रहते हैं, जो यज्ञवान्, तापक, तेजःशाली, घृतान्न-सम्पन्न और शोधक हैं, जो याज्ञिकों में

श्रेष्ठ हैं और अन्य अग्नि-समूह के साथ मिलित होते हैं, उन्हीं अग्निदेव को यज्ञ में तुम दूत बनाओ।

२. जिस समय अश्व की तरह घास का भक्षण और शब्द करते हुए महान् निरोध के साथ वृक्षों में दारु-रूप अग्नि अवस्थित रहते हैं, उस समय उनकी दीप्ति प्रवाहित होती है। इसके अनन्तर, अग्निदेव, तुम्हारा मार्ग काला (धुआँवाला) हो जाता है।

३. अग्नि, नवजात और वर्षक तुम्हारी जो अजर ज्वाला समिद्ध होकर ऊपर उठती है, उसका रोचक धूम द्युलोक में जाता है। अग्निदेव, दूत होकर तुम देवों को प्राप्त होते हो।

४. अग्नि, जिस समय तुम दाँतों (ज्वालाओं) से काष्ठादि अन्नों का भक्षण करते हो, उस समय तुम्हारा तेज पृथिवी में मिल जाता है। सेना की तरह विमुक्त होकर तुम्हारी ज्वाला जाती है। अग्निदेव, अपनी ज्वाला से जौ की तरह काष्ठ आदि का भक्षण करते हो।

५. तरुण अतिथि की तरह पूज्य अग्नि की, उनके स्थान पर, रात और दिन में, पूजा करते हुए मनुष्य सदागामी अश्व की तरह अग्नि की सेवा करते हैं। आहूत और अभीष्टवर्षी अग्नि की शिखा प्रदीप्त होती है।

६. सुन्दर तेजवाले अग्नि, जिस समय तुम सूर्य की तरह समीप में दीप्ति पाते हो, उस समय तुम्हारा रूप दर्शनीय हो जाता है। अन्तरिक्ष से तुम्हारा तेज बिजली की तरह निकलता है। दर्शनीय सूर्य की तरह ही तुम भी स्वयं अपना प्रकाश करते हो।

७. अग्नि, जैसे हम लोग गव्य और घृत-युक्त हव्य के द्वारा तुम्हें स्वाहा दान करते हैं, अग्नि, तुम भी वैसे ही, असीम तेजोबल के साथ, अपरिमित लौहमय अथवा सुवर्णमय पुरियों-द्वारा, हमारी रक्षा करना।

८. बल के पुत्र और जातधन अग्नि, तुम दानशील हो, तुम्हारी जो शिखायें हैं और जिन वाक्यों-द्वारा पुत्रवान् प्रजागण की तुम रक्षा करते हो, इन दोनों से हमारी रक्षा करो। प्रशस्त और हव्य-दाता स्तोताओं की रक्षा करो।

९. जिस समय विशुद्ध अग्नि अपने शरीर द्वारा कृपा-परवश और रोचक होकर तीक्ष्ण फरसे की तरह काष्ठ से निकलते हैं, उस समय वे यज्ञ के योग्य होते हैं। सुन्दर, सुकृती और शोधक अग्नि मातृ-रूप दो काष्ठों से उत्पन्न हुए हैं।

१०. अग्नि, हमें यही सुन्दर धन दो। हम याज्ञिक और विशुद्धान्तःकरण पुत्र प्राप्त कर सकें। सारा धन उद्गाताओं और स्तोताओं का हो। तुम सदा हमें कल्याण-कार्य के द्वारा पालन करो।

४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हविवालो, तुम शुभ्र और दीप्त अग्नि को शुद्ध हव्य और स्तुति प्रदान करो। अग्नि देवों और मनुष्यों के समस्त पदार्थों के बीच प्रज्ञा-द्वारा गमन करते हैं।

२. दो काष्ठों (अरणि-द्वय) से, तरुणतम होकर, अग्नि उत्पन्न हुए हैं; इसलिए वही मेधावी अग्नि तरुण बनें। दीप्तशिख अग्नि वनों को जलाते और क्षणमात्र में ही यथेष्ट अन्न का भक्षण कर डालते हैं।

३. मनुष्य जिन शुभ्र अग्नि को मुख्य स्थान में परिग्रहण करते हैं और जो पुरुषों-द्वारा गृहीत वस्तु की सेवा करते हैं, वही मनुष्यों के लिए शत्रुओं की दुःसेव्य रूप से दीप्ति पाते हैं।

४. कवि, प्रकाशक और अमर अग्नि अकवि मनुष्यों के बीच निहित हैं। अग्नि, हम तुम्हारे लिए सदा सुबुद्धि रहेंगे। हमें नहीं मारना।

५. अग्नि ने प्रज्ञा-द्वारा देवों को तारा है; इसलिए वे देवों के स्थान पर बैठते हैं। ओषधियाँ, वृक्ष, धारक और गर्भ में वर्त्तमान अग्नि का धारण करते हैं; पृथ्वी भी अग्नि को धारण करती है।

६. अग्नि अधिक अमृत देने में समर्थ हैं; सुन्दर अमृत देने में समर्थ हैं। बली अग्नि, हम पुत्रादि से शून्य होकर नहीं बैठें; रूप-रहित होकर न बैठें; सेवा-शून्य होकर भी नहीं बैठें।

७. ऋण-रहित व्यक्ति के पास यथेष्ट धन रहता है; इसलिए हम नित्य धन के पति होंगे। अग्नि, हमारी सन्तान अन्यजात (अनौरस) न हो। मूर्ख का मार्ग नहीं जानना।

८. अन्यजात (दत्तक पुत्र) पुत्र सुखावह होने पर भी उसे पुत्र कहकर ग्रहण नहीं किया जा सकता या नहीं समझा जा सकता; क्योंकि वह फिर अपने ही स्थान पर जा पहुँचता है। इसलिए अन्नवान्, शत्रुहन्ता और नवजात शिशु हमें प्राप्त हो।

९. अग्नि, तुम हमें हिंसक से बचाओ। बली अग्नि, तुम हमें पाप से बचाओ। निर्दोष अन्न तुम्हारे पास जाय। अभिलषणीय हजारों प्रकार के धन हमें प्राप्त हों।

१०. अग्नि, हमें यही सुन्दर धन दो। हम यज्ञ-सेवी और विशुद्धान्तः-करण पुत्र प्राप्त करें। सारा धन उद्गाताओं और स्तोताओं का हो। तुम लोग सदा हमें कल्याण-कार्य के द्वारा पालन करो।

५ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो वैश्वानर अग्नि यज्ञ में जागे हुए सारे देवों के साथ बढ़ते हैं, उन्हीं प्रबुद्ध और अन्तरिक्ष तथा पृथिवी पर गतिशील अग्नि को लक्ष्य कर स्तुति करो।

२. जो नदियों के नेता, जलवर्षक और पूजित अग्नि अन्तरिक्ष और पृथिवी पर निकले हैं, वही वैश्वानर नामक अग्नि हव्य-द्वारा वर्द्धित होकर मनुष्य-प्रजा के सामने शोभा पाते हैं।

३. वैश्वानर अग्नि, जिस समय तुम पुरु के पास दीप्त होकर उनके शत्रु की पुरी को विदीर्ण कर प्रज्वलित हुए थे, उस समय तुम्हारे डर से असितवर्ण प्रजा, परस्पर असमान होकर, भोजन छोड़कर आई थी।

४. वैश्वानर अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक तुम्हारे लिए

प्रीतिजनक कर्म करते हैं। तुम सतत प्रकाश-द्वारा विभासित होकर अपनी दीप्ति से द्यावापृथिवी को विस्तृत करते हो।

५. वैश्वानर अग्नि, तुम मनुष्यों के स्वामी, धनों के नेता और उषा तथा दिन के महान् केतुस्वरूप हो। अश्वगण कामना करके तुम्हारी सेवा करते हैं। पाप-नाशक और घृत-युक्त वाक्य तुम्हारी सेवा करते हैं।

६. मित्रों के पूजयिता अग्नि, वसुओं ने तुममें बल स्थापित किया है; तुम्हारे कर्म की सेवा की है। आर्य (कर्म-निष्ठ) के लिए अधिक तेज उत्पन्न करते हुए दस्युओं (अनार्यों) को उनके स्थानों से बाहर निकाल दिया है।

७. तुम दूरस्थ अन्तरिक्ष में सूर्य-रूप से प्रकट होकर वायु की तरह सबसे पहले सदा सोमपान करते हो। जातधन अग्नि, जल उत्पन्न करते हुए अपत्य की तरह पालनीय व्यक्ति को अभिलाषायें देते हुए विद्युद्रूप से गर्जन करते हो।

८. सबके वरणीय अग्निदेव, जिस अन्न के द्वारा धन की रक्षा करते हो और हव्यदाता मनुष्य के विस्तृत यश की रक्षा करते हो, हमें तुम वही दीप्तिमान् अन्न दो।

९. अग्नि, हम हविर्दाताओं को प्रभूत अन्न, धन और श्रवणीय बल दो। वैश्वानर अग्नि, तुम रुद्रों और वसुओं के साथ हमें महान् सुख दो।

६ सूक्त

(देवता वैश्वानर अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मैं पुरियों के भेदकों की वन्दना करता हूँ। वन्दन करके सम्राट्, असुर, वीर और मनुष्यों की स्तुति के योग्य तथा बलवान् इन्द्र की तरह उन्हीं वैश्वानर की स्तुति और कर्मों का कीर्त्तन करता हूँ।

२. अग्निदेव प्राज्ञ, प्रज्ञापक, पर्वतधारी, दीप्तिशाली, सुखदाता और द्यावापृथिवी के राजा हैं। देवगण उन्हीं अग्नि को प्रसन्न करते हैं। मैं

पुरी-बिदारक अग्नि के प्राचीन और महान् कर्मों की, स्तुति-द्वारा, कीर्त्ति गाता हूँ।

३. अग्नि यज्ञ-शून्य, जल्पक, हिंसित-वचन, श्रद्धा-रहित, वृद्धि-शून्य और यज्ञ-रहित पणिनायक दस्युओं को विदूरित करें। अग्नि मुख्य होकर अन्य यज्ञ-शून्यों को हेय बनावें।

४. नेतृतम अग्नि ने अप्रकाशमान अन्धकार में निमग्न प्रजा को प्रसन्न करते हुए प्रज्ञा-द्वारा प्रजा को सरल-गामिनी किया था। मैं उन्हीं धनाधिपति, अनत और योद्धाओं का दमन करनेवाले अग्नि की स्तुति करता हूँ।

५. जिन्होंने आसुरी विद्या को आयुध से हीन किया है और जिन्होंने सूर्यपत्नी उषा की सृष्टि की है, उन्हीं अग्नि ने प्रजा को बल-द्वारा रोककर नहुष राजा को करदाता बनाया था।

६. सारे मनुष्य, सुख के लिए, जिनकी कृपा पाने के अर्थ हव्य के साथ उपस्थित होते हैं, वही वैश्वानर अग्नि पितृ-मातृ-तुल्य द्यावापृथिवी के बीच स्थित अन्तरिक्ष में आये हैं।

७. वैश्वानर अग्नि सूर्य के उदय होने पर अन्तरिक्ष के अन्धकार को लेते हैं। अग्नि निम्नस्थ अन्तरिक्ष का अन्धकार ग्रहण करते हैं। वे पर समुद्र से, द्युलोक से और पृथिवी से अन्धकार ग्रहण करते हैं।

७ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्निदेव, तुम राक्षसादिकों के अभिभविता और अश्व की तरह वेगशाली हो। अग्नि, तुम विद्वान् हो। हमारे यज्ञ के दूत बनो। तुम स्वयं देवों में "वनद्रुम" कहकर विख्यात हो।

२. अग्नि, तुम स्तुति-योग्य हो और देवों के साथ तुम्हारी मित्रता है। तुम अपने तेजोबल से पृथिवी के तटप्रदेश (तृणगुल्मादि) को

शब्दायमान करते हुए अपनी ज्वालाओं से सारे बन को जलाकर अपने मार्ग-द्वारा आओ।

३. तरुणतम अग्नि, जिस समय तुम सुन्दर मुखवाले होकर उत्पन्न होते हो, उस समय यज्ञ किया जाता और कुश रक्खा जाता है। स्तुति-योग्य अग्नि और होता तृप्त होते हैं और सबके लिए स्वीकरणीय मातृ-भूत द्यावापृथिवी बुलाई जाती हैं।

४. विद्वान् लोग यज्ञ में नेता, अग्नि को तुरत उत्पन्न करते हैं। जो इनका हव्य वहन करते हैं, वही विश्वपति, मादक, मधु-वचन और यज्ञवान् अग्नि मनुष्यों के घरों में निहित हैं।

५. जिन अग्नि को द्युलोक और पृथिवी वद्धित करती है और जिन विश्व-स्वीकरणीय अग्नि का होता यज्ञ करता है, वही हव्यवाहक, ब्रह्मा और सबके धारक अग्नि द्युलोक से आकर मनुष्यों के घरों में बैठे हुए हैं।

६. जिन मनुष्यों ने यथेष्ट मन्त्र-संस्कार किया है, जो श्रवणेच्छु होकर वद्धित करते हैं और जिन्होंने सत्यभूत अग्नि को प्रदीप्त किया है, वे अन्न-द्वारा सारे पोष्य वृन्द को वद्धित करते हैं।

७. बल के पुत्र अग्नि, तुम वसुओं के पति हो। वसिष्ठगण तुम्हारे स्तोता हैं। तुम स्तोता और हविष्मान् को अन्न-द्वारा शीघ्र व्याप्त करो। हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिन अग्नि का रूप घृत से आहूत होता है और हव्य के साथ बाधा-युक्त होकर जिनकी स्तुति नेता लोग करते हैं, वही राजा और स्वामी अग्नि स्तुति के साथ समिद्ध होते हैं। उषा के आगे अग्नि दीप्त होते हैं।

२. यही होता, मादक और विशाल अग्नि मनुष्यों-द्वारा महान् गिने

जाते हैं। अग्नि दीप्ति फैलाते हैं। यह कृष्णमार्ग अग्नि पृथिवी पर सृष्ट होकर ओषधियों-द्वारा परिवर्द्धित होते हैं।

३. अग्नि, तुम किस हवि-द्वारा हमारी स्तुति को व्याप्त करोगे? स्तूयमान होकर तुम कौन स्वधा प्राप्त करोगे? शोभन दानवाले अग्निदेव, हम कब दुस्तर समीचीन धन के पति और विभागकारी होंगे?

४. जिस समय ये अग्नि सूर्य की तरह विशाल प्रतापशाली होकर प्रकाश पाते हैं, उस समय वे भरत (यजमान) द्वारा प्रसिद्ध होते हैं। जिन्होंने युद्धों में पुरु को अभिभूत किया है, वही दीप्यमान और देवों के अतिथि अग्नि प्रज्वलित हुए।

५. अग्नि, तुम्हें यथेष्ट हव्य प्रदत्त हुआ है। सारे तेजों के लिए प्रसन्न होओ और स्तोता का स्तोत्र सुनो। सुजन्मा अग्नि, स्तूयमान होकर स्वयं शरीर वर्द्धित करो।

६. सौ गौओं के विभागकारी और हज़ार गौओं से संयुक्त तथा विद्या और कर्म से महा वसिष्ठ ने इस स्तोत्र को अग्नि के लिए उत्पन्न किया है।

७. बल-पुत्र अग्नि, तुम वसुओं के पति हो। वसिष्ठगण तुम्हारे स्तोता हैं। तुम स्तोता और हविष्मान् को अन्न-द्वारा शीघ्र व्याप्त करो। हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि सब प्राणियों के जार, होता, मदयिता, प्राज्ञतम और शोधक हैं। वह उषा के बीच जागे हैं। वह देवों और मनुष्यों की प्रज्ञा धारण करते हैं। देवों में हव्य और पुण्यात्माओं में धन धारण करते हैं।

२. जिन अग्नि ने पणियों का द्वार खोला था, वही सुकृती हैं। वे हमारे लिए बहु-क्षीर-युक्त और अर्चनीय गायों का हरण करते हैं। वे

देवों को बुलानेवाले, मदयिता और शान्तमना हैं। अग्नि रात्रि और यजमान का अन्धकार दूर करते देखे जाते हैं।

३. अमूढ़, प्राज्ञ (कवि), नवीन, दीप्तिमान्, शोभन गृह से युक्त, मित्र, अतिथि और हमारे मङ्गल-विधायक अग्नि, विशिष्ट दीप्ति से युक्त होकर, उषा के मुख में शोभा पाते और सलिल के गर्भ-रूप से उत्पन्न होकर ओषधियों में प्रवेश करते हैं।

४. अग्नि, तुम मनुष्यों के यज्ञ-काल में स्तुति-योग्य हो। जातधन अग्नि युद्ध में सङ्गत होकर दीप्ति पाते हैं। वे दर्शनीय तेज-द्वारा शोभा पाते हैं। स्तुतियाँ समिद्ध अग्नि को प्रतिबोधित करती हैं।

५. अग्नि, तुम देवों के सामने दूत-कार्य के लिए जाओ। संघ के साथ स्तोताओं को नहीं मारना। हमें रत्न देने के लिए तुम सरस्वती, मरुद्गण, अश्विद्वय, जल आदि सारे देवों का यज्ञ करते हो।

६. अग्नि, वसिष्ठ तुम्हें समिद्ध करते हैं। तुम कठोर-भाषी राक्षसों को मारो। जातवेद अग्नि, अनेक स्तोत्रों से देवों की स्तुति करो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

१० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. उषा के जार सूर्य की तरह अग्नि विस्तीर्ण तेज का आश्रय ग्रहण करते हैं। अत्यन्त दीप्तिमान्, काम-वर्षी, हव्य-प्रेरक और शुद्ध अग्नि कर्मों को प्रेरित करके दीप्ति-द्वारा प्रकाश पाते हैं। अग्नि अभिलाषियों को जगाते हैं।

२. दिन में अग्नि उषा के आगे ही सूर्य की तरह शोभा पाते हैं। यज्ञ का विस्तार करते हुए ऋत्विक्गण मननीय स्तोत्रों का पाठ करते हैं। विद्वान्, दूत, देवों के पास गमनकर्ता और दातृ-श्रेष्ठ अग्निदेव प्राणियों को द्रवीभूत करते हैं।

३. देवाभिलाषी, धन-याचक और गतिशील स्तुति-रूप वाक्य अग्नि के सामने जाते हैं। वे अग्नि दर्शनीय, सुरूप, सुन्दर-गमनकारी, हव्य-वाहक और मनुष्यों के स्वामी हैं।

४. अग्नि, तुम वसुओं के साथ मिलकर हमारे लिए इन्द्र का आह्वान करो; रुद्रों के साथ संगत होकर महान् रुद्र का आह्वान करो; आदित्यों के साथ मिलकर विश्व-हितैषी अदिति को बुलाओ और स्तुत्य अङ्गिरा लोगों के साथ मिलकर सबके वरणीय बृहस्पति को बुलाओ।

५. अभिलाषी मनुष्य स्तुत्य, होता और तरुणतम अग्नि की यज्ञ में स्तुति करते हैं। अग्नि रात्रिवाले हैं। वह देवों के यज्ञ के लिए हव्य-दाता के तन्द्रा-शून्य दूत हुए थे।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि, तुम यज्ञ के प्रज्ञापक होकर महान् हो, तुम्हारे बिना देव लोग मत्त नहीं होते। तुम सारे देवों के साथ रथ-युक्त होकर आओ और कुशों पर, मुख्य होता बनकर, बैठो।

२. अग्नि, तुम गमनशील हो। हविर्दाता मनुष्य तुमसे सदा दौत्य-कार्य के लिए प्रार्थना करते हैं। जिस यजमान के कुशों पर तुम देवों के साथ बैठते हो, उसके दिन शोभन होते हैं।

३. अग्नि, ऋत्विक् लोग दिन में तीन बार हव्यदाता मनुष्य के लिए तुम्हारे बीच हव्य फेंकते हैं। मनु की तरह तुम इस यज्ञ में दूत होकर यज्ञ करो और हमें शत्रुओं से बचाओ।

४. अग्नि महान् यज्ञ के स्वामी हैं; अग्नि सारे संस्कृत हव्यों के पति हैं। वसु लोग इनके कर्म की सेवा करते हैं और देवों ने अग्नि को हव्यवाहक बनाया है।

५. अग्नि, हव्य का भक्षण करने के लिए देवों को बुलाओ। इस

यज्ञ में इन्द्र आदि देवों को प्रमत्त करो। इस यज्ञ को द्युलोक में, देवों के पास, ले जाओ। सदा तुम स्वस्ति-द्वारा हमारा पालन करो।

१२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो अपने गृह में समिद्ध होकर दीप्ति पाते हैं, उन्हीं तरुणतम, विस्तीर्ण, द्यावापृथिवी के मध्य में स्थित, विचित्र शिखावाले, सुन्दर रूप में आहुत और सर्वत्र जानेवाले अग्नि के पास हम नमस्कार के साथ गमन करते हैं।

२. जातधन अग्नि अपनी महिमा द्वारा सारे पापों का अभिभव करते हैं। वे यज्ञ-गृह में स्तुत होते हैं। वे हमें पाप और निन्दित कर्म से बचावें। हम उनकी स्तुति और यज्ञ करते हैं।

३. अग्नि, तुम्हीं मित्र और वरुण हो। वसिष्ठवंशीय स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं। तुममें विद्यमान धन सुलभ हो। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

१३ सूक्त

(देवता अग्नि वैश्वानर। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सबके उद्दीपक, कर्म के धारक और असुर-विघातक अग्नि को लक्ष्य कर स्तोत्र और कर्म करो। मैं प्रसन्न होकर मनोरथ-दाता वैश्वानर अग्नि को लक्ष्य कर यज्ञ में, हव्य के साथ, स्तुति करता हूँ।

२. अग्नि, तुमने दीप्ति-द्वारा दीप्त और उत्पन्न होकर द्यावापृथिवी को पूर्ण किया है। जातधन वैश्वानर, अपनी महिमा-द्वारा तुमने देवों को शत्रुओं से मुक्त किया है।

३. अग्नि, तुम सूर्य-रूप से उत्पन्न हो, स्वामी हो, सर्वत्र गमनशील हो। जैसे गोपालक पशुओं का सन्दर्शन करता है, वैसे ही तुम जिस समय भूतों का सन्दर्शन करते हो, उस समय स्तोत्र-रूप फल प्राप्त करो। सदा तुम हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

१४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती और त्रिष्टुप्।)

१. हम हविवाले हैं। हम समिधा-द्वारा जातवेदा अग्नि की सेवा करते हैं। देव-स्तुति-द्वारा हम अग्नि की सेवा करेंगे। हव्य-द्वारा शुभ्र दीप्ति अग्नि की सेवा करेंगे।

२. अग्नि, समिधा-द्वारा हम तुम्हारी सेवा करेंगे। हे यजनीय, हम स्तुति-द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे। हे कल्याणमयी ज्वालावाले अग्नि, हम हव्य-द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे।

३. अग्नि, तुम हव्य (वषट्कृति) का सेवन करते हुए देवों के संग हमारे यज्ञ में आओ। तुम प्रकाशमान हो; हम तुम्हारे सेवक बनें। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

१५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द गायत्री।)

१. जो अग्नि हमारे समीपतप बन्धु हैं, उन्हीं के पास में बैठनेवाले और मनोरथवर्षक अग्नि के लिए, उनके मुख में, ऋत्विको, हव्य दो।

२. प्राज्ञ, गृह-पालक और नित्य तरुण अग्नि पञ्चजनों (चार वर्णों और निषाद) के सामने घर-घर बैठते हैं।

३. वेही अग्नि हमारे मन्त्री हैं। बाधा से सारे धन की रक्षा करें। हमें पाप से बचाओ।

४. हम द्युलोक के, श्येन पक्षी की तरह शीघ्रगामी अग्नि को उद्देश-कर नया मन्त्र उत्पन्न करते हैं। वे हमें बहुत धन दें।

५. यज्ञ के अग्रभाग में दीप्यमान अग्नि की दीप्तियाँ पुत्रवान् मनुष्य के धन की तरह नेत्रों को स्पृहणीय होती हैं।

६. याज्ञिकों के उत्तम हव्य-वाहक अग्नि इस हव्य की अभिलाषा करें और हमारी स्तुति की सेवा करें।

७. हे समीप जाने योग्य, विश्व-पति और यजमानों-द्वारा बुलाये गये अग्निदेव, तुम प्रकाशमान और सुवीर हो। हमने तुम्हें स्थापित किया है।

८. तुम दिन-रात प्रदीप्त होओ। इससे हम शोभन अग्निवाले होंगे। हमें चाहते हुए तुम सुवीर (सुन्दर स्तोत्रवाले) बनो।

९. अग्नि, प्रतापी यजमान कर्म-द्वारा, धन-लाभ के लिए, तुम्हारे पास जाते हैं।

१०. शुभ्र शिखावाले, अमर, स्वयंशुद्ध, शोधक और स्तुति-योग्य अग्नि, राक्षसों को बाधा दो।

११. बल के पुत्र, तुम जगदीश्वर होकर हमें धन दो। भग देवता भी वरणीय धन दान करें।

१२. अग्नि, तुम पुत्र-पौत्रादि से युक्त अन्न दो। सविता देव भी वरणीय धन दें। भग और अदिति भी दें।

१३. अग्नि, हमें पाप से बचाओ। अजर देव, तुम हिंसकों को अत्यन्त तापक तेज-द्वारा जलाओ।

१४. तुम दुर्द्धर्ष हो। इस समय तुम हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिए महान् लौह से निर्मित शतगुणपुरी बनाओ (ताकि लौह-नगरी में शत्रु हमें न मार सकें)।

१५. अहिंसनीय रात्रि को अथवा अन्धकार को हटानेवाले अग्नि, तुम हमें पाप से और पाप-कामी व्यक्ति से दिन-रात बचाओ।

१६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती और सती बृहती।)

१. तुम्हारे लिए बल के पुत्र, प्रिय विद्वच्छ्रेष्ठ, गतिशील सुन्दर यज्ञ-वाले, सबके दूत और नित्य अग्नि को, इस स्तोत्र के द्वारा, मैं बुलाता हूँ।

२. अग्नि धनकर और सबके पालक हैं। वे दोनों अश्वों को रथ में जोतते हैं। वे देवों के प्रति अत्यन्त द्रुत-गमन करते हैं। वे सुन्दर

रूप से आहूत सुन्दर स्तुतिवाले, यजनीय और सुकर्मा हैं। वसिष्ठवंशियों का धन अग्नि के पास जाय।

३. अभीष्टकारी और बुलाये जानेवाले इन अग्नि का तेज ऊपर उठ रहा है। रुचिकर और आकाश छूनेवाले धुएँ उठ रहे हैं। मनुष्य अग्नि को जला रहे हैं।

४. बल-पुत्र अग्नि, तुम यशः-शाली हो। हम तुम्हें दूत बनाते हैं। हव्य-भक्षण के लिए देवों को बुलाओ। जिस समय तुम्हारी हम याचना करते हैं, उस समय मनुष्यों के भोग-योग्य धन हमें दो।

५. विश्व-माननीय अग्नि, तुम हमारे यज्ञ में गृह-पति हो। तुम होता, पोता और प्रकृष्ट-बुद्धि हो। वरणीय हव्य का यज्ञ करो और भक्षण करो।

६. सुन्दरकर्मा अग्नि, तुम यजमान को रत्न दो। तुम रत्न-दाता हो। हमारे यज्ञ में सबको तेज बनाओ। जो होता बढ़ता है, उसे बढ़ाओ।

७. सुन्दर रूप से आहूत अग्नि, तुम्हारे स्तोता प्रिय हों। जो धनवान् दाता लोग जन-समुदाय और गौ-समूह दान करते हैं, वे भी प्रिय हों।

८. जिन घरों में घृतहस्ता, अन्न-रूपा और हविर्लक्षणा देवी पूर्णा होकर बैठी हैं, उनको, हे बलवान् अग्नि, द्रोहियों और निन्दकों से बचाओ। हमें बहुत समय तक स्तुति-योग्य सुख दो।

९. अग्नि, तुम हव्य-वाहक और विद्वान् हो। मोदयित्री और मुख-स्थिता जिह्वा-द्वारा हमें धन दो। हम हव्य वाले हैं। हव्यदाता को कर्म में प्रेरित करो।

१०. तरुणतम अग्नि, जो यजमान महान् यश की इच्छा से साधक-रूप और अश्वात्मक हव्य दान करते हैं, उन्हें पाप से बचाओ और सौ नगरियों-द्वारा पालन करो।

११. धनदाता अग्निदेव तुम्हारे हविःपूर्ण स्रुक् वा चमस की इच्छा करते हैं। सोम-द्वारा तुम पात्र सिद्ध करो, सोमदान करो। अनन्तर अग्निदेव तुम्हें वहन करते हैं।

१२. देवो, तुमने उत्तम-बुद्धि अग्नि को यज्ञ-वाहक और होता बनाया है। वे अग्नि परिचर्याकारी हव्यदाता जन को शोभन वीर्यवाला और रमणीय धन दें।

१७ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि, शोभन समिधा के द्वारा समिद्ध होओ। अध्वर्यु भली भाँति कुश फैलावें।

२. देव-कामी द्वारों को आश्रित करो और यज्ञाभिलाषी देवों को इस यज्ञ में बुलाओ।

३. जातधन अग्नि, देवों के सामने जाओ। हव्य-द्वारा देवों का यज्ञ करो और देवों को शोभन यज्ञवाले करो।

४. जातधन अग्नि, अमर देवों को सुन्दर यज्ञ से युक्त करो। हव्य से यज्ञ करो और स्तोत्र से प्रसन्न करो।

५. हे सुबुद्धि अग्नि, समस्त वरणीय धन हमें दान करो। हमारे आशीर्वाद आज सत्य हों।

६. अग्नि, तुम बल-पुत्र हो। तुम्हें उन्हीं देवों ने हव्यवाहक बनाया है।

७. तुम प्रकाशमान हो। तुम्हें हम हवि देंगे। तुम महान् और पास जाने योग्य हो। हमें रत्न (धन) दान करो।

१८ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता इन्द्र किन्तु २२—२५ मन्त्रों के सुदास। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, हमारे पितरों ने, स्तुति करते हुए, तुमसे ही सारे मनोहर धनों को प्राप्त किया है। तुमसे ही गायें सरलता से दोहन में समर्थ होती हैं। तुममें अश्व हैं, देवाभिलाषी व्यक्ति को तुम प्रभूत धन देते हो।

२. इन्द्र, पत्नियों के साथ राजा की तरह तुम दीप्ति के साथ रहते हो। इन्द्र, तुम विद्वान् और क्रान्त-कर्मा (कवि) होकर स्तोताओं को रूप दान करो और गौ तथा अश्व-द्वारा रक्षा करो। हम तुम्हारी कामना करते हैं। धन के लिए तुम हमें संस्कृत करो।

३. इन्द्र, इस यज्ञ की स्पर्द्धमान और रमणीय स्तुतियाँ तुम्हारे पास जाती हैं। तुम्हारा धन हमारी ओर आवे। तुम्हारी कृपा प्राप्त कर हम सुखी होंगे।

४. बढ़िया घासवाली गोशाला की गाय की तरह तुम्हें दूहने की इच्छा से वसिष्ठ वत्स-रूप स्तोत्र बनाते हैं। समस्त संसार तुम्हें ही गायों का पति कहता है। इन्द्र, हमारी सुन्दर स्तुति के पास आओ।

५. स्तवनीय इन्द्र, तुमने परुष्णी नदी के जल के विकट-धार होने पर भी, सुदास राजा के लिए जल को तलस्पर्श और पार करने के योग्य बना दिया था। स्तोता के लिए नदियों के तरंगायित और रोकनेवाले शाप को तुमने दूर किया था।

६. याज्ञिक और पुरोदाता तुर्वश नाम के एक राजा थे। जल में मत्स्य की तरह बँधे रहने पर भी भृगुओं और द्रुह्युओं ने धन के लिए सुदास और तुर्वश का साक्षात्कार करा दिया। इन दोनों व्याप्ति-परायणों में एक (तुर्वश) का इन्द्र ने वध किया और अन्य (सुदास) को तार दिया।

७. हव्यों के पाचक, कल्याण-मुख, तपस्या से अप्रवृद्ध, विषाण-हस्त (दीक्षित) और मंगलकारी व्यक्ति इन्द्र की स्तुति करते हैं। सोमपान से मत्त होकर इन्द्र आर्य की गायें हिंसकों से छुड़ा लाये थे। स्वयं गायों को प्राप्त किया था और युद्ध करके उन गो-तस्कर रिपुओं को मारा था।

८. दुष्ट-मानस और मन्दमति शत्रुओं ने परुष्णी नदी को खोदते हुए उसके तटों को गिरा दिया था। इन्द्र की कृपा से सुदास विश्व-व्यापक हो गये थे। चयमान का पुत्र कवि, पालित पशु की तरह, सुदास-द्वारा सुला दिया गया अर्थात् मार दिया गया।

९. इन्द्र-द्वारा परुष्णी के तट ठीक कर दिये जाने पर उसका जल गन्तव्य स्थान की ओर, नदी में चला गया—इधर-उधर नहीं गया। सुदास राजा का घोड़ा भी अपने गन्तव्य स्थान को चला गया। सुदास के लिए इन्द्र ने मनुष्यों में सन्ततिवाले और बकवादी शत्रुओं को, उनकी सन्ततियों के साथ, वश में किया था।

१०. जैसे चरवाहों के बिना गायें जौ की ओर जाती हैं, वैसे ही माता-द्वारा भेजे गये और एकत्र मरुद्गण, अपनी पूर्व की प्रतिज्ञा के अनुसार, मित्र इन्द्र की ओर गये। मरुतों के नियुत् (घोड़े) भी प्रसन्न होकर गये।

११. कीर्ति अर्जित करने के लिए राजा सुदास ने दो प्रदेशों के २१ मनुष्यों का वध कर डाला था। जैसे युवक अध्वर्यु यज्ञ-गृह में कुश काटता है, वैसे ही वह राजा शत्रुओं को काटता है। वीर इन्द्र ने सुदास की सहायता के लिए मरुतों को उत्पन्न किया था।

१२. इसके सिवा वज्रबाहु इन्द्र ने श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु नामक व्यक्तियों को पानी में डुबो दिया था। उस समय जिन लोगों ने तुमकी इच्छा करके उनकी स्तुति की थी, वे सखा माने गये और मित्र बन गये।

१३. अपनी शक्ति से इन्द्र ने उक्त श्रुत आदि की सुदृढ़ समस्त नग-रियों को और सात प्रकार के रक्षा-साधनों को तुरत विदीर्ण किया था। अनु के पुत्र के गृह को तृत्सु को दे दिया था। इन्द्र, हम दुष्ट वचनवाले मनुष्य को जीत सकें—इन्द्र, ऐसी कृपा करो।

१४. अनु और द्रुह्यु की गौओं को चाहनेवाले छियासठ हजार छियासठ सम्बन्धियों को, सेवाभिलाषी सुदास के लिए, मारा गया था। यह सब कार्य इन्द्र की शूरता के सूचक हैं।

१५. दुष्ट मित्रोंवाले ये अनाड़ी तृत्सुलोग इन्द्र के सामने युद्ध-भूमि में उतरने पर पलायन करने पर उद्यत होने पर निम्नगामी जल की तरह दौड़े थे; परन्तु बाधा प्राप्त होने पर उन लोगों ने सारी भोग्य वस्तुएँ सुदास को दे दी थीं।

१६. वीर्य-शाली सुदास के हिंसक, इन्द्र-शून्य, हव्यदाता और उत्साही मनुष्यों को इन्द्र ने धराशायी किया था। इन्द्र ने क्रोधियों के क्रोध को चौपट किया था। मार्ग में जाते हुए सुदास के शत्रु ने पलायन-पथ का आश्रय लिया था।

१७. इन्द्र ने उस समय दरिद्र सुदास के द्वारा एक कार्य कराया था। प्रबल सिंह को छाग-द्वारा मरवाया था। सूई से यूपादि का कोना काट दिया था। सारा धन सुदास राजा को प्रदान किया था।

१८. इन्द्र, तुम्हारे अधिकांश शत्रु वशी हो गये हैं। मनस्वी भेद (नास्तिक) को वश में करो। जो तुम्हारी स्तुति करता है, भेद उसी का अहित करता है। इसके विरोध में तेज योद्धा को उत्साहित करो (भेजो)। इसे वज्र से मारो।

१९. इस युद्ध में इन्द्र ने भेद का वध किया था। यमुना ने इन्द्र को सन्तुष्ट किया था। तृत्सुओं ने भी उन्हें सन्तुष्ट किया था। अज, शिग्रु और यक्षु नामक जनपदों ने इन्द्र को, अश्वों के सिर, उपहार में दिये थे।

२० इन्द्र, तुम्हारी प्राचीन कृपायें और धन, उषा के समान, वर्णन करने योग्य नहीं हैं। तुम्हारी नई कृपायें और धन भी वर्णनातीत हैं। तुमने मन्यमान के पुत्र देवक का वध किया था। स्वयं विशाल शैल-खण्ड से शम्बर का वध किया था।

२१. इन्द्र, अनेक राक्षस जिनके वध की इच्छा करते हैं, उन्हीं पराशर, वसिष्ठ आदि ऋषियों ने, तुम्हारी इच्छा करके, अपने गृह की ओर जाते हुए, तुम्हारी स्तुति की थी। वे तुम्हारा सख्य नहीं भूले; क्योंकि तुम उनका पालन नहीं भूले, जिससे उनके दिन सदा सुन्दर रहते हैं।

२२. देवों में श्रेष्ठ इन्द्र, देववान् राजा के पौत्र और पिजवन के पुत्र राजा सुदास की दो सौ गौओं और दो रथों को मैंने, इन्द्र की स्तुति करके, पाया है। जैसे होता यज्ञ-गृह में जाता है, वैसे ही मैं भी गमन करता हूँ।

२३. पिजवनपुत्र सुदास राजा के श्रद्धा, दान आदि से युक्त, सोने के अलंकारों से सम्पन्न, दुर्गति के अवसर पर सरल-गामी और पृथिवी-स्थित चार घोड़े पुत्र की तरह पालनीय वसिष्ठ को पुत्र के अन्न या यश के लिए होते हैं।

२४. जिन सुदास का यश द्यावापृथिवी के बीच अवस्थित है और जो दातृ-श्रेष्ठ श्रेष्ठ-व्यक्ति को धन दान करते हैं, उनकी स्तुति, सातों लोक, इन्द्र की तरह, करते हैं। नदियों ने युद्ध में युध्यामधि नाम के शत्रु का विनाश किया था।

२५. नेता मरुतो, यह सुदास राजा के पिता (पिजवन) हैं। दिवो-दास अथवा पिजवन की ही तरह सुदास की भी सेवा करो। सुदास (दिवोदास-पुत्र) के घर की रक्षा करो। सुदास का बल अविनाशी और अशिथिल रहे।

१९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो इन्द्र तीखी सींगवाले बैल की तरह भयंकर होकर अकेले ही सारे शत्रुओं को स्थान-च्युत करते हैं और जो हव्य-शून्य लोगों के घर को ले लेते हैं, वे ही इन्द्र अतीव सोमाभिषव-कर्त्ता को धनवान करें।

२. इन्द्र, जिस समय तुमने अर्जुनी के पुत्र कुत्स को धन देकर दास, शुष्ण और कुयव को वशीभूत किया था, उस समय शरीर से शुश्रूषमाण होकर युद्ध में कुत्स की रक्षा की थी।

३. हे वर्षक इन्द्र, हव्यदाता सुदास को वज्र के द्वारा सारी रक्षाओं के साथ बचाओ। भूमिलाभ के लिए युद्ध में पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की रक्षा करो।

४. नेताओं की स्तुति के योग्य इन्द्र, मरुतों के साथ युद्ध में तुमने अनेक वृत्रों (शत्रुओं) को मारा था। हरि अश्व से युक्त इन्द्र, दभीति के लिए तुमने दस्यु, चुमुरि और धुनि का वध किया है।

५. वज्रहस्त इन्द्र, तुममें इतना बल है कि तुमने शम्बराशुर की निन्यानबे नगरियों को छिन्न-विच्छिन्न कर डाला था। अपने निवास के लिए सौवीं पुरी को अधिकृत कर रखा है। वृत्र और नमुचि का वध किया है।

६. इन्द्र, हव्यदाता यजमान सुदास के लिए तुम्हारी सम्पत्तियाँ सनातन हुईं। बहुकर्मा इन्द्र, तुम कामवर्षी हो, तुम्हारे लिए मैं दो अभिलाषादाता अश्वों को रथ में जोतता हूँ। तुम बलिष्ठ हो। तुम्हारे पास स्तोत्र जायें।

७. बल और अश्ववाले इन्द्र, तुम्हारे इस यज्ञ में हम वरदान और पाप के भागी न बनें। हमें बाधा-शून्य रक्षा से बचाओ, ताकि हम स्तोताओं में प्रिय हों।

८. धनपति इन्द्र, तुम्हारे यज्ञ में हम स्तोतृ-नेता, सखा और प्रिय होकर घर में प्रसन्न हों। अतिथि-वत्सल सुदास को सुख देते हुए तुर्वश और याद्व (यदुवंशी) को वशीभूत करो।

९. धनवान् इन्द्र, तुम्हारे यज्ञ के हमीं नेता और उक्थ का (मंत्रों के) उच्चारण करनेवाले हैं। आज उक्थों का उच्चरण करते हैं और तुम्हारे हव्य के द्वारा पणियों (अदाता वणिकों) को भी धन देते हैं। हमें सख्य रूप से स्वीकार करो।

१०. नेतृ-श्रेष्ठ इन्द्र, नेताओं की स्तुतियों ने तुम्हें पूजनीय हव्यदान करके हमारी ओर कर दिया है। युद्ध में इन्हीं नेताओं का तुम कल्याण करो और इनके सखा, शूर तथा रक्षक बनो।

११. वीर इन्द्र, आज तुम स्तूयमान और स्तोत्रवाले होकर शरीर से वर्द्धित होओ। हमें अन्न और घर दो। तुम सदा स्वस्ति-द्वारा हमारी रक्षा करो।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

कम्पित किया था। उन्होंने प्रसन्न, महिमान्वित और वज्रहस्त होकर उनका वध किया था।

५. इन्द्र, राक्षस हमें न मारें। बलि-श्रेष्ठ इन्द्र, प्रजा से हमें राक्षस अलग न करें। स्वामी इन्द्र विषम जन्तु को मारने में उत्साहान्वित होते हैं। शिश्नदेव (अब्रह्मचारी) हमारे यज्ञ में विघ्न न डालें।

६. इन्द्र, कर्म-द्वारा पृथिवी के सारे जीवों को अभिभूत करते हो। संसार तुम्हारी महिमा को व्याप्त नहीं कर सकता। तुमने अपने बाहु-बल से वृत्र का वध किया है। युद्ध से शत्रु तुम्हारा पार नहीं पा सके।

७. इन्द्र, प्राचीन देवगण ने भी बल और शत्रु वध में इन्द्र के बल से अपने बल को कम समझा था। शत्रुओं को पराजित करके इन्द्र भक्तों को धन देते हैं। अन्न-प्राप्ति के लिए स्तोता इन्द्र को बुलाते हैं।

८. इन्द्र, तुम ईशान व ईश्वर हो। रक्षा के लिए स्तोता तुम्हें बुलाते हैं। बहुत्राता इन्द्र, तुम हमारे यथेष्ट धन के रक्षक हुए थे। तुम्हारे समान हमारा जो हिंसक हो, उसका निवारण करो।

९. इन्द्र, स्तुति-द्वारा हम तुम्हें वर्द्धित करते हुए सदा तुम्हारे सखा हों। अपनी महिमा के द्वारा तुम सबके तारक हो। तुम्हारे रक्षण से, आर्य स्तोता, संग्राम में आये हुए अनार्यों के बल की हिंसा करें।

१०. इन्द्र, तुम हमें धारण करो, ताकि हम तुम्हारे दिये अन्न का भोग कर सकें। जो हव्यदाता स्वयं हव्य प्रदान करते हैं, उन्हें भी धारण करो। मैं तुम्हारा स्तोता हूँ। अतीव प्रशंसा-योग्य स्तुति-कर्म में मेरी शक्ति हो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, सोम पान करो। वह सोम तुम्हें मत्त करे। हरि नामक अश्ववाले इन्द्र, रस्सी-द्वारा संयत अश्व की तरह अभिषवकर्त्ता के दोनों हाथों में परिगृहीत पत्थर ने इस सोम का अभिषव किया है।

२. हरि नाम के अश्ववाले और प्रभूत-धनी इन्द्र, तुम्हारा जो उपयुक्त और सम्यक् प्रस्तुत सोम है और जिसके द्वारा तुमने वृत्र आदि का वध किया है, वही सोम तुम्हें मत्त करे।

३. इन्द्र, तुम्हारी स्तुति-स्वरूपिणी जो बात वसिष्ठ कहते हैं, उन वसिष्ठ की (मेरी) इस बात को तुम जानो और यज्ञ में इन स्तुतियों की सेवा करो।

४. इन्द्र, मैंने सोमपान किया है। तुम मेरे इस पत्थर की पुकार सुनो। स्तोता विप्र की स्तुति जानो। यह जो मैं सेवा करता हूँ, वह सब, सहायक होकर, बुद्धिस्थ करो।

५. इन्द्र, तुम रिपुञ्जय हो। मैं तुम्हारा बल जानता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करना नहीं छोड़ सकता। मैं सदा तुम्हारे यशस्वी नाम का उच्चारण करूँगा।

६. इन्द्र, मनुष्यों में तुम्हारे अनेक सवन हैं। मनीषी स्तोता तुम्हारा ही अत्यन्त आह्वान करता है। अपने को हमसे दूर नहीं रखना।

७. शूर इन्द्र, तुम्हारे ही लिए यह सब सवन है; तुम्हारे ही लिए यह वर्द्धक स्तोत्र करता हूँ। तुम सब तरह से मनुष्यों के आह्वान के योग्य हो।

८. दर्शनीय इन्द्र, स्तुति करने पर तुम्हारी महिमा को कौन नहीं तुरत प्राप्त करेगा? कौन नहीं तुम्हारा धन प्राप्त करेगा?

९. जितने प्राचीन ऋषि हो गये हैं और जितने नवीन हैं, सभी तुम्हारे लिए स्तोत्र उत्पन्न करते हैं। हमारे लिए तुम्हारा सख्य मंगलमय हो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अन्न की इच्छा से सारे स्तोत्र कहे गये हैं। वसिष्ठ, तुम भी यज्ञ में इन्द्र की स्तुति करो। बल-द्वारा उन्होंने सारे लोकों को व्याप्त किया

था। मैं उनके पास जाने की इच्छा करता हूँ। वे मेरे स्तुति-वचन का श्रवण करें।

२. जिस समय ओषधियाँ बढ़ती हैं, उस समय देवों के लिए प्रिय शब्द कहे जाते हैं। मनुष्यों में कोई भी तुम्हारी आयु नहीं जान सकता। हमें सारे पापों के पार ले जाओ।

३. मैं हरि नाम के दोनों अश्वों के द्वारा इन्द्र के गोप्रापक रथ को जोतता हूँ। इन्द्र स्तोत्रों की सेवा करते हैं। सब लोग उनकी उपासना करते हैं। उन्होंने अपनी महिमा से द्यावापृथिवी को बाधित किया है। इन्द्र ने शत्रुओं के बलों का नाश किया है।

४. इन्द्र, अप्रसूता गाय की तरह जल बढ़े। तुम्हारे स्तोता जल व्याप्त करें। जैसे वायु नियुत (अश्व) के पास आता है, वैसे ही तुम मेरे निकट आओ। कर्म-द्वारा तुम अन्न प्रदान करो।

५. इन्द्र, मदकारी सोम तुम्हें मत्त करें। स्तोता को बलवान् और बहुधनवान् पुत्र दान करो। शूर, देवों में तुम्हीं अकेले मनुष्यों के प्रति अनुकम्पा प्रदर्शित करते हो। इस यज्ञ में प्रमत्त होओ।

६. वसिष्ठ लोग इसी प्रकार अर्चनीय स्तोत्र-द्वारा वज्रबाहु अभीष्टवर्षी इन्द्र की पूजा करते हैं। स्तुत होकर वे हमें वीर और गौ से युक्त धन दें। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप।)

१. तुम्हारे गृह के लिए स्थान किया गया है। पुरुहूत इन्द्र, मरुतों के साथ वहाँ आओ। जैसे तुम हमारे रक्षक हुए हो, जैसे तुम हमारी वृद्धि के लिए हुए हो, वैसे ही धन दो। हमारे सोम के द्वारा मत्त होओ।

२. इन्द्र, तुम दोनों स्थानों में पूज्य हो। हमने तुम्हारे मन को ग्रहण किया है। सोम का हमने अभिषव किया है। हमने मधु को पात्र में

परिषिक्त किया है। मध्यम स्वर में कही जानेवाली यह सुसमाप्त स्तुति बार-बार इन्द्र को आह्वान करके उच्चारित होती है।

३. इन्द्र, तुम हमारे इस यज्ञ में सोमपान के लिए स्वर्ग और अन्तरिक्ष से आओ; और, आनन्द के लिए, हमारे पास, अश्वगण स्तोत्र की ओर ले आयें।

४. हरि अश्व और शोभन हनुवाले इन्द्र, तुम सब प्रकार की रक्षाओं के साथ वृद्ध मरुतों के संग शत्रुओं को मारते हुए हमें अभीष्टवर्षी तथा बलवान् पुत्र देते हुए एवम् स्तोत्र-सेवा करते हुए, हमारी ओर आओ।

५. रथ के घोड़े की तरह यह बलकर्त्ता मन्त्र महान् और ओजस्वी इन्द्र को लक्ष्य कर स्थापित हुआ है। इन्द्र, स्तोता तुमसे धन माँगता है। तुम हमें आकाश के स्वर्ग की तरह श्रीमान् पुत्र प्रदान करो।

६. इन्द्र, इस प्रकार तुम हमें वरणीय धन से परिपूर्ण करो। हम तुम्हारा महान् अनुग्रह प्राप्त करेंगे। हम हव्यवाले हैं। हमें वीर पुत्रवाला अन्न दो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप।)

१. ओजस्वी इन्द्र, तुम महान् और मनुष्य-हितैषी हो। तुम्हारी सेनायें समान हैं—ऐसा अभिमान कर जब युद्ध किया जाता है, तब तुम्हारा हस्त-स्थित वज्र हमारे त्राण के लिए पतित हो। तुम्हारा सर्वतोगामी मन विचलित न हो।

२. इन्द्र, युद्ध में जो मनुष्य हमारे सामने आकर हमारा अभिभव करते हैं, वे ही शत्रुओं का विनाश करते हैं। जो हमारी निन्दा करने की इच्छा करते हैं, उनकी कथा दूर कर दो। हमारे लिए सम्पत्तियाँ लाओ।

३. उष्णीष (चादर) वाले इन्द्र, मुझ सुदास के लिए तुम्हारी सैकड़ों रक्षायें हों। तुम्हारी सैकड़ों अभिलाषायें और धन मेरे हों। हिंसक के

हिंसा-साधन हथियारों को विनष्ट करो। हमारे लिए दीप्त यश और रत्न दो।

४. इन्द्र, मैं तुम्हारे समान व्यक्ति के कर्म में नियुक्त हूँ। तुम्हारे समान रक्षक व्यक्ति के दान में नियुक्त हूँ। बलवान् और ओजस्वी इन्द्र, सारे दिन हमारे लिए स्थान बनाओ। हरिवाले इन्द्र, हमारी हिंसा नहीं करना।

५. हम हर्यश्व इन्द्र के लिए सुखकर स्तोत्र कहते हुए और इन्द्र से देव-प्रेरित बल की याचना करते हुए, सारे दुर्गों को लाँघकर, बल प्राप्त करेंगे। हम हविवाले हैं। हमें वीर पुत्रवाला अन्न दो। तुम हमें सदा स्वस्ति (कल्याण) द्वारा पालन करो।

२६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो सोम धनाधिपति इन्द्र के लिए अभिषुत नहीं है, उससे तृप्ति नहीं होती। अभिषुत होने पर भी स्तोत्र-हीन सोम तृप्तिकर नहीं होता। हम लोगों का जो उक्थ इन्द्र की सेवा करता है और राजा जिसे श्रवण करता है, उसी नवीन उक्थ का पाठ, इन्द्र के लिए, मैं करता हूँ।

२. प्रत्येक उक्थ-स्तुति-पाठ-काल में सोम धनवान् इन्द्र को तृप्त करता है। प्रत्येक स्तोत्रपाठ-काल में अभिषुत सोम इन्द्र को तृप्त करता है। जैसे पुत्र पिता को बुलाता है, वैसे ही, रक्षा के लिए, परस्पर मिलित और समान उत्साहवाले ऋत्विक् लोग इन्द्र को बुलाते हैं।

३. सोम के अभिषुत होने पर स्तोता लोग जिन सब कर्मों की बातें कहते हैं, उस सारे कर्मों को, प्राचीन काल में, इन्द्र ने किया था। इस समय अन्य कर्म भी करते हैं। जैसे पति पत्नी का परिमार्जन करता है, वैसे ही समवृत्ति और सहायक-शून्य इन्द्र ने शत्रु-नगरियों का परिमार्जन (संशोधन) किया था।

४. परस्पर मिली इन्द्र की अनेक रक्षायें हैं—ऋत्विकों ने इन्द्र के बारे में ऐसा कहा है। यह भी सुना जाता है कि इन्द्र पूजनीय धन

को देनेवाले और आपद् से उद्धार करनेवाले हैं। उनकी कृपा से हमें प्रीतिप्रद कल्याण आश्रित करें।

५. रक्षा के लिए और प्रजा के अभीष्ट-वर्षण के लिए सोमाभिषव में वसिष्ठ इन्द्र की ऐसी स्तुति करते हैं। इन्द्र, हमें नाना प्रकार के अन्न दो। तुम हमें सदा स्वति-द्वारा पालन करो।

२७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिस समय युद्ध की तैयारी के कार्य किये जाते हैं, उस समय लोग युद्ध में इन्द्र को बुलाते हैं। इन्द्र, तुम मनुष्यों के लिए धनदाता और बलाभिलाषी होकर हमें गो-पूर्ण गोष्ठ में ले जाओ।

२. पुरुहूत इन्द्र, तुम्हारे पास जो बल है, उसे स्तोताओं को दो। इन्द्र, तुमने सुदृढ़ पुरियों को छिन्न-भिन्न किया है; इसलिए, प्रज्ञा का प्रकाश करते हुए, छिपाये धन को प्रकट कर दो।

३. इन्द्र जङ्गम जगत् और मनुष्यों के राजा हैं। पृथिवी में तरह-तरह के जो धन हैं, उनके भी राजा इन्द्र ही हैं। इन्द्र हव्यदाता को धन देते हैं। वही इन्द्र हमारे द्वारा स्तुत होकर हमारे सामने धन भेजें।

४. धनी और दानी इन्द्र को हमने, मरुतों के साथ, बुलाया है; इसलिए वह हमारी रक्षा के लिए शीघ्र अन्न भेजें। ये इन्द्र ही सखाओं को जो सम्पूर्ण और सर्वव्यापी दान करते हैं, वही मनुष्यों के लिए मनोहर धन दुहता है।

५. इन्द्र, धन-प्राप्ति के लिए शीघ्र हमें धन दो। पूज्य स्तुति-द्वारा हम तुम्हारे मन को खींच लेंगे। तुम गौ, अश्व, रथ और धनवाले हो। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम जानकर हमारे स्तोत्र की ओर आओ। तुम्हारे घोड़े हमारे सामने जोते जायें। सबके हर्षकारी इन्द्र, यद्यपि अलग-अलग सारे मनुष्य तुम्हें बुलाते हैं, तथापि तुम हमारा ही आह्वान सुनते हो।

२. बली इन्द्र, जिस समय तुम ऋषियों के स्तोत्रों की रक्षा करते हो, उस समय तुम्हारी महिमा स्तोता को व्याप्त करे। ओजस्वी इन्द्र, जिस समय हाथ में वज्र धारण करते हो, उस समय कर्म-द्वारा भयङ्कर होकर शत्रुओं के लिए दुर्द्धर्ष हो जाते हो।

३. इन्द्र, तुम्हारे उपदेश के अनुसार जो लोग बार-बार स्तव करते हैं, उन्हें द्युलोक और भूलोक में सुप्रतिष्ठित करते हो। तुम महाबल और महाधन के लिए उत्पन्न हुए हो; इसलिए जो तुम्हारे उद्देश्य से यज्ञ करता है, वह अयाज्ञिकों को मारने में समर्थ होता है।

४. इन्द्र, दुष्ट मित्रभूत मनुष्य आते हैं। उनसे धन लेकर इन सारे दिनों में हमें दान करो। पाप-घातक और बुद्धिमान् वरुण हमारे सम्बन्ध में जो पाप देख पावें, उसे दो तरह से छुड़ावें।

५. जिस इन्द्र ने हमें भली भाँति आराध्य महाधन दिया है और जो स्तोता के स्तोत्र-कार्य की रक्षा करते हैं, उस धनी इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

२९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम्हारे लिए यह सोम अभिषुत हुआ है। हरि अश्ववाले इन्द्र, उस सोम की सेवा के लिए तुरत आओ। भली भाँति अभिषुत शरद सोम का पान करो। इन्द्र, हम याचना करते हैं, हमें धन दो।

२. हे ब्रह्मन् और वीर इन्द्र, स्तोत्र-कार्य का सेवन करते हुए अश्वों

पर सवार होकर शीघ्र हमारी ओर आओ। इस यज्ञ में ही भली भाँति प्रसन्न होओ। हमारे इन स्तोत्रों को सुनो।

३. इन्द्र, हम जो सूक्तों-द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं, उससे कैसी अलंकृति (शोभा) होती है? हम कब तुम्हारी प्रसन्नता उत्पन्न करें? तुम्हारी अभिलाषा से ही मैं सारी स्तुति करता हूँ; इसलिए, हे इन्द्र, मेरी ये स्तुतियाँ सुनो।

४. इन्द्र, तुमने जिन सब ऋषियों की स्तुति सुनी है, वे प्राचीन ऋषि लोग मनुष्यों के हितैषी थे। फलतः मैं तुम्हारा बार-बार आह्वान करता हूँ। इन्द्र, पिता की तरह तुम हमारे हितैषी हो।

५. जिस इन्द्र ने हमें भली भाँति आराध्य महाधन दिया है और जो स्तोता के स्तोत्रकार्य की रक्षा करते हैं, उन धनी इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

३० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. बली और ज्योतिष्मान् इन्द्र, बल के साथ हमारे पास आओ। हमारे धन के वर्द्धक बनो। सुवज्र और नृपति इन्द्र, महाबली होओ और शत्रुमारक महापुरुषत्व प्राप्त करो।

२. इन्द्र, तुम आह्वान के योग्य हो। महाकोलाहल के समय शरीर-रक्षा के लिए और सूर्य को पाने के लिए लोग तुम्हें बुलाते हैं। सब मनुष्यों में तुम्हीं सेना के योग्य हो। सुहन्त नाम के वज्र-द्वारा शत्रुओं को हमारे अधिकार में करो।

३. इन्द्र, जब दिन अच्छे होते हैं, जब तुम अपने को युद्ध के समीप-वर्त्ती जानते हो, तब होताग्नि, हमें उत्तम धन देने के लिए, देवों को बुलाते हुए, इस यज्ञ में बैठते हैं।

४. इन्द्र, हम तुम्हारे हैं। जो तुम्हें पूजनीय हव्य देते हुए स्तुति करते हैं, वे भी तुम्हारे ही हैं। उन्हें श्रेष्ठ गृह दो। वे सुसमृद्ध होकर बूढ़े होने पावें।

५. जिन इन्द्र ने हमें भली भाँति आराध्य महाधन दिया है और जो स्तोता के स्तोत्र-कार्य की रक्षा करते हैं, उन्हीं धनी इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

३१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द विराट्, गायत्री और त्रिष्टुप्।)

१. सखा लोग, तुम लोग हर्यश्व और सोमपायी इन्द्र के लिए मदकर स्तोत्र गाओ।

२. शोभन-दानी और सत्यधन इन्द्र के लिए जैसे स्तोता दीप्त स्तोत्र पाठ करता है, वैसे ही तुम भी करो; हम भी करेंगे।

३. इन्द्र, तुम हमारे लिए अन्नाभिलाषी होओ। सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र, तुम हमारे लिए गो-कामी होओ। हे वास-दाता इन्द्र, तुम हिरण्य-दाता होओ।

४. अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, तुम्हारी इच्छा करके हम विशेष रूप से स्तुति करते हैं। वासप्रद इन्द्र, तुम शीघ्र हमारी स्तुति का अवधारण करो।

५. आर्य इन्द्र, जो कठोर वचन बोलता है जो निन्दा करता है और जो दान नहीं करता, उसके वश में हमें नहीं करना। मेरा स्तोत्र तुम्हारे ही पास जाय।

६. वृत्रघातक इन्द्र, तुम हमारे कवच हो। तुम सर्वत्र प्रसिद्ध हो। तुम सम्मुख युद्ध करनेवाले हो। तुम्हारी सहायता से मैं शत्रु-वध करूँगा।

७. अन्नवाली द्यावापृथिवी को जिन इन्द्र के बल का लोहा मानना है, वह तुम इन्द्र, महान् हुए हो।

८. इन्द्र, तुम्हारी सहचरी, तेजोयुक्ता और स्तोतृ-सम्पन्ना स्तुति तुम्हें चारों ओर से ग्रहण करे।

९. तुम स्वर्ग के पास स्थित और दर्शनीय हो। हमारे सब सोम तुम्हारे उद्देश से उद्यत हैं। सती प्रजा तुम्हें नमस्कार करती है।

१०. मेरे पुरुषो, तुम महाधन के वर्द्धक हो। महान् इन्द्र के उद्देश से सोम बनाओ। प्रकृष्ट-बुद्धि को लक्ष्य कर प्रहृष्ट स्तुति करो। प्रजाओं के अभिलाषापूरक तुम उन लोगों के अभिमुख आगमन करो, जो तुम्हें हव्य-द्वारा पूर्ण करते हैं।

११. जो इन्द्र अतीव व्यापक और महान् हैं, उन्हें लक्ष्य कर मेधावी लोग स्तुति और हव्य का उत्पादन करते हैं। उन इन्द्र के व्रत आदि कर्मों को धीर लोग हिंसित नहीं कर सकते।

१२. सब प्रकार से सारे जगत् के ईश्वर और अबाधित क्रोध इन्द्र की सारी स्तुतियाँ शत्रुओं को दबाने के लिए हैं। इसलिए हे स्तोता, इन्द्र की स्तुति के लिए बन्धुओं को उत्साहित करो।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती, सतोबृहती, द्विपदा विराट्।)

१. इन्द्र, हमसे दूर ये यजमानगण भी तुम्हारे साथ रमण न करें। तुम दूर रहने पर भी हमारे यज्ञ में आओ। यहाँ आकर श्रवण करो।

२. जैसे मधु पर मधुमक्षिका बैठती है, वैसे ही स्तोता लोग, तुम्हारे लिए, सोम के तैयार होने पर, बैठते हैं। जैसे रथ पर पैर रक्खा जाता है, वैसे ही धनकामी स्तोता लोग इन्द्र पर स्तुति समर्पण करते हैं।

३. जैसे पुत्र पिता को बुलाता है, वैसे ही मैं, धनाभिलाषी होकर, सुन्दर दानवाले इन्द्र को बुलाता हूँ।

४. दही मिले ये सोम इन्द्र के लिए प्रस्तुत हुए हैं। हे वज्रहस्त इन्द्र, आनन्द के लिए उस सोम-पान के निमित्त, अश्व के साथ, यज्ञ-मण्डप की ओर आओ।

५. याचना सुनने के कर्णवाले इन्द्र के पास हम धन की याचना

करते हैं। वे हमारे वाक्य को सुनें, वाक्य निष्फल न करें। जो इन्द्र, याचना करते ही, तुरत सैकड़ों और सहस्रों दान करते हैं, उन दानाभिलाषी इन्द्र को कोई मना न करे।

६. वृत्रघातक इन्द्र, जो तुम्हारे लिए गंभीर सोम का अभिषव करता और तुम्हारा अनुगमन करता है, वह वीर है। उसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं बोल सकता। वह परिचारकों के द्वारा घिरा रहता है।

७. हे धनवान् इन्द्र, तुम हव्यदाताओं के उपद्रव-निवारक वर्म बनो। उत्साही शत्रुओं का विनाश करो। तुमने जिस शत्रु का विनाश किया है, उसका धन हम बाँट लें। तुम्हें कोई विनष्ट नहीं कर सकता। तुम हमारे लिए धन ले आओ।

८. मेरे पुरुषो, वज्रधर और सोमपाता इन्द्र के लिए सोम का अभिषव करो। इन्द्र की तृप्ति के लिए पचाये जाने योग्य पुरोडाश आदि पकाओ और किये जाने योग्य कार्य का सम्पादन करो। यजमान को सुख देते हुए इन्द्र हव्य को पूर्ण करते हैं।

९. सोमवाले यज्ञ का विनाश नहीं करना। उत्साही बनो। महान् और रिपुघातक इन्द्र को लक्ष्य करके, धन-प्राप्ति के लिए, कर्म करो। क्षिप्र-कर्त्ता व्यक्ति ही विजय करता, निवास करता और पुष्ट होता है। कुत्सित कर्म-कर्त्ता के देवता नहीं हैं।

१०. सुन्दर दानवाले व्यक्ति का रथ कोई दूर पर नहीं फेंक सकता और उसे कोई रोक भी नहीं सकता। जिसके रक्षक इन्द्र और मरुद्गण हैं, वह गौओंवाले गोष्ठ में जाता है।

११. इन्द्र, तुम जिस मनुष्य के रक्षक बनोगे, वह स्तोत्र-द्वारा तुम्हें बली करते हुए अन्न प्राप्त करेगा। शूर, हमारे रथ के रक्षक होओ; हमारे पुत्रादि के भी रक्षक होओ।

१२. जो हरिवाले इन्द्र सोमवाले यजमान को बल देते हैं, उसे शत्रु नहीं मार सकते। विजयी व्यक्ति की तरह इन्द्र का भाग सभी देवों से बढ़ा-चढ़ा है।

१३. देवों में से इन्द्र को ही अनल्प, सुविहित और शोभन स्तोत्र अर्पण करो। जो व्यक्ति कर्मानुष्ठान-द्वारा इन्द्र के चित्त को आकृष्ट कर सकता है, उसके पास अनेकानेक बन्धन नहीं जाते।

१४. इन्द्र, तुम जिसे व्याप्त करते हो, उसे कौन दबा सकता है? धनी इन्द्र, तुम्हारे प्रति श्रद्धा-युक्त होकर जो हविवाला होता है, वह द्युलोक और दिवस में धन पाता है।

१५. इन्द्र, तुम धनी हो। जो तुम्हें प्रिय धन देते हैं, उन्हें रण-भूमि में भेजो। हर्यश्व इन्द्र, हम तुम्हारे उपदेशानुसार, स्तोताओं के साथ सारे पापों के पार जायँगे।

१६. इन्द्र, पृथिवीस्थ (अधम) धन तुम्हारा ही है। अन्तरिक्षस्थ (मध्यम) धन तुम्हारा ही है। तुम सारे उत्तम धनों के कर्त्ता हो—यह बात सच्ची है। गौ के सम्बन्ध में तुम्हें कोई भी नहीं हटा सकता।

१७. इन्द्र, तुम संसार के धनदाता हो। ये सब जो युद्ध होते हैं, उनमें भी आप धनद कहकर प्रसिद्ध हैं। पुरुहूत, इन्द्र, रक्षा के लिए, ये सब पार्थिव मनुष्य तुमसे अन्न की भिक्षा चाहते हैं।

१८. इन्द्र, तुम जितने धन के ईश्वर हो, उतने के हम भी स्वामी बनें। धनद, मैं स्तोता की रक्षा करूँगा। पाप के लिए मैं धन नहीं दूँगा।

१९. जिस किसी भी स्थान में विद्यमान पूजक पुरुष को लक्ष्य कर प्रतिदिन दान करूँगा। इन्द्र, तुम्हारे बिना न तो हमारा कोई बन्धु है, न प्रशंसनीय पिता है।

२०. क्षिप्रकर्म-कारी व्यक्ति ही महान् कर्म के बल से अन्न का भोग करता है। जैसे विश्वकर्मा (बढ़ई) उत्तम काष्ठवाले चक्र को नवाता है, वैसे ही स्तुति-द्वारा पुरुहूत इन्द्र को मैं नवाऊँगा।

२१. मनुष्य दुष्ट स्तुति से धन लाभ नहीं कर सकता। हिंसक के पास धन नहीं जाता। धनवान् इन्द्र, द्युलोक और दिन में मेरे समान मनुष्य के प्रति जो कुछ तुम्हारा दातव्य है, उसे सुन्दर कर्मवाला व्यक्ति ही पा सकता है।

२२. वीर इन्द्र, तुम इस जङ्गम पदार्थ के स्वामी हो। तुम स्थावर पदार्थों के ईश्वर और सर्वदर्शक हो। हम न दोही गई गाय की तरह तुम्हारी स्तुति करते हैं।

२३. धनी इन्द्र, तुम्हारे समान न तो पृथिवी में कोई जन्मा, न जन्मे। हम अश्व, अन्न और गौ चाहते हैं। तुम्हें बुलाते हैं।

२४. इन्द्र, तुम ज्येष्ठ हो और मैं कनिष्ठ हूँ। मेरे लिए उस धन को ले आओ। बहुत दिनों से तुम प्रभूत-धनी हो और प्रत्येक युद्ध में हव्य-लाभ के योग्य हो।

२५. मघवन्, शत्रुओं को पराङ्मुख करके हटाओ। हमारे लिए धन को सुलभ करो। युद्ध में हमारे रक्षक बनो। हम तुम्हारे सखा हैं। हमारे वर्द्धक बनो।

२६. इन्द्र, हमारे लिए प्रज्ञान ले आओ। जैसे पिता पुत्र को देता है, वैसे ही तुम हमें धन दो। हम यज्ञ के जीव हैं। हम प्रतिदिन सूर्य को प्राप्त करें।

२७. इन्द्र, अज्ञात-गति, हिंसक, दुराराध्य और अशुभ शत्रु हमें आक्रमण न करें। शूर, हम तुम्हारे निकट नम्र होकर अनेक कार्यों में उत्तीर्ण होंगे।

३३ सूक्त

(देवता १-९ के वसिष्ठ-पुत्रगण। ऋषि १-९ मन्त्रों के वसिष्ठ। शेष मन्त्रों के देवता वसिष्ठ और ऋषि वसिष्ठ-पुत्रगण। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. श्वेतवर्ण और कर्म-पूरक वसिष्ठ-पुत्रगण अपने शिर के दक्षिण भाग में चूड़ा धारण करनेवाले हैं। वे हमें प्रसन्न करते हैं; क्योंकि यज्ञ से उठते हुए मैं सबको कहता हूँ कि, वसिष्ठ-पुत्रगण मुझसे दूर न जायें।

२. वयत् के पुत्र पाशद्युम्न का दूर से ही तिरस्कार करके चमस-स्थित सोम का पान करते हुए इन्द्र को वसिष्ठ-पुत्रगण ले आये थे। इन्द्र ने भी

वयत् के पुत्र पाशद्युम्न को छोड़कर सोमाभिषव करनेवाले वसिष्ठों को वरण किया था।

३. इसी प्रकार वसिष्ठ-पुत्रों ने अनायास ही नदी (सिन्धु) को पार किया था। इसी प्रकार भेद नाम के शत्रु का भी इन्होंने विनाश किया था। वसिष्ठपुत्रो, इसी प्रकार प्रसिद्ध "दाशराज्ञयुद्ध" में तुम्हारे ही मन्त्र-बल से इन्द्र ने सुदास राजा की रक्षा की थी।

४. मनुष्यो, तुम्हारे स्तोत्र (ब्रह्म) से पितरों की तृप्ति होती है। मैं रथ की धुरी को चलाता हूँ। तुम क्षीण नहीं होना। वसिष्ठगण, तुमने शक्वरी ऋचाओं और श्रेष्ठ शब्द-द्वारा इन्द्र का बल पाया था।

५. ज्ञात-तृष्ण राजाओं-द्वारा घिरे हुए और वृष्टि-याचक वसिष्ठ पुत्रों ने दस राजाओं के साथ संग्राम में, सूर्य की तरह, इन्द्र को ऊपर उठाया था। स्तोता वसिष्ठ का स्तोत्र इन्द्र ने सुना था और तृत्सु राजाओं के लिए विस्तृत लोक दिया था।

६. गो-प्रेरक दण्डों की तरह (तृत्सुओं के) भरतगण शत्रुओं के बीच ससीम और अल्पसंख्यक थे। अनन्तर वसिष्ठ ऋषि भरतों के पुरोहित हुए और तृत्सुओं की प्रजा बढ़ने लगी।

७. अग्नि, वायु और सूर्य ही संसार में जल देते हैं। उनमें आदित्य आदि तीन श्रेष्ठ आर्य-प्रजा हैं। दीप्तिमान् वे तीनों उषा का वयन करते हैं। वसिष्ठ लोग उन सबको जानते हैं।

८. वसिष्ठ-पुत्रो, तुम्हारी महिमा (वा स्तोम) सूर्य की ज्योति की तरह प्रकाशित होती है। तुम्हारी महिमा समुद्र की तरह गम्भीर है। वायु-वेग के समान तुम्हारे स्तोत्र का कोई दूसरा अनुगमन नहीं कर सकता।

९. वे वसिष्ठगण (वसिष्ठ) ज्ञान-द्वारा तिरोहित सहस्र शाखाओं-वाले संसार में विचरण करने लगे। वे सर्व-नियन्ता (यम) द्वारा विस्तृत वस्त्र (विश्व-प्रवाह) को बुनते हुए मातृ-रूप से अप्सरा के निकट गये।

१०. वसिष्ठ, विद्युत् की तरह (देह धारण करने के लिए) अपनी ज्योति का परित्याग करते हुए तुम्हें मित्र और वरुण ने देखा था। उस समय तुम्हारा एक जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त वासस्थान से अगस्त्य भी तुम्हें ले आये थे।

११. और, हे वसिष्ठ, तुम मित्र और वरुण के पुत्र हो। हे ब्रह्मन्, तुम उर्वशी के मन से उत्पन्न हो। उस समय मित्र और वरुण का वीर्य-स्खलन हुआ था। विश्वदेवगण ने दैव्य स्तोत्र-द्वारा पुष्कर के बीच तुम्हें धारण किया था।

१२. प्रकृष्ट ज्ञानवाले वसिष्ठ दोनों लोकों को (पृथिवी और स्वर्ग को) जानकर सहस्रदान वा सर्वदानवाले हुए थे। सर्व-नियन्ता (यम) द्वारा विस्तीर्ण वस्त्र (संसार-प्रवाह) को बुनने की इच्छा से वसिष्ठ उर्वशी से उत्पन्न हुए थे।

१३. यज्ञ में दीक्षित मित्र और वरुण ने, स्तुति-द्वारा प्रार्थित होकर, कुम्भ (वसतीवर कलस) के बीच एक साथ ही रेतः-स्खलन किया था। अनन्तर मान (अगस्त्य) उत्पन्न हुए। लोग कहते हैं कि ऋषि वसिष्ठ उसी कुम्भ से जन्मे थे।

१४. तृत्सुओ, तुम्हारे पास वसिष्ठ आ रहे हैं। प्रसन्नचित्त से तुम इनकी पूजा करो। वसिष्ठ अग्रवर्ती होकर उक्थ और सोम के धारण-कर्त्ता तथा प्रस्तर से अभिषव करनेवाले (अध्वर्यु) को धारण करते और कर्त्तव्य भी बताते हैं।

३४ सूक्त

(३ अनुवाक। देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द द्विपदा, विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. दीप्त और अभीष्टप्रद स्तुति, वेगशाली और सुसंस्कृत रथ की तरह, हमारे पास से देवों के पास जाय।

२. क्षरण-शील जल स्वर्ग और पृथिवी की उत्पत्ति जानता है। जल स्तुति सुनता है।

३. विस्तीर्ण जल इन्द्र को आप्यायित करता है। उपद्रव उठने पर उग्र शूर लोग इन्द्र की ही स्तुति करते हैं।

४. इन्द्र के आगमन के लिए अश्वों को रथ के आगे जोतो। इन्द्र वज्रधर और सोने के हाथवाले हैं।

५. मनुष्यो, यज्ञ के सामने गमन करो। गन्ता की तरह स्वयमेव यज्ञमार्ग पर जाओ।

६. मेरे पुरुषो, संग्राम में स्वयमेव जाओ। लोगों के लिए प्रज्ञापक और पापों के नाशक यज्ञ करो।

७. इस यज्ञ के बल से ही सूर्य उगते हैं। जैसे पृथिवी जीवों को ढोती है, वैसे ही यज्ञ भी भार वहन करता है।

८. हे अग्नि, अहिंसा आदि विषयों से युक्त यज्ञ-द्वारा मनोरथ पूर्ण करते हुए मैं देवों को बुलाता हूँ और उनके लिए कर्म करता हूँ।

९. मनुष्यो, देवों को लक्ष्य करके दीप्त कर्म करो। देवों के लिए स्तुति करो।

१०. ओजस्वी और अनेक आँखोंवाले वरुण नदियों के जल को देखते हैं।

११. वरुण राष्ट्रों के राजा और नदियों के रूप हैं। उनका बल अप्रतिहत और सर्वत्रगामी है।

१२. देवो, सारी प्रजा में हमारी रक्षा करो। निन्दा करने की इच्छा-वाले शत्रु को दीप्ति-शून्य करो।

१३. शत्रुओं के अमंगल-जनक आयुध चारों ओर हट जायें। देवो, शरीर का पाप हमसे अलग करो।

१४. हव्यभोजी अग्नि हमारे नमस्कारों-द्वारा प्रियतम होकर हमारी रक्षा करें। हम अग्नि के लिए स्तुति करते हैं।

१५. देवों के सहचर अग्नि को सखा बनाओ। वे हमारे लिए मङ्गल-कर हों।

१६. मेघों के घातक, नदी-स्थान (जल) में बैठे हुए और जल से उत्पन्न अग्नि की स्तोत्र-द्वारा स्तुति की जाती है।

१७. अहिर्बुध्न्य (अग्नि) हमें हिंसक के हाथ में समर्पण नहीं करें। याज्ञिक का यज्ञ क्षीण न हो।

१८. देवता लोग हमारे लोगों के लिए अन्न धारण करते हैं। धन के लिए उत्साही शत्रु मर जायें।

१९. जैसे सूर्य सारे भुवनों को तप्त करते हैं, वैसे ही महासेनावाले राजा लोग देवों के बल से शत्रुओं को ताप देते हैं।

२०. जिस समय देव-स्त्रियाँ हमारे सामने आती हैं, उस समय उत्तम हाथवाले त्वष्टा हमें वीर पुत्र प्रदान करें।

२१. त्वष्टा हमारे स्तोत्रों की सेवा करते हैं। पर्याप्त-बुद्धि त्वष्टा हमारे धनाभिलाषी हों।

२२. दान-निपुण देव-पत्नियाँ हमारा मनोरथ हमें प्रदान करें। द्यावा-पृथिवी और वरुण-पत्नी भी श्रवण करें। कल्याणकर और दान-शील त्वष्टा, उपद्रव-निवारिणी देव-स्त्रियों के साथ, हमारे लिए शरण्य हों।

२३. हमारे उस धन का पालन पर्वतगण करें। सारे जल भी हमारे उस धन का पालन करें। दान-परायणा देव-पत्नियाँ भी उसका पोषण करें। ओषधियाँ और द्युलोक भी पालन करें। वनस्पतियों के साथ अन्तरिक्ष भी उसका पालन करें। द्यावापृथिवी हमारी रक्षा करें।

२४. हम धारणीय धन के आश्रय होंगे। विस्तृत द्यावापृथिवी उसका अनुमोदन करें। दीप्ति के आधार इन्द्र और सखा वरुण भी उसका समर्थन करें। पराजय करनेवाले मरुद्गण भी अनुमोदन करें।

२५. इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, जल, ओषधियाँ और वृक्ष भी, हमारे लिए, इस स्तोत्र का सेवन करें। मरुतों के पास निवास कर हम सुख से रहेंगे। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

३५ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र और अग्नि, हमारे लिए रक्षण-द्वारा शान्तिप्रद होओ। इन्द्र और वरुण, यजमान ने हव्य प्रदान किया है। तुम लोग हमारे लिए शान्तिप्रद होओ। इन्द्र और सोम हमारे लिए शान्ति और कल्याण देनेवाले हों। इन्द्र और पूषा हमारे लिए शान्ति और सुख दें।

२. भग देवता हमारे लिए शान्ति दें। हमारे लिए नराशंस शान्तिप्रद हों। हमारे लिए पुरन्धि शान्तिप्रद हों। सारे धन हमारे लिए शान्तिप्रद हों। उत्तम और यम-युक्त सत्य का वचन हमारे लिए शान्ति दे। बहु बार आविर्भूत अर्यमा हमारे लिए शान्तिदाता हों।

३. धाता हमारे लिए शान्ति दें। धर्त्ता वरुण हमारे लिए शान्ति दें। अन्न के साथ पृथिवी हमारे लिए शान्ति दे। महती द्यावापृथिवी हमारे लिए शान्ति दें। पर्वत हमारे लिए शान्ति दें। देवों की सारी उत्तम स्तुतियाँ हमें शान्ति दें।

४. ज्वाला-मुख अग्नि हमारे लिए शान्ति दें। मित्र और वरुण हमें शान्ति दें। अश्विनीकुमार हमें शान्ति दें। पुण्यात्माओं के पुण्यकर्म हमें शान्ति दें। गति-शील वायु भी हमारी शान्ति के लिए बहें।

५. प्रथम आह्वान में द्यावापृथिवी हमारे लिए शान्ति दें। दर्शनार्थ अन्तरिक्ष हमारे लिए शान्ति दे। ओषधियाँ और वृक्ष हमें शान्ति दें। विजय-परायण लोकपति इन्द्र भी हमें शान्ति दें।

६. वसुओं के साथ इन्द्रदेव हमें शान्ति दें। आदित्यों के साथ शोभन स्तुतिवाले वरुण हमें शान्ति दें। रुद्रगण के लिए रुद्रदेव हमें शान्ति दें। देव-स्त्रियों के साथ त्वष्टा हमें शान्ति दें। यज्ञ हमारा स्तोत्र सुने।

७. सोम हमें शान्ति दे। स्तोत्र हमें शान्ति दे। पत्थर हमें शान्ति दे। यज्ञ हमें शान्ति दे। यूपों का माप हमें शान्ति दें। ओषधियाँ हमें शान्ति दें। वेदी हमें शान्ति दे।

८. विस्तीर्ण-तेजा सूर्य हमारी शान्ति के लिए उदित हों। चारों महादिशायें हमें शान्ति दें। स्थिर पर्वत हमें शान्ति दें। नदियाँ हमें शान्ति दें। जल हमें शान्ति दे।

९. कर्म-द्वारा अदिति हमें शान्ति दें। शोभन स्तुतिवाले मरुद्गण हमें शान्ति दें। विष्णु हमें शान्ति दें। पूषा हमें शान्ति दें। अन्तरिक्ष हमें शान्ति दे। वायु हमें शान्ति दे।

१०. रक्षण करते हुए सविता हमें शान्ति दें। अन्धकार-विनाशिनी उषायें हमें शान्ति दें। हमारी प्रजा के लिए पर्जन्य शान्ति दें। क्षेत्रपति शम्भु हमें शान्ति दें।

११. प्रकाशमान विश्वदेवगण हमें शान्ति दें। कर्म के साथ सरस्वती हमें यज्ञ-सेवक शान्ति दें। दान-निपुण हमें शान्ति दें। भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक में उत्पन्न प्राणी हम शान्ति दें।

१२. सत्य-पालक देवता हमें शान्ति दें। अश्वगण हमें शान्ति दें। गायें हमारे लिए सुखदात्री हों। सुकर्म-कर्त्ता और सुन्दर हाथवाले ऋभुगण हमें शान्ति दें। स्तोत्र करने पर हमारे पितर भी हमारे लिए शान्ति दें।

१३. अज-एकपाद देव हमें शान्ति दें। अहिर्बुध्न्य देव हमें शान्ति दें। समुद्र हमें शान्ति दे। उपद्रव शान्ति करनेवाले "अपां नपात्" देव हमें शान्ति दें। देव-पालिका पृश्नि हमें शान्ति दें।

१४. हम यह नया स्तोत्र बनाते हैं। आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगण इसका सेवन करें। द्युलोक, पृथिवी और पृश्नि से उत्पन्न तथा अन्य भी जितने यज्ञीय हैं, सब हमारा आह्वान सुनें।

१५. यज्ञयोग्य देवो, यजनीय मनु प्रजापति और यजनीय अमर सत्यज्ञ जो देवगण हैं, वे हमें आज बहुकीर्तिवाला पुत्र प्रदान करें। तुम सदा हमें कल्याण द्वारा पालन करो।

तृतीय अध्याय समाप्त

३६ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय। देवता विश्वदेव। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. यज्ञस्थान से स्तोत्र, उत्तमता से, सूर्य आदि के पास जाय। किरणों के द्वारा सूर्य ने वृष्टि का जल बनाया है। पृथिवी अपने सानुओं (पर्वतादि तटों) को विस्तृत करके व्याप्त हुई है। पृथिवी के विस्तृत अङ्गों के ऊपर अग्नि जलते हैं।

२. बली मित्र और वरुण, हव्य-रूप अन्न की तरह तुम्हारे लिए नई स्तुति करता हूँ। तुम लोगों में एक स्वामी वरुण हैं, जो स्थान के उत्पादक (धर्माधर्म के धारक) हैं और मित्र, स्तुति किये जाने पर, प्राणियों को प्रवर्त्तित करते हैं।

३. गति-परायण वायु की गति चारों ओर शोभा पाती है। दूध देनेवाली गाय बढ़ती हैं। महान् और प्रकाशमान आदित्य के स्थान (अन्तरिक्ष) में उत्पन्न और वर्षणशील मेघ उस अन्तरीक्ष में क्रन्दन (गर्जन) करता है।

४. शूर इन्द्र, जो मनुष्य तुम्हारे प्रिय, सुन्दर गमनवाले और धारक इन हरि नाम के दोनों घोड़ों को, स्तुति-द्वारा, रथ में जोतता है, उसके यज्ञ में आओ। अर्यमा हिंसा की इच्छा करनेवाले शत्रु का कोप विनष्ट करते हैं। उन्हीं शोभन कर्मवाले अर्यमा को स्तुति से आवर्त्तित करता हूँ।

५. यजमान लोग, अन्नवाले होकर और यज्ञ-स्थल में अवस्थित रह-कर, रुद्र का सख्य चाहते हैं। नेताओं-द्वारा स्तुत होने पर रुद्र अन्न देते हैं। मैं रुद्र का प्रिय नमस्कार करता हूँ।

६. जिन नदियों में सिन्धु (नदी) माता है और सरस्वती (नदी) सप्तमा है, वे ही मनोरथपूर्ण करनेवाली और सुन्दर धारोंवाली नदियाँ प्रवाहित होती हैं। अपने जल से बढ़नेवाली, अन्नवाली और इच्छा करने-वाली नदियाँ एक साथ ही आवें।

७. प्रसन्न और वेगवान् मरुद्गण हमारे यज्ञ-कर्म और पुत्र की रक्षा करें। व्याप्त और विचरनेवाली वाग्देवता (सरस्वतीदेवी) हमें छोड़कर दूसरे को न देखें। मरुत् और वाक् हमारा धन नियत रहने पर भी उसे बढ़ावें।

८. तुम असीम और महती पृथिवी को बुलाओ। यज्ञ-योग्य वीर पूषा को बुलाओ। हमारे कर्म-रक्षक भग देवता को बुलाओ। दान-निपुण और प्राचीन (ऋभुओं में से एक) वाजदेव को यज्ञ में बुलाओ।

९. मरुतो, हमारा यह श्लोक (स्तोत्र) तुम्हारे सामने जाय। आश्रय-दाता और गर्भपालक विष्णु के निकट भी जाय। वे स्तोता को पुत्र और अन्न दें। तुम हमें सदा कल्याण (स्वस्ति) द्वारा पालन करो।

३७ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. विस्तृत तेज के आधार ऋभुओ (वाजो), वाहक, प्रशस्य और अहिंसक रथ तुम्हें ढोवे। सुन्दर जबड़ोंवाले ऋभुओ, यज्ञ में आनन्द के लिए दूध, दही और सत्तू में मिले सोमरस-द्वारा उदर-पूर्ति करो।

२. स्वर्गदर्शी ऋभुओ, तुम लोग हविष्मान् लोगों के लिए अहिंसक (चोरों आदि से न चुराया जानेवाला) रत्न धारण करो। अनन्तर बल-वान् होकर यज्ञ में सोमपान करो। कृपा-द्वारा हमें विशेष रूप से धन दो।

३. धनी इन्द्र, तुम विशेष और अल्प धन के दान के समय धन का सेवन करते हो। तुम्हारी दोनों बाहें धन से पूर्ण हैं। धन-प्राप्ति में तुम्हारा वचन बाधक नहीं होता।

४. इन्द्र, तुम असाधारण-यशा, ऋभुओं के ईश्वर और साधक हो। दूसरे की तरह तुम स्तोता के घर में आओ। हरि अश्ववाले इन्द्र, आज हम (वसिष्ठ) हव्य प्रदान करके तुम्हारा स्तोत्र करते हैं।

५. हर्यश्व, तुम हमारी स्तुति-द्वारा व्याप्त होते हो; इसलिए हव्य देनेवाले यजमान के लिए प्रवण धन के दाता हो। इन्द्र, तुम हमें कब धन दोगे? आज तुम्हारे योग्य रक्षण से हम प्रतिपालित होंगे।

६. तुम कब हमारे स्तोत्र-रूप वाक्य को समझोगे ? तुम इस समय हमें निवास दे रहे हो। बली और वेगशाली अश्व हमारी स्तुति से वीर पुत्र से युक्त धन और अन्न हमारे गृह में ले आवें।

७. प्रकाशमाना निर्ऋति (भूमि) जिन इन्द्र को, अधिपति बनाने के लिए, व्याप्त करती है, सुन्दर अन्नवाले वर्ष जिन इन्द्र को व्याप्त करते हैं और जिन इन्द्र को मनुष्य स्तोता अपने गृह में ले जाते हैं, वही त्रिलोक-धारी इन्द्र अन्न को जीर्ण करनेवाला बल प्राप्त करते हैं।

८. सविता देवता, तुम्हारे यहाँ से प्रशंसा-योग्य धन हमारे पास आवे। पर्वत (इन्द्र-सखा मेघ) के धन देने पर हमारे पास धन आवे। सर्व-रक्षक स्वर्गीय इन्द्र सदा रक्षक-रूप से हमारा सेवन करें। देवो, तुम सदा स्वस्ति-द्वारा हमें पालन करो।

३८ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिस सुवर्णमयी प्रभा का आश्रय सविता (सूर्य) करते हैं, उसी को उदित करते हैं। सविता मनुष्यों के लिए स्तुत्य हैं। अनेक धनोंवाले सविता स्तोताओं को मनोहर धन देते हैं।

२. सवितादेव, उदित होओ। हे हिरण्यबाहु, विस्तृत और प्रसिद्ध प्रभा देते हुए और मनुष्यों के भोग-योग्य धन नेताओं को देते हुए यज्ञ प्रारम्भ हुआ। तुम हमारा स्तोत्र सुनो।

३. सवितादेव हमारे द्वारा स्तुत हों। जिन सविता देव की स्तुति समस्त देव करते हैं, वह पूजनीय सविता हमारा स्तोम (स्तोत्र) और अन्न धारण करें। सब प्रकार के रक्षा-कार्य-द्वारा स्तोताओं का पालन करें।

४. सविता देवता की अनुमति के अनुसार अदिति देवी स्तुति करती हैं, वरुण आदि देवता सविता की स्तुति करते हैं तथा मित्र आदि और समान प्रीतिवाले अर्यमा उनकी स्तुति करते हैं।

५. दान-निपुण और भक्त यजमान, आपस में मिलकर, द्युलोक और भूलोक के मित्र सविता की सेवा करते हैं। अहिर्बुध्न्य हमारा स्तोत्र सुनें। मुख्य धेनुओं-द्वारा वाग्देवी भी हमारा पालन करें।

६. प्रजा-रक्षक सविता, हमारी प्रार्थना के अनुसार, अपना मनोहर धन दें। ओजस्वी स्तोता हमारी रक्षा के लिए भग नाम के देवता को बार-बार बुलाते हैं। असमर्थ स्तोता रत्न माँगता है।

७. यज्ञ-कालीन हमारे स्तोत्रों में मित-द्रव, मित-मार्ग और शोभन अश्ववाले वाजी नाम के देवगण हमारे लिए सुख-प्रद हों। ये वाजीदेवगण अदाता (चोर), हन्ता और राक्षसों को मारते हुए सारे पुराने रोगों को हमसे अलग करें।

८. वाजी देवगण, तुम लोग मेधावी, अमर और सत्य-ज्ञाता होकर धन के निमित्त-भूत सारे युद्धों में हमारा पालन करो। इस सोम को पियो और प्रमत्त होओ। अनन्तर तृप्त होकर देवयान-मार्ग से जाओ।

३९ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि ऊपर उठकर स्तोता की शोभन स्तुति का आश्रय करें। सबको बुढ़ापा देनेवाली उषा देवी पूर्वाभिमुखी होकर यज्ञ में गमन करें। आदर से युक्त पत्नी और यजमान, रथियों की तरह, यज्ञ-मार्ग का आश्रय करते हैं। हमारा भेजा हुआ होता यज्ञ करता है।

२. इन यजमानों का अन्न-युक्त कुश पाया जाता है। इस समय प्रजा-पालक और बड़वावाले वायु और पूषा, प्रजा के मंगल के लिए, रात्रि की उषा के पहले का आह्वान सुनकर अन्तरिक्ष में आवें।

३. इस यज्ञ में वसुगण पृथिवी पर रमण करें। विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में स्थित और दीप्यमान मरुद्गण सेवित होते हैं। हे प्रभूतगामी वसुओ और मरुतो, अपना गन्तव्य पथ हमारी ओर करो। हमारा दूत तुम लोगों के पास गया है। उसका आह्वान सुनना।

४. प्रख्यात, यजनीय और रक्षक विश्वदेवगण यज्ञ-स्थान में आते हैं। अग्नि, हमारे यज्ञ में हमारे अभिलाषी देवों के लिए यज्ञ करो। भग, अश्विनीकुमारों और इन्द्र की शीघ्र पूजा करो।

५. अग्नि, तुम द्युलोक से स्तुति-योग्य मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, अदिति और विष्णु को हमारे यज्ञ में बुलाओ। पृथिवी से भी बुलाओ। सरस्वती और मरुद्गण हृष्ट हों।

६. हम यजनीय देवों के लिए स्तुति के साथ हव्य प्रदान करते हैं। अग्नि हमारी अभिलाषा के प्रतिबन्धक न होकर यज्ञ को व्याप्त करते हैं। देवो, तुम ग्राह्य और सदा संभजनीय धन दो। आज हम सहायक देवों से मिलेंगे।

७. वसिष्ठों के द्वारा आज द्यावापृथिवी भली भाँति स्तुत हुए। यज्ञ से युक्त वरुण, इन्द्र और अग्नि भी स्तुत हुए। आह्लादकारी देवगण हमें पूजनीय और सर्वोत्तम अन्न प्रदान करें। तुम हमें सदा स्वस्ति द्वारा पालन करो।

४० सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवो, तुम्हारा चित्त द्वारा सम्पादनीय सुख हमारे पास आवे। हम वेगवान् देवों के लिए स्तोत्र करते हैं। इस समय जो धन सविता भेजेंगे, हम रत्नवाले सविता के उसी धन को ग्रहण करेंगे।

२. मित्र, वरुण और द्यावापृथिवी हमें वही प्रसिद्ध धन दें। इन्द्र और अर्यमा हमें प्रकाशमान स्तोताओं-द्वारा सेवित धन दें। वायु और भग हमारे लिए जिस धन की योजना करते हैं, देवी अदिति उसी धन को हमें दें।

३. पृषत् नामक अश्ववाले मरुतो, जिस मनुष्य की तुम रक्षा करते हो, वही ओजस्वी और बलवान् हो। अग्नि और सरस्वती आदि देवगण

यजमान को प्रवर्त्तित करते हैं। इस यजमान के धन का कोई विघातक नहीं है।

४. यज्ञ के प्रापक ये वरुण, मित्र और अर्यमा सबकी शक्ति से युक्त हैं। ये हमारा यज्ञ-कर्म धारण करते हैं। न रोकी गई और प्रकाशमाना अदिति शोभन आह्वानवाली हैं। जिससे हमें बाधा न हो, इस प्रकार पाप से हमें ये सब देव बचावें।

५. अन्य देवगण यज्ञ में हव्य-द्वारा प्रापणीय और अभीष्टदाता विष्णु के अंश-रूप हैं। रुद्र अपनी महिमा प्रदान करें। अश्विनीकुमारो, तुम हमारे हव्यवाले गृह में आओ।

६. सबकी वरणीया सरस्वती और दान-निपुणा देवपत्नियाँ जो धन हमें देती हैं, उसमें, हे दीप्तिवाले पूषन्, बाधा नहीं देना। सुखप्रद और गतिशील देवगण हमें पालन करें। सर्वत्रगामी वायु वृष्टि का जल प्रदान करें।

७. आज देवों के द्वारा द्यावापृथिवी भली भाँति स्तुत हुईं। यज्ञवाले वरुण, इन्द्र और अग्नि भी स्तुत हुए। आह्लादकारी देवगण हमें पूजनीय और सर्वोत्तम अन्न प्रदान करें। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

४१ सूक्त

(यह भग-सूक्त है। देवता १ म ऋक् के इन्द्रादि, २ य—५ म के भग और ७ म की उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. हम प्रातःकाल अग्नि, इन्द्र मित्र और वरुण को बुलाते हैं तथा प्रातःकाल अश्विनीकुमारों की स्तुति करते हैं। प्रातःकाल भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्र की स्तुति करते हैं।

२. जो संसार के धारक, जय-शील और उग्र अदिति के पुत्र हैं, उन्हीं भगदेवता को हम प्रातःकाल बुलाते हैं। दरिद्र स्तोता और धनी

राजा दोनों ही भग देवता की स्तुति करते हुए "मुझे भोग-योग्य धन दो" की याचना करते हैं।

३. भग, तुम उत्तम नेता हो। भग, तुम सत्य धन हो। हमें तुम अभिलषित वस्तु प्रदान करके हमारी स्तुति सफल करो। भग, तुम हमें गौ और अश्व-द्वारा प्रवर्द्धित करो। भग, हम पुत्रादि-द्वारा मनुष्यवान् बनेंगे।

४. हम इस समय भगवान् (तुम्हारे) हों, दिन के प्रारम्भ और मध्य में भी भगवान् हों। धनी भग देव, सूर्योदय के समय हम इन्द्र आदि का अनुग्रह प्राप्त करें।

५. देवो, भग ही भगवान् हों। हम भग के अनुग्रह से ही भगवान् हों। भग, सब लोग तुम्हें बार-बार बुलाते हैं। भग, तुम इस यज्ञ में हमारे अग्रगामी बनो।

६. शुद्ध स्थान के लिए दधिक्रावा की तरह उषा देवता हमारे यज्ञ में आवें। वेगशाली अश्वों के रथ की तरह उषा देवता धनदाता भगदेव को हमारे सामने ले आवें।

७. सारे गुणों से प्रवृद्ध और भजनीय उषा देवता अश्व, गौ और वीर पुरुष से युक्त होकर तथा जल-सेचन करके सदा हमारे रात्रि-जात अन्धकार को नाश करें। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

४२ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तोता (ब्राह्मण) अंगिरा लोग सर्वत्र व्याप्त हों। पर्जन्य हमारे स्तोत्र की अभिलाषा विशेष रूप से करें। प्रसन्नता-दायिका नदियाँ जल-सेचन करते हुए गमन करें। आदर-सम्पन्ना पत्नी और यजमान यज्ञ के रूप की योजना करें।

२. अग्नि, तुम्हारा चिर-प्राप्त पथ सुगम हो। जो श्याम और लोहित वर्ण के अश्व यज्ञ-गृह में तुम्हारे समान वीर को ले जाते हुए शोभा

पाते हैं, उन्हें रथ में योजित करो। मैं यज्ञ-गृह में बैठकर देवों को बुलाता हूँ।

३. देवो, नमस्कारवाले ये स्तोता तुम्हारे यज्ञ का भली भाँति पूजन करते हैं। हमारे समीप में रहनेवाला होता सर्वोत्तम है। यजमान, देवों का यज्ञ भली भाँति करो। बहुत तेजवाले, तुम भूमि को आवर्तित करो।

४. सबके अतिथि अग्नि जिस समय वीर और धनी के गृह में सुख से सोये हुए देखे जाते हैं और जिस समय अग्नि घर में भली भाँति निहित होकर प्रसन्न होते हैं, उस समय वह समीपवर्तिनी प्रजा को वर-णीय धन देते हैं।

५. अग्नि, हमारे इस यज्ञ की सेवा करो। इन्द्र और मरुतों के बीच हमें यशस्वी बनाओ। रात्रि और उषा के काल में कुशों पर बैठो। यज्ञाभिलाषी मित्र और वरुण की इस यज्ञ में पूजा करो।

६. धन-कामी होकर वसिष्ठ ने, इसी प्रकार, बल-पुत्र अग्नि की, बहु-रूपवाले धन की प्राप्ति के लिए, स्तुति की थी। अग्नि हमें अन्न, बल और धन दें। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

४३ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वृक्ष-शाखा की तरह जिन मेधावियों के स्तोत्र सब ओर जाते हैं, वे ही देव-कामी यज्ञ में नमस्कार (वा स्तुति) द्वारा तुम्हें पाने के लिए, विशेष रूप से, स्तुति करते हैं। वे द्यावापृथिवी की भी स्तुति करते हैं।

२. शीघ्र-गामी अश्व की तरह इस यज्ञ में जाओ। समान मन से तुम घी बहानेवाली स्रुक् को उठाओ। यज्ञ के लिए बढ़िया कुश बिछाओ। अग्नि, तुम्हारी देवकामी किरणें ऊर्द्ध्व-मुख रहें।

३. विशेष रूप से प्रतिपालनीय पुत्र जैसे माता की गोद में बैठते हैं, वैसे ही देवगण यज्ञ के उन्नत स्थान पर विराजें। अग्नि, जुहू तुम्हारी

यजनीय ज्वाला को भली भाँति सींचे। युद्ध में तुम हमारे शत्रुओं की सहायता नहीं करना।

४. यजनीय देवगण जल की वहने योग्य धारा को बरसाते हुए यथेष्ट रूप से हमारी सेवा को स्वीकार करें। देवो, आज धनों में जो पूज्य धन है, वह आवे। एक मन होकर तुम भी आओ।

५. अग्नि, इसी प्रकार तुम प्रजा में से हमें धन दो। बली अग्नि, तुम्हारे द्वारा हम छोड़ न जाकर नित्य-युक्त धन के साथ मत्त और अहिंसित हों। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

४४ सूक्त

(देवता दधिक्रा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. तुम्हारी रक्षा के लिए पहले मैं दधिक्रा (अश्वाभिमानी) देव को बुलाता हूँ। इसके पश्चात् अश्वि-द्वय, उषा, समिद्ध अग्नि और भग देवता का आह्वान करता हूँ। इन्द्र, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, आदित्य-गण, द्यावापृथिवी, जल-देवता और सूर्य को बुलाता हूँ।

२. यज्ञ के प्रारम्भ में हम स्तोत्र-द्वारा दधिक्रा देवता को प्रबोधित और प्रवर्त्तित करते हुए और इलादेवी (हवीरूपा देवी) को स्थापित करते हुए शोभन आह्वान से सम्पन्न मेधावी अश्वि-द्वय को बुलाते हैं।

३. दधिक्रा को प्रबोधित करके मैं अग्नि, उषा, सूर्य और वाग्देवता (वा भूमि) की स्तुति करता हूँ। मैं अभिमानियों के विनाशकारी वरुण के महान् पिङ्गल वर्ण अश्व की स्तुति करता हूँ। वे सब देवगण सारे पापों को मुझसे अलग करें।

४. अश्वों में मुख्य, शीघ्रगामी और गति-शील दधिक्रा ज्ञातव्य को भली भाँति जानकर उषा, सूर्य, आदित्यगण, वसुगण और अंगिरा लोगों के साथ सहमत होकर स्वयं रथ के अग्र भाग में लगते हैं।

४५ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. रत्न-युक्त, अपने तेज से अन्तरिक्ष के पूरक और अपने अश्वों-द्वारा ढोये जाते हुए सविता देव मनुष्य के लिए हितकर प्रभूत धन, हाथ में धारण करते हुए, प्राणियों को अपने स्थान में धारण और अपने कर्म में प्रेरित करते हुए आवें।

२. दान के लिए प्रसारित और विशाल हिरण्मय बाहुओं-द्वारा सविता अन्तरिक्ष के अन्त को व्याप्त करें। आज हम सविता की उसी महिमा की स्तुति करते हैं। सूर्य भी सविता (सूर्य की तीक्ष्ण शक्तिदेव) को कर्मेच्छा दें।

३. तेजस्वी और धनाधिपति सविता देव ही हमारे लिए धन भेजें। वह बहु विस्तीर्ण रूप को धारण करते हुए हमें मनुष्यों के भोग-योग्य धन दें।

४. ये स्त्रोत्र-रूप वचन (वा प्रजायें) उत्तम जिह्वावाले, धन-सम्पन्न और सुन्दर हाथवाले सविता देवता की स्तुति करते हैं। वे हमें विचित्र और विशाल अन्न दें। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

४६ सूक्त

(देवता रुद्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. दृढ़-धनुष्क, शीघ्रगामी बाणवाले, अन्नवाले, किसी के लिए भी अजेय तथा सबके विजेता और तीक्ष्ण अस्त्र बनानेवाले रुद्र की स्तुति करो। वे सुनें।

२. पृथिवीस्थ और स्वर्गस्थ मनुष्य के ऐश्वर्य-द्वारा उन्हें जाना जा सकता है। रुद्र, तुम्हारा स्तोत्र करनेवाली (हमारी) प्रजा का पालन करते हुए हमारे घर में जाओ। हमें रोग नहीं देना।

३. रुद्र, अन्तरिक्ष से छोड़ी गई जो तुम्हारी बिजली पृथिवी पर विचरण करती है, वह हमें छोड़ दे। हे स्वपिवात रुद्र, तुम्हारे पास हज़ारों ओषधियाँ हैं। हमारे पुत्र या पौत्र की हिंसा नहीं करना।

४. रुद्र, न हमें मारना न छोड़ना। तुम क्रोध करने पर जो बन्धन करते हो, उसमें हम न रहें। प्राणियों के प्रशस्य यज्ञ का हमें भागी बनाओ। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

४७ सूक्त

(देवता अप् (जल)। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे अप्‌देवता, देवेच्छुक अध्वर्युओं के द्वारा इन्द्र के लिए पीने योग्य और भूमि-समुत्पन्न जो तुम लोगों का सोमरस पहले संस्कृत किया गया है, उसी शुद्ध, निष्पाप, वृष्टि-जल-सेचनकारी और रस से युक्त सोम-रस का हम भी सेवन करेंगे।

२. शीघ्र-गति "अपां नपात्" (अग्नि) देवता तुम्हारे उस रसवत्तम सोमरस का पालन करें। वसुओं के साथ इन्द्र जिसमें मत्त होते हैं, तुम्हारे उसी सोमरस को हम देवाभिलाषी होकर आज प्राप्त करेंगे।

३. अनेक पावन रूपोंवाले और लोगों में हर्षोत्पादक तथा प्रकाशमान जल-देवता देवों के स्थानों में प्रवेश करते हैं। वे इन्द्र के यज्ञादि कर्मों की हिंसा नहीं करते। अध्वर्युओ, तुम सिन्धु आदि के लिए घृत-युक्त हव्य का होम करो।

४. सूर्य, किरणों द्वारा, जिन जलों का विस्तार करते हैं और जिनके लिए इन्द्र ने गमनीय पथ को विदीर्ण किया है, हे सिन्धुगण, वे ही तुम लोग हमारा धन धारण करो। तुम सदा हमें स्वस्ति द्वारा पालन करो।

४८ सूक्त

(देवता ऋभु। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. नेता और धनवान् ऋभुओ, हमारे सोमपान से तुम मत्त होओ। तुम लोग जा रहे हो। तुम्हारे कर्म-कर्त्ता और समर्थ अश्व हमारे अभि-मुख होकर मनुष्यों के लिए हितकर रथ आवर्त्तित करें।

२. हम तुम्हारे द्वारा विभु (प्रथित) हैं। तुम लोग समर्थ हो। हम तुम्हारी सहायता से समर्थ होकर तुम्हारे बल द्वारा शत्रुओं को दबावेंगे। वाज नाम के ऋभु युद्ध में हमारी रक्षा करें। इन्द्र को सहायक पाकर हम वृत्र के हाथ से बच जायँगे।

३. हमारी अनेक शत्रु-सेनाओं को इन्द्र और ऋभुगण आयुध-द्वारा पराजित करते हैं। युद्ध होने पर वे सारे शत्रुओं को मारते हैं। विभ्वा, ऋभुक्षा और वाज नाम के तीनों ऋभु और आर्य इन्द्र-मन्थन द्वारा शत्रु-बल को विनष्ट करेंगे।

४. प्रकाशक ऋभुओ, तुम आज हमें धन दो। हे समस्त ऋभुओ, प्रसन्न होकर तुम हमारे रक्षक होओ। प्रशस्य ऋभुगण हमें अन्न प्रदान करें। तुम सदा हमें स्वस्ति (कल्याण) द्वारा पालन करो।

४९ सूक्त

(देवता अप्। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिन जलों में समुद्र ज्येष्ठ हैं, वे सदा गमन-शील और शोधक जलसमूह (अप् देवता) अन्तरिक्ष के बीच से जाते हैं। वज्रधर और अभीष्टवर्षक इन्द्र ने जिनको छोड़ दिया था, वे अप्देवता यहाँ हमारी रक्षा करें।

२. जो जल अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, जो नदी आदि में प्रवाहित होते हैं, जो खोदकर निकाले जाते हैं और जो स्वयं उत्पन्न होकर समुद्र की ओर जाते हैं, वे ही दीप्ति से युक्त और पवित्र (देवी-स्वरूप) जल हमारी रक्षा करें।

३. जिनके स्वामी वरुणदेव जल-समूह में सत्य और मिथ्या के साक्षी होकर मध्यम लोक में जाते हैं, वे ही रस गिरानेवाली, प्रकाश से युक्त और शोधिका जल-देवियाँ हमारी रक्षा करें।

४. जिनमें राजा वरुण निवास करते हैं, जिनमें सोम रहता है, जिनमें

अन्न पाकर विश्व-देवगण प्रमत्त होते हैं और जिनमें वैश्वानर पैठते हैं, वे ही प्रकाशक जल (अप् देवता) हमारी रक्षा करें।

५० सूक्त

(देवता प्रथम के मित्र और वरुण, द्वितीय के अग्नि, तृतीय के वैश्वानर और चतुर्थ की नदी। ऋषि वसिष्ठ। छन्द जगती, शक्वरी और अतिजगती।)

१. मित्र और वरुण, इस लोक में तुम हमारी रक्षा करो। स्थान-कारी और विशेष वर्द्धमान विष हमारी ओर न आवे। अजका (कदाचित् स्तनाकृति) नामक रोग की तरह दुर्दर्शन विष विनष्ट हो। छद्म-गामी सर्प हमें पद-ध्वनि से न पहचान सके।

२. जो वन्दन नाम का विष नाना जन्मों में वृक्षादि के ग्रन्थि-स्थान में उत्पन्न होता है और जो विष जानु (घुटना) और गुल्फ (पाद-ग्रन्थि) को फुला देता है, दीप्तिमान् अग्निदेव, हमारे इस मनुष्य से उस विष को दूर करो। छद्मगामी सर्प पदध्वनि-द्वारा हमें जानने न पावे।

३. जो विष शाल्मली (वा वक्षःस्थान) में होता है और जो नदी-जल में ओषधियों से उत्पन्न होता है, विश्वदेवगण, उस विष को हमसे दूर कर दो। छद्मगामी सर्प पद-ध्वनि-द्वारा हमें जानने न पावे।

४. जो नदियाँ प्रबल (वा प्रवण) देश में जाती हैं, जो निम्न देश में जाती हैं, जो उन्नत देश में जाती हैं, जो जल-युक्त और जल-शून्य होकर संसार को आप्यायित (तृप्त) करती हैं। वे सारी प्रकाशक नदियाँ हमारे शिपद नामक रोग का निवारण करके कल्याणकारिणी बनें। वे नदियाँ अहिंसक हों।

५१ सूक्त

(देवता आदित्य। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम आदित्यों के रक्षण-द्वारा नवीन और सुखकर गृह प्राप्त करें। क्षिप्रकारी आदित्यगण हमारे स्तोत्र सुनकर इस यज्ञ-कर्त्ता को निरपराध और अदरिद्र कर दें।

२. आदित्यगण, अदिति, अत्यन्त सरल-स्वभाव मित्र, वरुण और अर्यमा प्रमत्त हों। भुवन-रक्षक देवगण हमारे रक्षक हों। वे आज हमारी रक्षा के लिए सोमपान करें।

३. हमने समस्त आदित्यगण (१२), समस्त मरुद्गण (४९), समस्त देवगण (३३३३), समस्त ऋभुगण (३), इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारों की स्तुति की। तुम सदा हमें स्वस्ति द्वारा पालन करो।

५२ सूक्त

(देवता आदित्य। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हम आदित्यों के आत्मीय हैं; हम अखण्डनीय हों। देवों में हे वसुओ, मनुष्यों की तुम रक्षा करो। मित्र और वरुण, तुम्हारा भजन करते हुए हम धन का उपभोग करेंगे। द्यावापृथिवी, हम भूति (शक्ति) वाले हों।

२. मित्र और वरुण (मित्र = उषा और सूर्य की चालक शक्ति का देवता, वरुण = आकाश का देवता) आदि आदित्यगण हमारे पुत्र और पौत्र को सुख दें। दूसरे का किया पाप हम न भोगें। जिस कर्म को करने पर तुम नाश करते हो, वसुओ, हम वह कर्म न करें।

३. क्षिप्रकारी अंगिरा लोगों ने सविता के पास याचना करके सविता के जिस रमणीय धन को व्याप्त किया था, उसी धन को यज्ञशील महान् पिता (प्रजापति) और सारे देवगण, समान मन से हमें दें।

५३ सूक्त

(देवता द्यावापृथिवी। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्)

१. जिन विशाल और देवों की जननी द्यावापृथिवी (द्यौ वा द्यावा = देवलोक और पृथिवी = भूमि की देवी) को स्तोताओं ने, स्तुति करते हुए, आगे स्थापित किया था, मैं उन्हीं यजनीया और महती द्यावापृथिवी की, ऋत्विकों के साथ-सहित होकर, यज्ञ और नमस्कार के साथ, स्तुति करता हूँ।

२. स्तोताओ, तुम लोग नई स्तुतियों-द्वारा पूर्व-ज्ञाता और मातृ-पितृ-भूता द्यावा-पृथिवी को यज्ञ-स्थान के अग्रभाग में स्थापित करो। द्यावा-पृथिवी, अपना महान् और वरणीय धन देने के लिए, देवों के साथ, हमारे पास आओ।

३. द्यावा-पृथिवी, तुम्हारे पास शोभन हवि देनेवाले यजमान के लिए देने योग्य बहुत रमणीय धन है। धन में जो धन अक्षय हो, उसे ही हमें देना। तुम हमें सदा कल्याण (स्वस्ति) के साथ पालन करो।

५४ सूक्त

(देवता वास्तोष्पति। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हे वास्तोष्पति (गृह-पालक देव), तुम हमें जगाओ। हमारे घर को नीरोग करो। हम जो धन माँगें, वह दो। हमारे पुत्र, पौत्र आदि द्विपदों और गौ, अश्व आदि चतुष्पदों को सुखी करो।

२. वास्तोष्पति, तुम हमारे और हमारे धन के वर्द्धयिता होओ। सोम की तरह आह्लादक देव, तुम्हारे सखा होने पर हम गौओं और अश्वोंवाले और जरारहित होंगे। जैसे पिता पुत्र का पालन करता है, वैसे ही तुम हमारा पालन करो।

३. वास्तोष्पति, हम तुम्हारा सुखकर, रमणीय और धनवान् स्थान प्राप्त करें। तुम हमारे प्राप्त और अप्राप्त वरणीय धन की रक्षा करो और हमें स्वस्ति के साथ सदा पालन करो।

५५ सूक्त

(देवता वास्तोष्पति और इन्द्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द गायत्री अनुष्टुप् और बृहती।)

१. वास्तोष्पति, तुम रोग-नाशक हो। सब प्रकार के रूप में पैठ कर हमारे सखा और सुखकर बनो।

२. हे श्वेतवर्ण और किसी-किसी अंश में पिंगलवर्ण तथा सरमा (देव-कुक्कुरी) के ही वंशोद्भूत वास्तोष्पति, जिस समय तुम दाँत निकालते हो, उस समय हमारे पास, आहार के समय, ओष्ठ-प्रान्त में, आयुध की तरह दाँत विशेष शोभा पाते हैं। इस समय तुम सुख से सोओ।

३. हे सारमेय, तुम जिस स्थान में जाते हो, वहाँ फिर आते हो। तुम स्तेन (चोर) और तस्कर (डकैत) के पास जाओ। इन्द्र के स्तोता के पास क्या जाते हो? हमें क्यों बाधा देते हो? सुख से सोओ।

४. तुम सुअर को फाड़ो और सुअर तुम्हें फाड़े। इन्द्र के स्तोताओं के पास क्या जाते हो? हमें क्यों बाधा देते हो? अच्छी तरह से सोओ।

५. तुम्हारी माता सोवे। तुम्हारे पिता सोवें। कुक्कुर (तुम) सोओ। गृहस्वामी सोवे। बन्धु लोग भी सोवें। चारों ओर के ये मनुष्य भी सोवें।

६. जो व्यक्ति यहाँ है, जो विचरण करता है, जो हमें देखता है, ऐसे सबकी आँखें हम फोड़ देंगे। जैसे यह हर्म्य (कोठा) निश्चल है, वैसे ही वे भी हो जायँगे।

७. जो सहस्रशृंगों वा किरणोंवाले वृषभ (सूर्य) समुद्र से ऊपर उठे हैं, उन विजेता की सहायता से हम सारे मनुष्यों को सुला देंगे।

८. जो स्त्रियाँ आँगन में सोनेवाली हैं, जो वाहन पर सोनेवाली हैं, जो तल्प (बिस्तरे) पर सोनेवाली हैं और जो पुण्य-गन्धा हैं, ऐसी सब स्त्रियों को हम सुला देंगे।

५६ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता मरुत्। ऋषि वसिष्ठ। छन्द द्विपदा, विराट् और त्रिष्टुप्।)

१. कान्तियुक्त नेता, समानगृह-निवासी, महादेव के पुत्र, मनुष्य-हितैषी और सुन्दर अश्ववाले ये रुद्र-पुत्रगण कौन हैं?

२. इनकी उत्पत्ति कोई नहीं जानता। ये ही परस्पर अपनी जन्म-कथा जानते हैं।

३. स्वयं ही घूमते हुए ये परस्पर मिलते हैं। वायु के समान वेग-शाली श्येन (बाज) पक्षी की तरह ये परस्पर स्पर्द्धा (होड़) करते हैं।

४. शास्त्रज्ञ मनुष्य इन श्वेतवर्ण जीवों (मरुतों) को जानते हैं। महती पृश्नि (मरुतों की माता) ने इन्हें अन्तरिक्ष में धारण कर रक्खा है।

५. वह बुद्धि-मरुतों के अनुग्रह से, सदा शत्रुओं को हरानेवाली, धन की पुष्टि देनेवाली और वीर पुत्रवाली है।

६. मरुत लोग (जल-वायु के देवता और रुद्र के अनुचर) जानेवाले स्थानों को सबसे अधिक जाते हैं। वे अलंकार-द्वारा सबसे अधिक शोभा पाते हैं। वे कान्तिपूर्ण और ओजस्वी हैं।

७. तुम्हारा तेज उग्र है और बल स्थिर। मरुद्गण बुद्धिमान् हों।

८. तुम्हारा बल सर्वत्र शोभित है। तुम्हारा चित्त क्रोध-शील है। पराभव करनेवाले और बलवान् मरुतों का वेग, स्तोता की तरह, बहु-विध-शब्दकारी है।

९. मरुतो, हमारे पास से पुराने हथियार अलग करो। तुम्हारी क्रूर बुद्धि हमें व्याप्त न करे।

१०. तुम क्षिप्रकर्त्ता हो। तुम्हारे प्रिय नाम को हम पुकारते हैं। प्रिय मरुद्गण इससे सन्तुष्ट होते हैं।

११. मरुद्गण सुन्दर आयुधवाले, गतिशील और सुन्दर अलंकारवाले हैं। वे हमारे शरीर को सजाते हैं।

१२. मरुतो, तुम शुद्ध हो। शुद्ध हव्य तुम्हारे लिए हो। तुम शुद्ध हो। तुम्हारे लिए हम शुद्ध यज्ञ करते हैं। जलस्पर्शी मरुद्गण सत्य से सत्य को प्राप्त हुए हैं। मरुद्गण शुद्ध हैं, उनका जन्म शुद्ध है और वे अन्य को शुद्ध करते हैं।

१३. मरुतो, तुम्हारे कन्धों पर खादि (एक प्रकार का अलंकार या वलय) स्थित है, उत्तम रुक्म (हार) तुम्हारे हृदय-स्थल में है। जैसे वर्षा के साथ बिजली शोभा पाती है, वैसे ही जल-प्रदान के समय आयुध (मेघगर्जन) द्वारा तुम शोभा पाते हो।

१४. मरुतो, तुम्हारा अन्तरिक्ष में उत्पन्न तेज विशेष रूप से गमन करता है। तुम विशेष रूप से यजनीय हो। जल-वृष्टि करो। मरुतो, तुम सहस्र संख्यावाले, गृहोत्पन्न और गृहमेधियों-द्वारा दत्त इस भाग का आश्रय करो।

१५. मरुतो, तुम अन्नवाले मेधावी के हव्य से युक्त स्तोत्र को जानते हो; इसलिए शोभन पुत्रवाले को शीघ्र धन दो। उस धन को शत्रु नहीं नष्ट कर सकता।

१६. मरुद्गण सततगामी अश्व की तरह सुन्दर गमनवाले हैं। उत्सव-दर्शक मनुष्यों की तरह शोभन हैं और गृह-स्थित शिशुओं की तरह सुन्दर हैं। वे क्रीड़ा-परायण वत्सों की तरह हैं और जल के धारक हैं।

१७. हमारे लिए धन देते हुए और अपनी महिमा से सुन्दर द्यावा-पृथिवी को पूर्ण करते हुए मरुद्गण हमें सुखी करें। मरुतो, मनुष्य-नाशक तुम्हारा आयुध हमारे पाप से दूर रहे। सुख से हमारे अभिमुख होओ।

१८. होतृ-गृह में बैठा हुआ होता तुम्हारे सर्वत्रगामी दान-कार्य की प्रशंसा करके तुम लोगों को भली भाँति बार-बार बुलाता है। कामवर्षक मरुतो, जो होता कार्य-निष्ठ यजमान का रक्षक है, वह मायाशून्य होकर स्तोत्रों-द्वारा तुम्हारी स्तुति करता है।

१९. ये मरुद्गण यज्ञ में क्षिप्रकारी यजमान को प्रसन्न करते हैं। ये बल-द्वारा बलवान् लोगों को नीचे करते हैं। ये हिंसक से स्तोता की रक्षा करते हैं। परन्तु जो हव्य नहीं देता, उसका महान् अप्रिय करते हैं।

२०. ये धनी और दरिद्र—दोनों को उत्तेजित करते हैं। जैसा कि देवगण अथवा बन्धुगण चाहते हैं—काम-वर्षक मरुतो, तुम अन्धकार नष्ट करो और हमें यथेष्ट पुत्र और पौत्र प्रदान करो।

२१. तुम्हारे दान से हम बाहर न हों। रथवाले मरुतो, धन-दान के समय हमें पीछे नहीं फेंकना। अभिलषणीय धनों में हमें भागी बनाना।

कामवर्षक मरुतो, तुम्हारा जो सुजात धन है, उसका भी हमें भागी बनाना।

२२. जिस समय विक्रम-शाली मनुष्य अनेक ओषधियों और मनुष्यों को जीतने के लिए क्रुद्ध होते हैं, उस समय रुद्र-पुत्र मरुतो, संग्राम में शत्रु के निकट से हमारे रक्षक बनना।

२३. मरुतो, हमारे पूर्वजनों के लिए तुमने अनेक कार्य किये हैं। तुम्हारे पहले के जो सब काम प्रशंसित होते हैं, उन्हें भी तुमने किया है। युद्ध में तुम्हारी सहायता से ओजस्वी व्यक्ति शत्रुओं को पराजित करता है। तुम्हारी ही सहायता से स्तोता अन्न भोग करता है।

२४. मरुतो, हमारा वीर पुत्र बली हो। वह असुर (प्रज्ञावान् पुत्र) शत्रुओं का विधारक हो। उस पुत्र के द्वारा हम सुन्दर निवास के लिए शत्रुओं का विनाश करेंगे। तुम्हारे हम आत्मीय स्थान में रहेंगे।

२५. इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, जल, ओषधि और वृक्ष हमारे स्तोत्र का आश्रय करें। मरुतों की गोद में हम सुख से रहेंगे। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

५७ सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. यजनीय मरुतो, मत्त स्तोता लोग यज्ञ-समय में, बल के साथ, तुम्हारे नाम की स्तुति करते हैं। मरुद्गण विस्तृत द्यावापृथिवी को कम्पित करते हैं। वे मेघों से जल बरसाते हैं और ओजस्वी होकर सर्वत्र जाते हैं।

२. मरुद्गण स्तोता को खोजते हैं। यजमान का मनोरथ पूर्ण करते हैं। तुम लोग प्रसन्न होकर हमारे यज्ञ में, सोमपान के लिए, कुश पर बैठो।

३. मरुद्गण जितना दान करते हैं, उतना और कोई नहीं करता। ये हार, आयुध और शरीर की शोभा से शोभित होते हैं। द्यावापृथिवी

का प्रकाश करनेवाले और व्याप्त-प्रकाश मरुद्गण शोभा के लिए समान-रूप आभरण प्रकट करते हैं।

४. मरुतो, तुम्हारा प्रसिद्ध आयुध हमसे दूर रहे। यद्यपि हम मनुष्य होने के कारण तुम्हारे पास अपराध करते हैं, तो भी, हे यजनीय मरुतो, तुम्हारे उस आयुध में न पड़ें। तुम्हारी जो बुद्धि सबसे अधिक अन्न देने-वाली है, वह हमारी हो।

५. हमारे यज्ञ-कार्य में मरुद्गण रमण करें। वे अनिन्दित, दीप्ति-युक्त और शोधक हैं। यजनीय मरुतो, कृपा करके अथवा सुन्दर स्तुति के कारण, हमें विशेष रूप से पालन करो। अन्न के द्वारा पोषण के लिए हमें प्रवर्द्धित करो।

६. स्तुत होकर मरुद्गण हवि का भक्षण करें। वे नेता हैं और सारे जलों के साथ वर्त्तमान हैं। मरुतो, हमारी सन्तान के लिए जल दो। हव्यदाता को सत्य और प्रिय धन दो।

७. स्तुत होकर मरुद्गण सारे रक्षणों के साथ यज्ञ में स्तोता के सामने आवें। ये स्वयं स्तोताओं को शत-संख्या (पुत्रादि) से युक्त करके बढ़ाते हैं। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

५८ सूक्त

(देवता मरुत्। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तोताओ, तुम सदावर्षक मरुद्वृन्द की पूजा करो। ये देवताओं के स्थान (स्वर्ग) में सबसे बुद्धिमान् हैं। अपनी महिमा से ये द्यावापृथिवी को भग्न करते हैं। भूमि और अन्तरिक्ष से स्वर्ग को व्याप्त करते हैं।

२. हे भीम, प्रवृद्धि-बुद्धि और गमनशील मरुतो, तुम्हारा जन्म दीप्त रुद्र से हुआ है। मरुद्गण तेज और बल से प्रभावशाली हुए हैं। तुम्हारे गमन में सूर्य को देखनेवाला सारा प्राणि-जगत् डरता है।

३. तुम हव्य-युक्त को बहुत अन्न दो। हमारे सुन्दर स्तोत्र का अवश्य

सेवन करो। मरुद्गण जिस मार्ग को प्राप्त होते हैं, वह प्राणियों को नहीं विनष्ट करता। वे हमें अभिलषणीय रक्षण-द्वारा प्रवर्द्धित करें।

४. मरुतो, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर स्तोता शत संख्या से युक्त धनवाला होता है। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर स्तोता आक्रमण-कर्त्ता, शत्रुओं को दबानेवाला और सहस्र धनवाला होता है। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर वह सम्राट् और शत्रु-नाशक होता है। हे कम्पक, तुम्हारा दिया हुआ वह धन बहुत बढ़े।

५. काम-वर्षक मरुतों की मैं सेवा करता हूँ। वे फिर कई बार हमारे अभिमुख हों। जिस प्रकट वा अप्रकट पाप से मरुद्गण क्रुद्ध होते हैं, उसे मरुतों की स्तुति करके हम धो देंगे।

६. हमने धनी मरुतों की उस शोभन-स्तुति को इस सूक्त में किया है। मरुद्गण उस सूक्त का सेवन करें। अभीष्ट-वर्षक मरुतो, तुम दूर से ही शत्रुओं को अलग करो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

५९ सूक्त

(देवता मरुद्गण। अन्तिम मन्त्र के देवता रुद्र। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती, सतोबृहती, त्रिष्टुप्, गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. हे देवो, भय से स्तोता को बचाओ। अग्नि, वरुण, मित्र, अर्यमा और मरुतो, तुम जिसे सन्मार्ग पर ले जाते हो, उसे सुख दो।

२. देवो, तुम्हारे रक्षण से तुम्हारे प्रिय दिन में जो यज्ञ करता है, जो शत्रु को आक्रान्त करता है, जो तुम्हें दूसरे स्थान में न जाने देने के लिए तुम्हें बहुत हव्य देता है, वह अपने निवास को बढ़ता है।

३. मैं वसिष्ठ तुम लोगों में जो अवर (मन्द) हैं, उन्हें छोड़कर स्तुति नहीं करता। मरुतो, आज सोमाभिलाषी होकर और तुम सब मिलकर हमारे सोम के अभिषुत होने पर पान करो।

४. नेताओ, जिसे तुम अभिलषित प्रदान करते हो, उसे तुम्हारी रक्षा युद्ध में बचाती है। तुम्हारी नई कृपा-बुद्धि हमारे सामने आवे। सोम-पानाभिलाषियो, तुम शीघ्र आओ।

५. मरुतो, तुम्हारा धन परस्पर मिला हुआ है। सोमरूप हवि भक्षण करने के लिए अच्छी तरह आओ। मरुतो, तुम्हें मैं यह हवि देता हूँ; इसलिए तुम अन्यत्र नहीं जाना।

६. मरुतो, तुम हमारे कुशों पर बैठो। अभिलषणीय धन देने के लिए हमारे पास आओ। मरुतो, तुम लोग अहिंसक होकर इस यज्ञ में मत्तकर सोमरूप हव्य पर स्वाहा कहकर प्रमत्त होओ।

७. अन्तर्हित मरुतो, अपने अंगों को अलंकारों से अलंकृत करके नीलवर्ण हंसों की तरह आओ। मेरे यज्ञ में आनन्दित और रमणीय मनुष्यों की तरह विश्व-व्याप्त मरुद्गण मेरे चारों ओर बैठें।

८. प्रशंसनीय मरुतो, अशोभन क्रोध करके जो तिरस्कृत मनुष्य हमारे चित्त का विनाश करना चाहता है, वह पाप-द्रोही वरुणदेव के पाश से हमें बाँधना चाहता है। उसे तुम लोग अतीव तापक आयुध से विनष्ट करो।

९. शत्रुतापक, यही तुम्हारा हव्य है। तुम शत्रु-भक्षक हो। अपनी रक्षा-द्वारा हवि का सेवन करो।

१०. मरुतो, तुम गृह में भी शोभनदाता हो। रक्षा के साथ आओ। जाओ नहीं।

११. हे स्वयं प्रवृद्ध और क्रान्तदर्शी तथा सूर्यवर्ण मरुतो, मैं यज्ञ की कल्पना करता हूँ।

१२. हम सुगन्धि (प्रसारित-पुण्य-कीर्ति) और पुष्टिवर्द्धक (जगद्-बीज या अणिमादिशक्तिवर्द्धन) त्र्यम्बक (ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पिता या आदिकारण) की पूजा या यज्ञ करते हैं। रुद्रदेव उर्वारुकफल (बदरी-फल) की तरह हमें मृत्यु-बन्धन (संसार) से मुक्त करो और अमृत (चिर-जीवन या स्वर्ग) से मत मुक्त करो।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

प्रथम खण्ड समाप्त।

६० सूक्त

५ अष्टक । ७ मण्डल । ५ अध्याय । ४ अनुवाक ।
(देवता प्रथम ऋचा के सूर्य और शेष के मित्र तथा वरुण ।
ऋषि वसिष्ठ । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हे सूर्य (सब के प्रेरक) देव, उदित होकर तुम आज, अनुष्ठान-काल में, हमें पापरहित करो । हे अदिति (अदीन देव) हम देवों के बीच, मित्र और वरुण के पास, यथार्थ हों । अर्यमन् (दाता), तुम्हारी स्तुति करके हम तुम्हारे प्रिय हों ।

२. मित्र और वरुण, यह वही मनुष्यों के दर्शक सूर्य अन्तरिक्ष में जाते हुए द्यावा-पृथिवी को लक्ष्य कर उदित होते हैं । सूर्य सारे स्थावर और जंगम संसार के पोषक हैं । वे मनुष्यों के पुण्य और पाप को देखते हैं ।

३. मित्र और वरुण, सूर्य ने अन्तरिक्ष में सात हरिद् वर्ण के अश्वों को रथ में जोता । वे सातों जलवाला होकर सूर्य को ले जाते हैं । जैसे गोपालक गो-समूह को भली भाँति देखता है, वैसे ही सूर्य उदित होकर संसार के स्थानों और प्राणियों को देखते हैं । वे तुम दोनों की कामना करते हैं ।

४. मित्र और वरुण, तुम दोनों के लिए अन्न और मधुर पुरोडाशादि थे । सूर्य दीप्त अन्तरिक्ष में चढ़ते हैं । समान प्रीतिवाले मित्र, अर्यमा, वरुण आदि सूर्य के लिए मार्ग प्रस्तुत करते हैं ।

५. ये मित्र, वरुण और अर्यमा यथेष्ट पाप के नाशक हैं । ये सुखकर, अहिंसक और अदिति के पुत्र हैं । ये यज्ञ-गृह में बढ़ते हैं ।

६. आदित्य, मित्र और वरुण दबाने योग्य नहीं हैं । ये अज्ञानी को ज्ञानवान् बनाते हैं । ये उत्तम ज्ञानवाले और कर्मानुष्ठानवाले के पास जाकर, दुष्कृत का विनाश करते हुए, हमें सुमार्ग पर ले जाते हैं ।

७. ये निर्निमेष होकर द्युलोक और पृथिवी के अज्ञानी को कर्म में ले आते हैं। इनके सामर्थ्य से अत्यन्त निम्न देश में भी नदी का तल होता है। ये हमें इस व्यापक कर्म के पार ले जायें।

८. अर्यमा, मित्र और वरुण जो रक्षण से युक्त और स्तुत्य सुख हव्यदाता को देते हैं वही सुख पुत्र और पौत्र के लिए धारण करते हुए हम शीघ्रकारी देवों के लिए क्रोधजनक कार्य न करें।

९. जो हमारा द्वेषी यज्ञ-वेदी पर कार्य करते हुए देवों की स्तुति नहीं करता, वह वरुण-द्वारा मारा जाकर विनष्ट हो जाय। अर्यमा हमें राक्षसादि से अलग रक्खें। मनोरथ-पूरयिता मित्र और वरुण, मुझ हव्यदाता को विस्तीर्ण स्थान दो।

१०. इन मित्रादि की संगति निगूढ़ और दीप्त है। ये निगूढ़ बल-द्वारा हमारे द्वेषियों को पराजित करते हैं। अभिमतदाता मित्रादि देवो, तुम्हारे डर से हमारे विरोधी काँपते हैं। अपने बल की महिमा से हमें सुखी बनाओ।

११. जो यजमान अन्न और उत्तम धन देने के लिए तुम्हारे स्तोत्र में अपनी शोभन बुद्धि को नियुक्त करता है, उस स्तोता का स्तोत्र मघवा लोग (दानी अर्यमा आदि) आश्रित करते और उसके लिए सुन्दर धाम बनाते हैं।

१२. मित्र और वरुण, तुम दोनों के यज्ञ में यह स्तुति की गई है। इसकी सेवा करके हमारी सारी दुरन्त विपत्तियों को दूर करते हुए हमें पार लगाओ। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

६१ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मित्र और वरुण, तुम प्रकाशमान हो। तुम्हारे नेत्र-रूप और शोभनरूपवाले सूर्य तेज का विस्तार करते हुए आकाश में उठते हैं। सूर्यदेव सारे भुवनों अथवा भूतों (प्राणियों) को देखते हैं। वे मनुष्यों के बीच प्रवृत्त स्तोत्र को जानते हैं।

२. मित्र और वरुण, वह याज्ञिक, विप्र (प्रसिद्ध ब्राह्मण) और चिर श्रोता वसिष्ठ तुम दोनों के लिए मननीय स्तुति करते हैं। तुम दोनों शोभन कर्मवाले हो। वसिष्ठ के स्तोत्र की रक्षा करते हो। तुम बहुत वर्षों से वसिष्ठ के कर्म को पूरण करते आ रहे हो।

३. मित्र और वरुण, तुमने विस्तृत पृथिवी की परिक्रमा की है और गुणों तथा स्वरूप से विशाल द्युलोक की भी प्रदक्षिणा कर डाली है। हे शोभनवाला, तुम ओषधियों और प्रजा के लिए रूप धारण करते हो। तुम निर्निमेष भाव से सन्मार्गगामी का पालन करते हो।

४. ऋषि, तुम मित्र और वरुण के तेज की स्तुति करो। अपनी महिमा से मित्र और वरुण का बल द्यावा-पृथिवी को अलग-अलग रक्खे हुए है। यज्ञ न करनेवालों के महीने पुत्र से रहित होकर बीतें। यज्ञ-बुद्धि पुरुष-बल बढ़ावें।

५. हे प्राज्ञ, व्यापक और मनोरथवर्षी मित्र और वरुण, तुम्हारी स्तुति में आश्चर्य, यज्ञ और पूजा कुछ भी नहीं दिखाई देता। द्रोही लोग मनुष्यों की मिथ्या स्तुति का सेवन करते हैं। तुम दोनों के द्वारा किये जाते हुए रहस्यमय स्तोत्र अज्ञान के लिए न हों।

६. मित्र और वरुण, नमस्कार-द्वारा तुम्हारे यज्ञ की पूजा करता हूँ। मित्र और वरुण, मैं बाधा-सम्पन्न होकर तुम दोनों को बुलाता हूँ। तुम्हारी सेवा के लिए नये स्तोत्र बनाये जायँ। मेरे द्वारा इकट्ठा किया हुआ स्तोत्र तुम्हें प्रसन्न करें।

७. मित्र और वरुण, तुम दोनों के यज्ञ में यह स्तुति की गई है। इसकी सेवा करके हमारी सारी दुरन्त विपत्तियों को दूर करते हुए हमें पार लगाओ। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

६२ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सूर्य अत्यधिक और प्रभूत तेज का ऊर्ध्वमुख होकर आश्रय करें। वे मनुष्यों के सभी जनों का आश्रय करें। वे दिन में दीप्तिकर होकर

एकरूप दिखाई देते हैं। वे सबके कर्ता, कृत और प्रजापति-द्वारा तेज होते हैं।

२. सूर्य, तुम स्तोत्रों-द्वारा हरिद् वर्ण और गमनशील अश्वोंसे, ऊर्द्ध्व-मुख होकर, प्रत्येक के सम्मुख गमन करो। तुम मित्र, वरुण, अर्यमा और अग्नि के पास हमें निरपराध कहना।

३. दुःख को रोकनेवाले और सत्यवान् वरुण, मित्र और अग्नि हमें सहस्र-संख्यक धन दें। वे प्रसन्नता-दायक हैं। हमें स्तुत्य और पूजनीय वस्तु दें। हमारे द्वारा स्तुति किये जाने पर हमारी अभिलाषा पूर्ण करें।

४. हे द्यावा-पृथिवी, अदिति और महान् हमारी रक्षा करो। हम सुन्दर जन्मवाले हैं। तुम्हें हम जानते हैं। हम वरुण, वायु और नेताओं (मनुष्यों) के प्रियतम मित्र के क्रोध में न पड़ें।

५. मित्र और वरुण, अपनी बाँहें पसारो। हमारे जीवन के लिए हमारी गोमार्ग-भूमि को जल-द्वारा सिक्त करो। मनुष्यों के बीच हमें विख्यात करो। तुम लोग नित्य तरुण हो। हमारा यह आह्वान सुनो।

६. मित्र, वरुण और अर्यमा, हमारे लिए और पुत्र के लिए धन प्रदान करो। हमारे लिए सभी गन्तव्य स्थान सुगम और सुपथ हों। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

६३ सूक्त

(देवता साढ़े चार मन्त्रों के सूर्य और शेष के मित्र तथा वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. शोभन-भाग्य, सर्वदर्शक, सभी मनुष्यों के लिए साधारण, मित्र और वरुण के नेत्र-स्वरूप तथा प्रकाशमान सूर्य उग रहे हैं। सूर्य चमड़े की तरह अन्धकार को संवेष्टित करते हैं।

२. मनुष्यों के उत्पादक, महान्, सबके सूचक और जलप्रद यह सूर्य सबके एक मात्र चक्र को परिवर्तित करने की इच्छा करके उगते हैं। रथ में नियुक्त हरिद् वर्ण अश्व सूर्य को ढोते हैं।

३. अतीव प्रकाशमान ये सूर्य स्तोताओं के स्तोत्रों को सुनने में प्रमत्त होकर उषाओं के बीच उगते हैं। ये हमें अभिलषित पदार्थ देते हैं। ये सबके लिए समान हैं। अपने तेज को संकुचित नहीं करते।

४. ये दूरगामी, त्राता और दीप्तिमान् सूर्य शोभन और बहु-तेजः-सम्पन्न होकर अन्तरिक्ष में उदित होते हैं। जीवगण निश्चय ही सूर्य से उत्पन्न होकर कर्त्तव्य-कर्म करते हैं।

५. अमर देवों ने जहाँ इन सूर्य के लिए मार्ग बनाया था, वह मार्ग गति-परायण गृद्ध की तरह अन्तरिक्ष का अनुगमन करता है। मित्र और वरुण, सूर्योदय होने पर प्रातःसवन में नमस्कार और हव्य-द्वारा तुम्हारी हम सेवा करेंगे।

६. मित्र, वरुण और अर्यमा हमारे लिए और पुत्र के लिए धन दें। हमारे सारे गन्तव्य सुगम और सुपथ हों। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

६४ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मित्र और वरुण, तुम लोग द्युलोक और पृथिवी में जल के स्वामी हो। तुम्हारे द्वारा प्रेरित मेघ जल को रूप देता है। मित्र, सुजन्मा अर्यमा, राजा और बली वरुण हमारे हव्य को आश्रित करें।

२. तुम लोग राजा, महायज्ञ के रक्षक, सिन्धुपति (नदी-पालक) और क्षत्रिय (वीर) हो। हमारे सामने पधारो। हे शीघ्रदानी मित्र और वरुण, अन्तरिक्ष से हमें अन्न और वृष्टि भेजो।

३. मित्र, वरुण और अर्यमा हमें उत्तम मार्ग-द्वारा, जब चाहें, ले जायें। अर्यमा सुन्दर दाता के पास हमारी कथा कहें। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम अन्न-द्वारा, पुत्र-पौत्रादि के साथ, प्रमत्त हों।

४. मित्र और वरुण, जिसने मन के द्वारा तुम्हारे इस रथ का निर्माण किया है, जो उच्च कर्म करता है और जो यज्ञ में तुम्हें धारण करता है—

तुम लोग राजा हो, उसे जल-द्वारा सिक्त करो और उसे सुन्दर निवास प्रदान कर तृप्त करो ।

५. मित्र और वरुण, तुम्हारे और वायु के लिए, दीप्त सोम की तरह, यह सोम बनाया गया है । हमारे कर्म में प्रवेश करो, स्तुति को जानो और हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो ।

६५ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण । ऋषि वसिष्ठ । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हे मित्र और शुद्ध-बल वरुण, सूर्य के उगने पर तुम दोनों को, सूक्त-द्वारा, मैं आह्वान करता हूँ । इन दोनों का बल अक्षय और प्रचुर है । संग्राम होने पर दोनों विजयी होते हैं ।

२. वे दोनों देव देवों में असुर (बली) हैं । वे आर्य (सबके ईश्वर) हैं । वे हमारी प्रजा को प्रवृद्ध करें । मित्र और वरुण, हम तुम दोनों को व्याप्त करेंगे । तुम्हारी व्यापकता में हमें द्यावापृथिवी दिन-रात आप्यायित करेंगे ।

३. मित्र और वरुण बहुत पाश (बन्धन) वाले हैं । वे यज्ञ-शून्य व्यक्ति (अनृत) के लिए सेतु की तरह बन्धनकारी हैं । वे शत्रुओं के लिए दुरतिक्रम हैं । मित्र और वरुण, जैसे नौका-द्वारा जल को पार किया जाता है, वैसे ही हम तुम्हारे यज्ञ-मार्ग में पाप से पार पायेंगे ।

४. मित्र और वरुण हमारे हव्य की सेवा के लिए आवें । अन्न के साथ जल-द्वारा हमारे गोचर-स्थान को सिक्त करें । तुम्हें इस संसार में उत्कृष्ट हव्य कौन देगा ? तुम संसार के लिए स्वर्गीय और रमणीय जल दो ।

५. मित्र और वरुण, तुम्हारे और वायु के लिए, दीप्त सोम की तरह, यह सोम बनाया गया है । हमारे कर्म में प्रवेश करो, स्तुति को जानो और हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो ।

६६ सूक्त

(देवता ४ से १३ तक के आदित्य, १४ से १६ तक के सूर्य और आदि तथा अन्त के तीन-तीन मन्त्रों के मित्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द गायत्री, प्रगाथ, पुरउष्णिक्, बृहती, सतोबृहती आदि।)

१. बारम्बार आविर्भूत मित्र और वरुण का सुखकर और अन्नवान् स्तोम गमन करे।

२. शोभन बलवाले, बल के रक्षक और प्रकृत तेजवाले मित्र और वरुण को बल के लिए देवों ने धारण किया था।

३. वे मित्र और वरुण गृह और शरीर के पालक हैं। मित्र और वरुण, तुम लोग स्तोताओं के कर्मरूप स्तोत्रों को सफल करो।

४. सूर्योदय होने पर आज, हमारे लिए, अपेक्षित धन को पाप-नाशक मित्र, सविता, अर्यमा और भग प्रेरित करें।

५. शोभन-दान-परायण, तुम लोग हमारे पाप को दूर करो। तुम्हारा आगमन होने पर वह निवास सुरक्षित हो।

६. मित्र आदि और अदिति अहिंसक व्रत वा कर्म के ईश्वर हैं; वे महाधन के भी ईश्वर हैं।

७. सूर्योदय होने पर मित्र, वरुण और शत्रु-भक्षक अर्यमा की मैं स्तुति करूँगा।

८. हित-रमणीय धन के साथ यह स्तुति हमारे अहिंसनीय बल के लिए हो।

९. वरुण और मित्र, ऋत्विकों के साथ हम तुम्हारे स्तोता होंगे। हम अन्न और जल भी धारण करेंगे।

१०. मित्रादि, महान् सूर्य की तरह दीप्त, अग्नि-जिह्व और यज्ञ-वर्द्धक हैं। वे परिभवकारक कर्म-द्वारा व्याप्त स्थानों को देते हैं।

११. जिन्होंने वर्ष, मास, दिन, यज्ञ, रात्रि और मन्त्र की रचना की

हैं, उन मित्र, वरुण और अर्यमा ने, शोभमान होकर, दूसरों के लिए अप्राप्त बल पाया था ।

१२. आज सूर्योदय होने पर, सूक्त-द्वारा, तुमसे उस धन की याचना करेंगे, जिसे जल के नेता मित्र, वरुण और अर्यमा धारण करते हैं ।

१३. नेताओ, तुम लोग यज्ञवान्, यज्ञ के लिए उत्पन्न, यज्ञ-वर्द्धक, भयानक और यज्ञ-हीन के द्वेषी हो। तुम्हारे सुखतम धन के लिए जो अन्य ऋत्विक् हैं, वे और हम अधिकारी होंगे।

१४. वह दर्शनीय मण्डल अन्तरिक्ष के समीप उदित होता है । शीघ्र-गामी और हरितवर्ण अश्व सबके भली भाँति देखने के लिए उस मण्डल को धारण करते हैं ।

१५. मस्तक के भी मस्तक (सबके मस्तक), स्थावर-जंगम के पति और रथारोही सूर्य को, संसार के कल्याण के लिए, सात गति-परायण हरितगण (अश्व) सारे संसार के समीप ले जाते हैं ।

१६. वह चक्षुः-स्वरूप (सबका प्रकाश), देव-हितैषी और निर्मल सूर्य-मण्डल उदित हो रहा है । हम सौ वर्ष देखें और सौ वर्ष जीयें ।

१७. वरुण, तुम और मित्र अहिंसनीय और द्युतिमान् हो । हमारे स्तोत्रों के द्वारा सोमपान के लिए आओ ।

१८. मित्र, तुम और वरुण द्रोहरहित हो। तुम द्युलोक से आओ और शत्रु-हिंसक होकर सोमपान करो ।

१९. मित्र और वरुण यज्ञ-नेता हैं । आहुति की सेवा करके आओ। यज्ञ-वर्द्धक सोम-पान करो।

६७ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. हे दोनों ऋत्विग्-यजमान-स्वामियो, हम हव्य-युक्त स्तोत्र के साथ तुम्हारे रथ की स्तुति करने के लिए जाते हैं। स्तुति-योग्य अश्विनी-कुमारो, जैसे पुत्र पिता को जगाता है, वैसे ही यह रथ, तुम्हारे दूत की

तरह, लोगों को जगाता है। उसी रथ को अपने सामने आने के लिए मैं बोलता हूँ।

२. हमारे द्वारा समिद्ध होकर अग्नि दीप्त होते हैं। तब अन्धकार के सारे प्रदेश भी लोग देखते हैं। प्रज्ञापक सूर्य द्युलोक-दुहिता (उषा) की पूर्व दिशा में, शोभा के लिए, उत्पन्न होकर जाने जाते हैं।

३. हे नासत्य-(सत्य-रूप) द्वय, सुन्दर होता और स्तुति-वक्ता स्तोम-द्वारा हम तुम्हारी सेवा करते हैं। फलतः तुम लोग पूर्व मार्ग से जल-ज्ञाता और धनयुक्त रथ पर चढ़कर हमारे सामने आओ।

४. हे रक्षक और मधुर सोम के योग्य अश्विद्वय, मैं सोम के अभिषुत होने पर, तुम्हारी इच्छा से, धनाभिलाषी होकर तुम्हारी स्तुति करता हूँ; इसलिए आज तुम्हारे प्रवृद्ध अश्वगण तुम्हें ले आवें। हमारे द्वारा अभिषुत और मधुर सोम का पान करो।

५. अश्विनी-देव-द्वय, तुम हमारी धनाभिलाषिणी, सरला और अहिंसिका बुद्धि को लाभ के योग्य करो। संग्राम में भी हमारी सारी बुद्धि की रक्षा करो। शचीपति (कर्मस्वामी) अश्विद्वय, कर्म-द्वारा हमें धन प्रदान करो।

६. अश्विद्वय, इन कर्मों में हमारी रक्षा करो। हमारा वीर्य क्षीण न होने योग्य और पुत्रोत्पादन में समर्थ हो। तुम्हारी कृपा से पुत्र और पौत्रों को अभिमत धन देकर और सुन्दर धनवाले होकर हम देव-लाभ-कर यज्ञ में आवें।

७. मधु-प्रिय अश्विनीकुमारो, सखा के लिए पुरोगामी दूत की तरह हमारा संकल्पित यह सोम निधि-स्वरूप तुम्हारे सामने रक्खा हुआ है। इसलिए क्रोधशून्य चित्त से हमारे सामने आओ। मनुष्य-रूप प्रजा में वर्त्तमान हव्य भक्षण करो।

८. सबके पोषक अश्विद्वय, तुम दोनों का मिलन होने पर तुम्हारा रथ बहनेवाली सात नदियों को पार कर आता है। सुजन्मा और देव-

सम्पन्न जो तुम्हारे अश्व रथ को लेकर शीघ्र चलनेवाले तुम्हें होते हैं, वे कभी नहीं थकते ।

९. तुम लोग कहीं भी आसक्त नहीं होते। जो धनी धन के लिए देने योग्य हव्य को देता है, जो सखा को सच्चे वचनों से प्रवर्द्धित करता है तथा जो गौ, अश्व और धन देता है, वैसों के लिए तुम लोग हुए हो।

१०. तुम आज हमारा आह्वान सुनो। नित्य-तरुण अश्विद्वय, हव्य-वाले गृह में आओ। रत्नदान करो। स्तोता को वर्द्धित करो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो ।

६८ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ । छन्द विराट् और त्रिष्टुप् ।)

१. हे दीप्त और अश्ववाले अश्विद्वय, आओ। तुम शत्रु-हन्ता हो। जो तुम्हें चाहता है, उसकी स्तुति की सेवा करो। हमारे प्रस्तुत हव्य का भक्षण करो।

२. अश्विद्वय, तुम्हारे लिए मदकर अन्न (सोम) प्रस्तुत है। हमारी हवि का भक्षण करने के लिए शीघ्र आओ। हमारे शत्रु का आह्वान न सुनकर हमारा आह्वान सुनो।

३. सूर्या के साथ रथ पर रहनेवाले हे अश्विनीकुमारो, मन की तरह वेगशाली और असीम रक्षण से युक्त तुम्हारा रथ हमारे लिए प्रार्थित होकर और सारे लोकों को तिरस्कृत करके हमारे यज्ञ में आता है।

४. जिस समय मैं तुम्हें देवता बनाने की इच्छा करता हूँ और जिस समय तुम्हारे लिए सोम का अभिषव करनेवाला यह पत्थर उच्च शब्द करता है, उस समय हे सुन्दर, तुम्हें विप्र (मेधावी यजमान) हव्य-द्वारा आवर्त्तित करता है।

५. तुम्हारा जो यापनीय (चित्र=भोज्य) धन है, उसे हमें दो। जो प्रिय होकर तुम्हारे दिये हुए सुख को धारण करते हैं, उन अत्रि से महिष्वद् (ऋबीस) को अलग करो।

६. अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति करनेवाले जीर्ण हव्यदाता च्यवन ऋषि के लिए जो रूप मृत्यु से लाकर तुमने दिया था, वह उनके प्रति गया था।

७. (भुज्यु के) दुष्ट-बुद्धि मित्रों ने जो भुज्यु को समुद्र के बीच छोड़ दिया था, तुम लोगों ने उन्हें पार किया था। भुज्यु ने तुम लोगों की कामना की थी और कभी विरुद्धाचरण नहीं किया था।

८. जिस समय वृक ऋषि क्षीण हो रहे थे, उस समय अश्विद्वय, तुम लोगों ने कर्म और सामर्थ्य-द्वारा उन्हें धन दिया था। पुकारे जाकर शयु ऋषि की बात तुम लोगों ने सुनी थी। जैसे नदी जल से पूर्ण करती है, वैसे ही वृद्धा गाय को तुम लोगों ने दुग्ध से पूर्ण किया था।

९. वह स्तोता (वसिष्ठ) शोभन-मति होकर, उषा के पहले जागकर, सूक्तों-द्वारा स्तुति करता है। उसे अन्न-द्वारा वर्द्धित करो, दुग्ध-द्वारा वर्द्धित करो और उसकी गौ को वर्द्धित करो। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

६९ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. तरुण अश्वों से युक्त होकर तुम्हारा रथ आवे। वह द्यावा-पृथिवी को बाधा देनेवाला और हिरण्मय है। उसके चक्र में जल है। वह रथ की नेमि (डंडों) के द्वारा दीप्तिमान्, अन्नवाहक और यजमानों का स्वामी (नेता) है।

२. वह रथ पंचभूतों (सारे प्राणियों) को प्रसिद्ध करनेवाला तीन बन्धुरों (सारथियों के बैठने के तीन उच्च और निम्न काठ के स्थानों) और स्तुति से युक्त है। अश्विद्वय, तुम लोग चाहे जिस किसी स्थान में जाने की इच्छा करके इस रथ पर देवाभिलाषी प्रजा के पास गमन करो।

३. सुन्दर अश्व और अन्न के साथ तुम लोग हमारे सामने आओ। अश्विद्वय (शत्रु-नाशक), तुम मधुमान् निधि (सोम) का पान करो। तुम लोगों का रथ सूर्या के साथ गमन करते हुए चक्र के द्वारा द्युलोक तक के प्रदेशों को, शीघ्र गमन के कारण, पीड़ित करता है।

४. रात में स्त्री सूर्य-पुत्री तुम्हारे रथ को घेरती है। जिस समय तुम देवाभिलाषी को कर्म-द्वारा रक्षित करते हो, उस समय रक्षण के लिए दीप्त अन्न तुम्हारे यहाँ जाता है।

५. रथवाले अश्विद्वय, वह रथ तेजों को ढक लेता और अश्व के साथ मार्ग में गमन करता है। अश्विद्वय, उषा (प्रातःकाल) होने पर हमारे इस यज्ञ में उस रथ से, पापों के शमन और सुखों की प्राप्ति के लिए, उपस्थित होओ।

६. नेतृ-द्वय, मृगी की तरह विशेष रूप से दीप्यमान सोम को पीने की इच्छा करके आज हमारे सवनों में आओ। अनेक यज्ञों में यजमान तुम्हें स्तुति-द्वारा बुलाते हैं। इसलिए अन्य देवाभिलाषी तुम्हें दान न करने पावें।

७. अश्विद्वय, तुम लोगों ने समुद्र में निमग्न भुज्यु को अक्षत, अश्रान्त और शीघ्रगामी अश्वों और कार्य-द्वारा, पार करते हुए, जल से निकाला था।

८. तुम लोग आज हमारा आह्वान सुनो। सदा तरुण अश्विद्वय, हव्यवाले घर में आओ, रत्न-दान करो और स्तोता को वर्द्धित करो। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

७० सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सबके वरणीय अश्विनीकुमारो, हमारी यज्ञ-वेदी पर आओ। पृथिवी पर तुम्हारा यही स्थान कहा जाता है। जिस अश्व पर तुम लोग बैठते हो, वह सुखकर पीठवाला अश्व तुम्हारे ही पास में रहे।

२. अतीव अन्नवाली वह सुन्दर स्तुति तुम लोगों की सेवा करती है। घर्म (घाम = धूप) मनुष्य के यज्ञ-गृह में तप रहा है। वह तुम्हें मिलता है। वह घाम सरितों और समुद्रों को वृष्टि-द्वारा भरता है। जैसे रथ में अश्व जोते जाते हैं, वैसे ही तुम्हें यज्ञ में जोता जाता है।

३. अश्विद्वय, तुम लोग द्युलोक से आकर विशाल ओषधियों और प्रजाओं के बीच में जो स्थान अधिकृत करते हो, पर्वत के मस्तक पर बैठते हुए, अन्नदाता को वही स्थान दो।

४. देवद्वय, तुम लोग ऋषियों-द्वारा दिये ओषधि और जल को व्याप्त करते हो; इसलिए हमारी ओषधि (चरु-पुरोडाश आदि) और जल (सोमरस) की कामना करो। हमें बहुत रत्न देते हुए तुमने पहले के दम्पतियों को आकृष्ट किया था।

५. अश्विद्वय, सुनकर तुम लोगों ने ऋषियों के अनेक कर्मों का अभिदर्शन किया है। इसलिए यजमान के यज्ञ में आओ। हमारे लिए तुम्हारा अत्यन्त अन्न-पूर्ण अनुग्रह हो।

६. नासत्यद्वय, जो यजमान हव्ययुक्त, कृतस्तोत्र और मनुष्यों के साथ मिलता है, उसी वरणीय वसिष्ठ के पास आओ। ये सारे मन्त्र तुम्हीं लोगों के लिए स्तुत होते हैं।

७. अश्विद्वय, तुम्हारे लिए यही स्तुति और यही वचन हुआ। काम-वर्षक-द्वय, इस शोभन स्तुति की सेवा करो। ये सारे कर्म, तुम्हारी कामना करते हुए, सङ्गत हों। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालित करो।

७१ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अपनी भगिनी उषा के पास से रात स्वयमेव हट जाती है। कृष्ण-वर्णा रात्रि अरुष (दिन अथवा सूर्य) के लिए मार्ग प्रदान करती है। फलतः हे अश्व-धन और गोधन अश्विद्वय, तुम लोगों को हम बुलाते हैं। तुम लोग दिन-रात हमारे पास से हिंसकों को दूर करो।

२. अश्विद्वय, हविर्दाता के लिए रथ-द्वारा रमणीय पदार्थ लाते हुए तुम लोग आओ। अन्न की दरिद्रता और रोग हमसे दूर करो। हे मधुमान अश्विद्वय, तुम हमें दिन-रात बचाओ।

३. तुम्हारे रथ में अनायास जोते गये और कामदाता अश्व तुम्हें ले आवें। अश्विद्वय, रश्मिवाले और धन से युक्त रथ को, तुम लोग, जलदाता अश्वों के द्वारा, ढोओ।

४. यजमान-पालको, तुम लोगों का वाहक जो रथ तीन बन्धुरों (सारथियों के बैठने-उठने के तीन स्थानों) से युक्त, धनवान्, दिन के प्रति गमन करनेवाला और व्यापक होकर जानेवाला है, उसी रथ पर तुम हमारे पास आओ।

५. तुमने च्यवन ऋषि का बुढ़ापा छुड़ाया था, पेदु नामक राजा के लिए युद्ध में शीघ्रगामी अश्व भेजा था, अत्रि को पाप और अन्धकार से पार किया था और जाहुष को भ्रष्ट-राज्य में पुनः स्थापित किया था।

६. अश्विद्वय, तुम्हारे लिए यही स्तुति और यही वचन हुआ। काम-वर्षक-द्वय, इस शोभन स्तुति की सेवा करो। ये सारे कर्म, तुम्हारी कामना करते हुए, सङ्गत हों। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालित करो।

७२ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. नासत्यद्वय, तुम लोग गौ, अश्व और धन से युक्त रथ पर आओ। अनेक स्तुतियाँ तुम्हारी सेवा करती हैं। तुम लोग अभिलषणीय शोभा और शरीर-द्वारा दीप्यमान होओ।

२. नासत्यद्वय, तुम लोग देवों के साथ समान प्रीति से युक्त होकर और रथ पर चढ़कर हमारे पास आओ। तुम्हारे साथ हमारा बन्धुत्व पूर्वजों के समय से ही चला आता है। तुम्हारे और हमारे एक ही बन्धु (=पितामह) हैं। उनका धन भी एक ही है।

३. अश्विद्वय को स्तुतियाँ भली भाँति जगाती हैं। बन्धुस्थानीय सारे कर्म प्रकाशमान उषा को जगाते हैं। मेधावी वसिष्ठ स्तुति से द्यावा-पृथिवी की परिचर्या करके नासत्यद्वय के अभिमुख स्तुति करते हैं।

४. अश्विद्वय, यदि उषायें अन्धकार दूर करें, तो स्तोता विशेष रूप से तुम्हारा स्तोत्र करेंगे। सविता देवता ऊर्ध्व तेज का आश्रय करते हैं। समिधा के द्वारा अग्निदेव भी भली भाँति स्तुत होते हैं।

५. नासत्यद्वय, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर से आओ। पञ्च श्रेणियों (ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषाद) का हित करनेवाली सम्पत्ति से भी आओ। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

७३ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवाभिलाषी होकर, स्तोत्र करते हुए, हम अज्ञान के पार जायेंगे। हे बहुकर्मा, प्रभूततम, पूर्वजात और अमर्त्य अश्विद्वय, तुम्हें स्तोता बुलाता है।

२. तुम्हारा प्रिय मनुष्य होता यहाँ बैठा है। नासत्यद्वय, जो तुम्हारा यज्ञ और वन्दन करता है, उसका मधुर सोमरस, पास में ठहरकर; भक्षण करो। अन्नवान् होकर यज्ञ में तुम्हें बुलाता हूँ।

३. हम महान् स्तोता हैं। हम आगमनशील देवों के लिए यज्ञ को बढ़ाते हैं। कामवर्षक-द्वय, इस सुन्दर स्तुति की सेवा करो। मैं वसिष्ठ, शीघ्रगामी दूत की तरह, तुम्हारे पास प्रेरित होकर, स्तोत्र-द्वारा स्तुति करते हुए प्रबोधित हुआ हूँ।

४. वे दोनों हव्यवाहक, राक्षस-नाशक, पुष्टाङ्ग और दृढ़-पाणि हैं। वे हमारी प्रजा के पास उपस्थित हों। तुम मदकर अन्न के साथ सङ्गत होओ। हमारी हिंसा नहीं करना। मङ्गल के साथ आओ।

५. नासत्यद्वय, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं से आओ।

पञ्च श्रेणियों (ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषाद) का हित करनेवाली सम्पत्ति से भी आओ। तुम सदा हमें-स्वस्ति द्वारा पालन करो।

७४ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती और सतोबृहती।

१. निवासप्रद अश्विद्वय, ये स्वर्गकामी लोग तुम्हें बुलाते हैं। कर्म-धनद्वय, रक्षा के लिए मैं वसिष्ठ भी तुम्हें बुलाता हूँ। कारण, तुम प्रत्येक प्रजा के पास जाते हो।

२. अश्विद्वय, तुम लोग जो चित्र (भोज्य) धन धारण करते हो, स्तोता के पास उसे प्रेरित करो। समान-मन होकर अपना रथ हमारे सामने प्रेरित करो। सोम-सम्बन्धी मधुर रस को पियो।

३. अश्विद्वय, आओ, पास में ठहरो और मधु (सोमरस) का पान करो। अभीष्टवर्षक और धनञ्जय तुम जल का दोहन करो। हमें नहीं मारना। आओ।

४. तुम्हारे जो अश्व हव्यदाता के गृह में तुम्हें धारण करते हुए जाते हैं, उन्हीं शीघ्रगामी अश्वों की सहायता से हमारी कामना करके आओ।

५. अश्विद्वय, गमनकर्ता स्तोता लोग प्रभूत अन्न का आश्रय करते हैं। तुम हमें अविचल यश और गृह दो। नासत्यद्वय, हम मघवान् (धनी) हैं।

६. जो दूसरे का धन न ग्रहण कर और मनुष्यों के बीच मनुष्य-रक्षक होकर, रथ की तरह, तुम्हारे पास जाते हैं, वे अपने बल से वर्द्धित होते और रहने के सुन्दर स्थान में जाते हैं।

७५ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. उषा ने अन्तरिक्ष में प्रादुर्भूत होकर प्रकाश किया। अपने तेज के बल से वे अपनी महिमा को प्रकट करते हुए आईं। उन्होंने अप्रिय

शत्रु और अन्धकार को दूर किया। प्राणियों के व्यववहार के लिए सबसे गन्तव्य पथ को प्रकाशित किया।

२. आज हमारे महासुख की प्राप्ति के लिए जागो। उषा, महासौभाग्य प्रदान करो। विचित्र यश से युक्त धन हमारे लिए धारण करो। मनुष्य-हितकारिणी देवी, मनुष्यों को अन्नवान् पुत्र दो।

३. दर्शनीय उषा की ये सब प्रवृद्ध, विचित्र और अविनाशी किरणें, देवों का व्रत उत्पादन करती हुई और सारे अन्तरिक्ष को पूर्ण करती हुई, आती और विविध प्रकार से फैलती है।

४. यह वही द्युलोक की दुहिता और भुवनों की पालिका उषा प्राणियों के अभिज्ञानों को देखकर और दूसरे भी उद्योग करके पञ्च श्रेणियों (चार वर्ण और निषाद) के पास तुरत जाती हैं।

५. अन्नवती, सूर्यगृहिणी, विचित्र धन (रश्मि) वाली उषा धन और देव-धन की स्वामिनी हुई हैं। ऋषियों के द्वारा स्तुता, बुढ़ापा देनेवाली और धनवाली उषा यजमान-द्वारा स्तूयमान होकर प्रभात करती हैं।

६. जो दीप्तिवाली उषा को ले जाते हैं, वही विचित्र और शोभन अश्व दिखाई दे रहे हैं। वे उषा विप्तमती होकर अनेक रूपोंवाले रथ से सर्वत्र आती हैं। वे अपने परिचारक को रत्न देती हैं।

७. सत्यरूपा, महती और यजनीया उषा देवी सत्य, महान् और यजनीय देवों के साथ अत्यन्त स्थिर अन्धकार का भेदन करती हैं। गौओं के चरने के लिए प्रकाश देती हैं। गायें उषा की कामना करती हैं।

८. उषा, हमें गौ, वीर और अश्व से युक्त धन दो। हमें बहुत अन्न दो। पुरुषों के बीच हमारे यज्ञ की निन्दा नहीं करना। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

७६ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सबके नेता सविता ऊर्ध्वदेश में अविनाशी और सबके लिए हितैषी ज्योति का आश्रय करते हैं। वह देवों के कर्मों के लिए प्रकट हुए हैं।

देवों की नेत्र-स्वरूपिणी होकर उषा ने सारे भुवनों को प्रकट किया है।

२. मैं हिंसा-रहित और तेज-द्वारा सुसंस्कृत देव-यान-पथ को देख चुका हूँ। उषा का केतु (प्रज्ञापक तेज) पूर्व दिशा में था। हमारे अभि-मुख होकर उषा उन्नत प्रदेश से आती हैं।

३. उषा, तुम्हारा जो तेज सूर्योदय के पहले ही उदित होता है और जिस तेज के गुण से तुम कुलटा की तरह न होकर पति-समीप-गामिनी रमणी की तरह देखी जाती हो, वही सब तुम्हारा तेज प्रभूत है।

४. जो अङ्गिरोगण सत्यवान्, कवि और प्राचीन समय के पालक हैं; जिन्होंने गूढ़ तेज प्राप्त किया है और जिन्होंने सत्य-स्तुति होकर मन्त्रों के बल से उषा को प्रादुर्भूत किया है, वे ही देवों के साथ एकत्र प्रमत्त हुए थे।

५. वे साधारण गौओं के लिए सङ्गत होकर एक-बुद्धि हुए थे। क्या उन लोगों ने परस्पर यत्न नहीं किया था? वे देवों के कर्मों की हिंसा नहीं करते। हिंसा-शून्य और वासप्रद तेज के द्वारा जाते हैं।

६. सुभगा उषा, प्रातःकाल जगे हुए स्तोता वसिष्ठगण स्तोत्र-द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम गौओं की प्रापिका और अन्न-पालिका हो। हमारे लिए प्रभात करो। सुजन्मा उषा, तुम प्रथम स्तुत हो।

७. यह उषा स्तोता की स्तुतियों की नेत्री हैं। यह अन्धकार को दूर कर और सर्वत्र प्रसिद्ध धन हमें देकर वसिष्ठों-द्वारा स्तुत होती हैं। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

७७ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. तरुणी पत्नी की तरह उषा सारे जीवों को, संचरण के लिए, प्रेरित करते हुए सूर्य के पास ही दीप्ति पाती हैं। अग्नि मनुष्यों के समिन्धन के योग्य हुए हैं। अग्नि अन्धकार-नाशक तेज का प्रकाश करते हैं।

२. सारे संसार की अभिमुखी और सर्वत्र प्रसिद्धा उषा उदित हुईं। तेजोमय वसन धारण करके वर्द्धित हुईं। हिरण्यवर्ण, दर्शनीय और तेज से युक्त वाक्यों की माता और दिनों की नेत्री उषा शोभा पा रही हैं।

३. देवों के नेत्र स्थानीय तेज का वहन करनेवाली, सुभगा, अपनी किरणों से प्रकाशिता, विचित्र धनवाली और संसार के सम्बन्ध में प्रवृद्धा उषा सुदर्शन अश्व को श्वेतवर्ण करते दिखाई दे रही हैं।

४. उषा, हमारे पास तुम वननीय (विचित्र) धनवाली होकर और हमारे शत्रु को दूर करके विभासित होओ। हमारी विस्तृत गोचर-भूमि को भय-रहित करो। द्वेषियों को अलग करो। शत्रुओं का धन ले आओ। धनवाली उषा, स्तोता के पास धन भेजो।

५. उषादेवी, हमारी आयु बढ़ाते हुए, श्रेष्ठ किरणों के साथ, हमारे लिए प्रकाशित होओ। सबकी वरणीया (स्वीकरणीया) उषा, हमें लक्ष्य करके गौ और अश्व से युक्त धन धारण करते हुए, प्रकाशित होओ।

६. हे द्युलोक की पुत्री और सुजन्मा उषा, वसिष्ठ लोग स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं। तुम हमें रमणीय और महान् धन दो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

७८ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रथम उत्पन्न केतु देखे जाते हैं। इनकी व्यञ्जक रश्मियाँ ऊर्द्ध्व-मुख होकर सर्वत्र आश्रय करती हैं। उषादेवी, हमारे सामने आये हुए, विशाल और ज्योतिष्क रथ-द्वारा हमारे लिए रमणीय धन ढोओ।

२. समिद्ध होकर अग्नि सर्वत्र बढ़ते हैं। मेधावी लोग स्तुति-द्वारा उषा की स्तुति करते हुए प्रवृद्ध होते हैं। उषादेवी भी ज्योति-द्वारा सारे अन्धकारों और पापों को रोकते हुए जाती हैं।

३. ये सब प्रभात-कारिणी और तेजःप्रदायिनी उषायें पूर्व दिशा में

देखी जाती हैं। इन्होंने सूर्य्य, अग्नि और यज्ञ को प्रादुर्भूत किया, जिससे शीघ्रगामी और अप्रिय अन्धकार दूर हुआ।

४. द्युलोक की पुत्री और धनवती उषा जानी गई हैं। सभी लोग प्रभातकारिणी उषा को देखते हैं। वे अन्नवाले रथ पर चढ़ी हैं। सुयोजित अश्व इस रथ को ले जाते हैं।

५. उषा, हम और हमारे सुमना तथा धनवान् लोग आज तुम्हें जगाते हैं। उषाओ, तुम लोग प्रभात-कारिणी होकर संसार को स्निग्ध करो। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

७९ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मनुष्यों की हितैषिणी उषा अन्धकार का विनाश करती हैं, पञ्च-श्रेणियों के मनुष्यों को जगाती हैं और उत्तम तेजवाली किरणों-द्वारा सूर्य का आश्रय करती हैं। सूर्य भी तेज से द्यावापृथिवी को आवृत करते हैं।

२. उषायें अन्तरिक्ष-प्रदेश में तेज व्यक्त करती हैं और परस्पर मिलकर, प्रजा की तरह, तमोनाश के लिए, चेष्टा करती हैं। उषा, तुम्हारी किरणें अन्धकार का विनाश करती हैं। सूर्य की भुजाओं की तरह वे ज्योति प्रदान करती हैं।

३. सबसे बढ़कर स्वामिनी और धनवती उषा प्रादुर्भूत हुईं। उन्होंने सबके कल्याण के लिए अन्न उत्पन्न किया है। स्वर्ग की पुत्री और सबसे उत्तम अङ्गिरा (गतिशीला अथवा अङ्गिरोगोत्रोत्पन्ना) उषा देवी सुकृति के लिए धन धारण करती हैं।

४. उषा, तुमने प्राचीन स्तोताओं को जितना धन दिया है, उतना हमें भी दो। वृषभ (प्रवृद्ध स्तोत्र) के शब्द से तुम्हें प्राणी जानते हैं। प्राणियों-द्वारा गोहरण के समय तुमने दृढ़ पर्वत का द्वार खोला था।

९. धन के लिए स्तोताओं को और हमारे सामने सूनृत (सच्चे) वाक्य को प्रेरित करते हुए, तमोविनाशिनी होकर, हमारे दान के लिए अपनी बुद्धि को स्थिर करो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८० सूक्त

(देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मेधावी (विप्र) वसिष्ठगण ने स्तोत्र और स्तव के द्वारा उषा देवी को, सभी लोगों से पहले, जगाया था। उषा समान प्रान्तवाली, द्यावा-पृथिवी को आवृत करती और प्राणियों को प्रकाशित करती हैं।

२. यह वही उषा हैं, जो नवयौवन धारण करके और तेज-द्वारा निगूढ़ अन्धकार को विनष्ट करके जागती हैं। लज्जाहीना युवती की तरह यह सूर्य के सम्मुख आगमन करती और सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को सूचित करती हैं।

३. अनेक अश्वों और गौओंवाली तथा स्तुत्य उषायें सदा अन्धकार दूर करती हैं। वे जल दूहती और सर्वत्र बढ़ती हैं। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

पञ्चम अध्याय समाप्त।

८१ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता उषा। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती और सतो बृहती।)

१. द्युलोक वा सूर्य की पुत्री और अन्धकार-नाशिनी उषा आती हुई देखी जाती हैं। सबके देखने के लिए वह रात्रि के घोर अन्धकार को दूर करती हैं और मनुष्यों की नेत्री होकर तेज का विकास करती हैं।

२. सूर्य किरणों को एक साथ फेंकते हैं। सूर्य प्रकट होकर ग्रह-नक्षत्रादिकों को प्रकाशशाली करते हैं। उषा, तुम्हारा और सूर्य का प्रकाश होने पर हम अन्न के साथ मिलें वा अन्न को प्राप्त करें।

३. द्युलोक-पुत्री उषा, हम शीघ्रकर्मा होकर तुम्हें जगावेंगे। धन-शालिनी उषा, तुम अभिलषणीय बहुत धन का वहन करती हो। यजमान के लिए रत्न और सुख का वहन करती हो।

४. महती देवी, तुम अन्धकार का नाश करनेवाली और महिमा-वाली हो। तुम सारे जगत् का प्रबोधन और उसे दर्शन के योग्य करती हो। तुम रत्नवाली हो। तुमसे हम याचना करते हैं। जैसे पुत्र माता के लिए प्रिय होता है, वैसे ही हम तुम्हारे होंगे।

५. उषा, जो धन अत्यन्त दूर के स्थान में विख्यात है, वही विचित्र धन ले आओ। द्युलोक दुहिता, तुम्हारे पास मनुष्यों के लिए भोज्य जो अन्न है, वह दो। हम भी भोग करेंगे।

६. उषा, स्तोताओं को अमर, निवास-प्रद और प्रसिद्ध यश दो। हमें अनेक गौओं से युक्त अन्न दो। यजमान की प्रेरिका और सत्य वचनवाली उषा शत्रुओं को दूर करें।

८२ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द जगती।)

१. इन्द्र और वरुण, तुम हमारे परिचारक के लिए, यज्ञ-कर्मार्थ, महागृह दो। जो शत्रु बहुत समय तक यज्ञकर्त्ता को मारता है, युद्ध में हम उसी दुर्बुद्धि शत्रु को जीतेंगे।

२. इन्द्र और वरुण, तुम महान् हो और महाधनवाले हो। तुममें से एक (वरुण) सम्राट् हैं और दूसरे (इन्द्र) स्वयं विराजमान हैं। काम-वर्षक-द्वय, उत्तम आकाश में विश्वदेवों ने तुम्हें तेज प्रदान किया था—साथ ही बल भी प्रदान किया था।

३. इन्द्र और वरुण, तुम लोगों ने बल-द्वारा जल का द्वार (वृष्टि) उद्घाटित किया था। तुमने सबके प्रेरक सूर्य को आकाश में गमन कराया था। इस मायी (प्रजोत्पादक) सोम के पान से आनन्द होने पर तुम लोग सूखी नदियों को जल से पूर्ण करो और कर्मों को भी पूर्ण करो।

४. इन्द्र और वरुण, स्तोता लोग, युद्धस्थल में, शत्रु-सेना के बीच, रक्षा के लिए और संकुचितजानु अङ्गिरा लोग रक्षण के लिए, तुम्हें ही बुलाते हैं। तुम लोग दिव्य और पार्थिव—दोनों धनों के ईश्वर और अनायास बुलाने योग्य हो। हम स्तोता तुम्हें बुलाते हैं।

५. इन्द्र और वरुण, तुम लोगों ने संसार के सारे प्राणियों का निर्माण किया है। तुम लोगों में से मङ्गल के लिए एक (वरुण) की परिचर्या मित्र करते हैं और दूसरे (इन्द्र) मरुतों के साथ तेजस्वी होकर शोभन अलंकार प्राप्त करते हैं।

६. महान् धन की प्राप्ति के लिए, इन्द्र और वरुण के प्रकाशनार्थ, शीघ्र बल प्राप्त हो जाता है। इन दोनों का यह बल नित्य और असाधारण है। इनमें से एक जन (वरुण) हिंसाकारी का अपघात करते हैं और दूसरे (इन्द्र) अल्प उपायों से ही अनेक शत्रुओं को बाधित करते हैं।

७. इन्द्र और वरुण देवो, तुम जिस मनुष्य के यज्ञ में गमन करते हो, जिसकी कामना करते हो, उसके पास बाधा नहीं जा सकती, पाप नहीं जा सकता, दुष्कर्म नहीं जा सकता और किसी भी कारण से उसके पास सन्ताप भी नहीं जा सकता।

८. नेता इन्द्र और वरुण, यदि मुझसे प्रसन्न हो, तो दिव्य रक्षा के साथ मेरे सामने आओ। स्तोत्र श्रवण करो। तुम लोगों के सखित्व (मित्रता) और बन्धुत्व (कुटुम्बत्व) सुख के साधक हैं। हमें दोनों दो।

९. शत्रु-कर्शक तेजवाले इन्द्र और वरुण, प्रत्येक संग्राम में हमारे अग्रणी योद्धा बनो। तुम्हें प्राचीन और आधुनिक—दोनों प्रकार के नेता ही युद्ध में और पुत्र, पौत्र आदि की प्राप्ति में बुलाते हैं।

१०. इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा हमें प्रकाशमान धन और महान् विस्तीर्ण गृह प्रदान करें। यज्ञ-वर्द्धिका अदिति का तेज हमारे लिए अहिंसक हो। हम सविता देवता की स्तुति करेंगे।

८३ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ छन्द जगती।)

१. नेता इन्द्र और वरुण, तुम्हारी मित्रता देखकर, गो-प्राप्ति की इच्छा से, मोटे परशु (घास काटने का हथियार) वाले यजमान पूर्व दिशा की ओर गये। तुम लोग दास, वृत्र और सुदास-शत्रु आर्यगण को मार डालो और सुदास राजा के लिए, रक्षण के साथ, आओ।

२. जहाँ मनुष्य ध्वजा उठाकर युद्धार्थ मिलते हैं, जिस युद्ध में कुछ भी अनुकूल नहीं होता और जिसमें प्राणी स्वर्ग-दर्शन करते हैं, उस युद्ध में, हे इन्द्र और वरुण, हमारे पक्षपात की बातें कहना।

३. इन्द्र और वरुण, पृथिवी के सारे अन्त सैनिकों-द्वारा विनष्ट होकर दिखाई देते हैं। सैनिकों का कोलाहल द्युलोक में फैल रहा है। मेरी सेना के सारे शत्रु मेरे पास आये हुए हैं। हे हनन-श्रवणकारी इन्द्र और वरुण, रक्षण के साथ, हमारे पास आओ।

४. इन्द्र और वरुण, आयुध-द्वारा अप्राप्त भेद नामक शत्रु को मारते हुए तुम लोगों ने सुदास राजा की रक्षा की थी और तृत्सुओं के स्तोत्रों को सुना था। युद्ध-काल में तृत्सुओं का पौरोहित्य सफल हुआ था।

५. इन्द्र और वरुण, मुझे चारों ओर से शत्रुओं के हथियार घेर रहे हैं और हिंसकों के बीच मुझे शत्रु बाधा दे रहे हैं। तुम लोग दोनों (दिव्य और पार्थिव) प्रकार के धनों के स्वामी हो; इसलिए युद्ध के दिनों में हमारी रक्षा करो।

६. युद्ध-काल में दोनों (सुदास और तृत्सु) प्रकार के लोग धन-प्राप्ति के लिए इन्द्र और वरुण को बुलाते हैं। इस युद्ध में दस राजाओं-द्वारा प्रपीड़ित सुदास को, तृत्सुओं के साथ, तुमने बचाया था।

७. इन्द्र और वरुण, दस यज्ञ-हीन राजा परस्पर मिलकर भी सुदास राजा पर प्रहार करने में समर्थ नहीं हुए। हव्य-युक्त यज्ञ में नेताओं का स्तोत्र सफल हुआ है। इनके यज्ञ में समस्त देवता आविर्भूत हुए थे।

८. जहाँ निर्मल, जटावाले और कर्मठ तृत्सुगण (वसिष्ठ-शिष्य) अन्न और स्तुति के साथ परिचर्या किया करते हैं, उसी देश में दस राजाओं द्वारा चारों ओर से घेरे हुए सुदास को, हे इन्द्र और वरुण, तुम लोगों ने बल प्रदान किया था।

९. इन्द्र और वरुण, तुममें से एक (इन्द्र) युद्ध में वृत्रों का नाश करते हैं और दूसरे (वरुण) व्रत वा कर्म की रक्षा करते हैं। अभीष्ट-वर्षक-द्वय, सुन्दर स्तुति-द्वारा तुम्हें हम बुलाते हैं। तुम हमें सुख दो।

१०. इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा हमें प्रकाशमान धन और महान् विस्तीर्ण गृह प्रदान करें। यज्ञ-वर्द्धिका अदिति का तेज हमारे लिए अहिंसक हो। हम सविता देवता की स्तुति करते हैं।

८४ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र और वरुण, इस यज्ञ में, मैं तुम्हें, हव्य और स्तोत्र-द्वारा, आवर्त्तित करता हूँ। हाथों में धृत नाना रूपोंवाली जुहू स्वयं तुम लोगों की ओर जाती है।

२. इन्द्र और वरुण, तुम्हारा स्वर्गरूप विशाल राष्ट्र वृष्टि-द्वारा सबको प्रसन्न करता है। तुम लोग रज्जुशून्य और बाधक उपायों से पापी को बाँधो। वरुण का क्रोध हम लोगों की रक्षा करके गमन करे। इन्द्र भी स्थान को विस्तृत करें।

३. इन्द्र और वरुण, हमारे गृह के यज्ञ को मनोरम करो। स्तोताओं के स्तोत्र को उत्तम करो। देवों-द्वारा प्रेरित धन हमारे पास आवे। अभिलषणीय रक्षा-द्वारा वे हमें वर्द्धित करें।

४. इन्द्र और वरुण हमें सबके लिए वरणीय निवास-स्थान और बहुत अन्नवाला धन दो। जो आदित्य (वरुण) असत्य का विनाश करते हैं, वही शूर लोगों को अपरिमित धन देते हैं।

५. मेरी यह स्तुति इन्द्र और वरुण को व्याप्त करे। मेरी की हुई स्तुति, पुत्र और पौत्र के सम्बन्ध में, हमारी रक्षा करे। हम सुन्दर रत्नवाले होकर यज्ञ पावेंगे। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८५ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र और वरुण, तुम लोगों के लिए अग्नि में सोम की आहुति करते हुए दीप्तमती उषा की तरह दीप्ताङ्ग और राक्षस-शून्या स्तुति का मैं शोधन करता हूँ। वे युद्ध उपस्थित होने पर यात्रा करते समय हमें बचावें।

२. परस्पर स्पर्द्धावाले युद्ध में हमसे शत्रु स्पर्द्धा करते हैं। जिस युद्ध में ध्वजा के ऊपर आयुध गिरते हैं, उसमें, हे इन्द्र और वरुण, तुम लोग हिंसक आयुध-द्वारा पराङमुख और विविध गतियोंवाले शत्रुओं का नाश करो।

३. सारे सोम स्वायत्त यशवाले और द्योतमान होकर गृहों में इन्द्र और वरुण देवों को धारण करते हैं। उनमें से एक (वरुण) प्रजागण को अलग-अलग करके धारण करते हैं और दूसरे (इन्द्र) दूसरों-द्वारा अप्रतिहत शत्रुओं का विनाश करते हैं।

४. आदित्यो (अदिति-पुत्रो), तुम लोग बलशाली हो। जो नमस्कार के साथ तुम्हारी सेवा करता है, वही शोभन कर्मवाला होता यज्ञ-शाला हो। जो हव्यवाला व्यक्ति, तृप्ति के लिए, तुम्हें आवर्त्तित करता है, वह अन्नवान् होकर प्राप्तव्य फल को पाता है।

५. मेरी यह स्तुति इन्द्र और वरुण को व्याप्त करे। मेरी की हुई स्तुति, पुत्र और पौत्र के बारे में, मेरी रक्षा करे। सुन्दर रत्नवाले होकर हम यज्ञ पावेंगे। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८६ सूक्त

(देवता वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. महिमा से वरुण का जन्म धीर वा स्थिर हुआ है। इन्होंने विशाल द्यावा-पृथिवी को स्थापित कर रक्खा है। इन्होंने आकाश और दर्शनीय नक्षत्र को दो बार प्रेरित किया है। इन्होंने भूमि को विस्तृत किया है।

२. क्या मैं अपने शरीर के साथ अथवा वरुण के साथ रहूँगा? कब वरुण के पास ठहरूँगा? क्या वरुण क्रोध-शून्य होकर मेरे हव्य की सेवा करेंगे? मैं सुन्दर मतवाला होकर कब सुखप्रद वरुण को देख पाऊँगा?

३. वरुण, देखने की इच्छा करके मैं उस पाप की बात तुमसे पूछूँगा। मैं विविध प्रश्नों के लिए विद्वानों के पास गया हूँ। सभी कवि (क्रान्तदर्शी) मुझे एक-समान बोल चुके हैं कि "ये वरुण तुमसे क्रुद्ध हुए हैं।"

४. वरुण, मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि तुम मेरे मित्र स्तोता को मारने की इच्छा करते हो? दुर्द्धर्ष तेजस्वी वरुण, मुझसे ऐसा (पाप) कहो कि मैं क्षिप्रकारी होकर, नमस्कार के साथ, प्रायश्चित्त करके तुम्हारे पास गमन करूँ।

५. वरुण, हमारे पितृक्रमागत द्रोह को छुड़ाओ। हमने अपने शरीर से जो कुछ किया है, उसे भी छुड़ाओ। राजा वरुण, पशु चुराकर प्रायश्चित्त-रूप पशु को घास आदि खिलाकर तृप्त करनेवाले चोर की तरह और रस्सी से बँधे बछड़े की तरह मुझे पाप से छुड़ाओ।

६. वह पाप अपने दोष से नहीं होता। वह भ्रम, क्रोध, द्यूत-क्रीड़ा अथवा अज्ञान आदि दैव-गति के कारण होता है। कनिष्ठ (अल्पज्ञ पुरुष) को ज्येष्ठ (ईश्वर) भी कुपथ में ले जाते हैं। स्वप्न में भी दैव-गति से पाप उत्पन्न हो जाते हैं।

७. काम-वर्षी और पोषक वरुण को, पाप-शून्य होकर, मैं, दास की

तरह, यथेष्ट रूप से सेवा करूँगा। हम अज्ञानी हैं; स्वामी वरुण हमें ज्ञान दें। ज्ञानी वरुण स्तोता को धन के लिए प्रेरित करें।

८. अन्नवान् वरुण, तुम्हारे लिए बनाया हुआ यह सूक्त-रूप स्तोत्र तुम्हारे हृदय में भली भाँति निहित हो। लाभ हमारे लिए मङ्गलमय हो; क्षेम (धन-रक्षा) हमारे लिए मङ्गलमय हो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८७ सूक्त

(देवता वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्हीं वरुणदेव ने सूर्य के लिए अन्तरिक्ष में मार्गप्रदान किया था। वरुण ने नदियों को अन्तरिक्ष में उत्पन्न जल प्रदान किया था। अश्व जैसे घोड़ी के प्रति दौड़ता है, वैसे ही शीघ्र जाने की इच्छा करके वरुण अथवा सूर्य ने विशाल रात्रियों को दिन से अलग किया था।

२. वरुण, तुम्हारा वायु जगत् की आत्मा है। वह जल को चारों ओर भेजता है। घास देने पर जैसे पशु अन्नवान् (भारवाही) होता है, वैसे ही संसार का भरण करनेवाला वायु अन्नवान् होता है। महती और बड़ी द्यावा-पृथिवी के बीच के तुम्हारे सारे स्थान लोकप्रिय हैं।

३. वरुण के सारे अनुचरों की गति प्रशंसनीय है। वे सुन्दर रूपोंवाली द्यावा-पृथिवी को भली भाँति देखते हैं। वे कर्मी, यज्ञ-धीर और प्राज्ञ कवियों के स्तोत्रों को भी चारों ओर से देखते हैं।

४. मैं मेधावी ऋत्विक् हूँ। वरुण ने मुझसे कहा था कि पृथिवी अथवा वाक् के इक्कीस (उर, कण्ठ और शिर में गायत्र्यादि सात-सात छन्दोंवाले) नाम हैं। विद्वान् और मेधावी वरुण ने योग्य अन्तेवासी (छात्र) को उपदेश देकर, उत्तम स्थान में, इन सब गोपनीय बातों को भी बताया है।

५. इन वरुण के भीतर तीन (उत्तम, मध्यम और अधम) प्रकार के द्युलोक हैं। इनमें तीन (उत्तम, मध्यम और अधम) प्रकार की भूमियाँ

और छः (छः ऋतुएँ) प्रकार की दशायें भी हैं। वरुण राजा ने स्वर्ण के झूले की तरह सूर्य को, दीप्ति के लिए निर्माण किया है।

६. सूर्य की तरह दीप्त वरुण ने समुद्र को स्थापित किया है। वरुण जल-बिन्दु की तरह शुभ्र, गौर मृग की तरह बली, गम्भीर स्तोत्र-वाले, जल के रचयिता, दुःख से पार पानेवाले बल से युक्त और संसार के समस्त विद्यमान पदार्थों के राजा हैं।

७. अपराध करने पर भी वरुण दया करते हैं। अदीन (धनी) वरुण के कर्मों को हम यथाक्रम समृद्ध करके उनके पास अपराध-शून्य हों। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८८ सूक्त

(देवता वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वसिष्ठ, तुम कामवर्षक वरुण को उद्देश्य करके स्वयं शुद्ध और प्रियतम स्तुति करो। वरुण यजनीय, बहु-धनवान् और अभीष्ट-वर्षी और विशाल हैं। वरुण सूर्य को हमारे अभिमुख करते हैं।

२. इस समय मैं शीघ्र वरुण का सुन्दर दर्शन करके अग्नि की ज्वालाओं की स्तुति करता हूँ। जब वरुण सुखकर पाषाण में अवस्थित इस सोम को अधिक मात्रा में पीते हैं, उस समय दर्शन के लिए मुझे प्रशस्त रूप (शरीर) देते हैं।

३. जिस समय मैं और वरुण, दोनों नाव पर चढ़े थे, जिस समय समुद्र के बीच में नाव को, भली भाँति, प्रेरित किया था, जिस समय जल के ऊपर गति-परायण नाव पर हम थे, उस समय शोभा के लिए नौका-रूपी झूले पर हमने सुख से क्रीड़ा की थी।

४. मेधावी वरुण ने (सूर्यात्म-रूप से) दिन और रात्रि का विस्तार करके दिनों के बीच सुन्दर दिन में वसिष्ठ को (मुझे) नौका पर चढ़ाया था। वरुण ने रक्षणों के द्वारा वसिष्ठ को सुकर्मा किया था।

५. वरुण, हम लोगों की पुरानी मैत्री कहाँ हुई थी? पूर्व समय में हम लोगों में जो हिंसा-शून्य मित्रता हुई थी, हम लोग उसी को निबाहते हैं। अन्नवान् वरुण, तुम्हारे महान्, प्राणियों के विभेदक और हजार दरवाजोंवाले गृह में मैं जाऊँगा।

६. वरुण, जो वसिष्ठ नित्य बन्धु (औरस पुत्र) हैं, जिन्होंने पूर्व समय में प्रिय होकर तुम्हारे प्रति अपराध किया था, वह इस समय तुम्हारे सखा हों। यजनीय वरुण, हम तुम्हारे आत्मीय हैं; इसलिए पाप-युक्त होकर हम भोग न भोगने पावें। तुम मेधावी हो; स्तोताओं को वरणीय गृह प्रदान करो।

७. इन सब नित्य भूमियों में निवास करते हुए हम तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। वरुण हमारा बन्धन छुड़ावें। हम अखण्डनीय पृथिवी के पास से वरुण की रक्षा का भोग करें। हमें तुम सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

८९ सूक्त

(देवता वरुण। ऋषि वसिष्ठ। छन्द गायत्री और जगती।)

१. राजा वरुण, तुम्हारे मिट्टी के मकान को मैं न पाऊँ (सोने का घर पाऊँ)। शोभन-धन वरुण, मुझे सुखी करो, दया करो।

२. आयुधवाले वरुण, मैं काँपता हुआ, वायु-चालित बादल की तरह, जाता हूँ। शोभन-धन वरुण, मुझे सुखी करो, दया करो।

३. धनी और निर्मल वरुण, दीनता वा असमर्थता के कारण श्रौत, स्मार्त आदि अनुष्ठानों की मैंने प्रतिकूलता की है। सुधन वरुण, मुझे सुखी करो, दया करो।

४. समुद्र जल में रहकर भी मुझ स्तोता को पिपासा लग गई (क्योंकि समुद्र का जल पीने योग्य नहीं होता)। सुधन वरुण, मुझे सुखी करो, दया करो।

५. वरुण, हम मनुष्य हैं; इसलिए देवों का जो हमने अपकार किया है और अज्ञानता के कारण तुम्हारे जिस कार्य में हमने असावधानी की है, उन सब पापों (अपराधों) के कारण हमें नहीं मारना।

९० सूक्त

(६ अनुवाक। देवता वायु। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वायु, तुम वीर हो। शुद्ध, मधुरता-पूर्ण और अभिषुत सोम को अध्वर्युगण तुम्हारे उद्देश से प्रेरित करते हैं। तुम नियुद्गण (अश्वों) को रथ में जोतो, सामने आओ और आनन्द के लिए अभिषुत सोमरस के भाग का भक्षण करो।

२. वायु, तुम ही ईश्वर हो। जो यजमान तुम्हें उत्तम आहुति देता है और सोमपायी वरुण, जो तुम्हें पवित्र सोम प्रदान करता है, उसे मनुष्यों में तुम प्रधान बनाओ। वह सर्वत्र प्रख्यात होकर प्राप्तव्य धन प्राप्त करता है।

३ इन द्यावा-पृथिवी ने जिन वायु को, धन के लिए, उत्पन्न किया है और प्रकाशमाना स्तुति, धन के लिए, जिन वायुदेव को धारण करती है, इस समय वह वायु, अपने अश्वों-द्वारा, सेवित होते हैं।

४. पाप-शून्या उषायें सुदिनों की कारण-भूता होकर अन्धकार नष्ट करती हैं। दीप्यमाना होकर उन्होंने विस्तीर्ण ज्योति प्राप्त की है। अङ्गिरा लोगों ने गोरूप धन प्राप्त किया था। अङ्गिरा लोगों का प्राचीन जल ने अनुसरण किया था।

५. इन्द्र और वायु यजमान लोग यथार्थ मन से मननीय स्तोत्र-द्वारा दीप्यमान होकर अपने कर्म-द्वारा वीरों-द्वारा प्रापणीय रथ का अपने-अपने यज्ञ में वहन करते हैं, तुम लोग ईश्वर हो। सारे अन्न तुम्हारी सेवा करते हैं।

६. इन्द्र और वायु, जो क्षमता-शाली जन हमें गौ, अश्व, निवास-प्रद धन और हिरण्य के साथ सुख प्रदान करते हैं, वे ही दातागण युद्ध में

अश्व और वीरों की सहायता से व्याप्त जीवन (आयु) को जीत लेते हैं।

७. अश्व की तरह हविर्वाहक, अन्नप्रार्थी और बलेच्छु वसिष्ठगण उत्तम रक्षा के लिए उत्तम स्तुति-द्वारा इन्द्र और वायु को बुलाते हैं। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९१ सूक्त

(देवता वायु। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्राचीन समय में जो प्रवृद्ध स्तोता लोग वायुदेव के लिए किये गये अनेक स्तोत्रों के कारण प्रशस्य हुए थे, उन्होंने विपद्ग्रस्त मनुष्यों के उद्धार के लिए, वायु को हवि देने के निमित्त, सूर्य के साथ उषा को एकत्र ठहराया था।

२. इन्द्र और वायु, तुम कामयमान दूत और रक्षक हो। तुम लोग हिंसा नहीं करना। महीनों और वर्षों रक्षा करना। सुन्दर स्तुति तुम्हारे पास जाकर सुख और प्रशंसनीय तथा सुलभ्य धन की याचना करती है।

३. सुबुद्धि और अपने अश्वों के लिए आश्रयणीय श्वेतवर्ण वायु प्रचुर अन्नवाले और धन-वृद्ध व्यक्तियों को आश्रित करते हैं। वे व्यक्ति भी समान-मना होकर वायु के निमित्त यज्ञ करने के लिए नाना प्रकार से अवस्थित हुए हैं। उन्होंने सुन्दर सन्तति के कारण-भूत कार्यों को किया था।

४. जब तक तुम्हारे शरीर का वेग है, जब तक बल है और जब तक नेता लोग ज्ञान-बल से प्रकाशमान रहते हैं, तब तक हे विशुद्ध सोम को पीनेवाले हे इंद्र और वायु, तुम लोग हमारे विशुद्ध सोम का पान करो और इन कुशों पर बैठो।

५. इन्द्र और वायु, तुम लोग अभिलषणीय स्तोतावाले हो। अपने अश्वों को एक रथ में जोतो। तुम लोग सामने आओ। इस मधुर सोम

का अग्रभाग तुम लोगों के लिए लाया गया है। पीने के अनन्तर तुम लोग प्रसन्न होकर हमें पापों से छुड़ाओ।

६. इन्द्र और वायु, जो तुम्हारे अश्व शत-संख्यक होकर तुम्हारी सेवा करते हैं और जो सबके वरणीय अश्व सहस्रसंख्यक होकर तुम्हारी सेवा करते हैं, उन्हीं शोभन धन देनेवाले अश्वों के साथ हमारे सामने आओ।

७. अश्व की तरह हविर्वाहक, अन्नप्रार्थी और बलेच्छु वसिष्ठगण, उत्तम रक्षण के लिए उत्तम स्तुति-द्वारा, इन्द्र और वायु को बुलाते हैं। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९२ सूक्त

(देवता वायु। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. पवित्र सोम को पीनेवाले वायु, हमारे समीप आओ। हे सबके वरणीय, तुम्हारे सब अश्व हजार हैं। वायु, तुम जिस सोम के प्रथम पान के अधिकारी हो, वही मदकर सोम पात्र में तुम्हारे लिए रक्खा हुआ है।

२. क्षिप्रकारी और सोम का अभिषव करनेवाले अध्वर्यु ने इन्द्र और वायु के पीने के लिए यज्ञ में सोम रक्खा है। इन्द्र और वायु, देवाभिलाषी अध्वर्युओं ने कर्म-द्वारा तुम्हारे लिए इस यज्ञ में सोम का अग्र भाग प्रस्तुत किया है।

३. वायु, गृह में अवस्थित हव्यदाता के सम्मुख यज्ञ के लिए जिन नियुतो (अश्वों) के साथ जाते हो, उन्हीं अश्वों के साथ आओ। हमें सुन्दर अन्नवाला धन दो। वीर पुत्र तथा गौ और अश्व से युक्त वैभव दो।

४. जो स्तोता इन्द्र और वायु की तृप्ति करते हैं, वे देव-युक्त हैं; इसलिए वे शत्रुओं के विनाशक हैं। उन्हीं की सहायता से हम शत्रु-विनाश में समर्थ हों। उन्हीं अपने स्तोताओं द्वारा युद्ध में हम शत्रुओं का पराभव कर सकें।

५. वायु, शतसंख्या और सहस्र संख्यावाले अपने अश्वों के साथ हमारे हिंसा-शून्य यज्ञ के समीप आगमन करो। इस यज्ञ में सोम पीकर प्रमत्त होओ। तुम सदा स्वस्ति-द्वारा हमें पालन करो।

९३ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वृत्रघ्न इन्द्र और अग्नि, शुद्ध और मदोत्पत्ति मेरा स्तोत्र आज सेवन करो। तुम लोग सुख से बुलाने योग्य हो। तुम दोनों को बार-बार बुलाता हूँ। यजमान तुम्हारी अभिलाषा करता है। उसे शीघ्र अन्न प्रदान करो।

२. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग भली भाँति भजन के योग्य हो। तुम बल की तरह शत्रुओं के भञ्जक बनो। तुम लोग एक साथ प्रवृद्ध बल-द्वारा वर्द्धमान तथा प्रचुर धन और अन्न के ईश्वर हो। तुम स्थूल और शत्रु-विनाशक अन्न हमें दो।

३. जो हविवाले और कृपाभिलाषी मेधावी (विप्र) लोग अनुष्ठान-द्वारा यज्ञ को प्राप्त करते हैं, वे ही नेता लोग—जैसे अश्व युद्ध-भूमि को व्याप्त करते हैं वैसे ही—इन्द्र और अग्नि के कर्मों को व्याप्त करके उन्हें बार-बार बुलाते हैं।

४. इन्द्र और अग्नि, कृपाप्रार्थी विप्र यशवाले और प्रथम उपभोग्य धन के लिए स्तुति-द्वारा तुम्हारा स्तवन करता है। वृत्रघ्न और सुन्दर आयुधवाले इन्द्र और अग्नि, नये और देने योग्य धन के द्वारा हमें प्रवर्द्धित करो।

५. विशाल, परस्पर युद्ध करती हुई, स्पर्द्धा करनेवाली तथा युद्ध में प्रयत्न करती हुई दोनों शत्रु-सेनाओं को, अपने तेज-द्वारा, सदा विनष्ट करो। सोमाभिषवकर्त्ता और देवाभिलाषी यजमान की सहायता से यज्ञ में देवाभिलाष न करनेवाले व्यक्ति का विनाश करो।

६. इन्द्र और अग्नि, सुन्दर मन के लिए हमारी इस सोमाभिषव-कर्म में आगमन करो। तुम लोग हमें छोड़कर दूसरे को नहीं जानते हो; इसलिए मैं तुम्हें प्रचुर अन्न-द्वारा आवर्त्तित करता हूँ।

७. अग्नि, तुम इस अन्न-द्वारा समिद्ध होकर मित्र, इन्द्र और मित्र को कहो कि यह हमारा रक्षणीय है। हम लोगों ने जो अपराध किया है, उससे हमारी रक्षा करो। अर्यमा और अदिति भी हमारे उस अपराध को हटावें।

८. अग्नि, शीघ्र इस यज्ञ का आश्रय करते हुए हम एक साथ ही तुम्हारा अन्न प्राप्त करें। इन्द्र, विष्णु और मरुद्गण हमें छोड़कर दूसरे को न देखें। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९४ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि वसिष्ठ। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. इन्द्र और अग्नि, जैसे मेघ से वर्षा होती है, वैसे ही इस स्तोता से यह प्रधान स्तुति उत्पन्न हुई है।

२. इन्द्र और अग्नि, स्तोता का आह्वान सुनो। उसकी स्तुति का भोग करो। तुम लोग ईश्वर हो। अनुष्ठित कर्म की पूर्ति करो।

३. नेता इन्द्र और अग्नि, हमें हीनभाव, पराभव और निन्दा के लिए परवश नहीं करना।

४. रक्षाभिलाषी होकर हम विशाल हव्य, सुन्दर स्तुति और कर्म-युक्त वाक्य, इन्द्र और अग्नि के पास भेजते हैं।

५. रक्षण के लिए मेधावी लोग उन दोनों इन्द्र और अग्नि की इस प्रकार स्तुति करते हैं। समान बाधा पाये हुए लोग भी अन्न-प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं।

६. स्तोत्र के इच्छुक, अन्नवान् और धनाभिलाषी होकर हम यज्ञ की प्राप्ति के लिए तुम दोनों को, स्तुति-द्वारा, बुलावें।

७. इन्द्र और अग्नि, तुम मनुष्यों (शत्रुओं) को आविर्भूत करते हो। हमारे लिए तुम, अन्न के साथ, आओ। कठोर वचनवाला व्यक्ति हमारा प्रभु न हो।

८. इन्द्र और अग्नि, हमें किसी भी शत्रु की हिंसा न मिले। हमें सुख दो।

९. इन्द्र और अग्नि, हम जो तुम्हारे पास गौ, हिरण्य और स्वर्ण से युक्त धन की याचना करते हैं, उसका हम भोग कर सकें।

१०. सोम के अभिषुत होने पर कर्म-नेता लोग सेवाभिलाषी होकर उत्तम अन्नवाले इन्द्र और अग्नि का बार-बार आह्वान करते हैं।

११. सबसे बढ़कर वृत्र-हन्ता और अतीव आनन्द-मग्न इन्द्र और अग्नि की, हम, उक्थ (शस्त्र नाम की स्तुति) और स्तोत्र तथा अन्य स्तवों-द्वारा परिचर्या करते हैं।

१२. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग दुष्ट धारणा और दुष्ट ज्ञानवाले तथा बलवान् और अपहरण करनेवाले मनुष्य को आयुध-द्वारा, घड़े की तरह, फोड़ो।

९५ सूक्त

(देवता सरस्वती। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. यह सरस्वती लोह-निर्मित पुरी की तरह धारयित्री होकर धारक जल के साथ प्रधावित होती है। यह अपनी महिमा-द्वारा अन्य सारी बहनेवाली जल-रूपिणी नदियों को बाधा देते हुए सारथि की तरह जाती हैं।

२. नदियों में विशुद्धा, पर्वत से लेकर समुद्र तक जानेवाली और अकेली सरस्वती ने नहुष राजा की प्रार्थना को जाना। उन्होंने भुवनस्थ प्रचुर धन प्रदान करके नहुष के लिए (हजार वर्षों के लिए) घी और दूध दुहा था अर्थात् नहुष को दिया था।

३. मनुष्यों की भलाई के लिए वर्षा करने में समर्थ और शिशु (प्रादुर्भाव के समय में छोटे) सरस्वान् (मध्यमस्थान वायु) यज्ञ के योग्य

योषित (मध्यम-स्थान-वर्ती जल-समूह) के बीच बढ़े थे। वह हविष्मान् यजमानों को बली पुत्र देते हैं और लाभ के लिए उनके शरीर का संस्कार करते हैं।

४. शोभन-धना सरस्वती प्रसन्न होकर हमारे इस यज्ञ में स्तुति सुनें। पूजनीय देवता लोग घुटने टेककर सरस्वती के निकट जाते हैं। सरस्वती नित्य धनवाली और अपने सखा लोगों के लिए अत्यन्त दयावती हैं।

५. सरस्वती हम इस हव्य का हवन करते हुए नमस्कार-द्वारा तुम्हारे पास से धन प्राप्त करेंगे। हमारी स्तुति की सेवा करो। हम लोग तुम्हारे अतीव प्रिय घर में अवस्थिति करते हुए आश्रय-भूत वृक्ष की तरह तुम्हारे साथ मिलेंगे।

६. सुधना सरस्वती, तुम्हारे लिए यह वसिष्ठ (स्तोता) यज्ञ का द्वार खोलता है। शुभ्र-वर्णा देवी, बढ़ो और स्तोता को अन्न दो। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९६ सूक्त

(देवता १–३ तक सरस्वती और शेष के सरस्वान्। ऋषि वसिष्ठ। छन्द बृहती, सतोबृहती, प्रस्तार-पङ्क्ति और गायत्री।)

१. वसिष्ठ, तुम नदियों में बलवती सरस्वती के लिए बृहत् स्तोत्र गाओ। द्यावा-पृथिवी में वर्त्तमान सरस्वती की ही, निर्दोष स्तोत्रों-द्वारा पूजा करो।

२. शुभ्रवर्णा सरस्वती, तुम्हारी महिमा-द्वारा मनुष्य दिव्य और पार्थिव दोनों प्रकार का अन्न प्राप्त करता है। तुम रक्षिका होकर हमें जानो। मरुतों की सखी होकर तुम हविर्दाताओं के पास धन भेजो।

३. कल्याण-कारिणी सरस्वती केवल कल्याण करें। सुन्दर-गमना और अन्नवती होकर हमारी प्रज्ञा उत्पन्न करें। जमदग्नि ऋषि की तरह मेरे स्तव करने पर तुम वसिष्ठ के उपयुक्त स्तोत्र प्राप्त करो।

४. हम स्त्री और पुत्र के अभिलाषी तथा सुन्दर दानवाले स्तोता हैं। हम सरस्वान् देवता की स्तुति करते हैं।

५. सरस्वान्, तुम्हारे जो जल-तरंग रसवान् और वृष्टि-जल देनेवाले हैं उन्हीं के द्वारा हमारे रक्षक होओ।

६. प्रवृद्ध सरस्वान् देव के स्तनवत् रसाधार को हम प्राप्त हों। वह सरस्वान्, सबके दर्शनीय हैं हम प्रजा और अन्न प्राप्त करें।

९७ सूक्त

(देवता प्रथम के इन्द्र, तृतीय और नवम के इन्द्र तथा ब्रह्मणस्पति, दशम के इन्द्र और बृहस्पति तथा अवशिष्ट के बृहस्पति हैं। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिस यज्ञ में देवाभिलाषी नेता लोग मत्त होते हैं, पृथिवी के नेताओं के जिस यज्ञ में सारे सवन (सोम) इन्द्र के लिए अभिषुत होते हैं, उसी यज्ञ में, हृष्ट होने के लिए, द्युलोक से इन्द्र प्रथम आगमन करें और गमन-परायण अश्वगण भी आवें।

२. सखा लोग, हम देवों की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। बृहस्पति हमारे हव्य को स्वीकार करें। जैसे दूर देश से धन ले आकर पिता पुत्र को देता है, वैसे ही बृहस्पति हमें दान करते हैं। जैसे हम काम-वर्षक बृहस्पति के निकट अपराधी न होने पावें, वैसे ही करो।

३. ज्येष्ठ और सुन्दर सुखवाले उन ब्रह्मणस्पति की, नमस्कार और हव्य-द्वारा, मैं स्तुति करता हूँ। जो देव-(स्तोतृ) कृत मन्त्र के राजा हैं, देवार्ह श्लोक उन्हीं महान् इन्द्र की सेवा करो।

४. वही प्रियतम ब्रह्मणस्पति हमारे स्थान (वेदी) पर बैठें। वह सबके वरणीय हैं। हमारी धन और शोभन वीर्य की जो अभिलाषा है, उसे ब्रह्मणस्पति पूर्ण करें। हम उपद्रवों से युक्त हैं। वह हमें अहिंसित करके पार करें।

५. प्रथम उत्पन्न हुए अमर देवगण हमें वही यथेष्ट और पूजा-साधन अन्न दें। हम शुद्ध स्तोत्रवाले, गृहियों के यज्ञ-योग्य और अप्रतिगत बृहस्पति को बुलाते हैं।

६. सुखकर, रुचिकर, वहनशील और आदित्य की तरह ज्योतिवाले अश्वगण उन्हीं बृहस्पति को वहन करें। बृहस्पति के पास बल और निवास के लिए गृह है।

७. बृहस्पति पवित्र हैं। उनके अनेक वाहन हैं। वे सबके शोधक हैं। वे हित और रमणीय वाद्यवाले हैं। वे गमनशील, स्वर्ग-भोक्ता, दर्शनीय और उत्तम निवासवाले हैं। वे स्तोताओं को सबसे अधिक अन्न देते हैं।

८. बृहस्पति देव की जननी देवी द्यावापृथिवी अपनी महिमा के जोर से बृहस्पति को वर्द्धित करें। सखा लोग, वर्द्धनीय बृहस्पति को वर्द्धित करो। वे प्रचुर अन्न के लिए जल-राशि को तरल और स्नान के योग्य बनाते हैं।

९. ब्रह्मणस्पति, तुम्हारी और वज्रवाले इन्द्र के लिए मैंने मन्त्र-रूप सुन्दर स्तुति की। तुम दोनों हमारे अनुष्ठान की रक्षा करो। अनेक स्तुतियाँ सुनो। हम तुम्हारे संभक्त हैं। हमारी आक्रमणशील शत्रु-सेना विनष्ट करो।

१०. बृहस्पति, तुम और इन्द्र—दोनों पार्थिव और स्वर्गीय धन के स्वामी हो। इसलिए स्तोता को धन देते हो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९८ सूक्त

(देवता इन्द्र और बृहस्पति। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अध्वर्युओ, मनुष्यों में श्रेष्ठ इन्द्र के लिए रुचिकर और अभिषुत सोम का हवन करो। गौर मृग की अपेक्षा भी जल्दी दूरस्थित और पीने योग्य सोम को जानकर, सोम का अभिषव करनेवाले यजमान को खोजते हुए बराबर आया करते हैं।

२. इन्द्र, पूर्व समय में जिस शोभन अन्न (सोम) को तुम धारण करते थे, इस समय भी प्रतिदिन उसी सोम को पीने की इच्छा करो। इन्द्र, हृदय और मन से हमारी इच्छा करते हुए, सम्मुख लाये गये, सोम का पान करो।

३. इन्द्र, जन्म लेने के साथ ही तुमने, बल के लिए, सोमपान किया था। तुम्हारी माता अदिति ने तुम्हारी महिमा बताई है। तुमने विस्तृत अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूर्ण किया है। युद्ध से देवों के लिए तुमने धन उत्पन्न किया है।

४. इन्द्र, जिस समय प्रभूत और अभिमान से युक्त शत्रुओं के साथ हमारा युद्ध कराओगे, उस समय उन हिंसक शत्रुओं को हाथों से ही हम पराजित करेंगे। यदि तुम मरुतों के साथ स्वयं ही युद्ध करोगे, तब सुन्दर अन्न के कारण उस संग्राम को तुम्हारी सहायता से हम जीत लेंगे।

५. मैं इन्द्र के पुराने कर्मों को कहता हूँ। इन्द्र ने जो नया कर्म किया है, उसे भी मैं कहूँगा। इन्द्र ने आसुरी माया को परास्त किया है, इसलिए केवल इन्द्र के लिए ही सोम है, अर्थात् सोम से इन्द्र का असाधारण सम्बन्ध है।

६. इन्द्र, पशुओं (प्राणियों) के लिए हितकर यह जो विश्व चारों ओर अवस्थित है और जिसे तुम सूर्य के तेज से देखते हो, सो सब तुम्हारा ही है। अकेले ही तुम समस्त गौओं के स्वामी हो। तुम्हारे दिये हुए धन का हम भोग करते हैं।

७. बृहस्पति, तुम और इन्द्र—दोनों ही पार्थिव और स्वर्गीय धन के स्वामी हो। तुम दोनों स्तोत्रकर्ता स्तोता को धन देते हो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

९९ सूक्त

(देवता ४—६ तक के इन्द्र और विष्णु तथा शेष के विष्णु। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. विष्णु, तुम शब्द-स्पर्शादि पञ्चतन्मात्राओं से अतीत शरीर से (त्रिविक्रम वा वामन अवतार के समय) बढ़ने पर कोई तुम्हारी महिमा नहीं जान सकता। हम तुम्हारे दोनों लोकों (पृथिवी से अन्तरिक्ष तक) को जानते हैं। किन्तु तुम ही, हे देव, परम लोक को जानते हो।

२. विष्णुदेव, जो पृथिवी में हो चुके हैं और जो जन्म लेंगे, उनमें से कोई भी तुम्हारी महिमा का अन्त नहीं पा सकता। दर्शनीय और विराट् द्युलोक को तुमने ऊपर धारण कर रक्खा है। तुमने पृथिवी की पूर्व दिशा को धारण कर रक्खा है।

३. द्यावा-पृथिवी, तुम स्तोता मनुष्य को दान करने की इच्छा से अन्नवाली, धेनुवाली और सुन्दर जौवाली हुई हो। विष्णु, द्यावा-पृथिवी को तुमने विविध प्रकार से नीचे-ऊपर धारण कर रक्खा है। सर्वत्रस्थित पर्वत द्वारा तुमने उस पृथिवी को धारण कर रक्खा है।

४. इन्द्र और विष्णु, सूर्य, अग्नि और उषा को उत्पन्न करके तुमने यजमान के लिए विशाल स्वर्ग का निर्माण किया है। नेताओ, तुमने वृष-शिप्र नाम के दास की माया को संग्राम में विनष्ट किया है।

५. इन्द्र और विष्णु, तुमने शम्बर की ९९ और दृढ़ पुरियों को नष्ट किया है। तुमने वर्चि नाम के असुर के सौ और हज़ार वीरों को (ताकि वे फिर सामने खड़े न हो सकें) नष्ट किया है।

६. यह महती स्तुति बृहत्, विस्तीर्ण, विक्रम से युक्त और बलवान् इन्द्र तथा विष्णु को बढ़ावेगी। विष्णु और इन्द्र, यज्ञस्थल में तुम लोगों को स्तोत्र प्रदान किया है। युद्ध में तुम हमारा अन्न बढ़ाना।

७. विष्णु, तुम्हारे लिए यज्ञ में मुख से मैंने वषट्कार किया है। शिपि-विष्ट (तेजवाले) विष्णु, हमारे उस हव्य का आश्रय करो। हमारी शोभन स्तुति और वाक्य तुम्हें बढ़ावें। तुम सदा स्वस्ति-द्वारा हमें पालन करो।

१०० सूक्त

(देवता विष्णु। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो मनुष्य बहुतों के कीर्त्तन-योग्य विष्णु को हव्य प्रदान करता है, जो एक साथ कहे मन्त्रों से पूजा करता है और मनुष्यों के हितैषी विष्णु की सेवा करता है, वही मनुष्य धन की इच्छा करके उसे शीघ्र प्राप्त करता है।

२. मनोरथ-पूरक विष्णु, सबके लिए हितकारक और दोष-रहित अनुग्रह हमें प्रदान करो। जिससे भली भाँति पाने योग्य, अनेक अश्वोंवाले और बहुतों के लिए आह्लादक धन प्राप्त किया जाय, ऐसा करो।

३. इन विष्णुदेव ने सौ किरणों से युक्त पृथिवी पर अपनी महिमा से तीन बार चरण-क्षेप किया अर्थात् पृथिव्यादि तीनों लोकों को (वामनावतार में) घेर डाला। वृद्ध से वृद्ध विष्णु हमारे स्वामी हों। प्रवृद्ध विष्णु का रूप दीप्ति-युक्त है।

४. इस पृथिवी को मनुष्य के निवास के लिए देने की इच्छा करके इन विष्णु ने पृथिवी को पदक्रमण किया था। इन विष्णु के स्तोता निश्चल होते हैं। सुजन्मा विष्णु ने विस्तृत निवास-स्थान बनाया था।

५. शिपिविष्ट विष्णु, आज हम स्तुतियों के स्वामी और ज्ञातव्य विषयों को जानकर तुम्हारे उस प्रसिद्ध नाम का कीर्त्तन करेंगे। तुम प्रवृद्ध हो और हम अवृद्ध हैं, तो भी तुम्हारी स्तुति करेंगे; क्योंकि तुम रज (लोक) के पार में रहते हो।

६. विष्णु, मैं जो "शिपिविष्ट" (संयत-रश्मि) नाम कहता हूँ, उसे प्रख्यापित (अस्वीकार) करना क्या तुम्हें उचित है? युद्ध में तुमने अन्य प्रकार का रूप धारण किया है। हमारे पास से अपना शरीर नहीं छिपाओ।

७. विष्णु, तुम्हारे लिए मुख से मैं वषट्कार करता हूँ; इसलिए, हे शिपिविष्ट, मेरे उस हव्य का आश्रय करो। मेरी सुन्दर स्तुति और वाक्य तुम्हें वर्द्धित करें। तुम सदा हमें स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

षष्ठ अध्याय समाप्त

१०१ सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता पर्जन्य। ऋषि अग्निपुत्र कुमार अथवा वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्। शौनक ऋषि का मत है कि स्नान करके, उपवास करके और पूर्व-मुख होकर इस सूक्त का और इसके अगले सूक्त का जप करने पर पाँच रातों के पश्चात् निश्चय ही वृष्टि होगी।)

१. अग्र भाग में ओङ्कार (वा बिजली) वाले ऋक्, यजुः और साम नाम के (अथवा द्रुत, विलम्बित और मध्यम नाम के) जो तीन प्रकार के वाक्य (वा मेघ-ध्वनि) जल को दुहते हैं, उन्हीं वाक्यों वा ध्वनियों को कहो। पर्जन्य ही सहवासी विद्युदग्नि को उत्पन्न करते हुए और ओषधियों (वा धान्यों) का गर्भ उत्पन्न करते हुए, शीघ्र ही उत्पन्न होकर, वृषभ की तरह (वा वर्षक होकर), शब्द करते हैं।

२. जो ओषधियों और जल के वर्द्धक हैं, जो सारे संसार के ईश्वर हैं, वह पर्जन्यदेव तीन प्रकार की भूमियों से युक्त गृह और सुख दें। वह तीन ऋतुओं (सूर्य की ज्योति वसन्त में प्रातः, ग्रीष्म में मध्याह्न और शरद् में अपराह्ण में विशेष प्रकाशक होती है) में वर्त्तमान सुन्दर गमन-वाली ज्योति हमें दो।

३. पर्जन्य का एक रूप निवृत्तप्रसवा गौ की तरह है और दूसरा रूप जल-वर्षक है। ये इच्छानुसार अपने शरीर को बनाते हैं। माता (पृथिवी) पिता (द्युलोक) से पय (दूध) लेती है, जिससे द्युलोक (पिता) और प्राणिवर्ग (पुत्र), दोनों वर्द्धित होते हैं।

४. जिनमें सभी भुवन (प्राणी) अवस्थित हैं, जिनमें द्युलोक आदि तीनों लोक अवस्थित हैं, जिनसे जल तीन प्रकार (पूर्व, पश्चिम और नीचे) से निकलता है और जिन पर्जन्य के चारों ओर उपसेचन करने-वाले तीन प्रकार (पूर्व, पश्चिम और ऊपर) के मेघ जल बरसाते हैं, वे ही पर्जन्यदेव हैं।

५. स्वयं प्रकाश पर्जन्य के लिए यह स्तोत्र किया जाता है। वे स्तोत्र ग्रहण करें। वह उनके लिए हृदय-ग्राही हो। हमारे लिए सुखकर वृष्टि गिरे। जिनके रक्षक पर्जन्य हैं, वे ओषधियाँ सुफलवती हों।

६. वृषभ की तरह ये पर्जन्य अनेक ओषधियों के लिए रेत (जल) के धारक हैं। स्थावर और जङ्गम की देह (आत्मा) पर्जन्य में ही रहती है। पर्जन्य का दिया हुआ जल सौ वर्ष तक जीने के लिए मेरी रक्षा करो। तुम हमें सदा स्वस्ति-द्वारा पालन करो।

१०२ सूक्त

(देवता पर्जन्य। ऋषि वसिष्ठ। छन्द गायत्री।)

१. स्तोताओ, अन्तरिक्ष के पुत्र और सेचक पर्जन्य के लिए स्तोत्र गाओ।

२. जो पर्जन्यदेव ओषधियों, गौओं, वड़वाओं (अश्वजातियों) और स्त्रियों के लिए गर्भ उत्पन्न करते हैं—

३. उन्हीं के लिए देवों के मुख-रूप अग्नि में अत्यन्त रसवान् हव्य का हवन करो। वे हमारे लिए नियत अन्न दें।

१०३ सूक्त

(देवता मण्डूक। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।) वृष्टि की इच्छा से वसिष्ठ ने पर्जन्य की स्तुति की थी और मण्डूकों ने अनुमोदन। मण्डूकों को अनुमोदक जानकर वसिष्ठ ने उनकी ही स्तुति इस सूक्त में की है।)

१. एक वर्ष का व्रत करनेवाले स्तोता की तरह वर्ष भर तक सोये हुए रहकर मण्डूक (मेढक) पर्जन्य (मेघ-विशेष) के लिए प्रसन्नता-कारक वाक्य कहते हैं।

२. सूखे चमड़े की तरह सरोवरों में सोये हुए मण्डूकों के पास जिस समय स्वर्गीय जल आता है, उस समय बछड़ावाली धेनु की तरह मण्डूकों का कल-कल शब्द होता है।

३. वर्षा-काल के आने पर जिस समय पर्जन्य अभिलाषी और पिपासु मेढकों को जल से सींचते हैं, उस समय जैसे पुत्र "अक्खल" शब्द करते हुए पिता के पास जाता है, वैसे ही एक मेढक दूसरे के पास जाता है।

४. जल गिरने पर जिस समय दो जातियों के मण्डूक प्रसन्न होते हैं और जिस समय पर्जन्य-द्वारा सींचे जाकर लम्बी छलाँगें भरते हुए भूरे रंग के मेढक हरित वर्ण के मेढक के साथ शब्द करते हैं, उस समय एक मण्डूक दूसरे पर अनुग्रह करता है।

५. शिष्य-गुरु की तरह जिस समय इन मेढकों में एक दूसरे की ध्वनि का अनुकरण करता है और जिस समय हे मण्डूकगण, तुम लोग सुन्दर शब्दवाले होकर जल के ऊपर छलाँगें भरते हुए शब्द करते हो, उस समय तुम्हारे शरीर के सारे जोड़ ठीक हो जाते हैं।

६. मेढकों में किसी की ध्वनि गौ की तरह है और किसी की बकरे की तरह। कोई धूम्रवर्ण का है कोई हरे रंग का। नाम तो सबका एक है; किन्तु रूप नाना प्रकार के हैं। ये अनेक देशों में, ध्वनि करते हुए, प्रकट होते हैं।

७. मण्डूको, अतिरात्र नाम के सोम-यज्ञ में स्तोताओं की तरह इस समय भरे हुए सरोवर में चारों ओर शब्द करते हुए (जिस दिन खूब वृष्टि होती है, उस दिन) चारों ओर रहो।

८. सोम से युक्त और वार्षिक स्तुति करनेवाले स्तोताओं की तरह ये मेढक शब्द करते हैं। प्रवर्ग्चारी ऋत्विकों की तरह घाम से आर्द्र-शरीर और बिल में छिपे हुए कुछ मण्डूक इस समय, वृष्टि में, प्रकट होते हैं।

९. नेता मण्डूक दैवी नियम की रक्षा करते हैं, वे बारह महीनों की

ऋतुओं को नष्ट नहीं करते। वर्ष पूरा होने पर, वर्षा-ऋतु के आने पर, ग्रीष्म के ताप से पीड़ित मण्डूक गड्ढों में बन्धन से छूटते हैं।

१०. धेनु की तरह शब्द करनेवाले मण्डूक हमें धन दें। बकरे की तरह शब्द करनेवाले मेढक हमें धन दें। भूरे रंग (धूम्रवर्ण) मण्डूक हमें धन दें। हरे रंग के मण्डूक हमें धन दें। हजार वनस्पतियों की उत्पादक वर्षा-ऋतु में मण्डूकगण असीम गायें देते हुए हमारी आयु बढ़ावें।

१०४ सूक्त

(देवता ९, १२ और १३ के सोम, ११ के "देव", ८ और १६ के इन्द्र, १७ के ग्रावा, १८ के मरुत्, १० और १४ के अग्नि, १९ से २३ तक इन्द्र, २३ के पूर्वार्द्ध में वसिष्ठ की प्रार्थना और अपरार्द्ध के पृथिवी और अन्तरिक्ष शेष मन्त्रों के राक्षसनाशक इन्द्र और सोम। ऋषि वसिष्ठ। छन्द जगती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. इन्द्र और सोम, तुम राक्षसों को दुःख दो और मारो। अभीष्ट-वर्षक-द्वय, अन्धकार में बढ़ते हुए राक्षसों को नीच कर दो। अज्ञानी राक्षसों को विमुख करके हिंसित करो, जलाओ, मार फेंको और दूर कर दो। भक्षक राक्षसों को जर्जर करके फेंक दो।

२. इन्द्र और सोम, अनर्थ प्रशंसक और आक्रामक राक्षस को शीघ्र ही दबा दो। तुम्हारे तेज से तपे हुए राक्षस को, अग्नि में फेंके गये "चरु" की तरह, विलुप्त करो। ब्राह्मणों के द्वेषी, मांस-भक्षक, घोर नेत्र तथा कठोर-वक्ता राक्षस के प्रति जैसे सदा द्वेष रहे, वैसे करो।

३. इन्द्र और सोम, दुष्कर्मी राक्षसों को, वारक मध्यस्थल में निरवलम्ब अन्धकार में, फेंककर मारो, ताकि वहाँ से एक भी राक्षस फिर ऊपर न उठ सके। तुम्हारा वह प्रसिद्ध क्रोधवाला बल दबाने में समर्थ हो।

४. इन्द्र और सोम, अन्तरिक्ष से घातक आयुध उत्पन्न करो। अनर्थ-कारी के लिए इस पृथिवी से घातक आयुध उत्पन्न करो। मेघ से वह संतापक वज्र उत्पन्न करो, जिससे प्रवृद्ध राक्षस को नष्ट किया है।

५. इन्द्र और सोम, अन्तरिक्ष से चारों ओर आयुध भेजो। अग्नि से संतप्त, तापक प्रहारवाले, अजर और पत्थर के विकार-भूत घातक अस्त्रों से राक्षसों के पार्श्व स्थानों को फाड़ो। वे राक्षस चुपचाप भाग जायें।

६. इन्द्र और सोम, कक्षाल को बाँधनेवाली रस्सी जैसे घोड़े को बाँधती है, वैसे ही यह मनोहर स्तुति तुम्हें प्राप्त हो। तुम बली हो। स्मरण-शक्ति के बल में इस स्तोत्र को प्रेरित करता हूँ। जैसे राजा लोग धन से पूरण करते हैं, वैसे ही तुम लोग इन स्तोत्रों को फलवाले करो।

७. इन्द्र और सोम, शीघ्रगामी अश्व की सहायता से अभिगमन करो। द्रोही और भञ्जक राक्षसों को मारो। पापी राक्षस को सुख न हो; क्योंकि द्रोह-युक्त होकर वह राक्षस हमें कभी न कभी मार सकता है।

८. विशुद्ध मन से रहनेवाले मुझे जो राक्षस झूठी बातोंवाला बनाता है, हे इन्द्र, वह असत्यवादी राक्षस, मुट्ठी में बाँधे हुए जल की तरह, अस्तित्व-शून्य हो जाय।

९. सत्यवादी मुझे जो अपने स्वार्थ के लिए लाञ्छित करते हैं एवम् कल्याण-मूर्ति मुझे जो बली होकर दोषी बनाते हैं, उन्हें सोम साँप के ऊपर गिरा दें अथवा उन्हें पाप-देवता की गोद में फेंक दें।

१०. अग्नि, जो राक्षस हमारे अन्न का सार विनष्ट करने की इच्छा करता है और जो अश्वों, गौओं और सन्तानों का सार नष्ट करने की इच्छा करता है, वह शत्रु, चोर और धनापहारी हिंसा पावे, वह अपने शरीर और सन्तान के साथ नष्ट हो जाय।

११. वह राक्षस शरीर और सन्तान से रहित हो। तीनों व्यापक

लोकों के नीचे वह चला जाय। जो राक्षस हमें दिन और रात मारने की इच्छा करता है, हे देवो, उसका यश सूख जाय।

१२. विद्वान् को यह विदित है कि सत्य और असत्य वचन परस्पर प्रतिस्पर्धा करते हैं। उनमें जो सत्य और सरलतम है, उसी का पालन सोम करते हैं और असत्य की हिंसा करते हैं।

१३. सोमदेव पापी और बल-युक्त मिथ्यावादी को नहीं छोड़ते, मार देते हैं। वह राक्षस को मारते हैं और असत्यवादी को भी मारते हैं। वे मारे जाकर इन्द्र के बन्धन में रहते हैं।

१४. यद्यपि मैं असत्य देवोंवाला हूँ अथवा यद्यपि मैं वृथा देवों के निकट जाता हूँ, तो भी हे धनी अग्नि, क्यों मेरे प्रति क्रुद्ध होते हो। मिथ्यावादी लोग तुम्हारी हिंसा को विशेष रूप से प्राप्त करें।

१५. यदि मैं (वसिष्ठ) राक्षस हूँ अथवा यदि मैं पुरुष की आयु नष्ट करता हूँ, तो मैं अभी मर जाऊँ अथवा मुझे जो वृथा राक्षस कहकर सम्बोधन करता है, उसके दस वीर पुत्र (सारा परिवार) नष्ट हो जायँ।

१६. जो राक्षस मुझ अराक्षस को "राक्षस" कहकर सम्बोधन करता है और जो राक्षस अपने को "शुद्ध" समझता है, उसे महान् आयुध-द्वारा इन्द्र विनष्ट करें। वह सारे प्राणियों में अधम होकर पतित हो।

१७. जो राक्षसी रात्रि-समय द्रोहिणी होकर उल्लू की तरह अपने शरीर को छिपाकर चलती है, वह निम्नमुखी होकर अनन्त गर्त्त में पतित हो जाय। अभिषव-शब्दों से पत्थर भी राक्षसों को विनष्ट करें।

१८. मरुतो, तुम लोग प्रजा में विविध रीतियों से निवास करो। जो राक्षस पक्षी होकर रात्रि में आते हैं और जो प्रदीप यज्ञ में हिंसा करते हैं, उन्हें चाहो, पकड़ो और चूर्ण करो।

१९. इन्द्र, अन्तरिक्ष से वज्र प्रेरित करो। धनी इन्द्र, सोम-द्वारा तीक्ष्ण यजमान को संस्कृत करो। ग्रन्थि-युक्त वज्र-द्वारा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर से राक्षसों को विनष्ट करो।

२०. ये राक्षस कुक्कुरों के साथ मारते-काटते आते हैं। जो राक्षस मारने की इच्छा से अहिंसनीय इन्द्र की हिंसा करने की इच्छा करते हैं, उन कपटियों को मारने के लिए इन्द्र वज्र को तेज कर रहे हैं। इन्द्र शीघ्र राक्षसों के लिए वज्र फेंकें।

२१. इन्द्र हिंसकों के भी हिंसक हैं। जैसे फरसा वन को काटता है और जैसे मुद्गर बर्तनों को फोड़ता है, वैसे ही इन्द्र, हव्य-मन्थनकर्त्ता और अभिमुख-आगमन-कर्त्ता के लिए, राक्षसों का विनाश करते हुए आ रहे हैं।

२२. इन्द्र, उलूकों के साथ जो राक्षस हिंसा करते हैं, उन्हें विनष्ट करो। जो क्षुद्र ऊलूक-रूप से हिंसा करते हैं, उन्हें विनष्ट करो। जो कुक्कुर, चक्रवाक, बाज (श्येन) और गृध्ररूपों से हिंसा करते हैं, उन्हें, हे इन्द्र, पाषाण के समान वज्रद्वारा मार डालो।

२३. हमें राक्षस न घेरने पावें। दुःख देनेवाले राक्षसों के जोड़े दूर हों। ये राक्षस "यह क्या, यह क्या" कहते हुए घूमते हैं। पृथिवी हमें अन्तरिक्ष के पाप से रक्षा करे, अन्तरिक्ष हमें स्वर्गीय पाप से बचावे।

२४. इन्द्र, पुरुष-राक्षस का विनाश करो और जो राक्षसी माया-द्वारा हिंसा करती है, उसे भी विनष्ट करो। मारना ही जिन राक्षसों का खेल है, वे कबन्ध (छिन्न-ग्रीव) होकर विनष्ट हों। वे उदय-शील सूर्य देखने न पावें।

२५. सोम, तुम और इन्द्र प्रत्येक को देखो और विविध प्रकार से देखो। जागो और राक्षसों के लिए वज्र-रूप आयुध फेंको।

सप्तम मण्डल समाप्त।

१ सूक्त

(अष्टम मण्डल। ५ अष्टक। ७ अध्याय। १ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय मेध्यातिथि और मेधातिथि। प्रथम की दो ऋचाओं के घोर-पुत्र अनन्तर भ्राता कण्व की मित्रता प्राप्त किये हुए प्रगाथ नामक ३० से ३३ तक के असङ्ग नामक राजपुत्र और ३४ मन्त्र के असङ्ग की भार्या और अङ्गिरा की कन्या शश्वती। छन्द बृहती, सतोबृहती और त्रिष्टुप्।)

१. सखा स्तोताओ, इन्द्र के सिवा दूसरे की स्तुति नहीं करना। हिंसित मत होना। सोमाभिषव होने पर एकत्र होकर अभीष्ट-वर्षी इन्द्र की स्तुति करो। बार-बार उक्थ उच्चारण करना।

२. वृषभ की तरह शत्रुओं के हिंसक, अजर वृषभ की तरह मनुष्यों के विजेता, शत्रुओं के द्वेष्टा, स्तोताओं के भजनीय, दिव्य और पार्थिव धनवाले और दाताओं में श्रेष्ठ इन्द्र की स्तुति करो।

३. इन्द्र यद्यपि रक्षा के लिए ये मनुष्य अलग-अलग तुम्हारी स्तुति करते हैं, तो भी हमारा यह स्तोत्र ही सदा तुम्हारा वर्द्धक हो।

४. धनी इन्द्र, तुम्हारे विद्वान् स्तोता शत्रुओं में विकम्प उत्पन्न करते हुए सदा ही आपद से उत्तीर्ण होते हैं। हमारे निकट आओ। तृप्ति के लिए बहुरूपीवाले और निकटस्थित अन्न हमें प्रदान करो।

५. वज्री इन्द्र, तुम्हें महामूल्य में भी मैं नहीं बेच सकता। वज्रहस्त, हजार और दस हजार में भी तुम्हें नहीं बेच सकता। असीम धन के लिए भी नहीं बेच सकता।

६. इन्द्र, तुम मेरे पिता से भी अधिक धनी हो। न भागनेवाले मेरे भाई से भी तुम अधिक धनी हो। निवासी इन्द्र, मेरी माता और तुम समान होकर मुझे व्यापक धन के लिए पूजित करो।

७. इन्द्र तुम कहाँ गये हो? कहाँ हो? तुम्हारा मन नाना दिशाओं

में रहता है। युद्ध-कुशल और युद्धकारी पुरन्दर, आओ। गाता तुम्हारी स्तुति करते हैं।

८. इन इन्द्र के लिए गाने योग्य गान करो। पुरन्दर (शत्रु-पुरी-भेदक) इन्द्र सबके लिए संभजनीय हैं। जिन ऋचाओं से कण्व-पुत्रों के यज्ञ में वज्री होकर इन्द्र गये थे और जिन ऋचाओं से शत्रुओं की पुरियों को नष्ट किया था, उन्हीं ऋचाओं से गाने योग्य गान गाओ।

९. इन्द्र, तुम्हारे जो दस योजन चलनेवाले सौ और हजार घोड़े हैं, वे सींचनेवाले शीघ्रगामी हैं। इन्हीं अश्वों की सहायता से शीघ्र आओ।

१०. आज दूध देनेवाली, प्रशंसनीय वेगवाली और अनायास दुही जानेवाली गाय (धेनु-स्वरूप इन्द्र) की मैं स्तुति करता हूँ। इसके अतिरिक्त बहुत धाराओंवाली वाञ्छनीया वृष्टि के स्वरूप यथेष्टकर्त्ता इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ।

११. जिस समय सूर्य ने "एतश" नाम के राजर्षि को कष्ट दिया था, उस समय वक्रगामी और वायु-वेग से चलनेवाले दोनों अश्वों ने अर्जुन-पुत्र कुत्स ऋषि को ढोया था। बहुविधकर्मा इन्द्र भी किरण-धारक और अहिंसित सूर्य को, छद्म-वेश से, आक्रमण करने गये थे।

१२. जो इन्द्र (संघटन-सन्धान) द्रव्य के बिना ही, गर्दन से रुधिर निकलने के पहले ही, जोड़ों को जोड़ देते हैं, वही धनी—बहु-धनी—इन्द्र विच्छिन्न का पुनः संस्कार कर देते हैं।

१३. इन्द्र, तुम्हारी दया से हम नीच न होने पावें; दुःखी न हों। क्षीण वनों की तरह हम पुत्र-पौत्रादि से शून्य न हों। वज्रधर इन्द्र, हमें दूसरे जला न सकें। घर में रहते हुए हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१४. वृत्र-घातक, शीघ्रता-रहित और उग्रता-शून्य होकर हम धीरे-धीरे तुम्हारी स्तुति करेंगे।

वीर, एक बार यथेष्ट धन के साथ हम तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र करेंगे।

१५. यदि इन्द्र हमारा स्तोत्र सुनें, तो, उसी समय, हमारे सोम उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं। वह सोम वक्र भाव से स्थित "दशापवित्र" से पवित्र किये गये हैं और "एक धन" आदि जलों के द्वारा वर्द्धमान हुए हैं; इस लिए सब सोम शीघ्र मदकारी हो गये हैं।

१६. इन्द्र, अपने सेवक स्तोता की, अन्यों के साथ की जाती स्तुति की ओर आज शीघ्र आओ। अन्य हविवालों का स्तोत्र तुम्हारे पास जाय। इस समय में भी तुम्हारी सुन्दर स्तुति की इच्छा करता हूँ।

१७. अध्वर्युओ, पत्थरों से सोम का अभिषव करो और इसे जल में धोओ। गोचर्म की तरह मेघों के द्वारा शरीर ढककर मरुद्गण नदियों के लिए जल दुहते हैं।

१८. इन्द्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा विशाल प्रकाशित प्रदेश से आकर मेरी इस विस्तृत स्तुति-द्वारा वर्द्धित हो। सुयश इन्द्र, हमारे यहाँ उत्पन्न मनुष्यों को अभिलषित फल से पूर्ण करो।

१९. अध्वर्युओ, इन्द्र के लिए तुम सबसे अधिक मदकर सोम प्रस्तुत करो। इन्द्र सारी क्रियाओं-द्वारा प्रसन्नता-दायक और अन्नाभिलाषी यजमान को वर्द्धित करो।

२०. इन्द्र, सवनों (यज्ञों) में सोम प्रस्तुत करते और स्तुति तथा सदा प्रार्थना करते हुए मैं तुम्हें क्रुद्ध न करूँ। तुम भरणकर्त्ता और सिंह की तरह भयंकर हो। संसार में ऐसा कौन है, जो तुमसे याचना नहीं करता ?

२१. उग्र बलवाले इन्द्र, मद उत्पन्न करनेवाले स्तोता-द्वारा प्रस्तुत मदकर सोम का पान करें। सोमपान से हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र हमें शत्रु-जेता और गर्व-ध्वंसक पुत्र देते हैं।

२२. इन्द्रदेव सुख-जनक यज्ञ में हव्य देनेवाले यजमान के लिए बहु-वरणीय धन देते हैं। वही सोमाभिषव-कर्त्ता और स्तोता को धन देते हैं। वे सारे कार्यों में उद्यत और स्तोताओं के प्रशस्य हैं।

२३. इन्द्र, आओ। देव, तुम दर्शनीय धन-द्वारा हृष्ट होओ। एकत्र पीत सोम-द्वारा अपना विस्तीर्ण और वृद्ध उदर, सरोवर की तरह, पूर्ण करो।

२४. इन्द्र, शत-संख्यक और सहस्र-संख्यक अश्व, सोमपान के लिए, हिरण्मय (स्वर्णमय) रथ पर इन्द्र को वहन करें। वे अश्व इन्द्र से युक्त और केशवाले हैं।

२५. श्वेत-पृष्ठ और मयूर वर्णवाले अश्व मधुर स्तुति के योग्य सोम को पीने के लिए हिरण्मय रथ से इन्द्र को ले जायँ।

२६. स्तुति-योग्य इन्द्र, प्रथम सोम-पाता की तरह इस अभिषुत सोम का पान करो। यह परिष्कृत और रसवाला है। यह आसव (सोम) मदकारक और शोभन है। यह मत्तता के लिए ही सम्पन्न किया गया है।

२७. जो इन्द्र अपने कर्म-द्वारा अकेले सबको परास्त करते हैं और जो कर्म से विशाल, उग्र और शिरस्त्राण (शिप्र) वाले हैं, वही इन्द्र आवें। वह पृथक् न हों। वह हमारे स्तोत्र के सामने आगमन करें। हमें छोड़ें नहीं।

२८. इन्द्र, तुमने शुष्ण असुर के संचरणशील निवासस्थान को वज्र से चूर्ण कर डाला था। तुम स्तोता और यज्ञ-कर्त्ता के द्वारा आह्वान के योग्य हो। दीप्तिमान् होकर तुमने शुष्ण का अनुगमन किया था।

२९. सूर्योदय होने पर तुम मेरे सारे स्तोत्रों को आवर्त्तित करो। दिन के मध्य में मेरी स्तुति को आवर्त्तित करो। दिन के अन्त में मेरे स्तोत्र को आवर्त्तित करो। रात में भी मेरी स्तुति को आवर्त्तित करो।

३०. मेध्यातिथि, बार-बार मेरी (राजर्षि आसङ्ग की) स्तुति करो। मेरी प्रशंसा करो। धनवानों में हम (आसङ्ग लोग) सबसे अधिक धन देनेवाले हैं। मेरी शक्ति (वीर्य) से दूसरे के अश्व बनाये गये हैं। मेरा पथ उत्कृष्ट है, मेरा आयुध उत्कृष्ट है।

३१. आहार के अन्त में श्रद्धा-युक्त होकर मैंने तुम्हारे रथ को जोता था। मैं मनोरम दान करना जानता हूँ। मैं यदुवंशोत्पन्न और पशु-वाला हूँ।

३२. जिन्होंने (आसङ्ग ने), हिरण्मय चर्मास्तरण के साथ, गतिशील धन मुझे (मेध्यातिथि को) प्रदान किया था, वह शब्द करनेवाले रथ से युक्त होकर शत्रुओं के सारे धन को जीत डालें।

३३. अग्नि, प्लयोग के पुत्र आसङ्ग दस हज़ार गायों का दान करने से दान में सारे दाताओं को लाँघ गये। अनन्तर सेचन-समर्थ और दीप्यमान् सारे पशु, सरोवर से नल की तरह, (आसङ्ग से) निकल गये थे।

३४. आसङ्ग के आगे (गुह्य देश में) "स्थूल" देखा जाता है। वह अस्थि (हड्डी) से रहित, विशाल और नीचे की ओर लम्बायमान है। आसङ्ग की शश्वती नाम की स्त्री ने उसे देखकर कहा, आर्य, खूब उत्तम भोग-साधक वस्तु को तुम धारण करते हो।

२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय मेधातिथि और अङ्गिरागोत्रीय प्रियमेध। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. वासयिता इन्द्र, इस अभिषुत सोम का पान करो। तुम्हारा उदर पूर्ण हो। अकुतोभय इन्द्र, तुम्हें हम सोम देंगे।

२. नेताओं-द्वारा धोया गया और वस्त्र-द्वारा अभिषुत तथा मेष-लोम से परिपूत सोम, नदी में नहाये हुए अश्व की तरह, शोभा पा रहा है।

३. इन्द्र हमने जौ की तरह उक्त सोम तुम्हारे लिए, क्षीर आदि में मिलाकर, स्वादिष्ठ बनाया है। इसलिए हे इन्द्र, इस यज्ञ में वैसा सोम पीने के लिए मैं तुम्हें बुलाता हूँ।

४. देवों और मनुष्यों के बीच इन्द्र ही समस्त सोम के पान के अधिकारी हैं। अभिषुत सोम पीनेवाले इन्द्र ही सब प्रकार के अन्नों से युक्त हैं।

५. जिन विस्तृत व्यापक इन्द्र को प्रदीप्त सोम अप्रसन्न नहीं करता, दुर्लभ आश्रयण द्रव्य (क्षीरादि) वाला सोम जिन्हें अप्रसन्न नहीं करता तथा तृप्ति करनेवाले अन्य पुरोडाशादि जिन्हें अप्रसन्न नहीं करते, उन इन्द्र की हम स्तुति करते हैं।

६. जाल आदि से रोके गये मृग को जैसे व्याध खोजते हैं, उसी प्रकार हमसे दूसरे जो ऋत्विक् और यजमान आदि संस्कृत सोम-द्वारा इन्द्र का अन्वेषण करते हैं और जो स्तुतियों से, कुत्सित रूप से, इन्द्र के पास जाते हैं, वे उनको नहीं पाते।

७. अभिषुत सोम को पीनेवाले इन्द्रदेव के लिए तीन प्रकार (सवन-त्रय) के सोम यज्ञ-गृह में बनाया जाय।

८. ऋत्विकों का एकमात्र भरण करनेवाले यज्ञ में तीन प्रकार के कोश (सोम प्रस्तुत करने के कलश) सोम का क्षरण (श्रवण) करते हैं। तीनों चमस (सवन-त्रय के) भी सोम-पूर्ण हैं।

९. सोम, तुम पवित्र और अनेक पात्रों में अवस्थित हो और बीच में क्षीर तथा दधि-द्वारा मिश्रित हो। तुम वीर इन्द्र को सबसे अधिक प्रमत्त करो।

१०. इन्द्र, तुम्हारे ये सोम तीव्र हैं। हमारे अभिषुत और दीप्त मिश्रण द्रव्य (क्षीरादि) तुम्हारी कामना (याचना) करते हैं।

११. इन्द्र, उन सोमों और मिश्रण द्रव्य को मिलाओ। पुरोडाश और सोम को मिलाओ। उससे मैं तुम्हें धनवान् सुनूँ।

१२. जैसे सुरा के पीये जाने पर दुष्ट मत्तता सुरापायी को प्रमत्त करने के लिए उसके अन्तःकरण में युद्ध करती है, वैसे ही, हे इन्द्र, पिये हुए सोम हृदयों में युद्ध करते हैं। जैसे दूध से भरे हुए गाय के स्तन की लोग रक्षा करते हैं, इन्द्र, तुम सोम-पूर्ण हो; स्तोता लोग उसी तरह तुम्हारी रक्षा करते हैं।

१३. हर्यश्व, तुम धनी हो। तुम्हारा स्तोता धनी हो। तुम्हारी तरह धनी और प्रसिद्ध पुरुष का स्तोता प्रभु होता है।

१४. इन्द्र स्तुति-रहित के शत्रु हैं। वह गाया जाता हुआ उक्थ जान सकते हैं। इस समय गाने योग्य गान गाया जाता है।

१५. इन्द्र, तुम वधिक रिपु के हाथ में मुझे नहीं छोड़ना। अभिषव करनेवाले के हाथ में नहीं छोड़ना। शक्तिमान् इन्द्र, तुम अपने कर्मबल से हमें धन देना।

१६. इन्द्र, हम तुम्हारे सखा हैं। तुम्हारी कामना करते हैं। हमारा प्रयोजन तुम्हारा स्तोत्र करना ही है। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। कण्व-गोत्रीय उक्थ-द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१७. वज्री इन्द्र, तुम कर्मवान् हो। तुम्हारे अभिनव यज्ञ में मैं दूसरा स्तोत्र नहीं उच्चारण करता; केवल तुम्हारे स्तोत्र को ही मैं जानता हूँ।

१८. सोमाभिषव करनेवाले यजमान की इच्छा देवता लोग सदा करते हैं। सोये हुए मनुष्य की वह इच्छा नहीं करते। देवता लोग आलस्य शून्य होकर मदकर सोम प्राप्त करते हैं।

१९. इन्द्र, अन्न के साथ हमारे सामने उत्तम रीति से आओ। जैसे युवती भार्या पाने पर गुणी व्यक्ति उसके ऊपर क्रुद्ध नहीं होते, वैसे ही, इन्द्र, तुम हमारे प्रति क्रुद्ध नहीं होना।

२०. दुःसहनीय इन्द्र, आज हमारे पास आओ। बुलाये जाने पर कुत्सित जामाता के समान सन्ध्याकाल नहीं करना।

२१. हम इन वीर इन्द्र की बहुत धन देनेवाली कल्याणकारिणी अनु-ग्रह-बुद्धि को जानते हैं। तीनों लोकों में आविर्भूत इन्द्र को हम जानते हैं।

२२. अध्वर्यु, कण्वगोत्रीय स्तोता लोग इन्द्र के लिए शीघ्र सोम का हवन करें। अति बली और प्रभूत रक्षावाले इन्द्र की अपेक्षा अधिक यशस्वी को हम नहीं जानते।

२३. अभिषव करनेवाले अध्वर्यु, वीर, शक्तिशाली और मानव-हितैषी इन्द्र के लिए मुख्य रूप से सोम प्रदान करो। वे सोम का पान करें।

२४. जो सुखकर स्तोताओं को अच्छी तरह जानते हैं, वही इन्द्र होत्रादि को और स्तोतागण को बहुत अश्वोंवाला और गौओंवाला अन्न दें।

२५. अभिषवकारियो, तुम लोग मस्त करने योग्य, वीर और शूर इन्द्र के लिए स्तुति-योग्य सोम दो।

२६. सोमपान में परायण और वृत्रहन्ता इन्द्र आवें। हम दूर न जायें। बहु-रक्षावाले इन्द्र शत्रुओं को तिरस्कृत करें।

२७. स्तोत्रवाले और सुखावह दोनों अश्व इस यज्ञ में स्तुति-द्वारा विश्रुत और आश्रय-योग्य सखा इन्द्र को ले आवें।

२८. शिरस्त्राण, ऋषि और शक्तिवाले इन्द्र, यह स्वादिष्ठ सोम है। तुम आओ। सारे सोम मिश्रण द्रव्य (क्षीरादि) में मिश्रित हुए हैं। आओ। तुम प्रसन्नता-प्रिय हो। स्तोता तुम्हारी स्तुति करता है।

२९. इन्द्र, वर्द्धन-परायण स्तोता लोग और सारे स्तोत्र, महान् धन और बल की प्राप्ति के लिए, तुम्हें बढ़ाते हैं।

३०. स्तुतियों-द्वारा वहनीय इन्द्र तुम्हारे लिए जो स्तोत्र और उक्थ हैं, वे सब मिलकर तुम्हारे बल को धारण करते हैं।

३१. इन्द्र, बहुकर्मा, एक और वज्रपाणि हैं। वे सदा से शत्रुओं के लिए अजेय हैं। वे स्तोता को बल देते हैं।

३२. इन्द्र ने दाहिने हाथ से वृत्र का वध किया है। वे अनेक स्थानों में बहुधार बुलाये गये हैं। वे नाना प्रकार की क्रियाओं-द्वारा महान् हैं।

३३. सारी प्रजा जिन इन्द्र के अधीन है और जिन इन्द्र में अच्युत बल और अभिनव हैं, वही इन्द्र यजमानों के अनुमोदक हों।

३४. इन्द्र ने ये सारे काम किये हैं। वे सर्वत्र विश्रुत हैं, वे हविवालों के अन्नदाता हैं।

३५. प्रहरणशील इन्द्र, जिस गमनशील और गवाभिलाषी स्तोता को अपक्वबुद्धि शत्रु के हाथ से बचाते हैं, वह स्तोता स्वामी होकर धन का ग्राहक होता है।

३६. अश्व की सहायता से धर्ता इन्द्र आने योग्य स्थान पर जाते हैं। वे शूर हैं। वे नेता मरुतों की सहायता से वृत्रासुर का वध करते हैं। वे अपने सेवक यजमान के रक्षक और सत्य-स्वरूप हैं।

३७. प्रियमेध, ऋषि, इन्द्र के लिए, उनमें मन लगाकर, यज्ञ करो। सोम पाने पर इन्द्र प्रसन्न होते हैं। उनका हर्ष निष्फल नहीं होता।

३८. कण्व-पुत्रो, तुम साधु के रक्षक, अन्नाभिलाषी, नाना-देशगामी, वेगवान् और मेष-यशा इन्द्र की स्तुति करो।

३९. पद-चिह्न न रहने पर भी सखा और सुकर्मा इन्द्र ने नेता देवों को फिर गायें दी थीं। देवों ने अभिलषित पदार्थ को इन्द्र से पाया था।

४०. वज्री इन्द्र, मेष-रूप से सामने जाते हुए तुमने इस प्रकार स्तुति करनेवाले कण्वपुत्र मेध्यातिथि को प्राप्त किया था।

४१. विभिन्दु (नामक राजा), तुम दाता हो। तुमने मुझे चालीस हज़ार धन दिया है। अनन्तर आठ हज़ार दान दिया है।

४२. प्रख्यात, जल-वर्द्धक और प्राणि-रचयिता स्तोता के प्रति अनुग्रह-शील द्यावा-पृथिवी की, धनोत्पत्ति के लिए, मैंने स्तुति की है।

२ सूक्त

(देवता पाकस्थान राजा २१-२४ तक के क्योंकि इन मन्त्रों में कुरुयान के पुत्र पाकस्थान राजा की स्तुति की गई है; शेष के इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय मेध्यातिथि। छन्द बृहती, सतोबृहती, अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. इन्द्र, हमारे रसवान् और दुग्ध-युक्त अभिषुत सोम को पीकर तृप्त होओ। तुम हमारे साथ में मत्त होने योग्य हो। बन्धु होकर हमें वर्द्धित करने के लिए तुम प्रवृद्ध होओ। तुम्हारी बुद्धि हमारी रक्षा करे।

२. तुम्हारी कृपा-बुद्धि में हम हविवाले हों। शत्रु के लिए हमें नहीं मारना। अनेक रक्षणों से हमें बचाओ। हमें सदा सुखी करो।

३. बहु-धनवान् इन्द्र, मेरी ये स्तुति-रूप बातें तुम्हें वर्द्धित करें। अग्निदेव के समान तेजस्वी और विशुद्ध विद्वान् तुम्हारी स्तुति करते हैं।

४. इन्द्र सहस्र ऋषियों से बल प्राप्त करके विस्तीर्ण हुए हैं। इनकी यथार्थ प्रख्यात महिमा और बल, यज्ञ में, विप्रों के राज्य में, स्तुत होते हैं।

५. यज्ञ के प्रारम्भ में हम इन्द्र को बुलाते हैं और यज्ञ की समाप्ति में भी इन्द्र को बुलाते हैं। हम मत्त होकर, धन-प्राप्ति के लिए, इन्द्र को बुलाते हैं।

६. अपने बल की महिमा से इन्द्र ने द्यावा-पृथिवी को विस्तारित किया है। इन्द्र ने सूर्य को दीप्त किया है। सारे भुवन इन्द्र-द्वारा नियमित हैं। सोम भी इन्हीं इन्द्र में नियमित हैं।

७. इन्द्र, स्तोता लोग, सभी देवों से पहले सोम पान के लिए, स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं। समीचीन ऋभुगण भली भाँति तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। इन्द्र तुम प्राचीन हो। रुद्रों ने तुम्हारी ही स्तुति की है।

८. अभिषुत सोम के पीने से सारे शरीर में मत्तता चढ़ने पर इन्द्र इस यजमान का ही वीर्य और बल बढ़ाते हैं। प्राचीन समय के समान ही आज मनुष्यगण इन्द्र के उन्हीं गुणों की स्तुति करते हैं।

९. इन्द्र, तुम शोभन वीर्यवाले हो। प्रथम लाभ के लिए तुमसे मैं उत्तम अन्न की माँग करता हूँ। जिसके द्वारा कर्म-रहित लोगों से हितकर धन लेकर तुमने भृगु को दिया है और जिसके द्वारा प्रस्कण्व की तुमने रक्षा की है, उसी वीर्य और अन्न को मैं माँगता हूँ।

१०. इन्द्र, जिस बल के द्वारा तुमने समुद्र को यथेष्ट जल दिया है, तुम्हारा वही बल मनोरथ-पूरक है। तुम्हारी महिमा व्यापनीय नहीं है। इस महिमा का अनुधावन पृथिवी करती है।

११. इन्द्र, जिस शोभन वीर्यवाले धन को मैं तुमसे माँग रहा हूँ,

वह धन दो। भजनाभिलाषी और हविवाले यजमान को सर्वप्रथम धन दो। प्राचीन इन्द्र, इसके अनन्तर स्तोता को देना।

१२. इन्द्र, स्तोत्र-भजन-कारी जिस धन से तुमने राजा पुरु के पुत्र की रक्षा की थी, वही धन यजमान को दो। जैसे दशम, श्यावक और कृप नामक राजर्षियों की तुमने रक्षा की है, वैसे सभी हविवाले यजमानों की रक्षा करो।

१३. सन्तत गमन करनेवाली स्तुतियों का प्रेरक कौन अभिनव मनुष्य इन्द्र की स्तुति करने की शक्ति रखता है? सुखलभ्य इन्द्र की स्तुति करनेवाले लोग इन्द्र की इन्द्रिय और महिमा को नहीं प्राप्त कर सकते।

१४. इन्द्र, तुम देवता हो। कौन स्तोता तुम्हारे लिए यज्ञ-सम्पादनाभिलाष की शक्ति रखता है? कौन मेधावी ऋषि तुम्हारी स्तुति को वहन कर सकता है? इन्द्र, स्तोता के बुलाने पर तुम कब आते हो? स्तोता के पास कब आते हो?

१५. प्रसिद्ध और अतीव मधुर वाक्य तथा स्तोत्र, शत्रु-विजयी, धन-भाक्, अक्षय रक्षावाले और अन्नाभिलाषी रथ की तरह, कहे जाते हैं।

१६. कण्वों की तरह भृगुओं ने सूर्य-किरणों के समान व्याप्त और व्याप्त इन्द्र को व्याप्त किया था। प्रियमेध नाम के मनुष्यों ने इन्द्र की पूजा करते हुए स्तोत्र-द्वारा इन्द्र की ही पूजा की थी।

१७. वृत्र का भली भाँति वध करनेवाले इन्द्र, अपने हरि-द्वय को रथ में जोतो। धनी इन्द्र, तुम उग्र हो। दर्शनीय मरुतों के साथ सोम-पान के लिए दूर देश से हमारे अभिमुख आओ।

१८. इन्द्र, कर्म-कर्त्ता और मेधावी ये यजमान यज्ञ-सेवन के लिए तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। धनी और स्तुतिपात्र इन्द्र, कामी पुरुष के समान हमारा आह्वान सुनो।

१९. इन्द्र, महाधनुष् के द्वारा तुमने वृत्र का वध किया है। मायावी अर्बुद और मृगय का तुमने विनाश किया है। पर्वत से गौओं को निकाला है।

२०. इन्द्र, जब तुमने अन्तरिक्ष से महान् और हनन-शील वृत्र को हटा दिया था, तब बल का प्रकाश किया था। उस समय सारे अग्नि, सूर्य और इन्द्र के सेवनीय सोमरस भी प्रदीप्त हुए थे।

२१. इन्द्र और मरुतों ने मुझे जो दिया था, कुरुयान के पुत्र पाकस्थामा ने भी मुझे वही दिया था। वह धन सारे धनों के बीच स्वर्ग में जाते हुए और प्रभा-युक्त सूर्य के समान शोभा पाता है।

२२. पाकस्थामा ने मुझे लोहित-वर्ण, सुन्दर-वहन-प्रदेश, बन्धन-रज्जु-पूरक और नाना प्रकार के धनों का प्रापक अश्व दिया था।

२३. उस अश्व के दस प्रतिनिधि अश्व मुझे ढोते हैं। इसी प्रकार अश्वों ने तुग्र-पुत्र भुज्यु को ढोया था।

२४. पाकस्थामा अपने पिता के उपयुक्त पुत्र हैं। वे निवासदाता तथा स्पष्ट रूप से बल देनेवाले हैं। वे शत्रुओं के हिंसक और रिपुओं के भोजयिता हैं। लोहित-वर्ण अश्व देनेवाले पाकस्थामा की मैं स्तुति करता हूँ।

४ सूक्त

(देवता १९-२१ के कुरङ्गवान, १५-१८ के पूषा अथवा इन्द्र और शेष के इन्द्र हैं। ऋषि देवातिथि। छन्द उष्णिक्, बृहती और सतोबृहती।)

१. इन्द्र, यद्यपि तुम पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण देशों के रहनेवाले स्तोताओं-द्वारा बुलाये जाते हो; तथापि आनुक राजा के पुत्र के लिए स्तोताओं-द्वारा तुम प्रेरित हो जाते हो। तुर्वश के लिए भी स्तोताओं-द्वारा प्रेरित हो जाते हो।

२. इन्द्र, यद्यपि तुम रुम, रुमश, श्यावक और कृप नामक राजाओं के साथ प्रमत्त हुआ करते हो; तथापि स्तोत्र-वाहक कण्व लोग तुम्हें स्तोत्र प्रदान करते हैं; आओ।

३. जैसे गौर मृग तृष्णार्त्त होकर जल-पूर्ण और तृण-शून्य स्थान को जान जाता है, वैसे ही, हे इन्द्र, सखित्व प्राप्त हो जाने पर तुम हमारे सम्मुख शीघ्र आओ। हम कण्व-पुत्र हैं। हमारे साथ एकत्र सोम पान करो।

४. धनवान् इन्द्र, सोम अभिषव-कर्त्ता को धन देने के लिए तुम्हें प्रमत्त करे। तुमने सोमपान किया है। यह सोम अभिषवण-फलक (चमस) द्वारा अभिषुत किया गया है; इसलिए यह अतीव प्रशस्य है। इसी के लिए तुमने महान् बल को धारण कर रक्खा है।

५. अपने वीर-कर्म के द्वारा इन्द्र ने शत्रुओं को दबाया है। उन्होंने बल के द्वारा परकीय क्रोध को नष्ट किया है। महान् इन्द्र, सारे युद्धेच्छु शत्रुओं को तुमने वृक्ष की तरह निश्चल किया है।

६. इन्द्र, जो तुम्हारा स्तोत्र करता है, वह सहस्र-संख्यक वज्रायुध (वीर) प्राप्त करता है और जो नमस्कार द्वारा हव्य प्रदान करता है, वह शोभन वीर्यवाला और शत्रुघातक पुत्र प्राप्त करता है।

७. इन्द्र, तुम उग्र हो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके हम नहीं डरेंगे, थकेंगे भी नहीं। तुम अभीष्ट-वर्षक हो। तुम्हारे सारे महान् कर्मों को प्रकाशित करना ठीक है। हमने तुर्वश और यदु को देखा है।

८. काम-वर्षक इन्द्र ने अपनी बाईं कमर से सारे प्राणियों को आच्छादित किया है। हविर्दाता इन्द्र का क्रोध नहीं उत्पन्न करता। मधु-मक्षिका से उत्पन्न मधुद्वारा संस्पृष्ट और प्रसन्नता-दाता सोम के सम्मुख शीघ्र आओ। उस सोम के पास जाओ और उसे पियो।

९. इन्द्र, तुम्हारा सखा ही अश्ववाला, रथवाला, गौवाला और रूपवाला है। वह सदा शीघ्र धन प्राप्त करता है और सबके लिए आह्लाद-जनक होकर सभा में जाता है।

१०. ऋश्य नामक मृग की तरह तुम पात्र में लाये गये सोम के सम्मुख आओ और इच्छानुसार पान करो। धनवान् इन्द्र, तुम प्रतिदिन निम्नमुख वृष्टि को गिराते हुए अतीव तेजस्वी बल को धारण करो।

११. अध्वर्यु, इन्द्र सोम पीने की इच्छा करते हैं। तुम सोम का अभिषव करो। दोनों तरुण अश्व आज जोते गये हैं। वृत्रघ्न आये हैं।

१२. इन्द्र, जिसके सोम से तुम सन्तुष्ट होते हो, वह हव्यदाता स्वयं ही उस बात को जान सकता है। तुम्हारे योग्य सोमपात्र में सींचा गया है। आओ, उसके पास जाओ और उसे पियो।

१३. अध्वर्युओ, इन्द्र रथ पर हैं। उनके लिए सोम प्रस्तुत करो। अभिषव के लिए चर्म पर स्थापित मूल पत्थर के ऊपर पत्थर यजमान के लिए यज्ञ-निष्पादक सोम का अभिषव करते हुए चारों ओर शोभा पा रहे हैं।

१४. हमारे कर्म में अन्तरिक्ष में विचरण करनेवाले और सींचने में समर्थ हरि नाम के दोनों अश्व इन्द्र को ले आवें। इन्द्र, यज्ञ-सेवी और गतिशील दोनों अश्व तुम्हें सवनों के समीप ले जायें।

१५. मैत्री की प्राप्ति के लिए हम बहु धनवाले पूषा का वरण करते हैं। शक्र, अनेकों द्वारा आहूत और पाप-विमोचक पूषन्; अपनी बुद्धि के द्वारा धन की प्राप्ति और शत्रु-विनाश के लिए हमें समर्थ करने की इच्छा करो।

१६. (नाई की) बाँह में रहनेवाले छुरे की तरह हमें तीक्ष्ण-बुद्धि करो। हे पाप-विमोचक, हमें धन दो। तुम्हारा गोधन हमारे लिए सुलभ हो। तुम मनुष्य के लिए यह धन भेजा करते हो।

१७. पूषन्, मैं तुम्हें प्रसादित करने की इच्छा करता हूँ। दीप्तिमान् पूषन्, तुम्हारी स्तुति करने की इच्छा करता हूँ। अन्य देवों की स्तुति करने की मैं इच्छा नहीं करता; क्योंकि वे असुखकर हैं। निवास-प्रद, स्तोता और साम-मन्त्र-युक्त पज्र (कक्षीवान्) को अभिलषित धन दो।

१८. दीप्तिवाले और अमर पूषन्, किसी समय हमारी गायें चरने के लिए लौटती हैं। हमारा गो-रूप धन नित्य हो। तुम हमारे रक्षक और मङ्गलकर होओ। अन्न-दान के लिए महान् होओ।

१९. कुरुङ्ग नाम के दीप्त और सौभाग्यवान् राजा की स्वर्ग-प्राप्ति के लिए यज्ञ और दान में मनुष्यों के बीच हमने प्रचुर और सौ अश्वों से युक्त धन को प्राप्त किया था।

२०. कण्व-पुत्र और हविवाले मेधातिथि तथा उनके स्तोताओं-द्वारा भजन के योग्य तथा दीप्ति पाये हुए प्रियमेध नाम के ऋषियों-द्वारा सेवित एवम् अतीव पवित्र साठ हजार गौओं को मैं (मेधातिथि) ने सबके अन्त में प्राप्त किया।

२१. मेरे धन पाने पर वृक्षों ने भी हर्ष-ध्वनि की थी कि इन्होंने प्रशंसनीय गोधन और अश्वधन प्राप्त किया है।

सप्तम अध्याय समाप्त।

५ सूक्त

(अष्टम अध्याय। देवता अश्वि-द्वय। अन्त की पाँच आधी ऋचाओं के कशु क्योंकि इन ऋचाओं में कशु नामक राजा के दान की कथा है।. ऋषि कण्वगोत्रीय ब्रह्मातिथि। छन्द गायत्री, बृहती और अनुष्टुप्।)

१. दूर से ही निकट में विद्यमान दिखाई देनेवाली और दीप्त रूप-वाली उषा जिस समय सारे पदार्थों को श्वेत-वर्ण कर देती हैं, उस समय दीप्ति को अनेक प्रकार से विस्तारित करती हैं। (अश्विद्वय, मन्त्रों को सुनने के लिए तुम भी प्रादुर्भूत होओ।)

२. दर्शनीय अश्विद्वय, तुम लोग नेताओं के समान हो। इच्छा-मात्र से ही अश्वों में जाते हुए और प्रचुर अन्न से युक्त रथ से तुम लोग उषा के साथ मिलो।

३. अन्न-युक्त और धन-सम्पन्न अश्विद्वय, अपने लिए बनाये गये स्तोत्रों को देखो। जैसे दूत स्वामी के वचन के लिए प्रार्थना करता है, वैसे ही हम तुम्हारे वाक्य के लिए प्रार्थना करते हैं।

४. तुम बहुतों के प्रिय, अनेकों के आनन्द-दाता और बहु धनवाले हो। हम कण्वगोत्रज हैं। हम अपनी रक्षा के लिए अश्विद्वय की प्रार्थना करते हैं।

५. तुम लोग पूज्य हो। सबसे अधिक अन्न देनेवाले हो। शोभन धन के स्वामी हो। तुम लोग मङ्गल-प्रद और हव्यदाता के गृह में जाया करते हो।

६. जो हव्यदाता सुन्दर देवतावाला है, उसके लिए तुम लोग उत्तम यव से युक्त और अविनाशी गोचर-भूमि को जल के द्वारा सिक्त करो।

७. अश्विद्वय, अश्वों पर चढ़कर अत्यन्त शीघ्र हमारे स्तोत्र की ओर आओ। इन अश्वों की गति प्रशंसनीय है।

८. अश्विद्वय, तीन दिन और तीन रात सारे दीप्ति-युक्त स्थानों पर अश्व-साहाय्य से दूर से गमन करो।

९. तुम लोग प्रभात-समय में स्तुति के योग्य हो। हमारे लिए गौ से युक्त अन्न और सम्भोग के योग्य धन दो। इन सबके भोग के लिए मार्ग दो।

१०. अश्वि-द्वय, हमारे लिए गौ, पुत्र, सुन्दर रथ और अश्व से युक्त धन ले आओ।

११. शोभन पदार्थों के स्वामी, दर्शनीय, हिरण्मय और मार्ग से युक्त अश्विद्वय, प्रवृद्ध होकर सोममय मधु का पान करो।

१२. अन्न और धन से युक्त अश्विद्वय, हम धनी हैं। हमें चारों ओर विस्तृत और अहिंसनीय गृह प्रदान करो।

१३. तुम लोग मनुष्य के स्तोत्र की रक्षा करो। शीघ्र आओ। दूसरे के पास नहीं जाना।

१४. स्तुति-योग्य अश्विद्वय, तुम हमारा दिया हुआ मदकर, मनोहर और मधुर सोम-भाग का पान करो।

१५. हमारे लिए सौ और हजार प्रकार के एवम् अनेक निवासों से युक्त तथा सबका धारण करने में समर्थ धन ले आओ।

१६. नेतृ-द्वय, मनीषी लोग अनेक देशों में तुम्हें बुलाते हैं। अश्विद्वय, वाहक अश्व की सहायता से आओ।

१७. हव्य-सम्पन्न और पर्याप्त कार्य करनेवाले मनुष्य कुश तोड़ते हुए तुम्हें बुलाते हैं।

१८. अश्विद्वय, हमारा यह स्तोत्र (मन्त्र) सर्वापेक्षा अधिक तुम लोगों का वाहक होकर तुम्हारा समीपवर्ती हो।

१९. अश्विद्वय, जो मधु-पूर्ण चर्म-पात्र मध्यस्थान में रक्खा हुआ है, उससे मधु पान करो।

२०. अन्न से युक्त और धनवान् अश्विद्वय, हमारे पशु, पुत्र और गौओं के लिए उस रथ से प्रभूत अन्न अनायास ले आओ।

२१. प्रभात-काल में जानने योग्य अश्विद्वय, स्वर्गीय और वाञ्छनीय जल, हमारे लिए, द्वार से ही सिञ्चित करो।

२२. नेता अश्विद्वय, समुद्र में फेंके जाने पर तुग्र-पुत्र भुज्यु ने स्तुति-द्वारा कब तुम लोगों की सेवा की थी कि तुम्हारा रथ अश्वों के साथ गया था।

२३. नासत्यद्वय, प्रासाद (हर्म्य) के नीचे असुरों-द्वारा बाँधे गये कण्व को तुम लोगों ने नाना प्रकार की रक्षा प्रदान की थी।

२४. वर्षण-परायण और धन से युक्त अश्विद्वय, जिस समय तुम लोगों को बुलाता हूँ, उस समय उसी अभिनव और प्रशस्य रक्षण के साथ आओ।

२५. अश्विद्वय, तुम लोगों ने जैसे कण्व, प्रियमेध, उपस्तुत और स्तोता अत्रि की रक्षा की थी, वैसे ही हमारी रक्षा करो।

२६. धन के लिए अंश, गौओं के लिए अगस्त्य और अन्न के लिए सोभरि की जैसे तुमने रक्षा की थी, वैसे ही हमारी रक्षा करो।

२७. वर्षणशील और धन-सम्पन्न अश्विद्वय, स्तुति करते हुए हम "इतना" अथवा इससे भी अधिक धन की याचना करते हैं।

२८. अश्विद्वय, सुवर्ण-निर्मित सारथि-स्थानवाले और सुवर्णमय प्रग्रह (लगाम) वाले रथ पर अवस्थान करो।

२९. अश्विद्वय, तुम्हारे प्रापणीय रथ की ईषा (लाङ्गल-दण्ड) सोने की है, अक्ष (चक्र-मण्डल) सोने के हैं और दोनों चक्र सोने के हैं।

३०. अन्न और धनवाले अश्विद्वय, इस रथ पर दूर देश से भी आओ। हमारी इस शोभन स्तुति के पास गमन करो।

३१. अमर अश्विद्वय, दासों की अनेक नगरियों को भग्न करते हुए तुम लोग दूर देश से अन्न ले आओ।

३२. अनेकों के मित्र और सत्य-स्वभाव अश्विद्वय, हमारे पास अन्न के साथ आगमन करो। यश के साथ आगमन करो और धन के साथ आगमन करो।

३३. अश्विद्वय, स्निग्ध रूपवाले और पक्षियों की तरह शीघ्रगामी अश्व तुम्हें सुन्दर यज्ञवाले मनुष्य के पास ले जायें।

३४. जो रथ अश्व के साथ वर्त्तमान है और स्तोताओं के द्वारा प्रशंसित है, तुम्हारा वह रथ सैन्य-समूह को बाधा नहीं देता।

३५. मन के समान वेगवान् अश्विद्वय, क्षिप्र पदवाले और अश्वों से युक्त हिरण्मय रथ पर चढ़कर आओ।

३६. वर्षण करनेवाले धन से युक्त अश्विद्वय, तुम लोग सदा जागरूक और अन्वेषणनीय सोम पीनेवाले हो। वही तुम लोग हमें अन्न दो।

३७. अश्विद्वय, तुम लोग अभिनव और सम्भजनीय धन को जानो। चेदि-वंशीय कशु नाम के राजा ने जैसे सौ ऊँट और दस हजार गायें दी थीं; सो सब जानो।

३८. जिन कशु राजा ने मेरी सेवा के लिए सोने के समान चमकने-वाले दस राजाओं को दिया था, उन कशु के पैरों के नीचे सारी प्रजा रहती है।

३९. जिस मार्ग से ये चेदि-वंशीय जाते हैं, उससे दूसरा कोई नहीं जा सकता। कशु की अपेक्षा अधिकतर दान-परायण और विद्वान् व्यक्ति स्तोता के लिए दान नहीं करता।

६ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता इन्द्र। शेष की तीन ऋचाओं के तिरिन्दिर क्योंकि इन ऋचाओं में परशु नाम के राजा के पुत्र तिरिन्दिर के दान की प्रशंसा की गई है। ऋषि वत्स। छन्द गायत्री।)

१. जो इन्द्र पर्जन्य के समान बल में महान् हैं, वह पुत्रतुल्य स्तोता के स्तोत्र-द्वारा वर्द्धित होते हैं।

२. जिस समय आकाश को पूर्ण करनेवाले अश्व यज्ञ की प्रजा इन्द्र को वहन करते हैं, उस समय विद्वान् लोग यज्ञ के प्रापक स्तोत्र-द्वारा स्तुति करते हैं।

३. कण्वों ने स्तोत्र-द्वारा इन्द्र को यज्ञ-साधक बनाया है; इसी लिए लोग इन्द्र को भ्राता कहते हैं।

४. जैसे नदियाँ समुद्र को प्रणाम करती हैं, वैसे ही समस्त मानव-प्रजा इन्द्र के क्रोध के भय से इन्द्र को स्वयं प्रणाम करती है।

५. जिस बल के द्वारा इन्द्र द्यावा-पृथिवी को चमड़े की तरह भली भाँति रखते हैं, वह बल दीप्त हुआ था।

६. इन्द्र ने काँपते हुए वृत्र के मस्तक को सौ धारोंवाले और पराक्रमशाली वज्र के द्वारा छेद डाला।

७. स्तोताओं के आगे हम लोग, अग्नि की दीप्ति की तरह, दीप्यमान इन स्तोत्रों को बार-बार कहेंगे।

८. गुहा में वर्तमान जो स्तुतियाँ स्वयमेव इन्द्र के पास जाकर दीप्त होती हैं, उन्हें कण्व लोग सोम की धारा से युक्त करें।

९. इन्द्र, हम गौ और अश्व से युक्त धन प्राप्त करें और दूसरों के पहले ही, ज्ञान के लिए, अन्न प्राप्त करें।

१०. मैंने ही पिता और सत्य रूप इन्द्र की कृपा प्राप्त की है। मैं सूर्य के समान प्रकाशित हुआ हूँ।

११. कण्व की तरह मैं नित्य स्तोत्र-द्वारा वाक्यों को अलंकृत करता हूँ। उस स्तोत्र-द्वारा इन्द्र बल प्राप्त करते हैं।

१२. इन्द्र, जो तुम्हारी स्तुति नहीं करते और जो ऋषि (मन्त्र-द्रष्टा) तुम्हारी स्तुति करते हैं, इन दोनों के बीच मेरी स्तुति भली भाँति स्तुत होकर वृद्धि प्राप्त करे।

१३. जिस समय इन्द्र के क्रोध ने वृत्र को टुकड़े-टुकड़े करते हुए शब्द किया था, उस समय इन्द्र ने समुद्र के प्रति वृष्टिजल भेजा था।

१४. इन्द्र, तुमने दस्यु शुष्ण के प्रति धारण करने योग्य वज्र का आघात किया था। उग्र इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षी हो।

१५. द्युलोक इन्द्र को बल-द्वारा व्याप्त नहीं कर सकते, अन्तरिक्ष वज्रधर इन्द्र को नहीं व्याप्त कर सकते और भूलोक भी इन्द्र को नहीं व्याप्त कर सकते।

१६. इन्द्र, जिस वृत्र ने तुम्हारे महान् जल को अन्तरिक्ष में रोककर व्याप्त कर रक्खा था, उस वृत्र को तुमने गति-परायण जल के बीच मारा था।

१७. जिस वृत्र ने महती और सङ्गता द्यावापृथिवी को ढक रक्खा था, इन्द्र, उसे तुमने अनादि और अनन्त मरण-लक्षण अन्धकार में घुसा दिया।

१८. ओजस्वी इन्द्र, जो यति अङ्गिरोगण तुम्हारी स्तुति करते हैं और जो भृगु लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सबमें मेरा स्तोत्र सुनो।

१९. इन्द्र ये यज्ञ-वर्द्धिका गायें घी और दूध देती हैं।

२०. इन्द्र, इन प्रसव करनेवाली गायों ने मुख से तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न का भक्षण करके सूर्य के चारों ओर जल की तरह गर्भ धारण किया था।

२१. बलाधीश इन्द्र, उक्थ-द्वारा कण्व लोग तुम्हें वर्द्धित करते हैं। अभिषुत सोमों ने तुम्हें वर्द्धित किया था।

२२. वज्रवान् इन्द्र, तुम्हारे पथ-प्रदर्शक बनने पर उत्तम स्तुति और प्रवृद्ध यज्ञ किया जाता है।

२३. इन्द्र, हमारे लिए महान् और गो-युक्त अन्न की रक्षा करने और वीर्यवान् पुत्र आदि दान करने की इच्छा करो।

२४. इन्द्र, नहुष राजा की प्रजाओं के सामने शीघ्रगामी और अश्व से युक्त जो बल तुमने प्रदान किया है, हमें उसे दो।

२५. इन्द्र, तुम प्राज्ञ हो। इस समय निकट से दर्शनीय गोशाला को पूर्ण करो और हमें सुखी करो।

२६. इन्द्र, बल के समान आचरण करो। मनुष्यों के राजा बनो। बल-द्वारा तुम महान् और अपराजेय हो।

२७. इन्द्र, तुम बहुत व्यापक हो। हविवाले लोग, सोम-द्वारा तुम्हें तृप्त करने के लिए, तुम्हारे पास आकर, स्तुति करते हैं।

२८. पर्वतों के प्रान्त में, नदियों के सङ्गम-स्थल पर, यज्ञ-क्रिया करने पर मेधावी इन्द्र जन्म ग्रहण करते हैं।

२९. सर्वव्यापक इन्द्र, जो संसार में विहार करते हैं, वही विद्वान् इन्द्र ऊर्ध्व-लोक से निम्न मुख से समुद्र को देखते हैं।

३०. द्युलोक के ऊपर जिस समय इन्द्र दीप्ति प्राप्त करते हैं, उसी समय प्राचीन जल-दाता इन्द्र की निवासप्रद ज्योति का लोग दर्शन करते हैं।

३१. इन्द्र, समस्त कण्वगण तुम्हारी बुद्धि और बल को बढ़ाते हैं। हे श्रेष्ठ बली, वे तुम्हारे वीर-कर्म का भी वर्द्धन करते हैं।

३२. इन्द्र, तुम हमारी इस सुन्दर स्तुति की सेवा करो। हमें भली भाँति बचाओ। हमारी बुद्धि को प्रवर्द्धित करो।

३३. प्रवृद्ध और वज्रधर इन्द्र, हम मेधावी हैं। जीवन के निमित्त तुम्हारे लिए हमने स्तोत्र किया था।

३४. कण्व लोग स्तुति करते हैं। निम्नाभिमुख गमनशील जलों की तरह रमणी स्तुति स्वयं इन्द्र की सेवा के उपयुक्त हो जाती है।

३५. जैसे नदियाँ समुद्र को बढ़ाती हैं, वैसे ही मन्त्र इन्द्र को बढ़ाते हैं। इन्द्र अजर हैं। उनके कोप का निवारण कोई नहीं कर सकता।

३६. इन्द्र, सुन्दर रथ पर चढ़कर दूर देश से हमारे पास आओ। अभिषुत सोम का पान करो।

३७. सबकी अपेक्षा अधिक शत्रु-संहारक इन्द्र, जो लोग कुश काटते हैं, वे अन्न-प्राप्ति के लिए तुम्हें बुलाते हैं।

३८. इन्द्र, जैसे रथ-चक्र अश्व का अनुगमन करते हैं, वैसे ही द्यावा-पृथिवी तुम्हारा अनुगमन करती है। अभिषुत सोम भी तुम्हारा अनुवर्त्तन करते हैं।

३९. इन्द्र, शर्यणावेश (कुरुक्षेत्र के समीप) के तड़ाग के पास समस्त ऋत्विकों के द्वारा आरब्ध यज्ञ में तृप्त होओ। सेवक की स्तुति से आनन्द लो।

४०. प्रवृद्ध, काम-वर्षक, वज्रवान्, अतीव सोम-पाता और वृत्रघ्न इन्द्र द्युलोक के पास बोलते हैं।

४१. इन्द्र, तुम पूर्वोत्पन्न ऋषि हो। अद्वितीय बल-द्वारा तुम सारे देवों के स्वामी हुए हो। तुम बार-बार धन दो।

४२. प्रशस्त पृष्ठवाले सौ अश्व, हमारे अभिषुत सोम और अन्न के लिए, तुम्हें ले आवें।

४३. उक्थ (मन्त्र) द्वारा कण्व लोग पूर्वजों द्वारा कृत और मधुर जल की वर्द्धयित्री याग-क्रिया को बढ़ावें।

४४. देवगण विशेष रूप से महान् हैं। उनके बीच इन्द्र को ही, मनुष्य लोग, धनेच्छु होकर, रक्षण के लिए, वरण करते हैं।

४५. अनेकों द्वारा स्तुत इन्द्र, यज्ञ-प्रिय ऋषियों-द्वारा स्तुत दो अश्व, सोम पान के लिए, तुम्हें हमारे सामने ले आवें।

४६. यदुओं में परशु के पुत्र तिरिन्दिर के निकट सौ और सहस्र धन मैंने ग्रहण किये हैं।

४७. तिरिन्दिर राजाओं ने पज्र और साम को तीन सौ अश्व और दस सौ गायें दी थीं।

४८. तिरिन्दिर राजा ने, उन्नत होकर, चार स्वर्ण-भारों से युक्त ऊँटों को देते हुए यदुओं को दास रूप से देते हुए कीर्त्ति के द्वारा स्वर्ग को व्याप्त किया था।

७ सूक्त

(देवता मरद्गण। ऋषि कण्वगोत्रीय वत्स। छन्द गायत्री।)

१. मरुतो, जिस समय विद्वान् व्यक्ति तीनों सवनों में (सोम-रूप) प्रशस्त अन्न (अग्नि में) फेंकते हैं, उस समय तुम लोग पर्वतों में दीप्ति वाले हो।

२. बलाभिलाषी और शोभन मरुतो, जिस समय तुम लोग रथ को अश्व-द्वारा जोतते हो, उस समय पर्वत भी चलने (काँपने) लगते हैं।

३. शब्दकर्त्ता और पृश्नि के पुत्र मरुद्गण (वायु के चालक देवता) वायुओं के द्वारा मेघादि को ऊपर उठाते और वृद्धिकर अन्न दान करते हैं।

४. जिस समय मरुद्गण, वायुओं के साथ, जाते हैं, उस समय वे वर्षा गिराते और पर्वतों को कँपाते हैं।

५. तुम्हारे रथ के लिए पर्वतों की गति नियत है। नदियाँ रक्षा और महान् बल के लिए, तुम्हारे गमन के अर्थ, नियत हैं।

६. हम तुम्हें, रात्रि को रक्षा के लिए बुलाते हैं, दिन में भी तुम्हें बुलाते हैं और यज्ञ आरम्भ होने पर तुम्हें बुलाते हैं।

७. वे ही अरुण वर्णवाले, आश्चर्य-भूत (विचित्र) और शब्दकर्त्ता मरुद्गण रथ के द्वारा द्युलोक के ऊपर, अग्र भाग से, जाते हैं।

८. जो मरुद्गण सूर्य के गमन के लिए किरणयुक्त मार्ग का सृजन करते हैं, वे तेज के द्वारा अवस्थिति करते हैं।

९. मरुतो, मेरे इस वाक्य का आश्रयण करो। हे महान् मरुतो, इस स्तोत्र का आश्रय करो। मेरे इस आह्वान की सेवा करो।

१०. पृश्नियों ने (मरुतों की माताओं ने) वज्री इन्द्र के लिए मधुर सोमरस को उत्स (निर्झर), कबन्ध (जल) और अद्रि (मेघ)—इन तीन सरोवरों से दूहा था।

११. मरुतो, जिस समय अपने सुखाभिलाष के लिए हम स्वर्ग से तुम्हें बुलाते हैं, उस समय शीघ्र ही हमारे पास आओ।

१२. सुन्दर दान में परायण और महातेजस्वी रुद्र-पुत्रो, तुम लोग यज्ञ-गृह में मदकर सोम पीने पर उत्तम ज्ञान से युक्त हो जाते हो।

१३. मरुतो, स्वर्ग से हमारे लिए मद-स्रावी, बहु-निवासदाता और सबका भरण करने में समर्थ धन ले आओ।

१४. शुभ्र मरुतो, जिस समय तुम लोग पर्वत के ऊपर अपना यान ले जाते हो, उस समय अभिषुत सोम के बल से प्रमत्त होते हो।

१५. स्तोता स्तोत्रों के द्वारा अहिंसनीय मरुतों के पास अपने सुख के लिए भिक्षा माँगता है।

१६. मरुत् लोग अक्षीण मेघ का दोहन करते हुए, जल-बिन्दु की तरह, वृष्टि-द्वारा द्यावा-पृथिवी को भली भाँति व्याप्त करते हैं।

१७. पृश्नि के पुत्र मरुत् लोग शब्द करते हुए ऊपर जाते हैं। रथ-द्वारा ऊपर जाते हैं। वायु-द्वारा ऊपर जाते हैं। मन्त्र-द्वारा ऊपर जाते हैं।

१८. जिस रक्षण के द्वारा यदु और तुर्वश की तुम लोगों ने रक्षा की थी और जिसके द्वारा धनाभिलाषी कण्व की रक्षा की है, धन के लिए हम उसका ही ध्यान करते हैं।

१९. उत्तम दान देनेवाले मरुतो, घृत के समान शरीर को पुष्ट करनेवाले इस अन्न को, कण्व गोत्रोत्पन्नस्तोत्र के समान, वर्धित करो।

२०. मरुतो, तुम दान-परायण हो। तुम्हारे लिए कुश काटे गये हैं। इस समय तुम लोग कहाँ मस्त हो रहे हो? कौन स्तोता तुम्हारी सेवा करता है?

२१. हे प्रवृद्ध-यज्ञ मरुतो, तुम लोग जो पूर्व ही दूसरों के द्वारा किये गये स्तोत्रों से यज्ञ-सम्बन्धी अपने बलों को प्रसन्न करते हो, वह ठीक नहीं है।

२२. उन मरुतों ने ओषधियों के साथ जल को मिलाया था, द्यावा-पृथिवी को उनके स्थानों पर अवस्थित किया था और सूर्य को स्थापित किया था। उन्होंने वृत्र के प्रत्येक अङ्ग को काटने के लिए वज्र धारण किया था।

२३. अराजक और वीर्य के समान बल बढ़ानेवाले मरुद्गण ने पर्वत की तरह वृत्र को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था।

२४. मरुद्गण ने योद्धा त्रित के बल की रक्षा की थी, त्रित के कर्म की रक्षा की थी और वृत्र-वध के लिए इन्द्र की रक्षा की थी।

२५. आयुध-हस्त, दीप्तिमान् और शोभन मरुत् लोग, शोभा के लिए मस्तक पर सोने का शिरस्त्राण (शिप्र) धारण किया था।

२६. मरुतो, स्तोताओं की इच्छा करके अभीष्टवर्षी रथ के बीच दूर देश से तुम लोग आये थे। उस समय द्युलोकवर्ती जनता के समान पृथिवी के प्राणी भी वेग से काँप गये थे।

२७. देवता लोग (मरुत् लोग) यज्ञ के दान के लिए सोने के पैरों-वाले अश्वों पर चढ़कर आवें।

२८. इन मरुतों के रथ पर जिस समय श्वेत बिन्दुओंवाली मृगी और शीघ्रगामी रोहित मृग प्राप्त होते हैं, उस समय शोभन मरुद्गण आते और जल प्रवाहित होता है।

२९. नेता मरुद्गण शोभन सोमवाले और यज्ञ-गृह से संयुक्त हैं। वे ऋजी का देश के शर्यणा नामक सरोवर (कुरुक्षेत्र के निकटस्थ) में रथचक्र को निम्नमुख करके जाते हैं।

३०. मरुतो, कब तुम लोग इस प्रकार से आह्वान करनेवाले और याचक मेधावी (विप्र) स्तोता के पास सुख-हेतु धन के साथ आओगे?

३१. तुम लोग स्तुति से प्रसन्न होते हो। तुम लोगों ने इन्द्र का कब परित्याग किया था? तुम्हारी मित्रता के लिए किसने प्रार्थना की थी?

३२. कण्वगण, वज्रहस्त और सोने के तक्षण करनेवाले आयुध (काष्ठादि को चिकना करनेवाले यन्त्र) से युक्त मरुतों के साथ अग्नि की स्तुति करो।

३३. मैं वर्षक, यजनीय और विचित्र बलवाले मरुतों को, सुख-लभ्य धन के लिए, आवर्त्तित (घूर्णित वा द्रवीभूत) करता हूँ।

३४. सारे गिरि पीड़ित वा आघात-प्राप्त और बाधा-प्राप्त होने पर भी अपने स्थान से भ्रष्ट नहीं होते। पर्वत (मेघ) भी नियत ही रहते हैं।

३५. बहुदूर-व्यापक गमन करनेवाले अश्व आकाश-मार्ग से जाते हुए मरुतों को ले आते हैं। वे स्तोता को अन्न देते हैं।

३६. तेजोबल से अग्निदेव ने, स्तवनीय सूर्य की तरह, सबके मुख्य होकर जन्म ग्रहण किया है। मरुद्गण दीप्ति-बल से नाना स्थानों में रहते हैं।

८ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि कण्वगोत्रज सध्वंसाख्य। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अश्विद्वय, तुम लोग दर्शनीय हो। तुम्हारा रथ सोने का है। सारे रक्षणों के साथ आगमन करो। सोममय मधु का पान करो।

२. अश्विद्वय, तुम लोग भोक्ता हो, हिरण्मय शरीरवाले हो, क्रान्त-कर्मा (कवि) हो और प्रशस्त ज्ञानवाले हो। सूर्य के समान भासमान रथ पर चढ़कर अवश्य हमारे पास आओ।

३. अश्विद्वय, निर्दोष स्तुति-द्वारा अन्तरिक्ष से मनुष्य-लोक की ओर आओ और कण्ववंशीयों के यज्ञ में अभिषुत सोम का पान करो।

४. कण्व ऋषि के पुत्र इस यज्ञ में तुम्हारे लिए सोममय मधु का अभिषव करते हैं; इसलिए हे अश्विद्वय, इस लोक के प्रति प्रसन्न होकर तुम लोग द्युलोक और अन्तरिक्ष से आओ।

५. अश्विद्वय, सोमपान के लिए हमारे स्तुतिवाले इस यज्ञ में आओ। वर्द्धक, कवि और नेता अश्विद्वय, अपनी बुद्धि और कर्म से स्तोता को वृद्धि दो।

६. नेता अश्विद्वय, प्राचीन समय में ऋषियों ने जब तुम्हें, रक्षा के लिए, बुलाया, तब तुम आये थे। इसलिए मेरी इस सुन्दर स्तुति के पास आओ।

७. सूर्य के ज्ञाता अश्विद्वय, तुम लोग द्युलोक और अन्तरिक्ष से हमारे पास आओ। स्तोता के प्रति प्रकृष्ट ज्ञानवाले अश्विद्वय, बुद्धि के साथ तुम आओ। आह्वान सुननेवाले, अश्विद्वय, स्तोत्र के साथ तुम आओ।

८. मुझसे अतिरिक्त दूसरा कौन स्तोत्र-द्वारा अश्विद्वय की उपासना कर सकता है? कण्व के पुत्र वत्स ऋषि स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं।

९. अश्विद्वय, इस यज्ञ में स्तोता (विप्र) ने रक्षण के लिए स्तुति-द्वारा तुम्हें बुलाया है। हे निष्पाप और शत्रु-घातकों में श्रेष्ठ अश्विद्वय, तुम हमारे लिए सुखदाता होओ।

१०. धन और अन्न से युक्त अश्विद्वय, योषित् (सूर्या) तुम्हारे रथ पर चढ़ी थी। अश्विद्वय, तुम लोग समस्त अभिलषित पदार्थ प्राप्त करो।

११. अश्विद्वय, तुम लोग जिन लोकों में हो, वहाँ से अनेक रूपोंवाले रथ पर चढ़कर आओ। काव्य (कवि के पुत्र) और कवि (मेधावी) वत्स ऋषि ने मधुमय वाक्य का उच्चारण किया है।

१२. बहु-मद-युक्त, धन-दाता और जगद्वाहक अश्विद्वय, मेरे इस स्तोत्र की प्रशंसा करो।

१३. अश्विद्वय, हमारे लिए अलज्जाकारक सारा धन दो। हमें प्रजोत्पादन-रूप कर्मवाले करो। हमें निन्दकों के वशीभूत नहीं करना।

१४. सत्य स्वभाव अश्विनीकुमारो, तुम चाहे दूर रहो अथवा पास में रहो, चाहे जिस स्थान में रहो, सहस्र रूपोंवाले रथ से आगमन करो।

१५. नासत्य-द्वय, जिन वत्स ऋषि ने स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित किया है, उनके लिए सहस्र रूपोंवाला और घी चुलानेवाला अन्न दो।

१६. अश्विद्वय, उन स्तोता के लिए तुम घृत-धारा से युक्त और बलिष्ठ अन्न प्रदान करो। दानाधिपतियो, इन्होंने तुम लोगों के सुख के लिए स्तुति की थी। यह अपने लिए धन की इच्छा करते हैं।

१७. रिपु-भक्षक और बहुत हवि के खानेवाले नेता अश्विद्वय, तुम लोग हमारी स्तुति की ओर आओ और हमें शोभन सम्पदा से युक्त करो तथा पार्थिव पदार्थ प्रदान करो।

१८. प्रियमेध नामक ऋषियों ने देवों के आह्वान के समय तुम्हें, सारे संरक्षणों के साथ, बुलाया था। तुम लोग यज्ञ में शोभा पाओ।

१९. सुखदाता, आरोग्यप्रद और स्तुति-योग्य अश्विद्वय, जिन वत्स ऋषि ने स्तुति-द्वारा तुम्हें वर्द्धित किया है, उनके सामने आओ।

२०. जिन संरक्षणों से तुमने कण्व, मेधातिथि, वश, दशव्रज और गोशर्य की तुमने रक्षा की थी, नेता अश्विद्वय, उनके द्वारा हमारी रक्षा करो।

२१. नेता अश्विद्वय, जिन रक्षणों से प्राप्तव्य धन के लिए, तुमने त्रसदस्यु की रक्षा की थी, उन्हीं के द्वारा हमें, अन्न-लाभ के लिए, भली भाँति बचाओ।

२२. बहु-रक्षक और शत्रु-नाशकों में श्रेष्ठ अश्विद्वय, दोष-शून्य स्तोत्र और वाक्य तुम्हें वर्द्धित करें। हमारे लिए तुम लोग बहु-विध अभिलषणीय होओ।

२३. अश्विद्वय का तीन चक्रोंवाला रथ अदृश्य (गुहा में) रहकर पीछे प्रकट होता है। क्रान्तदर्शी अश्विद्वय, यज्ञ के कारण-भूत रथ के द्वारा हमारे सामने आओ।

९ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि शशकर्ण। छन्द गायत्री, बृहती, ककुप, त्रिष्टुप, विराट, जगती और अनुष्टुप।)

१. अश्विद्वय, वत्स ऋषि की रक्षा के लिए तुम लोग अवश्य ही गये थे। इन ऋषि को बाधा-शून्य और विस्तीर्ण गृह प्रदान करो। उनके शत्रुओं को दूर कर दो।

२. अश्विद्वय, जो धन अन्तरिक्ष और स्वर्ग में वर्त्तमान है और जो पञ्चश्रेणी (चार वर्ण और निषाद) में है, वही धन प्रदान करो।

३. अश्विद्वय, जिन विप्र (मेधावी स्तोता) ने तुम लोगों के कर्मों (सेवाओं) का बार-बार अनुष्ठान किया है, उन्हें जानो। फलतः कण्व-पुत्रों के कामों को समझो।

४. अश्विद्वय, तुम्हारा घर्म (हवि का याज्ञिक कड़ाहा) स्तोत्र-द्वारा आर्द्र किया जाता है। अन्न और धनवाले अश्विद्वय, जिस सोम के द्वारा तुमने वृत्र को जाना था, वह मधुमान् सोम यही है।

५. विविध-कर्मा अश्विद्वय, जल, वनस्पति और ओषधियों (लतादि) में जो तुमने भेषज किया है, उसके द्वारा हमारी रक्षा करो।

६. सत्य-स्वभाव देवो, तुम लोगों ने जगत् का परिपोषण किया है और सबको नीरोग बनाया है। स्तुति से वत्स ऋषि तुम्हें नहीं प्राप्त करते। तुम लोग हविवालों के पास जाते हो।

७. वत्स ऋषि (इस सूक्त के वक्ता) ने उत्तम बुद्धि के द्वारा अश्विद्वय के स्तोत्र को जाना था। वत्स (मैं) ने अतीव मधुर सोम और घर्म (हविर्विशेष) को, अथर्वा द्वारा मथित अग्नि में फेंका था।

८. अश्विद्वय, तुम लोग शीघ्रगामी रथ पर चढ़ो। मेरे ये स्तोत्र सूर्य की तरह तेजस्वी तुम्हारे सामने जाते हैं।

९. सत्यस्वभाव अश्विद्वय, आज मन्त्रों-द्वारा तुम्हें हम जैसे ले आते हैं और जैसे वाणी (स्तोत्र) के द्वारा तुम्हें हम ले आते हैं, वैसे ही कण्वपुत्र के (मेरे) स्तोत्रों को जानो।

१०. अश्विद्वय, कक्षीवान् ऋषि ने जैसे तुम्हें बुलाया था और जैसे व्यश्व तथा दीर्घतमा ऋषियों ने एवम् वेन राजा के पुत्र पृथी ने जैसे यज्ञ-गृह में तुम्हें बुलाया था, वैसे ही मैं स्तुति करता हूँ मेरे इस स्तोत्र को जानो।

११. अश्विद्वय, तुम लोग गृह-पालक होकर आओ। तुम लोग अतीव पोषक हो। तुम संसार और शरीर के पालक होओ। पुत्र और पौत्र के गृह में आओ।

१२. अश्विद्वय, यदि तुम लोग इन्द्र के साथ एक रथ पर जाते हो, यदि वायु के साथ एक स्थानवासी हो, यदि अदिति के पुत्र ऋभु आदि के साथ प्रसन्न हो और यदि विष्णु के पाद-क्षेप के साथ तीनों लोकों में अवस्थान करते हो, तो आओ।

१३. जिस समय मैं संग्राम के लिए अश्विद्वय को बुलाता हूँ, उस समय वे आवें। शत्रुओं के मारने में अश्विद्वय का जो विजयी रक्षण है, वही श्रेष्ठ है।

१४. अश्विद्वय, ये हव्य तुम्हारे लिए बनाये गये हैं। तुम लोग अवश्य आओ। यह सोम तुर्वश और यदु में वर्त्तमान है। यह तुम्हारे लिए संस्कृत है और कण्व-पुत्रों को दिया गया है।

१५. नासत्य (सत्य-स्वभाव) अश्विद्वय, दूर अथवा निकट में जो भेषज है, उसके साथ, हे प्रकृष्ट ज्ञानवाले अश्विद्वय, विमद के समान वत्स को भी गृह प्रदान करो।

१६. अश्विद्वय-सम्बन्धी और प्रकाशमान स्तोत्र के साथ मैं आता हूँ। द्युतिमती उषा, मेरी स्तुति से अन्धकार दूर करो और मनुष्यों को धन दो।

१७. देवो, सुन्दर-नेत्रा और महती उषा, अश्विद्वय को जगाओ और वर्द्धित करो। हे देवाह्वाता, अश्विद्वय को सतत प्रबोधित करो। उनके आनन्द के लिए बृहद् अन्न (सोम) प्रस्तुत हुआ है।

१८. उषा, जिस समय तुम दीप्ति के साथ आती हो, उस समय सूर्य के समान शोभा पाती हो। उस समय अश्विद्वय का यह रथ मनुष्यों के पोषणीय यज्ञ-गृह में आता है।

१९. जिस समय पीत-वर्ण सोमलता को गाय के स्तन की तरह दुहा जाता है और जिस समय देव-कामी लोक स्तुति करते हैं, उस समय, हे अश्विद्वय, रक्षा करो।

२०. प्रकृष्ट ज्ञानवाले अश्विद्वय, तुम लोग धन के लिए हमारी रक्षा करो। बल के लिए रक्षा करो। मनुष्यों के उपभोग्य सुख के लिए तथा समृद्धि के लिए हमारी रक्षा करो।

२१. अश्विद्वय, यदि तुम लोग पितृ-तुल्य द्युलोक की गोद में, कर्म के साथ, बैठे हो और यदि, प्रशंसनीय होकर, सुख के साथ, निवास करते हो, तो हमारे पास आओ।

१० सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि कण्व-पुत्र प्रगाथ। छन्द बृहती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और सतोबृहती।)

१. अश्विद्वय, जिस लोक में प्रशस्त यज्ञ-गृह है, यदि उस लोक में रहते हो, यदि उस द्युलोक के दीप्तिमान् प्रदेश में रहते हो और यदि अन्तरिक्ष में निर्मित गृह में रहते हो, तो इन सब स्थानों से आओ।

२. अश्विद्वय, तुम लोगों ने जैसे मनु (प्रजापति यजमान) के लिए यज्ञ को सिक्त किया था, वैसे ही कण्व-पुत्र के यज्ञ को जानो। मैं बृहस्पति,

समस्त देवों, इन्द्र, विष्णु और शीघ्रगामी अश्वोंवाले अश्विद्वय को बुलाता हूँ।

३. अश्विद्वय शोभनकर्मा हैं। वे हमारे हविष्य के स्वीकार के लिए प्रकट हुए हैं। मैं उन्हें बुलाता हूँ। अश्विद्वय का सख्य देवों में उत्कृष्ट और सहज-लभ्य है।

४. जिन अश्विनीकुमारों के ऊपर ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ प्रभु होते हैं और स्तोतृ-शून्य देश में भी जिनके स्तोता हैं, वे हिंसा-रहित यज्ञ के प्रकृष्ट ज्ञाता हैं। वे स्वधा (बलकारण स्तुति) के साथ सोममय मधु का पान करें।

५. अन्न और धनवाले अश्विद्वय, इस समय तुम लोग पूर्व दिशा अथवा पश्चिम दिशा में हो अथवा द्रुह्यु, अनु, तुर्वश और यदु के पास हो, मैं तुम्हें बुलाता हूँ; मेरे पास आओ।

६. बहुत हवि का भक्षण करनेवाले अश्विद्वय, यदि अन्तरिक्ष में जा रहे हो, यदि द्यावापृथिवी के अभिमुख जा रहे हो और यदि तेजोबल से रथ पर बैठ रहे हो, तो इन सभी स्थानों से आओ।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वत्स। छन्द गायत्री और त्रिष्टुप्।)

१. अग्निदेव, मनुष्यों में तुम कर्म-रक्षक हो; इसलिए यज्ञ में तुम स्तुत्य हो।

२. शत्रु-पराजय-कारी अग्नि, तुम यज्ञ में प्रशस्य हो और यज्ञों के नेता हो।

३. उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (जात-वेदा) अग्नि, हमारे शत्रुओं को अलग करो। अग्नि, तुम देव-द्वेषी शत्रु-सैन्य को अलग करो।

४. जातवेदा अग्नि, समीपस्थ रहने पर भी तुम शत्रु के यज्ञ की कभी कामना नहीं करते।

५. हम विप्र हैं और तुम अमर जातवेदा (उत्पन्न-पदार्थ-ज्ञाता) हो। हम तुम्हारा विस्तृत स्तोत्र करेंगे।

६. हम विप्र और मनुष्य हैं। हम विप्र (मेधावी) अग्निदेव को, हव्य के द्वारा प्रसन्न करने के लिए, अपनी रक्षा के निमित्त, स्तुति-द्वारा बुलाते हैं।

७. अग्नि, उत्तम वासस्थान से भी वत्स ऋषि तुम्हारे मन को खींचते हैं। उनकी स्तुति तुम्हारी कामना करती है।

८. तुम अनेक देशों में समान रूप से द्रष्टा हो। फलतः सारी प्रजा के तुम स्वामी हो। युद्ध में तुम्हें हम बुलाया करते हैं।

९. अन्नाभिलाषी होकर युद्ध में, रक्षा के लिए, हम अग्नि को बुलाते हैं। संग्राम में अग्नि विचित्र धन से युक्त होते हैं।

१०. अग्नि, तुम यज्ञ में पूज्य और प्राचीन हो। तुम चिरकाल से होता और स्तुत्य हो। यज्ञ में बैठते हो। अपने शरीर को हवि से तृप्त करो। हमें भी सौभाग्य प्रदान करो।

अष्टम अध्याय समाप्त।

पञ्चम अष्टक समाप्त।

६ अष्टक

१२ सूक्त

(८ मण्डल । १ अध्याय । २ अनुवाक । देवता इन्द्र । ऋषि कण्वगोत्रीय पर्वत । छन्द उष्णिक् ।)

१. इन्द्र, तुम अत्यन्त सोम का पान करनेवाले हो। बलवानों में श्रेष्ठ इन्द्र, सोमपान-जनित मद से प्रसन्न होकर तुम अपने कार्यों को भली भाँति जानते हो। तुम जैसे सोम-जन्य मद से राक्षसों को मारते हो, वैसे ही मद से युक्त होने पर तुमसे हम याचना करते हैं।

२. तुमने सोम के जिस प्रकार के मद से युक्त होकर अंगिरोगोत्रीय अध्रिगु को और अन्धकार-विनाशक तथा सबके नेता सूर्य को बचाया था और जैसे मद से युक्त होकर तुमने समुद्र (वा अन्तरिक्ष) को बचाया था, वैसे ही मद से सम्पन्न होने पर हम तुमसे (धन की) याचना करते हैं।

३. जैसे सोमपान-जन्य मद के कारण (रथी के) रथ के समान प्रचुर वृष्टि-जल को तुम समुद्र की ओर भेजते हो, तुम्हारे वैसे ही मद से युक्त होने पर हम, यागपथ की प्राप्ति के लिए, याचना करते हैं।

४. वज्री इन्द्र, जिस स्तोत्र से स्तुत होकर तुम अपने बल से तुरत हमारा मनोरथ पूर्ण करते हो, अभीष्ट-प्राप्ति के लिए घृत के समान उसी पवित्र स्तोत्र को जानो (ग्रहण करो)।

५. स्तुति-द्वारा आराधनीय इन्द्र, इस स्तोत्र को ग्रहण करो। वह स्तोत्र समुद्र के समान बढ़ता है। इन्द्र, उस स्तोत्र से तुम सारी रक्षाओं के साथ हमें कल्याण देते हो।

६. दूर देश से आकर इन्द्र ने हमारी मैत्री के लिए धन दिया है। इन्द्र, द्युलोक से वृष्टि के समान हमारे धन का विस्तार करते हुए तुम हमें श्रेय देने की इच्छा करते हो।

७. जब इन्द्र सबके प्रेरक आदित्य के समान द्यावापृथिवी को वृष्टि आदि से बढ़ाते हैं, तब इन्द्र की पताकायें और इन्द्र के हाथों में अवस्थित वज्र हमें कल्याण देते हैं।

८. प्रवृद्ध और अनुष्ठाताओं के रक्षक इन्द्र, जिस समय तुमने सहस्र-संख्यक वृत्र आदि असुरों का वध किया, उसके अनन्तर ही तुम्हारा महान् बल भली भाँति बढ़ा।

९. जैसे आग (दावानल) वनों को जलाती है, वैसे ही इन्द्र सूर्य की किरणों के द्वारा बाधक शत्रु को जलाते हैं। शत्रुओं को दबानेवाले इन्द्र भली भाँति बढ़ते हैं।

१०. मेरी यह स्तुति तुम्हारे पास जाती है। वह स्तुति वसन्त आदि में किये जाने योग्य यज्ञ-कार्यवाली, अतीव अभिनव, पूजक और बहुत ही प्रसन्नताकारक है।

११. स्तोता इन्द्र के यज्ञ का कर्त्ता है। वह इन्द्र के पान के लिए अनुषङ्गी सोम को "दशापवित्र" से पवित्र करता है। वह स्तोत्र-द्वारा इन्द्र को वर्द्धित करता है और स्तोत्रों से इन्द्र के गुणों की सीमा बाँधता है।

१२. मित्र स्तोता के लिए दाता इन्द्र ने गुण-गान करनेवाले अभिषव-कर्त्ता के वाक्य की तरह धन-दान के लिए अपने शरीर को बढ़ा लिया। यह स्तुत वाक्य इन्द्र के गुणों की सीमा करता है।

१३. विप्र अथवा मेधावी और स्तोत्र-वाहक मनुष्य जिस इन्द्र को भली भाँति प्रमत्त करते हैं, इन इन्द्र के मुख में घृत के समान यज्ञ का हव्य सिक्त करूँगा।

१४. अदिति ने स्वयं शोभमान (स्वराट्) इन्द्र के लिए, रक्षा के निमित्त, अनेकों के द्वारा प्रशंसित सत्य-सम्बन्धी स्तोत्र को उत्पन्न किया।

१५. यज्ञ-वाहक ऋत्विक् लोग रक्षा और प्रशंसा के लिए इन्द्र की स्तुति करते हैं। देव इन्द्र, इस समय विविध-कर्मा हरि नामक दोनों अश्व, यज्ञ में जो है, उसके लिए तुम्हें वहन करते हैं।

१६. हे इन्द्र, विष्णु, आप्तत्रित (राजर्षि) अथवा मरुतों के आने पर दूसरों के यज्ञ में उनके साथ सोम पीकर प्रमत्त होते हो, तथापि हमारे सोम से भली भाँति प्रमत्त होओ।

१७. इन्द्र, यद्यपि दूर देश में द्रवशील सोमपान से प्रमत्त होते हो, तथापि हमारा सोम प्रस्तुत होने पर उसके साथ भली भाँति रमण करो।

१८. सत्यपालक इन्द्र, तुम सोमाभिषव-कर्त्ता यजमान के वर्द्धक हो। तुम जिस यजमान के उक्थ मन्त्र से प्रसन्न होते हो, उसके सोम से प्रसन्न होओ।

१९. ऋत्विको, तुम्हारे रक्षण के लिए जिन इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ, उन्हीं इन्द्र को मेरी स्तुतियाँ, शीघ्र भजन और यज्ञ के लिए, व्याप्त करें।

२०. हव्य, स्तुति और सोम-द्वारा यज्ञ में लाने योग्य और सबसे अधिक सोम पान करनेवाले इन्द्र को स्तोता लोग वर्द्धित और व्याप्त करते हैं।

२१. इन्द्र का धन-प्रदान प्रचुर है, इन्द्र की कीर्त्ति बहुत है। वे हव्यदाता यजमान के लिए सारा धन व्याप्त करते हैं।

२२. वृत्र-वध के लिए देवों ने इन्द्र को (स्वामि-रूप से) धारण किया था। समीचीन बल के लिए स्तुति-वचन इन्द्र का स्तव करते हैं।

२३. महिमा में महान् और आह्वान सुननेवाले इन्द्र की, स्तोत्र-द्वारा और पूजा-मन्त्र-द्वारा, समीचीन बल की प्राप्ति के लिए, बार-बार स्तुति करते हैं।

२४. जिन वज्रधर इन्द्र को द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष अपने पास से अलग नहीं कर सकते, उन्हीं इन्द्र के बल से बल लेने के लिए संसार प्रदीप्त होता है।

२५. इन्द्र, जिस समय युद्ध में देवों ने तुम्हें सम्मुख धारण किया था, उसी समय कमनीय हरि नामक अश्वों ने तुम्हें वहन किया था।

२६. वज्रधर इन्द्र, जिस समय तुमने जल को रोकनेवाले वृत्र को बल के द्वारा मारा था, उसी समय कमनीय हरि तुम्हें ले आये थे।

२७. जिस समय तुम्हारे (अनुज) विष्णु ने अपने तीन पैरों से तीनों लोकों को (वामनावतार में) नापा था, उसी समय तुम्हें दोनों कमनीय हरि ले आये थे।

२८. इन्द्र, जब तुम्हारे दोनों कमनीय हरि प्रतिदिन बढ़े थे, उसके बाद ही तुम्हारे द्वारा सारा संसार नियमित होता है।

२९. इन्द्र, जिस समय तुम्हारी मरुद्रूप प्रजा सारे भूतों को नियमित करती है, उसी समय तुम सारे संसार को नियमित करते हो।

३०. इन्द्र, जिस समय इन निर्मल-ज्योति सूर्य को तुम द्युलोक में स्थापित करते हो, उसी समय तुम सारा संसार नियमित करते हो।

३१. इन्द्र, जैसे लोग संसार में अपने बन्धु को उच्च स्थान में ले जाते हैं, वैसे ही मेधावी स्तोता इस प्रसन्नता-दायक सुन्दर स्तुति को, परिचर्य्या के साथ, यज्ञ में तुम्हारे पास ले जाता है।

३२. यज्ञ में इन्द्र के तेज के प्रीत होने पर एकत्र स्तोता लोग जिस समय उत्तम रीति से स्तुति करते हैं, उस समय इन्द्र, नाभि-स्वरूप यज्ञ के अभिषव-स्थान (वेदी) पर धन दो।

३३. इन्द्र, उत्तम वीर्य, उत्तम गौ और उत्तम अश्व से युक्त धन हमें दो। मैंने प्रथम ही ज्ञान-लाभ के लिए होता की तरह यज्ञ में स्तव किया था।

१३ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय नारद। छन्द उष्णिक्।)

१. सोम के प्रस्तुत होने पर इन्द्र यज्ञ-कर्त्ता और स्तोता को पवित्र करते हैं। इन्द्र ही वर्द्धक बल की प्राप्ति के लिए महान् हुए हैं।

२. इन्द्र प्रथम विस्तीर्ण व्योम (विशेष रक्षक) देवसदन (स्वर्ग) में यजमानों के वर्द्धक हैं। वह प्रारम्भ किये हुए कर्म के समापक हैं। अतीव यश से युक्त जल-प्राप्ति के लिए वृत्र को जीतते हैं।

३. बलवान् इन्द्र को मैं बल-प्राप्ति-कर युद्ध में बुलाता हूँ। इन्द्र, धन के अभिलषित होने पर तुम वर्द्धन के लिए हमारे सखा होओ।

४. स्तुतियों-द्वारा भजनीय इन्द्र, तुम्हारे लिए सोमाभिषव-कर्त्ता यजमान की दी हुई आहुति जाती है। मत्त होकर तुम उस यज्ञ में विराजो।

५. इन्द्र सोमाभिषव-कर्त्ता जिस धन की तुमसे प्रत्याशा करते हैं, वह धन तुम अवश्य मुझे दो। विचित्र और स्वर्ग-प्रापक धन भी हमारे लिए ले आओ।

६. इन्द्र, विशेषदर्शी स्तोता जिस समय तुम्हारे लिए शत्रुओं की पराजय-समर्थ स्तुति करता है और जब सकल वाक्य तुमको प्रसन्न करते हैं, तब शाखा के समान सारे गुण तुम पर आरोहण करते हैं।

७. इन्द्र, पहले के समान स्तोत्र उत्पन्न करो और स्तोता का आह्वान सुनो। जिसी समय सोम के द्वारा प्रमत्त होते हो, उसी समय शोभन कार्य करनेवाले यजमान के लिए फल देते हो।

८. इन्द्र के सत्य वचन निम्नगामी जल के समान विहार करते हैं। स्वर्ग-पति इन्द्र इस स्तुति के द्वारा कीर्त्तित होते हैं।

९. वशवाले एक इन्द्र ही मनुष्यों के पालक कहे गये हैं। वही तुम इन्द्र स्तोत्र-द्वारा वर्द्धकों और रक्षणेच्छुओं के साथ सोमाभिषव में रमण करो।

१०. स्तोता, तुम विद्वान् और विख्यात इन्द्र की स्तुति करो। इन्द्र के शत्रुजेता दोनों अश्व नमस्कार और हविवाले यजमान के घर में जाते हैं।

११. तुम्हारी बुद्धि महाफल-दायिका है। तुम स्निग्ध हो। शीघ्र-गामी अश्व के साथ यज्ञ में आगमन करो; क्योंकि उस यज्ञ में ही तुम्हें सुख है।

१२. श्रेष्ठ, बली और साधु-रक्षक इन्द्र, हम स्तुति करते हैं; हमें धन दो। स्तोताओं को अविनाशी और व्यापक अन्न वा यश दो।

१३. इन्द्र, सूर्योदय होने पर मैं तुम्हें बुलाता हूँ; दिन के मध्य भाग में तुम्हें बुलाता हूँ। प्रसन्न होकर गतिशील अश्वों के साथ आओ।

१४. इन्द्र, शीघ्र आओ और सोम जहाँ है, वहाँ शीघ्र जाओ। दुग्ध-मिश्रित अभिषुत सोम से प्रीत होओ। अनन्तर मैं जैसा जानता हूँ, वैसे ही पूर्व-कृत विस्तृत यज्ञ को निष्पन्न करो।

१५. हे शक्र और वृत्रघ्न, यदि तुम दूर देश में हो, यदि समीप में हो, यदि अन्तरिक्ष में हो, तथापि उन सब स्थानों से आकर और सोम-पान करके रक्षक होओ।

१६. हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को वर्द्धित करें। अभिषोत सोम इन्द्र को वर्द्धित करें। हविष्मान् मनुष्य इन्द्र के प्रति रत हुए हैं।

१७. मेधावी और रक्षाभिलाषी उन इन्द्र को ही तृप्त कर आहुतियों द्वारा वर्द्धित करते हैं। पृथिवी के समस्त प्राणी इन्द्र को वृक्ष-शाखा की तरह वर्द्धित करते हैं।

१८. "त्रिकद्रुक" नामक यज्ञ में देवों ने चैतन्य-दाता इन्द्र का मान किया था; हमारी स्तुतियाँ उन्हीं सदा वर्द्धक इन्द्र को वर्द्धित करें।

१९. इन्द्र, तुम्हारे स्तोता अनुकूलकर्मा होकर समय-समय पर उक्थों का उच्चारण करते हैं तुम अद्भुत, शुद्ध और पावक (दूसरों को पवित्र करनेवाले) होने से स्तुत होते हो।

२०. जिनके लिए विशिष्ट ज्ञानवाले व्यक्ति स्तोत्र उच्चारण करते हैं; वे ही रुद्र-पुत्र मरुद्गण अपने प्राचीन स्थानों में हैं।

२१. इन्द्र, यदि तुम मुझे मैत्री प्रदान करो और इस सोम-रूप अन्न का पान करो, तो हम सारे शत्रुओं का अतिक्रमण कर सकते हैं।

२२. स्तुति-पात्र इन्द्र, कब तुम्हारा स्तोता अत्यन्त सुखी होगा? तुम कब हमें गौ, अश्व और निवास-योग्य धन दोगे?

२३. अजर इन्द्र, भली भाँति स्तुत और काम-वर्षक हरि नामक दोनों अश्व तुम्हारा रथ हमारे पास ले आवें। तुम अतीव मद से युक्त हो; हम तुम्हारे पास याचना करते हैं।

२४. महान् और अनेकों द्वारा स्तुत उन्हीं इन्द्र से तृप्तिकर आहुतियों के द्वारा हम याचना करते हैं। वे प्रसन्नता-दायक कुशों पर बैठें। अनन्तर द्विविध (सोम और पुरोडाश) हव्य स्वीकार करें।

२५. बहुतों-द्वारा स्तुत इन्द्र, तुम ऋषियों-द्वारा स्तुत हो। अपने रक्षणों के द्वारा हमें वर्द्धित करो और हमारे सामने प्रवृद्ध अन्न दान करो।

२६. वज्रधर इन्द्र, इस प्रकार तुम स्तोता के रक्षक हो। सत्यभूत, तुम्हारे स्तोत्र से युक्त तुम्हारे प्रसन्नता-दायक कर्म को मैं प्राप्त करता हूँ।

२७. इन्द्र, प्रसिद्ध, प्रसन्न और विस्तीर्ण धनवाले दोनों अश्वों को रथ में जोत करके इस यज्ञ में, सोमपान के लिए, आओ।

२८. तुम्हारे जो रुद्र-पुत्र मरुद्गण हैं, वे आश्रय-योग्य इस यज्ञ में आवें और मरुतों से युक्त प्रजायें भी हमारे हव्य के पास आवें।

२९. इन्द्र की ये हिंसक मरुत आदि प्रजायें द्युलोक में जिस स्थान में हैं, उसकी सेवा (आश्रय) करते हैं। हम लोग जैसे धन प्राप्त कर सकें, इस प्रकार यज्ञ के नाभिप्रदेश (उत्तर वेदी) पर रहते हैं।

३०. प्राचीन यज्ञ-गृह में यज्ञ आरम्भ होने पर ये इन्द्र द्रष्टव्य फल के लिए यज्ञ को क्रम-बद्ध देखकर यज्ञ को सम्पादित करते हैं।

३१. इन्द्र, तुम्हारा यह रथ मनोरथ-पूरक है, तुम्हारे ये दोनों घोड़े काम-वर्षक हैं। शत-क्रतु (बहु-कर्मा) इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षी हो और तुम्हारा आह्वान भी ईप्सित-फल-दाता है।

३२. अभिषव करनेवाला पत्थर अभीष्ट-वर्षी है, मत्तता मनोरथ-दायिनी है। यह अभिषुत सोम भी काम-वर्षक है। जिस यज्ञ को तुम प्राप्त

करते हो, वह भी अभिलषित-वर्षक है। तुम्हारा आह्वान ईप्सित-फल-दाता है।

३३. वज्रधर, तुम अभीष्ट-वर्षक हो। मैं हवि का सेचन-कर्ता हूँ। मैं नानाविध स्तुतियों-द्वारा तुम्हें बुलाता हूँ। तुम अपने लिए की गई स्तुति को ग्रहण करते हो; इसलिए तुम्हारा आह्वान अभीष्ट-दाता है।

१४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कण्व-गोत्रीय गोसूक्ति और अश्वसूक्ति। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र, जैसे तुम्हीं केवल धनाधिपति हो, वैसे ही यदि मैं भी ऐश्वर्य-युक्त हो जाऊँ, तो मेरा स्तोता गो-युक्त हो जाय।

२. शक्तिमान् इन्द्र, यदि तुम्हारी कृपा से मैं गोपति हो जाऊँ, तो इस स्तोता को दान देने की इच्छा करूँगा और प्रार्थित धन दूँगा।

३. इन्द्र, तुम्हारी सत्यप्रिय और वर्द्धक स्तुति-रूप धेनु सोमाभिषव-कर्त्ता को गौ और अश्व देती है।

४. इन्द्र, तुम स्तुत होकर धन-दान करने की इच्छा करते हो। उस समय तुम्हारे धन का निवारक देवता वा मनुष्य नहीं है।

५. यज्ञ ने इन्द्र को वर्द्धित किया है। इसलिए कि इन्द्र ने द्युलोक में मेघ को सुलाते हुए पृथिवी को वृष्टि-दान से सुस्थिर किया है।

६. इन्द्र, तुम वर्द्धन-शील और शत्रुओं के सारे धनों के जेता हो। हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करेंगे।

७. सोम-जन्य मत्तता के होने पर इन्द्र ने दीप्तिमान् अन्तरिक्ष को वर्द्धित किया है; क्योंकि उन्होंने बली मेघ को भिन्न किया है।

८. इन्द्र ने गुहा में छिपाई हुई गायों को प्रकट करके अङ्गिरा लोगों को प्रदान किया था और गायें चुरानेवाले पणियों के नेता "बल" असुर को अधोमुख किया था।

९. इन्द्र ने द्युलोक के नक्षत्रों को बल-युक्त और दृढ़ किया था। नक्षत्रों को उनके स्थानों से कोई गिरा नहीं सकता।

१०. इन्द्र, समुद्र की तरङ्गों के समान तुम्हारी स्तुतियाँ शीघ्र गमन करती हैं। तुम्हारी प्रमत्तता विशेष रूप से दीप्ति प्राप्त करती है।

११. इन्द्र, तुम स्तोत्र-द्वारा वर्द्धनीय हो और उक्थ (शस्त्र नामक मन्त्र) द्वारा भी वर्द्धनीय हो। तुम स्तोताओं के कल्याणकर्ता हो।

१२. केशवाले हरि नाम के दोनों अश्व सोमपान के लिए शोभन दानवाले इन्द्र को यज्ञ में ले आते हैं।

१३. इन्द्र, जिस समय तुमने सारे शत्रुओं (असुरों) को जीता था, उस समय जल के फेन के द्वारा ही नमुचि के सिर को छिन्न किया था।

१४. तुम माया के द्वारा सर्वत्र फैलनेवाले हो। तुमने द्युलोक में चढ़ने की इच्छा करनेवाले शत्रुओं (दस्युओं) को निम्नाभिमुख प्रेरित किया था।

१५. इन्द्र, सोमपान करने से उत्कृष्टतर होते हुए तुमने सोमाभिषव से हीन जन-समुदाय को, परस्पर विरोध कराकर, विनष्ट किया था।

१५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि गोसूक्ति और अश्वसूक्ति। छन्द उष्णिक्।)

१. अनेकों के द्वारा बुलाये गये और अनेकों के द्वारा स्तव किये गये उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो। वचनों के द्वारा महान् इन्द्र की परिचर्य्या करो।

२. दोनों स्थानों में इन्द्र का पूजनीय महाबल द्यावापृथिवी को धारण करता है। वह शीघ्रगामी मेघ और गमनशील जल को वीर्य-द्वारा धारण करते हैं।

३. अनेकों के द्वारा स्तुत इन्द्र, तुम शोभा पाते हो। जीतने और सुनने योग्य धन को स्वाधीन करने के लिए तुम अकेले ही वृत्र आदि का वध करते हो।

४. वज्रधर इन्द्र, तुम्हारे हर्ष की हम प्रशंसा करते हैं। वह मनोरथ-पूरक, संग्राम में शत्रुओं के लिए अभिभव-कर्त्ता, स्थान विधाता और हरि नामक अश्वों के द्वारा सेवनीय है।

५. इन्द्र जिस मद (हर्ष) के द्वारा ("आयु" और "मनु" के लिए सूर्य आदि ज्योतियों को तुमने प्रकाशित किया था, उसी हर्ष से प्रसन्न होकर तुम प्रवृद्ध यज्ञ के कर्त्ता हुए हो।

६. इन्द्र, प्राचीन समय के समान आज भी उक्थ मन्त्रों का उच्चारण करनेवाले तुम्हारे उस बल की प्रशंसा करते हैं। जिस जल के स्वामी पर्जन्य हैं, उसको तुम प्रतिदिन स्वाधीन करो।

७. इन्द्र, स्तुति तुम्हारे उस महान् वीर्य को और तुम्हारा बल तुम्हारे कर्म और वरणीय वज्र को तीक्ष्ण करते हैं।

८. इन्द्र, द्युलोक तुम्हारे बल को बढ़ाता है, पृथिवी तुम्हारे यश को वर्द्धित करती है। अन्तरिक्ष और मेघ तुम्हें प्रसन्न करते हैं।

९. इन्द्र महान् और निवास-कारण विष्णु, मित्र और वरुण तुम्हारी स्तुति करते हैं। मरुद्‌गण तुम्हारी मत्तता के अनन्तर मत्त होते हैं।

१०. तुम वर्षक और देवों में सर्वापेक्षा दाता हो। तुम सुन्दर पुत्रादि के साथ सारा धन धारण करते हो।

११. बहु-स्तुत इन्द्र तुम अकेले ही महान् शत्रुओं का विनाश करते हो। इन्द्र की अपेक्षा कोई भी अधिकतर कर्म (वृत्र-वधादि) नहीं कर सकता।

१२. इन्द्र, जिस युद्ध में तुम रक्षा के लिए स्तोत्र-द्वारा नाना प्रकार से स्तुत होते हो, उसी युद्ध में हमारे स्तोताओं-द्वारा आहूत होकर शत्रु-बल को जीतो।

११. स्तोता, हमारे महान् गृह के लिए पर्याप्त और परिव्याप्त रूप (इन्द्रगुण-जात) को स्तुति-द्वारा व्याप्त करते हुए कर्म-पालक (शचीपति) इन्द्र की, जीतने योग्य धन के लिए, स्तुति करो।

१६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि इरिम्बिठि। छन्द गायत्री।)

१. मनुष्यों के सम्राट् इन्द्र की स्तुति करो। इन्द्र स्तुति-द्वारा स्तुत्य, नेता, शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता और सर्वापेक्षा दाता हैं।

२. जैसे जल-तरङ्गें समुद्र में शोभा पाती हैं, वैसे ही उक्थ और सुनने योग्य हविष्मान् अन्न इन्द्र में शोभा पाते हैं।

३. मैं शोभन स्तुति-द्वारा, धन-प्राप्ति के लिए, उन इन्द्र की सेवा करता हूँ। इन्द्र प्रशस्ततम देवों में शोभा पाते हैं। संग्राम में महान् कार्य करते हैं। वे बली हैं।

४. इन्द्र का मद महान्, गम्भीर, विस्तीर्ण, शत्रु-तारक और शूरों के युद्ध में प्रसन्नता-युक्त है।

५. धन-लाभ होने पर उन्हीं इन्द्र को, पक्षपात के लिए, स्तोता लोग बुलाते हैं। जिनके इन्द्र हैं, वह जय प्राप्त करते हैं।

६. बलकर स्तोत्रों-द्वारा उन इन्द्र को ही ईश्वर बनाया जाता है। कर्म-द्वारा मनुष्य उन्हें ईश्वर बनाते हैं। इन्द्र ही धन के कर्त्ता होते हैं।

७. इन्द्र सबसे अधिक, ऋषि, बहुतों द्वारा आहूत हैं। वे महान् कार्यों (वृत्र-वधादि) के द्वारा महान् हैं।

८. वे इन्द्र स्तोत्र और आह्वान के योग्य हैं। वे साधु, शत्रुओं को अवसाद देनेवाले, बहुकर्मा और एक होने पर भी शत्रुओं के अभि-भविता हैं।

९. द्रष्टा और मनुष्य इन्द्र की पूजा-साधक (यजुर्वेदीय) मन्त्रों-द्वारा वर्द्धित करते हैं, गेय (सामवेदीय) मन्त्रों-द्वारा वर्द्धित करते हैं और उक्थ

या गायत्री आदि छन्दों से युक्त शस्त्र-रूप (ऋग्वेदीय) मन्त्रों-द्वारा वर्द्धित करते हैं।

१०. इन्द्र प्रशंसनीय धन के प्रापक, युद्ध में ज्योति के प्रकाशक और आयुध-द्वारा शत्रुओं के लिए अभिभवकर हैं।

११. इन्द्र पूरयिता और बहुतों द्वारा बुलाये गये हैं। इन्द्र हमें शत्रुओं से नौका-द्वारा निर्विघ्न पार लगावें।

१२. इन्द्र, तुम हमें बल-द्वारा धन प्रदान करो। हमारे लिए मार्ग प्रदान करो। हमारे सम्मुख सुख प्रदान करो।

१७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि इरिम्बिठि। छन्द गायत्री, बृहती और सतोबृहती।)

१. इन्द्र, आओ। तुम्हारे लिए सोम अभिषुत हुआ है। इस सोम को पियो। मेरे इस कुश के ऊपर बैठो।

२. इन्द्र, मन्त्रों-द्वारा योजित और केशवाले हरि नाम के अश्व तुम्हें ले आवें। तुम इस यज्ञ में आकर हमारे स्तोत्र को सुनो।

३. इन्द्र, हम स्तोता (ब्राह्मण) हैं। तुम्हें सोम स्तोत्र-द्वारा बुलाते हैं। हम सोम से युक्त और अभिषुत सोमवाले हैं। हम सोमपाता इन्द्र को बुलाते हैं।

४. इन्द्र, हम अभिषुत सोमवाले हैं। हमारे सामने आओ। हमारी सुन्दर स्तुतियों को जानो। शोभन शिरस्त्राणवाले इन्द्र, अन्न (सोम) भक्षण या पान करो।

५. इन्द्र, तुम्हारे दाहिने और बायें उदर को मैं सोम पूरण करता हूँ। वह सोम तुम्हारे गात्रों को व्याप्त करे। मधुर सोम को जीभ से ग्रहण करो।

६. इन्द्र, सुन्दर दानवाले तुम्हारे शरीर के लिए यह माधुर्य से युक्त सोम स्वादिष्ठ हो। यह सोम तुम्हारे हृदय के लिए सुख-जनक हो।

७. विशेष द्रष्टा (लोकपति) इन्द्र, स्त्री के समान संवृत (ढका हुआ) होकर यह सोम तुम्हारे पास जाय।

८. विस्तृत कन्धावाले, स्थूल उदरवाले और सुन्दर भुजावाले इन्द्र अन्न-रूप सोम की मत्तता होने पर वृत्र आदि शत्रुओं का विनाश करते हैं।

९. इन्द्र, बल के कारण तुम सारे संसार के स्वामी होकर हमारे आगे गमन करो। वृत्रघ्न इन्द्र, तुम शत्रुओं का वध करो।

१०. जिससे तुम सोम का अभिषव करनेवाले यजमान को धन देते हो, वह तुम्हारा अंकुश (आकर्षण करनेवाला आयुध) दीर्घ हो।

११. इन्द्र, तुम्हारे लिए यह सोम वेदी पर बिछे हुए कुश विशेष रूप से शोधित किया हुआ है। इस समय इस सोम के सम्मुख आओ। शीघ्र पास जाओ और पियो।

१२. शक्तिशाली गौओंवाले और प्रसिद्ध पूजावाले इन्द्र, तुम्हारे सुख के लिए सोम अभिषुत हुआ है। हे आखण्डल (शत्रु-खण्डयिता), उत्कृष्ट स्तुतियों के द्वारा तुम आहूत होते हो।

१३. हे शृङ्गवृषा नामक ऋषि के पुत्र इन्द्र, तुम्हारा जो उत्तम रक्षक कुण्डपायी यज्ञ (जिसमें कुण्ड में सोम पिया जाता है) है, उसमें ऋषियों ने मन लगाया है।

१४. गृहपति इन्द्र, गृहाधार स्तम्भ सुदृढ़ हो। हम सोम-सम्पादक हैं। हमारे कन्धे में रक्षा-समर्थ बल हो। क्षरण-शील सोमवाले और अनेक पुरियों को तोड़नेवाले इन्द्र ऋषियों के मित्र हों।

१५. सर्प के समान उच्च शिरवाले, याग-योग्य और गो-प्रापक इन्द्र अकेले होकर भी अनेक शत्रुओं को अभिभूत करते हैं। स्तोता मरण-शील और व्यापक इन्द्र को सोमपान के लिए हमारे सम्मुख ले आते हैं।

१८ सूक्त

(देवता अष्टम के अश्विद्वय, नवम के अग्नि, सूर्य और वायु तथा अवशिष्ट के आदित्य। ऋषि इरिम्बिठि छन्द उष्णिक्।)

१. इस समय आदित्यों के निकट मनुष्य अपूर्व सुख की याचना करे।

२. इन आदित्यों के मार्ग दूसरों के द्वारा नहीं गमन किये गये और अहिंसित हैं। फलतः वे पालक मार्ग सुख-वर्द्धक हैं।

३. हम जिस विस्तीर्ण सुख की याचना करते हैं, उसी सुख को सविता, भग, मित्र, वरुण और अर्यमा हमें प्रदान करो।

४. देवो, अहिंसित-पोषक और बहुतों द्वारा प्रीयमाणा अदिति, प्राज्ञ और सुखदाता देवों के साथ सुन्दर रूप से आगमन करो।

५. अदिति के वे मित्रादि पुत्रगण द्वेषियों को पृथक् करना जानते हैं। विस्तीर्ण कर्म-कर्त्ता और रक्षक लोग हमें पाप से अलग करना जानते हैं।

६. दिन में हमारे पशुओं की रक्षा अदिति (अखण्डनीया देवमाता) करें, सदा एक-सी रहनेवाली अदिति रात्रि में भी हमारे पशुओं की रक्षा करें। सदा वर्द्धनशील रक्षण-द्वारा हमें पाप से बचावें।

७. स्तुतियोग्य वे अदिति रक्षा के साथ दिन में हमारे पास आवें। वे शान्तिदाता सुख दें। वे बाधकों को दूर करें।

८. प्रख्यात देव-भिषक् अश्विनीकुमार हमें सुख दें। हमसे पाप को हटावें। शत्रुओं को दूर करें।

९. नाना गार्हपत्य आदि अग्नियों के द्वारा अग्निदेव हमारे रोग की शान्ति करें। सुखदाता होकर सूर्य तपें। पाप-ताप-शून्य होकर वायु बहें। शत्रुओं को दूर करें।

१०. आदित्यगण, हमसे रोग को दूर करो। शत्रुओं को भी दूर करो। दुर्गति को दूर करो। आदित्यगण हमें पापों से दूर रख।

११. आदित्यो, हमसे हिंसक को अलग करो। दुर्बुद्धि को हमसे दूर करो। सर्वज्ञ आदित्यो, शत्रुओं को हमसे पृथक् करो।

१२. शोभन-दान आदित्यो, तुम लोगों का जो सुख पापी स्तोता को भी पाप से मुक्त करता है, उसे ही हमें दो।

१३. जो कोई मनुष्य हमें राक्षस-भाव से मारना चाहता है, वह अपने ही कार्यों से हिंसित हो जाय। वह मनुष्य दूर हो।

१४. जो दुष्कीर्त्ति मनुष्य हमें मारनेवाला और कपटी है, उसे पाप व्याप्त करे।

१५. निवास-दाता आदित्यो, तुम परिपक्व-ज्ञान हो; इसलिए कपटी और अकपटी—दोनों प्रकार के मनुष्यों को तुम जानते हो।

१६. हम पर्वतीय और जलीय सुख का भजन करते हैं। द्यावापृथिवी, पाप को हमसे दूर देश में प्रेरित करो।

१७. वास-दाता आदित्यो, अपनी सुन्दर और सुखद नौका में हमें सारे पापों से पार कराओ।

१८. आदित्यो, तुम शोभन तेजवाले हो। हमारे पुत्र, पौत्र और जीवन के लिए दीर्घतम (खूब लम्बी) आयु दो।

१९. आदित्यो, हमारा किया हुआ यज्ञ तुम्हारे पास ही वर्त्तमान है। तुम हमें सुखी करो। तुम्हारा बंधुत्व प्राप्त करके हम सदा तुम्हारे ही रहेंगे।

२०. मरुतों के पालक इन्द्र, अश्विद्वय, मित्र और वरुणदेव के निकट प्रौढ़ और शीत, आतप आदि के निवारक गृह को मङ्गल के लिए, हम माँगते हैं।

२१. मित्र, अर्यमा, वरुण और मरुद्गण, तुम लोग हिंसा-शून्य, पुत्रादि-युक्त और स्तुत्य हो। शीत, आतप और वर्षा से निवारण करने-वाला घर हमें दो।

२२. आदित्यो, जो मनुष्य मरणासन्न अथवा मृत्यु के बन्धु हैं, उनके जीने के लिए उनकी आयु को बढ़ाओ।

१९ सूक्त

(देवता ३६-३७ का त्रसदस्यु राजा का दान; ३४-३५ के आदित्य, अवशिष्ट के अग्नि। ऋषि कण्व-गोत्रीय सोभरि। छन्द ककुप्, सतोबृहती, द्विपदा, विराट्, उष्णिक् और पङ्क्ति।)

१. स्तोता, प्रख्यात अग्नि की स्तुति करो। अग्नि स्वर्ग में हवि ले जानेवाले हैं। ऋत्विक् लोग स्वामी अग्निदेव के पास जाते हैं और देवों को पुरोडाशादि देते हैं।

२. मेधावी सोभरि, प्रभूत दानी, विचित्र-तेजस्वी, सोम साध्य, इस यज्ञ के नियन्ता और पुरातन अग्नि की, यज्ञ करने के लिए, स्तुति करो।

३. अग्नि, तुम याज्ञिकों में श्रेष्ठ, देवों में अतिशय दानादिगुण-युक्त, होता, अमर और इस यज्ञ के सुन्दर कर्त्ता हो। हम तुम्हारा भजन करते हैं।

४. अन्न के प्रदाता, शोभन-धन, सुन्दर प्रकाशक और प्रशस्य तेजवाले अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वे हमारे लिए द्योतमान देव-यज्ञ में मित्र और वरुण के सुख को लक्ष्य करके और जल देवता के सुख के लिए यज्ञ करें।

५. जो मनुष्य समिधा (पलाश आदि इन्धन) से अग्नि की परिचर्या करता है, जो आहुति (आज्य आदि से) अग्नि की परिचर्या करता है, जो वेदाध्ययन (ब्रह्मयज्ञ) से परिचर्या करता है और जो ज्योतिष्टोम आदि सुन्दर यज्ञों से युक्त होकर नमस्कार (चरु-पुरोडाश आदि) से अग्नि की परिचर्या करता है—

६. उसके ही व्यापक अश्व वेगवान् होते हैं, उसी का यश सबसे अधिक होता है तथा उसे देव-कृत और मनुष्य-विहित पाप नहीं व्याप्त करते।

७. हे बल के पुत्र और हवि आदि अन्नों के पति, हम तुम्हारे गार्हपत्यादि अग्नि-समूह के द्वारा शोभन अग्निवाले होंगे। शोभन वीरों से युक्त होकर तुम हमारी इच्छा करो।

८. प्रशंसक अतिथि के समान अग्नि स्तोताओं के हितैषी और रथ के समान फल-दाता हैं। अग्नि, तुममें समीचीन रक्षण है। तुम धन के राजा हो।

९. शोभन-धन अग्नि, जो मनुष्य यज्ञवाला है, वह सत्य फलवाला हो। वह श्लाघनीय हो और स्तोत्रों के द्वारा सम्भजन-परायण हो।

१०. अग्नि, जिस यजमान के यज्ञ-निष्पादन के लिए तुम ऊपर हो रहते हो, वह निवास-शील वीरों से (पुत्रादि से) युक्त होकर सारे कार्यों को सिद्ध कर डालता है। वह अश्वों-द्वारा की गई विजय को भोगता है। वह मेधावियों और शूरों के साथ सम्भजन-शील होता है।

११. संसार के स्वीकरणीय और रूपवान् (दीप्तिमान्) अग्नि जिस यजमान के गृह में स्तोत्र और अन्न को धारण करते हैं, उसके हव्य देवों को प्राप्त करते हैं।

१२. बल के पुत्र और वासद अग्नि, मेधावी स्तोता के दान में क्षिप्रकर्त्ता अभिज्ञाता के वचन को देवों के नीचे और मनुष्यों के ऊपर करो।

१३. जो यजमान हव्यदान और नमस्कार-द्वारा शोभन बलवाले अग्नि की परिचर्या करता है अथवा क्षिप्रगामी तेजवाले अग्नि की परिचर्या करता है, वह समृद्ध होता है।

१४. जो मनुष्य इन अग्नि के शरीरावयवों (गार्हपत्यादि) से अखण्डनीय अग्नि की, समिधा के द्वारा, परिचर्या करता है, वह कर्मों के द्वारा सौभाग्यवान् होकर द्योतमान यश के द्वारा, जल के समान, सारे मनुष्यों को लाँघ जाता है।

१५. अग्नि, जो धनगृह में राक्षस आदि को अभिभूत करता है और पाप-बुद्धि मनुष्य के क्रोध को दबाता है, वही धन ले आओ।

१६. अग्नि के जिस तेज के द्वारा वरुण, मित्र और अर्यमा ज्योति प्रदान करते हैं तथा अश्विनीकुमार और भग देवता जिसके द्वारा प्रकाश प्रदान करते हैं, हम बल के द्वारा सबसे अधिक स्तोत्रज्ञ होकर और इन्द्र के द्वारा रक्षित होकर, अग्निदेव, तुम्हारे उसी तेज की परिचर्या करते हैं।

१७. हे मेधावी और द्युतिमान् अग्नि, जो मेधावी ऋत्विक् मनुष्यों के साक्षि-स्वरूप और सुन्दर कर्मवाले तुम्हें धारण करते हैं, वे ही उत्तम ध्यानवाले होते हैं।

१८. शोभन-धन अग्नि, वे ही यजमान तुम्हारे लिए वेदी प्रस्तुत करते हैं, आहुति देते हैं, द्योतमान (सौत्य) दिन में सोमाभिषव करने के लिए उद्योग करते हैं, वे ही बल के द्वारा यथेष्ट धन प्राप्त करते हैं और वे ही तुममें अभिलाषा पाते हैं।

१९. आहूत अग्नि हमारे लिए कल्याणकर हों। शोभन-धन अग्नि, तुम्हारा दान हमारे लिए कल्याणकर हो। यज्ञ कल्याणकारी हो। स्तुतियाँ कल्याणमयी हों।

२०. संग्राम में मन कल्याणवाहक बने। इस मन के द्वारा तुम संग्राम में शत्रुओं को परास्त करो। अभिभव करनेवाले शत्रुओं के स्थिर और प्रभूत बल को पराजित करो। अभिगमन साधक स्तोत्रों के द्वारा हम तुम्हारा भजन करेंगे।

२१. प्रजापति के द्वारा आहित (स्थापित) अग्नि की मैं पूजा करता हूँ। वह सबसे अधिक यज्ञ करनेवाले, हव्य-वाहक तथा ईश्वर हैं और देवों के द्वारा दूत बनाकर भेजे गये हैं।

२२. तीक्ष्ण लपटोंवाले, चिर तरुण और शोभित अग्नि को लक्ष्य कर हवीरूप अन्न का गाना गाओ। प्रिय और सत्य वचनों से स्तुत तथा घृत-द्वारा आहूत होकर स्तोता को शोभन वीर्य दान करते हैं।

२३. घृत के द्वारा आहूत अग्नि जिस समय ऊपर और नीचे शब्द करते हैं, उस समय असुर (बली) सूर्य के समान अपने रूप को प्रकाशित करते हैं।

२४. मनु प्रजापति के द्वारा स्थापित और प्रकाशक जो अग्नि सुगंधि मुख के द्वारा देवों के पास हव्य को भेजते हैं, वे ही सुन्दर यज्ञवाले, देवों को बुलानेवाले, दीप्तिमान् और अमर अग्नि धन की परिचर्या करते हैं।

२५. बल के पुत्र, घृतहुत और अनुकूल दीप्तिवाले अग्नि, मैं मरण-धर्मा हूँ; तुम्हारी उपासना से मैं तुम्हारे समान अमर हो जाऊँ।

२६. वासक अग्नि, मिथ्यापवाद (हिंसा) के लिए तुमको मैं तिरस्कृत नहीं करूँगा। पाप के लिए तुम्हें नहीं तिरस्कृत करूँगा। मेरा स्तोता अयुक्त वचनों के द्वारा तुम्हारी अवहेलना नहीं करेगा। सम्भजनीय अग्नि, मेरा दुर्बुद्धि शत्रु न हो। वह पाप-बुद्धि-द्वारा मुझे बाधा न दे।

२७. जैसे पुत्र पिता के लिए करता है, वैसे ही पोषण-कर्त्ता अग्नि, यज्ञ-गृह में देवों के लिए हमारा हव्य प्रेरित करते हैं।

२८. वासक इन्द्र, निकट-वर्त्ती रक्षण के द्वारा मैं मनुष्य सदा तुम्हारी प्रसन्नता की सेवा करूँ।

२९. अग्नि, तुम्हारे परिचरण के द्वारा मैं तुम्हारा भजन करूँगा। हव्य-दान के द्वारा और प्रशंसा के द्वारा तुम्हारा भजन करूँगा। वासक अग्नि, तुम प्रकृष्टबुद्धि हो। लोग तुम्हें मेरा रक्षक कहते हैं। अग्नि, दान के लिए प्रसन्न होओ।

३०. अग्नि, तुम जिस यजमान की मैत्री करते हो, वह तुम्हारी वीर और अन्नपूर्ण रक्षा के द्वारा बढ़ता है।

३१. सोम से सिञ्चित, द्रवशील, मीढ़वान्, शब्दायमान, वसन्तादि ऋतुओं में उत्पन्न और दीप्तिशाली अग्नि, तुम्हारे लिए सोम गृहीत होता है। तुम विशाल उषाओं के मित्र हो। रात्रिकाल में तुम सारी वस्तुओं को प्रकाशित करते हो।

३२. रक्षण के लिए हम सोभरि लोग अग्नि को प्राप्त हुए हैं। अग्नि, बहु-तेजस्वी, सुन्दर रूप से आनेवाले सम्राट् और त्रसदस्यु-द्वारा स्तुत हैं।

३३. अग्नि, अन्य अग्नि (गार्हपत्यादि) वृक्ष की शाखा के समान तुम्हारे पास रहते हैं। मनुष्यों में मैं, तुम्हारे बल, स्तुति-द्वारा बढ़ाते हुए अन्य स्तोताओं के समान यश को प्राप्त करूँगा।

३४. द्रोह-शून्य और उत्तम दानवाले आदित्यो हविवाले, सभी लोगों के बीच जिसे तुम पार ले जाते हो, वह फल प्राप्त करता है।

३५. शोभा-संयुक्त और शत्रुओं के अभिभविता आदित्यो, मनुष्यों में घातक शत्रुओं को पराजित करो। वरुण, मित्र और अर्यमा, ये ही तुम्हारे यज्ञ के नेता होंगे।

३६. पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु ने मुझे पचास वधू दिये हैं। वे बड़े दानी, आर्य (स्वामी) और स्तोताओं के पालक हैं।

३७. सुन्दर निवासवाली नदी के तट पर श्यामवर्ण बैलों के नेता और पूज्य धन दान के योग्य २१० गायों के पति त्रसदस्यु ने धन और वस्त्र आदि दिये थे।

२० सूक्त

(देवता मरुद्गण। ऋषि सोभरि। छन्द ककुप् और बृहती।)

१. प्रस्थानवाले मरुद्गण, आगमन करो। हमें नहीं मारना। समान-तेजस्क होकर दृढ़ पर्वतों को भी कम्पित करते हो। हमें छोड़कर अन्यत्र नहीं रहना।

२. प्रकाशमान निवासवाले रुद्रपुत्रो (मरुतो), सुन्दर दीप्तिवाले रथ-नेमि (चक्र के डंडों) के रथ से आगमन करो। सबके अभिलषणीय मरुतो, सोभरि की (मेरी) अभिलाषा करते हुए, अन्न के साथ, आज हमारे यज्ञ में आओ।

३. हम कर्मवान् विष्णु और अभिलषणीय जल के सेवक रुद्रपुत्र मरुतों के उग्र बल को जानते हैं।

४. सुन्दर आयुध और दीप्तिवाले मरुतो, तुम लोग जिस समय कम्पन करते हो, उस समय सारे द्वीप पतित हो जाते हैं, स्थावर (वृक्षादि)

पदार्थ दुःख प्राप्त करते हैं, द्यावापृथिवी काँप जाते हैं, गमनशील जल बहता है।

५. मरुतो, तुम्हारे संग्राम में जाते समय न गिरनेवाले मेघ और वनस्पति आदि बार-बार शब्द करते हैं, पृथिवी काँपती है।

६. मरुतो, तुम्हारे बल के गमन के लिए द्युलोक विशाल अन्तरिक्ष को छोड़कर ऊपर भाग गया है। प्रचुर बलवाले और नेता मरुद्गण अपने शरीर में दीप्त आभरण धारण करते हैं।

७. प्रदीप्त, बलवान्, वर्षणरूप, अकुटिल और नेता मरुद्गण हवी-रूप अन्न के लिए महती शोभा धारण करते हैं।

८. सोभरि आदि ऋषियों के शब्द-द्वारा हिरण्मय रथ के मध्य देश में मरुतों की वीणा प्रकट हो रही है। गोमातृक, शोभन-जन्मा और महानुभाव मरुद्गण हमारे अन्न, भोग और प्रीति के लिए प्रवृत्त हों।

९. सोम-वर्ष के अध्वर्युओ, वृष्टिदाता मरुतों के बल के लिए हव्य ले आओ। इस बल के द्वारा वे सेचन करनेवाले और उत्तम गमनवाले होते हैं।

१०. नेता मरुद्गण सेचन-समर्थ, अश्व से युक्त, वृष्टिदाता के रूप से संयुक्त और वर्षक नाभि से सम्पन्न रथ पर, हव्य के पास, श्येन पक्षी के समान अनायास आगमन करें।

११. मरुतों का अभिव्यञ्जक आभरण एक ही प्रकार का है। प्रदीप्त सुवर्णमय हार उनके हृदय-देश में विराज रहा है। बाहुओं में आयुध अतीव प्रकाशित होते हैं।

१२. उग्र, वर्षक और उग्र बाहुओंवाले मरुद्गण अपने शरीर के रक्षण के लिए यत्न नहीं करते (आवश्यकता ही नहीं है)। मरुतो, तुम्हारे रथ पर आयुध और धनुष सुदृढ़ हैं। इसी लिए युद्ध-क्षेत्र में, सेना-मुख पर, तुम्हारी ही विजय होती है।

१३. जल के समान सर्वत्र विस्तीर्ण और दीप्त बहु-संख्यक मरुतों का नाम एक होकर भी, पैतृक दीर्घ स्थायी अन्न के समान, भोग के लिए, यथेष्ट होता है।

१४. उन मरुतों की वन्दना करो। उनके लिए स्तुति करो। आर्य-स्वामी के हीन सेवक के समान हम कम्पनोत्पादक मरुतों के हीन सेवक हैं। उनका दान महिमा से युक्त है।

१५. मरुतो, तुम्हारा रक्षण पाकर स्तोता बीते हुए दिनों में सुखी हुआ था। जो स्तोता है, वह अवश्य ही तुम्हारा है।

१६. नेता मरुतो, हव्य-भक्षण के लिए जिस हविष्मान् यजमान के हव्य के पास जाते हो, हे कम्पक मरुतो, वह तुम्हारे द्युतिमान् अन्न और अन्न-सम्भोग के द्वारा तुम्हारे सुख को चारों ओर व्याप्त करता है।

१७. रुद्र-पुत्र, असुर (वृष्टि जल अथवा बल) के कर्ता और नित्य तरुण मरुद्गण जिस प्रकार अन्तरिक्ष से आकर हमारी कामना करें, यह स्तोत्र वैसा ही हो।

१८. जो सुन्दर दानवाले यजमान मरुतों की पूजा करते हैं और जो इन सेचन-कर्ताओं को हव्य-द्वारा पूजित करते हैं, हम इन दोनों प्रकार के लोगों में समान हैं। हमारे लिए अतीव धनप्रद चित्त से आकर मिलो।

१९. सोभरि, नित्य तरुण, अतीव वृष्टि-दाता और पावक मरुद्गण का अतीव अभिनव वाक्यों-द्वारा, सुन्दर रूप से, उसी प्रकार स्तव करो, जिस प्रकार कृषक अपने बैलों की स्तुति करता है।

२०. सारे युद्धों में योद्धा लोगों के आह्वान करने पर मरुद्गण अभि-भवकर्त्ता होते हैं। आह्वान के योग्य मल्ल के समान सम्प्रति आह्लादकर, वर्षक तथा अतीव यशस्वी मरुतों की, शोभन वाक्यों के द्वारा स्तुति करो।

२१. समान-तेजस्क मरुतो, एक जाति होने के कारण समान बन्धु होकर गायें चारों ओर आपस में लेहन करती—चाटती—हैं।

२२. हे नर्तक और वक्षःस्थल में उज्ज्वल आभरण पहननेवाले मरुतो, मनुष्य भी तुम्हारे बन्धुत्व के लिए जाता है; इसलिए हमारे पक्ष से बात करो। सदा धारणीय यज्ञ में तुम्हारा बन्धुत्व सर्वदा ही रहता है।

२३. सुन्दर दानवाले, गमनशील और सखा मरुतो, मरुत्सम्बन्धी (अर्थात् अपना) औषध ले आओ।

२४. मरुतो, जिससे तुम समुद्र की रक्षा करते हो, जिससे यजमान के शत्रु की हिंसा करते हो और जिससे तृष्णज (गोतम) को कूप प्रदान किया था, हे सुखोत्पादक और शत्रु-शून्य मरुतो, उसी सब प्रकार का कल्याण करनेवाली रक्षा के द्वारा हमारे लिए सुख उत्पन्न करो।

२५. सुन्दर यज्ञवाले मरुतो, सिन्धु नद, चिनाव, समुद्र और पर्वत में जो औषध है—

२६. तुम वह सब औषध पहचानकर हमारी शरीर की चिकित्सा के लिए ले आओ। मरुतो, हममें से जिस प्रकार रोगी के रोग की शान्ति हो, उसी प्रकार बाधित अंग को जोड़ो (पूरा करो)।

प्रथम अध्याय समाप्त।

२१ सूक्त

(द्वितीय अध्याय। ४ अनुवाक। देवता इन्द्र। अन्त की दो ऋचाओं का चित्र राजा का दान। ऋषि कण्वपुत्र सोभरि। छन्द ककुप् और बृहती।)

१. अपूर्व इन्द्र, हम तुम्हें गुणी मनुष्य के समान सोम से पोषण करके रक्षा-प्राप्ति की कामना से संग्राम में विविध-रूप-धारी तुम्हें बुलाते हैं।

२. इन्द्र, अग्निष्टोम आदि यज्ञों की रक्षा के लिए हम तुम्हारे पास जाते हैं। इन्द्र शत्रुओं के अभिभवकर्त्ता, तरुण और उग्र हैं। वह हमारे अभिमुख आवें। हम तुम्हारे सखा हैं। इन्द्र, तुम भजनीय और रक्षक हो। हम तुम्हें वरण करते हैं।

३. अश्वपति, गोपालक, उर्वर-भूमि-स्वामी और सोमपति इन्द्र, आओ और सोमपान करो।

४. हम विप्र बन्धु-हीन हैं। तुम बन्धुवाले हो। हम तुमसे बन्धुता करेंगे। काम-वर्षक इन्द्र, तुम्हारे जो शारीरिक तेज हैं, उनके साथ सोम-पान के लिए आओ।

५. इन्द्र, दुग्धादि मिश्रित, मदकर और स्वर्ग लाभ के कारण तुम्हारे सोम में हम पक्षियों के सदृश रहकर तुम्हारी ही स्तुति करते हैं।

६. इन्द्र, इस स्तोत्र के साथ तुम्हारे सामने तुम्हारी ही स्तुति करेंगे। तुम बार-बार क्यों चिन्ता करते हो? हरि अश्वोंवाले इन्द्र, हमें पुत्र-पशु आदि की अभिलाषा है। तुम धनादि के दाता हो। हमारे कर्म तुम्हारे ही पास हैं।

७. इन्द्र, तुम्हारे रक्षण में हम नये ही रहेंगे। वज्रधर इन्द्र, पहले हम तुम्हें सर्वत्र व्याप्त नहीं जानते थे। इस समय तुम्हें जानते हैं।

८. बली इन्द्र, हम तुम्हारी मैत्री जानते हैं। तुम्हारा भोज्य भी जानते हैं। वज्री इन्द्र, हम तुमसे मैत्री और भोज्य (धन) माँगते हैं। सबको निवास देनेवाले और सुन्दर शिरस्त्राणवाले इन्द्र, गौ आदि से युक्त सारे धनों में हमें तीक्ष्ण करो।

९. मित्र ऋत्विको और यजमानो, जो इन्द्र, पूर्व समय में, यह सारा धन हमारे लिए ले आये थे, उन्हीं इन्द्र की, तुम्हारी रक्षा के लिए, मैं स्तुति करता हूँ।

१०. हरितवर्ण अश्ववाले, सज्जनों के पति, शत्रुओं को दबानेवाले इन्द्र की स्तुति वही मनुष्य करता है, जो तृप्त होता है। वे धनी इन्द्र सौ गायें और सौ अश्व हम स्तोताओं के लिए लाये थे।

११. अभीप्सित फलवाला इन्द्र, तुम्हें सहायक पाकर गोयुक्त मनुष्यों के साथ संग्राम में अतीव क्रुद्ध शत्रु को हम निवारित करेंगे।

१२. बहुतों के द्वारा बुलाने योग्य इन्द्र, हम संग्राम में हिंसकों को जीतेंगे। हम पाप-बुद्धियों को हरावेंगे। मरुतों की सहायता से हम वृत्र का वध करेंगे। हम अपने कर्म बढ़ावेंगे। इन्द्र, हमारे सारे कर्मों की रक्षा करो।

१३. इन्द्र, जन्म-काल से ही तुम शत्रु-शून्य हो और चिर काल से बन्धु-हीन हो। जो मैत्री तुम चाहते हो, उसे केवल युद्ध-द्वारा प्राप्त करते हो।

१४. इन्द्र, बन्धुता के लिए केवल धनी (अयाज्ञिक) मनुष्य को क्यों नहीं आश्रित करते? इसलिए कि अयाज्ञिक मनुष्य सुरा (मद्य) पान करके प्रमत्त होते और तुम्हारी हिंसा करते हैं। जिस समय तुम स्तोता को अपना समझकर धन आदि देते हो, उस समय वह तुम्हें पिता समझकर बुलाता है।

१५. इन्द्र, तुम्हारे समान देवता के बन्धुत्व से वञ्चित होकर हम सोमाभिषव-शून्य न होने पावें। सोमाभिषव होने पर हम एकत्र उपवेशन करेंगे।

१६. गोदाता इन्द्र, हम तुम्हारे हैं। हम धन-शून्य न होने पावें। हम दूसरे के पास से धन न ग्रहण करें। तुम स्वामी हो। हमारे पास तुम दृढ़ धन दो। तुम्हारे दान की कोई हिंसा नहीं कर सकता।

१७. मैं हव्यदाता हूँ। क्या इन्द्र ने मुझे (सोभरि को) यह दान दिया है? अथवा शोभन-धना सरस्वती ने दिया है? अथवा हे चित्र (चित्र राजा नामक यजमान), तुमने ही दिया है?

१८. जैसे मेघ वृष्टि-द्वारा पृथिवी को प्रसन्न करता है, वैसे ही सरस्वती नदी के तीर पर रहनेवाले अन्य राजाओं को सहस्र और अयुत (दश-सहस्र) धन देकर चित्र राजा उन्हें प्रसन्न करते हैं।

२२ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि कण्व-पुत्र सोभरि। छन्द ककुप्, बृहती और अनुष्टुप्।)

१. अश्विद्वय, तुम सुन्दर आह्वानवाले और स्तूयमान मार्गवाले हो। सूर्या को वरण करने के लिए तुम लोग जिस रथ पर चढ़े थे, आज, रक्षा के लिए, उसी दर्शनीय रथ को बुलाता हूँ।

२. सोभरि, कल्याणवाहिनी स्तुतियों के द्वारा इस रथ की स्तुति करो। यह रथ प्राचीन स्तोताओं का पोषक, युद्ध में शोभन आह्वान-

वाला, बहुतों के द्वारा अभिलषणीय, सबका रक्षक, संग्राम में अग्रगामी, सबका भजनीय, शत्रुओं का विद्वेषी और पाप-रहित है।

३. शत्रुओं के विजेता, प्रकाशमान और हव्यदाता यजमान के गृहपति अश्विद्वय, इस कर्म में रक्षा के लिए नमस्कार-द्वारा हम तुम्हें अपने अभिमुख करेंगे।

४. अश्विद्वय, तुम्हारे रथ का एक चक्र स्वर्गलोक तक जाता है और दूसरा तुम्हारे साथ जाता है। सारे कार्यों के प्रेरक और जलपति अश्विनीकुमारो, तुम्हारी मंगलमयी बुद्धि, धेनु के समान, हमारे पास आवे।

५. अश्विद्वय, तीन प्रकार के सारथि-स्थानोंवाला और सोने का लगामवाला तुम्हारा प्रसिद्ध रथ द्यावापृथिवी को अपने प्रकाश से अलङ्कृत करता है। नासत्यद्वय तुम लोग पूर्वोक्त रथ से आओ।

६. अश्विद्वय, द्युलोक (स्वर्ग) में स्थित प्राचीन जल को मनु के लिए देकर तुमने लाङ्गल (हल) से यव (जौ) की खेती की थी या मनुष्यों को कृषि-कार्य की शिक्षा दी थी। जल-पालक अश्विद्वय, आज सुन्दर स्तुति द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

७. अन्न और धनवाले अश्विद्वय, यज्ञ-मार्ग से हमारे पास आओ। धन को सेचन अथवा दान करनेवाले अश्विद्वय, इसी मार्ग से तुमने त्रसदस्यु के पुत्र तृक्षि को प्रचुर धन देकर तृप्त किया था।

८. नेता और वर्षणशील धनवाले अश्विद्वय, तुम्हारे लिए पत्थरों से यह सोम अभिषुत हुआ है। सोम-पान के लिए आओ और हव्य-प्रदाता के घर में सोम पियो।

९. वर्षणशील धनवाले अश्विद्वय, सोने के लगाम आदि से सम्पन्न, आयुधों के कोश और रमणशील रथ पर चढ़ो।

१०. जिन रक्षणों से तुमने पक्थ राजा की रक्षा की थी, जिनसे अध्रिगु राजा की रक्षा की थी और जिनसे बभ्रु राजा को सोमपान-द्वारा प्रसन्न किया था, उन्हीं रक्षणों के साथ बहुत ही शीघ्र हमारे पास आओ और रोगी की चिकित्सा करो।

११. हम स्वकर्म में शीघ्रताकारी और मेधावी हैं। अश्विद्वय, तुम लोग युद्ध में शत्रु-वध के लिए शीघ्रकर्त्ता हो। दिन के इस प्रातःकाल में स्तुति द्वारा हम तुम्हें बुलाते हैं।

१२. वर्षणशील अश्विद्वय, विविध-रूप, समस्त देवों के द्वारा वरणीय मेरे इस आह्वान के अभिमुख, उन सारी रक्षाओं के साथ आओ। तुम लोग हवि के अभिलाषी, अतीव धनद और युद्ध में अनेक शत्रुओं के अभिभविता हो। जिन रक्षणों से तुमने कूप को वर्द्धित किया है, उनके साथ पधारो।

१३. उन अश्विद्वय को इस प्रातःकाल में अभिवादन करता हुआ मैं उनकी स्तुति करता हूँ। उन्हीं दोनों के पास स्तोत्र-द्वारा धनादि की याचना करता हूँ।

१४. वे जल-पालक और युद्ध में स्तूयमान मार्ग हैं। रात्रि, उषःकाल और दिन में सदा हम अश्विद्वय को बुलाते हैं। अन्न और धन अश्विद्वय, शत्रु के हाथ में हमें नहीं देना।

१५. अश्विद्वय, तुम सेचन-शील हो। मैं सुख के योग्य हूँ। प्रातःकाल में मेरे लिए रथ से सुख ले आओ। मैं सोभरि हूँ। अपने पिता के समान ही तुम्हें बुलाता हूँ।

१६. मन के समान शीघ्रगामी, धन-वर्षक, शत्रु-नाशक और अनेकों के रक्षक अश्विद्वय, शीघ्र-गामिनी और विविधा रक्षाओं के साथ, हमारी रक्षा के लिए, पास में आओ।

१७. अश्विद्वय, तुम अतीव सोमपाता, नेता और दर्शनीय हो। हमारे यज्ञ-मार्ग को अश्व, गौ और सुवर्ण से युक्त करके, आओ।

१८. जिसका दान सुन्दर है, जिसका वीर्य सुन्दर है, जिसका सुन्दर रूप सबके लिए वरणीय है और जिसे बली पुरुष भी अभिभूत नहीं कर सकता, ऐसा ही धन हम धारण करते हैं। अन्न और धन (बलयुक्त धनी) अश्विद्वय, तुम्हारा आगमन होने पर हम सारा धन प्राप्त करेंगे।

२३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि व्यश्व के पुत्र विश्वमना। छन्द उष्णिक्।)

१. शत्रुओं के विरुद्ध गमन करनेवाले अग्नि हैं। उन्हीं की स्तुति करो। जिनका धूम-जाल चारों ओर फैलता है, जिनकी दीप्ति को कोई पकड़ नहीं सकता और जो जात-प्रज्ञ हैं, उन अग्नि की पूजा करो।

२. सर्वार्थ-दर्शक "विश्वमना" ऋषि, मात्सर्य-शून्य यजमान के लिए रथादि के दाता अग्नि की, वाक्य-द्वारा, स्तुति करो।

३. शत्रुओं के बाधक और ऋचाओं-द्वारा अर्चनीय अग्नि जिनके अन्न और सोमरस को ग्रहण करते हैं, वे धन प्राप्त करते हैं।

४. अतीव दीप्तिमान्, ताप-दाता, दण्ड-सम्पन्न, शोभन दीप्तिवाले और यजमानों के आश्रित अग्नि का राज-शून्य तथा अभिनव तेज उठ रहा है।

५. शोभनयज्ञ अग्नि, सामने विशाल दीप्ति से दीपनशील और स्तूयमान तुम शीतमाना ज्वाला के साथ उठो।

६. अग्नि, तुम हव्य-वाहक दूत हो; इसलिए देवों को हव्य देते हुए सुन्दर स्तोत्र के साथ जाओ।

७. मनुष्यों के होम-सम्पादक और पुरातन अग्नि को मैं बुलाता हूँ। इस सूक्त-रूप वचन-द्वारा उन अग्नि की मैं प्रशंसा करता हूँ। तुम्हारे ही लिए उन अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।

८. बहुविध प्रज्ञावाले, मित्र और तृप्त अग्नि की कृपा से यज्ञ और सामर्थ्य से यज्ञवाले यजमान की मनःकामना पूर्ण होती है।

९. यज्ञाभिलाषियो, यज्ञ के साधन और यज्ञवाले अग्नि की, हव्यवाले यज्ञ में, स्तुति-वाक्य-द्वारा, सेवा करो।

१०. हमारे नियत यज्ञ अङ्गिरावाले अग्नि के अभिमुख जायँ। ये मनुष्यों में होम-निष्पादक और अतीव यशस्वी हैं।

११. अजर अग्नि, तुम्हारी दीप्यमान और महान् रश्मियाँ काम-वर्षक होकर अश्व के समान बल प्रकट करती हैं।

१२. अन्न-पति अग्नि, हमारे लिए तुम शोभन वीर्यवाला धन दो। हमारे पुत्र और पौत्र के पास जो धन है, उसे युद्ध-काल में बचाओ।

१३. मनुष्य-रक्षक और तीक्ष्ण अग्नि प्रसन्न होकर जभी मनुष्य के गृह में अवस्थित होते हैं, तभी वह सारे राक्षसों को विनष्ट करते हैं।

१४. हे वीर और मनुष्य-पालक अग्नि, हमारे नये स्तोत्र को सुनकर मायावी राक्षसों को तापक तेज के द्वारा जलाओ।

१५. जो मनुष्य हव्यदाता ऋत्विकों के द्वारा अग्नि को हव्य प्रदान करता है, उसको मनुष्य-शत्रु माया-द्वारा भी वश में नहीं कर सकता।

१६. अपने को धन का वर्षक बनाने की इच्छा से व्यश्व नामक ऋषि ने तुम्हें प्रसन्न किया था; क्योंकि तुम धनद हो। हम भी महान् धन के लिए उन अग्नि को जलाते हैं।

१७. यज्ञशील और जातप्रज्ञ काव्य (कविपुत्र = उशना ऋषि) ने मनु के घर में तुम्हें होता के रूप से बैठाया था।

१८. अग्नि, समस्त देवों ने मिलकर तुम्हें ही दूत नियुक्त किया था। देव अग्नि, तुम देवों में मुख्य हो। तुम उसी समय यज्ञ-योग्य हो गये थे।

१९. अमर, पवित्र, धूम्र-मार्ग और तेजस्वी इन अग्नि को वीर वा समर्थ मनुष्य ने दूत बनाया था।

२०. स्रुक् ग्रहण करके हम सुन्दर दीप्तिवाले, शुभ्रवर्ण, तेजस्वी, मनुष्यों के लिए स्तवनीय और अजर अग्नि को हम बुलाते हैं।

२१. जो मनुष्य हव्य-दाता ऋत्विकों के द्वारा अग्नि को आहुति देता है, वह प्रचुर पोषक और वीर पुत्र, पौत्र आदि से युक्त अन्न प्राप्त करता है।

२२. देवों में मुख्य, जात-प्रज्ञ और प्राचीन अग्नि के पास हव्य-युक्त स्रुक् नमस्कार के साथ अग्नि के पास आता है।

२३. व्यश्व के समान स्तुति-द्वारा प्रशस्यतम, पूज्यतम और शुभ्र दीप्ति से युक्त अग्नि की, हम, परिचर्या करते हैं।

२४. व्यश्व-पुत्र "विश्वमना" ऋषि, "स्थूलयूप" नामक ऋषि के समान तुम यजमान के गृह में उत्पन्न और विशाल अग्नि की, स्तोत्र द्वारा, पूजा करो।

२५. मेधावी (विप्र) यजमान मनुष्यों के अतिथि और वनस्पति के पुत्र तथा प्राचीन अग्नि की, रक्षण के लिए, स्तुति करते हैं।

२६. अग्नि, समस्त प्रधान स्तोताओं के सामने तुम कुश के ऊपर बैठो. तुम स्तुति के योग्य हो। मनुष्य-प्रदत्त हव्य को स्वीकार करो।

२७. अग्नि, वरणीय प्रचुर धन हमें दो। बहुतों द्वारा अभिलषणीय तथा सुन्दर वीर्यवाले पुत्र, पौत्र आदि के साथ, कीर्त्ति से युक्त, धन हमें दो।

२८. तुम वरणीय, वासदाता और युवक हो। जो सुन्दर साम-गान करते है, उनको लक्ष्य करके सदा धन आदि भेजो।

२९. अग्नि तुम अतिशय दाता हो। पशु से युक्त अन्न और महाधन के बीच देने योग्य धन हमें प्रदान करो।

३०. अग्नि, तुम देवों में यशस्वी हो; इसलिए तुम सत्यवान्, भली भाँति विराजमान और पवित्र बल से युक्त मित्र और वरुण को इस कर्म में ले आओ।

२४ सूक्त

(देवता इन्द्र। अन्तिम तीन मन्त्रों के देवता सुषाम राजा के पुत्र वरु का दान। ऋषि व्यश्व-पुत्र वैयश्व। छन्द उष्णिक्।)

१. मित्र ऋत्विको, वज्रधर इन्द्र के लिए हम इस स्तोत्र को करेंगे। तुम लोगों के लिए संग्रामों में आयुधों के नेता और शत्रुओं के धर्षक इन्द्र के लिए मैं स्तुति करूँगा।

२. इन्द्र, तुम बल के द्वारा विख्यात हो। वृत्रासुर का वध करने के कारण तुम वृत्र-हन्ता हुए हो। तुम शूर हो। धन-द्वारा धनवान् व्यक्ति को अधिक धन देते हो।

३. इन्द्र, तुम हमारे द्वारा स्तुत किये जाने पर नानाविध अन्नों से युक्त धन हमें प्रदान करो। अश्ववाले इन्द्र, तुम निर्गमन-समय में ही शत्रुओं के वासदाता और दाता होते हो।

४. इन्द्र, हमारे लिए तुम धन प्रकाशित करो। शत्रु-नाशक, स्तूयमान होकर तुम धृष्ट मन के साथ वही धन हमें दो।

५. अश्ववाले इन्द्र, गौओं के खोजने के समय तुम्हारे प्रति योद्धा लोग तुम्हारा बाँया और दाहिना हाथ नहीं हटा सकते। प्रतिरोधक वृत्र आदि भी तुम्हारे हाथों को नहीं हटा सकते—तुम अबाधित हो।

६. वज्रधर इन्द्र, स्तुति-वचनों के द्वारा तुम्हें में प्राप्त होता हूँ। इसी प्रकार से लोग गौओं के साथ गोष्ठ को प्राप्त होते हैं।

७. इन्द्र, तुम वृत्रादि के सर्व-श्रेष्ठ विनाशक हो। हे उग्र, वासदाता और नेता इन्द्र, विश्वमना नामक ऋषि के सारे स्तोत्रों में उपस्थित होना।

८. वृत्रघ्न, शूर और अनेकों के द्वारा बुलाये जाने योग्य इन्द्र, नवीन, स्पृहणीय और सुखादि का साधक धन हम प्राप्त करेंगे।

९. सबको नचानेवाले इन्द्र, तुम्हारे बल को शत्रु लोग नहीं दबा सकते। बहुतों के द्वारा बुलाये गये इन्द्र, हव्यदाता को जो तुम दान करते हो, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता।

१०. अत्यन्त पूजनीय और नेताओं में श्रेष्ठ इन्द्र, महान् धन के लाभ के लिए अपने उदर को सोम-द्वारा सींचो। धनी इन्द्र, धन-प्राप्ति के लिए तुम सुदृढ़ शत्रु-पुरियों को विनष्ट करो।

११. वज्री और धनी इन्द्र, हम लोगों ने तुमसे पहले अन्य देवों के निकट आशायें की थीं; (परन्तु निष्फल)। इस समय तुम हमें धन और रक्षण दो।

१२. नचानेवाले और स्तोत्र-पात्र इन्द्र, अन्न-प्रकाशक यज्ञ और बल के लिए तुम्हारे सिवा अन्य किसी को नहीं जानता हूँ।

१३. इन्द्र के लिए ही तुम सोम-सिञ्चन करो (सोम चुआओ)। इन्द्र सोममय मधु (रस) पियें। वह अपने महत्त्व और अन्न के साथ धनादि भेजते हैं।

१४. अश्वों के अधिपति इन्द्र की मैं स्तुति करूँ। वे अपना वर्द्धक बल दूसरे को देते हैं। स्तोता व्यश्व ऋषि के पुत्र की (मेरी) स्तुति सुनो।

१५. इन्द्र, प्राचीन समय में तुमसे अधिक धनी, समर्थ, आश्रयदाता और स्तुति-युक्त कोई नहीं उत्पन्न हुआ।

१६. ऋत्विक्, तुम मदकर सोम-रूप अन्न के अतीव मदकर अंश (सोमरस) का, इन्द्र के लिए, सेचन करो। इन वीर और सदा वर्द्धनशील इन्द्र की ही लोग स्तुति करते हैं।

१७. हरि नामक अश्वों के स्वामी इन्द्र, तुम्हारी पहले की की गई स्तुतियों को कोई बल अथवा धन के कारण नहीं लाँघ सकता।

१८. अन्नाभिलाषी होकर हम, जिन यज्ञों में ऋत्विक्गण प्रमत्त नहीं होते, उन्हीं यज्ञों के द्वारा, दर्शनीय अन्नपति इन्द्र को बुलाते हैं।

१९. मित्रभूत ऋत्विकों, तुम शीघ्र आओ। हम स्तुति-योग्य नेता इन्द्र की स्तुति करेंगे। यह इन्द्र अकेले ही सारी शत्रु-सेना को अभिभूत करते हैं।

२०. ऋत्विकों, जो इन्द्र स्तुति को नहीं रोकते, स्तुति की अभिलाषा करते हैं, उन्हीं दीप्तिशाली इन्द्र के लिए घृत और मधु से भी स्वादु और अत्यन्त मीठा वचन कहो।

२१. जिन इन्द्र के वीर-कर्म असीम हैं, जिनके धन को शत्रु नहीं पा सकते और जिनका दान, ज्योति (अन्तरिक्ष) के समान, सारे स्तोताओं को व्याप्त करता है—

२२. उन्हीं न मारने योग्य, बली और स्तोताओं के द्वारा नियन्त्रित इन्द्र की, व्यश्व ऋषि के समान, स्तुति करो। स्वामी इन्द्र हव्यदाता को प्रशस्त गृह देते हैं।

२३. व्यश्व के पुत्र विश्वमना, मनुष्य के दसवें प्राण इन्द्र हैं; इसलिए अभिनव, विद्वान् तथा सदा नमस्कार के योग्य इन्द्र की स्तुति करो।

२४. जैसे आदित्य प्रतिदिन पक्षियों का उड़ना जानते हैं, वैसे ही, हे वज्रहस्त इन्द्र, तुम निर्ऋतियों (राक्षसों) का गमन समझते हो।

२५. अतीव दर्शनीय इन्द्र, कर्मनिष्ठ यजमान के लिए हमें अपना आश्रय दो। कुत्स नामक राजर्षि के लिए तुमने दो प्रकार से शत्रुओं का वध किया है। हमें वही रक्षा दो।

२६. अतीव दर्शनीय इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो। देने के लिए तुमसे हम धन की याचना करते हैं। तुम हमारी सारी शत्रु-सेना के अभिभव-कर्त्ता हो।

२७. जो इन्द्र राक्षस-विहित पाप से मुक्त करते हैं और जो सिन्धु आदि सातों नदियों के तट पर वर्त्तमान यजमानों के पास धन भेजते हैं, वही तुम, हे बहु-धनी इन्द्र, असुर शत्रु के वध के लिए अस्त्र नीचे करो।

२८. वरु राजा, अपने "पितर" सुषामा राजा के लिए प्राचीन समय में जैसे तुमने याचकों को धन दिया था, वैसे ही इस समय व्यश्वों (हम लोगों) को दो। शोभन धनवाली और अन्नवाली उषा, तुम भी धन दो।

२९. मनुष्यों के हितैषी और सोमवाले यजमान (वरु) की दक्षिणा सोम से युक्त व्यश्व-पुत्रों (हम लोगों) के पास आवे। सौ और हजार स्थूल धन हमारे पास आवें।

३०. उषादेवी, जो तुमसे पूछते हैं कि "वरु कहाँ रहते हैं", वे अप्र-जिज्ञासु हैं। यदि तुमसे कोई पूछे कि "कहाँ", तो सबके आश्रय-स्थल और शत्रु-निवारक यह वरु राजा गोमती के तट पर रहते हैं—ऐसा कहना।

२५ सूक्त

(देवता १०-१२ तक विश्वदेवगण, अवशिष्ट के मित्र और वरुण। व्यश्व के पुत्र वैयश्व (विश्वमना) ऋषि। छन्द उष्णिक् और उष्णिग्गर्भा।)

१. समस्त संसार के रक्षक मित्र और वरुण, देवों में तुम भजनीय हो। हविः-प्रदान के लिए तुम यजमान का आश्रय करो। अश्वज, धनवान् और विशुद्ध बलवाले मित्र और वरुण का यज्ञ करो।

२. शोभन-कर्मा जो मित्र और वरुण धन और रथवाले हैं, वे बहुत समय से सुन्दर-जन्मा और अदिति के पुत्र तथा धृत-व्रत हैं।

३. महती और सत्यवती अदिति ने सर्वधनशाली और तेजस्वी उन्हीं मित्र तथा वरुण को असुर-हनन-बल के लिए उत्पन्न किया है।

४. महान्, सम्राट्, बली (असुर) और सत्यवान् मित्र और वरुण महान् यज्ञ का प्रकाशन करते हैं।

५. महान् बल के पौत्र, वेग के पुत्र, सुकर्मा और प्रचुर धन देनेवाले मित्र और वरुण अन्न के निवास-स्थान में रहते हैं।

६. मित्र और वरुण, तुम लोग धन तथा दिव्य और पृथिवी पर उत्पन्न अन्न देते हो। जलवती वृष्टि तुम्हारे पास रहे।

७. मित्र और वरुण, तुम सत्यवान्, सम्राट् और हव्य-प्रिय हो। तुम लोग प्रसन्न करने के लिए देवों को उसी प्रकार देखते हो, जिस प्रकार गो-यूथ को वृषभ देखता है।

८. सत्यवान् और सुन्दर-कर्मा मित्र और वरुण साम्राज्य के लिए बैठें। धृत-व्रत और बली (क्षत्रिय) मित्र और वरुण बल (क्षत्र) को व्याप्त करें।

९. नेत्र होने के प्रथम ही प्राणियों को जाननेवाले, सबके प्रेरक और चिरन्तन मित्र तथा वरुण दुःसह तेजोबल से शोभित हुए।

१०. अदिति देवी हमारी रक्षा करें। अश्विद्वय रक्षा करें। अत्यन्त वेगशाली मरुद्गण रक्षा करें।

११. शोभन दानवाले मरुतो, तुम लोग अहिंसित हो। तुम लोग दिन-रात हमारी नौका की रक्षा करो। हम तुम्हारे पालन से इकट्ठे होंगे।

१२. हम अहिंसित होकर हिंसा-शून्य सुदाता विष्णु की स्तुति करेंगे। अकेले ही युद्ध-कर्त्ता विष्णु, तुम स्तोताओं को धन देनेवाले हो। जिसने यज्ञ प्रारम्भ किया है, उसकी स्तुति सुनो।

१३. हम श्रेष्ठ, सबके रक्षक और वरणीय धन आश्रित करते हैं। मित्र, वरुण और अर्यमा इस धन की रक्षा करते हैं।

१४. हमारे धन की रक्षा पर्जन्य (मेघ) करें; मरुद्गण और अश्विद्वय भी रक्षा करें; इन्द्र, विष्णु और समस्त अभीष्टवर्षक देवता मिलकर रक्षा करें।

१५. वे देव पूज्य और नेता हैं। जैसे वेगशाली जल वृक्ष को उखाड़ फेंकता है, वैसे ही वे देव शीघ्रगामी होकर जिस किसी भी शत्रु के प्रतिकूल होकर उसका विनाश कर डालते हैं।

१६. लोकपति मित्र बहु-संख्यक प्रधान द्रव्यों को, अपने तेज से, इसी प्रकार देखते हैं। मित्र और वरुण में से हम तुम्हारे लिए मित्र के व्रत को करते हैं।

१७. हम साम्राज्य-सम्पन्न वरुण के गृह को प्राप्त करेंगे। अतीव प्रसिद्ध मित्र के व्रत को भी प्राप्त करेंगे।

१८. जो मित्र स्वर्ग और संसार के अन्त को, अपनी रश्मि से, प्रकाशित करते हैं, अपनी महिमा से इन दोनों को पूर्ण भी करते हैं।

१९. सुन्दर वीर्यवाले मित्र और वरुण प्रकाशक आदित्य के स्थान (आकाश) में अपनी ज्योति को विस्तृत करते हैं। पश्चात् अग्नि के समान शुभ्रवर्ण और सबके द्वारा आहूत होकर अवस्थान करते हैं।

२०. स्तोता, विस्तृत गृहवाले यज्ञ में मित्रावरुण की स्तुति करो। वरुण पशु-युक्त अन्न के ईश्वर हैं और महाप्रसन्नताकारक अन्न देने में भी समर्थ हैं।

२१. मैं मित्र और वरुण के उस तेज और द्यावापृथिवी की दिन-रात स्तुति करता हूँ। वरुण, सदा हमें दाता (दान) के अभिमुख करो।

२२. उक्ष-गोत्र में उत्पन्न और सुषामा के पुत्र वरु राजा के दान में प्रवृत्त होने पर सरलगामी, रजत के समान और अश्वों से युक्त रथ हमको मिला था। सुषामा के पुत्र का रथ शत्रुओं के जीवन और ऐश्वर्य आदि का हरण करता है।

२३. हरित-वर्ण अश्वों के संघ में शत्रुओं के लिए अतीव बाधक तथा कुशल व्यक्तियों में मनुष्यों के वाहक दो अश्व, वरु राजा-द्वारा, हमारे लिए शीघ्र प्रदत्त हों।

२४. अभिनव स्तुति-द्वारा स्तव करते हुए शोभन रज्जुवाले, कशा (चाबुक) वाले, सन्तोषक और शीघ्र-गमन दो (सुषामा के पुत्र वरु के) अश्वों को मैं प्राप्त करूँ।

२६ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। २०-२४ तक के वायु। ऋषि अङ्गिरोगोत्रीय व्यश्व के पुत्र वैयश्व वा विश्वमना। छन्द गायत्री, अनुष्टुप और उष्णिक्।)

१. अहिंसित-बल, वर्षक और धनशाली अश्विद्वय, तुम्हारे बल की कोई हिंसा नहीं कर सकता। स्तोताओं के बीच तुम्हारे एकत्र और शीघ्र-गमन के लिए रथ को बुलाता हूँ।

२. सत्य-स्वरूप, अभिलाष-प्रद और धनशाली अश्विद्वय, सुषामा राजा के लिए महाधन देने के निमित्त तुम लोग जैसे आते थे, वैसे ही रक्षा के साथ आगमन करो। वरु, तुम इस बात को कहो।

३. अन्न, धन और बहुत अन्नवाले अश्विद्वय, आज प्रातःकाल होने पर तुम्हें हम हव्य-द्वारा बुलावेंगे।

४. नेता अश्विद्वय, सबसे अधिक ढोनेवाला और तुम्हारा प्रसिद्ध रथ आगमन करे। क्षिप्र-स्तोता को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए उसके सारे स्तोत्रों को जानो।

५. अभिलाषा-दाता और धनी अश्विद्वय, कुटिल कार्य-कर्त्ता शत्रुओं को सामने उपस्थित जानो। तुम लोग रुद्र हो। द्वेषी शत्रुओं को क्लेश प्रदान करो।

६. सबके दर्शनीय, कर्म-प्रीतिकर, मदकर कान्तिवाले और जल-पोषक अश्विद्वय, तुम लोग शीघ्रगामी अश्वों के द्वारा समस्त यज्ञ के प्रति आगमन करो।

७. अश्विद्वय, विश्व-पालक धन के साथ हमारे यज्ञ में आओ। तुम लोग धनी, शूर और अजेय हो।

८. इन्द्र और नासत्यद्वय (अश्विद्वय), तुम लोग अतीव सेव्यमान होकर मेरे यज्ञ में आज, देवों के साथ, आओ।

९. अपने लिए धन-दान की प्राप्ति की इच्छा से हम व्यश्व के समान तुम्हें बुलाते हैं। मेधावियो, कृपा करके यहाँ पधारो।

१०. ऋषि, अश्विद्वय की स्तुति करो। अनेक बार तुम्हारा आह्वान सुनते हुए अश्विद्वय समीपवर्ती शत्रुओं और पणियों को मारें।

११. नेताओ, वैयश्व का आह्वान सुनो। मेरे आह्वान को समझो। वरुण, मित्र और अर्यमा सदा मिले हुए हैं।

१२. स्तवनीय और अभिलाषप्रद अश्विद्वय, तुम लोग स्तोताओं को जो देते हो और उनके लिए जो ले आते हो, वह प्रतिदिन मुझे दो।

१३. जैसे वधू वस्त्र से ढकी रहती है, वैसे ही जो मनुष्य यज्ञ से आवृत (परिवृत) रहता है, उसकी परिचर्या (देख-रेख) करते हुए अश्विद्वय उसका मङ्गल करते हैं।

१४. अश्विद्वय, अतीव व्यापक और नेताओं के पान-योग्य सोम का दान करना जो मनुष्य जानता है, वैसे (दाता) मुझे पाने की इच्छा करके तुम मेरे गृह में पधारो।

१५. अभिलाष-प्रद और धनी अश्विद्वय, नेताओं के पीने के योग्य सोम के लिए हमारे घर पधारो। शत्रु-द्रोही शर के समान (व्याध शर

से मृगवाले ईप्सित प्रदेश को प्राप्त करता है) स्तुति-वाक्य-द्वारा यज्ञ-समाप्ति कर दो।

१६. सबके नेता अश्विद्वय, स्तोत्रों में से स्तोम (स्तुति-विशेष) तुम्हारे पास जाकर तुम्हें बुलावे और प्रसन्न करे।

१७. अश्विद्वय, द्युलोक के (नीचे) इस समुद्र में यदि तुम प्रमत्त होओ अथवा अन्न चाहनेवाले यजमान के गृह में यदि मत्त होओ, तो, अमरद्वय, हमारा यह स्तोत्र सुनो।

१८. नदियों में से स्पन्दन-शील और हिरण्य-मार्गा श्वेतयावरी (श्वेत-जला होकर बहनेवाली) नाम की नदी स्तुति-द्वारा तुम्हारे पास जाती है अथवा तुम्हारे रथ को ढोती है।

१९. सुन्दर गमनवाले अश्विद्वय, सुन्दर कीर्त्तिवाली, श्वेतवर्णा और पुष्टि-कारिणी श्वेतयावरी नदी को प्रवाहित करो।

२०. वायु, रथ ढोनेवाले दोनों अश्वों को योजित करो। वासदाता वायु, पोषण के योग्य अश्विद्वय को संग्राम में मिलाओ। वायु, अनन्तर हमारे मदकर सोम का पान करो और तीनों सवनों में आओ।

२१. यज्ञपति, त्वष्टा (ब्रह्मा) के जामाता और विचित्र-कर्मा वायु, तुम्हारा पालन हम प्राप्त कर सकें।

२२. हम त्वष्टा के जामाता और समर्थ वायु के समीप, सोम अभिषव करके, धन माँगते हैं। धन दान से हम धनी होंगे।

२३. वायु, द्युलोक में कल्याण ले आओ। अश्व से युक्त रथ चलाओ। तुम महान् हो। मोटे पार्श्वोंवाले अश्वों को अपने रथ में जोतो।

२४. वायु, तुम अतीव सुन्दर रूपवाले हो। तुम्हारे सारे अङ्ग महिमा से व्याप्त हैं। सोमाभिषव के लिए पत्थर के समान यज्ञों में हम तुम्हें बुलाते हैं।

२५. वायुदेव, देवों में तुम मुख्य हो। अन्तःकरण से प्रसन्न होकर हमें अन्न, जल और कर्म प्रदान करो।

२७ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि विवस्वान् के पुत्र मनु। छन्द अयुच् बृहती, युच् बृहती और सतोबृहती।)

१. इस स्तोत्रात्मक यज्ञ में अग्नि, सोमाभिषव के लिए प्रस्तर और कुश अग्रभाग में स्थापित हुए हैं। मरुद्गण, ब्रह्मणस्पति और अन्य देवों से, स्तुति-द्वारा, रक्षण की प्राप्ति के लिए, मैं याचना करता हूँ।

२. अग्नि, हमारे यज्ञ में पशु के निकट आते हो, इस पृथिवी (यज्ञ-शाला) और वनस्पति के समीप आते हो और प्रातःकाल तथा रात्रि में सोमाभिषव के लिए प्रस्तर के निकट आते हो। सर्वज्ञाता विश्व-देवगण हमारे कर्मों के रक्षक होओ।

३. प्राचीन यज्ञ अग्नि और अन्य देवों के पास, उत्तमता के साथ, गमन करे एवम् आदित्यों, धृत-व्रत वरुण और तेजस्वी मरुतों के निकट भी गमन करे।

४. बहुधनशाली और शत्रु-नाशक विश्वदेवगण मनु के वर्द्धन के लिए हों। सर्वज्ञाता देवो, अहिंसित पालन के साथ हमें बाधा-रहित गृह प्रदान करो।

५ विश्वदेवो, स्तोत्रों में समान-मना और परस्पर सङ्गत होकर, वचन और ऋचा के साथ, आज के यज्ञ-दिन में हमारे निकट आओ। मरुतो और महत्त्वपूर्ण अदिति देवी, हमारे उस गृह में विराजो।

६. मरुतो, अपने प्रिय अश्वों को इस यज्ञ में भेजो अथवा अश्वों से युक्त होकर आओ। मित्र, हव्य के लिए पधारो। इन्द्र, वरुण और युद्ध में शत्रु-वध के लिए क्षिप्रकर्त्ता तथा नेता आदित्यगण हमारे कुशों पर बैठें।

७. वरुण, मनु के समान हम (मनुवंशीय) सोमाभिषव करके और अग्नि को समिद्ध करके, हवि को स्थापित और कुश का छेदन करते हुए, तुम्हें बुलाते हैं।

८. मरुद्गण, विष्णु, अश्विद्वय और पूषा, मेरी स्तुति के साथ यज्ञ में पधारो। देवों के बीच प्रथम इन्द्र भी आवें। इन्द्राभिलाषी स्तोता लोग इन्द्र को वृत्रहा कहते हैं।

९. द्रोह-शून्य देवो, हमें बाधा-शून्य गृह प्रदान करो। वासदाता देवो, दूर अथवा समीप के देश से आकर कोई कभी वरणीय गृह की हिंसा नहीं करता।

१०. शत्रु-भक्षक देवो, तुममें स्वजातिभाव और बन्धुभाव हैं। प्रथम अभ्युदय और नवीन धन के लिए शीघ्र और उत्तमता से हमें कहो।

११. सर्वधनवान् देवो, मैं अन्न की कामना करता हूँ। इसी समय किसी से न की गई स्तुति को मैं, अभी तुम्हारे रमणीय धन की प्राप्ति के लिए, करता हूँ।

१२. सुन्दर स्तुतिवाले मरुतो, तुम लोगों में ऊर्ध्वगामी और सबके सेवनीय सविता (सबको कार्य में लगानेवाले) जब उगते हैं, उस समय मनुष्य, पशु और पक्षी अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं।

१३. हम प्रकाशक स्तुति के द्वारा स्तव करते हुए तुम लोगों में से दिव्य देवता को, कर्म-रक्षण के लिए, बुलाते हैं। अभीप्सित की प्राप्ति के लिए दीप्तिमान् देवता को बुलाते हैं। अन्न-लाभ के लिए दिव्य देवता को बुलाते हैं।

१४. समान-क्रोधी विश्वदेवगण मनु के (मेरे) लिए धनादि दान के निमित्त एक साथ प्रवृत्त हों। आज और दूसरे दिन—सब दिनों में मेरे लिए और मेरे पुत्र के लिए वरणीय (सम्भजनीय) धन के दाता हों।

१५. अहिंसनीय देवो, स्तोत्र के आधार यज्ञ में तुम्हारी खूब स्तुति करता हूँ। वरुण और मित्र, तुम्हारे शरीर के लिए जो हवि धारण करता है, उसे शत्रुओं की हिंसा बाधा नहीं देती।

१६. देवो, जो मनुष्य वरणीय धन के लिए तुम्हें हव्य देता है, वह अपना गृह बढ़ाता, अन्न बढ़ाता, यज्ञ के द्वारा प्रजा (पुत्रादि) से सम्पन्न होता है और सबके द्वारा अहिंसित होकर समृद्ध होता है।

१७. वह युद्ध के बिना भी धन प्राप्त करता है, सुन्दर गमनवाले अश्वों से मार्ग को अतिक्रम करता है तथा मित्र, वरुण और अर्यमा मिलित और समान दान से युक्त होकर उसकी रक्षा करते हैं।

१८. देवो, अगम्य और दुर्गम्य पथ को सुगम करो। यह अशनि (आयुध) किसी की हिंसा न करके विनिष्ट हो जाय।

१९. बल-प्रिय देवो, सूर्य के उदित होने पर आज तुम कल्याणवाहक गृह को धारण करो। सारे धनों से युक्त देवो, सायंकाल धारण करो, प्रातः-काल धारण करो और मध्याह्न काल में मनु के लिए धन धारण करो।

२०. प्राज्ञ (असुर) देवो, यज्ञ के प्रति तुम्हारे लाभ के लिए हवि देनेवाले और यज्ञगामी यजमान को यदि तुम लोग गृह प्रदान करते हो, तो हे वासदाता और सर्व-धन-संयुक्त देवो, हम तुम्हारे उसी मंगलकर गृह में तुम्हारी पूजा करेंगे।

२१. सर्व-धन-सम्पन्न देवो, आज सूर्योदय होने पर, मध्याह्न में और सायंकाल में हव्यदाता और प्रकृष्ट ज्ञानी मनु ऋषि के (मेरे) लिए जो रमणीय धन तुम लोग धारण करते हो—

२२. दीप्तिमान् देवो, तुम्हारे पुत्रों के समान हम बहुत लोगों के भोग के योग्य उसी धन को प्राप्त करेंगे। आदित्यो, यज्ञ करते हुए हम इस धन के द्वारा अतीव धनाढ्यता प्राप्त करेंगे।

२८ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि मनु। छन्द गायत्री और पुरउष्णिक्।)

१. जो तेंतीस देवता कुशों पर बैठे थे, वे हमें समझें और बार-बार हमें धन दें।

२. वरुण, मित्र और अर्यमा सुन्दर हव्य देनेवाले यजमानों के साथ मिलकर और देवपत्नियों के सहित, नानाविध वषट्कारों (हिं, वौषट् आदि शब्दों) के द्वारा बुलाये गये हैं।

३. वे वरुणादि देव, अपने सारे अनुचरों के साथ, सम्मुख, पीछे, ऊपर और नीचे हमारे रक्षक हों।

४. देवता लोग जैसी इच्छा करते हैं, वैसा ही होता है। देवों की कामना को कोई विनष्ट नहीं कर सकता। अदाता मनुष्य (यदि वह हवि देने लगे) को भी कोई हिंसा नहीं कर सकता।

५. (इन्द्र के अंश-रूप) सात मरुतों के सात प्रकार के आयुध हैं, सात प्रकार के आभरण हैं और सात प्रकार की दीप्तियाँ हैं।

२९ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि मरीचि के पुत्र कश्यप वा वैवस्वत। छन्द द्विपदा और विराट्।)

१. बभ्रुवर्ण (पीले रंग के), सवर्ग, रात्रियों के नेता, युवक और एकाकी सोमदेव हिरण्मय आभरण को प्रकाशित करते हैं।

२. देवों में दीप्यमान, मेधावी और अकेले अग्नि अपना स्थान प्राप्त करते हैं।

३. देवों के बीच निश्चल स्थान में वर्त्तमान त्वष्टा हाथों में लौहमय कुठार को धारण करते हैं।

४. इन्द्र अकेले हस्त-निहित वज्र धारण करते और वृत्रादि का नाश करते हैं।

५. सुखावह भिषक्, पवित्र और उग्र रुद्र हाथों में तीखा आयुध रखते हैं।

६. एक (पूषा) मार्ग की रक्षा करते हैं। वे चोर के समान सारे धनों को जानते हैं।

७. एक (विष्णु) बहुतों की स्तुति के योग्य हैं। उन्होंने तीन पैरों से तीनों लोकों का प्रक्रमण किया। इससे देवता लोग प्रसन्न हुए।

८. दो (अश्विद्वय) एक स्त्री (सूर्या) के साथ, दो प्रवासी पुरुषों के समान, रहते और अश्व-द्वारा संचरण करते हैं।

९—१०. अपनी कान्ति के परस्पर उपमेय दो (मित्र और वरुण) अतीव दीप्तिशाली और घृतरूप हविवाले हैं। वे द्युलोक के स्थान का निर्माण करते हैं। स्तोता लोग महान् साम-मन्त्र का उच्चारण करके सूर्य को दीप्त करते हैं।

३० सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वैवस्वत मनु। छन्द पुर उष्णिक्, बृहती और अनुष्टुप्।

१. देवो, तुम लोगों में कोई बालक नहीं है, कोई कुमार नहीं है। तुम सब महान् हो।

२. शत्रु-भक्षक और मनु के (मेरे) यज्ञार्ह देवो, तुम लोग तेंतीस हो। इसी प्रकार तुम लोग स्तुत हुए हो।

३. तुम लोग हमें राक्षसों से बचाओ और धनादि देकर हमारी रक्षा करो। हमसे तुम लोग भली भाँति बोलो। देवो, पिता मनु से आये हुए मार्ग से हमें भ्रष्ट नहीं करना; दूरस्थित मार्ग से भी भ्रष्ट नहीं करना।

४. देवो और यज्ञोत्पन्न अग्नि, तुम सब लोग हो। तुम सब यहाँ ठहरो। अनन्तर सर्वत्र प्रख्यात सुख, गौ और अश्व हमें दान करो।

३१ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता; १-४ ऋचाओं के यज्ञ अनन्तर यज्ञ-प्रशंसा। ऋषि वैवस्वत मनु। छन्द अनुष्टुप्, पंक्ति और गायत्री।)

१. जो यजमान यज्ञ करता है, जो पुनः यज्ञ करता है, वह सोम का अभिषव और पुरोडाशादि का पाक करता है और इन्द्र के स्तोत्र की बार-बार कामना करता है।

२. जो यजमान इन्द्र को पुरोडाश और दुग्ध-मिला सोम प्रदान करता है, निश्चय ही पाप से उसे इन्द्र बचाते हैं।

३. देव-प्रेरित और प्रकाशमान रथ उसी यजमान का हो जाता है और वह उसके द्वारा शत्रु की बाधाओं को नष्ट करके समृद्ध होता है।

४. पुत्रादि-युक्त, विनाश-शून्य और धेनु-सहित अन्न प्रतिदिन इस यजमान के गृह में प्राप्त किया जा सकता है।

५. देवो, जो दम्पती एक मन से अभिषव करते हैं, दशापवित्र-द्वारा सोम का शोधन करते हैं और मिश्रण द्रव्य (क्षीरादि) के द्वारा सोम को मिलाते हैं—

६. वे भोजन के योग्य अन्न आदि प्राप्त करते हैं और मिलकर यज्ञ में आते हैं। वे अन्न के लिए कहीं नहीं जाते।

७. वे दम्पती इन्द्रादि देवों का अपलाप नहीं करते—तुम्हारी शोभन बुद्धि को नहीं ढकते। महान् अन्न के द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

८. वे पुत्रवाले हैं—कुमार (षोडशवर्षीय) पुत्रवाले हैं। वे स्वर्ण-विभूषित होकर पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं।

९. प्रिय यज्ञवाले इन दम्पती की स्तुति देवों की कामना करती है। वे देवों को सुखप्रद अन्न प्रदान करते हैं। वे उपयुक्त धन हैं। वे अमरत्व या सन्तति के लाभ के लिए रोमश (पुरुषेन्द्रिय) और ऊध (स्त्री की जननेन्द्रिय) का संयोग करते हैं। वे देवों की सेवा करते हैं।

१०. हम पर्वत के सुख (स्थिरता आदि) और नदी के सुख (जप आदि) की प्रार्थना करते हैं। देवों के साथ विष्णु के सुख की भी हम प्रार्थना करते हैं।

११. धनों के दाता, भजनीय और सबके पोषक पूषा रक्षा के साथ आवें। उनके आने पर विस्तृत मार्ग हमारे लिए मङ्गलकर हो।

१२. शत्रुओं के द्वारा न दबने योग्य और प्रकाशक पूषा के सारे स्तोता श्रद्धा से पर्याप्त स्तुति से युक्त होते हैं। आदित्यों का दान पाप-शून्य होता है।

१३. मित्र, वरुण और अर्यमा जैसे हमारे रक्षक हैं, वैसे ही सारे यज्ञ-मार्ग भी सुगम हों।

१४. देवो, तुम लोगों के मुख्य और दीप्तिमान् अग्नि की, धन की प्राप्ति के लिए, स्तुति-वचन के द्वारा, स्तुति करता हूँ। तुम्हारे परिचर्या-कर्त्ता मनुष्य अनेक लोगों के प्रिय होते हैं। वे यज्ञसाधक मित्र के समान अग्नि की स्तुति करते हैं।

१५. वेगवान् व्यक्ति का रथ उसी तरह शीघ्र दुर्ग में प्रवेश करता है, जिस तरह शूर किसी सेना के मध्य में घुसता है। जो यजमान देवों के मन की स्तुति-द्वारा पूजा करने की इच्छा करता है, वह यज्ञ-शून्य को हराता है।

१६. यजमान, तुम विनष्ट नहीं होगे। सोमाभिषवकारी, तुम विनष्ट नहीं होगे। देवाभिलाषी, तुम नहीं विनष्ट होगे। जो यजमान देवों के मन की ही पूजा करना चाहता है, वह यज्ञ-रहितों को हराता है।

१७. जो यजमान देवों के मन का यज्ञ करने की इच्छा करता है, उसे कर्म-द्वारा कोई व्याप्त नहीं कर सकता। वह कभी भी अपने स्थान से अलग नहीं होता। वह पुत्रादि से भी पृथक् नहीं होता। जो यजमान देवों के मन की, स्तुति के द्वारा, पूजा करने की इच्छा करता है, वह यज्ञ-शून्यों को अभिभूत करता है।

१८. जो यजमान देवों के मन का यज्ञ करने की इच्छा करता है, उसे सुन्दर वीर्यवाला पुत्र उत्पन्न होता है, अश्वों से युक्त धन भी उसे होता है। जो यजमान देवों के मन की, स्तुति के द्वारा, पूजा करने की इच्छा करता है, वह यज्ञ-शून्यों को अभिभूत करता है।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

३२ सूक्त

(तृतीय अध्याय देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय मेधातिथि। छन्द गायत्री।)

१. कण्वगण, इन्द्र की गाथा के द्वारा इन्द्र के मत्त होने पर तुम लोग "ऋजीष" सोम के कर्मों को कीर्त्तित करो।

२. जल प्रेरित करते हुए उग्र इन्द्र ने सृविन्द, अनर्शनि, पिप्रु, दास और अहीशुव का वध किया था।

३. इन्द्र, मेघ के आवरक स्थान को छेदो। इस वीर-कर्म का सम्पादन करो।

४. स्तोताओ, जैसे मेघ से जल की प्रार्थना की जाती है, वैसे ही शत्रुओं के दमन-कर्त्ता और शोभन जबड़ेवाले इन्द्र से तुम्हारी स्तुति सुनने और तुम्हारी रक्षा की प्रार्थना करता हूँ।

५. शूर, तुम प्रसन्न होकर शत्रु नगरी के समान सोम के योग्य स्तोताओं के लिए गौ और अश्व के रहने के द्वार खोलते हो।

६. इन्द्र, यदि मेरे अभिषुत सोम अथवा स्तोत्र में अनुरक्त हो और यदि मुझे अन्न देते हो तो दूर देश से, अन्न के साथ, पास आओ।

७. स्तुति-योग्य इन्द्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं। हे सोमपायी, तुम हमें प्रसन्न करते हो।

८. धनी इन्द्र, प्रसन्न होकर तुम हमें अक्षय्य अन्न दो। तुम्हारे पास प्रचुर धन है।

९. तुम हमें गौ, अश्व और हिरण्य से सम्पन्न करो। हम अन्न-युक्त हों।

१०. संसार की रक्षा के लिए इन्द्र भुजाओं को पसारते और पालन के लिए साधु-कार्य करते हैं। वे महान् उक्थवाले हैं। हम इन्द्र को बुलाते हैं।

११. जो इन्द्र संग्राम में बहुकर्मा होते और अनन्तर शत्रु-वध करते हैं, जो इन्द्र वृत्र-हन्ता है और स्तोताओं के लिए बहुधनवान् होते हैं—

१२. वे ही शक्र (शक्त = इन्द्र) हमें शक्तिशाली करें। इन्द्र दानी हैं और वे सारी रक्षाओं के द्वारा हमारे छिद्रों को परिपूर्ण करते हैं।

१३. जो इन्द्र धन के रक्षक, सर्वोत्तम, शोभन पारवाले और सोमाभिषव-कारी के सखा हैं, उन्हीं इन्द्र के लिए स्तुति करो।

१४. इन्द्र आनेवाले, युद्ध-क्षेत्र में अविचल, अन्न के विजेता और बल-पूर्वक प्रचुर धन के ईश्वर हैं।

१५. इन्द्र के शोभन कार्यों का कोई नियामक नहीं है। इन्द्र दाता नहीं हैं, यह कोई नहीं कहता।

१६. सोमाभिषवकारी और सोमपायी ब्राह्मणों (स्तोताओं) के पास ऋण (देव-ऋण) नहीं है। प्रचुर धनवाला ही सोमपान कर सकता है।

१७ स्तुत्य इन्द्र के लिए गान करो। स्तुत्य इन्द्र के लिए स्तोत्र उच्चारण करो। स्तुत्य इन्द्र के लिए स्तोत्रों को बनाओ।

१८. स्तुत्य और बली इन्द्र ने सैकड़ों और हजारों शत्रुओं को विदारित किया है। वे शत्रुओं के द्वारा अनाच्छादित हैं। वे यज्ञकारी के वर्द्धक हैं।

१९. आह्वान के योग्य इन्द्र, मनुष्यों के हव्य के निकट विचरण करो और अभिषुत सोम पियो।

२०. इन्द्र, गाय के बदले में खरीदे गये और जल से प्रस्तुत किये गये अपने इस सोम का पान करो।

२१. इन्द्र, क्रोध के साथ अभिषव करनेवाले और अनुपयुक्त स्थान में अभिषव करनेवाले को लाँघकर चले आओ। हमारे द्वारा प्रदत्त इस अभिषुत सोम का पान करो।

२२. इन्द्र, हमारी स्तुति को तुमने देखा अथवा समझा है। तुम दूर देश से हमारे आगे, पीछे और पार्श्व में आओ। तुम गन्धर्वों, पितरों, देवों, असुरों और राक्षसों (पञ्चजनों) को लाँघकर पधारो।

२३. सूर्य जैसे किरणों को देते हैं, वैसे ही धन दो। जैसे नीची भूमि में जल मिलता है, वैसे ही मेरी स्तुतियाँ तुम्हारे साथ मिलें।

२४. अध्वर्युओ, सुन्दर शिरस्त्राण अथवा जबड़ेवाले और वीर इन्द्र के लिए शीघ्र सोम का सेचन करो। सोमपान के लिए इन्द्र को बुलाओ।

२५. जिन्होंने जल के लिए मेघ को भिन्न किया है, जिन्होंने अन्तरिक्ष से जल को नीचे भेजा है और जिन्होंने गौओं को पक्व दुग्ध प्रदान किया है, वही इन्द्र हैं।

२६. दीप्ति-समान इन्द्र ने वृत्र, और्णनाभ और अहीशुव का वध किया है। इन्द्र ने तुषार-जल से मेघ को फोड़ा है।

२७. उद्‌गाताओ, उग्र, निष्ठुर, अभिभवकर्त्ता और बल-पूर्वक हरणकर्त्ता इन्द्र के लिए देवों की प्रसन्नता से प्राप्त स्तोत्र गाओ।

२८. सोम की मत्तता उत्पन्न होने पर इन्द्र देवों के पास सारे कर्मों को सूचित करते हैं।

२९. वे एक साथ ही प्रमत्त और हिरण्य केशवाले दोनों हरि नाम के अश्व इस यज्ञ में सोम रूप अन्न के अभिमुख इन्द्र को ले आवें।

३०. अनेकों के द्वारा स्तुत इन्द्र, प्रियमेध-द्वारा स्तुत अश्वियुग्म, सोमपान के लिए, तुम्हें हमारे अभिमुख ले आवें।

३२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय प्रियमेध। छन्द बृहती, गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. वृत्रघ्न इन्द्र, हम लोगों ने सोमाभिषव किया है। जल के समान हम तुम्हारे सामने जाते हैं। पवित्र सोम के प्रसूत होने पर कुश-विस्तार किये हुए स्तोता लोग तुम्हारी उपासना करते हैं।

२. निवास-दाता इन्द्र, अभिषुत सोम के निर्गत होने पर उक्थवाले नेता लोग स्तोत्र करते हैं। सोम के पिपासु होकर, बैल के समान शब्द करते हुए, यज्ञ-स्थान में इन्द्र कब आवेंगे?

३. शत्रुओं के दमनकारी इन्द्र, कण्वों के लिए सहस्र-संख्यक अन्न दो। धनी और विशेष द्रष्टा इन्द्र, हम पुष्ट, पिशंग (पीले) रूपवाले और गोमान् अन्न की याचना करते हैं।

४. मेध्यातिथि, सोमपान करो। जो हरि नामक अश्वों को रथ में जोतते हैं, जो सोम में सहायक हैं, जो वज्रधर हैं और जिनका रथ सोने का है, सोम-जन्य मत्तता होने पर उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो।

५. जिनका बायाँ हाथ सुन्दर है, दाहिना हाथ सुन्दर है, जो ईश्वर, सुन्दर-प्रज्ञ और सहस्रों के कर्त्ता हैं, जो बहुधनशाली हैं, जो पुरी को तोड़ते हैं और जो यज्ञ में स्थिर हैं, उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो।

६. जो शत्रुओं के धर्षक हैं, जो शत्रुओं के द्वारा अनाच्छादित हैं, युद्ध में जिनके आश्रित हुआ जाता है, जो प्रचुर धनवाले हैं, जो सोमपायी हैं और जो बहुतों के द्वारा स्तुत हैं वे इन्द्र स्वकर्म में समर्थ यजमान के लिए दुग्धदायिनी गौ के समान हैं। उन इन्द्र की स्तुति करो।

७. जो इन्द्र सुन्दर जबड़ेवाले हैं, जो सोम-द्वारा परितृप्त हैं और जो बल से पुरी का भेदन करते हैं, सोमाभिषव होने पर ऋत्विकों के साथ सोमपायी उन इन्द्र को कौन जानता है? कौन उनके लिए अन्न धारण करता है?

८. जैसे शत्रुओं की खोज करनेवाला हाथी मद-जल धारण करता है, वैसे ही इन्द्र यज्ञ में चरणशील मत्तता धारण करते हैं। इन्द्र, तुम्हें कोई नियमित नहीं कर सकता। सोमाभिषव की ओर पधारो। महान् तुम बल के द्वारा सर्वत्र विचरण करते हो।

९. इन्द्र के उग्र होने पर शत्रु लोग उन्हें आच्छादित नहीं कर सकते। वे अचल हैं। वे युद्ध के लिए शस्त्रों-द्वारा अलंकृत हैं। धनी इन्द्र यदि स्तोता का आह्वान सुनते हैं, तब अन्यत्र नहीं जाते, केवल वहीं आते हैं।

१०. उग्र इन्द्र तुम सचमुच ऐसे ही मनोरथ-वर्षक हो। तुम काम-वर्षकों के द्वारा आकृष्ट हो और हमारे शत्रुओं के द्वारा अनाच्छादित

हो। तुम अभीष्ट-वर्षक कहकर विख्यात हो। तुम दूर और समीप में अभीष्टवर्षी कहकर विख्यात हो।

११. धनी इन्द्र, तुम्हारी घोड़े की रस्सियाँ (लगाम) अभीष्टवर्षक हैं; तुम्हारी, सोने की कशा (चाबुक) अभीष्टवर्षक है, तुम्हारे दोनों अश्व अभीष्टदाता हैं और हे शतक्रतु इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्षक हो।

१२. काम-वर्षक इन्द्र, तुम्हारा सोमाभिषव करनेवाला अभीष्ट-वर्षक होकर सोम का अभिषव करे। सरल-गामी इन्द्र, धन दो। इन्द्र, अश्वों के अभिमुख स्थित और वर्धक तुम्हारे लिए जल में सोम का अभिषव करनेवाले ने सोम को धारण किया था।

१३. श्रेष्ठ बली इन्द्र, सोम-रूप मधु के पान के लिए आओ। बिना आये धनी और सुकृती इन्द्र स्तुति, स्तोत्र और उक्थ नहीं सुनते।

१४. वृत्रघ्न और बहुप्रज्ञ इन्द्र, तुम रथस्थ और ईश्वर हो। रथ में जोते हुए अश्व दूसरों के यज्ञों का तिरस्कार करके तुम्हें हमारे यज्ञ में ले आवें।

१५ महामह (महापूज्य) इन्द्र, आज हमारे समीप के सोम को धारण करो। दीप्त सोम के पीनेवाले इन्द्र, तुम्हारी मत्तता के लिए हमारे यज्ञ कल्याणवाही हों।

१६. वीर इन्द्र हमारे नेता हैं। वे मेरे, तुम्हारे और दूसरे के शासन में प्रसन्न नहीं होते।

१७. (मेध्यातिथि के धनदाता प्रायोगि जिस समय पुरुष से स्त्री हुए थे, उस समय) इन्द्र ने ही कहा था कि "स्त्री के मन का शासन करना असम्भव है। स्त्री की बुद्धि छोटी होती है।"

१८. सोम के अभिमुख जानेवाले दोनों अश्व इन्द्र के रथ को ले जाते हैं। इसी प्रकार अभीष्ट-वर्षक इन्द्र का रथ अश्वों की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

१९. (इन्द्र ने कहा) प्रायोगि, तुम नीचे देखा करो, ऊपर नहीं। (स्त्रियों का यही धर्म है।) पैरों को संकुचित रक्खो (मिलाये रक्खो)।

(इस प्रकार कपड़े पहनो कि) तुम्हारे कश (ओष्ठ-प्रान्त) और प्लक (नारी-कटि का निम्न भाग) को कोई देखने नहीं पावे। यह सब इसलिए करो कि तुम स्तोता होकर भी स्त्री हुए हो।

३४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय नीपातिथि। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. इन्द्र, अश्वों के साथ तुम कण्वों की सुन्दर स्तुति के अभिमुख आओ। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हविवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

२. इस यज्ञ में सोमवान् अभिषव-प्रस्तर शब्द करते हुए, ध्वनि के साथ, तुम्हें दान करें। इन्द्र, द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

३. इस यज्ञ में अभिषव-पाषाण सोमलता को उसी प्रकार कँपाता है, जिस प्रकार तेंदुआ भेड़ को कँपाता है। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

४. रक्षण और अन्न-प्राप्ति के लिए कण्व लोग इन्द्र को इस यज्ञ में बुलाते हैं। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

५. कामवर्षक वायु को जैसे प्रथम सोमरस प्रदान किया जाता है, वैसे ही मैं तुम्हें अभिषुत सोम प्रदान करूँगा। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

६. स्वर्ग के कुटुम्बी इन्द्र, तुम हमारे पास आओ। सारे संसार के रक्षक इन्द्र, हमारे रक्षण के लिए आओ। इन्द्र, द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

७. महामति, सहस्र रक्षावाले और प्रचुर धनी इन्द्र, हमारे पास

आओ। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

८. इन्द्र, देवों में स्तुत्य और मनुष्यों के द्वारा गृह में स्थापित होता अग्नि तुम्हें वहन करें। इन्द्र, द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

९. जैसे श्येन पक्षी (बाज) अपने दोनों पंखों को ढोता है, वैसे ही मदस्रावी अश्वद्वय तुम्हें वहन करें। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

१०. स्वामी इन्द्र, तुम चारों तरफ़ से आओ। तुम्हें पीने के लिए मैं सोम का स्वाहा करता हूँ। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

११. उक्थों का पाठ होने पर तुम इस यज्ञ में हमारे समीप आओ और हमें प्रसन्न करो। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

१२. पुष्ट अश्ववाले इन्द्र, पुष्ट और समान रूपवाले अश्वों के साथ आओ। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

१३. तुम पर्वत से आओ। तुम अन्तरिक्ष-प्रदेश से आओ। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

१४. शूर इन्द्र, तुम हमें सहस्र गायें और अश्व दो। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

१५. इन्द्र, हमें सहस्र, दश सहस्र और सौ अभीष्ट दान करो। इन्द्र द्युलोक का शासन करते हैं। दीप्त हव्यवाले इन्द्र, तुम द्युलोक में जाओ।

१६. हम धन के द्वारा सुशोभित होते हैं। सहस्र संख्यक हम और नेता इन्द्र बलवान् अश्व-पशु ग्रहण करते हैं।

१७. सरलगामी, वायु के समान वेगवाले, रुचिकर और अल्प-आर्द्र अश्व सूर्य के समान कान्ति पाते हैं।

१८. जिस समय पारावत ने रथचक्रों को गतिशील बनानेवाले इन अश्वों को प्रदान किया था, उस समय मैं वन के मध्य में था।

३५ सूक्त

(देवता अश्विद्वय । ऋषि कण्वगोत्रीय श्यावाश्व। छन्द ज्योति, पंक्ति और महाबृहती ।)

१. अश्विद्वय, तुम लोग अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगण के साथ और उषा तथा सूर्य के साथ मिलकर सोम-पान करो।

२. बली अश्विद्वय, तुम लोग सारी प्रजा, प्राणि-समुदाय, द्युलोक, पृथिवी और पर्वत के साथ तथा उषा और सूर्य के साथ मिलकर सोम का पान करो।

३. अश्विद्वय, तुम लोग इस यज्ञ में भक्षणकर्त्ता तेंतीस देवों, मरुतों और भृगुओं के साथ तथा उषा और सूर्य से मिलकर सोम-पान करो।

४. देव अश्विद्वय, तुम लोग यज्ञ का सेवन करो। मेरे आह्वान को समझो। इस यज्ञ में सारे सवनों को प्राप्त करो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर हमारा अन्न ग्रहण करो।

५. देव अश्विद्वय, जैसे युवक कन्याओं की बुलाहट को सेवित करते हैं, वैसे ही तुम लोग इस यज्ञ में स्तोम की सेवा करो। इस यज्ञ में स्तोम की सेवा करो। इस यज्ञ में सारे सवनों को प्राप्त करो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर हमारा सोम-रूप अन्न ग्रहण करो।

६. देव अश्विद्वय, हमारी स्तुति का सेवन करो। यज्ञ की सेवा करो। इस यज्ञ में सारे सवनों को प्राप्त करो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर हमारा अन्न ग्रहण करो।

७. जैसे दो हारिद्रव पक्षी (शुक अथवा हारीत?) जल पर गिरते हैं, वैसे ही तुम लोग अभिषुत सोम की ओर गिरो। दो भैंसों के समान सोम को जानो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर त्रिमार्गों में जाओ।

८. अश्विद्वय, दो हंसों और दो पथिकों के समान अभिषुत सोम के अभिमुख आओ और दो भैंसों के समान सोम को समझो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर त्रिमार्ग में गमन करो।

९. अश्विद्वय, तुम लोग दो श्येन पक्षियों के समान अभिषुत सोम की ओर आओ और दो भैंसों के समान सोम को जानो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर त्रिमार्ग में गमन करो।

१०. अश्विद्वय, सोमपान करो। तृप्त होओ। आओ सन्तान दो। धन दो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर हमें बल दो।

११. अश्विद्वय, तुम शत्रुओं को जीतो। स्तोताओं की प्रशंसा और रक्षा करो। सन्तान दो। धन दो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर हमें बल दो।

१२. अश्विद्वय, तुम लोग शत्रु का विनाश करो। मंत्री से युक्त होकर गमन करो। सन्तान दो। धन दो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर हमें बल दो।

१३. अश्विद्वय, तुम लोग मित्र, वरुण, धर्म और मरुतों से युक्त हो। तुम लोग स्तोता के आह्वान की ओर जाओ और उषा, सूर्य और आदित्यों के सहित जाओ।

१४. अश्विद्वय, तुम लोग अङ्गिरा, विष्णु और मरुतों के साथ स्तोता के आह्वान की ओर जाओ तथा उषा, सूर्य और आदित्यों के साथ जाओ।

१५. अश्विद्वय, तुम लोग ऋभु, काम-वर्षक वाज और मरुतों के साथ स्तोता के आह्वान की ओर जाओ और उषा, सूर्य तथा आदित्यों के साथ गमन करो।

१६. अश्विद्वय, तुम लोग स्तोत्र और कर्म को जीतो। राक्षसों का

शासन और वध करो। उषा और सूर्य के साथ अभिषव-कर्त्ता के सोम का पान करो।

१७. अश्विद्वय, तुम लोग क्षत्र (बल) और योद्धाओं को जीतो। राक्षसों का शासन और वध करो। उषा और सूर्य के साथ सोमाभिषव-कारी का सोमपान करो।

१८. अश्विद्वय, धेनु और विशों (वैश्यों) को जीतो, राक्षसों का शासन और वध करो। उषा और सूर्य के साथ सोम के अभिषव-कर्त्ता का सोमपान करो।

१९. अश्विद्वय, तुम लोग शत्रुओं का गर्व खर्व करनेवाले हो, तुम लोग जैसे अत्रि की स्तुति को सुनते थे, वैसे ही श्यावाश्व की (मेरी) मुख्य स्तुति सुनो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर प्रातःकाल के यज्ञ में सोमपान करो।

२०. अश्विद्वय, श्यावाश्व की सुन्दर स्तुति को, आभरण के समान, ग्रहण करो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर प्रातःकाल के यज्ञ में सोमपान करो।

२१. अश्विद्वय; अश्व-रज्जु (लगाम) के समान श्यावाश्व के यज्ञाभिमुख गमन करो। उषा और सूर्य के साथ मिलकर प्रातःकाल के यज्ञ में सोमपान करो।

२२. अश्विद्वय, अपना रथ हमारे सामने ले आओ, सोमरूप मधु का पान करो, यज्ञ में आगमन करो और सोम के अभिमुख आगमन करो। रक्षाभिलाषी होकर मैं तुम्हें बुलाता हूँ। हव्यदाता को (मुझे) रत्न दान करो।

२३. अश्विद्वय, तुम लोग नेता हो। मुझ हवनशील के इस किये जाते हुए नमोवाक्य-युक्त यज्ञ में सोमपान के लिए आओ। सोम के अभिमुख आओ। मैं रक्षाभिलाषी होकर तुम्हें बुलाता हूँ। हव्यदाता को रत्न दान करो।

२४. देव अश्विद्वय, तुम लोग अभिषुत और स्वाहाकृत सोम से तृप्ति प्राप्त करो। यज्ञ में आओ। सोम के अभिमुख आओ। मैं रक्षाभिलाषी होकर तुम्हें बुलाता हूँ। तुम हव्यदाता को रत्न दो।

३६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि श्यावाश्व। छन्द सकरी और महापंक्ति।)

१. बहुकर्मा (शतक्रतु) इन्द्र, सोम का अभिषव करनेवाले और कुश-विस्तार करनेवाले यजमान के तुम रक्षक हो। सत्पति (सज्जनों के स्वामी) और मरुतों से युक्त इन्द्र, देवों ने तुम्हारे लिए जो सोम का भाग निश्चित किया है, सारी शत्रु-सेना और प्रचुर वेग को अभिभूत करके और जल-मध्य में जेता होकर मत्त होने के लिए उस सोम-भाग को पियो।

२. धनी इन्द्र, स्तोता की रक्षा करो। सोम-पान के द्वारा अपनी भी रक्षा करो। सत्पति और मरुतों से युक्त बहुकर्मा इन्द्र, देवों ने तुम्हारे लिए जो सोम-भाग कल्पित किया है, सारी सेना और बहुवेग को अभिभूत करके और जल-मध्य में विजेता होकर मत्त होने के लिए उस सोम-भाग को पियो।

३. अन्न-द्वारा देवों की रक्षा करते हो और अपने को बल के द्वारा बचाते हो। सत्पति और मरुतों से युक्त बहुकर्मा इन्द्र, देवों ने तुम्हारे लिए जो सोम भाग निश्चित किया है, सारी सेना और बहुवेग को दबाकर और जल के बीच विजयी होकर मत्त होने के लिए उस सोम-भाग को पियो।

४. तुम द्युलोक और पृथिवी के जनक हो। सत्पति और मरुतों से युक्त बहुकर्मा इन्द्र, तुम्हारे लिए देवों ने जो सोम-भाग निश्चित किया है, सारी शत्रु-सेना और बहुवेग को अभिभूत करके तथा जल-मध्य में विजयी होकर मत्त होने के लिए उसी सोम-भाग को पियो।

५. तुम अश्वों और गौओं के जनक (पिता) हो। सत्पति और मरुतों से युक्त बहुकर्मा इन्द्र, तुम्हारे लिए देवों ने जो सोम-भाग परिकल्पित किया है, सारी शत्रु-सेना और बहुवेग को अभिभूत करके तथा जल-मध्य में विजयी होकर मत्त होने के लिए उसी सोम-भाग को पियो।

६. पर्वतवाले इन्द्र, अत्रि लोगों (हम लोगों) का सोम पूजित करो। सत्पति और मरुतों से युक्त बहुकर्मा इन्द्र देवों ने तुम्हारे लिए जो सोम-भाग परिकल्पित किया है, समस्त शत्रु-सेना और बहुवेग को दबाकर तथा जलमध्य में विजेता बनकर मत्त होने के लिए उसी सोम-भाग को पियो।

७. इन्द्र, तुमने जैसे यज्ञ-कर्त्ता अत्रि ऋषि की स्तुति सुनी थी, वैसे ही सोमाभिषव-कर्त्ता श्यावाश्व की (मेरी) स्तुति सुनो। अकेले ही तुमने युद्ध में स्तोत्रों को वर्द्धित करते हुए त्रसदस्यु को बचाया था।

३७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि श्यावाश्व। छन्द अतिजगती और महापंक्ति।)

१. यज्ञपति इन्द्र, युद्ध में तुम सारे रक्षणों से इस स्तोत्र (ब्राह्मण) की रक्षा करो। सोमाभिषव की भी रक्षा करना। अनिन्द्य वज्री और वृत्रघ्न इन्द्र, माध्यन्दिन सवन का सोम पियो।

२. कर्मपति (शचीपति) और उग्र इन्द्र, शत्रु-सेनाओं को अभिभूत करके सारी रक्षाओं के द्वारा स्तोत्र (ब्राह्मण) की रक्षा करो। अनिन्दनीय (प्रशंसनीय), वज्रधर और वृत्रहन्ता इन्द्र, माध्यन्दिन सवन का सोम पियो।

३. यज्ञपति इन्द्र, तुम इस भुवन के एकमात्र राजा होकर और सारी रक्षाओं से युक्त होकर शोभा पाते हो। अनिन्दनीय वज्रधर और वृत्रघ्न इन्द्र, माध्यन्दिन सवन का सोम पियो।

४. यज्ञपति इन्द्र, समान रूप से अवस्थित इस लोक-द्वय को तुम्हीं अलग करते हो। अनिन्दनीय, वज्रधर और वृत्रघ्न इन्द्र, माध्यन्दिन सवन का सोम पियो।

५. यज्ञपति (शचीपति) इन्द्र, सारी रक्षाओं से युक्त होकर समस्त संसार, मङ्गल और प्रयोग के ईश्वर हो। अनिन्दनीय, वज्रधर और वृत्रघ्न इन्द्र, माध्यन्दिन सवन का सोम पियो।

६. यज्ञपति इन्द्र, सारी रक्षाओं से युक्त होकर संसार के बल के लिए होते हो—आश्रितों की रक्षा करते हो। तुम्हारी रक्षा कोई नहीं करता। अनिन्दनीय, वज्री और वृत्रघ्न, माध्यन्दिन सवन का सोम पियो।

७. इन्द्र, तुमने जैसे यज्ञ-कर्ता अत्रि की स्तुति सुनी थी, वैसे ही (मुझ) स्तोता श्यावाश्व की स्तुति सुनो। तुमने अकेले ही युद्ध में स्तोत्रों को वर्द्धित करके त्रसदस्यु की रक्षा की थी।

३८ सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि श्यावाश्व। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग शुद्ध और ऋत्विक् हो। युद्धों और कर्मों में मुझ यजमान की स्तुति को जानो।

२. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग शत्रु-हिंसक, रथ के द्वारा गमनशील, वृत्रघ्न और अपराजित हो। तुम मुझे जानो।

३. इन्द्र और अग्नि, यज्ञ के नेताओं ने तुम्हारे लिए, पाषाण के द्वारा, इस मदकर मधु (सोम) का दोहन किया है। तुम मुझे जानो।

४. एक साथ ही स्तुत्य और नेता इन्द्र तथा अग्नि, यज्ञ की सेवा करो। यज्ञ के लिए अभिषुत सोम की ओर आओ।

५. इन्द्र और अग्नि, तुम लोग नेता हो। तुम लोग जिसके द्वारा हव्य का वहन करते हो, उसी सवन की सेवा करो। यहाँ आओ।

६. नेता इन्द्र और अग्नि, तुम लोग इस गायत्र-मार्ग की सुन्दर स्तुति की सेवा करो। आओ।

७. धन-विजयी इन्द्र और अग्नि, तुम लोग प्रातःकाल देवों के साथ सोमपान के लिए आओ।

८. इन्द्र और अग्नि, सोमपान के लिए तुम लोग सोम का अभिषव करनेवाले श्यावाश्व के ऋत्विकों का आह्वान सुनो।

९. इन्द्र और अग्नि, जैसे प्राज्ञों ने तुम्हें बुलाया है, वैसे ही मैं, रक्षा और सोमपान के लिए, तुम्हें बुलाता हूँ।

१०. जिनके लिए साम-गान किया जाता है, मैं उन्हीं स्तुतिवाले इन्द्र और अग्नि के पास रक्षण की प्रार्थना करता हूँ।

३९ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि कण्वगोत्रीय नाभाक। छन्द महापंक्ति।)

१. ऋक् मन्त्रों के योग्य अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। यज्ञ के लिए स्तुति-द्वारा मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। हमारे यज्ञ में अग्नि हव्य-द्वारा देवों की पूजा करें। कवि अग्नि स्वर्ग और पृथिवी के बीच दूत-कर्म करते हैं। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

२. अग्नि, नवीन स्तोत्रों के द्वारा हमारे अङ्गों में जो शत्रुओं की (भावी) हिंसा है, उसे जलाना। हव्यदाताओं के शत्रुओं को जलाओ। अभिगमनवाले सारे मूढ़ शत्रु यहाँ से चले जायँ। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

३. अग्नि, तुम्हारे मुँह में सुखकर घृत के समान स्तोत्र का होम करता हूँ। देवों में तुम हमारी स्तुति को जानो। तुम प्राचीन हो, सुखकर हो और देवों के दूत हो। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

४. स्तोता लोग जो-जो अन्न माँगते हैं, अग्नि वही-वही अन्न प्रदान करते हैं। अग्नि अन्न के द्वारा बुलाये जाकर यजमानों को शान्तिकर और विषयो-पभोग-जन्य सुख देते हैं। वह सारे देवों के आह्वानों में रहते हैं। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

५. वे अग्नि अभिभवकारक नाना प्रकार के कर्मों के द्वारा जाने जाते हैं। वे सारे देवों के होता हैं। वे पशुओं से घेरे गये हैं। वे शत्रुओं के सम्मुख गमन करते हैं। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

६. अग्नि देवों का जन्म जानते हैं। अग्नि मनुष्यों के गोपनीय को जानते हैं। अग्नि धनद हैं। वे अभिनव हव्य-द्वारा भली भाँति आहुत होकर धन का द्वार उद्घाटित करते हैं। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

७. अग्नि देवों में रहते हैं। वे यज्ञार्ह प्रजागण में रहते हैं जैसे भूमि सारे संसार का पोषण करती है, वैसे ही वे सहर्ष सारे कार्यों का पोषण करते हैं। अग्नि देवों में यज्ञ-योग्य हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

८. अग्नि सात मनुष्यों (सिन्धु आदि सात नदियों के तट-वासियों) वाले और सारी नदियों में आश्रित हैं। वे तीन स्थानों (द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष) वाले हैं। अग्नि ने यौवनाश्व के पुत्र मान्धाता के लिए सर्वापेक्षा अधिक दस्यु-हनन किया है। वे यज्ञों में मुख्य हैं। अग्नि समस्त शत्रुओं को मारें।

९. कवि (क्रान्तदर्शी) अग्नि द्यौ आदि तीन प्रकार के तीन स्थानों में रहते हैं। अग्नि दूत, प्राज्ञ और अलंकृत होकर इस यज्ञ में तेंतीस देवों का यज्ञ करें। हमारी अभिलाषा पूर्ण करें। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

१०. प्राचीन अग्नि, तुम अकेले ही हो; परन्तु मनुष्यों और देवों के ईश्वर हो। तुम सेतु-स्वरूप हो। तुम्हारे चारों ओर जल जाता है। अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

४० सूक्त

(देवता इन्द्र और अग्नि। ऋषि नाभाक। छन्द शक्करी, त्रिष्टुप् और महापंक्ति।)

१. इन्द्र और अग्नि, शत्रुओं को हराते हुए हमें धन दो। जैसे अग्नि वायु-द्वारा वन को अभिभूत करते हैं, वैसे ही हम भी उस धन की सहायता से दृढ़ शत्रु-बल को दबावेंगे। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

२. इन्द्र और अग्नि, हम तुमसे धन की याचना नहीं करते। सबसे बली और नेताओं के नेता इन्द्र का ही यज्ञ करते हैं। इन्द्र अभी अश्व पर चढ़कर अन्न-प्राप्ति के लिए आते हैं और कभी यज्ञ-प्राप्ति के लिए आते हैं। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

३. वे प्रसिद्ध इन्द्र और अग्नि युद्ध के मध्यस्थल में निवास करते हैं। नेताओ, कवि (क्रान्तकर्मी) द्वारा पूछे जाने पर तुम्हीं लोग मित्रता चाहनेवाले यजमान के कृत कर्म को व्याप्त करते हो। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं की हिंसा करें।

४. यज्ञ और स्तुति के द्वारा नाभाकवाले इन्द्र और अग्नि की पूजा करो। इन्द्र और अग्नि में यह सारा संसार विद्यमान है। इन्हीं इन्द्र और अग्नि की गोद में महती मही और द्युलोक धन को धारण करते हैं। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

५. नाभाक के समान ऋषि इन्द्र और अग्नि के लिए स्तुति प्रेरित करते हैं। ये इन्द्र और अग्नि सप्त मूलवाले हैं और अवरुद्ध द्वारवाले समुद्र को तेज के द्वारा आच्छादित करते हैं। इन्द्र बल-द्वारा ईश्वर हैं। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

६. इन्द्र, प्राचीन मनुष्य जैसे लता की शाखा को काटता है, वैसे ही तुम सारे शत्रुओं को काटो। दास नामक शत्रु के बल का विनाश करो। हम इन्द्र की कृपा से दास के उस संगृहीत धन का विभाग कर लेंगे। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

७. ये जो सब मनुष्य धन और स्तुति के द्वारा इन्द्र और अग्नि को बुलाते हैं, उनमें ससैन्य हम अपने मनुष्यों की सहायता से शत्रुओं को हरावेंगे और स्तुतिवाले शत्रु को ग्रहण करेंगे।

८. जो श्वेतवर्ण (सात्त्विक) इन्द्र और अग्नि नीचे से दीप्ति-द्वारा द्यौ के ऊपर जाते हैं, उन्हीं के लिए हवि का वहन करते हुए यजमान कर्मानुष्ठान करते हैं। उन्होंने ही प्रख्यात सिन्धु आदि नदियों को बन्धन से मुक्त किया था। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रु को मारें।

९. हरि नामक अश्ववाले, वज्रधर और प्रेरक इन्द्र, तुम प्रीतिकर, वीर और धनी हो। तुम्हारे लिए उपमान की अनेक वस्तुएँ हैं। तुम्हारी अनेक प्राचीन प्रशस्तियाँ भी हैं। ये प्रशस्तियाँ हमारी बुद्धि को सिद्ध करें। इन्द्र और अग्नि शत्रुओं को मारें।

१०. स्तोताओ, दीप्त, धन-पात्र और ऋग्-मंत्र के योग्य इन्द्र को उत्तम स्तुति-द्वारा संस्कृत करो। जो इन्द्र शुष्ण नामक असुर के अपत्यों को मारते हैं, वही स्वर्गीय जल को जीतते हैं। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

११. स्तोताओ, सुन्दर यज्ञवाले, अविनाशी, धनी और याग-योग्य इन्द्र को स्तुति-द्वारा संस्कृत करो। जो इन्द्र यज्ञ के अभिमुख जाते हैं, वे शुष्ण के अण्डों (अपत्यों) को मारते और स्वर्गीय जल को जीतते हैं। इन्द्र और अग्नि सारे शत्रुओं को मारें।

१२. मैंने पिता मान्धाता और अङ्गिरा के समान इन्द्र और अग्नि के लिए नवीन स्तुतियों का पाठ किया है। वे तीन पर्वों (कोठों) वाले गृह-द्वारा हमारा पालन करें। हम धनाधिपति होंगे।

४१ सूक्त

(देवता वरुण। ऋषि नाभाक। छन्द महापंक्ति।)

१. स्तोता, प्रचुर धन की प्राप्ति के लिए, इन वरुण और अतिशय विद्वान् मरुतों के निमित्त स्तुति करो। कर्म-द्वारा वरुण मनुष्यों के पशु की गौओं के समान रक्षा करते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

२. योग्य स्तुति के द्वारा मैं उन वरुण की स्तुति करता हूँ। स्तोत्रों के द्वारा पितरों की स्तुति करता हूँ। नाभाक ऋषि की स्तुतियों के द्वारा स्तुति करता हूँ। वे नदियों के पास उद्गत होते हैं। उनकी सात बहनें हैं। वे मध्यम हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

३. वरुण रात्रियों का आलिङ्गन करते हैं। वे दर्शनीय हैं। वे ऊपर गमन करते हुए माया वा कर्म के द्वारा सारे संसार को धारण करते हैं।

उनके कर्माभिलाषी मनुष्य तीन उषाओं (प्रातः, माध्यन्दिन और सायम्) को वर्द्धित करते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

४. जो वरुण पृथिवी के ऊपर दिशाओं को धारण करते हैं, वे दर्शनीय निर्माता हैं। प्राचीन स्थान (स्वर्ग) और जहाँ हम विचरण करते हैं—इन दोनों स्थानों के स्वामी वरुण हैं। वही ईश्वर होकर हमारी गौओं की रक्षा करते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

५. जो वरुण भुवनों के धारक और रश्मियों के अन्तर्हित तथा गुहा में निहित नामों को जानते हैं, वे ही वरुण प्राज्ञ होकर अनेक कवि-कर्मों (काव्यों) का, द्युलोक के समान, पोषण करते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

६. सारे कवि-कर्म, चक्र की नाभि के समान, जिन वरुण का आश्रय किये हुए हैं, उन्हीं स्थान-त्रयवाले वरुण की शीघ्र परिचर्या करो। जैसे गोशाला में गौ जाती है, वैसे ही हमें हराने के लिए, युद्ध के निमित्त, शत्रु लोग अश्व को जोतते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

७. वरुण सारी दिशाओं को व्याप्त किये हुए हैं। वे शत्रुओं के चारों ओर फैले हुए नगरों का विनाश करते हैं। वरुण के रथ के सम्मुख सारे देवता कर्मानुष्ठान करते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

८. समुद्र-स्वरूप वह वरुण अन्तर्हित होकर शीघ्र ही आदित्य के समान स्वर्गारोहण करते और चारों दिशाओं में प्रजा को दान देते हैं। वे द्युतिमान् पद के द्वारा माया का विनाश करते और स्वर्ग-गमन करते हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

९. अन्तरिक्ष में रहनेवाले जिन वरुण के शुभ्रवर्ण और विलक्षण तीन तेज तीनों भुवनों में प्रसिद्ध हैं, उन वरुण का स्थान अविचल है। वे सातों सिन्धु आदि नदियों के अधीश्वर हैं। वे सारे शत्रुओं को मारें।

१०. जो दिन में अपनी किरणों को शुभ्र वर्ण और रात में कृष्ण-वर्ण करते हैं, उन्हीं वरुण ने अपने कर्म के लिए द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक का निर्माण किया है। जैसे आदित्य द्युलोक को धारण करते हैं, वैसे ही वरुण

ने अन्तरिक्ष के द्वारा द्यावापृथिवी को धारण किया है। वे सारे शत्रुओं को मारें।

४२ सूक्त

(देवता १-३ के वरुण और शेष के अश्विद्वय। ऋषि अर्चनाना वा नाभाक। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. सर्वज्ञ और बली (असुर) वरुण ने द्युलोक को रोक रक्खा था, पृथिवी के विस्तार का परिमाण किया था और सारे भुवनों के सम्राट् होकर आसीन हुए थे। वरुण के ऐसे अनेक कार्य हैं।

२. स्तोता, इस प्रकार बृहत् वरुण की वन्दना करो। अमृत के रक्षण और प्राज्ञ (धीर) वरुण को नमस्कार करो। वरुण हमें तीन तल्लों का मकान दें। हम उनकी गोद में वर्त्तमान हैं। द्यावा-पृथिवी हमारी रक्षा करें।

३. दिव्य वरुण, कर्मानुष्ठान करनेवाले मेरे कर्म, प्रज्ञान और बल को तीक्ष्ण करो। जिसके द्वारा हम सारे दुष्कर्मों को लाँघ सकें, ऐसी सरलता से पार जानेवाली नौका पर हम चढ़ेंगे।

४. सत्यस्वरूप अश्विद्वय, प्राज्ञ ऋत्विक् (विप्र) और अभिषव के समस्त पाषाण, सोमपान के लिए, अपने-अपने कार्यों-द्वारा तुम्हारे अभिमुख जाते हैं। अश्विद्वय सारे शत्रुओं की हिंसा करें।

५. नासत्य अश्विद्वय, प्राज्ञ अत्रि ने जैसे स्तुति-द्वारा, सोमपान के लिए, तुम्हें बुलाया था, वैसे ही मैं बुलाता हूँ। अश्विद्वय सारे शत्रुओं को मारें।

६. नासत्यद्वय, मेधावियों ने जैसे सोमपान के लिए तुम्हें बुलाया था, वैसे ही मैं भी, रक्षा के लिए, बुलाता हूँ। अश्विद्वय सारे शत्रुओं को मारें।

४३ सूक्त

(६ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि अङ्गिरा के पुत्र विरूप। छन्द गायत्री।)

१. हमारे ये स्तोता अग्नि के लिए स्तुति करते हैं। अग्नि मेधावी और विधाता हैं। वे कभी यजमान की हिंसा नहीं करते।

२. जातधन और विशेष दर्शक अग्नि तुम दान देनेवाले हो; इसलिए तुम्हारे लिए सुन्दर स्तुति उत्पन्न करता हूँ।

३. अग्नि तुम्हारी तीखी ज्वालायें आरोचमान पशुओं के समान दाँतों के द्वारा अरण्य का भक्षण करती हैं।

४. हरणशील, वायु-प्रेरित और धूम-ध्वज सारे अग्नि अन्तरिक्ष में अलग अलग जाते हैं।

५. पृथक्-पृथक् समिद्ध ये अग्नि, होताओं के द्वारा, उषा के केतु के समान दिखाई दे रहे हैं।

६. जातप्रज्ञ अग्नि जिस समय पृथिवी पर शुष्क काष्ठ का आश्रय करते हैं, उस समय अग्नि के प्रस्थान-काल में धूलियाँ काली हो जाती हैं।

७. अग्नि ओषधियों को अन्न समझकर और उन्हें खाकर शान्त नहीं होते वे तरुण ओषधियों के प्रति जाते हैं।

८. अग्नि जिह्वा के द्वारा वनस्पतियों को नवाकर अथवा भक्षण कर तेज के द्वारा प्रज्वलित होकर वन में शोभा पाते हैं।

९. अग्नि जल के बीच में तुम्हारे प्रवेश का स्थान है। तुम ओषधियों को रोकते और पुनः उन्हीं के गर्भ में जन्म ग्रहण करते हो।

१०. अग्नि, घृत-द्वारा आहूत जुहू (स्रुक्) के मुँह को तुम चाटते हो। तुम्हारी शिखा शोभा पाती है।

११. जो हव्य भक्षणीय है और जिनका अन्न अभिलषणीय है, उन्हीं सोम-पृष्ठ और अभीष्ट-विधाता अग्नि की हम, स्तोत्र-द्वारा, परिचर्या करते हैं।

१२. देवों को बुलानेवाले और वरणीय-प्रज्ञ अग्नि, नमस्कार और समिधा प्रदान करके तुमसे हम याचना करते हैं।

१३. शुद्ध और आहूत अग्नि, हम तुम्हें भृगु और मनु के समान बलाते हैं।

१४. अग्नि, तुम विप्र, साधु और सखा हो। तुम विप्र, साधु और सखा अग्नि की सहायता से दीप्त होते हो।

१५. अग्नि, तुम हव्यदाता मेधावी को सहस्र-संख्यक धन और वीर पुत्रादि से युक्त अन्न दो।

१६. यजमानों के भ्रातु-भूत, बल के द्वारा उत्पादित, रोहित नामक अश्ववाले और शुद्ध-कर्मा अग्नि, हमारे स्तोत्र का आश्रय करो।

१७. अग्नि, हमारी स्तुतियाँ तुम्हारे पास आ रही हैं। इसी प्रकार गायें उत्सुक होकर और बोलते हुए, बछड़ों के लिए, गोशाला में जाती हैं।

१८. अग्नि, तुम अङ्गिरा लोगों में श्रेष्ठ हो। सारी प्रजायें अभिलषित सिद्धि के लिए तुम्हारे प्रति आसक्त होती हैं।

१९. मनीषी, प्राज्ञ और मेधावी लोग, अन्न-प्राप्ति के लिए, अग्नि को प्रसन्न करते हैं।

२०. अग्नि, तुम बलवान्, हव्यवाहक, होता और प्रसिद्ध हो। जो स्तोता गृह में यज्ञ का विस्तार करते हैं, वे तुम्हारा स्तव करते हैं।

२१. अग्नि, तुम प्रभु और सर्वत्र सभी प्रजा के लिए समदर्शी हो; इसलिए हम तुम्हें संग्राम में बुलाते हैं।

२२. घृत-द्वारा आहुत होकर अग्नि शोभा पाते हैं। जो अग्नि हमारे आह्वान को सुनते हैं, उनकी स्तुति करो।

२३. अग्नि, तुम जातधन, शत्रु-हिंसक और हमारा आह्वान सुननेवाले हो; इसलिए तुम्हें हम बुलाते हैं।

२४. मनुष्यों के ईश्वर, महान् और कर्मों के अध्यक्ष इन अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वे सुनें।

२५. सर्वत्रगामी बलवाले, शक्तिशाली और मनुष्यों के समान हितकर अग्नि को, अश्व के समान, हम बली करेंगे।

२६. अग्नि, तुम हिंसकों को मारकर और राक्षसों को जलाकर तीक्ष्ण तेज के द्वारा दीप्त होओ।

२७. अङ्गिरा लोगों में श्रेष्ठ अग्नि, मनुष्य लोग तुम्हें मनु के समान दीप्त करते हैं। तुम मनुष्य के समान मेरी स्तुति को समझो।

२८. अग्नि, तुम स्वर्गीय और अन्तरिक्षजन्य बल के द्वारा सहसा उत्पन्न किये गये हो। तुम्हें स्तुति-द्वारा हम बुलाते हैं।

२९. ये सब लोग और सारी प्रजा तुम्हें खाने के लिए पृथक्-पृथक् हवीरूप अन्न देते हैं।

३०. अग्नि, तुम्हारे ही लिए हम सुकृती और सर्वदर्शी होकर सारे दुर्गम स्थानों को पार करेंगे।

३१. अग्नि प्रसन्न, बहु-प्रिय, यज्ञ में शयनशील और पवित्र दीप्ति से युक्त हैं। हम हर्षयुक्त स्तोत्र से उनसे याचना करते हैं।

३२. अग्नि, तुम दीप्ति-रोचक हो। सूर्य के समान तुम किरणों के द्वारा बल का विस्तार करते हुए अन्धकार का विनाश करते हो।

३३. बली अग्नि, तुम्हारा जो दान-योग्य और वरणीय धन है, वह क्षीण नहीं होता। उसे हम तुमसे माँगते हैं।

४४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि आङ्गिरा के पुत्र विरूप। छन्द गायत्री।)

१. ऋत्विको, अतिथि के समान अग्नि की, हव्य-द्वारा, परिचर्या करो। हव्य-द्वारा जगाओ, अग्नि में आहुति गिराओ।

२. अग्नि, हमारे स्तोत्र का सेवन करो। इस मनोहर स्तोत्र-द्वारा बढ़ो। हमारे सूक्त की कामना करो।

३. देवों के दूत और हव्यवाहक अग्नि को मैं सम्मुख स्थापित करता हूँ। उनकी स्तुति करता हूँ। वे यज्ञ में देवों को बुलावें।

४. दीप्त अग्नि, तुम्हारे प्रज्वलित होने पर तुम्हारी महती और उज्ज्वल ज्वालायें ऊपर उठती हैं।

५. अभिलाषी अग्नि, हमारी घी देनेवाली स्रुक् तुम्हारे पास जायें। तुम हमारे हव्य का सेवन करो।

६. मैं प्रसन्न होता, ऋत्विक्, विलक्षण-दीप्ति और दीप्ति-धन (विभावसु) अग्नि की स्तुति करता हूँ। वे मेरी स्तुति को सुनें।

७. अग्नि प्राचीन, होता, स्तुतियोग्य, प्रीत, कवि, कार्यकर्त्ता और यज्ञ में आश्रित हैं। उनकी मैं स्तुति करता हूँ।

८. अङ्गिरा लोगों में श्रेष्ठ अग्नि, क्रमशः इन हव्यों का सेवन करो। समय-समय पर यज्ञ को सुसम्पन्न करो।

९. भजनशील और उज्ज्वल दीप्तिवाले अग्नि, तुम समिद्ध (प्रज्वलित) होते ही देव जन को जानकर इस यज्ञ में ले आओ।

१०. अग्नि, मेधावी, होता, द्रोह-शून्य, धूम-ध्वज, विभावसु और यज्ञ के पताका-रूप हैं। उनसे हम अभीष्ट माँगते हैं।

११. बल के द्वारा उत्पादित अग्निदेव, तुम हिंसकों की रक्षा करो। शत्रुओं को फाड़ो।

१२. कान्तकर्मा अग्नि प्राचीन और मनोरम स्तोत्र के द्वारा अपने शरीर को सुशोभित करके विप्र के साथ बढ़ते हैं।

१३. अन्न के पुत्र और पवित्र दीप्तिवाले अग्नि को इस हिंसा-शून्य यज्ञ में बुलाता हूँ।

१४. मित्रों के पूजनीय अग्नि, तुम देवों के सङ्ग उज्ज्वल तेज के साथ, यज्ञ में बैठो।

१५. जो मनुष्य अपने गृह में, धन-प्राप्ति के लिए, अग्नि की परिचर्या करता है, उसे अग्नि धन देते हैं।

१६. देवों के मस्तक, द्युलोक के ककुद् (वृषस्कन्ध की खूँटी) और पृथिवी के पति थे। अग्नि जल के वीर्यस्वरूप प्राणियों को प्रसन्न करते हैं।

१७. अग्नि, तुम्हारी निर्मल, शुभ्रवर्ण और दीप्त प्रभायें तुम्हारे तेज को प्रेरित करती हैं।

१८. अग्नि, तुम स्वर्ग के स्वामी हो; वरणीय और दान-योग्य धन के ईश्वर हो। मैं तुम्हारा स्तोता हूँ। सुख के लिए मैं तुम्हारा स्तोता बनूँ।

१९. अग्नि, मनीषी लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हें ही कर्म के द्वारा प्रसन्न करते हैं। हमारी स्तुतियाँ तुम्हें वर्द्धित करें।

२०. अग्नि, तुम हिंसा-शून्य, बली, देवों के दूत और स्तोता हो। हम सदा तुम्हारी मैत्री के लिए प्रार्थना करते हैं।

२१. अग्नि अतीव शुद्ध-कर्मा, पवित्र, मेधावी और कवि हैं। वे पवित्र और आहूत होकर शोभा पाते हैं।

२२. अग्नि, मेरे कर्म और स्तुतियाँ सदा तुम्हें वर्द्धित करें। हमारे बन्धुत्व-कर्म को तुम सदा समझो।

२३. अग्नि, यदि मैं बहुधन हो जाऊँ; तो भी तुम तुम ही रहोगे और मैं मैं ही रहूँगा। तुम्हारे आशीर्वाद सत्य हों।

२४. अग्नि, तुम वासप्रद, धनपति और दीप्तिधन हो। हम तुम्हारा अनुग्रह पावें।

२५. अग्नि, तुम धृतकर्मा हो। मेरी शब्दवाली स्तुतियाँ उसी प्रकार तुम्हारे लिए गमन करती हैं, जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं।

२६. अग्नि तरुण, लोकपति, कवि, सर्वभक्षक और बहुकर्मा हैं। उन्हें स्तोत्र के द्वारा मैं सुशोभित करता हूँ।

२७. यज्ञ के नेता, तीखी ज्वालावाले और बलवान् अग्नि के लिए हम स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करने की इच्छा करते हैं।

२८. शोधक और भजनीय अग्नि, हमारा स्तोता तुममें आसक्त हो। अग्नि, उसे सुखी करो।

२९. अग्नि, तुम धीर हो, हव्यदान के लिए बैठे हुए मेधावी के समान तुम सदा जागरूक होकर अन्तरिक्ष में प्रदीप्त होते हो।

३०. वासदाता और कवि अग्नि, पापियों और हिंसकों के हाथों से हमें बचाकर हमारी आयु को बढ़ाओ।

४५ सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि कण्वगोत्रीय त्रिशोक । छन्द गायत्री ।)

१. जो ऋषि भली भाँति अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, जिनके मित्र तरुण इन्द्र हैं, वे परस्पर मिलकर कुश बिछाते हैं।

२. इन ऋषियों की समिधा महती है। इनका स्तोत्र प्रचुर है। इनका स्वरूप (यज्ञ) महान् है। युवा इन्द्र इनके सखा हैं।

३. कौन अयोद्धा व्यक्ति शत्रुओं के द्वारा वेष्टित होकर और अपने बल से बलवान् होकर शत्रुओं को नीचा दिखाता है?

४. उत्पन्न होकर इन्द्र ने वाण धारण किया और अपनी माता से पूछा कि "संसार में कौन कौन उग्र बलवाले हैं?"

५. बलवती माता ने उत्तर दिया, "जो तुमसे शत्रुता करना चाहता है, वह पर्वत में दर्शनीय गज के समान युद्ध करता है।"

६. धनी इन्द्र, तुम हमारी स्तुति को सुनो। स्तोता तुम्हारे पास जो चाहता है, उसे वह देते हो। तुम जिसे दृढ़ करते हो, वह दृढ़ होता है।

७. युद्धकर्त्ता इन्द्र जिस समय सुन्दर अश्व की इच्छा से युद्ध में जाते हैं, उस समय वे रथियों में प्रधान रथी होते हैं।

८. वज्रधर इन्द्र, जिससे सारी अभिकांक्षिणी प्रजा वृद्धि को प्राप्त हो, इस प्रकार तुम प्रवृद्ध होओ। हमारे लिए सबसे अधिक अन्नवाले बनो।

९. जिन इन्द्र की हिंसा हिंसक (धूर्त्त) नहीं कर सकते, वे ही इन्द्र हमें अभीष्ट देने के लिए सामने सुन्दर रथ स्थापित करें।

१०. इन्द्र, हम तुम्हारे शत्रुओं के निकट उपस्थित नहीं हों। जिस समय तुम प्रचुर गौवाले होओ, उस समय अभीष्ट प्रदान करनेवाले तुम्हारे ही पास हम उपस्थित हों।

११. वज्रधर इन्द्र, धीरे-धीरे जाते हुए हम अश्ववाले, बहुत धन से युक्त, विलक्षण और उपद्रववाले होंगे।

१२. इन्द्र, यजमान तुम्हारे स्तोताओं के लिए प्रतिदिन सौ और सहस्र, उत्तम और प्रिय वस्तु देता है।

१३. इन्द्र, तुम्हें हम धनञ्जय, पराक्रमशाली शत्रुओं के मंथनकर्त्ता, धनापहारक और गृह के समान उपद्रव से रक्षक जानते हैं।

१४. कवि और धर्षक इन्द्र, तुम वणिक् हो। तुम्हारे पास जिस समय हम अभीष्ट की प्रार्थना करते हैं, उस समय सोम तुम्हें मत्त करे। तुम ककुद् (वृषभस्कन्ध का ऊपरी भाग) या उत्तम हो।

१५. इन्द्र, जो मनुष्य धनी होकर दान नहीं करता और धनदाता तुमसे ईर्ष्या करता है, उसका धन हमारे लिए ले आओ।

१६. इन्द्र, जैसे लोग घास लाकर पशु को देखते हैं, वैसे ही हमारे ये सखा सोमाभिषव करके तुम्हें देखते हैं।

१७. इन्द्र, तुम बहरे नहीं हो। तुम्हारा कान सुननेवाला है; इसलिए रक्षण के लिए हम इस यज्ञ में तुम्हें दूर से बुलाते हैं।

१८. इन्द्र, हमारे इस आह्वान को सुनो और अपने बल को शत्रुओं के लिए दुःसह करो। तुम हमारे समीपतम बन्धु बनो।

१९. इन्द्र, जब हम दरिद्रता के द्वारा पीड़ित होकर तुम्हारे पास जायेंगे और तुम्हारी स्तुति करेंगे, तब हमें गोदान करने के लिए जागना।

२०. बलपति, हम क्षीण होकर, दण्ड के समान, तुम्हें प्राप्त करेंगे। यज्ञ में हम तुम्हारी कामना करेंगे।

२१. प्रचुर-धनी और दानशील इन्द्र के लिए स्तोत्र पाठ करो। युद्ध में उन्हें कोई नहीं हरा सकता।

२२. बली इन्द्र, सोम के अभिषुत होने पर उसी अभिषुत सोम को, पान के लिए, तुम्हें देता हूँ। तृप्त होओ। मदकर सोम का पान करो।

२३. इन्द्र, मूढ़ मनुष्य, रक्षाभिलाषी होकर, तुम्हें न मारें। वे तुम्हें हँसें नहीं। ब्राह्मणद्वेषियों का कभी आश्रय नहीं करना।

२४. इन्द्र, इस यज्ञ में महाधन की प्राप्ति के लिए मनुष्य दुग्धादि से मिले सोमपान से मत्त हों। गौरमृग जैसे सरोवर में जल पीता है, वैसे ही तुम सोमपान करो।

२५. वृत्रघ्न इन्द्र, तुमने दूर देश में जो नया और पुराना धन प्रेरित किया है, उसे यज्ञ में बताओ।

२६. इन्द्र, तुमने यद्र ऋषि के अभिषुत सोम का पान किया है और सहस्रबाहु नामक शत्रु का नाश भी किया है। उस समय इन्द्र का वीर्य अतीव दीप्त हुआ था।

२७. तुर्वश और यदु नामक राजाओं के प्रसिद्ध कर्म को तुमने सच्चा समझकर उनके लिए युद्ध में अह्नवाय्य को व्याप्त किया था।

२८. स्तोताओ, तुम्हारे पुत्रादि के तारक, शत्रु-विमर्दक, गोविशिष्ट, अन्नदाता और साधारण इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ।

२९. जल-वर्द्धक और महान् इन्द्र की, धन देने के लिए, सोमाभिषव होने पर, उक्थों के उच्चारणकाल में, स्तुति करता हूँ।

३०. जिन इन्द्र ने जल-निर्गमन के लिए द्वार-रूप और विस्तृत मेघ को, त्रिशोक ऋषि के लिए, विच्छिन्न किया था, उन्होंने ही जल-गति के लिए मार्ग बनाया था।

३१. इन्द्र, प्रसन्न होकर जो तुम धारण करते हो, जो पूजते हो, जो काम करते हो, सो सब हमारे लिए क्यों नहीं करते? हमें सुखी करो।

३२. इन्द्र, तुम्हारे समान थोड़ा भी कर्म करने पर मनुष्य पृथिवी में प्रसिद्ध हो जाता है। तुम्हारा मन मेरे प्रति गमन करे।

३३. इन्द्र, तुम जिनके द्वारा हमें सुखी करते हो, वे तुम्हारी प्रसिद्धियाँ और स्तुतियाँ तुम्हारी हों।

३४. इन्द्र, एक अपराध करने पर हमें नहीं मारना, दो-तीन अथवा बहुत अपराध करने पर भी हमें नहीं मारना।

३५. इन्द्र, तुम्हारे समान उग्र, शत्रुओं को मारनेवाले, पापियों के विनाशक और शत्रुओं की हिंसा को सहनेवाले देवता से मैं निर्भय होऊँ।

३६. प्रचुर धनवाले इन्द्र, तुम्हारे सखा की समृद्धि की बात को निवेदित करता हूँ, उसके पुत्र की कथा को निवेदित करता हूँ। तुम्हारा मन मुझसे फिर न जाय।

३७. मनुष्यो, इन्द्र के अतिरिक्त कौन अद्वेष्टा सखा, प्रश्न करने के पूर्व ही, सखा को कह सकता है कि मैंने किसको मारा है? कौन हमसे डरकर भागेगा?

३८. अभीष्टदाता इन्द्र, अभिषुत होने पर सोम, एथार नामक व्यक्ति को बहुधन न देकर, धूर्त्त के समान, तुम्हारे पास आता है। नीचे मुंह करके देवता लोग निकल गये।

३९. सुन्दर रथवाले और मंत्र के द्वारा जोते जानेवाले इन दोनों हरि नामक अश्वों को मैं आकृष्ट करता हूँ। तुम ब्राह्मणों को ही यह धन देते हो।

४०. इन्द्र, तुम सारे शत्रुओं को फाड़ो, हिंसा करो, संग्राम को बन्द करो और अभिलषणीय धन ले आओ।

४१. इन्द्र, दृढ़ स्थान पर तुमने जो धन रक्खा है, स्थिर स्थान में जो धन रक्खा है और सन्दिग्ध स्थान में जो धन रक्खा है, वह अभिलषणीय धन ले आओ।

४२. इन्द्र, लोगों को अभिज्ञता में तुम्हारे द्वारा दिया गया जो धन है, उस अभिलषणीय धन को ले आओ।

तृतीय अध्याय समाप्त।

४६ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय। देवता, २१-२४ तक कनीत के पुत्र पृथुश्रवा का दान, २५-२८ और ३२ के वायु, शेष के इन्द्र। ऋषि अश्वपुत्र वश। छन्द ककुप्, गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, सतोबृहती, विराट् जगती, पङ्क्ति, उष्णिक् आदि।)

१. बहु-धनी और कर्म-प्रापक इन्द्र, तुम्हारे समान पुरुष के ही हम आत्मीय हैं। तुम हरि नाम के अश्वों के अधिष्ठाता हो।

२. वज्र इन्द्र, तुम्हें हम अन्नदाता जानते हैं। धनदाता भी जानते हैं।

३. असीम रक्षणों और बहु कर्मोंवाले इन्द्र, तुम्हारी महिमा को स्तोता लोग स्तुति-द्वारा गाते हैं।

४. द्रोह-शून्य मरुद्गण जिसकी रक्षा करते हैं और अर्यमा तथा मित्र जिसकी रक्षा करते हैं, वही मनुष्य सुन्दर यज्ञवाला होता है।

५. आदित्य-द्वारा अनुगृहीत यजमान गौ और अश्ववाला होकर तथा सुन्दर वीर्य से युक्त सदा बढ़ता है। वह बहु-संख्यक और अभिलषणीय धन के द्वारा बढ़ता है।

६. बल का प्रयोग करनेवाले, निर्भय तथा सबके स्वामी उन प्रख्यात इन्द्र के पास हम धन की याचना करते हैं।

७. सर्वत्रगामी, निर्भय और सहायक मरुद्रूप सेना इन्द्र की ही है। गतिपरायण हरि अश्व हर्ष के लिए बहुधन-दाता इन्द्र को अभिषुत सोम के निकट ले आवें।

८. इन्द्र, तुम्हारा जो मद वरणीय है, जिसके द्वारा संग्राम में तुम शत्रुओं का अतीव वध करते हो, जिसके द्वारा शत्रु के पास से धन ग्रहण करते हो और संग्राम में जिसके द्वारा पार हुआ जाता है—

९. सर्व-वरेण्य, युद्ध में दुर्धर्ष शत्रुओं के पारगामी, सर्वत्र विख्यात, सर्वापेक्षा बली और वास-प्रदाता इन्द्र, अपने उसी मद (हर्ष के साथ) हमारे यज्ञ में आओ। हम गोयुक्त गोष्ठ में जायेंगे।

१०. महाधनी इन्द्र, गोप्राप्ति, अश्वलाभ और रथ-संप्राप्ति की हमारी इच्छा होने पर पहले की ही तरह हमें वह सब देना।

११. शूर इन्द्र, सचमुच में तुम्हारे धन की सीमा नहीं जानता। धनी और वज्री इन्द्र, हमें शीघ्र धन दो। अन्न-द्वारा हमारे कर्म की रक्षा करो।

१२. जो इन्द्र दर्शनीय हैं, जिनके मित्र ऋत्विक् लोग हैं, जो बहुतों के द्वारा स्तुत हैं, वे संसार के सारे प्राणियों को जानते हैं, सारे मनुष्य हव्य ग्रहण करके सदा उन्हीं बलवान् इन्द्र को बुलाते हैं।

१३. वे ही प्रचुर धनवाले, मघवा और वृत्रहन्ता इन्द्र युद्धक्षेत्र में हमारे रक्षक और अग्रवर्ती हों।

१४. स्तोताओ, तुम लोगों के हित के लिए सोम-जात मत्तता उत्पन्न होने पर वीर, शत्रुओं की अवनति करनेवाले, विशिष्ट प्रज्ञावाले, सर्वत्र प्रसिद्ध और शक्तिशाली इन्द्र की, तुम्हारी जैसी वाक्य-स्फूर्ति हो, उसके अनुकूल, महती स्तुति-द्वारा, स्तुति करो।

१५. इन्द्र, तुम मेरे शरीर के लिए इसी समय धनवाला बनो। संग्रामों में अन्नवान् धन के दाता बनो। बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र, पुत्रों को धन दो।

१६. सारे धनों के अधिपति और बाधक तथा युद्ध-कम्पन-कर्त्ता शत्रुओं को हरानेवाले इन्द्र की स्तुति करो। वह शीघ्र धन-दान करेंगे।

१७. इन्द्र, तुम महान् हो। मैं तुम्हारे आगमन की कामना करता हूँ। तुम गमनशील हो, सम्पूर्णगामी और सेचक हो। यज्ञ और स्तुति-द्वारा हम तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम मरुतों के नेता हो। सारे मनुष्यों के ईश्वर हो। नमस्कार और स्तुति-द्वारा तुम्हारा गुण-गान करता हूँ।

१८. जो मरुत् मेघों के प्राचीन और बलकर जल के साथ जाते हैं, उन्हीं बहुत ध्वनिवाले मरुतों के लिए हम यज्ञ करेंगे और उस यज्ञ में महाध्वनि-वाले मरुद्गण जो सुख दे सकेंगे, उसे हम प्राप्त करेंगे।

१९. तुम दुष्टबुद्धियों के विनाशक हो। तुम्हारे समीप हम याचना करते हैं। अतीव बली इन्द्र, हमारे लिए योग्य धन ले आओ। तुम्हारी बुद्धि सदा धन-प्रेरण में तत्पर रहती है। देव, उत्तम धन ले आओ।

२०. दाता, उग्र, विचित्र, प्रिय, सत्यवक्ता, शत्रु-पराभवकर्त्ता और सबके स्वामी इन्द्र, शत्रु को हरानेवाले, भोग योग्य तथा प्रवृद्ध धन संग्राम में हमें देना।

२१. अश्व के पुत्र जिन वश ने कन्या के पुत्र (कानीत) पृथुश्रवा राजा से प्रातःकाल धन प्राप्त किया था; इसलिए देव-रहित वश के पूर्ण धन ग्रहण कर लेने के कारण, वश यहाँ आवें।

२२. (आकर वश ने कहा) "मैंने साठ सहस्र और अयुत (दश सहस्र) अश्वों को प्राप्त किया है। बीस सौ ऊँटों को पाया है। काले रंग

की दस सौ घोड़ियों को पाया है। तीन स्थानों में शुभ्र रज्जुवाली दस सहस्र गायों को पाया है।"

२३. दस कृष्णवर्ण अश्व रथ-नेमि (रथ-चक्र का प्रान्त वा परिधि) वहन करते हैं। वे अतीव वेग और बलवाले तथा मन्थन-कर्त्ता हैं।

२४. उत्कृष्ट धनवाले कन्यापुत्र पृथुश्रवा का यही दान है। उन्होंने सोने का रथ दिया है; वे अतीव दाता और प्राज्ञ हैं। उन्होंने अत्यन्त प्रवृद्ध कीर्त्ति प्राप्त की है।

२५. वायु, महान् धन और पूजनीय बल के लिए हमारे समीप आओ। तुम प्रचुर धन देनेवाले हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम महान् धन के दाता हो। तुम्हारे आने के साथ ही हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

२६. सोमपाता, दीप्त और पवित्र सोम के पानकर्त्ता वायु जो पृथुश्रवा अश्वों के साथ आते हैं, गृह में निवास करते हैं और त्रिगुणित सप्तसप्तति गायों के साथ जाते हैं, वे ही तुम्हें सोम देने के लिए सोम संयुक्त हुए हैं और अभिषव-कर्त्ताओं के साथ मिले हैं।

२७. जो पृथुश्रवा "मेरे लिए ये गौ, अश्व आदि देने के लिए हैं" ऐसा विचार कर प्रसन्न हुए थे, उन शोभनकर्मा राजा पृथुश्रवा ने अपने कर्माध्यक्ष अघ्नूव, अक्ष, नहुष और सुकृत्व को आज्ञा दी।

२८. वायु, जो उचथ्य और वपु नाम के राजाओं से भी अधिक साम्राज्य करते हैं, उन घृत के समान शुद्ध राजा ने घोड़ों, ऊँटों और कुत्तों की पीठ से जो अन्न प्रेरित किया है, वह यही है। यह तुम्हारा ही अनुग्रह है।

२९. इस समय धनादि का प्रेरण करनेवाले उन राजा के अनुग्रह से सेचन करनेवाले अश्व के समान साठ हजार प्रिय गायों को भी मैंने पाया।

३०. जैसे गायें अपने झुण्ड में जाती हैं, वैसे ही पृथुश्रवा के दिये हुए बैल मेरे समीप आते हैं।

३१. जिस समय ऊँट वन के लिए भेजे गये थे, उस समय वे एक सौ ऊँट हमारे लिए लाये थे। श्वेतवर्ण गायों के बीच बीस सौ गायें लाये।

३२. मैं विप्र हूँ। मैं गौ और अश्व का रक्षक हूँ। बल्बूथ नामक दास के समीप से मैंने सौ गौ और अश्व पाये थे। वायु, ये सब लोग तुम्हारे ही हैं। ये इन्द्र और देवों के द्वारा रक्षित होकर आनन्दित होते हैं।

३३. इस समय वह स्वर्ण के आभरणों से विभूषित, पूजनीय और राजा पृथुश्रवा के दान के साथ दी गई कन्या को अश्व के पुत्र वश के सामने ले आ रहे हैं।

४७ सूक्त

(देवता आदित्य। ऋषि आप्त्यत्रित। छन्द महापङ्क्ति।)

१. मित्र और वरुण, हवि देनेवाले यजमान के लिए जो तुम्हारा रक्षण है, वह महान् है। शत्रु के हाथ से जिस यजमान को बचाते हो, उसे पाप नहीं छू सकता। तुम लोगों की रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारा रक्षण शोभन है।

२. आदित्यो, तुम लोग दुःख-निवारण को जानते हो। जैसे चिड़ियाँ अपने बच्चों पर पंख फैलाती हैं, वैसे ही तुम हमें सुख दो। तुम लोगों की रक्षा होने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारा रक्षण शोभन रक्षण है।

३. पक्षियों के पक्ष के समान तुम लोगों के पास जो सुख है, उसे हमें प्रदान करो। सर्वधनी आदित्यो, समस्त गृह के उपयुक्त धन तुमसे हम माँगते हैं। तुम्हारे रक्षण करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा सुरक्षा है।

४. उत्तम-चेता आदित्यगण जिसके लिए गृह और जीवन के उपयुक्त अन्न प्रदान करते हैं, उसके लिए ये सारे मनुष्यों के धन के स्वामी हो जाते हैं। तुम्हारी रक्षा में उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा शोभन-रक्षा है।

५. रथ ढोनेवाले अश्व जैसे दुर्गम प्रदेशों का परित्याग कर देते हैं, वैसे ही हम पाप का परित्याग कर देंगे। हम इन्द्र का सुख और आदित्य का रक्षण प्राप्त करेंगे। तुम्हारी रक्षा होने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा सुरक्षा है।

६. क्लेश के द्वारा ही मनुष्य तुम्हारा धन प्राप्त करते हैं। देवो, तुम लोग शीघ्र गमनवाले हो। तुम लोग जिस यजमान को प्राप्त करते हो, वह अधिक धन प्राप्त करता है। तुम्हारी रक्षा होने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा सुरक्षा है।

७. आदित्यो, जिसे तुम विस्तृत सुख प्रदान करते हो, वह व्यक्ति टेढ़ा होने पर भी क्रोध से निर्विघ्न रहता है। उसके पास अपरिहार्य दुःख भी नहीं जाता। तुम्हारी रक्षा होने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

८. आदित्यो, हम तुम्हारे आश्रय में ही रहेंगे। इसी प्रकार योद्धा लोग कवच के आश्रय में रहते हैं। तुम हमें महान् अनिष्ट और अल्प अनिष्ट से बचाओ। तुम्हारी रक्षा होने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

९. अदिति हमारी रक्षा करें; अदिति हमें सुख प्रदान करें। वे धनवती हैं और मित्र, वरुण तथा अर्यमा की माता हैं। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१०. आदित्यो, तुम लोग हमें शरण के योग्य, सेवन के योग्य, रोगशून्य, त्रिगुण-युक्त और गृह के योग्य सुख प्रदान करो। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

११. आदित्यो, जैसे मनुष्य तट से नीचे के पदार्थों को देखता है, वैसे ही तुम ऊपर से नीचे स्थित हमें देखो। जैसे अश्व को अच्छे घाट पर ले जाया जाता है, वैसे ही हमें सन्मार्ग से ले जाओ। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१२. आदित्यो, इस संसार में हमारे हिंसक और बली व्यक्ति को सुख न हो। गौओं, गायों और अन्नाभिलाषी वीर को सुख प्राप्त हो। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१३. आदित्यदेवो, जो पाप प्रकट हुआ है और जो पाप छिपा हुआ है, उनमें से मुझ आप्त्यत्रित को एक भी न हो। इन पापों को दूर रक्खो। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१४. स्वर्ग की पुत्री उषा, हमारी गायों में जो दुष्ट स्वप्न (पीड़ा) है और हमारा जो दुःस्वप्न है, हे विभावरी, वह सब आप्त्यत्रित के लिए दूर कर दो। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१५. स्वर्ग की पुत्री उषा, स्वर्णकार अथवा मालाकार में जो दुःस्वप्न हैं, वह आप्त्यत्रित के पास से दूर हो। तुम्हारी रक्षा करने पर दुःस्वप्न नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१६. स्वप्न में अन्न (मधु, पायस आदि भोज्य) पाने पर आप्त्यत्रित से, दुःस्वप्न से उत्पन्न कष्ट को दूर करो। तुम्हारी रक्षा होने पर उपद्रव नहीं होता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

१७. जैसे यज्ञ में दान के लिए पशु के हृदय, खुर, सींग आदि सब क्रमानुसार विलुप्त अथवा दत्त होते हैं, जैसे ऋण को क्रमशः दिया जाता है, वैसे ही हम आप्त्यत्रित के सारे दुःस्वप्न क्रमशः दूर करेंगे।

१८. आज हम जीतेंगे, आज हम सुख प्राप्त करेंगे, आज हम पाप-शून्य होंगे। उषादेवी, हम दुःस्वप्न से डर गये हैं; इसलिए वह भय दूर हो। तुम्हारी रक्षा करने पर उपद्रव नहीं रहता। तुम्हारी रक्षा ही सुरक्षा है।

४८ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि प्रगाथ कण्वपुत्र। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. मैं सुन्दर प्रज्ञा, अध्ययन और कर्म से युक्त हूँ। मैं अतीव पूजित और स्वादु अन्न का आस्वाद ग्रहण कर सकूँ। विश्वदेवगण और मनुष्य इस अन्न को मनोहर कहकर इसको प्राप्त करते हैं।

२. सोम, तुम हृदय वा यज्ञागार के बीच में गमन करते हो। तुम अदिति हो। तुम देवों के क्रोध को अलग करते हो। इन्दु (सोम), इन्द्र की मैत्री प्राप्त करके तुम उसी प्रकार शीघ्र आकर हमारे धन का वहन करो, जिस प्रकार अश्व भार वहन करता है।

३. अमर सोम, हम तुम्हें पीकर अमर होंगे। पश्चात् द्युतिमान् स्वर्ग में जायेंगे और देवों को जानेंगे। हमारा शत्रु क्या करेगा? मैं मनुष्य हूँ; मेरा हिंसक क्या करेगा?

४. सोम, जैसे पिता पुत्र के लिए सुखकर होता है, वैसे ही पीने पर तुम हृदय के लिए सुखकर होओ। अनेकों द्वारा प्रशंसित सोम, तुम बुद्धिमान् हो। हम लोगों के जीवन के लिए आयु को बढ़ाओ।

५. पिये जाने पर, कीर्तिकर और रक्षणेच्छु सोम मुझे वैसे ही प्रत्येक अङ्ग से कर्म में बाँधे, जैसे पशु रथ की गाँठों में जुतते हैं। सोम मुझे चरित्र-भ्रष्टता से बचावे। मुझे व्याधि से अलग करे।

६. सोम, पिये जाने पर, मथित अग्नि के समान, मुझे दीप्त करो, मुझे विशेष रूप से देखो और मुझे अत्यन्त धनी करो। सोम, इस समय में तुम्हारे हर्ष के लिए स्तुति करता हूँ; इसलिए तुम धनी होकर पुष्टि प्राप्त करो।

७. इच्छुक मन से पैतृक धन के समान अभिषुत सोम का हम पान करेंगे। राजा सोम, तुम हमारी आयु बढ़ाओ। इसी प्रकार सूर्य दिनों को बढ़ाते हैं।

८. राजा सोम, अभिलाषा के लिए हमें सुखी करो। हम व्रतवाले हैं; हम तुम्हारे ही हैं। तुम हमें जानो। इन्द्र, हमारा शत्रु वर्द्धित होकर जा रहा है। क्रोध भी जा रहा है। इन दोनों के दण्ड से हमारा उद्धार करो।

९. सोम, तुम हमारे शरीर के रक्षक हो। तुम कर्म के नेताओं के द्रष्टा हो। इसी लिए तुम सब अङ्गों में बैठते हो। यद्यपि हम तुम्हारे कर्मों में विघ्न करते हैं, तो भी, हे देव, तुम उत्कृष्ट अन्नवाले और उत्तम सखा होकर हमें सुखी करो।

१०. सोम, तुम उदर में व्यथा नहीं उत्पन्न करना। तुम सखा हो। मैं तुम्हारे सङ्ग मिलूंगा। पिये जाने पर सोम मुझे नहीं मारे। हरि अश्वोंवाले इन्द्र, यह जो सोम मुझमें निहित हुआ है; उसी के लिए चिर-काल तक जठर में रहने की प्रार्थना करता हूँ।

११. असाध्य और सुदृढ़ पीड़ायें दूर हों। ये सब पीड़ायें बलवती होकर हमें भली भाँति कम्पित करती हैं। महान् सोम हमारे पास आया है। इसका पान करने से आयु बढ़ती है। हम मानव हैं। हम इसके पास जायेंगे।

१२. पितरो, पिये जाने पर जो सोम अमर होकर हम मर्त्यों के हृदय में पैठा है, हव्य-द्वारा हम उसी सोम की सेवा करेंगे। इस सोम की सुबुद्धि और कृपा में हम रहेंगे।

१३. सोम, तुम पितरों के साथ मिलकर द्यावापृथिवी को विस्तृत करते हो। सोम हवि के द्वारा हम तुम्हारी सेवा करेंगे। हम धनपति होंगे।

१४. त्राता देवो, हमसे मीठे वचन बोलो। स्वप्न हमें वशीभूत नहीं करे। निन्दक हमारी निन्दा न करें। हम सदा सोम के प्रिय हों, ताकि सुन्दर स्तोत्रवाले होकर स्तोत्र का उच्चारण करें।

१५. सोम, तुम चारों ओर से हमारे अन्नदाता हो। तुम स्वर्गदाता और सर्वदर्शी हो। तुम प्रवेश करो। सोम, तुम प्रसन्नता के साथ, रक्षण को लेकर, पीछे और सामने हमें बचाओ।

४९ सूक्त

(७ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि प्रगाथपुत्र भर्ग। छन्द बृहती और सतोबृहती।)

१. अग्नि, अन्य अग्निगण के साथ आओ। तुम्हें होता जानकर हम वरण करते हैं। अध्वर्युओं के द्वारा नियत और हविवाली यजनीय श्रेष्ठ तुम्हें कुश पर बैठाकर अलंकृत करे।

२. बल के पुत्र और अङ्गिरा लोगों में अन्यतम अग्नि, यज्ञ में तुम्हें प्राप्त करने के लिए स्रुक् जाती है। अन्न-रक्षक बल के पुत्र, प्रदीप्त ज्वालावाले और प्राचीन अग्नि की हम यज्ञ में स्तुति करते हैं।

३. अग्नि, तुम कवि (मेधावी), फलों के विधाता, पावक, होता और होम-सम्पादक हो। दीप्त अग्नि, तुम आमोदनीय और सर्वोच्च यजनीय हो। यज्ञ में विप्र लोग मनन-मन्त्र-द्वारा तुम्हारा स्तोत्र करते हैं।

४. युवतम और नित्य अग्नि, मैं द्रोह-शून्य हूँ। देवता लोग मेरी कामना करते हैं। हवि भक्षण के लिए उन्हें यहाँ ले आओ। वासदाता अग्नि, सुन्दर रीति से निहित अन्न के समीप जाओ। स्तुति-द्वारा निहित होकर प्रसन्न होओ।

५. अग्नि, तुम रक्षक, सत्य-स्वरूप, कवि और सर्वतः विस्तृत हो। समिध्यमान और दीप्त अग्नि, विप्र स्तोता लोग तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

६. अतीव पवित्र अग्नि, दीप्त होओ और प्रदीप्त करो। प्रजा और स्तोता के लिए सुख प्रदान करो। तुम महान् हो। मेरे स्तोता लोग देव-प्रदत्त सुख प्राप्त करें। वे शत्रु-जेता और सुन्दर अग्नि से युक्त हों।

७. अग्नि और मित्रों के पूजक, पृथिवी के सूखे काठ को तुम जैसे जलाते हो, वैसे ही हमारे द्रोही और हमारी दुर्बुद्धि चाहनेवाले को जलाओ।

८. अग्नि, हमें हिंसक और बली मनुष्य के वश में मत करना। हमारे अनिष्ट चाहनेवाले के वश में हमें नहीं करना। युवतम अग्नि, अहिंसक, उद्धारक और सुखकर रक्षणों से हमारी रक्षा करो।

९. अग्नि, हमें एक ऋक् के द्वारा बचाओ। हमें द्वितीय ऋक् के द्वारा बचाओ। बली अग्नि, हमें तीन ऋकों के द्वारा बचाओ। वासदाता अग्नि, हमें चार वाक्यों के द्वारा बचाओ।

१०. सारे राक्षसों और अदाता से हमें बचाओ। युद्ध में हमारी रक्षा करो। तुम निकटवर्त्ती और बन्धु हो। यज्ञ और समृद्धि के लिए हम तुम्हें प्राप्त करेंगे।

११. शोधक अग्नि, हमें अन्न-वर्द्धक और प्रशंसनीय धन प्रदान करो। समीपवर्त्ती और धनदाता अग्नि, हमें सुनीति के द्वारा अनेकों-द्वारा स्पृहणीय और अतीव कीर्त्तिकर धन दो।

१२. जिस धन के द्वारा हम युद्ध में क्षिप्रकारी शत्रु और अस्त्र-क्षेपकों के हाथों से उद्धार पाकर उन्हें मारेंगे, उसे हमें दो। तुम प्रज्ञा-द्वारा वासदाता हो। हमें वर्द्धित करो। अन्न के द्वारा वर्द्धित करो। हमारे धन देनेवाले कर्मों को सुसम्पन्न करो।

१३. वृषभ के समान अपने शृंग (ज्वाला) को वर्द्धित करते हुए अग्नि मस्तक कँपा रहे हैं। अग्नि के हनु (ज्वाला) तीक्ष्ण हैं; कोई उनका निवारण नहीं कर सकता। अग्नि के दाँत उत्तम हैं। वे बल के पुत्र हैं।

१४. वृष्टिदाता अग्नि, तुम बढ़ते हो; इसलिए तुम्हारे दाँत (ज्वाला) का कोई निवारण नहीं कर सकता। अग्नि, तुम होता हो। तुम हमारे हव्य का भली भाँति हवन करो। हमें वरणीय बहुधन दान करो।

१५. अग्नि, मातृरूप वन में वर्त्तमान अरणि-द्वय में तुम रहते हो। मनुष्य तुम्हें भली भाँति वर्द्धित करते हैं। पीछे तुम आलस्यशून्य होकर हव्यदाता के हव्य को देवों के निकट ले जाओ। अनन्तर देवों के बीच शोभा पाओ।

१६. अग्नि, तुम्हारी स्तुति सात होता करते हैं। तुम अभिमतदाता और प्रवृद्ध हो। तुम तापक तेज के द्वारा मेघ को फाड़ते हो। अग्नि, हमें अतिक्रम करके आगे जाओ।

१७. स्तोताओ, तुम्हारे लिए हम अग्नि का ही आह्वान करते हैं। हमने कुश को छिन्न किया है और हव्य का विधान किया है। अग्नि कर्म-धारक अनेक लोकों में वर्तमान और सारे यजमानों के होता हैं।

१८. अग्नि, उत्तम साम (रथन्तर आदि से युक्त) और सुखवाले यज्ञ में यजमान, प्रज्ञा से युक्त मनुष्य के साथ, तुम्हारी स्तुति करता है।

अग्नि, हमारी रक्षा के लिए, अपनी इच्छा से, निकटवर्ती और नाना-रूपधारी अन्न के आओ।

१९. देव और स्तुत्य अग्नि, तुम प्रजा के पालक और राक्षसों के सन्तापक हो। तुम यजमान के गृह-रक्षक हो। उसे तुम कभी नहीं छोड़ते। तुम महान् हो। तुम द्युलोक के पाता हो। तुम यजमान के गृह में सदा वर्तमान हो।

२०. दीप्तधन अग्नि, हमारे अन्दर राक्षस आदि प्रविष्ट न हों। यातुधान लोगों को न प्रविष्ट हो। दरिद्रता, हिंसक और बली राक्षसों को बहुत दूर रखना।

५० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि प्रगाथपुत्र भर्ग। छन्द बृहती और सतोबृहती।)

१. इन्द्र, हमारे स्तोत्र-रूप और शस्त्रात्मक वाक्यों को सुनें। हमारे सहगामी कर्म से युक्त होकर धनी और बली इन्द्र सोमपान के लिए आवें।

२. द्यावापृथिवी ने उन शोभन और वृष्टिवाला इन्द्र का संस्कार किया था। उन इन्द्र का बल के लिए संस्कार किया था। इसी लिए, हे इन्द्र, तुम उपमान देवों में मुख्य होकर वेदी पर बैठो। तुम्हारा मन सोमाभिलाषी है।

३. प्रचुर-धनी इन्द्र, तुम जठर में अभिषुत सोम का सिंचन करो। हरि अश्वोंवाले इन्द्र, तुम्हें हम युद्ध में शत्रुओं का पराजेता, न दबाने योग्य और दूसरों को दबानेवाला जानते हैं।

४. धनी इन्द्र, तुम वस्तुतः अहिंसित हो। जिस प्रकार हम कर्म के द्वारा फल की कामना कर सकें, वैसा ही हो। शिरस्त्राणवाले वज्रधर इन्द्र, तुम्हारे रक्षण में हम अन्न का सेवन करेंगे और शीघ्र ही शत्रुओं को पराजित करेंगे।

५. यज्ञपति इन्द्र, सारी रक्षाओं के साथ अभिमत फल प्रदान करो। शूर, तुम यशस्वी और धन-प्रापक हो। भाग्य के समान हम तुम्हारी सेवा करते हैं।

६. इन्द्र, तुम अश्वों के पोषक, गौओं की संख्या बढ़ानेवाले, सोने के शरीरवाले और निर्भर स्वरूप हो। हम लोगों के लिए तुम जो दान करने की कामना करते हो, उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता। फलतः मैं जो याचना करता हूँ, उसे ले आओ।

७. इन्द्र, तुम आओ। धन-दान के लिए अपने सेवक को भजनीय धन दो। मैं गौ चाहता हूँ। मुझे गौ दो। मैं अश्व चाहता हूँ। मुझे अश्व दो।

८. इन्द्र, तुम अनेक सौ और अनेक सहस्र गौओं का समूह दाता यजमान को देते हो। नगर-भेदक इन्द्र का, रक्षण के लिए स्तव करते हुए विविध वचनों से युक्त होकर हम उन्हें अपनी ओर ले आवेंगे।

९. शतक्रतु, अपराजेय क्रोधवाले और संग्राम में अहंकारी इन्द्र, जो बुद्धि-हीन वा बुद्धिमान् तुम्हारी स्तुति करता है, तुम्हारी कृपा से वह आनन्दित होता है।

१०. उग्रबाहु, वधकर्त्ता और पुरी-भेदक इन्द्र यदि मेरा आह्वान सुनें, तो हम धन की अभिलाषा से धनपति और बहुकर्मा इन्द्र को स्तोत्र द्वारा बुलावेंगे।

११. अब्रह्मचारी हम इन्द्र को नहीं मानते। धन-शून्य और अग्नि-रहित हम इन्द्र को नहीं जानते। फलतः इस समय हम, सोमाभिषव होने पर धन वर्धक के लिए इकट्ठे होकर उन्हें अपना मित्र बना लेंगे।

१२. उग्र और युद्ध में शत्रुओं के विजेता इन्द्र को हम युक्त करेंगे। उनकी स्तुति ऋण के समान अवश्य फल देनेवाली है। वे अहिंसनीय, रथपति इन्द्र अनेक अश्वों में वेगवान् अश्व को पहचानते हैं। वे दाता हैं। वे अनेक यजमानों में हमें प्राप्त हुए हैं।

१३. जिस हिंसक से हम भय पाते हैं, उससे हमें अभय करो। मघवन्, तुम समर्थ हो। हमें अभय प्रदान करने के लिए रक्षक पुरुषों के द्वारा शत्रुओं और हिंसकों को विनष्ट करो।

१४. धनस्वामी तुम्हीं मघाघन के, सेवक के गृह के वर्द्धक हो। मघवा और स्तुति-पात्र इन्द्र, ऐसे तुमको हम, सोमाभिषव करके, बुलाते हैं।

१५. यह इन्द्र सबके ज्ञाता, वृत्रहन्ता पर पालक और वरणीय हैं। वे इन्द्र हमारे पुत्र की रक्षा करें। वे चरमपुत्र की रक्षा करें और मध्यम पुत्र की रक्षा करें। वे हमारे पीछे और सामने दोनों दिशाओं में रक्षा करें।

१६. इन्द्र, तुम हमें आगे, पीछे, नीचे, ऊपर—चारों ओर से रक्षा करो। इन्द्र हमारे यहाँ से दैव-भय दूर करो और असुर आयुध भी दूर करो।

१७. इन्द्र, आज-कल, और परसों हमारी रक्षा करना। साधु-रक्षक इन्द्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं। सारा दिन हमारी रक्षा करना।

१८. ये धनी, वीर और प्रचुरधनी इन्द्र, वीरत्व के लिए, सबके साथ मिलते हैं। शतक्रतु इन्द्र, वह तुम्हारी अभिलाषप्रद दोनों भुजायें वज्र ग्रहण करें।

५१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कण्वपुत्र प्रगाथ। छन्द पङ्क्ति और बृहती।)

१. इन्द्र सेवा करते हैं; इसलिए उनको लक्ष्यकर स्तुति करो। लोग सोम-प्रिय इन्द्र के प्रचुर अन्न को उक्थ मन्त्रों के द्वारा वर्द्धित करते हैं। इन्द्र का दान कल्याणकारक है।

२. असहाय, असम देवों में मुख्य और अविनाशी इन्द्र पुरातन प्रजा को अतिक्रम करके बढ़ते हैं। इन्द्र का दान कल्याणवाहक है।

३. शीघ्रदाता इन्द्र अप्रेरित अश्व की सहायता से भोग करने की इच्छा करते हैं। इन्द्र, तुम सामर्थ्यवाता हो। तुम्हारा महत्त्व स्तुत्य है। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

४. इन्द्र, आओ। हम तुम्हारी उत्साहवर्द्धक और उत्कृष्ट स्तुति करते हैं। सबसे बली इन्द्र, इन स्तुति के द्वारा अस्वेच्छु स्तोता का मङ्गल करने की इच्छा करते हो। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

५. इन्द्र, तुम्हारा मन अतीव धृष्ट है। मदकर सोम के प्रदान-द्वारा सेवा करनेवाले और नमस्कार-द्वारा विभूषित करनेवाले यजमान को असीम फल देते हो। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

६. इन्द्र, तुम स्तुति-द्वारा परिच्छिन्न होकर हमें उसी प्रकार देख रहे हो, जिस प्रकार मनुष्य कूप का दर्शन करता है। इन्द्र प्रसन्न होकर सोमवाले यजमान के योग्य बन्धु होते हैं। इन्द्र का दान महाकल्याणकर है।

७. इन्द्र, तुम्हारे वीर्य और तुम्हारी प्रज्ञा का अनुधावन करते हुए सारे देवगण वीर्य और प्रज्ञा को धारण करते हैं। इन्द्र, प्रसिद्ध गायों अथवा वचनों के स्वामी हो। बहुतों द्वारा स्तुत इन्द्र, तुम्हारा दान कल्याणवाहक है।

८. इन्द्र, तुम्हारे उस उपमान बल की, यज्ञ के लिए, मैं स्तुति करता हूँ। यज्ञपति, बल के द्वारा तुमने वृत्र का वध किया है। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

९. प्रेमवाली रमणी जैसे रूपाभिलाषी पुरुष को वशीभूत करती है, वैसे ही इन्द्र मनुष्यों को वशीभूत करते हैं। मनुष्य संवत्सर आदि के काल को प्राप्त करते हैं। इन्द्र ही उसे बता देते हैं। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

१०. इन्द्र, अनेक पशुओंवाले जो यजमान तुम्हारे दिये सुख का भोग करते हैं, वे तुम्हारे उत्पन्न बल को प्रभूत रूप से वर्द्धित करते हैं, तुम्हें

वर्द्धित करते हैं, तुम्हारी प्रज्ञा को वर्द्धित करते हैं। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

११. इन्द्र, जब तक धन न मिले, तब तक हम मिलित रहें। बृत्रघ्न, वज्री और शूर इन्द्र, अदाता व्यक्ति भी तुम्हारे दान की प्रशंसा करेगा। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

१२. हम लोग निश्चय ही इन्द्र की सत्य स्तुति करेंगे। असत्य स्तुति नहीं करेंगे। इन्द्र यज्ञ-पराङ्मुख लोगों का बध, बड़ी संख्या में करते हैं। वे अभिषव करनेवाले को प्रभूत ज्योति प्रदान करते हैं। इन्द्र का दान कल्याणकर है।

५२ सूक्त

(देवता इन्द्र। अन्तिम ऋचा के देवता देवगण। ऋषि कण्व के पुत्र प्रगाथ। छन्द अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् और गायत्री।)

१. इन्द्र मुख्य हैं वे पूजनीयों के कर्मों से कान्त हैं। वे आते हैं। देवों के बीच पिता मनु ने ही इन्द्र को पाने के उपायों को प्राप्त किया था।

२. सोमाभिषव में लगे हुए पत्थरों ने स्वर्ग के निर्माता इन्द्र को नहीं छोड़ा था। उक्थों और स्तोत्रों का उच्चारण करना चाहिए।

३. विद्वान् इन्द्र ने अङ्गिरा लोगों के लिए गौओं को प्रकट किया था। इन्द्र के उस पुरुषत्व की मैं स्तुति करता हूँ।

४. पहले की तरह इस समय भी इन्द्र कवियों के वर्द्धक हैं। वे होता के कार्य-निर्वाहक हैं। वे सुखकर और पूजनीय सोम के हवन-समय में हमारी रक्षा के लिए जायें।

५. इन्द्र, स्वाहा देवी के पति अग्नि के लिए यज्ञ-कर्त्ता तुम्हारी ही कीर्ति का गान करते हैं। शीघ्र धन-दान के लिए स्तोता लोग इन्द्र की स्तुति करते हैं।

६. सारे वीर्य और सारे कर्त्तव्य-कर्म्म इन्द्र में वर्त्तमान हैं। स्तोता लोग इन्द्र को अध्वर (अहिंसक) कहते हैं।

७. जिस समय चारो वर्ण और निषाद इन्द्र के लिए स्तुति करते हैं, उस समय इन्द्र अपनी महिमा से शत्रुओं का वध करते हैं। स्वामी (आर्य) इन्द्र स्तोता की पूजा के निवास-स्थान हैं।

८. इन्द्र, तुमने उन सब पुरुषत्व-पूर्ण कार्यों को किया है; इसलिए यह तुम्हारी स्तुति की जाती है। चक्र के मार्ग की रक्षा करो।

९. वर्षक इन्द्र के दिये हुए नानाविध अन्न पा जाने पर सब लोग जीवन के लिए नाना प्रकार के कर्म करते हैं। पशुओं की ही तरह वे यव (जौ) ग्रहण करते हैं।

१०. हम स्तोता और रक्षणाभिलाषी हैं। ऋत्विको, तुम्हारे साथ हम मरुतों से युक्त इन्द्र के वर्द्धन के लिए अन्न के स्वामी होंगे।

११. इन्द्र, तुम यज्ञ के समय में उत्पन्न और तेजस्वी हो। शूर इन्द्र, मन्त्रों के द्वारा हम सचमुच तुम्हारी स्तुति करेंगे। तुम्हारे साहाय्य से हम जय-लाभ करेंगे।

१२. जल सेचन करनेवाले और भयंकर मेघ अथवा मरुत् तथा युद्ध के आह्वान पर आनन्द से युक्त जो वृत्रघ्न इन्द्र स्तोता और शस्त्र-पाठक यजमान के निकट वेग से आगमन करते हैं, वे भी हमारी रक्षा करें। देवों में इन्द्र ही ज्येष्ठ हैं।

५३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि प्रगाथ। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र, तुम्हें स्तुतियाँ भली भाँति प्रमत्त करें। वज्री इन्द्र, धन प्रदान करो। स्तुति-विद्वेषियों का विनाश करो।

२. लोभी और यज्ञ-धन-शून्य लोगों को पैर से रगड़ डालो। तुम महान् हो। तुम्हारा कोई प्रति-द्वन्द्वी नहीं है।

३. तुम अभिषुत सोम के ईश्वर हो—अनभिषुत सोम के भी तुम ईश्वर हो। जनता के तुम राजा हो।

४. इन्द्र, आओ। मनुष्यों के लिए यज्ञ-गृह को शब्द से पूर्ण करते हुए, स्वर्ग से आओ। तुम वृष्टि-द्वारा द्यावापृथिवी को परिपूर्ण करते हो।

५. तुमने स्तोताओं के लिए पर्व (टुकड़े) वाले सौ प्रकार के जल-वाले और असीम (सहस्र) जलवाले मेघ को, स्तोताओं के लिए, तुमने विदीर्ण किया है।

६. सोम के अभिषुत होने पर हम दिन-रात तुम्हारा आह्वान करते हैं। हमारी अभिलाषा पूर्ण करो।

७. वे वृष्टिदाता, नित्य तरुण, विशाल कंधावाले और किसी से नीचा न देखनेवाले इन्द्र कहाँ हैं? कौन स्तोता उनकी स्तुति करता है?

८. वृष्टिदाता इन्द्र, प्रसन्न होकर, आते हैं। कौन यजमान इन्द्र की स्तुति करना जानता है?

९. यजमान का दिया हुआ दान तुम्हारी सेवा करता है। वृत्रघ्न इन्द्र, शस्त्र-मन्त्र पढ़ने के समय सुन्दर वीर्यवाले स्तोत्र तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम कैसे हो? युद्ध में तुम्हारा कौन निकटवर्त्ती होता है?

१०. मनुष्यों के बीच में तुम्हारे लिए सोमाभिषव करता हूँ। उसके पास आओ। शीघ्रगामी होओ और उसका पान करो।

११. यह प्रिय सोम तट तृणवाले पुष्कर (कुरुक्षेत्रस्थ), सुषोमा (सोहान नदी) और आर्जी की या (पिपासा = व्यास नदी) के तीर में तुम्हें अधिक प्रमत्त करता है।

१२. हमारे धन और शत्रुविनाशिनी मत्तता के लिए आज तुम उसी मनोहर सोम का पान करो। इन्द्र, शीघ्र सोमपात्र की ओर जाओ।

५४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि प्रगाथ। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र, तुम्हें लोग पूर्व, पश्चिम, उत्तर और निम्न दिशाओं में बुलाते हैं; इसलिए अश्वों की सहायता से शीघ्र आओ।

२. तुम द्युलोक के अमृत चुलानेवाले स्थान पर प्रमत्त होते हो। तुम भूलोक में प्रमत्त होते हो। तुम अन्न के अपादान अन्तरिक्ष में प्रमत्त होते हो।

३. इन्द्र, तुम्हें मैं स्तुति के द्वारा बुलाता हूँ। तुम महान् और यथेष्ट हो। सोमपान और भोग के लिए तुम्हें मैं गाय की तरह बुलाता हूँ।

४. रथ में जोते हुए अश्व तुम्हारी महिमा और तुम्हारे तेज को ले आवें।

५. इन्द्र, तुम वाक्य और स्तुति-द्वारा स्तुत होते हो। तुम महान् उग्र और ऐश्वर्यकर्त्ता हो। आकर सोम पियो।

६. हम अभिषुत सोम और अन्नवाले होकर तुम्हें, अपने कुश पर बैठने के लिए बुलाते हैं।

७. इन्द्र, तुम अनेक यजमानों के लिए साधारण हो; इसलिए हम तुम्हें बुलाते हैं।

८. पत्थर से सोमीय मधु को अध्वर्यु लोग अभिषुत करते हैं। प्रसन्न होकर तुम उसे पियो।

९. इन्द्र, तुम स्वामी हो। तुम सारे स्तोताओं को, अतिक्रम करके, देखो। शीघ्र आओ। हमें महा अन्न प्रदान करो।

१०. इन्द्र हिरण्यवर्ण गौओं के राजा हैं। वे हमारे राजा हों। देवो, इन्द्र हिंसित न हों।

११. मैं गौओं के ऊपर धारित, विशाल, विस्तृत, आह्लादकर और निर्मल हिरण्य को स्वीकृत करता हूँ।

१२. मैं अरक्षित और दुःखी हूँ। मेरे मनुष्य असीम धन से धनी हों। देवों के प्रसन्न होने पर यश की प्राप्ति होती है।

५५ सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि प्रगाथ के पुत्र कलि । छन्द बृहती, सतोबृहती, और अनुष्टुप् ।)

१. ऋत्विको, वेगशाली अश्वों की सहायता से जो धन-दान करते हैं, उन्हीं इन्द्र के लिए साम-गान करके तुम लोग बाधा-मुक्त होकर उनकी परिचर्या करो। जैसे लोग हितैषी और कुटुम्ब-पोषक व्यक्ति को बुलाते हैं, मैं भी अभिषुत सोमवाले यज्ञ में उन इन्द्र को बुलाता हूँ।

२. दुर्द्धर्ष शत्रु लोग सुन्दर जबड़ेवाले इन्द्र को बाधा नहीं दे सकते। स्थिर देवगण भी इन्द्र का निवारण नहीं कर सकते। मनुष्यगण भी निवारण नहीं कर सकते। इन्द्र सोमोत्पन्न आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रशंसक और सोमाभिषवकर्त्ता को दान देते हैं।

३. जो इन्द्र (शक्र) परिचर्या के योग्य, अश्वविद्या-कुशल, अद्भुत, हिरण्मय, आश्चर्यभूत और वृत्रघ्न हैं, इन्द्र अनेक गोसमूहों को अपावृत करके कँपाते हैं—

४. जो भूमि पर स्थापित और संगृहीत धनों को यजमान के लिए ऊपर उठाते हैं, वही वज्रधर, उत्तम हनु (जबड़े) वाले और हरित वर्ण अश्ववाले इन्द्र जो इच्छा करते हैं, उसे ही कर्म-द्वारा सिद्ध कर डालते हैं।

५. बहुतों के द्वारा स्तुत और वीर इन्द्र, पहले के समान स्तोताओं के समीप जो तुमने कामना की थी, उसे हम तुम्हें तुरत प्रदान करते हैं। वह चाहे यज्ञ रहा हो, उक्थ रहा हो अथवा वाक्य रहा हो, तुम्हें हम दे रहे हैं।

६. बहु-स्तुत, वज्रधर, स्वर्ग-सम्पन्न और सोमपाता इन्द्र, सोमाभिषव होने पर मद-युक्त होओ। तुम्हीं सोमाभिषव-कर्त्ता के लिए सबसे अधिक कमनीय धन के दाता बनो।

७. हम अभी और कल इन्द्र को सोम से प्रसन्न करेंगे। उन्हीं के लिए इस युद्ध में अभिषुत सोम को ले आओ। स्तोत्र सुनने पर वे आवें।

८. यद्यपि चोर सबका निवारक और पथिकों का विनाशक है, तो भी इन्द्र के कार्य में व्याघात नहीं कर सकता। इन्द्र, तुम प्रसन्न होकर आओ। इन्द्र विचित्र कर्म के बल से विशेष रूप से आओ।

९. कौन-सा ऐसा पुरुषत्व है, जिसे इन्द्र ने नहीं किया है? ऐसा कौन-सा इन्द्र का पौरुष है, जिसे नहीं सुना गया है? इन्द्र का वृत्रवध तो उनके जन्म आदि से ही सुना जा रहा है।

१०. इन्द्र का महाबल कब अधर्षक हुआ था। इन्द्र का वध्य कब अवध्य रहा? इन्द्र सारे सूदखोरों, दिन गिननेवालों (पारलौकिक दिनों से शून्यों) और वणिकों को ताड़न आदि के द्वारा दबाते हैं।

११. वृत्रघ्न, वज्रधर और बहु-स्तुत इन्द्र भृति (वेतन) के समान तुम्हारे ही लिए हम लोग अभिनव स्तोत्र प्रदान करते हैं।

१२. बहुकर्मा इन्द्र, अनेक आशायें तुममें ही निहित हैं, रक्षायें भी तुममें ही हैं। स्तोता लोग तुम्हें बुलाते हैं। फलतः इन्द्र, शत्रु के सारे सवनों को लाँघकर हमारे सवन में आओ। महाबली इन्द्र, हमारे आह्वान को सुनो।

१३. इन्द्र, हम तुम्हारे ही हैं, हम तुम्हारे स्तोता हुए हैं। बहु-स्तुत इन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई सुखप्रद नहीं है।

१४. इन्द्र, तुम हमें इस दारिद्र्य, इस क्षुधा और इस निन्दा के हाथ से मुक्त करो। हमारे लिए तुम रक्षण और विचित्र कर्म के द्वारा अभिलषित पदार्थ प्रदान करो।

१५. तुम्हारे ही लिए सोम अभिषुत हो। कलि ऋषि के पुत्रो, मत डरो। ये राक्षस आदि दूर जा रहे हैं। ये स्वयं दूर भाग रहे हैं।

५६ सूक्त

(देवता आदित्यगण। ऋषि समद नामक महामीन के पुत्र मत्स्य या मित्र और वरुण के पुत्र मान्य अथवा जालबद्ध अनेक मत्स्य। छन्द गायत्री।)

१. अभिमत फल की प्राप्ति अथवा जाल से निकलने के लिए सुख-दाता और जाति के क्षत्रिय आदित्यों से हम रक्षण की याचना करते हैं।

२. मित्र, वरुण, अर्यमा और आदित्यगण दुःसह कार्य को जानते हैं; इसलिए वे हमें पाप से (रोग से) पार कर दें।

३. आदित्यों के पास विचित्र और स्तुति-योग्य धन है। वह धन हव्यदाता यजमान के लिए है।

४. वरुण आदि देवो, तुम महान् हो। हव्यदाता के प्रति तुम्हारी रक्षा महती है। फलतः हम तुम्हारी रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

५. आदित्यो, हम (मत्स्य) अभी (जाल-बद्ध होने पर भी) जीवित हैं। इस समय हमारे सामने आओ। आह्वान सुननेवालो, मृत्यु के पहले आना।

६. श्रान्त अभिषव-कर्त्ता यजमान के लिए तुम्हारे पास जो वरणीय धन है, जो गृह है, उनसे हम लोगों को प्रसन्न करके हमसे अच्छी बातें कहो।

७. देवो, पापी के पास महापाप है और पाप-शून्य व्यक्ति के पास रमणीय कल्याण है। पाप-शून्य आदित्यो, हमारा अभिमत सिद्ध करो।

८. यह इन्द्र जाल से हमें न बाँधें। महान् कर्म के लिए हमें जाल से छोड़ दें। इन्द्र विश्रुत और सबके वश-कर्त्ता हैं।

९. देवो, तुम हमें छोड़ो। हमें बचाने की इच्छा करके हिंसक शत्रुओं के जाल से हमें नहीं बाधा देना।

१०. देवी अदिति, तुम महती और सुखदात्री हो। अभिलषित फल की प्राप्ति के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

११. अदिति, चारों ओर से हमें बचाओ। क्षीण और उग्र पुत्रवाले जल में हिंसक का जाल हमारे पुत्र को नहीं मारे।

१२. विस्तृत गमनवाली और गुरुतर अदित, पुत्र के जीवन के लिए तुम हम पाप-शून्यों को जीवित रक्खो।

१३. सबके शिरोमणि, मनुष्यों के लिए अहिंसक, सुन्दर कीर्त्तिवाले और द्रोह-शून्य होकर जो हमारे कर्म की रक्षा करते हैं—

१४. आदित्यो, वही तुम हिंसकों के पास से, पकड़े गये चोर के समान, हमारी रक्षा करो।

१५. आदित्यो, यह जाल हमारी हिंसा करने में असमर्थ होकर दूर हो। हमारी दुर्बुद्धि भी दूर हो।

१६. सुन्दर दानवाले आदित्यो, तुम्हारे रक्षणों से हम पहले के समान इस समय भी नानाविध भोगों का उपभोग करेंगे।

१७. प्रकृष्ट ज्ञानवाले देवो, जो पापी शत्रु बार-बार हमारी ओर आता है, हमारे जीवन के लिए उसे अलग करो।

१८. आदित्यो, बन्धन जैसे बद्ध पुरुष को छोड़ता है, वैसे ही तुम्हारे अनुग्रह से जो जाल हमें छोड़ता है, यह स्तुत्य और भजनीय है।

१९. आदित्यो, तुम्हारे समान हमारा वेग नहीं है। यह वेग हमें मुक्त करने में समर्थ है। तुम हमें सुखी करो।

२०. आदित्यो, विवस्वान् के आयुध के समान यह कृत्रिम जाल पहले और इस समय हम जीर्ण व्यक्तियों को न मारे।

२१. आदित्यो, द्वेषियों का विनाश करो। पापियों का विनाश करो। जाल का विनाश करो। सर्वव्यापक पाप का विनाश करो।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

५७ सूक्त

(पञ्चम अध्याय। देवता इन्द्र, शेष ६ ऋकों के ऋत्त और अश्वमेध की दानस्तुति। ऋषि अङ्गिरोगोत्रोत्पन्न प्रियमेध। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अतीव बली और सत्पति इन्द्र, तुम बहुकर्मा और हिंसकों के अभिभवकारी हो। रक्षण और सुख के लिए, रथ के समान, हम तुम्हें आवर्त्तित करते हैं।

२. प्रचुर बलवाले, अतीव प्राज्ञ, बहुकर्मा और पूजनीय इन्द्र, विश्व-व्यापक महत्त्व के द्वारा तुमने जगत् को आपूरित किया है।

३. तुम महान् हो। तुम्हारी महिमा के द्वारा पृथिवी में व्याप्त हिरण्मय वज्र को तुम्हारे दोनों हाथ ग्रहण करते हैं।

४. मैं समस्त शत्रुओं के प्रति जानेवाले और दुर्दमनीय बल के पति इन्द्र को, तुम लोगों (मरुतों की) सेनाओं के साथ और रथ के गमन के साथ, बुलाता हूँ।

५. नेता लोग रक्षण के लिए, जिन्हें युद्ध में विविध प्रकार से बुलाते हैं, उन्हीं सर्वदा वर्द्धमान इन्द्र को सहायता के निमित्त आगमन के लिए बुलाता हूँ।

६. असीम शरीरवाले, स्तुति-द्वारा परिमित, सुन्दर, धन से सम्पन्न, धन-समुदाय के स्वामी और उग्र इन्द्र को मैं बुलाता हूँ।

७. जो नेता हैं और जो यज्ञ-मुखस्थित तथा क्रमबद्ध स्तुति सुनने में समर्थ हैं, उन्हीं इन्द्र को मैं, महान् धन की प्राप्ति के लिए, सोमपान के निमित्त, बुलाता हूँ।

८. बली इन्द्र, मनुष्य तुम्हारे सख्य को नहीं व्याप्त कर सकता; वह तुम्हारे बल को भी नहीं व्याप्त कर (घेर) सकता।

९. वज्रधर, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर जल में स्नान करने के

लिए और सूर्य को देखने के लिए तुम्हारी सहायता से संग्राम में महान् धन प्राप्त करेंगे।

१०. स्तुति-द्वारा अत्यन्त प्रसिद्ध इन्द्र, मैं बहुत स्तुति करनेवाला हूँ। जिस प्रकार तुम हमें युद्ध में बचाओ, उसी प्रकार के यज्ञ के द्वारा हम तुमसे याचना करते हैं—स्तुति-द्वारा तुम्हारी याचना करते हैं।

११. वज्रधर इन्द्र, तुम्हारा सख्य स्वादिष्ठ है, तुम्हारा धनादि का सृजन भी स्वादु है और तुम्हारा यज्ञ विस्तार के योग्य है।

१२. हमारे पुत्र के लिए पर्याप्त धन दो। हमारे पौत्र के लिए पर्याप्त धन दो और हमारे निवास के लिए प्रचुर धन दो तथा हमारे जीवन के लिए अभिलषित पदार्थ प्रदान करो।

१३. इन्द्र, हम तुमसे मनुष्य की भलाई के लिए प्रार्थना करते हैं, गाय की भलाई के लिए प्रार्थना करते हैं और रथ के लिए सुन्दर मार्ग की प्रार्थना करते हैं। यज्ञ की प्रार्थना करते हैं।

१४. सोमोत्पन्न हर्ष के कारण, सुन्दर उपभोग के योग्य धन से युक्त होकर, छः नेताओं में से दो-दो हमारे पास आते हैं।

१५. इन्द्रोत नामक राजपुत्र से दो सरल-गामी अश्वों को मैंने पाया है। ऋक्ष के पुत्र से दो हरित-वर्ण अश्वों को मैंने लिया है। अश्वमेध के पुत्र से मैंने रोहित-वर्ण दो अश्वों को पाया है।

१६. मैंने अतिथिग्व के पुत्र (इन्द्रोत) से सुन्दर रथवाले अश्वों को पाया है। ऋक्ष के पुत्र से मैंने सुन्दर लगामवाले अश्वों को ग्रहण किया है। अश्वमेध के पुत्र से मैंने सुन्दर अश्वों को ग्रहण किया है।

१७. अतिथिग्व के पुत्र और शुद्धकर्मा इन्द्रोत से घोड़ियोंवाले छः घोड़ों को, ऋक्षपुत्र और अश्वमेध पुत्रों के दिये हुए अश्वों के साथ, मैंने ग्रहण किया है।

१८. दीप्तिवाली, वर्धक अश्वों से युक्त और सुन्दर लगामोंवाली घोड़ियाँ भी इन घोड़ों में हैं।

१९. हे अन्नदाता छः राजाओ, निन्दक मनुष्य भी तुम्हारे प्रति निन्दा का आरोप नहीं करते।

५८ सूक्त

(देवता वरुण, ११ वीं ऋचा के आधे के विश्वदेवगण और आधे के वरुण। ऋषि प्रियमेध। छन्द उष्णिक्, गायत्री, पङ्क्ति और अनुष्टुप्।)

१. अध्वर्युओ, जो वीरों के लिए हर्ष उत्पन्न करते हैं, उन्हीं इन्द्र के लिए तुम लोग तीन स्तोभों (स्तम्भनों) से युक्त अन्न का संग्रह करो। यज्ञ-भोग के लिए प्रज्ञा से युक्त कर्म के द्वारा इन्द्र तुम्हारा सत्कार करते हैं।

२. उषाओं के उत्पादक, नदियों के शब्द-जनक और अवध्य गौओं के पति इन्द्र को बुलाओ। यजमान दुग्धदात्री गौ से उत्पन्न अन्न की इच्छा करता है।

३. देवों के जन्मस्थान और आदित्य के रुचिकर प्रदेश (द्युलोक) में जो जा सकती हैं और जिनके दूध से कूप पूर्ण होता है, वे गायें तीनों सवनों में इन्द्र के सोम को मिश्रित करती हैं।

४. इन्द्र गौओं के स्वामी, यज्ञ के पुत्र और साधुओं के पालक हैं। इन्द्र जिस प्रकार यज्ञ के गन्तव्य स्थान को जानें, उस प्रकार स्तुति-बन्धनों से उनकी पूजा करो।

५. हरि नाम के अश्व, दीप्तियुक्त होकर, कुश के ऊपर इन्द्र को छोड़ो। हम कुश-स्थित इन्द्र की स्तुति करेंगे।

६. इन्द्र जिस समय चारों ओर से समीप में वर्त्तमान मधु (सोमरस) को प्राप्त करते हैं, उस समय गायें वज्री इन्द्र के लिए सोम में मिलाने के उपयुक्त मधु (दुग्ध आदि) का वितरण वा दोहन करती हैं।

७. जिस समय इन्द्र और मैं सूर्य के गृह में जाते हैं, उस समय सखा आदित्य के इक्कीस स्थानों (द्वादश मास, पाँच ऋतुएँ, तीन लोक और एक आदित्य) में मधुर सोमरस का पान करके हम मिलें।

८. अध्वर्युओ, तुम लोग इन्द्र की पूजा करो। विशेष रूप से पूजा करो। प्रियमेध-वंशीयो, जैसे पुर-विदारक की पूजा पुत्र लोग करते हैं, वैसे ही इन्द्र की पूजा करो।

९. जुझाऊ बाजा भयंकर रीति से घहरा रहा है। गोधा (हस्तघ्न नाम का बाजा) चारों ओर शब्द करता है। पिङ्गल वर्ण की ज्या शब्द कर रही है। इसलिए इन्द्र के उद्देश्य से स्तुति करो।

१०. जिस समय शुभ्र वर्ण और सुन्दर दोहनवाली नदियाँ अतीव प्रवृद्ध होती हैं, उस समय इन्द्र के पान के लिए अतीव प्रवृद्ध सोम को ले आओ।

११. इन्द्र ने सोम का पान किया, अग्नि ने भी पान किया। विश्व-देवगण तृप्त हुए। इस गृह में वरुण निवास करें। बछड़ेवाली गायें जैसे बछड़े के लिए शब्द करती हैं, वैसे ही उकथ वरुण की स्तुति करते हैं।

१२. वरुण (जलाभिमानी देव), तुम सुदेव हो। जैसे किरणें सूर्य के अभिमुख धावित होती हैं, वैसे ही तुम्हारे तालु पर गङ्गा आदि सातों नदियाँ अनुक्षण क्षरित होती हैं।

१३. जो इन्द्र विविधगामी और रथ में सम्बद्ध अश्वों को हविर्दाता यजमान के पास जाने को छोड़ देते हैं, जो इन्द्र उपमा के स्थल हैं और जिनके लिए सभी मार्ग दे देते हैं, वही इन्द्र यज्ञगमन के समय में सबके नेता होते हैं।

१४. शक्र (इन्द्र) युद्ध में निरोधक शत्रुओं को लाँघकर जाते हैं। सारे द्वेषी शत्रुओं को अतिक्रम करके जाते हैं। कमनीय और उत्कृष्ट इन्द्र वाक्य-द्वारा ताड़न करके मेघ को फाड़ते हैं।

१५. अल्प-शरीर कुमार के समान यह इन्द्र नये रथ पर अधिष्ठान करते हैं। माता-पिता के सामने इन्द्र महान् मृग के समान हैं। बहुकर्मा इन्द्र मेघ को वृष्टि की ओर करते हैं।

१६. सुन्दर हनुवाले और रथ के स्वामी इन्द्र, स्वच्छन्द-गन्ता, दीप्त, बहुपाद, हिरण्मय और निष्पाप रथ पर चढ़ो। अनन्तर हम दोनों मिलेंगे।

१७. इस प्रकार दीप्त और विराजमान इन्द्र की अन्नवान् लोग सेवा करते हैं। अनन्तर जिस समय गमन और हव्यदान के लिए स्तुतियाँ इन्द्र को आवर्त्तित करती हैं, उस समय सुस्थापित धन प्राप्त होता है।

१८. प्रियमेध-वंशीयों ने इन्द्र आदि के प्राचीन स्थानों को प्राप्त किया है। प्रियमेधों ने मुख्य प्रदान के लिए कुशाक फैलाया है और हव्य-स्थापन किया है।

५९ सूक्त

(८ अनुवाक। देवता इन्द्रदेव। ऋषि पुरुहन्मा। छन्द उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, सतोबृहती और पुरउष्णिक्।)

१. जो मनुष्यों के राजा हैं, जो रथ पर जाते हैं, जिनके गमन में कोई बाधक नहीं हो सकता और जो सारी सेना के उद्धारक हैं, उन्हीं ज्येष्ठ और वृत्रघ्न इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ।

२. पुरुहन्मा, तुम अपने रक्षण के लिए इन्द्र को अलंकृत करो। तुम्हारे पालक इन्द्र का स्वभाव दो प्रकार का है—उग्र और अनुग्र। इन्द्र हाथ में दर्शनीय वज्र को धारण करते हैं। वह वज्र आकाश में दिखाई देनेवाले सूर्य के समान है।

३. सर्वदा वृद्धिशील, सबके स्तुत्य, महान् और अन्यों के अभिभविता इन्द्र को जो यज्ञ के द्वारा अनुकूल करते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति कर्म के द्वारा नहीं व्याप्त कर सकते।

४. दूसरों के लिए असहनीय, उग्र और शत्रु-सेना के विजेता इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ। इन्द्र के जन्म लेने पर विशाल और अत्यन्त वेगवाली गायों ने उनकी स्तुति की थी। सारे द्युलोकों और पृथिवियों ने भी स्तुति की थी।

५. इन्द्र, यदि सौ द्युलोक हो जायें, तो भी तुम्हारा परिमाण नहीं कर सकते; यदि सौ पृथिवियाँ हो जायें, तो भी तुम्हें नहीं माप सकतीं; यदि सूर्य सौ हो जायें, तो भी तुम्हें प्रकाशित नहीं कर सकते। इस लोक

में जो कुछ जन्मा है, वह और द्यावापृथिवी तुम्हारी सीमा नहीं कर सकते।

६. अभिलाषवाला, अतीव बली, धनी और वज्री इन्द्र, महान् बल के द्वारा तुमने बल को व्याप्त किया है। हमारी गायों के निमित्त विविध रक्षणों के द्वारा हमारी रक्षा करो।

७. दीर्घायु इन्द्र, जो व्यक्ति श्वेतवर्ण अश्वद्वय को रथ में जोतता है, उसी के लिए इन्द्र हरिद्वय जोतते हैं। देव-शून्य व्यक्ति सारा अन्न नहीं पाता।

८. ऋत्विको, महान् तुम लोग उन पूज्य इन्द्र की, दान के लिए, मिलकर पूजा करो। जल-प्राप्ति के लिए इन्द्र को बुलाना चाहिए। निम्न स्थल की प्राप्ति के लिए भी इन्द्र को बुलाना चाहिए। संग्राम में भी इन्द्र को बुलाना चाहिए।

९. वासवाला और शूर इन्द्र, तुम हमें महान् धन की प्राप्ति के लिए उठाओ। शूर और धनी इन्द्र, महान् धन और महती कीर्त्ति देने के लिए उद्योग करो।

१०. इन्द्र, तुम यज्ञाभिलाषी हो। जो तुम्हारी निन्दा करता है, उसका धन अपहृत करके तुम प्रसन्न होते हो। प्रचुर-धन इन्द्र, हमारी रक्षा के लिए तुम हमें दोनों जाँघों के बीच छिपा लो। शत्रुओं को मारो। अस्त्र के द्वारा दास को मार डालो।

११. इन्द्र, तुम्हारे सखा पर्वत अन्यरूप-धारक, अमानुष, यज्ञ-शून्य और देव-द्वेषी व्यक्ति को स्वर्ग से नीचे फेंकते हैं। वे दस्यु को मृत्यु के हाथ में भेजते हैं।

१२. बली इन्द्र, हमें देने के लिए भूने यव वा जौ के समान गौओं को हाथ से ग्रहण करो। तुम हमारी अभिलाषा करते हो। और भी अभिलाषा करके और भी ग्रहण करो।

१३. मित्रो, इन्द्र-सम्बन्धी और कर्म करने की इच्छा करो। हम

हिंसक इन्द्र की कैसे स्तुति करेंगे? इन्द्र शत्रुओं के भक्षक और प्रेरक हैं। वे कभी भी अवनत नहीं होते।

१४. सबके पूजनीय इन्द्र, अनेक ऋषि और हव्यदाता तुम्हारी स्तुति करते हैं। हिंसक इन्द्र, तुम एक-एक करके अनेक प्रकार से, स्तोताओं को अनेक वस्त्र देते हो।

१५. ये ही धनी इन्द्र तीन हिंसकों से युद्ध में जीती हुई गायों और बछड़ों को कान पकड़कर हमारे पास ले आवें। इसी प्रकार पीने के लिए स्वामी बकरी को कान पकड़कर ले आता है।

६० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सुदिति और पुरुमीढ़। छन्द गायत्री, बृहती और सतोबृहती।)

१. दान-शून्य अनेक व्यक्तियों से लब्ध महाधन के द्वारा तुम हमें पालित करो। शत्रुओं के हाथ से भी हमें बचाओ।

२. प्रिय-जन्मा अग्नि, पुरुष-सम्बन्धी क्रोध तुम्हें नहीं बाधा दे सकता। तुम रात्रिवाले हो (रात में अग्नि विशेष तेजस्वी होते हैं)।

३. बल के पुत्र और प्रशस्य तेजवाले अग्नि, तुम सारे देवों के साथ सबके लिए वरणीय धन हमें दो।

४. अग्नि, जिस हविर्दाता का तुम पालन करते हो, उस व्यक्ति को अदाता और धनी व्यक्ति नहीं पृथक् करते।

५. मेधावी अग्नि, तुम जिस व्यक्ति को धन-लाभ के लिए यज्ञ प्रेरित करते हो, वह तुम्हारी रक्षा के कारण गो-संयुक्त होता है।

६. अग्नि, तुम हव्यदाता मनुष्य के लिए बहु-वीरयुक्त धन प्रदान करो। वासयोग्य धन के अभिमुख हमें प्रेरित करो।

७. जात-धन अग्नि, हमारी रक्षा करो। अनिष्ट चाहनेवाले और हिंसा-मूर्त्ति मनुष्य के हाथ में हमें नहीं समर्पित करना।

८. अग्नि, तुम द्योतमान हो। कोई भी देव-शून्य व्यक्ति तुम्हें धन-दान से अलग नहीं कर सकता।

९. बल के पुत्र, सखा और निवासप्रद अग्नि, हम स्तोता हैं। तुम हमें महाधन प्रदान करो।

१०. हमारी स्तुतियाँ भक्षण (दहन) करनेवाली शिखाओंवाले और दर्शनीय अग्नि की ओर जायें। सारे यज्ञ रक्षा के लिए हविर्युक्त होकर प्रचुर धनवाले और अनेकों के द्वारा स्तुत अग्नि की ओर जायें।

११. सारी स्तुतियाँ बल के पुत्र, जातधन और वरणीय (स्वीकरणीय) अग्नि की ओर जायें। अग्नि अमर और मनुष्यों में रहनेवाले हैं। अग्नि दो प्रकार के हैं—मनुष्यों में होम-सम्पादक और मदकारी हैं।

१२. यजमानो, तुम्हारे देव-यज्ञ के लिए अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। यज्ञ के प्रारम्भ होने पर मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। कर्म-काल में अग्नि की प्रथम स्तुति करता हूँ। बन्धुत्व आने पर अग्नि की स्तुति करता हूँ। क्षेत्र-प्राप्ति होने पर अग्नि की स्तुति करता हूँ।

१३. अग्नि के हम सखा हैं और अग्नि स्वीकरणीय धन के ईश्वर हैं। वे हमें अन्न दें। पुत्र और पौत्र के लिए उन निवास-दाता और अङ्ग-पालक अग्नि से हम प्रचुर धन की याचना करते हैं।

१४. पुरुमीढ़, रक्षा के लिए तुम मन्त्र-द्वारा अग्नि की स्तुति करो। उनकी ज्वाला दाहक है। धन के लिए अग्नि की स्तुति करो। अन्य यजमान भी उनकी स्तुति करते हैं। सुदिति के लिए गृह की याचना करो।

१५. शत्रुओं को पृथक् होने के लिए हम अग्नि की स्तुति करते हैं। सुख और अभय के लिए हम अग्नि की स्तुति करते हैं। सारी प्रजा में अग्नि राजा के समान हैं। वे ऋषियों के लिए वासदाता और आह्वान के योग्य हैं।

६१ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि प्रगाथ के पुत्र हर्यत। छन्द गायत्री।)

१. अध्वर्युओ, तुम शीघ्र हव्य प्रस्तुत करो। अग्नि आये हैं। अध्वर्यु फिर यज्ञ का सेवन करते हैं। अध्वर्यु हव्य देना जानते हैं।

२. अग्नि के साथ यजमान की मैत्री है। वह सस्थापक होता और तीखी ज्वालावाले अग्नि के पास बैठते हैं।

३. यजमान की मनोरथ-सिद्धि के लिए वे अपने प्रज्ञा-बल से उन दस्र (दुःख-घातक) अग्नि को सम्मुख स्थापित करने की इच्छा करते हैं। वे जिह्वा (स्तुति) द्वारा अग्नि को ग्रहण करते हैं।

४. अन्नदाता अग्नि सबको लाँघकर रहते हैं। वे अन्तरिक्ष को लाँघकर रहते हैं। वे अपनी ज्वाला के द्वारा मेघ का वध करते हैं। वे जल के ऊपर चढ़े हैं।

५. वत्स के समान चंचल और श्वेतवर्ण अग्नि इस संसार में निरोधक को नहीं प्राप्त करते हैं। वे स्तोता की कामना करते हैं।

६. इन अग्नि का माहात्म्य-युक्त अश्व-सम्पन्न प्रकाण्ड योजन है—रथ की रस्सी है।

७. शब्दशाली सिन्धु नद के घाट पर सात ऋत्विक् जल का दोहन करते हैं। इनमें दो प्रस्थाता अध्वर्यु अन्य पाँच (यजमान, ब्रह्मा, होता, अग्निध्र और स्तोता) को प्रयुक्त करते हैं।

८. सेवक यजमान की दस अँगुलियों के द्वारा याचित होकर इन्द्र ने आकाश में मेघ से तीन प्रकार की किरणों के द्वारा जल-वर्षण कराया।

९. तीन वर्ण (लोहित, शुक्ल और कृष्ण) वाले तथा वेगवान् अग्नि अपनी शिखा के साथ यज्ञ में आते हैं। होम-सम्पादक अध्वर्यु लोग मधु के द्वारा मधु (आज्य आदि) के द्वारा उनका पूजन करते हैं।

१०. महावीर, ऊपर चक्र से युक्त, दीप्ति-सम्पन्न, निम्नमुख द्वारवाले,

अक्षीण और रक्षक अग्नि के ऊपर, अवनत होकर, अध्वर्यु उन्हें सिक्त करते हैं।

११. आदर से युक्त अध्वर्युगण निकटगामी होकर रक्षक अग्नि के विसर्जन के समय विशाल पात्र (उपयमनीपात्र) में मधु-सिञ्चन करते हैं।

१२. गौओ, मन्त्र के द्वारा दूहने योग्य बहुत दूध की आवश्यकता होने पर तुम लोग रक्षक (महावीर) अग्नि के पास जाओ। अग्नि के दोनों कर्ण सोने और चाँदी के हैं।

१३. अध्वर्युओ, दूध दूहे जाने पर द्यावापृथिवी पर आश्रित और मिश्रणयोग्य दूध का सिञ्चन करो। अनन्तर बकरी के दूध में अग्नि को स्थापित करो।

१४. उन्होंने (गौओं ने) अपने निवासदाता अग्नि को जाना है। जैसे वत्स अपनी माता से मिलते हैं, वैसे ही गायें अपने बन्धुओं के साथ मिलती हैं।

१५. शिखा (ज्वाला) के द्वारा भक्षक अग्नि का अन्न अग्नि और इन्द्र का पोषण करता और अन्तरिक्ष (अन्तरिक्ष) का उपकार करता है। इन्द्र और अग्नि को सारा अन्न दो।

१६. गमनशील वायु और चंचल चरणों से युक्त माध्यमिकी वाक् (वचन) से सूर्य की सात किरणों के द्वारा वर्द्धित अन्न और रस को अध्वर्यु ग्रहण करता है।

१७. मित्र और वरुण, सूर्योदय होने पर सूर्य सोम को स्वीकार करते हैं। वे हमारे (आतुरों के) लिए हितकर भेषज हैं।

१८. हवन्त ऋषि का जो स्थान द्रव्य स्थापन के लिए उपयुक्त है, वहीं से अग्नि अपनी शिखा के द्वारा द्युलोक को व्याप्त करते हैं।

६२ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि सप्तवध्रि। छन्द गायत्री)

१. अश्विद्वय, मैं यज्ञाभिलाषी हूँ। मेरे लिए उदित होओ। रथ को जोतो। तुम्हारी रक्षा हमारी समीपवर्त्तिनी हो।

२. अश्विद्वय, निमेष से भी अधिक वेगवान् रथ से आओ। तुम्हारी रक्षा हमारी समीपवर्त्तिनी हो।

३. अश्विद्वय, (अग्नि में फेंके हुए) अत्रि के लिए हिम (जल) से घर्म (अग्नि-दहन) का निवारण करो। तुम्हारी रक्षा हमारी समीपवर्त्तिनी हो।

४. तुम लोग कहाँ हो? कहाँ जाते हो? श्येन पक्षी के समान कहाँ गिरते हो? तुम्हारी रक्षा हमारी समीपवर्त्तिनी हो।

५. तुम किस समय, किस स्थान पर, आज हमारे इस आह्वान को सुनोगे, यह हम नहीं जानते? तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

६. यथासमय अत्यन्त आह्वान के योग्य मैं अश्विद्वय के पास जाता हूँ। उनके निकट स्थित बन्धुओं के पास भी मैं जाता हूँ। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

७. अश्विद्वय, तुम लोगों ने अत्रि के लिए (जलने से बचने के लिए) रक्षक गृह का निर्माण किया था। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

८. अश्विद्वय, मनोहर स्तोता अत्रि के लिए अग्नि को जलाने से अलग करो। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

९. महर्षि सप्तबध्रि ने तुम्हारी स्तुति से अग्नि की धारा (ज्वाला) को, मञ्जूषा (पेटिका = बाक्स) में से स्वयं बाहर निकालकर, उसी में, सुला (पैठा) दिया था। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१०. वृष्टिदाता और धनी अश्विद्वय, यहाँ आओ और हमारा आह्वान सुनो। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

११. अश्विद्वय, अतीव वृद्ध के समान तुम्हें क्यों बार-बार बुलाना पड़ता है? तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१२. अश्विद्वय, तुम दोनों का उत्पत्ति-स्थान एक है; तुम्हारे बन्धु भी एक समान हैं। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१३. अश्विद्वय, तुम्हारा रथ द्यावापृथिवी और सारे लोकों में घूमता है। तुम्हारी रक्षा हमारी समीपवर्त्तिनी हो।

१४. अश्विद्वय, अपरिमित (सहस्र) गौओं और अश्वों के साथ हमारे पास आओ। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१५. अश्विद्वय, सहस्र गौओं और अश्वों से हमारा निवारण नहीं करना (अर्थात् हमें ये सब देना)। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१६. अश्विद्वय, उषा शुक्लवर्ण की हैं। वे यज्ञवाली और ज्योति का निर्माण करनेवाली हैं। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१७. जैसे फरसावाला व्यक्ति वृक्ष काटता है, वैसे ही अतीव दीप्तिमान् सूर्य अन्धकार का निवारण करते हैं। मैं अश्विद्वय को बुलाता हूँ। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

१८. धर्षक सप्तवध्रि, तुम काले पेटक (बाक्स) में बन्द थे। पीछे उसे तुमने नगर के समान जला दिया था। तुम्हारा रक्षण हमारे पास आवे।

६३ सूक्त

(देवता अग्नि। शेष की तीन ऋचाओं के श्रुतर्वा की दानस्तुति है। ऋषि गोपवन। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. ऋत्विको और यजमानो, तुम लोग अन्नाभिलाषी हो। सारी प्रजा के अतिथि और बहुतों के प्रिय अग्नि की स्तुति के द्वारा सेवा करो। मैं तुम्हारे सुख के लिए मननीय स्तोत्र के द्वारा गूढ़ वचन का उच्चारण करता हूँ।

२. जिन अग्नि के लिए घी का होम किया जाता है और जिनको द्रव्य का दान करते हुए स्तुति द्वारा प्रशंसा की जाती है—

३. जो स्तोता के प्रशंसक और जात-धन हैं तथा जो यज्ञ में दिये हवि को द्युलोक में प्रेरित करते हैं—

४. जिनकी ज्वालाओं ने ऋक्षपुत्र और महान् श्रुतर्वा को वर्द्धित किया है, उन पापियों के नाशक और मनुष्यों के हितकर अग्नि के पास मैं उपस्थित हुआ हूँ।

५. अग्नि अमर हैं, जात-धन हैं और स्तवनीय हैं। वे अन्धकार को दूर करते हैं। उनका घृत के द्वारा हवन किया जाता है।

६. बाधावाले लोग यज्ञ करते और स्रुक् संयत करते हुए हव्य के द्वारा उनकी स्तुति करते हैं।

७. वृष्ट, शोभन-जन्मा, बुद्धिमान् और दर्शनीय अग्नि, हम तुम्हारी यह स्तुति करते हैं।

८. अग्नि, वह स्तुति अतीव सुखावह, अधिक अन्नवाली और तुम्हारे लिए प्रिय हो। उसके द्वारा तुम भली भाँति स्तुत होकर बढ़ो।

९. वह स्तुति प्रचुर अन्नवाली है। युद्ध में वह अन्न के ऊपर यथेष्ट अन्न धारण करे।

१०. जो अग्नि बल के द्वारा शत्रु के अन्न और स्तुत्य धन की हिंसा करते हैं, उन्हीं प्रदीप्त और रथादि के पूरक अग्नि की, गतिपरायण अश्व के समान तथा सत्पति इन्द्र के सदृश, मनुष्य लोग सेवा करते हैं।

११. अग्नि, गोपवन नामक ऋषि की स्तुति से तुम अन्नवाला हुए थे। तुम सर्वत्र जानेवाले और शोधक हो। तुम गोपवन के आह्वान को सुनो।

१२. बाधा-संयुक्त होने पर भी लोग, अन्न-प्राप्ति के लिए, तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम युद्ध में जागो।

१३. मैं (ऋषि) बुलाये जाने पर, शत्रु-गर्व-ध्वंसक और ऋक्ष-पुत्र श्रुतर्वा राजा के दिये हुए लोमवाले चार अश्वों के ऊँचे और लोमवाले मस्तकों को मैं हाथों से धो रहा हूँ।

१४. अतीव अन्नवाले श्रुतर्वा राजा के चार अश्व द्रुतगामी और उत्तम रथवाले होकर, उसी प्रकार अन्न को ढोते हैं, जिस प्रकार अश्विद्वय की भेजी हुई चार नावों ने तुग्र-पुत्र भुज्यु का वहन किया था।

१५. हे महानदी परुष्णी, (रावी), हे जल, मैं तुमसे सच्चा कहता हूँ कि सबसे बली इन श्रुतर्वा राजा से अधिक अश्वों का दान कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता।

६४ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अङ्गिरा के पुत्र विरूप। छन्द गायत्री।)

१. अग्नि, सारथि के समान तुम देवों को बुलाने में कुशल घोड़ों को रथ में जोतो। तुम होता हो। प्रधान होकर तुम बैठो।

२. देव, तुम देवताओं के यहाँ हमें "विद्वत्श्रेष्ठ" कहकर हमारे वरणीय धनों को देवों के पास भेजो।

३. तरुणतम, बल के पुत्र और आहूत अग्नि, तुम सत्यवाले और यज्ञ-योग्य हो।

४. यह अग्नि सौ और हजार तरह के अन्नों के स्वामी, शिरः-संयुक्त, कवि (मेघावी) और धनपति हैं।

५. गमनशील अग्नि, जैसे ऋभु लोग रथ-नेमि को ले आते हैं, वैसे ही तुम भी एकत्र आहूत देवों के साथ अतीव निकटवर्ती यज्ञ को ले आओ।

६. विशिष्ट रूपवाले ऋषि, तुम नित्य वाक्य के द्वारा तृप्त और अभीष्टवर्षी अग्नि की स्तुति करो।

७. गायों के लिए हम विशाल चक्षुवाले अग्नि की ज्वाला के द्वारा किस पणि का वध करेंगे?

८. हम देवों के परिचारक हैं। जैसे दूध देनेवाली गायों को नहीं छोड़ा जाता और गाय अपने छोटे बच्चे को नहीं छोड़ती, वैसे ही अग्नि हमें न छोड़ें।

९. जैसे समुद्र की तरङ्ग नौका को बाधा देती है, वैसे ही शत्रुओं की दुष्ट बुद्धि हमें बाधा न दे।

१०. अग्निदेव, मनुष्य बल-प्राप्ति के लिए तुम्हारे निमित्त नमस्कार करते हैं। तुम बल के द्वारा शत्रुसंहार करो।

११. अग्नि, हमें गायें खोजने के लिए प्रचुर धन दो। तुम समृद्धिकर्त्ता हो। हमें समृद्ध करो।

१२. भारवाहक व्यक्ति के समान तुम हमें इस संग्राम में नहीं छोड़ना। शत्रुओं के द्वारा धन छिन्न हो रहा है। उसे हमारे लिए जीतो।

१३. अग्नि, ये बाधायें स्तुति-विहीन के लिए भय उत्पन्न करें। तुम हमारे बल से युक्त वेग को वर्द्धित करो।

१४. नमस्कारवाले अथवा यज्ञ-युक्त जिस व्यक्ति का कर्म सेवा करता है, उसी के पास विशेषतया अग्नि जाते हैं।

१५. शत्रु-सेना से अलग हमारी सेनाओं को अभिमुखीन करो। जिनके बीच में हूँ, उनकी रक्षा करो।

१६. अग्नि, तुम पालक हो। पहले के समान इस समय तुम्हारे रक्षण को हम जानते हैं। अब तुम्हारे सुख की हम याचना करते हैं।

६५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय कुरुसुति। छन्द गायत्री।)

१. मैं शत्रुच्छेदन के लिए प्राज्ञ इन्द्र को बुलाता हूँ। वे अपने बल से सबके स्वामी और मरुतोंवाले हैं।

२. इन इन्द्र ने, मरुतों के साथ, सौ पर्वों (जोड़ों) वाले वज्र से वृत्र का शिर काटा था।

३. इन्द्र ने बढ़कर और मरुतों से मिलकर वृत्र को विदीर्ण किया था। उन्होंने अन्तरिक्ष को जल बनाया था।

४. जिन्होंने मरुतों से युक्त होकर, सोमपान के लिए, स्वर्ग को जीता था, वे ही ये इन्द्र हैं।

५. इन्द्र मरुतों से युक्त, ऋजीष (तृतीय सवन में पुनः अभिषुत सोम का शेष भाग) वाले, सोम-संयुक्त, ओजस्वी और महान् हैं। हम स्तुति-द्वारा उन्हें बुलाते हैं।

६. मरुतों से युक्त इन्द्र को हम, सोमपान के लिए, प्राचीन स्तोत्र के द्वारा बुलाते हैं।

७. फल-वर्षक, अनेकों द्वारा आहूत और शतक्रतु इन्द्र, मरुतों के साथ तुम इस यज्ञ में सोमपान करो।

८. वज्रधर इन्द्र, तुम्हारे और मरुतों के लिए सोम अभिषुत हुआ है। उक्थ मन्त्रों का उच्चारण करनेवाले व्यक्ति भक्ति के साथ तुम्हें बुलाते हैं।

९. इन्द्र, तुम मरुतों के मित्र हो। तुम हमारे स्वर्ग देनेवाले यज्ञ में अभिषुत सोम का पान करो और बल के द्वारा वज्र को तेज करो।

१०. अभिषवण-फलकों (चमुओं) पर अभिषुत सोम को पीते हुए बल के साथ खड़े होकर दोनों जबड़ों को कँपाओ।

११. तुम शत्रुओं का विनाश करनेवाले हो। उसी समय द्यावापृथिवी, दोनों ही तुम्हारी कल्पना करते हैं, जिस समय तुम दस्युओं का विनाश करते हो।

१२. आठ और नौ दिशाओं (चार दिशायें, चार कोण और आदित्य) में यज्ञ-स्पर्श करनेवाली स्तुति भी इन्द्र से कम है। मैं उसी स्तुति को करता हूँ।

६६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कुरुसुति। छन्द गायत्री, बृहती और सतोबृहती।)

१. जन्म लेते ही बहुकर्म-शाली होकर इन्द्र ने अपनी माता से पूछा, "उग्र कौन है और प्रसिद्ध कौन है?"

२. शवसी (बलवती माता) ने उसी समय कहा—"पुत्र, ऊर्णनाभ, अहीशुव आदि अनेक हैं। उनका निस्तार करना उपयुक्त है।"

३. वृत्रघ्न इन्द्र ने रथ-चक्र की लकड़ियों (अरों) के समान एक साथ ही रस्सी से उन्हें खींचा और दस्युओं का हनन करके प्रवृद्ध हुए।

४. इन्द्र ने एक साथ ही सोम से पूर्ण तीस कमनीय पात्रों को पी डाला।

५. इन्द्र ने मूल-शून्य अन्तरिक्ष में ब्राह्मणों के वर्द्धन के लिए चारों ओर से मेघ को मारा।

६. मनुष्यों के लिए परिपक्व अन्न का निर्माण करते हुए इन्द्र ने विराट् शर को लेकर मेघ को छेदा था।

७. इन्द्र, तुम्हारा एकमात्र बाण सौ अग्र भागों से युक्त और सहस्र पात्रों से संयुक्त है। तुम इसी बाण को सहायक बनाते हो।

८. स्तोताओं, पुत्रों और स्त्रियों के भक्षण के लिए उसी बाण के द्वारा यथेष्ट धन ले आओ। जन्म के साथ ही तुम प्रभूत और स्थिर हो।

९. इन्द्र, तुमने ये सब अतीव प्रवृद्ध और चारों ओर फैले हुए पर्वतों को बनाया है। बुद्धि में उन्हें स्थिर भाव से धारण करो।

१०. इन्द्र, तुम्हारा जो सब जल है, उसे विष्णु (आदित्य) प्रदान करते हैं। विष्णु आकाश में भ्रमण करनेवाले (बहु-गति) और तुम्हारे द्वारा प्रेरित हैं। इन्द्र ने सौ महिषों (पशुओं), क्षीर-पक्व अन्न और जल चुरानेवाले मेघ (वराह) को भी दिया।

११. तुम्हारा धनुष बहुत बाण फेंकनेवाला, सुनिर्मित और सुखावह है। तुम्हारा बाण सोने का है। तुम्हारी दोनों भुजायें रमणीय, मर्मभेदक, सुसंस्कृत और यशवर्द्धक हैं।

६७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कुरुसुति। छन्द गायत्री और बृहती।)

१. शूर इन्द्र, पुरोडाश नाम के अन्न को स्वीकार कर सौ और सहस्र गायें हमें दो।

२. इन्द्र, तुम हमें गाय, अश्व और तैल दो। साथ ही मनोहर और हिरण्मय अलंकार भी दो।

३. शत्रुओं को उखाड़नेवाले और धनदाता इन्द्र, तुम्हीं सुने जाते हो। तुम हमें बहु-संख्यक कर्णाभरण प्रदान करो।

४. शूर इन्द्र, तुम्हारे सिवा अन्य वर्द्धक नहीं है। तुम्हारी अपेक्षा संग्राम में दूसरा कोई सम्भवत नहीं है—कोई उत्तम दाता भी नहीं है। तुम्हारे सिवा ऋत्विकों का कोई नेता भी नहीं है।

५. इन्द्र किसी का तिरस्कार नहीं करते। इन्द्र किसी से हार नहीं सकते। वे संसार को देखते और सुनते हैं।

६. इन्द्र का वध मनुष्य नहीं कर सकते। वे क्रोध को मन में स्थान नहीं देते। निन्दा के पूर्व ही निन्दा को स्थान नहीं देते।

७. क्षिप्रकारी, वृत्रघ्न और सोमपाता इन्द्र का उदर सेवक के कर्म द्वारा ही पूर्ण है।

८. इन्द्र, तुममें सारे धन सङ्गत हैं। सोमपाता इन्द्र, तुममें समस्त सौभाग्य संगत हैं। सुन्दर दान सदा कुटिलता से शून्य हुआ करता है।

९. मेरा मन यव (जौ), गौ, सुवर्ण और अश्व का अभिलाषी होकर तुम्हारे ही पास जाता है।

१०. इन्द्र, मैं तुम्हारी आशा से ही हाथों में दात्र (खेत काटने का हथियार) धारण करता हूँ। पहले काटे हुए अथवा पूर्व संगृहीत जौ की मुष्टि से आशा को पूर्ण करो।

९८ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि कृत्नु। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. ये सोमकर्त्ता हैं। कोई इनका ग्रहण नहीं कर सकता। ये विश्वजित् और उद्भिद् नामक सोम-यज्ञों के निष्पादक हैं। ये ऋषि (ज्ञानी), मेधावी और काव्य (स्तोत्र) के द्वारा स्तुत्य हैं।

२. जो नग्न है, उसे सोम ढँकते हैं। जो रोगी है, उसे नीरोग करते हैं। यह सन्नद्ध रहने पर भी दर्शन करते हैं, यह पंगु होकर भी गमन करते हैं।

३. सोम, तुम शरीर को कृश करनेवाले अन्य कृतों (राक्षसों) के अप्रिय कार्यों से रक्षा करते हो।

४. हे ऋजीष (तृतीय सवन में अभिषुत सोम का शेष भाग) वाले सोम, तुम प्रज्ञा और बल के द्वारा द्युलोक और पृथिवी के यहाँ से हमारे शत्रु के कार्य को पृथक् करो।

५. यदि धनेच्छु लोग धनी के पास जाते हैं, तो दाता का दान मिलता और भिक्षुक की अभिलाषा भली भाँति पूर्ण होती है।

६. जिस समय पुराना धन प्राप्त किया जाता है, उस समय यज्ञाभिलाषी को प्रेरित किया जाता है। तभी दीर्घ जीवन प्राप्त किया जाता है।

७. सोम, तुम हमारे हृदय में सुन्दर, सुखकर, यज्ञ-सम्पादक, निश्चल और मङ्गलकर हो।

८. सोम, तुम हमें चंचलाङ्ग नहीं करना। राजन्, हमें डराना नहीं। हमारे हृदय में प्रकाश के द्वारा वध नहीं करना।

९. तुम्हारे गृह में देवों की दुर्बुद्धि न प्रवेश करे। राजन्, शत्रुओं को दूर करो। सोमरस का सेचन करनेवाले हिंसकों को मारो।

६९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि नोधा के पुत्र एकद्यु। छन्द गायत्री और त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम्हारे सिवा अन्य सुखदाता को मैं बहुमान नहीं प्रदान करता हूँ; इसलिए हे शतक्रतो, सुख दो।

२. जिन अहिंसक इन्द्र ने पहले हमें अन्न-प्राप्ति के लिए बचाया था, वे हमें सदा सुखी करें।

३. इन्द्र, तुम आराधक को प्रवर्त्तित करो। तुम अभिषव-कर्त्ता के रक्षक हो। फलतः हमें बहुधन दो।

४. इन्द्र, तुम हमारे पीछे खड़े रथ की रक्षा करो। वज्रधर इन्द्र, उसे सामने ले आओ।

५. शत्रु-हन्ता इन्द्र, इस समय तुम क्यों चुप हो? हमारे रथ को मुख्य करो। हमारा अन्नाभिलाषी अन्न तुम्हारे पास है।

६. इन्द्र, हमारे अन्नाभिलाषी रथ की रक्षा करो। तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है? हमें संग्राम में सब तरह से विजयी बनाओ।

७. इन्द्र, दृढ़ होओ। तुम नगर के समान हो। मङ्गलमयी स्तुति-क्रिया यथासमय तुम्हारे पास जाती है। तुम यज्ञ-सम्पादक हो।

८. निन्दा-पात्र व्यक्ति हमारे पास उपस्थित न हो। विशाल दिशाओं में निहित धन हमारा हो। शत्रु विनष्ट हों।

९. इन्द्र, तुमने जिस समय यज्ञ-सम्बन्धी चतुर्थ नाम धारण किया, उसी समय हमने उसकी कामना की। तुम हमारे रक्षक हो। तुम्हीं हमारा पालन करते हो।

१०. अमर देवो, एकद्यु ऋषि तुम्हें और तुम्हारी पत्नियों को वर्द्धित और तृप्त करते हैं। हमारे लिए प्रचुर धन दो। कर्म-धन इन्द्र प्रातःकाल ही आगमन करें।

७० सूक्त

(९ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि कण्वगोत्रीय कुसीदी।
छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र, तुम महान् हस्त (हाथ) वाले हो। तुम हमें देने के लिए शब्दवान् (स्तुत्य), विचित्र और ग्रहण के योग्य धन दक्षिण हाथ में धारण करो।

२. इन्द्र, हम तुम्हें जानते हैं। तुम बहुकर्मा, बहुदाता, बहुधनी और बहुरक्षावाले हो।

३. शूर इन्द्र, तुम्हारे दानेच्छु होने पर देव और मनुष्य, भयंकर वृषभ के समान, तुम्हें बाधा नहीं पहुँचा सकते।

४. मनुष्यो, आओ और इन्द्र की स्तुति करो। वह स्वयं दीप्यमान धन के स्वामी हैं। अन्य धनी के समान वे धन के द्वारा बाधा न दें।

५. इन्द्र, तुम्हारी स्तुति की प्रशंसा करें और तदनुक्रम गान करें। वे सामवेदीय स्तोत्र का श्रवण करें। धन-युक्त होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

६. इन्द्र, हमारे लिए आगमन करो। दोनों हाथों से दान करो। हमें धन से अलग नहीं करना।

७. इन्द्र, तुम धन के पास जाओ। शत्रुजेता इन्द्र, जो मनुष्यों में अदाता (दानशून्य) हैं, उसका धन ले आओ।

८. इन्द्र, जो धन ब्राह्मणों (विप्रों) के द्वारा भजनीय (आश्रयणीय) है और जो धन तुम्हारा है, उसे माँगने पर हमें दो।

९. इन्द्र, तुम्हारा अन्न हमारे पास शीघ्र आवे। वह अन्न सबके लिए प्रसन्नतादायक है। नानाविध लालसाओं से युक्त होकर हमारे स्तोता लोग शीघ्र ही तुम्हारी स्तुति करते हैं।

पञ्चम अध्याय समाप्त।

७१ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि कण्वपुत्र कुसीदी।
छन्द गायत्री।)

१. वृत्रघ्न इन्द्र, यज्ञ के मदकर सोम के लिए दूर और समीप के स्थानों से आओ।

२. शीघ्र मद (नशा) करनेवाला सोम अभिषुत हुआ है। आओ, पियो और मत्त होकर उसकी सेवा करो।

३. सोम-रूप अन्न के द्वारा मत्त होओ। वह शत्रु को दूर करनेवाले क्रोध के लिए यथेष्ट हो। तुम्हारे हृदय में सोम सुखकर हो।

४. शत्रु-शून्य इन्द्र, शीघ्र आओ; क्योंकि तुम द्युलोकस्थ देवों से प्रकाशमान समीपस्थ यज्ञ में उक्थ मन्त्रों के द्वारा बुलाये जा रहे हो।

५. इन्द्र, यह सोम पत्थर से प्रस्तुत किया गया है। यह क्षीरादि के द्वारा मिलाया जाकर तुम्हारे आनन्द के लिए अग्नि में हुत हो रहा है।

६. इन्द्र, मेरा आह्वान सुनो। हमारे द्वारा अभिषुत और गव्य-मिश्रित सोम पियो और विविध प्रकार की तृप्ति प्राप्त करो।

७. इन्द्र, जो अभिषुत सोम चमस और चमू नाम के पात्रों में है, उसे पियो। तुम ईश्वर हो; इसलिए पियो।

८. जल में चन्द्रमा के समान चमू में जो सोम दिखाई दे रहा है, तुम ईश्वर हो; इसलिए उसे पियो।

९. श्येन पक्षी का रूप धारण करके गायत्री जो अन्तरिक्षस्थ सोम-रक्षक गन्धर्वों को तिरस्कृत करते हुए दोनों सवनों में सोम ले आई थी, इन्द्र, तुम ईश्वर हो, उसे पियो।

७२ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि कुसीदी। छन्द गायत्री।)

१. देवो, हम अपने पालन के लिए तुम्हारी काम-वर्षिणी महारक्षा की प्राप्ति के निमित्त प्रार्थना करते हैं।

२. देवो वरुण, मित्र और अर्यमा सदा हमारे सहायक हों। वे शोभन स्तुतिवाले और हमारे वर्द्धक हों।

३. सत्य-नेता देवो, नौका के द्वारा जल के समान हमें विशाल और अनन्त शत्रु-सेना के पार ले जाओ।

४. अर्यमा हमारे पास भजनीय धन हो। वरुण, प्रशंसनीय धन हमारे यहाँ हो। हम भजनीय (व्यवहार के उपयुक्त) धन के लिए प्रार्थना करते हैं।

५. प्रकृष्ट ज्ञानवाले और शत्रु-भक्षक देवो, तुम भजनीय धन के स्वामी हो। आदित्यो, पाप-सम्बन्धी जो है, वह हमारे पास आवे।

६. सुन्दर दानवाले देवो, हम चाहे घर में, चाहे मार्ग में, हव्य-वर्द्धन के लिए तुम्हें ही बुलाते हैं।

७. इन्द्र, विष्णु, मरुतो और अश्विद्वय, समान जातिवालों में हमारे ही पास आओ।

८. सुन्दर दान-शील देवो, आने के पश्चात्, हम पहले तुम सब लोगों को प्रकट करेंगे और अनन्तर मातृ-गर्भ से तुम लोगों के दो-दो करके जन्म लेने के कारण तुममें जो बन्धुत्व है, उसे भी प्रकाशित करेंगे।

९. तुम दानशील हो। तुममें इन्द्र श्रेष्ठ हैं। तुम दीप्ति से युक्त हो। तुम लोग यज्ञ में रहो। अनन्तर मैं तुम्हारा स्तव करता हूँ।

७२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि कवि के पुत्र उशना। छन्द गायत्री।)

१. प्रियतम अतिथि और मित्र के समान प्रिय तथा रथ के समान धन-वाहक, अग्नि की, तुम्हारे लिए, मैं स्तुति करता हूँ।

२. देवों ने जिन अग्नि को, प्रकृष्ट ज्ञानवाले पुरुष के समान, मनुष्यों में दो प्रकार से (द्यावा और पृथिवी में) स्थापित किया है, उनकी मैं स्तुति करता हूँ।

३. तरुणतम अग्नि, हविर्दाता के मनुष्यों का पालन करो। स्तुति सुनो और स्वयं ही हमारी सन्तान की रक्षा करो।

४. अङ्गिरा (गतिशील) बल के पुत्र और देव अग्नि, तुम सबके वरणीय (स्वीकार के योग्य) और शत्रुओं के सामने जानेवाले हो। कैसे स्तोत्र से मैं तुम्हारी स्तुति करूँ ?

५. बल-पुत्र अग्नि, कैसे यजमान के मन के अनुकूल हम तुम्हें हव्य देंगे ? कब इस नमस्कार का मैं उच्चारण करूँगा ?

६. तुम्हीं, हमारे लिए, हमारी सारी स्तुतियों को उत्तम गृह, धन और अन्नवाली करो।

७. दम्पती-रूप (गार्हपत्य) अग्नि, तुम इस समय किसके कर्म को प्रसन्न (सफल) करते हो ? तुम्हारी स्तुतियाँ धन देनेवाली हैं।

८. अपने घर में यजमान लोग सुन्दर बुद्धिवाले, सुकृती युद्ध में अग्रगामी और बली अग्नि की पूजा करते हैं।

९. अग्नि, जो व्यक्ति साधक रक्षण के साथ अपने गृह में रहता है, जिसे कोई मार नहीं सकता और जो शत्रु को मारता है, वही सुन्दर पुत्र-पौत्र से युक्त होकर बढ़ता है।

७४ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि आङ्गिरस कृष्ण। छन्द गायत्री।)

१. नासत्य अश्विद्वय, तुम दोनों मेरा आह्वान सुनकर, मदकर सोम-पान के लिए, मेरे यज्ञ में आओ।

२. अश्विद्वय, मदकर सोम के पान के लिए मेरे स्तोत्र को सुनो। मेरा आह्वान सुनो।

३. हे अन्न और धनवाले अश्विद्वय, मदकर सोम-पान के लिए यह कृष्ण ऋषि (मैं) तुम्हें बुलाता है।

४. नेताओ, स्तोत्र-परायण और स्तोता कृष्ण का आह्वान, मदकर सोमपान के लिए, सुनो।

५. नेताओ, मदकर सोमपान के लिए मेधावी स्तोता कृष्ण को अहिंसनीय गृह प्रदान करो।

६. अश्विद्वय, इसी प्रकार स्तोता और हव्यदाता के गृह में, मदकर सोमपान के लिए, आओ।

७. वर्षक और धनी अश्विद्वय, मदकर सोमपान के लिए दृढ़ाङ्ग रथ में रासभ (अश्व) को जोतो।

८. अश्विद्वय, तीन बन्धुरों (फलकों) और तीन कोनोंवाले रथ पर, मदकर सोमपान के लिए, आगमन करो।

९. नासत्य-द्वय, मदकर सोमपान के लिए मेरे स्तुति-वचनों की ओर तुम शीघ्र आओ।

७५ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि कृष्ण के पुत्र विश्वक। छन्द जगती।)

१. दर्शनीय और वैद्य अश्विद्वय, तुम दोनों सुखकर हो। तुम लोग यज्ञ के स्तुति-समय में उपस्थित थे। सन्तान के लिए तुम्हें विश्वक (मैं) बुलाता हूँ। हमारा (ऋषि और स्तोताओं का) बन्धुत्व अलग नहीं करना। लगाम से अश्वों को छुड़ाओ।

२. अश्विद्वय, विमना नाम के ऋषि ने पूर्व काल में तुम्हारी कैसे स्तुति की थी कि विमना को धन-प्राप्ति के लिए तुमने अपने मन को निश्चित किया था? वैसे तुमको विश्वक बुलाता है। हमारा बन्धुत्व वियुक्त न हो। लगाम से अश्वों को छुड़ाओ।

३. अनेकों के पालक अश्विद्वय, विष्णुवापु (मेरे पुत्र) की उत्कृष्ट धन की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए तुमने धन-वृद्धि प्रदान किया है। वैसे तुम्हें, सन्तान के लिए, विश्वक बुलाता है। हमारा सखित्व अलग नहीं करना। लगाम से अश्वों को छोड़ो।

४. अश्विद्वय, वीर, धन-भोक्ता, अभिषुत सोम से युक्त और दूरस्थ विष्णुवापु को हम बुलाते हैं। पिता (मेरे) समान ही विष्णुवापु की स्तुति भी अतीव सुस्वादु है। हमारे सख्य को पृथक् मत करो।

५. अश्विद्वय, सत्य के द्वारा सूर्य अपनी किरणों को (सायंकाल में) एकत्र करते हैं। अनन्तर सत्य के शृंग (किरण-समूह) को (प्रातःकाल) विशेष रूप से विस्तारित करते हैं। सचमुच वह (सूर्य = सविता) सेना-वाले शत्रु को परास्त करते हैं। सत्य के द्वारा हमारा बन्धुत्व वियुक्त न हो। लगाम से अश्वों को छुड़ाओ।

७६ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि वसिष्ठ के पुत्र द्युम्नीक, अङ्गिरा के पुत्र प्रियमेध अथवा कृष्ण। छन्द बृहती और सतोबृहती।)

१. अश्विद्वय, द्युम्नीक ऋषि तुम्हारा स्तोता है। वर्षा-ऋतु में कुँओं की तरह तुम आओ। नेताओ, यह स्तोता द्युतिमान् यज्ञ में अभिषुत और

मदकर सोम का प्रेमी हूँ। फलतः जैसे गौर मृग तड़ाग आदि का जल पीते हैं, वैसे ही अभिषुत सोम का पान करो।

२. अश्विद्वय, रसवान् और चूनेवाला सोम पिओ। नेताओ, यज्ञ में बैठो। मनुष्य के गृह में प्रमत्त होकर तुम लोग, हव्य के साथ, सोम का पान करो।

३. अश्विद्वय, यजमान तुम्हें सारी रक्षाओं के साथ, बुला रहे हैं। जिस यजमान ने कुशों को बिछाया है, उसी के द्वारा सदा सेवित हवि के लिए तुम लोग प्रातःकाल ही घर में आओ।

४. अश्विद्वय, रसवान् सोम का पान करो। अनन्तर सुन्दर कुशों पर बैठो। तत्पश्चात् प्रवृद्ध होकर उसी प्रकार हमारी स्तुति की ओर आओ, जिस प्रकार दो गौर मृग तड़ाग आदि की ओर जाते हैं।

५. अश्विद्वय, तुम लोग स्निग्ध रूपवाले अश्वों के साथ इस समय आओ। दर्शनीय और सुवर्णमय रथवाले, जल के पालक और यज्ञ के वर्द्धक अश्विद्वय, सोमपान करो।

६. अश्विद्वय, हम स्तोता और ब्राह्मण हैं। हम अन्न-लाभ के लिए तुम्हें बुलाते हैं। तुम सुन्दर गमनवाले और विविध-कर्मा हो। हमारी स्तुति के द्वारा बुलाये जाकर शीघ्र आओ।

७७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि गौतम नोधा। छन्द बृहती।)

१. जैसे दिन में, गोशाला में, गायें अपने बछड़ों को बुलाती हैं, वैसे ही दर्शनीय, शत्रु-नाशक, दुःख दूर करनेवाले और सोमपान के द्वारा प्रमत्त इन्द्र को, स्तुति के द्वारा, हम बुलाते हैं।

२. इन्द्र दीप्ति के निवास-स्थान, स्वर्ग-वासी, उत्तम दानवाले, पर्वत के समान बल के द्वारा ढके हुए और अनेकों के पालक इन्द्र से शब्दकारी पुत्रादि, सौ और सहस्र धन तथा गौ से युक्त अन्न की हम शीघ्र याचना करते हैं।

३. इन्द्र, विराट् और सुदृढ़ पर्वत भी तुम्हें बाधा नहीं पहुँचा सकते। मेरे जैसे स्तोता को जो धन देने की इच्छा करते हो, उसे कोई नहीं विनष्ट कर सकता।

४. इन्द्र, कर्म और बल के द्वारा तुम शत्रुओं के विनाशक हो। तुम अपने कर्म और बल के द्वारा सारी वस्तुओं को जीतते हो। देवों का पूजक यह स्तोता, अपनी रक्षा के लिए, तुममें अपने को लगाता है। गौतम लोगों ने तुम्हें आविर्भूत किया है।

५. इन्द्र, द्युलोक पर्यन्त प्रदेश से भी तुम प्रधान हो। पार्थिव लोक (रजोलोक) तुम्हें नहीं व्याप्त कर सकता। तुम हमारा अन्न ले जाने की इच्छा करो।

६. धनी इन्द्र, हव्य-दाता को जो धन तुम देते हो, उसमें कोई बाधक नहीं है। तुम धन-प्रेरक और अतीव दान-शील होकर धन-प्राप्ति के लिए हमारे उचथ्य के स्तोत्र को जानो।

७८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि नृमेध और पुरुमेध। छन्द अनुष्टुप् और बृहती।)

१. मरुतो, इन्द्र के लिए पाप-विनाशक और विशाल गान करो। यज्ञवर्द्धक विश्वदेवों ने द्युतिमान् इन्द्र के लिए इस गान के द्वारा दीप्त और सदा जागरूक ज्योति (सूर्य) को उत्पन्न किया।

२. स्तोत्र-शून्य लोगों के विनाशक इन्द्र ने शत्रु की हिंसा को दूर किया था। अनन्तर इन्द्र प्रकाशक और यशस्वी हुए थे। विशाल दीप्ति और मरुतों से युक्त इन्द्र, देवों ने तुम्हारी मैत्री के लिए तुम्हें स्वीकृत किया था।

३. मरुतो, इन्द्र महान् हैं। उनके लिए स्तोत्र का उच्चारण करो। वृत्रघ्न और शतक्रतु इन्द्र ने सौ सन्धियोंवाले वज्र से वृत्र का वध किया था।

४. शत्रु-वध के लिए प्रस्तुत इन्द्र, तुम्हारे पास बहुत अन्न है। तुम सुदृढ़ चित्त से हमें वह अन्न दो। इन्द्र, हमारे मातृ-रूप जल वेग से विविध भूमियों की ओर जायें। जल को रोकनेवाले वृत्र का नाश करो। स्वर्ग को (वा प्राणियों को) जीतो।

५. अपूर्व धनी इन्द्र, वृत्र-वध के लिए जिस समय तुम प्रकट हुए, उस समय तुमने पृथिवी को दृढ़ किया और द्युलोक को रोका।

६. उस समय तुम्हारे लिए यज्ञ उत्पन्न हुआ और प्रसन्नतादायक मन्त्र उत्पन्न हुए। उस समय तुमने समस्त उत्पन्न और उत्पन्न होनेवाले संसार को अभिभूत किया।

७. इन्द्र, उस समय तुमने अपक्व दूधवाली गायों में पक्व दूध उत्पन्न किया और द्युलोक में सूर्य को चढ़ाया। साम-मन्त्रों के द्वारा प्रवर्ग्य सोम के समान शोभन स्तुतियों से इन्द्र को बढ़ाओ। स्तुति-भोगी इन्द्र के लिए हर्षदाता और विशाल साम का गान करो।

७९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि नृमेध और पुरुमेध। छन्द सतोबृहती।)

१. सारे युद्धों में बुलाने योग्य इन्द्र हमारे स्तोत्र का आश्रय करें। तीनों सवनों की सेवा करो। वे वृत्रघ्न हैं। उनकी ज्या (प्रत्यञ्चा) अविनाशी है। वे स्तुति के द्वारा सामने करने योग्य हैं।

२. इन्द्र, तुम सबके मुख्य धन-प्रद हो, तुम सत्य हो। तुम स्तोताओं को ऐश्वर्यशाली करो। तुम बहुत धनवाले और बल के पुत्र हो। तुम महान् हो। तुम्हारे योग्य धन का हम आश्रय करते हैं।

३. स्तुत्य इन्द्र, तुम्हारे लिए हम जो यथार्थ स्तोत्र करते हैं, सुर्यदव, उसमें तुम युक्त होओ और उसकी सेवा करो। तुम्हारे लिए हम जितने स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, उनकी भी सेवा करो।

४. धनी इन्द्र, तुम सत्य हो। तुमने किसी से भी न दबकर अनेक राक्षसों का नाश किया है। इन्द्र, जैसे हव्यदाता के पास धन जावे, वैसा करो।

५. बलाधिपति इन्द्र, तुम अभिषुत सोमवाले होकर यशस्वी बने हो। तुमने अकेले ही किसी के द्वारा न जाने योग्य और न जीतने योग्य राक्षसों को, मनुष्यों के रक्षक वज्र के द्वारा मारा है।

६. बली (असुर) इन्द्र, तुम उत्तम ज्ञानवाले हो। तुम्हारे ही समीप हम पैतृक धन के भाग के समान धन की याचना करते हैं। इन्द्र, तुम्हारी कीर्त्ति के समान तुम्हारा गृह द्युलोक में, विशाल रूप से, अवस्थित है। तुम्हारे सारे सुख हमें व्याप्त करें।

८० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि अपाला (अत्रि की पुत्री)। छन्द पङ्क्ति और अनुष्टुप्।)

१. जल की ओर स्नान के लिए जाते समय कन्या (अपाला = मैं) ने इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए (अपने चर्म-रोग-विनाश के निमित्त) मार्ग में सोम को प्राप्त किया। मैं उस सोम को घर ले आने के समय सोम से कहा—"इन्द्र के लिए तुम्हें मैं अभिषुत करती हूँ—समर्थ इन्द्र के लिए तुम्हें अभिषुत करती हूँ।"

२. इन्द्र, तुम वीर, अतीव दीप्तिमान् और प्रत्येक गृह में जानेवाले हो। भूने हुए जौ (यव) के सत्तू पुरोडाशादि तथा उक्थ स्तुति से युक्त एवम् (मेरे) दाँतों के द्वारा अभिषुत सोम का पान करो।

३. इन्द्र, तुम्हें हम जानने की इच्छा करती हैं। इस समय तुम्हें हम नहीं प्राप्त होती हैं। सोम, इन्द्र के लिए पहले धीरे-धीरे, पीछे जोर से (दाँतों से) बहो।

४. वह इन्द्र हमें (अपाला और स्तोता लोगों को) अथवा पूजार्थ अपाला के लिए बहुवचन समर्थ बनावें। हमें बहुसंख्यक करें। वे हमें अनेक बार धनी करें। हम पति के द्वारा छोड़ी जाकर यहाँ आई हैं। हम इन्द्र के साथ मिलेंगी।

५. इन्द्र, मेरे पिता का मस्तक (केश-रहित) और खेत तथा मेरे उदर के पास के स्थान (गुह्येन्द्रिय)—इन तीनों स्थानों को उत्पादक बनाओ।

६. हमारे पिता का जो ऊसर खेत है तथा मेरे शरीर (गोपनीय इन्द्रिय) और पिता का मस्तक (चर्म्मरोग के कारण लोम-शून्य है)—इन तीनों स्थानों को उर्वर और रोम-युक्त करो।

७. शतसंख्यकयज्ञवाले इन्द्र ने अपने रथ के बड़े छिद्र, शकट के (कुछ छोटे छिद्र) और युग (जोड़) के छोटे छिद्र को निष्कर्षण (अपनयन) के द्वारा शोधन करके अपाला को सूर्य के समान, चर्म-युक्त किया था।

८१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि श्रुतकक्ष वा सुकक्ष। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. ऋत्विको, अपने सोम-पाता इन्द्र की विशेष रूप से स्तुति करो। वे सबके पराभवकर्त्ता, शत-याज्ञिक और मनुष्यों को सर्वापेक्षा अधिक धन देनेवाले हैं।

२. तुम लोग बहुतों के द्वारा आहूत, अनेकों के द्वारा स्तुत, गानयोग्य और सनातन कहकर प्रसिद्ध देव को इन्द्र कहना।

३. इन्द्र ही हमारे महान् धन के दाता, महान् अन्न के प्रदाता और सबको नचानेवाले हैं। महान् इन्द्र हमारे सम्मुख आकर हमें धन दें।

४. सुन्दर शिरस्त्राणवाले इन्द्र ने होता और निपुण ऋषि के जौ से मिले और चूनेवाले सोम को भली भाँति पिया था।

५. सोम-पान के लिए तुम लोग इन्द्र की विशेष रूप से पूजा करो। सोम ही इन्द्र को वर्द्धित करता है।

६. प्रकाशमान इन्द्र सोम के मदकर रस को पीकर बल के द्वारा सारे भुवनों को दबाते हैं।

७. सबको दबानेवाले और तुम्हारे सारे स्तोमों में विस्तृत इन्द्र को ही, रक्षण के लिए, सामने बुलाओ।

८. इन्द्र शत्रुओं को मारनेवाले सत्, राक्षसों के द्वारा अगम्य, अहिंसित, सोम-पाता और सबके नेता हैं। इनके कर्म में कोई बाधा नहीं दे सकता।

९. स्तुति के द्वारा सम्बोधन के योग्य इन्द्र, तुम विद्वान् हो। शत्रुओं से लेकर हमें बहु बार धन दो। शत्रु-धन के द्वारा हमारी रक्षा करो।

१०. इन्द्र, इस द्युलोक से ही सौ और सहस्र बलों तथा अन्न से युक्त होकर हमारे समीप आओ।

११. समर्थ इन्द्र, हम कर्मवाले हैं। युद्ध-विजय के लिए हम कर्म करेंगे। पर्वत-विदारक और वज्रधर इन्द्र, हम युद्ध में अश्वों के द्वारा जय लाभ करेंगे।

१२. जैसे गोपाल तृणों के द्वारा गायों को सन्तुष्ट करता है, वैसे ही हे बहुकर्मा इन्द्र, तुम्हें चारों ओर से उक्थ स्तोत्र के द्वारा हम सन्तुष्ट करेंगे।

१३. शतक्रतु इन्द्र, सारा संसार अभिलाषी है। वज्रधर इन्द्र, हम भी धनादि अभिलाषाओं को प्राप्त करेंगे।

१४. बल के पुत्र इन्द्र, अभिलाषा के कारण कातर शब्दवाले मनुष्य तुमको ही आश्रित करते हैं; इसलिए हे इन्द्र, कोई भी देव तुम्हें नहीं लाँघ सकते।

१५. अभिलाषा-दाता इन्द्र, तुम सबकी अपेक्षा धन-दाता हो। तुम भयंकर शत्रु को दूर करनेवाले और अनेकों का धारण करने में समर्थ हो। तुम कर्म के द्वारा हमें पालन करो।

१६. बहुविध-कर्मा इन्द्र, जिस सबसे अधिक यशस्वी सोम को, पूर्वकाल में, तुम्हारे लिए, हमने अभिषुत किया था, उसके द्वारा प्रमत्त होकर इस समय हमें प्रमत्त करो।

१७. इन्द्र, तुम्हारी प्रमत्तता नाना प्रकार की कीर्त्तियों से युक्त है। यह हमारे द्वारा अभिषुत सोम सबसे अधिक पाप-नाशक और बल-दाता है।

१८. वज्रधर, यथार्थकर्मा, सोमपाता और दर्शनीय इन्द्र, सारे मनुष्यों में जो तुम्हारा दिया हुआ धन है, उसे ही हम जानते हैं।

१९. मत्त इन्द्र के लिए हमारे स्तुति-वचन अभिषुत सोम की स्तुति करें। स्तोता लोग पूजनीय सोम की पूजा करें।

२०. जिन इन्द्र में सारी कान्तियाँ अवस्थित हैं और जिनमें सात होत्रक, सोम-प्रदान के लिए, प्रसन्न होते हैं, उन्हीं इन्द्र को, सोमाभिषव होने पर, हम बुलाते हैं।

२१. देवो, तुम लोगों ने त्रिकद्रुक (ज्योति, गौ और आयु) के लिए ज्ञान-साधक यज्ञ का विस्तार किया था। हमारे स्तुति-वाक्य उसी यज्ञ को बर्द्धित करें।

२२. जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं, सारे सोम तुममें प्रविष्ट हों। इन्द्रहें कोई तुम नहीं लाँघ सकता।

२३. मनोरथ-पूरक और जागरणशील इन्द्र, तुम अपनी महिमा से सोमपान में व्याप्त हुए हो। वह सोम तुम्हारे उदर में पैठता है।

२४. वृत्रघ्न इन्द्र, तुम्हारे उदर के लिए सोम पर्याप्त हो। चूनेवाला सोम तुम्हारे शरीर में यथेष्ट हो।

२५. श्रुतकक्ष (मैं) अश्व-प्राप्ति के लिए, अतीव गान करता है। इन्द्र के गृह के लिए खूब गाता है।

२६. इन्द्र, सोमाभिषव होने पर, पान के लिए, तुम पर्याप्त हो। समर्थ इन्द्र, तुम्हीं धनद हो। तुम्हारे लिए सोम पर्याप्त हो।

२७. वज्रधर इन्द्र, हमारे स्तुति-वाक्य, दूर रहने पर भी, तुम्हें व्याप्त करें। हम स्तोता हैं। तुम्हारे पास से हम प्रचुर धन प्राप्त करेंगे।

२८. इन्द्र, तुम वीरों की ही इच्छा करते हो। तुम शूर और धैर्यवाले हो। तुम्हारे मन की आराधना सबको करनी चाहिए।

२९. बहु-धनी इन्द्र, सारे यजमान तुम्हारे दान को धारण करते हैं। इन्द्र, तुम मेरे सहायक बनो।

३०. अन्नपति इन्द्र, तुम तन्द्रा-युक्त ब्राह्मण स्तोता के समान नहीं होना। अभिषुत और क्षीरादि से युक्त सोम के पान से हृष्ट होना।

३१. इन्द्र, आयुध फेंकनेवाले शूर (राक्षस) रात्रि-काल में हमें नियन्त्रित न करें। तुम्हारी सहायता से हम उनका विनाश करेंगे।

३२. इन्द्र, तुम्हारी सहायता प्राप्त करके हम शत्रुओं को दूर करेंगे। तुम हमारे हो और हम तुम्हारे हैं।

३३. इन्द्र, तुम्हारी अभिलाषा करके तथा बार-बार तुम्हारी स्तुति करके तुम्हारे बन्धु-स्वरूप स्तोता लोग तुम्हारी सेवा करते हैं।

८२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि सुकक्ष। छन्द गायत्री।)

१. सुवीर्य (सूर्यात्मक) इन्द्र, प्रसिद्ध धनवाले, मनोरथ-पूरक, मनुष्य-हितैषी कर्मवाले और उदार यजमान के चारों ओर उदित होते हो।

२. जिन्होंने बाहु-बल से ९९ पुरियों को (दिवोदास के लिए) विनष्ट किया और जिन वृत्रहन्ता इन्द्र ने मेघ का वध किया था—

३. वे ही कल्याणकारी और बन्धु इन्द्र, हमारे लिए अश्व, गौ और जौ से युक्त धन को, यथेष्ट दूधवाली गाय के समान, दूहें।

४. वृत्रघ्न और सूर्य इन्द्र, आज जो पदार्थ हैं, उनमें सामने प्रकट हुए हो। इस प्रकार सारा संसार तुम्हारे वश में हुआ है।

५. प्रवृद्ध और सत्पति इन्द्र, यदि तुम अपने को अमर मानते हो, तो ठीक ही है।

६. दूर अथवा निकटवर्ती प्रदेश में जो सब सोम अभिषुत होते हैं, इन्द्र, तुम उनके सामने जाते हो।

७. हम महान् वृत्र के वध के लिए उन इन्द्र को ही बली करेंगे। धन-वर्षक इन्द्र, अभिलाषावाला हो।

८. ये इन्द्र धनवान् के लिए प्रजापति के द्वारा सृष्ट हुए हैं। वे सबकी अपेक्षा ओजस्वी, सोमपान के लिए स्थापित, अतीव कीर्त्तिशाली, स्तुतिवाले और सोम-योग्य हैं।

९. स्तुति-वचनों के द्वारा वज्र के समान तेज, बली, अपराजित, महान् और अहिंसित इन्द्र धन आदि का वहन करने की इच्छा करते हैं।

१०. स्तुति-योग्य इन्द्र, धनी इन्द्र, यदि तुम हमारी इच्छा करते हो, तो तुम स्तुत होकर दुर्गम स्थान में भी हमारे लिए सुगम पथ कर दो।

११. इन्द्र, आज भी तुम्हारे बल और तुम्हारे राज्य की कोई हिंसा नहीं करता। देवता भी हिंसा नहीं करते और संग्राम क्षिप्रकारी वीर भी तुम्हारी हिंसा नहीं करता।

१२. शोभन जबड़ोंवाले इन्द्र, द्यावापृथिवी—दोनों देवी तुम्हारे न रोकने योग्य बल की पूजा करती हैं।

१३. तुम काली और लाल गायों में प्रकाशमान दूध देते हो।

१४. जिस समय सारे देवता वृत्रासुर के तेज से भाग गये थे और वे मृग-रूपी वृत्र से भीत हुए थे—

१५. उस समय मेरे इन्द्रदेव वृत्र के हन्ता हुए थे। अजातशत्रु और वृत्रघ्न इन्द्र ने अपने पौरुष का प्रयोग किया था।

१६. ऋत्विको, प्रख्यात, वृत्रघ्न और बली इन्द्र की स्तुति करके मैं तुम्हारे लिए यथेष्ट दान दूँगा।

१७. अनेक नामोंवाले और बहुतों के द्वारा स्तुत इन्द्र, जब कि तुम प्रत्येक सोमपान में उपस्थित हुए हो। तब हम गौ चाहनेवाली बुद्धिवाले होंगे।

१८. वृत्र-हन्ता और अनेक अभिषवों से युक्त इन्द्र, हमारे मनोरथ को समझें। शक्र (युद्ध में शत्रु-वध समर्थ इन्द्र) हमारी स्तुति को सुनें।

१९. अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, तुम किस आश्रय अथवा सेवा के द्वारा हमें प्रसन्न करोगे? किस सेवा के द्वारा स्तोताओं को धन दोगे?

२०. अभीष्टवर्षक, सेचक, वृत्रघ्न और मरुतोंवाले इन्द्र किसके यज्ञ में, सोमपान के लिए, ऋत्विकों के साथ, विहार करते हैं ?

२१. तुम मत्त होकर हमें सहस्र-संख्यक धन दो। तुम अपने को हव्यदाता नियन्ता समझो।

२२. यह सब जल-युक्त (ऋजीष-रूप) सोम अभिषुत हुआ है। इन्द्र पान करें—इसी इच्छा से सारा सोम इन्द्र के पास जाता है। पीने पर सोम प्रसन्नता देता है। सोम (ऋजीष-रूप) जल के पास जाता है।

२३. यज्ञ में वर्द्धक और यज्ञ-कर्त्ता सात होता यज्ञ और दिन के अन्त में तेजस्वी होकर इन्द्र का विसर्जन करते हैं।

२४. प्रख्यात इन्द्र के साथ प्रमत्त और सुवर्ण-केशवाले हरि नामक अश्व, हितकर अन्न की ओर, इन्द्र को ले जायें।

२५. प्रकाशमान धनवाले अग्नि, तुम्हारे लिए यह सोम अभिषुत हुआ है। तुम्हारे लिए यह सोम अभिषुत हुआ है—कुश भी बिछाया हुआ है; इसलिए स्तोताओं के सोमपान के लिए इन्द्र को बुलाओ।

२६. ऋत्विग्-यजमानो, इन्द्र को हवि देनेवाले तुम्हारे लिए इन्द्र दीप्यमान बल भेजें—रत्न भेजें। स्तोताओं के लिए भी इन्द्र बल-रत्नादि प्रेरित करें। तुम इन्द्र की पूजा करो।

२७. शतक्रतु (शतप्रज्ञ) इन्द्र, तुम्हारे लिए वीर्यवान् सोम और समस्त स्तोत्रों का मैं सम्पादन करता हूँ। इन्द्र, स्तोताओं को सुखी करो।

२८. इन्द्र, यदि तुम हमें सुखी करना चाहो, तो हे शतक्रतु, तुम हमें कल्याण दो, अन्न दो और बल दो।

२९. इन्द्र, यदि तुम हमें सुखी करना चाहते हो, तो हे शतक्रतु, हमारे लिए सारे मङ्गल ले आओ।

३०. इन्द्र, तुम हमें सुखी करने की इच्छा करते हो; इसलिए, हे श्रेष्ठ असुर-घातक, हम अभिषुत-सोम-युक्त होकर तुम्हें बुलाते हैं।

३१. सोमपति इन्द्र, हरि अश्वों की सवारी से हमारे अभिषुत सोम के पास आओ—हमारे अभिषुत सोम के पास आओ।

३२. श्रेष्ठ, वृत्रघ्न और शतक्रतु इन्द्र दो प्रकार से जाने जाते हैं। इसलिए, वही तुम, हरियों की सवारी से हमारे अभिषुत सोम के पास आओ।

३३. वृत्रघ्न इन्द्र, तुम इस सोम के पान कर्त्ता हो; इसलिए हरियों के साथ अभिषुत सोम के पास आओ।

३४. इन्द्र अन्न के दाता और अमर ऋभुदेव को (अन्न-प्राप्ति के लिए) हमें दें। बलवान् इन्द्र वाज नामक उनके भ्राता को भी हमें दें।

८३ सूक्त

(१० अनुवाक। देवता मरुद्गण। ऋषि बिन्दु अथवा पूतदक्ष। छन्द गायत्री।)

१. धनी मरुतों की माता गौ अपने पुत्र मरुतों को सोम पान कराती है। वह गौ अन्नाभिलाषिणी, मरुतों को रथ में लगानेवाली और पूजनीया है।

२. सारे देवगण गौ की गोद में वर्त्तमान रहकर अपने-अपने व्रत को धारण करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा भी, सारे लोकों के प्रकाशन के लिए, इसके समीप रहते हैं।

३. हमारे सर्वत्रगामी स्तोता लोग सदा सोम-पान के लिए मरुतों की स्तुति करते हैं।

४. यह सोम अभिषुत हुआ है। स्वभावतः प्रदीप्त मरुद्गण और अश्विद्वय इसके अंश का पान करें।

५. मित्र, अर्यमा और वरुण "दशापवित्र" के द्वारा शोधित तीन स्थानों (द्रोण, कलशाधवनीय और पूतभृत्) में स्थापित तथा जनवाले सोम का पान करें।

६. इन्द्र प्रातःकाल में, होता के समान, अभिषुत और गव्य (क्षीरादि) से युक्त सोम की सेवा की प्रशंसा करते हैं।

३. इन्द्र का वज्र लोहे का बना हुआ है। वह वज्र उनके हाथ में संबद्ध है; इसलिए उनके हाथ में बहुत बल है। युद्ध-गमन-समय में इन्द्र के मस्तक में शिरस्त्राण आदि रहते हैं। इन्द्र की आज्ञा सुनने के लिए सब उनके समीप आते हैं।

४. इन्द्र मैं तुम्हें यज्ञार्हों में भी यज्ञ-योग्य समझता हूँ। तुम्हें मैं पर्वतों का भेदक समझता हूँ। तुम्हें मैं सैन्यों का पताका समझता हूँ। तुम्हें मैं मनुष्यों का अभिमत-फल-दाता समझता हूँ।

५. इन्द्र, तुम जिस समय दोनों बाहुओं से शत्रुओं का गर्व चूर्ण करते हो, जिस समय वृत्रवध के लिए वज्र धारण करते हो, जिस समय मेघ और जल शब्द करते हैं, उस समय चारों ओर से इन्द्र के पास आते हुए स्तोता लोग इन्द्र की सेवा करते हैं।

६. जिन इन्द्र ने इन प्राणियों को उत्पन्न किया और जिनके पीछे सारी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं, स्तुति-द्वारा उन्हीं इन्द्र को हम मित्र बनावेंगे और नमस्कार के द्वारा काम-दाता इन्द्र को अपने सामने करेंगे।

७. इन्द्र, जो विश्वदेव तुम्हारे सखा हुए थे, उन्होंने वृत्रासुर के श्वास से डरकर भागते हुए तुम्हें छोड़ दिया था। मरुतों के साथ तुम्हारी मैत्री हुई। अनन्तर तुमने सारी शत्रु-सेना को जीता।

८. इन्द्र, ६३ मरुतों ने, एकत्र गो-यूथ के समान, तुम्हें वर्द्धित किया था। इसी लिए वे यजनीय हुए थे। हम उन्हीं इन्द्र के पास जायेंगे। इन्द्र, हमें भजनीय अन्न दो। हम भी तुम्हें शत्रु-घातक बल देंगे।

९. इन्द्र, तुम्हारे हथियार तेज हैं; तुम्हारी सेना मत्त है। तुम्हारे वज्र का विरुद्धाचरण कौन कर सकता है? हे सोमवाले इन्द्र, वज्र के द्वारा आयुध-शून्य और देव-द्रोही असुरों को दूर कर दो।

१०. स्तोता, पशु-प्राप्ति के लिए महान्, उग्र, प्रवृद्ध और कल्याणमय इन्द्र की सुन्दर स्तुति करो। स्तुतिपात्र इन्द्र के लिए अनेक स्तुतियाँ करो। पुत्र के लिए इन्द्र प्रचुर धन भेजें।

११. मन्त्रों के द्वारा प्राप्त और महान् इन्द्र के लिए, नदी को पार करनेवाली नौका के समान, स्तुति करो। बहु-प्रसिद्ध और प्रसन्नता-दायक इन्द्र धन दें। पुत्र के लिए इन्द्र बहुत धन दें।

१२. इन्द्र जो चाहते हैं, वह करो। सुन्दर स्तुति का वाचन करो। स्तोत्र के द्वारा इन्द्र की सेवा करो। स्तोता, अलंकृत होओ। दरिद्रता के कारण मत रोओ। इन्द्र को अपनी स्तुति सुनाओ। इन्द्र तुम्हें बहुत धन देंगे।

१३. दस सहस्र सेनाओं के साथ शीघ्र जानेवाला कृष्ण नाम का असुर अंशुमती नदी के किनारे रहता था। बुद्धि के द्वारा इन्द्र ने उस शब्द करनेवाले असुर को प्राप्त किया। पीछे इन्द्र ने, मनुष्यों के हित के लिए, कृष्णासुर की हिंसक सेना का वध कर डाला।

१४. इन्द्र ने कहा—"द्रुतगामी कृष्ण को मैंने देखा है। वह अंशुमती नदी के तट पर, गूढ़ स्थान में, विस्तृत प्रदेश में, विचरण करता और सूर्य के समान अवस्थान करता है। अभिलाषा-दाता मरुतो, मैं चाहता हूँ कि तुम लोग युद्ध करो और युद्ध में उसका संहार करो।

१५. द्रुतगामी कृष्ण अंशुमती नदी के पास दीप्तिमान् होकर, शरीर धारण करता है। इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से, देव-शून्य और आने-वाला सेना का वध, कृष्ण के साथ, कर डाला।

१६. इन्द्र, तुमने ही वह कार्य किया है। जन्म के साथ ही तुम ही शत्रु-शून्य कृष्ण, वृत्र, नमुचि, शम्बर, शुष्ण, पणि आदि सात शत्रुओं के शत्रु हुए थे। तुम अन्धकारमयी द्यावापृथिवी को प्राप्त हुए हो। तुमने मरुतों के साथ, भुवनों के लिए, आनन्द को धारण किया है।

१७. इन्द्र, तुमने वह कार्य किया है। वज्रधर इन्द्र, संग्राम में कुशल होकर तुमने वज्र के द्वारा शुष्ण के अनुपम बल को नष्ट किया है। तुमने ही आयुधों के द्वारा शुष्ण को, कुत्स राजर्षि के लिए, निम्नमुख करके मार डाला है। अपने कर्म के द्वारा तुमने गो-प्राप्ति की है।

१८. इन्द्र तुमने ही वह कार्य किया है। मनोरथ-प्रद इन्द्र, तुम मनुष्यों को उपद्रव के विनाशक हो; इसलिए तुम प्रबुद्ध हुए थे। तुमने रोकी गई सिन्धु आदि नदियों को बहने के लिए जाने दिया था। अनन्तर दासों के अधिकृत जल को तुमने जीत लिया था।

१९. वेही इन्द्र शोभन प्रज्ञावाले हैं वे अभिषुत सोम के पान के लिए आनन्दित हैं। इन्द्र के क्रोध को कोई नहीं सह सकता। दिन के समान इन्द्र धनी हैं। वे असहाय होकर भी मनुष्यों के कार्य-कर्त्ता हैं। वे वृत्रघ्न हैं। वे सारे शत्रु-सैन्यों के विनाशक हैं।

२०. इन्द्र वृत्रघ्न हैं। वे मनुष्यों के पोषक हैं। वे आह्वान के योग्य हैं। हम शोभन स्तुति से उन्हें अपने यज्ञ में बुलाते हैं। वे हमारे विशेष रक्षक, धनवान्, आदर के साथ बोलनेवाले तथा अन्न और कीर्ति के दाता हैं।

२१. वृत्रघ्न इन्द्र महान् हैं। जन्म के साथ इन्द्र सबके लिए बुलाने योग्य हो गये। वे मनुष्यों के लिए अनेक हितकर कार्य करते हुए, पिये गये सोम के समान, सखाओं के आह्वान के योग्य हुए थे।

८६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि रेभ। छन्द अति जगती, बृहती, त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम सुखवाले हो। तुम जो असुरों के पास से भोग के योग्य धन ले आये हो, धनी इन्द्र, उससे स्तोता को वर्द्धित करो। स्तोता कुश बिछाये हुए हैं।

२. इन्द्र, तुम जो गौ, अश्व और अविनाशी धन को धारण किये हुए हो, सो सब सोमाभिषव और दक्षिणावाले यजमान को दो। यज्ञ-विहीन पणि को नहीं देना।

३. देवाभिलाष-शून्य तथा व्रत-रहित जो व्यक्ति स्वप्न के वश होकर निद्रित होता है, वह अपनी गति (कर्म) के द्वारा ही अपने पोष्य धन का विनाश करे, उसे कर्म-शून्य स्थान में रखो।

४. शत्रु-हन्ता और वृत्रघ्न इन्द्र, तुम दूर देश में रहो अथवा समीप के देश में, इस भूलोक से द्युलोक को जाते हुए केशवाले हरि अश्वों के समान तुम्हें, इस स्तोत्र के द्वारा, अभिषुत सोमवाला यजमान यज्ञ में ले आता है।

५. इन्द्र, यदि तुम स्वर्ग के दीप्त स्थान में हो, यदि समुद्र के बीच में किसी स्थान पर हो, यदि पृथ्वी के किसी स्थान में हो अथवा अन्तरिक्ष में हो, (जहाँ कहीं भी हो, हमारे यज्ञ में) हे वृत्रघ्न, आओ।

६. सोमपा और बलपति इन्द्र, सोमाभिषव होने पर बहुत धन और सुन्दर वाक्य से युक्त तथा बल-साधक अन्न के द्वारा हमें आनन्दित करो।

७. इन्द्र, हमें नहीं छोड़ना। तुम हमारे साथ एकत्र सोमपान से प्रमत्त होओ। तुम हमें अपने रक्षण में रखो। तुम्हीं हमारे बन्धु हो। तुम हमें नहीं छोड़ना।

८. इन्द्र, हमारे साथ, मदकर सोम के पान के लिए, सोमाभिषव होने पर बैठो। धनी इन्द्र, स्तोता को महती रक्षा प्रदान करो। सोमाभिषव होने पर हमारे साथ बैठो।

९. वज्रधर इन्द्र, देवता लोग तुम्हें नहीं व्याप्त कर सकते—मनुष्य भी नहीं व्याप्त कर सकते। अपने बल के द्वारा समस्त भूतों को तुम अभिभूत किये हुए हो। देवता तुम्हें नहीं व्याप्त कर सकते।

१०. सारी सेना, परस्पर मिलकर शत्रुओं के विजेता और नेता इन्द्र को आयुध आदि के द्वारा तेज करती हैं। स्तोता लोग अपने प्रकाशन के लिए यज्ञ में सूर्यरूप इन्द्र की सृष्टि करते हैं। कर्म के द्वारा बलिष्ठ और शत्रुओं के सामने विनाशक, उग्र, ओजस्वी, प्रवृद्ध और वेगवान् इन्द्र की धन के लिए स्तोता लोग स्तुति करते हैं।

११. सोमपान के लिए रेभ नामक ऋषियों ने इन्द्र की भली भाँति स्तुति की थी। जब लोग स्वर्ग के पालक इन्द्र की वर्द्धन के लिए स्तुति करते हैं, तब व्रतधारी इन्द्र बल और पालन के द्वारा मिलित होते हैं।

१२. कश्यपगोत्रीय रेभ लोग, नेमि के समान, देखने के साथ ही इन्द्र को नमस्कार करते हैं। मेधावी (विप्र) लोग मेष (भेड़ के समान उपकारी) इन्द्र का, स्तोत्र के द्वारा, नमस्कार करते हैं। स्तोताओ, तुम लोग शोभन दीप्तिवाले और द्रोह-शून्य हो। क्षिप्रकारी तुम लोग इन्द्र के कानों के पास पूजा-युक्त मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति करो।

१३. उस उग्र, धनी, यथार्थतः बल धारण करनेवाले और शत्रुओं के द्वारा न रोके जाने योग्य इन्द्र को मैं बुलाता हूँ। पूज्यतम और यज्ञ-योग्य इन्द्र हमारी स्तुतियों के द्वारा यज्ञाभिमुख हों। वज्रधर इन्द्र हमारे धन के लिए सारे मार्गों को सुपथ बनावें।

१४. बलिष्ठ और शत्रुहनन-समर्थ (शक्र) इन्द्र, शम्बर की इन सब पुरियों को, बल के द्वारा, विनष्ट करने के लिए, ज्ञाता होते हो। वज्रधर इन्द्र, तुम्हारे डर से सारे भूत और द्यावापृथिवी काँपती हैं।

१५. बली और विविध-रूप इन्द्र, तुम्हारा प्रशंसनीय सत्य मेरी रक्षा करे। वज्री इन्द्र, नाविक के द्वारा जल के समान अनेक पापों से हमें पार करो। राजा इन्द्र, विविध-रूप और अभिलषणीय धन, हमारे सामने, कब प्रदान करोगे ?

षष्ठ अध्याय समाप्त।

८७ सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि अङ्गिरोगोत्रीय नृमेध। छन्द ककुप्, पुरउष्णिक् और उष्णिक्।)

१. उद्गाताओ, मेधावी, विशाल, कर्म-कर्त्ता, विद्वान् और स्तोत्राभिलाषी इन्द्र के लिए बृहत् स्तोत्र का गान करो।

२. इन्द्र, तुम शत्रुओं को दबानेवाले हो। तुमने आदित्य को तेज के द्वारा प्रदीप्त किया है। तुम विश्वकर्त्ता, सर्वदेव और सर्वाधिक हो।

३. इन्द्र, ज्योति के द्वारा तुम आदित्य के प्रकाशक हो। तुम स्वर्ग को प्रकाशित करते हुए गये थे। देवों ने तुम्हारी मैत्री के लिए प्रयत्न किया था।

४. इन्द्र, तुम प्रियतम और महान् व्यक्तियों के विजेता हो। तुम्हारा कोई गोपन नहीं कर सकता। तुम पर्वत के समान चारों ओर व्यापक और स्वर्ग के स्वामी हो। हमारे पास आओ।

५. सत्य-स्वरूप और सोमपाता इन्द्र, तुमने द्यावापृथिवी को अभिभूत किया है; इसलिए तुम अभिषव करनेवाले के वर्द्धक और स्वर्गाधिपति हो।

६. इन्द्र, तुम अनेक शत्रु-पुरियों के भेदक हो। तुम दस्यु-घातक, मनुष्य के वर्द्धक और स्वर्ग के पति हो।

७. स्तुत्य इन्द्र, जैसे क्रीड़ा के लिए लोग जल में अपने पास के व्यक्तियों पर जल फेंका करते हैं, वैसे ही हम आज तुम्हारे लिए महान् और कमनीय स्तोम (मन्त्र) प्राप्त करते हैं।

८. वज्रधर और शूर इन्द्र, जैसे नदियाँ जल-स्थान को बढ़ाती हैं, वैसे ही स्तोत्रों के द्वारा प्रवृद्ध तुम्हें स्तोता लोग प्रतिदिन वर्द्धित करते हैं।

९. गतिपरायण इन्द्र के महान् युगों (जोड़ों) से युक्त विशाल रथ में इन्द्र के वाहक और कहने के साथ ही जुट जानेवाले हरि नामक दोनों अश्वों को, स्तोत्र के द्वारा स्तोता लोग जोतते हैं।

१०. बहुकर्मा, प्रवीण, वीर्यशाली और सेना को जीतनेवाले इन्द्र, तुम हमें बल और धन दो।

११. निवास-दाता और बहुकर्मा इन्द्र, तुम हमारे पिता के सदृश पालक और माता के समान धारक बनो। अनन्तर हम तुम्हारे सुख की याचना करेंगे।

१२. बली, अनेक के द्वारा आहूत और बहुकर्मा इन्द्र, बल की अभिलाषा करनेवाले तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ। तुम हमें सुन्दर वीर्यसंयुक्त धन दो।

८८ सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि नृमेध । छन्द अयुक्, बृहती और युक सतोबृहती ।)

१. वज्रधर इन्द्र, हवि से भरण करनेवाले नेताओं ने तुम्हें आज और कल सोमपान कराया है। तुम इस यज्ञ में हम स्तोत्र-वाहकों का स्तोत्र सुनो और हमारे गृह में पधारो।

२. सुन्दर चादरवाले, अश्ववाले और स्तुतिवाले इन्द्र, परिचारक लोग तुम्हारे लिए सोमाभिषव करते हैं। तुम पीकर मत्त होओ। हम तुम्हारे पास प्रार्थना करते हैं। सोमाभिषव होने पर तुम्हारे अन्न उपमेय और प्रशस्य हों।

३. जैसे आश्रित किरणें सूर्य का भजन करती हैं, वैसे ही तुम इन्द्र के सारे धनों का भजन करो। इन्द्र बल के द्वारा उत्पन्न और उत्पन्न होनेवाले धनों के जनक हैं। हम उन धनों को पैतृक भाग के समान धारण करेंगे।

४. पाप-रहित व्यक्ति के लिए जो दान-शील और धनद हैं, उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो; क्योंकि इन्द्र का दान कल्याणवाहक है। इन्द्र अपने मन को अभीष्ट प्रदान के लिए प्रेरित करके परिचारक की इच्छा को बाधा नहीं देते।

५. इन्द्र, तुम युद्ध में सारी सेनाओं को दबाते हो। शत्रु-बाधक इन्द्र तुम दैत्यों के नाशक, उनके जनक शत्रुओं के हिंसक और बाधकों के बाधक हो।

६. इन्द्र, जैसे माता शिशु का अनुगमन करती है, वैसे ही तुम्हारे बल की हिंसा करनेवाले शत्रु का अनुगमन द्यावापृथिवी करती हैं। तुम वृत्र का वध करते हो; इसलिए सारी युद्धकारिणी सेना तुम्हारे क्रोध के लिए खिन्न होती है।

७. अजर, शत्रु-प्रेरक, किसी से न भेजे गये, वेगवान्, जेता, गन्ता, रथिश्रेष्ठ, अहिंसक और जल-वर्द्धक इन्द्र को, रक्षण के लिए, आगे करो।

८. शत्रुओं के संस्कर्ता, दूसरों के द्वारा असंस्कृत, बलकृत, बहुरक्षण-वाले, शत-प्रज्ञवाले, साधारण धनाच्छादक और धन-प्रेरक इन्द्र को, रक्षण के लिए, हम बुलाते हैं।

८९ सूक्त

(देवता इन्द्र। १०-११ के वाक्। ऋषि भृगुगोत्रीय नेम।
छन्द जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, पुत्र के साथ में शत्रु को जीतने के लिए, तुम्हारे आगे-आगे जाता हूँ। सारे देवता मेरे पीछे-पीछे जाते हैं। तुम शत्रु-धन का अंग मुझे देते हो; इसलिए मेरे साथ पुरुषार्थ करो।

२. तुम्हारे लिए पहले में मदकर सोमरूप अन्न (भक्षण) देता हूँ। तुम्हारे हृदय में अभिषुत सोम निहित हो। तुम मेरे दक्षिण भाग में मित्र-रूप होकर अवस्थित होओ। पश्चात् हम दोनों अनेक असुरों का वध करेंगे।

३. युद्धेच्छुको, यदि इन्द्र की सत्ता सच्ची हो, तो इन्द्र के लिए सत्य-रूप सोम का उच्चारण करो। भार्गव नेम ऋषि का मत है कि इन्द्र नाम का कोई नहीं है। इन्द्र को किसी ने देखा है? फलतः हम किसकी स्तुति करें?

४. स्तोता नेम, यह मैं तुम्हारे पास आगया हूँ। मुझे देखो मैं सारे संसार को, महिमा के द्वारा, दबाता हूँ। सत्य यज्ञ के द्रष्टा मुझे वर्द्धित करते हैं। मैं विदारण-परायण हूँ। मैं सारे भुवनों को विदीर्ण करता हूँ।

५. जिस समय यज्ञाभिलाषियों ने कमनीय अन्तरिक्ष की पीठ पर अकेले बैठे हुए मुझे चढ़ाया था, उस समय उन लोगों के मन ने ही मेरे हृदय में उत्तर दिया था कि पुत्र-युक्त प्रिय मेरे लिए रो रहे हैं।

६. धनी इन्द्र, यज्ञ में सोमाभिषव करनेवालों के लिए तुमने जो कुछ किया है, वह सब कहने योग्य है। परावत् नाम के शत्रु का जो धन है, उसे तुमने ऋषिमित्र शरभ के लिए, यथेष्ट रूप में, प्रकट किया था।

७. जो शत्रु इस समय दौड़ रहा है—पृथक् नहीं ठहरता और जो तुम्हें नहीं ढकता, उसके मर्म-स्थान में इन्द्र ने वज्रपात किया है।

८. मन के समान वेगवान् और गमनशील सुपर्ण (गरुड़) लौहमय नगर के पार गये। अनन्तर स्वर्ग में जाकर इन्द्र के लिए सोम ले आये।

९. जो वज्र समुद्र के बीच सोता है और जो जल में ढका हुआ है, उसी वज्र के लिए संग्राम में आगे जानेवाले शत्रु (आत्म-बलि-रूप) उपहार धारण करते हैं।

१०. राष्ट्री (प्रदीपक) और देवों को आनन्द-मग्न करनेवाला वाक्य जिस समय अज्ञानियों को ज्ञान देते हुए यज्ञ में बैठता है, उस समय चारों ओर के लिए अन्न और जल का दोहन करता है। उस (माध्यमिकी वाक्) में जो श्रेष्ठ है, वह कहाँ जाता है?

११. देवता लोग जिस दीप्तिमान् वाग्देवी को उत्पन्न करते हैं, उसे ही सभी प्रकार के पशु भी बोलते हैं। वह हर्ष देनेवाली वाक्, अन्न और रस देनेवाली धेनु के समान हमसे स्तुत होकर, हमारे पास आवे।

१२. मित्र विष्णु, तुम अत्यन्त पाद-विक्षेप करो। द्युलोक, तुम वज्र के गमन के लिए अवकाश प्रदान करो। तुम और मैं वृत्र का वध करूँगा और नदियों को (समुद्र की ओर) ले जाऊँगा। नदियाँ इन्द्र की आज्ञा के अनुसार गमन करें।

९० सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ५ के शेषांश के और ६ के आदित्य, ७-८ के अश्विद्वय, ९-१० के वायु, ११-१२ के सूर्य, १३ के उषा, १४ के पवमान और १५-१६ के गो। ऋषि भृगुगोत्रीय जमदग्नि। छन्द त्रिष्टुप्, गायत्री और परासतोबृहती।

१. जो मनुष्य हविःप्रदाता यजमान के लिए, अभिमत की सिद्धि के लिए, मित्र और वरुण का सम्बोधन करता है, वह सचमुच इस प्रकार यज्ञ के लिए हवि का संस्कार करता है।

२. अतीव वर्द्धित-बल महादर्शन, नेता, दीप्तिमान् तथा अतीव विद्वान् वे मित्र और वरुण, दोनों बाहुओं के समान, सूर्य-किरणों के साथ, कर्म प्राप्त करते हैं।

३. मित्र और वरुण, जो गमनशील यजमान तुम्हारे सामने जाता है, वह देवों का दूत होता है। उसका मस्तक सुवर्ण-मण्डित होता है और वह मदकर सोम प्राप्त करता है।

४. जो शत्रु बार-बार पूछने पर भी आनन्दित नहीं होता, जो बार-बार बुलाने पर भी आनन्दित नहीं होता और जो कथोपकथन पर भी आनन्दित नहीं होता, उसके युद्ध से हमें आज बचाओ, उसके बाहुओं से हमें बचाओ।

५. यज्ञ-धन, मित्र के लिए सेवनीय और यज्ञगृहोत्पन्न स्तोत्र का गान करो। अर्यमा के लिए गाओ। वरुण के लिए प्रसन्नता-दायक गान करो। मित्र आदि तीन राजाओं के लिए गाओ।

६. अरुणवर्ण, जयसाधन और वासप्रद पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा आकाश (द्युलोक) आदि तीनों के लिए देवता लोग एक पुत्र (सूर्य) को प्रेरित करते हैं। अहिंसित और अमर देवगण मनुष्यों के स्थान देखते हैं।

७. सत्य-प्रणेता अश्विद्वय, मेरे उच्चारित और दीप्त वाक्यों और कर्मों के लिए आओ। हव्य-भक्षण के लिए आओ।

८. अन्न और धनवाले, अश्विद्वय, तुम लोगों का राक्षस-शून्य जो दान है, उसको जिस समय हम माँगेंगे, उस समय तुम लोग जमदग्नि के द्वारा स्तुत होकर तथा पूर्व मुख और स्तुति-वर्द्धक नेता होकर आना।

९. वायु, तुम हमारी सुन्दर स्तुति से स्वर्ग-स्पर्शी यज्ञ में आना। पवित्र (घृत, वेद-मन्त्र, कुश आदि) के बीच आश्रित यह शुभ्र सोम तुम्हारे लिए नियत हुआ था।

१०. नियुत् अश्वोंवाले वायु, अध्वर्यु सरलतम मार्ग से जाता है। वह तुम्हारे भक्षण के लिए हवि ले जाता है। हमारे लिए दोनों प्रकार के (शुद्ध और दुग्ध-मिश्रित) सोम का पान करो।

११. सूर्य, सचमुच तुम महान् हो, आदित्य, तुम महान् हो, यह बात सच्ची है। तुम महान् हो, तुम्हारी महिमा स्तुत होती है। देव, तुम महान् हो, यह बात सच्ची है।

१२. तुम सुनने में महान् हो, यह बात सच्ची है। देवों में, तुम महिमा के द्वारा महान् हो, यह बात सत्य है। तुम शत्रु-विनाशक हो और तुम देवों के हितोपदेशक हो। तुम्हारा तेज महान् और अहिंसनीय है।

१३. यह जो निम्नमुखी, स्तुतिमती, रूपवती और प्रकाशवती उषा, सूर्य-प्रभाव के द्वारा, उत्पादित हुई है, वह ब्रह्माण्ड की बहु-स्थानीय दसों दिशाओं में आती हुई, चित्रा गाय के समान, देखी जाती है।

१४. तीन प्रजायें अतिक्रमण करके चली गई थीं। अन्य प्रजायें पूजनीय अग्नि के चारों ओर आश्रित हुई थीं। भुवनों में आदित्य महान् होकर अवस्थित हुए थे। पवमान (वायु) दिशाओं में घुस गये।

१५. जो गौ रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की भगिनी और बुग्ध का निवास-स्थान है, मनुष्यो, उस निरपराध और अदीन (अदिति) गो-देवी का वध नहीं करना। मैंने इस बात को बुद्धिमान् मनुष्य से कहा था।

१६. वाक्य-दात्री, वचन उच्चारण करनेवाली, सारे वाक्यों के साथ उपस्थित, प्रकाशमाना और देवता के लिए मुझे जाननेवाली गो-देवी को छोटी बुद्धि का मनुष्य ही परिवर्जित करता है।

९१ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भार्गव प्रयोग, बृहस्पतिपुत्र अग्नि वा सह के पुत्र गृहपति यविष्ठ। छन्द गायत्री।)

१. प्रकाशमान अग्नि, तुम कवि (क्रान्तकर्मा), गृहपालक और नित्य तरुण हो। तुम हव्यदाता यजमान को महान् अन्न देते हो।

२. विशिष्ट दीप्तिवाले अग्नि, तुम ज्ञाता होकर हमारे वाक्य से देवों को ले आओ। हम स्तुति और परिचर्या करते हैं।

३. युवतम अग्नि, तुम अतीव धनप्रेरक हो, तुम्हें सहायक पाकर हम, अन्न-लाभ के लिए, शत्रुओं को दबावेंगे।

४. मैं समुद्र-मध्यस्थित और शुद्ध अग्नि को, और्व भृगु और अप्नवान के समान, बुलाता हूँ।

५. वायु के समान ध्वनिवाले, मेघ के समान क्रन्दन करनेवाले, कवि, बली और समुद्रशायी अग्नि को मैं बुलाता हूँ।

६. सूर्य के प्रसव के समान और भग देवता के भोग के समान समुद्र-शायी अग्नि को मैं बुलाता हूँ।

७. अहिंसनीय, (अध्वर) लोगों के बन्धु, बली, वर्द्धमान और बहु-तम अग्नि की ओर ऋत्विको, तुम जाओ।

८. वही अग्नि हमारे कर्त्तव्य को बनाते हैं। हम अग्नि के प्रज्ञान से यशस्वी होंगे।

९. देवों के बीच अग्नि ही मनुष्यों की सारी सम्पदायें प्राप्त करते हैं। अग्नि, अन्न के साथ, हमारे पास आवें।

१०. स्तोता, सारे होताओं में अधिक यशस्वी और यज्ञ में प्रधान अग्नि की, इस यज्ञ में, स्तुति करो।

११. देवों के बीच प्रधान और अतिशय विद्वान् अग्नि याज्ञिकों के गृह में प्रदीप्त होते हैं। पवित्र दीप्तिवाले और शयन करनेवाले अग्नि की स्तुति करो।

१२. मेधावी स्तोता, अश्व के समान भोग-योग्य, बली और मित्र के समान शत्रु-निधन-कारी अग्नि की स्तुति करो।

१३. अग्नि, यजमान के लिए स्तुतियाँ, भगिनियों के समान, तुम्हारे गुण गाते हुए तुम्हारी सेवा करती हैं। तुम्हें वायु के समीप स्थापित भी करती हैं।

१४. जिन अग्नि के तीन छिपे और न बँधे हुए कुश हैं, उन अग्नि में जल भी स्थान पाता है।

१५. अभीष्ट-वर्षक और प्रकाशमान अग्नि का स्थान सुरक्षित और भोग्य है। उनकी दृष्टि भी, सूर्य के समान मंगलमयी है।

१६. अग्निदेव, दीप्ति-साधक घी के निधान (आगार) के द्वारा तृप्त होकर ज्वाला के द्वारा देवों को बुलाओ और यज्ञ करो।

१७. अंगिरा अग्नि, कवि, अमर, हव्यदाता और प्रसिद्ध अग्नि को, (तुमको) देवों ने, माताओं के समान; उत्पन्न किया है।

१८. कवि अग्नि, तुम प्रकृष्टबुद्धि, वरणीय दूत और देवों के हव्य-वाहक हो। तुम्हारे चारों ओर देवता लोग बैठते हैं।

१९. अग्नि, मेरे (ऋषि के) पास गाय नहीं है, काठ को काटनेवाला फरसा भी नहीं है। यह सब मैं तुमको दे चुका।

२०. युवकतम अग्नि, तुम्हारे लिए जब मैं कोई कोई कार्य करता हूँ, तब तुम अपरशु-छिन्न काष्ठों की ही सेवा करते हो।

२१. जिन काठों को तुम्हारी ज्वाला जलाती है और जिनको तुम्हारी जीभ (ज्वाला) लाँघकर जाती है, वह सब काठ घी के समान हों।

२२. मनुष्य काठ के द्वारा अग्नि को जलाते हुए मन के द्वारा कर्म का आचरण करता है और ऋत्विकों के द्वारा अग्नि को समिद्ध करता है।

९२ सूक्त

(देवता मरुद्गण और अग्नि। ऋषि सोभरि। छन्द सतोबृहती, ककुप्, गायत्री, अनुष्टुप् और बृहती।)

१. जिन अग्नि में सारे कर्मों का, यजमानों के द्वारा, आधान होता है, अतिशय मार्गज्ञाता वही अग्नि प्रकट हुए। आर्यों के वर्द्धक अग्नि के सम्यक् प्रादुर्भूत होने पर हमारी स्तुतियाँ अग्नि के पास जाती हैं।

२. दिवोदास के द्वारा आहूत अग्नि माता पृथ्वी के सामने देवों के लिए हव्यवहन करने में प्रवृत्त नहीं हुए; क्योंकि दिवोदास ने बल-पूर्वक अग्नि का आह्वान किया था; इसलिए अग्नि स्वर्ग के पास ही रहे।

३. कर्त्तव्य-परायण मनुष्यों के यहाँ अन्य मनुष्य काँपते हैं। फलतः हे मनुष्यो, तुम इस समय सहस्र धनों के दाता अग्नि की, यज्ञ में कर्त्तव्य कर्म के द्वारा, स्वयं सेवा करो।

४. निवास-दाता अग्नि, धन-दान के लिए तुम जिसे शिक्षित करते हो और जो मनुष्य तुम्हें हव्य देता है, वह मनुष्य मन्त्र-प्रशंसक और स्वयं सहस्र-पोषक पुत्र को प्राप्त करता है।

५. बहुत धनवाले अग्नि, जो तुम्हारे लिए हव्य देता है, वह दृढ़ शत्रु—नगर में स्थित अन्न को, अश्व की सहायता से, नष्ट करता है—वह वर्द्धित अन्न को धारण करता है। हम भी देव-स्वरूप तुम्हारे लिए हव्य देते हुए तुममें स्थित सब प्रकार के धन को धारण करेंगे।

६. जो अग्नि देवों को बुलानेवाले और आनन्दमय हैं और जो मनुष्यों को अन्न देते हैं, उन्हीं अग्नि के लिए मदकर सोम के प्रथम पात्र जाते हैं।

७. दर्शनीय और लोकपालक अग्नि, सुन्दर दानवाले और देवाभिलाषी यजमान, रथ-वाहक अश्व के समान, स्तुति के द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं, वही तुम हमारे पुत्रों और पौत्रों के लिए धनियों का दान दो।

८. स्तोताओ, तुम सर्व-श्रेष्ठदाता, यज्ञवाले, सत्यवाले, विशाल और प्रदीप्त तेजवाले अग्नि के लिए स्तोत्र पढ़ो।

९. धनी और अन्नवाले अग्नि सन्दीप्त, वीर के समान प्रताप से युक्त और बुलाये जाने पर यशस्कर अन्न प्रदान करते हैं। उनकी अभिनव अनुग्रह-बुद्धि, अन्न के साथ, अनेक बार हमारे पास आवे।

१०. स्तोता, प्रियों में प्रियतम, अतिथि और रथों के नियामक अग्नि की स्तुति करो।

११. ज्ञानी और यज्ञ-योग्य जो अग्नि उदित और श्रुत जिस धन को आवर्त्तित करते हैं और कर्म-द्वारा युद्धेच्छुक जिन अग्नि की ज्वाला निम्न मुखगामी समुद्र-तरंग के समान दुस्तर है, उन्हीं अग्नि की स्तुति करो।

१२. दासप्रद, अतिथि, बहु-स्तुत, देवों के उत्तम आह्वानकर्त्ता और सुन्दर यज्ञवाले अग्नि हमारे लिए किसी के द्वारा रोके न जायँ।

१३. दासप्रद अग्नि, जो मनुष्य स्तुति के द्वारा और सुखावह अनुगामिता से तुम्हारी सेवा करते हैं, वे मारे न जायँ। सुन्दर यज्ञवाले और हव्यदाता स्तोता भी, दूत-कर्म के लिए, तुम्हारी स्तुति करता है।

१४. अग्नि, तुम मरुतों के प्रिय हो। हमारे यज्ञ-कर्म में, सोमपान के लिए, मरुतों के साथ आओ। सोभरि की (मेरी) शोभन स्तुति के पास आओ। सोम पीकर मत्त होओ।

अष्टम मण्डल समाप्त।

१ सूक्त

(बालखिल्यसूक्त। देवता इन्द्र। ऋषि कण्व के पुत्र प्रस्कण्व। छन्द अयुक् और युक् बृहती।)

१. इस प्रकार सुन्दर धनवाले इन्द्र को सामने करके पूजो, जिससे मैं धन प्राप्त कर सकूँ। इन्द्र धनी—बहुत धनवाले हैं। वे स्तोताओं को हज़ार-हज़ार धन देते हैं।

२. इन्द्र गर्व के साथ जाते हैं—मानो वे सौ सेनाओं के स्वामी हैं। वे हव्यदाता के लिए वृत्र-वध करते हैं। इन्द्र अनेकों के पालक हैं। उनके लिए दिया गया सोमरस पर्वत के सोमरस के समान प्रसन्न करता है।

३. स्तुत्य इन्द्र, जो सब सोम मदकारी है, वह सब तुम्हारे लिए अभिषुत हुआ है। वज्रधर शूर, इस समय धन के लिए जल अपने वासस्थान सरोवर को भरता है।

४. तुम सोम के निष्पाप, रक्षक, स्वर्गदाता और मधुरतम रस का पान करो; क्योंकि प्रमत्त होने पर तुम स्वयं सगर्व होते और "क्षुद्रा" नाम की दात्री के समान हमें अभिलषित दान करते हो।

५. जलवाले इन्द्र, कण्वों के लिए तुमने जो प्रसन्नता-दायक दान दिया है, वही दान स्तोम (स्तोत्र) को मीठा करता है। अभिषव करनेवालों के बुलाने पर अश्व के समान तुम उसी स्तोम की ओर शीघ्र आओ।

६. इस समय हम विभूति और अक्षय्य धन से युक्त तथा उग्र और वीर इन्द्र के पास, नमस्कार के साथ, जायेंगे। वज्री इन्द्र जैसे जलवाला कुआँ जल-सिंचन करता है, वैसे ही सारे स्तोत्र तुम्हें सिक्त करते हैं।

७. इस समय जहाँ भी हो, यज्ञ में अथवा पृथिवी में हो, वहीं से, हे उग्र और महामति इन्द्र, तुम उग्र और शीघ्रगामी अश्व के साथ, हमारे यज्ञ में आओ।

८. तुम्हारे हरि अश्व वायु के समान शीघ्रगामी और शत्रु-जेता हैं। उनकी सहायता से तुम मनुष्यों के पास जाते हो और सारे पदार्थों को देखने के लिए संसार में जाया करते हो।

९. इन्द्र, तुम्हारा गौ से संयुक्त इतना धन माँगता हूँ। धनी इन्द्र, तुमने मेध्यातिथि और नीपातिथि की, धन के सम्बन्ध में, रक्षा की थी।

१०. धनी इन्द्र, तुमने कण्व, त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य और ऋजिश्वा को गौ और हिरण्यवाला धन दिया था।

२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि पुष्टिगु। छन्द अयुक् बृहती और युक् सतोबृहती।)

१. धन-प्राप्ति के लिए विख्यात और सुन्दर धनवाले शक्र (इन्द्र) की पूजा करो। वे अभिषवकर्त्ता और स्तोता को हजार-हजार कमनीय धन देते हैं।

२. इनके अस्त्र सौ हैं। ये इन्द्र के अश्व से उत्पन्न हैं। जिस समय अभिषुत सोम इनको प्रमत्त करता है, उस समय ये पर्वत के समान खाद्य देनेवाले होकर धनियों को प्रसन्न करते हैं।

३. जिस समय अभिषुत सोम ने प्रिय इन्द्र को प्रमत्त किया, उस समय, हे इन्द्र, हव्यदाता के लिए, गायों की तरह, यज्ञ में जल रक्खा गया।

४. ऋत्विको, तुम्हारे रक्षण के लिए सारे कर्म निष्पाप और बुलाये जानेवाले इन्द्र के लिए मधु गिराते हैं। वासदाता इन्द्र, सोम लाया जाकर, स्तोत्र-समय में, तुम्हारे सामने रक्खा जाता है।

५. हमारे सुन्दर यज्ञवाले सोम से प्रेरित होकर इन्द्र अश्व के समान आ रहे हैं। स्वादवाले इन्द्र, तुम्हारे स्तोता इस सोम को सुस्वादु बना रहे हैं। तुम पुत्र-पुत्र के बुलावे को प्रसन्न करो।

६. वीर, उग्र, व्याप्त, धन के द्वारा प्रसन्नता-दायक और महाधन के विभूति-रूप इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। वज्रधर इन्द्र, जलवाले कुएँ के समान, सदा व्यापक धन के साथ, हव्यदाता के मंगल के लिए सोम-पान करो।

७. दर्शनीय और महामति इन्द्र, तुम दूर देश में हो, पृथिवी पर रहो अथवा स्वर्ग में, दर्शनीय हरियों को रथ में जोतकर आओ।

८. तुम्हारे जो रथ-वाहक अश्व हैं, वे अहिंसित और वायुवेग को पूरा करनेवाले हैं। इन्हीं की सहायता से तुमने दस्युओं को मारा है। तुमने मनु को (मानव आर्यों को) विख्यात किया है और सारे पदार्थों को व्याप्त किया है।

९. शूर और निवासदाता इन्द्र, तुम्हारे "इतने" और नये धन की बात विदित है। तुमने इसी प्रकार धन के लिए एतश और दशव्रज से युक्त वश को बचाया है।

१०. धनी और वज्री इन्द्र, तुमने पवित्र यज्ञ में कण्व, शत्रुनाश के अभिलाषी दीर्घनीथ और गोशर्य को जिस प्रकार बचाया था, उसी प्रकार अश्वों की सहायता से हमारी भी रक्षा करो।

३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि श्रुष्टिगु। छन्द अयुक् बृहती और युक् सतोबृहती।)

१. इन्द्र, तुमने जैसे सांवरणि (सार्वाण) मनु के लिए अभिषुत सोम का पान किया था, धनी इन्द्र, पुष्ट और शीघ्रगामी गौ से युक्त मेध्यातिथि, और नीपातिथि के लिए जैसे सोमपान किया था वैसे ही आज भी करो।

२. पार्षद्वाण ऋषि ने वृद्ध और सोये हुए प्रस्कण्व को ऊपर बैठाया था; दस्युओं के लिए वृकस्वरूप ऋषि को अपने द्वारा रक्षित करके तुमने हजार गौओं की रक्षा की थी।

३. जिनसे उक्थों के द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो ऋषि-द्वारा प्रेरित होकर सबके ज्ञाता हैं और जो रक्षाभिलाषी हैं, उन्हीं इन्द्र के सामने, सेवा के लिए, नई स्तुति का उच्चारण करो।

४. जिनके लिए उत्तम स्थान में सात शीर्षों (सात भुवनों वा व्याहृतियों) और तीन स्थानों (लोकों) से युक्त पूजा-मन्त्र पढ़ा जाता है, उन्होंने इस व्यापक भुवन को शब्दयुक्त किया और बल उत्पन्न किया।

५. जो इन्द्र हमारे धनदाता हैं, उन्हीं को हम बुलाते हैं। हम उनकी अभिनव अनुग्रह-बुद्धि को जानते हैं। हम गोयुक्त गोशाला में जा सकें।

६. वासदाता, स्तुत्य और धनी इन्द्र, तुम जिसे, प्रतिज्ञा करके, दान देते हो, वह धन की पुष्टि को प्राप्त करता है। तुम ऐसे हो; इसलिए हम अभिषुत सोमवाले होकर तुम्हें बुलाते हैं।

७. इन्द्र, तुम कभी सृष्टि-विहीन नहीं होते। हव्यदाता के साथ मिलो। तुम देवता हो। तुम्हारा दान बार-बार समीप आकर मिलित होता है।

८. जिन्होंने बलात् अस्त्र-प्रयोग करके शुष्ण का विनाश करते हुए कुएँ को पूर्ण किया था, जिन्होंने द्युलोक को प्रसिद्ध करते हुए रोका था, जिन्होंने पार्थिव रूप में होकर सारे पदार्थों को उत्पन्न किया था—

९. जिनके धन-रक्षक और स्तोता सारे आर्य और दास (आर्यीकृत अनार्य ?) हैं और जो आर्य तथा श्वेतवर्ण पवीरु के सम्मुख आते हैं, वे ही धनद इन्द्र तुम्हारे साथ मिलते हैं।

१०. क्षिप्रकारी विप्र लोग मधु-युक्त और घृतस्रावी पूजा-मन्त्र का उच्चारण करते हैं। इनके लिए धन प्रसिद्ध होता है, पुरुषोचित बल प्रसिद्ध हुआ है और अभिषुत सोम प्रसिद्ध हो रहा है।

४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि आयु। छन्द अयुक् बृहती और युक् बृहती।)

१. इन्द्र, तुमने जैसे पहले विवस्वान् मनु के सोम का पान किया था, जैसे त्रित के मन की रक्षा की थी, आयु के (मेरे) साथ जैसे प्रमत्त हुए थे—

२. मातरिश्वा (वायु) देवता के पृषध्र (दधि-मिश्रित घृत) के अभिषव का आरम्भ करने पर तुम जैसे प्रमत्त होते हो और सम्बद्ध तथा दीप्तिवाले दशशिप्र एवम् दशोण्य के सोम का पान किया करते हो—

३. जो केवल उक्थ को धारण करते हैं, जो ढीठ होकर सोमपान करते हैं, जिनके लिए, बन्धुत्व के कर्त्तव्य के निमित्त विष्णु ने तीन बार पद-निक्षेप किया था।

४. वेग और सौ यज्ञोंवाले इन्द्र, तुम जिसके यज्ञ में स्तुति की इच्छा करते हो—इन सब कर्मों और गुणोंवाले तुम इन्द्र को हम अन्नाभिलाषी होकर उसी प्रकार बुलाते हैं, जिस प्रकार गायें दुहनेवाला गौओं को बुलाता है।

५. वे हमारे पिता हैं और दाता हैं। वे महान्, उग्र और ऐश्वर्यकर्त्ता हैं। उग्र, धनी और अत्यन्त धनी इन्द्र हमें गौ और अश्व प्रदान करें।

६. इन्द्र, तुम जिसे दान देने की इच्छा करते हो, वह धन पुष्टि प्राप्त करता है। धनाभिलाषी होकर धन के पति और बहु यज्ञों के कर्त्ता इन्द्र को, स्तोत्र के द्वारा बुलाते हैं।

७. तुम कभी-कभी भ्रम में पड़ जाते हो। तुम दोनों प्रकार के प्राणियों की रक्षा करते हो। क्षिप्रकर्त्ता आदित्य, तुम्हारा सुखकर आह्वान अमर द्युलोक में अवस्थान करता है।

८. स्तुत्य, दाता और धनी इन्द्र, तुम हम दाता को दान करो। वासदाता इन्द्र, तुमने जैसे कण्व ऋषि का आह्वान सुना था, वैसे हमारे वाक्य, स्तुति और आह्वान सुनो।

९. इन्द्र के लिए प्राचीन स्तोत्र का पाठ करो और स्तोत्र का उच्चारण करो। यज्ञ की पूर्वकालीन और विशाल स्तुति का उच्चारण करो और स्तोता की मेधा को बढ़ाओ।

१०. इन्द्र प्रभूत धन का प्रेरण करते हैं। उन्होंने द्यावापृथिवी को प्रेरित किया है, सूर्य को प्रेरित किया है और श्वेतवर्ण तथा शुद्ध पदार्थों को प्रेरित किया है। गव्य (दुग्ध आदि) से मिले सोम ने इन्द्र को भली भाँति प्रमत्त किया था।

५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि मेध्य। छन्द अयुक बृहती और युक् सतोबृहती।)

१. तुम धनियों के लिए उपमेय, अभीष्ट-वर्षकों में ज्येष्ठ, सबके बाहने योग्य, शत्रुपुरविदारी, धनज्ञ और स्वामी हो। धनी इन्द्र, धन के लिए मैं तुम्हारी याचना करता हूँ।

२. जिन्होंने प्रतिदिन वर्द्धमान होकर आयु, कुत्स और अतिथि की रक्षा की थी, उन्हीं हरि नामक अश्वोंवाले और बहुकर्मा इन्द्र को अन्ना-भिलाषी होकर हम बुलाते हैं।

३. दूरस्थ देश में जो सोम लोगों में अभिषुत होता है और जो समीप में अभिषुत होता है, उन सब सोमों का रस हमारा अभिषव-प्रस्तर पिसकर बाहर करे।

४. तुम जहाँ सोमपान करके तृप्त होते हो, वहाँ सारे शत्रुओं का विनाश और पराजय करते हो। सारा धन उपभोग्य हो। शिष्टों में सोम तुम्हारे लिए मदकर है।

५. इन्द्र, तुम अतीव कल्याणकर और अतीव बन्धु हो। तुम परिमित मेधा और कल्याणकर, अभीष्टप्रद तथा बन्धु-स्वरूप रक्षण-कार्य के साथ समीप के स्थान में आओ।

६. युद्ध में क्षिप्रकारी, साधुओं के पालक और सारे लोकों के अधीश्वर इन्द्र को प्रजागण में पूजनीय करो। जो कर्मों के द्वारा सुफल देते हैं, वे ही उक्थों का उच्चारण करनेवाले सतत यज्ञ-सम्पादन करें।

७. तुम्हारे पास जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे हमें दो। रक्षण के लिए हम तुम्हारे ही होंगे। युद्ध-समय में भी तुम्हारे ही होंगे। हम स्तुति और आह्वान के द्वारा तुम्हारा भजन करते हुए स्तुति-पाठ करेंगे।

८. हरि अश्वोंवाले इन्द्र, अन्न, अश्व और गौ का इच्छुक होकर मैं तुम्हारा स्तोत्र करता और तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर युद्ध में जाता हूँ। भय के समय तुम्हें ही शत्रुओं के बीच स्थापित करता हूँ।

६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ३-४ मन्त्रों में अन्य देवों की भी स्तुति है। ऋषि मातरिश्वा। छन्द अयुक् बृहती और युक् सतोबृहती।)

१. इन्द्र, स्तोता लोग स्तोत्र-द्वारा तुम्हारे इस पराक्रम की प्रशंसा करते हैं। उन्होंने स्तुति करके बल प्राप्त किया था। नागरिकों ने कर्म-द्वारा घी चुलानेवाले इन्द्र को व्याप्त किया था।

२. इन्द्र, जिनके सोमाभिषव में तुम प्रमत्त होते हो, वे उत्तम कर्म के द्वारा तुम्हें व्याप्त करते हैं। जैसे तुम संवर्त्त और कृश के ऊपर प्रसन्न हुए थे, वैसे ही हमारे ऊपर प्रसन्न होओ।

३. सारे देव, समान रूप से प्रसन्न होकर, हमारे सामने और समीप

पधारें। रक्षा के लिए वसु और रुद्र लोग आवें। मरुत् लोग आह्वान सुनें।

४. पूषा, विष्णु, सरस्वती, गङ्गा आदि सात नदियाँ, जल, वायु, पर्वत और वनस्पति मेरे यज्ञ की रक्षा करें। पृथिवी आह्वान सुनें।

५. श्रेष्ठ धनी, वृत्रघ्न और भजनीय इन्द्र, तुम्हारा जो धन है, उस धन के साथ, प्रमत्त होकर समृद्धि और दान के लिए बढ़ो।

६. युद्धपति, सुकृती और नरेश, तुम हमें युद्ध में ले जाओ। सुना जाता है कि देवता लोग स्तोत्र और यज्ञ के समय, भक्षण के लिए मिलते हैं।

७. आर्य इन्द्र के पास अनेक आशीर्वाद और मनुष्यों की आयु है। धनी इन्द्र, हमें व्याप्त करो और वृद्धि कर अन्न का दान करो।

८. इन्द्र, स्तुति-द्वारा हम तुम्हारी सेवा करेंगे। बहुकर्मा इन्द्र, तुम हमारे हो। इन्द्र, प्रस्कण्व के लिए तुम प्रचुर, स्थूल और प्रवृद्ध धन देते हो।

७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि कृषि। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. हमने इन्द्र के अनन्त कार्य जाने हैं। दस्युओं के लिए व्याघ्र-रूप इन्द्र, तुम्हारा धन हमारे सामने आ रहा है।

२. जैसे आकाश में तारागण शोभित हो रहे हैं, वैसे ही सौ-सौ वृष शोभित होते हैं। वे अपनी महिमा से द्युलोक को स्तब्ध करते हैं।

३. शतवेणु, शतश्वा, शतम्लात चर्म, शतबल्बजस्तुक और चार सौ अरुषी हैं।

४. कण्वगोत्रीयो, तुम लोग सारे अश्वों में विचरण करते हुए और अश्वों के समान बार-बार जाते हुए सुन्दर वेगवाले हुए हो।

५. संख्या में सात (सप्त व्याहृतियों) वाले और दूसरे के लिए अधिक इन्द्र के लिए महान् अन्न प्रक्षिप्त होता है। श्यामवर्ण मार्ग को लाँघने पर वह नेत्रों के द्वारा देखा जाता है।

८ सूक्त

(देवता इन्द्र; अन्त के अग्नि और सूर्य। ऋषि पृषध्र। छन्द गायत्री और पङ्क्ति।)

१. दस्युओं के लिए व्याघ्र इन्द्र, तुम्हारा प्रवृद्ध धन देखा गया है। तुम्हारी सेना द्युलोक के समान विस्तृत है।

२. दस्युओं के लिए तुम व्याघ्र हो। अपने नित्य धन से मुझे दस हजार दो।

३. मुझे एक सौ गर्दभ, एक सौ भेड़ें और एक सौ दास दो।

४. अश्वबल के समान वह प्रकट धन, शुद्ध-बुद्धि व्यक्तियों के लिए उनके पास जाता है।

५. अग्नि विदित हुए हैं। वे ज्ञानी, सुन्दर रथवाले और हव्यवाहक हैं, वे शुद्ध किरण के द्वारा गतिपरायण और विराट् होकर शोभा पाते हैं। स्वर्ग में सूर्य भी शोभा पाते हैं।

९ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि मेध्य। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सत्यरूप अश्विद्वय, प्राचीन काल में बनाये हुए रथ पर चढ़कर यज्ञ में पधारो। तुम लोग यजनीय और विज्ञ हो। अपने कर्म-बल से तुम लोग तृतीय सवन का पान करते हो।

२. देवों की संख्या तेंतीस है। वे सत्यस्वरूप हैं। वे यज्ञ के सम्मुख दिखाई देते हैं। दीप्तिमान् अग्निवाले अश्विद्वय, तुम मेरे हो। इस यज्ञ में आकर सोमपान करो।

३. अश्विद्वय, तुम लोग द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षलोक के लिए अभीष्ट-वर्षक हो। तुम्हारे लिए मैंने स्तुति की है। जो लोग हजारों स्तुतियाँ करते हैं और जो लोग गो-यज्ञ में प्रवृत्त होते हैं, सोम-पान के लिए उन सबके पास उपस्थित होओ।

४. अश्विद्वय, तुम्हारा यह भाग रक्खा हुआ है। तुम्हारी यही स्तुति है। तुम लोग आओ। हमारे लिए मधुर सोम का पान करो। हव्यदाता की कर्म-द्वारा बचाओ।

१० सूक्त

(देवता प्रथम के ऋत्विक; शेष के अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सहृदय ऋत्विकों ने जिसकी तरह-तरह की कल्पना करके इस यज्ञ का सम्पादन किया है और जो स्तोत्र का उच्चारण न करने पर भी स्तोता माना जाता है, उसके सम्बन्ध में यजमान की क्या अभिज्ञता है?

२. एक अग्नि अनेक प्रकार से समिद्ध हुए हैं। एक सूर्य सारे विश्व में अनेक हुए हैं और एक उषा उन सबको प्रकाशित करती हैं। यह एक ही सब हुए हैं।

३. ज्योति, केतु (धूम-पताका) और चक्र-त्रयवाले तथा सुखकर, रथस्वरूप और बैठने योग्य अग्नि को, अत्यधिक सोम पीने के लिए, इस यज्ञ में बुलाता हूँ। उनके साथ मिलन होने पर विचित्र धन की प्राप्ति होती है।

११ सूक्त

(देवता इन्द्र और वरुण। ऋषि सुपर्ण। छन्द जगती।)

१. इन्द्र और वरुण, मैं महायज्ञ के सोमाभिषव में तुम्हें बुलाता हूँ। यही तुम्हारा भाग है। इसको ग्रहण करो। प्रत्येक यज्ञ में सारे सोमों का पोषण करो। सोमाभिषव-कर्त्ता यजमान को दान दो।

२. इन्द्र और वरुण ठहरे हुए हैं। वे अन्तरिक्ष के उस पार के मार्ग पर जाते हैं। कोई भी देव-शून्य व्यक्ति उनका शत्रु नहीं हो सकता। उनकी कृपा से सुसम्पन्न ओषधि और जल महत्त्व प्राप्त करते हैं।

३. इन्द्र और वरुण, यह बात सच्ची है कि सात वाणियाँ तुम्हारे लिए कृश ऋषि के सोम-प्रवाह को दुहती हैं। तुम लोग शुभ-कर्मों के पालक

हो। जो अहिंसित व्यक्ति तुम्हारे कर्म द्वारा पालन करता है, उसी हव्यदाता का हव्य-द्वारा पालन करो।

४. घी चुलानेवाली, यथेष्ट दान देनेवाली और कमनीय सात भगिनियाँ यज्ञ-गृह में बहुत दानवाली हुई हैं। इन्द्र और वरुण जो तुम्हारे लिए घी चुलाती हैं, उनके लिए यज्ञ धारण करो और यजमान को दान करो।

५. दीप्तिशील इन्द्र और वरुण के पास महासौभाग्य की प्राप्ति के लिए सच्ची महिमा का हम कीर्त्तन करेंगे। हम घी को चुलाते हैं। इन्द्र और वरुण शुभ कार्यों के पति हैं। वे २१ कार्यों के द्वारा हमारी रक्षा करें।

६. इन्द्र और वरुण, तुम लोगों ने पहले ऋषियों को जो बुद्धि, वाक्य, स्तुति और श्रुत को प्रदान किया है, सो सब हम, धीर और यज्ञ में लगे रहकर, तप के द्वारा देखेंगे।

७. इन्द्र और वरुण, जिस धन की वृद्धि से मन की तृप्ति होती है, गर्व नहीं होता, उसे ही यजमान को प्रदान करो। हमें प्रजा, पुष्टि और भूति दो। हम दीर्घायु हो सकें, इसके लिए हमारी आयु को बचाओ।

बालखिल्य-सूक्त समाप्त।

१ सूक्त

(नवम मण्डल। १ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि विश्वमित्रगोत्रोत्पन्न मधुच्छन्दा। छन्द गायत्री।)

१. सोम, इन्द्र के पान के लिए तुम अभिषुत होकर स्वादुतम और अतीव मदकर धारा से क्षरित होओ।

२. राक्षसों के विनाशक और सबके दर्शक सोम लोहे से पिसे जाकर और ३२ सेरवाले कलस से युक्त होकर अभिषवण-स्थान में बैठते हैं।

३. सोम तुम प्रचुर दान करो, सारे पदार्थों को दान करो और विशेष रूप से वृत्र का वध करो। धनी शत्रुओं का धन हमें दो।

४. तुम महान् हो। देवों के यज्ञ की ओर, अन्न के साथ, जाओ। बल और अन्न दो।

५. इन्दु, हम तुम्हारी सेवा करते हैं; प्रतिदिन यही हमारा काम है।

६. सूर्य की पुत्री श्रद्धा तुम्हारे क्षरणशील रस को विस्तृत और नित्य दशा पवित्र के द्वारा पवित्र करती हैं।

७. अभिषव (सोम चुलाने) के समय यज्ञ में भगिनियों के समान दश-अंगुलि-रूपिणी स्त्रियाँ उस सोम को सबसे पहले ग्रहण करती हैं।

८. अंगुलियाँ उसी सोम को प्रेरित करती हैं। यह सोमात्मक मधु तीन स्थानों में (द्रोण-कलस, आधवनीय और पूतभृत् में) रहता है और शत्रुओं की प्रतिबन्धकता करता है।

९. न मारने योग्य गायें इस बालक सोम को, इन्द्र के पान के लिए, दूध के द्वारा संस्कृत करती हैं।

१०. शूर इन्द्र, इस सोमपान से मत्त होकर सारे शत्रुओं का विनाश करते और यजमानों को धन देते हैं।

२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि मेधातिथि। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम देवकामी होकर वेग और पवित्र भाव के साथ, गिरो। अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, तुम सोम के बीच पैठ जाओ।

२. सोम, तुम महान्, अभीष्टवर्षक, अतीव यशस्वी और धारक हो। तुम जल को प्रेरित करो। अपने स्थान पर बैठो।

३. अभिषुत और अभिलाषा-दाता सोम की धारा प्रिय मधु को दुहती है। शोभनकर्मा सोम जल का आच्छादन करते हैं।

४. जिस समय तुम गव्य के द्वारा आच्छादित होते हो, उस समय हे महान् सोम, तुम्हारे सामने क्षरणशील महान् जल जाता है।

५. सोम से रस उत्पन्न होता है। सोम स्वर्ग का धारण करते, संसार को रोके रहते, हमारी अभिलाषा करते और जल के बीच संस्कृत होते हैं।

६. अभीष्टवर्षक, हरितवर्ण, महान् और मित्र के समान दर्शनीय सोम शब्द करते और सूर्य के साथ प्रदीप्त होते हैं।

७. इन्दु, जिन स्तुतियों से मत्तता के लिए तुम अलंकृत होते हो, वे ही कर्मेच्छा-सम्बन्धी स्तुतियाँ तुम्हारे बल के प्रताप से संशोधित होती हैं।

८. तुम्हारी प्रशंसायें महती हैं। तुमने शत्रुओं को रुलानेवाले यजमान के लिए उत्तम लोक की सृष्टि की है। हम तुम्हारे पास मत्तता की याचना करते हैं।

९. इन्दु (सोम), इन्द्र के अभिलाषी होकर, वर्षक मेघ के समान, मधुर धारा से हमारे सामने गिरो।

१०. इन्दु, तुम यज्ञ की पुरानी आत्मा हो। तुम गौ, पुत्र, अन्न और अश्व प्रदान करो।

३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि शुनःशेफ। छन्द गायत्री।)

१. ये अमर सोम द्रोण-कलस के सामने बैठने के लिए पक्षी के समान जाते हैं।

२. अंगुलि के द्वारा अभिषुत ये सोम क्षरित और अभिषुत होकर जाते हैं।

३. यज्ञाभिलाषी स्तोता लोग क्षरणशील इन सोमदेव को अश्व के समान युद्ध के लिए अलंकृत करते हैं।

४. क्षरणशील ये वीर सोम अपने बल से गमनकर्त्ता के समान सारे धनों को बाँटने की इच्छा करते हैं।

५. क्षरणशील ये सोम रथ की इच्छा करते हैं, मनोरथ पूर्ण करते हैं और शब्द करते हैं।

६. मेधावियों के द्वारा इस सोम के स्तुति करने पर ये सोम हव्यदाता को रत्न-दान करते हुए जल के बीच पैठते हैं।

७. क्षरणशील ये सोम शब्द करके और सारे लोकों को हराकर स्वर्ग को जाते हैं।

८. क्षरणशील ये सोम सुन्दर, याज्ञिक और अहिंसित होकर सारे लोकों को पराभूत करते हुए स्वर्ग में जाते हैं।

९. हरितवर्ण ये सोमदेव प्राचीन जन्म से देवों के लिए अभिषुत होकर दशापवित्र में रहने के लिए जाते हैं।

१०. यह बहुकर्मा सोम ही उत्पन्न होने के साथ ही अन्न को उत्पन्न करके और अभिषुत होकर धारा के रूप में क्षरित होते हैं।

४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अङ्गिरोगोत्रीय हिरण्यस्तूप। छन्द गायत्री।)

१. महान् अन्न और पवमान सोम, भजन करो, जय करो और पश्चात् हमारे मङ्गल का विधान करो।

२. सोम ज्योति दो, स्वर्ग का दान करो और सारे सौभाग्य का दान करो। अनन्तर हमारे लिए मङ्गल करो।

३. सोम, बल और कर्म का दान करो, हिंसकों का वध करो। अनन्तर हमारे लिए कल्याण करो।

४. सोम का अभिषव करनेवालो तुम लोग इन्द्र के पान के लिए सोम का अभिषव करो। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

५. सोम, अपने कार्य और रक्षण के द्वारा हमें सूर्य की प्राप्ति कराओ। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

६. तुम्हारे कर्म और रक्षण के द्वारा हम चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करेंगे। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

७. शोभन अस्त्रवाले सोम, तुम स्वर्ग और पृथिवी पर वर्द्धित धन दो। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

८. लड़ाइयों में तुम स्वयं आहुत नहीं होते। तुम शत्रुओं को हराते हो। धन दान करो। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

९. क्षरणशील सोम, यजमान लोग रक्षण के लिए, तुम्हें यज्ञ में वर्द्धित करते हैं। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

१०. इन्द्र, तुम हमें नाना प्रकार के अश्वोंवाले और सर्वगामी धन दो। अनन्तर हमारा कल्याण करो।

५ सूक्त

(देवता आप्री। ऋषि कश्यपगोत्रीय असित और देवल। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. भली भाँति दीप्त, सबके पति और काम-वर्षक पवमान सोम शब्द करके और देवों को प्रसन्न करके विराजित होते हैं।

२. जल-पौत्र पवमान (क्षरणशील=गिरनेवाले) सोम उन्नत प्रदेश में तीक्ष्ण होकर और अन्तरिक्ष में प्रदीप्त होकर जाते हैं।

३. स्तुत्य, अभीष्टदाता और दीप्तिमान् पवमान सोम मधु-धारा के साथ तेजोबल से विराजित होते हैं।

४. हरित-वर्ण सोमदेव यज्ञ में पूर्वाग्र में कुश-विस्तार करते हुए तेजोबल से गमन करते हैं।

५. हिरण्मयी द्वार-देवियाँ पवमान सोम के साथ स्तुत होकर विराट् दिशाओं में चढ़ती हैं।

६. इस समय पवमान सोम सुन्दर-रूपा, बृहती, महती और दर्शनीया दिवारात्रि की कामना करते हैं।

७. मनुष्यों के दर्शक और देवों के होता दोनों देवों को मैं बुलाता हूँ। पवमान सोम दीप्त (इन्द्र) और अभीष्टवर्षक हैं।

८. भारती, सरस्वती और महती इड़ा नाम की तीन सुन्दरी देवियाँ हमारे इस सोम-यज्ञ में पधारें।

९. अग्रजात, प्रजापालक और अग्रगामी त्वष्टा को मैं बुलाता हूँ। हरित-वर्ण पवमान सोम देवेन्द्र, काम-वर्षक और प्रजापति हैं।

१०. पवमान सोम, हरित-वर्ण हिरण्यवर्ण, दीप्तिमान् और सहस्र शाखाओंवाले वनस्पति को मधुर धारा के द्वारा संस्कृत करो।

११. विश्वदेवगण वायु, बृहस्पति, सूर्य्य, अग्नि और इन्द्र, तुम सब मिलकर सोम के स्वाहा शब्द के पास आओ।

६ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कश्यपगोत्रीय असित और देवल। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम अभीष्टवर्षक और देवाभिलाषी हो। तुम हमारी कामना करते हो। तुम हमारी रक्षा करो और दशापवित्र में मधुर धारा से गिरो।

२. सोम, तुम स्वामी हो; इसलिए मदकर सोम का वर्षण करो। बली अश्व प्रदान करो।

३. अभिषुत होकर उस पुरातन और मदकर रस को दशापवित्र में प्रेरित करो। बल और अन्न का प्रेरण करो।

४. जैसे जल निम्न दिशा की ओर जाता है, वैसे ही द्रुतगति और क्षरणशील सोम इन्द्र का अनुसरण करता और उन्हें व्याप्त करता है।

५. दश-अंगुलि-रूप स्त्रियाँ दशापवित्र को लाँघकर वन में क्रीड़ा करनेवाले बलवान् अश्व के समान जिस सोम की सेवा करती हैं—

६. पान करने पर देवों के मत्त होने के लिए अभिषुत और अभीष्ट-वर्षक उसी सोम के रस में, युद्ध के लिए गव्य मिलाओ।

७. इन्द्र के लिए अभिषुत सोमदेव धारा के रूप में क्षरित होते हैं; क्योंकि इन्द्र इनका रस आप्यायित करता है।

८. यज्ञ की आत्मा और अभिषुत सोम यजमानों को अभीष्ट देते हुए वेग से गिरते हैं और अपना पुराना कवित्व (क्रान्तदर्शित्व) की भी रक्षा करते हैं।

९. मदकर सोम, इन्द्र की अभिलाषा से उनके पान के लिए क्षरित होकर यज्ञ-शाला में शब्द करो।

५. इन्द्र, तुम्हारे कर्म में उन अँगुलियों ने भाँहसित और वर्त्तमान सोम को महान् कर्म के लिए धारण किया है।

६. वाहक और अमर देवों के तृप्तिदाता सोम सातों नदियों का वर्द्धन करते हैं। वे कूप-रूप से पूर्ण होकर नदियों को तृप्त करते हैं।

७. पुरुष सोम, कल्पनीय दिनों में हमारी रक्षा करो। पवमान सोम, जिन राक्षसों के साथ युद्ध किया जाना चाहिए, उन्हें विनष्ट करो।

८. सोम, तुम नये और स्तुत्य सूक्त के लिए शीघ्र ही यज्ञ-पथ से आओ और पहले की तरह दीप्ति का प्रकाश करो।

९. शोधनकालीन सोम, तुम पुत्रवान् महान् अन्न, गौ और अश्व हमें दान करते हो। दान करो और हमें मनोरथ दो।

१० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि असित अथवा देवल। छन्द गायत्री।)

१. रथ और अश्व के समान शब्द करनेवाले सोम, अन्न की इच्छा करते हुए, यजमान के धन के लिए आये हैं।

२. रथ के समान सोम यज्ञ की ओर जाते हैं। जैसे भार-वाहक भुजाओं पर भार को धारण करता है, वैसे ही ऋत्विक् लोग बाहु के द्वारा उन्हें धारण करते हैं।

३. जैसे स्तुति से राजा सन्तुष्ट होते हैं और जैसे सात होताओं के द्वारा यज्ञ संस्कृत होता है, वैसे ही गव्य के द्वारा सोम संस्कृत होता है।

४. अभिषुत सोम महती स्तुति के द्वारा अभिषुत होकर, मत्त करने के लिए धारा-रूप से जाते हैं।

५. इन्द्र के मद-गोष्ठ-रूप, उषा के भाग्य के उत्पादक तथा गिरनेवाले सोम शब्द करते हैं।

६. स्तोता, प्राचीन, अभीष्टवर्षक और सोम का भक्षण करनेवाले मनुष्य यज्ञ के द्वार को उद्घाटन करते हैं।

७. उत्तम सात बन्धुओं के समान और सोम के स्थान का एकमात्र पूरण करनेवाले सात होता यज्ञ में बैठते हैं।

८. मैं यज्ञ की नाभि सोम को अपने नाभि-देश में ग्रहण करता हूँ। चक्षु सूर्य में सम्बद्ध होता है। मैं कवि सोम के प्रभावको पूर्ण करता हूँ।

९. गमन-परायण और दीप्त इन्द्र हृदय में निहित अपने प्रिय पदार्थ सोम को नेत्र से देख सकते हैं।

११ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि असित अथवा देवल। छन्द गायत्री।)

१. नेताओ, यह क्षरणशील सोम देवों का यज्ञ करना चाहता है। इसके लिए गाओ।

२. सोम, अथर्वा ऋषियों ने तुम्हारे दीप्तिवाले और देवाभिलाषी रस को इन्द्र के लिए गोदुग्ध में संस्कृत किया है।

३. राजन्, तुम हमारी गाय के लिए सरलता से गिरो। पुत्र आदि के लिए भी सुख से गिरो। अश्व के लिए सरलता से गिरो। ओषधियों के लिए सुख से गिरो।

४. स्तोताओ, तुम लोग पिङ्गलवर्ण, स्वबलरूप, अरुणवर्ण और स्वर्ग को छूनेवाले सोम के लिए शीघ्र गाथा का उच्चारण करो।

५. ऋत्विको, हाथ के अभिषव-पाषाण-द्वारा अभिषुत सोम को पवित्र करो। मदकर सोम में गोदुग्ध डालो।

६. नमस्कार के साथ सोम के पास जाओ। उसमें दही मिलाओ, इन्द्र के लिए सोम दो।

७. सोम, तुम शत्रुविनाशक हो। तुम विचक्षण और देवों के मनोरथ-पूरक हो। तुम हमारी गाय के लिए सरलता से क्षरित होओ।

८. सोम, तुम मन के ज्ञाता और मन के ईश्वर हो। तुम पात्रों में इसलिए सींचे जाते हो कि तुम्हें पीकर इन्द्र प्रमत्त होंगे।

९. भींगे हुए और गिरते हुए सोम, इन्द्र के साथ तुम हमें सुन्दर वीर्य से युक्त धन दो।

१२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि असित अथवा देवल। छन्द गायत्री।)

१. अभिषुत और अतीव मधुर सोम इन्द्र के लिए यज्ञ-गृह में प्रस्तुत हो रहा है।

२. जैसे गायें बछड़ों के सामने बोलती हैं, वैसे ही मेधावी लोग सोम-पान के लिए इन्द्र के पास शब्द करते हैं।

३. मदस्रावी सोम नदी-तरङ्ग (वसतीवरी) के यहाँ रहते हैं। विद्वान् सोम माध्यमिकी वाक् (वचन) में आश्रय पाते हैं।

४. सुन्दर-प्रज्ञ, क्रान्तकर्मा और सूक्ष्मदर्शक सोम अन्तरिक्ष के नाभि-स्वरूप मेषलोम में पूजित होते हैं।

५. जो सोम कुम्भ में हैं और दशापवित्र के बीच जो निहित हैं, उस अपने अंग में सोमदेव प्रवेश करते हैं।

६. सोम मदस्रावी मेघ को प्रसन्न करते हुए अन्तरिक्ष के रोकनेवाले स्थान (दशापवित्र) शब्द करते हैं।

७. सदा स्तोत्रवाले और अमृत को दूहनेवाले वनस्पति (सोम) मनुष्यों के लिए एक दिन कर्म के बीच प्रसन्नता से रहते हैं।

८. कवि सोम अन्तरिक्ष से भेजे जाकर मेधावियों की धारा के रूप से प्रिय स्थान में जाते हैं।

९. पवमान (क्षरणशील) सोम, तुम हमें बहुदीप्तिवाले और सुन्दर गृहवाले धन दो।

सप्तम अध्याय समाप्त।

१३ सूक्त

(अष्टम अध्याय। देवता सोम। ऋषि असित अथवा देवल। छन्द गायत्री।)

१. असीम धाराओंवाले और पवित्र सोम दशापवित्र को लाँघकर वायु और इन्द्र के पान के लिए संस्कृत पात्र में जाते हैं।

२. रक्षाभिलाषियो, तुम लोग पवित्र विप्र और देवों के पान के लिए अभिषुत सोम के लिए गमन करो।

३. बहु-बल-दाता और स्तूयमान सोम यज्ञ-सिद्धि और अन्न-लाभ के लिए क्षरित होते हैं।

४. सोम, हमारे अन्न-लाभ के लिए दीप्तिमती और सुन्दर वीर्य-वाली तथा महती रस-धारा बरसाओ।

५. वह अभिषुत सोम देव हमें सहस्र-संख्यक धन और सुवीर्य दें।

६. संग्राम में भेजे गये अश्व के समान प्रेरकों के द्वारा प्रेरित होकर शीघ्रगामी सोम, अन्न-प्राप्ति के लिए, दशापवित्र को लाँघकर, जा रहे हैं।

७. जैसे गायें बोलती हुई बछड़ों की तरफ़ जाती हैं, वैसे ही सोम भी शब्द करके पात्र की ओर जाते हैं। ऋत्विक् लोग हाथ पर सोम धारण करते हैं।

८. सोम इन्द्र के लिए प्रिय और मदकर हैं। पवमान सोम, तुम शब्द करके सारे शत्रुओं का विनाश करो।

९. पवमान सोम, तुम अदाताओं के हिंसक और सर्वदर्शक हो। यज्ञ-स्थल में बैठो।

१४ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित अथवा देवल। छन्द गायत्री।)

१. नदी-तरंग (वसतीवरी जल-रस) में आश्रित और कवि सोम अनेकों के लिए अभिलषणीय शब्द का उच्चारण करके गिर रहे हैं।

२. पाँच देशों के परस्पर मित्र मनुष्य कर्म की अभिलाषा से जिस समय धारक सोम को स्तुति-द्वारा अलंकृत करते हैं—

३. उस समय, सोम के गोदुग्ध में मिलाये जाने पर, सारे देवगण बलवान् सोम-रस में प्रमत्त होते हैं।

४. दशापवित्र के वस्त्र के द्वार को छोड़कर सोम अधोदेश में दौड़ते हैं। इस यज्ञ में मित्र इन्द्र के लिए संगत होते हैं।

५. जैसे जवान घोड़े को साफ़ किया जाता है, वैसे ही सोम, गव्य में अपने को मिलाते हुए परिचर्यावाले के पौत्रों (अंगुलियों) के द्वारा, मार्जित होते हैं।

६. अंगुलि-द्वारा अभिषुत सोम गव्य (दही आदि) में मिलने के लिए उसके सामने जाते और शब्द करते हैं। मैं सोम को प्राप्त करूँगा।

७. परिमार्जन करती हुई अँगुलियाँ अन्नपति सोम के साथ मिलती हैं। वे बली सोम की पीठ पर चढ़ गईं।

८. सोम, तुम सारे स्वर्गीय और पार्थिव धनों को ग्रहण करते हुए हमारी इच्छा करके जाओ।

१५ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. यह विक्रान्त सोम, अंगुलि-द्वारा अभिषुत होकर, कर्म-बल के द्वारा शीघ्रगामी रथ की सहायता से इन्द्र के बनाये स्वर्ग में जाते हैं।

२. जिस विशाल यज्ञ में देवता लोग रहते हैं, उसी यज्ञ में सोम बहुत कर्मों की इच्छा करते हैं।

३. यह सोम हविर्धान में स्थापित और तदनन्तर नीत होकर आहवनीय देश में जिस समय हव्यवर्ती और सोमवाले मार्ग में दिये जाते हैं, उस समय अध्वर्यु लोग भी प्राप्त होते हैं।

४. ये सोम सींग (ऊँचे के हिस्से) को कँपाते हैं। उनके सींग

बलपति साँड़ के तेज हैं। ये बल के द्वारा हमारे लिए धन को धारण करते हैं।

५. ये वेगवान् और शुभ्र अंशों से युक्त सोम बहनेवाले सारे रसों के पति होकर जाते हैं।

६. ये सोम आच्छादन करनेवाले और पीड़ित राक्षसों को अपने पर्व (अंश) के द्वारा लाँघकर उन्हें जानते हैं।

७. मनुष्य इन मार्जनीय सोम को द्रोण-कलस में छान रहे हैं। सोम बहुत रस देनेवाले हैं।

८. दस अँगुलियाँ और सात ऋत्विक् शोभन आयुध और मादक सोम को परिमार्जित करते हैं।

१६ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. सोम अभिषव करनेवाले द्यावापृथिवी के बीच शत्रु को हरानेवाली मत्तता के लिए उत्पन्न किया जाकर तुम अश्व के समान जाते हो।

२. हम बल के नेता, जल के आच्छादक, अन्न के साथ वर्त्तमान और गौओं के प्रसवण सोम में कर्म के द्वारा अँगुलियों को मिलाते हैं।

३. शत्रुओं के द्वारा अप्राप्त, अन्तरिक्ष में वर्त्तमान और दूसरों के द्वारा अपराजेय सोम को दशा पवित्र में फेंको और इन्द्र के पान के लिए इसे शोधित करो।

४. स्तुति के द्वारा पवित्र पदार्थों में से (एक) सोम दशापवित्र में जाते और अनन्तर कर्म-बल से द्रोण-कलस में बैठते हैं।

५. इन्द्र, नमस्कार से युक्त स्तोता के साथ सोम बली होकर महा-युद्ध के लिए तुम्हारे पास जाता है।

६. मेष-लोमवाले वस्त्र में शोधित और सारी शोभाओं से युक्त सोम, गो-प्राप्ति के लिए वीर के समान वर्त्तमान हैं।

७. अन्तरिक्ष-प्रदेश में अवस्थित जल जैसे नीचे गिरता है, वैसे ही बलकारक और अभिषुत सोम की आप्यायित करनेवाली धारा दशापवित्र में गिरती है।

८. सोम, मनुष्यों में तुम स्तोता की रक्षा करते हो। वस्त्र के द्वारा शोधित होकर तुम मेष-लोम के प्रति जाते हो।

१७ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. जैसे नदियाँ निम्न देश की ओर जाती हैं, वैसे ही शत्रु-विघातक, शीघ्रगामी और व्याप्त सोम द्रोण-कलस की ओर जाते हैं।

२. जैसे वर्षा पृथिवी पर गिरती है, वैसे ही अभिषुत सोम इन्द्र की प्राप्ति के लिए गिरते हैं।

३. अतीव प्रवृद्ध और मदकर सोम, राक्षसों का विनाश करते हुए, देवाभिलाषी होकर दशापवित्र में जाते हैं।

४. सोम कलस में जाते हैं। वे दशापवित्र में सिक्त होते हैं और उक्थ मन्त्रों के द्वारा वर्द्धित होते हैं।

५. सोम, तुम तीनों लोकों को लाँघकर और ऊपर चढ़कर स्वर्ग को प्रकाशित करते हो और गतिपरायण हो। सूर्य को प्रेरित करते हो।

६. मेधावी स्तोता लोग अभिषव-दिवस में परिचारक और सोम के प्रिय होकर सोम की स्तुति करते हैं।

७. सोम, नेता मेधावी लोग अन्नाभिलाषी होकर कर्म-द्वारा यज्ञ के लिए अन्नवाले तुम्हें ही शोधित करते हैं।

८. सोम, तुम मधुर धारा की ओर प्रवाहित होओ, तीव्र होकर अभिषव-स्थान में बैठो और मनोहर होकर यज्ञ में पान के लिए बैठो।

१८ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. यही सोम दशापवित्र में गिरते हैं। यही सोम सवन-काल में प्रस्तर पर अवस्थित हैं। सोम, तुम मादक पदार्थों में सबके धारक हो।

२. सोम, तुम मेधावी और कवि हो। तुम अन्न से उत्पन्न मधुर रस दो। मादक पदार्थों में तुम सबके धारक हो।

३. समान प्रीतिवाले होकर सारे देवता तुम्हारा पान करते हैं। मादक पदार्थों के बीच तुम सबके धाता हो।

४. सोम सारे वरणीय धनों को स्तोता के हाथ में देते हैं। तुम सारे मादक पदार्थों में सबके धाता हो।

५. एक शिशु को दो माताओं के समान तुम महती द्यावापृथिवी का दोहन करते हो।

६. वे अन्न के द्वारा तुरत द्यावापृथिवी को व्याप्त करते हैं। तुम मादक पदार्थों में सबके धारक हो।

७. वे सोम बली हैं। शोधित होने के समय वे कलस के बीच शब्द करते हैं।

१९ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. जो कुछ स्तुत्य, पार्थिव और स्वर्गीय विचित्र धन है, शोधित होने के समय तुम हमारे लिए वह ले आओ।

२. सोम, तुम और इन्द्र सबके स्वामी, गौओं के पालक और ईश्वर हो। तुम हमारे कर्म को वर्द्धित करो।

३. अभिलाषदाता सोम शोधित होकर, मनुष्यों में शब्द करके और हरित-वर्ण होकर बिछे हुए कुश पर, अपने स्थान पर, बैठते हैं।

४. पुत्र-रूप सोम की मातृ-रूपिणी वसतीवरी (आदि), सोम-द्वारा पीत होकर, मनोरथदाता सोम की सारवत्ता की कामना करती है।

५. मिलाये जाने के समय सोम सोमाभिलाषिणी वसतीवरी (आदि) को गर्भ उत्पन्न करते हैं। सोम इन जलों से दीप्त दुग्ध का दोहन करते हैं।

५. ये सब सोम द्यावापृथिवी की पीठों पर नाना प्रकार से विचरण करके व्याप्त होते हैं। ये उत्तम द्युलोक में भी व्याप्त होते हैं।

६. जल यज्ञ-विस्तारक और उत्तम सोम को व्याप्त करता है। सोम के द्वारा इस कार्य को उत्तम बना लिया जाता है।

७. सोम, तुम पणियों (असुरों) के पास से गो-हितकर धन को धारण करते हो। जिस प्रकार यज्ञ विस्तृत हो, ऐसा शब्द करो।

२३ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. मधुर मद की धारा से शीघ्रगामी सोम स्तोत्र-समय में सृष्ट होते हैं।

२. कोई पुराने अश्व (सोम) नये पद का अनुसरण करते और सूर्य को दीप्त करते हैं।

३. शोधित सोम, जो हव्यदाता नहीं है, उसका गृह हमें दे दो। हमें प्रजा से युक्त धन दो।

४. गति-शील सोम मदकर रस को क्षरित करते और मधुस्रावी की (अभिश्रित) रस को भी क्षरित करते हैं।

५. संसार के धारक सोम इन्द्रिय-वर्द्धक रस को धारण करते हुए उत्तम वीर से युक्त और हिंसा से बचानेवाले हुए हैं।

६. सोम, तुम यज्ञ के योग्य हो। तुम इन्द्र और अन्यान्य देवों के लिए गिरते हो और हमें अन्न-दान करने की इच्छा करते हो।

७. मदकर पदार्थों में अत्यन्त मदकर इस सोम का पान करके अपराजेय इन्द्र ने शत्रुओं को मारा था। वे अब भी मार रहे हैं।

२४ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि असित वा देवल। छन्द गायत्री।)

१. शोधित और दीप्त होकर सोम जाते हैं और मिश्रित होकर जल (वसतीवरी) में मार्जित होते हैं।

२. गमनशील सोम निम्नाभिमुखगामी जल के समान जाते हैं और अनन्तर इन्द्र को व्याप्त करते हैं।

३. शोधित सोम, मनुष्य तुम्हें जहाँ से ले जाते हैं, तुम वहीं से इन्द्र के पान के लिए जाते हो।

४. सोम, तुम मनुष्यों के लिए मदकर हो। शत्रुओं को दबानेवाले इन्द्र के लिए सोम, तुम क्षरित होओ।

५. सोम, तुम जिस समय प्रस्तर के द्वारा अभिषुत होकर दशापवित्र की ओर जाते हो, उस समय इन्द्र के उदर के लिए पर्याप्त होते हो।

६. सर्वापेक्षा वृत्रघ्न इन्द्र, क्षरित होओ। तुम उक्थ मन्त्र के द्वारा स्तुत्य, शुद्ध, शोधक और अद्भुत हो।

७. अभिषुत और मदकर सोम शुद्ध और शोधक कहे जाते हैं। वे देवों को प्रसन्न करनेवाले और शत्रुओं के विनाशक हैं।

२५ सूक्त

(२ अनुवाक दैवता पवमान सोम। ऋषि अगस्त्य के पुत्र दृढ़च्युत। छन्द गायत्री।)

१. पाप-हर्त्ता सोम, तुम बल-साधक और मदकर हो। तुम देवों, मरुतों और वायु के पान के लिए क्षरित होओ।

२. शोधनकालीन सोम, हमारे कर्म से धृत होकर शब्द करते हुए अपने स्थान में प्रवेश करो। कर्म-द्वारा वायु में प्रवेश करो।

३. ये सोम अपने स्थान में अधिष्ठित, काम-वर्षक, कान्त, प्रज्ञ, प्रिय, वृत्रघ्न और अतीव देवाभिलाषी होकर शोधित होते हैं।

४. शोधित और कमनीय सोम सारे रूपों में प्रवेश करते हुए, जहाँ देवता रहते हैं, वहाँ जाते हैं।

५. शोभन सोम शब्द करते हुए क्षरित होते हैं। निकटवर्त्ती इन्द्र के पास जाकर प्रज्ञा से युक्त होते हैं।

६. सर्वापेक्षा मदकर और कवि सोम, पूजनीय इन्द्र के स्थान को

प्राप्त करने के लिए दशापवित्र को लाँघकर धारा के रूप में प्रवाहित होओ।

२६ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि दृढ़च्युत ऋषि के पुत्र इध्मवाह्। छन्द गायत्री।)

१. पृथिवी की गोद में उस वेगवान् सोम को मेधावी लोग अङ्गुलि और स्तुति के द्वारा मार्जित करते हैं।

२. स्तुतियाँ बहुधाराओंवाले, अक्षीण, दीप्त और स्वर्ग के धारक सोम की स्तुति करती हैं।

३. सबके धारक, बहु-कर्म-कारी, सबके विधाता और शुद्ध सोम को प्रज्ञा के द्वारा लोग स्वर्ग के प्रति प्रेरित करते हैं।

४. सोम पात्र में अवस्थित, स्तुति-पति और अहिंसनीय हैं। परिचर्या-कारी ऋत्विक् दोनों हाथों की अँगुलियों से सोम को प्रेरित करते हैं।

५. अँगुलियाँ उन हरित-वर्ण सोम को उन्नत प्रदेश में प्रेरित करती हैं। वे कमनीय और बहु-दर्शक हैं।

६. शोधक सोम, तुम्हें ऋत्विक् लोग इन्द्र के लिए प्रेरित करते हैं। तुम स्तुति के द्वारा वर्द्धित, दीप्त और मदकर हो।

२७ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अङ्गिरा के पुत्र नृमेध। छन्द गायत्री।)

१. ये सोम कवि और चारों ओर से स्तुत हैं। ये दशापवित्र को लाँघकर जाते हैं। ये शोधित होकर शत्रुविनाश करते हैं।

२. सोम सबके जेता और बलकारक हैं। इन्द्र और वायु के लिए इन्हें दशापवित्र में सिक्त किया जाता है।

३. ये सोम मनुष्यों (ऋत्विकों) के द्वारा नाना प्रकारों से रखे जाते हैं। सोम द्युलोक के सिर हैं। ये मनोहर पात्र में अवस्थित हैं। ये अभिषुत और सर्वज्ञ हैं।

४. ये सोम शोधित होकर शब्द करते हैं। ये हमारी गौ और हिरण्य की इच्छा करते हैं। ये दीप्त, महाशत्रु-जेता और स्वयं अहिंसनीय हैं।

५. ये शोधक सोम, सूर्य के द्वारा पवित्र द्युलोक में परित्यक्त होते हैं। सोम अतीव मदकर हैं।

६. ये बलवान् सोम अन्तरिक्ष (दशापवित्र) में जाते हैं। ये कामवर्षक, हरित-वर्ण, पवित्र-कर्त्ता और दीप्त हैं। ये इन्द्र की ओर जाते हैं।

२८ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि प्रियमेध। छन्द गायत्री।)

१. ये सोम गमनशील, पात्र में स्थापित, सर्वज्ञ और सबके स्वामी हैं। ये मेषलोम पर दौड़ते हैं।

२. ये सोम देवों के लिए अभिषुत होकर उनके सारे शरीरों में प्रवेश पाने के लिए दशापवित्र में जाते हैं।

३. ये अमर वृत्रघ्न और देवाभिलाषी सोम अपने स्थान में शोभा प्राप्त करते हैं।

४. ये अभिलाषा-दाता, शब्दकर्त्ता और अँगुलियों के द्वारा धृत सोम द्रोण-कलस की ओर जाते हैं।

५. शोधनकालीन, सबके द्रष्टा और सर्वज्ञ सोम सूर्य और समस्त तेजःपदार्थों को शोधित करते हैं।

६. ये शोधनकालिक सोम बलवान् और अहिंसनीय हैं। ये देवों के रक्षक और पापियों के घातक हैं।

२९ सूक्त

(देवता सोम । ऋषि अङ्गिरा के पुत्र नृमेध । छन्द गायत्री ।)

१. वर्षक, अभिषुत और देवों के ऊपर प्रभाव डालने की इच्छावाले इन सोम की धारा क्षरित होती है।

२. स्तोता, विधाता और कर्मकर्त्ता अध्वर्यु लोग दीप्तिमान्, प्रवृद्ध, स्तुत्य और सर्पण-स्वभाव सोम को मार्जित करते हैं।

३. प्रभूत धनवाले सोम, शोधन-समय में तुम्हारे वे सब तेज शोभन होते हैं; इसलिए तुम समुद्र के समान और स्तुत्य द्रोण-कलस को पूर्ण करो।

४. सोम, सारे धनों को जीतते हुए धारा-प्रवाह से गिरो और सारे शत्रुओं को एक साथ दूर देश में भेज दो।

५. सोम, जो दान नहीं करते, उनसे और अन्यान्य निन्दकों की निन्दा से हमारी रक्षा करो। ताकि हम मुक्त हो सकें।

६. सोम, तुम धारा-रूप से क्षरित होओ। पृथिवीस्थ और स्वर्गीय धन तथा दीप्तिमान् बल को ले आओ।

३० सूक्त

(देवता सोम । ऋषि अङ्गिरा के पुत्र बिन्दु । छन्द गायत्री ।)

१. बली इन सोम की धारा अनायास दशापवित्र में गिर रही है। शोधन-समय में ये अपनी ध्वनि को प्रेरित करते हैं।

२. ये सोम, अभिषवकारियों के द्वारा प्रेरित होकर, शोधन समय में शब्द करते हुए इन्द्र-सम्बन्धी शब्द प्रेरित करते हैं।

३. सोम, तुम धारा-रूप से क्षरित होओ। उससे मनुष्यों के अभिभवकर, वीरवान् और अनेकों के द्वारा अभिलषणीय बल प्राप्त हो।

४. शोधन-काल में वे सोम धारा-रूप से द्रोण-कलश में आने के लिए दशापवित्र को लाँघकर क्षरित होते हैं।

५. सोम, तुम जल (वसतीवरी) में सबसे अधिक मधुर और हरित-वर्ण (हरे रंग के) हो। इन्द्र के पान के लिए तुम्हें पत्थर से पीसा जाता है।

६. ऋत्विको, तुम लोग अत्यन्त मधुर रसवाले, मनोहर और मदकर सोम को हमारे बलार्थ, इन्द्र के पान के लिए, अभिषुत करो।

३१ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि रहुगण के पुत्र गोतम। छन्द गायत्री।)

१. उत्तम कर्मवाले और शोधनकालीन सोम जा रहे हैं। वे हमें प्रज्ञापक धन दे रहे हैं।

२. सोम, तुम अन्नों के स्वामी हो। तुम द्यावापृथिवी के प्रकाशक धन के वर्द्धक होओ।

३. सारे वायु तुम्हारे लिए तृप्तिकर होते हैं; नदियाँ तुम्हारे लिए जाती हैं। वे तुम्हारी महिमा को बढ़ावें।

४. सोम, तुम वायु और जल के द्वारा प्रवृद्ध होओ। वर्षक बल तुममें चारों ओर से मिले। तुम संग्राम में अन्न के प्रापक होओ।

५. पिङ्गलवर्ण सोम, गो-समूह तुम्हारे लिए घृत और अक्षीण दुग्ध दोहन करता है। तुम उन्नत प्रदेश में अवस्थित हो।

६. भुवन के पति सोम, हम तुम्हारे बन्धुत्व की कामना करते हैं। तुम उत्तम आयुधवाले हो।

३२ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि आत्रेय श्यावाश्व। छन्द गायत्री।)

१. सोम मदस्रावी और अभिषुत होकर यज्ञ में हव्यदाता के अन्न के लिए जाते हैं।

२. इन्द्र के पान के लिए इस हरित-वर्ण सोम को त्रित ऋषि की अँगुलियाँ पत्थर से प्रेरित करती हैं।

३. जैसे हंस जल में प्रवेश करता है, वैसे ही सोम सारे स्तोताओं के मन को वश में करते हैं। ये सोम गव्य के द्वारा स्निग्ध होते हैं।

४. सोम, तुम यज्ञ-स्थान को आश्रय करते हुए, मिश्रित होकर, मृग के समान, द्यावापृथिवी को देखते हो।

५. जैसे रमणी जार की स्तुति करती है, वैसे ही, हे सोम, शब्द तुम्हारी स्तुति करते हैं। वे सोम, मित्र के समान, अपने हितार्थ गन्तव्य स्थान को जाते हैं।

६. सोम, हम हविवाले और मुझ स्तोता के लिए दीप्तिशाली अन्न प्रदान करो। धन मेधा और कीर्त्ति दो।

३३ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि त्रित। छन्द गायत्री।)

१. मेधावी सोम पात्रों के प्रति, जल-तरंग के समान, जाते हैं, वृद्ध मृग जैसे वन में जाते हैं, वैसे ही सोम जाते हैं।

२. पिङ्गल-वर्ण और दीप्त सोम, गोमान् अन्न प्रदान करते हुए, धारा-रूप से द्रोण-कलश में झरते हैं।

३. अभिषुत सोम इन्द्र, वायु, वरुण, मरुद्गण और विष्णु के प्रति गमन करते हैं।

४. ऋक् आदि तीन वाक्य (स्तुतियाँ) उच्चारित हो रहे हैं। दूध देने के लिए गायें शब्द कर रही हैं। हरित-वर्ण सोम शब्द करते हुए गमन करते हैं।

५. स्तोताओं (ब्राह्मणों) के द्वारा प्रेरित, यज्ञ की मातृ-स्वरूपा और महती स्तुतियाँ उच्चारित हो रही हैं और द्युलोक के शिशु-समान सोम मार्जित हो रहे हैं।

६. सोम, धन-सम्बन्धी चारों समुद्रों (अर्थात् चारों समुद्रों से वेष्टित निखिल भूमण्डल के स्वामित्व) को चारों दिशाओं से हमारे पास ले आओ और असीम अभिलाषाओं को भी ले आओ।

३४ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि मित्र। छन्द गायत्री।)

१. अभिषुत सोम प्रेरित होकर धारा-रूप से दशापवित्र में जाते हैं और सुदृढ़ शत्रुओं-पुरियों को भी ढीली करते हैं।

२. अभिषुत सोम इन्द्र, वायु, वरुण, मरुद्गण और विष्णु के अभिमुख जाते हैं।

३. अध्वर्यु लोग, रस के सेचक और नियत सोम को वर्षक प्रस्तर के द्वारा अभिषुत करते हैं। वे कर्म-बल से सोम-रूप दुग्ध को दूहते हैं।

४. त्रित ऋषि का मदकर सोम उनके लिए और इन्द्र के पान के लिए शुद्ध हो रहा है। वे हरित-वर्ण सोम अपने रूप से प्राप्त हुए हैं।

५. पृश्नि के पुत्र मरुद्गण यज्ञाश्रय, होमसाधक और रमणीय सोम का दोहन करते हैं।

६. अकुटिल स्तुतियाँ उच्चारित होकर सोम के साथ मिल रही हैं। सोम भी शब्द करते हुए प्रीतिकर स्तुतियों की कामना करते हैं।

३५ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि अङ्गिरा के पुत्र प्रभूवसु। छन्द गायत्री।)

१. प्रवाह-शील सोम, तुम धारा-रूप से हमारे चारों ओर क्षरित होओ। विस्तीर्ण धन और प्रकाशमान यज्ञ हमें दो।

२. जल-प्रेरक और शत्रुओं को कँपानेवाले सोम, अपने बल से तुम हमारे धन के धारक होओ।

३. वीर सोम, तुम्हारे बल से हम संग्रामाभिलाषी शत्रुओं को हरावेंगे। हमारे सामने स्वीकार के योग्य धन भेजो।

४. यजमानों का आश्रय करने की इच्छा से अन्नदाता, सर्वदर्शी तथा कर्म और आयुध को जाननेवाले सोम अन्न प्रेरित करते हैं।

५. मैं स्तुति-वचनों से उन्हीं सोम की स्तुति करता हूँ, जो गो-पालक हैं। हम स्तुति-प्रेरक और पवित्र सोम को वासित करेंगे।

६. सारे मनुष्य कर्मपति, पवित्र और प्रभूत धनवाले सोम के कर्म में मन लगाते हैं।

३६ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि प्रभूवसु। छन्द गायत्री।)

१. रथ में जोते गये अश्व के समान दोनों चमुओं (स्रुकों) में अभिषुत सोम दशापवित्र में बनाये गये वेगवान् सोम युद्ध में विचरण करते हैं।

२. सोम, तुम वाहक, जागरूक और देवाभिलाषी हो। तुम मधुस्रावी दशापवित्र को लाँघकर क्षरित होओ।

३. प्राचीन क्षरणशील सोम, तुम हमारे दिव्य स्थानों को प्रकाशित करो और हमें यज्ञ तथा बल के लिए प्रेरित करो।

४. यज्ञाभिलाषी ऋत्विकों के द्वारा अलंकृत और उनके हाथों से परिमार्जित सोम मेषलोममय दशापवित्र में शोधित होते हैं।

५. वह अभिषुत सोम हविर्दाता को द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्ष के सारे धनों को दें।

६. बलाधिपति सोम, तुम स्तोताओं के लिए अश्व, गौ और वीरपुत्र के अभिलाषी होकर स्वर्गपृष्ठ पर चढ़ो।

३७ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि रहूगण। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र आदि के पान के लिए अभिषुत सोम काम-वर्षक, राक्षस-नाशक और देव-कामी होकर दशापवित्र में जाते हैं।

२. वह सोम सबके दर्शक, हरित-वर्ण और सबके धारक होकर दशा-पवित्र में जाते हैं। अनन्तर शब्द करते हुए द्रोण-कलश में जाते हैं।

३. वेगशाली, स्वर्ग के दीप्ति-प्रद और क्षरणशील सोम राक्षस-विनाशक होकर मेषलोममय दशापवित्र को लाँघकर जा रहे हैं।

४. उक्त सोम ने त्रित ऋषि के उन्नत यज्ञ में पवित्र होकर अपने प्रवृद्ध तेजों से सूर्य को प्रकाशित किया।

५. जैसे अश्व युद्ध-भूमि में जाता है, वैसे ही वृत्रघ्न, अभिलाषदाता अभिषुत अहिंसनीय सोम कलश में जाते हैं।

६. वे महान्, भींगे हुए, कवि के द्वारा प्रेरित सोम, इन्द्र के लिए द्रोण-कलश में जाते हैं।

३८ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि रहूगण। छन्द गायत्री।)

१. वे सोम अभिलाष-प्रद और रथस्वभाव (गति-परायण) होकर यजमान को बहुत अन्न देने के लिए मेषलोमों से दशापवित्र से होकर द्रोण-कलस में जाते हैं।

२. इन्द्र के पान के लिए त्रित ऋषि की अँगुलियाँ इन क्लेदवाले और हरित-वर्ण सोम को पत्थर से पीस रही हैं।

३. दस हरित-वर्ण अँगुलियाँ, कर्माभिलाषिणी होकर, इन सोम को मार्जित करती हैं। इनकी सहायता से इन्द्र के मद के लिए सोम शोधित होते हैं।

४. ये सोम मानव-प्रजा के बीच श्येन पक्षी के समान, बैठते हैं। जैसे उपपत्नी के पास जार जाता है, वैसे ही सोम जाते हैं।

५. सोम के ये मादक रस सारे पदार्थ को देखते हैं। वे सोम स्वर्ग के पुत्र हैं। दीप्त सोम दशापवित्र में प्रवेश करते हैं।

६. पान के लिए अभिषुत, हरितवर्ण और सबके धारक सोम शब्द करते हुए अपने प्रिय स्थान (द्रोण-कलश में) जाते हैं।

३९ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि आङ्गिरस बृहन्मति। छन्द गायत्री।)

१. महामति सोम, देवों के प्रियतम शरीर से युक्त होकर शीघ्र गमन करो। "देवता लोग जहाँ हैं उसी दिशा को जाता हूँ"—ऐसा सोम कह रहे हैं।

२. असंस्कृत स्थान वा यजमान को संस्कृत कहते हुए और याज्ञिक को अन्न देते हुए अन्तरिक्ष से, हे सोम, वृष्टि करो।

३. अभिषुत सोम दीप्ति धारण करके और सारे पदार्थों को देख और दीप्त करके बल से शीघ्र दशापवित्र में जाते हैं।

४. ये सोम दशापवित्र में सिंचित होकर जल-तरङ्ग से क्षरित होते हैं। ये स्वर्ग के ऊपर शीघ्र गमन करते हैं।

५. दूर और पास के देवों की सेवा के लिए अभिषुत सोम, इन्द्र के लिए, मधु के समान सिंचित होते हैं।

६. भली भाँति मिले हुए स्तोता स्तुति करते हैं। वे हरित-वर्ण सोम को, पत्थर की सहायता से, प्रेरित करते हैं। अतएव देवो, यज्ञस्थान में बैठो।

४० सूक्त

(देवता सोम। ऋषि बृहन्मति। छन्द गायत्री।)

१. क्षरणशील और सर्वदर्शक सोम सारे हिंसकों को लाँघ गये। उन मेधावी सोम को स्तुति-द्वारा सब अलंकृत करते हैं।

२. अरुण-वर्ण (कृष्ण-लोहित?) सोम द्रोण-कलश में जा रहे हैं। अनन्तर अभिलाषा-दाता और अभिषुत होकर इन्द्र के पास जाते हैं और निश्चित स्थान में बैठते हैं।

३. हे इन्द्र (दीप्त) सोम, तुम अभिषुत होकर हमारे लिए शीघ्र महान् और बहुत धन, चारों ओर से, दो।

४. क्षरणशील और दीप्त सोम, तुम बहुविध अन्न ले आओ और सहस्र-संख्यक अन्न प्रदान करो।

५. सोम, तुम हमारे स्तोताओं के लिए पवित्र और अभिषुत होकर सुपुत्रवाला धन ले आओ और स्तोता की स्तुति को वर्द्धित करो।

६. सोम, तुम शोधन-समय में हमारे लिए द्यावापृथिवी में परिवृद्ध धन ले आओ। वर्षक इन्दु (सोम), हमें स्तुत्य धन दो।

४१ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि कण्वगोत्रीय मेध्यातिथि। छन्द गायत्री।)

१. जो अभिषुत सोम, जल के समान, शीघ्र दीप्तियुक्त और गतिशील होकर काले चमड़ेवालों को मारकर विचरण करते हैं, उन सोमों की स्तुति करो।

२. व्रत-शून्य और दुष्टमति को दबाकर हम सुन्दर सोम की राक्षस-बन्धन और राक्षस-हननवाली इच्छा की स्तुति करेंगे।

३. अभिषव-समय में बली सोम की दीप्तियाँ अन्तरिक्ष में विचरण करती हैं। वृष्टि के समान सोम का शब्द सुनाई देता है।

४. सोम, तुम अभिषुत होकर गौ, अश्व और बल से युक्त महान्न हमारे सामने प्रेरित करो।

५. सर्वदर्शक सोम, तुम प्रवाहित होओ। जैसे सूर्य अपनी किरणों से दिनों को पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुम द्यावापृथिवी को पूर्ण करो।

६. सोम, हमारी सुखकरी धारा के द्वारा चारों ओर वैसे ही पूर्ण करो, जैसे नदियाँ भूमण्डल को पूरित करती हैं।

४२ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि मेध्यातिथि। छन्द गायत्री।)

१. ये हरित-वर्ण सोम द्युलोक-सम्बन्धी नक्षत्रादि और अन्तरिक्ष में सूर्य को उत्पन्न करके अधोगामी जलों से ढक कर जाते हैं।

२. ये सोम प्राचीन स्तोत्र से युक्त और अभिषुत होकर देवों के लिए धारा-रूप से गिरते हैं।

३. वर्द्धमान अन्न की शीघ्र प्राप्ति के लिए असंख्यात-वेग सोम क्षरित होते हैं।

४. पुराण रसवाले सोम दशापवित्र में होते और शब्द करते हुए देवों को प्रादुर्भूत करते हैं।

५. ये सोम अभिषव-समय में सारे स्वीकरणीय धनों और यज्ञ-वर्द्धक देवों के सामने जाते हैं।

६. सोम, तुम अभिषुत होकर हमें गौ, अश्व, वीर और संग्राम से युद्ध धन तथा बहुत अन्न दो।

४२ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि मेध्यातिथि। छन्द गायत्री।)

१. जो सोम निरन्तर गमनवाले अश्व के समान देवों के मद के लिए गव्य-द्वारा मिश्रित होते हैं और जो कमनीय हैं, हम उन्हीं सोम को स्तुति-द्वारा प्रसन्न करेंगे।

२. रक्षणाभिलाषिणी स्तुतियाँ, पहले के समान, इन्द्र के पान के लिए इन सोम को दीप्त करती हैं।

३. मेधावी मेध्यातिथि के लिए, शोधन-समय में, कमनीय सोम स्तुतियों के द्वारा अलंकृत होकर कलश की ओर जाते हैं।

४. क्षरणशील (पवमान), शोधनकालीन अथवा अभिषवकालिक इन्दु (सोम), हमें उत्तम दीप्तिवाले और बहु-श्री-सम्पन्न धन दो।

५. संग्रामगामी अश्व के समान जो सोम दशापवित्र में शब्द करते हैं, वे जब देवाभिलाषी होते हैं, तब अत्यन्त (ध्वनि) करते हैं।

६. सोम, हमें अन्न देने और स्तोता मेध्यातिथि को (मुझे) बढ़ाने के लिए प्रवाहित होओ। सोम, सुन्दर वीर्यवाला पुत्र भी दो।

अष्टम अध्याय समाप्त।

षष्ठ अष्टक समाप्त।

७ अष्टक

४४ सूक्त

(९ मण्डल। १ अध्याय। २ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि अयास्य। छन्द गायत्री।)

१. सोम, हमारे महान् धन के लिए आते हो। तुम्हारी तरङ्ग को धारण करके अयास्य ऋषि देवों की ओर, पूजन के लिए, जाते हैं।

२. मेधावी स्तोता ने क्रान्तकर्मा सोम की स्तुति की और उन्हें यज्ञ में नियुक्त किया। सोम की धारा दूर देश तक विस्तृत होती है।

३. जागरणशील और विचक्षण सोम अभिषुत होकर देवों के लिए चारों ओर जाते हैं। ये दशापवित्र की ओर जाते हैं।

४. सोम, कुशवाले ऋत्विक् तुम्हारी परिचर्या करते हैं। हमारे लिए तुम अन्न की इच्छा करते हुए और हिंसा-शून्य यज्ञ को सुचारु-रूप से करते हुए क्षरित होओ।

५. उन सोम को मेधावी लोग वायु और भग देवता के लिए प्रेरित करते हैं। सोम सदा बढ़नेवाले हैं। वे हमें देवों के पास स्थित धन दें।

६. सोम, तुम कर्मों के प्रापक और पुण्य लोकों के अतीव मार्ग-ज्ञाता हो, तुम आज हमें धन-लाभ के लिए महान् अन्न और बल को जीतो।

४५ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि अयास्य। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम नेताओं के दर्शक हो। तुम देवों के आगमन या यज्ञ के लिए इन्द्र के पान मद और सुख के लिए क्षरित होओ।

२. सोम, तुम हमारा दूत-कर्म करो। इन्द्र के लिए तुम पिये जाते हो। तुम हमारे लिए श्रेष्ठ धन, देवों के यहाँ से, ले आओ।

३. सोम, मद के लिए रक्त-वर्ण तुम्हें हम दुग्ध आदि से संस्कृत करते हैं। तुम धन के निमित्त, हमारे लिए, दरवाजा खोल दो।

४. जैसे अश्व गमन-समय में रथ की धुरा को लाँघ जाता है, वैसे ही सोम दशापवित्र को लाँघकर देवों के बीच जाता है।

५. दशापवित्र को लाँघकर जिस समय सोम जल के बीच क्रीड़ा करने लगे, उस समय प्रिय बन्धु स्तोता एक स्वर से उनकी स्तुति और वचनों के द्वारा उनका गुण-कीर्तन करने लगे।

६. सोम, तुम उस धारा के साथ गिरो। जिस धारा का पान करने पर विचक्षण स्तोता को तुम शोभन वीर्य देते हो।

४६ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि अयास्य। छन्द गायत्री।)

१. अभिषव-प्रस्तरों से प्रवृद्ध सोम यज्ञ के लिए उसी प्रकार क्षरित होते हैं, जैसे कार्य-परायण अश्व क्षरित होते हैं (अथवा पर्वत पर उत्पन्न और क्षरणशील सोम, कार्य-पटु अश्वों के समान, यज्ञ के लिए, बनाये जाते हैं।

२. पिता-द्वारा अलंकृता कन्या जैसे स्वामी के पास जाती है, वैसे ही सोम वायु के पास जाते हैं।

३. वे सब उज्ज्वल और अन्नवान् सोम प्रस्तर-फलक-द्वय पर अभिषुत होकर यज्ञ-द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करते हैं।

४. शोभन हाथोंवाले ऋत्विको (पुरोहितो), शीघ्र आओ। मथानी (मथनेवाले दण्ड) के साथ शुक्ल-वर्ण सोम को ग्रहण करो। मदकर सोम को दूध आदि से संस्कृत वा सुस्वादु करो।

५. शत्रु-धन को जीतनेवाले सोम, तुम अभीष्ट मार्ग के प्रापक हो। तुम हमें महान् धन देनेवाले हो। क्षरित होओ।

६. इन्द्र के लिए दसों अँगुलियाँ शोधनीय, क्षरणशील और मदकर सोम को दशापवित्र में शोधित करती हैं।

४७ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भृगु-पुत्र कवि। छन्द गायत्री।)

१. शोभन अभिषवादि क्रिया से ये सोम महान् देवों के प्रति प्रवृद्ध हुए। ये आनन्द के मारे वृषभ (साँड़) के समान शब्द करते हैं।

२. इन सोम के असुर-नाशक कर्मों को हमने किया है। बली सोम ऋणपरिशोध भी करते हैं।

३. जब इन्द्र का मन्त्र प्रादुर्भूत होता है, तभी इन्द्र के लिए प्रियरस, बली और वज्र के समान अवध्य सोम हमारे लिए असीम धन के दाता होते हैं।

४. यदि कान्तकर्मा सोम अँगुलियों से शोधित किये जाते हैं, तो वे स्वयं मेधावी के लिए कामधारक इन्द्र से रमणीय धन देने की इच्छा करते हैं।

५. सोम, तुम संग्रामों में शत्रुओं को जीतनेवालों को उसी प्रकार धन देते हो, जिस प्रकार समर-भूमि में आनेवाले अश्वों को घास दिया जाता है।

४८ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भृगु-पुत्र कवि। छन्द गायत्री।)

१. सोम, प्रकाण्ड द्युलोक के एक स्थानवासियों में स्थित, धन के धारक और कल्याण के धारक तुमसे शोभन अनुष्ठान करके हम धन की याचना करते हैं।

२. सोम, पराक्रमी शत्रुओं के विनाशक, प्रशंसा के योग्य, पूजनीय-कर्मा, आनन्ददाता और अनेक शत्रु-पुरियों के घातक तुमसे हम धन माँगते हैं।

३. शोभन कर्मवाले सोम, धन के लिए तुम राजा हो; इसी लिए श्येन (बाज) तुम्हें सरलता से स्वर्ग से ले आया था।

४. जल भेजनेवाले, यज्ञ के संरक्षक और स्वर्गस्थ सभी देवों के लिए समान सोम को स्वर्ग से श्येन ले आया था।

५. कर्मों के सूक्ष्मदर्शक, यजमानों के मनोरथ-दाता और अपने बल का प्रयोग करनेवाले सोम अपने प्रशंसनीय महत्त्व को प्राप्त करते हैं।

४९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भृगु-पुत्र कवि। छन्द गायत्री।)

१. सोम, द्युलोक से हमारे लिए चारों ओर वृष्टि करो। द्युलोक से जलतरङ्ग ले आओ। अक्षय अन्न का महाभाण्डार उपस्थित करो।

२. सोम, तुम उस धारा से क्षरित होओ, जिस धारा-से शत्रु देशोत्पन्न गायें इस लोक में हमारे गृह में आती हैं।

३. सोम, तुम यज्ञों में अतीव देवाभिलाषी हो। हमारे लिए तुम घृत-धारा से क्षरित होओ।

४. सोम, तुम हमारे अन्न के लिए कुशमय (अथवा अव्यय) दशापवित्र को धारा-रूप से प्राप्त करो। तुम्हारी गमन-ध्वनि को देवता लोग सुनें।

५. राक्षसों को मारते हुए और अपनी दीप्ति को पहले की तरह प्रदीप्त करते हुए ये क्षरणशील सोम प्रवाहित होते हैं।

५० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरस उतथ्य। छन्द गायत्री।)

१. सोम, समुद्र-तरङ्ग के वेग के समान तुम्हारा वेग हो रहा है। जैसे धनुष से छोड़ा हुआ वाण शब्द करता है, वैसे ही तुम शब्द करो।

२. जिस समय तुम उन्नत और कुशमय दशापवित्र में जाते हो, उस समय तुम्हारी उत्पत्ति होने पर यज्ञाभिलाषी यजमान के मुख से तीन प्रकार के (ऋक्, यजु, सोम के) वाक्य निकलते हैं।

३. देवों के प्रिय, हरित-वर्ण, पत्थरों से अभिषुत (निष्पीड़ित) और मधुर रस चुलानेवाले सोम को ऋत्विक् लोग मेष के लोम के ऊपर रखते हैं।

४. अतीव प्रमत्तकारी और क्रान्तकर्मा सोम, पूजनीय इन्द्र के उदर में पैठने के लिए दशापवित्र को लाँघकर उनके सामने क्षरित होओ।

५. अत्यन्त प्रमत्त करनेवाले सोम, सुस्वादु करनेवाले दूध आदि से मिश्रित होकर तुम इन्द्र के पान के लिए क्षरित होओ।

५१ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि उतथ्य। छन्द गायत्री।)

१. पुरोहित, पत्थरों से अभिषुत (पीसे गये) सोम को दशापवित्र पर डाल दो। इन्द्र के पान के लिए इसे शोधित करो।

२. पुरोहितो (अध्वर्युओ), अत्यन्त मधुर, द्युलोक के अमृत और श्रेष्ठ सोम को वज्रधर इन्द्र के लिए प्रस्तुत करो।

३. मदकर और क्षरणशील तुम्हारे अन्न (खाद्य द्रव्य) को ये इन्द्रादि देवता और मरुद्गण व्याप्त करते हैं।

४. सोम, अभिषुत होकर, देवों को प्रवृद्ध कर अभिलाषाओं को बरसा-कर तुम शीघ्र मद और रक्षण के लिए स्तोता के पास जाते हो।

५. विचक्षण सोम, तुम अभिषुत होकर दशापवित्र की ओर जाओ और हमारे अन्न तथा कीर्ति की रक्षा करो।

५२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि उतथ्य। छन्द गायत्री।)

१. दीप्त और धन देनेवाले सोम अन्न के साथ हमारे बल को बढ़ाओ। सोम, अभिषुत होकर दशापवित्र में गिरो।

२. सोम, देवों को प्रसन्न करनेवाली तुम्हारी धारायें विस्तृत होकर पुराने मार्गों से मेषलोम से दशापवित्र में जाती ह।

३. सोम, जो यव के समान खाद्य है, उसे हमें दो। जो देने की वस्तु है, उसे हमें दो। प्रहार करने पर तुम बहते हो; इसलिए हे सोम, पत्थरों के प्रहार से निकलो।

४. बहुतों के द्वारा बुलाये गये सोम, जिन शत्रुओं का बल युद्ध के लिए हमें बुलाता है, उन शत्रुओं के बल को दूर करो।

५. सोम, तुम धन देनेवाले हो। हमारी रक्षा करने के लिए तुम अपनी निर्मल धाराओं से प्रवाहित होओ।

५३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कश्यप-गोत्रीय अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. प्रस्तर से उत्पन्न सोम, राक्षसों को मारनेवाले तुम्हारे वेग वा तेज उन्नत हुए हैं। स्पर्द्धा करनेवाली जो शत्रुसेनायें हमें बाधा देती हैं, उन्हें रोको।

२. तुम अपने बल से शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हो। मैं निर्भय हृदय से रथ पर शत्रुओं के द्वारा निहित धन के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

३. सोम, क्षरणशील तुम्हारे तेज को दुर्बुद्धि राक्षस नहीं सह सकता। जो तुम्हारे साथ युद्ध करना चाहता है, उसे विनष्ट करो।

४. मद चुलानेवाले, हरितवर्ण, बली और मदकर सोम को ऋत्विक् लोग इन्द्र के लिए वसतीवरी नामक जल में डालते हैं।

५४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. कवि लोग इन सोम के प्राचीन, प्रकाशमान, दीप्त, असीम, कर्म-फलदाता और श्रवणशील रस को दूहते हैं।

२. ये सोम, सूर्य के समान, सारे संसार को देखते हैं। ये तीस दिन रात की ओर जाते हैं। ये स्वर्ग से लेकर सातो नदियों को घेरे हुए हैं।

३. शोधित किये जाते हुए ये सोम, सूर्यदेव के समान, सारे भुवनों के ऊपर रहते हैं।

४. सोम, इन्द्राभिलाषी और शोधित तुम हमारे यज्ञ के लिए गोयुक्त अन्न चारों ओर गिराओ।

५५ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम हमारे लिए प्रचुर यव (जौ), अन्न के साथ, दो और सारे सौभाग्यशाली धन भी दो।

२. सोम, अन्नरूप तुम्हारे स्तोत्र और प्रादुर्भाव को हमने कहा। अब तुम हमारे प्रसन्नतादायक कुश पर बैठो।

३. सोम, तुम हमारे गौ और अश्व के दाता हो। तुम अल्प दिनों में ही अन्न के साथ क्षरित होओ।

४. सोम, तुम अपरिमित शत्रुओं के जेता हो। तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। तुम स्वयं शत्रुओं को निहत करते हो। क्षरित होओ।

५६ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. क्षिप्रकारी और देवकामी सोम दशापवित्र में जाकर और राक्षसों को नष्ट कर हमें प्रचुर अन्न देते हैं।

२. जब सोम की कर्माभिलाषी सौ धारायें इन्द्र का बन्धुत्व प्राप्त करती हैं, तब सोम हमें अन्न प्रदान करते हैं।

३. सोम, जैसे कन्या प्रिय (जार) को बुलाती है, वैसे ही दसों अँगुलियाँ शब्द करते हुए हमारे धन-लाभ और इन्द्र के लिए सोम को शोधित करती हैं।

४. सोम, प्रिय-रस तुम इन्द्र और विष्णु के लिए क्षरित होओ। कर्मों के नेताओं और स्तुतिकर्त्ताओं को पाप से छुड़ाओ।

५७ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कश्यप-गोत्रीय अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. जैसे द्युलोक की वर्षा-धारा प्रजा को असीम अन्न देती है, वैसे ही सोम, तुम्हारी निःसङ्ग धारा हमें अपरिमित अन्न प्रदान करती है।

२. हरित-वर्ण सोम देवों के सारे प्रिय कार्यों की ओर देखते हुए अपने आयुधों को राक्षसों की ओर फेंकते हुए यज्ञ में आते हैं।

३. सुकृती सोम मनुष्यों (ऋत्विकों) के द्वारा शोधित होकर और राजा तथा श्येन पक्षी के समान निर्भय होकर वसतीवरी-जल में बैठते हैं।

४. सोम, तुम क्षरित होते-होते स्वर्ग और पृथिवी के सारे धनों को हमारे लिए ले आओ।

५८ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. देवों के हर्षदाता सोम स्तोताओं का उद्धार करते हुए क्षरित होते हैं। अभिषुत और देव अन्नरूप सोम की धारा गिरती है। हर्षदाता सोम क्षरित होते हैं।

२. सोम की धन-प्रस्रवण करनेवाली और प्रकाशमाना धारा मनुष्य की रक्षा करना जानती है। हर्षदाता सोम स्तोताओं को तारते हुए गिरते हैं।

३. ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक राजाओं से हमने सहस्र-सहस्र धन ग्रहण किये हैं। आनन्दकर सोम स्तोताओं को तारते हुए बहते हैं।

४. ध्वस्र और पुरुषन्ति राजाओं से हमने तीस हजार वस्त्रों को पाया है। स्तोताओं को तारते हुए हर्षकर सोम गिरते हैं।

५९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अवत्सार। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम गो, अश्व, संसार और रमणीय धन के जेता हो। क्षरित होओ। पुत्रादि से युक्त रमणीय धन, हमारे लिए, ले आओ।

२. सोम, तुम वसतीवरी-जल से बहो, किरणों से बहो, ओषधियों से बहो और पत्थरों से बहो।

३. क्षरणशील और क्रान्तकर्मा सोम, राक्षसों के किये सारे उपद्रवों को दूर करो। इस कुश पर बैठो।

४. बहमान सोम, तुम यजमान को सब कुछ प्रदान करो। उत्पन्न होते ही तुम पूजनीय होते हो। तुम सारे शत्रुओं को तेज से दबाते हो।

६० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि अवत्सार। छन्द गायत्री और पुर-उष्णिक्।)

१. सूक्ष्मदर्शक, सहस्र-चक्षु और संस्क्रियमाण सोम की, गायत्री-साम-मन्त्र से, स्तोताओ, स्तुति करो।

२. सोम, बहुदर्शन, बहुभरण और अभिषुत तुमको ऋत्विक् लोग मेषलोम से छानते हैं।

३. क्षरणशील सोम मेषलोम से होकर गिरते और द्रोण-कलश की ओर जाते हुए इन्द्र के हृदय में बैठते हैं।

४. बहुदर्शी सोम, इन्द्र के आराधन के लिए तुम भली भाँति क्षरित होओ। हमारे लिए पुत्रादि से युक्त धन दो।

६१ सूक्त

(३ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरस अमहीयु। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र के पान के लिए उस रस से बहो, जिसने संग्राम में निन्यानबे शत्रु-पुरियों को नष्ट किया है।

२. उस सोमरस ने एक ही दिन में शम्बर नामक शत्रुपुरियों के स्वामी को सत्यकर्मा दिवोदास राजा के वश में कर दिया था। अनन्तर सोमरस ने दिवोदास के शत्रु तुर्वश और यदु राजाओं को भी वश में कर दिया था।

३. सोम, तुम अश्व देनेवाले हो। तुम अश्व, गौ और हिरण्य से युक्त धन को वितरित करो।

४. सोम, क्षरणशील और दशापवित्र को आर्द्र करनेवाले तुमसे हम, मित्रता के लिए, प्रार्थना करते हैं।

५. सोम, तुम्हारी जो तरंगें दशापवित्र के चारों ओर गिरती हैं, उनसे हमें सुख दो।

६. सोम, तुम समस्त विश्व के प्रभु हो। अभिषुत और शोधित तुम हमारे लिए धन और पुत्रादि-युक्त अन्न ले आओ।

७. सोम की मातायें नदियाँ हैं। उन सोम की दस अँगुलियाँ मलती हैं। वे सोम अदिति-पुत्रों के साथ मिलते हैं।

८. अभिषुत सोम दशापवित्र में इन्द्र के साथ और वायु तथा सूर्य-किरणों के साथ मिलते हैं।

९. सोम, तुम मधुर-रस, कल्याणरूप और अभिषुत हो। तुम भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुण के लिए क्षरित होओ।

१०. तुम्हारे अन्न का जन्म द्युलोक में है और तुम्हारा प्रवृद्ध सुख तथा प्रचुर अन्न भूमि पर है।

११. इन सोम की सहायता से हम मनुष्यों के सारे अन्नों को उपार्जित करते हैं और भाग करने की इच्छा होने पर भाग कर लेंगे।

१२. सोम, तुम अन्न-दाता हो। अभिषुत तुम हमारे यजनीय इन्द्र, वरुण और मरुतों के लिए क्षरित होओ।

१३. भली भाँति उत्पन्न, वसतीवरी-द्वारा प्रेरित, शत्रु-भञ्जक और दूध आदि से परिष्कृत सोम के पास इन्द्र आदि देवता जाते हैं।

१४. जो सोम इन्द्र के लिए हृदयग्राही है, उन्हें ही हमारी स्तुतियाँ संवर्द्धित करें। ये स्तुतियाँ सोम को उसी प्रकार चाहती हैं, जैसे दूधवाली मातायें बच्चों को चाहती हैं।

१५. सोम, हमारी गौ के लिए सुख दो। प्रभूत अन्न दो। स्वच्छ जल बढ़ाओ।

१६. क्षरित होते-होते सोम ने वैश्वानर नामक ज्योति को, द्युलोक के चित्र का विस्तार करने के लिए, वज्र के समान उत्पन्न किया।

१७. दीप्यमान सोम, क्षरणशील तुम्हारा राक्षस-शून्य और मदकर सोम-रस मेषलोम की ओर जाता है।

१८. पवमान सोम, तुम्हारा प्रवृद्ध और दीप्तिशाली रस क्षरित होकर और सारे ब्रह्मांड (ज्योतिःपुञ्ज) को, व्याप्त करके, दृष्टिगोचर करता है।

१९. सोम, तुम्हारा जो रस देवकामी, राक्षस-हन्ता, प्रार्थनीय और मदकर है, उस रस से, अन्न के साथ, क्षरित होओ।

२०. सोम, तुमने शत्रु वृत्र का वध किया है। तुम प्रतिदिन संग्राम का आश्रय करते हो। तुम गौ और अश्व देनेवाले हो।

२१. सोम, तुम सुस्वादु दूध आदि के साथ मिलकर, श्येन पक्षी के समान, शीघ्र जाकर अपने स्थान को ग्रहण करो और सुशोभित होओ।

२२. जिस समय वृत्रासुर ने जलभाण्डार को रोक रक्खा था, उस समय, वृत्र-वध में तुमने इन्द्र की रक्षा की थी। वही तुम इस समय क्षरित होओ।

२३. सेचक और क्षरणशील सोम, कल्याण-पुत्र हम आङ्गिरस अमहीयु आदि शत्रुओं के धन को जीतें। हमारी स्तुतियों को वर्द्धित करो।

२४. तुमसे क्षरित होकर हम शत्रुओं का विनाश कर डालें। हमारे कर्मों में तुम सतर्क रहना।

२५. हिंसक शत्रुओं और अदाताओं को मारते हुए तथा इन्द्र के स्थान को प्राप्त करते हुए क्षरित होते हो।

२६. पवमान सोम, हमारे लिए महान् धन ले आओ और शत्रुओं को मारो। पुत्रादि-युक्त कीर्त्ति भी हमें दो।

२७. सोम, जिस समय तुम शोधित होते-होते हमें धन देने की इच्छा करते हो और जिस समय तुम खाद्य देने की इच्छा करते हो, उस समय सैकड़ों शत्रु भी तुम्हें नहीं मार सकते।

२८. सोम, अभिषुत और सेचक तुम देशों में हमें यशस्वी करो और सारे शत्रुओं को मारो।

२९. सोम, इस यज्ञ में हमें तुम्हारा बन्धुत्व प्राप्त करने पर और तुम्हारे श्रेष्ठ अन्न से पुष्टि पा जाने पर हम युद्धेच्छु शत्रुओं को मारेंगे।

३०. सोम, तुम्हारे जो शत्रुओं के लिए भयंकर, तीखे और शत्रु-वधकारी हथियार हैं, उनको रखनेवाले शत्रु की निन्दा से (पराजय रूप अयश) से हमारी रक्षा करो।

६२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भृगुगोत्रीय जमदग्नि। छन्द गायत्री।)

१. सोम सारे सौभाग्य हमें देंगे; इसी लिए वह दशापवित्र के पास शीघ्र-शीघ्र उत्पन्न किये जाते हैं।

२. बली सोम अनेक पापों को भली भाँति नष्ट करते हुए तथा हमारे पुत्र और अश्वों को सुखी करते हुए दशापवित्र के पास उत्पन्न किये जाते हैं।

३. हमारी गौ और हमारे लिए धन और अन्न देते हुए सोम हमारी स्तुति की ओर आते हैं।

४. सोम, पर्वत से उत्पन्न, मद के लिए अभिषुत और जल (वसतीवरी) में प्रवृद्ध हैं। जैसे श्येन पक्षी वेग से आकर अपने स्थान को प्राप्त करता है, वैसे ही ये सोम भी अपने स्थान पर बैठते हैं।

५. देवों के द्वारा प्रार्थित और शोभन अन्न को गायें दूध आदि से

स्वादिष्ठ बनाते हैं। यह सोम ऋत्विकों के द्वारा अभिषुत और वसतीवरी में शोधित हुए हैं।

६. अनन्तर अनुष्ठाता ऋत्विक्, यज्ञस्थल में इन मदकर सोम के रस को, अमरत्व पाने के लिए, अश्व के समान सुशोभित करते हैं।

७. सोम, तुम्हारी मधुर रस और बुलानेवाली धारायें, रक्षण के लिए, बनाई गई हैं; उनके साथ तुम दशापवित्र में बैठो।

८. सोम, अभिषुत तुम मेषलोम से निकलकर और इन्द्र के पान के लिए पात्रों में से अपने स्थान पर जाकर क्षरित होओ।

९. सोम, तुम स्वादिष्ठ और हमारे अभिलषित धन के प्रापक हो। तुम अङ्गिरा की सन्तानों के लिए घृत और दुग्ध बरसो।

१०. सुकर्म-दर्शक, पात्रों में स्थित और क्षरणशील सोम, जल में उत्पन्न महान् अन्न को प्रेरित करके सबके द्वारा जाने जाते हैं।

११. यह जो सोम हैं, वे धन-वर्धक, वृष-कर्मा, राक्षसों के हन्ता और क्षरणशील हैं। ये हविर्दाता यजमान को धन देते हैं।

१२. सोम, तुम प्रचुर, गौओं और अश्वों से युक्त, सबके हर्षदाता और बहुतों के द्वारा अभिलषणीय धन को बरसो।

१३. अनेक स्तुतियोंवाले और कार्यक्षम सोम मनुष्यों के द्वारा शोधित होकर सिञ्चित होते हैं।

१४. सोम असीम रक्षण, बहुधन, संसार के निर्माता, क्रान्तकर्मा और मदकर हैं। ये इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं।

१५. जैसे पक्षी अपने घोसले में जाता है, वैसे ही प्रादुर्भूत और स्तोम से स्तुत सोम इस यज्ञ में अपने स्थान में, इन्द्र के लिए, स्थित होते हैं।

१६. ऋत्विकों के द्वारा अभिषुत (निष्पीड़ित) और क्षरणशील सोम चमसों में, अपने स्थान में, युद्ध के समान बैठने के लिए जाते हैं।

१७. तीन पृष्ठों (अभिषवणों), तीन स्थानों (वेदों) और छन्दः-स्वरूप सात रस्सियों से युक्त ऋषियों के यज्ञ-रूपी रथ में सोम को ऋत्विक् लोग, देवों के प्रति जाने के लिए, जोतते हैं।

१८. सोम का निष्पीड़न (अभिषवण) करनेवाले, धन-स्रष्टा, बली और वेगशाली सोमरूप अश्व को यज्ञ-रूपी संग्राम में जाने के लिए सज्जित करो।

१९. अभिषुत सोम कलस की ओर जाते हुए और सारी सम्पदाओं को हमें देते हुए गौओं में शूर के समान, निःशङ्क होकर, रहते हैं।

२०. सोम, तुम्हारे मधुर रस को, स्तोता लोग, इन्द्रादि के मद के लिए, दूहते हैं।

२१. ऋत्विको, देवताओं के लिए जिनका नाम प्रिय है और जो अतीव मधुर हैं, उन सोम को इन्द्र आदि के लिए दशापवित्र में रक्खो।

२२. ऋत्विक् लोग स्तुतिवाले सोम को, महान् अन्न के लिए, अतीव मदकर रस की धारा से बनाते हैं।

२३. सोम, शोधित तुम भक्षण के लिए गो-सम्बन्धी धनों (दूध आदिकों) को प्राप्त करते हो। अन्नदान करते हुए क्षरित होओ।

२४. सोम, मैं जमदग्नि तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम हमें गोयुक्त और सर्वत्र प्रशंसित अन्न दो।

२५. सोम, तुम मुख्य हो। पूजनीय रक्षणों के साथ हमारी स्तुतियों पर बरसो। सारे स्तुति-रूप वाक्यों पर भी बरसो।

२६. सोम, तुम विश्व-कम्पक हो। हमारे वचनों को ग्रहण करते हुए तुम आकाश से वारिवर्षण करो।

२७. कवि सोम, तुम्हारी महिमा से ये भुवन स्थित हैं। सारी नदियाँ तुम्हारा ही आज्ञापालन करती हैं।

२८. सोम, आकाश की वारि-धारा के समान तुम्हारी धारा शुक्लवर्ण और बिछाये हुए दशापवित्र की ओर जाती है।

२९. ऋत्विको, उग्र, बल-करण, धनपति और धन देनेवाले सोम को इन्द्र के लिए प्रस्तुत करो।

१०. सत्य, कान्तकर्मा और क्षरणशील सोम हमारे स्तोत्र में शोभन वीर्य देते हुए दशापवित्र पर बैठते हैं।

६२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कश्यपगोत्रीय निध्रुव। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम बहु-संख्यक और शोभन-वीर्य धन क्षरित करो और हमें अन्न दो।

२. सोम, तुम अतीव मादक हो। तुम इन्द्र के लिए अन्न, बल और रस देते हो। तुम चमसों में बैठते हो।

३. जो सोम इन्द्र, विष्णु और वायु के लिए अभिषुत होकर द्रोण-कलस में जाते हैं, वे मधुर रसवाले हैं।

४. पिङ्गलवर्ण और क्षिप्रकारी सोम जल की धारा से बनाये जाते हैं। सोम राक्षसों की ओर जाते हैं।

५. इन्द्र को बढ़ाते हुए, जल लाते हुए सब प्रकार से अथवा सोमरस को हमारे लिए मंगलजनक करते हुए और कृपणों का विनाश करते हुए सोम जाते हैं।

६. पिङ्गल-वर्ण और अभिषुत सोम इन्द्र की ओर से अपने स्थान को जाते हैं।

७. सोम, मनुष्यों के उपयोगी जल को बरसाते हुए तुमने अपनी धारा (तेज) से सूर्य को प्रकाशित किया था। उसी धारा से बहो।

८. क्षरणशील सोम मनुष्य के लिए और अन्तरिक्ष में गति के लिए सूर्य के अश्व को जोतते हैं।

९. सोम इन्द्र का नाम कहते हुए दसों दिशाओं में जाने के लिए सूर्य के अश्व को जोतते हैं।

१०. स्तोताओ, तुम लोग वायु और इन्द्र के लिए अभिषुत और मदकर सोम को अभिषव देश से लेकर मेषलोम पर सिंचित करो।

११. क्षरणशील सोम, जिस धन का विनाश हिंसक शत्रु नहीं कर सकता, ऐसे शत्रुओं के लिए दुर्लभ धन हमें दो।

१२. तुम हमें बहु-संख्यक और गौ तथा अश्व से युक्त धन दो और बल तथा अन्न हमें दो।

१३. सूर्यदेव के समान दीप्तिशाली और पत्थरों से अभिषुत सोम द्रोण-कलश में रस धारण करके क्षरित होते हैं।

१४. अभिषुत और दीप्त सोम श्रेष्ठ यजमानों के गृहों में गोयुक्त अन्न, जल-धारा-रूप से, बरसते हैं।

१५. वज्रधर इन्द्र के लिए निष्पीड़ित सोम दधि-संस्कृत होकर और दशापवित्र में जाकर क्षरित होते हैं ।

१६. सोम, तुम्हारा जो रस अतीव मधुर है, उस देव-काम रस को हमारे धन के लिए दशापवित्र में बहाओ।

१७. हरित-वर्ण, बली, मदकर और क्षरणशील सोम को ऋत्विक् लोग इन्द्र के लिए वसतीवरी-जल में शोधित करते हैं।

१८. सोम, तुम सुवर्ण, अश्व और पुत्रादि से युक्त धन को हमें वितरित करो। पशुओं से युक्त अन्न ले आओ।

१९. युद्ध-समय के समान इस समय युद्ध-काम, अतीव मधुर सोम को, दशापवित्र में, मेषलोम के ऊपर, ऋत्विको, तुम सींचो।

२०. रक्षाभिलाषी और मेधावी ऋत्विक् अँगुलियों के द्वारा मार्जनीय और क्रान्त-कर्मा जिन सोम को शोधित करते हैं, वह सेचक सोम शब्द करते हुए गिरते हैं।

२१. सोमदेव, मेधावी ऋत्विक् काम-वर्षक और प्रेरक सोम को अँगुलियों और बुद्धि से जल-धारा के द्वारा भेजते हैं।

२२. दीप्तिमान् सोम, क्षरित होओ। तुम्हारा मदकर रस आसक्त इन्द्र के पास जाय। धारक रस के साथ तुम वायु को प्राप्त करो।

२३. क्षरणशील सोम, तुम शत्रुओं के धन को, सर्वांशतः नष्ट करते हो। प्रिय होकर तुम कलश में प्रवेश करो।

२४. सोम, मदकर और शत्रुओं को मारनेवाले तुम हमें बुद्धि देते हुए गिरते हो। तुम देव-द्वेषी राक्षस-वर्ग को अपदस्थ करो।

२५. उज्ज्वल, दीप्त और क्षरणशील सोम सारे स्तुति-वचनों को सुनते हुए ऋत्विकों के द्वारा उत्पादित होते हैं।

२६. क्षिप्रगामी, शोभन, पवमान, दीप्त और सारे शत्रुओं को मारने-वाले सोम उत्पादित होते हैं।

२७. क्षरणशील सोम द्युलोक और पृथिवी के उन्नत देश में, यज्ञ-स्थान में, उत्पन्न किये जाते हैं।

२८. सुकर्मा सोम, धारा-रूप से बहकर तुम सारे शत्रुओं और राक्षसों को मारो।

२९. सोम, राक्षसों को मारते हुए और शब्द करते हुए हमें दीप्तिमान् और श्रेष्ठ बल दो।

३०. दीप्त सोम, आकाश और पृथिवी में उत्पन्न सारे स्वीकरणीय धन हमें दो।

६४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि मरीचि-पुत्र कश्यप। छन्द गायत्री।)

१. सोम, तुम वर्धक और दीप्तिमान् हो। सोमदेव, तुम्हारा कार्य वर्षण करना है। सोम, तुम मनुष्यों और देवों के उपयोगी कर्मों को धारण करते हो।

२. काम-वर्षक सोम, तुम्हारा बल वर्षणशील है, तुम्हारा विभाग भी वर्षणशील है और तुम्हारा रस भी वर्षणशील है। सचमुच तुम सब तरह से वर्षा करनेवाले हो।

३. सोम, तुम अश्व के समान शब्द करते हो। तुम हमें पशु और अश्व दो। धन-प्राप्ति के लिए दरवाजा खोलो।

४. बली, उज्ज्वल और वेगवान् सोम की सृष्टि, गौओं, अश्वों और पुत्रों की प्राप्ति की इच्छा से, की गई है।

५. याज्ञिक लोग सोम को सुशोभित और दोनों हाथों से परिमार्जित करते हैं। सोम मेषलोम पर बहते हैं।

६. सोम हवि देनेवाले के लिए द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष में उत्पन्न सारे धन बरसें।

७. विश्वदर्शक और क्षरणशील, तुम्हारी धारायें सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमाना और इस समय निर्मित हो रही हैं।

८. सोम, रसशाली तुम संकेत वा ध्यान करके अन्तरिक्ष से हमें सारे रूप वितरित करो और नाना धन भी हमें दो।

९. सोम, जब तुम्हारा रस, सूर्यदेव के समान, दशापवित्र पर चढ़ता है, तब तुम उसी मार्ग में प्रेरित होकर शब्द करते हो।

१०. प्रज्ञापक और देवों के प्रिय सोम आत्मकर्मा स्तोताओं की स्तुति से क्षरित होते हैं। सोम उसी प्रकार तरङ्ग चलाते हैं, जिस प्रकार रथी अश्व को चलाता है।

११. सोम, तुम्हारी जो तरङ्ग देवाभिलाषी है, वह दशापवित्र पर क्षरित होती है।

१२. सोम, तुम अतीव देवाभिलाषी और मदकर हो। इन्द्र के पान के लिए हमारे दशापवित्र पर क्षरित होओ।

१३. सोम, ऋत्विकों के द्वारा संशोधित होकर तुम हमारे अन्न के लिए क्षरित होओ। तुम रुचिकर अन्न के साथ गौओं की ओर जाओ।

१४. स्तुत्य और हरित-वर्ण सोम, तुम दूध के साथ बनाये जाते हो। शोधित होकर तुम यजमान को धन और अन्न दो।

१५. सोम, दीप्तिमान्, यजमानों के द्वारा लाये गये और यज्ञ के लिए संशोधित किये गये तुम इन्द्र के पास जाओ।

१६. वेगशाली सोम अन्तरिक्ष के प्रति प्रेरित होकर और अंगुलि के द्वारा तौले जाकर उत्पादित किये जाते हैं।

१७. शोधित और गतिपरायण सोम सरलता से आकाश की ओर जाते हैं। वे जलपात्र की ओर जाते हैं।

१८. सोम, तुम हमारी अभिलाषा करनेवाले हो। बल के द्वारा हमारे सारे धनों की रक्षा करो। हमारे पुत्र के समान गृह की रक्षा करो।

१९. सोम, जब वहनशील अश्व शब्द करता है और स्तोताओं के द्वारा यज्ञ में स्थान (स्तोत्र-श्रवण) के लिए आता है, तब वह अश्वरूप सोम जल में (वसतीवरी में) स्थित होता है।

२०. जब वेगशाली सोम यज्ञ के हिरण्मय स्थान पर बैठते हैं, तब स्तोत्र-शून्यों के यज्ञ में नहीं जाते।

२१. कमनीय स्तोता सोम की स्तुति करते हैं और सुबुद्धि मनुष्य सोम का यजन करते हैं दुर्बुद्धि मनुष्य नरक में निमज्जित होते हैं।

२२. सोम, तुम बहुत ही मधुर हो। यज्ञ-स्थान में बैठने के लिए इन्द्र और मरुतों के लिए क्षरित होओ।

२३. सोम, क्षरणशील तुम्हें प्राज्ञ और कर्म-कर्त्ता स्तोता लोग अलंकृत करते हैं। तुम्हें मनुष्य भली भाँति शोधित करते हैं।

२४. क्रान्तकर्मा सोम, क्षरणशील तुम्हारे रस को मित्र, अर्यमा, वरुण और मित्र सभी पीते हैं।

२५. प्रदीप्त सोम, क्षरणशील तुम ज्ञान-पूत और बहुतों का भरण करनेवाला वचन प्रेरित करते हो।

२६. दीप्त सोम क्षरणशील तुम हजारों का भरण करनेवाला और यज्ञाभिलाषी वचन, हमारे लिए, ले आओ।

२७. बहुतों के द्वारा बुलाये गये सोम, क्षरणशील तुम इस यज्ञ में स्तोताओं के प्रिय होकर द्रोण-कलश में पैठो।

२८. उज्ज्वल और प्रकाशमान दीप्ति तथा चारों ओर शब्द करनेवाली धारा से युक्त होकर सोम दूध में मिलाये जाते हैं।

२९. जैसे योद्धा लोग रण-भूमि में पैठते ही आक्रमण करते हैं, वैसे ही बली, स्तोताओं के द्वारा, प्रेरित और संयत सोम यज्ञ-रूप युद्ध में आक्रमण करते हैं।

३०. सोम, क्रान्त और सुन्दर वीर्यवाले तुम संगत होते हुए दर्शन के लिए द्युलोक से प्रवाहित होओ।

प्रथम अध्याय समाप्त ।

६५ सूक्त

(द्वितीय अध्याय। देवता पवमान सोम। ऋषि वरुण-पुत्र भृगु अथवा भृगु-पुत्र जमदग्नि। छन्द गायत्री।)

१. अंगुलि रूप, परस्पर बन्धु-भूत और कार्य-कुशल स्त्रियाँ तुम्हारे अभिषव की इच्छा करके सुन्दर वीर्यवाले, सारे संसार के स्वामी, महान् और अपने पति सोम के क्षरणशील होने की इच्छा करती हैं।

२. दशापवित्र से शोधित, तेज के द्वारा दीप्त सोम, देवों के पास से निखिल धन हमें दो ।

३. पवमान सोम, देवों की परिचर्या के लिए शोभन स्तुतिवाली वर्षा करो। हमारे अन्न के लिए वर्षा करो।

४. सोम, तुम अभीष्ट-फल-वर्षक हो। पवमान सोम, शोभन कर्म-वाले हम किरणों के द्वारा तेजस्वी तुम्हें हम यज्ञ में बुलाते हैं।

५. तुम्हारे धनुष आदि आयुध शोभन हैं। देवों को प्रमत्त करते हुए तुम हमें शोभन वीर्यवाले पुत्र दो। चमसों में बहनेवाले सोम, हमारे यज्ञ में आओ।

६. सोम, तुम बाहुओं के द्वारा संशोधित किये और वसतीवरी-जल से सींचे जाते हो। उस समय तुम काष्ठ-पात्र में निहित होकर अपने स्थान में गमन करते हो।

७. स्तोताओ, व्यश्व ऋषि के समान दशापवित्र में संस्कृत, महिमा-न्वित और अनेक स्तोत्रों से युक्त सोम के लिए गाओ।

८. अध्वर्युओ, शत्रु-निवारण-समर्थ, मधुर रस देनेवाले, हरित-वर्ण और दीप्तिमान् सोम को पत्थरों से, इन्द्र के पान के लिए, अभिषुत करो।

९. सोम, बलशाली, सारे शत्रु-धनों के नेता तुम्हारे सख्य का हम संभजन करते हैं।

१०. अभीष्ट-फल-वर्धक सोम, धारा-रूप से द्रोण-कलश में आओ। आकर इन्द्र और मरुतों के लिए मदकर होओ। सोम, तुम आत्म-बल से युक्त होकर स्तोताओं को धन देते हुए मादयिता होओ।

११. पवमान सोम, द्यावापृथिवी के धारक, स्वर्ग के द्रष्टा, देवों के दर्शनीय और बली तुम्हें मैं युद्ध-भूमि में भेज रहा हूँ।

१२. सोम, तुम हमारी अँगुलियों के द्वारा उत्पन्न (निर्गत), अभिषुत और हरित-वर्ण हो द्रोण-कलश में आओ। अपने मित्र इन्द्र को संग्राम में भेजो।

१३. सोम, दीपनशील तुम विश्व-प्रकाशक हो। हमें प्रचुर अन्न दो। पवमान सोम हमारे लिए स्वर्ग-मार्ग के सूचक होओ।

१४. क्षरणशील सोम, अभिषव-काल में बल से युक्त तुम्हारी, धाराओं-वाले द्रोण-कलश में, स्तोताओं के द्वारा, स्तुति होती है। अनन्तर तुम इन्द्र के पान के लिए आओ और चमसों में पैठो।

१५. सोम, तुम्हारे मदकर और क्षिप्र मद-दाता रस को पत्थरों से अध्वर्यु आदि दुहते हैं। पापियों के घातक होकर तुम क्षरित होओ।

१६. मनुष्यों के यज्ञ करने पर राजा सोम आकाश-मार्ग से द्रोण-कलश के प्रति जाने के लिए स्तुत हो रहे हैं।

१७. क्षरणशील सोम, हमारी रक्षा के लिए हमें सैकड़ों और सहस्रों गौओं से युक्त, गौ आदि के लिए पुष्टिकर, शोभन अश्वों से सम्पन्न और स्तुत्य धनदान करो।

१८. सोम, तुम देवों के पान के लिए अभिषुत हो। शत्रु-हनन-समर्थ बल और सर्वत्र प्रकाश के लिए रूप भी हमें दो।

१९. सोम, जैसे श्येन पक्षी शब्द करते हुए अपने घोंसले में आता है, वैसे ही क्षरणशील और दीप्तिमान् सोम शब्द करते हुए दशापवित्र से द्रोण-कलश में जाते हैं।

२०. वसतीवरी नामक जल के संभक्ता सोम इन्द्र, वायु, वरुण, विष्णु और अन्यान्य देवों के लिए बहते हैं।

२१. सोम, तुम हमारे पुत्र को अन्न देते हुए सर्वत्र सहस्र-संख्यक धन हमें दो।

२२. जो सोम दूर अथवा समीप के देश में इन्द्र के लिए अभिषुत हुए हैं और जो कुरुक्षेत्र के निकट शर्यणावत् नामक सरोवर में अभिषुत हुए हैं, वे हमें अभिमत फल दें।

२३. जो सोम आर्जीक (देश वा व्यास नदी ?) में अभिषुत हुए हैं, जो कृत्व (कर्मनिष्ठ) देश, सरस्वती नदी के तट पर और पंजचन (पंजाब व चार वर्ण और निषाद) में प्रस्तुत हुए हैं, वे हमें अभीष्ट प्रदान करें।

२४. वे सारे अभिषुत, दीप्त चमसों में क्षरणशील सोम, आकाश से वृष्टि और शोभनवीर्यवाले पुत्र तथा धन आदि हमें दें।

२५. देवाभिलाषी, हरितवर्ण, गोचर्म के ऊपर प्रेरित और जमदग्नि ऋषि के द्वारा स्तुत सोम पात्र में जाते हैं।

२६. जैसे जल में ले जाकर अश्वों को मार्जित किया जाता है, वैसे ही दीप्त, अन्नप्रेरक और क्षीर आदि में मिलाये जाकर सोम वसतीवरी में पुरोहितों के द्वारा मार्जित किये जाते हैं।

२७. सोमाभिषव हो जाने पर ऋत्विक् लोग इन्द्रादि देवों के लिए तुम्हें पत्थरों से प्रेरित करते हैं। तुम अभिषुत होकर, प्रदीप्त धारा से, द्रोण-कलश में आओ।

२८. सोम, तुम्हारे सुखकर, धनादि-प्रापक, शत्रुओं से रक्षक और बहुतों के द्वारा अभिलषणीय बल को हम याज्ञिक, आज के यज्ञ में, भजते हैं।

२९. सोम, मदकर, स्वीकरणीय, मेधावी, बुद्धिशाली, स्तुति-युक्त सर्व-रक्षक और अनेकों के द्वारा स्पृहणीय तुम्हारा भजन हम करते हैं।

३०. शासन-यश सोम, हम तुम्हारे धन का आश्रय करते हैं। हमारे पुत्रों में तुम धन और सुन्दर ज्ञान दो। हम सर्व-रक्षक और बहुतों के द्वारा अभिलषित तुम्हारा आश्रय करते हैं।

६६ सूक्त

(देवता अग्नि और पवमान। ऋषि शत वैखानस। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. सूक्ष्मदर्शक सोम, तुम सखा और स्तोतव्य हो। हम तुम्हारे सखा हैं। हमारे लिए सारे कर्मों और स्तोत्रों को लक्ष्य कर क्षरित होओ।

२. पवमान सोम, तुम्हारे जो दो टेढ़े पत्ते (व किरण और सोमरस) हैं, उनसे तुम सारे संसार के स्वामी होते हो।

३. शोधित और क्रान्तकर्मा सोम, तुम्हारा तेज (वा पत्र) चारों ओर है। उससे तुम बसन्त आदि ऋतुओं में सर्वत्र सुशोभित होते हो।

४. सोम, तुम हमारे सखा हो। हमारे सारे स्तोत्रों की ओर ध्यान देकर, हम मित्रों के रक्षण के लिए, अन्न देने को आओ।

५. तेजस्वी तुम्हारी सर्वत्र ज्वलनशील और पूजनीय किरणें पृथिवी पर जल का विस्तार करती हैं।

६. ये गंगा आदि सात नदियाँ तुम्हारी आज्ञा का अनुगमन करती हैं। तुम्हारे लिए ही गायें, दुग्ध आदि देने को, दौड़ती हैं।

७. सोम, तुम इन्द्र के लिए मदकर और हमारे द्वारा अभिषुत हो। दशापवित्र से निकलकर द्रोण-कलश में जाओ। हमें प्रचुर धन दो।

८. सोम, स्तुति करते हुए सात होत्रक लोगों ने देवों के सेवक यजमान के यज्ञ में मेधावी और क्षरणशील तुम्हारी स्तुति की।

९. सोम, अँगुलियाँ शीघ्र बनें, शब्दवाले और मेषलोम से बनाये दशापवित्र पर तुम्हें तब गारती (शोधित करती) हैं, जब तुम शब्द करते हुए वसतीवरी नामक जल से सिञ्चित होते हो।

१०. क्रान्तप्रज्ञ और अन्नवान् सोम, जैसे, अश्व अन्न लाने के लिए दौड़ते हैं, वैसे ही यजमानों के अन्न की कामना करनेवाली तुम्हारी धाराएँ दौड़ती हैं।

११. मधुर रस बरसानेवाले द्रोण-कलश को लक्ष्य करके मेषलोममय दशापवित्र पर पुरोहितों के द्वारा सोम बनाये जाते हैं। हमारी अँगुलियाँ सोमों के शोधन की इच्छा करती हैं।

१२. जैसे दुग्ध देकर मनुष्यों को आनन्द देनेवाली धेनुएँ और नव-प्रसूता गायें अपने गोष्ठ को जाती हैं, वैसे ही क्षरणशील सोम अपने संगमन-स्थान द्रोण-कलश की ओर जाते हैं। सोम यज्ञ-स्थान की ओर जाते हैं।

१३. सोम, जब तुम दुग्ध आदि में मिलाये जाते हो, तब हमारे यज्ञ के लिए क्षरणशील जल (वसतीवरी) जाता है।

१४. पूजाभिलाषी और तुम्हारे बन्धु-कर्म में स्थित हम तुम्हारे रक्षण में हैं और तुम्हारे बन्धुत्व की कामना करते हैं।

१५. सोम, अङ्गिरा लोगों की गायें खोजनेवाले, महान् और मनुष्य-दर्शक इन्द्र के लिए बहो तथा इन्द्र के उदर में पैठो।

१६. सोम, तुम महान् हो। तुम देवों के आनन्ददाता और प्रशंसनीय हो। सोम, उग्र बलवालों में भी तेजस्वी हो। शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुए उनके धन को तुमने जीता।

१७. सोम बलियों में बली, शूर में शूर और दाताओं में महान् दाता हैं।

१८. सोम, तुम सुन्दर वीर्यवाले हो। तुम यज्ञों के प्रेरक हो। हमें अन्न दो। पुत्र दो। तुम्हारी मैत्री के लिए हम तुम्हारा आश्रय करते हैं। शत्रु-बाधा को दूर करने के लिए हम तुम्हारा आश्रय करते हैं।

१९. पवमान सोम, तुम हमारे जीवन की रक्षा करते हो। हमें अन्न-रस और अन्न दो। राक्षसों को हमसे दूर ही नष्ट करो।

२०. चारों वर्ण और निषाद के हितैषी, ऋषि, पवित्र, पुरोहित और महायशस्वी अग्नि से हम धनादि की याचना करते हैं।

२१. अग्नि, शोभनकर्मा तुम हमें सुन्दर बलवाला तेज दो। पुत्र और गौ आदि भी दो।

२२. पवमान सोम शत्रुओं का अतिक्रम करते हैं। वे स्तोताओं की शोभन स्तुति को प्राप्त करते हैं। वे सूर्य के समान सबके दर्शनीय भी हैं।

२३. मनुष्यों के द्वारा बार-बार शोध्यमान सोम देवों के पास निरन्तर जाते हैं। वे आनन्दप्रद अन्नवाले हैं। वे हवि के लिए हितैषी हैं। वे सबके द्रष्टा हैं।

२४. क्षरणशील सोम ने काले अन्धकार को नष्ट करते हुए, प्रचुर, सर्वत्र व्यापक, दीप्तिमान् और श्वेतवर्ण तेज उत्पन्न किया।

२५. बार-बार अन्धकार का विनाश करनेवाले, हरित-वर्ण, व्यापक तेजवाले और क्षरणशील सोम की आनन्ददायिनी, शीघ्रकारिणी और वहनशील धारायें दशापवित्र से निकल रही हैं।

२६. पवमान सोम, अतीव रथवाले, निर्मलतम यशवाले, हरित-धारावान् और मरुतों की सहायता से युक्त हैं। अपनी किरणों से सारे विश्व को व्याप्त करते हैं।

२७. पवमान, अन्नदाता और स्तोता को सुन्दर वीर्य से युक्त पुत्र देते हुए सोम अपनी किरणों से सारे संसार को व्याप्त करते हैं।

२८. क्षरणशील सोम मेषलोममय पवित्र को लाँघ कर क्षरित हुए। पवित्र से शुद्ध होकर सोम इन्द्र के पेट में पैठें।

२९. किरण-रूप सोम गोचर्म के ऊपर पत्थरों के साथ क्रीड़ा करते हैं। मद के लिए सोम ने इन्द्र को बुलाया।

३०. क्षरणशील सोम, द्युलोक से श्येन-रूपिणी गायत्री से लाये गये और यशोयुक्त सोम, रस-रूप अन्न तुम्हारे पास है। उससे हमें, चिर जीवन के लिए, आनन्दित करो।

६७ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज, मारीच कश्यप, रहूगण गोतम, भौम अत्रि, गाथिन विश्वामित्र, भार्गव जमदग्नि, मैत्रावरुणि वसिष्ठ, आङ्गिरस पवित्र। छन्द गायत्री, पुर उष्णिक् और अनुष्टुप्।)

१. क्षरणशील सोम, तुम अतीव मदकर, अत्यन्त ओजस्वी, हिंसा-शून्य यज्ञ में अभिषव-धारा की इच्छा करनेवाले और स्तोताओं को धन देनेवाले हो। द्रोण-कलश में धारा-रूप से गिरो।

२. कर्म-निष्ठ पुरुहितों को तुम प्रमत्त करनेवाले हो। उन्हें धन देते हुए यज्ञ के धारक, प्राज्ञ और अभिषुत तुम अन्न के साथ इन्द्र के लिए अतीव प्रमत्तकर बनो।

३. पवमान सोम, पत्थरों से कूटे जाकर तुम शब्द करते हुए कलश की ओर जाओ और दीप्तियुक्त तथा शत्रुशोषक बल भी प्राप्त करो।

४. पत्थरों से कूटे जाकर सोम मेषलोममय पवित्र से निकलकर जाते हैं और हरित-वर्ण, सोम अन्न से कहते हैं कि, "मैं तुम्हारे साथ इन्द्र को बुलाता हूँ।"

५. सोम, जब तुम मेष लोममय पवित्र (दशापवित्र) से निकलते हो, तब हविरूप अन्न, सौभाग्य (धन) और गोयुक्त बल प्राप्त करते हो।

६. पात्रों में गिरनेवाले सोम, हमारे लिए सौ गायें, सहस्र अश्व और धन दो।

७. मेषलोममय पवित्र से निकलकर कलश की ओर अनेक धाराओं से गिरते हुए और शीघ्र मदकारी सोम चमस आदि को व्याप्त करते हुए अपनी गति से इन्द्र को परिव्याप्त करते हैं।

८. सोम सबसे उन्नत हैं। वे पूर्वजों के द्वारा अभिषुत सोम सर्वग इन्द्र के लिए कलश में जाते हैं और इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं।

९. कार्य करने के लिए इधर-उधर जानेवाली अँगुलियाँ मथकर रस को गिरानेवाले, यागादि कर्म के प्रेरक और क्षरणशील सोम को प्रेरित करती हैं। स्तोता लोग स्तोत्र के द्वारा इनकी भली भाँति स्तुति करते हैं।

१०. पूषा देवता का वाहन अज (बकरा) अथवा अश्व है। पूषा देवता हमारी सारी यात्राओं में रक्षक रहें। वे हमें कमनीय स्त्री (कन्या) दें।

११. कपर्दी (कल्याण मुकुटवाले) पूषा के लिए हमारे सोम, मादक घृत के समान, क्षरित होते हैं। वे हमें कमनीय स्त्री (कन्या) दें।

१२. सर्वत्र दीप्तिमान् पूषन्, तुम्हारे लिए अभिषुत सोम, शुद्ध घृत के समान क्षरित होते हैं।

१३. सोम, तुम स्तोताओं के स्तोत्र के जनक हो। तुम द्रोण-कलश को प्राप्त करो। देवों के लिए तुम रत्न आदि के दाता हो।

१४. अभिषुत सोम उसी प्रकार शब्द करते हुए द्रोण-कलश की ओर जाते हैं, जैसे श्येन पक्षी (बाज) अपने घोंसले को जाता है।

१५. सोम तुम्हारा अभिषुत रस, सर्वत्रगन्ता, श्येन पक्षी के समान चमसों में फैलता है।

१६. सोम, तुम अतीव मधुर रसवाले और मादक हो। इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए आओ।

१७. अन्नवान् और अभिषुत सोम को देवों के लिए ऋत्विक् लोग देते हैं। ये सोम रथ के समान शत्रुओं की सम्पत्ति का हरण करनेवाले हैं।

१८. अतीव मदकर, दीप्त और अभिषुत सोम ने सोमरस के पान के लिए वायु को बनाया।

१९. सोम, तुम पत्थरों से अभिषुत होकर स्तोता को शोभन शक्तिवाले धन आदि देते हुए दशापवित्र की ओर जाते हो।

२०. पत्थरों से अभिषुत और सबके द्वारा स्तुत सोम राक्षसों के बधिक हों। मेषलोममय दशापवित्र को लाँघकर वे द्रोणकलश में जाते हैं।

२१. क्षरणशील सोम, जो भय दूर में है, जो पास में है और जो यहाँ है, उसे भली भाँति विनष्ट करो।

२२. सबके द्रष्टा, क्षरणशील और दशापवित्र के द्वारा शोधित सोम हमें पवित्र करें।

२३. क्षरणशील अग्नि, तुम्हारी जो तेज के बीच में शुद्धिकर सामर्थ्य है, उससे हमारे पुत्रादि वर्द्धक शरीर को पवित्र करो।

२४. अग्नि, तुम्हारा जो शोधक और सूर्य आदि के तेज से युक्त तेज है, उससे हमें पवित्र करो। सोमाभिषव से हमें पवित्र करो।

२५. सबके प्रेरक और प्रकाशमान सोम, तुम अपने पाप-शोधक तेज और अभिषव से चारों ओर से मुझे पवित्र करो।

२६. देव, सबके प्रेरक और क्षरणशील अग्नि, तुम वृद्धतम और सामर्थ्यवाले तीन (अग्नि, वायु और सूर्य के) शरीरों से शुद्ध करो।

२७. इन्द्रादि देव मुझे पवित्र करें। वसु देवता हमें अपने कर्मों से पवित्र करें। सब देवता मुझे पवित्र करें। जात-बुद्धि अग्नि, मुझे पवित्र करो।

२८. सोम हमें भली भाँति बढ़ाओ। अपनी सारी किरणों से देवों को उत्तम हविरूप सोमरस दो।

२९. सोम, सबको प्रसन्न करनेवाले, शब्द करनेवाले, तरुण, आहुतियों के द्वारा वर्द्धनीय और क्षरणशील हैं। नमस्कार करते हुए उनके पास हम जाते हैं।

३०. सबके आक्रमणकारी शत्रु का परशु नष्ट हो। दीप्यमान सोम, हमारे लिए क्षरित होओ। सबके हन्ता उस शत्रु को मारो।

३१. जो मनुष्य पवमान सोम देवता के ऋषियों के द्वारा सम्पादित वेदरसरूप सार (सूक्त-समूह) को पढ़ता है, वह ऐसे पाप-शून्य अन्न का भक्षण करता है, जिससे वायुदेव पवित्र कर चुके हैं।

३२. जो ब्राह्मण पवमान सोम देवता के ऋषियों के द्वारा सम्पादित

वेदरसरूप सार (सूक्त-समूह) को पढ़ता है, उसके लिए सरस्वती (वाग्-देवता) स्वयं क्षीर, घृत और मदकर सोम का दोहन करती हैं।

६८ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि भलन्दन-पुत्र वत्सप्रि। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. आनन्ददायिनी गौओं के समान मादक सोम इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं। "हम्बा" शब्द करती हुई और कुशों पर बैठी हुई दुग्धदात्री गायें चारों ओर बहनेवाले और शुद्ध सोमरस को, इन्द्र के लिए, धारण करती हैं।

२. शब्द करते और स्तोताओं की मुख्य स्तुतियों को सुनते हुए हरित-वर्ण सोम ऊपर चढ़नेवाली ओषधियों (लताओं) को फलसंयुक्ता करके स्वादिष्ठ करते और मेषलोममय दशापवित्र से होकर बड़े वेग से बहते हैं। वे राक्षसों को मारते हैं। अनन्तर सोमदेव यजमानों को श्रेष्ठ धन देते हैं।

३. सोम ने साथ रहनेवाली द्यावापृथिवी को बनाया। उन्हें वर्द्धनशील और सामर्थ्यवाली करने के लिए सोम ने अपने रस से सींचा। महती और असीम द्यावापृथिवी को ज्ञात कराकर और चारों ओर जाते हुए सोम ने अविनाशी बल प्राप्त किया।

४. प्राज्ञ सोम द्यावापृथिवी में विचरण करते हुए और अन्तरिक्ष के जल को भेजते हुए अन्न के साथ, अपने स्थान (उत्तर वेदी) को आप्यायित करते हैं। अनन्तर ऋत्विकों के द्वारा सोम जौ में (जौ के सत्तू में) मिलाये जाते हैं। वे अँगुलियों का समागम पाते और प्राणियों की रक्षा करते हैं।

५. प्रवृद्ध मन से कार्य-कुशल सोम पृथिवी पर जन्म ग्रहण करते हैं। सोम यज्ञ में स्तुत्य हैं। वे देवों के द्वारा नियम से रक्खे गये हैं—सूर्य-रूप से अवस्थित हैं। युवा सोम और सूर्य उत्पत्तिकाल में विशेष रूप से जन्म ग्रहण करते हैं। उनमें एक गुहा में संस्थापित हैं; दूसरे प्रकाशित होते हैं।

६. विद्वान् लोग मदकर सोमरस का स्वरूप जानते हैं। सोम-रूप अन्न को (प्राण-दायिनी शक्ति को) गायत्री-रूप पक्षी दूर—द्युलोक से लाया

था। वैसे भली भाँति वर्द्धमान, किरण-रूप, देवकामी, चारों ओर जानेवाले और स्तुत्य सोम को ऋत्विक् लोग वसतीवरी-जल में परिमार्जित करते हैं।

७. सोम, दोनों हाथों से उत्पन्न, ऋषियों के द्वारा पात्र में निहित और अभिषुत तुम्हें दस अँगुलियाँ स्तुतियों और कर्मों के द्वारा मेषलोममय पवित्र (चलनी) पर परिमार्जित करती हैं। देवों को बुलानेवाले कर्म-निष्ठ ऋत्विकों के द्वारा गृह में संगृहीत तुम स्तोताओं को अन्न देते हो।

८. पात्रों में चारों ओर जाते हुए, देवों के द्वारा अभिलषित और शोभन स्थानवाले सोम की मनोगत स्तुतियाँ स्तोत्र करती हैं। मदकर रसवाले सोम, वसतीवरी-जल के साथ, आकाश से द्रोण-कलश में गिरते हैं। शत्रु-धन को जीतनेवाले और अमर सोम वचन को प्रेरित करते हैं।

९. सोम द्युलोक से समस्त जल दिलाते हैं। फिर वे दशापवित्र में शोधित होकर कलश में जाते हैं। वे पत्थरों, वसतीवरी जल और दुग्ध आदि से अलंकृत होते हैं। अनन्तर अभिषुत और शोधित सोम प्रिय और श्रेष्ठ धन स्तोताओं को देते हैं।

१०. सोम, दाता तुम परिषिक्त होकर नानाविध अन्न हमें दो। द्वेष-शून्य द्यावापृथिवी को हम पुकारते हैं। देवो, हमें वीर पुत्र से युक्त धन दो।

६९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आंगिरस हिरण्यस्तूप। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. जैसे धनुष पर वाण रक्खा जाता है, वैसे ही हम पवमान-रूप इन्द्र में मननीय स्तुति को रखते हैं। जैसे बछड़ा गोरूप माता के पयोधर स्तन के साथ सृष्ट हुआ है, वैसे ही इन्द्र के मद के लिए हम सोम को बनाते हैं। जैसे दुग्धदायिनी धेनु बछड़े के आगे दूध देने को जाती है, वैसे ही स्तोताओं के आगे इन्द्र आते हैं। इन्द्र के कर्मों में सोम दिया जाता है।

२. इन्द्र के लिए स्तोता लोग स्तुति करते हैं। इन्द्र के लिए मदकर सोम का सिञ्चन किया जाता है (सोम में जौ का सत्तू मिलाया जाता है)।

मदकर रसवाली सोम धारा इन्द्र के मुख में डाली जाती है। गृहादि में भली भाँति विस्तृत, मदकर रसवाले, क्षरणशील और गति-परायण सोम वैसे ही मेषलोममय पवित्र में जाते हैं, जैसे सुचतुर योद्धाओं का बाण फेंका जाकर शीघ्र ही नियत स्थान को पहुँच जाता है।

३. जिस वसतीवरी-जल में सोम शोधित व मिश्रित किये जाते हैं, वह उनकी स्त्री के तुल्य है। उसी वधू से मिलने के लिए सोम मेषचर्म पर क्षरित होते हैं। सत्यरूप यज्ञ में जाकर सोम अदीन पृथिवी पर उत्पन्न (अपत्य-रूप) ओषधियों को अग्रभाग में यजमान के लिए फलयुक्त करते हैं। हरित-वर्ण, सबके यजनीय और गृहों में संगृहीत सोम शत्रुओं को लाँघ जाते हैं। सर्वत्र व्यापक के समान सोम शत्रु-बल को न्यून करके अपने तेज से शोभित होते हैं।

४. वर्षक सोम शब्द करते हैं। जैसे देवता के संस्कृत स्थान पर देवी जाती हैं, वैसे ही सोम के पीछे गायें जाती हैं। सोम श्वेतवर्ण और मेषलोम-मय पवित्र को लाँघते हैं। सोम उज्ज्वल कवच के समान दुग्ध आदि के द्वारा अपने शरीर को ढकते हैं।

५. अमर और हरित-वर्ण सोम जल से शोधित होते समय स्वयं शुभ्र पयो-वस्त्र से चारों ओर आच्छादित होते हैं। सोम ने द्युलोक की पीठ पर रहनेवाले सूर्य को, पाप-नाशक शोधन के लिए, द्युलोक में स्थापित किया। सबके शोधन के लिए द्यावापृथिवी के ऊपर आदित्य तेज को स्थापित किया।

६. सुवीर्य आदित्य की सर्व-व्यापक किरणों के समान सर्वत्र बहनेवाले, मदकर, शत्रु-घातक चमसों में व्याप्त और बनाये जानेवाले सोम सूतों से बने विस्तृत वस्त्रों के साथ चारों ओर जाते हैं। वे इन्द्र को छोड़कर अन्य देव के लिए नहीं क्षरित होते।

७. ऋत्विकों के द्वारा अभिषुत और मदकर सोम स्तुत्य इन्द्र को उसी तरह प्राप्त करते हैं, जिस तरह नदियाँ समुद्र को जाती हैं। सोम हमारे गृह में पुत्रादि और गवादि को सुख दो। सोम, हमें अन्न और पुत्रादि दो।

८. सोम, हमें वसु, हिरण्य, अश्व, गौ, जौ और शोभन वीर्य से युक्त धन दो। सोम, तुम मेरे पितरों के भी पिता हो; इसलिए तुम मेरे द्युलोक के उन्नत प्रदेश (स्वर्गादि) पर स्थित कर्म-निष्ठ और हविरूप अन्न के कर्त्ता पितर हो।

९. जैसे इन्द्र के रथ संग्राम में जाते हैं, वैसे ही हमारे शोधित सोम आश्रय-स्थल इन्द्र की ओर जाते हैं। पत्थरों से अभिषुत सोम मेषलोममय पवित्र को लाँघते हैं और हरित-वर्ण सोम बुढ़ापे को मारकर (तरुण होकर) वृष्टि को भेजने को (बरसने को) जाते हैं।

१०. सोम, तुम महान् इन्द्र के लिए क्षरित होओ। तुम इन्द्र को सुख देनेवाले, अनिन्द्य और शत्रुओं को हरानेवाले हो। मुझ स्तोता को आह्लादक धन दो। द्यावापृथिवी, उत्तम धनों से हमारी रक्षा करो।

७० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि विश्वामित्रगोत्रज रेणु। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. प्राचीन यज्ञ में स्थित सोम के लिए इक्कीस गायें क्षीर दुहती हैं (उत्पन्न करती हैं)। जब यज्ञों के द्वारा सोम वर्द्धित किये गये, तब उन्होंने चार सुन्दर जलों (वसतीवरी आदि) को परिशोधन के लिए बनाया।

२. यज्ञकर्त्ता यजमानों के द्वारा सुन्दर जल माँगने पर सोम ने द्यावा-पृथिवी को जल से पूर्ण किया। सोम अपनी महिमा से अतीव दीप्त जल को ढकते हैं। हविर्युक्त होकर ऋत्विक् लोग प्रकाशमान सोम के स्थान को जानते हैं।

३. सोम की प्रज्ञापक, अमर और अहिंसनीय किरणें स्थावर-जङ्गम की रक्षा करें। उन्हीं किरणों के द्वारा सोम बल और देव-योग्य अन्न देते हैं। अभिषव के अनन्तर ही राजा सोम को भजनीय स्तुतियाँ प्राप्त करती हैं।

४. शोभन कर्मवाली दस अँगुलियों से शोधित होकर सोम लोकों के निरीक्षण के लिए अन्तरिक्षस्थ मध्यमा वाग् में रहते हैं। मनुष्यदर्शक और

क्षरणशील सोम सुन्दर जल के बरसने के लिए, यज्ञादि की रक्षा करते हुए, अन्तरिक्ष से मनुष्यों और देवों को देखते हैं।

५. इन्द्र के बल के लिए पवित्र-द्वारा शोधित और द्यावापृथिवी के बीच में वर्तमान सोम चारों ओर जाते हैं। जैसे वीर शत्रुओं को बाणों से मारता है, वैसे ही सोम दुःखद असुरों को बार-बार ललकारते हुए शोषक बल से दुर्बुद्धि असुरों को मारते हैं।

६. मातृ-भूत द्यावापृथिवी को बार-बार देखते हुए और शब्द करते हुए सोम उसी प्रकार सर्वत्र जाते हैं, जिस प्रकार बछड़ा गाय को देखकर शब्द करते हुए जाता है और मरुद्गण शब्द करते हुए जाते हैं। जो जल मनुष्यों का कल्याणकारक है, उस मुख्य जल को जानते हुए शोभनकर्मा और क्षरणशील सोम, अपने स्तोत्र के लिए, मुझे छोड़कर, किस मनुष्य का वरण करेंगे?

७. शत्रुओं के लिए भयंकर, जल-वर्षक, सबके वर्द्धक और क्षरणशील सोम अपने बल की इच्छा से दो हरितवर्ण की सींगों (धाराओं) को तेज करते हुए शब्द करते हैं। अनन्तर सोम अपने स्थान द्रोण-कलश में बैठते हैं। सोम के शोधक मेषचर्म और गोचर्म हैं।

८. पात्र में स्थित, अपने शरीर का शोधन करते हुए, पवित्र और हरितवर्ण सोम उन्नत होकर मेषलोममय दशापवित्र में रक्खे जाते हैं। अनन्तर मित्र, वरुण और वायु के लिए पर्याप्त जल, दधि तथा दुग्ध से मिश्रित और मदकर सोम शोभनकर्मा ऋत्विकों के द्वारा प्रदत्त होते हैं।

९. सोम, तुम जल-वर्षक हो। देवों के पान के लिए क्षरित होओ। सोम, तुम इन्द्र के प्रियकर पात्र में पैठो। हमें पीड़ा देने के पहले ही दुर्गम राक्षसों के हाथों से हमें बचाओ। मार्गज्ञाता पुरुष मार्ग-जिज्ञासु को जैसे मार्ग बता देता है, वैसे ही यज्ञमार्गज्ञाता तुम हमें यज्ञ-पथ बताकर रक्षा करो।

१०. जैसे भेजा गया घोड़ा युद्ध-भूमि को जाता है, वैसे ही ऋत्विकों के द्वारा प्रेरित होकर तुम द्रोण-कलश में जाओ। अनन्तर, हे सोम, इन्द्र

के जठर को सींचो। जैसे नाविक नौकाओं से मनुष्यों को नदी पार कराते हैं, वैसे ही सब जाननेवाले तुम हमें पापों के पार ले जाओ। शूर के समान शत्रुओं को मारते हुए निन्दक शत्रु से हमें बचाओ।

७१ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि विश्वामित्रगोत्रीय ऋषभ। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. यज्ञ में ऋत्विकों को दक्षिणा दी जाती है। बलवान् सोम द्रोण-कलश में पैठ रहे हैं। जागरणशील सोम द्रोही राक्षसों से स्तोताओं को बचाते हैं। सोम आकाश को जल-धारक बनाते हैं। द्यावापृथिवी के अन्धकार-विनाश के लिए सोम सूर्य को द्युलोक में सुदृढ़ किये हुए हैं।

२. शत्रुहन्ता योद्धा के समान बलवान् सोम शब्द करते हुए जाते हैं। सोम अपने असुर-बाधक बल को प्रकट करते हैं। सोम बुढ़ापा छोड़ रहे हैं। पीने का द्रव्य होकर सोम संस्कृत द्रोण-कलश में जा रहे हैं। मेषलोममय पवित्र में अपने गतिपरायण रूप को स्थापित कर रहे हैं।

३. पत्थरों और बाहुओं से अभिषुत सोम पात्रों में जाते हैं। सोम वृष के समान आचरण करते हैं। स्तोत्र से स्तुत होकर अन्तरिक्ष में सर्वत्र जाते हुए सोम प्रसन्न होते हैं। वे पात्रों में जाते हैं। स्तुत होकर वे स्तोताओं को धन देते हैं। जल से शोधित होते हैं। देवों को जिस यज्ञ में हवि दिया जाता है, उसमें पूजित होते हैं।

४. मदकर सोम दीप्त द्युलोक में रहनेवाले, मेघों के वर्द्धक और शत्रु-पुर के नाशक इन्द्र को सींचते हैं। हवि को भक्षण करनेवाली गायें अपने उन्नत स्तन में स्थित दुग्ध को, अपनी महिमा के द्वारा, इन्द्र को देती हैं।

५. बाहुओं की दस अँगुलियाँ यज्ञ-देश में सोम को वैसे ही भेज रही हैं, जैसे रथ को भेजा जाता है। गाय का दूध भी उसी समय जाता है, जिस समय मननीय स्तोत्रवाले इस सोम के स्थान को बनाते हैं।

६. जैसे श्येन पक्षी अपने घोंसले को जाता है, वैसे ही प्रकाशमान और पवमान सोम अपने कर्म-द्वारा निर्मित और सुवर्णमय गृह को जाते हैं। स्तोता लोग यज्ञ में प्रिय सोम की स्तुति करते हैं। यजनीय सोम, अश्व के समान, देवों के पास जाते हैं।

७. शोभन, क्रान्तप्रज्ञ और जल से विशेष रूप से सिक्त सोम पवित्रता से कलश में जाते हैं। सोम वृषभ (मनोरथपूरक) हैं। वे तीनों सवनों में रहनेवाले (त्रिपृष्ठ) हैं। वे स्तुति को लक्ष्य करके शब्द करते हैं। वे नाना पात्रों में आते-जाते हैं। वे अनेक उषाओं में शब्द करते हुए सुशोभित होते हैं।

८. शत्रु-निवारक सोम-किरण अपने रूप को प्रदीप्त करती है। वह युद्ध-भूमि में रहती है। वह युद्ध में शत्रुओं को मारती है। वह जलदाता है। वह हवीरूप अन्न के साथ देव-भक्त के पास जाती है। वह स्तुति से मिलती है। जिन वाक्यों से स्तोता पशुओं से प्रार्थना करते हैं, उनसे सोम मिलित होता है।

९. जैसे साँड़ गायों को देखकर बोलता है, वैसे ही स्तुतियाँ सुनकर सोम शब्द करते हैं। वे सूर्य-रूप से द्युलोक में रहते हैं। सोम द्युलोकोत्पन्न और शोभनगमन हैं। वे पृथिवी को देखते हैं। सोम परिज्ञान से प्रजागण को देखते हैं।

७२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरस हरिमन्त। छन्द जगती।)

१. ऋत्विक् लोग हरितवर्ण सोम का शोधन करते हैं। घोड़े के समान सोम की योजना की जाती है। कलश में अवस्थित सोम दूध में मिलाये जाते हैं। जब सोम शब्द करते हैं, तब स्तोता लोग स्तुति करते हैं। अनन्तर बहु-स्तोत्रयुक्त स्तोता के प्रिय सोम धन देते हैं।

२. विद्वान् स्तोता लोग उस समय एक साथ ही मंत्र पढ़ते हैं, जिस समय इन्द्र के जठर में ऋत्विक् लोग सोम का दोहन करते हैं और जिस

समय शोभन बाहुओंवाले कर्मनेता अभिलषणीय और मदकर सोम का, दस अँगुलियों से, अभिषव करते हैं।

३. देवों को प्रसन्न करने के लिए कलश आदि में जानेवाले सोम दूध आदि को लक्ष्य कर जाते हैं। उस समय सोम सूर्य-पुत्री उषा के श्रेष्ठ शब्द का तिरस्कार करते हैं। स्तोता सोम के लिए पर्याप्त स्तोत्र करता है। सोम दोनों बाहुओं से उत्पन्न, परस्पर मिलित और इधर-उधर जानेवाली अँगुलियों से मिलते हैं।

४. पवमान गुणवाले इन्द्र, कर्मनेताओं के द्वारा शोधित, पत्थरों से अभिषुत, देवों के प्रसन्नकर्त्ता, गोपति, प्राचीन, पात्रों में बहनेवाले, बहुकर्मवान्, मनुष्यों के यज्ञ-साधक और दशापवित्र से शुद्ध सोम अपनी धारा से, यज्ञ में, पात्रों में, तुम्हारे लिए, गिरते हैं।

५. इन्द्र, कर्मकर्त्ताओं की भुजाओं से प्रेरित और अभिषुत सोम तुम्हारे बल के लिए आते हैं। अनन्तर, तुम सोमपान करके, कर्मों को पूर्ण करते हो। तुम यज्ञ में शत्रुओं को भली भाँति विजित करते हो। जैसे पक्षी वृक्ष पर बैठता है, वैसे ही हरितवर्ण सोम अभिषवण-फलक पर बैठते हैं।

६. क्रान्तकर्मा और मनीषी ऋत्विक् शब्द करनेवाले और क्रान्तदर्शी सोम का अभिषव करते हैं। अनन्तर पुनः उत्पत्तिशील गायें और मननीय स्तुतियाँ, एक साथ होकर, सत्यरूप यज्ञ के सदन उत्तर वेदी पर इन सोम से मिलती हैं।

७. महान् द्युलोक के धारक, पृथिवी की नाभि—उन्नत स्थान—उत्तर वेदी पर—ऋत्विकों के द्वारा निहित, बहनेवाले जलसंघ के बीच सिक्त, इन्द्र के वज्रस्वरूप, कामवर्षक और व्यापक धनवाले सोम, मङ्गल के साथ, इन्द्र के मादयिता होकर मन से, सुख के लिए, क्षरित होते हैं।

८. सुन्दर कर्मवाले सोम, पार्थिव शरीरधारी मनुष्यों के लिए, शीघ्र गिरो। तुम्हारे तीनों सवन करनेवाले स्तोता को धन आदि दो। हमारे

गृह के पुत्रों और धनों को हमसे अलग नहीं करो। हम नानाविध सुवर्ण आदि सम्पदा को प्राप्त करें।

९. क्षरणशील सोम, हमें अनेकानेक, अश्व-सहित, हजार दानों से युक्त, पशु आदि से समन्वित और सुवर्ण से संवलित धन दो। सोम हमें बहुत दूध देनेवाली गायों से युक्त धन दो। क्षरणशील सोम, हमारे स्तोत्र को सुनने के लिए, आओ।

७३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरस पवित्र। छन्द जगती।)

१. यज्ञ के ओष्ठप्रान्त अभिषववाले सोम की किरणें ऊपर उठती हैं। यज्ञ के उत्पत्ति-स्थान में सोमरस ऊपर उठते हैं। बलवान् सोम तीनों लोकों को मनुष्य आदि के संचरण के योग्य बनाते हैं। सत्यभूत सोम की, नौका के समान, चार स्थालियाँ (आदित्य, आग्रयण, ऋथ्य और ध्रुव आदि चार याज्ञिक हाड़ियाँ वा थालियाँ) सुकृती यजमान की, अभिमत-फलदान-द्वारा, पूजा करती हैं।

२. प्रधान ऋत्विक् आपस में मिलकर, सोम को भली भाँति अभि-षुत कहते हैं। स्वर्गादि फल की कामना करनेवाले ऋत्विक् लोग बहनेवाले जल में सोम को भेजते हैं। पूजनीय स्तोत्र करते हुए स्तोताओं ने इन्द्र के प्रिय धाम को, मदकर सोम की धाराओं से, वर्द्धित किया।

३. शोधक शक्ति से युक्त सोम की किरणें माध्यमिकी वाक् के पास बैठती हैं अर्थात् अन्तरिक्ष में रहती हैं। उनके पिता सोम प्रकाशन-कर्म की रक्षा करते हैं। अपने तेज से आच्छादक सोम अपनी रश्मियों से महान् अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं। ऋत्विक् लोग जलके धारक जल में सोम का प्रारम्भ कर सकते हैं।

४. सहस्र धाराओंवाले अन्तरिक्ष में वर्तमान सोम किरणें नीचे स्थित पृथिवी को वृष्टि से युक्त करती हैं। द्युलोक के उन्नत देश में

वर्तमान, मधु जीभवाली, परस्पर सङ्गरहित कल्याणकर किरणें शीघ्रगामी रहती हैं—कभी पलक भी नहीं गिरातीं (दुष्ट-नाश के लिए सदा जागी रहती हैं)। इस प्रकार स्थान-स्थान पर रहकर किरणें पापियों को बाधा देती हैं।

५. सोम की जो किरणें द्यावापृथिवी से अधिक प्रादुर्भूत हुई हैं, वे ऋत्विकों के द्वारा की जाती स्तुति से प्रदीप्त होकर और कर्म-शून्यों को भली भाँति नष्ट कर इन्द्र के लिए काले चमड़ेवाले राक्षस को, ज्ञान-द्वारा, विस्तृत भूलोक और द्युलोक से दूर हटाती हैं।

६. स्तुति-नियत और क्षिप्रकारी सोमरश्मियाँ प्राचीन अन्तरिक्ष से एक साथ प्रादुर्भूत हुईं। नेत्रशून्य, असाधुदर्शी, देवस्तुति-विवर्जित और पापी नर उन रश्मियों (किरणों) का त्याग कर देते हैं। पापी मनुष्य सत्य मार्ग से नहीं तरते।

७. आप्तकर्मा और मनीषी ऋत्विक् लोग अनेक धाराओंवाले तथा विस्तृत पवित्र में वर्त्तमान सोम की माध्यमिकी वाक् की स्तुति करते हैं, जो मरुतों की माता (वाक्) की स्तुति करते हैं, उनके वचन का आश्रयण रुद्रपुत्र मरुत् करते हैं। वे आगमनशील, द्रोह-शून्य दूसरों के द्वारा अहिंसनीय, शोभन-गति सुदर्शन और कर्मनेता हैं।

८. सत्यरूप यज्ञ के रक्षक और शोभनकर्मा सोम से कोई दम्भ नहीं कर सकता। सोम अग्नि, वायु और सूर्य आदि के रूप तीन पवित्रों को अपने में धारण करते हैं। विद्वान् सोम सारे भुवनों को देखते हुए कर्म-भ्रष्टों को नीचे मुँह करके मारते हैं।

९. सत्यभूत यज्ञ के विस्तारक और मेषलोममय पवित्र में विस्तृत सोम वरुण की जीभ के आगे (वसतीवरी में) रहते हैं। कर्म-निष्ट लोग ही उन सोम को प्राप्त करते हैं। कर्मशून्य के लिए यह बात असम्भव है। कर्मशून्य नरक में जाता है।

७४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवान्। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. वसतीवरी-जल में उत्पन्न होकर सोम, शिशु के समान, नीचे मुँह करके रोते हैं। बली अश्व के समान गमनशील सोम स्वर्गलोक का आश्रय लेना चाहते हैं। गौओं और ओषधियों के रस के साथ सोम द्युलोक से पृथिवीलोक पर आना चाहते हैं। वैसे सोम से हम धनादि-युक्त गृह, शोभन स्तुति के साथ, माँगते हैं।

२. द्युलोक के स्तम्भ, धारक, सर्वत्र विस्तृत और पात्रों में पूर्ण सोम की किरणें चारों ओर जाती हैं। सोम महती द्यावापृथिवी को अपनी क्षमता के द्वारा योजित करें। सोम ने परस्पर मिलित द्यावापृथिवी को धारण किया। क्रान्तदर्शी सोम स्तोताओं को अन्न दें।

३. यज्ञ में आनेवाले इन्द्र के लिए संस्कृत सोमरस यथेष्ट मधुर रस-वाला खाद्य होता है। इन्द्रादि का पृथिवी-मार्ग भी विस्तीर्ण है। इन्द्र इस पृथिवी पर बरसनेवाली वर्षा के ईश्वर हैं। गौओं के हितैषी जल-वर्षक और यज्ञ-नेता इन्द्र इस यज्ञ में जाते हुए स्तुत्य होते हैं।

४. सोम आकाशरूप आदित्य से घृत और दुग्ध को दूहते हैं। सोम यज्ञ की नाभि हैं। उनसे ही अमृत और जल उत्पन्न होते हैं। सुन्दर दाता यजमान सोम परस्पर मिलकर इन सोम को प्रसन्न करते हैं। सर्व-रक्षक सोम-किरणें पृथिवी पर उपयोगी वर्षण करती हैं।

५. जल में ऋत्विकों के द्वारा मिलाये जाने पर सोम शब्द करते हैं। सोम अपने देव-पालक शरीर को पात्रों में प्रवाहित करते हैं। पृथिवी की ओषधियों में सोम, अपनी किरणों से, गर्भ धारण करते हैं। उस गर्भ से हम दुःख-विदारक पुत्र और पौत्र का धारण करते हैं।

६. अनेक धाराओंवाले, स्वर्ग में वर्त्तमान, परस्पर मिलित और प्रजावाली सोमकिरणें पृथिवी पर गिरती हैं। वे चार सोम-किरणें द्युलोक

के नीचे सोम के द्वारा स्थापित हैं। वे जल-वर्षक होकर देवों को हवि देती हैं और ओषधियों में अमृत देती हैं।

७. सोम पात्रों का रूप शुभ्र कर देते हैं। काम-सेचक और बली (असुर) सोम स्तोताओं को बहुत धन देते हैं। सोम अपनी प्रज्ञा के द्वारा प्रकृष्ट कर्म को प्राप्त करते हैं। अन्तरिक्ष के जलवान् मेघ को वे जल-वर्षण के लिए फाड़ते हैं।

८. सोम श्वेत और गोरस से युक्त द्रोणकलश को, अश्व के समान, लाँघते हैं। देवाभिलाषी ऋत्विक् लोग सोम के लिए स्तुति प्रेरित करते हैं। सोम बहुत चलनेवाले कक्षीवान् ऋषि के लिए पशु देते हैं।

९. शोधित सोम, जल में मिश्रित होकर तुम्हारा रस मेषलोममय दशापवित्र की ओर जाता है। मादक-श्रेष्ठ सोम, क्रान्तकर्मा ऋत्विकों के द्वारा शोधित होकर इन्द्र के पान के लिए प्रिय रसवाले बनो।

७५ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भार्गव कवि। छन्द जगती।)

१. अन्न के लिए सोम उपयोगी हैं। संसार के प्रिय और गमनशील जल के चारों ओर सोम क्षरित होते हैं। जल में महान् सोम बढ़ते हैं। महान् सोम महान् सूर्य के रथ के ऊपर चढ़ गये। सोम सबके द्रष्टा हैं।

२. सत्यरूप यज्ञ के प्रधान सोम प्रियकर और मदकर रस गिराते हैं। सोम शब्द करनेवाले, कर्मपालक और अवध्य हैं। द्युलोक के दीपक सोम का अभिषव होने पर पुत्र (यजमान) एक ऐसा नाम धारण करता है, जिसे उसके माता-पिता नहीं जानते।

३. दीप्तिमान् और ऋत्विकों के द्वारा सुवर्णमय अभिषवण-चर्म पर रखे गये सोम का, यज्ञ का दोहन करनेवाले ऋत्विक् लोग, अभिषव करते हैं। सोम कलश में शब्द करते हैं। तीन सवनोंवाले सोम यज्ञ-दिन में प्रातःकाल शोभा पाते हैं।

४. पत्थरों से अभिषुत, अन्न के हितैषी और शुद्ध सोम द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करके मेषलोममय पवित्र की ओर जाते हैं। जल-मिश्रित और मदकर सोम की धारा अनुदिन पवित्र पर प्रवाहित होती है।

५. सोम, कल्याण के लिए तुम चारों ओर जाओ। कर्म-निष्ठा के द्वारा शोधित होकर तुम क्षीर आदि में मिलो। वचनवाले, शत्रु-हन्ता, अभिषुत और महान् सोम प्रशस्य धन देनेवाले इन्द्र को हमारे पास भेजें।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

७६ सूक्त

(तृतीय अध्याय। देवता पवमान सोम। ऋषि भृगुगोत्रीय कवि। छन्द जगती।)

१. सोम सबके धारक हैं। वे अन्तरिक्ष (अन्तरिक्षस्थ दशापवित्र) से क्षरित होते हैं। सोम शोधनीय, रस-रूप देवों के बल, वर्द्धक-ऋत्विकों के द्वारा स्तुत्य, हरितवर्ण और प्राणियों के द्वारा बनाये जानेवाले हैं। वसतीवरी में घोड़े के समान वे अपने वेग को करते हैं।

२. वीर पुरुष के समान सोम दोनों हाथों में अस्त्र धारण करते हैं। गायों के खोजने के समय स्वर्ग की इच्छा करनेवाले सोम, यजमानों के लिए, रथवाले हुए थे। इन्द्र के बल का प्रेरण करनेवाले सोम कर्मेच्छु मेधावियों के द्वारा भेजे जाकर दूध आदि में मिलाये जाते हैं।

३. क्षरणशील सोम, वर्द्धिष्णु होकर इन्द्र के पेट में प्रचुर धारा से पैठो। जैसे बिजली मेघ का दोहन करती है, वैसे ही तुम अपने कर्मों के द्वारा द्यावापृथिवी का दोहन करके हमें बहुत अन्न देते हो।

४. विश्व के राजा सोम क्षरित होते हैं। सर्वदर्शक और सत्यभूत सोम वा इन्द्र का कर्म ऋषियों से भी श्रेष्ठ है। सोम ने इन्द्र के कर्म की इच्छा की। सोम सूर्य की क्षेपक किरणों से शोधित होते हैं। सोम के कर्म को कवि लोग नहीं व्याप्त कर सकते। सोम हमारी स्तुतियों के पालक हैं।

५. सोम, जैसे गोसमूह में साँड़ जाता है, वैसे ही तुम वर्षक शब्दकर्त्ता होकर और अन्तरिक्ष में अवस्थित रहकर द्रोण-कलश में जाते हो। मादकतम होकर तुम इन्द्र के लिए क्षरित होते हो। तुमसे रक्षित होकर हम युद्ध में विजयी होंगे।

७७ सूक्त

(दैवता पवमान सोम। ऋषि कवि। छन्द जगती।)

१. इन्द्र के वज्र, बीजों के बोनेवाले और मधुर रसवाले सोम द्रोण-कलश में शब्द करते हैं। उनकी धारायें फलों को दूहनेवाली, जल वा रस को बरसानेवाली, और शब्द करनेवाली हैं। दूधवाली गायों के समान वे जा रही हैं।

२. प्राचीन सोम क्षरित होते हैं। अपनी माता के द्वारा भेजा जाकर श्येन पक्षी द्युलोक से उन सोम को ले आया था। वे ही मधुर रसवाले सोम तीसरे लोक को अलग करते हैं। कृशानु नामक धनुर्धारी के बाण-पात से डरकर सोम, उद्विग्न, भाव से, मधुर रस के साथ मिश्रित होते हैं।

३. दर्शनीय स्त्रियों के समान रमणीय, हवि का सेवन करनेवाले, प्राचीन तथा आधुनिक सोम महान् गौवाले मुझे, अन्न-लाभ के लिए, प्राप्त करें।

४. बहुतों के द्वारा स्तुत, उत्तर वेदी में वर्त्तमान और क्षरणशील सोम मनोयोगपूर्वक हमारे मारनेवाले शत्रुओं को समझकर मारें। वे ओष-धियों में गर्भ धारण करते हैं। वे बहुत दूध देनेवाली गायों की ओर जाते हैं।

५. सबके कर्त्ता, कर्मठ, रसात्मक, अहिंसनीय और वरुण के समान महान् सोम इधर-उधर विचरण करते हैं। विपत्ति आने पर सबके मित्र और भजनीय सोम क्षरित किये जाते हैं। जैसे अश्व घोड़ियों के झुंड में जाता है, वैसे ही वर्षक सोम शब्द करते हुए क्षरित होते हैं।

७८ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कवि। छन्द जगती।)

१. शोभायमान सोम शब्द करते हुए और जल को आच्छादित करते हुए स्तुति की ओर जाते हैं। सोम का जो असार भाग है, उसे मेषलोममय दशापवित्र रख लेता है। शुद्ध होकर सोम देवों के संस्कृत स्थान को जाते हैं।

२. सोम, तुम्हें, इन्द्र के लिए, ऋत्विक् लोग ढालते हैं। यजमानों के द्वारा वद्धित होकर मेधावी तुम जल में मिलाये जाते हो। तुम्हें गिरने के लिए अनेक मार्ग (छिद्र) हैं। प्रस्तर-फलकों पर अवस्थित तुम्हारी असंख्य और हरित-वर्ण किरणें हैं।

३. अन्तरिक्ष-स्थित अप्सरायें यज्ञ के बीच में बैठकर पात्रों में स्थित मेधावी सोम को क्षरित करती हैं। इन क्षरणशील और कोठे के समान सुखकर यज्ञ-गृह को चेतनशील करनेवाले सोम को अप्सरायें बढ़ाती हैं। स्तोता लोग सोम से ह्रासहीन सुख माँगते हैं।

४. क्षरणशील सोम गायों, रथ, सुवर्ण, सुख, जल और अपरिमित धन के जेता हैं। मदकर, स्वादुतम, रसात्मक, अरुणवर्ण और सुखकर्त्ता सोम को, पान के लिए, देवों ने बनाया है।

५. सोम, तुम पूर्वोक्त समस्त वस्तुओं को हमारे लिए यथार्थ करते हो। शोधित होकर क्षरित होते हो, जो शत्रु दूर वा समीप है, उसे मारो और विस्तीर्ण मार्ग को हमारे लिए अभय करो।

७९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कवि। छन्द जगती।)

१. प्रभूतदीप्ति यज्ञ में सोम स्वयं हमारे पास आवें। सोम क्षरणशील और हरित-वर्ण हैं। हमारे अन्न के नाशक नष्ट हो जायें। शत्रु भी नष्ट हो जायें। हमारे कर्मों को देवता लोग ग्रहण करें।

२. मद-स्रावी सोम हमारे पास आवें। धन भी आवे। सोम की कृपा से हम बलवान् शत्रुओं का भी सामना कर सकें। किसी भी प्रबल मनुष्य की बाधा को तिरस्कार करके हम सदा धन प्राप्त करें।

३. सोम अपने और हमारे शत्रुओं के हिंसक हैं। जैसे मरुभूमि में पिपासा लगी रहती है, वैसे ही तुम भी उक्त दोनों प्रकार के शत्रुओं के पीछे लगे रहते हो। क्षरणशील सोम, उन्हें नष्ट करो।

४. सोम, तुम्हारा परम अंश द्युलोक में है। वहाँ से तुम्हारे अंश पृथिवी के उन्नत प्रदेश (पर्वत) पर गिरे और वहाँ वृक्ष हो गये। पत्थरों से कूटे जाकर तुम्हें मेधावी लोग हाथों से गोचर्म पर, जल में, दूहते हैं।

५. सोम, प्रधान-प्रधान पुरोहित लोग तुम्हारे सुन्दर और सुरूप रस को चुलाते हैं। सोम, हमारे निन्दक शत्रु को नष्ट करो। अपना बलकर, प्रियकर और मदकर रस प्रकट करो।

८० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भरद्वाजगोत्रीय वसुनामा। छन्द जगती।)

१. यजमानों के दर्शक और अभिषुत सोम की धारा क्षरित होती है। सोम यज्ञ के द्वारा देवों का पूजन करते हैं। आकाशवासी बृहस्पति अथवा स्तोता के शब्द वा मन्त्र से वे चमकते हैं। समुद्र के समान पृथिवी को सवन व्याप्त करते हैं।

२. अन्नवाले सोम, न मारने योग्य स्तुति-वाक्य तुम्हारी स्तुति करते हैं। सोने की भुजा से संस्कृत स्थान को दीप्त होकर तुम जाते हो। सोम, हविवाले यजमानों की आयु और महती कीर्त्ति को तुम बढ़ाते हुए, इन्द्र के लिए, क्षरित होते हो। तुम वर्षक और मदकर हो।

३. यजमान की अन्न-प्राप्ति के लिए सोम इन्द्र के पेट में गिरते हैं। अत्यन्त मदकर, बलकर रसवाले और सुमंगल सोम सारे भूतों को विस्तारित

करते हैं। यज्ञवेदी पर क्रीड़ा करनेवाले, हरितवर्ण, गतिशील और वर्षक सोम गिर रहे हैं।

४. मनुष्य और उनकी दसों अँगुलियाँ इन्द्रादि के लिए अतिशय मधुर और बहुधाराओंवाले सोम को दूहती हैं। सोम, मनुष्यों के द्वारा निचोड़े गये और पत्थरों से अभिषुत तुम अपरिमित धन के जेता होकर देवों के लिए प्रवाहित होओ।

५. सुन्दर हाथोंवाले व्यक्ति की दसों अँगुलियाँ पत्थरों से जल में मधुर रसवाले और कामनाओं के वर्षक सोम को दूहती हैं। सोम, इन्द्र को मत्त करके समुद्र-तरङ्ग के समान क्षरित होकर अन्य देव-संघ को जाते हो।

८१ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भरद्वाज वसुनामा। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. शोधित सोम की सुरूप तरंगें उस समय इन्द्र के पेट में जाती हैं, जिस समय अभिषुत सोम गाय के दधि में मिलाये जाकर यजमान का मनोरथ पूर्ण करने के लिए शूर इन्द्र को प्रमत्त करते हैं।

२. जैसे रथवाहक अश्व वेग से जाता है, वैसे ही सोम कलश में जाते हैं। काम-वर्षक और द्युलोक तथा पृथिवी में उत्पन्न लोगों को जाननेवाले सोम देवों के प्रसन्नता-कारक हैं।

३. सोम, शोधित सोम, तुम हमें गवादिरूप धन दो। दीप्त सोम, तुम धनी हो। महान् धन के दाता होओ। अन्न-धारक सोम, मैं तुम्हारा सेवक हूँ। कष्ट करके मेरे लिए कल्याण दो। हमें दिये जानेवाले धन को हमसे दूर मत करो।

४. सुन्दर दाता पूषा, पवमान सोम, मित्र, वरुण, बृहस्पति, मरुत् वायु, अश्विद्वय, त्वष्टा, सविता और सुरूपिणी सरस्वती आदि देवता, एक साथ, हमारे यज्ञ में पधारें।

५. सर्व-व्यापिनी द्यावापृथिवी, अर्यमा, अदिति, विधाता, मनुष्यों के प्रशस्य भग, विशाल अन्तरिक्ष और विश्वदेव आदि क्षरणशील सोम का आश्रय करें।

८२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि वसुनामा। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. शोभन, वर्षक और हरित-वर्ण सोम का अभिषव किया गया। वे राजा के समान दर्शनीय होकर और जल को लक्ष्य कर, रस निचोड़ने के समय, शब्द करते हैं। अनन्तर शोधित होकर सोम उसी प्रकार (मेष-लोममय) दशापवित्र की ओर जाते हैं, जिस प्रकार अपने स्थान को बाज पक्षी जाता है। सोम जलीय स्थान के लिए क्षरित होते हैं।

२. सोम, तुम क्रान्तकर्मा हो। यज्ञ करने की इच्छा से तुम पूजनीय पवित्र को प्राप्त होते हो। प्रक्षालित होकर, अश्व के समान, तुम युद्ध की ओर जाते हो। सोम, हमारे पापों का विनाश करके हमें सुखी करो। जल में मिश्रित होकर तुम पवित्र की ओर जाते हो।

३. विशाल पत्तोंवाले जिन सोम के पिता मेघ हैं, वे सोम पृथिवी की नाभि (यज्ञ) में, पत्थर पर, निवास करते हैं। अँगुलियाँ, जल के पास, दुग्ध आदि ले जाती हैं। रमणीय यज्ञ में सोम पत्थर से मिलते हैं।

४. पृथिवी के पुत्र सोम, तुम्हारी जो स्तुति मैं करता हूँ, उसे सुनो। जैसे स्त्री पुरुष को सुख प्रदान करती है, वैसे ही तुम भी यजमान को सुख देते हो। हमारी स्तुति में विचरण करो। हमारे जीवन के लिए तुम जी रहे हो। सोम, तुम स्तुत्य हो। हमारे शत्रु-बल के लिए बराबर सावधान रहना।

५. सोम, जैसे तुम प्राचीन स्तोताओं के लिए शत-सहस्र-संख्यक धन के दाता हुए थे, वैसे ही इस समय भी अभिनव अभ्युदय के लिए क्षरित होओ। तुम्हारे कर्म को करने के लिए तुमसे जल मिलता है।

८३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरोगोत्रीय पवित्र। छन्द जगती।)

१. मन्त्रों के स्वामी सोम, तुम्हारा शोधक अंग (वा तेज) सर्वत्र विस्तृत हुआ है। तुम्हारा जो पान करता है, उसके सारे अंगों में, प्रभु होकर, तुम विस्तृत हो जाते हो। व्रत आदि से जिसका शरीर तपाया हुआ और परिपक्व नहीं है, वह तुम्हारे सर्वत्र विस्तृत शोधक अंग को नहीं ग्रहण वा धारण कर सकता। जिनका शरीर परिपक्व है और जो यज्ञ-कर्त्ता हैं, वे ही तुम्हारे शोधक अंग को धारण कर सकते हैं।

२. शत्रु-तापक सोम का शोधक अंग (वा तेज) द्युलोक के उन्नत स्थान में विस्तृत है। सोम की प्रदीप्त किरणें नाना प्रकार से रहती हैं। पृथिवी पर सोम का शीघ्रगामी रस पवित्र यजमान की रक्षा करता है। अनन्तर वह स्वर्ग के उन्नत प्रदेश में, देव-गमनेच्छावाली बुद्धि से, आश्रित होता है।

३. मुख्य और सूर्यात्मक सोम दीप्ति पाते हैं। सोम अभिशेष करनेवाले हैं। सोम जल के द्वारा प्राणियों को अन्न देते हैं। ज्ञानी सोम की प्रज्ञा से अग्नि आदि संसार को बनाते हैं। सोम की प्रज्ञा से मनुष्य-दर्शक देवों ने ओषधियों में गर्भ धारण किया।

४. जलधारक आदित्य सोम के स्थान की रक्षा करते हैं। सोम देवों के जन्मों की रक्षा करते हैं। महान् सोम हमारे शत्रु को पाश में बाँधते हैं। सोम पशुओं के स्वामी हैं। पुण्यकर्त्ता ही इनके मधुर रस को ग्रहण कर सकते हैं।

५. जलवान् सोम, जल में मिलकर महान् और दिव्य यज्ञगृह की रक्षा करते हो। सोम, तुम राजा हो। पवित्र रथवाले होकर तुम युद्ध में जाते हो। असीम-गमन तुम, महान् अन्न को जीतते हो।

८४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि वाक्पुत्र प्रजापति। छन्द जगती।)

१. सोम, तुम देवों के मदकर, सूक्ष्मदर्शक और जलदाता हो। इन्द्र, वरुण और वायु के लिए क्षरित होओ। हमें अविनाशी धन दो। विस्तृत पृथिवी पर मुझे देवों का भक्त कहो।

२. जो सोम सारे भुवनों में व्याप्त हैं, वे उन लोगों की चारों ओर से रक्षा करते हैं। सोम यज्ञ को फल-समन्वित और असुरों से मुक्त करके यज्ञ का वैसे ही आश्रय करते हैं, जैसे सूर्य संसार को प्रकाशवान् और तमोमुक्त करके उसी का सेवन करते हैं।

३. देवों के सुख के लिए रश्मियों से ओषधियों में सोम को स्थापित किया जाता है। सोम देवाभिलाषी, शत्रु-धन-जेता और देव-संघ तथा इन्द्र को प्रमत्त करनेवाले हैं। अभिषुत होकर सोम प्रदीप्त धारा से बहते हैं।

४. गमनशील, प्रतिगामी और प्रातःकाल-कृत स्तोत्र को प्रेरित करते हुए सहस्र जिह्वाओं से क्षरित होते हैं। वायु-प्रेरित सोम क्षरणशील रस को ऊपर उठाते हैं।

५. दुग्ध-वर्द्धक सोम को गायें अपने दूध से सिक्त करनेको खड़ी हैं। सोम, स्तुतियों के द्वारा सब कुछ देते हैं। कर्मठ, रसरूप, मेधावी, क्रान्तप्रज्ञ, अन्नवाले और शत्रु-धन जेता सोम कर्म के द्वारा क्षरित होते हैं।

८५ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भार्गव वेन। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. सोम, भली भाँति अभिषुत होकर तुम इन्द्र के लिए चारों ओर जाओ और रस गिराओ। राक्षस के साथ रोग दूर हो। तुम्हारे रस को पीकर पापी लोग प्रमत्त वा आनन्दित न होने पावें। इस यज्ञ में तुम्हारा रस धन से युक्त हो।

२. क्षरणशील सोम, हमें समरभूमि में भेजो। तुम निपुण हो। तुम देवों के प्रियकर मादक हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। शत्रुओं को मारो। हमारे लिए आओ। इन्द्र, हमारे शत्रुओं को विनष्ट करो।

३. क्षरणशील सोम, अहिंसित और मादकतम होकर तुम क्षरित होते हो। तुम स्वयं सोम होकर इन्द्र के अन्न हो। इस विश्व के राजा सोम का स्तोता लोग स्तोत्र करते और यश गाते हैं।

४. सहस्र-विध-नेत्र, असीम धाराओं से युक्त, आश्चर्यकर और महान् सोम इन्द्र के लिए अभिलषित मधु को क्षरित करते हैं। सोम, तुम हमारे लिए क्षेत्र और जल को जीतकर पवित्र की ओर जाओ। सोम, तुम सेचक हो। हमारा मार्ग विस्तृत करो।

५. सोम, शब्द करते हुए और कलश में वर्त्तमान तुम गोदुग्ध में मिश्रित किये जाते हो। मेष लोममय दशापवित्र के पास जाते हो। सोम, तुम शोधित और अश्व के समान भजनीय होकर इन्द्र के उदर में भली भाँति क्षरित होते हो।

६. सोम, तुम स्वादु हो। दिव्यजन्मा देवों के लिए और शोभन-नामा इन्द्र के लिए क्षरित होओ। मधुमान और अन्यों के द्वारा अहिंस-नीय होकर तुम मित्र, वरुण, वायु और बृहस्पति के लिए क्षरित होओ।

७. अध्वर्युओं की दस अँगुलियाँ अश्व के समान गतिशील सोम को कलस में शोधित करती हैं। विप्रों के बीच स्तोता लोग स्तुतियाँ भेजते हैं। क्षरणशील सोम जाते हैं। शोभन स्तुतिवाले इन्द्र में मदकर सोम प्रविष्ट होते हैं।

८. सोम, क्षरणशील तुम सुन्दर वीर्य, दो कोश, भूमिखण्ड और विशाल गृह हमें दो। हमारे कर्मों के द्वेषियों को स्वामी मत बनाओ। तुम्हारी कृपा से हम महान् धन को जीतें।

९. दूरदर्शी और वर्षक सोम द्युलोक में थे। उन्होंने द्युलोक के नक्षत्र आदि को सुशोभित किया। क्रान्तप्रज्ञ और राजा सोम दशापवित्र को

लाँघकर जाते हैं। शब्द करते हुए नर-वर्शक सोम द्युलोक के अमृत को गिराते हैं।

१०. मधुर वचनवाले वेन लोग, अलग-अलग, यज्ञ के दुःखहीन स्थान में सोमाभिषव करते हैं। वे लोग सेक्ता, उन्नत स्थान में वर्त्तमान, जल में वर्द्धमान और रस-रूप सोम को समुद्र के समान प्रवृद्ध द्रोण-कलश में, जल, तरंग से सींचते हैं। वे मधुरस सोम को दशापवित्र में सींचते हैं।

११. द्युलोक में स्थित, शोभन पत्तोंवाले और गिरनेवाले सोम का, हमारी स्तुतियाँ, स्तोत्र करती हैं। शिशु के समान संस्कार के योग्य, शब्द-कर्त्ता, सुवर्णमय, पक्षिवत् और हविर्द्धान में स्थित सोम को स्तुतियाँ प्राप्त करती हैं।

१२. किरण-धारक (गन्धर्व-सूर्य) सोम सूर्य के सारे रूपों को देखते हुए द्युलोक में रहते हैं। सोम-स्थित सूर्य शुभ्र तेज के द्वारा चमकते हैं। प्रदीप्त सूर्य द्यावापृथिवी को शोभित करते हैं।

८६ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि १-१० तक आकृष्ट और माष, ११-२० तक सिकता और निवावरी, २१-३० तक पृश्नि और अज, ३१-४० तक आकृष्ट और माष, ४१-४५ तक अत्रि और ४६-४८ तक गृत्समद। छन्द जगती।)

१. क्षरणशील सोम, मनोवेग के समान तुम्हारा व्यापक और मद-कर रस घोड़ियों के बछड़ों की तरह दौड़ रहा है। रस द्युलोकोत्पन्न है। सुन्दर पत्तोंवाला, मधुरता-युक्त, अतीव मदकर और दीप्त रस द्रोण-कलश में जा रहा है।

२. सोम, तुम्हारा मदकर और व्याप्त रस अश्व के समान बनाया जाता है। मधुर, प्रवृद्ध और क्षरणशील सोम वज्री इन्द्र की ओर उसी प्रकार जा रहे हैं, जिस प्रकार दूधवाली गाय बछड़े के पास जाती है।

३. सोम, तुम अश्व के समान भेजे गये संग्राम में जाओ। सर्ववेत्ता सोम, द्युलोक से मेघ-निर्माता के पास जाओ। वर्षक सोम धारक इन्द्र के लिए मेषलोममय दशा पवित्र में शोधित होते हैं।

४. सोम, व्याप्त, मनोवेगवान्, दिव्य, शून्य पथ से गिरनेवाली और दुग्ध से युक्त तुम्हारी धारायें धारक द्रोण-कलश में जाती हैं। तुम्हें बनानेवाले ऋषि लोग तुम्हें अभिषुत करते हैं। तुम्हारी धारा को कलश के बीच, ऋषि लोग, कर देते हैं।

५. सर्वद्रष्टा सोम, तुम प्रभु हो। तुम्हारी महान् किरणें सारे देव-शरीरों को प्रकाशित करती हैं। सोम, तुम व्यापक हो। तुम धारक रस का प्रस्रवण करते हो। तुम विश्व के स्वामी होकर शोभित होते हो।

६. क्षरणशील, अविचलित और विद्यमान सोम की प्रज्ञापक किरणें इधर-उधर जाती हैं। जब दशापवित्र में हरितवर्ण सोम शोधित होते हैं, तब निवासशील सोम अपने स्थान (द्रोण-कलश) में बैठते हैं।

७. यज्ञ के प्रज्ञापक और शोभन-यज्ञ सोम क्षरित होते हैं। सोम देवों के संस्कृत स्थान के पास जाते हैं। अमितधार होकर वे द्रोण-कलस में जाते हैं। सेक्ता सोम शब्द करते हुए पवित्र को लाँघकर नीचे जाते हैं।

८. जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं। वैसे ही राजा सोम जल में मिलते हैं। जल में आश्रित होकर पवित्र में जाते और उन्नत दशापवित्र में रहते हैं। वे पृथिवी की नाभि (यज्ञ) में रहते हैं। वे महान् द्युलोक के धारक हैं।

९. सोम द्युलोक के उन्नत स्थान को शब्दायमान कर रहे हैं। सोम अपनी धारक-शक्ति से द्यौ और पृथिवी को धारण करते हैं। सोम इन्द्र की मैत्री के लिए दशापवित्र में शोधित होते और कलश में बैठते हैं।

१०. यज्ञ-प्रकाशक सोम देवों के प्रिय और मधुर रस को प्रवाहित करते हैं। देवों के रक्षक, सबके उत्पादक और प्रचुर धनी सोम द्यावा-

पृथिवी के बीच में रक्खे रमणीय धन को स्तोताओं को देते हैं। मादकतम सोम इन्द्र के वर्द्धक और रस-रूप हैं।

११. गतिशील, द्युलोक के स्वामी, शतधार, दूरदर्शी, हरितवर्ण और रस रूप सोम देवों के मित्र यज्ञ में, शब्द करते हुए, कलश में जाते हैं। सोम स्रवणशील दशापवित्र के छिद्रों में शोधित और वर्षक हैं।

१२. सोम स्पन्दनशील जल के आगे जाते हैं। श्रेष्ठ सोम माध्यमिकी वाक् के आगे जाते हैं। वे किरणों में जाते हैं। वे बल-लाभ के लिए युद्ध का सेवन करते हैं। सुन्दर आयुधवाले और वर्षक सोम अभिषवकर्त्ताओं के द्वारा शोधित होते हैं।

१३. स्तोत्रवान्, शोध्यवान् और प्रेरित सोम, पक्षी के समान, रस के साथ दशापवित्र में शीघ्र ही जाते हैं। क्रान्त प्रज्ञ इन्द्र, तुम्हारे कर्म और बुद्धि से द्यावापृथिवी के बीच में पूत सोम प्रवाहित होते हैं।

१४. स्वर्गस्पर्शी और तेजोरूप कवच को पहननेवाले सोम यजनीय और अन्तरिक्ष के पूरक हैं। सोम जल मिश्रित होकर और नये स्वर्ग को उत्पन्न करके जल के द्वारा बहते हैं। वे जल के पिता और प्राचीन इन्द्र की परिचर्या करते हैं।

१५. सोम इन्द्र के प्रवेश के लिए महान् सुख देते हैं। सोम ने इन्द्र के तेजस्वी शरीर को पहले ही प्राप्त किया था। सोम का स्थान उत्तम वेदी पर है। सोम से तृप्त होकर इन्द्र सारे संग्रामों में जाते हैं।

१६. सोम इन्द्र के पेट में जाते हैं। इन्द्र-मित्र सोम इन्द्र के आधारभूत हृदय को नहीं कष्ट देते। जैसे युवतियाँ पुरुषों से मिलती हैं, वैसे ही सोम जल में मिलते हैं। सोम सौ छिद्रोंवाले मार्ग से कलश में जाते हैं।

१७. सोम, तुम्हारा ध्यान धरनेवाले, मदकर सोम और स्तुति की इच्छा करनेवाले स्तोता लोग निवास-योग्य यज्ञ-गृहों में घूमते हैं। वशीकृतमना स्तोता लोग सोम की स्तुति करते और गायें सोम को दूध से सींचती हैं।

१८. दीप्त सोम, हमें संगृहीत, प्रवृद्ध और ह्रास-शून्य अन्न दो। वह अन्न बेरोक-टोक तीन पवनों में शब्दवान्, आश्रयमाण, मधुरता-युक्त और शोभन सामर्थ्यवाला पुत्र देता है।

१९. स्तोताओं के काम-वर्षक, दूरदर्शी, सूर्य के वर्द्धक और जल-कर्त्ता सोम कलश में घुसने की इच्छा करते हैं। सोम इन्द्र के हृदय में पैठते हैं।

२०. प्राचीन, मेधावी और पुरोहितों के द्वारा नियमित सोम, अध्वर्युओं के द्वारा शोधित होकर कलश में जाने के लिए शब्द करते हैं। इन्द्र और वायु की मित्रता के लिए और तीनों स्थानों में विस्तृत यजमान के लिए जल उत्पन्न करनेवाले सोम मधुर रस चुला रहे हैं।

२१. सोम प्रातःकाल को नाना प्रकार से शोभित करते हैं। वे वसतीवरी-जल में समृद्ध होते हैं। सोम लोक-कर्त्ता हैं। वे इक्कीस (गायों वा ऋत्विकों-द्वारा) दुहे जाते हैं। मदकर सोम, हृदय में जाने के लिए भली भाँति क्षरित होते हैं।

२२. सोम, देवों के उदर में गिरो। दीप्त सोम, तुम कलश में बनाये जाते हो। सोम इन्द्र के पेट में आकर शब्द करते हैं। वे ऋत्विकों के द्वारा हुत हैं। सोम ने सूर्य को प्रादुर्भूत किया।

२३. इन्द्र के उदर में पैठने के लिए पत्थरों से अभिषुत होकर तुम दशापवित्र में क्षरित होते हो। दूरदर्शी सोम, तुम मनुष्यों के अनुग्रह से वर्द्धक होते हो। सोम, अंगिरा लोगों के लिए तुमने गौओं को छिपानेवाले पर्वत को अलग किया था।

२४. सोम, क्षरणशील तुम्हारा, सुकर्मा और मेधावी स्तोता लोग, रक्षाभिलाषी होकर, स्तोत्र करते हैं। सभी स्तुतियों से अलंकृत तुम्हें द्युलोक से सुन्दर पंखोंवाला श्येन पक्षी ले आया।

२५. प्रीतिकर सप्त गायत्री आदि छन्द मेषलोममय दशापवित्र पर तुम हरितवर्ण को क्षरित कर प्राप्त करते हैं। कान्तकर्मा, तुम्हें अन्तरिक्ष के जल में महान् आयुवाले लोग प्रेरित करते हैं।

२६. दीप्त सोम याज्ञिक यजमान के लिए शत्रुओं को दूर कर और सुन्दर मार्ग बनाकर कलश में जाते हैं। सुन्दर और क्रान्तकर्मा सोम, अश्व के समान क्रीड़ा करते हुए और अपने रूप को रसमय करते हुए मेष-लोममय दशा पवित्र में जाते हैं।

२७. परस्पर संगत, शतधार और सोम का आश्रय करनेवाली सूर्य की किरणें हरि (इन्द्र वा सोम) के पास जाती हैं। अँगुलियाँ किरणों में ढके और द्युलोक में स्थित सोम का शोधन करती हैं।

२८. सोम, तुम्हारे दिव्य तेज से सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं। तुम सारे संसार के स्वामी हो। यह संसार तुम्हारे अधीन है। तुम मुख्य हो। तुम सबके धारक हो।

२९. सोम, तुम द्रवात्मक और संसार के ज्ञाता हो। तुम्हीं इन पाँचों दिशाओं (आकाश और चार दिशाओं) के धारक हो। तुम द्युलोक और पृथिवी को धारण किये हुए हो। तुम्हारी किरणों को सूर्य प्रफुल्ल करते हैं।

३०. सोम, तुम देवों के लिए संसार व रस के धारक दशापवित्र में शोधित किये जाते हो। अभिलाषी और मुख्य पुरोहित तुम्हारा ग्रहण करते हैं। तुम्हारे लिए सारे प्राणी अपने को अर्पित करते हैं।

३१. सोम मेषलोममय दशापवित्र में जाते हैं। हरितवर्ण और सेचक सोम जल में बोलते हैं। ध्यान करनेवाले और सोम की अभिलाषा करनेवाली स्तुतियाँ शिशु के समान और शब्दवान् सोम का गुण-गान करती हैं।

३२. सूर्य-किरणों से सोम, तीनों सवनों से यज्ञ-विस्तार करते हुए, अपने को परिवेष्टित करते हैं। सबके ज्ञाता और प्राणियों के पति सोम संस्कृत पात्र में जाते हैं।

३३. जल-पति और स्वर्ग-स्वामी सोम संस्कृत किये जाते हैं। वे यज्ञ-पथ से शब्द करते हुए जाते हैं। असीम धाराओंवाले सोम नेताओं

के द्वारा पात्रों में सिञ्चित होते हैं। सोम शोधित, शब्दकर्त्ता और पास लानेवाले हैं।

३४. सोम, तुम बहुत रस भेजते हो। सूर्य के समान ही तुम पूज्य हो। मेषलोममय पात्र में जाते हो। अनेकों के द्वारा शोधित और ऋत्विकों तथा पत्थरों के द्वारा अभिषुत होकर तुम विराट् संग्राम और धन के हित के लिए जाते हो।

३५. क्षरणशील सोम, तुम अन्न और बलवाले हो। जैसे श्येन (बाज) पक्षी घोंसले में जाता है, वैसे ही तुम कलश में जाते हो। इन्द्र के लिए मदकर और मद-कारक रस अभिषुत हुआ है। तुम, द्युलोक के स्तम्भ और दूरदर्शी हो।

३६. नवीन उत्पन्न, जेता, विद्वान्, जल के पिता, जल के धारक, स्वर्गोत्पन्न और नर-दर्शक सोम के पास, शिशु के समान, गङ्गा आदि सात मातृ-स्थानीया नदियाँ जाती हैं।

३७. सोम, हरितवर्ण, सबके स्वामी और घोड़ियों को रथ में जोतनेवाले तुम इन सारे भुवनों में गति-विधि करते हो। घोड़ियाँ मधुर घृत, दीप्त दुग्ध और जल ले आवें। तुम्हारे कर्म में मनुष्य रहें।

३८. सोम, तुम सारे भुवनों में मनुष्यों के दर्शक हो। जलवर्षक, तुम विविध गतियोंवाले हो। गौ आदि से युक्त, सुवर्णमय धन हमें दो। हम सब द्रव्यों से युक्त होकर संसार में जी सकें।

३९. सोम, तुम गौ, धन और सुवर्ण को लानेवाले और जल के धारक हो। सोम, क्षरित होओ। तुम सुन्दर वीर्यवाले हो। तुम सर्वज्ञ हो। स्तोता लोग स्तोत्र-द्वारा तुम्हारी उपासना करते हैं।

४०. मधुर सोमरस अभिषव-काल में, मननीय स्तोत्र का उत्थापन करते हैं। महान् सोम, जल में मिलकर कलश में जाते हैं। सोम का रथ दशापवित्र है। सोम युद्ध में जाते हैं। असीम-गति सोम हमारे लिए महान् अन्न को जीतते हैं।

४१. सबके गन्ता सोम दिन-रात प्रजा और सुन्दर भरणवाली सारी स्तुतियों को प्रेरित करते हैं। दीप्त सोम, तुम इन्द्र से हमारे लिए प्रजा से युक्त अन्न और घर भरनेवाला धन, इन्द्र-द्वारा पिये जाकर, माँगो।

४२. हरित-वर्ण, रमणीय और मदकर सोम प्रातःकाल स्तोताओं के ज्ञान और स्तुतियों से जाने जाते हैं। मनुष्य और देवता के द्वारा प्रशंसित धन यजमान को देनेवाले और मर्त्य तथा स्वर्ग के जीवों को अपने कर्म में प्रेरित करनेवाले सोम द्यावापृथिवी के बीच जाते हैं।

४३. ऋत्विक् लोग गो-दुग्ध में सोम को मिलाते हैं, विविध प्रकार से मिलाते हैं। भली भाँति मिलाते हैं। देवता लोग बलकर्त्ता सोम का आस्वाद लेते हैं और सोम को मधुर गव्य में मिलाते हैं। जिस समय रस ऊपर उठता है, उस समय सोम नीचे गिरते हैं। सोम सेचक हैं। जैसे लोग पशु को स्नान के लिए जल में ले जाते हैं, वैसे ही सुवर्ण-भरणधारी पुरोहित लोग सोम को जल में ले जाते हैं।

४४. ऋत्विको, मेधावी और क्षरणशील सोम के लिए गाओ। महती वर्षा धारा के समान रस-रूप अन्न को लाँघकर सोम जाते हैं। वे सर्प के समान सोम अभिषवादि कर्म के द्वारा अपने चमड़े को छोड़ते हैं। वर्षक और हरितवर्ण सोम क्रीड़ापरायण अश्व के समान दशापवित्र से कलश में जाते हैं।

४५. अग्रगन्ता, शोभन और जल में संस्कृत सोम की स्तुति की जाती है। सोम दिनों को मापनेवाले हैं। सोम हरित-वर्ण, जलमिश्रित, शोभन-दर्शन, जलवान् और धन प्रापक हैं। उनका रथ ज्योतिर्मय है। वे प्रवाहित होते हैं।

४६. सोम द्युलोक के धारक और स्तम्भ हैं। मादक सोम अभिषुत किये जाते हैं। वे तीन धातुओं (द्रोण-कलश, आधवनीय और पूतभृत्) वाले हैं। सोम सारे भुवनों में विहार करते हैं। जिस समय ऋत्विक्-लोग रूपवान् सोम की स्तुति करते हैं, उस समय शब्दायमान सोम को पुरोहित लोग चाहते हैं।

४७. शोधन-काल में तुम्हारी चञ्चल धारायें सूक्ष्म मेषलोमों को लाँघकर जाती हैं। सोम, जिस समय तुम दो अभिषव-फलकों पर जल में मिलाये जाते हो, उस समय चुलाये जाकर तुम कलश में बैठते हो।

४८. सोम, तुम हमारी स्तुति को जानते हो। हमारे यज्ञ के लिए क्षरित होओ। मेषलोममय दशापवित्र में प्रिय मधु (रस) गिराओ। दीप्त सोम, सारे भक्षक राक्षसों को विनष्ट करो। यज्ञ में सुपुत्रवाले हम महान् धन की याचना करेंगे और प्रचुर स्तोत्र का पाठ करेंगे।

८७ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि काव्य के पुत्र उशना। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सोम, शीघ्र जाओ और द्रोण-कलश में बैठो। नेताओं (मनुष्यों) के द्वारा शोधित होकर यजमान के लिए अन्न दो। अध्वर्यु लोग यज्ञ के लिए बली सोम का इसी प्रकार मार्जन करते हैं, जिस प्रकार बली अश्व का मार्जन किया जाता है।

२. शोभन आयुधवाले, क्षरणशील, दिव्य, राक्षस-नाशक, उपद्रव-रक्षक, देवों के पालक, उत्पादक, सुबल, स्वर्ग-स्तम्भ और पृथिवी के धारक सोम क्षरित हो रहे हैं।

३. अतीन्द्रिय-द्रष्टा, मेधावी, अग्रगन्ता, मनुष्यों के प्रकाशक और धीर उशना ऋषि गायों के गुह्य और दुग्ध-मिश्रित जल को प्राप्त करते हैं।

४. वर्षक इन्द्र, तुम्हारे लिए मधुर और वर्षक सोम पवित्र में क्षरित होते हैं। वही सौ और असीम धनों के दाता, अगणित दान-दाता, नित्य और बली हैं। वे यज्ञ में रहते हैं।

५. अन्नाभिलाषी और सेना-विजयी अश्व के समान सोम गो-मिश्रित अन्नों को लक्ष्य करके महान् और अमर बल के लिए, मेषलोम के छनने से शोधित होकर, बनाये जाते हैं।

६. बहुतों के द्वारा आहूत और शोध्यमान सोम मनुष्यों के लिए सारे

भोज्य धनों को देते हैं। श्येन-द्वारा लाये गये सोम अन्न दो, धन दो और अन्न-रस की ओर जाओ।

७. गतिशील और अभिषुत सोम छोड़े हुए घोड़े के समान पवित्र की ओर दौड़ते हैं। अपनी सींगों को तेज करके महिष और गवाभिलाषी शूर के समान वे दौड़ते हैं।

८. सोम-धारा ऊँचे स्थान से पात्र की ओर जाती है। पणियों के निवासस्थान पर्वत के गूढ़ स्थान में वर्त्तमान गायों को इसी सोम-धारा ने प्राप्त किया था। आकाश से शब्द करनेवाली, बिजली के समान यह सोम-धारा, इन्द्र, तुम्हारे लिए क्षरित होती है।

९. सोम, शोधित तुम खोये हुए गो-समूह को प्राप्त करते हो। इन्द्र के साथ ही रथ पर जाते हो। शीघ्रदाता सोम, तुम्हारी स्तुति की जाती है। हमें महान् धन दो। अन्नवाले सोम, सब अन्न तुम्हारा है।

८८ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि उशना। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र तुम्हारे लिए ये सोम अभिषुत होते हैं। ये तुम्हारे लिए क्षरित होते हैं। इन्हें पियो। तुम जिन सोम को बनाते हो, जिनको स्वीकार करते हो, मद और सहायता के लिए उन्हें तुम पियो।

२. सोम, रथ के समान, प्रचुर भार के वहन करनेवाले हैं। सोम महान् हैं। रथ के समान ही लोग उनको योजित करते हैं। सोम प्रभूत धन के दाता हैं। युद्धार्थी सोम को संग्राम में ले जाते हैं।

३. सोम वायु के नियुत् नामक अश्वों के स्वामी हैं और वायु के समान ही इष्ट-गमन हैं। वे अश्विद्वय के समान आह्वान सुनते ही आते हैं। सोम धनी के समान सबके प्रार्थनीय हैं। वे सूर्य के समान वेगवाले हैं।

४. इन्द्र के समान तुमने महान् कार्यों को किया है। सोम, तुम शत्रुओं के हन्ता और पुरियों के भेदन-कर्त्ता हो। अश्व के समान अहियों के हन्ता हो। तुम सारे शत्रुओं के हन्ता हो।

५. जैसे अग्नि वन में उत्पन्न होकर अपने बल को प्रकट करते हैं, वैसे ही सोम जल में उत्पन्न होकर वीर्य का प्रकाश करते हैं। युद्ध-कर्त्ता, वीर के समान, शत्रु के पास भयंकर शब्द करनेवाले सोम प्रवृद्ध रस देते हैं।

६. जैसे आकाश के मेघ से वर्षा होती है और जैसे नदियाँ नीचे समुद्र की ओर जाती हैं, वैसे ही अभिषुत सोम मेषलोम का अतिक्रम करके कलश में जाते हैं।

७. सोम, तुम बली हो। मरुतों के बल के समान क्षरित होओ। स्वर्ग की सुन्दर प्रजा के समान (वायु के समान) बहो। जल के समान हमारे लिए सुमतिवाला होओ। तुम बहुरूप हो। सेना-जेता इन्द्र के समान तुम पूजनीय हो।

८. सोम, तुम धारक राजा हो। तुम्हारे कामों को मैं शीघ्र करता हूँ। सोम, तुम्हारा तेज महान् और गम्भीर है। तुम प्रिय मित्र के समान शुद्ध हो। तुम अर्यमा देवता के समान पूजनीय हो।

८९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि उशना। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जैसे आकाश से वृष्टि होती है, वैसे ही यज्ञ-मार्गों से वोढ़ा सोम प्रवाहित हो रहे हैं। असीम धाराओंवाले सोम हमारे पास अथवा द्युलोक के पास बैठते हैं।

२. दुग्ध देनेवाली गायों के राजा सोम हैं। वे क्षीर में मिल रहे हैं। वे यज्ञ की सरल नौका में चढ़ते हैं। श्येन-द्वारा लगाये गये सोम जल में बढ़ते हैं। द्युलोक के पुत्र सोम को पालक लोग दूहते हैं। अध्वर्यु भी दूहते हैं।

३. शत्रु-हिंसक, जल-प्रेरक, हरित-वर्ण, रूपवान् और द्युलोक के स्वामी सोम को यजमान लोग व्याप्त करते हैं। संग्रामों में शूर और देवों में मुख्य सोम पणियों के द्वारा अपहृत गायों को खोजने के लिए मार्ग पूछ रहे हैं सोम की ही सहायता से सेचक इन्द्र संसार की रक्षा करते हैं।

४. मधुर पृष्ठवाले, भयानक, गन्ता और दर्शनीय सोम को अनेक चक्रोंवाले रथ में (यज्ञ में), अश्व के समान, जोता जाता है। परस्पर भगिनियों और बन्धुओं के समान अँगुलियाँ सोम का शोधन करती हैं। समान बन्धनवाले अध्वर्यु आदि सोम को बली करते हैं।

५. घी देनेवाली चार गायें सोम की सेवा करती हैं। गायें सबके धारक अन्तरिक्ष (एक ही स्थान) में बैठी हुई हैं। अन्न से शोधित करनेवाली वे अनेक और बड़ी गायें चारों ओर से सोम को घेरकर रहती हैं।

६. सोम द्युलोक के स्तम्भ और पृथिवी के धारक हैं। सारी प्रजा उनके हाथ में है। वे स्तुति करते हैं । तुम्हारे लिए वे अश्ववाले हों। सोम मधुर रसवाले हैं। वे इन्द्र के लिए अभिषुत होते हैं।

७. सोम, तुम बली और महान् हो। देवों और इन्द्र के पान के लिए वृत्रघ्न, तुम क्षरित होओ। तुम्हारी कृपा से हम अतीव आह्लादक और शोभन-वीर्य धन के स्वामी बन जायें।

९० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि वसिष्ठ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अध्वर्युओं के द्वारा प्रेरित और द्यावापृथिवी के उत्पादक सोम रथ के समान अन्न प्रदान करनेवाले हैं। इन्द्र को पाकर, आयुधों को तेज कर और सारे धनों को हाथों में धारण कर सोम हमें देने को प्रस्तुत हैं।

२. तीन सवनोंवाले, वर्धक और अन्नदाता सोम को स्तोताओं की वाणी शब्दायमान कर रही है। जलमिश्रित सोम, वरुण के समान, जल के आच्छादक हैं और वे रत्न-दाता होकर स्तोताओं को धन देते हैं।

३. सोम, तुम शूरों के समुदायक और वीरोंवाले हो। सोम सामर्थ्यवान्, विजेता, संभक्ता, तीक्ष्ण आयुधवाले, क्षिप्र और धनुर्द्धारी हाथवाले, युद्ध में अजेय और शत्रुओं को हरानेवाले हैं।

४. सोम, तुम विस्तृत मार्गवाले हो। स्तोताओं के लिए अभय देते हुए और द्यावापृथिवी को सङ्गत करते हुए क्षरित होओ। हमें प्रचुर अन्न

देने के लिए तुम उषा, आदित्य और किरणों को प्राप्त करने की इच्छा से शब्द करते हो।

५. क्षरणशील सोम, तुम वरुण, मित्र, विष्णु, बली मरुत्, इन्द्र और अन्य देवों के मद के लिए उन्हें तृप्त करो।

६. सोम, तुम यज्ञवाले हो। राजा के समान बल के द्वारा सारे पापों को नष्ट करके क्षरित होओ। दीप्त सोम, हमारे सुन्दर स्तोत्र के लिए हमें अन्न दो। कल्याण के द्वारा सदा हमारा पालन करो।

तृतीय अध्याय समाप्त।

९१ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय। देवता पवमान सोम। ऋषि मारीच, कश्यप। छन्द त्रिष्टुप।)

१. जैसे युद्धभूमि में अश्व का अंगुलि से परिमार्जन किया जाता है, वैसे ही शब्दायमान और क्षरणशील सोम का, कर्म के द्वारा यज्ञ में सृजन होता है। सोम देवों के मन के अनुकूल, देवों में श्रेष्ठ और स्तुति वा मन के अधिपति हैं। भगिनी-स्वरूप दस अँगुलियाँ, यज्ञ-गृह के सम्मुख, ढोने-वाले सोम को उन्नत देश—मेषलोममय दशापवित्र पर प्रेरित करती हैं।

२. कवि (स्तोता) नहुष-वंशीयों के द्वारा अभिषुत, क्षरणशील और देवों के समीपवर्ती सोम यज्ञ में जाते हैं। अमर सोम, कर्मनिष्ठ मनुष्यों के द्वारा, पवित्र अभिषवचर्म, गोरस और जल के द्वारा बार-बार शोधित होकर यज्ञ में जाते हैं।

३. काम-वर्षक, बार-बार शब्दायमान और क्षरणशील सोमवर्षक इन्द्र के लिए शोभन और श्वेत गोरस के पास जाते हैं। स्तोत्रवान्, स्तोत्रज्ञ और सुवीर्य सोम हिंसा-शून्य अनेक मार्गों से सूक्ष्म-छिद्र पवित्र को लाँघकर द्रोण-कलश में जाते हैं।

४. सोम, सुदृढ़ राक्षस-पुरियों को विनष्ट करो। इन्दु (सोम), पवित्र में शोध्यमान (शोधन किये जाते हुए) तुम अन्न ले आओ। जो राक्षस दूर वा समीप से आते हैं, उनके स्वामी को तुम घातक हथियार से काट डालो।

५. सबके प्रार्थनीय सोम, प्राचीन काल के समान स्थित तुम नवीन सूक्त और शोभन स्तोत्रवाले मेरे मार्गों को पुराने करो अर्थात् मेरे लिए कोई मार्ग नया न रहे। बहुकर्मा और शब्दायमान सोम, राक्षसों के लिए असह्य, हिंसक और महान् जो तुम्हारे अंश हैं, उन्हें हम यज्ञ में प्राप्त करें।

६. क्षरणशील (पवमान) सोम, हमें जल, स्वर्ग, गोधन और अनेक पुत्र-पौत्र दो। हमारे खेत का मङ्गल करो। सोम, अन्तरिक्ष में नक्षत्रों को विस्तृत करो। हम चिरकाल तक सूर्य को देख सकें।

९२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि मरीचि-पुत्र कश्यप। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. शोध्यमान, पुरोहितों के द्वारा भेजे जाते और हरित-वर्ण सोम वैसे ही मेषलोम के पवित्र (चलनी वा छनने) में, देवों के उपासन के लिए, संचालित किये जाते हैं, जैसे युद्ध में, शत्रु-वध के लिए, रथ-संचालित किया जाता है। शोध्यमान सोम इन्द्र का स्तोत्र प्राप्त करते हैं। सोम प्रसन्नकर अन्न से देवों की सेवा करते हैं।

२. मनुष्यों के दर्शक और क्रान्तप्रज्ञ सोम जल में मिलकर तथा अपने स्थान पवित्र में फैलकर यज्ञ में उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार स्तोत्र के लिए होता देवों के पास जाता है। अनन्तर सोम चमस आदि पात्रों में जाते हैं। सात मेधावी (भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ) ऋषि सोम के पास जाते हैं।

३. शोभन-प्रज्ञ, मार्गज्ञ, सब देवों के समीपी और पवमान (शोध्य-

मान) सोम अविनश्वर द्रोण-कलश में जाते हैं। सारे कार्यों में रमणीय और प्राज्ञ सोम निषाद आदि पाँच वर्णों का अनुगमन करते हैं।

४. पूयमान (शोध्यमान) सोम, तुम्हारे ये प्रसिद्ध ३३ देवता अन्तर्हित स्थान (स्वर्ग = द्युलोक) में रहते हैं। दस अँगुलियाँ उन्नत और मेषलोम के पवित्र में जल के द्वारा तुम्हें शोधित करती हैं।

५. पवमान सोम के जिस प्रसिद्ध स्थान पर स्तोता लोग, स्तुति के लिए, एकत्र होते हैं, उस सत्य स्थान को हम प्राप्त करें। सोम की जो ज्योति दिन के लिए प्रकाश प्रदान करती है, उसने मनु नामक राजर्षि की उत्तम रूप से रक्षा की है। सोम ने अपने तेज को सर्वनाशक असुर के लिए अभिगमनशील किया है।

६. जैसे देवों को बुलानेवाले ऋत्विक् पशुवाले के सदन (यज्ञगृह) में जाते हैं और जैसे सत्यकर्मा राजा युद्ध-क्षेत्र में जाता है, वैसे ही पवमान सोम, गमनशील जल में महिष के सदृश रहकर, द्रोण-कलश में जाते हैं।

९३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि गोतम-वंशीय नोधा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. एक साथ सिंचन करनेवाली भगिनी-स्वरूप जो दस अँगुलियाँ सोम का शोधन करती हैं, ये ही प्राज्ञ और देवों के द्वारा काम्यमान सोम की प्रेरिका हैं। हरितवर्ण सोम सूर्य की पत्नियों (दिशाओं) की ओर जाते हैं। गतिशील अश्व के समान स्थित सोम कलश में जाते हैं।

२. देवकामी, कामवर्षक और वरणीय सोम जल के द्वारा उसी प्रकार धृत किये जाते हैं, जिस प्रकार मातायें शिशु का धारण करती हैं। जैसे पुरुष अपनी स्त्री के पास जाता है, वैसे ही सोम अपने संस्कृत स्थान को प्राप्त करते हुए, दूध आदि के साथ, द्रोण-कलश में जाते हैं।

३. सोम गाय के स्तन को आप्यायित करते हैं। शोभनप्रज्ञ सोम धाराओं के रूप में क्षरित होते हैं। चमसों में स्थित उन्नत सोम को गायें

श्वेत दुग्ध से उसी प्रकार आच्छादित करती हैं, जिस प्रकार धौत वस्त्र से कोई पदार्थ आच्छादित किया जाता है।

४. पवमान सोम, पात्रों में गिरते-गिरते देवों के साथ कामयमान तुम अश्व से युक्त धन दो। रथियों की इच्छा करनेवाले सोम की अभिलाषिणी और बहुविध बुद्धि धन-दान के लिए हमारे सामने आवे।

५. सोम, हमारे लिए शीघ्र ही पुत्रादि-युक्त धन दो। जल को सबके लिए आह्लादक बनाओ। सोम, स्तोता की आयु को बढ़ाओ। सोम अपने कर्म से सवन में, हमारे यज्ञ के प्रति, शीघ्र आवें।

९४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरस कण्व। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिस समय घोड़े के समान सोम अलंकृत होते हैं और जिस समय सूर्य के समान सोम की किरणें उदित होती हैं, उस समय अँगुलियाँ स्पर्द्धा करके सोम का शोधन करती हैं। अनन्तर कवि सोम जल में मिलकर उसी प्रकार कलश में क्षरित होते हैं, जिस प्रकार पशुपोषण के लिए गोपाल गोष्ठ में जाता है।

२. जल-धारक अन्तरिक्ष को सोम अपने तेज से दोनों ओर से आच्छादित करते हैं। सर्वज्ञ सोम के लिए सारे भुवन विस्तृत हों। प्रसन्नताकारिणी और यज्ञ-विधायिनी स्तुतियाँ सोम को लक्ष्य करके यज्ञ-दिनों में वैसे ही शब्द करती हैं, जैसे दुग्धदायिनी गायें गोष्ठ में शब्द करती हैं।

३. बुद्धिमान् सोम जिस समय स्तोत्रों की ओर जाते हैं, उस समय वीर पुरुष के रथ के समान वह सर्वत्र गति-विधि करते हैं। सोम देवों का धन मनुष्य को देते हैं। प्रदत्त धन की वृद्धि के लिए सोम की स्तुति की जाती है।

४. सम्पत्ति के लिए सोम अंशुओं (लता-प्रतान) से निकलते हैं। स्तोताओं को सोम अन्न और आयु प्रदान करते हैं। सोम से सम्पत्ति

प्राप्त करके स्तोता लोगों ने अमरत्व प्राप्त किया। सोम से युद्ध यथार्थ होते हैं।

५. सोम, सम्पत्ति, बल, अश्व, गौ आदि दो। महान् ज्योति का विस्तार करो। इन्द्रादि देवों को तृप्त करो। सोम, तुम्हारे लिए सारे राक्षस पराजेय हैं। क्षरणशील सोम, सारे शत्रुओं को मारो।

९५ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि कण्व-पुत्र प्रस्कण्व। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. चारो ओर अभिषुत होनेवाले और हरित-वर्ण सोम शब्द करते हैं तथा शोधित होते-होते कलश के पेट में बैठते हैं। मनुष्यों के द्वारा संयत सोम दुग्ध में मिश्रित होकर अपने रूप को प्रकट करते हैं। इन सोम के लिए, स्तोताओ, हवि के साथ मननीय स्तुति उत्पन्न करो।

२. जैसे नाविक नौका को चलाता है, वैसे ही बनाये जानेवाले और हरितवर्ण सोम सत्यरूप यज्ञ के उपयोगी वचन को प्रेरित करते हैं। दीप्यमान सोम इन्द्रादि देवों के अन्तर्हित शरीरों को यज्ञ में उत्तम वक्ता के लिए आविष्कृत करते हैं।

३. स्तुति के लिए शीघ्रता करनेवाले ऋत्विक् लोग, जल-तरङ्ग के समान, मन की स्वामिनी स्तुतियों को सोम के लिए प्रेरित करते हैं। सोम की पूजा करनेवाली स्तुतियाँ सोम के पास जाती हैं। अभिलाषिणी स्तुतियाँ अभिलाषी सोम में प्रविष्ट होती हैं।

४. ऋत्विक् लोग सोम का शोधन करते हुए, महिष के समान, उन्नत देश में स्थित काम-वर्षक और अभिषव के लिए पत्थरों में स्थित उन प्रसिद्ध सोम को दूहते हैं। कामयमान सोम को मननीय स्तुतियाँ सेवित करती हैं। तीन स्थानों में वर्तमान इन्द्र शत्रु-निवारक सोम को अन्तरिक्ष में धारण करते हैं।

५. सोम, जैसे स्तोत्र-प्रेरक उपवक्ता नामक पुरोहित होता को उत्साहित करता है, वैसे ही स्तोताओं के प्रशंसन के लिए क्षरणशील तुम

बुद्धि को धनप्रदानाभिमुखी करो। जब तुम इन्द्र के साथ यज्ञ में रहते हो, तब हम स्तोता सौभाग्यशाली हों और शोभन वीर्यवाले धन के अधिपति हों।

९६ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सेनापति और शत्रु-बाधक सोम शत्रुओं की गायें पाने की इच्छा से रथों के आगे युद्ध में जाते हैं। सोम की सेना प्रसन्न होती है। मित्र यजमानों के लिए इन्द्र के आह्वान को कल्याणकर बनाते हुए सोम उन दुग्ध आदि को ग्रहण करते हैं, जिनके लिए इन्द्र शीघ्र आते हैं।

२. अँगुलियाँ सोम की हरित-वर्ण किरण का अभिषव करती हैं। व्याप्त रहने पर भी सोम अननुगत-रथ रूप दशापवित्र में ठहरते हैं। इन्द्र के मित्र और प्राज्ञ सोम पवित्र से शोभन स्तुतिवाले स्तोता के पास जाते हैं।

३. द्योतमान सोम, तुम इन्द्र के पीने की वस्तु हो। हमारे देव व्याप्त यज्ञ में इन्द्र के महान् पान के लिए क्षरित होओ। तुम जल-कर्त्ता और द्यावापृथिवी के अभिषेक्ता हो। विस्तृत अन्तरिक्ष से आगत और शोधित तुम हमें धनादि प्रदान करो।

४. सोम, हमारे अपराजय, अविनाश और यज्ञ के लिए सामने आओ। मेरे सारे मित्र स्तोता तुम्हारा रक्षण चाहते हैं। पवमान सोम, मैं भी तुम्हारा रक्षण चाहता हूँ।

५. सोम क्षरित होते हैं। सोम स्तुति, द्युलोक, पृथिवी, अग्नि, प्रेरक सूर्य, इन्द्र और विष्णु के जनक हैं।

६. सोम देव-स्तोता पुरोहितों के ब्रह्मा, कवियों के शब्दविन्यास-कर्त्ता, मेधावियों के ऋषि, वन्य प्राणियों के महिष, पक्षियों के राजा और अस्त्रों के स्वधिति नामक अस्त्र हैं। शब्द करते हुए सोम पवित्र का अति-क्रम करते हैं।

७. पवमान सोम तरङ्गायित नदी के समान हृदयङ्गम स्तुतिवाक्य के प्रेरक हैं। काम-वर्धक और गोज्ञाता सोम अन्तर्हित वस्तुओं को देखते हुए दुर्बलों के न रोकने योग्य बल पर अधिष्ठित रहते हैं।

८. सोम, तुम मदकर, युद्ध में शत्रुहन्ता, अगम्य और असीम जल-युक्त हो। शत्रुओं के बल को अधिकृत करो। सोम, तुम प्राज्ञ हो। तुम गायों को प्रेरित करते हुए अपनी अंशु-तरङ्ग इन्द्र के प्रति भेजो।

९. सोम प्रसन्नता-दायक हैं; रमणीय हैं। उनके पास देव लोग जाते हैं। अनेक धाराओंवाले, बहुबल और पात्रों में क्षरणशील सोम इन्द्र के मद के लिए द्रोण-कलश में उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार युद्धमें बली अश्व जाता है।

१०. प्राचीन, धनाधिपति, जन्म के साथ जल में शोधित, अभिषव-प्रस्तर पर निष्पीड़ित, शत्रुओं से रक्षक, प्राणियों के राजा और कर्म के लिए क्षरणशील सोम यजमान को समीचीन मार्ग बताते हैं।

११. पवमान सोम, हमारे कर्मकुशल पूर्वजों ने, तुम्हारी सहायता से ही अग्निष्टोमादि कर्म किये थे। वेगवान् अश्वों की सहायता के द्वारा तुम शत्रुओं को मारते हो। राक्षसों को हटाओ। तुम हमारे इन्द्र बनो—धन दो।

१२. प्राचीन काल में जैसे तुम राजा मनु के लिए अन्न-धारक हुए थे, शत्रुओं का संहार किया था और धन, पुरोडाश आदि से युक्त होकर उनको धन-प्रदान करने के लिए आये थे, वैसे हमें भी धन देने के लिए पधारो, इन्द्र का आश्रय करो और उन्हें अस्त्र दो।

१३. सोम, तुम मदकर रसवाले और याज्ञिक हो। जल में मिश्रित होकर उन्नत मेषलोममय पवित्र में क्षरित होओ। अतीव मदकर इन्द्र के पीने योग्य और मादक सोम, जलवाले द्रोणकलश में ठहरो।

१४. सोम, तुम यज्ञ में यजमानों को विविध प्रकार के धन देनेवाले, अन्नकामी और अनेक धाराओंवाले हो। आकाश से वृष्टि बरसाओ और

जल तथा दुग्ध के साथ, हमारे जीवन को बढ़ाते हुए, द्रोणकलश में क्षरित होओ।

१५. ऐसे सोम स्तोत्रों से शोधित होते हैं। सोम गमनशील अश्व के समान शत्रुओं के पार जाते हैं। वे अदीन गौ के दूध के समान परिशुद्ध हैं। वे विस्तीर्ण मार्ग के समान सबके आश्रयणीय हैं। वाहक अश्व के समान सोम स्तोत्रों के द्वारा नियन्त्रण में आते हैं।

१६. शोभन आयुधवाले और ऋत्विकों के द्वारा शोधित सोम अपनी गुह्य और रमणीय मूर्त्ति को धारण करो। अश्व के समान वर्त्तमान तुम हमारी अन्नाभिलाषा के लिए हमें अन्न दो। देव सोम, हमें आयु और पशु दो।

१७. मरुत् लोग, शिशु के समान, प्रकट और सबके अभिलषणीय सोम को शोधित करते हैं। वे वाहक सोम को सप्तसंख्यक गण के द्वारा अलंकृत करते हैं। क्रान्तकर्मा और कवि-कार्य के द्वारा कविशब्द-वाच्य सोम, शब्द करते हुए, स्तुति के साथ पवित्र को लाँघकर जाते हैं।

१८. ऋषियों के समान मनवाले, सबको देखनेवाले, सूर्य के संभक्त, अनेक स्तुतियोंवाले, कवियों में शब्द-विन्यास-कर्त्ता और पूज्य सोम द्युलोक में रहने की इच्छा करते हुए, स्तुत होते हुए और विराजमान इन्द्र को प्रकाशित करते हैं।

१९. अभिषवण-फलकों पर वर्त्तमान, प्रशंसनीय, समर्थ, पात्रों में विहरण करनेवाले, आयुधों का धारण करनेवाले, जलप्रेरक, अन्तरिक्ष का सेवन करनेवाले और महान् सोम चतुर्थचन्द्र-धाम का सेवन करते हैं।

२०. अलंकृत मनुष्य के समान, अपने शरीर के शोधक, धनदान के लिए वेगवान् अश्व के समान चलनेवाले, वृषभ के समान शब्द करनेवाले और पात्र में जानेवाले सोम, शब्द करते हुए, अभिषवण-फलकों पर बैठते हैं।

२१. सोम, ऋत्विकों के द्वारा शोधित होकर तुम क्षरित होओ। बार-

बार शब्द करते हुए मेषलोममय पात्र में जाओ। अभिषवण-फलकों पर क्रीड़ा करते हुए पात्रों में पैठो। तुम्हारा मदकर रस इन्द्र को प्रमत्त करे।

२२. सोम की महती धारायें बनाई जा रही हैं। गोरस से मिश्रित होकर सोम द्रोण-कलश में गये। सोम गान करने में कुशल हैं; इसलिए गाते हुए विद्वान् सोम वैसे ही पात्रों में जाते हैं, जैसे लम्पट मनुष्य अपने मित्र की स्त्री के पास जाता है।

२३. शोध्यमान सोम, जैसे जार व्यभिचारिणी स्त्री के पास जाता है, वैसे ही स्तोताओं के द्वारा अभिषुत और पात्रों में क्षरणशील सोम, तुम शत्रुओं का विनाश करते हुए आते हो। जैसे उड़नेवाला पक्षी वृक्षों पर बैठा करता है, वैसे ही शोधित सोम कलश में बैठते हैं।

२४. सोम, बच्चों के लिए दूध का दोहन करनेवाली स्त्री के समान तुम्हारी यजमानों का धन दोहन करनेवाली और शोभन धाराओंवाली दीप्तियाँ पात्रों में जाती हैं। हरित-वर्ण, लाये गये और ऋत्विकों के द्वारा बहुधा वरणीय सोम वसतीवरी-जल में और देवकामी यजमानों के कलश में बार-बार शब्द करते हैं।

९७ सूक्त

(६ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि १-३ तक मैत्रावरुणि वशिष्ठ, ४-६ तक इन्द्रपुत्र प्रभृति, ७-९ तक वृषगण, १०-१२ तक मन्यु, १३-१५ तक उपमन्यु, १६-१८ तक व्याघ्रपाद्, १९-२१ तक शक्ति, २२-२४ तक कर्णश्रुत, २५-२७ तक मृलीक, २८-३० तक वसुक्र (ये सब ऋषि वशिष्ठ गोत्रज हैं), ३१-३३ तक शक्ति-पुत्र पराशर और शेष के आङ्गिरस कुत्स। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रेरक सुवर्ण के द्वारा शोधित और प्रदीप्त-किरण सोम अपने रस को देवों के पास भेजते हैं। अभिषुत सोम शब्दायमान होकर पवित्र की ओर उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार ऋत्विक् यजमान के पशुवाले और सुनिर्मित यज्ञ-गृह में जाते हैं।

२. संग्राम के योग्य, आच्छादक और कल्याणकर तेज को धारण करनेवाले, पूज्य, कवि, ऋत्विकों के वक्तव्यों के प्रशंसक, सर्व-द्रष्टा और जागरणशील सोम, तुम यज्ञ में अभिषवण फलकों पर बैठो।

३. यशस्वियों में भी यशस्वी, पृथिवी पर उत्पन्न और प्रसन्नतादायक सोम उच्च और मेषलोममय पवित्र में शोधित होते हैं। सोम शोधित होकर तुम अन्तरिक्ष में शब्द करो। मंगलमय रक्षणों से हमारी रक्षा करो।

४. स्तोताओ, भली भाँति स्तुति करो और देवों की पूजा करो। प्रचुर धन की प्राप्ति के लिए सोम को प्रेरित करो। स्वादुकर सोम मेषलोममय पवित्र में शोधित होते हैं। देवाभिलाषी सोम कलश में बैठते हैं।

५. देवों की मैत्री की प्राप्ति की इच्छा से अनेक धाराओंवाले सोम कलश में क्षरित होते हैं। कर्म-निष्ठों के द्वारा स्तुत होकर सोम प्राचीन धाम (द्युलोक) में जाते हैं। महान् सौभाग्य के लिए वे इन्द्र के पास जाते हैं।

६. हरित-वर्ण और शोधित सोम, स्तोत्र करने पर तुम धन के लिए पधारो। तुम्हारा मदकर रस, युद्ध के लिए, इन्द्र के पास जाय। देवों के साथ रथ पर बैठकर आओ। तुम हमें कल्याण-वचनों से हमारी रक्षा करो।

७. उशना नामक कवि के समान काव्य (स्तोत्र) करते हुए इस मंत्र के कर्त्ता ऋषि इन्द्रादि देवों का जन्म भली भाँति जानते हैं। प्रचुरकर्मा, साधुमित्र, पवित्रता के उत्पादक और राज-दिनवाले सोम, शब्द करते हुए, पात्रों में जाते हैं।

८. हंसों के समान विचरण करनेवाले वृषगण नाम के ऋषि लोग शत्रु-बल-भीत होकर क्षिप्रघातक और शत्रुहन्ता सोम को लक्ष्य कर यज्ञ-गृह में जाते हैं। मित्र-रूप स्तोता लोग स्तोत्र-योग्य, दुर्द्धर्ष और क्षरणशील सोम को लक्ष्य करके वाद्य के साथ गान करते हैं।

९. सोम शीघ्रगामी हैं। बहुतों के द्वारा स्तुत्य और अनायास क्रीड़ा करनेवाले सोम का अनुगमन दूसरे लोग नहीं कर सकते। तीक्ष्ण-तेजस्वी

सोम अनेक प्रकार के तेज प्रकट करते हैं। अन्तरिक्ष में वर्त्तमान सोम दिन में हरित-वर्ण के दिखाई देते हैं और रात में सरलगामी और प्रकाशयुक्त दिखाई देते हैं।

१०. क्षरणशील, बलवान् और गमनशील सोम इन्द्र के लिए बलकर रस को भेजते हुए उनके मद के लिए क्षरित होते हैं। वे राक्षस-कुल को मारते हैं। वरणीय धन देनेवाले और बल के राजा सोम चारों ओर से शत्रुओं का संहार करते हैं।

११. पत्थरों से अभिषुत और मदकारिणी धाराओं से देवों की पूजा करनेवाले सोम मेषलोममय पवित्र का व्यवधान करके क्षरित होते हैं। इन्द्र की मैत्री को आश्रय करते हुए द्योतमान और मदकर सोम इन्द्र के मद के लिए क्षरित होते हैं।

१२. यथाकाल प्रिय कर्मों के करनेवाले, शोधित, क्रीड़ाशील और अपने रस से इन्द्रादि देवों का पूजन करनेवाले दिव्य सोम क्षरित होते हैं। उन्हें उच्च और मेषलोममय पवित्र पर दस अँगुलियाँ भेजती हैं।

१३. जैसे गायों को देखकर लोहित-वर्ण वृषभ शब्द करता है, वैसे ही शब्द करते हुए सोम द्यावापृथिवी को जाते हैं। युद्ध में, इन्द्र के समान ही, सोम का शब्द सब सुनते हैं। सोम अपना परिचय सबको देते हुए जोर से बोलते हैं।

१४. सोम, तुम दुग्ध-युक्त, क्षरणशील और शब्द-कर्त्ता हो। तुम मधुर रस को प्राप्त करते हो। सोम, जल से परिषिक्त और शोधित तुम, अपनी धारा को विस्तृत करके, इन्द्र के लिए जाते हो।

१५. मदकर सोम, तुम जलग्राही मेघ को, वृष्टि के लिए, घातक आयुधों से निम्नगामी बनाते हुए, मद के लिए क्षरित होओ। शोभन, श्वेतवर्ण, पवित्र में अभिषिक्त और हमारी गाय की अभिलाषा करनेवाले सोम, क्षरित होओ।

१६. दीप्त सोम, तुम स्तोत्र से प्रसन्न होकर और हमारे लिए वैदिक मार्गों को सुगम कर विस्तृत द्रोण-कलश में क्षरित होओ। घने लोहे के

हथियार से दुष्ट राक्षसों को मारते हुए उन्नत और मेषलोममय पवित्र में धाराओं के साथ जाओ।

१७. सोम, द्युलोकोत्पन्न, गमनशील, अन्नवाली, सुखदायी और दान करनेवाली वृष्टि को बरसाओ। सोम पृथिवी-स्थित वायु प्रेमपात्र पुत्र के समान हैं। इन्हें खोजते-खोजते आओ।

१८. जैसे गाँठ को सुलझाकर अलग किया जाता है, वैसे ही मुझे पापों से अलग करो। सोम, तुम मुझे सरल मार्ग और बल दो। हरित-वर्ण और पात्रों में निर्मित होकर वेगशाली अश्व के समान शब्द करते हो। देव, शत्रु-हिंसक तुम गृहवाले हो। मेरे पास आओ।

१९. तुम पर्याप्त मदवाले हो। देवों के यज्ञ में और मेषलोममय पवित्र में, धाराओं के साथ, जाओ। अनेक धाराओं से युक्त और सुन्दर गन्ध से सम्पन्न होकर मनुष्यों के द्वारा क्रियमाण युद्ध में, अन्न-लाभ के लिए, चारों ओर जाओ।

२०. जैसे रज्जु-रहित, रथ-शून्य और अबद्ध अश्व, युद्ध में सज्जित करके, शीघ्रता के साथ अपने लक्ष्य को जाते हैं, वैसे ही यज्ञ में निर्मित और दीप्त सोम शीघ्र ही कलश की ओर जाते हैं। देवो, आनेवाले सोम को पान करने के लिए पास जाओ।

२१. सोम, हमारे यज्ञ को लक्ष्य करके द्युलोक से रस को चमसों में गिराओ। सोम अभिलषित, प्रवृद्ध और वीर पुत्र तथा बलिष्ठ धन हमें दें।

२२. ज्यों ही अभिलषित स्तोता का वचन अन्तःकरण से निकलता है और ज्यों ही अतीव चमत्कृत याज्ञिक द्रव्य, अनुष्ठान-काल में, लाया जाता है; त्यों ही गौ का दूध अभिलाषा के साथ सोम की ओर जाता है और उस समय सोम कलश में अवस्थित करते हैं। सोम सबके प्रेमपात्र स्वामी के समान हैं।

२३. द्युलोकोत्पन्न, धन-दाताओं के मनोरथ-रक्षक और शोभन-बुद्धि

सोम सत्य-रूप इन्द्र के लिए अपने रस को गिराते हैं। राजा सोम साधु-बल के धारक हैं। दस अँगुलियाँ प्रचुर परिमाण में सोम प्रस्तुत करती हैं।

२४. पवित्र में शोधित, मनुष्यों के दर्शक, देवों और मनुष्यों के राजा और धन-पति—असीम धन के स्वामी सोम देवों और मनुष्यों में सुन्दर और कल्याणकारी जल को धारण करते हैं।

२५. सोम, जैसे अश्व युद्ध में जाता है, वैसे ही यजमानों के अन्न के लिए और इन्द्र-वायु के पान के लिए जाओ। तुम बहुविध और प्रवृद्ध अन्न हमें दो। सोम, शोधित तुम हमारे लिए धन-प्रापक हो।

२६. देवों के तर्पक, पात्रों में सिक्त, शोभन-बुद्धि, यजमान के यज्ञ-कर्त्ता, सबके स्वीकार्य, होताओं के समान द्युलोक-स्थित इन्द्रादि की स्तुति करनेवाले और अतीव मदकर सोम हमें वीर पुत्र और गृह प्रदान करें।

२७. स्तुत्य सोम, तुम्हें देवता लोग पीते हैं। देवों के द्वारा विस्तृत यज्ञ में, महान् भक्षण के लिए, देवों के पान के लिए क्षरित होओ। तुम्हारे द्वारा भेजे जाकर हम अमर संग्राम में महाबली शत्रुओं को हरावें। शोधित होकर तुम हमारे लिए द्यावापृथिवी को शोभन निवासवाली करो।

२८. सोम, सिंह के समान शत्रुओं के लिए भयंकर, मन से भी अधिक वेगवाले और सोमाभिषव करनेवाले ऋत्विकों के द्वारा योजित तुम अश्व के समान शब्द करते हो। दीप्त सोम, जो मार्ग अतीव सरल हैं, उन्हीं से हमारे लिए मन की प्रसन्नता उत्पन्न करो।

२९. सोम, देवों के लिए उत्पन्न होकर सोम की सौ धारायें बनाई जा रही हैं। क्रान्तदर्शी लोग सोम की बहुविध धाराओं को शोधित करते हैं। सोम, हमारे पुत्रों के लिए द्युलोक से गुप्त धन भेजो। तुम महान् धन के अग्रगामी हो।

३०. जैसे दीप्त सूर्य की दिन करनेवाली किरणें बनाई जाती हैं, वैसे ही सोम की धारायें बनाई जाती हैं। सोम धीर राजा और मित्र हैं। कर्मकर्त्ता पुत्र जैसे पिता को नहीं हराता, वैसे ही सोम, तुम प्रजा को पराजित मत करो।

३१. सोम, जिस समय तुम जल से मेषलोममय पवित्र को लाँघकर जाते हो, उस समय तुम्हारी मधुर धारायें बनाई जाती हैं। शोध्यमान सोम, गोदुग्ध को लक्ष्य करके तुम क्षरित होते हो। उत्पन्न होकर तुम अपने पूजनीय तेज के द्वारा आदित्य को भरपूर करते हो।

३२. अभिषुत सोम सत्यरूप यज्ञ के मार्ग पर बार-बार शब्द करते हैं। अमर और शुक्लवर्ण सोम, तुम विशेष रूप से शोभित हो रहे हो। स्तोताओं की बुद्धि के साथ शब्द का प्रेरण करनेवाले सोम, तुम मदकर होकर इन्द्र के लिए क्षरित होते हो।

३३. सोम, देवों के यज्ञ में कर्म के द्वारा धाराओं को गिराते हुए तुम द्युलोकोत्पन्न और सुन्दर पतनवाले हो। नीचे देखो। सोम, कलश की ओर जाओ। शब्द करते हुए तुम प्रेरक सूर्य की कान्ति को प्राप्त करो।

३४. वहनकर्त्ता यजमान तीनों वेदों की स्तुतियाँ करता है। वह यज्ञ-धारक और वृद्ध सोम की कल्याणकर स्तुति को प्रेरित करता है। जैसे साँड़ गायों की ओर जाता है, वैसे ही अपने पति सोम को दूध में मिलाने के लिए गायें सोम के पास जाती हैं। अभिलाषी स्तोता लोग स्तुति के लिए सोम के पास जाते हैं।

३५. प्रसन्नता देनेवाली गायें सोम की अभिलाषा करती हैं। मेधावी स्तोता लोग स्तुति के द्वारा सोम को पूछते हैं। गोरस के द्वारा सिक्त और अभिषुत सोम ऋत्विकों के द्वारा परिपूरित किये जाते हैं। त्रिष्टुप् छन्दवाले मंत्र सोम से मिलते हैं।

३६. सोम, पात्रों में परिषिक्त और शोधित होकर हमारे लिए कल्याण-पूर्वक क्षरित होओ। महान् शब्द करते हुए इन्द्र के पेट में पैठो। स्तुति-रूप वचन को वर्द्धित करो। हमारे लिए अनेक स्तवों को विस्तृत करो।

३७. जागरणशील, सत्य स्तोत्रों के ज्ञाता और शोधित सोम चमसों में बैठते हैं। परस्पर मिले हुए, अतीव अभिलाषी, यज्ञ के नेता और कल्याण-पाणि पुरोहित लोग जिन सोम को पवित्र में छूते हैं।

३८. वह शोधित सोम इन्द्र के पास वैसे ही जाते हैं, जैसे वर्ष जाता है। वे द्यावापृथिवी को अपनी महिमा से पूरित करते हैं। सोम स्वतेज से अन्धकार को दूर करते हैं। जिन प्रिय सोम की प्रियतम धाराएँ रक्षा करती हैं, वे कर्मचारी के वेतन के समान हमें शीघ्र धन दें।

३९. देवों के वर्द्धक स्वयं वर्द्धमान, पवित्र में शोधित और मनोरथों के सेचक सोम अपने तेज से हमारी रक्षा करें। सोमपान के द्वारा पणियों के द्वारा अपहृत गायों के पद-चिह्नों को जानते हुए, सर्वज्ञ, सूर्य-ज्ञाता (हमारे) पितर (अङ्गिरा लोग) पशुओं को लक्ष्य करके अन्धकारावृत्त शिलासमूहों को सोम के तेज से देखकर पशुओं को ले आयें।

४०. जल-वर्षक और राजा सोम विस्तृत और भुवन के जल के धारक अन्तरिक्ष में प्रजा का उत्पादन करते हुए सबको लाँघ जाते हैं। काम-वर्षक, अभिषुत और दीप्त सोम उच्च और मेषलोममय पवित्र में यथेष्ट बढ़ते हैं।

४१. पूज्य सोम ने प्रचुर कार्य किये हैं। जल के गर्भ सोम ने देवों का आश्रय किया। शोधित सोम ने इन्द्र के लिए बल धारण किया। सोम ने सूर्य में तेज उत्पन्न किया।

४२. सोम, हमारे धन और अन्न के लिए वायु को प्रमत्त करो। शोधित होकर तुम मित्र और वरुण को तृप्त करते हो। मरुतों के बल और इन्द्रादि को हृष्ट करते हो। स्तुत्य सोम, द्यावापृथिवी को प्रमत्त करो। हमें धन दो।

४३. उपद्रवों के घातक, वेगशाली राक्षस और हिंसकों के बाधक सोम, क्षरित होओ। अपने रस को दूध में मिलाते हुए पात्रों में जाते हो। तुम इन्द्र के मित्र हो। सोम, हम तुम्हारे मित्र हों।

४४. सोम, मधुर भाण्डार को क्षरित करो। धन के वर्षक रस को क्षरित करो। हमें वीर पुत्र दो। भजनीय अन्न भी दो। सोम शोधित होकर तुम इन्द्र के लिए रुचिकर होओ। हमारे लिए अन्तरिक्ष से धन दो।

४५. अभिषुत सोम अपनी धारा से, वेगशाली अश्व के समान, जानेवाले हैं। जैसे प्रस्रवणशील नदी नीचे जाती है, वैसे ही सोम कलश को जाते हैं। शोधित सोम वृक्षोत्पन्न कलस में बैठते हैं। सोम जल और दूध में मिलाये जाते हैं।

४६. इन्द्र, अभिलाषी तुम्हारे लिए प्राज्ञ और वेगशाली सोम चमसों में क्षरित होते हैं। सर्वदर्शी, रथवाले और यथार्थ बली सोम देवकामी यजमानों के लिए कामदाता के समान बनाये गये हैं।

४७. पूर्वकालीन और अन्नरूप धारा से गिरते हुए सबका दोहन करनेवाली पृथिवी के रूपों को अपने तेज से ढकते हुए, शीत, आतप और वर्षा के निवारक यज्ञ-गृह को बनाते हुए तथा जल में अवस्थिति करते हुए सोम, स्तोत्र-ध्वनि करनेवाले होता के समान, शब्द करते हुए यज्ञों में जाया करते हैं।

४८. अभिलषणीय देव, तुम रथवाले हो। हमारे यज्ञ में अभिषवण-फलकों पर क्षरित होकर वसतीवरी-जल में शीघ्र और चारों ओर क्षरित होओ। स्वादिष्ठ, मधुर, याज्ञिक और सबके प्रेरक तुम, देवता के समान, सत्य स्तोत्रवाले हो।

४९. स्तुत होते हुए तुम पान के लिए वायु के पास जाओ। पवित्र में शोधित होकर तुम पान के लिए मित्र और वरुण के पास जाओ। सबके नेता, वेगशाली और रथ पर रहनेवाले अश्विद्वय के पास जाओ। काम-वर्षक और वज्रबाहु इन्द्र के पास भी जाओ।

५०. सोम, हमारे लिए तुम सुन्दर-सुन्दर वस्त्र ले आओ। शोधित होकर तुम हमें मधुर दूध देनेवाली और नवप्रसूता गाय दो। हमारे भरण के लिए अह्लादक सोना हमें दो। स्तुत्य सोम, रथवाले अश्व भी हमें दो।

५१. सोम, पवित्र-द्वारा शोधित होकर तुम द्युलोकोत्पन्न धन हमें दो। पृथिवी पर उत्पन्न धन भी हमें दो। हमें द्रव्य प्राप्त करने की शक्ति दो। जमदग्नि ऋषि के समान ऋषि-पुत्रों का योग्य धन हमें दो।

५२. सोम, शोधित धारा के द्वारा ये सारे धन क्षरित करो। सोम, माननेवाले यजमानों के वसतीवरी-जल में जाओ। सबके ज्ञापक और वायु के समान वेगशाली सूर्य और अनेक यज्ञोंवाले इन्द्र भी सोम के पास जाते हैं। सोम मुझे कर्मनिष्ठ पुत्र दें। सोम, तुम्हारे द्वारा तृप्त किये गये इन्द्र और सूर्य भी पुत्र दें।

५३. सोम, सबके द्वारा तुम आश्रयणीय हो। हमारे शब्दतीर्थ (यज्ञ) में इस धारा के द्वारा भली भाँति क्षरित होओ। जैसे फल पाने की इच्छा करनेवाला वृक्ष को कँपाता है, वैसे ही शत्रु-घातक सोम ने साठ हज़ार धनों को, शत्रु-जय के लिए, हमें दिया।

५४. वाण बरसाना और शत्रुओं को नीचे करना—सोम के ये दो कर्म सुखावह हैं। ये दोनों कर्म अश्व-युद्ध और द्वन्द्व-युद्ध में शत्रु-संहारक होते हैं। इन दोनों कर्मों से सोम ने शब्द करनेवाले शत्रुओं का वध किया। सोम ने शत्रुओं को युद्ध से दूर किया। सोम, शत्रुओं को दूर करो। अग्नि-होत्र न करनेवालों को भी दूर करो।

५५. सोम, अग्नि, वायु और सूर्य नाम के तीन विस्तृत पवित्रों को तुम भली भाँति प्राप्त करते हो। शोधित होते हुए तुम मेषलोममय पवित्र में जाते हो। तुम भजनीय हो। दातव्य धन के दाता हो। सोम, सारे धनियों से तुम धनी हो।

५६. सर्वज्ञ, मेधावी और सारे संसार के स्वामी सोम क्षरित होते हैं। यज्ञों में रस-कणों को भेजते हुए सोम मेषलोममय पवित्र में दोनों ओर से जाते हैं।

५७. पूज्य और अहिंसित देव लोग सोम का आस्वादन करते हैं। सोमास्वादन करनेवाले देवता सोम की धारा के पास शब्द करते हैं। जैसे धनाभिलाषी स्तोता लोग शब्द करते हैं, वैसे ही कर्म-कुशल पुरोहित लोग दस अँगुलियों से सोम को प्रेरित करते हैं और जल के द्वारा सोम-रूप को मिश्रित करते हैं।

५८. पवित्र में संशोधित तुम्हारी सहायता से हम युद्ध में अनेक कर्त्तव्य कर्मों को करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक, धन के द्वारा, हमारा मान करें।

९८ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि वृषागिर राजा के पुत्र अम्बरीष और भरद्वाज-पुत्र ऋजिश्वा। छन्द अनुष्टुप् और बृहती।)

१. सोम, बहुतों के द्वारा अभिलषणीय, अनेक पोषणों से युक्त, अनेक यशवाला, महान् को भी पराजित करनेवाला और बलप्रद पुत्र हमें दो।

२. रथ पर स्थित पुरुष जैसे कवच को धारण करता है, वैसे ही निष्पीड़ित सोम मेषलोममय पवित्र पर क्षरित होते हैं। स्तुत सोम काष्ठमय कलश से चालित होकर धारा-द्वारा क्षरित होते हैं।

३. निष्पीड़ित सोम, मद के लिए देवों के द्वारा प्रेरित होकर, मेष-लोम के पवित्र में क्षरित होते हैं। जैसे शोभन दीप्ति से सोम अन्तरिक्ष में जाते हैं, वैसे ही सबके मुख्य सोम दुग्ध आदि की इच्छा करके धारा के साथ जाते हैं।

४. सोम, तुम अनेक मनुष्यों और हविर्दाता यजमान के लिए धन देते हो। सोम, तुम अनेक पुत्र-पौत्रों से युक्त अनेक संख्यक धन मुझे देते हो।

५. शत्रुघातक सोम, हम तुम्हारे हों। वासक सोम, अनेकों द्वारा अभिलषणीय और तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन और अन्न के हम अत्यन्त समीप-तम हों। धन-स्वरूप सोम, हम सुख के अत्यन्त समीप हों।

६. कर्म करने के लिए इधर-उधर जाननेवाली भगिनी-स्वरूपा दस अँगुलियाँ यशस्वी, पत्थरों पर अभिषुत, इन्द्रप्रिय, सबके द्वारा अभिलषित और धारावले जिन सोम को वसतीवरी के द्वारा सेवा करती हैं, उनको यजमान शोधित करते हैं।

७. सबके काम्य, हरित-वर्ण और बभ्रु-वर्ण (पिङ्गल-वर्ण) सोम को मेषलोम के द्वारा संशोधित किया जाता है। सोम, अपने मदकर रस के साथ, सारे देवों के पास जाते हैं।

८. तुम लोग सोम के द्वारा रक्षित होकर बल-साधन रस का पान करो। सूर्य के समान सबके अभिलषणीय सोम स्तोताओं को प्रचुर अन्न देते हैं।

९. मनु से उत्पन्न द्यावापृथिवी, पर्वतवासी सोम ने यज्ञ में तुम दोनों को बनाया। उच्च शब्दवाले यज्ञ में ऋत्विकों ने सोम का अभिषव किया।

१०. सोम, वृत्रघ्न इन्द्र के पान के लिए पात्रों में सिञ्चित किये जाते हो। ऋत्विकों को दक्षिणा देनेवाले और देवों के लिए हवि देने की इच्छा से यज्ञ-गृह में बैठे हुए यजमान को फल देने के लिए तुम सींचे जाते हो।

११. प्रतिदिन प्रातःकाल प्राचीन सोम पवित्र के ऊपर क्षरित होते हैं। मूर्ख "हुरश्चित्" नाम के दस्यु लोग प्रातःकाल सोम को देखकर अन्तर्धान और द्रवीभूत हो गये।

१२. मित्रो, प्राज्ञ तुम और हम शोभित और बलकर तथा सुन्दर गन्ध से युक्त सोम को पियें। हम बलिष्ठ सोम का आश्रय करें।

९९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि काश्यप रेभ और सूनु। छन्द बृहती और अनुष्टुप्।)

१. सबके काम्य और शत्रुओं को रगड़नेवाले सोम के लिए पौरुष प्रकट करनेवाले धनुष पर ज्या (गुण) को चढ़ाया जाता है। पूजार्थी ऋत्विक् लोग मेधावी देवों के आगे असुर (बली) सोम के लिए शुक्लवर्ण दशापवित्र (छनना) फैलाते हैं।

२. रात्रि के अनन्तर जल के द्वारा अलंकृत होकर सोम अन्नों को लक्ष्य करके जा रहे हैं। सेवक यजमान की कर्मसाधिका अँगुलियाँ हरितवर्ण

सोम को पात्र में जाने के लिए प्रेरित करती हैं। सभी सोम सवनों के लिए जाते हैं।

३. जिस रस का इन्द्र पान करते हैं, सोम के उसी रस को हम सुशोभित करते हैं। गमनशील स्तोता लोग पहले और इस समय सोमरस को पीते हैं।

४. उन शोधित सोम को प्राचीन गाथाओं के द्वारा स्तोता लोग स्तुत करते हैं। इधर-उधर जानेवाली अँगुलियाँ देवों को सोम-रूप हवि देने में समर्थ हैं।

५. जल से सिक्त और सर्वधारक सोम को यजमान मेषलोममय पवित्र पर शोभित करते हैं। मेधावी यजमान सोम की, दूत के समान, देवों की सूचना के लिए, प्रार्थना करते हैं।

६. अतीव मदकर सोम, शोधित होकर, चमसों पर बैठते हैं। जैसे साँड़ गाय में रेत देता है, वैसे ही सोम चमसों पर रस देते हैं। सोम कर्म के स्वामी हैं। वे अभिषुत होते हैं।

७. देवों के लिए अभिषुत और प्रकाशमान सोम को ऋत्विक् लोग शोधित करते हैं। जब सोम प्रजा में धनदाता जाने जाते हैं, तब महान् जल में स्नान करते हैं।

८. सोम, अभिषुत और सर्वत्र विस्तृत होकर तुम ऋत्विकों के द्वारा छनने (पवित्र) में भली भाँति लाये जाते हो। अतीव मदकर तुम इन्द्र के लिए चमसों पर बैठते हो।

१०० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि रेभ और सूनु। छन्द अनुष्टुप्।)

१. जैसे गायें प्रथम आयु में उत्पन्न बछड़े को चाटती हैं, वैसे ही द्रोह-शून्य जल इन्द्र के प्रिय और सबके अभिलषणीय सोम के पास जाता है।

२. दीप्यमान सोम, शोधित होकर तुम दोनों लोकों में बढ़नेवाले

धन को हमारे लिए ले आओ। तुम यजमान के घर में रहकर हविर्दाता यजमान के सारे धनों की रक्षा करते हो।

३. सोम, तुम मनोवेग के समान धारा को उसी प्रकार बनाओ, जिस प्रकार मेघ वृष्टि को बनाता है। सोम, तुम पार्थिव और द्युलोकोत्पन्न धन देते हो।

४. शत्रुजेता शूर का अश्व जैसे युद्ध में दौड़ता है, वैसे ही तुम्हारी भजनीय और वेगवाली धारा मेषलोममय पवित्र पर दौड़ती है।

५. क्रान्तदर्शी सोम, इन्द्र, मित्र और वरुण के पान के लिए अभिषुत तुम हमारे ज्ञान और बल के लिए धारा से बहो।

६. सोम, अत्यन्त अन्नदाता और अभिष्टुत तुम पवित्र में धारा से गिरो। सोम, तुम इन्द्र, विष्णु और अन्य देवों के लिए मधुर बनो।

७. सोम, जैसे बछड़ों को गायें चाटती हैं, वैसे ही हविर्धारक यज्ञ में द्रोह-शून्य और मातरूप जल हरितवर्ण तुम्हें चाटता है।

८. सोम, तुम महान् और श्रयणीय अन्तरिक्ष को नानाविध किरणों के साथ जाते हो। वेगवान् तुम हविर्दाता यजमान के गृह में रहकर सारे अन्धकारों को नष्ट करते हो।

९. महान् कर्मवाले सोम, तुम द्यावापृथिवी को धारण करते हो। क्षरणशील सोम, महिमा से युक्त होकर तुम कवच को धारण करते हो।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

१०१ सूक्त

(पञ्चम अध्याय। देवता पवमान सोम। ऋषि १-३ तक के श्यावाश्व के पुत्र अधिगु ४-६ तक के नहुष-पुत्र ययाति, ७-९ तक के मनु-पुत्र नहुष, १०—१२ तक के संवरण के पुत्र मनु और १३-१६ तक के वाक्पुत्र विश्वामित्र वा प्रजापति। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. मित्रो, अग्रेस्थित भक्षणीय (अन्न) सोम के अभिषुत और अत्यन्त मदकर रस के लिए लम्बी जीभवाले कुत्ते वा राक्षस को अलग करो—वह चाटने न पावे।

२. अभिषुत और कर्मनिष्ठ सोम पाप-शोधक धारा से चारों ओर वैसे ही क्षरित होते हैं, जैसे वेग से घोड़ा जाता है।

३. ऋत्विक् लोग दुर्द्धर्ष और भजनीय सोम को, सारी लालसाओं की इच्छा से, पत्थरों से अभिषुत करते हैं।

४. अतीव मधुर, मदकर और अभिषुत सोम पवित्र में रहकर इन्द्र के लिए पात्रों में क्षरित होते हैं। सोम, तुम्हारा मदकर रस इन्द्रादि के पास जाय।

५. सोम इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं—देवता लोग ऐसा स्तोत्र करते हैं। स्तुतियों के पालक, शब्दकारी और अपने बल के द्वारा संसार के प्रभु सोम अतिथियों के द्वारा पूजा की अभिलाषा करते हैं।

६. अनेक धाराओंवाले सोम क्षरित होते हैं। सोम से रस बहता है। सोम स्तुतियों के प्रेरक हैं, धन के प्रभु हैं और इन्द्र के सखा हैं।

७. पोषक, भजनीय और धन-कारण सोम, शोधित होकर गिरते हैं। सारे प्राणियों के स्वामी सोम अपने तेज से द्यावापृथिवी को प्रकाशित करते हैं।

८. सोम के मद के लिए प्रिय गायें शब्द करती हैं। शोधित सोम रक्षण के लिए मार्ग बना रहे हैं।

९. सोम, तुम्हारा जो ओजस्वी और चमत्कार-पूर्ण रस है, उसे क्षरित करो। रस पाँचों वर्णों के पास रहता है। उस रस से हम धन प्राप्त करें।

१०. पथ-प्रदर्शक, देवों के मित्र, अभिषुत, पाप-शून्य, दीप्त, शोभन-ध्यान और सर्वज्ञ सोम हमारे लिए आ रहे हैं।

११. गोचर्म पर उत्पन्न, पत्थरों से भली भाँति अभिषुत और धन के प्रापक सोम चारों ओर शब्द करते हैं।

१२. पवित्र में शोधित, मेधावी, दधि-मिश्रित, जल में गमनशील और स्थिरता से वर्तमान सोम, सूर्य के समान, पात्रों में दर्शनीय होते हैं।

१३. अभिषुत और पीने योग्य सोम का प्रसिद्ध घोष कर्मविघ्नकर्त्ता कुत्ते का विनाश करे। स्तोताओ, नम्रता-शून्य उस कुत्ते को उसी प्रकार मारो, जिस प्रकार भृगुओं ने प्राचीन काल में मख नामक व्यक्ति का वध किया था।

१४. जैसे रक्षक माता-पिता की बाँहों में पुत्र कूद पड़ता है, वैसे ही देवों के मित्र सोम आच्छादक पवित्र में ढल पड़ते हैं। जैसे जार व्यभि-चारिणी स्त्री की प्राप्ति के लिए जाता है, वैसे ही सोम अपने स्थान कलश में जाते हैं।

१५. बल साधन वे सोम शक्तिमान् हैं। सोम अपने तेज से द्यावा-पृथिवी को आच्छादित करते हैं। जैसे विधाता यजमान अपने गृह में जाता है, वैसे ही हरित-वर्ण सोम अपने कलश में सम्बद्ध होते हैं।

१६. सोम मेषलोममय पवित्र से कलश में जाते हैं। गोचर्म पर शब्दायमान, काम-वर्षक और हरितवर्ण सोम इन्द्र के संस्कृत स्थान को जाते हैं।

१०२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आप्त्य के पुत्र त्रित। छन्द उष्णिक्।)

१. यज्ञ-कर्त्ता और पूजनीय जल के पुत्र सोम यज्ञ-धारक रस को प्रेरित करते हुए समस्त प्रिय हवि को व्याप्त करते हैं। सोम द्यावापृथिवी में रहते हैं।

२. त्रित के यज्ञ में, हविर्द्धान म, वर्त्तमान और पाषाण के समान सुदृढ़ अभिषवण-फलक पर सोम गये। ऋत्विक् लोग यज्ञ-धारक सात गायत्री आदि छन्दों में प्रिय सोम की स्तुति करते हैं।

३. सोम, त्रित के यज्ञ के तीनों सवनों में प्रवाहित होओ। सामगान के समय दाता इन्द्र को ले आओ। बुद्धिमान् स्तोता इन्द्र का योजक स्तोत्र करता है।

४. प्रादुर्भूत और कर्मधारक सोम का, यजमानों के ऐश्वर्य के लिए, मातृरूप गंगा आदि सात नदियाँ वा सात छन्द प्रशंसित करते हैं। सोम धन के निश्चित ज्ञाता हैं।

५. समस्त द्रोह-शून्य देवता सोम के कर्म में मिलकर अभिलाषी होते हैं। रमणशील देवता अभिषुत सोम की सेवा करते हैं।

६. यज्ञ-बर्द्धक वसतीवरी-जल ने गर्भ-रूप सोम को यज्ञ में, दर्शनार्थ, उत्पन्न किया। सोम सबके कल्याणदाता, कान्तप्रज्ञ, पूज्य और बहुतों के अभिलषणीय हैं।

७. परस्पर संगत, महान् और सत्य-यज्ञ की मातृ-रूप द्यावापृथिवी के पास सोम स्वयं आगमन करते हैं। याज्ञिक पुरोहित लोग सोम को जल में मिलाते हैं।

८. सोम, ज्ञान, दीप्त इन्द्रियों और अपने तेज से, द्युलोक से अन्धकार-समूह को नष्ट करो। तुम हिंसा-शून्य यज्ञ में, अपने सत्य-धारक रस को प्रेरित करते हो।

१०३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आप्त्य त्रित। छन्द उष्णिक्।)

१. त्रित, तुम पवित्र से शोधित, कर्म-विधाता और स्तोताओं के साथ प्रसन्नता-दायक सोम के लिए वैसे ही उद्यत वचन कहो, जैसे नौकर वेतन पाता है।

२. गोदुग्ध में मिश्रित सोम मेषलोममय पवित्र में जाते हैं। हरितवर्ण सोम, शोधित होकर द्रोण-कलश, आधवनीय और पूतभृत् आदि तीन स्थानों को बनाते हैं।

३. सोम मेषलोममय पवित्र से मधुर रस को चुलानेवाले द्रोण-कलश में अपना रस भेजते हैं। सातों छन्द सोम की स्तुति करते हैं।

४. स्तुतियों के नेता, सबके देव, हरित-वर्ण और शोधित सोम अभिषवण-फलकों पर बैठते हैं। अभिषव हो जाने पर इन्द्रादि सब देवता अहिंसनीय सोम के पास जाते हैं।

५. सोम, तुम इन्द्र के समान रथ पर चढ़कर देव-सेना के पास जाओ। ऋत्विकों के द्वारा शोधित और अमर सोम स्तोताओं को धन आदि देते हैं।

६. अश्व के समान युद्धाभिलाषी दीप्यमान, देवों के लिए अभिषुत, पात्रों में व्यापक और पवित्र से शोधित सोम चारों ओर दौड़ते हैं।

१०४ सूक्त

(७ अनुवाक। देवता पवमान सोम। ऋषि कश्यप-पुत्र पर्वत और नारद। छन्द उष्णिक्।)

१. मित्र पुरोहितो, बैठो और शोधित सोम के लिए गाओ। अभिषुत सोम का यज्ञीय हवि आदि से, शोभा के लिए, वैसे ही अलंकृत करो, जैसे बच्चों को गहनों से माँ-बाप विभूषित करते हैं।

२. ऋत्विको, गृह-साधन, देवों के रक्षक, मद-कारण और अतीव बली सोम को मातृ-रूप जल में वैसे ही मिलाओ, जैसे बछड़े को गाय से मिलाया जाता है।

३. बल-साधन सोम को पवित्र में शोधित करो। सोम वेग, देवों के पान तथा मित्र और वरुण के पान के लिए अतीव सुख देते हैं।

४. सोम, हमें दान दिलाने के लिए धनदाता तुम्हें हमारी वाणी स्तुत करती है। हम तुम्हारे आवरक रस को गोदुग्ध में मिलाते हैं।

१०. पवित्र, स्तोत्र के आगे शब्द करनेवाले और शोधित सोम अपनी धारा से मेषलोममय पवित्र में जाते हैं।

११. बली, जल में क्रीड़ा करनेवाले और पवित्र को लाँघनेवाले सोम को स्तोता लोग, स्तुति के द्वारा, वर्द्धित करते हैं। तीन सवनोंवाले सोम की स्तुतियाँ स्तुति करती हैं।

१२. जैसे अश्व युद्ध में प्रस्तुत किया जाता है, वैसे ही अन्नाभिलाषी सोम को कलश में बनाया जाता है। शोधित सोम शब्द करते हुए पात्रों में चूते हैं।

१३. श्लाघनीय और हरितवर्ण सोम साधु वेग से कुटिल पवित्र को लाँघकर जाते हैं। सोम स्तोताओं को पुत्र-युक्त यश दे रहे हैं।

१४. सोम, देवाभिलाषी होकर तुम धारा से क्षरित होओ। तुम्हारी मदकरी धारायें बनाई जाती हैं। शब्दायमान सोम पवित्र की चारों ओर जाते हैं।

१०७ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि भरद्वाज, कश्यप आदि सात। छन्द बृहती, सतोबृहती, विराट्, द्विपदा आदि।)

१. जो सोम देवों की उत्तम हवि, मनुष्यों के हितैषी और अन्तरिक्ष में जानेवाले हैं, उन्हें पुरोहितों ने पत्थरों से अभिषुत किया। उन अभिषुत सोम को, ऋत्विको, तुम कर्म के अनन्तर जल से सींचो।

२. सोम, अहिंसनीय सुगन्धि और शोधित सोम, तुम मेषलोममय पवित्र से क्षरित होओ। अभिषव हो जाने पर दूध आदि और सत्तू में सोम को मिलाते हुए हम जल में स्थित तुम्हें भजते हैं।

३. अभिषुत देवों के तर्पक, कर्त्ता, पात्रों में क्षरणशील और सबके द्रष्टा सोम, सबके दर्शन के लिए, क्षरित होते हैं।

४. सोम, शोधित होकर तुम वसतीवरी जल में मिलाकर धारा से

क्षरित होते हो। रत्नदाता तुम सत्य-यज्ञ के स्थान में बैठते हो। दीप्त सोम, तुम स्पन्दनशील और हिरण्मय हो।

५. मदकर, प्रसन्नता-कारक और दिव्य गोस्तन को दुहनेवाले सोम प्राचीन स्थान अन्तरिक्ष में बैठते हैं। कर्मनिष्ठ ऋत्विकों के द्वारा गृहीत, शोधित और सबके द्रष्टा सोम द्रुतवेग से यज्ञ के अवलम्बन तथा यज्ञकर्त्ता यजमान को अन्न देने के लिए जाते हैं।

६. सोम, जागरणशील, प्रिय और शोधित तुम मेषलोममय पवित्र में क्षरित होते हो। तुम मेधावी और पितरों के नेता हो। हमारे यज्ञ को तुम अपने मधुर रस से सींचो।

७. मार्गदर्शक, काम-सेचक, सबके प्रदर्शक, मेधावी और सूक्ष्म-दर्शक सोम क्षरित होते हैं। तुम क्रान्तप्रज्ञ और अतीव देवकामी हो। द्युलोक में सूर्य को प्रकट करते हो।

८. ऋत्विकों के द्वारा अभिषुत होकर सोम उच्च और मेषलोममय पवित्र में जाते हैं। अपनी हरितवर्ण और मदकारिणी धारा से सोम द्रोण-कलश में जाते हैं।

९. गोदुग्ध के साथ सोम निम्नस्थ कलश में क्षरित होते हैं। अपने भिक्षण के लिए सोम दुग्धादि के साथ प्रवाहित होते हैं। जैसे जल समुद्र में जाता है, वैसे ही संभजनीय और रस-रूप अन्न द्रोण-कलश में जाता है। मदकर सोम, मद के लिए, अभिषुत किये जाते हैं।

१०. पत्थरों से अभिषुत होकर तुम मेषलोममय पवित्र का व्यवधान करके क्षरित होते हो। हरित-वर्ण सोम अभिषवण फलकों के ऊपर स्थित कलश में वैसे ही पैठते हैं, जैसे मनुष्य नगर में पैठता है। काष्ठ-निर्मित पात्रों में तुम स्थान बनाते हो।

११. अन्नाभिलाषी सोम सूक्ष्म मेषलोममय पवित्र का व्यवधान करके क्षरित होते हैं। अनुमोदन के योग्य, पुरोहितों के द्वारा शोधित, मेधावी के द्वारा अभिषुत और हरितवर्ण सोम वैसे ही शोधित किये जाते हैं, जैसे लोग जयाभिलाषी अश्व को युद्ध में विभूषित करते हैं।

१२. सोम, देवों के पान के लिए तुम वैसे ही जल से पूरित किये जाते हो, जैसे जल से समुद्र पूर्ण किया जाता है। मदकर और जागरणशील तुम लता के रस से रस चुलानेवाले द्रोण-कलश में जाते हो।

१३. स्पृहणीय, प्रसन्नता-कारक और पुत्र के समान शोधनीय सोम शुक्लवर्ण पवित्र को ढकते हैं। जैसे वेगशाली मनुष्य युद्ध में रथ को प्रेरित करते हैं, वैसे ही जल में दोनों हाथों की अँगुलियाँ सोम को प्रेरित करती हैं।

१४. गमनशील सोम अपना मदकर रस चारों ओर प्रवाहित करते हैं। अन्तरिक्ष के अत्युच्च पवित्र में विद्वान् मदकर और सबके प्रापक सोम रस प्रवाहित करते हैं।

१५. शोधित, दिव्य और अतीव सत्य-राजा सोम कलश में, धारा से क्षरित होते हैं। प्रेरित और अत्यन्त सत्य सोम मित्र और वरुण के रक्षण के लिए जाते हैं।

१६. कर्मनिष्ठों के द्वारा नियत, स्पृहणीय, सूक्ष्मदर्शक, दिव्य, अन्तरिक्ष में उत्पन्न और राजा सोम इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं।

१७. मदकर और अभिषुत सोम इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं। अनेक धाराओंवाले सोम मेषलोममय पवित्र को लाँघते हैं। पुरोहित लोग सोम का शोधन कर रहे हैं।

१८. अभिषवण-फलकों पर शोध्यमान, स्तुति के उत्पादक और क्रान्त-प्रज्ञ सोम इन्द्रादि के पास जाते हैं। जल में मिलकर और काष्ठ-पात्रों में बैठकर उत्कृष्टतर सोम दुग्ध आदि में मिलाये जाते हैं।

१९. सोम, तुम्हारी मैत्री में मैं अनुदिन रमण करता हूँ। पिंगलवर्ण सोम, तुम्हारे मित्र मुझे अनेक राक्षस, बाधा देते हैं। उन्हें मारो।

२०. पिंगलवर्ण सोम, तुम्हारी मैत्री के लिए मैं दिन-रात रमण करता हूँ। प्रदीप्त हम उज्ज्वल और परम स्थान में स्थित सूर्यरूप तुम्हें प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। जैसे चिड़ियाँ सूर्य का अतिक्रम करती हैं, वैसे ही हम तुम्हारे निकट जाने में व्यस्त हैं।

२१. शोभन अंगुलिवाले सोम, शोध्यमान तुम अन्तरिक्ष में (कलश में) शब्द भेजते हो। पवमान सोम, स्तोताओं को तुम पिङ्गलवर्ण और बहुतों के द्वारा स्पृहणीय धन दो।

२२. सोम, वर्षक और जल में विभूषित तथा मेषलोम के पवित्र में शोधित सोम जल में वा कलश में शब्द करते हैं। सोम, दुग्ध में मिश्रित होकर तुम संस्कृत स्थान में जाते हो।

२३. सोम, सारे स्तोत्रों को लक्ष्य करके अन्नलाभ के लिए क्षरित होओ। सोम, देवों के मदकर और उनमें मुख्य तुम कलश को धारण करते हो।

२४. सोम, तुम मर्त्यलोक और दिव्यलोक के प्रति धारक पदार्थों के साथ क्षरित होओ। सूक्ष्मदर्शक सोम, मेधावी लोग स्तुतियों और अँगु-लियों के द्वारा श्वेतवर्ण तुम्हें प्रेरित करते हैं।

२५. शोधित, मरुतों से युक्त, गमनशील, मदकर और इन्द्रिय-सेवित सोम स्तुति और अन्न को लक्ष्य करके तथा अपनी धारा से पवित्र को लाँघकर बनाये जाते हैं।

२६. जल में मिलकर और अभिषवकर्त्ताओं के द्वारा प्रेरित सोम कलश में जाते हैं। दीप्ति का प्रकाश कर और क्षीर आदि को अपना रूप बनाकर सोम इस समय स्तुति की इच्छा करते हैं।

१०८ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि गौरवीति, शक्ति, उरु, ऋजिश्वा, ऊर्ध्वसद्मा, कृतयशा, ऋणञ्चय आदि। छन्द ककुप्, अयुक् सतोबृहती, गायत्री आदि।)

१. सोम, तुम अतीव मधुर और मदकर होकर इन्द्र के लिए क्षरित होओ। तुम अतीव पुत्रदाता, महान्, दीप्त और मदकारण हो।

२. काम-वर्षक इन्द्र तुम्हें पीकर वृषभ के समान आचरण करते हैं।

सबके वर्द्धक तुम्हारे पान से सुन्दर ज्ञानी होकर इन्द्र शत्रुओं के अन्न का उसी भाँति अतिक्रमण करते हैं, जिस भाँति अश्व युद्ध में जाता है।

३. सोम, अतीव दीप्त देवों को लक्ष्य करके उनके अमर होने के लिए शीघ्र शब्द करते हो।

४. अभिनव मार्ग से यज्ञानुष्ठाता अङ्गिरा ने जिन सोम के द्वारा पणियों के द्वारा अपहृत गौओं का द्वार खोला था, जिन सोम के द्वारा सारे मेधावियों ने अपहृत गायों को प्राप्त किया था और जिन सोम के द्वारा इन्द्रादि के सुख में यज्ञारम्भ होने पर मङ्गलजनक अमृत-जल के अन्नों को यजमानों ने प्राप्त किया था, वही सोम देवों के अमर होने के लिए शब्द करते हैं।

५. मादकतम जल-संघात के समान क्रीड़ा करनेवाले और अभिषुत सोम मेषलोम के पवित्र से कलश में, अपनी धारा से, गिरते हैं।

६. जिन सोम ने गमनशील अन्तरिक्ष में स्थित मेघ के भीतर से बलपूर्वक वृष्टि कराई थी, वही सोम गौओं और अश्वों के समूह को व्याप्त करते हैं। शत्रु-धर्षक सोम, कवचधारी शूर के समान असुरों को मारो।

७. अश्व के समान वेगशाली, स्तुत्य, अन्तरिक्ष के जल प्रेरक, तेज के प्रेरक और जल-वर्धक सोम को ऋत्विको, अभिषुत करो और सींचो।

८. अनेक धाराओंवाले, काम-वर्षक, जलवर्द्धक और प्रिय सोम को, देवों के लिए, अभिषुत करो। जल से उत्पन्न, राजा, दिव्य, स्तुत्य और महान् सोम जल से बढ़ते हैं।

९. अन्नपति और स्तुत्य सोम, देवाभिलाषी होकर तुम दिव्य और प्रचुर अन्न हमें दो। अन्तरिक्षस्थ मेघ को, वर्षा के लिए, फाड़ो।

१०. सुन्दर बलवाले सोम, अभिषवण-फलकों पर अभिषुत होकर तुम राजा के समान सारी प्रजा के वाहक हो। पधारो। द्युलोक से जल का गमन करो। गवाभिलाषी यजमान के कर्मों को पूरण करो।

११. मदकर, बहुधार, काम-वर्षक और सारे धनों के धारक सोम को देवाभिलाषी ऋत्विक् लोग दूहते हैं।

१२. शब्द को उत्पन्न करनेवाले, अपने तेज से अन्धकार को दूर करनेवाले, काम-वर्धक और अमर सोम को जाना जाता है। मेधावियों के द्वारा स्तुत सोम मिलाये जाते हैं। तीनों सवनों में याज्ञिक कर्म सोम के द्वारा ही धृत होते हैं।

१३. धनों, गायों, अन्नों और सुमनुष्ययुक्त गृहों के लानेवाले सोम ऋत्विकों-द्वारा अभिषुत होते हैं।

१४. उन्हीं सोम का अभिषव किया जाता है, जिन्हें इन्द्र, मरुत्, अर्यमा और भग पीते हैं तथा जिनके द्वारा हम मित्र, वरुण और इन्द्र को अभिमुख करते हैं।

१५. सोम, ऋत्विकों के द्वारा संयत, सुन्दर आयुध से युक्त, अतीव मधुर और मदकर होकर तुम इन्द्र के पान के लिए बहो।

१६. सोम, जैसे समुद्र में नदियाँ पैठती हैं, वैसे ही मित्र, वरुण और वायु के लिए सेवित, द्युलोक के स्तम्भ, सर्वोत्तम और इन्द्र के हृदय-रूप तुम कलश में पैठो।

१०९ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि ईश्वर-पुत्र अग्नि। छन्द द्विपदा विराट्।)

१. सोम, तुम स्वादु हो। इन्द्र, मित्र, पूषा और भग के लिए क्षरित होओ।

२. प्रज्ञान और बल के लिए अभिषुत तुम्हारे भाग का पान इन्द्र करें। सारे देव तुम्हारा पान करें।

३. सोम, तुम प्रदीप्त, दिव्य और देवों के पान के योग्य हो। अमरण और महान् निवास के लिए क्षरित होओ।

४. सोम, तुम महान् रसों के प्रवाहक और सबके पालक हो। देवों के शरीरों को लक्ष्य करके क्षरित होओ।

५. सोम, दीप्त होकर देवों के लिए क्षरित होओ और द्यावापृथिवी तथा प्रजा को सुख दो।

६. सोम, तुम दीप्त, पीने के योग्य (पातव्य) और द्युलोक के धारक हो। बली होकर सत्यभूत यज्ञ में क्षरित हो।

७. सोम, तुम यशस्वी, शोभन धारावाले और प्राचीन हो। मेषलोमों से होकर बहो।

८. कर्मनिष्ठों के द्वारा नियत, जायमान, पूत, पवित्र से शोधित प्रसन्न और सर्वज्ञ सोम हमें सारे धन दें।

९. देवों के वृद्धि-कर्त्ता सोम हमें प्रजा और सारे धन दें।

१०. सोम घोड़ों के समान तुम्हारा मार्जन किया जाता है। वेगशाली तुम ज्ञान, बल और धन के लिए क्षरित होओ।

११. अभिषवकर्त्ता लोग, मद के लिए, तुम्हारे रस को शोधित करते हैं। वे महान् अन्न के लिए सोम का शोधन करते हैं।

१२. जल के पुत्र, जायमान, हरितवर्ण और दीप्त सोम को, देवों के लिए, ऋत्विक् लोग शोधित करते हैं।

१३. कल्याणरूप और क्रान्तप्रज्ञ सोम जल के स्थान अन्तरिक्ष में, मद और भजनीय धन के लिए, क्षरित होते हैं।

१४. सोम इन्द्र के कल्याणकर शरीर का धारण करते हैं। उसी शरीर से इन्द्र ने सारे पापी राक्षसों को मारा।

१५. गोदुग्ध में मिश्रित और पुरोहितों के द्वारा अभिषुत सोम का पान सारे देवता करते हैं।

१६. अभिषुत और बहुधारा से युक्त सोम मेषलोम के लिए पवित्र का व्यवधान करके चारों ओर क्षरित होते हैं।

१७. अनेक तेजों से युक्त, बली, जल से शोधित और गोदुग्ध में मिश्रित सोम चारों ओर क्षरित होते हैं।

१८. ऋत्विकों के द्वारा नियत और पात्रों के द्वारा अभिषुत सोम, तुम कलश में जाओ।

१९. पवित्र का व्यवधान करके बली और अनेक धाराओं से युक्त सोम इन्द्र के लिए बनाये जाते हैं।

२०. कामवर्धक इन्द्र की मत्तता के लिए ऋत्विक् लोग सोम को मधुर रस (गोरस) के साथ मिलाते हैं।

२१. सोम, जल में मिले और हरितवर्ण तुम्हें, देवों के पान और बल के लिए, ऋत्विक् लोग शोधित कर रहे हैं।

२२. इन्द्र के लिए यह प्रथम सोमरस प्रस्तुत (अभिषुत) किया जाता है। यह जल को हिलाते और उसके साथ मिलते हैं।

११० सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि त्र्यरुण और त्रसदस्यु। छन्द-अनुष्टुप् बृहती और विराट्।)

१. सोम, अन्न-लाभ के लिए युद्ध में जाओ। तुम सहनशील हो। शत्रुओं के पास जाओ। तुम हमारे ऋणों के परिशोधक हो। तुम शत्रुओं को मारने के लिए जाते हो।

२. सोम, तुम अभिषुत हो। सोम, महान् मनुष्य-समूहवाले राज्य में हम क्रमशः तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। अपने राज्य की रक्षा के लिए तुम शत्रुओं को लक्ष्य करके जाते हो।

३. सोम, तुमने जल-धारक अन्तरिक्ष में, समर्थ बल से, सूर्य को उत्पन्न किया है। तुम स्तोताओं को पशु देनेवाले हो। तुम्हारे पास अनेक प्रकार के ज्ञान हैं। तुम वेगशाली हो।

४. अमर सोम, तुमने सत्य और कल्याणभूत जल के धारक अन्तरिक्ष में सूर्य को, मनुष्यों के सामने करने को, उत्पन्न किया है। भजनशील तुम संग्राम का लक्ष्य करके सदा जाया करते हो।

५. सोम, जैसे कोई लोगों के जल पीने के लिए अक्षय्य जल से पूर्ण तड़ाग खोदता है अथवा कोई दोनों हाथों की अञ्जलि से जल भरता है, वैसे ही तुम अन्न देने के लिए पवित्र को छेद कर जाते हो।

६. दिव्य और सबके प्रेरक सूर्य ने अभी अन्धकार भी नहीं हटाया, तभी देखनेवाले और दिव्यलोकोत्पन्न "वसुरुच्" नाम के व्यक्तियों ने अपने बन्धु सोम की स्तुति की।

७. सोम, मुख्य और कुश तोड़नेवाले यजमानों ने महान् बल और अन्न के लिए तुममें अपनी बुद्धि को रक्खा। समर्थ सोम, हमें भी, वीर्यप्राप्ति के लिए, युद्ध में भेजो।

८. द्युलोकस्थित देवों के पीने योग्य, प्राचीन, प्रशस्य और महान् द्युलोक से सोम को अपने सम्मुख लोग दूहते हैं। इन्द्र को लक्ष्य करके उत्पन्न सोम की, स्तोता लोग, स्तुति करते हैं।

९. सोम, जैसे वृषभ गोसमूह में आधिपत्य करता है, वैसे ही तुम अपने बल से द्युलोक, भूलोक और सारे प्राणियों पर राज्य करते हो।

१०. अनेक धाराओंवाले, असीम सामर्थ्यवाले, दीप्त और क्षरणशील सोम मेषलोममय पवित्र पर, शिशु के समान, क्रीड़ा करते-करते क्षरित होते हैं।

११. शोधित, मधुरता-युक्त, यज्ञवान्, क्षरणशील, स्वादुकर, रसधारा-संघ, अन्नवाला, धनप्रापक और आयुर्दाता सोम बहते हैं।

१२. सोम, युद्धकामी शत्रुओं को हराते हुए, दुर्गम राक्षसों को मारते हुए और शोभन आयुधवाले होकर रिपुविनाश करते हुए बहो।

१११ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि परुच्छेप-पुत्र अनानत। छन्द अत्यष्टि।)

१. जैसे सूर्य अपनी किरणमाला से अन्धकार को नष्ट करते हैं, वैसे ही शोधित सोम हरितवर्ण और शोभन धारा से सारे राक्षसों को नष्ट करते हैं। अभिषुत सोम की धारा दीप्त होती है। शोधित और हरितवर्ण सोम रुचिकर होते हैं। सातों छन्दोंवाली तथा रस हरणशील स्तुतियों और तेजों से सोम सारे नक्षत्रों को व्याप्त करते हैं।

२. सोम, तुमने पणियों के द्वारा अपहृत गो-धन को प्राप्त किया था। यज्ञ के धारक जल से यज्ञ-गृह में भली भाँति शोधित होते हो। जैसे दूर देश से साम-ध्वनि सुनाई देती है, वैसे ही तुम्हारा शब्द सुना जाता है। सोम के शब्द में कर्मनिष्ठ यजमान रमण करते हैं। शोभन सोम तीनों लोकों के धारक जल और रुचिकर दीप्ति के साथ स्तोताओं को अन्न प्रदान करते हैं।

३. ज्ञाता सोम पूर्व दिशा को जाते हैं। सोम, तुम्हारा सबके लिए वरणीय और दिव्य रथ सूर्य्य-किरणों में मिलता है। पुरुषों के उच्चारित स्तोत्र इन्द्र के पास जाते हैं। वे स्तोत्र विजय के लिए इन्द्र को प्रसन्न करते हैं। वज्र भी इन्द्र के पास जाता है। जिस समय युद्ध-क्षेत्र में सोम और इन्द्र शत्रुओं के द्वारा अजेय होते हैं, उस समय उनकी स्तुति की जाती है।

११२ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि आङ्गिरस शिशु। छन्द पङ्क्ति।)

१. हमारे कर्म अनेक प्रकार के हैं। दूसरों के कर्म भी अनेक प्रकार के हैं। शिल्पी काष्ठ-कार्य चाहता है, वैद्य रोग को चाहता है और ब्राह्मण सोमाभिषवकर्त्ता यजमान को चाहता है। मैं सोम का प्रवाह चाहता हूँ। सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

२. पुराने काठों, पक्षियों के पक्ष और (शान चढ़ाने के लिए) उज्ज्वल शिलाओं से वाण बनाये जाते हैं। शिल्पी, वाण बेचने के लिए, स्वर्णवाले धनी पुरुष को खोजते हैं। मैं सोम का क्षरण खोजता हूँ। फलतः, सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

३. मैं स्तोता हूँ, पुत्र भिषक् (वा ब्रह्मा) है और कन्या यव-भर्जन-कारिणी है। हम सब भिन्न-भिन्न कर्म करते हैं। जैसे गायें गोष्ठ में विचरण करती हैं, वैसे ही हम भी, धनकामी होकर, तुम्हारी (सोम की) सेवा करते हैं। सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

४. सुन्दर वहन करनेवाले और कल्याणकर रथ की इच्छा घोड़ा करता है, मर्म-सचिव (दरबारी) हास-परिहास की इच्छा करता है और पुरुषेन्द्रिय रोमोंवाला भेद (द्विधाभित्) की कामना करता है। मैं सोम-क्षरण चाहता हूँ। सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

११३ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि मारीच कश्यप। छन्द पङ्क्ति।)

१. कुरुक्षेत्र के पासवाले शर्यणावत् तड़ाग में स्थित सोम को इन्द्र पियें, जिससे इन्द्र आत्मबली और महान् वीर्यवाले हों। इन्द्र के लिए, सोम, क्षरित होओ।

२. काम-सेचक और दिशाओं के स्वामी सोम, आर्जीक देश (व्यास नदी के पास के प्रदेश) से आकर क्षरित होओ। पवित्र और सत्य स्तुति-वाक्यों तथा श्रद्धा और पुण्य-कर्म के साथ तुम्हें अभिषुत किया गया है। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

३. सूर्य-पुत्री (श्रद्धा) मेघ के जल से प्रवृद्ध और महान् सोम को स्वर्ग से ले आई। गन्धर्वों (वसु आदि) ने सोम को ग्रहण किया और सोम में रस दिया। सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

४. सत्यकर्मा सोम, अभिषूयमाण राजन्, यज्ञस्वामी, इन्दु, यज्ञ, सत्य और श्रद्धा का उच्चारण करते हुए और कर्मधारक यजमान से अलंकृत होकर तुम सोम, इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

५. यथार्थ बली और महान् सोम की क्षरणशील धारा क्षरित हो रही है। रसवान् सोम का रस बह रहा है। हरितवर्ण सोम, ब्राह्मण के द्वारा शोधित होकर तुम इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

६. शोध्यमान सोम, तुम्हारे लिए सातों छन्दों में बनाई स्तुति का उच्चारण करते हुए, पत्थर से तुम्हारा अभिषव करते हुए और उस अभिषव से देवों का आनन्द उत्पन्न करते हुए ब्राह्मण जहाँ पूजित होता है, वहाँ क्षरित होओ।

७. सोम, जिस लोक में अखण्ड तेज है और जहाँ स्वर्गलोक है, उसी अमर और ह्रासशून्य लोक में मुझे ले चलो। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

८. जिस लोक में वैवस्वत राजा हैं, जहाँ स्वर्ग का द्वार है और जहाँ मन्दाकिनी आदि नदियाँ बहती हैं, उस लोक में मुझे अमर करो। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

९. जिस उत्तम लोक में (तीसरे लोक में) सूर्य की अभिलाषा के अनुरूप किरणें हैं और जहाँ ज्योतिवाले मनुष्य रहते हैं, उस लोक में मुझे अमर करो। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

१०. जिस लोक में काम्यमान देवता और अवश्य प्रार्थनीय इन्द्रादि रहते हैं, जहाँ सारे कर्मों के मूल सूर्य का स्थान है और जहाँ "स्वधा" के साथ दिया गया अन्न तथा तृप्ति है, वहाँ मुझे अमर करो। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

११. जिस लोक में आनन्द, आमोद, आह्लाद आदि हैं और जहाँ सारी कामनायें पूर्ण होती हैं, वहाँ मुझे अमर करो। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

११४ सूक्त

(देवता पवमान सोम। ऋषि मारीच कश्यप। छन्द पङ्क्ति।)

१. जिन शोध्यमान सोम के तेज का जो ब्राह्मण अनुगमन करता है, उस अमर व्यक्ति को कल्याणकर पुत्र आदि से युक्त कहा जाता है और जो सोम के मन के अनुकूल परिचर्या करता है, वह भी ऐसा ही सौभाग्यशाली कहा जाता है। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

२. ऋषि (कश्यप), मन्त्र-रचयिताओं ने जिन स्तुति-वचनों की रचना की है, उनका आश्रय करके अपने वाक्य की वृद्धि करो और सोम राजा को प्रणाम करो। सोम वनस्पतियों के पालक हैं। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

३. सूर्य के आश्रय-स्थल जो सात दिशायें हैं (सोमवाली दिशा को छोड़कर), जो होमकर्त्ता सात पुरोहित हैं और जो सात सूर्य हैं (मार्त्तण्ड को छोड़कर), उनके साथ हमारी रक्षा करो। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

४. राजा सोम, तुम्हारे लिए जिस हवनीय द्रव्य का पाक किया हुआ है, उससे हमारी रक्षा करो। शत्रु हमें न मारे और हमारे वस्त्र का अपहरण न करे। इन्द्र के लिए क्षरित होओ।

नवम मण्डल समाप्त।

१ सूक्त

(दशम मण्डल। १ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि आपत्य त्रित। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. महान् अग्नि उषःकाल में प्रज्वलित होकर ज्वाला-रूप से रहते हैं। अग्नि अन्धकार से निकलकर अपने तेज से आह्वनीय रूप में आते हैं। शोभन ज्वालावाले और कर्म के लिए उत्पन्न अग्नि अपने हिंसक तेज से सारे यज्ञ-गृहों को पूर्ण करते हैं।

२. अग्नि, प्रादुर्भूत, कल्याणरूप, अरणियों से भली भाँति मथित और ओषधियों में वर्त्तमान तुम द्यावापृथिवी के गर्भ हो। चित्रवर्ण और ओषधियों के शिशु अग्नि, तुम अपने तेज से काले शत्रुओं को पराजित करते हो। मातृ-रूप वनस्पतियों के लिए शब्द करते हुए तुम उत्पन्न होते हो।

३. उत्कृष्ट, विद्वान्, प्रादुर्भूत, महान् और व्यापक अग्नि मुझ त्रित (ऋषि) का रक्षण करें। अग्नि का जल मुख से करके अर्थात् अग्नि से जल की याचना करते-करते यज्ञकर्त्ता, समानमना होकर, अग्निपूजा करते हैं।

४. अग्नि, सारे संसार के धारक और उत्पादक वनस्पति अन्न-वर्द्धक तुम्हें, अन्न के लिए, सेवित करते हैं। तुम ओषधियों (वनस्पतियों) के

प्रति—शुष्क वनस्पतियों के प्रति, दाव-रूप होकर जाते हो। तुम मनुष्यों और प्रजाओं में होम-निष्पादक हो।

५. देवों के आह्वाता, विविध रथवाले, सारे यज्ञों की पताका, श्वेत-वर्ण सारे देवों के अधिपति, इन्द्र के पास जानेवाले और यजमानों के पूज्य अग्नि का, सम्पत्ति-प्राप्ति के लिए, तुरत हम स्तोत्र करते हैं।

६. दीप्यमान अग्नि, हिरण्य-सदृश तेजों और उनके शुक्ल आदि रूपों को धारण करके, पृथिवी की नाभि (उत्तर वेदी) पर उत्पन्न होकर शोभा धारण करके और आह्वनीय स्थान (पूर्व दिशा) में स्थापित होकर इस यज्ञ में इन्द्रादि की पूजा करो।

७. अग्नि, तुम सदा वैसे ही द्यावापृथिवी का विस्तार करते हो, जैसे पुत्र माता-पिता का विस्तार करता है। तरुणतम अग्नि, तुम अभिलाषी व्यक्तियों को लक्ष्य करके जाओ। बल-पुत्र अग्नि, हमारे यज्ञ में इन्द्रादि को ले आओ।

२ सूक्त

(देवता, ऋषि और छन्द आदि पूर्ववत्।)

१. युवतम अग्नि, स्तोत्राभिलाषी देवों को प्रसन्न करो। देव-यज्ञ-कालों के स्वामी अग्नि, यज्ञ-समयों को जान करके तुम इस यज्ञ में उनकी पूजा करो। अग्नि, देवों के पुरोहितों के साथ पूजन करो। तुम होताओं में श्रेष्ठ हो।

२. अग्नि, तुम होता, पोता, मेधावी, सत्यनिष्ठ और धनद हो। हम देवों को हवि दो। दीप्यमान और प्रशस्य अग्नि देव-पूजन करें।

३. हम देवों के वैदिक मार्ग पर जायँ। हम जो कर्म कर सकें, उसकी भली भाँति समाप्ति कर सकें। ज्ञानी अग्नि देव-पूजा करें। मनुष्यों के होम-सम्पादक अग्नि यज्ञों और उनके कालों को करें।

४. देवो, हम अज्ञानी हैं। ज्ञानवान् आपके कर्मों को जानते हुए भी

तुमने विलुप्त कर दिया। यह सब जाननेवाले अग्नि सारे कर्मों को पूर्ण करें। यागयोग्य कालों से अग्निदेवों को कल्पित करते हैं।

५. मनुष्य दुर्बल हैं—उनका मन विशिष्ट ज्ञान से शून्य है। वे जिस यज्ञ-कर्म को नहीं जानते, उसको जाननेवाले, होम-निष्पादक और अतिशय याज्ञिक अग्नि उस कर्म से यज्ञकालों में देव-यजन करें।

६. अग्नि सारे यज्ञों के प्रधान चिह्न और पताका-स्वरूप तुम्हें ब्रह्मा ने उत्पन्न किया। तुम दासादि से युक्त भूमि दो। स्पृहणीय, स्तुति मन्त्रादि से युक्त और सर्वहितैषी अन्न देवों को दो।

७. अग्नि द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष—इन तीन लोकों ने तुम्हें पैदा किया—शोभनजन्मा प्रजापति ने तुम्हें पैदा किया। अग्नि, तुम पितृमार्ग के जानकार और समिध्यमान हो। दीप्तियुक्त होकर विराजते हो।

३ सूक्त

(देवता, ऋषि और छन्द पूर्ववत्।)

१. दीप्त अग्नि, तुम सबके स्वामी हो। हवि लेकर देवों के पास जानेवाले, संदीप्त, शत्रुओं के लिए भयंकर, वनस्पतियों में स्थित और शोभन प्रसववाले अग्नि, यजमानों की धन-वृद्धि के लिए सबके द्वारा देखे जाते हैं। सर्वज्ञ अग्नि विभासित होते हैं। महान् तेज के द्वारा सायंकाल, श्वेतवर्ण दीप्ति से अन्धकार दूर करके, जाते हैं।

२. पितृरूप आदित्य से उत्पन्न उषा को प्रकट करते हुए अग्नि कृष्णवर्ण रात्रि को अपने तेज से अभिभूत करते हैं। गमनशील अग्नि द्युलोक के निवासदाता अपने तेज से सूर्य की दीप्ति को ऊपर रोककर शोभा पाते हैं।

३. कल्याणरूप और भजनीय उषा के द्वारा सेव्यमान अग्नि आये। शत्रुओं के घातक अग्नि अपनी भगिनी उषा के पास जाते हैं। सुन्दर ज्ञान और दीप्त तेज के साथ वर्त्तमान अग्नि श्वेतवर्ण के अपने निवारक तेज के द्वारा कृष्णवर्ण अन्धकार को दूर कर रहते हैं।

४. महान् अग्नि की दीप्त किरणें जा रही हैं। ये किरणें स्तोताओं को नहीं बाधा देतीं। मित्र, कल्याणरूप, भक्तों के सुखकर, स्तुत्य, काम-वर्षक, महान् और शोभनमुख अग्नि की किरणें अन्धकार को नष्ट करके और तीक्ष्ण होकर, तर्पण के लिए देवों के पास जाती और प्रसिद्ध होती हैं।

५. दीप्यमान, महान् और शोभन-दीप्ति अग्नि की किरणें, शब्द करते हुए जाती हैं। अग्नि अतीव प्रशस्त, तेजस्वितम, क्रीड़ाकारी और वृद्धतम अपने तेज से द्युलोक को व्याप्त करते हैं।

६. वृध्यमान आयुधवाले और देवों के प्रति गमन करनेवाले अग्नि की शोषक और वायुयुक्त किरणें शब्द कर रही हैं। देवों में मुख्य, गन्ता, व्यापक और महान् अग्नि प्राचीन, श्वेतवर्ण और शब्दायमान तेज के द्वारा प्रदीप्त होते हैं।

७. अग्नि, हमारे यज्ञ में महान् देवों को ले आओ। परस्पर-मिलित द्यावापृथिवी के बीच में सूर्यरूप से आनेवाले अग्नि, हमारे यज्ञ में बैठो। स्तोताओं के द्वारा सरलता से पाने योग्य और वेगवान् अग्नि, शब्दायमान और वेगवान् घोड़ों के साथ हमारे यज्ञ में पधारो।

४ सूक्त

(देवता, ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत।)

१. अग्नि, तुम्हारे लिए मैं हवि देता हूँ। तुम्हारे लिए मननीय स्तुति उच्चारित करता हूँ। तुम सबके वन्दनीय हो। हमारे देवाह्वान में तुम आते हो; इसलिए तुम्हें मैं हवि देता हूँ और स्तुति करता हूँ। प्राचीन राजा अग्नि, सारे संसार के स्वामी अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी मनुष्य के लिए वैसे ही धन दान करके सुखदाता हो, जैसे मरुस्थल में जलदाता तलैया सुखद है।

२. तरुणतम अग्नि, जैसे शीत से आर्त गायें उष्ण गोष्ठ को जाती हैं, वैसे ही फलप्राप्ति के लिए यजमान तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम देवों

और मानवों के दूत हो। महान्, तुम द्यावापृथिवी के बीच में हवि लेकर अन्तरिक्ष लोक में संचरण करते हो।

३. अग्नि, पुत्र के समान अयशील तुम्हें माता पृथिवी, पोषण करके और सम्पर्क की इच्छा करके, धारण करती है। अभिलाषी तुम अन्तरिक्ष के प्रशस्त मार्ग से यज्ञ में जाते हो। याज्ञिकों से हवि लेकर तुम देवों के पास जाने की इच्छा वैसे ही करते हो, जैसे विमुक्त पशु गोष्ठ में जाने की इच्छा करता है।

४. मूढ़ताशून्य और चेतनावान् अग्नि, हम मूर्ख हैं; इसलिए तुम्हारी महिमा को नहीं जानते। अग्नि, अपनी महिमा तुम्हीं जानते हो। अग्नि वनस्पति के साथ रहते हैं। अपनी जिह्वा के द्वारा हविर्भक्षण करते हुए अग्नि चरते हैं। अग्नि प्रजावर्ग के अधिपति होकर आहुति का आस्वादन करते हैं।

५. नवीन अग्नि कहीं उत्पन्न होते हैं—वे पुराने वनस्पतियों के ऊपर रहते हैं। पालक, धूमकेतु और श्वेतवर्ण अग्नि विपिन में निवास करते हैं। स्नान के बिना शुद्ध अग्नि, प्यासे वृषभ के समान, अरण्य के जल के पास जाते हैं। मनुष्य लोग, समान-मना होकर, अग्नि को प्रसन्न करते हैं।

६. अग्नि, जैसे वनगामी और धृष्ट दो चोर वन में पथिक को रज्जु से बाँधकर खींचते हैं, वैसे ही, हमारे दोनों हाथ, दसों अँगुलियों से, यज्ञ-काष्ठ से अग्नि को मथते हैं। तुम्हारे लिए मैं यह नई स्तुति करता हूँ। इसे जानकर सबका प्रकाश करनेवाले अपने तेज से अपने को यज्ञ में वैसे ही योजित करो, जैसे अश्वों से रथ को योजित किया जाता है।

७. ज्ञानी अग्नि, तुम्हारे लिए हमने यह यज्ञीय द्रव्य दिया और नमस्कार भी किया। यह स्तुति सदा वर्द्धमाना हो। अग्नि, हमारे पुत्र-पौत्रों की रक्षा करो। सावधान होकर हमारे अङ्गों की रक्षा करो।

५ सूक्त

(देवता, ऋषि और छन्द पूर्ववत् ।)

१. अद्वितीय, समुद्रवत् आधार-स्वरूप, धनों के धारक और अनेक प्रकार के जन्मवाले अग्नि हमारे अभिलषित हृदयों को जानते हैं। अग्नि अन्तरिक्ष के पास वर्त्तमान होकर मेघ का सेवन करते हैं। अग्नि, मेघ में वर्त्तमान विद्युत् के पास जाओ।

२. आहुतियों के सेचक यजमान समान रूप से नील अग्नि को मन्त्र से आच्छादित करते हुए बड़वावों (घोड़ियों) वाले हुए। मेधावी लोग जल के वासस्थान अग्नि की रक्षा करते हैं—स्तुतियों से आराधना करते हैं। वे गूढ़ हृदय में अग्नि के प्रधान नामों की स्तुति करते हैं।

३. सत्य और कर्म से युक्त द्यावापृथिवी अग्नि को धारण करते हैं। द्यावापृथिवी काल-परिमाण करके प्रशस्य अग्नि को वैसे ही उत्पन्न करते हैं, जैसे माता-पिता पुत्र को उत्पन्न करते हैं। सारे स्थावर, जङ्गम के नाभिरूप, प्रधान और मेधावी अग्नि के विस्तारक वैश्वानर नामक अग्नि को मन से प्राप्त करते हुए हम यजन करते हैं।

४. यज्ञ के प्रवर्त्तक, कामनाभिलाषी और प्राचीन यजमान भली भाँति उत्पन्न अग्नि की, बल के लिए, सेवा करते हैं। सारे संसार के आच्छादक द्यावापृथिवी ने तीनों लोकों में, अग्नि, विद्युत् और सूर्य के रूप से स्थित अग्नि को, मधु, घी, पुरोडाश आदि से, वर्द्धित किया।

५. स्तोताओं के द्वारा स्तुति किये जाते हुए और सबके जानकार अग्नि ने शोभन सात भगिनीरूप शिखाओं को, मदकर यज्ञ से सरलता-पूर्वक सारे पदार्थों को देखने के लिए, ऊपर उठाया। प्राचीन समय में उत्पन्न अग्नि ने द्यावापृथिवी के बीच में उन शिखाओं को नियमित किया। यजमानों की इच्छा करनेवाले अग्नि ने पृथिवी को वृष्टि-स्वरूप रूप प्रदान किया।

६. मेधावी लोगों ने सात मर्यादाओं (ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य,

गुरुपत्नीगमन, पुनः पुनः पापाचरण, पाप करके न कहना आदि) को छोड़ दिया है। इनमें से एक का करनेवाला भी पापी है। पाप से मनुष्य को रोकनेवाले अग्नि हैं। अग्नि समीपवर्त्ती मनुष्य के स्थान में आदित्य किरणों के विचरण मार्ग में और जल के बीच में रहते हैं।

७. अग्नि सृष्टि के पहले असत् (अव्यक्त) और सृष्टि होने पर सत् हैं, वे परमधाम (कारणात्मा) में हैं। वे आकाश पर सूर्यरूप से जन्मे हैं। अग्नि हमसे पहले उत्पन्न हुए हैं। वे यज्ञ के पहले अवस्थित थे। वे वृषभ भी हैं और गाय भी—स्त्री-पुरुष—दोनों हैं।

पञ्चम अध्याय समाप्त।

६ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता अग्नि। ऋषि आप्त्य त्रित। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. ये वे ही अग्नि हैं, यज्ञ के समय जिनके रक्षणों से स्तोता अपने गृह में बढ़ता है। दीप्तिमान् अग्नि सूर्य-किरणों से प्रशस्त तेज से युक्त होकर सर्वत्र जाते हैं।

२. जो दीप्त अग्नि देवों के तेज से दीप्त होते हैं, वे सत्यवान् और अहिंसित हैं। अग्नि मित्र यजमान के लिए मित्रजनोचित कार्य करने के लिए गमनशील घोड़े के समान अथक होकर यजमान के पास जाते हैं।

३. अग्नि सारे यज्ञ के प्रभु हैं। वे सर्वत्र जानेवाले हैं। उषा के उदय-काल से ही हवन के लिए यजमानों के प्रभु हैं। यजमान अग्नि में मन के अनुकूल हवि फेंकते हैं; इसलिए उनका रथ शत्रु-बल से अवध्य होता है।

४. अग्नि बल से वर्द्धित और स्तुति से सेवित होकर शीघ्रता के साथ देवों के पास जाते हैं। अग्नि स्तुत्य, देवों को बुलानेवाले, प्रधान यज्ञकर्त्ता और देवों के द्वारा नियुक्त हैं। वे देवों को हवि देते हैं।

५. ऋत्विको, शुभ भोगों के दाता और कम्पनशील उन अग्नि को, इन्द्र के समान, स्तुतियों और हवियों से, हमारे सम्मुख करो, जो देवों के

बुलानेवाले और ज्ञानी हैं और जिनका स्तोत्र मेधावी स्तोता लोग आदर के साथ करते हैं।

६. अग्नि, जैसे युद्ध में शीघ्र गमनकारी अश्व जाते हैं, वैसे ही तुममें संसार के सारे धन मिलते हैं। अग्नि, इन्द्र की रक्षा हमारे अभिमुख करो।

७. अग्नि, तुमने जन्म के साथ ही महत्त्व लाभ किया और स्थान ग्रहण करने के साथ ही आहुति के योग्य हो गये। इसलिए तुम्हें देखने के साथ देवता लोग तुम्हारे पास गये या तुम्हारे प्रदीप्त होने के साथ यजमान तुममें हवन करने लगे। उत्तम ऋत्विक् लोग तुमसे रक्षित होकर बढ़ने लगे।

७ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि आप्त्य त्रित। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. दिव्य अग्नि, तुम द्यावापृथिवी से हमारे लिए सब तरह का अन्न और कल्याण दो। दर्शनीय अग्नि, हम याज्ञिक हों। अपने अनेक प्रशंसनीय रक्षणों से हमारी रक्षा करो।

२. अग्नि, तुम्हारे लिए ये स्तुतियाँ हमारे द्वारा कही गई हैं। गौओं और अश्वों के साथ तुमने हमारे लिए धन दिया है; इसलिए तुम्हारी प्रशंसा की जाती है। जब मनुष्य तुम्हारा दिया भोग्य धन प्राप्त करता है, तब अपने तेज के द्वारा सबका आच्छादन करनेवाले, शोभन कर्मों के लिए उत्पन्न होनेवाले और हमें धन देनेवाले अग्नि, तुम्हारी स्तुति की जाती है।

३. मैं अग्नि को ही पिता, बन्धु, भ्राता और चिर मित्र मानता हूँ। मैं महान् अग्नि के मुख का सेवन वैसे ही करता हूँ, जैसे द्युलोक-स्थित पूजनीय और प्रदीप्त सूर्यमण्डल का कोई सेवन करता है।

४. अग्नि, हमारी की हुई ये स्तुतियाँ निष्पन्न हुई हैं। नित्य होता, देवों के आह्वाता और हमारे यज्ञगृह में अवस्थित होकर तुम जिसकी

(मेरी) रक्षा करते हो, वह (मैं) तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त करके याज्ञिक बने। मैं लोहितवर्ण अश्व और बहुत अन्न प्राप्त करूँ, ताकि प्रदीप्त दिनों में तुम्हें होमीय द्रव्य (हवि) प्राप्त हो सके।

५. दीप्ति-युक्त मित्र के समान भोजनीय, प्राचीन ऋत्विक् और यज्ञ-समापक अग्नि को यजमानों ने बाहुओं से उत्पन्न किया है। मनुष्यों में देवों के आह्वान और यज्ञ के लिए अग्नि को ही निरूपित किया है।

६. दिव्य अग्नि, द्युलोक में स्थित देवों का स्वयं यज्ञ करो। अपक्व और निर्बोध मनुष्य तुम्हारे बिना क्या करेंगे? सुजन्मा देव, जैसे तुमने समय-समय पर देवों का यजन किया है, वैसे ही अपना भी रोक।

७. अग्नि, तुम हमें दृष्ट और अदृष्ट भयों से बचाओ। अन्न के कर्त्ता और दाता भी बनो। सुन्दर पूजनीय अग्नि, हवन करने की सामग्री हमें दो। हमारे शरीर की रक्षा करो।

८ सूक्त

(देवता अग्नि और इन्द्र। ऋषि त्वष्टृ-पुत्र त्रिशिरा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इस समय अग्नि बड़ी पताका लेकर द्यावापृथिवी में जाते हैं। देवों के बुलाने के समय अग्नि वृषभ के समान शब्द करते हैं। द्युलोक के अन्त वा समीप के प्रदेश में रहकर अग्नि व्याप्त करते हैं। जल-भण्डार अन्तरिक्ष में महान् विद्युत् होकर अग्नि बढ़ते हैं।

२. द्यावापृथिवी के बीच कामों के वर्धक और उन्नत तेजवाले अग्नि प्रसन्न होते हैं। रात्रि और उषःकाल के वत्स और याज्ञिक कर्मवाले अग्नि शब्द करते हैं। अग्नि यज्ञ में उत्साह-कर्म करते हुए आह्वनीय आदि स्थानों में रहकर तथा देवों में मुख्य होकर जाते हैं।

३. अग्नि मातृ-पितृ-रूप द्यावापृथिवी के मस्तक पर अपना तेज विस्तृत करते हैं। सुवीर्यवाले अग्नि के गतिपरायण तेज को याज्ञिक लोग यज्ञ में धारण करते हैं। अग्नि के पतन पर शोभायमान, यज्ञ के

स्थान में व्याप्त और हवि आदि से युक्त तुम्हारे शरीर की सेवा कवि लोग करते हैं।

४. प्रशंसनीय अग्नि, तुम उषःकाल के पहले ही आ जाते हो। परस्पर मिले दिन और रात्रि के दीप्तिकर्त्ता हो। अपने शरीर से आदित्य को उत्पन्न करते हुए, यज्ञ के लिए, सात स्थानों में बैठते हो।

५. अग्नि यज्ञक तुम, चक्षु के समान, प्रकाशक हो। तुम यज्ञ के रक्षक हो। जिस समय तुम यज्ञ के लिए वरुण वा आदित्य होकर जाते हो, उस समय तुम्हीं रक्षक होते हो। ज्ञानी अग्नि, तुम जल के पौत्र हो। (जल से मेघ और मेघ से विद्युत् वा अग्नि उत्पन्न होते हैं) तुम जिस यजमान की हवि ग्रहण करते हो, उसके दूत होते हो।

६. अग्नि, तुम जिस अन्तरिक्ष में कल्याणकर अश्वोंवाले वायु के साथ मिलते हो, उसमें तुम यज्ञ और जल के नेता होते हो। तुम द्युलोक में प्रधान और सबके भक्ता सूर्य को धारण करते हो। अग्नि, तुम अपनी जिह्वा को हव्यवाहिका बनाते हो।

७. यज्ञ करके त्रित ऋषि ने प्रार्थना की कि, मेरी इच्छा है कि, यज्ञ में पिता का ध्यान करके नाना विपत्तियों से रक्षा पाऊँ। प्रार्थना के कारण पिता-माता के पास सुन्दर वाक्य बोलकर त्रित युद्ध का अस्त्र ले गये।

८. आप्त्य के पुत्र त्रित ने इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर और अपने पिता के युद्धास्त्रों को लेकर युद्ध किया। सात रश्मियोंवाले "त्रिशिरा" का उन्होंने वध किया और त्वष्टा के पुत्र (विश्वरूप) की गायों का भी हरण कर लिया।

९. साधुओं के स्वामी इन्द्र ने अभिमानी और व्यापक तेजवाले त्वष्टा के पुत्र को विदीर्ण किया। उन्होंने गायों को बुलाते हुए त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के तीन सिरों को काट डाला।

९ सूक्त

(देवता जल। ऋषि अम्बरीप के पुत्र सिन्धुद्वीप वा त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा। छन्द अनुष्टुप् और गायत्री।)

१. जल, तुम सुख के आधार हो। अन्न-संचय कर दो। हमें भली भाँति ज्ञान दो।

२. जल, जैसे मातायें बच्चों को दूध देती हैं, वैसे ही तुम अपना सुखकर रस हमें दो।

३. जल, तुम जिस पाप के विनाश के लिए हमें प्रसन्न करते हो, उसके विनाश की इच्छा से हम तुम्हें मस्तक पर चढ़ाते हैं। जल, हमारी वंश-वृद्धि करो।

४. दिव्य जल हमारे यज्ञ के लिए सुख-विधान करें। वे पानोपयोगी हुए। वे उत्पन्न रोगों की शान्ति और अनुत्पन्न रोगों को अलग करें। हमारे मस्तक के ऊपर क्षरित हों।

५. अभिलषित वस्तुओं के ईश्वर जल हैं। वे ही मनुष्यों को निवास देते हैं। हम जल से, भेषज के लिए, प्रार्थना करते हैं।

६. सोम कहते हैं कि, जल में औषध और संसार-सुखकर अग्नि भी हैं।

७. जल, हमारी देह की रक्षा करनेवाले औषध को पुष्ट करो, ताकि हम बहुत दिनों तक सूर्य को देख सकें।

८. जल, मेरा जो कुछ दुष्कृत्य है अथवा जो कुछ मैंने हिंसा का कार्य किया है वा अभिसंपात किया है वा झूठ बोला है, वह सब, दूर करो।

९. मैं आज जल में पैठा हूँ—इसके रस का पान किया है। अग्नि, तुम जल-युक्त होकर आओ। मुझे तेजस्वी बनाओ।

१० सूक्त

(देवता और ऋषि यम और यमी । छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. (यम और यमी वा दिन वा रात्रि सहोदर हैं। यमी यम से कहती है—) विस्तृत समुद्र के मध्यद्वीप में आकर, इस निर्जन प्रदेश में, मैं तुम्हारा सहवास वा मिलन चाहती हूँ; क्योंकि (माता की) गर्भावस्था से ही तुम मेरे साथी हो। विधाता ने मन ही मन समझा है कि, तुम्हारे द्वारा मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह हमारे पिता का एक श्रेष्ठ नाती होगा।

२. (यम का उत्तर)—यमी, तुम्हारा साथी यम तुम्हारे साथ ऐसा सम्पर्क नहीं चाहता; क्योंकि तुम सहोदरा भगिनी हो, अगन्तव्या हो। यह निर्जन प्रदेश नहीं है; क्योंकि महान् बली प्रजापति के द्युलोक का धारण करनेवाले वीर पुत्र (देवों के चर) सब देखते हैं।

३. (यमी का वचन)—यद्यपि मनुष्य के लिए ऐसा संसर्ग निषिद्ध है; तो भी देवता लोग इच्छा-पूर्वक ऐसा संसर्ग करते हैं। इसलिए मेरी जैसी इच्छा होती है, वैसे ही तुम भी करो। पुत्रजन्मदाता पति के समान मेरे शरीर में पैठो—मेरा संभोग करो।

४. (यम का उत्तर)—हमने ऐसा कर्म कभी नहीं किया। हम सत्यवक्ता हैं। कभी मिथ्या कथन नहीं किया है। अन्तरिक्ष में स्थित गन्धर्व वा जल के धारक आदित्य और अन्तरिक्ष में ही रहनेवाली योषा (सूर्य की स्त्री सरण्यू) हमारे माता-पिता हैं। इसलिए हम सहोदर बन्धु हैं। ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं।

५. (यमी की उक्ति)—रूपकर्त्ता, शुभाशुभ-प्रेरक, सर्वात्मक, दिव्य और जनक प्रजापति ने तो हमें गर्भावस्था में ही दम्पति बना दिया है। प्रजापति का कर्म कोई लुप्त नहीं कर सकता। हमारे इस सम्बन्ध को द्यावापृथिवी भी जानते हैं।

६. (यमी की उक्ति)—प्रथम दिन की (संगमन की) बात कौन जानता है? किसने उसे देखा है? किसने उसका प्रकाश किया है? मित्र और वरुण का यह जो महान् धाम (अहोरात्र) है, उसके बारे में, हे मोक्षबन्धन-कर्त्ता यम, तुम क्या कहते हो?

७. जैसे एक शय्या पर पत्नी पति के पास अपनी देह का उद्घाटन करती है, वैसे ही तुम्हारे पास, यम, मैं अपने शरीर को प्रकाशित कर देती हूँ। तुम मेरी अभिलाषा करो। आओ, एक स्थान पर दोनों शयन करें। रथ के दोनों चक्कों के समान हम एक कार्य में प्रवृत्त हों।

८. (यम की उक्ति)—देवों के जो गुप्तचर हैं, वे दिन-रात विचरण करते हैं—उनकी आँखें कभी बन्द नहीं होतीं। दुःखदायिनी यमी, शीघ्र दूसरे के पास जाओ और रथ के चक्कों के समान उसके साथ एक कार्य करो।

९. दिन-रात में यम के लिए जो कल्पित भाग है, उसे यजमान दें, सूर्य का तेज यम के लिए उदित हो। परस्पर संबद्ध दिन द्युलोक और भूलोक यम के बन्धु हैं। यमी यम, भ्राता के अतिरिक्त, अन्य पुरुष को धारण करे।

१०. भविष्य में ऐसा युग आयगा, जिसमें भगिनियाँ अपने बन्धुत्व-विहीन भ्राता को पति बनावेंगी। सुन्दरी, मुझे छोड़कर दूसरे को पति बनाओ। वह जिस समय वीर्य-सिंचन करेगा, उस समय उसे बाहुओं में आलिङ्गित करना।

११. (यमी की उक्ति)—वह कैसा भ्राता है, जिसके रहते भगिनी अनाथा हो जाय और वह भगिनी ही क्या है, जिसके रहते भ्राता का दुःख दूर न हो? मैं काम-मूर्च्छिता होकर नाना प्रकार से बोल रही हूँ, यह विचार करके मुझे भली भाँति भोगो।

१२. (यम की उक्ति)—यमी, मैं तुम्हारे शरीर से अपने शरीर को मिलाना नहीं चाहता। जो भ्राता भगिनी का संभोग करता है, उसे लोग

पापी कहते हैं। सुन्दरि, मुझे छोड़कर अन्य पुरुष के साथ आमोद-आह्लाद करो। तुम्हारा भ्राता तुम्हारे साथ मैथुन करना नहीं चाहता।

१३. (यमी का कथन)—हाय यम, तुम दुर्बल हो। तुम्हारे मन और हृदय को मैं कुछ नहीं समझ सकती। जैसे रस्सी घोड़े को बाँधती है और जैसे लता वृक्ष का आलिङ्गन करती है, वैसे ही अन्य स्त्री तुम्हें अनायास आलिङ्गित करती है; परन्तु मुझे तुम नहीं चाहते हो।

१४. (यम का वचन)—यमी, तुम भी अन्य पुरुष का ही भली भाँति आलिङ्गन करो। जैसे लता वृक्ष को वेष्टन करती है, वैसे ही अन्य पुरुष तुम्हें आलिङ्गित करें। उसी का मन तुम हरण करो; वह भी तुम्हारे मन का हरण करे। अपने सहवास का प्रबन्ध उसी के साथ करो—इसी में मंगल होगा।

११ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अङ्गि-पुत्र हविर्द्धान। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. वर्धक, महान् और अहिंसनीय अग्नि ने वर्धक यजमान के लिए महान् दोहन के द्वारा आकाश से जल को दूहा। आदित्य अपनी बुद्धि से सारे संसार को जानते हैं। यज्ञीय अग्नि यज्ञ-योग्य ऋतुओं (कालों) का पूजन करें।

२. अग्नि के गुणों को कहनेवाली गन्धर्व की स्त्री और जल से संस्कृत आहुतिरूपिणी स्त्री ने अग्नि को तृप्त किया। मैं ध्यानावस्थित होकर भली भाँति स्तुति करता हूँ। अखण्डनीय अग्नि हमें यज्ञ के बीच बैठावें। सारे यजमानों में मुख्य हमारे ज्येष्ठ भ्राता स्तुति करते हैं।

३. भजनीय, शब्दवाली और कीर्त्तिवाली उषा यजमान के लिए, आदित्य-वाली होकर, तुरत निकलीं। उसी समय, यज्ञ के लिए, अग्नि को उत्पन्न किया गया। जो यज्ञाभिलाषी हैं, उन्हीं के प्रति अग्नि प्रसन्न होते हैं। अग्नि देवों को बुलाते हैं।

४. श्येनपक्षी अग्नि-प्रेरित होकर महान्, सूक्ष्मदर्शक, न अधिक कम, न अधिक अधिक सोम को ले आया। जिस समय आर्य लोग सामने जाने योग्य, दर्शनीय और देवाह्वान-कर्त्ता अग्नि की प्रार्थना करते हैं, उस समय यज्ञ-क्रिया उत्पन्न होती है।

५. पशुओं के लिए जैसे घास रुचिकर होती है, वैसे ही तुम सदा रमणीय हो। अग्नि, मनुष्यों के हवन से तुम भली भाँति यज्ञ सम्पन्न करो। स्तोता का स्तोत्र सुनकर और हवीरूप अन्न को प्राप्त करके तुम अनेक देवों के साथ जाते हो।

६. अग्नि, अपनी ज्वाला को मातृ-पितृ-रूप द्यावापृथिवी की ओर वैसे ही प्रेरित करो, जैसे नक्षत्र आदि को जीर्ण करनेवाले आदित्य अपना तेज द्युलोक और भूलोक की ओर प्रेरित करते हैं। यज्ञाभिलाषी देवों के लिए यज्ञकर्त्ता यजमान यज्ञ करने को तैयार है। वह हृदय से व्यग्र है। अग्नि स्तुति को वर्द्धित करने की इच्छा करते हैं। प्रधान पुरोहित (ब्रह्मा) भली भाँति कर्म सम्पन्न करने के लिए उत्सुक हैं। वे स्तोत्र को बढ़ाते हैं। ब्रह्मा नामक प्रधान पुरोहित मन ही मन आशंका करते हैं कि, कदाचित् कोई दोष घट जाय।

७. बल के पुत्र अग्नि, अनुग्रहशील तुम्हें यजमान स्तोत्रों और हवियों से सेवित करता है। वह यजमान प्रसिद्ध होता है। वह अन्न देता है, घोड़े उसका वहन करते हैं। वह दीप्तिशाली और बली है। वह अनुदिन सुखी होता है।

८. यजनीय अग्नि, जिस समय हम ढेर की ढेर स्तुतियाँ यजनीय देवों के लिए करते हैं उस समय रमणीय वस्तुएँ हमें दो। यज्ञीय द्रव्य को ग्रहण करनेवाले अग्नि, हम इससे धन का भाग प्राप्त करें।

९. अग्नि, सारे देवों के यज्ञगृह में रहकर तुम हमारे वचन को सुनो। अमर बरसानेवाले रथ को योजित करो। देवों के माता-पिता द्यावा-पृथिवी को हमारे पास ले आओ। तुम यहीं रहो। देवों के पास से नहीं जाना।

१२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि हविर्द्धान। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रधान भूत द्यावापृथिवी, यज्ञ के समय सबके पहले, अग्नि का आह्वान करें। अग्नि, यज्ञ के लिए, मनुष्यों को प्रेरित करके और अपनी ज्वाला को धारण करके, देवों को बुलाने के लिए बैठें।

२. अग्नि दिव्य हैं। वे इन्द्रादि देवों के पास जाते हुए यज्ञ के साथ हवि को ले आवें। अग्नि, देवों में मुख्य, सर्वज्ञ, धूमध्वज, समिधा के द्वारा ऊर्ध्वज्वलन, स्तुत्य, आह्वाता, नित्य और यजमानों के यज्ञ-कर्त्ता हैं।

३. अग्निदेव स्वयं जो जल उत्पन्न करते हैं, उससे उद्भिज्ज उत्पन्न होकर पृथिवी का रक्षण करते हैं। सारे देवता तुम्हारे जल-दान की प्रशंसा करते हैं। तुम्हारी श्वेत ज्वाला स्वर्ग के घृतरूप वृष्टि-वारि का दोहन करते हैं।

४. अग्नि, हमारे यज्ञ रूप कर्म को बढ़ाओ। वृष्टि-जल का वर्षण करनेवाले द्यावापृथिवी, मैं तुम्हारी पूजा और स्तुति करता हूँ। द्यावा-पृथिवी, मेरा स्तोत्र सुनो। जिस समय स्तोता लोग, यज्ञ के समय, स्तुति करते हैं, उस समय वृष्टि-जल का वर्षण करके हमारी मलिनता को दूर करो।

५. प्रदीप्त अग्नि ने क्या हमारी स्तुति और हवि को ग्रहण किया है? क्या हमने उपयुक्त पूजन किया है? कौन जानता है? जैसे मित्र को बुलाने पर वह आता है, वैसे ही अग्नि भी आ सकते हैं। हमारी यह स्तुति देवों के पास जाय। जो कुछ खाद्य है, वह भी देवता के पास जाय।

६. अमर सूर्य का अपराधशून्य और मधुर रसवाला जल पृथिवी पर नाना रूप का होता है। सूर्य यम के अपराध को क्षमा करते हैं। महान् अग्नि, क्षमाशील सूर्य की रक्षा करो।

७. अग्नि के उपस्थित रहने पर यज्ञ में देवता लोग प्रसन्न होते और यजमान के वेदीरूप स्थान में अपने को स्थापित करते हैं। देवों ने सूर्य में तेज (दिनों को) स्थापित किया और चन्द्रमा में रातों को स्थापित किया। वर्द्धमान सूर्य और चन्द्र दीप्ति प्राप्त करते हैं।

८. जिन ज्ञानरूप अग्नि के उपस्थित रहने पर देवता लोग अपना कार्य सम्पादित करते हैं, उनका स्वरूप हम नहीं समझते। इस यज्ञ में मित्र, अदिति और सूर्य पाप-नाशक अग्नि के पास हमें पाप-शून्य कहें।

९. अग्नि, सारे देवों के यज्ञ-गृह में रहकर तुम हमारे वचन को सुनो। अमृत बरसानेवाले रथ को योजित करो। देवों के माता-पिता द्यावा-पृथिवी को हमारे पास ले आओ। तुम यहीं रहो। देवों के पास से नहीं जाना।

१३ सूक्त

(देवता हविर्द्धान नामक शकटद्वय। ऋषि विवस्वान्। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. शकटद्वय, प्राचीन समय में उत्पन्न मंत्र का उच्चारण करके और सोमादि को लादकर पत्नीशाला के अन्त में तुम दोनों को ले जाता हूँ। स्तोता की आहुति के समान मेरा स्तोत्रवाक्य देवों के पास जाय। जो देवता व अमर पुत्र दिव्य धाम में रहते हैं, वे सब सुनें।

२. जब तुम जुड़वें के समान जाते हो, तब देव-पूजक मनुष्य तुम्हारे ऊपर भरपूर होमद्रव्य लादते हैं। तुम लोग अपने स्थान पर जाकर रहो। हमारे सोम के लिए शोभन स्थान ग्रहण करो।

३. यज्ञ के जो पाँच (धाना, सोम, पशु, पुरोडाश और घृत) उपकरण हैं, यथायोग्य उनको मैं रखता हूँ। यथानियम चार त्रिष्टुबादि छन्दों का प्रयोग करता हूँ। ओङ्कार का उच्चारण करके वर्त्तमान कार्य को सम्पन्न करता हूँ। यज्ञ की नाभि-स्वरूप वेदी पर मैं सोम का संशोधन करता हूँ।

४. देवों में से किसे मृत्यु-भवन में भेजा जाय? प्रजा में से किसे अमर किया जाय? यज्ञकर्त्ता लोग मंत्र-पूत यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, जिससे यम हमारे (यजमानों के) शरीर को मृत्यु-मुख में नहीं भेजते।

५. स्तोता लोग पितृ-स्वरूप और प्रशंसनीय सोम के लिए सातों छन्दों का उच्चारण करते हैं। पुत्र-स्वरूप पुरोहित लोग स्तुति करते हैं। दोनों शकट, देव और मनुष्य, दोनों के लिए दीप्ति पाते हैं, कार्य करते हैं और देवों तथा मनुष्यों का पोषण करते हैं।

१४ सूक्त

(देवता पितृलोक, यम आदि। ऋषि वैवस्वत यम। छन्द अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप्।)

१. अन्तःकरण व यजमान, तुम पितरों के स्वामी यम की, पुरोडाश आदि के द्वारा, परिचर्या करो। यम सत्कर्मानुष्ठाताओं को सुख के देश में ले जाते हैं, वे अनेकों का मार्ग परिष्कृत करते हैं और उनके पास ही सारा मानव-समुदाय जाता है।

२. सबमें मुख्य यम हमारे शुभाशुभ को जानते हैं। यम के मार्ग का कोई विनाश नहीं कर सकता। जिस पथ से हमारे पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से अपने-अपने कर्मानुसार सारे जीव जायँगे।

३. अपने सारथि (मातली) के प्रभु इन्द्र कव्यवाले पितरों की सहायता से बढ़ते हैं। यम अङ्गिरा नामक पितरों की सहायता से बढ़ते हैं। और बृहस्पति ऋक्व नामक पितरों की सहायता से बढ़ते हैं। जो देवों की संवर्द्धना करते हैं और जिनकी संवर्द्धना देवता करते हैं, सो सब बढ़ते हैं। कोई स्वाहा के द्वारा और कोई स्वधा के द्वारा प्रसन्न होते हैं।

४. यम, अङ्गिरा नामक पितरों के साथ इस विस्तृत यज्ञविशेष में आकर बैठो। ऋत्विकों के मंत्र तुम्हें बुलावें। राजन्, इस हवि से संतुष्ट होकर यजमान को प्रसन्न करो।

५. यम, नाना रूपोंवाले याज्ञिक अङ्गिरा लोगों के साथ पधारो और इस यज्ञ में यजमान को प्रसन्न करो। तुम्हारे विवस्वान् नामक पिता को मैं इस यज्ञ में बुलाता हूँ। वह कुशों पर बैठकर यजमान को प्रसन्न करें।

६. अङ्गिरा, अथर्वा और भृगु नामक पितृगण अभी-अभी पधारे हैं। वे सोम के अधिकारी हैं। यज्ञ-योग्य उन पितरों की अनुग्रह-बुद्धि में हम रहें। हम उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर कल्याण-मार्गी बनें।

७. जहाँ हमारे प्राचीन पितामह आदि गये हैं, उसी प्राचीन मार्ग से, हे (मृत) पितः, जाओ। स्वधा (अमृतान्न) से प्रहृष्ट-मना राजा यम तथा वरुणदेव को देखो।

८. पितः, उत्कृष्ट स्वर्ग में अपने पितरों के साथ मिलो। साथ ही अपने धर्मानुष्ठान के फल से भी मिलो। पाप को छोड़कर अस्त (व्रियमान) नामक ग्रह में पैठो और उज्ज्वल शरीर से मिलो।

९. श्मशानघाट पर स्थित पिशाचादिको, इस स्थान से चले जाओ, हट जाओ, दूर होओ। पितरों ने इस मृत यजमान के लिए इस स्थान को बनाया है। यह स्थान दिवसों, जल-द्वारा और रात्रि के द्वारा शोभित है। यम ने इस स्थान को मृत व्यक्ति को दिया है।

१०. मृत पितः, चार आँखों और विचित्र वर्णवाले ये जो दो कुक्कुर हैं, इनके पास से शीघ्र चले जाओ। जो सुविज्ञ पितर यम के साथ सदा आमोद के साथ रहते हैं, उत्तम मार्ग से उन्हीं के पास जाओ।

११. यम, तुम्हारे गृह के रक्षक, चार आँखोंवाले, मार्ग के रक्षक और मनुष्यों के द्वारा प्रशंसनीय जो दो कुक्कुर हैं, उनसे इस मृत व्यक्ति की रक्षा करो। राजन्, इसे कल्याणभागी और नीरोगी करो।

१२. लम्बी नाकोंवाले, दूसरों का प्राण-भक्षण करके तृप्त होनेवाले, मनुष्यों को लक्ष्य करके विचरण करनेवाले और विस्तृत बलवाले जो दो यम-दूत (कुक्कुर) हैं, वे आज यहाँ हमें, सूर्य के दर्शन के लिए, समीचीन प्राण दें।

१३. ऋत्विको, यम के लिए सोम प्रस्तुत करो। यम के लिए हवि का हवन करो। जिस यज्ञ के दूत अग्नि हैं और जिसे नाना द्रव्यों से समन्वित किया गया है, वह यज्ञ यम की ओर जाता है।

१४. ऋत्विको, तुम यम के लिए घृत से युक्त हवि का हवन करो और यम की सेवा करो। देवों के बीच यम, हमारे दीर्घ जीवन के लिए, लम्बी आयु दें।

१५. ऋत्विको, राजा यम के लिए अत्यन्त मिष्ट हवि का हवन करो। हमसे पहले शोभन मार्ग बनानेवाले ऋत्विकों के लिए यह नमस्कार है।

१६. यमराज त्रिकद्रुक (ज्योति, गौ और आयु) नामक यज्ञ के अधिकारी हैं। यम छः स्थानों (द्युलोक, भूलोक, जल, उद्भिज्ज, उर्क और सूनृत) में रहते हैं। वे विराट् संसार में विचरण करते हैं। त्रिष्टुप्, गायत्री आदि छन्दों में यम की स्तुति की जाती है।

१५ सूक्त

(देवता पितृलोक। ऋषि यमपुत्र शङ्ख। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. उत्तम, मध्यम और अधम आदि तीन श्रेणियों के पितर लोग हमारे प्रति अनुग्रहयुक्त होकर होमीय द्रव्य का ग्रहण करें। जो पितर अहिंसक होकर और हमारे धर्मानुष्ठान के प्रति दृष्टि रखकर हमारी प्राण-रक्षा करने के लिए आये हैं, वे, यज्ञ-काल में, हमारी रक्षा करें।

२. जो पितर (पितामहादि) आगे और जो (कनिष्ठ भ्राता आदि) पीछे मरे हैं, जो पृथिवी पर आये हैं, अथवा जो भाग्यशाली लोगों के बीच हैं, उन सबको आज यह नमस्कार है।

३. पितर लोग भली भाँति परिचित हैं, मैंने उनको पाया है, इस यज्ञ के सम्पादन का उपाय भी मैंने पाया है। जो पितर कुशों पर बैठकर हव्य के साथ सोमरस का ग्रहण करते हैं, वे सब पधारे हैं।

४. कुशों पर बैठनेवाले पितरो, इस समय हमें आश्रय दो। तुम लोगों

के लिए ये सारे द्रव्य प्रस्तुत हैं, इनका भोग करो। इस समय आओ। हमारी रक्षा करो और हमारा उत्तम मङ्गल करो। हमें कल्याणभागी करो। हमें अकल्याण और पाप से दूर करो।

५. कुशों के ऊपर ये सारे मनोहर द्रव्य रक्खे हुए हैं। इनका और सोमरस का भोग करने के लिए पितर लोग बुलाये गये हैं। वे पधारें, हमारी स्तुति को ग्रहण करें, आह्लाद प्रकट करें और हमारी रक्षा करें।

६. पितरो, तुम लोग दक्षिण तरफ़ घुटने टेककर पृथिवी पर बैठते हुए इस यज्ञ की प्रशंसा करो। हम मनुष्य हैं; इसलिए हमसे अपराध होना संभव है। परन्तु उसके लिए हमारी हिंसा नहीं करना।

७. लोहित शिखा के पास बैठनेवाले इन दाताओं को धन दो। पितरो, उनके पितरों को धन दो—उन्हें इस यज्ञ में उत्साहित करो।

८. जिन सोमपायी प्राचीन पितरों ने उत्तम परिच्छद का धारण करके, यथानियम, सोम पान किया था, वे भी हवि की अभिलाषा करते हैं—यम भी कामना करते हैं। उनके साथ यम सुखी होकर इन होमीय द्रव्यों का यथेच्छ भोजन करते हैं।

९. अग्नि, जो पितर हवन करना जानते थे और अनेक ऋचाओं की रचना करके स्तोत्र प्रस्तुत करते थे और जो, अपने कर्म के प्रभाव से, इस समय, देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं, यदि वे क्षुधा-तृष्णावाले हों, तो उन्हें लेकर हमारे पास आओ। वे विशेष परिचित हैं। वे यज्ञ में बैठते हैं। उन पितरों के लिए यह उत्कृष्ट हवि है।

१०. हे अग्नि! जो साधु-स्वभाव पितर लोग देवों के साथ, एकत्र होकर, हवि का भक्षण और पान करते हैं और इन्द्र के साथ एक रथ पर चढ़ते हैं, उन सब देवाराधक, यज्ञ के अनुष्ठाता, प्राचीन तथा आधुनिक पितरों के साथ आओ।

११. अग्नि के द्वारा स्वादित (अग्निष्वात्त नामक) पितरो, यहाँ आओ और एक-एक कर सब लोग अपने-अपने आसन पर बैठो। अभिपूजित पितरो,

कुशों पर चलते हुए शुद्ध हवि का भक्षण करो। अनन्तर पुत्र-पौत्र आदि से युक्त धन हमें दो।

१२. समस्त संसार के ज्ञाता अग्नि, हमने तुम्हारी स्तुति की है। तुमने हवि को सुगन्धि करके पितरों को दे दिया है। पितर लोग "स्वधा" के साथ दिये गये हवि का भक्षण करें। देव, तुम भी परिश्रम से प्रस्तुत किये गये हवि का भक्षण करो।

१३. ज्ञानी अग्नि, यहाँ जो पितर आये हैं और जो नहीं आये हैं, जिन पितरों को हम जानते हैं और जिन्हें हम नहीं जानते हैं, उन सबको तुम जानते हो। पितरो, स्वधा के साथ इस सुसम्पन्न यज्ञ का भोग करो।

१४. स्वयं प्रकाश अग्नि, जो पितर अग्नि से जलाये गये हैं और जो नहीं जलाये गये हैं, वे सब स्वर्ग में स्वधा (हवीरूप अन्न) के साथ आनन्द करते हैं। उनके साथ एकत्र होकर तुम हमारे पितरों के प्राणाधार शरीर को, यथाभिलाष, देव-शरीर बनाओ।

१६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि यम के पुत्र दमन। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. अग्नि, मृत को सर्वांशतः नहीं भस्म करना। इसे क्लेश नहीं देना। इसके शरीर (वा चर्म) को छिन्न-भिन्न नहीं करना। ज्ञानी अग्नि, जिस समय तुम्हारी ज्वाला से इसका शरीर, भली भाँति, पकता है, उसी समय इसे पितरों के पास भेज देना।

२. अग्नि, जिस समय इसके शरीर को भली भाँति जलाना, उसी समय पितरों के पास इसे भेजना। यह जब दोबारा सजीवता प्राप्त करेगा, तब देवों के वश में रहेगा।

३. मृत व्यक्ति, तुम्हारा नेत्र सूर्य के पास जाय और श्वास वायु में। तुम अपने पुण्य-फल से आकाश और पृथिवी पर जाओ। यदि जल में

जाना चाहते हो, तो जल में ही जाओ। तुम्हारे शरीर के अवयव वनस्पतियों में रहें।

४. इस व्यक्ति का जो अंश जन्म-रहित है, सदा रहनेवाला है, अग्नि, तुम उसी अंश को अपने ताप से उत्तप्त करो। तुम्हारी उज्ज्वलता, तुम्हारी ज्वाला, उसे उत्तप्त करे। ज्ञानी अग्नि, तुम्हारी जो मंगलमयी मूर्त्तियाँ हैं, उनके द्वारा इस व्यक्ति को पुण्यवान् लोगों के देश में ले आओ।

५. अग्नि, जो तुम्हारा आहुति-स्वरूप होकर यज्ञीय द्रव्य का भोजन करता है, उसे पितरों के पास भेजो। इसका जो भाग अवशिष्ट है, वह जीवन पाकर उठ जाय। ज्ञानी अग्नि, वह फिर शरीर प्राप्त करे।

६. मृत व्यक्ति, तुम्हारे शरीर के जिस अंश को काक (कौवे) ने पीड़ा पहुँचाई है अथवा चींटी, साँप वा हिंस्र जीव ने जिस अंश को व्यथा दी है, उसे सर्वभुक् अग्नि नीरोग (व्यथाशून्य) करें। तुम्हारे शरीर में पैठ जानेवाले सोम भी उसे नीरोग करें।

७. मृत, तुम गोचर्म के साथ अग्नि-शिखा-स्वरूप कवच को धारण करो। तुम अपने मेद और मांस से आच्छादित होओ। ऐसा होने पर बल-पूर्वक और अहंकार के साथ तुम्हें जलाने को तैयार हुए दुर्द्धर्ष अग्नि तुम्हारे सर्वांश में नहीं व्याप्त हो सकते।

८. अग्नि, इस चमस को विचलित नहीं करना। यह सोमपायी देवों को प्रसन्न करता है। देवों के पान करने के लिए जो चमस है, उसे देखकर अमर देवता हृष्ट होते हैं।

९. मांस भोजनकर्त्ता (तीव्र) अग्नि को मैं दूर करता हूँ। यह अश्रद्धेय वस्तु का वहन करनेवाले हैं। जिन लोगों के राजा यम हैं, उन्हीं के पास अग्नि जायँ। यहाँ भी एक अग्नि हैं। यही विचार के साथ देवों के पास हवि ले जायँ।

१०. मांसभोजनकर्त्ता और चितावाले अग्नि तुम्हारे घर में पैठे हैं,

उन्हें मैं दूर करता हूँ। दूसरे ज्ञानी अग्नि को मैं, पितरों को यज्ञ देने के लिए, ग्रहण करता हूँ। ये ही यज्ञ को लेकर परम धाम में गमन करें।

११. जो अग्नि श्राद्ध के द्रव्य का वहन करते और यज्ञ की उन्नति करते हैं, वे देवों और पितरों की आराधना करते और उनके पास होमीय द्रव्य ले जाते हैं।

१२. अग्नि, मैं तुम्हें यत्न-पूर्वक स्थापित करता हूँ और यत्न-पूर्वक ही तुम्हें प्रज्वलित करता हूँ। यज्ञाभिलाषी देवों और पितरों के पास तुम यत्न-पूर्वक, भक्षण के लिए, होमीय द्रव्य ले जाते हो।

१३. अग्नि, तुमने जिसे जलाया है, उसे बुझाओ। यहाँ कुछ जल हो और शाखा-प्रशाखाओंवाली दूब उत्पन्न हो।

१४. पृथिवी, तुम शीतल हो। तुम पर कितने ही शीतल वनस्पति हैं। तुम आह्लादिका हो। तुम पर अनेक आह्लादक वनस्पति हैं। भेकी (मेढक की स्त्री) जिससे सन्तुष्ट हो—ऐसी वर्षा ले आओ। अग्नि को सन्तुष्ट करो।

१७ सूक्त

(२ अनुवाक। देवता सरण्यू, पूषा, सरस्वती, सोम आदि। ऋषि यमपुत्र देवश्रवा। छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती आदि।)

१. त्वष्टा नाम के देव अपनी कन्या सरण्यू का विवाह करनेवाले हैं; इस उपलक्ष्य में सारा संसार आगया है। जिस समय यम की माता का विवाह हुआ, उस समय महान् विवस्वान् की स्त्री अदृष्ट हुई।

२. अमर सरण्यू को मनुष्यों के पास छिपाया गया। सरण्यू के सदृश एक स्त्री का निर्माण करके विवस्वान् को उसे दिया गया। उस समय अश्वरूपिणी सरण्यू ने अश्विद्वय को गर्भ में धारण किया और यमज सन्तान को उत्पन्न किया।

३. ज्ञानी, संसार के रक्षक और अविनष्ट-पशु पूषा तुम्हें यहाँ से

उत्तम लोक में ले जायें। अग्निदेव तुम्हें धनद देवों और पितरों के पास ले जायें।

४. सारे संसार के जीवन पूषा तुम्हारे जीवन की रक्षा करें। वे तुम्हारे गन्तव्य स्थान के अग्र भाग में हैं। वे तुम्हारी रक्षा करें। जहाँ पुण्यवान् हैं, जहाँ वे गये हैं, उसी स्थान पर सविता (पूषा) तुम्हें ले जायें।

५. पूषा सारी दिशायें जानते हैं। वे हमें उसी मार्ग से ले जायें, जिसमें कोई भय नहीं है। वे कल्याणदाता हैं। उनकी मूर्त्ति आलोक-वेष्टित है। उनके साथ सारे वीर पुरुष हैं। वे हमें जानते हैं। सावधान होकर वे हमारे सामने आवें।

६. सारे मार्गों से श्रेष्ठ मार्ग में पूषा ने दर्शन दिया है। उन्होंने स्वर्ग और मर्त्य के श्रेष्ठ पथ में दर्शन दिया है। पूषा की जो दो प्रेयसियाँ (द्यावा-पृथिवी) हैं और जो एक साथ रहती हैं, उनको पूषादेव, विशेष समझ करके, मनोरंजन करते हैं।

७. जो देवों के उद्देश्य से यज्ञ करते हैं, वे सरस्वती की पूजा के लिए आह्वान करते हैं। जिस समय देवता का, विस्तार के साथ, यज्ञ प्रारम्भ हुआ, उस समय पुण्यात्माओं ने सरस्वती को बुलाया। सरस्वती दाता की अभिलाषा पूरी करें।

८. सरस्वती, तुम पितरों के साथ एक रथ पर जाओ। तुम उनके साथ, आह्लाद-पूर्वक, सारे यज्ञीय द्रव्य का भोग करो। आओ, इस यज्ञ में आनन्द करो। हमें नीरोग और अन्न-दान करो।

९. सरस्वती, पितर लोग दक्षिण पार्श्व में आकर और यज्ञस्थान में विस्तीर्ण होकर तुम्हें बुलाते हैं। तुम यज्ञकर्त्ता के लिए बहुमूल्य और विलक्षण अन्नराशि तथा प्रचुर अन्न उत्पन्न कर दो।

१०. जल मातृ-स्वरूप है। वह हमारा शोधन करे। जल घृत-प्रवाह से प्रवाहित हो रहा है। उसी घृत के द्वारा वह हमारे मल को दूर करे।

जल-रूपी देवी सारे पापों को अपने स्रोत में बहा ले जायँ। जल में से हम स्वच्छ और पवित्र होकर आते हैं।

११. द्रव्य-रूप सोमरस अतीव सुन्दर और दीप्ति-शील अंशु से क्षरित होते हैं। इस स्थान पर और इसके पूर्वतन स्थान पर अर्थात् आधार पर सोम क्षरित होते हैं। हम सात हवन-कर्त्ता समान-रूप से आधार के बीच में विहार करनेवाले उन द्रव्य-रूप सोम का हवन करते हैं।

१२. सोम, तुम्हारा जो द्रव्यात्मक रस क्षरित होता है अथवा तुम्हारा जो अंशु (खाल) पुरोहित के हाथ से प्रस्तर-फलक के पास गिरता है अथवा जो पवित्र के ऊपर स्थापित हुआ है, उन सबका मन ही मन नमस्कार करते हुए हम हवन करते हैं।

१३. तुम्हारा जो रस बाहर हुआ है और जो तुम्हारा अंशु स्रक् नामक पात्र के नीचे गिरा है, दोनों का बृहस्पतिदेव सेचन करें। इससे हमें धन मिलेगा।

१४. वनस्पति दुग्ध के समान रस से परिपूर्ण हैं। हमारा स्तोत्र—वचन रसमय दुग्ध के सार रस से पूर्ण है। इन सारे पदार्थों से हमारा संस्कार करो।

१८ सूक्त

(देवता मृत्यु, धाता, त्वष्टा, अग्निसंस्कार आदि। ऋषि यम-पुत्र संकुसुक। छन्द जगती, गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. मृत्युदेव, तुम उस मार्ग से जाओ, जो देवयान-मार्ग से दूसरा है। तुम नेत्रवाले हो और सब कुछ जानते हो। मैं तुम्हारे लिए कहता हूँ। हमारे पुत्र, पौत्र आदि को नहीं मारना। वीरों को भी नहीं मारना।

२. मृत व्यक्ति के सम्बन्धियो, पितृयान (मृत्यु-मार्ग) को छोड़ो। इससे दीर्घ जीवन प्राप्त होगा। यज्ञानुष्ठाता यजमानो, तुम पुत्र, पौत्र, गौ आदि से युक्त होकर इस जन्म और पूर्व जन्म के पापों से शून्य होकर पवित्र बनो।

३. जीवित मनुष्य मृत व्यक्तियों के पास लौट आवें। आज हमारा

पितृमेध-यज्ञ कल्याणकर हो। हम उत्तम रीत से नर्त्तन और क्रीड़न के लिए समर्थ हों। हम दीर्घ आयु पावें।

४. पुत्र, पौत्र आदि की रक्षा के लिए, मृत्यु के सामने, रोकने के लिए, पाषाण का मैं व्यवधान करता हूँ, ताकि मरणमार्ग शीघ्र न आने पावे। ये सैकड़ों वर्ष जीवित रहें। शिला-खण्ड से मृत्यु को दूर करो।

५. जैसे दिन पर दिन बीतते हैं, ऋतु के पश्चात् ऋतु बीतती है और पूर्वकालीन पितरों के रहते आधुनिक पुत्र आदि नहीं मरते, वैसे ही हे धाता, हमारे वंशजों की आयु स्थिर रक्खो—अकाल मृत्यु न होने पावे।

६. मृत व्यक्ति के पुत्रादिको, वार्द्धक्य प्राप्त करते हुए, आयु में अधिष्ठित रहो। ज्येष्ठ के पश्चात् कनिष्ठ के क्रम से तुम लोग कार्य में अवस्थित रहो। शोभन-जन्मा त्वष्टादेव, तुम लोगों के साथ, इस कर्म में प्रवृत्त हुए तुम लोगों की आयु लम्बी करें।

७. ये सधवा और शोभन पतिवाली स्त्रियाँ घृताञ्जन के साथ अपने घरों को जायें। अश्रु-शून्य, मानस-रोग-रहित और शोभन धनवाली होकर ये स्त्रियाँ सबसे आगे घरों में जायें।

८. मृत व्यक्ति की पत्नी, पुत्रादि के गृह का विचार करके, यहाँ से उठो। यह तुम्हारा पति मरा हुआ है। इसके पास तुम (व्यर्थ) सोई हुई हो। चलो; क्योंकि पाणिग्रहण और गर्भ धारण करानेवाले पति के साथ तुम स्त्री-कर्त्तव्य कर चुकी हो। तुमने इसके प्राण-गमन का निश्चय कर लिया है; इसलिए घर लौट चलो।

९. अपनी प्रजा के रक्षण, तेज और बल के लिए मैं मृत व्यक्ति के हाथ से धनु लेकर बोलता हूँ। मृत, तुम यहीं रहो। हम वीर पुत्रोंवाले हों। हम सारे अभिमानी शत्रुओं को जीतें।

१०. मृत, मातृ-स्वरूपिणी, विस्तीर्ण, सर्वव्यापिनी और सुखदात्री पृथिवी के पास जाओ। यह यौवन से युक्त स्त्री के समान तुम्हारे लिए राशीकृत मेषलोम के सदृश कोमल-स्पर्शा है। तुमने दक्षिणा दी है वा यज्ञ किया है। यह पृथिवी मृत्यु के पास से अस्थि-रूप तुम्हारी रक्षा करें।

११. पृथिवी, तुम इस मृत को उन्नत करके रक्खो। इसे पीड़ा नहीं देना। इसके लिए सुपरिचारिका और सुप्रतिष्ठा होओ। जैसे माता पुत्र को अञ्चल से ढँकती है, वैसे ही, हे भूमि, इस अस्थिरूप मृत को आच्छादित करो।

१२. इसके ऊपर स्तूपाकार होकर पृथिवी भली भाँति अवस्थित हों। सहस्र धूलियाँ इसके ऊपर अवस्थिति करें। वे इसके लिए घृतपूर्ण गृह के समान हों। प्रतिदिन वे इसके आश्रय हों।

१३. अस्थित-कुम्भ, तुम्हारे ऊपर पृथिवी को उत्तम्भित करके रखता हूँ। तुम्हारे ऊपर में लोष्ट्र अर्पण करता हूँ, ताकि तुम्हारे ऊपर मिट्टी जाकर तुम्हें नष्ट न कर सके। इस स्थूणा (खूँटी) को पितर लोग धारण करें। पितृपति यम यहाँ तुम्हारा वासस्थान कर दें।

१४. प्रजापति, जैसे बाण के मूल में पर्ण (पक्ष) लगाते हैं, वैसे ही प्रतिपूज्य संवत्सर-रूप दिन में मुझ संकुसुक ऋषि को सारे देवों ने रक्खा है। जैसे शीघ्रगामी अश्व को रस्सी से रोका जाता है, वैसे ही मेरी पूज्य स्तुति को रक्खो।

षष्ठ अध्याय समाप्त।

१९ सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता गौ। ऋषि यम पुत्र भथित। छन्द गायत्री और अनुष्टुप्।)

१. गायो, तुम लोग हमारे पास आओ। हमारे सिवा दूसरे के पास मत जाओ। धनवती गायो, हमें दुग्ध दान करके सेवित करो। बार-बार धन देनेवाले अग्नि और सोम, तुम लोग हमें धन दो।

२. इन गायों को बार-बार हमारे सामने करो। इन्हें अपने वश में करो। इन्द्र भी इन्हें तुम्हारे वश में करें। अग्नि इन्हें उपयोगिनी करें।

३. ये गायें बार-बार मेरे पास आवें। ये मेरे वश में होकर पुष्ट हों। अग्नि, इन्हें मेरे पास रक्खो। यह गोधन मेरे पास रहे।

४. मैं गोसहित गोष्ठ की प्रार्थना करता हूँ। गौओं के गृह आने की प्रार्थना करता हूँ। गोसम्मेलन की भी प्रार्थना करता हूँ। गोचरण की भी प्रार्थना करता हूँ। चरकर उनके घर आने की भी प्रार्थना करता हूँ। गोपाल की भी प्रार्थना करता हूँ।

५. जो गोपाल (गायें चरानेवाला) चारों ओर गायों की खोज करता है, जो गायों को घर पर ले आता है और जो गायें चराता है, वह कुशल-पूर्वक घर पर लौट आवे।

६. इन्द्र, तुम हमारी ओर होओ। गायों को हमारी ओर करो। हमें गायें दो। हम चिरञ्जीविनी गायों का दुग्ध भोगें।

७. देवो, मैं तुम लोगों को प्रचुर अन्न, घृत और दुग्ध आदि निवेदित कर देता हूँ। फलतः जो यज्ञ-योग्य देवता हैं, वे हमें गोधन दें।

८. चरवाहा, गायों को मेरे पास ले आओ। गायो, तुम भी आओ। चरवाहा, गायों को लौटाओ। गायो, लौट आओ। सूक्तकर्त्ता ऋषि, मैं कहाँ से लौटाऊँ? हम कहाँ से लौटें? (उत्तर—) चारों दिशाओं से गायों को लौटाओ। गायो, तुम भी इन दिशाओं से लौट आओ।

२० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि प्रजापति-पुत्र विमद। छन्द विराट्, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् आदि।)

१. अग्नि, हमारे मन को शुभ करो—अपने स्तोत्र के योग्य करो।

२. हवि का भोग करनेवाले देवों में कनिष्ठ, अतीव युवक, सबके मित्र और दुर्द्धर्ष अग्नि की मैं स्तुति न करता हूँ। बछड़े गोस्तन का आश्रय करके प्राण धारण करते हैं।

३. कर्माधार और ज्वाला-रूप अग्नि को स्तोता लोग वर्द्धित करते हैं। अग्नि स्तोताओं को अभीष्ट फल देनेवाले हैं।

४. अग्नि यजमानों के लिए आश्रयणीय हैं। जिस समय अग्नि दीप्त होकर ऊपर उठते हैं, उस समय मेधावी अग्नि द्युलोक तक व्याप्त कर लेते हैं—मेघ को भी व्याप्त कर लेते हैं।

५. यजमान के यज्ञ में हवि का सेवन करनेवाले अग्नि, अनेक ज्वालाओं से युक्त होकर ऊपर उठते हैं। अग्नि उत्तर वेदी को मापते हुए सामने आते हैं।

६. वे ही अग्नि सबके पालन के कारण हैं, यज्ञ भी वे ही हैं, पुरोडाश आदि भी हैं। अग्नि देवों को बुलाने के लिए जाते हैं।

७. जो अग्नि देवों ओ बुलानेवाले हैं, जिन्हें लोग पत्थर का पुत्र कहते हैं और जो यज्ञ के धारक हैं, उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति के लिए उन्हीं अग्नि की सेवा करने की मैं अभिलाषा करता हूँ।

८. पुरोडाश आदि के द्वारा अग्नि का संवर्द्धन करनेवाले जो हमारे पुत्र, पौत्रादि हैं, वे संभोग-योग्य पशु आदि धन में बैठेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं।

९. अग्नि के जाने के लिए जो बृहत् रथ है, वह कृष्ण-वर्ण, शुभ्रवर्ण, सरल-गन्ता, रक्तवर्ण और बहुमूल्य वा कीर्त्तिशाली है। सुवर्ण के सदृश उज्ज्वल करके विधाता ने उसे बनाया है।

१०. अग्नि, बल वा वनस्पति के पुत्र हो। तुम अमर धन से युक्त हो। अपनी प्रकृष्ट बुद्धि की इच्छा करनेवाले विमद नाम के ऋषि ने तुम्हारे लिए ये स्तोत्र कहे हैं। तुम इन उत्कृष्ट स्तुतियों को प्राप्त करके विमद को, अन्न, बल, शोभन निवास और जो कुछ देने योग्य है, सो सब धन दो।

२१ सूक्त

(देवता और ऋषि पूर्ववत्। छन्द आस्तार-पंक्ति—प्रत्येक मन्त्र में पहले के दो चरण गायत्री और अन्त के दो चरण जगती।)

१. अपनी बनाई स्तुतियों से देवाह्वाता अग्नि को, विस्तृत कुशवाले यज्ञ के लिए, हम वरण करते हैं। अग्नि, तुम महान् हो। वनस्पतियों में रहनेवाले और शोधक-दीप्ति ज्वाला को विमद के लिए प्रेरित करो।

२. अग्नि, दीप्त और व्याप्त-धन यजमान तुम्हें सुशोभित करते हैं।

क्षरणशील और सरलगति आहुति, अग्निदेव, तुम्हारे पास तृप्ति के लिए जाती है। तुम महान् हो।

३. यज्ञ के धारक ऋत्विक् लोग होम-पात्रों से वैसे ही तुम्हारी सेवा करते हैं, जैसे जल पृथिवी को सींचता है। अग्नि, देवों के मद के लिए तुम कृष्णवर्ण ज्वालारूपी और सारी शोभा को धारण करते हो। तुम महान् हो।

४. अमर और बली अग्नि, तुम जिस धन को श्रेष्ठ समझते हो, उस विचित्र धन को, अन्न-लाभ के लिए, हमारे निमित्त ले आओ। तुम समस्त देवों की तृप्ति के लिए धन ले आओ। तुम महान् हो।

५. अथर्वा ऋषि ने अग्नि को उत्पन्न किया था। अग्नि सब प्रकार के स्तोत्रों को जानते हैं। अग्नि, तुम देवाह्वान के लिए यजमान के दूत हो। अग्नि यजमान के प्रिय हैं। अग्नि, तुम कमनीय और महान् हो।

६. अग्नि, यज्ञ का आरम्भ होने पर ऋत्विक् और यजमान तुम्हारी स्तुति करते हैं। अग्नि, तुम हविर्दाता विमद के लिए सब प्रकार के धन देते हो। इसलिए तुम महान् हो।

७. अग्नि, तृप्ति के लिए होता, रमणीय, आहुत से पूर्ण मुखवाले, जाज्वल्यमान और व्यापक तेज के कारण ज्ञानी तुम्हें यजमान लोग यज्ञ में नियमतः स्थापित करते हैं। तुम महान् हो।

८. अग्नि, तुम महान् हो। प्रदीप्त तेज से तुम प्रसिद्ध होते हो। तुम समर-समय में दर्पित वृष के समान शब्द करते हो। तुम भगिनी-सदृश ओषधियों में बीज धारण करते हो। सोमादि का मद उत्पन्न होने पर तुम महान् होते हो।

२२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विमद। छन्द बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. इन्द्र आज कहाँ प्रख्यात हैं? आज वे, मित्र के समान, किस व्यक्ति के पास हैं? इन्द्र क्या ऋषियों के आश्रम वा किसी गुहा में स्तुत किये जाते हैं?

२. आज इस यज्ञ में इन्द्र प्रख्यात हैं। आज हम उनकी स्तुति करते हैं। इन्द्र वज्रधर और स्तुत्य हैं। इन्द्र स्तोताओं में मित्र के समान, असाधारण रूप से, कीर्ति करनेवाले हैं।

३. जो इन्द्र बल-पति, अनन्तगुण और स्तोताओं के लिए महान् अन्न के दाता हैं, वे शत्रुओं को रगड़नेवाले वज्र के धारक हैं। जैसे पिता प्रिय पुत्र की रक्षा करता है, वैसे ही इन्द्र हमारी रक्षा करें।

४. वज्रधर इन्द्र, तुम द्योतमान हो वायुदेव से भी शीघ्र जानेवाले और उचित मार्ग से जानेवाले अपने हरि नामक अश्वों को रथ में जोतकर और युद्ध-पथ को उत्पन्न करके सदा स्तुत होते हो।

५. इन्द्र, तुम स्वयं उन वायु-वेग-तुल्य और सरल-गामी अश्वों को चलाकर हमारे अभिमुख जाते हो। देवों में से कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुम्हारे इन दोनों घोड़ों का संचालन कर सके और इनके बल को जान सके।

६. इन्द्र और अग्नि, जिस समय तुम अपने स्थानों को जाने लगे, उस समय भार्गव उशना ने तुमसे सम्भाषण किया—तुम लोग किस प्रयोजन से, इतनी दूर से हमारे यहाँ आये हो? (मेरे विचार से) तुम लोग द्युलोक और भूलोक से जो मेरे यहाँ आये हो, वह केवल तुम लोगों का अनुग्रह है।

७. इन्द्र हमने इस यज्ञ की सामग्री प्रस्तुत की है। तुम जब तक तृप्त नहीं होओ, तब तक उसका भक्षण करो। हम तुमसे अन्न और उसका रक्षण चाहते हैं। तुमसे हम वैसा बल भी चाहते हैं, जिससे राक्षसों का विनाश हो सके।

८. हमारी चारों ओर यज्ञ-शून्य दस्युदल हैं। वह कुछ नहीं मानता, अग्न्याधि कर्मों से शून्य है और उसकी प्रकृति आसुरी है। शत्रु-नाशक इन्द्र, इस दस्यु-जाति का विनाश करो।

९. विक्रान्त इन्द्र, तुम शूर मरुतों के साथ हमारी रक्षा करो। तुमसे रक्षित होकर हम शत्रु-विनाश में समर्थ हों। जैसे मनुष्य अपने स्वामी

की सेवा के लिए उसे वेष्टित करते हैं, वैसे ही तुम्हारे दिये प्रचुर पदार्थ स्तोताओं को वेष्टित करते हैं।

१०. वज्रधर इन्द्र, वृत्र-वध के लिए तुम प्रसिद्ध मरुतों को उस समय प्रेरित करते हो, जिस समय तुम स्तोता कवियों का, नक्षत्रवासी देवों के प्रति, सुन्दर स्तोत्र सुनते हो।

११. शूर और वज्रधर इन्द्र, दान करना ही तुम्हारा कर्म है। युद्ध-क्षेत्र में बहुत शीघ्र तुम्हारा कर्म होता है। तुमने मरुतों के साथ शुष्ण के सारे वंश का विनाश कर डाला है।

१२. शूर इन्द्र, हमारी ये महती वासनायें वृथा न होने पावें। वज्रधर इन्द्र, हमारी सारी लालसाएँ फलवती होकर सुखकरी हों।

१३. हमारे लिए तुम्हारा अनुग्रह हो ताकि हमारी हिंसा न हो। जैसे लोग गाय के दूध आदि का भोग करते हैं, वैसे ही हम तुम्हारे प्रसाद का फल भोगें।

१४. देवों की क्रिया के द्वारा यह पृथिवी हस्त-पाद-शून्या होकर चारों ओर बढ़ी है। पृथिवी की प्रदक्षिणा करके और चारों ओर गमन करके तुमने शुष्ण नामक असुर की हिंसा की है।

१५. शूर इन्द्र, सोम का शीघ्र पान करो। इन्द्र, तुम धनी हो। प्रशस्त होकर तुम हमारी हिंसा नहीं करना। तुम स्तोता यजमान की रक्षा करना। हमें प्रचुर धन से धनी बनाओ।

२३ सूक्त

(देवता और ऋषि पूर्ववत्। छन्द त्रिष्टुप् अभिसरणी (दो चरण दस-दस अक्षरों के और अन्त के दो बारह-बारह चरणों के) तथा जगती।)

१. जो इन्द्र विविध कर्म-कुशल और हरितवर्ण अश्वों को रथ में जोतते हैं और जिनके दाहिने हाथ में वज्र है, हम उनकी पूजा करते हैं। सोमपान के अनन्तर इन्द्र अपने श्मश्रु (मूँछ, दाढ़ी) को हिलाकर और

विस्तृत सेना तथा अन्न लेकर विपक्षियों का संहार करने के लिए ऊपर गये या प्रकट हुए।

२. इन्द्र के हरितवर्ण दो अश्वों ने वन में बढ़िया घास खाई है। इन दोनों को लेकर और प्रचुर धन से धनी होकर इन्द्र ने वृत्र को नष्ट किया। इन्द्र बिराट्-मूर्त्ति, बली, दीप्तिशाली और धन के अधिपति हैं। मैं दस्यु-जाति का नाम तक नष्ट कर देना चाहता हूँ।

३. जिस समय इन्द्र सुवर्णमय वज्र का धारण करते हैं, उस समय वह उसी रथ पर, विद्वानों के साथ, चढ़ते हैं, जो रथ हरितवर्णवाले दो अश्वों के साथ जाता है। इन्द्र चिरप्रसिद्ध धनी और सर्वजन-विदित अन्नराशि के स्वामी हैं।

४. जैसे वृष्टि पशु-समूह को भिगोती है, वैसे ही इन्द्र हरितवर्ण सोमरस के द्वारा अपनी मूँछ-दाढ़ी को भिगोते हैं। अनन्तर वह शोभन यज्ञ-गृह में जाते हैं और वहाँ जो मधुर सोमरस प्रस्तुत रहता है, उसे पीकर अपनी मूँछ-दाढ़ी को उसी प्रकार हिलाते हैं, जिस प्रकार वायु वन को हिलाती है।

५. शत्रु लोग नाना प्रकार के वचन बोल रहे थे। इन्द्र ने अपने वचन से उन्हें चुप करके शतसहस्र शत्रुओं का संहार कर डाला। जैसे पिता, अन्न देकर, पुत्र को बलिष्ठ करता है, वैसे ही वह मनुष्यों को बलिष्ठ करते हैं। हम इन्द्र की इन शक्तियों का बखान करते हैं।

६. इन्द्र, विमदवंशीयों ने तुम्हें अतीव प्रतिष्ठित जानकर तुम्हारे लिए अतीव विलक्षण और अतीव विस्तृत स्तुति बनाई है। हम जानते हैं कि राजा इन्द्र की तृप्ति का साधन क्या है। जैसे चरवाहा गौ को खाने का लोभ दिखाकर उसे अपने पास बुलाता है, वैसे ही हम भी इन्द्र को बुलाते हैं।

७. इन्द्र, तुम्हारे और विमद ऋषि के साथ जो सब मैत्री का बन्धन है, वह शिथिल न होने पावे। देव, जैसे भ्राता और भगिनी में मन की एकता है, वैसे ही तुम्हारे मन का ऐक्य हम जानते हैं। हमारे साथ तुम्हारा कल्याणकर बन्धुत्व स्थिर रहे।

२४ सूक्त

(देवता इन्द्र और अश्विद्वय। ऋषि विमद। छन्द अनुष्टुप् और आस्तारपङ्क्ति।)

१. इन्द्र, प्रस्तर-फलकों के ऊपर रगड़ाजाकर यह मधुर सोमरस, तुम्हारे लिए, तैयार है। पियो। प्रचुर धनवाले इन्द्र, हमें सहस्र-संख्यक प्रचुर धन दो। विमद के लिए तुम महान् हो।

२. इन्द्र, यज्ञीय सामग्री, स्तुति और होमीय वस्तु के द्वारा हम तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम सारे कर्मों के प्रभु हो। सारे कर्म सफल करते हो। अतीव उत्तम और अभिलषित वस्तु हमें दो। विमद के लिए तुम महान् हो।

३. तुम विविध अभिलषित वस्तुओं के स्वामी हो। तुम उपासक को उपासना-कार्य में प्रेरित करते हो। तुम स्तोताओं के रक्षक हो। तुम हमें शत्रु के हाथों से और पाप से बचाओ।

४. कर्म-निष्ठ अश्विद्वय, तुम्हारा कार्य अद्भुत है। तुम सत्यरूप हो। जिस समय विमद ने तुम्हारी स्तुति की थी, उस समय काठों में घर्षण करके और दोनों ने एकत्र होकर अग्नि-मन्थन किया था—पृथक्-पृथक् नहीं।

५. अश्विद्वय, जिस समय दोनों अरणि (अग्नि-मन्थन-काष्ठ), तुम्हारे हाथों से संचालित होकर, इकट्ठे हुए और अग्नि स्फुलिंग बाहर करने लगे, उस समय सारे देवता तुम्हारी प्रशंसा करने लगे। देवता लोग अश्विद्वय को बोलने लगे, "फिर ऐसा करना।"

६. अश्विद्वय, मेरा बाहर जाना प्रीतिकर हो। मेरा पुनरागमन भी वैसा ही मधुर हो—मैं जब जहाँ जाऊँ, प्रीति प्राप्त करूँ। दोनों देव, अपनी दिव्यशक्ति के बल से हमें सभी विषयों में सन्तुष्ट करो।

२५ सूक्त

(देवता सोम। ऋषि विमद। छन्द आस्तार-पङ्क्ति।)

१. सोम, हमारे मन को इस प्रकार उत्तम रूप से प्रेरित करो कि, वह निपुण और कर्मनिष्ठ हो। जैसे गायें घास में रत होती हैं, वैसे ही स्तोता लोग अन्न के प्रति रत होते हैं। विमद के लिए तुम महान् हो।

२. सोम, पुरोहित लोग स्तुति के द्वारा तुम्हारे चित्त का हरण करके चारों ओर बैठते हैं। धन-प्राप्ति के लिए मेरे मन में नाना प्रकार की कामनायें उत्पन्न होती हैं। विमद के लिए तुम महान् हो।

३. सोम, अपनी इस परिणत बुद्धि के द्वारा मैं तुम्हारे कार्य का परिमाण करके देखता हूँ। जैसे पिता पुत्र के प्रति अनुकूल होता है, वैसे ही तुम हमारे लिए होओ। शत्रु-संहार करके हमें सुखी करो। विमद के लिए महान् हो।

४. सोम, जैसे कलश जल निकालने के लिए कुएँ के भीतर जाता है, वैसे ही हमारे सारे स्तोत्र तुम्हारे लिए जाते हैं। हमारी प्राण-रक्षा के लिए इस यज्ञ को सुसम्पन्न करो। जैसे जल-पिपासु तीर के पास पान-पात्र धारण करता है, वैसे ही तुम धारण करो। तुम महान् हो।

५. विविध-फलाभिलाषी सारे धीर व्यक्तियों ने अनेक प्रकार के कार्य करके तुम्हारा परितोष किया है; क्योंकि तुम महान् और मेधावी हो। फलतः तुम गौ और अश्व से युक्त पशुशाला हमें दो। तुम महान् हो।

६. सोम, हमारे पशुओं की रक्षा करो और नाना मूर्त्तियों में स्थित विशाल भुवनों की रक्षा करो। हमारे प्राण-धारण के लिए सारे भुवनों का अन्वेषण करके जीवनोपाय ले आ देते हो। विमद के लिए तुम महान् हो।

७. सोम, तुम सब प्रकार से हमारे लिए रक्षक होओ; क्योंकि तुम दुर्द्धर्ष हो। राजा सोम, शत्रुओं को दूर कर दो। हमारा निन्दक हमारा कुछ न करने पावे। विमद के लिए तुम महान् हो।

८. सोम, तुम्हारा कार्य अतीव सुन्दर है। तुम हमें अन्न देने के लिए सतर्क रहते हो। हमें भूमि देने के लिए तुम्हारे सदृश कोई नहीं है। अनिष्ट-कर्त्ताओं के हाथ से हमारी रक्षा करो। पाप से भी बचाओ। तुम महान् हो।

९. जिस समय भयंकर युद्ध उपस्थित होता है और अपनी सन्तानों का उसमें बलिदान करना पड़ता है और जिस समय योद्धा शत्रु चारों ओर से हमें, युद्ध के लिए बुलाते हैं, उस समय, हे सोम, तुम इन्द्र के सहायक होते हो,

उन्हें विपदों से बचाते हो; क्योंकि तुम्हारे समान शत्रु-संहारक कोई नहीं है। विमद के लिए महान् हो।

१०. सोम सारे कार्यों में क्षिप्रकारी हैं। वह मदकर और इन्द्र के तर्पक हैं। सोम ने महामेधावी कक्षीवान् ऋषि की बुद्धि को बढ़ाया था। विमद के लिए तुम महान् हो।

११. सोम मेधावी और हविर्दाता यजमान को पशु-युक्त अन्न देते हैं। यही सोम सातों होताओं को श्रेष्ठ धन देते हैं। सोम ने अंधे दीर्घतमा ऋषि को नेत्र और लँगड़े परावृज ऋषि को पैर दिये थे। विमद के लिए महान् हो।

२६ सूक्त

(देवता पूषा। ऋषि विमद। छन्द उष्णिक् और अनुष्टुप्।)

१. अतीव उत्कृष्ट स्तोत्र प्रस्तुत किये गये हैं। उन सबका पूषादेव के प्रति प्रयोग किया जाता है। वे श्रेष्ठ देव सदा रथ को जोतनेवाले हैं। वे आकर यजमान और उसकी पत्नी की रक्षा करें।

२. मेधावी यजमान पूषा (सूर्य) के मण्डल में जो जल का भाण्डार है, उसे, यज्ञ के द्वारा, पृथिवी पर ले आवें। पूषादेव यजमान का स्तोत्र सुनते हैं।

३. पूषादेव सोम के समान रस का सेचन करनेवाले हैं। वे उत्तम स्तोत्र सुनते हैं। सुशोभित पूषा जल का सिंचन करते हैं। हमारे गोष्ठ में भी जल का सिंचन करते हैं।

४. पूषादेव, हम मन ही मन तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम हमारे स्तोत्र की स्फूर्ति कर दो। तुम्हारी सेवा के लिए पुरोहित लोग व्यस्त रहते हैं।

५. पूषा यज्ञ के अर्द्धांश के भागी हैं। वे रथ में घोड़े जोतकर जाते हैं। वे मनुष्यों के परम हितैषी हैं। वे बुद्धिशाली के बन्धु हैं। वे उसके शत्रुओं को दूर कर देते हैं।

६. गर्भाधान करने में समर्थ और सुन्दर मूर्त्ति छागी और छाग आदि पशुओं के प्रभु पूषा हैं। वे ही मेषलोम का वस्त्र (कम्बल) बुनते हैं और वे ही वस्त्र धो देते हैं।

७. प्रभु पूषा अन्न के अधिपति हैं—प्रभु पूषा सबके लिए पुष्टिकर हैं। वे ही सौम्यमूर्त्ति और दुर्द्धर्ष पूषा क्रीड़ास्थल में अपनी मूँछ-दाढ़ी को कँपाने लगे।

८. पूषादेव, छाग तुम्हारे रथ की धुरी का वहन करने लगे। तुम अनेक समय पहले जनमे थे। तुम कभी भी अपने अधिकार से वंचित नहीं हुए। सारे याचकों की मनःकामना पूर्ण करते हो।

९. वे ही महीयान् पूषादेव अपने बल के द्वारा हमारे रथ की रक्षा करें। वे अन्न-वृद्धि करें। वे हमारे इस निमंत्रण के प्रति कर्णपात करें।

२७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि इन्द्र पुत्र वसुक्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. (इन्द्र की उक्ति)—भक्त स्तोता, मेरा यह स्वभाव है कि, सोम-यज्ञ के अनुष्ठाता यजमान को मैं अभिलषित फल देता हूँ। जो मुझे होमीय द्रव्य नहीं देता, वह सत्य को नष्ट करता है। जो चारों ओर पाप करता फिरता है, उसका मैं सर्वनाश करता हूँ।

२. (ऋषि का कथन)—जो लोग देवानुष्ठान नहीं करते और केवल अपने उदर का पोषण करते हैं—जिस समय ऐसे लोगों के साथ मैं युद्ध करने जाता हूँ, उस समय, इन्द्र, तुम्हारे लिए, पुरोहितों के साथ, स्थूलकाय वृषभ का पाक करता हूँ। मैं पन्द्रह तिथियों में से प्रत्येक तिथि को (अथवा त्रिवृत्पञ्चदशस्तोत्रों से युक्त माध्यन्दिन सवन को) सोमरस प्रस्तुत करता हूँ।

३. (इन्द्र की उक्ति)—मैंने ऐसा किसी को भी नहीं देखा, जो यह कहे कि, मैंने देवशून्य और देवकर्मशून्य व्यक्तियों को संग्राम में मारा है। जिस समय युद्ध में जाकर मैं उनका संहार करता हूँ, उस समय सब उस वीरत्व का, विस्तारित रूप से, वर्णन करते हैं।

४. जिस समय मैं अनजानते सहसा युद्ध में प्रवृत्त होता हूँ, उस समय सारे ऋषि मुझे घेर लेते हैं। प्रजा के मंगल के लिए मैं सर्वत्र विहार

करनेवाले शत्रु का पराभव करता हूँ—उसके पैर पकड़कर उसे पत्थर के ऊपर फेंक देता हूँ।

५. युद्ध में मुझे निरुद्ध करनेवाला कोई नहीं है। यदि मैं चाहूँ, तो पर्वत भी मेरा निरोध नहीं कर सकें। जिस समय मैं शब्द करता हूँ, उस समय जिसका कान बधिर है, वह भी डर जाय अर्थात् उसके भी कर्ण-कुहर में वह शब्द पहुँच जाय। और तो और, किरणमाली सूर्य तक प्रतिदिन काँपते हैं।

६. मैं इन्द्र हूँ। मुझे जो लोग नहीं मानते, जो लोग देवों के लिए प्रस्तुत सोमरस बलपूर्वक पी डालते हैं और जो बाहें भाँजते हुए, हिंसा करने के लिए, आते हैं, उनको मैं तुरन्त देख लेता हूँ। मैं महान् हूँ; मैं सबका मित्र हूँ। जो लोग मेरी निन्दा करते हैं, उनके लिए मेरे वज्र का प्रहार होता है।

७. (ऋषि का कथन)—इन्द्र, तुमने दर्शन दिया; वृष्टि भी बरसाई। तुमने सुदीर्घ आयु प्राप्त की है। तुमने पहले भी शत्रु-विनाश किया था; पश्चात् भी किया था। इन्द्र सारे विश्व के अपर पार में हैं; सर्वव्यापक द्यावापृथिवी उनको नहीं माप सकते।

८. (इन्द्र की उक्ति)—अनेक गायें इकट्ठी होकर यव (जौ) खा रही हैं। मैं इन्द्र हूँ; स्वामी के समान मैं गायों की देख-भाल करता हूँ। मैं देखता हूँ कि, वह चरवाहों के साथ चर रही हैं। बुलाने के साथ ही वह गायें अपने स्वामी के पास पहुँच गईं। स्वामी ने गायों से प्रचुर दूध का दोहन कर लिया है।

९. (ऋषि की व्यापक अनुभूति)—संसार में जो तृण खानेवाले हैं, वह हम ही हैं। जो अन्न व यव खानेवाले मनुष्य हैं, वह भी हम ही हैं। विस्तृत हृदयाकाश में जो अन्तर्यामी ब्रह्म हैं, वह मैं ही हूँ। हृदयाकाश में रहनेवाले इन्द्र अपने सेवक को चाहते हैं। योग-शून्य और अतीव विषयी पुरुष को इन्द्र सन्मार्ग में लगाते हैं।

१०. (इन्द्र का कथन)—मैं यहाँ जो कहता हूँ, वह सत्य है—निश्चय जानो। द्विपद (मनुष्य) और चतुष्पद (पशु)—सबकी सृष्टि मैं करता हूँ। जो व्यक्ति स्त्रियों के साथ पुरुष को युद्ध करने को भेजता है, उसका धन बिना युद्ध के ही, हर कर मैं भक्तों को दे देता हूँ।

११. जिस-किसी की भी अन्धी कन्या को कौन बुद्धिमान् आश्रय देगा? जो उसका वहन करता है और जो उसका वरण करता है, उसकी हिंसा कौन करेगा?

१२. कितनी ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो केवल द्रव्य से ही प्रसन्न होकर स्त्री चाहनेवाले पुरुष के ऊपर आसक्त होती हैं। जो स्त्री भद्र व सभ्य है, जिसका शरीर सुसंगठित है, वह अनेक पुरुषों में से अपने मन के अनुकूल प्रिय पात्र को पति स्वीकृत करती है।

१३. सूर्य्यदेव किरण के द्वारा प्रकाश का उद्‌गिरण करते हैं, अपने मंडल में स्थित प्रकाश का ग्रास करते हैं और अपने मस्तक को ढकनेवाली किरणों को लोगों के मस्तकों पर फेंकते हैं। ऊपर स्थित होकर वह अपने पास में प्रकाश फेंकते हैं और नीचे पृथिवी पर आलोक का विस्तार करते हैं।

१४. जैसे पत्र-हीन वृक्ष की छाया नहीं रहती, वैसे ही इन प्रकाण्ड और विचरणशील सूर्य की छाया नहीं है। द्युलोकस्वरूप माता स्थिर होकर बोली—"सूर्यस्वरूप गर्भस्थ शिशु पृथक् होकर दुग्ध का पान करते हैं। यह (द्युलोक-रूपिणी) गाय दूसरी गाय (अदिति) के बछड़े को, प्रेम के साथ, चाटकर स्थापित करती है। इस गाय ने अपने स्तन को रखने का स्थान कहाँ पाया?

१५. इन्द्र-रूप प्रजापति के शरीर से विश्वामित्र आदि सात ऋषि उत्पन्न हुए। उनके उत्तरी शरीर से बालखिल्य आदि आठ उत्पन्न हुए। पीछे से भृगु आदि नौ उत्पन्न हुए। अङ्गिरा आदि दस आगे से उत्पन्न हुए। ये भोजन (प्रकाश का भक्षण) करनेवाले द्युलोक के उन्नत प्रदेश की संवर्द्धना करने लगे।

१६. दस अङ्गिरा लोगों में एक पिङ्गलवर्णवाले (कपिल) हैं। उन्हें यज्ञ की साधना के लिए प्रेरित किया गया। सन्तुष्ट होकर माता ने जल में गर्भाधान किया।

१७. प्रजापति के पुत्र अङ्गिरा लोगों ने मोटे-मोटे मेष (अज) को पाया। पाशा-क्रीड़ा-स्थान में पाश फेंके गये। इनमें से दो प्रकाण्ड धनु लेकर, मंत्रोच्चारण के द्वारा, अपने शरीर को शुद्ध करते-करते, जल के बीच विचरण करने लगे।

१८. चीत्कार करनेवाले और नाना गति अङ्गिरा लोग प्रजापति से उत्पन्न हुए। उनमें आधे लोग, प्रजापति के लिए, हवि का पाक करते हैं और आधे नहीं। इन बातों को सूर्यदेव ने मुझसे कहा है। काष्ठान्न और घृतौदन अग्नि प्रजापति का भजन करते हैं।

१९. देखा, अनेक लोग दूर से आते हैं। वे स्वयंसिद्ध आहार के द्वारा प्राण का धारण करते हैं। उनके प्रभु दो-दो व्यक्तियों को योजित करते हैं। उनकी अवस्था नई है। वे तुरंत शत्रु-संहार करते हैं।

२०. मेरा नाम प्रमर वा मारक है। मेरे ये दो वृषभ योजित हुए हैं। इनकी ताड़ना मत करो। इन्हें बार-बार सान्त्वना दो। इनका धन जल में नष्ट होता है। जो वीर गायों का शोधन करना जानता है, वह ऊपर उठता है।

२१. यह वज्र प्रकाण्ड सूर्य-मंडल के नीचे, घोर वेग से, नीचे गिरता है। इसके अनन्तर और भी स्थान है। जो स्तोता हैं, वे अनायास उस स्थान का पार पा जाते हैं।

२२. प्रत्येक वृक्ष (काष्ठ-निर्मित धनुष) के ऊपर गौ अर्थात् गौ के स्नायु से निर्मित प्रत्यञ्चा शब्द करती है। शत्रु-भक्षण-करी बाण निकलते हैं। इससे सारा संसार डरता है। सब लोग इन्द्र को सोम देते हैं। ऋषि भी उसकी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

२३. देवों के सृष्टि-काल में प्रथम मेघ देखे गये। इन्द्र ने मेघ का छेदन किया, जिससे जल निकला। पर्जन्य, वायु और सूर्य—ये तीन

उद्भिज्जों का परिपाक करते हैं। वायु और सूर्य प्रीतिकर जल का वहन करते हैं।

२४. सूर्य ही तुम्हारे (ऋषि के) प्राणाधार हैं। यज्ञ के समय सूर्य के उस प्रभाव का वर्णन और स्तवन करना। सूर्य ने स्वर्ग का प्रकाश किया है। सूर्य शोषण करते हैं। वे परिष्कारक हैं। वे अपनी गति का कभी त्याग नहीं करते।

२८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसुक्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. (इन्द्र के पुत्र वसुक्र की स्त्री कहती है)—इन्द्र के अतिरिक्त सारे देवता हमारे यज्ञ में आये हैं। केवल मेरे श्वशुर इन्द्र नहीं आये। यदि वे आये रहते, तो भुना हुआ जौ खाते और सोम पीते। आहारादि करके पुनः अपने घर लौट जाते।

२. (इन्द्र का कथन)—तीखी सींगवाले वृषभ के समान शब्द करते-करते मैं पृथिवी के उन्नत और विस्तीर्ण प्रदेश में रहता हूँ। जो मुझे भर पेट सोम पीने को देता है, मैं उसकी रक्षा करता हूँ।

३. इन्द्र, अन्न-कामना से जिस समय तुम्हारे लिए हवन किया जाता है, उस समय यजमान शीघ्र-शीघ्र प्रस्तर-फलकों पर मदकर सोम प्रस्तुत करते हैं। उसका तुम पान करते हो। यजमान वृषभ पकाते हैं; तुम उनका भक्षण करते हो।

४. इन्द्र, तुम मेरी ऐसी सामर्थ्य कर दो कि, मेरी इच्छा होने पर नदी का जल विपरीत दिशा में बहने लगे, तिनका खानेवाला हरिण सिंह को पराङ्मुख करके उसके पीछे-पीछे दौड़े और शृगाल वराह को वन से भगा दे।

५. मैं अपरिपक्व-बुद्धि हूँ। तुम प्राचीन और बुद्धिमान् हो। मेरी शक्ति कहाँ कि, मैं तुम्हारा स्तोत्र कर सकूँ। किन्तु समय-समय पर तुम हमें उपदेश देते हो; इसलिए तुम्हारा स्तोत्र कुछ-कुछ कर सकते हैं।

६. (इन्द्र की उक्ति)—मैं प्राचीन हूँ। स्तोता लोग मेरी इस प्रकार की स्तुति करते हैं कि, मेरा कार्य-भार स्वर्ग से भी बड़ा है। मैं एक ही साथ सहस्राधिक शत्रुओं को दुर्बल कर डालता हूँ। मेरे जन्मदाता ने मेरा जन्म ही ऐसा किया है कि, मेरा शत्रु कोई नहीं टिक सकता।

७. इन्द्र, देवता लोग मुझे तुम्हारे ही समान प्राचीन, प्रत्येक कर्म में शूर और अभीष्ट फल के दाता समझते हैं। आह्लाद के साथ मैंने वज्र के द्वारा वृत्र (असुर) का वध किया है। मैंने अपनी महिमा से दाता को गोधन दिया है।

८. देवता लोग जाते हैं। मेघ वध के लिए वज्र धारण करते हैं। जल गिराते हैं। मनुष्यों के लिए जल बरसाते हैं। नदियों में उस सुन्दर जल को रखते हैं। वे जहाँ मेघ में जल देखते हैं, उसे जलाकर जल निकाल देते हैं।

९. इन्द्र के चाहने पर शशक भी आते हुए सिंह आदि का सामना करता है और दूर से एक लोष्ट्र (ढेला) फेंककर मैं पर्वत को भी तोड़ सकता हूँ। क्षुद्र के बश में महान् भी आ जाता है और बछड़ा भी, बढ़कर, महोक्ष (साँड़) के साथ लड़ने को जाता है।

१०. जैसे पिंजड़े में बँधा सिंह चारों ओर अपना पैर रगड़ता है, वैसे ही श्येन पक्षी अपना नख रगड़ने लगा। इन्द्र की इच्छा होने पर यदि महिष तृषातुर होता है, तो उसके लिए गोधा (गोह) भी पानी ले आता है।

११. जो यज्ञीय अन्न के द्वारा अपना पोषण करते हैं, उनके लिए गोधा अनायास जल ले आ देता है। वे सब प्रकार के रस से युक्त सोम को पीते और शत्रुओं की देह तथा बल का विध्वंस कर देते हैं।

१२. जिन्होंने सोमरस का यज्ञ करके अपनी देह को पुष्ट किया है, वे "उत्तम कर्म के कर्त्ता" कहे जाकर सुकर्म से युक्त होते हैं। इन्द्र, तुम मनुष्यों के समान स्पष्ट वाक्य का उच्चारण करके हमारे लिए, अन्न ले आते हो; क्योंकि दिव्य धाम में तुम्हारा "दानवीर" नाम प्रसिद्ध है।

२९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वसुक्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. शीघ्रगामी अश्विद्वय, यह अतिशय निर्मल स्तोत्र तुम्हारे लिए जाता है। जैसे पक्षी, भय के साथ, चारों ओर देखते-देखते अपने बच्चे को वृक्ष के घोंसले में रखता है, वैसे ही मैंने यत्नपूर्वक इस स्तोत्र में प्रस्तुत किया है। कितने ही दिन में इसी स्तोत्र से बुलाता हूँ और वे आकर यज्ञ सम्पन्न करते हैं। वे नेताओं के भी नेता हैं। वे मनुष्य के हितैषी हैं। वे रात्रि में सोम का भाग ग्रहण करते हैं।

२. इन्द्र, तुम नेताओं के भी नेता हो। आज प्रातःकाल और अन्यान्य प्रातःकालों में हम तुम्हारी स्तुति कर उत्तम बनें। तुम्हारा स्तोत्र करके त्रिशोक नामक ऋषि ने सौ मनुष्यों की सहायता पाई थी और कुत्स नामक ऋषि तुम्हारे साथ एक रथ पर चढ़े थे।

३. इन्द्र किस प्रकार की मत्तता तुम्हें अतिशय प्रसन्नता-कारक है? हमारा स्तोत्र सुनकर महावेग से तुम यज्ञ-गृह के द्वार की ओर आओ। मैं कब उत्तम वाहन पाऊँगा? तुम्हारी स्तुति से कब मैं अन्न और अर्थ अपनी ओर खींच सकूँगा?

४. इन्द्र, कब धन होगा? किस स्तोत्र का पाठ करने पर तुम मनुष्यों को अपने समान करोगे? कब आओगे? कीर्त्तिशाली इन्द्र, तुम यथार्थ बन्धु के समान सबका भरण-पोषण करते हो। स्तव करने से ही तुम भरण-पोषण करते हो।

५. जैसे पति अपनी पत्नी की कामना पूर्ण करता है, वैसे ही जो तुम्हारी कामना पूर्ण करता है (इच्छानुरूप यज्ञ करता है), उन्हें यथेष्ट धन दो। क्योंकि तुम सूर्य के समान दाता हो। हे अनेक रूप-धारी, जो लोग चिरप्रचलित स्तुति-वचनों का तुम्हारे लिए पाठ करते और अन्न देते हैं, उन्हें धन दो।

६. इन्द्र, प्राचीन समय में अतीव सुन्दर सृष्टि-प्रक्रिया के द्वारा विरचित यह जो द्यावापृथिवी हैं, वे तुम्हारी माता के सदृश हैं। जो घृत-

युक्त सोमरस प्रस्तुत किया गया है, उसे पीकर प्रसन्न होओ। मधुर रस से युक्त अन्न तुम्हारे लिए सुस्वादु हो।

७. इन्द्र वस्तुतः धनदाता है; इसलिए इन्द्र के लिए पात्र पूर्ण करके मधुर सोमरस दो। इन्द्र पृथ्वी से भी बड़े हैं। वे मनुष्यों के हितैषी हैं। उनका कार्य और पौरुष विस्मयकर है।

८. शोभन बलवाले इन्द्र ने शत्रु-सेना को घेर डाला। उत्कृष्ट शत्रु सैनिक इन्द्र से मैत्री करने की चेष्टा करते हैं। इन्द्र, जैसे संसार के कल्याण के लिए, बुद्धिमान् व्यक्ति के समान, तुम युद्ध के लिए रथ पर चढ़ा करते हो, वैसे ही इस समय भी रथपर चढ़ो।

३० सूक्त

(३ अनुवाक। देवता जल। ऋषि ईलूप-पुत्र कवष। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मन के समान शीघ्र गति से सोमरस, यज्ञ-काल में देवों के लिए जल की ओर जायें। मेरे अन्तःकरण, मित्र और वरुण के लिए विस्तृत अन्न (सोम-रूप) का पाक वा संशोधन करो और तीव्र वेगवाले उन इन्द्र के लिए सुन्दर रचनावाली स्तुति करो।

२. पुरोहितो, होमीय द्रव्य (हवि) का आयोजन करो। तुम्हारे लिए जल स्नेह-युक्त हो। जल की ओर तत्परता के साथ जाओ। लोहित-वर्ण पक्षी के समान यह जो सोम नीचे गिरता है, हे सुन्दर हाथोंवाले, उसे तरंग के रूप में यथा स्थान फेंको।

३. पुरोहितो, जल के समुद्र में जाओ। "आपांनपात्" देवता की होमीय द्रव्य के द्वारा पूजित करो। आज वे तुम्हें स्वच्छ जल की तरंग प्रदान करें। उनके लिए मधुर सोम प्रस्तुत करो।

४. जो काष्ठ-जल के भीतर जलते हैं और यज्ञ-काल में विप्र लोग जिसकी स्तुति करते हैं, वे ही आपांनपात् देवता ऐसा सुरस जल दें, जिसका पान करके इन्द्र बलशाली होकर वीरता प्रकट करें।

५. जिन जलों में मिलकर सोम अतीव विस्मयकर हो जाते हैं, जैसे पुरुष सुन्दरी युवतियों से मिलने पर आनन्दित होते हैं, वैसे ही उन जलों के साथ मिलने पर सोम आनन्दित होते हैं। पुरोहितो, ऐसे ही जल लाने को जाओ। जल लाकर सेचन करने पर सोम-लता शोधित होती है।

६. जिस समय कोई युवा पुरुष, प्रेम के साथ, प्रेम से पूर्ण युवतियों की ओर जाते हैं, उस समय जैसे युवतियाँ उस युवा के प्रति अनुकूल होती हैं, वैसे ही जल सोम के प्रति अनुकूल होते हैं। पुरोहितों और उनके स्तोत्रों से जलस्वरूप देवों का विशेष परिचय है। दोनों अपने-अपने कार्यों की ओर दृष्टि रखते हैं।

७. जलगण, तुम्हारे रोके जाने पर जो तुम्हें निकलने के लिए मार्ग देते हैं और जो तुम्हें विषम निरोध से छुड़ाते हैं, उन्हीं इन्द्र के प्रति मधु-पूर्ण और देवों के लिए मत्तता-जनक तरंग प्रेरित करो।

८. क्षरणशील जल, तुम्हारे लिए गर्भस्वरूप और मधुर रस से युक्त जो प्रस्रवण है, उसकी मधुर तरंग को इन्द्र के पास प्रेरित करो। धनशाली जल मेरा आह्वान सुनो। मेरे आह्वान में यज्ञ के लिए घृतदान किया जाता है और तुम्हारा स्तोत्र किया जाता है।

९. जल, तुम्हारी जो तरंग इस लोक और परलोक के लिए हितकर होती है, उसी मदकारक तरंग को इन्द्र के पान के लिए प्रेरित करो। ऐसी तरंग भेजो, जो मद क्षरण करे, जो कामना बढ़ावे, जिसकी उत्पत्ति आकाश में है और जो तीनों लोकों में विचरण करते हुए ऊपर उठ जाती है।

१०. जो इन्द्र जल के लिए युद्ध करते हैं, उनकी आज्ञा से जल नाना धाराओं में बार-बार गिरकर सोम के साथ मिलता है। जल संसार की माता के सदृश और संसार की रक्षिका के समान है। वह सोम के साथ मिलता है, वह आत्मीय है। ऋषि, ऐसे जल की वन्दना करो।

११. जल, देवों के यज्ञ के लिए हमारे यज्ञ-कार्य में सहायता करो।

धन-प्राप्ति के लिए हमारे पास पवित्रता प्रेरित करो। यज्ञानुष्ठान के समय अपने दुग्ध-स्थान का द्वार खोलो। हमारे लिए सुखकर होओ।

१२. जल तुम धन के प्रभु-स्वरूप इस कल्याणमय यज्ञ को सम्पन्न करो और अमृत ले आओ। धन और उत्तम सन्तानों के रक्षक होओ। स्तोता को सरस्वती धन दें।

१३. मैं देखता था कि, जल, तुम आते समय घृत, दुग्ध और मधु ले आते थे। पुरोहित लोग स्तुति के द्वारा तुमसे संभाषण करते थे। उत्तम रूप से प्रस्तुत सोम को तुम इन्द्र को देते थे।

१४. सब प्रकार का जल आ रहा है। यह धन का आधार और जीव के लिए हितप्रद है। पुरोहित बन्धुओ, जल की स्थापना करो। जल वृष्टि के अधिष्ठाता देवता के चिरपरिचित है। यह सोमरस के अनुकूल है। जल को कुश के ऊपर स्थापित करो।

१५. तत्परता के साथ जल कुश की ओर आता है। देखो, जल देवों के पास जाने के लिए यज्ञ-स्थान में बैठता है। पुरोहितो, इन्द्र के लिए सोम प्रस्तुत करो। इस समय जल आने पर तुम्हारी देव-पूजा सुसाध्य हुई है।

३१ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि कवष। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हमारा स्तोत्र देवों के पास जाय। यज्ञ-देवता सारे शत्रुओं से हमें बचावें। उन देवों के साथ हमारी मैत्री हो। हम सारे पापों से छूटें।

२. मनुष्य सब प्रकार के धन की कामना करे, सत्य-मार्ग से पुण्यानुष्ठान में प्रवृत्त हो, अपने कर्म से कल्याणभागी बने और मन में सुख प्राप्त करे।

३. यज्ञ-कार्य का प्रारम्भ किया गया है। सारे यज्ञीय द्रव्य, आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े करके, रक्खे गये हैं। वे द्रव्य सुदृश्य और रक्षण के

साधन हैं। अभिषुत सोम का आस्वादन हमने किया है। देवता लोग स्वरूप से ही यह सब जाननेवाले हैं।

४. अविनाशी प्रजापति दाता का अन्तःकरण धारण करके कृपा करें। यज्ञकर्ता को सविता-देव शुभ फल दें। भग और अर्यमा स्तुति के द्वारा प्रसन्न होकर स्नेह-युक्त हों। शेष सुन्दर मूर्त्ति सारे देवता यजमान के लिए अनुकूल हों।

५. स्तोता के पास स्तोत्र पाने की कामना से जिस समय देवता लोग, कोलाहल करके, महावेग के साथ, आते हैं, उस समय, प्रातःकाल के समान हमारे लिए पृथिवी आलोकमयी हुई। सुखदाता नानाविध अन्न हमारे पास आवें।

६. हमारा स्तोत्र इस समय चिरपरिचित विशाल भाव धारण करके सारे देवों के पास जाने के लिए विस्तृत होता है। हमारे इस यज्ञ में समस्त देवता समान स्थान पर अधिकार करके नानाविध शुभ फल देने के लिए आवें। इससे में बलशाली बनूँगा।

७. वह कौन वन और वह कौन वृक्ष है, जिससे उपादान लेकर इस द्युलोक और भूलोक का निर्माण किया गया है? प्राचीन दिन और उषा जीर्ण हो गये हैं; परन्तु द्यावापृथिवी परस्पर संयुक्त हैं, एक भाव में स्थित हैं, न जीर्ण हैं, न पुरातन।

८. द्युलोक और भूलोक ही अन्तिम नहीं हैं; इनके ऊपर भी और कुछ है। वह (ईश्वर) प्रजा का बनानेवाला और द्यावापृथिवी का धारण करनेवाला है। वह अन्न का प्रभु है। जिस समय सूर्य के घोड़ों ने सूर्य का वहन करना प्रारम्भ नहीं किया था, उसी समय उसने अपने शरीर का निर्माण किया था।

९. किरणधारी सूर्यदेव पृथिवी का अतिक्रम नहीं करते और वायु वृष्टि को अतीव छिन्न-भिन्न नहीं करते। मित्र तथा वरुण, प्रकट होकर,

वन के बीच उत्पन्न अग्नि के समान चारों ओर प्रकाश को विस्तारित करते हैं।

१०. रेतःसेक पाकर जैसे वृद्धा गाय प्रसव करती है, वैसे ही अरणि (अग्निमन्थन काष्ठ) अग्नि को उत्पन्न करती है। अरणि संसार का क्लेश दूर करती है। जो अरणि की रक्षा करते हैं, उनको कष्ट नहीं होता। अग्नि दोनों अरणियों के पुत्र हैं—उन्होंने प्राचीन समय में अरणि-स्वरूप माता-पिता से जन्म ग्रहण किया था। यह जो अरणि-स्वरूप गाय है, वह शमी वृक्ष (शमी पर उत्पन्न अश्वत्थ वृक्ष) पर जन्म ग्रहण करती है। उसकी खोज की जाती है।

११. कण्व ऋषि को नृसद का पुत्र कहा गया है। अन्न-युक्त और श्यामवर्ण कण्व ने धन ग्रहण किया था। उन्हीं श्यामवर्ण कण्व के लिए अग्नि ने अपने रोचक रूप को प्रकट किया था। अग्नि के लिए कण्व के अतिरिक्त किसी ने भी वैसा यज्ञ नहीं किया था।

३२ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि कवष। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. यज्ञ-कर्त्ता इन्द्र का ध्यान करता है। उसकी सेवा ग्रहण करने के लिए इन्द्र अपने अश्वों को यज्ञ की ओर प्रेरित करते हैं। हरि नाम के दोनों अश्व विचित्र गति से आ रहे हैं। प्रसन्न मन से यजमान उत्त-मोत्तम सामग्री देता है—इन्द्र भी उत्तम-उत्तम वर लेकर आ रहे हैं। जिस समय इन्द्र सोमरस और आहारीय द्रव्य का आस्वादन पाते हैं, उस समय हमारे स्तोत्र और होमीय द्रव्य (हवि आदि) का ग्रहण करते हैं।

२. बहुतों के द्वारा स्तुत इन्द्र, तुम प्रकाश विस्तार करते-करते विभिन्न स्वर्गीय धामों में विचरण करते हो। तुम ज्योति लेकर पृथिवी पर आगमन किया करते हो। तुम्हारे दो घोड़े तुम्हें जो यज्ञ में ढो ले आते हैं, वे हमें धनी करें; क्योंकि हमारे पास धन नहीं है। धन के लिए ही हम यह सब प्रार्थना-वचन उच्चारित करते हैं।

३. जन्म ग्रहण करके पुत्र पिता से जो धन प्राप्त करता है, वह अतीव चमत्कारी धन है। इन्द्र मुझे देने की कामना करें। मीठे वचनों से पत्नी स्वामी को अपने पास बुलाती है। भली भाँति प्रस्तुत होकर सोमरस उस पुरुषार्थ-युक्त के पास जाता है।

४. स्तुति-रूपिणी गायें जिस स्थान पर मिलती हैं, उस स्थान को, अपनी उज्ज्वल प्रभा के द्वारा, आलोकमय करो। स्तोत्रों की प्राचीन और पूजनीय जो माता (गायत्री) है, उसके सात छन्द (सात महाव्याहृतियाँ) उसी स्थान पर हैं।

५. देवों के पास जो अग्नि जाते हैं, वे तुम्हारी भलाई के लिए दिखाई देते हैं। वे अकेले ही रुद्रों के साथ शीघ्र अपने स्थान पर जाते हैं। अमर देवतागण के बल का ह्रास होता है; इसलिए बन्धु-बान्धवों से युक्त होकर इन्द्र के लिए यज्ञीय मधु (सोम) ढाल दो। तब ये लोग वर देंगे।

६. देवों के लिए जो पुण्यानुष्ठान होता है, विद्वान् इन्द्र उसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र ने कहा है कि, अग्नि जल में निगूढ़-रूप से हैं। अग्नि, उसी उपदेश के अनुसार मैं तुम्हारे पास आया हूँ।

७. यदि कोई किसी मार्ग को नहीं जानता, तो उसे जो व्यक्ति जानता है, उसी से उसे पूछता है। ज्ञाता व्यक्ति से जानकर वह अभीष्ट स्थान पर पहुँच सकता है। अभिज्ञ के कथनानुसार यदि तुम जल को खोजो, तो जहाँ जल है, वहाँ पहुँच सकते हो।

८. आज ही ये (गोवत्सरूप) अग्नि उत्पन्न हुए हैं, कुछ दिनों से क्रमशः वृद्धि प्राप्त कर रहे हैं, जननी का स्तन पी चुके हैं। युवावस्था के साथ ही बुढ़ापा आगया है। वे सरलकर्मा, धनाढ्य और मनःप्रसाद-सम्पन्न हुए हैं।

९. सर्वकला-परिपूर्ण और स्तुतियों के श्रोता इन्द्र, तुम धन देते हो। तुम्हारे लिए ये स्तुतियाँ रची गई हैं। पूजनीय स्तोतृ-रूप धनवालो,

तुम्हारे लिए इन्द्र दाता हों और जिस सोम को मैं हृदय में धारण करता हूँ, वे भी दाता हों।

सप्तम अध्याय समाप्त।

३३ सूक्त

(अष्टम अध्याय। देवता कुरश्रवण, मित्रातिथि आदि। ऋषि ऐलूष कवष। छन्द त्रिष्टुप् आदि।)

१. जो देवता सबको कर्मों में लगाते हैं, उन्होंने मुझे प्रेरित किया। मैंने मार्ग में पूषा का वहन किया। विश्वदेवों ने मुझ कवष की रक्षा की। चारों ओर हल्ला मचा कि, दुर्द्धर्ष ऋषि आ रहे हैं।

२. सपत्नियों के समान मेरी पंजरियाँ (पार्श्वास्थियाँ) मुझे दुःख देती हैं। दुर्बुद्धि मुझे क्लेश देती है। मैं दीन, हीन और क्षीण हो रहा हूँ। पक्षी के समान मेरा मन चञ्चल हो रहा है।

३. इन्द्र जैसे चूहे स्नायु को खाते हैं, वैसे तुम्हारा भक्त होने पर भी मेरी मनोव्यथा मुझे खा रही है। धनी इन्द्र, एक बार हमारे ऊपर कृपा-कटाक्ष करो। हमारे पितृ तुल्य रक्षक बनो।

४. मैं कवष ऋषि हूँ। मैं त्रसदस्यु के पुत्र कुरुश्रवण राजा के पास याचना करने गया था; क्योंकि वे श्रेष्ठ दाता हैं।

५. मेरी दक्षिणा सहस्र-संख्या में दी जाती थी और सब उसकी श्लाघा करते थे। मेरे रथ पर चढ़ने पर तीन हरित-वर्ण घोड़े, भली भाँति वहन करते थे।

६. मेरे पिता की कीर्त्ति दृष्टान्त देने का स्थल थी। पिता का वचन, सेवकों के निकट, रमणीय क्षेत्र के समान प्रसन्नता-कारक होता था।

७. उपमश्रवस, तुम मित्रातिथि के पुत्र हो। मेरे पास आओ। मैं मित्रातिथि का स्तोता हूँ। शोक मत करो। देने योग्य धन मुझे दो।

८. यदि मैं अमर देवों और मरणशील मनुष्यों का स्वामी होता, तो धनवान् मित्रातिथि अवश्य जीवित रहते।

९. एक सौ प्राण रहने पर भी देवों के अभिप्राय के विरुद्ध कोई नहीं जीवित रह सकता। इसी से हमारे सहचरों से हमारा वियोग हुआ करता है।

३४ सूक्त

(देवता अक्ष (जुआ खेलने का पाशा वा कौड़ी अथवा बहेरे के काठ की गोली) और द्यूतकार (जुआड़ी)। ऋषि कवष। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. बड़े-बड़े पासे जिस समय नक़शे (पासा खेलने के स्थान) के ऊपर इधर-उधर चलते हैं, उस समय उन्हें देखकर मुझे बड़ा आनन्द होता है। मूजवान् पर्वत पर उत्पन्न उत्तम सोमलता का रस पीकर जैसे प्रसन्नता होती है, वैसे ही बहेरे (वृक्ष) के काठ से बना अक्ष (पासा) मेरे लिए प्रीति-प्रद और उत्साह-दाता है।

२. मेरी यह रूपवती पत्नी कभी मुझसे उदासीन नहीं हुई, न कभी मुझसे लज्जित हुई। वह पत्नी मेरी और मेरे बन्धुओं की विशेष सेवा-शुश्रूषा करती थी। किन्तु केवल पासे के कारण मैंने उस परम अनुरागिणी भार्या को छोड़ दिया।

३. जो जुआड़ी (कितव) जुआ खेलता है, उसकी सास उसकी निन्दा करती है और उसकी स्त्री उसे छोड़ देती है। जुआड़ी किसी से कुछ माँगता है, तो उसे कोई नहीं देता। जैसे बूढ़े घोड़े को कोई नहीं खरीदता, वैसे ही जुआड़ी का कोई आदर नहीं करता।

४. पासे का आकर्षण बड़ा कठिन है। यदि किसी के धन के प्रति अक्ष (पासे) की लोभ-दृष्टि हो जाय, तो पासेवाले की पत्नी व्यभिचारिणी हो जाती है। जुआड़ी के माता, पिता और सहोदर भ्राता कहते हैं—"हम इसे नहीं जानते; जुआड़ियो, इसे पकड़कर ले जाओ।"

५. जिस समय मैं इच्छा करता हूँ कि, मैं अब नहीं पासा खेलूँगा, उस समय साथी जुआड़ियों के पास से हट जाता हूँ। किन्तु नक़शे पर पीले पासों को देखकर नहीं ठहरा जाता। जैसे भ्रष्टा नारी उपपति के पास जाती है, वैसे ही मैं भी जुआड़ियों के घर जाता हूँ।

६. जुआड़ी अपनी छाती फुलाकर कूदता हुआ जुए के अड्डे पर आता और कहता है कि, "मैं जीतूँगा"। कभी-कभी पासा जुआड़ी की इच्छा पूरी करता है और कभी विपक्ष के जुआड़ी के लिए वह जो कुछ चाहता है, वह सब भी कभी सिद्ध हो जाता है।

७. किन्तु कभी-कभी वही पासा बेहाथ हो जाता है—अंकुश के समान चुभता है, वाण के सदृश छेदता है, छुरे के समान काटता है, तप्त पदार्थ के समान संताप देता है। जो जुआड़ी विजयी होता है, उसके लिए पासा पुत्रजन्म के समान आनन्द-दाता होता है, मधुरिमा से युक्त होता है और मानो मीठे वचनों से सम्भाषण करता है; किन्तु हारे हुए जुआड़ी को तो प्रायः मार ही डालता है।

८. तिरेपन पासे नक़शे के ऊपर मिलकर विहार करते हैं—मानो सत्य-स्वरूप सूर्यदेव संसार में विचरण करते हैं। कोई कितना बड़ा उग्र क्यों न हो; परन्तु पासा किसी के वश में नहीं आ सकता। राजा तक पासे को नमस्कार करते हैं।

९. पासे कभी नीचे उतरते हैं और कभी ऊपर उठते हैं। इनके हाथ नहीं हैं; परन्तु जिनके हाथ हैं, वे इनसे हार खाते हैं। ये श्री-सम्पन्न हैं; जलते हुए अंगारे के समान ये नक़शे के ऊपर बैठे हैं। ये छूने में ठंढे हैं; किन्तु हृदय को जलाते हैं।

१०. जुआड़ी की स्त्री दीन-हीन वेश में यातना भोगती रहती है, पुत्र कहाँ-कहाँ घूमा करता है—ऐसा सोचकर जुआड़ी की माता व्याकुल रहा करती है। जो जुआड़ी को उधार देता है, वह इस संदेह में रहता है कि, "मेरा धन फिर मिलेगा वा नहीं।" जुआड़ी बेचारा दूसरे के घर में रात काटा करता है।

११. अपनी स्त्री की दशा देखकर जुआड़ी का हृदय फटा करता है। अन्यान्य स्त्रियों का सौभाग्य और सुन्दर अट्टालिका देखकर जुआड़ी को सन्ताप होता है। जो जुआड़ी प्रातःकाल घोड़े की सवारी कर आता है, वही सन्ध्या-समय, दरिद्र के समान जाड़े से बचने के लिए आग तापता है—शरीर पर वस्त्र भी नहीं रहता।

१२. पासो, तुम्हारे बल में जो प्रधान, सेनापति वा राजा के समान है, उसको मैं अपनी दसों अँगुलियाँ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। मैं सच्ची बात कहता हूँ कि मैं तुम लोगों से अर्थ नहीं चाहता।

१३. जुआड़ी, कभी जुआ नहीं खेलना; खेती करना। कृषि से जो कुछ लाभ हो, उसी से सन्तुष्ट रहना—अपने को कृतार्थ समझना। इसी से स्त्री प्राप्त करोगे और अनेक गायें भी पाओगे। प्रभु सूर्यदेव ने मुझ से ऐसा कहा है।

१४. पासो (अक्षो), हमें बन्धु जानो; हमारा कल्याण करो। हमारे ऊपर अपने दुर्द्धर्ष प्रभाव का प्रयोग नहीं करना। हमारा शत्रु ही तुम्हारी कोप-दृष्टि में गिरे। दूसरे तुम में फँसे रहें।

३५ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि धनाक-पुत्र लूश। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. अग्नि जाग गये। उनके साथ इन्द्र हैं। जिस समय प्रभात अन्धकार को विदेश में भेजता है, उस समय अग्नि, आलोक धारण करके जलते हैं। विशाल मूर्त्ति द्युलोक और भूलोक चैतन्य-युक्त हों। मैं प्रार्थना करता हूँ कि, देवता आज हमें बचावें।

२. हम प्रार्थना करते हैं कि, द्यावापृथिवी हमारी रक्षा करें। जननी के समान नदियाँ और कुरुक्षेत्र के निकटस्थ पर्वत हमारी रक्षा करें। सूर्य और उषा से यही प्रार्थना है कि, हम अपराधी न हों। जो सोम प्रस्तुत किये जाते हैं वे हमारा मंगल करें।

३. द्यावापृथिवी हमारी माता के समान हैं। हम इन दोनों महान् देवों के निकट निरपराधी रहें। वे हमें सुख के लिए बचावें। उषादेवी, अधिकार का विनाश करके, हमारे पापों का मोचन करें। प्रदीप्त अग्नि के पास हम कल्याण की भिक्षा करते हैं।

४. धनवती, मुख्या और पापों को दूर भगानेवाली उषा हमें उत्तम धन दें। हम उसका भाग कर लें। हम दुष्टों के क्रोध से दूर रहें। प्रज्ज्वलित अग्नि से हम कल्याण की भिक्षा चाहते हैं।

५. जो उषायें, सूर्य-किरणों के साथ मिलकर और आलोक का धारण करके अन्धकार का विनाश करती हैं, वे हमें आज अन्न दें। प्रज्वलित अग्नि से हम कल्याण की भिक्षा माँगते हैं।

६. रोग-शून्य उषायें हमारे पास आवें। महान् प्रकाश से युक्त अग्नि भी ऊपर उठें। हमारे पास आने के लिए अश्विद्वय भी क्षिप्रगामी रथ में अपने दोनों घोड़ों को जोतें। प्रदीप्त अग्नि से हम कल्याण की भिक्षा माँगते हैं।

७. सूर्यदेव, आज हमें अतीव उत्कृष्ट धन-भाग वितरित करो; क्योंकि तुम कामना पूर्ण करनेवाले हो। हम वैसे स्तोत्र पढ़ते हैं, जिससे धन उत्पन्न हो सके। प्रज्वलित अग्नि के पास हम कल्याण की भिक्षा माँगते हैं।

८. देवों के लिए मनुष्यगण जिस यज्ञ-कार्य का संकल्प करते हैं, वही मेरी श्री-वृद्धि करें। प्रति प्रभात में सूर्यदेव सारी वस्तुओं को स्पष्ट करके उगते हैं। प्रज्वलित अग्नि से हम कल्याण की भिक्षा माँगते हैं।

९. यज्ञ के लिए आज कुश बिछाया जाता है। सोम प्रस्तुत करने के लिए दो पत्थर संयोजित किये जाते हैं। इस समय, अभीष्ट की सिद्धि के लिए, द्वेष-शून्य देवों की शरण में जाना चाहिए। यजमान, तुम सब अनुष्ठान करते हो; इसलिए आदित्यगण तुम्हें सुखी करें। प्रदीप्त अग्नि से हम कल्याण की भीख माँगते हैं।

१०. अग्नि, हमारा यज्ञानुष्ठान हो रहा है। इसमें देवता लोग इकट्ठे होकर आमोद-अह्लाद करते हैं। इस यज्ञ में प्रकाण्ड द्युलोक में रहने वाले देवों को बुलाओ, सात होताओं को बुलाओ और इन्द्र, मित्र वरुण, तथा भग को ले आओ। धन-प्राप्ति के लिए मैं सबकी स्तुति करता हूँ। प्रज्वलित अग्नि से हम कल्याण की भिक्षा चाहते हैं।

११. प्रसिद्ध आदित्यो, तुम लोग आओ। इससे सारे विषयों में श्री-वृद्धि होगी ही। हमारी श्री-वृद्धि के लिए सब एकत्र होकर यज्ञ की रक्षा करें। बृहस्पति, पूषा, अश्विद्वय, भग और प्रज्वलित अग्नि के पास हम कल्याण की भीख माँगते हैं।

१२. देवो, अपने यज्ञ की सफलता सम्पादित करो। हे आदित्यो, धन से पूर्ण और राजयोग्य गृह हमें दो। हम अपने पशु, पुत्र-पौत्र और परमायु आदि सारे विषयों में प्रज्वलित अग्नि के पास कल्याण चाहते हैं।

१३. सारे मरुत् हमें सब प्रकार से बचावें। समस्त अग्नि प्रदीप्त हों। निखिल देवगण, हमारी रक्षा के लिए पधारें सब प्रकार का अन्न और सम्पत्ति हमें मिले।

१४. देवो, जिसे तुम अन्न देकर बचाते हो, जिसका त्राण करते हो, जिसे पाप-मुक्त करके श्री वृद्धि से सम्पन्न करते हो और जो तुम्हारे आश्रय में रहकर भय का नाम तक नहीं जानता, देव-कार्य के लिए व्यग्र होकर हम वैसे ही व्यक्ति हों।

३६ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि लूश। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. उषा, रात्रि, महती और सुसंघटित-शरीरा द्यावापृथिवी, वरुण, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, पर्वतगण, जलगण और आदित्यगण को मैं यज्ञ में बुलाता हूँ। द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को मैं बुलाता हूँ।

२. प्रशस्य-चित्ता और यज्ञ की अधिष्ठातृ-स्वरूपा द्यावापृथिवी हमें पाप से बचावें—शत्रु के हाथ से उबारें। दुष्ट आशयवाली निर्ऋति

(मृत्यु-देवता) हमारे ऊपर आधिपत्य न करें। हम देवों से विशिष्ट रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

३. धनी मित्र और वरुण की जननी अदितिदेवी हमें पापों से बचावें हम सब प्रकार अविनाशी ज्योति प्राप्त करें। देवों से हम असाधारण रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

४. सोम-निष्पीड़न के लिए उपयोगी पत्थर, शब्द करते हुए राक्षसों को दूर भगावे। दुःस्वप्न, मृत्यु-देवी और सारे शत्रुओं को दूर करे। हम आदित्यों और मरुतों से सुख पावें। देवों से हम असाधारण रक्षा की भीख माँगते हैं।

५. इन्द्र आकर कुश के ऊपर बैठें। विशेष रूप से स्तुति-वाक्य उच्चारित हों। ऋक् और साम के द्वारा बृहस्पति अर्चना करें। हम उत्तमोत्तम और अभिलषणीय वस्तुओं को प्राप्त करके दीर्घजीवी हों। देवों के पास विशिष्ट रक्षा की हम भिक्षा करते हैं।

६. अश्वियुगल, ऐसा करो कि, हमारा यज्ञ देवलोक को छू ले। यज्ञ के सारे विघ्न दूर करो। हमारा मनोरथ सिद्ध करके सुखी करो। जिन अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है, उनकी ज्वालायें देवों के प्रति प्रेरित करो। देवों से हम साधारण रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

७. जो मरुद्गण सबको शुद्ध करते हैं, जो देखने में सुन्दर हैं, जिनसे कल्याण की उत्पत्ति होती है, जो धन को बढ़ाते हैं और जिनका नाम लेने पर मन में आनन्द होता है, उन्हें मैं बुलाता हूँ। विशिष्ट रूप से अन्न की प्राप्ति के लिए मैं उनका ध्यान करता हूँ। हम देवों से असाधारण रक्षा की भिक्षा माँगते हैं।

८. जो सोम जल से मिलते हैं, जिनसे प्राणी स्वच्छन्दता पाते हैं, जो देवों को परितृप्त करते हैं, जिनका नाम लेने पर आनन्द होता है, जो यज्ञ की शोभा हैं और जिनकी दीप्ति उत्कृष्ट है, उनको हम धारण करते हैं और उनसे हम बल की याचना करते हैं। देवों से हम असाधारण रक्षा की भिक्षा माँगते हैं।

९. हम और हमारे पुत्रगण दीर्घजीवी हों। हम अपराधी न हों। पुत्रादि के साथ सोमरस का भाग करके हम पान करें। स्तुति-द्रोही सब प्रकार के पापों से परिपूर्ण हों। देवों से हम विशिष्ट रक्षा की भिक्षा माँगते हैं।

१०. देवो, तुम लोग मनुष्यों से यज्ञ पाने के योग्य हो। सुनो। तुमसे हम जो माँगते हैं, उसे दो। जिससे हम बली हों, ऐसा ज्ञान दो। धन, लोकबल और यश दो। देवों से हम असाधारण रक्षा की भिक्षा माँगते हैं।

११. देवता लोग जैसे महान्, प्रकाण्ड और अविचलित हैं, हम उनसे वैसी ही विशिष्ट रक्षा की प्रार्थना करते हैं। हम धन और लोकबल प्राप्त करें। देवों से हम विशिष्ट रक्षा की भिक्षा माँगते हैं।

१२. प्रज्वलित अग्नि से हम विशिष्ट सुख प्राप्त करें। मित्र और वरुण के पास हम निरपराधी होकर कल्याण प्राप्त करें। सूर्य हमें सर्वोत्कृष्ट शान्ति दें। देवों से हम विशिष्ट रक्षा की भिक्षा माँगते हैं।

१३. जो सब देवता सत्य-स्वभाव सूर्य, मित्र और वरुण के कार्यों में उपस्थित रहते हैं, वे हमें सौभाग्य, लोकबल, गाय और पुण्यकर्म दें तथा विविध प्रकार के धन भी दें।

१४. क्या पश्चिम, क्या पूर्व, क्या उत्तर और क्या दक्षिण—सूर्य-देव हम सबको सर्वत्र श्री-वृद्धि दें। हमें दीर्घ परमायु प्रदान करें।

३७ सूक्त

(देवता सूर्य। ऋषि सूर्यपुत्र अभितपा। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. पुरोहितो, जो सूर्य, मित्र और वरुण को देखते हैं, जिनकी दीप्ति अतीव उज्ज्वल है, जो दूर से ही सारी वस्तुओं को देखते हैं, जिन्होंने देवों के वंश में जन्म ग्रहण किया है, जो सारी वस्तुओं को स्वच्छ कर देते हैं और आकाश के पुत्र-स्वरूप हैं, उन सूर्य को नमस्कार करो, पूजा करो और स्तुति करो।

२. वही सत्य-वचन है, जिसका अवलम्बन करके आकाश और दिन वर्त्तमान हैं, सारा संसार और प्राणिवृन्द जिसपर आश्रित हैं, जिसके प्रभाव से प्रतिदिन जल प्रवाहित होता है और सूर्य उगते हैं। वे सत्य-वचन मुझे सारे विषयों में बचावें।

३. सूर्यदेव जिस समय तुम वेगशाली घोड़े को रथ में जोतकर आकाश-मार्ग से जाते हो, उस समय कोई भी देव-शून्य जीव तुम्हारे पास नहीं आने पाता। तुम्हारी वह चिर-परिचित असाधारण ज्योति तुम्हारे साथ-साथ जाती है—उसी ज्योति को धारण करके तुम उगते हो।

४. सूर्यदेव, जिस ज्योति के द्वारा तुम अन्धकार को नष्ट करते हो और जिस किरण के द्वारा सारे संसार को प्रकाशित करते हो, उसके द्वारा तुम हमारी सारी दरिद्रता नष्ट करो। हमारा पाप, रोग और दुःख दूर करो।

५. सूर्यदेव तुम सरल रूप से सारे संसार के क्रिया-कलाप की रक्षा करने के लिए प्रेरित हुए हो। तुम प्रातःकाल के होम से उदित होते हो। सूर्य, आज हम जिस समय तुम्हारे नाम का उच्चारण करते हैं, उस समय देवता लोग हमारे यज्ञ को सफल करें।

६. द्यावापृथिवी, जल, मरुत् और इन्द्र हमारा आह्वान सुनें। सूर्य की कृपा-दृष्टि रहते हम दुःखभागी न हों। हम दीर्घजीवी होकर वृद्धावस्था पर्यन्त सौभाग्यशाली रहें।

७. बन्धुओं के सत्कारकारी सूर्य, जैसे तुम दिन-दिन उगते हो, वैसे ही हम प्रतिदिन तुम्हारा, प्रशस्त मन और प्रशस्त चक्षु से, दर्शन करें; प्रत्यह ही हम नीरोग शरीर से सन्तानों से घेरे जाकर और तुम्हारे पास किसी दोष से दोषी न होकर तुम्हारा दर्शन कर सकें। हम चिरजीवी होकर तुम्हारे दर्शन की प्राप्ति कर सकें।

८. सर्व-दर्शक सूर्य, तुम प्रकाण्ड ज्योति धारण करो। तुम्हारी दीप्ति उज्ज्वल है—सबकी आँखों में तुम सुखकर हो। जिस समय तुम्हारी वह

मूर्त्ति आकाश के ऊपर चढ़ती है, उस समय हम, प्रदीप्त शरीर के साथ, नित्य उसका दर्शन करें।

९. तुम्हारी जिस पताका के साथ-साथ सारा संसार प्रकाश पाता है और प्रतिरात्रि अन्धकारावृत होकर अन्तर्धान होता है, हे पिङ्गलवर्ण केश-वाले सूर्य, तुम उसी उत्तम पताका को लेकर दिन-दिन उगो। हम भी निर्दोष होकर उसका दर्शन पावें।

१०. तुम्हारी दृष्टि हमारा कल्याण करे। तुम्हारा दिन और किरण, तुम्हारी शीलता और तुम्हारा उत्ताप कल्याणकर हो। हम घर में ही रहें अथवा मार्ग पर यात्रा करें—वह सदा कल्याणकर हो। सूर्य, हमें विविध सम्पत्तियाँ दो।

११. देवो, हमारे अधिकार में जो द्विपद और चतुष्पद हैं, उन सब को तुम सुखी करो। सभी प्राणी आहार करें, पुष्ट और बलिष्ठ हों और हमारे साथ वह सब अटूट स्वाधीनता पावें।

१२. धन-सम्पन्न देवो, कथा-द्वारा हो, मानसिक क्रिया-द्वारा हो, देवों के पास जो कुछ अपराध का कार्य हम किया करते हैं, उसका पाप तुम लोग उस व्यक्ति के ऊपर न्यस्त करो, जो व्यक्ति दान-धर्म से विमुख है और जो हमारा अनिष्ट किया करता है।

३८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि मुष्कवान इन्द्र। छन्द जगती।)

१. इन्द्र यह जो युद्ध है, जिसमें यश मिलता है और प्रहार पर प्रहार चलता है, उसमें तुम वीर-मद से मत्त होकर उद्घोष करते हो और शत्रुओं से जीती हुई गायों को सुरक्षित करते हो। युद्ध में एक ओर दीप्यमान बाण प्रबल शत्रुओं के ऊपर गिरते हैं—इस व्यापार को देखकर लोग हत-बुद्धि हो जाते हैं।

२. फलतः हे इन्द्र, प्रचुर धन-धान्य और गायों से हमारा घर भर दो। शक्र, तुम्हारे विजयी होने पर हम तुम्हारे स्नेह के पात्र हों। हम जिस धन की अभिलाषा करते हैं, वह हमें दो।

३. बहुतों के द्वारा स्तुत इन्द्र, आर्यजाति का हो वा दासजाति का हो, जो कोई भी देव-शून्य मनुष्य हमारे साथ युद्ध करने की इच्छा करता है, वह अनायास हमसे हार जाय। तुम्हारी कृपा से हम उन्हें युद्ध में हरावें।

४. जिनकी पूजा अल्प मनुष्य करते हैं अथवा बहुत मनुष्य करते हैं, जो दुःसाध्य युद्ध में विजयी होकर उत्तमोत्तम वस्तुओं को जीतते हैं, जो युद्ध में स्नान करते हैं और जो सबके यहाँ प्रसिद्धयशा होते हैं, दाश्रय पाने के लिए हम उन्हीं इन्द्र को अपने अनुकूल करते हैं।

५. इन्द्र, तुम अपने भक्तों को उत्साह से युक्त करते हो। हमें कौन उत्साहित करेगा? हम जानते हैं कि, तुम स्वयं अपना बन्धन-छेदन करने में समर्थ हो। फलतः कुत्स के हाथ से हमें छुड़ाओ और पधारो। तुम्हारे समान व्यक्ति क्यों मुष्क-द्वय का बन्धन सहता है?

३९ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि कक्षीवान् की पुत्री और कोढ़ी घोषा नामक ब्रह्मवादिनी स्त्री। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. अश्विद्वय, तुम लोगों को सर्वत्र विहारी जो सुघटित रथ है और जिस रथ को, उद्देश्य के लिए रात-दिन बुलाना यजमान के लिए कर्तव्य है, हम उसी रथ का क्रमागत नाम लेते हैं। जैसे पिता का नाम लेने में आनन्द आता है, वैसे ही इस रथ का भी नाम लेने में।

२. हमें मधुर वाक्य उच्चारण करने में प्रवृत्त करो। हमारा कर्म सम्पन्न करो। विविध बुद्धियों का उदय कर दो—हम यही कामना करते हैं। अश्विद्वय, अतीव प्रशंसित धन का भाग हमें दो। जैसे सोमरस प्रीतिप्रद होता है, वैसे ही हमें भी यजमानों के पास प्रीतिप्रद कर दो।

३. पितृ-गृह में एक स्त्री (घोषा) वार्द्धक्य को प्राप्त कर रही थी, तुम लोग उसके सौभाग्य-स्वरूप वर को ले आये। जिसे चलने की शक्ति नहीं है अथवा जो अतीव नीच है, उसके तुम लोग आश्रय हो। तुम्हें लोग अन्धे, दुर्बल और रोते हुए रोगी का चिकित्सक कहते हैं।

४. जैसे कोई पुराने रथ को नये रूप से बनाकर उसके द्वारा गति-विधि करता है, वैसे ही तुमने जरा-जीर्ण च्यवन ऋषि को युवा बना दिया था। तुम लोगों ने ही तुग्र-पुत्र को जल के ऊपर निरुपद्रव-रूप से, वहन करके तट पर लगा दिया था। यज्ञ के समय तुम दोनों के यह सब कार्य, विशेष रूप से, वर्णन करने के योग्य हैं।

५. तुम लोगों के उन सारे वीरत्व के कार्यों का, लोगों के पास, मैं वर्णन करती हूँ। इसके अतिरिक्त तुम दोनों ही अत्यन्त पटु चिकित्सक हो। इसी लिए, तुम्हारा आश्रय पाने की अभिलाषा से, मैं तुम्हारी स्तुति करती हूँ। सत्यस्वरूप अश्विद्वय, मैं इस प्रकार से स्तुति करती हूँ कि, उसका विश्वास यजमान अवश्य करेगा।

६. अश्विद्वय, मैं तुम दोनों को बुलाती हूँ, सुनो। जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है, वैसे ही मुझे शिक्षा दो। मेरा कोई यथार्थ बन्धु नहीं है, मैं ज्ञान-शून्य हूँ। मेरा कुटुम्ब नहीं है, बुद्धि भी नहीं है। मेरी कोई दुर्गति आने के पहले ही दूर करो।

७. पुरुमित्र राजा की "शुन्ध्युव" नामक कन्या को तुम लोग रथ पर चढ़ा ले गये थे और विमद के साथ उसका विवाह करा दिया था। वध्रिमती ने तुम लोगों को बुलाया था। उसकी बात सुनकर और उसकी प्रसव-वेदना को दूर करके सुख से प्रसव करा था।

८. कलि नाम का जो स्तोता अत्यन्त वृद्ध हो गया था, तुम लोगों ने उसे फिर यौवन से युक्त किया था। तुम लोगों ने ही वन्दन नामक व्यक्ति को कुएँ के बीच से निकाला था। तुम लोगों ने ही लँगड़ी विश्पला को लोहे का चरण देकर उसे तुरत चलनेवाली बना दिया था।

९. अभीष्ट-फल-दाता अश्विद्वय, जिस समय रेभ नामक व्यक्ति को शत्रुओं ने मृत-प्राय करके गुहा के बीच रख दिया था, उस समय तुम लोगों ने ही उसे संकट से बचाया था। जिस समय अत्रि ऋषि, सात बन्धनों में बाँधे जाकर, जलते अग्निकुण्ड में फेंके गये थे, उस समय तुम लोगों ने ही उस अग्निकुण्ड को बुझाया था।

१०. अश्विद्वय, तुमने ही पेदु राजा को, निन्यानवे घोड़ों के साथ, एक उत्तम शुभ्रवर्ण घोड़ा दिया था। वह घोड़ा विचित्र तेजस्वी था, उसे देखते ही सारी शत्रु-सेना भाग जाती थी, वह मनुष्यों के लिए बहु-मूल्य धन था। उसका नाम लेने पर आनन्द प्राप्त होता था और उसे देखने पर मन में सुख होता था।

११. अक्षय राजाओ, तुम दोनों का नाम कीर्त्तन करने से आनन्द होता है। जिस समय तुम रास्ते में जाते हो, उस समय सब, चारों ओर से, तुम्हारी स्तुति करते हैं। यदि तुम दम्पति को अपने रथ के अगले भाग में चढ़ाकर आश्रय दो, तो उन्हें कोई भी पाप, दुर्गति वा विपद नहीं छुवे।

१२. अश्विद्वय, ऋभु नामक देवों ने तुम्हारे लिए रथ प्रस्तुत किया था। उस रथ के उदय होने पर आकाश की कन्या उषा प्रकट होती हैं और सूर्य से अतीव सुन्दर दिन तथा रात्रि जन्म लेती हैं। उसी मन से अधिक वेगवाले रथ पर बैठकर तुम लोग पधारो।

१३. अश्विद्वय, तुम लोग उसी रथ पर चढ़कर पर्वत की ओर जाने-वाले मार्ग पर गमन करो और शयु नामक मनुष्य की बूढ़ी गाय को फिर दूधवाली बना दो। तुम्हारी ऐसी क्षमता है कि, तेंदुए के मुँह में गिरे वर्त्तिका (चटका) नामक पक्षी को तुमने उसके मुँह से निकालकर उसका उद्धार किया था।

१४. जैसे भृगु-सन्तानें रथ बनाती हैं, वैसे ही, हे अश्विद्वय, तुम लोगों के लिए यह रथ प्रस्तुत किया है। जैसे जामाता को कन्या देने के समय लोग उसे वस्त्राभूषण से अलंकृत करके देते हैं, वैसे ही हमने इस स्तोत्र को अलंकृत किया है। हमारे पुत्र-पौत्र सदा प्रतिष्ठित रहें।

४० सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि घोषा। छन्द जगती।)

१. कर्मों के उपदेशक अश्विद्वय, तुम्हारा प्रकाण्ड रथ जिस समय प्रातःकाल जाता है और प्रत्येक व्यक्ति के पास धन वहन करके ले जाता

हैं, उस समय अपने यज्ञ की सफलता के लिए कौन यजमान उस उज्ज्वल रथ का स्तोत्र करता है? तुम्हारा वह रथ कहाँ है?

२. अश्विद्वय, तुम लोग दिन और रात में कहाँ जाते हो? कहाँ समय बिताते हो? जैसे विधवा स्त्री, शयन-काल में, देवर (द्वितीय वर?) का और कामिनी अपने पति का समादर करती है, वैसे ही यज्ञ में समादर के साथ तुम्हें कौन बुलाता है?

३. दो वृद्ध राजाओं के समान तुम्हें जगाने के लिए प्रातःकाल स्तोत्र-पाठ किया जाता है। यज्ञ पाने के लिए तुम लोग प्रतिदिन किसके घर में जाते हो? किसका पाप नष्ट करते हो? कर्मों के उपदेशक अश्विद्वय, राजकुमारों के समान तुम दोनों किसके यज्ञ में जाते हो?

४. जैसे व्याध शार्दूल की इच्छा करते हैं, वैसे ही, यज्ञीय द्रव्य लेकर, मैं तुम्हें दिन-रात बुलाता हूँ। उपदेशक-द्वय यथा-समय लोग तुम लोगों के लिए होम किया करते हैं। तुम लोग भी लोगों के लिए अन्न ले आते हो; क्योंकि तुम कल्याण के अधिपति हो।

५. अश्विद्वय, उपदेशक-द्वय, मैं राजकुमारी घोषा हूँ। मैं चारों ओर घूम-घूमकर तुम्हारी ही कथा कहती हूँ, तुम्हीं लोगों के विषय की जिज्ञासा करती हूँ। क्या दिन, क्या रात, तुम लोग बराबर मेरे यहाँ रहते हो। रथ-युक्त और अश्व-सम्पन्न मेरे भ्रातृष्पुत्र का दमन करते हो।

६. कवि-द्वय, तुम दोनों रथपर चढ़े हुए हो। अश्विद्वय, तुम लोग कुत्स के समान रथपर चढ़कर स्तोता के घर में जाते हो। तुम्हारा मधु इतना अधिक है कि, उसे मक्खियाँ मुँह में ग्रहण करती हैं। जैसे कोई स्त्री व्यभिचार में रत रहती है, वैसे ही मक्खियाँ तुम्हारे मधु को ग्रहण करती हैं।

७. अश्विद्वय, तुमने भुज्यु नामक व्यक्ति को समुद्र से बचाया था। तुमने वश राजा, अत्रि और उशना का उद्धार किया था। जो दाता है, वही तुम्हारा बन्धुत्व प्राप्त करता है। तुम्हारे आश्रय से जो सुख प्राप्त होता है, मैं उसकी कामना करता हूँ।

८. अश्विद्वय, तुम लोगों ने ही कृश, शयु, अपने परिचारक और विधवा को बचाया था। यज्ञकर्त्ता के लिए तुम्हीं लोग मेघ को फाड़ते हो, जिससे गतिशील द्वारवाला मेघ, शब्द करते हुए, बरसता है।

९. मैं शोभा हूँ। नारी-लक्षण प्राप्त करके सौभाग्यवती हुई हूँ। मेरे विवाह के लिए वर आया है। तुमने वृष्टि बरसाई है; इसलिए उसके लिए शस्य आदि भी उत्पन्न हुए हैं। निम्नाभिमुखी होकर नदियाँ इनकी ओर बह रही हैं। ये रोग-रहित हैं। सब तरह का सुख भोगने के योग्य इन्हें शक्ति हो गई है।

१०. अश्विद्वय, जो लोग अपनी स्त्री की प्राण-रक्षा के लिए रोदन तक करते हैं, स्त्रियों को यज्ञ-कार्य में नियुक्त करते हैं, उनका, अपनी बाँहों से, बहुत देर तक आलिङ्गन करते हैं और सन्तान उत्पन्न करके पितृ-यज्ञ में नियुक्त करते हैं, उनकी स्त्रियाँ सुख-पूर्वक आलिङ्गन करती हैं।

११. अश्विद्वय, उनका वैसा सुख मैं नहीं जानती। युवक स्वामी और युवती स्त्री के सहवास-सुख को मुझे भली भाँति समझा दो। अश्विद्वय, मेरी एक-मात्र यही अभिलाषा है कि, मैं स्त्री के प्रति अनुरक्त, बलिष्ठ स्वामी के गृह में जाऊँ।

१२. अन्न और धनवाले अश्विद्वय, तुम दोनों मेरे प्रति सदय होओ। मेरे मन की अभिलाषायें पूरी करो। तुम कल्याण करनेवाले हो। मेरे रक्षक होओ। पति-गृह में जाकर हम पति के लिए प्रिय बनें।

१३. मैं तुम्हारी स्तुति करती हूँ; इसलिए तुम लोग मुझसे सन्तुष्ट होकर मेरे पति के गृह में धन और सन्तति दो। कल्याण करनेवाले अश्वि-द्वय, मैं जिस तीर्थ (तट) पर जल पीती हूँ, उसे तुम सुविधा-जनक करो। मेरे पति-गृह में जाने के मार्ग में यदि कोई दुष्टाशय विघ्न करे, तो उसे नष्ट करना।

१४. प्रिय-दर्शन और कल्याणकर्त्ता अश्विद्वय, आजकल तुम कहाँ, किसके घर में, आमोद-प्रमोद करते हो? कौन तुम्हें बाँधकर रक्खे हुए है? किस बुद्धिमान् यजमान के घर में तुम गये हो?

४१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि आङ्गिरस कृष्ण। छन्द जगती।)

१. अश्विद्वय, तुम दोनों के पास एक ही रथ है, जिसे अनेक बुलाते हैं, अनेक स्तुति करते हैं। वह रथ तीन चक्कों के ऊपर यज्ञों में जाता है। वह चारों ओर घूमते हुए यज्ञ को सुसम्पन्न करता है। प्रतिदिन प्रातःकाल हम सुन्दर स्तुति से उसी रथ को बुलाते हैं।

२. सत्य-स्वरूप अश्विद्वय, तुम्हारा जो रथ प्रातःकाल जोता जाता है, प्रातःकाल चलता है और मधु ले जाता है, उसी रथ पर चढ़कर यज्ञ-कर्त्ताओं के पास जाओ। तुम्हारी जो स्तुति करता है, उसके होतृ-युक्त यज्ञ में भी जाओ।

३. अश्विद्वय, मैं सुहस्त हूँ। मैं हाथ में मधु लेकर अध्वर्यु का कार्य करता हूँ। मेरे पास पधारो अथवा, अग्निध्र नामक जो बली पुरोहित दान करने को उद्यत है, उसके पास पधारो। यद्यपि तुम लोग किसी बुद्धि-मान् व्यक्ति के यज्ञ में जाते हो, तो भी, मधु-पान करने के लिए, मेरे गृह में पधारो।

४२ सूक्त

(देवता अश्विद्वय। ऋषि घोषा-पुत्र सुहस्त। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जैसे बाण फेंकनेवाला धनुर्द्धर अतीव सुन्दर बाण फेंकता है, वैसे ही तुम, इन्द्र के लिए, क्रमागत स्तव करो। उनके लिए प्राञ्जल और अलंकृत करके स्तुति का प्रयोग करो। विप्रो, तुम्हारे साथ जो स्पर्द्धा करता है, ऐसे स्तुति-वचन का प्रयोग करो कि, वह पराजित हो जाय। स्तोता, इन्द्र को सोम की ओर आकृष्ट करो।

२. स्तोता, जैसे गाय को दूहकर लोग अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं, वैसे ही मित्र-स्वरूप इन्द्र से अपने प्रयोजन को सिद्ध करा लो। स्तुत्य इन्द्र को जगाओ। जैसे लोग धान्य-पूर्ण पात्र को नीचे करके उसका धान्य

गिरा लेते हैं, वैसे ही वीर इन्द्र को; कामना-सिद्धि के लिए, अनुकूल कर लो।

३. इन्द्र, तुम्हें लोग "भोज" (अभीष्ट-दाता) क्यों कहते हैं? तुम दाता हो; इसी लिए यह नाम रक्खा गया है। मैंने सुना है कि, तुम लोगों को तीक्ष्ण कर देते हो। मुझे तीक्ष्ण करो। इन्द्र, मेरी बुद्धि कर्म में निपुण हो। मेरा ऐसा शुभ अदृष्ट करो कि, धन उपार्जित किया जा सके।

४. इन्द्र, जिस समय लोग युद्ध में जाते हैं, उस समय तुम्हारा नाम लेते हैं। इन्द्र यजमान के सहायक होते हैं। जो इन्द्र के लिए सोम नहीं प्रस्तुत करता, उसके साथ इन्द्र मैत्री नहीं करना चाहते।

५. जो अन्नशाली व्यक्ति इन्द्र के लिए प्रथम सोमरस प्रस्तुत करता है और गौ, अश्व आदि देनेवाले धनाढ्य के सदृश इन्द्र को उदारता के साथ सोमरस देता है, उसके सहायक इन्द्र होते हैं। उसके बलिष्ठ तथा अनेक सेनाओंवाले शत्रुओं के रहने पर भी इन्द्र शत्रुओं को शीघ्राति शीघ्र दूर कर देते हैं। इन्द्र वृत्र का वध करते हैं।

६. हमने जिन इन्द्र की स्तुति की है, वे धनी हैं और उन्होंने हमारी कामनाओं को पूर्ण किया है। इन्द्र के पास से शत्रु दूर भागें। शत्रु-देश की सम्पत्ति इन्द्र के हाथों में आवे।

७. इन्द्र, असंख्य मनुष्य तुम्हें बुलाते हैं। तुम्हारा जो भयानक वज्र है, उससे समीप के शत्रु को दूर कर दो। इन्द्र, मुझे जौ और गाय से युक्त सम्पत्ति दो। अपने स्तोता की स्तुति को अन्नरत्न-प्रसविनी करो।

८. प्रखर सोमरस, अनेक धाराओं में, मधुर रस से बरसते हुए जिस समय इन्द्र की देह में पैठता है, उस समय इन्द्र सोमरस-दाता का कभी वारण नहीं करते, कभी नहीं कहते कि, और नहीं। अधिकन्तु सोम-रस के प्रस्तुत-कर्त्ता को विशाल अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करते हैं।

९. जैसे जुआड़ी जिससे हारा हुआ है, उसी को जुए के अड्डे पर खोजकर हरा देता है, वैसे ही अनिष्ट-कर्त्ता को इन्द्र परास्त करते हैं। जो

देवभक्त देवपूजा में धन-व्यय करने में कृपणता नहीं करता, धनी इन्द्र उसे ही धनी करते हैं।

१०. गायों के द्वारा हम दुःख-दारिद्रय के पार जायें। अनेक के द्वारा आहूत इन्द्र, जौ (यव) के द्वारा हम क्षुधा की निवृत्ति कर सकें। हम राजाओं के साथ-साथ अग्रसर होकर, अपने बल के प्रभाव से, विशाल सम्पत्ति को जीत सकें।

११. पापी शत्रु के हाथ से बृहस्पति हमें पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में बचावें। पूर्व-दिशा और मध्य भाग में इन्द्र हमारी रक्षा करें। इन्द्र हमारे मित्र हैं और हम इन्द्र के मित्र हैं, वे हमारी अभिलाषा को सिद्ध करें।

४३ सूक्त

(४ अनुवाक। देवता और ऋषि पूर्ववत्। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. मेरी स्तुतियों ने, मिलकर उद्देश्यपूर्वक इन्द्र का गुण-गान किया है। स्तुतियाँ सब प्रकार के लाभ करा सकती हैं। जैसे स्त्रियाँ अपने स्वामी का आलिङ्गन करती हैं, वैसे ही स्तुतियाँ उन शुद्ध-स्वभाव इन्द्र का आश्रय पाने के लिए उनका आलिङ्गन करती हैं।

२. इन्द्र, तुम्हें छोड़कर मेरा मन अन्यत्र नहीं जाता। तुम्हारे ही ऊपर मैंने अपनी अभिलाषा स्थापित रक्खी है। जैसे राजा अपने भवन में बैठता है, वैसे ही तुम लोग कुशों के ऊपर बैठो। इस सुन्दर सोम से तुम्हारा पान-कार्य सम्पन्न हो।

३. दुर्गति और अन्नाभाव से बचाने के लिए इन्द्र हमारे चारों ओर रहें। धनदाता इन्द्र सारी सम्पत्तियों और धनों के अधिपति हैं। मनोरथ-वर्षक और तेजस्वी इन्द्र के आदेश से ही गंगा आदि सात नदियाँ नीचे की ओर बहकर कृषि की वृद्धि करती हैं।

४. जैसे सुन्दर पत्रों के वृक्ष का आश्रय चिड़ियाँ करती हैं, वैसे ही आनन्द-वर्धक और पात्र-स्थित सोम इन्द्र का आश्रय करते हैं। सोमरस के तेज के द्वारा इन्द्र का मुख उज्ज्वल हो उठा। इन्द्र मनुष्यों को उत्कृष्ट ज्योति दें।

५. जुए के अड्डे पर जैसे जुआड़ी अपने विजेता को खोजकर परास्त करता है, वैसे ही इन्द्र वृष्टि-रोधक सूर्य को परास्त करते हैं। इन्द्र, धनाधिपति, कोई भी प्राचीन वा नवीन तुम्हारे वीरत्व के अनुसार कार्य नहीं कर सकता।

६. धनद इन्द्र प्रत्येक मनुष्य में रहते हैं। अभीष्टकारी इन्द्र सबके स्तोत्र की तरफ़ ध्यान देते हैं। जिसके सोम-यज्ञ में इन्द्र प्रीति प्राप्त करते हैं, वे प्रखर सोमरस के द्वारा युद्धेच्छु शत्रुओं को परास्त करता है।

७. जैसे जल नदी की ओर जाता है और जैसे छोटा-छोटा जल-प्रवाह तड़ाग में जाता है, वैसे ही सोमरस इन्द्र में जाता है। यज्ञ-स्थल में पंडित लोग उसके तेज को वैसे ही बढ़ा देते हैं, जैसे स्वर्गीय जल-पात के साथ वृष्टि जौ की खेती को बढ़ाती है।

८. जैसे एक वृष, क्रुद्ध होकर, दूसरे की ओर दौड़ता है, वैसे ही इन्द्र, मेघ के प्रति धावित होकर अपने आश्रित जल को बाहर करते हैं। जो व्यक्ति सोम-यज्ञ करता है, उदारता के साथ दान करता है और हवि का संग्रह करता है, उसे धनी इन्द्र ज्योति देते हैं।

९. इन्द्र का वज्र तेज के साथ उदित हो। पूर्वकाल के समान ही इस समय भी यज्ञ की कथा हो। स्वयं उज्ज्वल होकर इन्द्र, प्राञ्जल आलोक को धारण करके, शोभा-सम्पन्न हों। साधु पुरुषों के पालक इन्द्र, सूर्य के समान, शुभ्रवर्ण दीप्ति से प्रदीप्त हों।

१०. गायों के द्वारा हम दुःख-दारिद्र्य के पार जायँ। अनेक के द्वारा आहूत इन्द्र, जौ के द्वारा हम क्षुधा की निवृत्ति कर सकें। हम राजाओं के साथ अग्रसर होकर, अपने बल के प्रभाव से, विशाल सम्पत्ति को जीत सकें।

११. पापी शत्रु के हाथ से बृहस्पति हमें पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में बचावें। पूर्व दिशा और मध्य भाग में इन्द्र हमारी रक्षा करें। इन्द्र हमारे मित्र हैं और हम इन्द्र के मित्र हैं। वे हमारी अभिलाषा को सिद्ध करें।

४४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि आङ्गिरस कृष्ण। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. जो इन्द्र देखने में स्थूलकाय हैं और जो अपने विपुल तथा दुर्द्धर्ष बल के द्वारा सारे बलशाली पदार्थों को बल-हीन कर डालते हैं, वे धनी इन्द्र रथ पर चढ़कर आमोद करने के लिए आवें।

२. नरपति इन्द्र, तुम्हारा रथ सुघटित है, तुम्हारे रथ के दोनों घोड़े सुशिक्षित हैं और तुम्हारे हाथ में वज्र है। प्रभु इन्द्र, ऐसी मूर्त्ति को धारण करके, सरल मार्ग से, नीचे आओ। तुम्हारे पान के लिए सोमरस प्रस्तुत है। उसे पिलाकर हम तुम्हारा बल और भी बढ़ा देंगे।

३. जो इन्द्र नेताओं के नेता हैं, जिनके हाथ में वज्र है, जो शत्रुओं को दुर्बल कर देते हैं, जो दुर्द्धर्ष हैं और जिनका क्रोध कभी वृथा नहीं जाता, उन्हें, उनके वाहक बली घोड़े मिलकर, हमारे पास ले आवें।

४. इन्द्र, जो सोमरस शरीर को पुष्ट करता है, जो कलश में मिल जाता है और जो बल को संचारित करता है, उस सोम का सिंचन अपने उदर में करो। मेरी बल-वृद्धि कर दो और हमें अपना आत्मीय बना लो; क्योंकि तुम बुद्धिमानों के श्री-वृद्धि करनेवाले प्रभु हो।

५. इन्द्र, मैं स्तोता हूँ; इसलिए सारी सम्पत्ति मेरे पास आवे। उत्तमोत्तम कामनायें सिद्ध करने के लिए मैंने सोम का संचय करके यज्ञ का आयोजन किया है। आओ। तुम सबके अधिपति हो। कुश के ऊपर बैठो। तुम्हारे पान के लिए जो सोम-पात्र सज्जित हुए हैं, किसी की ऐसी शक्ति नहीं कि, वह उन्हें बलपूर्वक लेकर पिये।

६. जो लोग प्राचीन समय से ही यज्ञ में देवों को निमन्त्रण देते थे, उन्होंने बड़े-बड़े कार्यों का सम्पादन करके स्वयं सद्गति प्राप्त की है। परन्तु जो यज्ञरूप नौका पर नहीं चढ़ सके, वे कुकर्मी हैं, ऋणी हैं और नीच अवस्था में ही दब गये हैं।

७. इस समय में भी जो वैसे दुर्बुद्धि हैं, वे भी अधोगामी हों। उनकी कैसी दुर्गति होगी—इसका ठीक नहीं। जो लोग पहले से ही यज्ञादि के अवसर पर दान करते हैं, वे ऐसे स्थान पर जाते हैं, जहाँ अतीव चमत्कारिणी भोग-सामग्री प्रस्तुत है।

८. जिस समय इन्द्र सोमपान करके मत्त होते हैं, उस समय वे सर्वत्र-संचारी और काँपते हुए मेघों को सुस्थिर करते हैं, आकाश को आन्दोलित कर डालते हैं और वह घहराने लगता है। जो द्यावापृथिवी परस्पर संयुक्त हैं, उन्हें इन्द्र उसी अवस्था में रखते हैं और उत्तम वचन कहते हैं।

९. धनशाली इन्द्र, तुम्हारे लिए मैं यह एक सुसंघटित अंकुश हाथ में रखता हूँ। इस अंकुशरूप स्तोत्र से हाथियों को, दण्ड देते हुए, तुम वश में करते हो। इस सोम-यज्ञ में आकर अपना स्थान ग्रहण करो। हमें इस यज्ञ में सौभाग्यशाली करो।

१०. गायों के द्वारा हम दुःख-दारिद्रय के पार जायँ। अनेकों के द्वारा आहूत इन्द्र, जौ के द्वारा हम क्षुधा-निवृत्ति कर सकें। हम राजाओं के साथ अग्रसर होकर, अपने बल के प्रभाव से, विशाल सम्पत्ति को जीत सकें।

११. पापी शत्रु के हाथ में हमें बृहस्पति पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में बचावें। पूर्व दिशा और मध्य भाग में इन्द्र हमारी रक्षा करें। इन्द्र हमारे मित्र हैं और हम उनके मित्र हैं। वे हमारी अभिलाषा को सिद्ध करें।

४५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि भालन्दन वत्सप्रि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि ने प्रथम आकाश में विद्युद्रूप से जन्म ग्रहण किया। उनका द्वितीय जन्म "जातवेदा" (ज्ञानी) नाम से हम लोगों के बीच हुआ है। उनका तीसरा जन्म जल के बीच में हुआ है। मनुष्य-हितैषी अग्नि निरन्तर प्रज्वलित हैं। जो उत्तम ध्यान करना जानते हैं, वे उनकी स्तुति करते हैं।

२. अग्नि, हम तुम्हारी तीन प्रकार की तीन मूर्त्तियों को जानते हैं। अनेक स्थलों में तुम्हारा जो स्थान है, उसे भी जानते हैं। तुम्हारे निगूढ़ नाम को भी हम जानते हैं। जिस उत्पत्ति-स्थान से तुम आये हो, उसे भी हम जानते हैं।

३. नर-हितैषी वरुणदेव ने तुम्हें समुद्र के बीच में, जल के भीतर, जला रक्खा है। आकाश के स्तनस्वरूप जो सूर्य हैं, उसके बीच में भी तुम प्रज्वलित हो। तुम अपने तीसरे स्थान मेघलोक में, वृष्टि-जल में, रहते हो। प्रधान प्रधान देवता तुम्हारा तेज बढ़ाते हैं।

४. अग्नि का घोरतर शब्द हुआ—मानो आकाश में वज्रपात हो रहा है। अग्नि पृथिवी को चाटते हैं, लता आदि का आलिङ्गन करते हैं। यद्यपि अग्नि अभी जन्मे हैं, तो भी विशेष रूप से प्रज्वलित और विस्तृत हुए हैं। द्यावापृथिवी में किरण-विस्तार करने से अग्नि की शोभा हुई है।

५. प्रभात के प्रथम भाग में अग्नि प्रज्वलित होते हैं, तो उनकी कैसी शोभा होती है! वे कितनी शोभा प्रकट करते हैं! अग्नि अशेष सम्पत्तियों के आधार-स्वरूप हैं। वे स्तोत्र-वचनों की स्फूर्ति कर देते हैं, सोमरस की रक्षा करते हैं। अग्नि धन-स्वरूप हैं, वे बल के पुत्र हैं, वे जल के बीच में रहते हैं।

६. वे समस्त पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। वे जल के भीतर जन्म ग्रहण करते हैं। जन्म लेते ही उन्होंने द्यावापृथिवी को परिपूर्ण किया।

जिस समय पाँच वर्णों ने मनुष्यों के अग्नि के लिए यज्ञ किया, उस समय वे सुघटित मेघ की ओर जाकर और मेघ को फाड़कर जल ले आये।

७. अग्नि हवि चाहते हैं। वे सबको पवित्र करते हैं। वे चारों ओर जाते हैं। वन में उत्कृष्टता है। वे स्वयं अमर हैं; परन्तु मारनेवाले मनुष्यों में रहते हैं। रुचिकर रूप धारण करके वे गति-विधि करते हैं और शुक्लवर्ण आलोक के द्वारा आकाश को परिपूर्ण करते हैं।

८. अग्नि देखने में ज्योतिर्मय हैं। उनकी दीप्ति महान् है। वे दुर्द्धर्ष दीप्ति के साथ जाते-जाते शोभा-सम्पन्न होते हैं। अग्नि वनस्पति-स्वरूप अन्न पाकर अमर हुए। दिव्यलोक ने अग्नि को जन्म दिया है। दिव्यलोक (द्यौ) की जन्मदान शक्ति कैसी सुन्दर है!

९. मङ्गलमयी ज्वालावाले अभिनव अग्नि, जिस व्यक्ति ने आज तुम्हारे लिए घृत-युक्त पिष्टक (पुरोडाश) प्रस्तुत किया है, उस उत्कृष्ट व्यक्ति को तुम उत्तम-उत्तम धन की ओर ले जाओ, उस देवभक्त को सुख-स्वाच्छन्द्य की ओर ले जाओ।

१०. किसी समय उत्तमोत्तम अन्न के साथ क्रिया-कलाप अनुष्ठित होता है, उसी समय तुम यजमान के अनुकूल होओ। वह सूर्य के पास प्रिय हो, अग्नि के पास प्रिय हो। उसके जो पुत्र है या जो होगा, उसके साथ वह शत्रु-संहार करे।

११. अग्नि, प्रतिदिन यजमान लोग तुम्हारे लिए उत्तमोत्तम नाना वस्तुएँ पूजा में देते हैं। विद्वान् देवों ने, तुम्हारे साथ एकत्र होकर, धन-कामना को पूर्ण करने के लिए, गायों से भरे गोष्ठ-द्वार का उद्घाटन किया था।

१२. मनुष्यों में जिनकी सुन्दर मूर्ति है और जो सोम की रक्षा करते हैं, ऋषियों ने उन्हीं अग्नि की स्तुति की। द्वेष-शून्य द्यावापृथिवी को हम बुलाते हैं। देवो, हमें लोकबल और धनबल दो।

अष्टम अध्याय समाप्त।

सप्तम अष्टक समाप्त।

८ अष्टक

४६ सूक्त

(१० मण्डल। १ अध्याय। ४ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि भालन्दन वत्सप्रि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो अग्नि मनुष्यों (वा विद्युद्रूप से अन्तरिक्ष) में रहते हैं, जो जल (वा कर्मों के समीप वेदी पर) में रहते हैं और जो आकाश के ज्ञानी हैं (क्योंकि आकाश में ही अग्नि का जन्म हुआ है); वे गुणों के कारण पूज्य होकर इस समय यजमानों के होता हुए हैं। अग्नि, यज्ञ-धारक होकर, वेदी पर रक्खे गये हैं। वत्सप्रि, तुम उनकी पूजा करते हो। वे तुम्हारे देह-रक्षक होकर तुम्हें अन्न और सम्पत्ति दें।

२. जल के बीच स्थित अग्नि को परिचारक ऋषियों ने, चोरों से अपहृत पशु के समान, खोजा। ऋषियों में अभिलाषी और पण्डित भृगु-वंशीयों ने स्तुति करते-करते एकान्त स्थान में स्थित अग्नि को प्राप्त किया।

३. पाने की इच्छावाले विभूवस के पुत्र त्रित ऋषि ने इन महान् अग्नि को भूमि पर पाया। सुख के वर्द्धक और यजमान-गृहों में उत्पन्न तरुण अग्नि स्वर्ग-फल के नाभि हैं।

४. अभिलाषी ऋषियों ने मदकर, होता, आह्वनीय, यजनीय, यज्ञ के प्रापक, गतिशील, शोधक, हविर्वाहक और मनुष्यों में प्रजापति अग्नि को स्तुतियों से प्रसन्न किया।

५. स्तोता, तुम विजयी, महान् और मेधावियों के धारक अग्नि की स्तुति करो। सभी मनुष्य ज्ञानी, पुरियों के ध्वंसक, अरणि-गर्भ, स्तुत्य,

हरित लोमवाले, ज्वाला से युक्त और प्रीति-स्तोत्र अग्नि को हवि देकर अपने कर्म पा लेते हैं।

६. अग्नि की गार्हपत्य आदि तीन मूर्त्तियाँ हैं। अग्नि यजमान-गृहों को स्थिर करनेवाले और ज्वालाओंवाले हैं। वे यज्ञ-गृह में अपनी वेदी पर बैठते हैं। अग्नि प्रजा-द्वारा प्रदत्त हवि आदि लेकर यजमानों के लिए दानेच्छुक होकर तथा प्रजा के लिए शत्रुओं के दमन के साथ देवों के पास जाते हैं।

७. इस यजमान के पास अनेक अग्नि हैं, जो सब अजर, शत्रुओं के शासक, पूजनीय ज्वालाओंवाले, शोधक, श्वेतवर्ण, क्षिप्रधर्मी, भरणशील, वन में रहनेवाले और सोम के समान शीघ्रगामी हैं।

८. जो अग्नि ज्वाला के द्वारा कर्म को धारण करते हैं और जो पृथिवी के रक्षण के लिए अनुग्रह-पूर्वक स्तोत्रों को धारण करते हैं, गतिशील मनुष्य उन दीप्त, शोधक, स्तवनीय, आह्वाता और यजनीय अग्नि को धारण करते हैं।

९. ये वे ही अग्नि हैं, जिन्हें द्यावापृथिवी ने जन्म दिया है, जिन्हें जल, त्वष्टा और भृगुओं ने स्तोत्रादि साधनों से प्राप्त किया था, जो स्तुत्य हैं और जिन्हें मातरिश्वा (वायु) और अन्य देवों ने मनुष्यों के (वा मनु के) यज्ञ को करने के लिए बनाया है।

१०. अग्नि, तुम हविर्वाहक हो। देवों ने तुम्हें धारण किया है। अभिलाषी मनुष्यों ने यज्ञ के लिए तुम्हें धारण किया है। अग्नि, यज्ञ में मुझ स्तोता को अन्न दो। अग्नि, देव-भक्त यजमान यश प्राप्त करता है।

४७ सूक्त

(देवता वैकुण्ठ इन्द्र। ऋषि आङ्गिरस सप्तगु। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अनेक धनों के स्वामी इन्द्र, धनाभिलाषी हम तुम्हारे दाहिने हाथ को पकड़ते हैं। शूर इन्द्र, तुम्हें हम अनेक गौओं के स्वामी जानते हैं। फलतः हमें विचित्र और वर्षक धन दो।

२. तुम्हें हम शोभन अस्त्र और शोभन रक्षणवाले, सुन्दर नेत्रवाले, चारों समुद्रों को जल से परिपूर्ण करनेवाले, धन-धारक, बार-बार स्तुत्य और दुःखों को निवारक जानते हैं। इन्द्र, तुम हमें विचित्र और वर्षक धन दो।

३. इन्द्र, तुम हमें स्तुति-परायण, देव-भक्त, महान्, विशाल-मूर्त्ति, गम्भीर, सुप्रतिष्ठित, प्रसिद्धज्ञान, तेजस्वी, शत्रु-दमन-कर्त्ता, पूज्य और वर्षक पुत्र-रूप धन दो।

४. इन्द्र, अन्न पाये हुए, मेधावी, तारक, धन-पूरक, वर्द्धमान, शोभन-बल, शत्रु-घातक, शत्रुपुरियों के भेदक, सत्यकर्मा, विचित्र और वर्षक पुत्र-स्वरूप धन हमें दो।

५. इन्द्र, अश्व-युक्त, रथी, वीर-सम्पन्न, असंख्य गौओं आदि से युक्त, अन्नवान् कल्याणकारी सेवकों से युक्त, विप्रों से वेष्टित, सबके लिए सेवक, पूज्य और वर्षक पुत्र-स्वरूप धन हमें दो।

६. सत्यकर्मा, शोभन-प्रज्ञ और मन्त्र-स्वामी मुझ सप्तगु के पास स्तुति जाती है। मैं अङ्गिरागोत्रोत्पन्न हूँ। नमस्कार के साथ देवों के पास जाता हूँ। हमारे लिए पूज्य और वर्षक धन दो।

७. मैं जो सब सुन्दर भावों से युक्त स्तुतियाँ तैयार करता हूँ, उनका अन्तःकरण से पाठ करता हूँ। ये स्तुतियाँ श्रोताओं के हृदय को छूती हैं। श्रोता लोग, दूत के समान, इन्द्र के निकट प्रार्थना करते हैं। हमें पूज्य और वर्षक धन दो।

८. मैं जो तुमसे माँगता हूँ, वह मुझे दो। मुझे एक ऐसा विशाल निवास-स्थान दो, जैसा किसी के भी पास न हो। द्यावापृथिवी इस बात का अनुमोदन करें। हमें पूज्य और वर्षक धन दो।

४८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि इन्द्र। छन्द जगती और त्रिष्टुप।)

१. मैं ही धन का मुख्य स्वामी हूँ। शत्रु-धन को जीतनेवाला भी मैं ही हूँ। मुझे ही मनुष्य बुलाते हैं। जैसे पुत्र पिता को धन देते हैं, वैसे ही मैं भी हविर्दाता यजमान को अन्न देता हूँ।

२. मैंने दध्यङ् (आथवर्ण) ऋषि का शिर काट डाला था (क्योंकि दध्यङ् ने इन्द्र के मना करने पर भी गोपनीय मधुविद्या को अश्विद्वय को बता दिया था)। कुएँ में गिरे त्रित के उद्धार के लिए मैंने मेघ में जल दिया था। मैंने शत्रुओं से धन लिया था। मातरिश्वा के पुत्र दधीचि के लिए बरसने की इच्छा से मैंने जल-रक्षक मेघों को मारा था।

३. त्वष्टा ने मेरे लिए लोहे का वज्र बनाया था। मेरे लिए देवता लोग यज्ञ करते हैं। मेरी सेना सूर्य के ही समान दुर्गम्य है। वृत्र-वधादि करने के कारण मेरे पास सब जाते हैं।

४. जिस समय यजमान मुझे स्तोत्र और सोम के द्वारा तृप्त करते हैं, उस समय मैं शत्रु के गो, अश्व, हिरण्य और क्षीर आदि से युक्त पशुदल को, आयुध से, जीतता हूँ और दाता यजमान के शत्रु-विनाश के लिए अनेकानेक शस्त्रों को तेज करता हूँ।

५. मैं सब धनों का स्वामी हूँ। मेरे धन का कोई पराभव नहीं कर सकता। मेरे भक्त कभी मृत्यु-पात्र नहीं होते अथवा मैं मृत्यु के सामने कभी नीचा नहीं होता हूँ। यजमानो, मनोऽभिलषित धन मुझसे ही माँगो। पुरुओ, मनुष्य लोग मेरी मैत्री नहीं नष्ट करें।

६. जो प्रबल निःश्वास करके, दो-दो करके, अस्त्रधारक इन्द्र के साथ युद्ध करने को प्रस्तुत हुए थे और जो स्पर्द्धा के साथ मुझे बुलाते थे, कठोर वाक्य कहते हुए उन्हें मैंने ऐसा आघात किया कि, वे मर गये। वे नत हुए; मैं नत होने का नहीं।

७. एक शत्रु आवे, तो उसे भी हरा सकता हूँ। दो आवें, तो उन्हें भी हरा सकता हूँ। यदि तीन ही आवें, तो मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? जैसे किसान, धान मलने के समय, अनायास ही पुराने धान्य-स्तम्भों को मल डालता है, वैसे ही निष्ठुर शत्रुओं को मैं मार डालता हूँ।

८. मैंने ही गुंगुओं के देश में, प्रजा के बीच, अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को प्रतिष्ठित किया था। वह गुंगुओं के शत्रुओं का संहार करते हैं, विपत्ति का निवारण करते हैं और अन्न के समान उनका पालन करते

हैं। पर्णय और करञ्ज नाम के शत्रुओं के वध से युक्त संग्राम में मैं भली भाँति विख्यात हुआ था।

९. मेरे स्तोता सबके लिए आश्रयणीय, अन्नवान् और भोगदाता हैं। मेरे स्तोता को लोग गोदाता और मित्र मानते हैं। मैं अपने स्तोता की विजय के लिए, युद्ध में, आयुध ग्रहण करता हूँ। स्तोता को मैं स्तुत्य करता हूँ।

१०. दो में से एक सोम-यज्ञ करता है। पालक इन्द्र ने उसके लिए वज्र धारण करके उसे श्री-सम्पन्न बनाया। तीक्ष्णतेजा सोम, यज्ञ-कर्त्ता के साथ शत्रु युद्ध करने को उद्यत हुआ; परन्तु अन्धकार के बीच बँध गया।

११. इन्द्र आदित्यों, वस्तुओं और रुद्रों (वा मरुतों) के स्थान को नहीं नष्ट करते। मुझ अपराजित, अहिंसित और अनभिभूत को इन देवों ने कल्याण और अन्न के लिए बनाया है।

४९ सूक्त

(देवता वैकुण्ठ इन्द्र। ऋषि इन्द्र। छन्द जगती और त्रिष्टुप्)

१. स्तोता को मैंने मुख्य धन दिया। यज्ञानुष्ठान मेरे लिए वर्द्धक है। अपने लिए यजमान के धन का प्रेरक मैं ही हूँ। अयाज्ञिक को सारे संग्रामों में हराता हूँ।

२. स्वर्ग के देवता, भूचर और जलचर जन्तु मेरा नाम इन्द्र रक्खे हुए हैं। युद्ध में जाने के लिए मैं हरितवर्ण, पौरुषशाली, विविधकर्मा और लघुगामी अश्वों को रथ में जोतता हूँ। धर्षक वज्र को, बल के लिए, धारण करता हूँ।

३. मैंने, उशना ऋषि के मङ्गल के लिए, अत्क नामक व्यक्ति को, प्रहार के द्वारा, ताड़ित किया था। मैंने रक्षा के उपयोगी अनेक कार्य करके कुत्स को बचाया था। शुष्ण के वध के लिए मैंने वज्र धारण किया था। दस्युजाति का नाम मैंने आर्य नहीं रक्खा।

४. मैंने पिता के समान वेतसु नाम का देश कुत्स ऋषि के वश में कर दिया था। तुग्र और स्मदिभ को भी कुत्स के वश में कर दिया था। मैं यजमान को श्री-सम्पन्न कर देता हूँ। पुत्र समझकर उसे प्रिय वस्तु देता हूँ, जिससे वह दुर्द्धर्ष हो उठे।

५. मैंने उस समय श्रुतर्वा ऋषि के वश में मृगय असुर को कर दिया था, जिस समय उन्होंने मेरी स्तुति की थी। मैंने वेश को आयु के और वड्गृभि को सत्य के वश में कर दिया था।

६. वृत्रवध के समान ही मैंने नववास्त्व और बृहद्रथ का वध किया था। उस समय ये दोनों वर्द्धमान और प्रसिद्ध हो रहे थे। इन्हें मैंने उज्ज्वल संसार से बाहर निकाल दिया था।

७. शीघ्रगामी अश्वों के द्वारा ढोये जाकर मैं अपने तेज से सूर्य की चारों ओर प्रदक्षिणा करता हूँ। जिस समय यजमान के सोमाभिषव के लिए मुझे बुलाया जाता है, उस समय हथियारों से मैं मारने योग्य शत्रु को दूर करता हूँ।

८. मैं सात शत्रु-पुरियों को ध्वस्त करनेवाला हूँ। मैं सबसे बड़ा बन्धन-कर्त्ता हूँ। बली जानकर मैंने तुर्वश और यदु को प्रसिद्ध किया है। मैंने अन्य स्तोताओं को बलिष्ठ बनाया है। मैंने निन्यानबे नगरों को नष्ट किया है।

९. मैं जल-वर्षक हूँ। जो सात सिन्धु आदि नदियाँ, द्रवरूप से, पृथिवी पर प्रवाहित हो रही हैं, उन सबको मैंने ही यथास्थान रक्खा है। मैं शोभन-कर्मा हूँ। मैं ही जल-वितरण करता हूँ। युद्ध करके मैंने यज्ञकर्त्ता के लिए मार्ग परिष्कृत कर दिया है।

१०. गायों के स्तन में मैंने ऐसा स्पृहणीय, दीप्त और मधुर दुग्ध रक्खा है, जैसा कोई भी देवता नहीं रख सकता। वह स्तन नदी के समान दूध का वहन करता है। सोम के साथ मिलाने पर दुग्ध बहुत ही सुखकर हो जाता है।

११. (ऋषि—रूप से इन्द्र की उक्ति)—इस प्रकार इन्द्र अपने प्रभाव से देवों और मनुष्यों को सौभाग्य-सम्पन्न करते हैं। इन्द्र के पास धन है; वे ही यथार्थ धनी हैं। विविध-कर्मा और अश्वयुक्त इन्द्र, तुम्हारा कार्य तुम्हारे अधीन है। अतीव व्यस्त होकर ऋत्विक् लोग तुम्हारे उन कार्यों की प्रशंसा करते हैं।

५० सूक्त

(देवता और ऋषि पूर्ववत्; छन्द जगती, अभिसारिणी, त्रिष्टुप् आदि।)

१. स्तोता, तुम्हारे महान् सोम से इन्द्र प्रसन्न होते हैं। वे सबके नेता और सबके सृष्टि-कर्त्ता हैं। उनकी पूजा करो। इन्द्र की आश्चर्य-जनक शक्ति, विपुल कीर्ति और सुख-सम्पत्ति की सारा द्युलोक और मनुजलोक प्रशंसा करता है।

२. इन्द्र सबके स्तुत्य और सबके प्रभु हैं। वे बन्धु के समान मनुष्य के हितैषी हैं। मेरे समान मनुष्य को उनकी सदा सेवा करनी चाहिए। वीर और साधु-पालक इन्द्र, सब प्रकार के बड़े कार्यों और बल-साध्य व्यापार के समय तथा मेघ से वृष्टि-प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करनी चाहिए।

३. इन्द्र, वे सौभाग्यशाली कौन हैं, जो तुमसे अन्न, धन और सुख-सम्पदा पाने के अधिकारी हैं। वे कौन हैं, जो तुम्हें असुर-वध-समर्थ बल पाने के लिए सोमरस प्रेरित करते हैं। वे कौन हैं, जो अपनी उर्वरा भूमि में वृष्टि-जल और पौरुष पाने के लिए सोमरस प्रदान करते हैं।

४. इन्द्र, यज्ञानुष्ठान के द्वारा तुम महान् हुए हो। सारे यज्ञों में तुम यज्ञ-भाग पाने के अधिकारी हो। तुम सारे ही युद्धों में प्रधान-प्रधान शत्रुओं के ध्वंसक हुए हो। अखिल-ब्रह्माण्ड-दर्शक इन्द्र, तुम सर्व-श्रेष्ठ मन्त्र-रूप हो।

५. तुम सर्वश्रेष्ठ हो। यजमानों की रक्षा करो। मनुष्य जानते हैं कि, तुम्हारे पास महती रक्षा प्राप्त की जाती है। तुम अजर होओ, बढ़ो। ऐसा करो कि यह सोम-याग शीघ्र सम्पन्न हो।

६. वज्री इन्द्र जिन सोम-यज्ञों को तुम धारण किये रहते हो, उनको शीघ्र सम्पन्न करते हो। तुम्हारे पास आश्रय पाने के लिए यह सोमपात्र, यह सम्पत्ति, यह यज्ञ, यह मन्त्र और यह पवित्र वाक्य उद्यत हैं।

७. मेधावी इन्द्र, स्तोत्र-निरत स्तोता लोग नाना प्रकार का धन पाने की इच्छा से एकत्र होकर तुम्हारे लिए सोम-यज्ञ करते हैं। वे, सोम-रूप अन्न प्रस्तुत होने के पश्चात् जिस समय आमोद-आह्लाद प्रारम्भ होता है, उस समय स्तुति-रूप साधन से सुख-लाभ के अधिकारी हों।

५१ सूक्त

(देवता तथा ऋषि अग्नि आदि देव-वृन्द। छन्द त्रिष्टुप् आदि।)

१. (अग्नि हविर्वहन-कार्य में उद्युक्त होकर जल में छिप गये थे। उन्हीं के प्रति देवों की उक्ति)—अग्नि, तुम अतीव प्रकाण्ड और स्थूल आच्छादन से वेष्टित होकर जल में पैठे थे। ज्ञात-प्रज्ञ अग्नि, तुम्हारे अनेक प्रकार के शरीर को एक देवता ने देखा।

२. (अग्नि की उक्ति)—मुझे किसने देखा था? वे कौन देवता हैं, जिन्होंने मेरी नाना प्रकार की देह को देखा था? मित्र और वरुण, अग्नि की वह दीप्त और देवयान-साधन देह कहाँ है, कहो तो?

३. (देवों की उक्ति)—ज्ञातप्रज्ञ अग्नि, जल और ओषधियों में तुम पैठे हो। तुम्हें हम खोजते हैं। विचित्र किरणोंवाले अग्नि, यम, तुम्हें देखकर, पहचान गये। यम ने देखा कि, तुम अपने दस स्थानों (तीन भुवन, अग्नि, वायु, आदित्य, जल, ओषधि, वनस्पति और प्राणि-शरीर) से भी अधिक दीप्त हो रहे हो।

४. (अग्नि की उक्ति)—वरुण, मैं होता के कार्य से भय पाकर चला आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि देवता लोग अब होम-कार्य में नियुक्त न करें।

इसी लिए मेरी देह नाना स्थानों में गई है। मैं (अग्नि) अब ऐसा कार्य नहीं करना चाहता।

५. (देवों की उक्ति)—अग्नि, आओ। मनुष्य यज्ञाभिलाषी हुआ है। वह यज्ञ का सारा आयोजन कर चुका है और तुम अन्धकार में हो। देवों से होमीय द्रव्य पाने की इच्छा से सरल मार्ग कर दो। प्रसन्न-चेता होकर हवि का वहन करो।

६. (अग्नि की उक्ति)—देवो, जैसे रथी दूर मार्ग को जाता है, वैसे ही मेरे ज्येष्ठ तीन भ्राता (भूपति, भुवनपति और भूतपति) इस कार्य को करते हुए नष्ट हो गये। इसी डर से मैं दूर चला आया हूँ। जैसे श्वेत हरिण धनुर्द्धारी की ज्या से डरता है, वैसे ही मैं डरता हूँ।

७. (देवों की उक्ति)—ज्ञातप्रज्ञ अग्नि, हम तुम्हें जरारहित आयु देते हैं। इससे तुम नहीं मरोगे। कल्याण-मूर्ति अग्नि, प्रसन्न-चित्त होकर देवों के पास यथाभाग हव्य ले जाओ।

८. (अग्नि की उक्ति)—देवो, यज्ञ का प्रथम हविर्भाग (प्रयाज) और शेष हविर्भाग (अनुयाज) तथा अतीव विपुल भाग मुझे दो। जल का सार भाग घृत, ओषधि से उत्पन्न प्रधान भाग और दीर्घ आयु दो।

९. (देवों का कथन)—अग्नि, प्रयाज, अनुयाज, विपुल और असाधारण हविर्भाग तुम्हें मिलेगा। ये सारे यज्ञ भी तुम्हारे ही हों। चारों दिशायें तुम्हारे पास अवनत हों।

५२ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि अग्नि। छन्द त्रिष्टुप।)

१. विश्वदेव, तुमने मुझे होता के रूप में वरण किया है। मैं यहाँ बैठकर जो मन्त्र पढ़ूँगा, उसे कह दो। मेरा भाग कौन है और तुम लोगों का भाग कौन है, यह मुझे कह दो। जिस मार्ग से तुम्हारे पास मैं होमीय द्रव्य ले जाऊँगा, वह भी कह दो।

२. होता होकर मैं यज्ञ करूँगा। इसी से बैठा हुआ हूँ। सारे देवों और मरुतों ने मुझे इस कार्य में नियुक्त किया है। अश्विद्वय, तुम्हें प्रतिदिन अध्वर्यु का कार्य करना होता है। उज्ज्वल सोम स्तोतृ-रूप हो रहे हैं। तुम दोनों सोम पीते हो।

३. होता को क्या करना होता है? होता यजमान के जिस द्रव्य का हवन करते हैं, वह देवों को मिलता है। प्रतिदिन और प्रतिमास होम होता है। इस कार्य में देवों ने अग्नि को हव्यवाहक नियुक्त किया है।

४. मैं (अग्नि) ने पलायन किया था। मैं अनेक प्रकार के कष्ट करता था। मुझे देवों ने हव्य-वाहन नियुक्त किया है। विद्वान् अग्नि हमारे यज्ञ का आयोजन करते हैं। यज्ञ के पाँच मार्ग हैं। उसमें तीन बार सोम का निष्पीड़न (सवन-त्रय) किया जाता है और सात छन्दों में स्तव किया जाता है।

५. देवो, मैं तुम्हारी सेवा करता हूँ। इसलिए तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अमर करो और सन्तान दो। मैं इन्द्र के दोनों हाथों में वज्र देता हूँ। तभी वह इन सारी शत्रु-सेनाओं को जीतते हैं।

६. तीन हजार तीन सौ उनतालीस देवताओं ने अग्नि की सेवा की है। अग्नि को उन्होंने घृत से अभिषिक्त किया है, उनके लिए कुश बिछा दिया है और उन्हें होता के रूप में यज्ञ में बैठाया है।

५३ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि देवतागण। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. मन से जिन अग्नि की हम कामना करते थे, वह आगये हैं। अग्नि यज्ञ को जानते हैं। वह अपने अङ्गों को सम्पूर्ण करते हैं। उनके समान कोई भी यज्ञकर्त्ता नहीं है। वे हमारा यजन करें। यजनीय देवों के मध्य वे वेदी पर बैठे हुए हैं।

२. अग्नि, होता और श्रेष्ठ यज्ञकर्त्ता हैं। वेदी पर बैठकर आहुति के योग्य हुए हैं। अग्नि भली भाँति रक्खे हुए चरु, पुरोडाश आदि को

चारों ओर से देख रहे हैं। इसलिए कि, आहुतिपात्र देवों का शीघ्र यज्ञ किया जाय और स्तुत्य देवों की स्तुति की जाय।

३. हम लोगों का देवागमन-रूप यज्ञ-कार्य है, उसे अग्नि सुसम्पन्न करें। यज्ञ की जो गूढ़ जिह्वा (अग्नि) है, उसे हम पा चुके हैं। अग्नि सुरभि होकर और दीर्घ आयु पाकर आये हैं। देवाह्वान-रूप यज्ञ को अग्नि ने पूर्ण किया है।

४. जिस वाक्य का उच्चारण करने पर हम असुरों का पराभव कर सकें, उस सर्वश्रेष्ठ वाक्य का हम उच्चारण करें। अन्नभक्षक, यज्ञ-योग्य और पञ्चजनो (देव मनुष्यादि को), तुम लोग हमारे होम-कार्य का सेवन करो।

५. पञ्चजन (देवादि) मेरे होत्र का सेवन करें। हव्य के लिए उत्पन्न और यज्ञार्ह देवता मेरे होत्र का सेवन करें। पृथिवी हमें पाप से बचावे। अन्तरिक्ष हमें पाप से बचावे।

६. अग्नि, यज्ञ विस्तार करते हुए इस लोक के दीप्ति-कर्त्ता सूर्य के अनुगामी बनो (सूर्यमण्डल में पैठो)। सत्कर्म-द्वारा जिन ज्योतिर्मय मार्गों (देवयानों) को प्राप्त किया जाता है, उनकी रक्षा करो। वे अग्नि स्तोताओं का कार्य निर्दोष कर दें। अग्नि, तुम स्तवनीय बनो और देवों को यज्ञाभिगामी करो।

७. (यज्ञागमनेच्छु देवता कहते हैं)—सोम-योग्य देवो, रथ में जोतने योग्य घोड़ों को रथ में जोतो। घोड़े का लगाम साफ़ करो। घोड़ों को अलंकृत करो। आठ सारथियों के बैठने योग्य रथों को, सूर्य-रथ के साथ, यज्ञ में ले जाओ। इसी रथ से देवता अपने को ले जाते हैं।

८. अश्मन्वती नाम की नदी बह रही है। प्रस्तुत होकर इसे लाँघ जाओ। मित्र देवो, जो कुछ असुख था, उसे छोड़कर और नदी पार कर हम अन्न पावेंगे।

९. त्वष्टा पात्र निर्माण करना जानते हैं। उन्होंने देवों के लिए अतीव सुन्दर पान पात्र बनाये हैं। वे उत्तम लोहे से बनाये गये कुठार

को तेज कर रहे हैं। उसी से ब्रह्मणस्पति पात्र बनाने के योग्य काठ को काटते हैं।

१०. मेधावियो, जिन कुठारों से अमृत-पान के लिए (अमर होने के लिए) पात्र बनाया करते हो, उन्हें भली भाँति तेज करो। विद्वानो, तुम ऐसा गोपनीय वास-स्थान बनाओ, जिससे देव अमर हुए थे।

११. मृत गायों में से एक गाय को ऋभुओं ने रक्खा और उसके मुख में एक बछड़ा भी रक्खा। उनकी इच्छा देवता बनने की थी। इस कार्य को सम्पन्न करने का उपाय उनका कुठार है। प्रतिदिन ऋभुगण अपने योग्य उत्तमोत्तम स्तोत्र ग्रहण करते हैं। वे अवश्य शत्रुजयकर्त्ता हैं।

५४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वामदेवीय वृहदुक्थ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. धनी इन्द्र, तुम्हारी महती कीर्ति का मैं वर्णन करता हूँ जिस समय द्यावापृथिवी ने डरकर तुम्हें बुलाया, उस समय तुमने देवों की रक्षा की, दस्युदल का संहार किया और यजमान को बल प्रदान किया।

२. इन्द्र, तुमने अपने शरीर को बढ़ाकर और अपने सारे कार्यों की घोषणा कर जिन सब बलसाध्य व्यापारों को सम्पन्न किया, वे सब माया मात्र हैं; तुम्हारे सारे युद्ध में माया भर है। इस समय तो तुम्हारा कोई भी शत्रु नहीं है। क्या पहले था? यह भी सम्भव नहीं।

३. इन्द्र, हमसे पहले किसी ऋषि ने तुम्हारी अखिल महिमा का अन्त पाया था। तुमने अपने ही शरीर से अपने माता-पिता को (द्यावापृथिवी को) एक साथ उत्पन्न किया था।

४. तुम महान् हो। तुम्हारे चार असुर-घातक और अहिंसनीय शरीर हैं। धनी इन्द्र, उन्हीं शरीरों से तुम अपने बड़े कार्यों को करते हो।

५. प्रकट और छिपी हुई—दोनों तरह की सम्पत्तियों को तुम अधिकार में करते हो। इन्द्र, मेरी अभिलाषा पूरी करो। तुम स्वयं दान करने की आज्ञा करते हो और स्वयं दान देते हो।

६. जिन्होंने ज्योतिर्मय पदार्थों में ज्योति स्थापित की है और जिन्होंने मधु देकर सोमरस आदि मधुर वस्तुओं की सृष्टि की है, उनके लिए बृहदुक्थ मंत्रों के कर्त्ता ऋषि ने प्रिय और बलकर स्तोत्र किया था।

५५ सूक्त

(देवता, ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत्।)

१. इन्द्र, तुम्हारा शरीर दूर है। पराङ्मुख होकर मनुष्य उसको छिपाते हैं। जिस समय द्यावापृथिवी उसको अन्न के लिए बुलाते हैं, उस समय तुम अपने पास की मेघराशि को प्रदीप्त करते हो और पृथिवी से आकाश को ऊपर पकड़ रखते हो।

२. तुम्हारा विस्तृत स्थानों में व्याप्त गुह्य शरीर (अन्तरिक्ष) अत्यन्त प्रकाण्ड है। उससे तुमने भूत और भविष्य को उत्पन्न किया है। जिन ज्योतिर्मय वस्तुओं को उत्पन्न करने की इच्छा हुई, उससे सब प्राचीन वस्तुएँ उत्पन्न हुईं; उससे पञ्चजन (चारों वर्ण और निषाद) प्रसन्न हुए।

३. इन्द्र (सूर्यात्मक) ने अपने शरीर (वा तेज) से द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया। इन्द्र, समय-समय पर पाँच जातियों (देव, मनुष्य, पितर, असुर और राक्षस) और सात तत्त्वों (सात मरुद्गण, सात सूर्य-किरण, सात लोक आदि) को, अपने प्रदीप्त नानाविध कार्यों के द्वारा, धारण करते हो। यह सब कार्य एक ही भाव से चलते हैं। इस संबंध में मेरे तीस देवता (आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति, वषट्कार और विराट्) इन्द्र की सहायता करते हैं।

४. उषा, नक्षत्र आदि आलोकधारी पदार्थों में तुमने सबसे पहले आलोक दिया है। जो पुष्ट है, उसको तुमने और भी पुष्ट किया है। तुम ऊपर रहती हो; किन्तु निम्नस्थ मनुष्यों के साथ तुम्हारा बन्धुत्व है। यह तुम्हारा महत्त्व और एक ही प्रकृष्ट-बलत्व है।

५. जिस समय (कालात्मक) इन्द्र युवा रहते हैं, उस समय सब कार्य करते हैं; उन द्रावक के भय से युद्ध में कितने ही शत्रु भागते हैं; परन्तु

अनेक कालों का वृद्ध काल उनका ग्रास कर लेता है। उनकी महत्त्वजनक क्षमता देखिए कि, वे कल जीवित थे, आज मर गये।

६. एक सुन्दर पक्षी (इन्द्रात्मक) आ रहा है। उसका बल अद्‌भुत है—सर्व-समर्थ है। वह महान्, विक्रान्त, प्राचीन और बिना घोंसले का है। वह जो करना चाहता है, वह अवश्य ही हो जाता है। वह अभिलषणीय सम्पत्ति को जीतता और उसे स्तोताओं को दे डालता है।

७. वज्रधर इन्द्र ने मरुतों के साथ वर्धक बल को प्राप्त किया। मरुतों के साथ इन्द्र ने वृष्टि बरसाई और वृत्र का वध करके पृथिवी को अभि-षिक्त किया। महान् इन्द्र, जिस समय वे कार्य करते हैं, उस समय स्वयं मरुद्‌गण वृष्टि की उत्पत्ति के कार्य में लग जाते हैं।

८. मरुतों की सहायता से इन्द्र ये कर्म करते हैं। उनका तेज सर्वगन्ता है। वे राक्षसों को मारते हैं। उनका मन विश्व-व्यापी है। वे क्षिप्र-विजयी हैं। इन्द्र ने आकाश से आकर और सोम-पान करके अपने शरीर को बढ़ाया और आयुध से असुरों (दस्युओं) को मारा।

५६ सूक्त

(देवता विश्वदेवगण। ऋषि वामदेव-पुत्र बृहदुक्थ। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. (अपने मृत पुत्र वाजी से ऋषि कहते हैं)—तुम्हारा एक अंश यह अग्नि है। एक अंश यह वायु है। तुम्हारा तीसरा अंश ज्योतिर्मय आत्मा है। इन तीन अंशों के द्वारा तुम अग्नि, वायु और सूर्य में पैठो। अपने शरीर के प्रवेश के समय तुम कल्याण-मूर्त्ति धारण करो और देवों में उन सर्वश्रेष्ठ और पितृस्वरूप सूर्य के भुवन में प्रिय होओ।

२. वाजी, पृथिवी तुम्हारे शरीर को ग्रहण करती है। वे हमारे लिए प्रीतिजनक हों; तुम्हारा भी कल्याण करें तुम स्थान-भ्रष्ट न होकर, ज्योति धारण करने के लिए, देवों और आकाशस्थ सूर्य के साथ अपनी आत्मा को मिला दो।

३. पुत्र, तुम बल से बली और सुन्दर हो। जिस प्रकार तुमने उत्तम स्तोत्र किया था, उसी प्रकार उत्तम स्वर्ग में जाओ। उत्तम धर्म का तुमने अनुष्ठान किया है; इसलिए उत्तम फल पाओ। उत्तम देवता और उत्तम सूर्य के साथ मिलो।

४. हमारे पितर, देवता के समान, महिमा के अधिकारी हुए हैं। उन्होंने देवत्व प्राप्त करके देवों के साथ क्रिया-कलाप किया है। जो सब ज्योतिर्मय पदार्थ दीप्ति पाते हैं, वे उनके साथ मिल गये हैं; वे देवों के शरीर में पैठ गये हैं।

५. अपनी शक्ति से वे पितर सारे ब्रह्माण्ड को घूम चुके हैं। जिन सब प्राचीन भुवनों में कोई नहीं जाता, वे वहाँ गये हैं। अपने शरीर से उन्होंने सारे भुवनों को आयत्त कर लिया है। प्रजावृन्द के प्रति नाना प्रकार से अपना प्रभाव विस्तारित किया है।

६. सूर्य के पुत्र-रूप देवों ने तृतीय कार्य (पुत्रोत्पत्ति-रूप) के द्वारा स्वर्गज्ञाता व सर्वज्ञ और बली सूर्य को दो (प्रातः-सायं) प्रकार से स्थापित किया है। मेरे पितरों ने सन्तानोत्पत्ति करके सन्तानों के शरीर में पैतृक बल स्थापित किया। वे चिरस्थायी वंश रख गये।

७. जैसे लोग नौका से जल को पार करते हैं, जैसे स्थल पर पृथिवी की भिन्न दिशा का अतिक्रम करते हैं और जैसे कल्याण के द्वारा सारी विपदाओं से उद्धार होता है, वैसे ही बृहदुक्थ ऋषि ने, अपनी शक्ति से, अपने मृत पुत्र को अग्नि आदि पार्थिव पदार्थों और सूर्य आदि दूरवर्त्ती पदार्थों में मिला दिया।

५७ सूक्त

(देवता मन। ऋषि बन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु आदि। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र, हम सुपथ से कुपथ में न जायें। हम सोमवाले के गृह से दूर न जायें। हमारे बीच शत्रु न आने पावें।

२. जिन अग्नि से यज्ञ की सिद्धि होती है और जो, पुत्र-स्वरूप होकर, देवों के पास तक विस्तृत हैं, उन अग्नि का हवन किया जाय और हम उन्हें प्राप्त कर लें।

३. नराशंस (पितर) के सम्बन्ध के सोम के द्वारा हम मन को बुलाते हैं। पितरों के स्तोत्र के द्वारा मन को बुलाते हैं।

४. (भ्राता सुबन्धु) तुम्हारा मन फिर आवे। कार्य करो, बल प्रकट करो। जीवित रहो और सूर्य के दर्शन करो।

५. हमारे पूर्व-पुरुष मन को फिरा दें और देवों को फिरा दें। हम प्राण और उसका सब कुछ आनुषङ्गिक प्राप्त करें।

६. सोम, हम देह में मन को धारण करते हैं। हम सन्तति-युक्त होकर तुम्हारे कार्य में मिलें।

५८ सूक्त

(देवता मृत सुबन्धु का मन, प्राण आदि। ऋषि सुबन्धु के भ्राता बन्धु आदि। छन्द अनुष्टुप्।)

१. विवस्वान् के पुत्र यम के पास, दूर पर, तुम्हारा जो मन गया है, उसे हम लौटा लाते हैं। तुम इस संसार में निवास के लिए जी रहे हो।

२. तुम्हारा जो मन अत्यन्त दूर स्वर्ग अथवा पृथिवी पर चला गया है, उसे हम लौटा लाते हैं। तुम संसार में निवास के लिए जीते हो।

३. चारों ओर लुढ़क पड़नेवाला जो तुम्हारा मन अतीव दूरवर्ती देश में गया है, उसे हम लौटाते हैं। तुम संसार में निवास के लिए जीते हो।

४. तुम्हारा मन जो चारों ओर अतीव दूरस्थ प्रदेश में चला गया है, उसको हम लौटाते हैं। तुम संसार में निवास के लिए जीते हो।

५. तुम्हारा जो मन अतीव दूरवर्त्ती और जल से परिपूर्ण समुद्र में गया है, उसे हम लौटाते हैं। तुम संसार में निवास के लिए जीवित हो।

६. तुम्हारा जो मन चारों ओर विकीर्ण किरण-मंडल में पैठा है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में तुम निवास के लिए वर्तमान हो।

७. तुम्हारा जो मन दूरस्थ जल के भीतर व वृक्षलतादि के मध्य में गया है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में निवास के लिए तुम विद्यमान हो।

८. तुम्हारा जो मन दूरवर्ती सूर्य व उषा के बीच गया है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में निवास के लिए तुम विद्यमान हो।

९. तुम्हारा जो मन दूरस्थ पर्वतमालाओं के ऊपर चला गया है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में निवास के लिए तुम वर्तमान हो।

१०. तुम्हारा जो मन इस समस्त विश्व में अतीव दूर चला गया है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में निवास के लिए तुम हो।

११. तुम्हारा जो मन दूर से भी दूर, उससे दूर, किसी स्थान पर चला गया है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में निवास के लिए तुम जीते हो।

१२. तुम्हारा जो मन भूत व भविष्यत्—किसी दूर स्थान पर चला गया है, उसे हम लौटाते हैं। संसार में निवास के लिए तुम जीते हो।

५९ सूक्त

(देवता निर्ऋति, असुनीति आदि। ऋषि बन्धु आदि। छन्द त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, महापङ्क्ति आदि।)

१. जैसे कर्मकुशल सारथि के होने पर रथ पर चढ़ा व्यक्ति सुख प्राप्त करता है, वैसे ही सुबन्धु की परमायु यौवन से युक्त होकर बढ़े। जिसकी आयु का ह्रास होता है, वह अपनी आयु की वृद्धि चाहता है। निर्ऋति (पापदेवता) दूर हों।

२. परमायुः-स्वरूप सम्पत्ति पाने के लिए, साम-गान के साथ, हम अन्न और भक्षणीय द्रव्य की राशि इकट्ठी करते हैं। हमने निर्ऋति की स्तुति की है। वे सारे अन्नों के भोजन में प्रीति प्राप्त करें और दूर देश जायें।

३. बल के द्वारा हम शत्रुओं को हरावेंगे। जैसे पृथ्वी के ऊपर आकाश रहता है, वैसे ही हम शत्रुओं के ऊपर स्थान प्राप्त करें। जैसे मेघ की गति पर्वत के द्वारा रोकी जाती है, वैसे ही हम शत्रु की गति को रोकें। हमारे स्तोत्र को निर्ऋति सुनें और दूर चले जायें।

४. सोम, हमें मृत्यु के हाथ में नहीं देना। हम सूर्य का उदय देख सकें। हमारी वृद्धावस्था दिन दिन सुख से बीते। निर्ऋति दूर हों।

५. असुनीति (प्राण-नेत्री) देवी, हमारी ओर मन करो। हम जीवित रहें; इसलिए हमें उत्कृष्ट परमायु प्रदान करो। जहाँ तक सूर्य की दृष्टि है, वहाँ तक हमें रहने दो। हम तुम्हें घी देते हैं, उससे अपना शरीर पुष्ट करो।

६. असुनीति, हमें फिर नेत्र दो। फिर हमारे प्राण को हमारे पास उपस्थित करो। हमें भोग करने दो। हम चिरकाल तक सूर्योदय देख सकें। अनुमति, जिससे हमारा विनाश न हो, इस प्रकार हमें सुखी करो।

७. पुनः पृथिवी हमको प्राण दान करें। फिर द्युलोक और अन्तरिक्ष हमें प्राण दें। सोम हमें फिर शरीर दें। पूषा हमें ऐसा हितकर वाक्य प्रदान करें, जिससे हमारा कल्याण हो।

८. महती और मातृ-स्वरूपा द्यावापृथिवी सुबन्धु का कल्याण करें। द्युलोक और विस्तृत पृथिवी सारे अमङ्गलों को दूर कर दें। सुबन्धु, वे किसी भी प्रकार तुम्हारा अनिष्ट न कर सकें।

९. स्वर्ग में जो दो वा तीन औषध हैं, (उनमें दो को अश्विनीकुमार और तीन को सरस्वती व्यवहार में लाती हैं,) उनमें एक पृथिवी पर विचरण करती है। (फलतः एक ही औषध है)। सो सब सुबन्धु की प्राण-रक्षा करें। द्युलोक और विस्तृत पृथिवी सारे अमंगलों को दूर कर दें। सुबन्धु, किसी भी प्रकार से तुम्हारा अनिष्ट न कर सकें।

१०. इन्द्र, जो वृष उशीनर की पत्नी (वा ओषधि) का शकट ले गया था, उसे प्रेरित करो। द्युलोक और विस्तृत पृथिवी सारे अमंगलों को दूर कर दें। सुबन्धु, किसी भी प्रकार से तुम्हारा अनिष्ट न कर सकें।

६० सूक्त

(देवता राजा असमाति आदि। ऋषि बन्धु आदि। छन्द गायत्री आदि।)

१. असमाति राजा का जनपद अतीव उज्ज्वल है। महान् लोग इस देश की प्रशंसा करते हैं। नम्र होकर हम उस देश में गये।

२. शत्रु-संहार करनेवाले असमाति राजा की मूर्त्ति अत्यन्त प्रदीप्त है। रथ पर चढ़ने पर जैसे अनेक अभिप्राय सिद्ध होते हैं, वैसे ही असमाति राजा के पास जाने पर अनेक अभिलाष सिद्ध होते हैं। उन्होंने भजेरथ राजा के वंश में जन्म लिया है। वे शिष्ट-पालक हैं।

३. वे हाथ में तलवार धारण करें वा न करें। उनका ऐसा बल-वीर्य है कि, जैसे सिंह भैंसों को मार गिराता है, वैसे ही वे मनुष्यों को गिरा देते हैं।

४. धनी और शत्रु-संहारक इक्ष्वाकु राजा रक्षा-कार्य में नियुक्त हैं। पञ्च (चार वर्ण और निषाद) मनुष्य स्वर्ग-सुख का भोग करें।

५. इन्द्र, जैसे सबके दर्शन के लिए तुमने आकाश में सूर्य को रख दिया है, वैसे ही रथारूढ़ असमाति राजा का अनुगामी होने के लिए वीरों को नियुक्त करो।

६. राजन्, अगस्त्य के दौहित्रों वा आनन्दी बन्धु आदि के लिए दो लोहित घोड़ों को रथ में जोतो। जो सब व्यवसायी नितान्त कृपण हैं, कभी दान नहीं करते, उन सबको हराओ।

७. जो अग्नि आये हैं, वे माता, पिता और प्राणदाता औषध हैं। सुबन्धु, तुम्हारा यही शरीर है। इसमें आकर पैठो।

८. जैसे रथ धारण करने के लिए रज्जु (पाश) से दोनों काष्ठों को बाँधते हैं, वैसे ही अग्नि ने तुम्हारे मन को धारण कर रक्खा है, ताकि तुम जीवित और कल्याण-स्वरूप बनो और तुम्हारी मृत्यु दूर हो।

९. जैसे यह विस्तीर्ण पृथिवी विशाल-विशाल वृक्षों को धारण किये हुए है, वैसे ही अग्नि ने तुम्हारे मन को धारण कर रक्खा है, ताकि तुम जीवित और कल्याण-स्वरूप रहो और तुम्हारी मृत्यु दूर हो।

१०. विवस्वान् के पुत्र यमराज से मैंने सुबन्धु का मन अपहृत किया है, इससे वे जीवित और कल्याण-स्वरूप होंगे और उनकी मृत्यु दूर होगी।

११. वायु द्युलोक से नीचे के लोक में बहते हैं, सूर्य ऊपर से नीचे तपते हैं। गाय का दूध नीचे दूहा जाता है। वैसे ही हे सुबन्धु, तुम्हारा अकल्याण नीचे गमन करे।

१२. मेरा हाथ क्या ही सौभाग्यशाली है! यह अत्यन्त सौभाग्यशाली है। यह सबके लिए भेषज है; इसके स्पर्श से कल्याण होता है।

६१ सूक्त

(५ अनुवाक। देवता विश्वदेव। ऋषि मनु-पुत्र नाभा नेदिष्ट। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. नाभा नेदिष्ट के माता, पिता, भ्राता आदि, विषय-विभाग करते समय, नाभा नेदिष्ट को भाग न देकर रुद्र की स्तुति करने लगे। इससे नाभा नेदिष्ट रुद्र-स्तव करने को उद्यत होकर अङ्गिरा लोगों के यज्ञ में उपस्थित हुए और यज्ञ के छठे दिन में वे लोग जो भूल गये थे, वह सब सात होताओं से कहकर यज्ञ समाप्त किया।

२. रुद्रदेव स्तोताओं को धन देने के लिए और शत्रुओं को नष्ट करने के लिए उन्हें अस्त्रादि देते हुए वेदी पर जाकर बैठ गये। जैसे मेघ जल बरसाता है, वैसे ही रुद्रदेव उपस्थित होकर, वक्तृता देते हुए, चारों ओर अपनी क्षमता का प्रदर्शन करने लगे।

३. अश्विद्वय, मैं यज्ञ में प्रवृत्त हुआ हूँ। जो अध्वर्यु मेरे हाथ की अँगुलियाँ पकड़कर और विस्तृत हवि का संग्रह करके, तुम्हारा नाम लेते हुए, चरु पाक करता है, उसी स्तोता अध्वर्यु का यज्ञीय उद्योग देखकर, मन के समान द्रुत वेग से, तुम लोग यज्ञ में जाते हो।

४. जिस समय रात्रि का अन्धकार नष्ट होता है और प्रातःकाल की लाल आभा दिखाई देने लगती है, उस समय, हे द्युलोक-पुत्र अश्विद्वय, तुम्हें मैं बुलाता हूँ। तुम हमारे यज्ञ में पधारो। मेरा अन्न लो। दो ग्राहक अश्वों के समान उसे खाओ। हमारा अनिष्ट नहीं करना।

५. जो प्रजापति का वीर्य पुत्रोत्पादन में समर्थ है, वह बढ़कर निकला। प्रजापति ने मनुष्यों के हित के लिए रेत का त्याग किया। अपनी सुन्दरी कन्या (उषा) के शरीर में ब्रह्मा वा प्रजापति ने उस शुक्र (वीर्य वा रेत) का सेक किया।

६. जिस समय पिता युवती कन्या (उषा) के ऊपर पूर्वोक्त रूप से रतिकामी हुए और दोनों का संगमन हुआ, उस समय दोनों के परस्पर-संगमन से अल्प शुक्र का सेक हुआ। सुकर्म के आधार-स्वरूप एक उन्नत स्थान में उस शुक्र का सेक हुआ।

७. जिस समय पिता ने अपनी कन्या (उषा) के साथ संभोग किया, उस समय पृथिवी के साथ मिलकर शुक्र का सेक किया। सुकृती देवों ने इससे व्रतरक्षक ब्रह्म (वास्तोष्पति वा रुद्र) का निर्माण किया।

८. जैसे इन्द्र, नमुचि के वध-काल में, युद्ध में फेन फेंकते हुए आये थे, वैसे ही मेरे पास से वास्तोष्पति ने प्रतिगमन किया। वे जिस पैर से आये थे, उसी से लौट गये। अङ्गिरा लोगों ने मुझे दक्षिणा-स्वरूप जो गायें दी थीं, उन्हें उन्होंने दूर किया। अनायास ग्रहण-समर्थ होने पर भी उन्होंने गायों को नहीं लिया।

९. प्रजा के उत्पीड़क और समान अग्नि के दाहक राक्षस आदि सहसा इस यज्ञ में नहीं आ सकते; क्योंकि इस यज्ञ की रक्षा रुद्र कर रहे हैं। रात को भी नग्न राक्षस यज्ञीय अग्नि के पास नहीं आ सकते। यज्ञ के रक्षक अग्नि काठों को लेते हुए और अन्न का वितरण करते हुए आविर्भूत हुए और राक्षसों के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुए।

१०. नौ मास तक यज्ञानुष्ठान करते-करते अङ्गिरा लोग गायें पाया करते हैं। उन्होंने कमनीय स्तुति की सहायता से, यज्ञ-वचनों को कहते-

कहते, यज्ञ की समाप्ति की। इहलोक और परलोक, दोनों स्थानों में वृद्धि प्राप्त की और इन्द्र के पास गये। उन्होंने दक्षिणा-विहीन यज्ञ (सत्र नामक यज्ञ) करके अविनाशी फल प्राप्त किया।

११. अङ्गिरा लोगों ने जिस समय अमृत के समान दूध देनेवाली गायों के उज्ज्वल और पवित्र दूध को यज्ञ में दिया, उस समय सुन्दर स्तोत्रों के द्वारा, नई सम्पदा के समान, अभिषिक्त वृष्टि-जल प्राप्त किया।

१२. ऐसा कहा गया है कि, इन्द्र यज्ञकर्त्ता का इतना स्नेह करते हैं कि, जिसका पशु खो गया है, उसके जानते या अनजानते ही, अतीव धनी, कुशल और निष्पाप पशु को खोज देते हैं।

१३. सुस्थिर इन्द्र जिस समय बहु-विस्तारक शुष्ण के निगूढ़ मर्म को खोजकर उसे मारते हैं अथवा नृषद के पुत्र को विदीर्ण करते हैं, उस समय उनके अनुचर, नाना प्रकार से, उन्हें घेरकर उनके साथ जाते हैं।

१४. जो देवता, स्वर्ग के समान, यज्ञ-स्थान (कुश) में बैठते हैं, वे अग्नि के तेज का नाम "भर्ग" रखते हैं। अग्नि के एक तेज का नाम "जातवेदा" है। होम-निष्पादक अग्नि, तुम्हीं यज्ञ के होता हो। तुम्हीं, अनुकूल होकर, हमारे आह्वान को सुनते हो।

१५. इन्द्र, वे दो दीप्त-मूर्त्ति और रुद्रपुत्र अश्विद्वय मेरे स्तोत्र और यज्ञ को ग्रहण करें। जैसे वे मनु के यज्ञ में प्रसन्न होते हैं, वैसे ही मेरे यज्ञ में भी प्रसन्न हों। मैंने कुश बिछाया है। प्रजा को धन दें और यज्ञ को ग्रहण करें।

१६. सर्वश्रेष्ठ सोम की स्तुति सब करते हैं—हम भी करते हैं। क्रिया-कुशल सोम स्वयं ही सेतु हैं। वे जल को पार करते हैं। जैसे शीघ्रगामी घोड़े चक्कों की परिधि को कँपाते हैं, वैसे ही कक्षीवान् और अग्नि को भी कँपाते हैं।

१७. अग्नि यह लोक, परलोक—दोनों स्थानों के हितैषी हैं। वे तारक और यज्ञ-कर्त्ता हैं। जब कि, अमृत के समान दूध देनेवाली गाय दूध नहीं देती, तब उसे प्रसववती करके वे दुग्धदायिनी बनाते हैं। मित्र,

वरुण और अर्यमा को उत्तमोत्तम स्तोत्रों के द्वारा सन्तुष्ट किया जाता है।

१८. स्वर्गस्थ सूर्य, मैं तुम्हारा बन्धु नाभा नेदिष्ठ हूँ। तुम्हारी स्तुति करता हूँ। मेरी इच्छा है कि, मैं गायें प्राप्त करूँ। द्युलोक (स्वर्ग) हमारा और सूर्य का उत्तम उत्पत्ति-स्थान है। सूर्य से मेरा कितने पुरुष का अन्तर ही है?

१९. द्युलोक ही मेरा उत्पत्ति-स्थान है; यहीं मैं रहता हूँ। सारे देवता वा किरणें मेरे अपने हैं। मैं सबका हूँ। द्विज लोग सत्यरूप ब्रह्मा से प्रथम उत्पन्न हुए हैं। यज्ञ-स्वरूपा गाय वा माध्यमिकी वाक् ने उत्पन्न होकर यह सब उत्पन्न किया।

२०. आनन्द के साथ जाकर अग्नि चारों ओर अपना स्थान ग्रहण करते हैं। यह उज्ज्वल, इस लोक और परलोक में सहायक और काठों को हरानेवाले है। इनकी ज्वाला ऊपर उठती है। अग्नि स्तुत्य हैं। अग्नि की माता अरणि इन सुस्थिर और सुखावह अग्नि को शीघ्र उत्पन्न करती है।

२१. उत्तमोत्तम स्तोत्र कहते-कहते मुझ नाभा नेदिष्ठ को श्रान्ति हो गई है। मेरी स्तुतियाँ इन्द्र के पास गई हैं। धनी अग्नि, सुनो। हमारे इन इन्द्र का यज्ञ करो। मैं अश्वघ्न वा अश्वमेध यज्ञ करनेवाले (मनु) का पुत्र हूँ। मेरी स्तुति से तुम बढ़ते हो।

२२. वज्रधर और नरेन्द्र इन्द्र, तुम जानो कि, हमने प्रचुर धन की कामना की है। हम तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हें हवि देते हैं। हमारी रक्षा करो। हरि नाम के दो घोड़ोंवाले इन्द्र, तुम्हारे पास आकर हम अपराधी न हों।

२३. दीप्त मूर्त्तिवाले मित्र और वरुण, गाय पाने की इच्छा से अङ्गिरा लोग यज्ञ करते थे। सर्वज्ञ नाभा नेदिष्ठ स्तोत्राभिलाषी होकर उनके निकट गया। मैं (नाभा नेदिष्ठ) ने स्तोत्र किया और यज्ञ को समाप्त किया। इसी लिए मैं उनका अत्यन्त प्रिय विप्र हुआ हूँ।

२४. इस समय हम, गोधन पाने की इच्छा से, अनायास ही, स्तुति करते हुए जयशील वरुण के पास जाते हैं। शीघ्रगामी अश्व उन वरुण का पुत्र हैं। वरुण, तुम मेधावी और अन्न देनेवाले हो।

२५. मित्र और वरुण, अन्नवान् पुरोहित स्तुति करते हैं। इसलिए कि, तुम हमारे प्रति अनुकूल होगे। तुम्हारा बन्धुत्व अतीव हितकर है। तुम्हारा बन्धुत्व पाने पर सारे स्थानों में स्तोत्र-वाक्य उच्चारित होंगे। जैसे चिर-परिचित पथ सुखकर होता है, वैसे ही तुम्हारा बन्धुत्व हमारी स्तुतियों को सुखकर करे।

२६. परम बन्धु वरुण, देवों के साथ, उत्तमोत्तम स्तोत्र और नमस्कार प्राप्त करके प्रवृद्ध हों। गाय के दूध की धारा उनके यज्ञ के लिए बहे।

२७. देवो, तुम्हीं यज्ञपान के अधिकारी हो। हमारी भली भाँति रक्षा के लिए, तुम सब मिलो। अङ्गिरा लोगो, उद्योगी होकर तुमने मुझे अन्न दिया है। तुम्हारा मोह विनष्ट हो गया है। इस समय तुम गोधन प्राप्त करो।

प्रथम अध्याय समाप्त।

६२ सूक्त

(द्वितीय अध्याय। देवता विश्वदेव आदि। ऋषि नाभा नेदिष्ठ। छन्द जगती आदि।)

१. अङ्गिरा लोगो, तुम लोग यज्ञीय द्रव्य (हवि आदि) और दक्षिणा से, एक साथ, इन्द्र का बन्धुत्व और अमरत्व प्राप्त कर चुके हो। तुम्हारा कल्याण हो। सुधी अङ्गिरोगण, इस समय तुम मुझ मनु-पुत्र को ग्रहण करो। मैं भली भाँति यज्ञ करूँगा।

२. अङ्गिरोगण, तुम लोग हमारे पितृ-सदृश हो। तुम लोग अपहृत गाय को ले आये थे। तुम लोगों ने वर्ष भर यज्ञ करके "बल" नामक असुर

को नष्ट किया था। तुम लोग दीर्घायु बनो। अङ्गिरोगण, इस समय तुम मुझे मनु-पुत्र (मानव) को ग्रहण करो। मैं भली भाँति यज्ञ करूँगा।

३. तुम लोगों ने सत्यरूप यज्ञ के द्वारा द्युलोक में सूर्य को स्थापित किया है और सबकी निर्मात्री पृथिवी को प्रसिद्ध किया है। तुम्हें सन्तति हो। अङ्गिरोगण, इस समय तुम मुझ मानव को ग्रहण करो। मैं भली भाँति यज्ञ करूँगा।

४. देवपुत्र ऋषियो (अङ्गिरा लोगो), यह नाभा नेदिष्ट तुम्हारे यज्ञ में कल्याणमय वचन कहता है। सुनो। तुम लोग शोभन ब्रह्म-तेज प्राप्त करो। अङ्गिरोगण, इस समय तुम मुझ मानव को ग्रहण करो। मैं भली भाँति यज्ञ करूँगा।

५. ये ऋषि लोग नाना-रूप हैं। अङ्गिरा लोग गम्भीर कर्मवाले हैं। अङ्गिरा लोग अग्नि के पुत्र हैं। ये चारों ओर प्रादुर्भूत हुए हैं।

६. जो विविध रूप अङ्गिरा लोग अग्नि के द्वारा द्युलोक में चारों ओर प्रादुर्भूत हुए, उनमें से किसी ने नौ मास तक और किसी ने दस मास तक यज्ञ करने के पश्चात् गोधन प्राप्त किया। देवों के साथ अवस्थित अङ्गिरा लोगों में श्रेष्ठ अङ्गिरा मुझे धन देते हैं।

७. कर्मकर्त्ता अङ्गिरा लोगों ने इन्द्र की सहायता प्राप्त करके अश्वों और गौओं से युक्त गोष्ठ का उद्धार किया। उनके कान लम्बे-लम्बे हैं। उन्होंने एक सहस्र गायें मुझे देकर देवों के लिए यज्ञीय अश्व दिया।

८. जल से सींचे हुए बीज के समान कर्म-फल-युक्त सावर्णि मनु बढ़ें। मनु, इसी समय, सौ अश्व और सहस्र गायें अभी देने को प्रस्तुत हैं।

९. मनु के समान कोई भी दान देने में समर्थ नहीं है। स्वर्ग के उच्च प्रदेश के समान वे उन्नत भाव से अवस्थित हैं। सावर्णि मनु का दान, नदी के समान, सर्वत्र विस्तृत है।

१०. कल्याणकारक, गौओं से युक्त और दास के समान स्थित यदु और तुर्व नामक राजर्षि मनु के भोजन के लिए पशु देते हैं।

११. मनु सहस्र गौओं के दाता और मनुष्यों के नेता हैं। उनका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। मनु की दक्षिणा सूर्य के साथ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो। सावर्णि (सवर्ण-पुत्र) मनु की आयु देवता लोग बढ़ावें। सारे कर्म करनेवाले हम अन्न प्राप्त करें।

६३ सूक्त

(देवता पथ्या और स्वस्ति। ऋषि प्लुति के पुत्र गय। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. जो सब देवता दूर देश से आकर मनुष्यों के साथ मैत्री करते हैं, जो देवता, प्रसन्न किये जाकर, विवस्वान् के पुत्र मनु की सन्तानों को धारण करते हैं और जो देवता नहुषपुत्र ययाति राजा के यज्ञ में उपविष्ट होते हैं, वे धनादि-प्रदान के द्वारा हमें सम्मान-युक्त करें।

२. देवो, तुम्हारे सब नाम नमस्कार के योग्य, स्तुत्य और यज्ञ-योग्य हैं। जो देवता अदिति, जल व पृथिवी से उत्पन्न हुए हैं, वे तुम लोग मेरे आह्वान को सुनो।

३. सबको बनानेवाली पृथिवी जिन देवों के लिए मधुर दुग्ध बहाती हैं और जिनके लिए मेघवान् और अविनाशी आकाश अमृत को धारण करता है, उन सब अदिति-पुत्र देवों की स्तुति करो। इससे मंगल होगा। उनकी शक्ति प्रशंसनीय है। वे वृष्टि को ले आते हैं। उनका कार्य अत्यन्त सुन्दर है।

४. कर्मनिष्ठ मनुष्यों के बिना पलक गिराये दर्शक ने देवता लोगों के सेवन के लिए व्यापक अमृत्व प्राप्त किया है। उनका रथ ज्योतिर्मय है। उनके कार्य में विघ्न नहीं है, वे निष्पाप हैं; लोगों के मंगल के लिए वे उन्नत देश में रहते हैं।

५. अपने तेज से विराजमान और सुप्रवृद्ध जो देवता यज्ञ में आते हैं और जो अहिंसित होकर द्युलोक में रहते हैं, उन सब महान् देवों और अदिति का कल्याण के लिए नमस्कार और शोभन स्तुतियों से सेवन करो।

६. देवो, मुझे छोड़कर तुम लोगों की स्तुति कौन कर सकता है? ज्ञाता और सन्तानवाले देवो, जो यज्ञ पाप से बचाकर कल्याण देता है, मुझे छोड़कर उस यज्ञ का आयोजन कौन कर सकता है?

७. अग्नि को प्रज्वलित करके मनु ने, श्रद्धावान् चित्त से, सात होताओं के साथ, जिन देवों को उत्तम होमीय द्रव्य दिया है, वे सब देवता हमें अभय दें, सुखी करें, हमें सर्वत्र सुभीता दें और कल्याण दें।

८. उत्तम ज्ञानी और सबके ज्ञाता देवता स्थावर संसार और जङ्गम लोक के ईश्वर हैं। वैसे देवो, इस समय हमें अतीत और भविष्यत् पापों से बचाकर कल्याण दो।

९. हम सब यज्ञों में इन्द्र को बुलाते हैं। उन्हें बुलाने में आनन्द आता है। हम देवों को बुलाते हैं। वे पाप से छुड़ाते हैं। उनका कार्य सुन्दर है। कल्याण और धन पाने की इच्छा से हम अग्नि, मित्र, वरुण, भग, द्यावा-पृथिवी और मरुतों को बुलाते हैं।

१०. मंगल के लिए हम द्युलोक-रूपिणी नौका पर चढ़कर देवत्व प्राप्त करें। इस नौका पर चढ़ने से रक्षण का कोई भय नहीं रहता। यह विस्तृत हो। इसपर चढ़ने से सुखी हुआ जाता है। यह अक्षय है। इसका संगठन सुदृढ़ है। इसका आवरण सुन्दर है। यह निष्पाप और अविनश्वर है।

११. यजनीय देवो, रक्षा के लिए हमसे कहो। विनाशक दुर्गति से हमें बचाओ। सत्यरूप यज्ञ का आयोजन करके हम तुम्हें बुलाते हैं। सुनो, रक्षा करो और कल्याण दो।

१२. देवो, हमारे रोगों और सब प्रकार की पाप-बुद्धि को दूर करो। हमें दान-शून्य बुद्धि न हो। दुष्ट की दुर्बुद्धि को दूर करो। हमारे शत्रुओं को अत्यन्त दूर ले जाओ। हमें विशिष्ट सुख और कल्याण दो।

१३. अदिति के पुत्र देवो, तुम जिसे उत्तम मार्ग दिखाकर और सारे पापों से पार करके कल्याण में ले जाते हो, वैसा कोई भी व्यक्ति श्री-

वृद्धि-शाली होता है। उसका कोई अनिष्ट नहीं होता। वह धर्म्म-कर्म्म करता है। उसका वंश बढ़ता है।

१४. देवो, अन्न-प्राप्ति के लिए तुम लोग जिस रथ की रक्षा करते हो और मरुतो, युद्ध के समय संचित धन की प्राप्ति के लिए तुम लोग जिस रथ की रक्षा करते हो, इन्द्र, उसी प्रातःकाल युद्ध में जानेवाले रथ को प्राप्त (वा भजन) करना चाहिए। उसे कोई ध्वस्त नहीं कर सकता। उसी पर चढ़कर हम कल्याण-भाजन हों।

१५. सुपथ और मरुस्थल दोनों, स्थानों में हमारा कल्याण हो। जल और युद्ध, दोनों में हमारा कल्याण हो। उस सेना के बीच हमारा कल्याण हो, जहाँ अस्त्र-शस्त्र फेंके जाते हैं। पुत्रोत्पादक स्त्री-योनि में हमारा कल्याण हो (अर्थात् गर्भ न गिरने पावे)। देवो, धन-लाभ के लिए हमारा मंगल करो।

१६. जो पृथिवी मार्ग जाने में मंगलमयी है, जो सर्वश्रेष्ठ धन से परिपूर्ण है और जो वरणीय यज्ञ-स्थान में उपस्थित है, वह गृह और अरण्य, दोनों स्थानों में हमारी रक्षा करे। उसके रक्षक देवता लोग हैं। हम सुख से पृथिवी पर निवास करें।

१७. देवो और अदिति, प्राज्ञ प्लुति-पुत्र गय ने इस प्रकार से तुम लोगों की संवर्द्धना की। देवों की प्रसन्नता से मनुष्य प्रभुत्व पाया करते हैं। गय ने देवों की स्तुति की।

६४ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि गय। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. यज्ञ में देवता लोग हमारा स्तोत्र सुनें। देवों में से किस देवता का स्तोत्र, किस उपाय से, भली भाँति, हम बनावें? कौन हमारे ऊपर कृपा करेंगे? कौन सुख का विधान करेंगे? हमारे रक्षण के लिए कौन हमारे पास आवेंगे?

२. हमारे अन्तःकरण में निहित प्रज्ञा अग्निहोत्र आदि करने की इच्छा करती है। प्रज्ञा देवों की इच्छा करती है। हमारी अभिलाषायें देवों के पास आती हैं। उनके सिवा और कोई सुखदाता नहीं है। इन्द्रादि देवों में हमारी अभिलाषायें नियत हैं।

३. धनवान् के द्वारा पोषक और दूसरों के द्वारा अगम्य पूषादेवता की, स्तुति के द्वारा, पूजा करो। देवों में प्रदीप्त अग्नि की स्तुति करो। सूर्य, चन्द्र, यम, दिव्यलोकवासी त्रित, वायु, उषा, रात्रि और अश्विद्वय का स्तोत्र करो।

४. ज्ञानी अग्नि किस प्रकार अनेक स्तोताओंवाले होते हैं और किस स्तुति से सम्मान-युक्त होते हैं? शोभन स्तुति से बृहस्पति देवता बढ़ते हैं। अज एकपात् और अहिर्बुध्न्य नाम के देवता, हमारे आह्वान-काल में, सुरचित स्तवों को सुनें।

५. अविनश्वर पृथिवी, सूर्य के जन्म के समय तुम मित्र और वरुण राजाओं की सेवा करती हो। विशाल रथ पर चढ़कर सूर्य धीरे-धीरे जाते हैं। उनका जन्म नाना मूर्त्तियों में होता है। उनके आह्वान-कर्त्ता सप्तर्षि हैं।

६. इन्द्र के जो घोड़े स्वयं युद्ध के समय शत्रुओं से महान् धन ले आते हैं, जो यज्ञ के समय सदा ही सहस्र धन देते हैं और जो सुशिक्षित अश्वों के समान परिमित रूप से चरण-निक्षेप करते हैं, वे सब हमारा आह्वान सुनें। निमंत्रण ग्रहण करने में वे कभी विरत नहीं होते।

७. स्तोताओ, रथ-योजक वायु, बहुकर्मकर्त्ता इन्द्र और पूषा की स्तुति करके अपनी मैत्री स्वीकार कराओ। वे सब एकमना और अनन्य-मना होकर प्रभात-काल में यज्ञ में उपस्थित होते हैं।

८. सरस्वती, सरयू, सिन्धु आदि इक्कीस प्रकाण्ड नदियों, वनस्पतियों, पर्वतों, अग्नि, सोम-पालक कृशानु गन्धर्व, बाण-चालक गन्धर्वों, नक्षत्र, हविःपात्र रुद्र और रुद्रों में प्रधान रुद्र को, यज्ञ में, रक्षा के लिए, हम बुलाते हैं।

९. महती और तरङ्गशालिनी सरस्वती, सरयू, सिन्धु आदि, इक्कीस नदियाँ, रक्षण के लिए आवें। जल-प्रेरक, मातृ-भूत ये सब देवियाँ घृत और मधु के समान जल-दान करें।

१०. महद्दीप्ति देवमाता हमारा आह्वान सुनें। देवपिता त्वष्टा, अपने पुत्र देवों और देवपत्नियों के साथ, हमारा वचन सुनें। ऋभुक्षा, इन्द्र, वाज, रथपति भग और स्तुत्य मरुद्गण, स्तुति के लिए, हमारी रक्षा करें।

११. अन्न से भरे गृह के समान मरुत् लोग देखने में रमणीय हैं। रुद्र-पुत्र मरुतों की स्तुति कल्याण देनेवाली होती है। मनुष्यों में हम गोधन से धनी होकर यशस्वी हों। देवो, सदा हम अन्न से मिलें।

१२. मरुद्गण, इन्द्र, देववृन्द, वरुण और मित्र, जैसे गाय दूध से भरी रहती है, वैसे ही तुम लोगों से पाये हुए कर्म का फल सुसम्पन्न करो। हमारे स्तोत्र को सुनकर और रथ पर चढ़कर तुम लोग यज्ञ में आये हो।

१३. मरुतो, तुम लोगों ने जैसे प्रथम अनेक बार हमारे बन्धुत्व की रक्षा की है, वैसे ही इस समय भी करो। हम जिस स्थान पर सर्व-प्रथम वेदी बनाते हैं, वहाँ अदिति (वा पृथिवी) मनुष्यों के साथ हमें बन्धुत्व प्रदान करें।

१४. सबको बनानेवाले, महान् दीप्तिशील और यज्ञ-योग्य द्यावा-पृथिवी जन्म के साथ ही इन्द्रादि को प्राप्त करते हैं। द्यावापृथिवी नाना-विध रक्षणों से देवों और मनुष्यों की रक्षा करते हैं। पालक देवों के साथ मिलकर द्यावापृथिवी जल को क्षरित करते हैं।

१५. महानों की पालिका, यथेष्ट स्तुतिवाली, देवों का स्तोत्र करनेवाली और सोमाभिषव के कारण महान् कही जानेवाली वाणी (वा मंत्र) सारे स्वीकरणीय धन को व्याप्त करती है। स्तोता लोग स्तोत्रों से देवों को यज्ञकामी बनाते हैं।

१६. क्रान्तप्रज्ञ, बहुस्तुति-सम्पन्न, यज्ञ-शाला, धनेच्छु और मेधावी गय ऋषि ने प्रचुर धन-कामना करके इस प्रकार के उक्थों (मंत्र-विशेष) और स्तवों से देवों की स्तुति की।

१७. देवो और अदिति, ज्ञानी प्लुति-पुत्र गय ने इस प्रकार से तुम लोगों की संवर्द्धना की। देवों की प्रसन्नता से मनुष्य प्रभुत्व प्राप्त करते हैं। गय ने देवों की स्तुति की।

६५ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि वसुक्र-पुत्र वसुकर्ण। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषा, सरस्वती, आदित्य-गण, विष्णु, मरुत्, महान्, स्वर्ग, सोम, रुद्र, अदिति और ब्रह्मणस्पति मिलकर अपनी महिमा से अन्तरिक्ष को पूरित करते हैं।

२. इन्द्र और अग्नि शिष्टों के रक्षक हैं। ये युद्ध के समय इकट्ठे होकर अपनी शक्ति से शत्रुओं को भगा देते हैं तथा प्रकाण्ड आकाश को अपने तेज से भरते हैं। घृत-युक्त सोमरस उनके बल को बढ़ा देता है।

३. महत्तम, अविचल और यज्ञ-वर्द्धक देवता लोगों के लिए होने-वाले यज्ञ में मैं स्तुति करता हूँ। जो सुन्दर मेघों से जल बरसाते हैं, वे ही परम सखा देवता हमें धन देकर श्रेष्ठ करें।

४. उन्हीं देवों ने, अपनी शक्ति से, सबके नायक सूर्य, आकाशस्थ ग्रहों, नक्षत्रों, द्युलोक, भूलोक और पृथिवी को यथास्थान नियत कर रक्खा है। धनदाताओं के समान उत्तम दान करके ये देवता मनुष्यों को श्रेष्ठ बनाते हैं। ये मनुष्यों को धन देते हैं; इसीलिए इनकी स्तुति की जाती है।

५. मित्र और दाता वरुण को होमीय द्रव्य (हवि आदि) दो। ये दोनों राजाओं के भी राजा हैं; ये कभी असावधान नहीं होते, इनका धाम भली भाँति धृत होकर अत्यन्त प्रकाश कर रहा है। इनके पास, याचक के समान, द्यावापृथिवी अवस्थित हैं।

६. जो गाय स्वयं पवित्र स्थान यज्ञ में आती है, वह दूध देते हुए यज्ञ-

कर्म को सम्पन्न करती है। मेरी इच्छा है कि वह गाय दाता वरुण और अन्यान्य देवों को होमीय द्रव्य दे और मुझ देव-सेवक की रक्षा करे।

७. जो देवता अपने तेज से आकाश को परिपूर्ण करते हैं, अग्नि ही जिनकी जीभ है और जो यज्ञ की वृद्धि करते हैं, वे अपना-अपना स्थान समझ कर यज्ञ में बैठते हैं। वे आकाश को धारण करके अपने बल से जल को निकालते हैं और यजनीय हवि को अपने शरीर में रख लेते हैं।

८. द्यावापृथिवी सर्व-व्यापक हैं। ये सबके माता-पिता हैं। सबसे प्रथम उत्पन्न हैं। दोनों का स्थान एक ही है। दोनों ही यज्ञ-स्थान में निवास करते हैं। दोनों ही एकमना होकर उन पूजनीय वरुण को घृत-युक्त दूध देते हैं।

९. मेघ और वायु काम-वर्षक हैं। ये जलवाले हैं। इन्द्र, वायु, वरुण, मित्र, अदितिपुत्र देवों और अदिति को हम बुलाते हैं। जो देवता द्युलोक, भूलोक और जल में उत्पन्न हुए हैं, उनको भी बुलाते हैं।

१०. ऋभुओ, जो सोम, तुम्हारे मंगल के लिए देवों को बुलानेवाले त्वष्टा और वायु के पास जाते हैं और जो बृहस्पति तथा ज्ञानी और वृत्रघ्न इन्द्र के पास जाते हैं, उन्हीं इन्द्र को सन्तुष्ट करनेवाले सोम से हम धन माँगते हैं।

११. देवों ने अन्न, गौ, अश्व, वृक्ष, लता, पर्वत और पृथिवी को उत्पन्न किया है और सूर्य को आकाश में चढ़ाया है। उनका दान अतीव शोभन है; उन्होंने पृथिवी पर उत्तमोत्तम कार्य किये हैं।

१२. अश्विद्वय, तुमने भुज्यु को विपत्ति से बचाया है। बध्रिमती नामक रमणी को एक पिङ्गलवर्ण पुत्र दिया था, विमद ऋषि को सुन्दरी भार्या दी थी और विश्वक ऋषि को विष्णाप्व नामक पुत्र दिया था।

१३. आयुधवाली और मधुरा माध्यमिकी वाक्, आकाश-धारक अज एकपात्, सिन्धु, आकाशीय जल, विश्वदेव और अनेक कर्मों तथा ज्ञानों से संयुक्त सरस्वती मेरे वचनों को सुनें।

१४. अनेक कर्मों और ज्ञानों से युक्त, मनुष्य के यज्ञ में यजनीय, अमर, सत्यज्ञाता, हवि का ग्रहण करनेवाले, यज्ञ में मिलनेवाले और सब कुछ जाननेवाले इन्द्रादि देवता हमारी स्तुतियो और उत्तम तथा निवेदित अन्न को ग्रहण करें।

१५. वसिष्ठ-वंश में उत्पन्न इन ऋषि ने अमर देवों की स्तुति की। जो देवता सारे भुवनों में रहते हैं, वे आज हमें कीर्त्तिकर अन्न दें। देवो, तुम हमें कल्याण के साथ बचाओ।

६६ सूक्त

(देवता, ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत्।)

१. जो देवता प्रचुर अन्नवाले, आदित्य-तेज के कर्त्ता, प्रकृष्ट-ज्ञानी, सर्वधनी, इन्द्रवाले, अमर और यज्ञ से प्रवृद्ध हैं, उनको निर्विघ्न यज्ञ-समाप्ति के लिए मैं बुलाता हूँ।

२. इन्द्र के द्वारा कार्यों में प्रेरित और वरुण के द्वारा अनुमोदित होकर जिन्होंने ज्योतिर्मय सूर्य के गति-पथ को परिपूर्ण किया है, उन्हीं शत्रु-संहारक मरुतों के स्तोत्र का हम चिन्तन करते हैं। विद्वानों, इन्द्र-पुत्रों के यज्ञ का आयोजन करो।

३. वसुओं के साथ इन्द्र हमारे गृह की रक्षा करें। आदित्यों के साथ अदिति हमें सुख दें। रुद्र-पुत्र मरुतों के साथ रुद्रदेव हमें सुखी करें। पत्नी-सहित त्वष्टा हमारा सुख बढ़ावें।

४. अदिति, द्यावापृथिवी, महान् सत्य अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मरुत्, विशाल स्वर्ग, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और उत्तम दाता सूर्य को हम बुला रहे हैं। ये हमारी रक्षा करें।

५. ज्ञानी समुद्र, कर्म-निष्ठ वरुण, पूषा, महिमावाले विष्णु, वायु, अश्विद्वय, स्तोताओं को अन्न देनेवाले, ज्ञानी, पापियों के नाशक और अमर देवतागण तीन तल्लोंवाला गृह हमें दो।

६. यज्ञ अभिलषित फल दे। यज्ञीय देवता कामना पूरी करें। देवता, हवि आदि जुटानेवाले, यज्ञाधिष्ठात्री द्यावापृथिवी, पर्जन्य और स्तोता—सभी हमारी कामना पूरी करें।

७. अन्न पाने के लिए अभीष्टदाता अग्नि और सोम का मैं स्तोत्र करता हूँ। सारा संसार उन्हें दाता कहकर प्रशंसित करता है। उन दोनों को ही पुरोहित लोग यज्ञ में पूजा देते हैं। वे हमें तीन तल्लोंवाला घर दें।

८. जो कर्त्तव्य-पालन में सदा तत्पर हैं, जो बली हैं, जो यज्ञ को अलंकृत करते हैं, जिनकी दीप्ति महान् है, जो यज्ञ में आते हैं, जिन्हें अग्नि बुलाते हैं और जो सत्यपात्र हैं, उन्हीं देवों ने, वृत्र-युद्ध के समय में, वृष्टि-जल रचा।

९. अपने कार्य के द्वारा द्यावापृथिवी, जल, वनस्पति और यज्ञोपयोगी उत्तमोत्तम द्रव्य बनाकर देवों ने अपने तेज से आकाश और स्वर्ग को परिपूर्ण कर दिया। उन्होंने यज्ञ के साथ अपने को मिलाकर यज्ञ को अलंकृत किया।

१०. ऋभुओं का हाथ सुन्दर है; वे आकाश के धारक हैं। वायु और मेघ का शब्द महान् होता है। जल और वनस्पति हमारे स्तोत्र को बढ़ावें। धनदाता भग और अर्यमा मेरे यज्ञ में पधारें।

११. समुद्र, नदी, धूलिमय पृथिवी, आकाश, अज एकपात्, गर्जनशील मेघ और अहिर्बुध्न्य मेरा आह्वान सुनें।

१२. देव, हम मनु-सन्तान हैं। तुम्हें हम यज्ञ दे सकें। हमारे सदा से प्रचलित यज्ञ को तुम भली भाँति सम्पन्न करो। आदित्यो, रुद्रो और वसुओ, तुम्हारी दान-शक्ति शोभन है। स्तोत्रों को सुनें।

१३. जो दो व्यक्ति देवों को बुलानेवाले हैं और जो सर्वश्रेष्ठ पुरोहित हैं, उन अग्नि और आदित्य की हवि से सेवा करता हूँ। मैं निर्विघ्न यज्ञ-मार्ग को जा रहा हूँ। हमारे पास रहनेवाले क्षेत्रपति (देवता) और

अमर देवों की, आश्रय देने के लिए, हम प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना पूरी करने को वे सावधान रहते हैं।

१४. वसिष्ठ के समान ही वसिष्ठ के वंशजों ने स्तुति की। उन्होंने मङ्गल के लिए वसिष्ठ ऋषि के समान देव-पूजा की। देवो, अपने मित्र के समान आकर, सन्तुष्ट मन से अभीष्ट फल दो।

१५. वसिष्ठ-वंशोत्पन्न इन ऋषि ने अमर देवों की स्तुति की है। जो देवता अपने तेज से सारे भुवनों में रहते हैं, वे आज हमें कीर्तिकर अन्न दें। देवो, मङ्गल के लिए तुम हमारी रक्षा करो।

६७ सूक्त

(देवता बृहस्पति। ऋषि आङ्गिरस अयास्य। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हमारे पितरों (अङ्गिरा लोगों) ने सात छन्दोंवाले विशाल स्तोत्र की रचना की थी। उसकी सत्य से उत्पत्ति हुई। संसार के हितैषी अयास्य ऋषि ने इन्द्र की प्रशंसा करते हुए, एक पैर के स्तोत्र को बनाया।

२. अङ्गिरा लोगों ने यज्ञ के सुन्दर स्थान में जाना निश्चित किया। वे सत्यवादी हैं, उनके मन का भाव सरल है, वे स्वर्ग के पुत्र हैं, वे महाबली हैं और बुद्धिमानों के समान आचरण करते हैं।

३. हंसों के समान ही बृहस्पति के सहायकों ने कोलाहल करना प्रारम्भ किया। उनकी सहायता से बृहस्पति ने प्रस्तरमय द्वार को खोल दिया। भीतर रोकी गई गायें चिल्लाने लगीं। वे उत्तम रूप से स्तोत्र और उच्चैः स्वर से गान करने लगे।

४. गायें नीचे एक एक द्वार के द्वारा और ऊपर दो द्वारों के द्वारा अन्धकार वा अधर्म के आलय-स्वरूप उस गुहा में छिपाई गई थीं। अन्धकार के बीच प्रकाश ले जाने की इच्छा से बृहस्पति ने तीनों द्वारों को खोलकर गायों को निकाल दिया।

५. रात को चुपचाप सोकर पुरी के पिछले भाग को तोड़ा और समुद्र-तुल्य उस गुहा के तीनों द्वारों को खोल दिया (अथवा उषा, सूर्य

और गाय को बाहर कर दिया)। प्रातःकाल उन्होंने पूजनीय सूर्य और गाय को एक साथ देखा। उस समय वह मेघ के समान घोर-हुङ्कार करते थे।

६. जिस बल ने गाय को रोका था, उसे इन्द्र (वा बृहस्पति) ने अपनी हुङ्कार से ही छिन्न कर डाला—मानो अस्त्र से ही उसे मारा है। मरुतों के साथ मिलने की इच्छा से उन्होंने पाप को रुलाया और गायों को लिया।

७. अपने सत्यवादी, दीप्तिमान् और धनदाता सहायकों के साथ उन्होंने गायों को रोकनेवाले बल को विदीर्ण किया। वर्षक, जल लानेवाले और प्रदीप्त-गमन मरुतों के साथ उन सामस्तोत्र के अधिपति ने गोधन को अधिकृत किया।

८. मरुतों ने, सत्य-चेता होकर, अपने कर्मों से गायों को प्राप्त करते हुए, बृहस्पति को गोपति बनाने की इच्छा की। परस्पर सहायक अपने मरुतों के साथ बृहस्पति ने गायों को बाहर किया।

९. अन्तरिक्ष में सिंह के समान शब्द करनेवाले, कामों के वर्षक और विजयी बृहस्पति को बढ़ानेवाले हम मरुत् वीरों के संग्राम में मङ्गलमयी स्तुतियों से उनका स्तोत्र करते हैं।

१०. जिस समय वह बृहस्पति नाना रूप अन्न का सेवन करते हैं और जिस समय अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं, उस समय वर्षक बृहस्पति की, नाना दिशाओं में ज्योति धारण करनेवाले देवता, मुँह से, स्तुति करते हैं।

११. देवो, अन्न-लाभ के लिए मेरी स्तुति को यथार्थ (सफल) करो। अपने आश्रय से मेरी रक्षा करो। सारे शत्रु नष्ट हों। विश्व को प्रसन्न करनेवाले द्यावापृथिवी, हमारे वचन को सुनो।

१२. ईश्वर (स्वामी) और महिमान्वित बृहस्पति ने महान् जलवाले मेघ का मस्तक काट दिया। उन्होंने जल को रोकनेवाले शत्रु को मारा।

गङ्गा आदि नदियों को समुद्र में मिलाया। द्यावापृथिवी, देवों के साथ हमारी रक्षा करो।

६८ सूक्त

(देवता, ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत्।)

१. जैसे जल-सेचक कृषक शस्य-क्षेत्र से पक्षियों को उड़ाते समय शब्द करते हैं, जैसे मेघों का गर्जन होता है अथवा जैसे पर्वत से धक्का लगने पर वा मेघ से गिरने पर तरङ्गें शब्द करती हैं, वैसे ही बृहस्पति की प्रशंसा-ध्वनि होने लगी।

२. अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति गुहा में रहनेवाली गायों के पास सूर्य का आलोक ले आये। भग देवता के समान उनका तेज व्यापी हुआ। जैसे मित्र दम्पति (स्त्री और पुरुष) का मिलन करा देते हैं, वैसे ही उन्होंने गायों को लोगों के साथ मिला दिया। बृहस्पति, जैसे युद्ध में घोड़े को दौड़ाया जाता है, वैसे ही गायों को दौड़ाओ।

३. जैसे धान की कोठी (कुशूल) से जौ (यव) बाहर किया जाता है, वैसे ही बृहस्पति ने गायों को पर्वत से शीघ्र बाहर किया। गायें मङ्गल-रूप दुग्ध देनेवाली, सतत-गमन-शीला, स्पृहणीया, वर्ण-मनोहरा और प्रशंसनीय मूर्त्ति थीं।

४. गायों का उद्धार करके बृहस्पति ने सत्कर्म के आकर-स्थान मधु-बिन्दु को सिक्त किया अर्थात् यज्ञानुष्ठान की सुविधा कर दी। बृहस्पति ऐसे दीप्ति-युक्त हुए, मानो आकाश से सूर्य उल्का को फेंक रहे हों। उन्होंने प्रस्तर के आच्छादन (ढकने) से गायों का उद्धार करके उनके खुरों से धरातल को वैसे ही विदीर्ण कराया, जैसे मेघ, वृष्टि के समय, पृथिवी को विदीर्ण करते हैं।

५. जैसे वायु जल से शैवाल को हटाता है, वैसे ही बृहस्पति ने आकाश से अन्धकार को दूर किया। जैसे वायु मेघों को फैलाता है, वैसे ही बृहस्पति ने विचार करके "बल" के गोपन-स्थान से गायों को निकाला।

६. जिस समय हिंसक "बल" का अस्त्र, बृहस्पति के अग्नितुल्य प्रतप्त और उज्ज्वल अस्त्रों के द्वारा, तोड़ दिया गया, उस समय बृहस्पति ने गोधन पर अधिकार कर लिया। जैसे दाँतों के द्वारा मुँह में डाले गये पदार्थ का भक्षण जीभ करती है, वैसे ही पर्वत में गायें चुरानेवाले पणियों के मारने पर बृहस्पति ने गायों को प्राप्त किया।

७. जिस समय उस गुहा में गायें शब्द करती थीं, उसी समय बृहस्पति ने समझा कि, उसमें गायें बन्द हैं। जैसे पक्षी अंडा फोड़कर बच्चे को निकालता है, वैसे ही वह भी पर्वत से गायों को निकाल ले आये।

८. जैसे थोड़े जल में मत्स्य (व्याकुल) रहते हैं, वैसे ही बृहस्पति ने पर्वत के बीच बँधी और मधुर के समान अभीष्ट गायों को देखा। जैसे वृक्ष से सोमपात्र को निकाला जाता है, वैसे ही बृहस्पति ने पर्वत से गायों को निकाला।

९. बृहस्पति ने गायों को देखने के लिए उषा को प्राप्त किया। उन्होंने सूर्य और अग्नि को पाकर उत्तम तेज से अन्धकार को नष्ट किया। गायों से घिरे हुए "बल" के पर्वत से उन्होंने गायों का वैसे ही उद्धार किया, जैसे अस्थि से मज्जा बाहर की जाती है।

१०. जैसे हिम पद्म-पात्रों का हरण करता है, वैसे ही "बल" की सारी गायें बृहस्पति के द्वारा अपहृत हुईं। ऐसा कर्म दूसरे के लिए अकर्त्तव्य और अननुकरणीय है। इस कार्य से सूर्य और चन्द्रमा उदित होने लगे।

११. पालक देवों ने द्युलोक को नक्षत्रों से वैसे ही अलंकृत किया, जैसे श्यामवर्ण घोड़े को सुवर्णभूषणों से विभूषित किया जाता है। उन्होंने अन्धकार को रात्रि के लिए रक्खा और ज्योति दिन के लिए। पर्वत को फाड़कर बृहस्पति ने गोधन को प्राप्त किया।

१२. जिन बृहस्पति ने अनेक ऋचाओं को कहा है और जो अन्तरिक्ष-वासी हो गये हैं। उनको हमने नमस्कार किया। बृहस्पति हमें गाय, घोड़ा, सन्तान, भृत्य और अन्न दें।

६९ सूक्त

(६ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि बध्र्यश्व-पुत्र सुमित्र। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. बध्र्यश्व ने जिन अग्नि को स्थापित किया था, उनकी मूर्त्ति दर्शनीय हो, उनकी प्रसन्नता मङ्गलमयी हो और उनका यज्ञागमन शोभन हो। जिस समय हम सुमित्र लोग अग्नि को स्थापित करते हैं, उस समय अग्नि घृताहुति पाकर उद्दीप्त होते हैं और उनकी हम स्तुति करते हैं।

२. बध्र्यश्व के अग्नि घृत के द्वारा ही बढ़ें, घृत ही उनका आहार हो और घृत ही उन्हें स्निग्ध करे वा पुष्ट करे। घृताहुति पाकर अग्नि अत्यन्त विस्तृत होते हैं। घी देने पर अग्नि सूर्य के समान प्रदीप्त हो जाते हैं।

३. जैसे मनु तुम्हारी मूर्त्ति (किरणें) को प्रदीप्त करते हैं, वैसे ही मैं भी तुम्हें प्रदीप्त करता हूँ। यह रश्मिसंघ नया है। तुम धनी होकर प्रदीप्त होओ। हमारे स्तोत्र को ग्रहण करो, शत्रु-सेना को विदीर्ण करो और यहाँ अन्न स्थापित करो।

४. बध्र्यश्व ने प्रथम तुम्हें प्रदीप्त किया था। तुम हमारे गृह और देह की रक्षा करो। तुमने यह जो कुछ दिया है, सबकी रक्षा करो।

५. बध्र्यश्व के अग्नि, प्रदीप्त होओ। रक्षक बनो। लोगों की हिंसा करनेवाला तुम्हें पराजित न करने पावे। वीर के समान शत्रु-धर्षक और शत्रु-नाशक बनो। बध्र्यश्व के अग्नि के नामों को मैं (सुमित्र) कहता हूँ।

६. अग्नि, पर्वत पर उत्पन्न जो धन है, उसे तुमने दासों से जीतकर आर्यों को दिया है। तुम दुर्द्धर्ष वीर के समान शत्रुओं को मारो। जो युद्ध करने आते हैं, उनसे भिड़ो।

७. ये अग्नि दीर्घ-तन्तु हैं (इनका वंश विस्तृत है)। ये प्रधान दाता हैं। ये सहस्र स्थानों का आच्छादन करते हैं। शतसंख्यक मार्गों से जाते

हैं। ये प्रदीप्तों में महान् प्रदीप्त हैं। प्रधान पुरोहित लोग इन्हें अलंकृत करते हैं अग्नि, देव-भक्त सुमित्र-वंशीयों के गृह में प्रदीप्त होओ।

८. ज्ञानी अग्नि, तुम्हारी गाय को बहुत सरलता से दूहा जाता है। उसके दोहन में कोई विघ्न-बाधा नहीं है। वह सावधान होकर अमृत-रूप दूध देती है। देव-भक्त सुमित्रवंशीय प्रधान व्यक्ति, दक्षिणा-सम्पन्न होकर, तुम्हें प्रज्वलित करते हैं।

९. बध्र्यश्व के अग्नि, अमर देवता तुम्हारी महिमा गाते हैं। जिस समय मनुष्य लोग तुम्हारी महिमा जानने के लिए गये, उस समय तुमने सबके नेता और वर्द्धित देवों के साथ कर्म विघ्नकारकों को जीत डाला।

१०. अग्नि, जैसे पिता पुत्र को गोद में लेकर उसका लालन-पालन करता है, वैसे ही मेरे पिता ने तुम्हारी सेवा की है। युवक अग्नि, तुमने मेरे पिता से समिधा प्राप्त करके बाधक शत्रुओं को मारा था।

११. सोमरस प्रस्तुत करनेवालों के साथ बध्र्यश्व के अग्नि शत्रुओं को सदा से जीतते आते हैं। नाना तेजोंवाले अग्नि, तुमने ध्यान देकर, हिंसक को जलाया है। जो हिंसक अधिक बढ़ गये थे, उन्हें अग्नि ने मार डाला।

१२. बध्र्यश्व के अग्नि शत्रु-हन्ता हैं। ये सदा से प्रज्वलित हैं। ये नमस्कार के योग्य हैं। बध्र्यश्व के अग्नि, हमारे विजातीय शत्रुओं और विजातीय हिंसकों को हराओ।

७० सूक्त

(देवता आप्री। ऋषि सुमित्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि, उत्तरवेदी पर की गई मेरी समिधा को ग्रहण करो और घृतवाली स्रुक् की अभिलाषा करो। सुप्रज्ञ अग्नि, पृथिवी के उन्नत प्रदेश पर सुदिन के लिए देवयज्ञ से, ज्वालाओं के साथ, ऊपर उठो।

२. देवों के अग्रगामी और मनुष्यों के द्वारा प्रशंसनीय अग्नि नाना वर्णोंवाले अश्वों के साथ इस यज्ञ में पधारें। अत्यन्त योग्य और देवों में मुख्य अग्नि हवि ले जायँ।

३. हविर्दाता यजमान सनातन अग्नि की, दूत-कर्म के लिए, स्तुति करते हैं। वाहक अश्वों और सुन्दर रथ के साथ इन्द्रादि देवों को यज्ञ में ले आओ। होता होकर तुम इस यज्ञ में बैठो।

४. देवों के द्वारा सेवित और टेढ़ा कुश विस्तृत हो—अत्यन्त लम्बा हो। हमारा कुश सुरभि हो। बर्हि नामक अग्नि, प्रसन्नचित्त से हवि चाहनेवाले इन्द्रादि देवों का पूजन करो।

५. द्वार-देवियो, आकाश के उन्नत स्थान को छुओ वा उन्नत होओ। पृथिवी के समान विस्तृत होओ। देवाभिलाषी और रथकामी होकर तुम लोग अपनी महिमा से देवों के द्वारा अधिष्ठित और विहार-साधन रथ को धारण करो।

६. प्रकाशमाना, द्युलोक की पुत्री और शोभन-रूपा उषा तथा रात्रि यज्ञ-स्थान में विराजें। अभिलाषिणी और शोभन-धन देवियो, तुम्हारे विस्तृत और समीपस्थ स्थान में हवि की इच्छावाले देवता बैठें।

७. जिस समय सोमाभिषव के लिए पत्थर उठाया जाता है, जिस समय महान् अग्नि समिद्ध होते हैं और जिस समय देवों के प्रिय धाम (हविर्धारक यज्ञ-पात्र) यज्ञ-स्थान में लाये जाते हैं, उस समय, हे पुरोहित, ऋत्विक् और विद्वान् दो पुरुषो, इस यज्ञ में धन दो।

८. हे इड़ा आदि तीन देवियो, इस उन्नत कुश पर बैठो। तुम्हारे लिए इसे हमने बिछाया है। इड़ा, प्रकाशमाना सरस्वती और दीप्त पद से युक्त भारती ने जैसे मनु के यज्ञ में हवि का सेवन किया था, वैसे ही हमारे यज्ञ में भली भाँति रक्खे हुए हवि का सेवन करो।

९. त्वष्टा देव, तुम मङ्गलमय रूप प्राप्त कर चुके हो। तुम अङ्गिरा लोगों के सखा होओ। हे धनदाता, तुम सुन्दर धनवाले हो। हवि की इच्छा करके तुम देवों का भाग जानकर उन्हें अन्न दो।

१०. वनस्पति से बने यूपकाष्ठ, तुम जानकार हो। तुम रज्जु के द्वारा बाँधे जाकर देवों को अन्न दो। वनस्पतिदेव हवि का स्वाद लें और

हमारे दिये हुए हवि को देवों को दें। मेरे आह्वान की रक्षा द्यावापृथिवी करें।

११. अग्नि, हमारे यज्ञ के लिए द्युलोक (स्वर्ग) और अन्तरिक्ष (आकाश) से इन्द्र, वरुण और मित्र को ले आओ। यजनीय सब देवता कुश पर बैठें। अमर देवता स्वाहा शब्द से आनन्दित हों।

७१ सूक्त

(देवता ब्रह्मज्ञान। ऋषि बृहस्पति। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. बृहस्पति (स्वात्मन्), बालक प्रथम पदार्थों का नाम भर ("तात" आदि) रखते हैं; यह उनकी भाषा-शिक्षा का प्रथम सोपान है। इनका जो उत्कृष्ट और निर्दोष ज्ञान (वेदार्थज्ञान) गोपनीय है, वह सरस्वती के प्रेम से प्रकट होता है।

२. जैसे सूप से सत्तू को परिष्कृत किया जाता है, वैसे ही बुद्धिमान् लोग बुद्धि-बल से परिष्कृत भाषा को प्रस्तुत करते हैं। उस समय विद्वान् लोग अपने अभ्युदय को जानते हैं। इनके वचन में मङ्गलमयी लक्ष्मी निवास करती हैं।

३. बुद्धिमान् लोग यज्ञ के द्वारा वचन (भाषा) का मार्ग पाते हैं। ऋषियों के अन्तःकरण में जो वाक् (भाषा) थी, उसको उन्होंने प्राप्त किया। उस वाणी (भाषा) को लेकर उन्होंने सारे मनुष्यों को पढ़ाया। सातों छन्द इसी भाषा में स्तुति करते हैं।

४. कोई-कोई समझकर वा देखकर भी भाषा को नहीं समझते वा देखते; कोई-कोई उसे सुनकर भी नहीं सुनते। किसी-किसी के पास वाग्देवी स्वयं वैसे ही प्रकट होती हैं, जैसे संभोगाभिलाषी भार्या, सुन्दर वस्त्र धारण करके, अपने स्वामी के पास अपने शरीर को प्रकाश करती है।

५. विद्वन्मण्डली में किसी-किसी की यह प्रतिष्ठा है कि, वह उत्तम-भावग्राही है और उसके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता (ऐसे लोगों

के कारण ही वेदार्थ ज्ञान होता है)। कोई-कोई असार-वाक्य का अभ्यास करते हैं। वे वास्तविक धेनु नहीं हैं—काल्पनिक, माया-मात्र धेनु हैं।

६. जो विद्वान् मित्र को छोड़ देता है, उसकी वाणी से कोई फल नहीं है। वह जो कुछ सुनता है, व्यर्थ ही सुनता है। वह सत्कर्म का मार्ग नहीं जान सकता।

७. जिन्हें आँखें हैं, कान हैं, ऐसे सखा (समान-ज्ञानी) मन के भाव को (ज्ञान को) प्रकाश करने में असाधारण होते हैं। कोई-कोई मुख तक जलवाले पुष्कर और कोई-कोई कटिपर्यन्त जलवाले तड़ाग के समान होते हैं कोई-कोई स्नान करने के उपयुक्त गम्भीर ह्रद् के समान होते हैं।

८. जिस समय अनेक समान-ज्ञानी ब्राह्मण हृदय से मनोगम्य वेदार्थों के गुण-दोष-परीक्षण के लिए एकत्र होते हैं, उस समय किसी-किसी व्यक्ति को कुछ ज्ञान नहीं होता। कोई-कोई स्तोत्रज्ञ (ब्राह्मण) वेदार्थ-ज्ञाता होकर विचरण करते हैं।

९. जो व्यक्ति इस लोक में वेदज्ञ ब्राह्मणों के और परलोकीय देवों के साथ (यज्ञादि में) कर्म नहीं करते, जो न तो स्तोता (ऋत्विक्) हैं, न सोम-यज्ञ-कर्त्ता हैं, वे पापाश्रित लौकिक भाषा की शिक्षा के द्वारा, मूर्ख व्यक्ति के समान, लाङ्गल-चालक (हल जोतनेवाले) बनकर कृषि-रूप बाना बुनते हैं।

१०. यश (सोम) मित्र के समान कार्य करता है, यह सभा में प्राधान्य प्रदान करता है। इसे प्राप्त कर सब प्रसन्न होते हैं; क्योंकि यश के द्वारा दुर्नाम दूर होता है, अन्न-प्राप्ति होती है, बल मिलता है, नाना प्रकार से उपकार होता है।

११. एक जन अनेक ऋचाओं का स्तव करते हुए यज्ञानुष्ठान में सहायता करते हैं, दूसरे गायत्री छन्द में साम-गान करते हैं। ब्रह्मा नामक जो पुरोहित हैं, वे ज्ञात-विद्या (प्रायश्चित्त आदि) की व्याख्या करते हैं। अध्वर्यु पुरोहित यज्ञ के विभिन्न कार्य करते हैं।

द्वितीय अध्याय समाप्त।

७२ सूक्त

(तृतीय अध्याय। देवता देव। ऋषि लोकनामा के पुत्र बृहस्पति। छन्द अनुष्टुप्।)

१. हम देवों वा आदित्यों के जन्म को स्पष्ट रूप से कहते हैं। आगे आनेवाले युग में देव-संघ, यज्ञानुष्ठान होने पर, स्तोता को देखेगा।

२. आदि सृष्टि में ब्रह्मणस्पति (वा अदिति) ने कर्मकार के समान देवों को उत्पन्न किया। असत् वा अविद्यमान (नाम-रूप-विहीन) से सत् (नाम-रूप आदि) उत्पन्न हुआ।

३. देवोत्पत्ति के पूर्व समय में असत् से सत् उत्पन्न हुआ। इसके अनन्तर दिशायें उत्पन्न हुईं और दिशाओं के अनन्तर वृक्ष उत्पन्न हुए।

४. वृक्षों से पृथ्वी उत्पन्न हुई और पृथ्वी से दिशायें उत्पन्न हुईं। अदिति से दक्ष उत्पन्न हुए और दक्ष से अदिति।

५. दक्ष, तुम्हारी पुत्री अदिति ने देवों को जन्म दिया। देवता स्तुत्य और अमर हैं।

६. देवता लोग इस सलिल में रहकर महोत्साह प्रकट करने लगे। वे मानो नाचने लगे। इससे दुःसह धूलि उठी।

७. मेघों के समान देवों ने सारे संसार को ढक लिया। आकाश में सूर्य निगूढ़ थे। देवों ने उन्हें प्रकाशित किया।

८. अदिति के आठ पुत्र (मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान और आदित्य) हुए, जिनमें से सात को लेकर वह देवलोक में गईं और आठवें सूर्य को आकाश में छोड़ दिया।

९. उत्तम युग में सात पुत्रों को लेकर अदिति चली गईं और जन्म तथा मृत्यु के लिए सूर्य को आकाश में रख दिया।

७२ सूक्त

(देवता मरुत्। ऋषि शक्ति-पुत्र गौरवीति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, जिस समय गर्भ-धारयित्री इन्द्र-माता ने इन्द्र को जन्म दिया, उस समय मरुतों ने महानुभाव इन्द्र को यह कहकर प्रशंसित किया कि, तुम बल और शत्रु-विनाश के लिए जन्मे हो; तुम वीर, स्तुत्य, ओजस्वी और अतीव अभिमानी हो।

२. गमनशील मरुतों के साथ वोहक इन्द्र के पास सेना बैठी हुई है। मरुतों ने प्रचुर स्तोत्र के साथ इन्द्र को वर्द्धित किया। जैसे गायें विशाल गोष्ठ के बीच आच्छादित रहती हैं और आच्छादन के दूर होते ही बाहर निकलती हैं, वैसे गर्भ अर्थात् वृष्टि-जल व्यापक अन्धकार के बीच से बाहर निकला।

३. इन्द्र, तुम्हारे चरण महान् हैं। जिस समय तुम जाते हो, उस समय ऋभु लोग वर्द्धित होते हैं। जो देवता हैं, सो सब वर्द्धित होते हैं। इन्द्र तुम एक सहस्र वृक को मुख में धारण करते हो। अश्विद्वय को फिरा सकते हो।

४. इन्द्र युद्ध की शीघ्रता होने पर भी तुम यज्ञ में जाते हो। उस समय तुम अश्विद्वय के साथ मैत्री करते हो। हमारे लिए तुम सहस्र धनों को धारण करते हो। अश्विद्वय भी हमें धन देते हैं।

५. यज्ञ में आह्लादित होकर इन्द्र गतिशील मरुतों के साथ यजमान को धन देते हैं। इन्द्र ने यजमान के लिए दस्यु की माया को विनष्ट किया उन्होंने वृष्टि बरसाई और अन्धकार को विनष्ट किया।

६. इन्द्र सब शत्रुओं को समान रूप से नष्ट करते हैं। जैसे इन्होंने उषा के शकट को नष्ट किया, वैसे ही शत्रु को विध्वस्त किया। दीप्त, महान्, वृत्र-वधाभिलाषी और मित्र मरुतों के इन्द्र वृत्र-वध के लिए गये। इन्द्र, शत्रुओं के सुन्दर-सुन्दर शरीरों को तुमने विध्वस्त किया।

७. इन्द्र, तुम्हारा धन चाहनेवाले नमुचि को तुमने मार दिया। विघातक नमुचि नामक असुर को, मनु (ऋषि) के पास, तुमने माया-शून्य कर दिया। देवों के बीच मनु (सामान्यतया मनुष्य-मात्र) के लिए तुमने पथ प्रस्तुत कर दिये हैं। वे पथ देव-लोक में जाने के लिए सरल हैं।

८. इन्द्र, तुम इसे (संसार को) जल वा तेज से परिपूर्ण करते हो। इन्द्र, तुम सबके स्वामी हो। तुम हाथ में वज्र धारण करते हो। सारे देवता बलधारी तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुमने मेघों का मुँह नीचे कर दिया है।

९. जल के बीच इन्द्र का चक्र स्थापित है। वह इन्द्र के लिए मधु का छेदन कर दें। इन्द्र, तुमने तृण-लता आदि में जो दूध वा जल रक्खा है, वह गायों के स्तन से अतीव शुभ्र मूर्ति में निकलता है।

१०. कुछ लोग कहते हैं कि, इन्द्र की उत्पत्ति अश्व वा आदित्य से हुई है। परन्तु मैं जानता हूँ कि, इन्द्र की उत्पत्ति बल से हुई है। इन्द्र क्रोध से उत्पन्न होकर शत्रुओं की अट्टालिकाओं के ऊपर चढ़ गये। इन्द्र कहाँ से उत्पन्न हुए हैं, यह बात वही जानते हैं।

११. गमनशील और भली भाँति गिरनेवाली आदित्य किरणें इन्द्र के पास गईं—यज्ञाभिलाषी ऋषि ही पक्षी हैं, जिनकी प्रार्थना इन्द्र से थी। इन्द्र, अन्धकार को दूर करो, नेत्र को आलोक से भर दो। हम पाश से बद्ध हैं, हमें उससे छुड़ाओ।

७४ सूक्त

(देवता, ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत्।)

१. धनदान के लिए इन्द्र यज्ञ के द्वारा आकृष्ट किये जाते हैं। वे देवों और मनुष्यों के द्वारा आकृष्ट होते हैं। युद्ध में धन का उपार्जन करनेवाले घोड़े उन्हें आकृष्ट कर रहे हैं। जो यशस्वी व्यक्ति शत्रु-संहार करते हैं, वे इन्द्र को आकृष्ट कर रहे हैं।

२. अंगिरा लोगों के आह्वान-निनाद ने आकाश को पूर्ण कर दिया। इन्द्र को और अन्न को चाहनेवाले देवों ने अनुष्ठाताओं को गायें दिखाने के लिए पृथिवी को प्राप्त किया। पृथिवी पर पणियों के द्वारा अपहृत गायों को देखते हुए देवों ने अपने हित के लिए, आकाश में आदित्य के समान, अपने तेज से प्रकाश किया।

३. यह अमर देवों की स्तुति की जाती है। वे यज्ञ में नाना उत्तमोत्तम वस्तुएँ देते हैं। वे हमारी स्तुति और यज्ञ को सिद्ध करते हुए असाधारण धन दें।

४. इन्द्र, जो लोग शत्रुओं से गोधन ले लेना चाहते हैं, वे तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। यह विशाल पृथिवी एक बार उत्पन्न हुई है; परन्तु अनेक सन्तानें (शस्य आदि) उत्पन्न करती हैं। ये सहस्र धाराओं में सम्पत्ति-रूप दुग्ध का दान करती हैं। जो लोग इस पृथ्वी-धेनु को दूहना चाहते हैं, वे भी इन्द्र की ही स्तुति करते हैं।

५. कर्मनिष्ठ पुरोहितो, कभी भी अवनत न होनेवाले, शत्रुओं का दहन करनेवाले, महान् धनी, सुन्दर स्तुतिवाले और मनुष्य-हित के लिए वज्र धारण करनेवाले इन्द्र की शरण में रक्षा के लिए जाओ।

६. शत्रु-पुरी ध्वंसक इन्द्र ने जिस समय अत्यन्त प्रवृद्ध शत्रु का संहार किया, उस समय मृत्रघ्न होकर उन्होंने जल से पृथिवी को पूर्ण किया। उस समय सबने समझा कि, इन्द्र अत्यन्त बली और क्षमताशाली हैं। हम जो कुछ चाहते हैं, इन्द्र सबको पूर्ण करते हैं।

७५ सूक्त

(देवता नदी। ऋषि प्रियमेध-पुत्र सिन्धुक्षित्। छन्द जगती।)

१. जल, सेवक यजमान के गृह में तुम्हारी उत्तम महिमा को मैं कहा करता हूँ। नदियाँ, सात-सात करके तीन प्रकार (पृथिवी, आकाश और द्युलोक) से चलीं। सबसे अधिक बहनेवाली सिन्धु ही है।

२. सिन्धु, जिस समय तुम शस्यशाली प्रदेश की ओर चली, उस

समय वरुण ने तुम्हारे गमन के लिए विस्तृत पथ बना दिया। तुम भूमि के ऊपर उत्तम मार्ग से जाती हो। तुम सब नदियों के ऊपर विराजमान हो।

३. पृथिवी से सिन्धु का शब्द उठकर आकाश को घहरा देता है। यह महावेग और दीप्त लहरों के साथ जाती है। जिस समय सिन्धु वृषभ के समान प्रबल शब्द करती हुई आती है, उस समय विदित होता है कि, आकाश (वा मेघ) से घोर गर्जन-तर्जन के साथ वृष्टि हो रही है।

४. जैसे शिशु के पास माता जाती है और दुग्धवती गायें बछड़े के पास जाती हैं, वैसे ही शब्द करती हुई अन्य नदियाँ सिन्धु के पास जाती हैं। जैसे युद्ध-कर्त्ता राजा सेना ले जाता है, वैसे ही तुम अपनी सहगामिनी दो नदियों को लेकर आगे-आगे जाती हो।

५. हे गंगा यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब) के साथ मरुद्वृधा (चिनाब और झेलम के बीच की वा चिनाब की पश्चिमवाली मरुद्वर्द्धन नाम की सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), सुषोमा (सोहान) और आर्जीकीया (ब्यास), तुम लोग मेरे इस स्तोत्र का भाग कर लो और सुनो।

६. सिन्धु, पहले तुम तृष्टामा (सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी) के साथ चली। पुनः सुसर्त्तु, रसा और श्वेत्या (ये तीनों सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियाँ हैं) से मिलीं। तुम क्रमु (कुर्रम) और गोमती (गोमल) को, कुभा ("काबुल" नदी) और मेहत्नू (सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी) से मिलाती हो। इन नदियों के साथ तुम बहती हो।

७. सिन्धु नदी सरल-गामिनी, श्वेतवर्णा और प्रदीप्ता है। सिन्धु का वेगशाली जल चारों ओर जाता है। नदियों में से सबसे वेगवती सिन्धु ही है। यह घोड़ी के समान अद्भुत है और मोटी स्त्री के समान दर्शनीया है।

८. सिन्धु शोभन अश्वों, सुन्दर रथ, सुन्दर वस्त्र, सुवर्णाभरण, सुन्दर सज्जा, अन्न और पशुलोमवाली है। सिन्धु नित्यतरुणी और

तिनकों (सीलमा) वाली है। सौभाग्यवती सिन्धु मधुवर्द्धक पुष्पों से आच्छादित है।

९. सिन्धु सुखकर और अश्ववाले रथ को जोतती है। उस रथ से वह अन्न दे। यज्ञ में सिन्धु के रथ की महिमा गाई जाती है। सिन्धु का रथ अहिंसित कीर्तिकर और महान् है।

७६ सूक्त

(देवता सोमाभिषववाला प्रस्तर। ऋषि इरावान् के पुत्र जरत्कर्ण। छन्द जगती।)

१. पत्थरो, अन्नवाली उषा के आते ही तुम्हें मैं प्रस्तुत करता हूँ। तुम सोम देकर इन्द्र, मरुत् और द्यावापृथिवी को अनुकूल करो। ये द्यावापृथिवी एक साथ हम लोगों में से प्रत्येक के गृह में सेवा ग्रहण कर गृहों को धन से पूर्ण कर दें।

२. हाथों से पकड़े जाने पर अभिषव-प्रस्तर घोड़े के समान हो जाता है। श्रेष्ठ सोम को तुम प्रस्तुत करो। प्रस्तर से सोमाभिषव करनेवाला यजमान शत्रुओं को हरानेवाला बल प्राप्त करता है। यह अश्व देता है, जिससे यथेष्ट धन मिलता है।

३. जैसे प्राचीन समय में मनु के यज्ञ में सोमरस आया था, वैसे ही इस प्रस्तर के द्वारा निष्पीड़ित सोम जल में प्रवेश करे। गायों को जल में स्नान कराने, गृह-निर्माण-कार्य और घोड़ों को स्नान कराने के समय, यज्ञ-काल में, इस अविनश्वर सोमरस का आश्रय लिया जाता है।

४. पत्थरो, भञ्जक राक्षसों को विनष्ट करो। निर्ऋति (पाप-देवता) को दूर करो। दुर्बुद्धि को हटाओ। सन्तान-युक्त धन दो। देवों को प्रसन्न करनेवाले श्लोक का सम्पादन करो।

५. जो आकाश से भी तेजस्वी वा बली हैं, जो सुधन्वा के पुत्र विभ्वा से भी शीघ्र-कर्मा हैं, जो वायु से भी सोमाभिषव में वेगशाली

हैं और जो अग्नि से भी अधिक अन्नदाता हैं, उन पत्थरों की, देवों की प्रसन्नता के लिए, पूजा करो।

६. यशस्वी प्रस्तर हमारे लिए अभिषुत सोम का रस सम्पादित करें। वे स्तोत्र के साथ उज्ज्वल वाक्य के द्वारा उज्ज्वल सोम-याग में हमें स्थापित करें। नेता ऋत्विक् लोग स्तोत्र-ध्वनि और परस्पर शीघ्रता करते-करते कमनीय सोम-रस, सोम-यज्ञ में दूहते हैं।

७. चालित होकर वे पत्थर सोम चुआते हैं। वे स्तोत्र की इच्छा करते हुए, अग्नि के सेचन के लिए, सोम-रस दूहते हैं। अभिषव-कारी ऋत्विक् लोग मुख से शेष सोम का पान करके शुद्धि करते हैं।

८. नेताओ और पत्थरो, तुम शोभन अभिषव के कर्त्ता होओ। इन्द्र के लिए सोमाभिषव करो। दिव्य लोक के लिए तुम लोग अद्भुत सम्पत्ति उपस्थित करो। जो कुछ निवास-योग्य धन है, उसे यजमान को दो।

७७ सूक्त

(देवता मरुत्। ऋषि भृगुगोत्रीय स्यूमरश्मि। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. स्तुति से प्रसन्न होकर मरुत् लोग मेघ-निर्गत वारि-बिन्दु के समान धन बरसाते हैं। हवि से युक्त यज्ञ के समान संसार की उत्पत्ति के कारण मरुत् हैं। मरुतों के महान् बल की पूजा वास्तव में मैंने नहीं की है। शोभा के लिए भी मैंने स्तोत्र नहीं किया।

२. मरुत् लोग पहले मनुष्य थे, पीछे, पुण्य के द्वारा, देवता बन गये। एकत्र सेना भी मरुतों का पराभव नहीं कर सकती। हमने इनकी स्तुति नहीं की; इसलिए ये द्युलोक के मरुत् अब भी दिखाई नहीं दिये और न ये आक्रमणशील बढ़े।

३. स्वर्ग और पृथिवी पर ये मरुत् स्वयं बढ़े हैं। जैसे सूर्य मेघ से

निकलते हैं, वैसे ही मरुत् बाहर हुए। ये वीर पुरुषों के समान स्तोत्रा-भिलाषी होते हैं। शत्रु-घातक मनुष्यों के समान ये दीप्त होते हैं।

४. मरुतो, जिस समय तुम लोग परस्पर प्रतिघातक और वृष्टि-पात करते हो, उस समय पृथिवी न तो कातर होती और न दुर्बल ही होती है। तुम्हें हवि दिया गया है। तुम लोग अन्नवाले व्यक्तियों के समान एकत्र होकर आओ।

५. रस्सी से रथ में जोते घोड़े के समान तुम लोग गमनशील हो। तुम लोग प्रभात-कालीन आलोक के समान प्रकाशवान् हुए हो। श्येन पक्षी के समान तुम लोग शत्रु को दूर करते हो और अपनी कीर्ति स्वयं उपार्जित करते हो। पथिकों के समान तुम लोग चारों ओर जाकर वर्षा बरसाते हो।

६. मरुतो, तुम लोग बहुत दूर से यथेष्ट गुप्त धन ले आते हो। धन प्राप्त करके तुम लोग द्वेषी शत्रुओं को गुप्त रीति से दूर करते हो।

७. जो मनुष्य यज्ञ-समाप्ति होने पर यज्ञानुष्ठान करके मरुतों को दान देता है, उसे अन्न, धन और जन की प्राप्ति होती है। वह देवों के साथ सोमपान करता है।

८. मरुत् लोग यज्ञीय हैं। वे यज्ञ के समय रक्षक हैं। आकाश के जल से अदिति सुख देती हैं। वह क्षिप्रकारी रथ से आकर हमारी बुद्धि की रक्षा करें। यज्ञ में जाकर यथेष्ट हवि का भक्षण करते हैं।

७८ सूक्त

(देवता, ऋषि और छन्द पूर्ववत्।)

१. स्तोत्र-परायण मेधावी स्तोताओं के समान यज्ञ में मरुत् लोग शोभन ध्यानवाले हैं। जैसे देवों के तर्पक यजमान कर्म में व्यस्त रहते हैं, वैसे ही वृष्टि-प्रदान आदि कर्मों में मरुत् लोग व्यापृत रहते हैं। मरुत् लोग राजाओं के समान पूजनीय, दर्शनीय और गृहस्वामी मनुष्यों के समान निष्पाप और शोभित हैं।

२. मरुत् लोग अग्नि के समान तेज से शोभित हैं। उनके वक्षस्थल में स्वर्णालंकार शोभा पाते हैं। वे वायु के समान क्षिप्रगन्ता हैं। ज्ञाता ज्ञानियों के समान वे पूज्य हैं। सुन्दर नेत्रों और सुन्दर मुखवाले सोम समान वे यज्ञ में जाते हैं।

३. मरुत् लोग (वायु के अभिमानी देव) वायु के समान शत्रुओं को कँपानेवाले और गतिशील हैं। अग्नि की ज्वाला के समान शोभन मुख-वाले हैं। कवचधारी योद्धाओं के समान वे शौर्य कर्मवाले हैं। पितरों के वचन के समान दानी हैं।

४. मरुत् लोग रथचक्र के डंडों के समान एक नाभि (आश्रय व अन्तरिक्ष) वाले हैं। वे जयशील शूरों के समान दीप्तिशाली हैं। दानेच्छु मनुष्यों के समान वे जल-सेचक हैं। सुन्दर स्तोत्र करनेवालों के समान वे सुशब्दवाले हैं।

५. मरुत् लोग अश्वों के समान श्रेष्ठ शीघ्र-गन्ता हैं। धनवाले रथ-स्वामियों के समान वे सुन्दर दानवाले हैं। वे नदियों के समान नीचे जल ले जानेवाले हैं। वे अङ्गिरा लोगों के समान सामगाता हैं। नाना रूपधारी हैं।

६. वे जलवाला मेघों के समान नदी-निर्माता हैं। ध्वंसक वज्र आदि आयुधों के समान वे शत्रु-हन्ता हैं। वे वत्सल माताओं के बच्चों के समान क्रीड़ा-परायण हैं। वे महान् जनसंघ के समान गमन में दीप्तिशाली हैं।

७. उषा की किरणों के समान वे यज्ञाश्रयी हैं। कल्याणकामी वरों के समान वे आभरणों से सुशोभित होते हैं। नदियों के समान वे गतिशील हैं। उनके आयुध प्रदीप्त हैं। दूर मार्गवाले पथिकों के समान वे अनेक योजनाओं का अतिक्रम करते हैं।

८. देव, मरुतो, स्तुतियों से वर्द्धित होकर तुम हम स्तोताओं को धनी और शोभन रत्नवाले बनाओ। स्तोम के सहकारी स्तव को ग्रहण करो। हमें तुम सदा से रत्न-दान करते आये हो।

७९ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वाजम्भर-पुत्र सप्ति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. मरणशील मनुष्यों में अमरत्स्वभाव अग्नि की महिमा को मैं देखता हूँ। इनके दोनों जबड़े (हनु) नाना प्रकार के और परिपूर्ण कृति के हैं। ये चर्वण न करके काष्ठादि पदार्थों का भक्षण करते हैं।

२. इनका मस्तक गुप्त स्थान में है। इनके नेत्र भिन्न-भिन्न स्थानों (सूर्य और चन्द्रमा) में हैं। ये चर्वण न करके ज्वाला से काठों को खाते हैं। मनुष्यों में यजमान हाथ उठाते और नमस्कार करते हुए इनके पास आकर उनका आहार जुटाते हैं।

३. ये अग्नि-रूपी बालक अपनी माता पृथिवी के ऊपर अग्रसर चलते-चलते प्रकाण्ड-प्रकाण्ड लताओं का ग्रास करते हैं—उनके छिपे मूल तक का भक्षण करते हैं। पृथिवी पर जो आकाश को छूनेवाले वृक्ष हैं, उन्हें ये पके हुए अन्न के समान पकड़ लेते हैं। इनकी ज्वाला से वृक्ष जलते हैं।

४. हे द्यावापृथिवी, तुमसे मैं सच्ची बात कहता हूँ कि, अरणियों से उत्पन्न यह बालकरूप अग्नि अपने माता-पिता (दोनों अरणियों व लकड़ियों) का भक्षण करते हैं। मैं मनुष्य हूँ अतः देवता अग्नि का वर्णन व विषय नहीं जानता हूँ। वैश्वानर, तुम विविध ज्ञानवाले हो व प्रकृष्ट ज्ञानवाले हो—यह मैं नहीं जान सकता।

५. जो यजमान अग्नि को शीघ्र अन्न देता है, गोघृत वा सोमरस से अग्नि में हवन करता है और जो काष्ठ आदि से इनकी पुष्टि करता है, उसे अग्नि अपरिमित ज्वालाओं से देखते हैं। अग्नि, उसके प्रति तुम हमारे प्रति अनुकूल रहते हो।

६. अग्नि, क्या तुमने देवों के ऊपर क्रोध किया है ? न जानकर मैं तुम ग्राहक से पूछता हूँ। कहीं क्रीड़ा करते हुए और क्रीड़ा न करते हुए और हरितवर्ण अग्नि अन्न, काष्ठ आदि को खाते समय उनको वैसे ही

छिन्वी-छिन्वी कर डालते हैं, जैसे खड्ग से गौ को खण्ड-खण्ड किया जाता है।

७. वन में प्रवृद्ध होकर अग्नि ने सरल रज्जुओं के द्वारा बाँध करके कुछ द्रुतगामी घोड़ों को रथ में जोता। अग्नि काष्ठ-स्वरूप धन पाकर और प्रवृद्ध होकर सबको चूर्ण करते हैं। ये काष्ठ-खण्डों से वर्द्धित हैं।

८० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि सौचीक वैश्वानर। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि गतिशील और युद्ध में शत्रुओं को जीतकर अन्न देनेवाला अश्व स्तोताओं को देते हैं। वे वीर और यज्ञप्रेमी पुत्र देते हैं। अग्नि, द्यावापृथिवी को शोभामय करके विचरण करते हैं। अग्नि स्त्री को वीर-प्रसविनी करते हैं।

२. अग्नि-कार्य के लिए उपयोगी समित्काष्ठ कल्याणकर हो। अग्नि अपने तेज से द्यावापृथिवी में पैठे हैं। युद्ध में अग्नि अपने भक्त को स्वयं सहायक होकर विजयी बनाते हैं। अग्नि अनेक शत्रुओं को मारते हैं।

३. अग्नि ने प्रसिद्ध जरत्कर्ण नामक ऋषि की रक्षा की। अग्नि ने जल से निकाल करके जरूथ नामक शत्रु को जलाया था। अग्नि ने प्रतप्त कुण्ड में पतित अत्रि का उद्धार किया था। अग्नि ने नृमेध ऋषि को सन्तानवान् किया था।

४. अग्नि ज्वाला-रूप धन देते हैं। जो ऋषि सहस्र गायोंवाले हैं, उन्हें मन्त्रद्रष्टा पुत्र देते हैं। यजमानों का दिया हुआ हवि अग्नि द्युलोक में पहुँचाते हैं। अग्नि के पृथिवी पर बड़े-बड़े शरीर हैं।

५. प्रथम ऋषि लोग मन्त्रों के द्वारा अग्नि को बुलाते हैं। मनुष्य, संग्राम में शत्रुओं से बाधित होकर, जय के लिए बुलाते हैं, आकाश में उड़ते हुए पक्षी अग्नि को बुलाते हैं। सहस्र गायों से वेष्टित होकर अग्नि जाते हैं।

६. मानवी प्रजा अग्नि की स्तुति करती हैं। नहुष-वंशीय लोग अग्नि की स्तुति करते हैं। गन्धर्वों का यज्ञ-मार्ग के लिए हित-वचन अग्नि सुनते हैं। अग्नि का मार्ग घृत में बैठा है।

७. अग्नि के लिए मेधावी ऋभुओं ने स्तोत्र बनाया है। हमने भी महान् अग्नि की स्तुति की है। तरुणतम अग्नि, स्तोता की रक्षा करो। अग्नि, महान् धन दो।

८१ सूक्त

(देवता विश्वकर्मा। ऋषि भुवन पुत्र विश्वकर्मा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. हमारे पिता और होता विश्वकर्मा प्रथम सारे संसार का हवन करके स्वयं भी अग्नि में पैठ गये। स्तोत्रादि के द्वारा स्वर्ग-धन की कामना करते हुए वे प्रथम सारे जगत् में अग्नि का आच्छादन करके पश्चात् समीप के भूतों के साथ स्वयं भी हुत हो गये वा अग्नि में पैठ गये।

२. सृष्टि-काल में विश्वकर्मा का आश्रय क्या था? कहाँ से और कैसे उन्होंने सृष्टि-कार्य का प्रारम्भ किया? विश्वदर्शक देव विश्वकर्मा ने किस स्थान पर रहकर पृथिवी को बनाकर आकाश को बनाया?

३. विश्वकर्मा की आँखें, मुख, बाहें और चरण सभी ओर से हैं। अपनी भुजाओं और पदों से प्रेरण करते वे दिव्य पुरुष द्यावाभूमि को उत्पन्न करते हैं। वे एक हैं।

४. वह कौन वन और उसमें कौन-सा वृक्ष है, जिससे सृष्टि-कर्त्ताओं ने द्यावापृथिवी को बनाया? विद्वानो अपने मन से पूछ देखो कि, किस पदार्थ के ऊपर खड़े होकर ईश्वर सारे विश्व का धारण करते हैं।

५. यज्ञभाग-ग्राही विश्वकर्मा यज्ञ-काल में हमें उत्तम, मध्यम और साधारण शरीरों को बता दो। अन्नयुक्त तुम स्वयं यज्ञ करके अपने शरीर पुष्ट करते हो।

६. विश्वकर्मा, तुम द्यावापृथिवी में स्वयं यज्ञ करके अपने को पुष्ट किया करते हो वा यज्ञीय हवि से प्रवृद्ध होकर तुम द्यावापृथिवी का

पूजन करो। हमारे यज्ञ-विरोधी मूर्छित हों। इस यज्ञ में धनी विश्वकर्मा स्वर्गादि के फल-दाता हों।

७. इस यज्ञ में, आज, उन विश्वकर्मा को रक्षा के लिए हम बुलाते हैं। वे हमारे सारे हवनों का सेवन करें। वे हमारे रक्षण के लिए सुखोत्पादक और साधु कर्मवाले हैं।

८२ सूक्त

(देवता, ऋषि और छन्द पूर्ववत्।)

१. शरीर के उत्पादयिता और अनुपम धीर विश्वकर्मा ने प्रथम जल को उत्पन्न किया। पश्चात् जल में इधर-उधर चलनेवाले द्यावापृथिवी को बनाया। द्यावापृथिवी के प्राचीन और अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने दृढ़ किया। तब द्यावापृथिवी प्रसिद्ध हुई।

२. विश्वकर्मा का मन बृहत् है, वे स्वयं बृहत् हैं, वे निर्माण करते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ हैं, वे सब कुछ देखते हैं, सप्तर्षियों के परवर्ती स्थानों को देखते हैं। वहाँ वे अकेले हैं। विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं। विद्वानों की अभिलाषायें अन्न के द्वारा पूर्ण होती हैं।

३. जो विश्वकर्मा हमारे पालक, उत्पादक, संसार के उत्पादक, जो विश्व के सारे धामों को जानते हैं वा जो देवों के तेजःस्थानों को जानते हैं, जो देवों के नाम रखनेवाले और जो एक हैं, सारे प्राणी उन्हीं देव को प्राप्त करते हैं वा उनके विषय के जिज्ञासु होते हैं।

४. स्थावर जंगमात्मक विश्व के होने पर जिन ऋषियों ने प्राणियों को बनाया वा उनको धनादि प्रदान किया, उन्हीं प्राचीन ऋषियों ने स्तोताओं के समान, धन-व्यय करके यज्ञानुष्ठान किया।

५. वह द्युलोक, पृथिवी, असुरों और देवों को अतिक्रम करके अव-स्थित है। जल ने ऐसा कौन-सा गर्भ धारण किया है, जिसमें सभी इन्द्रादि देवता रहकर परस्पर मिलित देखते हैं।

६. उन्हीं विश्वकर्मा को जल ने गर्भ में धारण किया है। गर्भ में सारे देवता संगत होते हैं। उस अज की नाभि में ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड में सारे प्राणी रहते हैं।

७. जिन विश्वकर्मा ने सारे प्राणियों को उत्पन्न किया है, उन्हें तुम लोग नहीं जानते हो। तुम्हारा अन्तस्तल उन्हें समझने की शक्ति नहीं पाये हुए है। हिम-रूपी अज्ञान से आच्छन्न होकर लोग नाना प्रकार की कल्पनायें करते हैं। वे अपने लिए भोजन करते और स्तुतियाँ करके स्वर्ग की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते हैं—ईश्वर-तत्त्व का विचार नहीं करते।

८३ सूक्त

(देवता मन्यु। ऋषि तपःपुत्र मन्यु। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. वज्रसदृश, बाणतुल्य और क्रोधाभिमानी देव मन्यु, जो यजमान तुम्हारी पूजा करता है, वह ओज और बल—दोनों को धारण करता है। तुम्हारी सहायता पाकर हम दास और आर्य शत्रुओं को हरावें। तुम बल के कर्त्ता, बल-रूप और महान् बली हो।

२. मन्यु ही इन्द्र हैं, देवता हैं, होता हैं, वरुण हैं और जातप्रज्ञ अग्नि हैं। सारी मानवी प्रजा मन्यु की स्तुति करती है। मन्यु, तुम हमारे पिता से मिलकर हमारी रक्षा करो।

३. मन्यु, तुम महाबली हो। पधारो। मेरे पिता को सहायक बनाकर शत्रुओं को ध्वस्त करो। तुम शत्रुओं के संहारक, वृत्रघ्न और दस्युओं के के हन्ता हो। हमारे लिए समस्त धन ले आओ।

४. मन्यु, तुम दूसरों को हरानेवाले हो। तुम स्वयम्भू, दीप्तिशील शत्रु-जयकारी, चारों ओर देखनेवाले, शत्रुओं का आक्रमण सहनेवाले और बली हो। हमारी सेनाओं को तेजस्विनी बनाओ।

५. उत्तम ज्ञानवाले मन्यु, मैं यज्ञ भाग का आयोजन नहीं कर सका; इसलिए तुम्हें पूजा नहीं दे सका। तुम महान् हो; परन्तु तुम्हें

में पूजा नहीं दे सका। मन्यु, इस प्रकार तुम्हारे यजन में शिथिलता करके इस समय में लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। अपने गुण के अनुसार, अपनी इच्छा से मुझे बल देने को पधारो।

६. मन्यु, मैं तुम्हारे पास पहुँचा हूँ। तुम अनुकूल होकर मेरे पास आकर अवतीर्ण होओ। तुम आक्रमण को सह सकते हो। सबके धारक हो। वज्रधर मन्यु, मेरे पास वृद्धि प्राप्त होओ। मुझे आत्मीय समझो। ऐसा होने पर मैं दस्युओं का वध कर सकता हूँ।

७. मेरे पास आओ। मेरे दक्षिण हाथ की ओर ठहरो। ऐसा होने पर हम दोनों वृत्रों का विनाश कर सकेंगे। तुम्हारे लिए मैं मधुर और उत्तम सोमरस का हवन करता हूँ। हम दोनों सबसे प्रथम, एकान्त स्थान में सोमपान करें।

८४ सूक्त

(ऋषि, देवता, छन्द पूर्ववत्।)

१. मन्यु, तुम्हारे साथ एक रथ पर चढ़कर तथा हृष्ट, धृष्ट और तीक्ष्ण वाणवाले आयुधों को तेज कर और अग्नि के समान तीक्ष्ण दाहवाले बनकर मरुत् आदि युद्ध-नेता लोग सहायता के लिए युद्ध में आयें।

२. मन्यु, अग्नि के समान प्रज्वलित होकर शत्रुओं को हराओ। सहनशील मन्यु, तुम्हें बुलाया गया है। संग्राम में हमारे सेनापति बनो। शत्रुओं का वध करके उनका धन हमें दे दो। हमें बल देकर शत्रुओं को मारो।

३. मन्यु, हमारा सामना करनेवाले शत्रु को हराओ। काटते-काटते और मारते-मारते शत्रुओं के सामने जाओ। तुम्हारे दुर्द्धर्ष बल को कौन रोक सकता है? एकाकी मन्यु, तुम शत्रुओं को वश में ले आते हो।

४. मन्यु, तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम अकेले हो। युद्ध के लिए प्रत्येक मनुष्य को तीक्ष्ण करो। तुम्हें सहायक पाकर हमारी दीप्ति कभी नष्ट नहीं होगी। जय-प्राप्ति के लिए हम प्रबल सिंहनाद करते हैं।

५. मन्यु, तुम इन्द्र के समान विजेता हो। तुम्हारे वचन में निन्दा नहीं रहती। इस यज्ञ में तुम हमारे विशिष्ट रक्षक बनो। सहनशील मन्यु, तुम्हारा प्रिय स्तोत्र हम करते हैं। तुम स्तोत्र से प्रबुद्ध होते हो, तुम्हें हम बलोत्पादक जानते हैं।

६. वज्रतुल्य और शत्रुनाशक मन्यु, शत्रु-नाश करना तुम्हारा स्वभाव है। शत्रु-पराभवकारी मन्यु, तुम उत्कृष्ट तेज को धारण करते हो। मन्यु, कर्म के साथ तुम हमारे लिए युद्ध में स्निग्ध होओ। तुम बहुतों के द्वारा बुलाये गये हो।

७. वरुण और मन्यु—दोनों ही हमें पाये गये और लाये गये धन को दें। शत्रु लोग भीरु, पराजित और विलीन हों।

८५ सूक्त

(७ अनुवाक। देवता सोम आदि। ऋषि सूर्या। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवों में सत्यरूप ब्रह्मा ने पृथिवी को आकाश में रोक रक्खा है। सूर्य ने द्युलोक को स्तम्भित कर रक्खा है। यज्ञाहुति के द्वारा देवता रहते हैं। द्युलोक में सोम अवस्थित है।

२. सोम से ही इन्द्रादि बली होते हैं। सोम से ही पृथिवी प्रकाण्ड हुई है। नक्षत्रों के पास सोम रक्खा गया है।

३. जिस समय वनस्पति-रूपी सोम को पीसा जाता है, उस समय लोग समझते हैं कि, उन्होंने सोम-पान कर लिया। परन्तु ब्राह्मण लोग जिसे प्रकृत सोम कहते हैं, उसका कोई अयाज्ञिक पान नहीं कर सकता।

४. सोम, स्तोता लोग छिपाने की व्यवस्था जानकर तुम्हें गुप्त रखते हैं। तुम पाषाण का शब्द सुनते हो। पृथिवी का कोई मनुष्य तुम्हारा पान नहीं कर सकता।

५. देव सोम, तुम्हारा पान करने से तुम्हारी वृद्धि होती है—क्षय नहीं। वायु सोम की वैसे ही रक्षा करते हैं, जैसे महीने वर्ष की रक्षा करते हैं। दोनों का स्वरूप एक-सा है।

६. सूर्यपुत्री के विवाह के समय "रैभी" नाम की ऋचायें उसकी सखी हुई थीं। नाराशंसी नाम की ऋचायें उसकी दासी हुई थीं। सूर्या का अत्यन्त सुन्दर वस्त्र साम-गान के द्वारा परिष्कृत हुआ था।

७. जिस समय सूर्या पति-गृह में गई उस समय चैतन्य-स्वरूप चादर था। नेत्र ही उसका उबटन था। द्यावापृथिवी ही उसके कोश थे।

८. स्तोत्र ही उसके रथ-चक्र के डंडे थे। कुटिर नामक छन्द रथ का भीतरी भाग था। सूर्या के वर अश्विनीकुमार थे और अग्नि अग्र-गामी दूत।

९. सूर्या मन ही मन पति की कामना करती थी। जिस समय सूर्य ने सूर्या को प्रदान किया, उस समय सोम उसके साथ विवाह करने के इच्छुक थे। परन्तु अश्विद्वय ही उसके वर स्वीकृत किये गये।

१०. सूर्या पति के गृह में गई। उसका मन ही उसका शकट था। आकाश ही ओढ़ना था। सूर्य और चन्द्रमा उसके रथ-वाहक हुए।

११. ऋक् और साम के द्वारा वर्णित दो वृषभ वा वृषभ-रूप सूर्य-चन्द्र उसके शकट को यहाँ से वहाँ ले जानेवाले हुए। सूर्या, दोनों कान तुम्हारे दो रथ-चक्र हुए। रथ के चलने का मार्ग हुआ आकाश।

१२. जाने के समय तुम्हारे दोनों रथ के पहिये नेत्र हुए वा अत्यन्त उज्ज्वल हुए। उस रथ में विस्तृत अक्ष (दोनों पहियों में लगा हुआ मोटा डंडा) हुआ। पति-गृह में जाने के लिए सूर्या मनोरूप शकट पर चढ़ी।

१३. पति-गृह में जाते समय सूर्य ने सूर्या को जो चादर दिया था, वह आगे-आगे चला। मघा नक्षत्र के उदय-काल में चादर (उपढौकन) के अंग-स्वरूप बिदाई में दी गई गायों को डंडे से हाँका जाता है और अर्जुनी अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में उस चादर को रथ से ले जाया जाता है।

१४. अश्विद्वय, जिस समय तुम लोगों ने तीन पहियोंवाले रथ पर चढ़कर और सूर्या के विवाह की बात पूछकर उससे विवाह किया था, उस

समय सारे देवों ने तुम्हारे कार्य का समर्थन किया और तुम्हारे पुत्र (पूषा) ने तुम्हें वरण किया।

१५. अश्विद्वय, जिस समय तुम लोग वर होकर सूर्या के पास गये, उस समय तुम्हारा चक्र कहाँ था? मार्ग की जिज्ञासा करने के समय तुम लोग कहाँ खड़े थे?

१६. ब्राह्मण लोग जानते हैं कि, समयानुसार, चलनेवाले तुम्हारे दो चक्र (सूर्य-चन्द्रात्मक) प्रख्यात हैं और एक गोपनीय चन्द्र (वर्ष) को विद्वान् लोग समझते हैं।

१७. सूर्या, देवगण, मित्र और वरुण प्राणियों के शुभचिन्तक हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

१८. ये दोनों शिशु (सूर्य और चन्द्र) अपनी शक्ति से पूर्व-पश्चिम में विचरण करते हैं। ये क्रीड़ा करते हुए यज्ञ में जाते हैं। इनमें से एक चन्द्रमा संसार में ऋतु-व्यवस्था करते हुए अश्व को देखते हैं और दूसरे सूर्य ऋतु-विधान करते हुए बार-बार जन्म लेते हैं (उदय-अस्त होते हैं)।

१९. सूर्य दिन के सूचक हैं। प्रतिदिन नये होकर वे प्रातःकाल सामने आते हैं। आकर देवों को यज्ञ-भाग देने की व्यवस्था करते हैं। चन्द्रमा चिर-जीवन देते हैं।

२०. सूर्या, तुम अपने पतिगृह में जाते समय शोभन पलाश-वृक्ष और शाल्मली वृक्ष से निर्मित नानारूप, सुवर्ण वर्ण, उत्तम और शोभन चक्रवाले रथ पर चढ़ो। सुखकर और अमर स्थान में सोम के लिए जाओ।

२१. विश्वावसु, यहाँ से उठो; क्योंकि इस कन्या का विवाह हो गया। मैं नमस्कार और स्तोत्र के द्वारा विश्वावसु की स्तुति करता हूँ। यदि कोई दूसरी कन्या पितृ-गृह में विवाह के योग्य हुई हो, तो उसके पास जाओ। वही तुम्हारे भाग्य में जन्मी है। उसकी बात जानो।

२२. विश्वावसु, यहाँ से उठो। नमस्कार के द्वारा मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। किसी बृहत् नितम्बवाली कन्या के पास जाओ और उसे पत्नी बनाकर पति से मिलाओ।

२३. देवो, वह मार्ग सरल और कण्टक-विहीन हो, जिनसे हमारे मित्र लोग कन्या के पिता के पास जाते हैं। अर्यमा और भग देवता हमें भली भाँति ले चलें। पति-पत्नी मिलकर रहें।

२४. कन्या, सुन्दर शरीर सूर्यदेव ने जिस बन्धन से तुम्हें बाँधा था, उसी वरुण के (सूर्य-द्वारा प्रेरित होकर वरुण ही बाँधते हैं) पाश से मैं तुम्हें छुड़ाता हूँ। जो सत्य का आधार है और जो सत्कर्म का निवास है, उसी स्थान पर तुम्हें निर्विघ्न रूप से पति के साथ, स्थापित करता हूँ।

२५. मैं कन्या को पितृ-कुल से छुड़ाता हूँ। दूसरे स्थान से नहीं। भर्तृगृह में इसे भली भाँति स्थापित करता हूँ। वर्षक इन्द्र, यह सौभाग्यवती और सुपुत्रवाली हो।

२६. तुम्हें हाथ में धारण करके पूषा यहाँ से ले जायें। अश्विद्वय तुम्हें रथ से ले जायें। गृह में जाकर गृहिणी बनो। पति के वश में रह-कर भृत्यादि का व्यवस्थापन करो।

२७. इस गृह में सन्तान उत्पन्न करके प्रसन्न होओ। यहाँ सावधान होकर कार्य करना। स्वामी के साथ अपने शरीर को सम्मिलित करो। वृद्धावस्था तक अपने गृह में प्रभुता करो।

२८. पाप-देवता (कृत्या) नील और लोहित वर्ण के हो रहे हैं। इस स्त्री पर संबद्ध कृत्या को छोड़ा जाता है। तब इस नारी के ज्ञातीय लोग बढ़ रहे हैं। इसका पति सांसारिक बन्धन में है।

२९. मलिन वस्त्र का त्याग करो। ब्राह्मणों को धन दो। कृत्या चली गई है। पत्नी पति में सम्मिलित हो रही है।

३०. यदि पति वधू के वस्त्र से अपने शरीर को ढकने की चेष्टा करता है, तो उसपर कृत्या का आक्रमण होता है और उज्ज्वल शरीर भी श्री-भ्रष्ट हो जाता है।

३१. जो लोग वर से वधू को मिले आह्लादजनक चादर को लेने को आये थे, उन्हें यज्ञ-भाग-ग्राही देवता उनके स्थान पर लौटा दें या विफल-प्रयास कर दें।

३२. जो शत्रुता के लिए इन दम्पती के पास आते हैं, वे विनष्ट हों। दम्पती सुविधा के द्वारा असुविधा को नष्ट कर दें। शत्रु लोग दूर भाग जायँ।

३३. यह वधू शोभन कल्याणवाली है। सभी आशीर्वादकर्त्ता आवें और इसे देखें। इसे स्वामी की प्रियपात्री बनने का आशीर्वाद देकर सब लोग अपने-अपने घर चले जायँ।

३४. यह वस्त्र दूषित, अग्राह्य, मलिन और विषयुक्त है। यह व्यवहार के योग्य नहीं है। जो ब्राह्मण सूर्या को जाने, वही यह वस्त्र पा सकता है।

३५. सूर्या की मूर्त्ति कैसी है, देखो। इसका वस्त्र कहीं प्रथम फटा है। कहीं बीच में फटा है और कहीं चारों ओर फटा है। जो ब्रह्मा हैं, वे ही इसका संशोधन करते हैं।

३६. तुम्हारे सौभाग्य के लिए मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। मुझे पति पाकर तुम वृद्धावस्था में पहुँचना—यही मेरी प्रार्थना है। भग, अर्यमा और पूषा ने तुम्हें मुझे गृह-धर्म चलाने के लिए दिया है।

३७. पूषा, जिस नारी के गर्भ में पुरुष बीज बोता है, उसे तुम कल्याणी बनाकर भेजो। कामिनी होकर वह अपना उरु-द्वय विस्तारित करेगी और हम कामवश होकर उसमें अपना इन्द्रिय प्रहार करेंगे।

३८. अग्नि, ओढ़नी के साथ सूर्या को पहले तुम्हारे ही पास ले जाया जाता है। तुम सन्तान-रहित वनिता को पति के हाथ सौंपते हो।

३९. अग्नि ने पुनः सौन्दर्य और परमायु के साथ वनिता को दिया। इसका पति दीर्घायु होकर सौ वर्ष जीवित रहेगा।

४०. सोम ने सबसे प्रथम तुम्हें पत्नी-रूप से प्राप्त किया। तुम्हारे दूसरे पति गन्धर्व हुए और तीसरे अग्नि। मनुष्य-वंशज तुम्हारे चौथे पति हैं।

४१. सोम ने उस स्त्री को गन्धर्व को दिया, गन्धर्व ने अग्नि को दिया और अग्नि ने धन-सन्तान-सहित मुझे दिया।

४२. वर और वधू, तुम दोनों यहीं रहो, परस्पर पृथक् नहीं होना। नाना खाद्य भक्षण करना। अपने गृह में रहकर पुत्र-पौत्रों के साथ आमोद, आह्लाद और क्रीड़ा करना।

४३. ब्रह्मा वा प्रजापति हमें सन्तति दें और अर्यमा बुढ़ापे तक हमें साथ रक्खें। वधू, तुम मंगलमयी होकर पति-गृह में ठहरना। हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिए कल्याणकारिणी रहना।

४४. तुम्हारा नेत्र निर्दोष हो। तुम पति के लिए मंगलमयी होओ। पशुओं के लिए मंगलकारिणी होओ। तुम्हारा मन प्रफुल्ल हो और तुम्हारा सौन्दर्य शुभ्र हो। तुम वीर-प्रसविनी और देवों की भक्ता होओ। हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिए कल्याणमयी होओ।

४५. वर्षक इन्द्र, इस नारी को उत्तम पुत्र और सौभाग्यवाली करो। इसके गर्भ में दस पुत्र स्थापित करो—पति को लेकर इसे ग्यारह व्यक्ति-वाली बनाओ।

४६. वधू, तुम सास, ससुर, ननद और देवरों की सम्राज्ञी (महारानी) बनो—सबके ऊपर प्रभुत्व करो।

४७. सारे देवता हम दोनों के हृदयों को मिला दें। जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनों को संयुक्त करें।

तृतीय अध्याय समाप्त।

८६ सूक्त

(चतुर्थ अध्याय। देवता और ऋषि इन्द्र, वृषाकपि, इन्द्राणी आदि छन्द पञ्चपदा पङ्क्ति।)

१. मैं (इन्द्र) ने सोमाभिषव करने के लिए स्तोताओं को कहा था। परन्तु उन्होंने इन्द्र की स्तुति नहीं की—वृषाकपि की ही स्तुति की। सोम-प्रवृद्ध यज्ञ में स्वामी वृषाकपि (इन्द्र-पुत्र) मेरे सखा होकर सोमपान से हृष्ट हुए। तो भी मैं (इन्द्र) सबसे श्रेष्ठ हूँ।

२. इन्द्र, तुम अत्यन्त चलित होकर वृषाकपि के पास जाते हो। तुम सोमपान के लिए नहीं जाते हो। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

३. इन्द्र, वृषाकपि ने तुम्हारा क्या भला किया है कि, तुम उदार होकर हरितवर्ण मृग वृषाकपि को पुष्टिकर धन देते हो। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

४. इन्द्र, तुम जिस प्रिय वृषाकपि की रक्षा करते हो, उसके कान को वराहाभिलाषी कुक्कुर काटे। इन्द्र सर्व-श्रेष्ठ हैं।

५. (इन्द्राणी की उक्ति)—मेरे लिए यजमानों के द्वारा कल्पित, प्रिय और घृतयुक्त जो सामग्री रक्खी हुई थी, उसे वृषाकपि ने दूषित कर दिया। मेरी इच्छा है कि मैं इसका सिर काट डालूँ। मैं इस दुष्ट-कर्मा को सुख नहीं दे सकती। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

६. मुझसे बढ़कर कोई स्त्री सौभाग्यवती नहीं है—सुपुत्रवाली भी नहीं है। मुझसे बढ़कर कोई भी स्त्री पुरुष (स्वामी) के पास शरीर को नहीं प्रफुल्ल कर सकती और न रति-समय में दोनों जाँघों को उठा ही सकती है।

७. (वृषाकपि की उक्ति)—माता (इन्द्राणी) तुमने सुन्दर लाभ किया है। तुम्हारा अंग, जंघा मस्तक आदि आवश्यकतानुसार हो जायेंगे प्रेमालाप से कोकिलादि पक्षी के समान तुम पिता को प्रसन्न करो। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

८. (इन्द्र की उक्ति)—सुन्दर भुजाओं, सुन्दर अँगुलियों, लम्बे बालों और मोटी जाँघोंवाली तथा वीर-पत्नी इन्द्राणी, तुम वृषाकपि पर क्यों क्रुद्ध हो रही हो? इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

९. (इन्द्राणी का कथन)—यह हिंसक वृषाकपि मुझे पति-पुत्र-विहीना के समान समझता है। परन्तु मैं पति-पुत्रवाली इन्द्र-पत्नी हूँ। मेरे सहायक मरुत् लोग हैं। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१०. जिस समय हवन वा युद्ध होता है, उस समय पति और पुत्रवाली इन्द्राणी वहाँ जाती हैं। वे यज्ञ का विधान करनेवाली हैं—उनकी पूजा सब लोग करते हैं। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

११. (इन्द्र की उक्ति)—सब स्त्रियों में मैंने इन्द्राणी को सौभाग्य-वाली सुना है। अन्यान्य पुरुषों के समान इन्द्राणी के पति को बुढ़ापे में पड़कर नहीं मरना पड़ता। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१२. इन्द्राणी, अपने हितैषी वृषाकपि के बिना मैं नहीं प्रसन्न रहता। वृषाकपि का ही प्रीतिकर द्रव्य (हवि आदि) देवों के पास जाता है। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१३. वृषाकपि की स्त्री, तुम धनशालिनी, उत्तम पुत्रवाली और सुन्दरी पुत्र-वधू हो। तुम्हारे वृषों (साँड़ों) को इन्द्र खा जायें। तुम्हारे प्रिय और सुखकर हवि का वे भक्षण करें। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१४. (इन्द्र की उक्ति)—मेरे लिए इन्द्राणी के द्वारा प्रेरित याज्ञिक लोग पंद्रह-बीस साँड़ वा बैल पकाते हैं। उन्हें खाकर मैं मोटा होता हूँ। मेरी दोनों कुक्षियों को याज्ञिक लोग सोम से भरते हैं। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१५. इन्द्र, जैसे तीक्ष्णश्रृङ्ग वृषभ गोवृन्द में गर्जन करता हुआ रमता है, वैसे ही तुम भी मेरे साथ रमण करो। तुम्हारे हृदय के लिए दधि-मन्थन, शब्द करता हुआ, कल्याणकर हो। भावाभिलाषिणी इन्द्राणी जिस सोम का अभिषव करती हैं, वह भी कल्याणकर हो। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१६. (इन्द्राणी की उक्ति)—इन्द्र, वह मनुष्य मैथुन करने में नहीं समर्थ हो सकता, जिसका पुरुषांग दोनों जघनों के बीच लम्बायमान है। वही समर्थ हो सकता है, जिसके बैठने पर लोमयुक्त पुरुषांग बल प्रकाश करता वा फैलता है। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१७. (इन्द्र की उक्ति)—वह मनुष्य मैथुन करने में समर्थ नहीं हो सकता, जिसके बैठने पर लोम-युक्त पुरुषांग बल प्रकाश करता है। वही समर्थ हो सकता है, जिसका पुरुषांग दोनों जघनों के बीच लम्बाय-मान है।

१८. इन्द्र, वृषाकपि दूसरे का धन चुरानेवाले का अपने विषय में भरा हुआ पावें। यह खड्ग, सूना (वध-स्थान), नया चरु और काठ का शकट प्राप्त करे। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

१९. मैं (इन्द्र) यजमानों को देखते हुए, आर्यों का अन्वेषण करते हुए और शत्रुओं को दूर करते हुए यज्ञ में आता हूँ। सोमाभिषव करने-वाले और हवि पकानेवाले का सोम पीता हूँ। बुद्धिमान् को देखता हूँ। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

२०. जल-शून्य मरुदेश और काटने योग्य वन में कितने योजनों का अन्तर है? वृषाकपि, पास के गृह में ही आश्रय ग्रहण करो। इन्द्र सर्व-श्रेष्ठ हैं।

२१. वृषाकपि, तुम फिर आओ। तुम्हारे लिए हम (इन्द्र और इन्द्राणी) उत्तमोत्तम कर्म करते हैं। स्वप्न-नाशक सूर्य जैसे अस्त होते हैं, वैसे ही तुम भी घर में आओ। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

२२. वृषाकपि और इन्द्र, ऊपर मुँह किये हुए तुम लोग मेरे गृह में आओ। बहुभोक्ता और जन-हर्ष-दाता मृग कहाँ गया? इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

२३. इन्द्र के द्वारा छोड़े गये बाण, मनु-पुत्री पर्शु ने बीस पुत्रों को उत्पन्न किया। जिस (पर्शु) का उदर मोटा हुआ था, उसका कल्याण हो। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

८७ सूक्त

(देवता रक्षोघ्न अग्नि। ऋषि भरद्वाज-पुत्र पायु। छन्द अनुष्टुप् आदि।)

१. राक्षस-नाशक, बली, यजमानों के मित्र और स्थूल अग्नि का घृत से हवन करता हूँ। घर को जाता हूँ। ज्वालाओं को तेज करते हुए अग्नि यजमानों के द्वारा प्रज्वलित होते हैं। अग्नि हमें हिंसक राक्षसों से दिन-रात बचावें।

२. ज्ञानी अग्नि, लौह-दन्त (तीक्ष्ण-दन्त) होकर अपनी ज्वाला से राक्षसों को जलाओ। मारक राक्षसों को ज्वाला से मारो। मांस-भक्षक राक्षसों को काट करके मुँह में रख लो।

३. दोनों ओर के दाँतों से युक्त अग्नि, तुम राक्षसों के हिंसक हो। दोनों ओर के दाँतों को तेज करते हुए उन्हें राक्षसों में बैठा दो। शोभा-वान् अग्नि, अन्तरिक्षस्थ राक्षसों के पास जाओ और दाँतों से राक्षसों को पीस डालो।

४. अग्नि, तुम यज्ञ से और हमारी स्तुति से बाणों को नवाते हुए और उनके अग्र भागों को वज्र-संयुक्त करते हुए राक्षसों के हृदय को छेदो। उनकी भुजाओं को रगड़ डालो।

५. धनी अग्नि, राक्षसों के चमड़े को काट डालो। हिंसक वज्र उन्हें तेज से मारे। राक्षसों के अंगों को फाड़ो। मांस-भक्षक वृक आदि मांसाभिलाषी होकर इनका मांस खायें।

६. ज्ञानी अग्नि, चाहे राक्षस खड़ा रहे, इधर-उधर घूमता रहे, आकाश में रहे अथवा मार्ग में जाय—जहाँ कहीं भी तुम उसे देखते हो, तेज बाण फेंक कर उसे छेदो।

७. ज्ञानी अग्नि, आक्रमणकर्त्ता राक्षस के हाथ से आक्रान्त व्यक्ति को ऋष्टि (दो धारोंवाले खड्ग) से बचाओ। अग्नि, उज्ज्वल मूर्ति धारण करके सबसे पहले अपक्व मांस खानेवालों को मारो। ये पक्षी उस राक्षस को खायें।

८. अग्नि, कहो, कौन राक्षस इस यज्ञ में विघ्न करता है। तरुण-तम अग्नि, काष्ठ-द्वारा प्रज्वलित होकर तुम उस राक्षस को मारो। मनुष्यों के ऊपर तुम कृपामयी दृष्टि डालते हो। उसी दृष्टि से इस राक्षस को मारो।

९. अग्नि, तुम तीक्ष्ण तेज से हमारे यज्ञ की रक्षा करो। उत्तम ज्ञानवाले अग्नि, इस यज्ञ को धन के अनुकूल करो। मनुष्यों के दर्शक अग्नि, तुम राक्षस-घातक हो। तुम्हें राक्षस न मारें।

१०. मनुष्य-दर्शक अग्नि, मनुष्यों के हिंसक राक्षस को देखो। उसके तीन मस्तकों को काटो। उसके पास के राक्षसों को भी शीघ्र मारो। उसके पैर को तीन प्रकार से काटो वा उसके तीन पैरों को काटो।

११. ज्ञानी अग्नि, राक्षस तुम्हारी लपटों में तीन बार जाय। जो राक्षस सत्य को असत्य से मारता है, उसे अपने तेज से भस्म कर डालो। मुझ स्तोता के सामने ही इसे छिन्न-भिन्न कर डालो।

१२. अग्नि, गरजनेवाले राक्षस पर अपना वह तेज फेंको, जिससे खुर के समान नखों से साधुओं के भंजक राक्षसों को देखते हो। सत्य को असत्य से दबानेवाले राक्षस को, बध्यक् अथर्वा ऋषि के समान, अपने तेज से भस्म कर डालो।

१३. अग्नि, स्त्री-पुरुष आपस में झगड़ा कर रहे हैं। स्तोता लोग आपस में कटु कथा कह रहे हैं। फलतः मन में क्रोध उत्पन्न होने पर जो बाण फेंका जाता है, उससे राक्षसों के हृदय को विद्ध करो; क्योंकि इन सब कटु कथाओं को कहनेवाले राक्षस होते हैं।

१४. राक्षसों को तेज से भस्म करो। राक्षस को बल के द्वारा मारो। मारने योग्य राक्षसों को अपने तेज से मारो। मनुष्यों के प्राण लेनेवाले राक्षसों को मारो।

१५. आज अग्नि आदि देवता पापी राक्षस को नष्ट करें। हमारे दुर्वाक्य इस राक्षस के पास जायें। मिथ्यावादी राक्षस के मर्म के पास बाण जाय। विश्वव्यापी अग्नि के बन्धन में राक्षस गिरें।

१६. अग्नि, जो राक्षस मनुष्य के मांस का संग्रह करता है, जो अश्व आदि पशुओं के मांस का संग्रह करता है और जो अवध्य गौ का दूध चुरा ले जाता है, ऐसे राक्षसों के मस्तक को, अपने बल से, छिन्न कर डालो।

१७. एक वर्ष तक गाय का जो दूध संचित होता है, उस दूध का पान राक्षस न करने पावे। मनुष्य-दर्शक अग्नि, जो राक्षस उस अमृत के समान दूध को पीने की चेष्टा करता है, उसके आगे आते ही अपनी ज्वाला से उसके मर्म को छिन्न-भिन्न कर डालो।

१८. गायों के जिस दूध को राक्षस पीते हैं, वह उनके लिए विष के समान हो जाय। उन दुष्टों को काटकर अदिति के पास उनका बलि-दान कर दो। इन्हें सूर्य उच्छिन्न कर डालें। तृण, लता आदि का जो छोड़ने योग्य असार अंश है, राक्षस उसका ही ग्रहण करें।

१९. अग्नि, क्रमागत राक्षसों को मार डालो। राक्षस लोग युद्ध में तुम्हें जीत न सकें। कच्चा मांस खानेवाले राक्षसों को जड़ से विध्वस्त कर डालो। वे तुम्हारे दिव्य अस्त्रों से बचने न पावें।

२०. अग्नि, तुम हमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—चारों ओर से बचाओ। तुम्हारी ज्वालायें अत्यन्त उज्ज्वल, अविनाशी और उत्तप्त हैं। वे पापी राक्षसों को भस्म कर दें।

२१. दीप्त अग्नि, तुम कार्य-पटु हो; इसलिए क्रिया-कौशल से हमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से बचाओ। सखा अग्नि, मैं तुम्हारा मित्र हूँ। तुम्हारे पास बुढ़ापा नहीं आता। मुझे दीर्घ जीवन और जरा दो। तुम अमर हो। हम मरण-शील हैं। हमारी रक्षा करो।

२२. बल के पुत्र अग्नि, तुम पूरक, मेधावी, धर्षक और टेढ़े राक्षसों को अनुदिन मारनेवाले हो। तुम्हारा हम ध्यान करते हैं।

२३. अग्नि, भञ्जक कर्म करनेवाले राक्षसों को तुम व्यापक तेज से जलाओ। तपते हुए खड्गों से भी उन्हें जलाओ।

२४. स्त्री-पुरुष में कहाँ क्या है, इस बात को देखते हुए घूमनेवाले राक्षसों को जलाओ। मेधावी अग्नि, तुम्हें कोई मार नहीं सकता। स्तुतियों से मैं तुम्हें स्तुत करता हूँ। जागो।

२५. अग्नि, अपने तेज से राक्षसों के तेज को चारों ओर नष्ट कर दो। राक्षसों के बल-वीर्य को नष्ट कर डालो।

८८ सूक्त

(देवता अग्नि और सूर्य। ऋषि मूर्द्धन्वान्। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. पीने के योग्य, चिर नूतन और देवों के द्वारा सेवित सोमरस स्वर्गस्थ और आकाशस्पर्शी अग्नि में हुत किया गया है। उसी के उत्पा-

हन, परिपूरण और धारण के लिए देवता लोग सुखकर अग्नि को वर्द्धित करते हैं।

२. अन्धकार भुवन का ग्रास करता है। उसमें भुवन अन्तर्धान होता है। अग्नि के प्रकट होने पर सब प्रसन्न होते हैं। देवता, आकाश, जल, वृक्ष आदि सभी सन्तुष्ट होते हैं।

३. यज्ञ-भाग-ग्राही देवों ने मुझे प्रवृत्ति दी है; इसलिए मैं अजर और विशाल अग्नि की स्तुति करता हूँ। अग्नि ने अपने तेज से पृथिवी और आकाश के मध्यस्थ स्थान और द्यावापृथिवी को विस्तारित कर डाला।

४. जो वैश्वानर अग्नि देवों के द्वारा सेवित और मुख्य होता हुए थे और जिन्हें वर चाहनेवाले यजमान लोग घृत से युक्त करते हैं, उन्हीं अग्नि ने उड़नेवाले पक्षियों, गतिशील सर्प आदि को और स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् को शीघ्र उत्पन्न किया।

५. ज्ञाता अग्नि, जो तुम त्रिलोक के सिर पर; आदित्य के साथ, रहते हो, उन तुमको हम सुन्दर स्तुतियों के द्वारा प्राप्त करते हैं। तुम द्यावापृथिवी के पूरक और यज्ञ-योग्य हो।

६. रात्रि-काल में अग्नि, सारे प्राणियों के मस्तक-स्वरूप होते हैं और प्रातःकाल सूर्यरूप से उदित होते हैं। इन्हें यज्ञ-सम्पादक देवों की प्रज्ञा कहा जाता है। अग्नि विचार-पूर्वक सभी स्थानों में शीघ्र-शीघ्र विचरण करते हैं।

७. जो अग्नि, विशेषरूप से प्रज्वलित होकर, सुन्दर मूर्त्ति धारण कर और आकाश में स्थान ग्रहण करके, दीप्ति के साथ, शोभा पाने लगे, उन्हीं अग्नि में शरीररक्षक सारे देवता लोगों ने, सूक्त-पाठ करते हुए, हवि प्रदान किया।

८. प्रथम देवता लोग "द्यावापृथिवी" आदि वाक्यों का मन से निरूपण करते हैं। पश्चात् अग्नि को उत्पन्न करते हैं—हवि को भी प्रकट करते हैं। अग्नि देवों के यजनीय हैं। वे शरीर-रक्षक हैं। उन अग्नि को द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष जानते हैं।

९. जिन अग्नि को देवों ने उत्पन्न किया और "सर्वमेध" नामक यज्ञ में जिनमें सारी वस्तुओं का हवन किया जाता है, वे ही अग्नि सरल-गामी होकर अपनी विशाल ज्वाला के द्वारा द्यावापृथिवी को ताप देने लगे।

१०. द्यावापृथिवी को परिपूर्ण करनेवाले अग्नि को देवलोक में देवों ने अपनी शक्ति से, केवल स्तुति के द्वारा, उत्पन्न किया। उन सुखावह अग्नि को उन्होंने तीन भावों (पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ) से बनाया। वे ही अग्नि ओषधि, व्रीहि आदि सब वस्तुओं को परिणत अवस्था में ले जाते हैं।

११. यज्ञ-योग्य देवों ने जिस समय इन अग्नि और अदिति-पुत्र सूर्य को आकाश में स्थापित किया, उस समय वे दोनों युग्म-रूप होकर विचरण करने लगे। उस समय सारे प्राणी उन्हें देख सके।

१२. मनुष्य-हितैषी अग्नि को सारे संसार के लिए देवों ने दिन की पताका माना है। वे अग्नि विशिष्ट दीप्तिवाले प्रभात को विस्तृत करते हैं और जाते हुए अपनी ज्वाला से सारे अन्धकार को विनष्ट करते हैं।

१३. मेधावी और यज्ञ-योग्य देवों ने अजर सूर्यात्मक (वैश्वानर) अग्नि को उत्पन्न किया। जिस समय अग्नि स्थूल और विराट् होते हैं, उस समय आकाश में चिर काल से विहरण-शील नक्षत्र को देवों के सामने ही ये निष्प्रभ कर डालते हैं।

१४. सर्वदा दीप्त, क्रान्तप्रज्ञ और विश्व-हितैषी अग्नि की, मन्त्रों से हम, स्तुति करते हैं। वैश्वानर अग्नि अपनी महिमा से द्यावापृथिवी को परिभूत करते हैं। अग्नि नीचे-ऊपर तपते हैं।

१५. पितरों, देवों और मनुष्यों के दो मार्गों (देवयान और पितृयान) को मैंने सुना है। यह सारा संसार अग्रसर होते-होते उन्हीं मार्गों को प्राप्त करता है अर्थात् जो कोई माता-पिता के बीच जन्मा हुआ है, उसके लिए इन दोनों के अतिरिक्त कोई गति नहीं है।

१६. जो सूर्य के मस्तक से उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें स्तुतियों से परिपुष्ट किया जाता है और जो जब विचरण करते हैं, तब उन्हें द्यावापृथिवी

धारण करते हैं, वे रक्षक कभी अपने कर्म में शिथिलता नहीं करते—वे दीप्त होते-होते सारे जगत् में सुख से रहते हैं।

१७. जिस समय पार्थिव अग्नि और मध्यम अग्नि वा वायु आपस में विवाद करते हैं कि, हम दोनों में यज्ञ को कौन जानता है, उस समय बन्धु ऋत्विक् यज्ञ करते हैं। परन्तु उनमें से कोई भी इस विवाद का निर्णय नहीं कर सकता।

१८. पितरो, मैं तुम लोगों से तर्क-वितर्क की बातें नहीं करता, केवल भली भाँति जानने के लिए जिज्ञासा करता हूँ कि, अग्नि कितने हैं, सूर्य कितने हैं, उषायें कितनी हैं और जल-देवियाँ कितनी हैं।

१९. वायु, जब तक रातें उषा के मुँह का ढकना नहीं हटा देती हैं, तभी तक निम्नस्थ पार्थिव अग्नि आकर यज्ञ के पास स्थान ग्रहण करते हैं। वे ही होता हैं और वे ही स्तोता हैं।

८९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र-पुत्र रेणु। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तोता, नेताओं में श्रेष्ठ इन्द्र की स्तुति करो। इन्द्र की महिमा सबके तेज को अभिभूत कर देती है। वे मनुष्यों को धारण करते हैं। उनकी महिमा समुद्र से भी अधिक है—उनका तेज सारे संसार को परिपूर्ण करता है।

२. वीर्यशाली इन्द्र अपने समस्त तेज को वैसे ही चारों ओर घुमाते हैं, जैसे रथी चक्र को घुमाता है। काला अन्धकार एक स्थायी और अदृश्य सृष्टि के समान है। इन्द्र अपनी ज्योति से उसे नष्ट करते हैं।

३. स्तोता, मेरे साथ मिलकर उन इन्द्र के लिए एक ऐसे नये स्तोत्र का उच्चारण करो, जो निकृष्ट न हो और जो द्यावापृथिवी में निरुपम हो। वे यज्ञ में उच्चारित स्तुतियों को पाने के लिए भी जैसे इच्छुक होते हैं, वैसे ही शत्रुओं को देखने के लिए भी व्यस्त होते हैं। वे अनिष्ट के लिए बन्धु को नहीं चाहते।

४. अकातर भाव से इन्द्र की स्तुति की गई है। आकाश के मस्तक से मैं जल लाया हूँ। जैसे धुरी के द्वारा चक्र चलता है, वैसे ही इन्द्र अपने कर्मों के द्वारा द्यावापृथिवी को रोके हुए हैं।

५. जिनका पान करने से मन में तेज उत्पन्न होता है, जो शीघ्र प्रहार करनेवाले हैं, जो वीरता के साथ शत्रुओं को कँपाते हैं और जो अस्त्र-शस्त्रधारी और गतिशील हैं, वे ही सोम वनों को बढ़ाते हैं; परन्तु बढ़े हुए वन भी इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकते और न इन्द्र के भाव की लघुता ही कर सकते हैं।

६. द्यावापृथिवी, मरुस्थल, आकाश और पर्वत जिन इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकते, उनके लिए सोमरस क्षरित होता है। जिस समय शत्रुओं के ऊपर इनका क्रोध होता है, उस समय ये दृढ़ता से मारते हैं—स्थिर पदार्थों को तोड़ डालते हैं।

७. जैसे फरसा वन को काटता है, वैसे ही इन्द्र ने वृत्र का वध किया, शत्रु-नगरी को ध्वस्त किया, वृष्टि-जल से नदियों को मार्ग दिया और कच्चे घड़े के समान मेघ को भंग किया। इन्द्र ने अपने सहायक मरुतों के साथ जल को हमारे सम्मुख किया।

८. इन्द्र, तुम धीर हो। तुम स्तोताओं को ऋण-मुक्त करते हो, जैसे खड्ग गाँठों को काटता है, वैसे ही तुम स्तोताओं के उपद्रव को नष्ट करते हो। जो सब मूर्ख व्यक्ति वरुण और मित्र के बन्धु के समान धारक कर्म का विनाश करते हैं, उनका वध भी इन्द्र करते हैं।

९. जो दुष्ट व्यक्ति मित्र, अर्यमा, वरुण और मरुतों से द्वेष करते हैं, वर्षक इन्द्र, उनका वध करने के लिए तुम गन्ता वा शब्दकर्त्ता, वर्षक और प्रदीप्त वज्र को तेज करो।

१०. स्वर्ग, पृथिवी, जल, पर्वत आदि सब पर इन्द्र का आधिपत्य है। बली और बुद्धिमान् व्यक्तियों पर इन्द्र का ही आधिपत्य है। नई वस्तुएँ पाने के लिए और प्राप्त वस्तुओं की रक्षा के लिए इन्द्र की प्रार्थना करनी होती है।

११. रात्रि, दिन, आकाश, जलधारक सागर, विशाल वायु, पृथिवी की सीमा, नदी, मनुष्य आदि से इन्द्र बड़े हैं। इन्द्र सबका अतिक्रम किये हुए हैं।

१२. इन्द्र, तुम्हारा आयुध टूटने योग्य नहीं है। ज्योतिर्मयी उषा की पताका—किरण के समान तुम्हारा आयुध शत्रुओं के ऊपर गिरे। जैसे आकाश से वज्र गिरकर वृक्षों को विध्वस्त करता है, वैसे ही तुम अनिष्टकारी शत्रुओं को, अतीव उत्तप्त और गर्जनकारी अस्त्र से, छेदो।

१३. उत्पन्न होने के साथ इन्द्र के पीछे-पीछे मास, वन, वनस्पति, पर्वत और परस्पर संयुक्त द्यावापृथिवी जाने लगे।

१४. इन्द्र, जिस अस्त्र (वा वाण) को फेंक कर तुमने पापी राक्षस को काटा था, वह फेंकने योग्य कहाँ है? जैसे गोहत्या के स्थान में गायें काटी जाती हैं, वैसे ही तुम्हारे इस अस्त्र से निहत होकर मित्रद्वेषी राक्षस लोग पृथिवी पर गिरकर (अनन्त निद्रा में) सो जाते हैं।

१५. जिन राक्षसों ने शत्रुता करते-करते और अत्यन्त पीड़ा पहुँचाते-पहुँचाते हमें घेर लिया, इन्द्र, वे गूढ़ अन्धकार में गिरें, उजियाली रात भी उनके लिए अन्धकारमयी रजनी हो जाय।

१६. यजमान तुम्हारे लिए अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। स्तोता ऋषियों के मन्त्र तुम्हें आह्लादित करते हैं। सब मिलकर तुम्हें जो बुलाते हैं, उसे कहो। पूजकों के ऊपर प्रसन्न होकर उनके पास जाओ।

१७. इन्द्र, तुम्हारे स्तोत्र हमारी रक्षा करते हैं। हम नये-नये और उत्तम स्तोत्र प्राप्त करें। हम विश्वामित्र की सन्तति हैं। रक्षण के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम नाना पदार्थ प्राप्त करें।

१८. उन स्थूल-काय और धनी इन्द्र को हम बुलाते हैं। युद्ध-समय में जिस समय अन्न आदि बाँटे जायँगे, उस समय वही प्रधान रूप से अध्यक्षता करते हैं। युद्ध में वे अपने पक्ष की रक्षा के लिए उग्र मूर्त्ति धारण करके शत्रुओं को मारते हैं, वृत्रों का वध करते हैं और समस्त धन जीतते हैं।

९० सूक्त

(देवता पुरुष। ऋषि नारायण। छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप्।)

१. विराट् पुरुष (ईश्वर) सहस्र (अनन्त) शिरों, अनन्त चक्षुओं और अनन्त चरणोंवाले हैं। वे भूमि (ब्रह्माण्ड-गोलक) को चारों ओर से व्याप्त करके और दश-अंगुलि-परिमाण अधिक होकर अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहर भी व्याप्त होकर अवस्थित हैं।

२. जो कुछ हुआ है और जो कुछ होनेवाला है, सो सब ईश्वर (पुरुष) ही हैं। वे देवत्व के स्वामी हैं; क्योंकि प्राणियों के भोग्य के निमित्त अपनी कारणावस्था को छोड़कर जगदवस्था को प्राप्त करते हैं।

३. यह सारा ब्रह्माण्ड उनकी महिमा है—वे तो स्वयं अपनी महिमा से भी बड़े हैं। इन पुरुष का एक पाव (अंश) ही यह ब्रह्माण्ड है—इनके अविनाशी तीन पाव तो दिव्य-लोक में हैं।

४. तीन पावोंवाले पुरुष ऊपर (दिव्य-धाम में) उठे और उनका एक पाद यहाँ रहा। अनन्तर वे भोजन-सहित और भोजन-रहित (चेतन और अचेतन) वस्तुओं में विविध-रूपों से व्याप्त हुए।

५. उन आदिपुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड-देह) उत्पन्न हुआ और ब्रह्माण्ड-देह का आश्रय करके जीव-रूप से पुरुष उत्पन्न हुए। वे देव-मनुष्यादि-रूप हुए। उन्होंने भूमि बनाई और जीवों के शरीर (पुरः) बनाये।

६. जिस समय पुरुष-रूप मानस हवि से देवों ने मानसिक यज्ञ किया, उस समय यज्ञ में वसन्त-रूप घृत हुआ, ग्रीष्म-स्वरूप काष्ठ हुआ और शरद् हव्य-रूप से कल्पित हुआ।

७. जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, उन्हीं (यज्ञ-साधक पुरुष) को यज्ञीय-पशु-रूप से मानस यज्ञ में दिया गया। उन पुरुष के द्वारा देवों, साध्यों (प्रजापति आदि) और ऋषियों ने यज्ञ किया।

८. जिस यज्ञ में सर्वात्मक पुरुष का हवन होता है, उस मानस यज्ञ से दधि-मिश्रित घृत आदि उत्पन्न हुए। उससे वायु देवतावाले वन्य (हरिण आदि) और ग्राम्य (कुक्कुर आदि) पशु उत्पन्न हुए।

९. सर्वात्मक पुरुष के होम से युक्त उस यज्ञ से ऋक् और साम उत्पन्न हुए। उससे गायत्री आदि छन्द उत्पन्न हुए और उसी से यजुः की भी उत्पत्ति हुई।

१०. उस यज्ञ से अश्व और अन्य नीचे-ऊपर दाँतोंवाले पशु उत्पन्न हुए। गौ, अज और मेष भी उत्पन्न हुए।

११. जो विराट् पुरुष उत्पन्न किये गये, वे कितने प्रकारों से उत्पन्न किये गये? इनके मुख, दो हाथ, दो उरु और दो चरण कौन हुए?

१२. इनका मुख ब्राह्मण हुआ, दोनों बाहुओं से क्षत्रिय बनाया गया, दोनों उरुओं (जघनों) से वैश्य हुआ और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ।

१३. पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए।

१४. पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से द्यौ (स्वर्ग), चरणों से भूमि, श्रोत्र से दिशायें आदि भुवन बनाये गये।

१५. प्रजापति के प्राणादि-रूप देवों ने मानसिक यज्ञ के सम्पादन-काल में जिस समय पुरुषरूप पशु को बाँधा, उस समय सात परिधियाँ (ऐष्टिक और आहवनीय की तीन और उत्तर वेदी की तीन वेदियाँ तथा एक आदित्य-वेदी आदि सात परिधियाँ वा सात छन्द) बनाई गईं और इक्कीस (बारह मास, पाँच ऋतुएँ, तीन लोक और आदित्य) यज्ञीय काष्ठ वा समिधायें बनाई गईं।

१६. देवों ने यज्ञ (मानसिक संकल्प) के द्वारा जो यज्ञ किया वा पुरुष का पूजन किया, उससे जगत्रूप विकारों के धारक और मुख्य धर्म

हुए। जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य (देवजाति-विशेष) और देवता हैं, उसे उपासक महात्मा लोग पाते हैं।

९१ सूक्त

(८ अनुवाक। देवता अग्नि। ऋषि वीतहव्य के पुत्र अरुण। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि, जागरणशील स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। दानमना अग्नि उत्तरवेदी पर बैठकर अन्नलाभ के लिए सारे हवि के होता होते हैं। वे वरणीय, व्यापक, दीप्तिमान् और शोभन सखा हैं। वे सख्य की अभिलाषा करते हुए भली भाँति प्रज्वलित होते हैं।

२. अग्नि सुशोभन और अतिथि हैं। वे यजमानों के गृहों और वनों में रहते हैं। मनुष्य-हितैषी अग्नि किसी को नहीं छोड़ते। वे प्रजा-हितैषी हैं। वे मनुष्यों—सारी प्रजा के गृह में रहते हैं।

३. अग्नि, तुम बलों से बली हो। तुम कर्म से कर्म शोभन-कर्मा और क्रान्त कर्म से मेधावी हो। तुम सर्वज्ञ और धनों के स्थापक हो। तुम अकेले रहते हो। द्यावापृथिवी जिन धनों का संवर्द्धन करते हैं, उनके भी तुम स्वामी हो।

४. यज्ञवेदी के ऊपर यथासमय घृत-युक्त निवास-स्थान बनाया जाता है। अग्नि, तुम उसे पहचान कर बैठो। तुम्हारी ज्वालायें प्रभात की आभा अथवा सूर्य की किरणों के समान विमल देखी जाती हैं।

५. तुम्हारी विचित्र शिखायें जल-वर्षक मेघ से निकलीं। बिजली अथवा प्रभात की आगमन-सूचिका आभाओं के समान देखी जाती हैं। उस समय तुम मानो बन्धन से मुक्त होकर वन और काष्ठ को खोजते हो। यह सब तुम्हारे मुख का अन्न है।

६. ओषधियाँ अग्नि को यथासमय गर्भ-स्वरूप धारण करती हैं और माता के समान जल उन्हें जन्म देता है। वन-स्थित लतायें गर्भवती होकर बराबर उन्हें एक भाव से जन्माती हैं।

७. अग्नि, तुम वायु के द्वारा कम्पित होकर संचालित होते हो एवम् सुन्दर वनस्पतियों में पैठकर रहते हो। अग्नि, जिस समय तुम जलाने को तैयार होते हो, उस समय रथारूढ़ योद्धाओं के समान तुम्हारी प्रबल और अक्षय्य शिखायें, पृथक्-पृथक् होकर, बल का प्रकाश करती हैं।

८. अग्नि लोगों को मेधावी बनानेवाले, यज्ञ के सिद्धिदाता, होम-निष्पादक, अतीव विराट् और ज्ञानी हैं। हवि कम वा अधिक मात्रा में दिया जाय, अग्नि को ही सदा उसे स्वीकार करना पड़ता है—अन्य किसी को भी नहीं।

९. अग्नि, यजमान लोग, यज्ञ के समय तुम्हें पाने की अभिलाषा करके होता के रूप से तुम्हें ही वरण करते हैं। उस समय देवभक्त मनुष्य लोग कुश का छेदन करके और हवि लाकर तुम्हारे लिए हवि देते हैं।

१०. अग्नि, यथासमय तुम्हें ही होता और पोता का कार्य करना पड़ता है। यज्ञ-कर्त्ता के लिए तुम्हीं नेष्टा और अग्नि हो। तुम प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का कार्य करते हो। तुम हमारे गृह के गृहपति हो।

११. अग्नि, जो मनुष्य तुम्हें अमर जानकर समिधा और हवि देता है, उसके तुम होता होते हो, उसके लिए तुम देवों के पास दूत-कर्म करते हो, देवों को निमन्त्रित करते हो, यज्ञानुष्ठान करते हो और अध्वर्यु का कार्य करते हो।

१२. अग्नि के लिए यह सारा ध्यान, वेद-वाक्य और स्तोत्र किये जाते हैं। ज्ञानी अग्नि वासक हैं। अर्थाभिलाष से ये सारे स्तोत्र उनमें जाकर मिलते हैं। श्री-वृद्धि करनेवाले अग्नि, इन स्तोत्रों की वृद्धि होने पर सन्तुष्ट होते हैं।

१३. स्तोत्राभिलाषी उन प्राचीन अग्नि के लिए मैं अत्यन्त नूतन और सुन्दर स्तोत्र कहता हूँ। वे सुनें। जैसे प्रणय-परवशा स्त्री बढ़िया कपड़े पहनकर पति के हृदय-देश में अपनी देह को मिलाती है, वैसे ही मैं अग्नि हृदय के मध्य-स्थान को छूता हूँ।

१४. जिन अग्नि में घोड़ों, बली बृषों और पौरुष-हीन मेषों की, अश्वमेध-यज्ञ में, आहुति दी जाती है, जो जल पीते हैं, जिनके ऊपर सोम रहता है और जो यज्ञानुष्ठाता हैं, उन अग्नि के लिए हृदय से मैं कल्याण-कारी स्तुति बनाता हूँ।

१५. जैसे स्रुक् में घी रक्खा जाता है और जैसे चमस में सोमरस रक्खा जाता है, वैसे ही अग्नि, तुम्हारे मुँह में हवि, पुरोडाश आदि का हवन किया जाता है। तुम मुझे अन्न, अर्थ, उत्कृष्ट पुत्र, पौत्र आदि और विपुल यश दो।

९२ सूक्त

(देवता नाना। ऋषि मनु-पुत्र शार्यात। छन्द जगती।)

१. देवो, यज्ञ-नेता, मनुष्यों के स्वामी, होता, रात्रि के अतिथि और विविध-दीप्ति-धनवाले अग्नि की सेवा करो। शुष्क काष्ठों को जलानेवाले और हरे काठों में ढँके जानेवाले, कामवर्षक, यज्ञ की पताका और यजनीय अग्नि आकाश में सोते हैं।

२. रक्षक और धर्म-धारक अग्नि को देवों और मनुष्यों ने यज्ञ-साधक बनाया। वे महान् पुरोहित और शोभन वायु के पुत्र हैं। उषायें उन्हें, सूर्य के समान, चूमती हैं।

३. स्तुत्य अग्नि जो मार्ग दिखा देते हैं, वही प्रकृत है। हम जिसका हवन करते हैं, उसका वे भोजन करें। जिस समय उनकी प्रबल शिखायें दीप्तिशील हुईं, उस समय देवों के लिए फेंकी जाने लगीं।

४. विस्तृत द्यौ, विस्तीर्ण वचन, व्याप्त अन्तरिक्ष, स्तुत्य और असीम पृथिवी यज्ञीय अग्नि को नमस्कार करते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, भग, सविता आदि पवित्र बलवाले देवता आविर्भूत होते हैं।

५. वेगशाली मरुतों की सहायता पाकर नदियाँ बहती हैं और असीम भूमि को ढँकती हैं। सर्वत्र विचरण करनेवाले इन्द्र सर्वत्र जाकर, मरुतों की सहायता से, आकाश में गरजते हैं और महावेग से संसार में जल बरसाते हैं।

६. जिस समय मरुत् लोग कार्यारम्भ करते हैं, उस समय संसार को खींच लेते हैं। वे आकाश के श्येन पक्षी और मेघ के आश्रय हैं। वरुण, मित्र, अर्यमा और अश्वारोही इन्द्र, अश्वारूढ़ मरुतों के साथ, ये सारी बातें देखते हैं।

७. स्तोता लोग इन्द्र से रक्षण, सूर्य से वृष्टि-शक्ति और वर्षक इन्द्र से पौरुष पाते हैं। जो स्तोता उत्कृष्ट रूप से इन्द्र की पूजा प्रस्तुत करते हैं, वे यज्ञ-काल में, इन्द्र के वज्र को सहायक पाते हैं।

८. इन्द्र के डर से सूर्य भी अपने अश्वों को चलाते और मार्ग में जाने के समय सबको प्रसन्न करते हैं। उन इन्द्र से कौन नहीं डरता ? वे भयानक और वारि-वर्षक हैं। वे आकाश में शब्द करते हैं । शत्रुओं को हरानेवाली वज्रध्वनि उन्हीं के डर से प्रतिदिन प्रकट होती रहती है।

९. आज उन्हीं कर्म-कुशल और रुद्र को नमस्कार तथा अनेक स्तोत्र अर्पित करो। वे शत्रुओं का विनाश करते हैं वे अश्वारूढ़ और उत्साही मरुतों की सहायता पाकर और आकाश से जल-सिंचन करके मङ्गलजनक होते हैं और अपनी कीर्त्ति का विस्तार करते हैं।

१०. बृहस्पति और सोमाभिलाषी अन्य देवताओं ने प्रजावृन्द के लिए अन्न का संचय किया है। अथर्वा ऋषि ने सबसे प्रथम यज्ञ के द्वारा देवों को सन्तुष्ट किया। देवता लोग और भृगुवंशधर लोग बल प्रकट करके उस यज्ञ में गये और यज्ञ को जाना।

११. नराशंस नामक यज्ञ में चार अग्नि स्थापित किये गये। बहु-वृष्टि-वर्षक द्यावापृथिवी, यम, अदिति, धनद त्वष्टा, ऋभु लोगों, रुद्र की स्त्री, मरुतों और विष्णु ने यज्ञ में स्तोत्र प्राप्त किया था।

१२. अभिलाषी होकर हम लोग जो विशाल-विशाल स्तोत्र करते हैं, यज्ञ के समय आकाशवासी अहिर्बुध्न्य वह सब सुनें। आकाश में घूमने-वाले सूर्य और इन्द्र, तुम लोग आकाश में रहकर अन्तःकरण से मेरी स्तोत्र सुनो।

१३. समस्त देवों के हितैषी और जल के वंशज पूषादेव हमारे पशु इत्यादि की रक्षा करें। यज्ञ के लिए वायु भी रक्षा करें। धन के लिए आत्म-स्वरूप वायु की स्तुति करो। अश्विद्वय, तुम्हें बुलाने से कल्याण होता है। मार्ग में जाने के लिए तुम वह स्तोत्र सुनो।

१४. सारी प्रजा को जो अभय देने के स्वामी हैं, जो अपनी कीर्त्ति का स्वयं उपार्जन करते हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं। देवपत्नियों के साथ अविचल अदिति और रात्रि-पति चन्द्रमा की हम स्तुति करते हैं। वे मनुष्यों पर अनुग्रह करते हैं।

१५. ज्येष्ठ अङ्गिरा ऋषि इस यज्ञ में स्तुति करते हैं। प्रस्तर ऊपर उठकर यज्ञीय सोम को प्रस्तुत करते हैं। सोम को पीकर बुद्धिशाली इन्द्र मोटे हुए—उनका अस्त्र उत्तम वारि-वर्षण करने लगा।

९३ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि पृथु-पुत्र ताम्ब। छन्द बृहती, अनुष्टुप् आदि।)

१. द्यावापृथिवी, तुम लोग अतीव विस्तृत होओ। विशाल-मूर्त्ति होकर तुम लोग, स्त्री के समान, हमारे गृह में आओ। इन रक्षणों से हमें शत्रु से बचाओ। इन कार्यों के द्वारा हमें शत्रु से भली भाँति बचाओ।

२. जो मनुष्य सभी यज्ञों में देवों की सेवा करता है और जो अनेक शास्त्रों का श्रोता सुखकर हवि के द्वारा देवों की सेवा करता है, (वही प्रकृत देव-सेवक है।)

३. देवता लोग सबके प्रभु हैं। उनका दान महान् है। वे सब प्रकार के बलों से बली हैं। वे सब यज्ञों के समय यज्ञ-भाग पाते हैं।

४. जिन रुद्र-पुत्रों की स्तुति करने पर मनुष्यों को सुख मिलता है वे अर्यमा, मित्र, सर्वज्ञ वरुण और भग अमृत के राजा, स्तुत्य और पुष्टि-कर्त्ता हैं।

५. जिस समय अहिर्बुध्न्य जल के साथ एकत्र होकर बैठते हैं, उस समय सूर्य और चन्द्रमा एकत्र बैठकर दिन-रात जल-स्वरूप धन का वर्षण करते हैं।

६. कल्याण के अधिपति अश्विद्वय, मित्र और वरुण अपने शरीरों वा तेज से हमारी रक्षा करें। इनके द्वारा रक्षित यजमान बहुत धन पाता है और मरुभूमि के समान दुर्गति से पार पाता है।

७. हम स्तुति करते हैं। रुद्रपुत्र वायु, अश्विद्वय, समस्त देवता, रथारूढ़ पूषा, ऋभु, अन्नवान् भग, सर्वत्रगामी इन्द्र, सर्वज्ञाता ऋभुक्षण आदि हमें सुख दें।

८. महान् इन्द्र यज्ञ के द्वारा प्रभायुक्त होते हैं। इन्द्र, जिस समय तुम वेगशाली रथ की योजना करते हो, उस समय यज्ञकर्त्ता भी आनन्द पाते हैं। इन्द्र के लिए जो सोम का पान होता है, वह असाधारण है। उनके लिए जो यज्ञानुष्ठान होता है, वह मनुष्य के लिए साध्य नहीं है। वह दिव्य है।

९. प्रेरक देव, हमें अलज्जित करो। तुम धनी यजमानों के ऋत्विकों के द्वारा स्तुत होते हो। इन्द्र हमारे बल-रूप हैं। उन्होंने इन मनुष्यों के यज्ञ में आने के लिए अपने उज्ज्वल रथ-चक्र में मानो वायु को जोता—महावेग से पधारे।

१०. द्यावापृथिवी, तुम लोग हमारे पुत्रादि को प्रभूत अन्न दो। वह अन्न लोगों के लिए यथेष्ट हो, बलकर हो, धन-लाभ और विपत्ति से परित्राण पाने के लिए उपयोगी हो।

११. इन्द्र, जिस समय तुम हमारे पास आने की इच्छा करते हो, उस समय स्तोता जहाँ कहीं भी रहे, यज्ञ करते समय उसकी रक्षा करो। हे धनद, तुम्हारी जो स्तुति करता है, उसको जानो।

१२. मेरा यह विस्तृत स्तोत्र, दीप्ति के साथ, सूर्य के लिए जाता है और मनुष्यों की श्री बढ़ाता है। जैसे बढ़ई अश्व के खींचने योग्य सुदृढ़ रथ बनाता है, वैसे ही मैंने इसे बनाया है।

१३. जिनके पास हम धन की इच्छा करते हैं, उनके लिए हम अत्यन्त उत्तम स्तोत्र का बार-बार पारायण करते हैं। जैसे युद्ध के सैनिक बार-बार अग्रसर होते हैं अथवा जैसे घटीचक्र श्रेणीबद्ध होकर आगे-पीछे चलता है, हमारे स्तोत्र भी वैसे ही हैं।

१४. जैसे सब देवता पाँच सौ रथों में घोड़े जोतकर, यज्ञ में जाने के लिए, मार्ग में जाते हैं, वैसे ही उनके प्रशंसा-युक्त स्तोत्र का पाठ मैंने दुःशीम, पृथवान्, वेन और बली राम आदि धनपति राजाओं के पास किया है।

१५. इन राजाओं से ताम्ब, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियों ने शीघ्र ही सतहत्तर गायें माँगीं।

९४ सूक्त

(देवता सोमाभिषव-सम्बन्धी प्रस्तर। ऋषि अर्बुद। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. प्रस्तर अभिषव-शब्द करें। हम यजमान उन प्रस्तरों की स्तुति करते हैं। ऋत्विको, स्तोत्रपाठ करो। आदरणीय और दृढ़ प्रस्तर, इन्द्र के लिए सोमाभिषव का शब्द करो। सोमवालो, सोम से तृप्त होओ।

२. ये पत्थर सौ वा सहस्र व्यक्तियों के समान शब्द करते हैं। ये सोम-संसर्ग से हरित-वर्ण मुखों से देवों को बुलाते हैं। शोभनकर्मा ये पत्थर यज्ञ को पाकर देवाह्वान करनेवाले अग्नि के पूर्व ही भक्षणीय हवि को पाते हैं।

३. नये वा लाल रंग की शाखा को खाते हुए शोभन भोजनवाले वृषभों के समान ये प्रस्तर शब्द करते हैं। जैसे मांस भक्षण करनेवाले मांस-पाक होने पर आनन्द-ध्वनि करते हैं, वैसे ही ये भी शब्द करते हैं।

४. मदकर और बुलाये जाते हुए सोम से ये प्रस्तर इन्द्र को बुलाते हुए विशाल शब्द करते हैं। इन्होंने मुख से मदकर सोम को प्राप्त किया। ये अभिषव-कार्य में लगकर और धीर होकर अपने शब्दों से पृथिवी को भरते हुए भगिनी-स्वरूप अँगुलियों के साथ नाचते हैं।

५. प्रस्तरों का शब्द सुनकर विदित होता है कि, आकाश में पक्षी शब्द करते हैं। ये मृगों के स्थान में गमनशील कृष्ण-सार मृगों के समान गति-शील होकर नाच रहे हैं। निष्पीड़ित सोमरस को ये प्रस्तर नीचे गिराते हैं—मानो सूर्य के समान श्वेतवर्ण जल धारण करते हैं।

६. जैसे बली अश्व परस्पर मिलकर और रथ की धुरा को धारण करके रथ ले जाते हैं और शरीर को बढ़ाते हैं, वैसे ही ये प्रस्तर भी आयत होकर सोमरस को बरसाते हैं। ये सोम का ग्रास करते-करते, श्वास के साथ, शब्द करते हैं। घोड़ों के समान इनके मुख से निकले शब्द को मैं सुनता हूँ।

७. इन अविनाशी प्रस्तरों का गुण-कीर्त्तन करो। सोम के अभिषव के समय, जब कि, दस अँगुलियाँ इन्हें छूती हैं, उस समय इन दस अँगुलियों को प्रस्तर-स्वरूप घोड़ों की दस वरत्रा (कसने का रस्सा= तंग) अथवा दस योक्त्र (घोड़े के सामान), दस रथ जोतने की रस्सियाँ अथवा दस लगाम जाना जाता है। वा दस रथ-धुरायें इकट्ठा होकर ढोती हैं।

८. ये प्रस्तर दस अँगुलियों को बन्धन की रस्सी के समान पाकर शीघ्र-शीघ्र कार्य करते हैं। इनके द्वारा उत्पादित सोमरस हरित-वर्ण होकर आ रहा है। सोम के टुकड़े कूट जाकर और अन्नरूप धारण करके अमृतरस निकालते हैं। सोम का प्रथम खण्ड ये ही पाते हैं।

९. वे पत्थर सोम का भक्षण करके इन्द्र के दो घोड़ों को चूमते हैं—अर्थात् इन्द्र के रथ के पास जाते हैं। डाँठ अंशु से रस निकलकर गो-चर्म के ऊपर जाता है। ये पत्थर सोम से जो मधुर रस निकालते हैं, उसे पीकर इन्द्र फूलते और बढ़ते हैं—साँड़ के समान बल प्रकट करते हैं।

१०. प्रस्तरो, सोम का अंशु, खण्ड वा डाँठ तुम्हें रस देगा; तुम निराश नहीं होना। तुम जिनके यज्ञ में रहते हो, वे सदा अन्न और भोजनवाले होते हैं और सदा धनी लोगों के समान उज्ज्वल तेज से युक्त होते हैं।

११. तुम स्वयं निराश न होकर दूसरे को निराश करनेवाले हो। तुम्हें परिश्रम, शिथिलता, मृत्यु, जरा, रोग, तृष्णा और स्पृहा नहीं है। तुम मोटे हो। तुम लोग फेंकने और बटोरने में बहुत निपुण हो।

१२. तुम्हारे पूर्वज पर्वत युग-युगान्तरों से स्थिर हैं, पूर्णाभिलाष हैं और किसी भी कारण से अपना स्थान नहीं छोड़ते। वे अजर और हरे वृक्ष से युक्त हैं। हरे वर्ण के होकर पक्षियों के कलरव के द्वारा द्यावापृथिवी को पूर्ण करते हैं।

१३. जैसे रथारोही लोग रथ चलाने के स्थान पर रथ चलाकर ध्वनि प्रकट करते हैं, वैसे ही ये पत्थर सोमरस को उत्पन्न करने के समय शब्द करते हैं। जैसे धान्य बोनेवाले धान्य बोते हैं, वैसे ही ये सोमरस फैलाते हैं। ये खाकर उसे नष्ट नहीं करते।

१४. सोमाभिषव होने पर पत्थर शब्द करते हैं—मानो क्रीड़ाशील बालक क्रीड़ास्थल में अपनी माता को ठेलकर शब्द करते हैं। जो पत्थर सोमरस का अभिषव कर चुके हैं, उनकी स्तुति करो। प्रस्तर, प्रस्तुत होकर, घूमें।

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

९५ सूक्त

(पञ्चम अध्याय। देवता तथा ऋषि उर्वशी और पुरुरवा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. (पुरुरवा की उक्ति)—अयि निष्ठुर पत्नी, अनुरागी चित्त से ठहरो। हम लोग शीघ्र कथनोपकथन करें। इस समय यदि हम दोनों में बातें नहीं हों तो आनेवाले दिनों में सुख नहीं होगा।

२. (उर्वशी की उक्ति)—केवल बात-चीत से क्या होगा? प्रथम उषा के समान तुम्हारे पास से मैं चली आ रही हूँ। हे पुरुरवा, तुम अपने घर लौट जाओ। मैं वायु के समान दुष्प्राप्य हूँ।

३. (पुरुरवा का कथन)—तुम्हारे विरह के कारण मेरे तुणीर से बाण नहीं निकलता, जय-श्री नहीं मिलती और युद्ध में जाकर मैं अपरिमित गायों को नहीं ले आ सकता। राज-कार्य वीर-विहीन हो गया है। इसकी कोई शोभा नहीं है। मेरे सैनिकों ने युद्ध में सिंहनाद करने की चिन्ता छोड़ दी थी।

४. (उर्वशी का कथन)—उषा, यदि उर्वशी श्वशुर को भोजन-सामग्री देने की इच्छा करती, तो सन्निहित गृह से पति के शयन-गृह में जाती और दिन-रात स्वामी के पास रमण-सुख भोगती।

५. पुरुरवा, तुम दिन में मुझे तीन बार पुरुष-दण्ड से ताड़ित करते थे। किसी सपत्नी के साथ मेरी प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। मुझे ही तुम नियमित रूप से सन्तुष्ट करते थे। तुम्हारे गृह में मैं आई। तुम मेरे वीर राजा हुए। तुम मेरे सारे सुखों के विधायक हुए।

६. (पुरुरवा की उक्ति)—सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्न, आपि, ह्रदेचक्षु, ग्रन्थिनी, चरण्यू आदि जो महिलायें वा अप्सरायें थीं, तुम्हारे आने के बाद वे सब मेरे पास वेश-भूषा करके नहीं आती थीं। गोष्ठ में जाते समय जैसे गायें बोलती हैं, वैसे शब्द करके वे सब अब मेरे गृह में नहीं आती थीं।

७. (उर्वशी की उक्ति)—जिस समय पुरुरवा ने जन्म ग्रहण किया, उस समय देव-पत्नियाँ देखने आईं। अपनी शक्ति से बहनेवाली नदियों ने भी उनकी संवर्द्धना की। पुरुरवा, तुम्हें दस्यु-वध करने को, घोर युद्ध में भेजने के लिए, देवता लोग तुम्हारी संवर्द्धना करने लगे।

८. (पुरुरवा का कथन)—जिस समय मनुष्य होकर पुरुरवा अप्सराओं की ओर अग्रसर हुए, उस समय वे अपना रूप छोड़कर अन्तर्धान हो गईं। जैसे डर के मारे हरिणी भागती है अथवा जैसे रथ में जोते हुए घोड़े भागते हैं, वैसे ही वे चली गईं।

९. जिस समय पुरुरवा मनुष्य होकर देवलोकवासिनी अप्सराओं के साथ बातें करने और उनका शरीर छूने को आगे बढ़े, उस समय वे

लुप्त हो गईं—अपने शरीर को नहीं दिखाया—क्रीड़ाशील अश्वों के समान भाग गईं।

१०. जिस उर्वशी ने आकाश से पतनशील विद्युत् के समान शुभ्रता धारण की थी और मेरे सारे मनोरथों को पूर्ण किया था, उसके गर्भ से मनुष्य का औरस सुन्दर पुत्र जन्मा था। उर्वशी उसे दीर्घायु करे।

११. (उर्वशी का कथन)—पुरुरवा, पृथिवी की रक्षा के लिए तुमने पुत्र को जन्म दिया था, मेरे गर्भ में वीर्य-पात किया था, मैंने तुमसे बारबार कहा है कि, क्या होने से मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगी; क्योंकि मैं यह बात जानती थी। परन्तु मेरी बात नहीं सुनी। इस समय पृथिवी-पालन-कार्य को छोड़कर क्यों वृथा बात करते हो?

१२. (पुरुरवा की उक्ति)—कब तुम्हारा पुत्र मुझे चाहेगा? यदि वह मेरे पास आवे, तो क्या वह नहीं रोवेगा? आँसू नहीं गिरावेगा? परस्पर प्रेम से सम्पन्न स्त्री-पुरुष में विच्छेद करने की किसकी इच्छा होगी? तुम्हारे श्वशुर के गृह में तेजोरूप गर्भ प्रदीप्त हो उठा।

१३. (उर्वशी का कथन)—मैं तुम्हारी बात का उत्तर देती हूँ। तुम्हारे पास पुत्र जाकर अश्रु-पात वा क्रन्दन नहीं करेगा। मैं उसकी कल्याण-कामना करूँगी। तुम्हारे पुत्र को मैं तुम्हारे पास भेज दूँगी। मूढ़, अपने घर को लौट जाओ। अब मुझे नहीं पा सकोगे।

१४. (पुरुरवा की उक्ति)—तुम्हारा प्रेमी पति (मैं) आज गिर पड़ा—फिर कभी नहीं उठा। वह बहुत दूर चला गया। वह निर्ऋति (दुर्गति) में मर जाय। उसे वृक आदि खा जायें।

१५. (उर्वशी की उक्ति)—पुरुरवा, तुम मृत्यु-कामना मत करो। यहीं मत गिरो। तुम्हें वृक (भेंड़िया) आदि न खायें। स्त्रियों का प्रेम वा मैत्री स्थायी नहीं होती। स्त्रियों और वृकों का हृदय एक समान होता है।

१६. मैं नाना रूपों में मनुष्यों में घूमी हुई हूँ। मैंने मनुष्यों में चार

वर्ष रात्रि-वास किया है। दिन में एक बार कुछ घी पीकर क्षुधा-निवृत्ति करते हुए मैंने भ्रमण किया है।

१७. (पुरुरवा का कथन)—अन्तरिक्ष को पूर्ण करनेवाली और जल को बनानेवाली उर्वशी को वसिष्ठ (अतीव वासयिता पुरुरवा) वश में ले आते हैं। शुभ-कर्म-दाता पुरुरवा तुम्हारे पास रहे। मेरा हृदय जल रहा है; इसलिए हे उर्वशी, लौटो।

१८. (उर्वशी की उक्ति)—इला-पुत्र पुरुरवा, ये सारे देवता तुमसे कह रहे हैं कि, तुम मृत्युजयी होओगे, हवि से देवों की पूजा करोगे और स्वर्ग में आकर आमोद-आह्लाद करोगे।

९६ सूक्त

(देवता इन्द्र के दोनों घोड़े। ऋषि आङ्गिरस वरु। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, इस महायज्ञ में तुम्हारे दोनों घोड़ों की मैंने स्तुति की। तुम शत्रु-हिंसक हो। भली भाँति मत्त होओ, मैं यही प्रार्थना करता हूँ। हरित-वर्ण अश्व से आकर घृत के समान सुन्दर जल गिराओ। तुम शुभ्र हो। तुम्हारे पास मेरे स्तोत्र जायें।

२. स्तोताओ, तुम लोगों ने इन्द्र को यज्ञ की ओर बुलाया है और यज्ञ-गृह की ओर इन्द्र के दोनों घोड़ों को लाये हो। घोड़ों के साथ इन्द्र के बल-वीर्य की स्तुति करो। देखो, जैसे गायें दूध देती हैं, वैसे ही इन्द्र को हरित-वर्ण सोमरस के द्वारा तृप्त करो।

३. इन्द्र का लोहे का जो वज्र है, वह हरित-वर्ण और सुन्दर है। वह शत्रु-नाशक है और दोनों हाथों में धारण किया जाता है। इन्द्र धनी हैं, सुगठित जबड़ोंवाले हैं और बाण के द्वारा क्रोध के साथ शत्रु-संहार करते हैं। हरित-वर्ण सोमरस के द्वारा इन्द्र को अभिषिक्त किया गया।

४. आकाश में सूर्य के समान उज्ज्वल वज्र धृत हुआ—मानो उसने अपने वेग से सारी दिशाओं को व्याप्त किया। सुगठित जबड़ों से युक्त

और सोमरस पीनेवाले इन्द्र ने लौहमय वज्र के द्वारा वृत्र को मारने के समय असीम दीप्ति प्राप्त की।

५. हरित केशोंवाले इन्द्र, पूर्वकालीन यजमान तुम्हारी स्तुति करते थे और तुम यज्ञ में आते थे। तुम हरित होओ। इन्द्र, तुम्हारा सब प्रकार का अन्न प्रशंसा के योग्य है, निरुपम और उज्ज्वल है।

६. स्तुत्य और वज्रधर इन्द्र जिस समय सोमरस के पान के आमोद में प्रवृत्त होते हैं, उस समय दो कमनीय घोड़े रथ में जोते जाकर उन्हें ढोते हैं। कान्त इन्द्र के लिए अनेक बार सोमरस अभिषुत किया जाता है।

७. अविचल इन्द्र के लिए यथेष्ट सोमरस रक्खा गया है। वही सोमरस इन्द्र के घोड़ों को यज्ञ की ओर वेगवान् करता है। हरित-वर्ण घोड़े जिस रथ को युद्ध में ले जाते हैं, वही रथ इस रमणीय सोमयज्ञ में आकर अधिष्ठित हुआ है।

८. इन्द्र का श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) हरित वा उज्ज्वल है। वे लोहे के समान दृढ़काय हैं। वे सोम पाते हैं। शीघ्र-शीघ्र सोमपान करके अपने शरीर को फुलाते हैं। उनकी सम्पत्ति यज्ञ है। हरितवर्ण के घोड़े उन्हें यज्ञ में ले जाते हैं। वे दो घोड़ों पर चढ़कर सारी दुर्गति दूर कर देते हैं।

९. इन्द्र के दो हरित वा उज्ज्वल नेत्र स्रुवा नामक यज्ञ-पात्र के समान यज्ञ में लगे। वे अन्न-भक्षण करने के लिए अपने दोनों हरित वा उज्ज्वल जबड़े कँपाते हैं। परिष्कृत चमस के बीच जो कमनीय सोमरस था, उसे पीकर वे अपने दो घोड़ों के शरीर को परिष्कृत करते हैं।

१०. हरित वा कमनीय इन्द्र का आवास-स्थान द्यावापृथिवी पर ही है। वे रथ पर चढ़कर घोड़े के समान महावेग से युद्ध में जाते हैं। अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्र उनकी प्रशंसा करता है। हरितवर्ण वा उज्ज्वल इन्द्र, तुम अपनी शक्ति से प्रचुर अन्न दिया करते हो।

११. इन्द्र, तुम अपनी महिमा के द्वारा द्यावापृथिवी को व्याप्त करके नित्य नये और प्रिय स्तोत्र पाते हो। असुर (बली) इन्द्र, गायों के उत्कृष्ट स्थान को जल-हरण-कर्त्ता सूर्य के पास प्रकट करो।

१२. हरित वर्ण के जबड़ोंवाले इन्द्र, तुम्हारे घोड़े रथ में जोते जाकर तुम्हें मनुष्य के यज्ञ में ले आवें। तुम्हारे लिए जो मधुर सोमरस प्रस्तुत हुआ है, उसे पियो। जो सोम दस अँगुलियों से प्रस्तुत होकर यज्ञ का उपकरण-स्वरूप हुआ, युद्ध के समय तुम उसे पीने की इच्छा करो।

१३. अश्ववाले इन्द्र, पहले (प्रातःसवन में) जो सोम प्रस्तुत हुआ है, उसका तुमने पान किया है। इस समय (माध्यन्दिन सवन में) जो प्रस्तुत हुआ है, वह केवल तुम्हारे लिए। इन्द्र, इस मधुर सोम का आस्वादन करो। प्रचुर वृष्टि-कर्त्ता इन्द्र, अपना उदर भिगोओ।

९७ सूक्त

(देवता ओषधि। ऋषि अथर्वा के पुत्र भिषक्। छन्द अनुष्टुप्।)

१. पूर्व समय में, तीन युगों (सत्य, त्रेता और द्वापर वा वसन्त, वर्षा और शरद्) में, जो ओषधियाँ प्राचीन देवों ने बनाई हैं, वे सब पिङ्गल-वर्ण ओषधियाँ एक सौ सात स्थानों में विद्यमान हैं, मैं ऐसा जानता हूँ।

२. मातृ-रूप ओषधियो, तुम्हारे जन्म असीम हैं और तुम्हारे प्ररोहण अपरिमित हैं। तुम सौ कर्मोंवाली हो। तुम मुझे आरोग्य प्रदान करो।

३. ओषधियो, तुम फूल और फलवाली हो। तुम रोगी के प्रति सन्तुष्ट होओ। तुम घोड़ों के समान रोगों के लिए जयशील हो और पुरुषों को रोग से पार ले जानेवाली हो।

४. दीप्तिशाली ओषधियो, तुम मातृ-रूप हो। तुम्हारे सामने मैं स्वीकार करता हूँ कि, चिकित्सक को गौ, अश्व, वस्त्र और अपने को भी देने को प्रस्तुत हूँ।

५. ओषधियो, तुम्हारा अश्वत्थ वृक्ष और पलाश वृक्ष पर निवास-स्थान है। जिस समय तुम लोग रोगी के ऊपर अनुग्रह करती हो, उस समय तुम्हें गायें देना उचित है—तुम विशिष्ट कृतज्ञता की पात्रा हो।

६. जैसे राजा लोग समिति में एकत्र होते हैं, वैसे ही जिसके पास ओषधियाँ हैं वा जो उन्हें जानता है, उसी बुद्धिमान् भिषक् को चिकित्सक कहा जाता है। वह रोगों का विनाश-कर्त्ता है।

७. इसे नीरोग करने के लिए मैं अश्ववती, सोमवती, ऊर्जयन्ती, उदोजस आदि ओषधियों को जानता हूँ।

८. रोगी, जैसे गोष्ठ से गायें बाहर होती हैं, वैसे ही ओषधियों से उनका गुण बाहर होता है। ये ओषधियाँ तुम्हें स्वास्थ्य-धन देंगी।

९. ओषधियो, तुम्हारी माता का नाम इष्कृति (नीरोग करनेवाली) है। तुम लोग भी रोगों को दूर करनेवाली हो। जो कुछ शरीर को पीड़ा देता है, उसे तुम लोग वेग से बाहर निकाल दो। तुम रोगी को नीरोग करती हो।

१०. जैसे कोई चोर गोष्ठ को लाँघकर जाता है, वैसे ही विश्वव्यापी और सर्वज्ञ ओषधियाँ रोगों को लाँघ डालती हैं। शरीर में जो पीड़ा होती है, उसे ओषधियाँ दूर करती हैं।

११. जभी मैं इन सब ओषधियों को हाथ में ग्रहण करता हूँ और रोगी का दौर्बल्य दूर करता हूँ, तभी रोग की आत्मा वैसे ही मर जाती है, जैसे मृत्यु से जीव मर जाता है।

१२. ओषधियो, जैसे बली और मध्यस्थ व्यक्ति सबको अधीन करते हैं, वैसे ही, ओषधियो, तुम लोग जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और ग्रन्थि-ग्रन्थि में विचरण करती हो, उसके रोग सभी शरीरावयवों से दूर करती हो।

१३. नीलकण्ठ और किकिदीवि (श्येन!) पक्षी जैसे द्रुत वेग से उड़ जाते हैं अथवा जैसे वायु वेग से बहता है वा जैसे गोधा (गोह) दौड़ती है, वैसे ही, रोग, तुम भी शीघ्र दूर होओ।

१४. ओषधियो, तुम लोगों में एक ओषधि दूसरी के पास जाय और दूसरी तीसरी के पास जाय। इस प्रकार संसार की सारी ओषधियाँ एकमत होकर मेरी प्रार्थना की रक्षा करें।

१५. फलवती और फलशून्या तथा पुष्पवती और पुष्पशून्या ओषधियाँ, बृहस्पति के द्वारा उत्पादित होकर, हमें पाप से बचावें।

१६. शपथ से उत्पन्न पाप से मुझे ओषधियाँ बचावें। वरुण के पाश और यम की बेड़ी से भी बचावें। देवों के पाश से भी बचावें।

१७. स्वर्ग से नीचे आते समय ओषधियों ने कहा था कि, हम जिस प्राणी पर अनुग्रह करती हैं, उसका कोई अनिष्ट न हो।

१८. जिन ओषधियों का राजा सोम है और जो ओषधियाँ असीम उपकार करती हैं, ओषधि, उनमें तुम श्रेष्ठ हो, तुम वासना को पूरी करने और हृदय को सुखी करने में समर्थ हो।

१९. जिन ओषधियों का राजा सोम है और जो पृथिवी के नाना स्थानों में अधिष्ठित हैं, वे ही बृहस्पति के द्वारा उत्पादित ओषधियाँ इस रोगी को बल दें अथवा इस उपस्थित ओषधि को वीर्यवती करें।

२०. ओषधियो, मैं तुम्हें खोदकर निकालनेवाला हूँ। मुझे नष्ट नहीं करना। जिसके लिए खोदता हूँ, वह भी नष्ट नहीं हो। हमारी जो द्विपद और चतुष्पद आदि सम्पत्तियाँ हैं, वे नीरोग रहें।

२१. जो ओषधियाँ मेरा यह स्तोत्र सुनती हैं और जो अत्यन्त दूर पर हैं (इसी लिए स्तोत्र नहीं सुना है), वे सब इकट्ठी होकर इस ओषधि को वीर्यवती करें।

२२. ओषधियाँ सोम राजा के साथ यह कथोपकथन करती हैं। राजन्, जिसकी चिकित्सा स्तोता करते हैं, उसे ही हम बचाते हैं।

२३. ओषधि, तुम श्रेष्ठ हो। जितने वृक्ष हैं, सब तुमसे हीन हैं। जो हमारा अनिष्ट-चिन्तन करता है, वह हमारे पास न आय।

९८ सूक्त

(देवता नाना। ऋषि ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. बृहस्पति, तुम मेरे लिए प्रत्येक देवता के पास जाओ। तुम मित्र, वरुण, पूषा अथवा आदित्यों और वसुओं के साथ इन्द्र (मरुत्वान्) ही हो। तुम शन्तनु (याज्ञिक) राजा के लिए मेघ से जल बरसाओ।

२. देवापि, कोई एक ज्ञानी और शीघ्रगामी देवता दूत होकर तुम्हारे यहाँ से मेरे पास आवें। बृहस्पति, हमारे प्रति अभिमुख होकर आओ। हमारे मुँह में तुम्हारे लिए शुभ्र स्तोत्र धृत है।

३. बृहस्पति, हमारे मुँह में तुम एक ऐसा शुभ्र स्तोत्र डाल दो, जिसमें अस्पष्टता न हो और भली भाँति स्फूर्ति हो; उसके द्वारा हम शन्तनु के लिए वृष्टि को उपस्थित करें। मधु-युक्त रस आकाश से आवे।

४. मधु-युक्त रस (वृष्टि-वारि) हमारे लिए आवे। इन्द्र, रथ के ऊपर रखकर विस्तृत धन दो। देवापि, इस होम-कार्य में आकर बैठो। यथाकाल देवों का पूजन करो और होमीय द्रव्य देकर सन्तुष्ट करो।

५. ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि ऋषि तुम्हारे लिए उत्तम स्तुति करना स्थिर करके हवन करने को बैठे। उस समय वे ऊपर के समुद्र (अन्तरिक्ष) से नीचे के पार्थिव समुद्र में वृष्टि-जल ले आये।

६. अन्तरिक्ष (समुद्र) को देवों ने आकाश में ढककर रक्खा है। ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि ने इस जल को संचालित किया। उस समय स्वच्छ भूमि पर जल बहने लगा।

७. जिस समय शन्तनु के पुरोहित देवापि (कौरव) ने, होम करने के लिए उद्यत होकर, जलोत्पादक देव-स्तोत्र को निरूपित किया, उस समय सन्तुष्ट होकर बृहस्पति ने उनके मन में स्तोत्र का उदय कर दिया।

८. अग्नि, ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि नामक मनुष्य ने कमनीय होकर तुम्हें प्रज्वलित किया। देवों का सहयोग पाकर तुम जलवर्षक मेघ को प्रज्वलित करो।

९. अग्नि, पूर्व के ऋषि लोग स्तुतियों के साथ तुम्हारे पास आये थे। बहुतों के द्वारा आहूत अग्नि, इस समय के सब यजमान यज्ञों में स्तुतियों के साथ तुम्हारे पास जाते हैं। रथ के साथ सहस्र पदार्थ शन्तनु राजा ने दक्षिणा में दिये। रोहित नामक अश्ववाले अग्नि, पधारो।

१०. अग्नि, रथों के साथ ९९ सहस्र पदार्थ तुममें आहूति-रूप में दिये गये हैं। उनसे तुम अपने शरीर को मोटा करो। द्युलोक से हमारे लिए वृष्टि करो।

११. अग्नि नब्बे सहस्र आहूतियों में से इन्द्र का भाग दो। सारे देव-यानों को जाननेवाले तुम यथासमय कौरव शन्तनु को देवों के बीच स्थापित करना।

१२. अग्नि, शत्रुओं की दुर्गम पुरियों को नष्ट करो। रोग और राक्षसों को दूर करो। इस संसार में महान् अन्तरिक्ष से असीम जल ले आओ।

९९ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वैखानस वम्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम जानकर हमें विचित्र सम्पत्ति देते हो। वह सम्पत्ति बढ़ती है, वह प्रशंसनीय है और वह हमें बढ़ाती है। इन्द्र के बल की वृद्धि के लिए हमें क्या देना होगा? उनके लिए वृत्र-हिंसक वज्र बनाया गया है। उन्होंने वृष्टि-वर्षण किया।

२. इन्द्र विद्युत् नामक आयुध से युक्त होकर यज्ञ में सामगान के प्रति जाते हैं। वे बल-पूर्वक अनेक स्थानों पर अधिकार कर डालते हैं। वे समान-स्थान में रहनेवाले मरुतों के साथ शत्रु को हराते हैं। वे आदित्यों के सप्तम भ्राता हैं। उनको त्याग करके कोई कार्य नहीं हो सकता।

३. वे सुन्दर गति से जाकर युद्ध-क्षेत्र में अवस्थित होते हैं। वे अविचल होकर सौ दरवाजोंवाली शत्रुपुरी से धन ले आते हैं और इन्द्रिय-परायण दुरात्माओं को अपने तेज से हराते हैं।

४. वे मेघों की ओर जाकर और मेघ में भ्रमण करके उर्वरा भूमि पर बहुत जल गिराते हैं। उन सब जलवाले स्थानों पर अनेक छोटी-छोटी नदियाँ एकत्र होकर घृत के समान जल को बहाती हैं। उनके न चरण हैं, न रथ है और न डोंगी (द्रोणि) है।

५. इन्द्र, बिना प्रार्थना के ही, मनोरथ को पूर्ण करते हैं। वे प्रकाण्ड हैं। उनके पास दुर्नाम नहीं जाता। वे अपने स्थान से रुद्र-पुत्र मरुतों के साथ यहाँ आवें। मुझ वम्र के माता-पिता का क्लेश चला गया; क्योंकि मैंने शत्रु-धन का हरण कर लिया है और शत्रुओं को रुलाया है।

६. प्रभु इन्द्र ने कोलाहल करनेवाले दासों का शासन किया था। उन्होंने तीन कपालों और छः आँखोंवाले विश्वरूप (त्वष्टा के पुत्र) को मारा था। इन्द्र के तेज से तेजस्वी होकर त्रित ने लोहे के समान तीखे नखोंवाली अँगुलियों से वराह का वध किया था।

७. उनके किसी भक्त को यदि शत्रु लोग युद्ध के लिए बुलाते हैं, तो वे दर्प के साथ शरीर को फुलाकर शत्रु-वध करने के लिए उत्तम अस्त्र प्रदान करते हैं। वे मनुष्यों के सर्व श्रेष्ठ नेता हैं। दस्यु-विनाश के समय मान्य इन्द्र ने अनेक शत्रु-पुरियों को ध्वस्त किया था।

८. वे मेघ-समुदाय के समान तृणमयी भूमि पर जल गिराते हैं। उन्होंने हमारे निवास का मार्ग बताया है। वे अपने शरीर के सारे अंगों में सोम गिराकर, श्येन पक्षी के समान, लोहे के सदृश तीक्ष्ण और दृढ़-पृष्ठ से दस्युओं का वध करते हैं।

९. वे पराक्रमी शत्रुओं को दृढ़ अस्त्र के द्वारा भगा देते हैं। उन्होंने कुत्स नामक व्यक्ति का स्तोत्र सुनकर शुष्ण नामक असुर को छेदा था। उन्होंने स्तोता और कवि उशना के विरोधियों को वश में किया था। वे उशना और दूसरों को दान देते हैं।

१०. मनुष्य-हितैषी मरुतों के साथ धनेप्सु होकर इन्द्र ने धन भेजा था। वे वरुण के समान अपने तेज से सुन्दर और शक्तिमान् हैं। वे रमणीय मूर्त्ति हैं। उन्हें सभी यथासमय रक्षक जानते हैं। उन्होंने चार पैरोंवाले शत्रु को मार डाला।

११. उशिज् के पुत्र ऋजिश्वा ने इन्द्र की स्तुति करके वज्र के द्वारा पिप्रु के गोष्ठ को विदीर्ण किया। जिस समय ऋजिश्वा ने सोम को

प्रस्तुत करके यज्ञ में स्तोत्र किया, उस समय आकर इन्द्र ने शत्रु-पुरियों को विनष्ट किया।

१२. बली (असुर) इन्द्र, मैं वम्र तुम्हें बहुत हवि देने की इच्छा से पैदल चलकर तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मेरा मंगल करो। अन्न, बल और उत्तम गृह आदि सारी वस्तुएँ प्रदान करो।

१०० सूक्त

(९ अनुवाक। देवता विश्वदेव। ऋषि वन्दन-पुत्र दुवस्यु। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. धनी इन्द्र, अपने समान बली शत्रु-सैन्य का वध करो। स्तोत्र को ग्रहण कर और सोम को पीकर हमारी रक्षा के लिए प्रस्तुत रहो। हमारी श्रीवृद्धि करो। अन्य देवों के साथ सविता देव हमारे विख्यात यज्ञ की रक्षा करें। हम सर्वग्राहिणी अदिति की प्रार्थना करते हैं।

२. युद्ध के लिए उपस्थित ऋतु के अनुकूल यज्ञ-भाग वायु को दो। वे विशुद्ध सोम का पान करते हैं। उनके जाने के समय शब्द होता है। वे शुभ्र दुग्ध के पीने में लगे हैं। हम सर्वग्राहिणी अदितिदेवी की प्रार्थना करते हैं।

३. हमारे सरलता चाहनेवाले और अभिषव-कर्त्ता यजमान को सवितादेवता अन्न दें, ताकि उस परिपक्व अन्न से देवों की पूजा की जा सके। सर्व ग्राहिणी अदितिदेवी की हम प्रार्थना करते हैं।

४. इन्द्र प्रतिदिन हमारे प्रति प्रसन्न रहें। हमारे यज्ञ में सोम राजा अधिष्ठान करें। बन्धुओं के आयोजन के अनुसार उक्त कर्म सम्पन्न हो। सर्वग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

५. इन्द्र स्तुत्य बल से हमारे यज्ञ की रक्षा करते हैं। बृहस्पति, तुम परमायु प्रदान किया करते हो। यज्ञ ही हमारी गति, मति, रक्षक और सुख है। सर्वग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

६. देवों का बल इन्द्र ने ही बनाया है। गृहस्थित अग्नि देवों की स्तुति करते, यज्ञ करते और कार्य-निर्वाह करते हैं। वे यज्ञ के समय पूज्य और रमणीय तथा हम लोगों के अपने हैं। सर्व-ग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

७. वसुओ, तुम्हारे परोक्ष में हमने कोई विशेष अपराध नहीं किया है। तुम्हारे सामने भी हमने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है, जो देवों के क्रोध का कारण बने। देवो, हमें मिथ्या नहीं करना। सर्वग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

८. जहाँ मधु के समान सोमरस प्रस्तुत किया जाता और अनन्तर अभिषव-प्रस्तर को भली-भाँति स्तुत किया जाता है, वहाँ का रोग सविता हटाते हैं और पर्वत वहाँ का गुरुतर अनर्थ दूर करते हैं। सर्वग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

९. वसुओ, सोम को प्रस्तुत करने का प्रस्तर ऊपर उठे। तब तक तुम लोग शत्रुओं को अव्यक्त भाव से अलग-अलग करो। सविता रक्षा करनेवाले हैं। उनका स्तोत्र करना चाहिए। सर्वग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

१०. गायो, तुम लोग गोचर-भूमि पर विचरण करके मोटी बनो। यज्ञ में तुम लोग दुग्ध-पात्र में दूध देती हो। तुम्हारा दूध सोमरस के औषध के समान हो। सर्वग्राहिणी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।

११. इन्द्र यज्ञ को पूर्ण करते हैं, सबको जरा-युक्त करते हैं। वे युवक और सोम-यज्ञ-कर्त्ता की रक्षा करते हैं और उत्तम स्तोत्र पाकर अनुकूल होते हैं। उनके पान के लिए उद्धृत द्रोण-कलश सोम से परिपूर्ण है। सर्वग्राहिणी अदितिदेवी की हम प्रार्थना करते हैं।

१२. इन्द्र, तुम्हारा प्रकाश आश्चर्यजनक है। वह प्रकाश कर्म-पूरक है। उसकी प्रार्थना करनी चाहिए। तुम्हारा दुर्द्धर्ष कार्य सारे स्तोताओं की मनःकामना पूर्ण करता है। इसी लिए द्युवस्यु ऋषि अतीव सरल रज्जु के द्वारा गाय का अग्रभाग शीघ्र खींचते हैं।

१०१ सूक्त

(देवता विश्वेदेव। ऋषि सोमपुत्र बुध। छन्द त्रिष्टुप्, जगती आदि।)

१. मित्र ऋत्विको, समान-मना होकर जागो। अनेक लोग एक स्थानवासी होकर अग्नि को प्रज्वलित करो। मैं दधिक्रा, उषा, अग्नि और इन्द्र को, रक्षण के लिए, बुलाता हूँ।

२. मित्रो, मदकर स्तोत्र करो। कर्षण (जोताई) आदि कर्मों का विस्तार करो। हल दण्ड-रूपिणी और पार लगानेवाली नौका प्रस्तुत करो। हल के फल या फाल को तेज और सुशोभित करो। मित्रो, उत्तम यज्ञ का अनुष्ठान करो।

३. ऋत्विको, हल योजित करो। युगों (जुआठों) को विस्तृत करो। यहाँ जो क्षेत्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें बीज बोओ हमारी स्तुतियों के साथ हमारा अन्न परिपूर्ण हो। हँसुए (सृणि) पास के पके धान्य में गिरे।

४. लाङ्गल (हल) जोते जाते हैं। कर्म-कर्त्ता लोग जुआठों (युगों) को अलग करते हैं और बुद्धिमान् लोग सुन्दर स्तोत्र पढ़ रहे हैं।

५. पशुओं के जलपान-स्थान को बनाओ। वरत्रा (चर्म-रज्जु) को योजित करो। अधिक, अक्षय और सेचन-समर्थ गड्ढे से जल लेकर हम सींचते हैं।

६. पशुओं का जलपान-स्थान प्रस्तुत हुआ है। अधिक, अक्षय और जल-पूर्ण गड्ढे में सुन्दर चर्म-रज्जु है। बड़ी सरलता से जल-सेचन किया जाता है। इससे जल लेकर सेचन करो।

७. घोड़ों या व्यापक बैलों को परितृप्त करो। क्षेत्र (खेत) में रक्खे हुए धान्य को लो। सरलता से धान्य ढोनेवाले रथ को प्रस्तुत करो। पशुओं का यह जल-पूर्ण जलाधार एक द्रोण (३२ सेर) होगा। इसमें पत्थर का बनाया हुआ चक्र है। मनुष्यों के पीने योग्य जलाधार कूपवत् होगा। इसे जल-पूर्ण करो।

८. गोष्ठ प्रस्तुत करो। वह स्थान ही मनुष्यों के जलपान के लिए उपयुक्त है। अनेक स्थूल कवच सी कर प्रस्तुत करो, दृढ़तर लौहमय पात्र प्रस्तुत करो और चमस को दृढ़ करो, ताकि इससे जल न चू सके।

९. देवो वा ऋत्विको, मैं तुम्हारे ध्यान को प्रवृत्त करता हूँ, ताकि तुम रक्षा करो। वह ध्यान यज्ञोपयोगी है, वही तुम्हें यज्ञ-भाग देता है। जैसे घास खाकर गायें सहस्र धाराओं से दूध देती हैं, वैसे ही वह ध्यान हमारी अभिलाषा पूर्ण करे।

१०. काठ के पात्र में रक्खे हुए हरित-वर्ण सोम को सिंचित करो। प्रस्तरमय कुठारों से पात्र प्रस्तुत करो। दस अँगुलियों के द्वारा पात्र को वेष्टन करके धारण करो। वाहक पशुओं को रथ की दोनों धुराओं में योजित करो।

११. रथ की दोनों धुराओं को शब्दायमान करके रथ-वाहक पशु वैसे ही विचरण करता है, जैसे दो स्त्रियों का स्वामी रति-क्रीड़ा करता है। काठ के शकट को काठ के आधार पर रक्खो, भली भाँति संस्थापित करो—ताकि शकट आधार-शून्य न होने पावे।

१२. कर्माध्यक्षो, इन्द्र सुख के दाता हैं। इन्हें सुखमय सोम दो। अन्न देने के लिए इन्हें प्रेरित करो, अनुरुद्ध करो। इन्द्र अदिति के पुत्र हैं। तुम सब लोगों को पीड़ा का डर है। फलतः रक्षण के लिए इन्हें यहाँ बुलाओ, ताकि सोमपान करें।

१०२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भर्माश्व-पुत्र मुद्गल। छन्द बृहती और त्रिष्टुप्।)

१. मुद्गल, युद्ध में जिस समय तुम्हारा रथ असहाय होता है, उस समय दुर्द्धर्ष इन्द्र उसकी रक्षा करें। इन्द्र, इस प्रसिद्ध युद्ध में, धनोपार्जन के समय, तुम हमारी रक्षा करना।

२. जिस समय रथ पर चढ़कर मुद्गल की पत्नी (मुद्गलानी) सहस्र गायों को जीतनेवाली हुईं, उस समय उनके वस्त्र का संचालन वायु ने किया। गायों के जीतने के समय मुद्गल-पत्नी रथी हुईं। इन्द्र-सेना नाम की वह मुद्गलानी युद्ध के समय शत्रुओं के हाथ से गायों को ले आईं।

३. इन्द्र, अनिष्टकर्त्ता और मारने को तैयार शत्रुओं के ऊपर वज्र-पात करो। दासजातीय हो वा आर्यजातीय हो, शत्रु का, गूढ़ रूप से, वध करो।

४. यह वृषभ महानन्द के साथ जल पी चुका। अपनी सींग से मिट्टी के ढेर को खोदकर वह शत्रु की ओर दौड़ा। उसका अण्डकोष लम्बायमान है। आहार की इच्छा से वह दोनों सींगों को तेज करके शीघ्र आ रहा है।

५. मनुष्यों ने इस वृषभ के पास जाकर उसे गरजाया और युद्ध के बीच उससे मूत्र-त्याग कराया। इससे मुद्गल ने उत्तम और आहार-पटु सैकड़ों-सहस्रों गायों को जीता।

६. शत्रु-हिंसा के लिए वृषभ योजित किया गया। उसकी रस्सी को धारण करनेवाली सारथि मुद्गलानी गरजने लगीं। रथ में जोते गये उस वृष को पकड़कर रक्खा नहीं गया। वह शकट लेकर दौड़ा। सेनायें मुद्गलानी के पीछे-पीछे चलीं।

७. विद्वान् मुद्गल ने रथ-चक्र को चारों ओर बाँध दिया। बड़ी निपुणता से उन्होंने रथ में बैल को जोता। गायों के पति उस वृष को इन्द्र ने बचाया। वह वृष बड़े वेग से मार्ग पर चला।

८. चाबुक और रस्सीवाला वा डील (कपर्द) वाला चर्मरज्जु (वरत्रा) के द्वारा रथाङ्ग को बाँधते हुए भली भाँति विचरण करने लगा। अनेक लोगों के धन का उद्धार करने लगा। अनेकानेक गायों को घर लाया।

९. युद्ध-सीमा में जो मुद्गल गिरा हुआ है, उसने उस वृष का साथ दिया था। इसके द्वारा मुद्गल ने सैकड़ों और सहस्रों गायों को जीता था।

१०. किसी ने अत्यन्त दूर देश में वा समीप में कभी ऐसा देखा है ? जो रथ में योजित किया जाता है, वही उसपर प्रहरण के लिए बैठाया जाता है। इसे घास और जल नहीं दिया गया है; तो भी यह रथ-धुरा का भार ढो रहा है। यह प्रभु को विजयी भी करता है।

११. पति-वियुक्ता स्त्री के समान मुद्गलानी ने शक्ति प्रदर्शित करके पति के धन का ग्रहण किया—उन्होंने मानो मेघ के समान बाण-वर्षण किया। ऐसे सारथि के द्वारा हम जय प्राप्त करें। हमें अन्न आदि मिले।

१२. इन्द्र, तुम सारे संसार के नेत्र-रूप हो। जिन्हें नेत्र है, उनके भी तुम नेत्र हो। तुम जल-वर्षक हो। दो अश्वों को रज्जु के द्वारा एकत्र बाँध करके चलाते और धन देते हो।

१०३ सूक्त

(देवता इन्द्र और अप्वा। ऋषि इन्द्र-पुत्र अप्रतिरथ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र सर्वव्यापी शत्रुओं के लिए तीक्ष्ण, वृषभ के समान भयंकर, शत्रुहन्ता तथा मनुष्यों को विचलित करनेवाले हैं। मनुष्य त्रस्त होते हैं। वे शत्रुओं को रुलाते और सदा चारों ओर दृष्टि रखनेवाले हैं। उन्होंने एकत्र विराट् सेना को जीता है।

२. योद्धा मनुष्यो, इन्द्र को सहायक पाकर विजयी बनो। विपक्ष को पराजित करो। वे शत्रुओं को रुलाते और सदा चारों ओर दृष्टि रखते हैं। वे युद्ध करके विजयी बनते हैं। उन्हें कोई भी स्थान-भ्रष्ट नहीं कर सकता। वे दुर्द्धर्ष हैं। उनके हाथों में बाण है। वे जल बरसाते हैं।

३. बाण और तुणीरवाले उनके संग में रहते हैं। वे सबको वश में करते हैं। युद्धकाल में वे विशाल शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं। जो

उनके सामने जाता है, उसे वे जीत लेते हैं। वे सोमपान करते हैं। उनका भुजबल विलक्षण है और धनु भयावह है। उसी धनुष से बाण छोड़कर वे शत्रु को गिराते हैं।

४. बृहस्पति, राक्षसों का वध कर, शत्रुओं को दुःख पहुँचाकर और रथ पर चढ़कर पधारो। शत्रु-सेना को ध्वस्त करो, विपक्ष के योद्धाओं को मार डालो, विजयी बनो और हमारे रथों की रक्षा करो।

५. इन्द्र, तुम शत्रु-बल-ज्ञाता, अनन्त काल के प्राचीन, उत्कृष्ट वीर, तेजस्वी, वेगशाली, भयंकर और विपक्ष-विजयी हो। वीरों के प्रति दौड़ो और प्राणियों के प्रति दौड़ो। तुम बल के पुत्र-स्वरूप हो। तुम गायों को जीतने के लिए जयशील रथ पर चढ़ो।

६. इन्द्र मेघों को फाड़नेवाले और गायों को प्राप्त करनेवाले हैं। उनके हाथों में वज्र है। वे अस्थिर शत्रु-सैन्य को अपने तेज से जीतते और मारते हैं। हे अपने वीरो, इन्हें आगे करके वीरता दिखाओ। सखा लोगो, इनके अनुकूल होकर पराक्रम प्रदर्शित करो।

७. सौ यज्ञ करनेवाले और वीर इन्द्र मेघों की ओर दौड़ते हैं। वे निर्दय बली हैं। वे कभी स्थान-भ्रष्ट नहीं होते। वे शत्रुओं की सेना को हराते हैं। उनके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता। युद्धस्थल में वे हमारी सेनाओं को बचावें।

८. इन्द्र उन सब सेनाओं के सेनापति हैं। बृहस्पति उन सेनाओं की दाहिनी ओर रहें। यज्ञोपयोगी सोम उनके आगे रहें। मरुद्गण शत्रु-भयकर्त्री और विजयिनी देव-सेनाओं के आगे-आगे जायँ।

९. वारि-वर्षक इन्द्र, राजा वरुण, आदित्यगण और मरुद्गण की शक्ति अत्यन्त भयानक है। महानुभाव देवता लोग जिस समय भुवन को कँपाकर विजयी होने लगे, उस समय कोलाहल उपस्थित हुआ।

१०. इन्द्र, अस्त्र-शस्त्र प्रस्तुत करो। हमारे अनुचरों के मन को

उत्साहित करो। वृत्रघ्न इन्द्र, घोड़ों का बल बढ़े। जयशील रथ की निर्घोष ध्वनि उठे।

११. जिस समय पताका फहराई जाती है, उस समय इन्द्र हमारी ही ओर रहते हैं। हमारे वाण विजयी हों। हमारे वीर श्रेष्ठ हों, देवो, युद्ध में हमारी रक्षा करो।

१२. हे पापाभिमानी देवता (अप्वा), तुम चले जाओ और उन शत्रुओं के मन को प्रलुब्ध करो। उनके शरीरों में पैठो। उनकी ओर जाओ। शोक के द्वारा उनके हृदय में दाह उत्पन्न करो। शत्रु लोग अन्धकारमयी रजनी में एकत्र हों।

१३. मनुष्यो, अग्रसर होओ। जयी होओ। इन्द्र तुम्हें सुखी करें। तुम लोग जैसे दुर्द्धर्ष हो, वैसी ही भयंकर तुम्हारी बाहें हों।

१०४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र-पुत्र अष्टक। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र, तुम्हारे लिए सोम अभिषुत हुआ है। दोनों घोड़ों के द्वारा शीघ्र ही यज्ञ में पधारो। प्रधान-प्रधान स्तोताओं ने, तुम्हारे लिए, स्तोत्र पाठ करके यह सोम दिया है। इन्द्र, सोम-पान करो।

२. हरि नामक घोड़ों के स्वामी इन्द्र, कर्मकर्त्ता जिसे प्रस्तुत और जल में परिष्कृत करके ले आये हैं, उसी सोम का पान करो। उदर भरो। तुम्हारे लिए पत्थरों ने जो सेचन किया है, उसके द्वारा मत्त होओ और अपनी स्तुतियों को ग्रहण करो।

३. हरि नामक घोड़ों के प्रभु इन्द्र, सोम अभिषुत (प्रस्तुत) हुआ है। तुम वर्षक हो। तुम्हारे यज्ञागमन की सम्भावना देखकर तुम्हारे पान के लिए सोम प्रेरित करता हूँ। इन्द्र, उत्तमोत्तम स्तोत्र पाकर आमोद करो। विविध कार्य करो। नाना प्रकार से तुम्हारा स्तोत्र हो।

४. क्षमताशाली इन्द्र, उशिज् वंशवाले यज्ञ करना जानते हैं। जो लोग तुम्हारा आश्रय पाकर, तुम्हारे प्रभाव से अन्न लाभ करके और सन्तान-प्राप्ति करके यजमान के घर में रह गये, वे सब आनन्द-निमग्न होकर तुम्हारी स्तुति करने लगे।

५. हरि नामक घोड़ों के स्वामी इन्द्र, तुम्हारा स्तोत्र सुन्दर है। तुम्हारा धन आश्चर्यजनक है और तुम्हारी उज्ज्वलता अत्यन्त है। तुम जो कुछ सुन्दर और यथार्थ स्तोत्र बना चुके हो अथवा धनादि प्रदान कर चुके हो, उनसे तुम्हारी स्तुति करके अनेकों ने आत्म-रक्षा की है और दूसरों की भी रक्षा की है।

६. हरियों के प्रभु इन्द्र, जो सोम अभिषुत किया गया है, उसे पीने के लिए हरि नाम के दोनों घोड़ों के द्वारा सारे यज्ञों में जाया करते हो। तुम शक्तिशाली हो। तुम्हें ही यज्ञ प्राप्त करते हैं। यज्ञीय विषय को समझ करके तुम दान करते हो।

७. जिनके पास असीम अन्न है, जो शत्रुओं को पराजित करते हैं, जो सोम से प्रसन्न होते हैं, जिनका स्तोत्र करने पर आनन्द मिलता है और जिनके विपक्ष में कोई नहीं जा सकता, उन्हें स्तोत्र विभूषित करते हैं और स्तोताओं के प्रणाम उनकी पूजा करते हैं।

८. इन्द्र, रमणीय और अमित गतिवाली गङ्गा आदि सात नदियों के द्वारा तुमने शत्रु पुरियों को नष्ट करके सिन्धु को (सागर को) बढ़ाया। तुमने देवों और मनुष्यों के उपकार के लिए निन्यानबे नदियों का मार्ग परिष्कृत किया है।

९. तुमने जल का आवरण खोल दिया है। तुम जल लाने को अकेले ही प्रस्तुत हुए थे। इन्द्र, वृत्र-वध के उपलक्ष में तुमने जो कार्य किये हैं, उनके द्वारा सारे संसार के शरीर का पोषण किया है।

१०. इन्द्र, महावीर और क्रिया-कुशल हैं। उनका स्तोत्र करने पर आनन्द होता है। उत्तम स्तोत्र उदित होकर उनकी पूजा करता है।

उन्होंने वृत्र का वध किया, संसार को बनाया, शक्तिशाली हो शत्रु-पराभव किया और शत्रु-सेना के प्रतिकूल गये।

११. स्थूलकाय और धनी इन्द्र को बुलाते हैं। युद्ध के समय जब कि अन्न आदि को बाँटा जायगा, तब इन्द्र ही प्रधानतया अध्यक्षता करेंगे। अपने पक्ष की रक्षा के लिए वे युद्ध में उग्र मूर्त्ति धारण करते, शत्रुओं को मारते, वृत्रों का नाश करते और धन जीतते हैं।

१०५ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि उत्स के पुत्र सुमित्र वा दुर्मित्र। छन्द गायत्री आदि।)

१. इन्द्र, तुम स्तोत्राभिलाष करते हो। स्तोत्र किया गया है। वृष्टि के लिए यथेष्ट सोम प्रस्तुत किया गया है। हमारे खेत की जल-प्रणाली कब जल-पूर्ण होगी?

२. उनके दो घोड़े सुशिक्षित हैं। वे अनेक कार्य करते हैं। वे दोनों शुभ्र और केशवाले हैं। उनके स्वामी इन्द्र, दान करने के लिए आवें।

३. शोभा के लिए जिस समय बली इन्द्र ने घोड़ों को जोता, उस समय सारे पाप-फल दूर हुए, उस समय मनुष्य सुखी हुए।

४. मनुष्यों से पूजा पाकर इन्द्र ने सारे धनों को एकत्र कर डाला। वे नाना कार्य करनेवाले और शब्दायमान दो घोड़े चलाने लगे।

५. केशवाले और विशाल, दोनों घोड़ों पर चढ़कर, अपनी देह की पुष्टि के लिए इन्द्र अपने सुघटित दोनों जबड़ों को चलाते हुए आहार माँगने लगे।

६. इन्द्र की शक्ति अतीव सुन्दर है। वे सुशोभन हैं। वे मरुतों के साथ यजमान को साधुवाद करते हैं। वे अन्तरिक्ष में रहते हैं। जैसे ऋभुओं ने कर्म-कौशल से रथ आदि का निर्माण किया है, वैसे ही वीर इन्द्र ने अपने बल से अनेक वीर-कार्य किये हैं।

७ दस्यु का वध करने के लिए उन्होंने वज्र प्रस्तुत किया था। उनके श्मश्रु (दाढ़ी-मूंछ) हरितवर्ण हैं। उनके घोड़े भी हरितवर्ण हैं। उनके जबड़े सुन्दर हैं। वे आकाश के समान विशाल हैं।

८. इन्द्र, हमारे सारे पापों को विनष्ट करो। हम ऋचाओं के प्रभाव से ऋक्शून्य व्यक्तियों का वध कर सकें। जिस यज्ञ में स्तुति का संसर्ग नहीं है, वह कभी भी स्तोत्रवाले यज्ञ के समान तुम्हें प्रीतिप्रद नहीं होता।

९. जिस समय यज्ञभार-वाहक ऋत्विकों ने यज्ञ-गृह में कार्यारम्भ किया, उस समय तुम यजमान के साथ एक नौका पर चढ़कर यजमान को तारो।

१०. दूधवाली गाय तुम्हारे मङ्गल के लिए हो। जिस पात्र के द्वारा तुम अपने पात्र में मधु ले लेते हो, वह दर्वी (पात्र-विशेष) निर्मल और कल्याणकर हो।

११. बली इन्द्र, तुम्हारे लिए इस प्रकार से सुमित्र ने एक सौ स्तोत्र पढ़े—दुर्मित्र ने भी स्तुति की; क्योंकि तुमने दस्यु-हत्या के समय कुत्स-पुत्र की रक्षा की है।

पञ्चम अध्याय समाप्त।

१०६ सूक्त

(षष्ठ अध्याय। देवता अश्विद्वय। ऋषि कश्यप-पुत्र भूतांश। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अश्विद्वय, तुम दोनों हमारी आहुति के अभिलाषी हो रहे हो। जैसे-जैसे तन्तुवाय वस्त्र का विस्तार करता है, वैसे ही तुम लोग हमारे स्तोत्र का विस्तार कर देते हो। यह यजमान यह कहकर भली भाँति तुम लोगों की स्तुति करता है कि, तुम लोग एक साथ आते हो। चन्द्र-सूर्य के समान तुम लोग खाद्य द्रव्य को आलोकित करके बैठे हो।

२. जैसे दो बैल गोचर-भूमि में विचरण करते हैं, वैसे ही तुम लोग यज्ञ-दान-समर्थ व्यक्ति के पास जाते हो। रथ में जोते दो वृषों वा अश्वों के समान धन-दान के लिए तुम लोग स्तोता के पास आया करते हो। दूत के समान तुम लोग लोगों के पास यशस्वी बनो। जैसे दो महिष जल-पान-स्थान से नहीं हटते, वैसे ही तुम लोग भी सोमपान से नहीं हटना।

३. जैसे पक्षी के दो पंख आपस में मिले रहते हैं, वैसे ही तुम लोग भी परस्पर मिले हुए हो। दो अद्भुत पशुओं के समान इस यज्ञ में आये हो। यज्ञ-कर्त्ता अग्नि के समान तुम लोग दीप्तिवाले हो। सर्वत्रविहारी दो पुरोहितों के समान तुम लोग नाना स्थानों में देव-पूजा किया करते हो।

४. जैसे माता-पिता पुत्र के प्रति आसक्त रहते हैं, वैसे ही तुम लोग हमारे प्रति होओ। तुम लोग अग्नि और सूर्य के समान दीप्तिशील होओ, राजा के समान क्षिप्रकारी होओ, धनी व्यक्ति के समान उपकारी होओ और सूर्य-किरणों के समान आलोक देते हुए लोगों के सुख-भोग के अनुकूल होओ। सुखी मनुष्य के समान इस यज्ञ में पधारो।

५. सुन्दर गतिवाले दो वृषों के समान तुम लोग हृष्ट-पुष्ट और सुदृश्य हो तथा मित्र और वरुण के समान तुम लोग यथार्थदर्शी, वदान्य और दुःख-ह्रास-पूर्वक, स्तुति प्राप्त करते हो। दो घोड़ों के समान तुम लोग खाकर मोटे-तगड़े हो गये हो। तुम लोग प्रकाशमय आकाश में रहते हो। भेड़ों के समान तुम लोग यथेष्ट भोजनादि करके सुघटित अङ्ग-प्रत्यङ्गवाले हुए हो।

६. हाथी को रोकनेवाले और मारनेवाले अंकुशों के समान तुम लोग रोकनेवाले वा भरण करनेवाले (जर्भरि) और हन्ता (तुर्फरि) हो। हन्ता (नैतोश) के समान तुम लोग शत्रुओं के मारनेवाले हो; इसी लिए तुम लोगों को शत्रु-विदारक (फर्फरी का) अथवा यजमान-पालक कहा

गया है। तुम लोग ऐसे निर्मल हो, मानो जल में उत्पन्न हुए हो, तुम लोग बली और विजयी हो। मेरी मरण-धर्मशील देह को फिर यौवन दो।

७. तीव्र बली अश्विद्वय, जैसे दीर्घ चरणवाला व्यक्ति दूसरे को जल से पार कर देता है, वैसे ही तुम लोग मेरी मरण-धर्मशील देह को विपत्ति से पार करके अभिलषित विषय में ले चलो। ऋभु के समान तुमने अत्यन्त संस्कृत रथ पाया है। वह शीघ्रगामी रथ वायु के समान उड़कर शत्रु का धन ले आया है।

८. महावीर के समान तुम लोग अपने पेट में घृत गिरा लो। तुम लोग धन के रक्षक और अस्त्र लेकर शत्रुओं के वध-कर्त्ता हो। तुम लोग पक्षी के समान सुन्दर और सर्वत्रविहारी हो। इच्छा करने के साथ ही तुम लोग भूषित होते हो और स्तोत्र के लिए यज्ञ में आते हो।

९. जैसे लम्बे पैर रहने पर, गम्भीर जल के पार होने के समय, आश्रय मिलता है, वैसे ही तुम लोग आश्रय दो। तुम लोग, दोनों कानों के समान, स्तोता की स्तुति को, ध्यान से, सुनते हो। दो यज्ञाङ्गों के समान हमारे इस विचित्र यज्ञ में पधारो।

१०. जैसे बोलनेवाली दो मधुमक्खियाँ मधु के छाते में मधु का सेचन करती हैं, वैसे ही तुम लोग गाय के स्तन में मधुतुल्य दुग्ध का संचार कर दो। जैसे श्रमजीवी श्रम करके पसीने से तर हो जाता है, वैसे ही तुम लोग भी स्वेदवाले होकर जल-सेचन करो। जैसे दुर्बल गाय गोचर-भूमि में आकर अपना आहार पाती है, वैसे ही तुम लोग भी यज्ञ में आकर आहार पाते हो।

११. हम स्तोत्र-विस्तार करते हैं और आहार का वितरण करते हैं; इसलिए तुम लोग एक रथ पर चढ़कर हमारे यज्ञ में आओ। गाय के स्तन में सुमिष्ट आहार के समान दुग्ध है। भूतांश ऋषि ने यह स्तोत्र करके अश्विद्वय का मनोरथ पूर्ण किया।

१०७ सूक्त

(देवता प्रजापति-पुत्री दक्षिणा। ऋषि आङ्गिरस दिव्य। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. इन यजमानों के यज्ञ-निर्वाह के लिए सूर्य-रूपी इन्द्र का विपुल तेज प्रकट हुआ। सारे प्राणी अन्धकार से बाहर आये। पितरों के द्वारा दी गई ज्योति उपस्थित हुई। दक्षिणा देने की प्रशस्त पद्धति उपस्थित हुई।

२. जो लोग दक्षिणा देते हैं, वे स्वर्ग में उच्च आसन पाते हैं। अश्व-दाता सूर्य के साथ एकत्र होते हैं। सुवर्णदाता अमरता पाते हैं। वस्त्रदाता लोग सोम के पास जाते हैं। सभी दीर्घायु होते हैं।

३. दक्षिणा के द्वारा पुण्य कर्म की पूर्णता प्राप्त की जाती है—यह देव-पूजा का अङ्ग-स्वरूप है। जिनका आचरण खराब है, उनका कार्य देवता लोग नहीं पूरा करते। जो लोग पवित्र दक्षिणा देते हैं, निन्दा से डरते हैं, वे अपने कर्म को पूर्ण करते हैं।

४. जो वायु सैकड़ों मार्गों से बहता है, उसके लिए आकाश, सूर्य तथा अन्यान्य मनुष्य-हितैषी देवों के लिए होमीय द्रव्य (हवि) दिया जाता है। जो लोग देवों को तृप्त करते और दान देते हैं, उनका मनोरथ दक्षिणा पूरा करती है। यह दक्षिणा पाने के अधिकारी सात पुरोहित विद्यमान हैं।

५. दाता को सबसे पहले बुलाया जाता है। वे ग्रामाध्यक्ष होते हैं और सबके आगे-आगे जाते हैं। जो सबसे पहले दक्षिणा देते हैं, उन्हें मैं सबका राजा जानता हूँ।

६. जो सर्व-प्रथम दक्षिणा देकर पुरोहित को तुष्ट करते हैं, वे ही ऋषि और ब्रह्मा कहे जाते हैं, वे ही यज्ञ के अध्यक्ष, सामगाता और स्तोता कहे जाते हैं। वे अग्नि की तीनों मूर्त्तियों को जानते हैं।

७. दक्षिणा में अश्व, गाय और मनःप्रसादकर सुवर्ण पाया जाता है। हमारा आत्म-स्वरूप जो आहार है, वह भी दक्षिणा से पाया जाता है। विद्वान् व्यक्ति दक्षिणा का, देह-रक्षक कवच के समान, व्यवहार करते हैं।

८. दाताओं की मृत्यु नहीं होती—वे देवता हो जाते हैं। वे दरिद्र नहीं होते—वे क्लेश, व्यथा वा दुःख भी नहीं पाते। इस पृथिवी वा स्वर्ग में जो कुछ है, सो सब उन्हें दक्षिणा देती है।

९. घी, दूध देनेवाली गाय को तो दाता लोग सबसे पहले पाते हैं। वे सुन्दर परिच्छवाली नवोढ़ा स्त्री पाते हैं। वे सुरा (मदिरा का सार) (क्या सोम?) पाते हैं। दाता लोग ही चढ़ा-ऊपरी करनेवाले शत्रुओं को जीतते हैं।

१०. दाता को शीघ्रगन्ता अश्व, अलंकृत करके, दिया जाता है। उसके लिए सुन्दरी स्त्री उपस्थित रहती है। पुष्करणी के समान निर्मल और देवालय के समान मनोहर गृह दाता के लिए ही विद्यमान है।

११. सुन्दर वहनकर्त्ता अश्वदाता को ले जाते हैं। उसी के लिए सुघटित रथ विद्यमान है। युद्ध के समय देवता लोग दाता की रक्षा करते हैं। युद्ध में दाता शत्रुओं को जीतता है।

१०८ सूक्त

(देवता तथा ऋषि पणिगण और सरमा। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. (पणियों की उक्ति)—सरमा, तुम क्या किसी प्रार्थना के लिए यहाँ आई हो? यह मार्ग तो बहुत दूर का है। इस मार्ग पर आते समय पीछे की ओर दृष्टि फेरने पर नहीं आना हो सकता। हमारे पास ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसके लिए तुम आई हो? कितनी रातों में आई हो? नदी के जल को पार कैसे किया?

२. (सरमा की उक्ति)—पणिगण, इन्द्र की दूती होकर मैं आई हूँ। तुमने जो गोधन एकत्र किया है, उसे ग्रहण करने की मेरी इच्छा है।

जल ने मुझे बचाया है। जल का डर तो हुआ था; किन्तु पीछे उसे लाँघकर मैं चली आई। इस प्रकार मैं नदी के पार चली आई।

३. (पणियों की उक्ति)—सरमा, जिन इन्द्र की दूती बनकर तुम इतनी दूर से आई हो, वे इन्द्र कैसे हैं? उनका कितना पराक्रम है? उनकी कैसी सेना है? इन्द्र आवें। उन्हें हम मित्र मानने को प्रस्तुत हैं। वे हमारी गायें लेकर उनके स्वत्वाधिकारी बनें।

४. (सरमा की उक्ति)—जिन इन्द्र की दूती बनकर मैं दूर देश से आई हूँ, उन्हें कोई हरा नहीं सकता। वे ही सबको हराते हैं। गहन-गम्भीर नदियाँ भी उनकी गति को रोकने में समर्थ नहीं हैं। पणियो, तुम्हें निश्चय ही इन्द्र मारकर सुला देंगे।

५. (पणियों की उक्ति)—सुन्दरी सरमा, तुम स्वर्ग की शेष सीमा पर से आ रही हो; इसलिए इन गायों में से जिन-जिनको चाहो, हम तुम्हें दे सकते हैं। बिना युद्ध के कौन तुम्हें गायें देता? हमारे पास भी अनेक तीक्ष्ण आयुध हैं।

६. (सरमा=इन्द्र की कुतिया की उक्ति)—तुम्हारी बातें सैनिकों के योग्य नहीं हैं। तुम्हारे शरीरों में पाप है। ये शरीर कहीं इन्द्र के बाणों का लक्ष्य न हो जायें। तुम्हारे यहाँ यह जो आने का मार्ग है, इसपर देवता लोग कहीं आक्रमण न कर बैठें। मुझे सन्देह है कि, पीछे बृहस्पति तुम्हें क्लेश देंगे—यदि तुम गायें नहीं दे दोगे, तो आपदायें सन्निकट हैं।

७. (पणियों की उक्ति)—सरमा, हमारी सम्पत्ति पर्वतों के द्वारा सुरक्षित है—गायों, अश्वों और अन्यान्य धनों से पूर्ण है। रक्षा-कार्य में समर्थ पणि लोग इस सम्पत्ति की रखवाली करते हैं। गायों के द्वारा शब्दायमान हमारे स्थान को तुम व्यर्थ ही आई हो।

८. (सरमा की उक्ति)—आङ्गिरस अयास्य ऋषि और नवगुगण, सोमपान से प्रमत्त होकर, यहाँ आवेंगे और इन सारी गायों का भाग करके इन्हें ले जायेंगे। पणियो, उस समय तुम्हें ऐसी दर्पोक्ति छोड़नी पड़ेगी।

९. (पणिगण की उक्ति)—सरमा, डरकर देवों ने तुम्हें यहाँ भेजा है; इसी लिए तुम आई हो। तुम्हें हम भगिनी-स्वरूप समझते हैं। तुम अब नहीं लौटना। सुन्दरी, हम गोधन का भाग देते हैं।

१०. (सरमा की उक्ति)—मैं भ्राता और भगिनी की कथा नहीं समझ सकती। इन्द्र और पराक्रमी अङ्गिरो वंशीय जानते हैं कि, गायें पाने के लिए मुझे उन्होंने, रक्षा-पूर्वक, भेजा है। मैं उनका आश्रय पाकर आई हूँ। पणियो, यहाँ से बहुत दूर भाग जाओ।

११. पणियो, यहाँ से बहुत दूर भाग जाओ। गायें कष्ट पा रही हैं। वे धर्म के आश्रय में इस पर्वत से लौट चलें। बृहस्पति, सोम, सोमाभिषव-कर्त्ता पत्थर, ऋषि और मेधावी लोग इस गुप्त स्थान में स्थित गायों की बात जान गये हैं।

१०९ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि ब्रह्मवादिनी जुहू। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिस समय बृहस्पति ने अपनी पत्नी जुहू का त्याग कर दिया—इस प्रकार ब्रह्म-किल्विष प्राप्त किया, उस समय सूर्य, शीघ्रगामी वायु, प्रज्वलित अग्नि, सुखकर सोम, जल के अधिष्ठाता देवता वरुण और सत्य-स्वरूप प्रजापति की अन्य सन्ततियों ने कहा—प्रायश्चित्त कराया।

२. लज्जा छोड़कर सोम राजा ने पवित्र-चरित्रा स्त्री को सर्वप्रथम बृहस्पति को दिया। मित्र और वरुण ने इसका अनुमोदन किया। होम-निष्पादक अग्नि हाथ से पकड़कर पत्नी को ले आये।

३. "इन पत्नी की देह को हाथ से छूना चाहिए—ये यथाविधि विवाहित पत्नी हैं।"—ऐसा सबने कहा। इन्हें खोजने के लिए जो दूत भेजा गया था, उसके प्रति ये अनासक्त रहीं। जैसे बली राजा का राज्य सुरक्षित रहता है, वैसे ही इनका सतीत्व सुरक्षित रहा।

४. तपस्या में प्रवृत्त सप्तर्षियों और प्राचीन देवों ने इन पत्नी की बात कही है। ये अत्यन्त शुद्ध-चरित्रा हैं। इन्होंने बृहस्पति से विवाह किया

है। तपस्या और सच्चरित्रता से निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम स्थान में स्थापित हो सकता है।

५. स्त्री के अभाव में बृहस्पति ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करते हैं। वे सारे देवों के साथ एकात्मा होकर उनके अङ्ग-विशेष हो गये हैं। जैसे उन्होंने प्रथम सोम के हाथ से भार्या को पाया था, वैसे ही इस समय भी उन्होंने फिर जुहू नाम की पत्नी को प्राप्त किया।

६. देवों और मनुष्यों ने पुनः बृहस्पति को उनकी पत्नी को समर्पित कर दिया। राजाओं ने भी पुनः शपथ के साथ शुद्ध-चरित्रा पत्नी को समर्पित किया।

७. शुद्ध-चरित्रा पत्नी को फिर लाकर देवों ने बृहस्पति को निष्पाप किया। अनन्तर पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ अन्न विभक्त करके सभी सुख से अवस्थान करने लगे।

११० सूक्त

(देवता आप्री। ऋषि भार्गव जमदग्नि। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. ज्ञानी अग्नि, तुम मनुष्यों के गृह में आज समिद्ध होकर अपने देवता और अन्यान्य देवों की पूजा करो। तुम्हारा मित्र तुम्हारी पूजा करता है—यह जानकर तुम देवों को ले आओ; क्योंकि तुम उत्तम बुद्धि से युक्त और क्रिया-कुशल दूत हो।

२. हे तनूनपात् (अग्नि), यज्ञ-गमन के जो पथ (हवि आदि) हैं, उन्हें मधु-मिश्रित करके अपनी सुन्दर शिखा से स्वाद लो। सुन्दर भावों के द्वारा स्तोत्रों और यज्ञ को समृद्ध करो और हमारे यज्ञ को देव-भोग्य कर दो।

३. अग्नि, तुम देवों को बुलानेवाले, प्रार्थनीय और प्रणाम के योग्य हो। वसुओं के साथ पधारो। हे महान् पुरुष, तुम देवों के होता हो। तुम्हें प्रेरित किया जाता है। तुम्हारे समान कोई यज्ञ नहीं कर सकता। तुम इन सारे देवों के लिए यज्ञ करो।

४. पूर्वाह्न में, वेदी को ढँकने के लिए, कुश को पूर्वमुख करके बिछाया जाता है। वह परम सुन्दर कुश और विस्तृत किया जाता है। उसपर अदिति और अन्य देवता लोग सुख से बैठते हैं।

५. जैसे स्त्रियाँ वेश-भूषा करके पतियों के पास अपने शरीर को प्रकट करती हैं, वैसे ही इन सब सुनिर्मित द्वारों की अभिमानिनी देवियाँ पृथक् हो जायँ—विस्तृत रूप से खुल जायँ। द्वार-देवियो, देवता सरलता से आ सकें, इस प्रकार खुल जाओ।

६. उषा देवी और रात्रिदेवी लोगों के लिए सुषुप्ति से उत्पन्न सुख उत्पन्न कर दें। वे यज्ञ-भाग की अधिकारिणी हैं। वे परस्पर मिलकर यज्ञ-स्थान में बैठें। वे दिव्य-लोक-वासिनी स्त्री के समान अत्यन्त गुणवती, परम शोभा से युक्त और उज्ज्वल श्री धारण करनेवाली हैं।

७. दोनों देव—होता (अग्नि और आदित्य) ही प्रथम उत्तम वाक्यों से स्तोत्र करते हैं—मनुष्य के यज्ञ के लिए अनुष्ठान-कार्य का निर्माण कर देते हैं। वे पुरोहितों को विभिन्न अनुष्ठानों में प्रेरित करते हैं। वे क्रिया-कुशल हैं और पूर्व दिशा के प्रकाश को उत्पन्न करते हैं।

८. भारतीदेवी (सूर्य-दीप्ति) हमारे यज्ञ में शीघ्र आवें। इलादेवी इस यज्ञ की बात का स्मरण करके, मनुष्य के समान, आगमन करें। ये दोनों और सरस्वतीदेवी—ये तीन चमत्कार-कार्य-कारिणी देवियाँ सामने के सुखावह आसन पर आकर बैठें।

९. द्यावापृथिवी देवों की मातृ-स्वरूपिणी हैं। होता, जिन देवता ने उन दोनों को उत्पन्न करके सारे संसार में नाना प्राणियों की सृष्टि की है, उन्हीं त्वष्टा देव की आज तुम पूजा करो। तुम्हारे पास अन्न है, तुम विद्वान् हो और तुम्हारे समान दूसरा कोई यज्ञ नहीं कर सकता।

१०. यूप (यज्ञ में पशुओं के बाँधने के काष्ठ), तुम स्वयं, यथासमय, देवों के लिए अन्न और अन्यान्य होमीय द्रव्य लाकर निवेदित करो। वनस्पति, शमिता नामक देव और अग्नि, मधु और घृत के साथ, होमीय द्रव्य का आस्वादन करें।

११. जन्म के साथ ही अग्नि ने यज्ञ-निर्माण किया और देवों के अग्रगामी दूत हुए। अग्नि स्वरूप होता मन्त्र-पाठ करें। यज्ञोपयोगी देव-वाक्य उच्चारित हों। स्वाहा के साथ जो होमीय द्रव्य दिया जाता है, उसका भक्षण देवता करें।

१११ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वैरूप अष्टादंष्ट्र। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. स्तोताओ, तुम्हारी बुद्धि का उदय जैसे-जैसे होता है, वैसे-वैसे तुम लोग स्तोत्र-पाठ करो। सत्कर्मानुष्ठान करके इन्द्र को बुलाया जाय; क्योंकि वीर इन्द्र स्तोत्र जानने पर स्तोताओं का प्यार करते हैं।

२. जल का आधार (अन्तरिक्ष) धारण करनेवाले इन्द्र प्रकाशित होते हैं। अल्पवयस्क गाय के गर्भ से उत्पन्न वृष जैसे गायों के साथ मिलता है, वैसे ही इन्द्र सर्वव्यापी होते हैं। विलक्षण कोलाहल के साथ इन्द्र प्रकट होते हैं। वे बृहत्-बृहत् जलराशि बनाते हैं।

३. इस स्तोत्र का श्रवण इन्द्र ही जानते हैं। वे जयशील हैं। उन्होंने सूर्य का मार्ग बना दिया है। अविचल इन्द्र ने से‌ा को प्रकट किया। वे गायों के स्वत्वाधिकारी और स्वर्ग के प्रभु हुए। वे चिरन्तन हैं। उनके विपक्ष में कोई नहीं जा सकता।

४. अङ्गिरा की सन्ततियों ने जिस समय स्तोत्र किया, उस समय इन्द्र ने, अपनी महिमा से, विशाल मेघ का कार्य नष्ट किया। उन्होंने बहुत अधिक जल बनाया। उन्होंने सत्य-रूप द्युलोक में बल धारण किया।

५. एक ओर इन्द्र हैं और दूसरी ओर द्यावापृथिवी हैं—दोनों के बराबर इन्द्र हैं। वे सारे सोम यज्ञों की बातें जानते हैं। वे ताप नष्ट करते हैं। सूर्य के द्वारा उन्होंने प्रकाण्ड आकाश को सुसज्जित किया है। वे धारण करने में पटु हैं। मानो खम्भे के द्वारा उन्होंने आकाश को ऊपर धारण कर रक्खा है।

६. इन्द्र, तुम वृत्रघ्न हो—वज्र से वृत्र को मारा है। जिस समय यज्ञ-विरोधी वृत्र बढ़ रहा था, उस समय दुर्द्धर्ष तुमने वज्र-द्वारा उसकी सारी माया को नष्ट कर डाला। बली इन्द्र, इसके अनन्तर तुम बहुत बल से बली हुए।

७. जिस समय उषादेवियाँ सूर्य से मिलीं; उस समय सूर्य-किरणों ने नाना वर्णों की शोभा धारण की। अनन्तर, जिस समय, आकाश में नक्षत्र दिखाई दिया, उस समय कोई भी मार्गगामी सूर्य का कुछ देख नहीं सका।

८. इन्द्र की आज्ञा से जो जल बहने लगा था, वह प्रथम जल बहुत दूर गया था। जल का अग्रभाग कहाँ है? मस्तक कहा है? जल, तुम्हारा मध्य स्थान वा चरम सीमा कहाँ है?

९. इन्द्र, जिस समय वृत्रासुर जल को ग्रास कर रहा था, उस समय तुमने जल का मोचन किया था। उसी समय जल वेग के साथ सर्वत्र दौड़ा था। जिस समय इन्द्र ने अपनी इच्छा से जल को मुक्त किया था, उस समय वह विशुद्ध जल स्थिर नहीं रह सका।

१०. सारे जल मानो कामातुरा स्त्री के समान होकर और एकत्र मिलकर समुद्र की ओर चले। शत्रु-पुर-ध्वंसक और शत्रु-जर्जर-कर्त्ता इन्द्र सदा ही सारे जलों के प्रभु हैं। इन्द्र, हमारी पृथिवी पर स्थित नाना यज्ञ-सामग्री और चिराभ्यस्त अनेक प्रीतिप्रद स्तोत्र तुम्हारे पास जायँ।

११२ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विरूपगोत्रीय नभःप्रभेदन। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, सोम प्रस्तुत हुआ है। जितना चाहो, पियो। जो सोम प्रातःकाल प्रस्तुत होता है, वह सबसे आगे तुम्हारे पान के योग्य है। वीर इन्द्र, शत्रु-वध के लिए उत्साह-युक्त होओ। हम मन्त्रों के द्वारा तुम्हारे वीरत्व की प्रशंसा करते हैं।

२. इन्द्र, तुम्हारा रथ मन से भी अधिक शीघ्रगामी है। उसी रथ पर चढ़कर सोमपान के लिए आओ। जिन घोड़ों की सहायता से तुम आनन्द के साथ जाते हो, वे हरि नामक घोड़े शीघ्र दौड़ें।

३. इन्द्र, हरित-वर्ण तेज के द्वारा और सूर्य की अपेक्षा भी श्रेष्ठतर नाना शोभाओं के द्वारा अपने शरीर को विभूषित करो। हम बन्धुत्व के साथ तुम्हें बुलाते हैं। हमारे साथ बैठकर सोम-पान से प्रमत्त होओ।

४. सोम-पान से मत्त होने पर जो तुम्हारी महिमा होती है, उसे ये द्यावापृथिवी नहीं धारण कर सकतीं। इन्द्र, अपने स्नेह-पात्र घोड़ों को जोतकर सुस्वादु यज्ञ-सामग्री की ओर, यजमान के गृह में, आओ।

५. इन्द्र, जिसका प्रतिदिन सोम-पान करके तुमने अत्यन्त बल दिखाते हुए शत्रु-वध किया है, वही यजमान तुम्हारे लिए यथेष्ठ स्तोत्र प्रेरित कर रहा है। तुम्हारे मनोरंजन के लिए सोम प्रस्तुत किया गया है।

६. सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र, इस सोम-पात्र को तुम बराबर पाया करते हो। इससे पियो। जिसे देवता चाहते हैं, उसी मधु-तुल्य और मत्तता-कारक सोम के पात्र को परिपूर्ण कर दिया गया है।

७. इन्द्र, अन्न संग्रह करके तुम्हें अनेक लोग, नाना स्थानों में, सोम-पान के लिए, निमन्त्रित करते हैं। परन्तु हमारा प्रस्तुत किया गया सोम तुम्हें सबसे मधुर हो—इसी में तुम्हारी रुचि उत्पन्न हो।

८. इन्द्र, पूर्वकाल में सबसे आगे तुमने जो वीरत्व दिखाया था, उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। जल के लिए तुमने मेघ को फाड़ा था और स्तोता के लिए गाय की प्राप्ति सुलभ कर दी थी।

९. बहुतों के अधिपति इन्द्र, स्तोताओं के बीच में बैठो। क्रिया-कुशल व्यक्तियों में तुम्हें लोग सर्वापेक्षा बुद्धिमान् कहते हैं। समीप वा दूर में तुम्हारे अतिरिक्त कोई अनुष्ठान नहीं होता। धनी इन्द्र, हमारी ऋचाओं को विस्तारित और नाना-रूप कर दो।

१०. धनी इन्द्र, हम तुम्हारे याचक हैं। हमें तेजस्वी कर दो। धनाधिपति और मित्र इन्द्र, यह जानो कि, हम तुम्हारे बन्धु हैं। युद्धकर्त्ता इन्द्र,

तुम्हारी शक्ति ही यथार्थ है। जहाँ धन-प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं हो, वहाँ भी तुम हमें धन-भागी करो।

११३ सूक्त

(१० अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि शैवरूप शतप्रभेदन। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. अन्यान्य देवों के साथ द्यावापृथिवी मनोयोग-पूर्वक इन्द्र के बल की रक्षा करें। जब कि, वह वीरता प्राप्त करते-करते अपनी उपयुक्त महिमा को प्राप्त हुए, तब सोम-पान करते-करते अनेक कार्यों का सम्पादन करके बृद्धिगत हुए।

२. विष्णु ने मधुर सोमलता—खण्ड को भेजकर इन्द्र की उस महिमा की, उत्साह के साथ, घोषणा की। धनी इन्द्र सहयोगी देवों के साथ एकत्र होकर और वृत्र का वध करके सर्वश्रेष्ठ हुए।

३. उग्रतेजा इन्द्र जिस समय तुम स्तुत की इच्छा से अस्त्र-शस्त्र धारण करके, दुर्द्धर्ष वृत्र के साथ, युद्ध करने के लिए आगे बढ़े, उस समय सारे मरुद्गण ने तुम्हारी महिमा बढ़ा दी और स्वयं भी वे वृद्धि को प्राप्त हुए।

४. जन्म के साथ ही इन्द्र ने शत्रु-दमन किया था। उन्होंने युद्ध का विचार करके अपने पौरुष की वृद्धि की ओर ध्यान दिया। उन्होंने वृत्र का छेदन किया, मनुष्यों को छुड़ाया और उत्तम उद्योग करके विस्तृत स्वर्गलोक को ऊपर उठा रक्खा।

५. विशाल-विशाल सेनाओं की ओर इन्द्र एकाएक दौड़े। अपनी विशिष्ट महिमा से उन्होंने द्यावापृथिवी को वशीभूत किया। जो वज्र दान परायण वरुण और मित्र के सुख का जनक है, इन्द्र ने उसी लौहमय वज्र को दुर्द्धर्ष रूप से धारण किया।

६. इन्द्र नाना प्रकार के शब्द कर रहे थे और शत्रु-वध कर रहे थे। उनके बल-विक्रम की घोषणा करने के लिए जल निर्गत हुआ। वृत्र ने

अन्धकार से घिरकर जल को धारण कर रक्खा था; परन्तु तीक्ष्ण तेजवाले इन्द्र ने बल-पूर्वक वृत्र को काट डाला।

७. आपस में होड़ करके इन्द्र और वृत्र प्रथम-प्रथम अपनी-अपनी वीरता दिखाकर महाक्रोध के साथ युद्ध करने लगे। वृत्र के विनाश के अनन्तर घना अन्धकार विनष्ट हुआ। इन्द्र की महिमा ही ऐसी है कि, वीरों की नाम-गणना के समय सबसे प्रथम इन्द्र का ही नाम लिया जाता है।

८. इन्द्र, सोमरस और स्तोत्र के द्वारा देवों ने तुम्हारी संवर्द्धना की। इन्द्र ने दुर्द्धर्ष वृत्र का वध कर डाला। इससे शीघ्र ही लोगों को अन्न-प्राप्ति हुई। जैसे अग्नि अपनी शिखा के द्वारा जलाने योग्य वस्तु का भक्षण करते हैं, वैसे ही लोग दाँतों से अन्न चबाने लगे।

९. स्तोताओ, इन्द्र ने जो सखा के कार्य किये हैं, उनकी प्रशंसा, उत्त-मोत्तम वाक्यों और बन्धुजनोचित छन्दों के द्वारा, करो। इन्द्र ने धुनि और चुमुरि नामक असुरों का वध किया है और विश्वासी मन से दभीति राजा की प्रार्थना सुनी है।

१०. इन्द्र, मैंने जो स्तोत्र के समय में प्रचुर सम्पत्ति और उत्तमो-त्तम घोड़ों की अभिलाषा की थी, वह सब दो। मैं पाप को लाँघकर कल्याण प्राप्त करूँ। हम जो स्तोत्र बना रहे हैं, उसे जानकर ध्यान दो।

११४ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि वैरूप सध्रि। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. सूर्य और अग्नि नामक प्रदीप्त देवता चारों ओर जाकर त्रिभुवन-व्यापी हुए। मातरिश्वा (अन्तरिक्ष-स्थित वायुदेव) ने उनकी प्रसन्नता प्राप्त की। जिस समय देवों ने साम-मन्त्र और सूर्य को प्राप्त किया, उस समय उन लोगों ने, त्रिभुवन की रक्षा के लिए आकाशीय जल की सृष्टि की।

२. याज्ञिक लोग यज्ञ के समय तीन निर्ऋतियों (अग्नि, सूर्य और वायु) की उपासना करते हैं। इसके अनन्तर यशस्वी अग्निदेवों का

परिचय देवों से होता है। विद्वान् लोग अग्नि आदि का मूल कारण जानते हैं। वे परम गोपनीय व्रत में रहते हैं।

३. एक युवती (यज्ञ-वेदी) है। उसके चार कोने हैं। उसकी मूर्त्ति सुन्दर और (घृत के कारण) स्निग्ध है। वह उत्तमोत्तम वस्त्र (यज्ञ-सामग्री) धारण करती है। दो पक्षी (यजमान और पुरोहित) उसपर बैठते हैं। वहाँ देवता लोग अपना-अपना भाग पाते हैं।

४. एक पक्षी (प्राण वायु) समुद्र (ब्रह्माण्ड) में पैठा। वह सारा विश्व देखता है। परिपक्व बुद्धि के द्वारा मैंने उसको देखा है। वह निकट-वासिनी माता (वाक्) का आस्वादन करता है और माता भी उसका आस्वादन करती है।

५. पक्षी (परमात्मा) एक है; परन्तु क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग उसकी अनेक प्रकार से कल्पना करते हैं। वे यज्ञ-काल में नाना प्रकार के छन्दों का उच्चारण करते और बारह (उपांशु, अन्तर्याम आदि) सोम-पात्र स्थापित करते हैं।

६. पण्डित लोग चालीस प्रकार के सोम-पात्र स्थापित करके वा छन्द उच्चारण करते हैं और बारह प्रकार के छन्द कहते वा सोम-पात्र रखते हैं। इस प्रकार वह बुद्धि-पूर्वक अनुष्ठान करके ऋक् और साम के द्वारा यज्ञ-रथ चलाते हैं।

७. इस यज्ञ (परमात्मा) की चौदह महिमायें (भुवन) हैं। सात होता आदि शस्त्र वाक्य के द्वारा यज्ञ-सम्पादन करते हैं। यज्ञ-मार्ग में उपस्थित होकर देवता लोग सोम-पान करते हैं। उस विश्व-व्यापी यज्ञ-मार्ग की बात का कौन वर्णन करे?

८. पन्द्रह सहस्र उक्थ मन्त्र हैं। द्यावापृथिवी के समान ही उक्थ भी बृहत् हैं। स्तोत्र की महिमा सहस्र प्रकार की है। जैसे स्तोत्र असीम है, वैसे ही वाक्य भी।

९. कौन ऐसे पण्डित हैं, जो सारे छन्दों की बात जानते हैं? किसने मूल-वाक्य को समझा है? कौन ऐसे प्रधान पुरुष हैं, जो सातों

पुरोहितों के ऊपर अष्टम हो सकें ? इन्द्र के हरित वर्ण घोड़े को किसने देखा वा समझा है ?

१०. कुछ घोड़े पृथिवी की शेष सीमा तक विचरण करते हैं और कुछ रथ की धुरा में ही जोते रहते हैं। जिस समय सारथि रथ के ऊपर रहता है, उस समय परिश्रम दूर करने के लिए घोड़ों को उपयुक्त आहार दिया जाता है।

११५ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वृष्टिहव्य-पुत्र उपस्तुत। छन्द जगती आदि।)

१. इन नवीन बालक अग्नि का क्या ही अद्भुत प्रभाव है! दूध पीने के लिए यह बालक माता-पिता के पास नहीं जाता। इसके पान के लिए स्तन-दुग्ध नहीं है; परन्तु यह बालक प्रादुर्भूत हुआ है। जन्म के साथ ही इस बालक ने कठिन दूत-कार्य का भार ग्रहण करके उसका निर्वाह किया।

२. जो नाना कार्य करनेवाले और दाता हैं, उन्हीं अग्नि का आधान किया गया। ये ज्योतिरूप दाँत से बल लोगों का भक्षण करते हैं। जुहू नामक उच्चपात्र में इन्द्र को यज्ञ-भाग दिया गया। जैसे हृष्ट-पुष्ट और बली वृष घास खाता है, वैसे ही ये यज्ञ-भाग का भक्षण करते हैं।

३. पक्षी के समान अग्नि वृक्ष (अरणि) का आश्रय करते हैं। वे प्रदीप्त अन्न के दाता हैं। वे शब्द करते हुए वन को जलाते हैं, जल धारण करते हैं, मुख के द्वारा हव्य का वहन करते हैं और आलोक के द्वारा महान् होते हैं। उनका कार्य महान् है। अपने मार्ग को वे रक्त-वर्ण कर देते हैं। उन अग्नि की, स्तोताओ, स्तुति करो।

४. अजर अग्नि, जिस समय तुम दाह करते हो, उस समय वायु आकर तुम्हारी चारों ओर ठहरते हैं और अविचलित पुरोहित लोग, यज्ञ के अवसर पर, स्तुति करते हुए, तुम्हें घेरकर खड़े हो जाते हैं। उस समय तुम तीन मूर्त्तियाँ (आह्वनीय आदि) धारण करते हो, बल

प्रकाश करते हो, इधर-उधर जाते हो। पुरोहित लोग, योद्धाओं के समान, कोलाहल करने लगते हैं।

५. वे अग्नि ही सबसे अधिक शब्द करनेवाले हैं। जो सशब्द स्तोत्र करते हैं, उनके तुम सखा हो। वे प्रभु हैं और समीपस्थ शत्रु का विनाश करनेवाले हैं। अग्नि स्तोताओं के और विद्वानों के रक्षक हैं। वे उन्हें और हमें आश्रय देते हैं।

६. शोभन पितावाले अग्नि, तुम्हारे समान अन्नवाला कोई भी नहीं है। तुम बली और सर्वश्रेष्ठ हो तथा विपत्ति के समय धनुष धारण करके रक्षा करते हो। उन ज्ञानी अग्नि को, उत्साह के साथ, यज्ञ-सामग्री दो और शीघ्र स्तुति करने को प्रस्तुत होओ।

७. ज्ञाता और कार्य-कर्त्ता मनुष्य अग्नि की स्तुति करते हुए उन्हें सम्पत्ति और बल पुत्र कहते हैं। यज्ञानुष्ठान करनेवाले बन्धु के समान अग्नि-कृपा में तृप्ति प्राप्त करते हैं। वे ज्योतिर्मय ग्रह, नक्षत्र आदि के समान अपने तेज से शत्रु-मनुष्यों को हराते हैं।

८. बल के पुत्र और शक्तिशाली अग्नि, मेरा नाम "उपस्तुत" है। मेरा वर्धक स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करता है। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारी दया से हम दीर्घायु हों और सन्तान प्राप्त करें।

९. वृष्टिहव्य नामक ऋषि के पुत्र "उपस्तुत" आदि ने तुम्हारी स्तुति की। उनकी और स्तोता विद्वानों की रक्षा करो। उन्होंने "वषट्" मन्त्र और "नमोनमः" वाक्य से तुम्हारी स्तुति की।

११६ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि स्थूल-पुत्र अग्निषुत। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. बलियों में अग्रगण्य इन्द्र, प्रचुर बल की प्राप्ति के लिए और वृत्र के वध के लिए सोम-पान करो। अन्न और धन के लिए तुम्हें बुलाया जाता है। सोम-पान करो। मधुतुल्य सोम का पान करो और तृप्त होकर जल बरसाओ।

२. इन्द्र, यह सोम प्रस्तुत है। इसके साथ खाद्य द्रव्य है। सोम क्षरित हो रहा है। इसके सार भाग का पान करो। कल्याण दो, मन ही मन आनन्द प्राप्त करो तथा धन और सौभाग्य देने के लिए अग्रसर होओ।

३. इन्द्र, स्वर्गीय सोम तुम्हें मत्त करे। पृथिवीस्थ मनुष्यों के मध्य जो प्रस्तुत हुआ है, वह भी तुम्हें मत्त करे। जिससे तुम धन दो, वही सोम मत्त करे। जिसके द्वारा शत्रु-वध करते हो, वह भी मत्त करे।

४. इन्द्र इस लोक और परलोक में वृढ़, सर्वत्र-गन्ता और वृष्टिदाता हैं। हमने सोम-रूप आहारीय द्रव्य का चारों ओर सिञ्चन किया है। दोनों घोड़ों के द्वारा इन्द्र उसके पास आयें। शत्रु-घातक इन्द्र, मधु-तुल्य सोम गोचर्म के ऊपर ढाला हुआ और परिपूर्ण है। वृष के समान बल का प्रकाश करके यज्ञ के शत्रुओं का विनाश करो।

५. इन्द्र, तीक्ष्ण अस्त्रों को दिखाते हुए राक्षसों को भूमिशायी करो। तुम्हारी मूर्त्ति भयंकर है। तुम्हें बल और उत्साह बढ़ानेवाला सोम हम देते हैं। शत्रुओं के सामने जाकर कोलाहलमय युद्ध के बीच उन्हें काट डालो।

६. प्रभु इन्द्र, अन्न का विस्तार करो, शत्रुओं के ऊपर अपना अभि-लषित प्रभाव और धनुष फैलाओ। हमारे अनुकूल होकर बढ़ो। शत्रुओं से पराजय न प्राप्त करके अपने बल से शरीर को बढ़ाओ।

७. धनी इन्द्र, इस यज्ञ-सामग्री को तुम्हारे लिए हम अर्पित करते हैं। सम्राट् इन्द्र, क्रोध न करके इसे ग्रहण करो। धनी इन्द्र, सोम प्रस्तुत हुआ है। तुम्हारे लिए खाद्य पकाया गया है। यह सारा द्रव्य तुम्हारे पास जाता है। पियो और खाओ।

८. इन्द्र, यह सारी यज्ञ-सामग्री तुम्हारे पास जाती है। जो आहारीय द्रव्य पकाया गया है और जो सोम है, उन दोनों को ही खाओ। अन्न लेकर हम तुम्हें भोजन के लिए निमन्त्रित करते हैं। यजमानों के मन की वासनायें सफल हों।

९. अग्नि और इन्द्र के लिए सुरचित स्तुति मैं प्रेरित करता हूँ। जैसे नदी में नाव भेजी जाती है, वैसे ही पूजनीय मन्त्रों से मैंने स्तुति प्रेरित की। पुरोहितों के समान देवता लोग परिचर्या करते हैं। वे हमारे शत्रुओं का विनाश करने के लिए हमें धन देते हैं।

११७ सूक्त

(देवता दान। ऋषि आङ्गिरस भिक्षु। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. देवों ने क्षुधा (भूख) की जो सृष्टि की है, वह प्राण-नाशिनी है। परन्तु आहार करने पर भी तो प्राण को मृत्यु से छुट्टी नहीं मिलती। तो भी दाता का धन कम नहीं होता। अदाता को कोई सुखी नहीं कर सकता।

२. जिस समय कोई भूखा मनुष्य भीख माँगने को उपस्थित होता है, अन्न की याचना करता है, उस समय जो अन्नवाला होकर भी हृदय को निष्ठुर रखता और सामने ही भोजन करता है, उसे कोई सुखदाता नहीं मिल सकता।

३. अन्न की इच्छा से किसी दुर्बल व्यक्ति के भिक्षा माँगने पर जो अन्न-दान करता है, वही दाता है। उसे सम्पूर्ण यज्ञ-फल मिलता है और वह शत्रुओं में भी सखा पा लेता है।

४. अपना साथी पास आता है और मित्र होकर भी जो व्यक्ति उसे अन्नदान नहीं करता, वह मित्र कहाने योग्य नहीं है। उसके पास से चला जाना ही उचित है। उसका गृह गृह ही नहीं है। उस समय किसी धनी दाता के यहाँ जाना ही उचित है।

५. याचक को अवश्य धन देना चाहिए। दाता को अत्यन्त लम्बा मार्ग (पुण्य-पथ) मिलता है। जैसे रथ-चक्र नीचे-ऊपर घूमता है, वैसे ही धन भी कभी किसी के पास रहता है और कभी दूसरे के पास चला जाता है—कभी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता।

६. जिसका मन उदार नहीं है, उसका भोजन करना वृथा है। उसका भोजन उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवता को देता है और न मित्र को देता है और स्वयं भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है।

७. कृषि-कार्य करके हल अन्न प्रस्तुत करता है—वह अपने मार्ग से जाकर अपने कर्म के द्वारा शस्य (अन्न) उत्पादन करता है। जैसे विद्वान् पुरोहित मूर्ख से श्रेष्ठ है, वैसे ही दाता सदा अदाता के ऊपर रहता है।

८. जिसके पास एक अंश सम्पत्ति है, वह दो अंश सम्पत्ति के अधिकारी की याचना करता है, जिसके पास दो अंश है, वह तीनवाले के पास जाता है और जिसे चार अंश प्राप्त है, वह उससे अधिकवाले के पास जाता है। इसी प्रकार श्रेणी बँधी हुई है। अल्प धनी अधिक धनी की उपासना करता है।

९. हम लोगों के दोनों हाथ समान रूपवाले हैं; परन्तु धारण करने की शक्ति समान नहीं है। एक माता से उत्पन्न होकर दो गायें समान दुग्ध नहीं देतीं। दो (यमज) भ्राता होने पर भी उनका पराक्रम विभिन्न प्रकार का होता है। एक वंश की सन्तान होकर भी दो व्यक्ति समान दाता नहीं होते।

११८ सूक्त

(देवता राक्षसवध-कर्त्ता अग्नि। ऋषि अमहीयगोत्रज उरक्षय। छन्द गायत्री।)

१. पवित्र व्रतवाले अग्नि, मनुष्यों के बीच तुम अपने स्थान में प्रदीप्त होओ। शत्रु का वध करो।

२. स्रुक् नाम का यज्ञ-पात्र तुम्हारे लिए उठाया गया है। तुम्हें उत्तम आहुति दी गई है। तुम उत्तम घृत के प्रति रुचि करो।

३. अग्नि को बुलाया गया है। वे वाक्य के द्वारा स्तुत्य हैं। वे प्रदीप्त होते हैं। सभी देवों के पहले उन्हें स्रुक् के द्वारा घृत-युक्त किया जाता है।

४. अग्नि में आहुति दी गई। उनकी देह घृतमय हुई। वे दीप्तिमान् और समृद्ध प्रकाश से युक्त हुए। वे घृताक्त हुए।

५. अग्नि, तुम देवों के पास हवि ले आया करते हो। स्तोत्र करने पर तुम प्रज्वलित होते हो। तुम्हें मनुष्य बुलाते हैं।

६. मरण-शील मनुष्यो, अग्नि अमर, दुर्द्धर्ष और गृह के स्वामी हैं। घृत-द्वारा उनकी पूजा करो।

७. अग्नि, प्रचण्ड तेज के द्वारा तुम राक्षसों को जलाओ। यज्ञ के रक्षक होकर दीप्ति धारण करो।

८. अग्नि, अपने स्वभाव-सिद्ध तेज के द्वारा राक्षसियों को जलाओ। अपने प्रशस्त स्थानों पर रहकर दीप्ति धारण करो।

९. मनुष्यों में तुम सर्वश्रेष्ठ यज्ञ-कर्त्ता हो। तुम्हारा निवास-स्थान अद्भुत है। तुम हव्य-वाहक हो। तुम्हें स्तुति के साथ प्रज्वलित किया जाता है।

११९ सूक्त

(देवता और ऋषि लवरूपी इन्द्र। छन्द गायत्री।)

१. मेरी (इन्द्र की) इच्छा है कि, मैं गौ, अश्व आदि का दान करूँ। मैंने कई बार सोम-पान किया है।

२. जैसे वायु वृक्ष को कँपाता और ऊपर उठाता है, वैसे ही सोम-रस, पिये जाने पर, मुझे ऊपर उठाता है। मैंने कई बार सोम पिया है।

३. जैसे शीघ्रगामी अश्व रथ को ऊपर उठाये रखता है, वैसे ही सोम ने, पिये जाने पर, मुझे ऊपर उठा रक्खा है। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।

४. जैसे गाय "हम्बा" कहती हुई बछड़े के प्रति दौड़ती है, वैसे ही मेरी ओर स्तुति आती है। मैंने अनेक बार सोम पिया है।

५. जैसे त्वष्टा रथ के ऊपर के भाग (सारथि-स्थान) को बनाते हैं, वैसे ही मैं भी स्तोता के मन में स्तोत्र का उदय कर देता हूँ। मैंने अनेक बार सोम पिया है।

६. पञ्च जन (चार वर्ण और निषाद) मेरी दृष्टि से ओझल नहीं हो सकते। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।

७. द्यावापृथिवी—दोनों मेरे एक पार्श्व के समान भी नहीं हैं। मैंने अनेक बार सोम पिया है।

८. मेरी महिमा स्वर्ग और विस्तृत पृथिवी को लाँघती है। मैंने अनेक बार सोम पिया है।

९. मेरी इतनी शक्ति है कि, यदि कहो, तो इस धरित्री को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाकर रख सकता हूँ। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।

१०. इस पृथिवी को मैं जला सकता हूँ। जिस स्थान को कहो, मैं उसे विध्वस्त कर दूँ। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।

११. मेरा एक पार्श्व आकाश में है और एक पार्श्व पृथिवी पर है। अनेक बार मैंने सोम-पान किया है।

१२. मैं महान् से भी महान् हूँ। मैं आकाश की ओर हूँ। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।

१३. मेरी स्तुति की जाती है, मैं देवों के पास हव्य ले जाता हूँ और स्वयं हव्य ग्रहण करके चला जाता हूँ। मैंने अनेक बार सोम-पान किया है।

षष्ठ अध्याय समाप्त।

१२० सूक्त

(सप्तम अध्याय। देवता इन्द्र। ऋषि अथर्वा के पुत्र बृहद्दिव। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जिनसे ज्योतिर्मय सूर्य उत्पन्न हुए हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं—उनके पहले कोई नहीं था। जन्म के साथ ही वे शत्रु-विनाश करते हैं। सभी देवता उनका अभिनन्दन करते हैं।

२. अतीव तेजस्वी और शत्रु-हन्ता इन्द्र, विशिष्ट बल से युक्त होकर, दासों के हृदय में भय उत्पन्न कर देते हैं। इन्द्र, सारे प्राणियों को,

तुम सोम-पान के आनन्द से, सुखी करते और उनका शोधन करते हो। तब वे तुम्हारी स्तुति करते हैं।

३. जिस समय देवों को तृप्त करनेवाले यजमान विवाह करते और (जिस समय) सन्तान उत्पन्न करते हैं, उस समय वे तुम्हारे ऊपर सारा यज्ञ-कार्य समाप्त करते हैं। इन्द्र, जो सुस्वादु है, उसमें उससे भी अधिक सुस्वादु वस्तु तुम मिला दो। इस अद्भुत मधु के साथ और मधु मिला दो—अर्थात् सौभाग्य के ऊपर सौभाग्य कर दो।

४. इन्द्र, जिस समय तुम सोमपान से मत्त होकर धन जीतते हो, उस समय स्तोता लोग भी, साथ ही साथ, सोम-पान से मद-मत्त होते हैं। अजेय इन्द्र, अटल तेज दिखाओ। दुःसाहसिक राक्षस तुम्हें पराजित न कर सकें।

५. इन्द्र, तुम्हारी सहायता से हम समर-भूमि में शत्रु-जय करते हैं। मैं युद्ध करने योग्य अनेक शत्रुओं का साक्षात् करता हूँ। स्तुति करते हुए तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र को मैं उत्साहित करता हूँ। मन्त्रों के द्वारा मैं तुम्हारे तेज को तीक्ष्ण कर देता हूँ।

६. स्तुत्य, नाना मूर्त्तियोंवाले, विलक्षण दीप्ति से युक्त, अनुपम प्रभु और श्रेष्ठ आत्मीय इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ। वे अपनी शक्ति से वृत्र, नमुचि, कुयव आदि सात दानवों का विनाश करनेवाले और अनेक असुरों को हरानेवाले हैं।

७. इन्द्र, तुम जिस गृह में हवीरूप अन्न से तृप्त होते हो, उसमें दिव्य और पार्थिव धन देते हो। जिस समय सारे भूतों को बनानेवाले द्यौ और पृथिवी चञ्चल होती है, उस समय तुम्हीं उन्हें सुस्थिर करते हो। उस अवसर पर तुम्हें अनेक कार्य करने पड़ते हैं।

८. ऋषि-श्रेष्ठ और स्वर्गाभिलाषी "बृहद्दिव" इन्द्र के लिए यह सब प्रसन्नता-कारक वेद-मन्त्र पढ़ रहे हैं। यह प्रदीप्त इन्द्र विशाल पर्वत को हटाते और शत्रु के सारे द्वारों को खोलते हैं।

९. अथर्वा के पुत्र और महाबुद्धि बृहद्दिव ने, इन्द्र के लिए, अपनी स्तुति

का पाठ किया। पृथिवीस्थ निर्मल नदियाँ जल बहाती और अन्न के द्वारा लोगों की कल्याण-वृद्धि करती हैं।

१२१ सूक्त

(देवता "क" नामवाले प्रजापति। ऋषि प्रजापति-त्रपु हिरण्यगर्भ। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सबसे पहले केवल परमात्मा वा हिरण्यगर्भ थे। उत्पन्न होने पर वे सारे प्राणियों के अद्वितीय अधीश्वर थे। उन्होंने इस पृथिवी और आकाश को अपने-अपने स्थानों में स्थापित किया। उन "क" नामवाले प्रजापति देवता की हम हवि के द्वारा पूजा करेंगे अथवा हम हव्य के द्वारा किन देवता की पूजा करें?

२. जिन प्रजापति ने जीवात्मा को दिया है, बल दिया है, जिनकी आज्ञा सारे देवता मानते हैं, जिनकी छाया अमृत-रूपिणी है और जिनके वश में मृत्यु है, उन "क" नामवाले आदि।

३. जो अपनी महिमा से दर्शनेन्द्रिय और गतिशक्तिवाले जीवों के अद्वितीय राजा हुए हैं और जो इन द्विपदों और चतुष्पदों के प्रभु हैं, उन "क" नामवाले आदि।

४. जिनकी महिमा से ये सब हिमाच्छन्न पर्वत उत्पन्न हुए हैं, जिनकी सृष्टि यह ससागरा धरित्री कही जाती है और जिनकी भुजायें ये सारी दिशाएँ हैं, उन "क" नाम आदि।

५. जिन्होंने इस उन्नत आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थानों पर दृढ़ रूप से स्थापित किया है, जिन्होंने स्वर्ग और आदित्य को रोक रक्खा है और जो अन्तरिक्ष में जल के निर्माता हैं, उन "क" नाम आदि।

६. जिनके द्वारा द्यौ और पृथिवी, शब्दायमान होकर, स्तम्भित और उल्लसित हुए थे और दीप्तिशील द्यौ और पृथिवी ने जिन्हें महिमान्वित समझा था तथा जिनके आश्रय से सूर्य उगते और प्रकाश करते हैं, उन "क" नाम आदि।

७. प्रचुर जल सारे भुवन को आच्छन्न किये हुए था। जल ने गर्भ

धारण करके अग्नि वा आकाश आदि सबको उत्पन्न किया। इससे देवों के प्राण वायु उत्पन्न हुए उन "क" नाम आदि।

८. बल धारण करके जिस समय जल ने अग्नि को उत्पन्न किया, उस समय जिन्होंने अपनी महिमा से उस जल के ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया तथा जो देवों में अद्वितीय देवता हुए, उन "क" नाम आदि।

९. जो पृथिवी के जन्मदाता हैं, जिनकी धारण-क्षमता सत्य है, जिन्होंने आकाश को जन्म दिया और जिन्होंने आनन्द-वर्द्धक तथा प्रचुर परिमाण में जल उत्पन्न किया, वे हमें नहीं मारें। उन "क" नाम आदि।

१०. प्रजापति, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई इन समस्त उत्पन्न वस्तुओं को अधीन करके नहीं रख सकता। जिस अभिलाषा से हम तुम्हारा हवन करते हैं, वह हमें मिले। हम धनाधिपति हों।

१२२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ-पुत्र चित्रमहा। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि का तेज विचित्र है। वे सूर्य के समान हैं। वे रमणीय, सुखकर और प्रेम-पात्र अतिथि के समान हैं। उनकी मैं स्तुति करता हूँ। जो अग्नि वृष के द्वारा संसार को धारण करते और क्लेश को दूर करते हैं, वे गौ और उत्तम बल देते हैं। वे होता और गृहपति हैं।

२. अग्नि, तुम सन्तुष्ट होकर मेरे स्तोत्र के प्रति रुचि करो। उत्तम कर्म करनेवाले अग्नि जो कुछ जानने योग्य है, वह सब तुम जानते हो। घृत की आहुति पाकर तुम स्तोता को साम-गान के लिए कहो। तुम्हारा कार्य देखने के अनन्तर देवता लोग अपना-अपना कार्य करते हैं।

३. अग्नि, तुम अमर हो। तुम सर्वत्र जाते हो। उत्तम कार्यकर्त्ता दाता को दान करो। पूजा ग्रहण करो। यज्ञ-काष्ठ के द्वारा जो तुम्हारी संवर्द्धना करता है, उसके पास उत्तमोत्तम सम्पत्ति और सन्तान ले जाओ।

४. याज्ञिक सामग्री से युक्त यजमान सात अश्वों वा पृथिव्यादि लोकों के स्वामी अग्नि की स्तुति करते हैं। अग्नि यज्ञ के केतु और सर्वश्रेष्ठ

पुरोहित हैं। वे घृताहुति प्राप्त करके और कामना सुनकर अभिलषित फल देते हैं और दाता को उत्तम बल देते हैं।

५. अग्नि, तुम सर्वश्रेष्ठ और अग्रगण्य दूत हो। अमरता प्राप्त करने के लिए तुम बुलाये जाते हो। तुम आनन्ददाता हो। दाता के गृह में मरुद्-गण तुम्हें सुशोभित करते हैं। भार्गव लोग, स्तुति के द्वारा, तुम्हारी उज्ज्वलता बढ़ाते हैं।

६. अग्नि, तुम्हारा कर्म अद्भुत है। जो यजमान यज्ञानुष्ठान में रत रहता है, उसके लिए तुम यज्ञ-रूपिणी, यथेष्ट-दुग्धदात्री और विश्व-पालिका गाय से यज्ञ-फल दूह डालो। घृताहुति प्राप्त करके तुम पृथिवी आदि तीनों स्थानों को प्रकाशमय करते हो। तुम यज्ञ-गृह में सर्वत्र हो। सर्वत्र जाते हो। सुकृती का जो आवरण है, वह तुममें दिखाई देता है।

७. उषा का समय होते ही यजमान लोग तुम्हें दूत-स्वरूप समझकर यज्ञ करते हैं। अग्नि देवता लोग भी तुम्हें, घृत के द्वारा, प्रदीप्त करके पूजा करने के लिए संवर्द्धित करते हैं।

८. अग्नि, यज्ञों में वसिष्ठ-पुत्र अनुष्ठान प्रारम्भ करके और तुम्हें अन्न-युक्त करके बुलाने लगे। यजमानों के घरों में प्रभूत धन रक्खो। तुम लोग हमें सदा कल्याण के द्वारा बचाओ।

१२३ सूक्त

(देवता वेन। ऋषि भार्गव वेन। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. वेन नामक देवता ज्योति के द्वारा परिवेष्टित हैं। वे जल-निर्माता आकाश के मध्य में सूर्य-किरणों के सन्तान-स्वरूप जल को पृथिवी पर गिराते हैं। जिस समय सूर्य के साथ जल का मिलन होता है, उस समय बुद्धिमान् स्तोता लोग उन वेन देवता को, बालक के समान नाना मीठे वचनों से, सन्तुष्ट करते हैं।

२. वेन अन्तरिक्ष से जल-माला प्रेरित करते हैं। आकाश में उज्ज्वल मूर्त्ति वेन का पृष्ठदेश दिखाई दिया। जल के उन्नत स्थान आकाश में

वेन दीप्ति पाते हैं। उनके पार्श्वदों ने सबके उत्पत्ति-स्थान आकाश को प्रतिध्वनित किया।

३. वेन के साथ जल आकाश में रहता है। वह वत्स-रूपी विद्युत् की माता है। वह अपने सहवासी वेन के साथ शब्द करने लगा। जल के उत्पत्ति-स्थान आकाश में मधु-तुल्य वृष्टि-जल का शब्द उत्पन्न होकर वेन की संवर्द्धना करने लगा।

४. बुद्धिमान् स्तोताओं ने प्रकाण्ड महिष के समान वेन का शब्द सुना। इससे उन लोगों ने समझकर उनके रूप की कल्पना की। उन्होंने वेन का यजन करके, नदी के समान, प्रचुर जल प्राप्त किया। गन्धर्व-रूपी वेन जल के प्रभु हैं।

५. विद्युत् एक अप्सरा है और वेन उसके पति हैं। विद्युत् ने वेन को देखकर, मन्द मुस्कान करते हुए, उनका आलिङ्गन किया। वेन प्रेमी नायक के समान प्रेयसी विद्युत् की रति-कामना पूर्ण करके सुवर्णमय पक्ष वा मेघ में सो गये।

६. वेन, तुम स्वर्ग में उड़नेवाले पक्षी के समान हो। तुम्हारे दोनों पक्ष सुवर्णमय हैं। तुम सर्वलोक-शासक वरुण के दूत हो। तुम संसार के भरण पोषण-कारी पक्षी के समान हो। तुम्हारा सब दर्शन करते हैं और अन्तःकरण में तुम्हारे प्रति प्रीति धारण करते हैं।

७. वे गन्धर्व-रूपी स्वर्ग के उन्नत प्रदेश में, उन्नत भाव से, रहते हैं। वे चारों ओर विचित्र अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए हैं। वे अपनी अत्यन्त सुन्दर मूर्त्ति का आच्छादन किये हुए हैं। अन्तर्हित होकर वे अभिलषित वृष्टि-वारि उत्पन्न करते हैं।

८. वेन जलवाले हैं। वे अपने कर्म के साधन-काल में गृध्र के समान दूरदर्शक चक्षु के द्वारा देखते हुए अन्तरिक्ष की ओर जाते हैं। वे शुभ्र-वर्ण आलोक के द्वारा प्रदीप्त होते हैं। प्रदीप्त होकर तृतीय लोक आकाश में ऊपरी भाग से सर्व-लोक-वाञ्छित जल की सृष्टि करते हैं।

१२४ सूक्त

(देवता और ऋषि अग्नि आदि। छन्द त्रिष्टुप्, जगती आदि।)

१. अग्नि, हमारे इस यज्ञ के ऋत्विक्, यजमान आदि पाँच व्यक्ति नियामक वा अध्यक्ष हैं। इसका अनुष्ठान तीन प्रकार (सवन-त्रय) से होता है। इसके अनुष्ठाता होता आदि सात हैं। इस यज्ञ की ओर आओ। तुम्हीं हमारे हविर्वाहक और अग्रगामी दूत हो।

२. (अग्नि का कथन)—देवता मेरी प्रार्थना करते हैं। इसलिए मैं दीप्तिहीन और अव्यक्त अवस्था से दीप्तिवाली अवस्था को प्राप्त करके, चारों ओर निरीक्षण करते हुए, अमरता पाता हूँ। जिस समय यज्ञ निरुपद्रव के साथ सम्पन्न होता है उस समय में अदृष्ट होता और यज्ञ को छोड़ देता हूँ। चिर सखा और उत्पत्ति-स्थान अरणि में चला जाता हूँ।

३. पृथिवी के अतिरिक्त जो आकाश गमन-मार्ग है, उसके अतिथि सूर्य की वार्षिक गति के अनुसार मैं भिन्न-भिन्न ऋतुओं में यज्ञानुष्ठान करता हूँ। बली देवता पितृ-रूप हैं। उनके सुख के लिए मैं स्तुति करता हूँ। यज्ञ के अयोग्य और अपवित्र स्थान से मैं यज्ञ के उपयुक्त स्थान में जाता हूँ।

४. इस यज्ञ-स्थान में मैंने अनेक वर्ष बिताये हैं। यहाँ इन्द्र का वरण करते हुए अपने पिता अरणि से निकलता हूँ। मेरा अदर्शन होने पर सोम, वरुण आदि का पतन हो जाता है और राष्ट्र-विप्लव हो जाता है। उस समय आकर मैं रक्षा करता हूँ।

५. मेरे आते ही असुर लोग असमर्थ हो गये। वरुण, तुम भी मेरी प्रार्थना करो। परमात्मन्, सत्य से मिथ्या को अलग करके मेरे राज्य का आधिपत्य ग्रहण करो।

६. (अग्नि वा वरुण की उक्ति)—सोम, यह देखो, स्वर्ग है। यह अत्यन्त रमणीय था। यह प्रकाश देखो। यह विस्तृत आकाश है। सोम, प्रकट होओ। वृत्र का वध किया जाय। तुम होमीय द्रव्य हो। अन्यान्य हवनीय द्रव्यों के द्वारा हम तुम्हारी पूजा करते हैं।

७. क्रान्तदर्शी मित्रदेव ने क्रिया-कौशल के द्वारा द्युलोक में अपने तेज को संलग्न किया। वरुण-देव ने थोड़े ही यत्न से मेघ से जल को निकाला। सारे जल नदियाँ बनकर संसार का मंगल करते हैं। वे सब निर्मल नदियाँ, वरुण की पत्नी के समान, वरुण का शुभ्र तेज धारण करती हैं।

८. सब जलदेवता वरुण का सर्वश्रेष्ठ तेज प्राप्त करते हैं। उन्हीं के समान वे होमीय द्रव्य पाकर आनन्दित होते हैं। अपनी पत्नी के समान वरुण उनके पास जाते हैं। जैसे प्रजा भय पाकर राजा को आश्रय करती है, वैसे ही जलदेव, भय के कारण, वरुण का आश्रय करके वृत्र के पास से भागते हैं।

९. उन सब भीत और दिव्य जलदेव के साथी होकर जो उनकी हितैषिता करते हैं, उन्हें "हंस" वा सूर्य वा इन्द्र कहा जाता है। वे स्तुत्य हैं—वे जल के पीछे-पीछे जाते हैं। विद्वान् लोग बुद्धि-बल से उन्हें इन्द्र कहकर स्थिर किये हुए हैं।

१२५ सूक्त

(देवता परमात्मा। ऋषि अम्भृण की पुत्री वाक्। छन्द त्रिष्टुप् और जगती।)

१. (वाग्देवी की उक्ति)—मैं रुद्रों और वसुओं के साथ विचरण करती हूँ। मैं आदित्यों और देवों के साथ रहती हूँ। मैं मित्र और वरुण को धारण करती हूँ। मैं इन्द्र, अग्नि और अश्विद्वय का अवलम्बन करती हूँ।

२. जो सोम प्रस्तर से पीसे जाकर उत्पन्न होते हैं, उन्हें मैं ही धारण करती हूँ। मैं त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ। जो यजमान यज्ञ-सामग्री का आयोजन करके और सोमरस प्रस्तुत करके देवों को भली भाँति सन्तुष्ट करता है, उसे मैं ही धन देती हूँ।

३. मैं राज्य की अधीश्वरी हूँ और धन देनेवाली हूँ। मैं ज्ञानवती हूँ और यज्ञोपयोगी वस्तुओं में श्रेष्ठ हूँ। देवों ने मुझे नाना स्थानों में रक्खा है। मेरा आश्रय-स्थान विशाल है। मैं सब प्राणियों में आविष्ट हूँ।

४. जो प्राण धारण करता, देखता, सुनता और अन्न-भोग करता है, वह मेरी सहायता से ही यह सब कार्य करता है। जो मुझे नहीं मानते, वे क्षीण हो जाते हैं। विज्ञ, सुनो। जो मैं कहती हूँ, वह श्रद्धेय है।

५. देवता और मनुष्य जिसकी शरण में जाते हैं, उसको मैं ही उपदेश देती हूँ। मैं जिसे चाहूँ, उसे बली, स्तोता, ऋषि अथवा बुद्धिमान् कर सकती हूँ।

६. जिस समय इन्द्र स्तोत्र-द्रोही शत्रु का वध करने को उद्यत होते हैं, उस समय उनके धनुष का विस्तार करती हूँ। मनुष्य के लिए मैं ही युद्ध करती हूँ। मैं द्यावापृथिवी में व्याप्त हूँ।

७. मैं पिता हूँ। मैंने आकाश को उत्पन्न किया है। वह आकाश इस संसार का मस्तक है। समुद्र-जल में मेरा स्थान है। उसी स्थान से मैं सारे संसार में विस्तृत होती हूँ। मैं अपनी उन्नत देह से इस द्युलोक को छूती हूँ।

८. मैं ही भुवन-निर्माण करते-करते वायु के समान बहती हूँ। मेरी महिमा ऐसी बड़ी है कि, मैं द्यावापृथिवी का अतिक्रम कर चुकी हूँ।

१२६ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि शिलूष-पुत्र कुल्मलबर्हिष। छन्द बृहती और त्रिष्टुप्।)

१. अर्यमा, मित्र और वरुण जिसे शत्रु के हाथ से बचा देते हैं, देवो, कोई भी अमंगल और कोई भी पाप उसपर आक्रमण नहीं कर सकता।

२. वरुण, मित्र और अर्यमा, हम तुमसे प्रार्थना करते हैं कि, मनुष्य को पाप और शत्रु के हाथ से बचाओ।

३. वरुण, मित्र और अर्यमा निश्चय ही हमारी रक्षा करेंगे। वरुण आदि देवो, हमें ले चलो, पार करो और शत्रु के हाथ से परित्राण करो।

४. वरुण, मित्र और अर्यमा, तुम लोग संसार की रक्षा करते और नेता का कार्य भली भाँति करते हो। तुम लोगों के द्वारा हम शत्रु के हाथ से रक्षा पाकर तुम्हारे पास सुन्दर सुख पावें।

५. आदित्य, वरुण, मित्र और अर्यमा शत्रुओं के हाथ से बचावें। शत्रु से परित्राण पाकर, कल्याण-लाभ के लिए, हम उग्र-मूर्त्ति रुद्र, मरुद्-गण, इन्द्र और अग्नि को बुलाते हैं।

६. वरुण, मित्र और अर्यमा मार्ग दिखाकर ले जाने में अत्यन्त निपुण हैं। ये पाप को लुप्त कर देते हैं। मनुष्यों के मालिक ये सब देवता सारे पापों और शत्रु-हस्त से हमें बचावें।

७ वरुण, मित्र और अर्यमा रक्षा के साथ हमें सुखी करें। हम जो सुख चाहते हैं, प्रचुर परिमाण में आदित्य लोग हमें वही सुख दें और शत्रु-हस्त से बचावें।

८. जिस समय शुभ्रवर्ण गौ का पैर बाँधा गया था, उस समय यज्ञ-भाग-भागी वसु लोगों ने बन्धन छुड़ा दिया था। वैसे ही हमें पाप से बचाओ। अग्नि, हमें उत्तम परमायु प्रदान करो।

१२७ सूक्त

(देवता रात्रि। ऋषि सोभरि-पुत्र कुशिक। छन्द गायत्री।)

१. आती हुई रात्रिदेवी चारों ओर विस्तृत हुई हैं। उन्होंने नक्षत्रों के द्वारा निःशेष शोभा पाई है।

२. दीप्तिशालिनी रात्रिदेवी ने अतीव विस्तार प्राप्त किया है। जो नीचे रहते हैं और जो ऊपर रहते हैं, उन सबको ये आच्छन्न करनेवाली हैं। प्रकाश के द्वारा उन्होंने अन्धकार को नष्ट किया है।

३. रात्रि ने आकर उषा को, अपनी भगिनी के समान, परिग्रहण किया। उन्होंने अन्धकार को दूर किया।

४. जैसे चिड़ियाँ पेड़ पर रहती हैं, वैसे ही जिनके आने पर हम सोये थे, वे रात्रिदेवी हमारे लिए शुभंकरी हों।

५. सब गाँव निस्तब्ध हैं; पादचारी, पक्षी और शीघ्रगामी श्येन आदि निस्तब्ध होकर सो गये हैं।

६. हे रात्रि, वृक और वृकी को हमसे अलग कर दो। चोर को दूर ले जाओ। हमारे लिए तुम विशेष रीति से शुभंकरी होओ।

७. कृष्णवर्ण का अन्धकार दिखाई दे रहा है। मेरे पास तक सब ढक गया है। उषादेवी जैसे मेरे ऋण का परिशोध कर ऋण को छुड़ा देती हो, वैसे ही अन्धकार को नष्ट करो।

८. आकाश की कन्या रात्रि, तुम जाती हो। गाय के समान तुम्हें यह स्तोत्र मैं अर्पित करता हूँ। ग्रहण करो।

१२८ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि आङ्गिरस विहव्य। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. अग्नि, युद्ध के समय मेरे तेज का उदय हो। तुम्हें प्रज्वलित करके हम अपनी देह की पुष्टि करते हैं। मेरे पास चारों दिशायें अवनत हों। तुम्हें स्वामी पाकर हम शत्रुओं को जीतें।

२. इन्द्रादि देवता, मरुद्गण, विष्णु और अग्नि, युद्ध के समय, मेरे पक्ष में रहें। आकाश के समान विस्तीर्ण भुवन मेरे पक्ष में हों। मेरी कामना पर वायु, मेरे अनुकूल होकर, मुझे पवित्र करें।

३. मेरे यज्ञ में सन्तुष्ट होकर देवता लोग मुझे धन दें। मैं आशीर्वाद प्राप्त करूँ। देवाह्वान करूँ। प्राचीन समय में जिन्होंने देवों के लिए होम किया है, वे अनुकूल हों। मेरा शरीर निरुपद्रव हो। सन्तान उत्पन्न हों।

४. मेरी यज्ञ-सामग्री, मेरे लिए, देवों को अर्पित हो। मेरा मनोरथ सिद्ध हो। मैं किसी पाप में लिप्त न होऊँ। निखिल देवता हमें यह आशीर्वाद करें।

५. छः देवियाँ (द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि) हमारी श्री-वृद्धि करें। देवो, यहाँ वीरत्व करो। हमारी सन्तति और शरीर का अमंगल न हो। राजा सोम, शत्रु के पास हम विनष्ट न हों।

६. अग्नि, शत्रुओं का क्रोध विफल करके रक्षक बनो और दुर्द्धर्ष होकर हमारी सब प्रकार से रक्षा करो। शत्रु लोग व्यर्थ-मनोरथ होकर लौट जायँ। यदि शत्रु बुद्धिमान् भी हों, तो भी उनकी बुद्धि लुप्त हो जाय।

७. जो सृष्टि-कर्त्ताओं के भी सृष्टि-कर्त्ता हैं, जो भुवन के अधीश्वर हैं, जो रक्षक और शत्रु-विजेता हैं। उनकी मैं स्तुति करता हूँ। अश्विद्वय, बृहस्पति तथा अन्यान्य देवता इस यज्ञ की रक्षा करें। यजमान की क्रिया निरर्थक न हो।

८. जो अतीव विस्तृत तेज के अधिकारी हैं, जो महान् हैं, जो सबसे पहले बुलाये जाते हैं और जो विविध स्थानों में रहते हैं, वे ही इन्द्र इस यज्ञ में हमें सुखी करें। हरित-वर्ण अश्व के स्वामी इन्द्र, हमें सुखी करो, सन्तान से युक्त करो। हमारा अनिष्ट नहीं करना, हमसे प्रतिकूल नहीं होना।

९. जो हमारे शत्रु हैं, वे दूर हों। इन्द्र और अग्नि की सहायता से हम उन्हें जीतें। वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण मुझे सर्व-श्रेष्ठ, दुर्द्धर्ष, बुद्धिमान् और अधिराज करें।

१२९ सूक्त

(११ अनुवाक। देवता परमात्मा। ऋषि परमेष्ठी प्रजापति। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. उस समय वा प्रलय दशा में असत् (सियार की सींग की समान जिसका अस्तित्व नहीं है) नहीं था। जो सत् (जीवात्मा आदि) है, वह भी नहीं था। पृथिवी भी नहीं थी और आकाश तथा आकाश में विद्यमान सातों भुवन भी नहीं थे। आवरण (ब्रह्माण्ड) भी कहाँ था? किसका कहाँ स्थान था? क्या दुर्गम और गंभीर जल उस समय था?

२. उस समय मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी, रात और दिन का भेद भी नहीं था। वायु-शून्य और आत्मावलम्बन से श्वास-प्रश्वास-युक्त केवल एक ब्रह्म थे। उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

३. सृष्टि के प्रथम अन्धकार (वा माया-रूपी अज्ञान) से अन्धकार (वा जगत्कारण) ढका हुआ था। सभी अज्ञात और सब जलमय (वा अविभक्त) था। अविद्यमान वस्तु के द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न था। तपस्या के प्रभाव से वही एक तत्त्व उत्पन्न हुआ।

४. सर्व-प्रथम परमात्मा के मन में काम (सृष्टि की इच्छा) उत्पन्न हुआ। उससे सर्व-प्रथम बीज (उत्पत्तिकारण) निकला। बुद्धिमानों ने, बुद्धि के द्वारा, अपने अन्तःकरण में विचार करके अविद्यमान वस्तु से विद्यमान वस्तु का उत्पत्ति-स्थान निरूपित किया।

५. बीज-धारक पुरुष (भोक्ता) उत्पन्न हुए। महिमायें (भोग्य) उत्पन्न हुईं। उन (भोक्ताओं) का कार्य-कलाप दोनों पार्श्वों (नीचे और ऊपर) विस्तृत हुआ। नीचे स्वधा (अन्न) रहा और ऊपर प्रयति (भोक्ता) अवस्थित हुआ।

६. प्रकृत तत्त्व को कौन जानता है ? कौन उसका वर्णन करे ? यह सृष्टि किस उपादान कारण से हुई ? किस निमित्त कारण से ये विविध सृष्टियाँ हुईं ? देवता लोग इन सृष्टियों के अनन्तर उत्पन्न हुए हैं। कहाँ से सृष्टि हुई, यह कौन जानता है ?

७. ये नाना सृष्टियाँ कहाँ से हुईं, किसने सृष्टियाँ कीं और किसने नहीं कीं—यह सब वे ही जानें, जो इनके स्वामी परम धाम में रहते हैं। हो सकता है कि, वे भी यह सब नहीं जानते हों।

१३० सूक्त

(देवता प्रजापति। ऋषि प्रजापति-पुत्र यज्ञ। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. चारों ओर सूत्र-विस्तार के द्वारा यज्ञरूप वस्त्र बुना जाता है। देवों के लिए बहुसंख्यक अनुष्ठानों के द्वारा इसका विस्तार किया गया है। यज्ञ में जो पितर लोग आये हैं, वे बुन रहे हैं। "लम्बा बुनो, चौड़ा बुनो" कहते हुए वे वस्त्र-वयन का कार्य करते हैं।

२. एक वस्त्र को लम्बा करते हैं और दूसरे चौड़ाई के लिए उसे पसार रहे हैं। यह स्वर्ग तक विस्तारित हो रहा है। ये सब तेजःपुञ्ज देवता यज्ञ-गृह में बैठे हैं। इस कार्य में साममन्त्रों का ताना-बाना बनाया जाता है।

३. जिस समय देवों ने प्रजापति-यज्ञ किया, उस समय यज्ञ की सीमा

क्या थी ? देव-मूर्त्ति क्या थी ? संकल्प क्या था ? घृत क्या था ? यज्ञ की (पलाश आदि की) तीन परिधियाँ (माप) क्या थीं ? छन्द और उक्थ क्या थे ?

४. गायत्री छन्द अग्नि का सहायक हुआ और उष्णिक् सविता देव का। सोम अनुष्टुप् छन्द के और तेजस्वी सूर्य उक्थ छन्द के साथ मिले। बृहती छन्द ने बृहस्पति-वाक्य का आश्रय किया।

५. विराट् छन्द मित्र और वरुण के आश्रित हुआ। इन्द्र और दिन के सोम के भाग में त्रिष्टुप् पड़ा। जगती छन्द ने अन्य देवों का आश्रय किया। इस प्रकार ऋषियों और मनुष्यों ने यज्ञ किया।

६. प्राचीन समय में, यज्ञ उत्पन्न होने पर, हमारे पूर्व पुरुष ऋषियों और मनुष्यों ने उक्त नियम के अनुसार अनुष्ठान सम्पन्न किया। जिन्होंने प्राचीन समय में यज्ञानुष्ठान किया था, उन्हें, मुझे जान पड़ता है कि, मैं मनश्चक्षु से देख रहा हूँ।

७. सात दिव्य ऋषियों ने स्तोत्रों और छन्दों का संग्रह करके पुनः-पुनः अनुष्ठान किया और यज्ञ का परिमाण स्थिर किया। जैसे सारथि घोड़े का लगाम हाथ से पकड़ते हैं, वैसे ही विद्वान् ऋषियों ने पूर्व पुरुषों की प्रथा के प्रति दृष्टि रखकर यज्ञानुष्ठान किया।

१३१ सूक्त

(देवता अश्विद्वय और इन्द्र। ऋषि कक्षीवान् के पुत्र सुकीर्त्ति। छन्द त्रिष्टुप् और अनुष्टुप्।)

१. शत्रु-विजेता इन्द्र, सामने और पीछे, उत्तर और दक्षिण जो सब शत्रु हैं, उन्हें दूर करो। वीर, तुम्हारे पास विशिष्ट सुख की प्राप्ति करके हम आनन्दित हों।

२. जिनके खेत में यव (जौ) होता है, वे जैसे अलग-अलग करके क्रमशः उसे, अनेक बार काटते हैं, वैसे ही हे इन्द्र, जो यज्ञ में "नमः" नहीं करते अथवा जो पुण्यानुष्ठान से विरत हैं, उनकी भोजन-सामग्री को अभी नष्ट कर दो।

३. जिस शकट में एक ही चन्द्र है, वह कभी भी नियत स्थान पर नहीं उपस्थित हो सकता। युद्ध के समय उससे अन्न-लाभ नहीं हो सकता। जो लोग गौ, अश्व, अन्न आदि की इच्छा करते हैं वे बुद्धिमान् इन्द्र के सख्य के लिए लालायित रहते हैं।

४. कल्याण-मूर्त्ति अश्विद्वय, जिस समय नमुचि के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ, उस समय तुम दोनों ने मिलकर और सुन्दर सोम का पान करके इन्द्र के कार्य में उनकी रक्षा की।

५. अश्विद्वय, जैसे माता-पिता पुत्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम लोगों ने सुन्दर सोम का पान करके अपनी क्षमता और अद्भुत कार्यों के द्वारा इन्द्र की रक्षा की। इन्द्र, सरस्वतीदेवी तुम्हारे पास थीं।

६. और ७. इन्द्र उत्तम रक्षक, धनी और सर्वज्ञ हैं। वे रक्षा करके सुखदाता हों। वे शत्रुओं को हटाकर अभय दें। हम उत्तम शक्ति के अधिकारी हों। यज्ञ भागग्राही इन्द्र के पास हम प्रसन्नता-पात्र हों। वे हमारे प्रति भली भाँति सन्तुष्ट हों। वे उत्तम रक्षक और धनी हैं। इन्द्र हमारे पास के और दूर के शत्रु को दृष्टि-मार्ग से अलग करें।

१३२ सूक्त

(देवता मित्र और वरुण। ऋषि नृमेध पुत्र शकपूत। छन्द प्रस्तारपङ्क्ति आदि।)

१. जो यज्ञ करता है, उसी के लिए आकाश (द्यौ) धन रखता है। पृथिवी भी उसे ही श्री-सम्पन्न करती है। यज्ञकर्त्ता को ही अश्विद्वय नाना सुख-सामग्री देकर सन्तुष्ट करते हैं।

२. मित्र और वरुण, तुम पृथिवी को धारण किये हुए हो। उत्तम सुख-सामग्री के लिए हम तुम दोनों की पूजा करते हैं। यजमान के प्रति तुम लोगों का जो सख्य-व्यवहार होता है, उसके प्रभाव से हम शत्रु-जय करें।

३. मित्र और वरुण, जिसी समय तुम्हारे लिए हम यज्ञ-सामग्री का आयोजन करते हैं, उसी समय हम प्रिय धन के पास उपस्थित होते हैं। यज्ञ-दाता जो धन पाता है, उसपर कोई उपद्रव नहीं होता।

४. बली (असुर) मित्र, आकाश से उत्पन्न सूर्य तुम से भिन्न हैं। वरुण, तुम सबके राजा हो। तुम्हारे रथ का मस्तक इधर ही आ रहा है। हिंसकों के विनाशक इस यज्ञ को तनिक भी अशुभ छू नहीं सकता।

५. मुझ शकपूत का पाप नीच-स्वभाव शत्रुओं को नष्ट करता है; क्योंकि मित्रदेव मेरे हितैषी हैं। मित्रदेवता आकर शरीर की रक्षा करें। उत्तमोत्तम यज्ञ-सामग्री की भी वे रक्षा करें।

६. विशिष्ट ज्ञानी मित्र और वरुण, तुम्हारी माता अदिति हैं। द्यावापृथिवी को जल से परिष्कृत करो। निम्न लोक में उत्तमोत्तम सामग्री दो। सूर्य-किरणों के द्वारा सारे भुवन को पवित्र करो।

७. अपने कर्म के बल तुम दोनों राजा हुए हो। तुम्हारा जो रथ वन में विहार करता है, वह इस समय अश्वों के वहन-स्थान में रहे। सब शत्रु क्रोध के साथ चीत्कार करते हैं। बुद्धिमान नृमेध ऋषि विपत्ति से उद्धार पा चुके हैं।

१३३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि पिजवन-पुत्र सुदास। छन्द शक्वरी।)

१. इन्द्र की जो सेना उनके रथ के सामने है, उसकी भली भाँति पूजा करो। युद्ध के समय जब शत्रु पास आकर भिड़ जाता है, तब इन्द्र पलायन नहीं करते—वृत्र का बध कर डालते हैं। हमारे प्रभु इन्द्र हमारी चिन्ता करें। शत्रुओं की ज्या छिन्न हो जाय।

२. नीचे बहनेवाली जल-राशि को तुम्हीं ने मुक्त किया है। तुमने ही मेघ वा वृत्र का वध किया है। इन्द्र, तुम अजेय और शत्रु के लिए अवध्य होकर जन्मे हो। तुम विश्व-पालक हो। तुम्हें ही सर्वश्रेष्ठ जानकर हम पास में आये हैं। शत्रुओं की ज्या छिन्न हो जाय।

३. अदाता शत्रु दृष्टि-पथ से दूर हो। हमारी स्तुतियाँ चलती रहें। इन्द्र, हमारे वध की इच्छा करनेवाले शत्रु को मारो। तुम्हारी दानशीलता हमें धन दे। विपक्षियों की प्रत्यञ्चा छिन्न हो जाय।

४. इन्द्र, भेड़िये के समान आचरण करनेवाले जो लोग हमारे चारों ओर घूमते हैं, उन्हें धराशायी करो। तुम शत्रुओं को हरानेवाले और उन्हें पीड़ा पहुँचानेवाले हो। शत्रुओं की प्रत्यञ्चा छिन्न हो जाय।

५. हमारे निकृष्ट, समान-जन्मा और अनिष्ट कर्म करनेवाले शत्रुओं के बल को वैसे ही नीचा दिखाओ, जैसे विशाल आकाश सारी वस्तुओं को नीचा दिखाता है। शत्रुओं की प्रत्यञ्चा छिन्न हो जाय।

६. इन्द्र, हम तुम्हारे अनुगामी हैं। तुम्हारे बन्धुत्व के उपयुक्त कार्य के लिए हम उद्योग करते हैं। पुण्य कर्म के मार्ग से हमें ले चलो। हम सारे पापों के पार जायें। शत्रुओं की प्रत्यञ्चा छिन्न हो जाय।

७. इन्द्र, हमें तुम वह विद्या बताओ, जिसके प्रभाव से स्तोता का मनोरथ पूर्ण हो। पृथिवी-स्वरूपा यह गौ विशाल स्तनवाली होकर और सहस्र धाराओं से दूध गिराकर हमें परितृप्त करे।

१३४ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि युवनाश्व के पुत्र मान्धाता और ऋषिका सातवें मन्त्र की गोधा नाम की ब्रह्मवादिनी। छन्द महापङ्क्ति और पङ्क्ति।)

१. इन्द्र, तुम उषा के समान द्यावापृथिवी को तेज से परिपूर्ण करते हो। तुम महान् से भी महान् हो। तुम मनुष्यों के सम्राट् हो। तुम्हारी कल्याणमयी माता ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

२. जो दुरात्मा हमारा वध करना चाहता है, उसके अधिक बली रहने पर भी तुम उस बल को कम कर देते हो। जो हमारा अनिष्ट चाहता है, उसे तुम धराशायी करते हो। तुम्हारी कल्याणमयी माता ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

३. शक्तिशाली और शत्रुसंहारी इन्द्र, सबको आनन्दित करनेवाले उस प्रचुर अन्न को, अपनी क्षमता से, तुम हमारी ओर प्रेरित करो। साथ ही सब प्रकार से हमारी रक्षा भी करो। कल्याणमय माता ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

४. शतक्रतु इन्द्र, तुम जिस समय नाना प्रकार के अन्न प्रेरित करोगे, उस समय सोम-यज्ञ-कर्त्ता यजमान को असीम प्रकार से बचाओगे और धन दोगे। कल्याणमयी माता ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

५. स्वेद (पसीने) के समान इन्द्र के हथियार चारों ओर गिरें। दूब के प्रतान के समान आयुध सर्व-व्यापी हों। हमारी दुर्बुद्धि दूर हो। कल्याणमयी माता ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

६. ज्ञानी और धनी इन्द्र, विशाल अंकुश के समान "शक्ति" नामक अस्त्र को तुम धारण करते हो। जैसे छाग अपने चरणों से वृक्ष-शाखा को खींचता है, वैसे ही तुम उस "शक्ति" के द्वारा शत्रु को खींचकर गिराते हो। कल्याणमयी माता ने तुम्हें उत्पन्न किया है।

७. देवो, तुम्हारे विषय में हम कोई भी त्रुटि नहीं करते, किसी भी कर्म में शैथिल्य वा औदास्य नहीं करते। मन्त्र और श्रुति के अनुसार हम आचरण करते हैं। दोनों हाथों से इकट्ठी यज्ञ-सामग्री लेकर इस यज्ञ-कर्म का हम सम्पादन करते हैं।

१३५ सूक्त

(देवता यम। ऋषि यमगोत्रीय कुमार। छन्द अनुष्टुप्।)

१. सुन्दर पत्रों के द्वारा शोभित जिस वृक्ष पर देवों के साथ यमदेव पान करते हैं, हमारे नरपति पिता की इच्छा है कि, मैं उसी वृक्ष पर जाकर पूर्वजों का साथी बनूँ।

२. निर्दय होकर मेरे पिता की "पूर्व पुरुषों का साथी" बनने की बात पर मैंने उनके प्रति विरक्ति से भरा दृष्टि-पात किया था। विरक्ति को छोड़कर अब मैं अनुरक्त हुआ हूँ।

३. (यम की उक्ति)—नचिकेत कुमार, तुमने ऐसा अभिनव रथ चाहा था, जिसमें चक्र न हो और जिसकी ईषा (दण्ड) एक ही हो तथा जो सर्वत्र जानेवाला हो। बिना समझे ही तुम उस रथ पर चढ़े हो।

४. कुमार, बुद्धिशाली बन्धु-बान्धवों को छोड़कर तुमने उस रथ को चलाया है। वह तुम्हारे पिता के सान्त्वना-पूर्ण उपदेश वचन के अनुसार चला है। वह उपदेश उसके लिए नौका और आश्रय हुआ। उस नौका पर संस्थापित होकर यह रथ यहाँ से चला गया है।

५. इस बालक का जन्मदाता कौन है? किसने इस रथ को भेजा है? जिससे यह बालक यम के द्वारा जीवलोक में प्रत्यर्पित होगा, उस बात को आज हमसे कौन कहेगा?

६. जिससे यम के द्वारा बालक जीवलोक में प्रत्यर्पित होगा, वह बात प्रथम ही कह दी गई थी। प्रथम पिता के उपदेश का मूल अंश प्रकट हुआ, पीछे प्रत्यागमन का उपाय कहा गया।

७. यही यम का निवास-स्थान है। लोग कहते हैं कि, यह देवों के द्वारा निर्मित हुआ है। यह यम की प्रसन्नता के लिए वेणु (वाद्य) बजाया जाता है और स्तुतियों से यम को भूषित किया जाता है।

१३६ सूक्त

(देवता अग्नि, सूर्य और वायु। ऋषि जूति आदि। छन्द अनुष्टुप्।)

१. केशी (सूर्य) अग्नि, जल और द्यावापृथिवी को धारण करते हैं। केशी ही सारे संसार को प्रकाश के द्वारा दर्शनीय बनाते हैं। इस ज्योति को ही केशी कहा जाता है।

२. वातरसन के वंशज मुनि लोग पीले वल्कल पहनते हैं। वे देवत्व प्राप्त करके वायु की गति के अनुगामी हुए हैं।

३. सारे लौकिक व्यवहारों के विसर्जन से हम उन्मत्त (परमहंस) हो गये हैं। हम वायु के ऊपर चढ़ गये हैं। तुम लोग केवल हमारा शरीर देखते हो—हमारी प्रकृत आत्मा तो वायुरूपी हो गई है।

४. मुनि लोग आकाश में उड़ सकते और सारे पदार्थों को देख सकते हैं। जहाँ कहीं भी जितने देवता हैं, वे सबके प्रिय बन्धु हैं। वे सत्कर्म के लिए ही जीते हैं।

५. मुनि लोग वायुमार्ग पर घूमने के लिए अश्व-स्वरूप हैं। वे वायु के सहचर हैं। देवता उनको पाने की इच्छा करते हैं। वे पूर्व और पश्चिम के दोनों समुद्रों में निवास करते हैं।

६. केशी देवता अप्सराओं, गन्धर्वों और हरिणों में विचरण करते हैं। वे सारे ज्ञातव्य विषयों को जानते हैं। वे रस के उत्पादक और आनन्ददाता मित्र हैं।

७. जिस समय केशी रुद्र के साथ जल-पान करते हैं, उस समय वायु उस जल को हिला देते और कठिन माध्यमिकी वाक् को भंग कर देते हैं।

१३७ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ। छन्द अनुष्टुप्।)

१. देवो, मुझ पतित को ऊपर उठाओ। मुझ अपराधी को अपराध से बचाओ। देवो, मुझे चिरजीवी करो।

२. समुद्रपर्यन्त—समुद्र से भी दूरवर्त्ती स्थान तक दो वायु बहते हैं—एक वायु तुम्हारा (स्तोता का) बलाधान करे और दूसरा तुम्हारे पाप-ध्वंस के लिए बहे।

३. वायु, तुम इस ओर बहकर औषध ले आओ और जो अहितकर है, उसे यहाँ से बहा ले जाओ। तुम संसार के औषध-रूप हो। तुम देव-दूत होकर जाते हो।

४. यजमान, तुम्हारे लिए सुखकर और अहिंसाकर रक्षणों के साथ मैं आया हूँ। तुम्हारे उत्तम बलाधान का कार्य भी मैंने किया है। इस समय तुम्हारे रोग को मैं दूर कर देता हूँ।

५. इस समय देवता, मरुद्गण और चराचर रक्षा करें। यह व्यक्ति नीरोग हो।

६. जल ही औषध, रोगशान्ति का कारण और सारे रोगों के लिए भेषज है। तुम्हारे लिए वही जल औषध-विधान करे।

७. दोनों हाथों में दस अँगुलियाँ हैं। वचन के आगे-आगे जिह्वा चलती है। रोगशान्ति के लिए दोनों हाथों से मैं तुम्हें छूता हूँ।

१३८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि ऊरु के पुत्र अङ्ग। छन्द जगती।)

१. इन्द्र, तुम्हारे लिए बन्धुत्व करने को यज्ञकर्त्ताओं ने यज्ञ-सामग्री ले जाकर और यज्ञ करके बल (राक्षस) को मार डाला। उस समय स्तोत्र किया गया। तुमने कुत्स को प्रभात का आलोक दिया, जल को छोड़ा और वृत्र के सारे कर्मों को ध्वस्त किया।

२. इन्द्र, तुमने जननी के समान जल को छोड़ा है, पर्वतों को विचलित किया है। गायों को हाँककर ले गये, मीठा सोम पिया और वन के वृक्षों को वृष्टि के द्वारा वर्द्धित किया। यज्ञोपयोगी स्तुति-वचनों से इन्द्र की स्तुति हुई। इन्द्र के कर्म से सूर्य दीप्तिशाली हुए।

३. आकाश में सूर्य ने अपने रथ को चला दिया। उन्होंने देखा कि आर्य लोग दासों से पराजित नहीं होते। इन्द्र ने ऋजिश्वा के साथ बन्धुता करके पिप्रु नामक मायावी असुर के बल-वीर्य को नष्ट कर दिया।

४. दुर्द्धर्ष इन्द्र ने दुर्द्धर्ष शत्रु-सेना को नष्ट कर डाला। उन्होंने देव-शून्यों की सम्पत्ति को ध्वस्त कर डाला। जैसे सूर्य मास-विशेष में भूमि-रस को खींचते हैं, वैसे ही उन्होंने शत्रु-पुरी-स्थित धन को हर लिया। स्तोत्र ग्रहण करते-करते उन्होंने प्रदीप्त अस्त्र के द्वारा शत्रु-निपात किया।

५. इन्द्र-सेना के साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता। वह सर्वगन्ता और विदारक वज्र के द्वारा वृत्र-निपात करके आयुध पर शान चढ़ाते

हैं। विदारक इन्द्र-वज्र से शत्रु लोग डरें। सर्व-शोधक इन्द्र चलने लगे। उषा ने अपना शकट चला दिया।

६. इन्द्र, यह सब वीरत्व का कार्य तुम्हारा ही सुना जाता है। अकेले ही तुमने यज्ञ-विघ्न-कर्त्ता और प्रधान असुर को मारा था। तुमने आकाश के ऊपर चन्द्रमा के जाने-आने की व्यवस्था की है। जिस समय वृत्र सूर्य के रथ-चक्र को भंग करता है, उस समय सबके पिता द्युलोक, तुम्हारे ही द्वारा उस चक्र को धारण कराते हैं।

१३९ सूक्त

(देवता सविता और विश्वावसु। ऋषि विश्वावसु गन्धर्व। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. सविता (सूर्योदय के प्रथम काल के अभिमानी देवता) देव सूर्य-किरणवाले और उज्ज्वल केशवाले हैं। वे पूर्व की ओर क्रमागत आलोक का उदय किया करते हैं। उनका जन्म होने पर पूषा अग्रसर होते हैं। वे ज्ञानी हैं। वे सारे संसार को देखते और बचाते हैं।

२. वे मनुष्य के प्रति कृपावृष्टि करके आकाश के बीच में रहते और द्यावापृथिवी तथा मध्यस्थित आकाश को आलोक से पूर्ण करते हैं। वे सारी दिशाओं और कोनों को प्रकाशित करते हैं। वे पूर्व भाग, परभाग, मध्य भाग और प्रान्त भाग को प्रकाशित करते हैं।

३. सूर्यदेव धन के मूल-रूप हैं, सम्पत्ति के मिलन-स्थान हैं। वे अपनी क्षमता से द्रष्टव्य पदार्थ को प्रकाशित करते हैं। सविता देवता के समान वे जो कुछ करते हैं, वह सफल होता है। जहाँ सारा धन एकत्र मिलता है; वहाँ वे इन्द्र के समान दण्डायमान हुए थे।

४. सोम, जिस समय सस्मित जल ने विश्वावसु गन्धर्व को देखा, उस समय, पुण्य-कर्म-प्रभाव से वह विलक्षण रीति से, निकला। जल-प्रेरक इन्द्र उक्त वृत्तान्त को जान गये हैं। उन्होंने चारों ओर सूर्यमण्डल का निरीक्षण किया।

५. देवलोकवासी और जल के सृष्टि-कर्त्ता गन्धर्व विश्वावसु यह सब विषय हमें बतावें। जो यथार्थ और जो हमें अज्ञात हैं, उसमें वे हमारी चिन्ता को प्रवर्त्तित करें। हमारी बुद्धि की रक्षा करें।

६. नदियों के चरण-देश में इन्द्र ने एक मेघ को देखा। उन्होंने प्रस्तरमय द्वार का उद्घाटन कर दिया। गन्धर्व ने इन सारी नदियों के जल की बात कही। इन्द्र भली भाँति मेघों का बल जानते हैं।

१४० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अर। छन्द विस्तारपङ्क्ति, अष्टकवती आदि।)

१. अग्नि, तुम्हारे पास प्रशंसनीय अन्न है। तुम्हारी ज्वालायें विचित्र दीप्ति पाती हैं। दीप्ति ही तुम्हारी सम्पत्ति है। तुम्हारी दीप्ति प्रकाण्ड है। तुम क्रिया-कुशल हो। तुम दाता को उत्तम अन्न और बल देते हो।

२. अग्नि, जिस समय तुम दीप्ति के साथ उदित होते हो, उस समय तुम्हारा तेज सबको विशुद्ध करता है—ये शुक्लवर्ण धारण करके बृहत् हो जाते हैं। अग्नि, तुम द्यावापृथिवी को छूते हो। तुम पुत्र हो, वे माता हैं। इसी लिए तुम क्रीड़ा करते हुए उनका आलिङ्गन करते हो।

३. तेज के पुत्र ज्ञानी अग्नि, उत्तम स्तोत्र के पठन के साथ तुम्हें स्थापित किया गया है। आनन्द करो। तुम्हारे ही ऊपर नानाविध और नाना रूपों की यज्ञ-सामग्री हुत हुई है।

४. अमर अग्नि, नवोत्पन्न किरण-मण्डल से सुशोभित होकर हमारे पास धन-विस्तार करो। तुम सुन्दर मूर्त्ति से विभूषित हुए हो। तुम सर्वफलद यज्ञ का स्पर्श करते हो।

५. अग्नि, तुम यज्ञ के शोभा-सम्पादक, ज्ञानी, प्रचुर अन्नदाता और उत्तमोत्तम वस्तुओं के समर्पक हो। तुम्हारा हम स्तोत्र करते हैं। अतीव सुन्दर और प्रचुर अन्न दो तथा सर्व-फलोत्पादक धन दो।

९. यज्ञोपयोगी, सर्वदर्शक और विशाल अग्नि का मनुष्यों ने, सुख के लिए, आधान किया है। तुम्हारा कान सब कुछ सुनता है। तुम्हारे समान विस्तृत कुछ भी नहीं है। तुम देवलोकवासी हो। सभी मनुष्य, यजमान-पति-पत्नी, तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१४१ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि अग्नि। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अग्नि, उपयुक्त उपदेश दो। हमारे प्रति अनुकूल और प्रसन्न होओ। नरपति, तुम धनद हो; इसलिए हमें दान दो।

२. अर्यमा, भग, बृहस्पति, अन्य देवता और सत्यप्रिय तथा वाक्यमयी सरस्वतीदेवी आदि हमें दान करें।

३. अपनी रक्षा के लिए हम राजा सोम, अग्नि, सूर्य, आदित्यगण, विष्णु, बृहस्पति और प्रजापति को बुलाते हैं।

४. इन्द्र, वायु और बृहस्पति को बुलाने से आनन्द होता है। इन्हें हम बुलाते हैं। धन-प्राप्ति के लिए सब हमारे प्रति प्रसन्न हों।

५. स्तोता, अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, सरस्वती और सवितादेवता की, दान के लिए, प्रार्थना करो।

६. अग्नि, तुम अन्यान्य अग्नियों के साथ एक होकर हमारे स्तोत्र और यज्ञ की श्री-वृद्धि करो। हमारे यज्ञ के लिए तुम दाताओं का, धन-दान के लिए, अनुरोध करो।

१४२ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि जरिता आदि पक्षी दो-दो मन्त्रों के। छन्द जगती आदि।)

१. अग्नि, यह जरिता तुम्हारे स्तोता हुए हैं। बल के पुत्र अग्नि, तुम्हारे समान दूसरा कोई आत्मीय नहीं है। तुम्हारा वास-स्थान सुन्दर

है, जिसके तीन प्रकोष्ठ हैं। हम तुम्हारे उत्ताप से दग्ध होते हैं; इसलिए अपनी उज्ज्वल ज्वाला हमसे दूर ले जाओ।

२. अग्नि, जिस समय तुम अन्न-कामना से उत्पन्न होते हो, उस समय तुम्हारा प्रकटन क्या ही सुन्दर होता है। बन्धु के समान तुम सारे भुवनों को विभूषित करते हो। इधर-उधर जानेवाली तुम्हारी शिखाओं ने हमारे स्तव का उदय कर दिया है। पशु-पालक के समान वे आगे-आगे जाती हैं।

३. दीप्तिशाली अग्नि, दाह करते समय तुम अनेक तृणों को स्वयं छोड़ देते हो। तुम धान्य से भरी भूमि को धान्यशून्य कर देते हो। हम तुम्हारी प्रबल शिखा के कोप में न गिरें।

४. जिस समय तुम ऊपर-नीचे वृक्ष आदि को जलाते हो, उस समय लूटनेवाली सेना के समान अलग-अलग जाते हो। जिस मसय तुम्हारे पीछे वायु बहता है, उस समय तुम वैसे ही असीम प्रदेश का मुण्डन कर देते हो, जैसे नाई लोगों के श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) मूड़ता है।

५. अग्नि की अनेक शिखायें देखी जाती हैं। इनका गन्तव्य स्थान एक ही है; किन्तु रथ अनेक हैं। अग्नि, तुम बाहुओं (ज्वालाओं) से सारे वन को जलाते हुए और नम्र होकर ऊँची भूमि पर चढ़ते हो।

६. अग्नि, तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम्हारे तेज, शिखा और बल-विक्रम का उदय हो। वृद्धि प्राप्त करो। ऊपर गमन करो और नीचे उतर आओ। तुम्हें सारे वासयिता देवता प्राप्त करें।

७. यह स्थान जल का आधार है। इस स्थान पर समुद्र अवस्थित है। अग्नि, तुम अन्य स्थान ग्रहण करो। उसी पथ से यथेच्छ गमन करो।

८. अग्नि, तुम्हारे आगमन और प्रत्यागमन पर फूलोंवाली दूबें बढ़ें। यहाँ तड़ाग है, श्वेत पद्म है और समुद्र की अवस्थिति है।

सप्तम अध्याय समाप्त।

१४३ सूक्त

(अष्टम अध्याय । देवता अश्विद्वय । ऋषि संख्य पुत्र अत्रि । छन्द अनुष्टुप् ।)

१. अश्विद्वय, यज्ञ करके अत्रि ऋषि वृद्ध हो गये थे। उन्हें तुम लोगों ने ऐसा बना दिया कि, वे घोड़े के समान गन्तव्य स्थान पर चले गये। कक्षीवान् ऋषि को तुम लोगों ने वैसे ही नवयौवन प्रदान किया, जैसे जीर्ण रथ को नया किया जाता है।

२. प्रबल पराक्रमी शत्रुओं ने शीघ्रगामी घोड़े के समान अत्रि ऋषि को बाँध रक्खा था। जैसे सुदृढ़ गाँठ को खोला जाता है, वैसे ही तुमने अत्रि को छोड़ दिया था। वे तरुण पुरुष के समान पृथिवी की ओर चले गये।

३. शुभ्रवर्ण और सुन्दर नायकद्वय, अत्रि को बुद्धि देने की इच्छा करो। स्वर्ग के नायक-द्वय, ऐसा होने पर मैं पुनः स्तुति कर सकता हूँ।

४. उत्तम अन्नवाले अश्विद्वय, नायकद्वय, जब तुमने हमारे गृह में महान् समारोह के साथ यज्ञारम्भ होने पर रक्षा की, तब हम समझते हैं कि, हमारे दान और हमारे स्तोत्र को तुमने जाना है ।

५. भुज्यु नामक व्यक्ति समुद्र में गिर गये थे और तरङ्गों के ऊपर आन्दोलित हो रहे थे। तुम लोग पक्षवाली नौका लेकर समुद्र में गये। सत्यरूप अश्विद्वय, तुमने पुनः भुज्यु को (उद्धार करके) यज्ञानुष्ठान के योग्य बना दिया।

६. सर्वज्ञ नायकद्वय, भाग्यवान् लोगों के समान तुम लोग दाता होकर, धन के साथ, हमारे पास आओ। जैसे दूध बढ़कर गाय के स्तन को भर देता है, वैसे ही हमें धन से पूर्ण करो।

१४४ सूक्त

(देवता इन्द्र । ऋषि तार्क्ष्य-पुत्र सुपर्ण । छन्द गायत्री आदि ।)

१. इन्द्र, तुम सृष्टिकर्त्ता हो। तुम्हारे लिए यह अमृत के समान सोम, घोड़े के समान, दौड़ता है। यह बलाधार और जीवन-स्वरूप है।

२. दाता इन्द्र का उज्ज्वल वज्र हमारी स्तुति के योग्य है। इन्द्र ऊर्ध्वकृशन नामक स्तोता का पालन करते हैं। जैसे ऋभुदेव यज्ञकर्त्ता का पालन करते हैं, वैसे ही ये पालन करते हैं।

३. दीप्त इन्द्र अपनी यजमान-स्वरूप प्रजा के पास भली भाँति गति-विधि करते हैं। मुझ सुपर्ण श्येन ऋषि की उन्होंने वंशवृद्धि की है।

४. श्येन तार्क्ष्य के पुत्र सुपर्ण, अत्यन्त दूर देश से, सोम ले आये हैं। वह निखिल कर्मों के लिये उपयोगी है। वह वृत्र की उत्साह-वृद्धि करता है।

५. वह रक्तवर्ण, अन्य का सृष्टि-कर्त्ता, देखने में सुन्दर और दूसरों के द्वारा नष्ट न करने योग्य है। उसे अपने चरण से श्येन ले आये हैं। इन्द्र, सोम के लिए अन्न, परमायु और जीवन दो। सोम के लिए हमारे साथ मैत्री करो।

६. सोम-पान करके इन्द्र देवों और हम लोगों की, भली भाँति, विशेष रक्षा करते हैं। उत्तम कर्मवाले इन्द्र, यज्ञ के लिए हमें अन्न और परमायु दो। यज्ञ के लिए यह सोम हमारे द्वारा प्रस्तुत हुआ है।

१४५ सूक्त

(देवता सपत्नीपीड़न। ऋषि इन्द्राणी। छन्द अनुष्टुप् और पङ्क्ति।)

१. तीव्र शक्ति से युक्त और लता-रूपिणी यह औषधि खोदकर मैं निकालती हूँ। इससे सपत्नी को दुःख दिया जाता है और स्वामी का प्रेम प्राप्त किया जाता है।

२. ओषधि, तुम्हारे पत्ते उन्नत-मुख हैं। तुम स्वामी के लिए प्रिय होने का उपाय हो। देवों ने तुम्हारी सृष्टि की है। तुम्हारा तेज अतीव तीव्र है। तुम मेरी सपत्नी को दूर कर दो। मेरे स्वामी मेरे वशीभूत रहें, ऐसा तुम कर दो।

३. ओषधि तुम प्रधान हो। मैं भी प्रधान होऊँ—प्रधान में भी प्रधान होऊँ। मेरी सपत्नी नीच से भी नीच हो जाय।

४. मैं सपत्नी का नाम तक नहीं लेती। सपत्नी सबके लिए अप्रिय है। मैं उसे दूर से भी दूर भेज देती हूँ।

५. ओषधि, तुम्हारी शक्ति विलक्षण है, मेरी क्षमता भी विचित्र है। आओ, हम दोनों शक्ति-सम्पन्ना होकर सपत्नी को हीन-बल कर दें।

६. पतिदेव, इस शक्ति-सम्पन्न ओषधि को मैंने तुम्हारे सिरहाने रख दिया। शक्ति-सम्पन्न उपाधान (तकिया), तुम्हारे सिरहाने देने को, मैंने दिया। जैसे गाय बछड़े के लिए दौड़ती है और जैसे जल नीचे की ओर दौड़ता है, वैसे ही तुम्हारा मन मेरी ओर दौड़े।

१४६ सूक्त

(देवता अरण्यानी। ऋषि इरम्मद-पुत्र देवमुनि। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अरण्यानी (वृहद् वन), तुम देखते-देखते अन्तर्धान हो जाते—इतनी दूर चले जाते हो कि, दिखाई नहीं देते। तुम क्यों नहीं गाँव में आने का मार्ग पूछते? अकेले रहने में तुम्हें डर नहीं होता?

२. कोई जन्तु वृष के समान बोलता है और कोई "चीची" करके मानो उसका उत्तर देता है—मानो ये वीणा के पर्व-पर्व में शब्द करके अरण्यानी का यश गाते हैं।

३. विदित होता है कि, इस विपिन में कहीं गायें चरती हैं और कहीं लता, गुल्म आदि का गृह दिखाई देता है। सन्ध्या को वन से कितने ही शकट निकल रहे हैं।

४. एक व्यक्ति गाय को बुला रहा है और एक काठ काट रहा है। अरण्यानी में जो व्यक्ति रहता है, वह रात को शब्द सुनता है।

५. अरण्यानी किसी का प्राण-वध नहीं करती। यदि व्याघ्र, चोर आदि नहीं आवें, तो कोई डर नहीं। वन में स्वादिष्ट फल खा-खाकर भली भाँति काल-क्षेप किया जा सकता है।

६. मृगनाभि (कस्तूरी) के समान अरण्यानी का सौरभ है। वहाँ आहार भी है। वहाँ प्रथम कृषि का अभाव रहता है। वह हरिणों की मातृ-रूपिणी है। इस प्रकार मैंने अरण्यानी की स्तुति की।

१४७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि शिरीष-पुत्र सुवेदा। छन्द जगती और त्रिष्टुप्।)

१. इन्द्र, तुम्हारे क्रोध को मैं प्रधान समझता हूँ। तुमने वृत्र का वध किया है और लोक-कल्याण के लिए वृष्टि बनाई है। द्यावापृथिवी तुम्हारे ही अधीन हैं। वज्रधर इन्द्र, तुम्हारे प्रभाव से यह पृथिवी काँपती है।

२. इन्द्र, तुम प्रशंसनीय हो। अन्न-सृष्टि करने का संकल्प करके तुमने अपनी शक्ति से मायावी वृत्र को व्यथा पहुँचाई। गोकामना करके मनुष्य तुम्हारे पास याचक होते हैं। सारे यज्ञों और हवन के समय तुम्हारी ही प्रार्थना की जाती है।

३. धनी और पुरुहूत इन्द्र, इन विद्वानों के पास प्रादुर्भूत होओ। तुम्हारी कृपा से ये श्रीवृद्धिशाली और धनी हुए हैं। पुत्र-पौत्रों, अन्यान्य अभिलषित वस्तुओं और विशिष्ट धन पाने के लिए ये लोग यज्ञारम्भ करके बली इन्द्र की ही पूजा करते हैं।

४. जो व्यक्ति इन्द्र को सोम-पान-जन्य आनन्द प्रदान करना जानता है, वही यथेष्ट धन के लिए प्रार्थना करता है। धनी इन्द्र, तुम जिस यज्ञ-दाता की श्रीवृद्धि करते हो, वह शीघ्र ही अपने भृत्यों के द्वारा धन और अन्न से परिपूर्ण हो जाता है।

५. बल पाने के लिए विशिष्ट रीति से तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम बहुत बल और धन दो। प्रियदर्शन इन्द्र, तुम मित्र और वरुण के समान अलौकिक ज्ञान के अधिकारी हो। तुम हमें सारे अन्न का भाग करके दिया करते हो।

१४८ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि वेन-पुत्र पृथु। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. प्रभूत धनवाले इन्द्र, हम लोग सोम और अन्न का आयोजन करके तुम्हारी स्तुति करते हैं। जो सम्पत्ति तुम्हारे मन के अनुकूल है, उसे हमें प्रचुर परिमाण में दो। तुम्हारे आश्रय से हम लोग अपने उद्योग में ही धन प्राप्त करें।

२. वीर और प्रियदर्शन इन्द्र, तुम जन्म-ग्रहण करने के साथ ही, सूर्य-मूर्त्ति के द्वारा, दास-जातीय प्रजा को हराते हो। जो गुहा में छिपा हुआ है या जल में निगूढ़ है, उसे भी हराते हो। वृष्टि-वर्षण होने पर हम सोम प्रस्तुत करेंगे।

३. इन्द्र, तुम विद्वान्, प्रभु, मेधावी और ऋषियों की स्तुति की कामना करनेवाले हो। तुम स्तोत्रों का अनुमोदन करो। सोम के द्वारा हमने तुम्हारी प्रीति उत्पन्न कर डाली है। इसलिए हम तुम्हारे अन्तरङ्ग हों। रथारूढ़ इन्द्र, यह सब आहारीय द्रव्य तुम्हें निवेदित हैं।

४. इन्द्र, यह सब प्रधान-प्रधान स्तोत्र, तुम्हारे लिए पठित हैं। वीर, जो प्रधान से भी प्रधान हैं, उन्हें अन्न दो। तुम जिन्हें स्नेह करते हो, वे तुम्हारे लिए यज्ञ करें। जो स्तोत्र करने को एकत्र हुए हैं, उनकी रक्षा करो।

५. वीर इन्द्र, मैं (पृथु) तुम्हें बुलाता हूँ। मेरा आह्वान सुनो। वेन-पुत्र पृथु के स्तोत्र के द्वारा तुम्हारी स्तुति की जाती है। वेन-पुत्र ने घृत-युक्त यज्ञ-गृह में आकर तुम्हारी स्तुति की है। जैसे धारायें नीचे की ओर दौड़ती हैं, वैसे ही अन्यान्य स्तोता भी दौड़ रहे हैं।

१४९ सूक्त

(देवता सविता। ऋषि हिरण्यस्तूप के पुत्र अर्चत्। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. नाना (वृष्टि-दान आदि) यन्त्रों से सविता ने पृथिवी को सुस्थिर रक्खा है। उन्होंने बिना अवलम्बन के द्युलोक को दृढ़ रूप से बाँध रक्खा

हैं। आकाश में समुद्र के समान मेघराशि अवस्थित है। मेघराशि घोड़े के समान गात्र कम्पित करती है। यह निरुपद्रव स्थान में बद्ध है। इसी से सविता जल निकालते हैं।

२. जिस स्थान पर रहकर समुद्र के समान मेघराशि पृथिवी को आर्द्र करती है, उस स्थान को जल-पुत्र सविता जानते हैं। सविता से ही पृथिवी, आकाश और द्यावापृथिवी विस्तीर्ण हुए हैं।

३. अमर-स्वर्गोत्पन्न सोम के द्वारा जिन देवों का यज्ञ होता है, वे सविता से पीछे उत्पन्न हुए हैं। सुन्दर पक्षवाले गरुड़ सविता से प्रथम उत्पन्न हुए हैं। सविता की धारण-क्रिया (सोमाहरण-कर्म) का अनुसरण करके वे अवस्थित हैं।

४. सबके द्वारा प्रार्थनीय सविता स्वर्ग के धारण-कर्त्ता हैं। वे हमारे पास वैसी ही उत्सुकता के साथ आते हैं, जिस उत्सुकता से गाय गाँव की ओर जाती है, योद्धा अश्व की ओर जाता है, नवप्रसूता धेनु प्रसन्न-मना होकर दूध देने को बछड़े की ओर जाती है और जैसे स्त्री स्वामी की ओर जाती है।

५. सविता, अङ्गिरोवंशीय मेरे पिता (हिरण्यस्तूप) इस यज्ञ में तुम्हें बुलाते थे। मैं भी तुमसे आश्रय-प्राप्ति के निमित्त वन्दना करते-करते, तुम्हारी सेवा के लिए, वैसे ही सतर्क हूँ, जैसे यजमान, सोम-लता की रक्षा के लिए, सतर्क रहता है।

१५० सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि वसिष्ठ-पुत्र मृड़ीक। छन्द बृहती आदि।)

१. अग्नि, तुम देवों के पास हव्य ले जाया करते हो। तुम्हें प्रज्वलित किया गया है, तुम प्रदीप्त हुए हो। आदित्यों, वसुओं और रुद्रों के साथ हमारे यज्ञ में पधारो। सुख देने के लिए पधारो।

२. यह यज्ञ है और यह स्तव है। ग्रहण करो। पास आओ। प्रदीप्त अग्नि, हम मनुष्य तुम्हें बुलाते हैं—सुख के लिए बुलाते हैं।

३. तुम ज्ञानी और सबके द्वारा प्रार्थित हो। मैं तुम्हें स्तुति-वचनों से स्तुत करता हूँ। अग्नि जिनका कार्य सुखकर है, उन देवों को साथ लेकर आओ—सुख के लिए आओ।

४. अग्निदेव देवों के पुरोहित हुए हैं। मनुष्यों और ऋषियों ने अग्नि को प्रज्वलित किया है। मैं प्रचुर धन की प्राप्ति के लिए अग्नि को बुलाता हूँ। वे मुझे सुखी करें।

५. युद्ध के समय अग्नि ने अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व और त्रसदस्यु की रक्षा की है। पुरोहित वसिष्ठ अग्नि को बुलाते हैं—सुख के लिए बुलाते हैं।

१५१ सूक्त

(देवता श्रद्धा। ऋषि कामगोत्रीय श्रद्धा। छन्द अनुष्टुप्।)

१. श्रद्धा के द्वारा अग्नि प्रज्वलित होते हैं और श्रद्धा के द्वारा ही यज्ञ-सामग्री की आहुति दी जाती है। श्रद्धा सम्पत्ति के मस्तक के ऊपर रहती है। यह सब मैं स्पष्ट रूप से कहती हूँ।

२. श्रद्धा, दाता को अभीष्ट फल दो। जो दान करने की इच्छा करता है, उसे भी अभीष्ट दो। श्रद्धा, मेरे भोगार्थियों और याज्ञिकों को प्रार्थित फल दो।

३. इन्द्रादि ने बली असुरों के लिए यह विश्वास किया कि, इनका वध करना ही चाहिए। श्रद्धा, भोक्ताओं और याज्ञिकों को प्रार्थित फल दो।

४. देवता और मनुष्य वायु को रक्षक पाकर श्रद्धा की उपासना करते हैं। मन में कोई संकल्प होने पर लोग श्रद्धा की शरण में जाते हैं। श्रद्धा के कारण मनुष्य धन पाता है।

५. हम लोग प्रातःकाल, मध्याह्न और सूर्यास्त के समय श्रद्धा को ही बुलाते हैं। श्रद्धा हमें इस संसार में श्रद्धावान् करो।

१५२ सूक्त

(१२ अनुवाक। देवता इन्द्र। ऋषि भारद्वाज शास।
छन्द अनुष्टुप्।)

१. मैं इस प्रकार इन्द्र की स्तुति करता हूँ। इन्द्र, तुम महान् शत्रु-भक्षक और अद्भुत हो। तुम्हारे सखा की न तो मृत्यु होती है, न पराजय।

२. इन्द्र कल्याणदाता, प्रजाधिपति, वृत्रघ्न, युद्ध-कर्त्ता, शत्रु-वशकर्त्ता, काम-वर्षक, सोमपाता और अभय-दाता हैं। वे हमारे सामने पधारें।

३. वृत्रघ्न इन्द्र, राक्षसों और शत्रुओं का वध करो। वृत्र के दोनों जबड़ों को तोड़ डालो। अनिष्टकर शत्रु का क्रोध नष्ट करो।

४. इन्द्र, हमारे शत्रुओं का वध करो। युद्धार्थी विपक्षियों को हीन-बल करो। जो हमें निकृष्ट करता है, उसे जघन्य अन्धकार में डाल दो।

५. इन्द्र, शत्रु का मन नष्ट कर दो। जो हमें जराजीर्ण करना चाहता है, उसके प्रति सांघातिक अस्त्र का प्रयोग करो। शत्रु के क्रोध से बचाओ। उत्तम सुख दो। शत्रु के सांघातिक अस्त्र को तोड़ दो।

१५३ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि इन्द्र-माता। छन्द गायत्री।)

१. क्रिया-परायणा इन्द्र-मातायें प्रादुर्भूत इन्द्र के पास जाकर उनकी सेवा करती हैं और इन्द्र से उत्कृष्ट धन प्राप्त करती हैं।

२. इन्द्र, तुमने बल-वीर्य और तेज से जन्म ग्रहण किया है। वर्द्धक इन्द्र, तुम अभिलाषा की पूर्त्ति करते हो।

३. इन्द्र, तुम वृत्रघ्न हो और तुमने आकाश को विस्तारित किया है। तुमने अपनी शक्ति के द्वारा स्वर्ग को ऊँचा कर रक्खा है।

४. इन्द्र, तुम्हारे साथी सूर्य हैं। तुमने उन्हें दोनों हाथों से धारण कर रक्खा है। तुम बलपूर्वक वज्र पर सान चढ़ाते हो।

५. इन्द्र, तुम प्राणियों को अपने तेज से अभिभूत करते हो। तुम सारे स्थानों को आक्रान्त किये हुए हो।

१५४ सूक्त

(देवता मृत व्यक्ति की अवस्था। ऋषि विवस्वान की पुत्री यमी। छन्द अनुष्टुप्।)

१. किन्हीं पितरों के लिए सोम-रस क्षरित होता है। कोई-कोई घृत का सेवन करते हैं। जिन पितरों के लिए मधुर स्रोत बहा करता है, प्रेत, तुम उनके पास जाओ।

२. जो तपस्या के बल से दुर्द्धर्ष हुए हैं, जो तपस्या के बल से स्वर्ग गये हैं और जिन्होंने कठिन तपस्या की है, प्रेत, तुम उन लोगों के पास जाओ।

३. जो युद्ध-स्थल में युद्ध करते हैं, जिन्होंने शरीर की माया छोड़ दी है अथवा जो बहुत दक्षिणा देते हैं, प्रेत, तुम उनके पास जाओ।

४. पुण्यकर्म करके जो सब प्राचीन व्यक्ति पुण्यवान् हुए हैं, जो पुण्य की स्रोत-वृद्धि कर चुके हैं और जिन्होंने तपस्या की है, यम, यह प्रेत उन्हीं के पास जाय।

५. जिन बुद्धिमानों ने सहस्र प्रकार सत्कर्मों की पद्धति प्रदर्शित की है, जो सूर्य की रक्षा करते हैं और जिन्होंने तपस्या-बल से उत्पन्न होकर तपस्या की है, यम, यह प्रेत उन्हीं ऋषियों के पास जाय।

१५५ सूक्त

(देवता अलक्ष्मी-नाश, ब्रह्मणस्पति और विश्वदेव। ऋषि भरद्वाज-पुत्र शिरिम्बिठ। छन्द अनुष्टुप्।)

१. अलक्ष्मी, तुम दान-विरोधिनी, सदा कुत्सित शब्द करनेवाली, विकट आकृतिवाली और सदा क्रोध करनेवाली हो। तुम पर्वत पर जाओ। मैं (शिरिम्बिठ) ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे तुम्हें अवश्य दूर करूँगा।

२. अलक्ष्मी वृक्ष, लता, शस्य आदि का अंकुर नष्ट करके दुर्भिक्ष ले आती है। उसे मैं इस लोक और उस लोक से दूर करता हूँ। तीक्ष्ण तेजवाले ब्रह्मणस्पति, दान-विरोधिनी इस अलक्ष्मी को यहाँ से दूर करके आओ।

३. यह जो एक काठ समुद्र-तीर के पास बहता है, उसका कोई कर्त्ता (स्वत्वाधिकारी) नहीं है। विकट आकृतिवाली अलक्ष्मी, उसके ऊपर चढ़कर समुद्र के दूसरे पार जाओ।

४. हिंसामयी और कुत्सित शब्दोंवाली अलक्ष्मियो, जिस समय तत्पर होकर तुम लोग प्रकृष्ट गमन से चली गईं, उस समय इन्द्र के सब शत्रु, जल-बुद्बुद के समान, विलीन हो गये।

५. इन लोगों ने गायों का उद्धार किया है, इन्होंने अग्नि को विभिन्न स्थानों में स्थापित किया है और देवों को अन्न दिया है। इनपर आक्रमण करने की किसकी शक्ति है?

१५६ सूक्त

(देवता अग्नि। ऋषि अग्नि-पुत्र केतु। छन्द गायत्री।)

१. जैसे घुड़दौड़ के स्थान में शीघ्रगामी घोड़े को दौड़ाया जाता है, वैसे ही हमारे स्तोत्र अग्नि को दौड़ा रहे हैं। उनके प्रसाद से हम सब धन जीत लें।

२. अग्नि, जैसे तुमसे आश्रय पाकर हम गायों को प्राप्त करते हैं। वैसे ही तुम अपनी सहायता देनेवाली सेना के समान रक्षा को हमें दो, जिससे हम धन-लाभ करें।

३. अग्नि, बहुसंख्यक गायों और अश्वों के साथ धन दो। आकाश को वृष्टि-जल से अभिषिक्त करो। वणिक् का वाणिज्य-कर्म प्रवर्तित करो।

४. अग्नि, जो सूर्य सदा चलते हैं, जो अजर हैं और जो लोगों को ज्योति देते हैं, उन्हें आकाश में तुम अवस्थित किये हुए हो।

५. अग्नि, तुम प्रजावर्ग के ज्ञापक हो, प्रियतम हो, श्रेष्ठ हो। तुम यज्ञ-गृह में बैठो, स्तोत्र सुनो और अन्न ले आओ।

१५७ सूक्त

(देवता विश्वदेव। ऋषि आप्त्य-पुत्र भुवन। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. ये सारे प्राणी हमारे लिए सुख दें। इन्द्र और सारे देवता भी इस अर्थ (सुख) को सिद्ध करें।

२. इन्द्र और आदित्यगण हमारे यज्ञ, देह और पुत्र-पौत्र आदि को निरुपद्रव कर दें।

३. इन्द्र आदित्यों और मरुतों को सहकारी बनाकर हमारी देह के रक्षक हों।

४. जिस समय देवता लोग वृत्रादि असुरों का वध करके लौटे, उस समय उनके अमरत्व की रक्षा हुई।

५. नाना कार्यों के द्वारा स्तुति को देवों के निकट भेजा गया। अनन्तर आकाश से वृष्टि-पतन देखा गया।

१५८ सूक्त

(देवता सूर्य। ऋषि सूर्य-पुत्र चक्षु। छन्द गायत्री।)

१. स्वर्गीय उपद्रव से सूर्य, आकाश के उपद्रव से वायु और पृथिवी के उपद्रव से अग्नि हमारी रक्षा करें।

२. सविता, हमारी पूजा को ग्रहण करो। तुम्हारे तेज के लिए सौ यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। शत्रुओं के जो उज्ज्वल आयुध आकर गिरते हैं, उनसे हमारी रक्षा करो।

३. सवितादेव हमें चक्षु दें, पर्वत चक्षु दें और विधाता चक्षु दें।

४. हमारे नेत्र को दर्शन-शक्ति दो। सारी वस्तुएँ भली भाँति दिखाई देने के लिए हमें चक्षु दो। हम सारी वस्तुओं को संगृहीत रूप से देख सकें।

५. सूर्य, तुम्हें हम भली भाँति देख सकें। मनुष्य जिसे देख सकते हैं, उसे हम विशेष रूप से देख सकें।

१५९ सूक्त

(देवता और ऋषि पुलोम-पुत्री शची । छन्द अनुष्टुप ।)

१. सूर्योदय मेरा भाग्योदय है। मैं यह समझ चुकी हूँ। मेरे पास सारी सपत्नियाँ परास्त हैं। मैंने स्वामी को वश में कर लिया है।

२. मैं ही केतु और मस्तक हूँ। प्रबल होकर मैं स्वामी के मुँह से मीठा वचन सुनती हूँ। मुझे सर्वश्रेष्ठ जानकर मेरे स्वामी मेरे कार्य का अनुमोदन करते हैं, मेरे मत के अनुसार ही चलते हैं।

३. मेरे पुत्र बली हैं। मेरी ही कन्या सर्वश्रेष्ठ शोभा से शोभित है। मैं सबको जीतती हूँ। स्वामी के पास मेरा ही नाम आदरणीय है।

४. जिस यज्ञ को करके इन्द्र बली और श्रेष्ठ हुए हैं, देवो, मैंने वही किया है। इससे मेरे सारे शत्रु नष्ट हो गये हैं।

५. मेरा शत्रु नहीं जीता रहता। मैं शत्रुओं का वध कर डालती हूँ। उन्हें जीतती हूँ—परास्त करती हूँ। जैसे चञ्चल बुद्धिवालों की सम्पत्ति दूसरे ले जाते हैं, वैसे ही मैं अन्य नारियों का तेज उड़ा देती हूँ।

६. मैं सब सपत्नियों को जीतती हूँ—परास्त करती हूँ। इसी लिए मैं इन वीर इन्द्र के ऊपर प्रभुत्व करती हूँ—कुटुम्बियों के ऊपर भी प्रभुत्व करती हूँ।

१६० सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र-पुत्र पूरण। छन्द त्रिष्टुप् ।)

१. यह सोमरस अत्यन्त तीव्र बनाया गया है। इसके साथ आहारीय सामग्री है। पान करो। अपने रथ-वाहक दो घोड़ों को इधर लाने के लिए छोड़ दो। इन्द्र, अन्य यजमान तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकें। तुम्हारे ही लिए यह सब सोम प्रस्तुत किया गया है।

२. जो सोम प्रस्तुत हुआ है वा होगा, वह तुम्हारे ही लिए। यह सब स्तोत्र उच्चारित होकर तुम्हें बुलाते हैं। इन्द्र, हमारा यह यज्ञ ग्रहण करो। तुम सब जानते हो। यहीं सोम-पान करो।

३. जो व्यक्ति तल्लीन मन से, अकपट भाव से, प्रीति-युक्त अन्तः-करण से और देव-भक्ति के साथ इन्द्र के लिए सोम प्रस्तुत करता है, उसकी गायें इन्द्र नहीं नष्ट करते—अतीव सुन्दर और प्रशस्त मङ्गल उसके लिए देते हैं।

४. जो धनी इनके लिए सोम प्रस्तुत करता है, इन्द्र उसके दृष्टि-गोचर होते हैं। इन्द्र आकर उसका हाथ पकड़ते हैं। जो पुण्य-कर्मों के द्वेषी हैं, उन्हें इन्द्र, बिना किसी के कहे-सुने, विनष्ट करते हैं।

५. इन्द्र, गाय, घोड़े और अन्न की इच्छा से हम तुम्हारे आगमन की प्रार्थना करते हैं। तुम्हारे लिए यह अभिनव और उत्तम स्तोत्र बनाकर और तुम्हें सुखकर जानकर हम तुम्हें बुलाते हैं।

१६१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि प्रजापति-पुत्र यक्ष्मनाशन। छन्द त्रिष्टुप् आदि।

१. रोगी, यज्ञ-सामग्री के द्वारा मैं तुम्हें अज्ञातयक्ष्मा रोग और राजयक्ष्मा से छुड़ाता हूँ; इससे तुम्हारे जीवन की रक्षा होगी। यदि कोई पाप-ग्रह इस रोगी को धरे हुए हैं, तो इन्द्र और अग्नि, इसे उसके हाथ से छुड़ाओ।

२. यदि इस रोगी की आयु का क्षय हो रहा है, यदि यह इस लोक से गया हुआ-सा है और यदि यह मृत्यु के पास गया हुआ है, तो भी मैं मृत्यु-देवता निर्ऋति के पास से उसे लौटा ला सकता हूँ। मैंने इसे इस प्रकार स्पर्श किया है कि, यह सौ वर्ष जीता रहेगा।

३. मैंने यह जो आहुति दी है, उसके एक सहस्र नेत्र सौ वर्ष की परमायु और आयु देते हैं। ऐसी ही आहुति के द्वारा मैं रोगी को लौटा लाया हूँ। सारे पापों से छुड़ाकर इन्द्र इसे सौ वर्ष जीवित रक्खें।

४. रोगी, तुम एक सौ शरत्, सुख से एक सौ हेमन्त और एक सौ वसन्त तक जीवित रहो। इन्द्र, अग्नि, सविता और बृहस्पति हव्य-द्वारा तृप्त होकर इसे सौ वर्ष की आयु दें।

५. रोगी, तुम्हें मैंने पाया है, तुम्हें लौटा लाया हूँ। तुम पुनः नये होकर आये हो। तुम्हारे समस्त अङ्गों, चक्षुओं और समस्त परमायु को मैंने प्राप्त किया है।

१६२ सूक्त

(देवता गर्भ-रक्षण। ऋषि ब्रह्म-पुत्र रक्षोहा। छन्द अनुष्टुप्।)

१. स्तोत्र के साथ एकमत होकर राक्षस-वध-कर्त्ता अग्नि यहाँ से समस्त बाधायें, उपद्रव और रोग दूर कर दें, जिनके द्वारा, हे नारी, तुम्हारी योनि आक्रान्त हुई है।

२. नारी, जो मांसाहारी राक्षस, रोग वा उपद्रव तुम्हारी योनि को आक्रान्त करते हैं, राक्षसहन्ता अग्नि, स्तोत्र के साथ एकमत होकर, उन सबका विनाश करें।

३. नारी, पुरुष के वीर्य-पात के समय, गर्भ में शुक्र-स्थिति के समय, (तीन मास के अनन्तर) गर्भ के गमन के समय अथवा (दस मास के अनन्तर) जन्म के समय जो तुम्हारे गर्भ को नष्ट करता वा नष्ट करने की इच्छा करता है, उसे हम यहाँ से दूर कर देते हैं।

४. गर्भ नष्ट करने के लिए जो तुम्हारे दोनों जघनों को फैला देता है, इसी उद्देश्य से जो स्त्री-पुरुष के बीच में सोता है अथवा जो योनि के मध्य पतित पुरुष-शुक्र को चाट जाता है, उसे हम यहाँ से दूर कर देते हैं।

५. नारी, जो तुम्हारा भाई, पति और उपपति (जार) बनकर तुम्हारे पास जाता है और तुम्हारी सन्तति को नष्ट करने की इच्छा करता है, उसे हम यहाँ से दूर करते हैं।

६. जो स्वप्नावस्था और निद्रावस्था में तुम्हें मुग्ध करके तुम्हारे पास जाता है और जो तुम्हारी सन्तति नष्ट करने की इच्छा करता है, उसे हम यहाँ से दूर करते हैं।

१६३ सूक्त

(देवता यक्ष्माशन। ऋषि कश्यपगोत्रीय विवृहा। छन्द अनुष्टुप्।)

१. तुम्हारे दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दोनों नासा-रन्ध्रों, चिबुक, शिर, मस्तिष्क और जिह्वा से मैं यक्ष्मा (रोग) को दूर करता हूँ।

२. तुम्हारी ग्रीवा की धमनियों, स्नायु, अस्थि-सन्धि, दोनों भुजाओं, दोनों हाथों और दोनों स्कन्धों से मैं रोग को दूर करता हूँ।

३. तुम्हारी अन्ननाड़ी, क्षुद्रनाड़ी, बृहदण्ड, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत और अन्यान्य मांस-पिण्डों से मैं रोग को दूर करता हूँ।

४. तुम्हारे दो उरुओं, दो जानुओं, दो गुल्मों, दो पाद-प्रान्तों, दो नितम्बों, कटिदेश और मलद्वार से मैं व्याधि को दूर करता हूँ।

५. मूत्रोत्सर्ग करनेवाले पुरुषाङ्ग, लोम और नख—तुम्हारे सर्वाङ्ग शरीर से मैं रोग को दूर करता हूँ।

६. प्रत्येक अङ्ग, प्रत्येक लोम, शरीर के प्रत्येक सन्धि-स्थान और तुम्हारे सर्वाङ्ग में जहाँ कहीं रोग उत्पन्न हुआ है, वहाँ से मैं रोग को दूर करता हूँ।

१६४ सूक्त

(देवता दुःस्वप्न-नाश। ऋषि आङ्गिरस प्रचेता। छन्द अनुष्टुप् आदि।)

१. दुःस्वप्नदेव, तुमने मन पर अधिकार कर लिया है। हट जाओ, भाग जाओ, दूर जाकर विचरण करो। अत्यन्त दूर में जो निर्ऋति देवता हैं, उनसे जाकर कहो कि, जीवित व्यक्ति के मनोरथ विशाल होते हैं; इसलिए वे मनोरथ-भङ्ग करती हैं।

२. जीवित व्यक्ति के मनोरथ विशाल होते हैं, वे उत्तम काम्य वस्तु को चाहते हैं, उत्तम और सुन्दर फल पाने की कामना करते हैं। यम कल्याणमय नेत्र से देखते हैं।

३. आशा के समय, आशा-भङ्ग के समय, आशा सफल होने के समय, जाग्रदवस्था में और निद्रावस्था में जो हम अपकर्म करते हैं, उन सब क्लेशकर पापों को अग्नि हमारे पास से दूर ले जायँ।

४. इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, हमने जो पाप किया है, अङ्गिरा के पुत्र प्रचेता उस शत्रु-कृत अमङ्गल से हमारी रक्षा करें।

५. आज हम विजयी हुए हैं, प्राप्तव्य को पा लिया है और हम अपराध-मुक्त हुए हैं। जाग्रदवस्था और निद्रावस्था में अथवा सङ्कल्प-जन्य जो पाप हुआ है, वह हमारे द्वेषी शत्रु के पास जाय। जिससे हम द्वेष करते हैं, उसके पास जाय।

१६५ सूक्त

(दैवता विश्वदेव। ऋषि निऋति-पुत्र कपोत। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. देवो, यह कपोत निर्ऋति के द्वारा प्रेरित दूत है। क्लेश देने के लिए हमारे घर में आया है। उसकी हम पूजा करते हैं। यह अमङ्गल हम दूर करते हैं। हमारे दास, दासी आदि और गौ, अश्व आदि अमङ्गल-ग्रस्त न हों।

२. देवो, जो कपोत हमारे घर में भेजा गया है, वह हमारे लिए शुभकर हो—हमारा कोई अमङ्गल न करे। बुद्धिमान् और हमारे आत्मीय अग्नि हमारा हव्य ग्रहण करें। यह पक्ष-युक्त अस्त्र हमें परित्याग कर जाय।

३. पक्षधारी और अस्त्र-स्वरूप वा हनन-हेतु कपोत हमें न मारे। जिस व्यापक स्थान में अग्नि संस्थापित हुए हैं, उसी स्थान पर यह बैठे। हमारी गायों और मनुष्यों का मङ्गल हो। देवो, हमें यहाँ कपोत नहीं मारे।

४. यह उलूक जो अमङ्गल ध्वनि करता है, वह मिथ्या हो। कपोत अग्नि-स्थान में बैठता है। जिनका दूत बनकर यह आया है, उन मृत्यु-स्वरूप यम को नमस्कार।

५. देवो, यह कपोत भगा देने योग्य है। इसे मन्त्र के द्वारा भगा दो। अमङ्गल का विनाश करके आनन्द के साथ गाय को उसकी आहार-सामग्री की ओर ले चलो। यह कपोत अतीव वेग से उड़ता है। यह हमारा अन्न छोड़कर दूसरे स्थान में उड़ जाय।

१६६ सूक्त

(देवता शत्रु-विनाशक। ऋषि वैराज ऋषभ। छन्द अनुष्टुप्।)

१. इन्द्र ऐसा करो कि, मैं समकक्ष व्यक्तियों में श्रेष्ठ होऊँ, शत्रुओं को हराऊँ, विपक्षियों को मार डालूँ और सर्वश्रेष्ठ होकर मैं अशेष गोधन का अधिकारी बनूँ।

२. मैं शत्रु-ध्वंसक हुआ। मुझे कोई हिंसित वा आहत नहीं कर सकता। यह सब शत्रु मेरे दोनों चरणों के नीचे अवस्थिति करता है।

३. शत्रुओ, जैसे धनुष के दोनों प्रान्तों को ज्या से बाँधा जाता है। वैसे ही तुम्हें मैं इस स्थान में बाँधता हूँ। वाचस्पति, इन्हें मना कर दो कि, ये मेरी बात में बात न कह सकें।

४. मेरा तेज कर्म के लिए ही उपयुक्त है उसी तेज को लेकर मैं शत्रु-पराजय करने को आया हूँ। शत्रुओ, मैं तुम्हारे मन, कार्य और मिलन को अपहृत कर लेता हूँ।

५. तुम्हारी उपार्जन-योग्यता का अपहरण करके मैं तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ हुआ हूँ—तुम्हारे मस्तक पर उठ गया हूँ। जैसे जल में मेढ़क बोलते हैं, वैसे ही तुम लोग मेरे पैरों के नीचे चीत्कार करते हो।

१६७ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि विश्वामित्र और जमदग्नि। छन्द जगती।)

१. इन्द्र, यह मधुतुल्य सोमरस तुम्हारे लिए डाला गया है। यह जो सोमीय कलश प्रस्तुत किया जाता है, उसके प्रभु तुम्हीं हो। हमारे लिए

तुम प्रचुर धन और विशाल पुत्रादि दो। तपस्या करके तुमने स्वर्ग को जीत लिया है।

२. जो इन्द्र स्वर्ग-विजयी हुए हैं और जो सोम-स्वरूप आहार पाने पर विशिष्ट रीति से आमोद करते हैं। उन्हीं इन्द्र को प्रस्तुत सोम-रस के निकट आने के लिए बुलाते हैं। हमारे इस यज्ञ को जानो। आओ। शत्रु-विजयी इन्द्र के पास हम शरणापन्न हुए हैं।

३. सोम और राजा वरुण के यज्ञ तथा बृहस्पति और अनुमति की शरण वा यज्ञ-गृह में वर्त्तमान मैं, इन्द्र, तुम्हारे स्तोत्र में प्रवृत्त हुआ हूँ। धाता और विधाता, तुम्हारी अनुमति से मैंने कलशस्थ सोम का पान किया है।

४. इन्द्र, तुम्हारे द्वारा प्रेरित होकर मैंने चरु के साथ अन्यान्य आहारीय द्रव्य प्रस्तुत किये हैं। सर्व-प्रथम स्तोता होकर मैं इस स्तोत्र का उच्चारण करता हूँ। (इन्द्र की उक्ति)—विश्वामित्र और जमदग्नि, सोम प्रस्तुत होने पर मैं जिस समय धन लेकर गृह में आता हूँ, उस समय तुम लोग भली भाँति स्तुति करना।

१६८ सूक्त

(देवता वायु। ऋषि वातगोत्रीय अनिल। छन्द त्रिष्टुप्।)

१. जो वायु रथ के समान वेग से दौड़ते हैं, उनकी महिमा का मैं वर्णन करता हूँ। इनका शब्द वज्र के समान है। यह वृक्षादि को तोड़ते-ताड़ते आते हैं। ये चारों ओर रक्तवर्ण करके और आकाश-पथ का अवलम्बन करके जाते हैं। ये पृथिवी की धूलि को बिखेर करके जाते हैं।

२. वायु की गति से पर्वतादि पर्यन्त काँप जाते हैं। घोड़ियाँ जैसे युद्ध में जाती हैं, वैसे ही पर्वतादि वायु की ओर जाते हैं। वायु घोड़ियों की सहायता पाकर और रथ पर चढ़कर समस्त भुवन के राजा के समान जाते हैं।

३. आकाश में गति-विधि करने के समय किसी भी दिन स्थिर होकर नहीं बैठते। ये जल के बन्धु हैं, जल के आगे उत्पन्न होते हैं और ये सत्य-स्वभाव हैं। ये कहाँ जन्मे हैं? कहाँ से आये हैं?

४. वायुदेव देवों के आत्म-स्वरूप और भुवनों के सन्तान-स्वरूप हैं। ये यथेच्छ विहार करते हैं। इनका शब्द ही, अनेक प्रकार से सुना जाता है इनका रूप प्रत्यक्ष नहीं होता। हवि के साथ हम वायु की पूजा करते हैं।

१६९ सूक्त

(देवता गौ। ऋषि कक्षीवान् के पुत्र शबर। छन्द त्रिष्टुप।)

१. सुखकर वायु गायों की ओर बहें। गायें बलकारक तृण, पत्र आदि का आस्वादन करें। प्रभूत और प्राण-परितृप्तिकर जल ये पियें। रुद्रदेव, चरण-युक्त और अन्न-स्वरूप गायों को स्वच्छन्दता से रक्खो।

२. कभी गायें समान वर्ण होती हैं, कभी विभिन्न वर्णों की और कभी सर्वाङ्ग एक वर्ण की। यज्ञ में अग्नि उनको जानते हैं। अङ्गिरा की सन्तानों ने तपस्या के द्वारा उनको पृथिवी पर बनाया है। पर्जन्यदेव, उन गायों को सुख दो।

३. गायें अपने शरीर को देवों के यज्ञ के लिए दिया करती हैं। सोम उनकी अशेष आहुतियों को जानते हैं। इन्द्र, उन्हें दूध से परिपूर्ण करके और सन्तान-संयुक्त बनाकर हमारे लिए गोष्ठ में भेज दें।

४. देवों और पितरों से परामर्श करके प्रजापति ने मुझे इन गायों को दिया है। इन सब गायों को कल्याण-युक्त करके वे हमारे गोष्ठ में रखते हैं, ताकि हम गायों की सन्तति प्राप्त कर सकें।

१७० सूक्त

(देवता सूर्य। ऋषि सूर्य-पुत्र विभ्राट्। छन्द जगती आदि।)

१. अत्यन्त दीप्तिवाले सूर्यदेव मधु-तुल्य सोमरस का पान करें और यज्ञानुष्ठाता व्यक्ति को उत्तम आयु दें। वे वायु के द्वारा प्रेरित होकर

प्रजावर्ग की स्वयं रक्षा करते हैं, प्रजावर्ग का पोषण करते और अशेष प्रकार की शोभा पाते हैं।

२. सूर्य-रूप और प्रकाशमय पदार्थ उदित हो रहा है। यह प्रकाण्ड, दीप्तिशाली भली भाँति संस्थापित और सर्वोत्कृष्ट अन्नदाता है। यह आकाश के ऊपर संस्थापित होकर आकाश को आश्रित किये हुए है। ये शत्रु-हन्ता, वृत्र-वध-कर्त्ता, असुरों के घातक और विपक्षियों के संहारक हैं।

३. सूर्य सारे ज्योतिर्मय पदार्थों में श्रेष्ठ और अग्रगण्य हैं। ये विश्वजित् और धनजित् हैं। ये प्रकाण्ड, दीप्तिशाली और सारी वस्तुओं को आलोक-युक्त करनेवाले हैं। वृष्टि की सुविधा के लिए ये विस्तारित हुए हैं। ये बल-स्वरूप और अविचल तेजवाले हैं।

४. सूर्य, तुम ज्योति से प्रकाशमय होकर आकाश के उज्ज्वल स्थान में गये हो। तुम्हारा प्रताप सारे कर्मों का सहायक है, सारे यज्ञों के अनुकूल और सारे भुवनों की पुष्टि देनेवाला है।

१७१ सूक्त

(देवता इन्द्र। ऋषि भृगु-पुत्र इट। छन्द गायत्री।)

१. इन्द्र, इट ऋषि ने जिस समय सोम प्रस्तुत किया, उस समय तुमने उनके रथ की रक्षा की—सोम-युक्त उन इट की तुमने पुकार सुनी।

२. यज्ञ काँप गया—धनुर्धारी मख का मस्तक शरीर से तुमने पृथक् किया। सोमवाले इट के गृह में तुम गये।

३. इन्द्र, अस्त्र-बुध्न के पुत्र ने बार-बार तुम्हारी स्तुति की; इसलिए तुमने वेन-पुत्र पृथु को उनके वश में कर दिया।

४. इन्द्र, जिस समय रम्य मूर्ति सूर्य पश्चिम की ओर जाते हैं, उस समय देवता लोग भी नहीं जानते कि, वे कहाँ गये। तुम फिर उन सूर्य को पूर्व की ओर ले आते हो।

१७२ सूक्त

(देवता उषा। ऋषि आङ्गिरस संवर्त्त। छन्द द्विपदा विराट्।)

१. चमत्कार तेज के द्वारा तुम आओ। परिपूर्ण स्तन के साथ गायें मार्ग पर चली हैं।

२. उषा, उत्तम स्तोत्र ग्रहण करने को तुम आओ। यज्ञकर्त्ता उत्तम दान-सामग्री लेकर श्रेष्ठ दातृत्व के साथ यज्ञ-सम्पादन करता है।

३. अन्न-संग्रह करके हम उत्तमोत्तम वस्तुओं का दान करने को उद्यत हैं। सूत्र के समान इस यज्ञ का हम विस्तार करते हैं। तुम्हें हम यज्ञ देते हैं।

४. उषा ने अपनी भगिनी रात्रि का अन्धकार दूर किया। उत्तम रूप से वृद्धि प्राप्त करके रथ का संचालन किया।

१७३ सूक्त

(देवता राजस्तुति। ऋषि आङ्गिरस ध्रुव। छन्द अनुष्टुप्।)

१. राजन्, तुम्हें मैंने राष्ट्रपति बनाया। तुम इस देश के प्रभु बनो। अटल, अविचल और स्थिर होकर रहो। प्रजा तुम्हारी अभिलाषा करें। तुम्हारा राजत्व नष्ट न होने पावे।

२. तुम यहीं पर्वत के समान अविचल होकर रहो। राज्य-च्युत नहीं होना। इन्द्र के समान निश्चल होकर यहाँ रहो। यहाँ राज्य को धारण करो।

३. अक्षय्य होमीय द्रव्य पाकर इन्द्र ने इस नवाभिषिक्त राजा को आश्रय दिया है। ब्रह्मणस्पति ने आशीर्वाद दिया है।

४. जैसे आकाश, पृथिवी, समस्त पर्वत और सारा विश्व निश्चल है, वैसे ही यह राजा भी प्रजावर्ग के बीच अविचल हो।

५. वरुण राजा तुम्हारे राज्य को अविचल करें, बृहस्पतिदेव अविचल करें, इन्द्र और अग्नि भी इसे अविचल रूप से धारण करें।

६. अक्षय्य हवि के साथ अक्षय्य सोमरस को हम मिलाते हैं; इसलिए इन्द्र ने तुम्हारी प्रजा को एकायत्त और करप्रदानोन्मुख बनाया है।

१७४ सूक्त

(देवता राजस्तुति। ऋषि आङ्गिरस अभीवर्त्त। छन्द अनुष्टुप्।)

१. यज्ञ-सामग्री लेकर देवों के निकट जाना होगा। यज्ञ-सामग्री पाकर इन्द्र अनुकूल हुए हैं। ब्रह्मणस्पति, ऐसी यज्ञ-सामग्री के साथ हमने यज्ञ किया है; इसलिए हमें राज्य-प्राप्ति के लिए प्रवृत्त करो।

२. जो विपक्षी हैं, जो हमारे हिंसक शत्रु हैं, जो सेना लेकर युद्ध करने को आते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, राजन्, उनको अभिभूत करो।

३. सविता देव तुम्हारे प्रति अनुकूल हुए हैं। सोम अनुकूल हुए हैं और सारे प्राणी तुम्हारे अनुकूल हुए हैं। इस प्रकार तुमने सबके पास आश्रय पाया है।

४. देवो, जिस यज्ञ-सामग्री के द्वारा इन्द्र कर्म-कर्त्ता, अन्नवान् और उत्तम हुए हैं, उसी से मैंने भी यज्ञ किया है। इसी से मैं शत्रु-रहित हुआ हूँ।

५. मेरे शत्रु नहीं हैं। मैंने शत्रुओं का वध किया है। मैं राज्य का प्रभु और विपक्ष-वारण में समर्थ हुआ हूँ। मैं सारे प्राणियों और मन्त्री आदि का अधीश्वर हुआ हूँ।

१७५ सूक्त

(देवता सोमाभिषवकारी प्रस्तर। ऋषि सर्पर्षि अर्बुद के पुत्र ऊर्द्ध्वग्रीवा। छन्द गायत्री।)

१. प्रस्तरो, सवितादेव अपनी शक्ति के द्वारा तुम्हें, सोम प्रस्तुत करने को, नियुक्त करें। तुम अपने कर्म में नियुक्त होओ और सोम प्रस्तुत करो।

२. प्रस्तरो, दुःख-कारण को दूर करो। दुर्मति को दूर कर दो। गायों को हमारे लिये औषध-स्वरूप बनाओ।

३. परस्पर मिलकर प्रस्तर एक विस्तृत प्रस्तर की चारों ओर शोभा पा रहे हैं। रस-वर्षक सोम के प्रति वे प्रस्तर अपने बल का प्रयोग करते हैं।

४. प्रस्तरो, सविता देव सोमयज्ञकर्त्ता यजमान के लिये तुम्हें सोम प्रस्तुत करने को नियुक्त करें।

१७६ सूक्त

(ऋभु और अग्नि देवता। ऋभु-पुत्र सूनु ऋषि। अनुष्टुप् और गायत्री छन्द।)

१. ऋभु लोग, घोर युद्ध करने के लिये, निकले। जैसे बछड़े अपनी माता गाय को घेरकर खड़े हो जाते हैं, वैसे ही वे संसार को धारण करने के लिये पृथिवी के चारों ओर व्याप्त हुए।

२. ज्ञानी अग्निदेव को देव-योग्य स्तोत्र के द्वारा प्रसन्न करो। वह यथा-नियम हमारे हव्य का वहन करें।

३. यह वही अग्नि हे, जो देवों के निकट जाते हैं। यह होता है। यज्ञ के लिये इनकी स्थापना की जाती है। रथ के समान यह हव्य का वहन करते हैं। यह पुरोहित-यजमानों के द्वारा घिरे हुए हैं। यह किरण-युक्त है। यह स्वयं यज्ञ सम्पन्न करना जानते हैं।

४. अग्नि रक्षा करते हैं। इनकी उत्पत्ति अमृत के सदृश है। यह बलवान् की अपेक्षा भी बली हैं। परमायुर्वृद्धि के लिये यह उत्पादित हुए हैं।

१७७ सूक्त

(माया देवता। प्रजापति-पुत्र पतङ्ग ऋषि। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।)

१. मन में विचार करके मानस चक्षु से विद्वानों ने एक पतंग (जीवात्मा) को देखा कि उसे आसुरी माया आक्रान्त कर चुकी है। पण्डितों ने कहा कि यह समुद्र के बीच घटित हो रहा है। वे (विद्वान लोग) विधाता की किरणों में जाने की इच्छा करते हैं।*

२. पतंग मन ही मन वचन को धारण करता है। गर्भ के मध्य में ही उसे गन्धर्व ने वह वाक्य सिखाया है। वह वाणी दिव्य, स्वर्ग-सुख देनेवाली और बुद्धि की अधीश्वरी है। सत्य-मार्ग में विद्वान् लोग उस वाणी की रक्षा करते हैं।†

३. मैंने देखा, गोपालक (जीवात्मा) का कभी पतन (विनाश) नहीं होता। वह कभी समीप और कभी दूर, नाना मार्गों में भ्रमण करता है। वह कभी अनेक वस्त्र एकत्र ही पहनता है और कभी पृथक्-पृथक् पहनता है। इस प्रकार वह संसार में बार-बार आता-जाता है।‡

---

*जीवात्मा माया से आच्छन्न है—यह बात चिन्तन के द्वारा जानी जाती है। समुद्रवत् परमात्मा के बीच में ही जीवात्मा रहता है। परमात्मा का धाम आलोकमय है। वहाँ जाने से ही माया से मुक्ति मिलती है।

†जीवात्मा (पतंग) में बीज-रूप से सारे शब्द रहते हैं। गर्भावस्था में ही गन्धर्व अर्थात् देवता उसके मन में उस बीज को दे देते हैं। वाक्य की शक्ति असीम है। बुद्धिमान् लोग उसे कभी मिथ्या की ओर नहीं ले जाते।

‡जीवात्माओं का ध्वंस नहीं होता, वह नाना योनियों में भ्रमण करते हैं। किसी जन्म में नाना गुण (वस्त्र) धारण करते हैं और किसी जन्म में दो-एक। निकृष्ट योनि में अल्प गुण रहता है और उत्कृष्ट योनि में अनेक गुण देखे जाते हैं।

१७८ सूक्त

(तार्क्ष्य देवता। तार्क्ष्य के पुत्र अरिष्टनेमि ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।)

१. जो तार्क्ष्य पक्षी (गरुड़) बली हैं, सोम लाने के लिये जिसे देवों ने भेजा था, जो विपक्ष-विजयी और शत्रुओं के रथों का जयी है, जिसके रथ का कोई ध्वंस नहीं कर सकता और जो सेनाओं को युद्ध में प्रेरित करता है, उसी को हम मंगल-कामना से बुलाते हैं।

२. हम तार्क्ष्य पक्षी की दान-शक्ति को बुलाते हैं। जैसे हम इन्द्र की दानशक्ति का आह्वान करते हैं, वैसे ही आह्वान करते हैं। मंगल के लिये हम इस दानशक्ति का, विपत्ति से पार पाने के निमित्त, नौका के समान आश्रय करते हैं। द्यावापृथिवी, तुम विशाल, बृहत्, सर्वव्यापक और गंभीर हो। जाने वा आने के समय हम न मरें।

३. जैसे अपने तेज के द्वारा सूर्य वृष्टि-वारि का विस्तार करते हैं, वैसे ही तार्क्ष्य पक्षी ने अति शीघ्र चार वर्णों और निषाद को परिपूर्ण-भाण्डार कर दिया। गरुड़ की गति शत और सहस्र धनों की दात्री है। जैसे बाण के लक्ष्य में संलग्न होने पर उसमें कोई बाधा नहीं दे सकता, वैसे ही तार्क्ष्य के आगमन में कोई बाधा नहीं दे सकता।

१७९ सूक्त

(इन्द्र देवता। १म के उशीनर-पुत्र शिबि, २य के काशीनरेश प्रतर्दन और ३य के रोहिदश्व-पुत्र वसुमना ऋषि। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।)

१. पुरोहितो, उठो। इन्द्र के समयोचित भाग के लिये उद्योग करो। यदि वह पकाया जा चुका है, तो होम करो और यदि अभी अपक्व है, तो उत्साहपूर्वक पाक करो।

२. इन्द्र, हव्य-पाक हो चुका है। समीप आओ। सूर्य अपने प्रतिदिन के कुछ कम आध मार्ग (विकलमध्य) म पहुँच चुके हैं। जैसे कुल-रक्षक पुत्र इतस्ततः विचरण करनेवाल गृहपति की प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही बन्धु लोग विविध-यज्ञ-सामग्री लेकर तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं।

३. प्रथम गाय के स्तन में दुग्ध वा "दधिघर्माख्य हवि" का पाक होता है, पुनः, मुझे विदित है कि, वह अग्नि में पकाया जाकर अत्युत्तम पाक की अवस्था को प्राप्त होता और अतीव पवित्र तथा नवीन रूप धारण करता है। बहुधन-वितरणकर्त्ता और वज्रधर इन्द्र, दोपहर के यज्ञ में तुम्हें जो "दधिघर्माख्य हवि" का अर्पण किया जाता है, उस हवि का, आस्था के साथ, तुम पान करो।

१८० सूक्त

(इन्द्र देवता। इन्द्र-पुत्र जय ऋषि। त्रिष्टुप छन्द।)

१. बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र, तुम विपक्षियों का पराभव करते हो। तुम्हारा तेज सर्व-श्रेष्ठ है। यहाँ तुम्हारा दान प्रवृत्त हो। इन्द्र, तुम दाहिने हाथ से धन दो। तुम धन के स्रोत के स्वामी हो।

२. जैसे पर्वतवासी और कुत्सित चरणवाला पशु घोराकृति होता है, इन्द्र, वैसी ही भयंकर मूर्त्ति में तुम अति दूरवर्त्ती स्वर्गधाम से आये हो। सर्वग और तीक्ष्ण वज्र पर सान चढ़ाकर शत्रुओं को मारो और विपक्षियों को दूर करो।

३. इन्द्र, तुम ऐसे सुन्दर तेज को लेकर जनमे हो, जिसके द्वारा दूसरे के अत्याचार का निवारण करते हो। तुम मनुष्यों की कामना को पूर्ण करते हो और शत्रुता करनेवाले लोगों को ताड़ित करते हो। तुमने देवों के लिये संसार को विस्तीर्ण कर दिया है।

१८१ सूक्त

(विश्वदेव देवता। १म के वासिष्ठ प्रथ, २य के भारद्वाज सप्रथ और ३य के सूर्य-पुत्र घर्म ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।)

१. जिन (वसिष्ठ) के वंशज प्रथ हैं और जिन (भरद्वाज) के वंशीय सप्रथ हैं, उनमें से वसिष्ठ धाता, दीप्त सविता और विष्णु के पास से "रथन्तर" (साम-मन्त्र) ले आये हैं। वह अनुष्टुप् छन्दवाला और घर्म नामक हवि को शुद्ध करनेवाला है।

२. जिस अति निगूढ़ "बृहत्" (साम-मन्त्र) के द्वारा यज्ञानुष्ठान होता है और जो तिरोहित था, उसे सविता आदि ने पाया था। धाता, दीप्त सविता, विष्णु और अग्नि के पास से भरद्वाज "बृहत" को ले आये।

३. अभिषव-क्रिया-निष्पादक "घर्म" (यजुर्वेदीय मन्त्र) यज्ञ-कार्य में, प्रधान रूप से, उपयोगी है; धाता आदि देवों ने उसका मन ही मन ध्यान करके उसे पाया था। पुरोहित लोग धाता, विष्णु और सूर्य के पास से "घर्म" को ले आये हैं।

१८२ सूक्त

(बृहस्पति देवता। बृहस्पति-पुत्र तपुर्मूर्द्धा ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।)

१ बृहस्पति दुर्गति को नष्ट करें, पाप-नाश के लिए स्तुति की स्फूर्ति कर दें, अमंगल को नष्ट कर दें और दुर्मति को दूर कर दें। वह यजमान के रोग का नाश कर दें और भय को हर ले जायँ।

२. प्रयाज में नाराशंस नामक अग्नि हमारी रक्षा करें। अनुयाज में भी वह हमारा मंगल करें। अमंगल को नष्ट कर दें और दुर्मति को दूर कर दें। वह यजमान के रोग का नाश कर दें और भय को हर ले जायँ।

३. स्तोत्र-द्वेषी राक्षसों को प्रतप्त-शिरा बृहस्पति हनन करें। ऐसा होने पर हिंसक मर जायगा। वह अमंगल को नष्ट कर दें और दुर्मति को दूर कर दें। वह यजमान के रोग का नाश कर दें और भय को हर ले जायँ।

१८३ सूक्त

(यजमान, यजमान-पत्नी और होता का आशीर्वाद देवता। प्रजापति-पुत्र प्रजावान् ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।)

१. यजमान, मैंने मानस चक्षु से तुम्हें देखा। तुम ज्ञानी हो, तपस्या से उत्पन्न हो और तपस्या के द्वारा श्री-वृद्धि पायी है। यहाँ पुत्रादि और धन पाकर प्रसन्न होओ। पुत्र ही तुम्हारी कामना है; इसलिये पुत्र उत्पन्न करो।

२. पत्नी, मैंने मानस चक्षु से देखा कि तुम्हारी मूर्त्ति उज्ज्वल है। तुम यथासमय अपने शरीर में गर्भाधान की कामना करती हो। तुमने पुत्र की इच्छा की है। मेरे पास आकर तुम तरुणी हो जाओ। तुम पुत्र उत्पन्न करो।

३. मैं होता हूँ। मैं वृक्षादि में गर्भाधान का कारण हूँ। मैं ही अन्य प्राणियों में भी गर्भाधान करता हूँ। मैं पृथिवी पर प्रजा उत्पन्न करता हूँ। अन्य स्त्रियों में भी मैं पुत्र उत्पन्न करनेवाला हूँ—यज्ञ करके सब में पुत्र उत्पन्न कर सकता हूँ।

१८४ सूक्त

(विष्णु आदि देवता। त्वष्टा ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।)

१. स्त्री के वरांग को विष्णु गर्भाधान के उपयुक्त कर दें, त्वष्टा स्त्री-पुरुष के अभिव्यञ्जक चिह्नों का अवयव कर दें, प्रजापति वीर्य-पात में सहायक हों और धाता तुम्हारे गर्भ का धारण करें।

२. सिनीवाली, गर्भ का धारण करो। सरस्वती, तुम भी गर्भ का धारण (रक्षण) करो। स्वर्ण-मय कमल का आभूषण धारण करनेवाले अश्विद्वय, तुम्हारा गर्भ उत्पादित करें।

३. पत्नी, तुम्हारी गर्भस्थ सन्तान के लिये अश्विद्वय जो सुवर्ण-निर्मित दो अरणियों का घर्षण किये हुए हैं, दसवें मास में प्रसव होने के लिये तुम्हारी उसी गर्भस्थ सन्तान को हम बुला रहे हैं।

१८५ सूक्त

(आदित्य देवता। वरुण-पुत्र सत्यधृति ऋषि। गायत्री छन्द।)

१. हम मित्र, अर्यमा और वरुण का सतेज, दुर्द्धर्ष और महान् आश्रय प्राप्त करें।

२. गृह, पथ और दुर्गम स्थान में उन तीनों के आश्रित व्यक्तियों के ऊपर किसी द्वेषी शत्रु की चाल नहीं काम करती।

३. ये तीनों अदिति-पुत्र जिसे निरन्तर ज्योति देते हैं, उसकी जीवन-रक्षा होती है और उस पर किसी शत्रु की नहीं चलती।

१८६ सूक्त

(वायु देवता। वातगोत्रीय उल ऋषि। गायत्री छन्द।)

१. औषध के समान होकर वायु हमारे हृदय के लिये आवें। वह कल्याणकर और सुखकर हों। वह आयु का विस्तार करें।

२. वायु, तुम हमारे पिता, भ्राता और बन्धु हो। तुम हमारे जीवन के लिये औषध करो।

३. वायु, तुम्हारे गृह में यह जो अमृत की निधि स्थापित है, उससे हमारे जीवन के लिये अमृत दो।

१८७ सूक्त

(अग्नि देवता। अग्नि-पुत्र वत्स ऋषि। गायत्री छन्द।)

१. मनुष्यो, मनुष्यों के काम-वर्षक अग्नि के लिये स्तुति प्रेरित करो। वह हमें शत्रु के हाथ से बचावें।

२. अग्नि अत्यन्त दूर देश से आकाश को पार करके आये हैं। वह हमें शत्रु के हाथ से बचावें।

३. वृष्टि-वर्षक अग्नि उज्ज्वल शिखा के द्वारा राक्षसों का वध करते हैं। वह हमें शत्रु के हाथ से बचावें।

४. वह सारे भुवनों का, पृथक्-पृथक् रूप से, निरीक्षण करते हैं—मिलित भाव से भी पर्यवेक्षण करते हैं। वह हमें शत्रु के हाथ से बचावें।

५. उन अग्नि ने द्युलोक के उस पार में उज्ज्वल मूर्त्ति में जन्म ग्रहण किया है। वह हमें शत्रु के हाथ से बचावें।

१८८ सूक्त

(ज्ञानी अग्नि देवता। अग्नि-पुत्र श्येन ऋषि। गायत्री छन्द।)

१. पुरोहित-यजमानो, ज्ञानी अग्नि को प्रज्वलित करो। वह वसुर्विग्व्यापी और अश्ववान् हैं। वह आकर कुश पर बैठें।

२. बुद्धिमान् यजमान अग्नि के पुत्र हैं। अग्नि वृष्टि-वारि का सेचन करते हैं। इनके लिये मैं विस्तृत और शोभन स्तुति प्रेरित करता हूँ।

३. अग्नि अपनी काली, कराली आदि रुचिकर शिखाओं के द्वारा देवों के पास हवि ले जाते हैं। वह उनके साथ हमारे यज्ञ में पधारें।

१८९ सूक्त

(सूर्य वा सार्पराज्ञी देवता। सार्पराज्ञी ऋषिका। गायत्री छन्द।)

१. गतिपरायण और तेजस्वी सूर्य उदयाचल को प्राप्त करके अपनी माता पूर्व दिशा का आलिंगन करते हैं। अनन्तर वह अपने पिता आकाश की ओर जाते हैं।

२. इनकी देह में दीप्ति विचरण करती है। वह दीप्ति इनके प्राण के बीच से निकल कर आ रही है। महान् होकर इन्होंने आकाश को व्याप्त किया।

३. सूर्य के तीस स्थान (मुहूर्त=दो दण्ड) शोभा पाते हैं। गति-परायण सूर्य के लिये स्तुति उच्चारित की जा रही है। वह प्रतिदिन अपनी किरणों से विभूषित होते हैं।

१९० सूक्त

(सृष्टि देवता। मधुच्छन्दा के पुत्र अघमर्षण ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।)

१. प्रज्वलित तपस्या से यज्ञ और सत्य उत्पन्न हुए। अनन्तर दिन-रात्रि उत्पन्न हुए और इसके अनन्तर जल से पूर्ण समुद्र की उत्पत्ति हुई।

२. जल-पूर्ण समुद्र से संवत्सर उत्पन्न हुआ। ईश्वर दिन-रात्रि को बनाते हैं। निमिष आदिवाले सारे संसार के वह स्वामी हैं।

३. पूर्व काल के अनुसार ही ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, सुखकर स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष को बनाया।

१९१ सूक्त

(प्रथम के अग्नि और शेष के संज्ञान (ऐकमत्य) देवता। संवनन ऋषि। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।)

१. अग्नि, तुम कामवर्षक और प्रभु हो। तुम विशेष रूप से प्राणियों में मिश्रित हो। तुम यज्ञ-वेदी पर जलते हो। हमें धन दो।

२. स्तोताओ, तुम मिलित होओ, एक साथ होकर स्तोत्र पढ़ो और तुम लोगों का मन एकसा हो। जैसे प्राचीन देवता, एक-मत होकर, अपना हविर्भाग स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी, एक-मत होकर, धनादि ग्रहण करो।

३. इन पुरोहितों की स्तुति एक सी हो, इनका आगमन एक साथ हो और इनके मन (अन्तःकरण) तथा चित्त (विचारजन्य ज्ञान) एक-विध हों। पुरोहितो, मैं तुम्हें एक ही मन्त्र से मन्त्रित (संस्कृत) करता हूँ और तुम्हारा, साधारण हवि से, हवन करता हूँ।

४. यजमान-पुरोहितो, तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों और तुम्हारा अन्तःकरण (मन) एक हो। तुम लोगों का सम्पूर्ण रूप से संघटन हो।

अष्टम अध्याय समाप्त

अष्टम अष्टक समाप्त

दशम मण्डल समाप्त

हिन्दी-ऋग्वेद (-संहिता) समाप्त

ओं तत् सत्



ऋग्वेद-सम्बन्धी उल्लेखनीय ग्रन्थ

ऋग्वेद-सम्बन्धी वाङ्मय के जिज्ञासु पाठकों के व्यापक ज्ञान के संवर्द्धन के लिये यहाँ कुछ महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों और उनके समालोचना-ग्रन्थों की सूची (मूल्य, प्रकाशन-समय प्राप्ति-स्थान आदि के साथ) विशेष रूप से संग्रह करके प्रकाशित की जा रही है।

इस सूची से ऋग्वेदीय साहित्य की विशालता का पता लग सकेगा और पढ़ने पर ऋग्वेद के प्रति संसार के प्रसिद्ध वेदाभ्यासियों के विचार भी विदित हो सकेंगे। इनमें से कुछ ग्रन्थ अलभ्य हैं। जो मिलते भी हैं, उनका पुस्तक-विक्रेता मुँह-माँगा मूल्य लेते हैं।

१. सायणाचार्य—ऋग्वेद (शाकल-संहिता)। संस्कृत-भाष्य। प्रो० मैक्समूलर और श्री पशुपति आनन्द गजपति राय द्वारा सम्पादित। प्रथम संस्करण १८४९-७५ ई०। पाँच भाग। द्वितीय संस्करण १८९०-९२। चार भाग। .. ३००)
२. राजाराम शिवराम शास्त्री—सायण-भाष्य। शकाब्द १८१०-१२। .. १५०)
३. दुर्गादास लाहिड़ी—सायण-भाष्य। प्रथम अष्टक का बँगला भाषा में स्वतन्त्र अनुवाद। १६ भाग। पद-पाठ-सहित। बंगाक्षर। १९२५ ई०। .. २५०)
४. प्रसन्नकुमार विद्यारत्न—प्रकाशित। सायण-भाष्य। १८९३ ई०। .. १००)
५ वेंकट माधव—संस्कृत-भाष्य। तीन भाग। अपूर्ण। १९४६ ई०। १५०)
६. स्कन्द स्वामी—संस्कृत-भाष्य। केवल दो भाग। .. ३॥)
७. उद्गीथ—संस्कृत-भाष्य। अपूर्ण। .. ४)
८. मध्वाचार्य—संस्कृत-भाष्य। केवल दो भाग। .. २१)
९. शिवशंकर आहिताग्नि—'वैदिक जीवन' हिन्दी-भाष्य। ४ भाग। .. १००)
१०. कपाली शास्त्री—सिद्धाञ्जन-भाष्य। अपूर्ण। .. ३५)
११ सातवलेकर—सुबोध हिन्दी-भाष्य। १७ खण्ड। अपूर्ण। २१)
१२. स्वामी दयानन्द सरस्वती—हिन्दी-भाष्य। पंचम अष्टक के पाँचवें अध्याय तक। .. ४२)

१३ आर्य मुनि—हिन्दी-भाष्य। सप्तम-भाग-रहित। .. ३७)
१४ एस० पी० पण्डित—केवल तीन मण्डल। मराठी और अँगरेजी अनुवाद। . ७५)
१५ सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव—केवल मराठी अनुवाद। १२)
१६. कोल्हटकर और पटवर्द्धन—मराठी अनुवाद। आठ भाग। पृष्ठ-संख्या १२४४। .. १०)
१७ रमेशचन्द्र दत्त—केवल वंगानुवाद। दो भाग। १८८५-८७ ई०। २०)
१८. एफ० रोजन—यूरोप में सर्व-प्रथम ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का लैटिन भाषा में अनुवाद। १८३८ ई०। .. ३।=)
१९. ए० लुडविग—जर्मन भाषा में अनुवाद। ६ भाग। १८७६-८८ ई०। .. २००)
२०. एच० ओल्डेनबर्ग—जर्मन अनुवाद। दो भाग। १८०९-१२ ई०। .. ३५)
२१. एच० ग्रासमान—जर्मन में पद्य-बद्ध अनूदित। दो भाग। रोमन लिपि १८७६-७७ ई०। .. ३०)
२२. थ्यूडोर आउफरेख्त—सम्पादित। रोमन। प्रथम संस्करण १८६२-७३ द्वितीय संस्करण १८७७ ई०। .. ३५)
२३. एस० ए० लांगलोआ—फ्रेंच भाषा में अनुवाद। चार भाग। १८५१ ई०। .. २०)
२४. एच० एच० विलसन—अँगरेजी अनुवाद। ६ भाग। १८५०-८८ ई०। .. १२५)
२५. टी० एच० ग्रिफिथ—अँगरेजी पद्यानुवाद। दो भाग। १८८९-९२ ई०। .. १५)
२६. सायणाचार्य—ऐतरेय-ब्राह्मण। संस्कृत-भाष्य। दो भाग। काशीनाथ शास्त्री द्वारा प्रकाशित। १८९६ ई०। .. १०)
२७. मार्टिन हाग—ऐतरेय ब्राह्मण। अँगरेजी अनुवाद। दो भाग। १८६३ ई०। .. ९)
२८. ए० बी० कीथ—ऋग्वेद-ब्राह्मण (ऐतरेय और कौषीतकि) अँगरेजी अनुवाद। दस भाग। १९२० ई०। .. ३४)
२९. बी० लिंडनर—कौषीतकि-ब्राह्मण। सम्पादित। १८८७ ई०। ८)
३० सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेय-ब्राह्मण। सम्पादित। सायण-भाष्य। १८५२-६२ ई०। .. १०)
३१. सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेयारण्यक। सम्पादित। सायण-भाष्य। १८७२-७६ ई०। .. ७)

३२. ए० बी० कीथ---शांखायन-आरण्यक। अँगरेजी अनुवाद। .. ९)
३३ सत्यव्रत सामश्रमी---ऐतरेयालोचन। १८६३ ई०। .. ५)
३४ ए० मैकडानल---बृहद्देवता सटिप्पन। १९०४ ई०। .. २५)
३५. ए० मैकडानल---ऋक्सर्वानुक्रमणी। 'वेदार्थ-दीपिका'-सहित सटिप्पन। १८९६ ई०। .. १८)
३६ मध्वाचार्य---ऋग्वेदानुक्रमणी। .. ४)
३७. मंगलदेव शास्त्री---ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। सम्पादित। अँगरेजी भूमिका। .. ८।।।=)
३८. शौनक---ऋग्वेद-प्रातिशाख्य (पार्षद-सूत्र)। उवट-भाष्य-सहित। १८९४-१९०३ ई०। .. ६)
३९. युगलकिशोर शर्मा---ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। हिन्दी-अनुवाद। १९०३ ई०। .. ६)
४०. मैक्समूलर---ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। जर्मन में टिप्पनी। १८५६-६९ ई०। .. ३९)
४१. गोविन्द और अनन्त---शांखायनश्रौत-सूत्र। संस्कृत-टीका। .. १५)
४२. राजेन्द्रलाल मित्र---आश्वलायन-श्रौत-सूत्र। सम्पादित। १८६४-७४ ई० .. ४०)
४३. ए० एफ० स्टेंसलर---आश्वलायन-गृह्य-सूत्र। सम्पादित। दो भाग। .. १०)
४४. गोविन्द स्वामी---वसिष्ठ-धर्म-सूत्र। संस्कृत-टीका। .. २६)
४५. सत्यव्रत सामश्रमी---निरुक्त। चार भाग। सम्पादित। १८८०-९१ ई० .. १२)
४६ सत्यव्रत सामश्रमी---निरुक्तालोचन। .. ६)
४७. चन्द्रमणि विद्यालंकार---निरुक्त पर 'वेदार्थ-दीपक' हिन्दी-भाष्य। .. ७)
४८. विश्वबन्धु शास्त्री---वैदिक-पदानुक्रम-कोष। ५ भाग। .. १५०)
४९. हंसराज---वैदिक कोष। .. १५)
५० एच० ग्रासमान--- ऋग्वेदिक कोष। जर्मन। १८७३-७५ ई०। .. ५०)
५१ ए० ब्लूमफील्ड---'ऋग्वेद रिपिटीशन्स'। अँगरेजी। दो भाग। .. ३४)
५२ अविनाशचन्द्र दास---'ऋग्वेदिक इंडिया'। अँगरेजी। १९२७ ई० .. १०)
५३. भगवतशरण उपाध्याय---'वुमेन इन ऋग्वेद'। १९४१ ई०। .. ७)
५४ रामगोविन्द त्रिवेदी ---वैदिक साहित्य। १९५० ई०। .. ६)
५५. सातवलेकर---वेद-परिचय। तीन भाग। .. ५)

५६. **राथ और बोट्लिंक**—पीटर्सबर्ग संस्कृत-जर्मन-महाकोष। सात भाग। पृष्ठ १००००। १८५५-७५ ई०। .. १०००)

५७. **सत्यव्रत सामश्रमी**—त्रयी-चतुष्टय। .. ४०)

५८. **सम्पूर्णानन्द**—आर्यों का आदि देश। .. ५)

५९. **लो० तिलक**—आर्कटिक होम इन दि वेदाज। .. ८॥)

६० **ए० हिलेब्रान्त**—वैदिक डिक्शनरी। तीन भाग। .. ९०)

६१. **मैकडानल और कीथ**—वैदिक इंडक्स। .. ५०)

६२. **भगवद्दत**—वैदिक वाङ्मय का इतिहास। तीन भाग। १५)

६३. **चिन्तामणि विनायक वैद्य**—हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर (वेदिक पीरियड)। १९३० ई०। .. १०)

६४. **रामगोविन्द त्रिवेदी**—'गङ्गा'—'वेदाङ्क'। सम्पादित। १९३२ ई०। .. २॥)

ये पुस्तकें इन स्थानों पर मिल सकती हैं—

१. मोतीलाल बनारसीदास, कचौड़ी गली, बनारस।
२. ओरियंटल बुक एजेंसी, १५, शुक्रवार, पूना।
३. Otto Harrassowitz, Lipzig, Germany.
४. B. H. Blackwell Ltd., 50/51, Broad Street, Oxford, England.
५. W. Heffer and Sons Ltd., Cambridge, England.



Sanskrit [illegible]
Rgveda - Hindi Tr.